इस्लाम : उद्भव और विकास

[आरम्भ से लगभग १३०० ई० तक]

लेखक

डॉ० किशोरी प्रसाद साहु

रीडर, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग

रांची विश्वविद्यालय, रांची

पुनरीक्षक

डॉ० फणीन्द्र नाथ ओझा

उच्च शिक्षा निदेशक

बिहार सरकार, पटना

© बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, १९८७

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण योजनान्तर्गत मानव संसाधन विकास-मंत्रालय (शिक्षा-विभाग), भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या : ३००

प्रकाशन : प्रथम संस्करण, मार्च, १९८७

संस्करण : २००० (दो हजार) प्रतियाँ

मूल्य : रु० ६०.०० (साठ रुपए)

प्रकाशक : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
प्रेमचन्द मार्ग, राजेन्द्रनगर
पटना—८०००१६

मुद्रक : विनय ऑफसेट प्रेस, (प्रा०)
भिखनापहाड़ी, पटना-८०००

प्रस्तावना

शिक्षा-सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने हिंदी भाषा में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद तथा प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अन्तर्गत अँगरेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाये जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदीभाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकारों द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षण का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ **इस्लाम : उद्भव और विकास** डॉ० किशोरी प्रसाद साहु (रांची विश्वविद्यालय, रांची) की मौलिक कृति है, जो भारत-सरकार के मानव-संसाधन विकास-मंत्रालय (शिक्षा) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालयस्तरीय छात्रों के लिए परम उपयोगी होगा, ऐसा विश्वास है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

(लोकेशनाथ झा)
शिक्षामंत्री, बिहार सरकार
अध्यक्ष,
बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

पटना,
मार्च, १९८७

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रंथ **इस्लाम : उद्भव और विकास** डॉ० किशोरी प्रसाद साहु की मौलिक कृति का प्रकाशन अकादमी का अभिनव प्रकाशन है। अभी तक इतिहास पर इस विषय का ग्रंथ अनुपलब्ध था। इस्लामी सभ्यता और संस्कृति को दृष्टिगत रखते हुए ग्रंथ का प्रणयन, डॉ० साहु का यह प्रयास स्तुत्य है। 'इस्लाम धर्म' एक विश्व-धर्म है, जो सेमेटिक परिवार का है। हजरत मुहम्मद ने ईसा की सातवीं सदी में इस्लाम धर्म का आरंभ किया।

इस्लाम अर्थात् **समर्पण** शब्द से इस्लाम की मूलभूत भावना का बोध होता है। अल्लाह की इच्छा के समक्ष आत्मसमर्पण करने वाले ही सच्चे अर्थ में मुस्लिम कहे जाते हैं। अल्लाह के दूत (पैगम्बर) हजरत मुहम्मद को होने वाले रहस्योद्घाटनों का संकलन ही यह ग्रंथ है।

एतद्विषयक छात्र-अध्यापकों के साथ ही इस विषय के शोध-छात्रों के लिए भी यह ग्रंथ उपादेय सिद्ध होगा और खासकर स्नातक (प्रतिष्ठा) तथा स्नातकोत्तर छात्रों के लिए लाभकारी भी; ऐसा हमें विश्वास है।

ग्रंथ के मुद्रण-प्रकाशन में प्राप्त सभी (प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष) सहयोग के लिए अकादमी आभार स्वीकार करती है।

पटना
मार्च, १९८७

(वैकुण्ठनाथ ठाकुर)
निदेशक,
बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्राक्कथन

इस ग्रंथ में इस्लाम-पूर्व अरब से धर्मयुद्ध (प्रायः तेरहवीं ईस्वी सदी) के समय तक की घटनाओं के सन्दर्भ में इस्लाम के उद्भव और विकास की चर्चा की गई है। आलोच्य अवधि में मध्यकालिक अरबों के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का सुविन्यस्त एवं व्यापक वृत्तान्त प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। 'इस्लाम' पर विचार करते समय यह ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि उससे इतिहास के पूर्ण परिप्रेक्ष्य में एक विश्व-व्यापक धर्म का परिदृश्य मन के समक्ष उद्घाटित होता है। पुनः उसके बाद यह तथ्य भी उभरता है कि किस प्रकार यह धर्म विस्तृत होते-होते एक सभ्यता के रूप में परिणत हो गया। इस्लामी सभ्यता के विकास के क्रम में उसमें विदेशी सांस्कृतिक परम्पराएँ भी समाहित, रूपभेदित और तिरोहित हो गईं। इनमें से कुछ परम्पराएँ पश्चिमी सभ्यता के निर्माण में भी सहायक हुईं। इस प्रकार सातवीं से बारहवीं ईस्वी सदियों के दौरान इस्लामी सभ्यता का विकास और ह्रास विश्व की उस समय की सभ्यताओं के साथ उसकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया और सांस्कृतिक परिवर्तन तथा विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों की प्रक्रिया को भी उजागर करता है। इस्लामी सभ्यता मनुष्य की मूलभूत प्रेरणा से उत्पन्न विचारों और व्यवहार की एक सम्पूर्ण प्रणाली है जिसके अन्तर्गत मनुष्य अल्लाह, सम्पूर्ण विश्व और खुद अपने साथ अपने संबंधों के साथ आता है।[1]

अरब में सातवीं ईस्वी सदी में हजरत मुहम्मद के उपदेशों और शिक्षाओं के फलस्वरूप उदित हुए इस्लाम धर्म का समझौताविहीन ढंग से एकेश्वरवाद पर जोर है। साथ ही उसके अन्तर्गत व्यवहार में, अनेक धार्मिक अभ्यासों का कड़ाई के साथ पालन सम्मिलित है। अटलांटिक से प्रशांत महासागर और अफ्रिका तथा यूरोप से चीन और हिन्देशिया तक इस धर्म का द्रुत गति से विकास हुआ। यद्यपि इस्लाम में, समय-समय पर अनेक उप-पंथ और आन्दोलन हुए, पर सभी के अनुयायी एक समान धर्मनिष्ठा से प्रतिबद्ध और एक ही समुदाय के सदस्य होने का भाव रखते हैं। इस्लाम एक विश्व-धर्म है, जो सेमेटिक परिवार का है और जिसे अरब में सातवीं ईस्वी सदी में हजरत मुहम्मद ने आरम्भ किया। अरबी शब्द इस्लाम का शाब्दिक, अर्थ है 'समर्पण'। इससे इस्लाम की इस मूलभूत भावना का बोध होता है कि इसमें विश्वास रखने वाला, जिसे मुस्लिम (इस्लाम के सकर्मक कृदन्त अर्थात्

---

१. जी० एन० वोन गुनबोम : एसेज इन दी नेचर एंड ग्रोथ आफ कल्चरल ट्रेडिशन, रौटलेज एंड कैगन पौल लि०, लंदन, १९६४ संस्करण, पृ० १।

क्रिया एवं विशेषण के गुणों से युक्त शब्द से निर्मित) कहा जाता है, "अल्लाह की इच्छा के समक्ष आत्मसमर्पण" स्वीकार करता है। अल्लाह को अद्वितीय देवता के रूप में देखा जाता है, जो विश्व का सर्जनहार, संहारक और पुनर्स्थापक है। अल्लाह की इच्छा, जिसके समक्ष मनुष्य आत्मसमर्पण करता है, कुरान से उद्‌घाटित होती है। यह ग्रंथ अल्लाह के दूत (पैगम्बर) हजरत मुहम्मद को होने वाले रहस्योद्‌घाटनों का संकलन है। मुहम्मद साहब के बारे में विश्वास किया जाता है कि वे उनके पूर्व संसार में आये पैगम्बरों (आदम, नोआ, मोसेज, ईसा मसीह तथा अन्य) के क्रम में अंतिम थे। उनका संदेश उनके पहले आये पैगम्बरों को हुए 'रहस्योद्‌घाटनों' को पूर्णता प्रदान करता और उसके साथ ही उनका निराकरण भी करता है। इस्लाम का मूलभूत विश्वास शहादा में अभिव्यक्त किया गया है। उसमें कहा गया है कि मुसलमानों की धर्मनिष्ठा का मूल तत्त्व है :—"अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है और हजरत मुहम्मद उनके पैगम्बर हैं।" यह मूलभूत विश्वास—(१) देवदूतों (विशेषत: धार्मिक रहस्योद्‌घाटनों के देवदूत जिब्रील), (२) कुरान के अलावा धार्मिक रहस्योद्‌घाटनों के ग्रंथों (यहूदी, ईसाई, जरतुश्त और हिन्दू), (३) पैगम्बरों की श्रृंखला (इनमें विशिष्ट और प्रमुख हैं यहूदी-ईसाई धर्मपुरुष, यद्यपि विश्वास किया जाता है कि अल्लाह ने हर राष्ट्र को अपने पैगम्बर भेजे हैं) और (४) अंतिम दिन (न्याय का दिन)। इस परमावश्यक धर्म-निष्ठा के साथ और भी कर्त्तव्य हैं, जिनका कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए, अर्थात् प्रति दिन पाँच बार नमाज, जन-कल्याणकारी जकात कर का भुगतान, उपवास और मक्का की तीर्थ-यात्रा। धर्म-निष्ठा में विश्वास प्रकट करने के अलावा ये चार बातें धर्म के पाँच स्तम्भ कहे जाते हैं।

इस्लाम के प्रारंभ से ही पैगम्बर मुहम्मद ने अपने अनुयायियों के मन में भ्रातृत्व-भावना और धर्मनिष्ठा के पवित्र बंधन के बीज बोये। इनसे अनुयायियों में एक घनिष्ठ संबंध विकसित हुआ, जो एक उदीयमान समुदाय के रूप में मक्का में उनके उत्पीड़न से घनिष्ठतर हुआ। इस्लाम के धार्मिक अभ्यासों का सुगोचर सामाजिक-आर्थिक तत्व (अर्थात् जकात) से इस धर्मनिष्ठा के बंधन में और दृढ़ता मिली। सन् ६२२ ईस्वी में जब पैगम्बर मदीना चले आये तो उनके उपदेशों को बहुत जल्द जन-स्वीकृति प्राप्त हुई। फलस्वरूप इस्लाम के सामुदायिक राज्य का उदय हुआ। इस प्रारम्भिक अवधि में इस्लाम ने एक धार्मिक एकता के रूप में अपना विशिष्ट लोकाचार प्राप्त किया। यह लोकाचार जीवन के आध्यात्मिक और लौकिक, दोनों पक्षों में द्रष्टव्य है इससे न केवल अल्लाह के साथ (अपनी चेतना के जरिये) व्यक्ति का संबंध, और सामाजिक परिवेश में मानवीय संबंध को भी विनियमित करता है। इस प्रकार न केवल एक इस्लामी धार्मिक संस्थान का उदय हुआ बल्कि

समाज को नियंत्रित करने वाली इस्लामी विधि, राज्य और अन्य संस्थान भी विकसित हुए।

इस्लाम के दो स्वरूपों—राजनीतिक और सामाजिक की अभिव्यक्ति अल्लाह द्वारा विशेष रूप से आदेश प्राप्त धार्मिक समुदायों के रूप में हुई है। इसका उद्देश्य था कि जिहाद 'धार्मिक युद्ध' या 'धार्मिक संघर्ष' के जरिये विश्व में अपनी नैतिक मूल्य-प्रणाली स्थापित की जाए। यही कारण है कि मुसलमानों की प्रारम्भिक पीढ़ियों को अपने अभियानों में आशातीत सफलता मिली। सन् ६३२ में पैगम्बर की मृत्यु की एक शताब्दी के भीतर ही उनके अनुयायियों ने विश्व का एक बड़ा भाग, जो स्पेन से मध्य-एशिया होते हुए भारत तक विस्तृत था, एक नये अरब मुस्लिम साम्राज्य के अधीन कर लिया। इस्लामी विजय और साम्राज्य-स्थापन की अवधि एक धर्म के रूप में इस्लाम के विस्तार का प्रथम चरण मानी जा सकती है।[2]

इस्लामी इतिहास, जिसका अध्ययन इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है, मध्य-कालिक यूरोप के इतिहास से अधिक धार्मिक है। पर, इस्लाम में धर्म एक भिन्न तरीके से प्रविष्ट होता है। यहां बिल्कुल उसी अर्थ में न तो पोप की संस्था है न गिरजाघर का पदसोपान और न ही पुरोहित वर्ग। हाँ, इस्लाम में धार्मिक बुद्धिजीवी हैं जिनको धार्मिक संस्थान की संज्ञा दी जा सकती है।[3] एक दूसरा उल्लेखनीय उद्देश्य यह दिखलाना है कि किस प्रकार मिस्र, सीरिया और ईराक की ईसाई संस्कृति इस्लामी संस्कृति में परिणत हो गई। वास्तव में इस्लाम धर्म में ईसाई धर्म की परिणति एक सम्पूर्ण परिवर्तन नहीं रहा। उस क्रम में पुरानी विरासत का बहुलांश ज्यों-का-त्यों कायम रहने दिया गया, पर इसे अब इस्लामी केन्द्र बिन्दु प्रदान किया गया या इसे इस्लामी विचारसरणी के ढांचे में ढाला गया। धर्म-परिणति की इस प्रक्रिया के अध्ययन के दौरान एक विशेष कठिनाई भी आती है, जिसे पार करना कुछ कठिन-सा है। इस्लामी इतिवृत्त के प्रमुख स्रोत मुस्लिम इतिहासकार हैं। और, वे स्वभावतः ईसाई तथ्यों की उपेक्षा करते हैं। उनलोगों की एक मूलभूत धारणा है कि व्यवहारतः इस्लामी नाम से जानी जानेवाली हर चीज एक मात्र इस्लामी स्रोतों से उपलब्ध होती है। आधुनिक इतिहासकारों के समक्ष एक दूसरी कठिनाई यह है कि उनके विचार से इस्लामी समाज का स्वरूप स्थितिशील है और यह भी कि बाद की अवधि के मुसलमानों ने जो कुछ भी किया, वह सब कुछ मुसलमान पहले

---

२. दी न्यू इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (मैक्रोपेडिया), खंड ९, पन्द्रहवाँ संस्करण, १९७७, पृ० ९९१।

३. डब्ल्यू० मौंटगोमरी वाट—दी मैजेस्टी दैट वाज इस्लाम, सिडविक ऐंड जैक्सन, लंदन, प्रथम बार १९७४ में प्रकाशित, पृ० २।

से ही व्यवहार में लाते आ रहे थे। मरुस्थलवासी अरब-परिवर्तनों के प्रति बराबर ही संदेहशील रहे हैं। किंवदन्ती के लिए अरबी शब्द 'बिद' का वास्तविक अर्थ 'अभिनव परिवर्तन' से अधिक कुछ नहीं है। इस्लाम के विभिन्न आधुनिक विद्वानों ने इस विषय पर परिश्रमपूर्वक उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। प्रस्तुत रचना में उन्हीं ग्रंथों से सहायता ली गई है और उनमें उपलब्ध प्रचुर सामग्री प्रयुक्त की गई है। अंत में संदर्भ ग्रन्थ-सूची में उन सभी ग्रन्थों का निर्देश दिया गया है।

फिर भी, इस्लाम की शक्ति और प्रतिकूल स्थितियों में भी न झुकने की उसकी विशेषता के कारण आश्चर्यजनक ढंग से उसके द्रुत विजय-अभियानों के फल-स्वरूप अरब के बाहर उसका विस्तार हुआ और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, महज एक शताब्दी की अवधि के दौरान मुसलमानों के अधीन एक सुविशाल क्षेत्र आ गया जो पश्चिम में स्पेन और मध्य एशिया में सभी आन्तरिक भागों से होता हुआ पूर्व में सिन्धु नदी तक विस्तृत था।

इसमें शक नहीं कि महान बैजेन्टाइन और ईरान के साम्राज्यों के बीच लगातार होनेवाले युद्धों और उनमें भीतर-ही-भीतर व्याप्त आध्यात्मिक गत्यवरोध के कारण आंखों में चकाचौंध पैदा करने वाले मुस्लिम अभियानों की प्रगति अत्यधिक तीव्र हुई। फिर भी इस अत्युज्ज्वल विस्तार तत्त्व की व्याख्या केवल इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए नहीं की जा सकती। इसके लिए इस्लामी आन्दोलन के ताजगी से भरे तेजस्वी स्वरूप को भी उचित महत्त्व देना होगा। इस विस्तार के सच्चे स्वरूप के बारे में विवादों का एक बड़ा लांछन भी संलग्न है और तत्त्व-संबंधी प्रश्नों को इस्लाम के आलोचकों ने बहुत कुछ धूमाच्छादित कर दिया है। इसके लिए आधुनिक काल में मुसलमान जो सफाई देते हैं उन पर भी इस प्रश्न को अस्पष्टता देने की जिम्मेदारी आती है। यद्यपि यह कहना सत्य को झुठलाना होगा कि इस्लाम का प्रचार 'तलवार के बल पर' हुआ है, पर साथ ही यह बात भी नहीं मानी जा सकती है कि इस्लाम का प्रसार उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार बौद्ध धर्म का या ईसाई धर्म का। यों यह सच्चाई है कि ईसाई धर्म ने अपने प्रचार में राज्य का सहारा लिया, जिसकी चर्चा इस ग्रंथ के परवर्ती अध्यायों में की गई है। सच पूछा जाय तो इस्लाम के विस्तार का श्रेय उसके धार्मिक और राजनीतिक ढाँचे के कारण हुआ। जबकि मुसलमानों ने अपना धर्म केवल तलवार के बल पर नहीं बढ़ाया, फिर भी यह सच है कि इस्लाम ने राजनीतिक सत्ता पर अधिकार करने पर जोर दिया; क्योंकि उसकी मान्यता थी कि उसमें अल्लाह की इच्छा सन्निहित है, जिसका पृथ्वी पर कार्यान्वयन राजनीतिक सत्ता पर अधिकार करने से ही हो सकता है।

अरब के बाहर अरब साम्राज्य के विस्तार के साथ मुसलमानों ने अपनी विधि और शासन-व्यवस्था को व्यापकतर बनाया और इसके लिए इस्लामी ढाँचे में

फत का पतन हो गया और सन् ७५० में ईरानियों की सहायता से अब्बासिद खिलाफत की स्थापना हुई। उमैय्यद शासन में इस्लाम के प्रारम्भिक अरब-धार्मिक विज्ञानों का विकास हुआ और साथ ही किंवदंतियों का विस्फोट भी; पर उनकी शासनावधि उतनी लम्बी न रही, जिसमें कि वे इस्लाम के सामान्य बौद्धिकतावाद का सम्पूर्ण विकास देख पाते।

अब्बासिद खिलाफत में दो पारस्परिक, और कुछ हद तक विसंगत घटनाएँ हुईं, जो जानबूझ कर अपनाई गई नीति का परिणाम थीं। एक ओर अब्बासिदों ने उमैय्यद शासन से असंतुष्ट धार्मिक नेतृत्व के दावों को पूरा किया और इस प्रकार राज्यतंत्र के माध्यम से धार्मिक सफलताओं के परिणामों को कार्य-रूप दिया। उन्होंने इस प्रकार उस खाई को पाटने की कोशिश की, जिससे धर्म और उमैय्यद राज्य एक दूसरे से अलग पड़ गए थे। दूसरी ओर उन्होंने इस्लाम में बौद्धिक जागरण की प्रक्रिया को द्रुत गति प्रदान की और सरकारी तौर पर दर्शन, विज्ञान तथा चिकित्सा-संबंधी यूनानी ग्रंथों का बड़े पैमाने पर अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। विद्वान अब्बासिद खलीफा अल-मामून ने इसके लिए एक अकादमी की स्थापना की जिसे "बुद्धिमत्ता के भवन" का नाम दिया गया। विशुद्ध बौद्धिकतावाद की, जो इन कार्यवाहियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई, इस्लाम धर्म पर सक्रिय प्रतिक्रिया हुई। फलतः प्रसिद्ध तर्कवादी धार्मिक आन्दोलन का जन्म हुआ, जो 'मुतजिला' के नाम से जाना जाता है। उसकी चर्चा परवर्ती अध्यायों में की जाएगी।

अब्बासिदों के अधीन सरकारी सेवा में मुख्यतः ईरानी बुद्धिजीवियों की नियुक्ति की गई। इसमें ईरानियों ने अपनी राष्ट्रीय आत्म-चेतना पुनः प्राप्त की। अरबों और ईरानियों के बीच एक सुदीर्घकालीन कटु विवाद उठा, जिसमें दोनों ने अपनी-अपनी आध्यात्मिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक उच्चता सिद्ध करने की कोशिश की। ईरानी पक्ष के लोगों को **शुबिया (राष्ट्रीय)** के नाम से जाना जाता था। जिनकी कार्रवाइयों को सरकार के सचिवीय वर्ग ने प्रोत्साहित किया; फिर दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों में ईरानी भाषा साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई, जिससे ईरानियों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति हुई, यद्यपि उस समय भी धार्मिक तथा अन्य बौद्धिक साहित्य अरबी में ही लिखा जाता रहा।

अब्बासिदों के पतन के बाद अरब प्राधान्य बराबर के लिए समाप्त हो गया और उसके साथ ही सच्चे खिलाफत इतिहास के अंतिम अध्याय का भी अन्त हुआ। इस कारण महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि क्षेत्रीय और राजनीतिक, दोनों ही दृष्टियों से खलीफा की शक्ति खंडित हो गई। पहले जब इस्लाम के पूरे क्षेत्र पर अकेले एक खलीफा का शासन था तो प्रान्तों पर अब **वास्तविक** स्वतंत्र शासक बन

गये । उनका शासन अधिकांशतः वंशगत हो गया । और फिर ऐसा समय भी आया जब अपनी ही राजधानी में खलीफा का आधिपत्य न रहा और उन्हें अपने फौजी सेनापतियों के शासन के अधीन रहने को बाध्य होना पड़ा । और अंततः उन्हें सुलतानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, जो मूलतः और अपनी रीति-नीतियों में फौजी थे । पर फिर भी इस्लाम की सैद्धान्तिक एकता कायम रखी गई और भाषा, संस्कृति, धर्म, संस्थानों और कलाओं की बढ़ती हुई एकता की अभिव्यक्ति होती रही । अपनी दुर्बलता और ह्रास की उस करुणाजनक स्थिति में भी खलीफा संस्थान ऐक्यबद्धता का प्रभाव प्रयुक्त करता रहा ।

कुछ शताब्दियों में खिलाफत पर से अरब आधिपत्य का अन्त हो गया । अरब एकताबद्ध हो कर प्रथम तो साम्राज्य के नियंत्रण में भागीदार बने और फिर उन्होंने साम्राज्य का जो सुविशाल प्रासाद खड़ा किया था, उसके विखंडित होने पर उसे उन्होंने छोड़ दिया । भले ही उनके बाद राजनीतिक और सैनिक सत्ता अन्य लोगों के हाथों में आ गई; पर अरबों की भाषा, उनकी धर्मनिष्ठा और उनकी विधि-संहिता उनके शासन और कृतित्व के स्थायी स्मारक के रूप में कायम रही ।

अरबों के राजनीतिक आधिपत्य के अंत से अरबीकरण की यह प्रक्रिया प्रतिहत न हुई । तब भी यह प्रक्रिया इस कदर कायम रही कि अरब साम्राज्य के प्रान्तों में प्रजा की पूर्व भाषाओं और पहचान का कोई भी अवशेष बचा न रह सका । सातवीं और आठवीं सदियों में अरबों ने जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की उनमें से केवल यूरोपीय प्रदेश—स्पेन, पुर्तगाल तथा सिसली—अब मुस्लिम राज्य नहीं है और उन्होंने पुनः ईसाई धर्म और लातिन सभ्यता अपना ली है; पर वहाँ भी मुस्लिम शासन के अपने अनेक चिह्न विद्यमान हैं ।

केवल एक देश ने, जिस पर अरबों ने कब्जा किया था और जहाँ लोगों का इस्लाम धर्मान्तरण हुआ, अभी भी अपनी विशिष्ट राष्ट्रीय पहचान जारी रखी है । वह अपवाद-स्वरूप देश ईरान है । अरब-साम्राज्य के अन्य प्रजा-देशों की भाँति ईरानियों की अपनी निजी प्राचीन भाषा और संस्कृति थी । पर उन देशों के विपरीत उनका अपना साम्राज्य था, जो उस समय तक कायम रहा, जब तक आगे बढ़ते हुए अरबों ने उनको नष्ट न कर दिया । ईरानी शासन के अधीन ईराक और बैजेन्टाइन शासन के अधीन सीरिया, फिलिस्तीन, मिस्र और उत्तरी अफ्रिका ने बहुत पहले ही अपनी प्राचीन गरिमा खो दी और तब से वे केवल एक साम्राज्यवादी शासक के बाद दूसरे साम्राज्यवादी शासक की अधीनता स्वीकार करते रहे हैं । बैजेन्टाइनों ने भी अपने अनेक प्रान्त खो दिये और अपने हृदय-प्रदेश (मुख्य भूमि) और राजधानी कान्स्टैंटीनोपुल को अपने पास ही रखा जहाँ अरबों द्वारा विजित

देश के अन्य भागों में भाग-भाग कर बैजेन्टाइन के प्रभावशाली व्यक्तियों ने शरण ली। ईरान को अरबों ने पूरी तरह परास्त और पराभूत कर दिया था। वहाँ की राजधानी अरबों के अधीन चली गई; पर वहाँ शासक वर्ग, भारत में शरण लेने अपने वर्ग के कुछ सदस्यों के अलावा, अपने मूल स्थान में ही बने रहे और नई व्यवस्था में अपने लिए विशिष्ट स्थान अर्जित किया। उनके पास दक्षता और अनुभवों का विपुल भांडार था, उससे उन्होंने इस्लामी सभ्यता, समाज और संस्कृति तथा शासक-पक्ष और प्रतिपक्ष को शक्तिशाली और सक्षम बनाने में महान योगदान किया। यहाँ तक कि उन्होंने अरबों से पराजय और निराशा प्राप्त करने के बाद भी बड़ी संख्या में इस्लाम धर्म अपनाया, उसके उन्नयन की दिशा में भी उनका प्रशंसनीय योगदान रहा। यहाँ तक कि ईरानी मुसलमानों ने मध्य एशिया में इस्लाम के परवर्ती विस्तार में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यही नहीं, उन्होंने मुस्लिम संस्कृति को और भी पुष्पित-पल्लवित करने और अरबी भाषा में अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी साहित्य को अधिक सक्षम बनाने में भी उल्लेखनीय योगदान किया। पर इन सबके बावजूद उन्होंने अपनी निजी भाषा बरकरार रखी, जो समय के एक अन्तराल बाद अरबी लिपि में एक नये स्वरूप में पुनः प्रकट हुई, जिसमें यद्यपि अरबी से उधार लिये गये अनेक शब्द थे, पर निस्संदेह उसका रूप मूल ईरानी ही था।

ग्यारहवीं शताब्दी समाप्त होते-होते तक पूरा इस्लाम-जगत भयानक संकट से गुजर रहा था। उसकी दुर्बलता इसीसे प्रकट है कि उस पर चारों ओर से हमले हो रहे थे। पूर्व से तुर्क, उत्तर से काकेशियाई, दक्षिण से बद्दू तथा बर्बर जन-जाति और पश्चिम से फ्रैंक उसके विरुद्ध आक्रमण छेड़े हुए थे। मुस्लिम इतिहासकार इसी सन्दर्भ में स्पेन पर ईसाइयों द्वारा पुनर्विजय और फिलिस्तीन में धर्मयोद्धाओं के आगमन की घटनाएँ देखते हैं।

मध्य काल में इस्लामी जगत पर आक्रमण करने वालों में धर्मयोद्धा सर्वाधिक विश्रुत हैं। इस्लामी दृष्टिकोण से इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उत्तर से घास मैदानी क्षेत्रों (स्टेपी) के लोगों का आक्रमण था। इन सभी आक्रमणों में सर्वप्रथम और सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण तुर्कों का आक्रमण था, जिन्होंने इस्लामी सत्ता और विस्तार के द्वितीय युग का समारंभ किया (धर्मयोद्धाओं के विरुद्ध), जेहाद शुरू किया और विजय, धर्म-परिवर्त्तन तथा एशिया, यूरोप के विशाल नये क्षेत्रों में उपनिवेशीकरण की पद्धति शुरू की।[४]

---

४. दी वर्ल्ड ऑव इस्लाम, संपादक बर्नार्ड लेविस, थेम्स एँड हडसन, लंदन, १९७६ पृ० १४-१५।

विषय-सूची

अध्याय १

इस्लाम के पूर्व अरब

अरब देश के आकार के जो भी देश हैं और ऐतिहासिक रोचकता और महत्व की दृष्टि से अरबों जैसे जो भी लोग हैं, उन सब में किसी पर भी आधुनिक समय में उतना कम विचार और उतना कम अध्ययन नहीं किया गया जितना कम अरब देश और अरब के लोगों पर किया गया।

अरब, जहाँ इस्लाम पल्लवित और पुष्पित हुआ, एशिया महाद्वीप के दक्खिनी और पच्छिमी दिशा में अवस्थित है। इस देश का क्षेत्रफल यूरोप महाद्वीप के चौथाई भाग में फैला हुआ है और संयुक्त राज्य अमेरिका के तिहाई हिस्से में। यह एशिया महाद्वीप का दक्षिणी और पश्चिमी प्रायद्वीप है। यह दुनिया के नक्शे के सब प्रायद्वीप से बड़ा दक्षिणी-पश्चिमी एशिया का प्रायद्वीप है। इसके उत्तर में सीरियाई रेगिस्तान है और पूर्व में फारस की खाड़ी है, दक्षिण में हिन्द महासागर है और पश्चिम में लाल महासागर है। इस प्रकार यह तीन ओर से पानी से घिरा हुआ है। अरब इसे "जजिरात-अल-अरब" यानी अरब प्रायद्वीप कहते हैं।

अरब का विशाल क्षेत्र अनेक क्षेत्रीय प्रान्तों में बँटा हुआ है जिनके नाम हैं हेज्जाज, नज्द, यमन, हद्रामाउंट और उमान। इन प्रान्तों का मुस्लिम जगत् के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। हेज्जाज प्रान्त के तीन महत्वपूर्ण नगर मक्का, मदीना और तैफ हैं। उत्तरी अरब में सुविस्तृत मरुभूमि है। देश के एक तिहाई हिस्से में बालुकामय मरुभूमि है। मरुभूमि का सबसे बड़ा हिस्सा अल-दहना (लाल भूमि) के नाम से जाना जाता है। अल-दहना अरब के दक्षिणी हिस्से के मध्य में है। अरब के दक्षिणी भाग में यमन, हद्रामाउंट और उमान है। इस भाग में घनी आबादी है। अपने वाणिज्य और खेती के कारण यह भाग महत्वपूर्ण है। पूरे अरब प्रायद्वीप में यह भाग सबसे ज्यादा उपजाऊ है। इस भाग में उत्पन्न होने वाली विविध वस्तुओं और उनकी समृद्धता के कारण इसका पुराना नाम 'अरब फ़ेलिक्स', या "भाग्यवान अरब" पड़ा।

अरब की मुख्य पैदावार

आर्थिक जीवन

अरब में कोई महत्वपूर्ण नदी नहीं है जिसमें बराबर पानी रहता हो और जो सागर में जाकर मिलती हो। उसके स्रोतों और छोटी नदियों में इतना पानी नहीं

जिनमें नाव और जहाज चलाये जा सकें। वातावरण की शुष्कता और मिट्टी की लवणता (नमकीनपन) ने किसी फल-पौधे या पेड़ की गुंजाइश नहीं रहने दी है। हेज्जाज में खजूर की उपज काफी है। यमन में गेहूँ की उपज होती है और कुछ मरुद्यानों में घोड़ों के खाने के लिए जौ उपजाया जाता है। कुछ क्षेत्रों में बाजरा की खेती होती है और उमान तथा अल-हासा में चावल की। यमन में कॉफी के पौधे अधिक परिमाण में पैदा होते हैं और इस कारण उसे काफी प्रसिद्धि मिली है। चौदहवीं शताब्दी (ईसा सन्) में अबीसिनियाई लोगों ने दक्षिणी अरब में कॉफी पौधे की बोआई की थी। इस "इस्लाम की शराब" (कॉफी) का उल्लेख सोलहवीं शताब्दी में लिखे ग्रन्थों में मिलता है। सन् १५८५ में एक यूरोपीय लेखक ने अरब के इस भाग में कॉफी पौधों की उपज की चर्चा की है। अरब में खजूर के पेड़ को "पेड़ों की रानी" कहा जाता है। इसे गरीब और अमीर दोनों ही पसन्द करते हैं। इसके बिना मरुभूमि में जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। हर बद्दू का प्रिय स्वप्न होता है कि उसके पास दो चीजें हों—पानी और खजूर। कहा जाता है कि खुद मुहम्मद साहब ने कहा था—"अपनी चाची यानी खजूर की इज्जत करो जो उस मिट्टी से बनी होती है जिससे कि आदम बना है।" अरबी लेखकों ने खजूर की एक सौ किस्में मदीना और आस-पास के क्षेत्रों में गिनाई हैं।

घरेलू पौधों में दाखलेता (अंगूर के पौधे) का नाम आता है जिसकी शुरुआत ईसा सन् की चौथी शताब्दी में सीरिया ने यहाँ की। तैफ में यह प्रचुर परिमाण में पाई जाती है और इससे शराब बनाई जाती है। जैतून का पेड़, जिसका उत्पत्ति-स्थान सीरिया है, हेज्जाज में लोगों के लिए बिल्कुल अनजाना है। अरब मरुद्यान (ओयसिस) में अनार, सेव, खुबानी, बादाम, नींबू, ऊख और केले का उत्पादन होता है। नेबेटियन और यहूदियों ने ही संभवतः अरब के उत्तरी क्षेत्र से इन फल-वृक्षों की अरब के अन्य भागों में शुरुआत की।

प्राचीन अरब

अरब में समय-समय पर भिन्न-भिन्न जातियों और वंशों के लोग रहते आये हैं। अरब में बस जानेवाले प्रारम्भिक लोग चाल्डियन थे। कहा जाता है उनकी सभ्यता काफी उच्च कोटि की थी इस सभ्यता के ध्वंसावशेष दक्षिणी एशिया में अभी भी पाये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि उन लोगों की सत्ता मिस्र और मेसोपोटामिया तक विस्तृत थी। उन्होंने बड़े-बड़े किले, मन्दिर और सुदर्शन स्मारक बनवाये थे। इन पुरानी जाति को सेमेटिक जनजातियों ने विनष्ट कर दिया। सेमेटिक जन-जाति संभवतः पूर्वी देशों से आई थी। वे लोग पहले अरब में आकर यमन प्रान्त के कुछ हिस्सों में ठहरे। संभवतः वे लोग कहतान के, जिन्हें जोकतन भी कहा जाता है, वंशज थे। उन्हीं की एक सन्तान यारब ने इस क्षेत्र और

यहाँ रहनेवालों का नाम अरब रखा। इस वंश के शासक यारब के पौत्र अब्दुस-शम्स (सूर्य का दास) जिसका उपनाम सावा था, सेबीयन कहलाये। कहतानी राजे महान् विजेता और नगरों के निर्माता थे। यमन और अरब के अन्य हिस्सों पर उनका कब्जा सातवीं शताब्दी ईस्वी तक कायम रहा।

अरब के आखिरी वासिन्दे इस्माइली थे। इस्माइल महान यहूदी अब्राहम के अनुयायी थे। तथ्य यह है इस्माइल मक्का के निकट बस गए। उनके अनुयायियों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी और वे हेज्जाज में बस गए। फिर वास्तव में वे अरब महानता के संस्थापक हुए। कहा जाता है कि इस्माइल ने काबा का निर्माण कराया। यह पूजा का स्थान था जिसमें अरबी लोग बहुत पहले से ही श्रद्धा रखते थे। और मुसलमान लोगों के लिए पवित्रतम स्थानों में से एक है। वहीं प्रसिद्ध काला पत्थर रखा हुआ है। इस्लामी युग के पूर्व अरब में बसने वाले यही लोग थे।

बद्दुओं की जिन्दगी

अरब जनता बराबर दो लोगों में बँटी रही है—"नगरों में बसने वाले" और "रेगिस्तान में रहने वाले" जिनको बद्दू भी कहा जाता है। नगरों में रहने वाले सिर्फ एक जगह रहते थे। वे जमीन जोतते और अनाज बेचते थे। वे अपने देश के अन्दर और विदेश में व्यापार भी करते थे। बद्दुओं के मुकाबले उनकी प्रकृति कुछ परिमार्जित थी और वे सभ्य भी थे। दूसरी ओर बद्दू एक ही जगह बसना पसन्द न करते थे। वे तंबुओं में रहना पसंद करते थे। वे चारागाह की खोज में अपने परिवार और संगी-साथियों के साथ रेगिस्तान और पठारी क्षेत्रों में एक जगह से दूसरी जगह आया-जाया करते थे। वे आवश्यक चीजों के साथ अपने परिभ्रमण के दौरान जहाँ भी रुकते, वहाँ तम्बू तानकर अपना अस्थायी घर बसा लेते थे।

बद्दुओं के जीवन में जानवरों का महत्व

बद्दुओं के जीवन में महत्वपूर्ण पालतू जानवर ऊँट, गदहा, चौकसी रखने वाला कुत्ता, धूसर रंग का शिकारी कुत्ता (सलूकी), बिल्ली, भेंड़ और बकरे थे। कहा जाता है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब के बाद मिस्र से खच्चर का प्रयोग वहाँ शुरू हुआ। इसके अलावा प्राचीन अरब में घोड़ा भी कुछ बाद में ही उपयोग में लाया जाने लगा। जिस जानवर, यानी घोड़े के लिए नज्द मशहूर है, उसे भी प्रारंभिक सेमेटिक नहीं जानते थे। अरब में घोड़ा आराम-तलबी की चीज समझा जाता था। उसे रेगिस्तान में पालना एक कठिन समस्या थी। उसे रखने वाला आदमी अमीर समझा जाता था। बद्दुओं को हमले में घोड़े की तेज चाल से मदद मिलती थी। घोड़े का उपयोग खेल-कूद में भी होता था जैसे कि प्रतियोगिता, जानवरों की दौड़ और शिकार। जहाँ तक ऊँट का सम्बन्ध है, बद्दू घुमंतुओं के दृष्टि-

कोण से सबसे ज्यादा उपयोगी है, उसके बिना रेगिस्तान में रहने की कल्पना तक नहीं की जा सकती। ऊँट ही घुमन्तू लोगों का परिवहन का साधन है और साथ ही वह उन लोगों के विनिमय का माध्यम भी है। दुल्हन के साथ दिये जाने वाले दहेज, खून की कीमत, जुए में होने वाले लाभ, किसी शेख के धन आदि सभी चीजों का मूल्यांकन ऊँटों की संख्या से होती है। ऊँट बद्दुओं का निर्भरयोग्य साथी, अंतरंग मित्र ही नहीं बल्कि बद्दुओं का पालन-पोषण करने वाला माता-पिता भी है। बद्दू पानी के स्थान पर ऊँट का दूध पीते थे। पानी तो जानवरों के लिए बचा कर रखा जाता था, वे लोग दावत में उसका मांस खाते थे, वे लोग ऊँट के चमड़े का उपयोग ओढ़ने और उसके बालों से अपने तम्बू बनाते थे। वे लोग ऊँट के मूत्र का उपयोग अपने बाल बढ़ाने के लिए तथा पौष्टिक ओषधि के रूप में भी करते थे। यह कहावत है कि "ऊँट रेगिस्तान का जहाज" है, बद्दुओं के जीवन के लिए उसका उपयोग इससे कहीं ज्यादा है। यह उन्हें अल्लाह द्वारा दी गयी अत्यन्त उपयोगी भेंट है। बद्दू ऊँट के सन्दर्भ में परजीवी-सा है। बद्दुओं को यह बात अच्छी लगती है कि उन्हें **अहल-अल-बैर** (ऊँट का आदमी) कहा जाता है। मुसिल का कहना है कि रुवाला जनजाति में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने ऊँट के पेट का पानी न पिया हो। अरबों की अर्थ-व्यवस्था में ऊँट का महत्व इस बात से आंका जा सकता हैं कि अरबी भाषा में ऊँट और उसकी कई किस्मों और विकास के चरणों के बारे में एक हजार से ज्यादा ही शब्द हैं। प्रारंभिक मुस्लिम विजय में ऊँट अपने स्वामी के लिए बहुत सुविधाजनक और उपयोगी होता था। ऊँट से उसके मालिक को एक जगह से-दूसरी जगह जाने में बहुत कम समय लगता था और इसके फलस्वरूप एक ही जगह बसे हुए लोगों की तुलना में उसे लाभ होता था। ऊँट अरबों के लिए इतना आवश्यक था कि खलीफा उमर ने एक जगह लिखा है—"अरब वहीं फलते-फूलते हैं जहाँ ऊँट होता है।"

बद्दुओं का सामाजिक और आर्थिक जीवन

जहाँ तक बद्दुओं के जीवन का सम्बन्ध है, वह इस बात का परिचायक है कि कोई मनुष्य रेगिस्तान की स्थितियों में अपने को किस तरह ढालता है। जहाँ तक बद्दुओं के जीवन का सम्बन्ध था, वहाँ वे चारागाह ढूँढ़ते हुए पहुँच जाते हैं। आबादी में ढूँढ़ते हुए लोगों और एक जगह बसे हुए लोगों के बीच भेदक रेखा अक़सर बहुत क्षीण होती थी। अर्द्ध-यायावर लोगों और अर्द्ध-नागरिक लोगों के बीच कई चरण होते थे। कुछ शहरी लोगों में, जो कभी बद्दू रह चुके थे, अब भी उनकी यायावरी प्रवृत्ति की झलक मिल जाती थी। उसी तरह कुछ बद्दू लोगों में, जो धीरे-धीरे शहरी लोगों जैसे होते जा रहे थे, उनकी भूतपूर्व यायावरी प्रवृत्ति

इस प्रकार एक जगह बसे हुए लोगों में यायावर लोगों का रक्त बराबर मिलता जाता था और रक्त में निरन्तर एक किस्म की ताजगी आती जाती थी।

फिर भी, शहर में बसे लोगों और जंगल में बसे लोगों के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया, आत्म-हित और आत्म-सुरक्षा की माँगों के अनुरूप होती थी। ऐसा बराबर होता था कि रेगिस्तान में रहने और घुमंतू लोग शहरी लोगों की तुलना में अधिक आक्रामक प्रवृत्ति के होते थे। रेगिस्तान में रहनेवाले इस प्रवृत्ति के होते थे कि नगर में रहनेवाले लोगों से छीन-झपट कर ले लें। बद्दू जमीन झपटने और उसे बेचनेवाला या दलाल जैसा होता था अथवा कभी-कभी दोनों ही प्रवृत्तियों का आदमी होता था। रेगिस्तान में बद्दुओं की भूमिका भूमि-डाकुओं की-सी होती थी, उनमें भी सामुद्रिक डाकुओं की जैसी कुछ प्रवृत्तियाँ होती थीं।

घुमंतू लोग आज भी वैसे ही हैं जैसे कि वे कल थे या जैसे कि वे कल होंगे। इस संस्कृति के ढांचे की विविधता बराबर वैसी ही रही है। परिवर्त्तन, प्रगति और विकास ऐसी चीजें हैं जिनको बद्दू आसानी से स्वीकार नहीं करते। वह अभी भी वैसे ही रहते हैं जिस तरह उनके पूर्व-पुरुष रहते थे। वे बकरे या ऊँट के बालों से बने तम्बुओं में रहते हैं। इन तम्बुओं को "बालों का मकान" कहा जाता है। वे अपने भेड़ों और बकरों को उसी तरह पालते-पोसते हैं और उन्हीं चारागाहों में चराते हैं जिस तरह कि उनके पूर्व-पुरुष करते थे। वे भेड़ों और ऊँटों को पालते-पोसते हैं और कुछ हद तक घोड़ों को भी। इन पशुओं को पालने-पोसने, शिकार करने और हमला करने आदि कुछ काम ऐसे थे जो बद्दुओं के मुख्य काम थे और जो उनके अनुसार पुरुषों के मुख्य काम होने चाहिए। उन लोगों का यह विचार भी था कि खेती-बारी और सभी किस्मों के व्यापार, शिल्प-कला आदि ऐसे काम हैं जिनमें लगना पुरुष की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं। जब अपने पर्यावरण से अलग हो जाता है तो फिर वह घुमंतू नहीं रह जाता। बद्दू, ऊँट और खजूर तीन चीजें ऐसी हैं जिनका मानो रेगिस्तान पर शासन रहता है और उनको रेगिस्तान का शासक-त्रय कहा जा सकता है जहाँ केवल इन तीनों का शासन रहता है। यदि इनके साथ रेगिस्तान का बालू मिला दिया जाय तो रेगिस्तान में अस्तित्व के लिए जूझे जाने वाले नाटक के ये चार महान पात्र हैं।

बद्दू स्वभावतः कभी भी और किसी भी तरह के नियम-कानून नहीं मानता था। उसे नियम-कानून तोड़ने में बहुत ज्यादा मजा मिलता था। वह बलात् दूसरों से चीजें छीन लेता था। नियम-कानून और सिद्धान्त ऐसी बातें थीं जो बद्दू के स्वभाव के प्रतिकूल थीं। "ओह मेरे मालिक", बद्दू अपनी प्रार्थना में कहता था, "मुझ पर और मुहम्मद पर रहम करो और इसके अलावा किसी पर भी रहम न

करना।" इस्माइल के युग से अब तक अरबों के हाथ प्रहार के लिए सभी लोगों पर उठे रहे और उसी तरह सब लोगों के हाथ अरबों के विरुद्ध उठे रहे।

इस्लाम के पूर्व के दिनों में गज्व[1] (रज़िया), जो अन्य अर्थों में बटमारी का एक रूप समझा जाता था, रेगिस्तानी जीवन के आर्थिक और सामाजिक आधारों पर एक राष्ट्रीय प्रथा के दर्जे तक ऊंचा उठा दिया गया। बद्दुओं के पशुचारणा समाज के आर्थिक ढांचे की नींव में गज्व है। रेगिस्तान में, जहां लड़ाई की मुद्रा बहुत पुरानी और चिरकालिक-सी थी, धावा बोलना पुरुषों के कुछ कामों में से एक था। ईसाई जनजातियां जैसे कि बनू तगलीब, भी, बिना हिचक, यह काम (धावा बोलना) किया करते थे। प्रारम्भिक उमैय्यद अवधि में कवि अल-कुतमी ने ऐसे जीवन के मार्ग-दर्शक सिद्धान्त की अभिव्यक्ति दो पदों में की है—"हमारा काम दुश्मन, पड़ोसी और भाई पर धावा बोलना है। जब धावा करने के लिए और कोई न मिले तो कम-से-कम भाई तो मिल ही जाएगा जिस पर हम धावा करेंगे।" गज्व की धारणाओं और उसकी शब्दावली को अरबों ने इस्लामी विजय में कार्यरूप दिया।

फिर भी रेगिस्तान का वातावरण ऐसा था जिसके फलस्वरूप बद्दू क्रूर और मजबूत होते थे। जहां तक शारीरिक शक्ति का प्रश्न है, बद्दू का शरीर अन्य आदमियों के शरीर की तरह नसों, हड्डियों और मांसपेशियों का समूह मात्र होता था। उसका दैनिक भोजन खजूर और आटे, भुने हुए अन्न को पानी या दूध में मिला कर बनाया जाने वाला खाद्य होता था। उसके भोजन में जिस तरह पौष्टिकता न होती थी उसी तरह उसके कपड़े-लत्ते भी कम होते थे। वह एक लंबी कमीज (थॉब) पहनता था जिसे वह बेल्ट से कसे रहता था और उसका निचला वस्त्र एबा कहा जाता था। इसके अलावा उसका सर शाल (कुफियान) से ढंका रहता था जो एक डोरी के सहारे बँधा रहता था। उनके बीच पाजामे पहनने का रिवाज न था और जूते तो और कम संख्या में पहने जाते थे। मजबूती और सहन-शक्ति (सब्र) किसी बद्दू के महत्वपूर्ण गुण थे जिससे वह ऐसे वातावरण में रहने लायक

---

१. स्थितियों के अनुसार गज्व एक राष्ट्रीय खेल जैसा था। इसमें नियम था कि अत्यन्त अनिवार्य स्थितियों के अलावा किसी भी दशा में खून न बहाया जाय। इससे बद्दुओं को यह लाभ होता था कि उससे आबादी की संख्या कम करने में भी मदद मिलती थी। पर गज्व से वास्तव में सुलभ सामग्री के परिमाण में वृद्धि नहीं होती थी। सीमान्त भूमि की कोई कमजोर या एक ही स्थान पर बसने वाली जनजाति को अपनी सुरक्षा के लिए शक्तिशाली जनजाति को गज्व देना पड़ता था इसी कारण इसे आज 'खुवाह' कहा जाता है। सऊदी अरब में कमजोर जनजातियों पर ऐसे हमले गैरकानूनी समझे जाते हैं।

होता था जहाँ प्रायः अन्य सभी चीजें नष्ट हो जाती थीं। जहाँ तक धर्म का सम्बंध है बद्दू के हृदय में धर्म का बहुत महत्वहीन स्थान होता था। कुरान में कहा गया है कि रेगिस्तान के अरब विश्वासहीनता और छल-प्रपंच के प्रतिमूर्त्ति होते थे।

सारांश यह कि बद्दू पूर्णतः अहंकारी व्यक्ति होता था। बद्दू जनजाति के सभी सदस्यों के एक ही जैसे अधिकार और कर्त्तव्य थे। इसका कारण था कि उन सबका एक दूसरे से खून का रिश्ता था। बद्दू इसके कारण बाध्य था कि अपने भाई को उसके दुःख में मदद करे। ऐसा करते समय वह इस बात की परवाह न करता था कि उसके भाई की स्थिति न्यायपूर्ण है या नहीं। सर्वोपरि बात यह है कि बद्दू अपने वंश के प्रति वफादार होता था। यदि उस वंश की शक्ति अपर्याप्त होती तो उस स्थिति में जनजातियों का पूरा वंश उस विशेष वंश की सहायता के लिए उठ खड़ा होता। पर इस समुदाय-विशेष में, जो अपने सर्वसाधारण सदस्यों की स्वतंत्रता और समानता के सिद्धान्तों पर आधारित होता था, सत्ता के केन्द्रीयकरण की सुस्पष्ट मनोवृत्तियाँ दीख पड़ती थीं। इन वंशों और जन-जातियों के नेता वे लोग होते जो अपने व्यक्तिगत गुणों और योग्यता के आधार पर स्वयमेव नेता के रूप में माने जाने लगते, यद्यपि नेता का पद परिवार विशेष के ही लोगों में पिता से पुत्र को प्राप्त होता था। पर नेता के रूप में माने जाने वाले व्यक्ति के पुत्र को नेता पद तभी हस्तांतरित होता जब वह (पुत्र) स्वतंत्र रूप से इस पद के अनुकूल अपनी तेजस्विता दिखलाता। नेता के रूप में माने जाने वाले लोगों को कोई सच्चे अधिकार न होते, यद्यपि सामान्य परिषदों में उनकी बात अन्य लोगों की तुलना में अधिक चाव से सुनी जाती। इसके अनुरूप उन लोगों के कर्त्तव्य भी अधिक होते। युद्ध में इन लोगों से अपेक्षा की जाती कि वे सब समय अपना जीवन अर्पित करने को तैयार रहें। और शांति में उन्हें अपने धन और सम्पदा को अपनी जनजाति और अपने जरूरत-मंद भाई-बहनों के लिए न्योछावर करने को तैयार रहना चाहिए। पर उनकी मुख्य चिन्ता यह होती कि जनजाति की एकता कायम रखी जाय—ऐसी एकता जनजाति के कुछ लोलुप और स्वार्थी व्यक्तियों के कारण खतरे में पड़ जाती थी।

जहाँ तक बद्दुओं के आर्थिक जीवन का सम्बन्ध है, उस समय अरब की सारी जमीन अनुर्वर थी। फलतः वहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। वे जानवरों को पालते-पोसते और वैसा करके ही अपनी जीविका अर्जित करते थे। इससे उच्च स्थिति की जनजातियों के लोग जैसे अबू बकर और उस्मान देश और विदेश में व्यवसाय से जीविका अर्जित करते। उनकी आर्थिक स्थिति अन्य जन-जातियों के मुकाबले बेहतर थी पर उनकी संख्या कम थी और वे अरब में विरले

ही मिलते थे। सूद पर रुपया उधार देने की प्रथा यहूदियों में थी और वे जिन्हें सूद पर रुपया देते थे उनके साथ बड़ा कड़ा बर्त्ताव करते थे। बद्दुओं के आर्थिक जीवन का उल्लेख करते हुए कार्ल ब्रोकलमैन ने ठीक ही कहा है "......व्यापार सुख-समृद्धि पर आधारित था और इसमें प्रायः सभी लोग, ऋणी या ऋणदाता के रूप में भाग लेते थे। इस कारण बद्दुओं के बीच आर्थिक सम्बन्ध अधिक जटिल हो गया था। कुछ थोड़े-से समृद्ध वंशों पर बहुसंख्य गरीब लोगों की निर्भरता इतनी अधिक थी जितनी रेगिस्तान में न थी। पर मदीना में, जहाँ कृषि और खजूर के पेड़ उगाना जीविका के मुख्य साधन थे, स्थितियाँ और भी कठिन और अधिक आदिकालीन थीं। इस्लामी युग के आरंभ में जनजातियों के बीच खूनी लड़ाइयाँ इतनी अधिक हो गई थीं कि कोई भी व्यक्ति अपनी किलाबंदी की हुई जमीन को छोड़ कर बाहर जाने की स्थिति में न था और यदि उसे बाहर जाना पड़ता तो वह खतरा मोल लेकर ही ऐसा करता।"[२]

फिर भी दक्षिणी अरब के लोगों ने ही सर्वप्रथम समृद्धता प्राप्त की और अपनी एक नई सभ्यता का आरंभ किया। दूसरी ओर उत्तरी अरब के लोगों ने अपनी अंदरुनी स्थिति के बाहर पाँव न रखा था। ऐसी स्थिति तब तक रही जब तक उस क्षेत्र में इस्लाम धर्म का उदय न हो गया। और फिर, कालान्तर में, दक्षिणी अरब के निकट तब आया जब मिस्र ने पुंत और लूबिया के साथ वाणिज्यिक सम्बन्ध कायम किया। पर केवल प्राचीनकालीन मिस्र ही ऐसा देश न था जो अरब के साथ वाणिज्यिक सम्बन्ध कायम करने के लिए उत्सुक था। इस सम्बन्ध में बेबीलोनिया मिस्र का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था। वह अरब के साथ मसालों और खनिज पदार्थों का व्यापार करता था। सुमेरियन ताँबा, जो उद्योग में प्रयुक्त होने वाली सबसे प्राचीन धातु है, संभवतः उमान में पाई जाती थी।

केवल लोबान और मसालों के लिए ही यह क्षेत्र (**अरब**) सबसे ज्यादा मशहूर न था बल्कि इन पदार्थों से भी ज्यादा मूल्यवान धातुओं, विशेषकर सोना के लिए भी। अरब प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग में मीडिया से यमन तक और कुछ हद तक अरब के मध्य भाग में भी सोना पाया जाता था। डिओडोरस ने यह बात जोर देकर कही है कि अरब में इतने शुद्ध सोने की खानें मिलती थीं कि इस चमकदार पीली धातु को शुद्ध करने के लिए उसे पिघलाना आवश्यक न था। अल-मकदीसी और अल-हमदानी, जो दसवीं शताब्दी के वृत्तान्त-लेखक थे, अरब में पाई जाने वाली हर एक धातु पर एक-एक कंडिका (**पैराग्राफ**) लिखा है। उन लोगों ने खास कर सोने के महत्व पर जोर दिया है।

---

२. कार्ल ब्रोकलमैन, हिस्ट्री ऑफ दि इस्लामिक पीपल, पृ० ६।

वंशों का संगठन

बद्दुओं का समाज वंशों के संगठन पर आधारित था। उन लोगों का एक-एक तम्बू एक-एक परिवार का प्रतिनिधित्व-सा करता था। छाये गए कई तम्बुओं को 'है' कहा जाता था। एक 'है' को वंश या कौम कहा जाता था। एक सौ वंशों से एक जनजाति (कबीला) बनती थी। एक ही वंश के सभी सदस्य एक-दूसरे के साथ रक्त-सम्बन्ध से बँधे माने जाते थे। वे वंश के एक ही वरीय सदस्य का प्राधिकार स्वीकार करते थे जिसे उस वंश का प्रधान माना जाता था और उनका युद्ध-घोष एक ही होता था। वे लोग अपने संयुक्त नाम के आगे बनू (संतान) शब्द जोड़ देते थे। कुछ वंशों के स्त्री-द्योतक नाम इस बात के चिह्न हैं कि प्रारंभिक अरब समाज मातृसत्तात्मक था। रक्त-सम्बन्ध, चाहे सच हो या गलत, अरब संगठन के विभिन्न तत्वों को एक दूसरे से जोड़े रखता था।

तम्बू और उसकी मामूली चीजें अरब समाज के किसी सदस्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाती थी, पर पानी, चारागाह और कृषि योग्य भूमि जनजाति की सामूहिक चीजें थीं। हर वंश का अपना-अपना एक मुखिया होता था। जिस अरब का कोई वंश न होता था वह इस्लाम-पूर्व अरब में एक असहाय व्यक्ति माना जाता था। यदि कोई बद्दू अपने वंश से निकाल दिया जाता था, तो उसका अर्थ यह होता था कि वह अपराधी है। यदि वंश का कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य की हत्या करता था तो वंश का कोई भी व्यक्ति उसकी सहायता न करता था। यदि हत्यारा अपना वंश छोड़ कर भाग जाता था तो उसे अवैध (तारिद) कहा जाता था। यदि हत्या वंश के बाहर किसी और वंश में की जाती थी तो उन दो वंशों में एक दूसरे से दुश्मनी हो जाती थी और हत्यारे के वंश के किसी अन्य सदस्य को उस हत्या का मूल्य अपने जीवन से चुकाना पड़ता।

फिर भी, खून का बदला खून से लेना वंश का मुख्य गुण था। रेगिस्तान के प्राचीन कानून के अनुसार खून का बदला खून से लेना चाहिए। हत्या के अलावा हत्या का बदला किसी अन्य प्रकार के काम से पूरा हुआ न माना जाता था। इस बात का मुख्य उत्तरदायित्व मारे गये आदमी के सबसे नजदीकी सम्बन्धी पर होता था।

उन दिनों पुश्तैनी लड़ाई अत्यन्त सामान्य थी। पुश्तैनी लड़ाइयां कभी-कभी तो चालीस साल तक चलती थीं। लगता है, इस्लाम-पूर्व अरब में जनजातियों के बीच की लड़ाइयों का कारण आर्थिक ही होता था।

वंश या जनजाति के प्रति निष्ठा वंश की मुख्य भावना थी। अपने वंश के अन्य साथियों के प्रति असीम और बिना शर्त निष्ठा उन दिनों के जीवन का मुख्य

स्वरूप था। वह सामान्यत: प्रबल अन्ध देशभक्ति जैसा था। "अपनी जनजाति के प्रति वफादार रहो", उस समय के एक शायर ने गीत में कहा है, "जनजाति के प्रति वफादरी ऐसी अटूट होनी चाहिए कि उसके लिए जरूरत पड़ने पर पति अपनी पत्नी तक को छोड़ दे।" अपने वंश के प्रति ऐसी अटूट भक्ति रखने वाले यह मानते थे कि उनका वंश या जनजाति अपने में पूरी तरह से एक इकाई है, पूरी तरह आत्म-निर्भर और सम्पूर्ण। उसके अलावा हर वंश या जनजाति वैधत: लूट-मार और हत्या का शिकार है। इस्लाम ने अपने फौजी लक्ष्यों की पूर्ति में इस जनजातीय व्यवस्था का पूरा फायदा उठाया। उसने जनजातियों के आधार पर फौज को टुकड़ियों में बांट दिया, विजित भूमि पर अपने प्रतिनिधियों (उपनिवेशवादियों) को ठहरा दिया और उस क्षेत्र के जिन नये लोगों ने इस्लाम-धर्म ग्रहण किया था उनके साथ आश्रितों जैसा व्यवहार किया। व्यक्तिवाद के जो गैर-सामाजिक पहलू अरवों के चरित्र में उभरे थे उनसे परे अरब के लोग कभी नहीं गये। ज्यों-ज्यों इस्लाम के उदय के बाद अरब का विकास और प्रसार हुआ, उनके चरित्र के ये गैर-सामाजिक व्यक्तिवादी पहलू निर्णायक तत्व से बन गए और इसी कारण विभिन्न इस्लामी राज्यों का विशृंखलन और अंतिम पतन हुआ।

इसके अलावा अरब के बच्चों को प्रारंभिक दिनों में उनके माता-पिता सिखलाते थे कि वे अपनी जनजाति के प्रति निष्ठावान बनें। किसी बद्दू के लिए स बड़ी कोई विपत्ति न होती थी कि वह अपनी जनजाति की सदस्यता खो दे। जनजाति-विहीन अरब विशेष रूप से निःसहाय हो जाता था। उस स्थिति में जनजाति-विहीन अरब अवैध माना जाता था जिसे कोई भी सुरक्षा और बचाव न मिलता था। इस प्रकार बद्दू के चरित्र के मुख्य एवं अत्यावश्यक तत्व अपनी जनजाति के प्रति निष्ठा और भक्ति होती थी।

यों मुख्यत: किसी जनजाति में जन्म से वह उसके प्रति निष्ठावान हो जाता था या उस जनजाति के किसी सदस्य के साथ भोजन करने या उसके रक्त की कुछ बूंदें चूमने से जनजातीय भाई-चारे को प्राप्त किया जा सकता था। उत्तरी अरब ताई, घटफान, तगलिब आदि जनजातियों का एक संघ जैसा था। इन जनजातियों का उल्लेख इतिहास में मुख्य रूप से मिलता है और इनके वंशज अरब-भाषी क्षेत्र में बराबर बने रहेंगे।

किसी वंश का प्रतिनिधित्व उसके नाम मात्र के प्रधान, जिसे शेख कहा जाता था, द्वारा किया जाता था। शेख अपनी जनजाति का वरिष्ठ सदस्य होता था जिसका नेतृत्व गंभीर मशविरे, उदारता और साहस के कार्यों में दीख पड़ता था। ज्यादा उम्र और व्यक्तिगत योग्यताओं के आधार पर शेख का चुनाव होता था।

पर न्यायिक, सैनिक और सामान्य हित के अन्य मामलों में शेख को सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त न था। उसे उन मामलों में जनजातीय परिषद् से सलाह लेनी पड़ती थी जिसके सदस्य उस वंश में शामिल परिवारों के प्रधान होते थे। शेख के पद की अवधि तब तक होती थी जब तक उनके निर्वाचन-क्षेत्र, जो वंश के सभी परिवारों से बना होता था, का विश्वास प्राप्त रहता था। इस प्रकार सामान्यतः अरब और विशेषतः बद्दू जन्मजात प्रजातांत्रिक होता था। एक सामान्य बद्दू और शेख की स्थिति एक जैसी होती थी।

अलावे, इस्लामपूर्व या इस्लामी बद्दू की महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले एक जैसी स्थिति प्राप्त थी जो एक ही स्थान पर बसे अरबों की महिलाओं को प्राप्त न थी। वह विभिन्न देवताओं के मिश्रित रूप के उपासक बहु-वैवाहिक परिवार की सदस्य होती थी जिसका प्रधान कोई पुरुष होता था पर महिला को पति के दुर्व्यवहार के कारण उसे छोड़ कर दूसरे पुरुष से विवाह करने का अधिकार था।

जाहिलिया युग अथवा अज्ञानता या बर्बरता का समय

अरब में पैगम्बर मुहम्मद के ठीक पूर्व का युग अज्ञानता या जाहिलिया युग था। जाहिलिया का मतलब अज्ञानता या बर्बरता होता है। प्रोफेसर हिट्टी का कहना है—"जाहिलिया युग आदम के युग से पैगम्बर मुहम्मद के युग तक विस्तृत है पर विशेष रूप से यह इस्लाम के उदय के पूर्व की शताब्दी की अवधि है।"[3] इस शताब्दी का यह नाम इसलिए पड़ा कि इस अवधि में अरब की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति बहुत बिगड़ी हुई थी। इस अवधि में अरब में धन का युक्तियुक्त वितरण न था और न ही कोई प्रेरणाप्रद पैगम्बर। इसके अलावा न कुरान की जैसी कोई सर्व समादृत ग्रन्थ, न कोई सुस्पष्ट धर्म, न कोई न्यायप्रिय शासन-प्रणाली और न नैतिकतापूर्ण भला-सा जीवन। इस सम्बन्ध में कार्ल ब्रोकलमैन ने स्पष्ट रूप से कहा है—"अरबों का धर्म तथा उनका राजनीतिक जीवन पूरी तरह प्राचीन किस्म का था।"[4] फिर भी दक्षिणी अरब के सुसंस्कृत और साक्षर समाज पर अज्ञानता और बर्बरता का दोष नहीं लगाया जा सकता। अज्ञानता और बर्बरता शब्द कुरान में कई बार आये हैं। अपने अनुयायियों को इस्लाम-पूर्व धार्मिक विचारों, विशेषतः मूर्तिपूजा, से मुक्ति दिलाने के लिए एक ईश्वर में विश्वास करने वाले पैगम्बर मुहम्मद ने कहा कि उनके नये धर्म का उद्देश्य उन सभी चीजों को उखाड़ फेंकना है

---

३. प्रो० हिट्टी, हिस्ट्री ऑफ दी अरब्स, पृ० ८७।
४. कार्ल ब्रोकलमैन, हिस्ट्री ऑफ दी इस्लामिक पीपल्स, पृ० ८।

जो उसके पूर्व थीं। इसका मतलब यह है कि सभी इस्लाम-पूर्व विचारों और आदर्शों को उखाड़ फेंकना। अज्ञानता के युग में अरब आपस में एक दूसरे से रक्त-सम्बन्ध के आधार पर लड़ते थे। वे अपने परिवारों और जनजाति के अतिरिक्त और किसी बात के बारे में न सोच सकते थे।

दक्षिणी अरब के लोगों के विपरीत उत्तरी अरब की आबादी में बहुसंख्यक, जिनमें हेज्जाज और नज्द भी शामिल थे, घुमन्तू लोग थे। बद्दुओं का इतिहास मुख्य रूप से छापामार लड़ाई, जिनको अय्याम-अल-अरब (अरबों का समय) का विवरण कहा जाता है, जिसमें हमले और लूटमार तो बहुत चलते थे पर रक्तपात नहीं के बराबर होता था। हेज्जाज और नज्द के एक ही स्थान में बसने वाले लोगों की कोई अपनी प्राचीन संस्कृति न थी। हिजरी (इस्लामी शताब्दी) के पूर्व की शताब्दी उत्तरी बद्दू जनजातियों की आपसी लड़ाइयों का विवरण है। साथ ही उक्त विवरण में इस्लाम के उदय के पूर्व हेज्जाज के एक ही स्थान में बस गये लोगों पर बाहरी प्रभाव का भी जिक्र है।

उत्तरी और दक्षिणी अरबों के बीच मतभेद उनकी भौगोलिक स्थितियों और पर्यावरण के प्रभाव के कारण थे। उत्तरी अरब के लोग तंबुओं और झोपड़ियों में रहते थे जबकि दक्षिणी अरब मकान बना कर रहते थे। दक्षिणी अरब के लोग ही पहले अपने अन्दरूनी मामलों में, प्रमुख हुए। इस प्रकार जाहिलिया युग का इतिहास उत्तरी अरबों का इतिहास है।

इनका प्रामाणिक विवरण जाहिलिया युग के इतिहास पर थोड़ी रोशनी डालते हैं। इस युग के अध्ययन के लिए हमारे स्रोत बहुत ही कम हैं। उनके अनुसार उत्तरी अरब की कोई ऐसी व्यवस्था न थी जो लिखित रही हो। उनकी व्यवस्था की झलक परम्पराओं, किस्से-कहानियों, कहावतों और मुख्यतः कविताओं तक ही सीमित है। उत्तरी अरब वालों ने पैगम्बर मुहम्मद के समय तक अपनी कोई लिखित भाषा का आविष्कार न किया था। उनके बीच प्रचलित कविताओं में से प्रायः सभी अलिखित थीं। हिजरी के बाद दूसरी तथा तीसरी शताब्दियों के पूर्व अर्थात् उन कविताओं में वर्णित घटनाओं के दो से चार शताब्दियों बाद उन कविताओं की रचना हुई। फिर भी यह विवरण भी काफी मूल्यवान है। उससे यह पता चलता है कि लोगों के सही या गलत विश्वास क्या थे। उन विश्वासों का उन पर ऐसा प्रभाव था मानो सब-के-सब विश्वास सही हों।

राजनीतिक जीवन

अरबों का मतलब, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, उस प्रायद्वीप के निवासियों से है। यदि इसका संकीर्ण अर्थ लिया जाय तो इससे उत्तरी अरब के

निवासियों का बोध होता है जिनका इस्लाम के पूर्व तक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में कोई उल्लेख नहीं है। जाहिलिया युग में उत्तरी अरब के उन भागों को छोड़ कर, जो फारसी और रोमन साम्राज्यों की पराधीनता थे, शेष सभी लोग पूर्ण स्वतंत्र थे। **अय्याम-अल-अरब** अन्तर्जनजातीय लड़ाइयाँ थीं जो पशुओं, चारागाह-भूमि या झरनों के आधिपत्य के प्रश्न पर होती थीं। इनमें लूट-मार और आक्रमण के पर्याप्त अवसर मिलते थे। इनमें युद्ध-रत जनजातियों के योद्धाओं द्वारा अकेले ही वीरता के कार्यों का विवरण होता था। साथ ही इनमें युद्ध-रत जनजातियों के प्रवक्ता कवियों के अत्यन्त कटु व्यंग्यों का आदान-प्रदान होता था। यद्यपि बद्दू लड़ाई के लिए बराबर तैयार रहते थे पर वे यह न चाहते थे कि उनकी हत्या कर दी जाय। लड़ाइयों में उतना रक्तपात न होता था जितना कि उन कविताओं में चित्रित किया जाता था। फिर भी इन **अय्यामों** या आपसी लड़ाइयों द्वारा अरब अपनी आबादी में बहुत ज्यादा वृद्धि पर अंकुश लगाते थे। बद्दू भर पेट खाना न खा सकते थे और वे बराबर आपस में लड़ने को तैयार रहते थे। बद्दुओं के जीवन में धार्मिक-सामाजिक विचारों में वंशगत शत्रुता की भावना सबसे ज्यादा शक्तिवती थी।

अरब अनेक जनजातियों में हर जनजाति का प्रधान शेख कहा जाता था जिसके प्रति उस जनजाति के सभी लोग निष्ठा रखते थे। एक ही जनजाति के लोग एक दूसरे के साथ मित्रता का सम्बन्ध रखते थे। विभिन्न जनजातियों के सदस्य एक-दूसरे के साथ शत्रुता बरतते थे। अरब अपनी जनजाति की इज्जत और प्रतिष्ठा के लिए सब कुछ, यहाँ तक कि अपनी जिन्दगी भी, बलिदान करने के लिए तैयार रहते थे।

जाहिलिया युग में प्रत्येक दिन यही सब घटनाएँ होती थीं। पहले दो जनजातियों के कुछ थोड़े से लोगों के बीच मार-पीट होती थी। इसका कारण सीमा पर के झगड़े या किसी का व्यक्तिगत अपमान होता था। फिर उन थोड़े से लोगों के बीच झगड़ा जनजातियों के सभी लोगों के बीच टक्कर का रूप ले लेता था। उन लोगों के बीच का झगड़ा किसी तटस्थ पक्ष के हस्तक्षेप से खत्म होता था। जिस जनजाति के लोगों में से कम लोग हताहत होते थे उसे प्रतिपक्ष को, बड़ी संख्या में हताहत उसके लोगों के लिए, मुआवजे के तौर पर, धन देना पड़ता था। जनता की स्मरणा-शक्ति अपनी जनजाति के मारे गए योद्धाओं की कहानी को शताब्दियों तक जीवन्त रखती थी।

फिर भी किसी केन्द्रीय सरकार के न होने के कारण ये जनजातियाँ एक-दूसरे के साथ बराबर लड़ती रहती थीं। ये लड़ाइयाँ बहुत ही मामूली कारणों

को लेकर होती थीं। कभी-कभी तो ये लड़ाइयाँ कई वर्षों तक चलती रहती थीं। 'बुआथ का दिन' का मामला ऐसा ही था। यह लड़ाई मदीना की दो जनजातियों औस और खज़राज के बीच पैगम्बर मुहम्मद के उस शहर में आने के पूर्व कुछ वर्षों तक चली थी। इसे 'अलफिजार' (उल्लंघनकारियों का दिन) इसलिए कहा जाता था कि यह लड़ाई दो जनजातियों के बीच रमजान के महीने में हुई जिस अवधि में लड़ाई-झगड़ा पर प्रतिबन्ध लगा रहता है। इस लड़ाई में एक ओर पैगम्बर मुहम्मद का परिवार कुरैश और उनके साथी किनाना जनजाति थी और दूसरी ओर हवाजिन थी। इस तरह की चार लड़ाइयों में एक लड़ाई में एक युवक के रूप में मुहम्मद साहब ने भी भाग लिया था।

प्रारंभिक लड़ाइयों में सबसे पहली और सबसे ज्यादा प्रसिद्ध लड़ाई बासस की लड़ाई थी जो उत्तर-पूर्वी अरब की दो जनजातियों बनू बकर और उनके वंश के लोगों और बनू तगलीब के बीच पाँचवीं शताब्दी के अंत में हुई। यह लड़ाई एक ऊँटनी को लेकर हुई। यह ऊँटनी बासस नामक एक बूढ़ी महिला की थी जिसे जनजाति तगलीब के एक प्रधान ने घायल कर दिया था। **अय्याम** (लड़ाई) की इतिहास-कथा के अनुसार यह लड़ाई चालीस वर्षों तक हुई जिसमें एक-दूसरे के बीच हमले और लूटपाट हुए। उस भ्रातृहत्यात्मक युद्ध का अंत ५२५ ईस्वी में अल-मुंधीर तृतीय के हस्तक्षेप से ही हुआ। दरअसल दोनों ही युद्धरत पक्षों के पूरी तरह थक जाने के कारण यह युद्ध समाप्त हुआ। गैर-इस्लामी अवधि का सर्वप्रसिद्ध युद्ध अल-दहीज और अल-ग़बरा (घोड़ों के नाम) सम्बन्धी युद्ध हैं। यह युद्ध मध्य अरब में जनजाति अब्स और एक अन्य जनजाति धुबियान के बीच हुआ। कहा जाता है कि अब्स जनजाति के प्रधान के घोड़े-दहीज, और धुबियान जनजाति के शेख की घोड़ी—अल-गबरा, के बीच हुई दौड़ में धुबियाइनों के अनुचित आचरण के कारण यह युद्ध हुआ। बासस युद्ध में शांति स्थापित होने के कुछ समय बाद ही छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ और इस्लाम के उदय के पूर्व कई दशाब्दियों के बीच-बीच में यह युद्ध होता रहा। इसी युद्ध में अन्तराह (या अंतार) इब्नेसादाद अल-अब्सी (५२५-६१५ ई० सन) एक कवि और योद्धा के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार जन-जातियों के बीच लड़ाइयाँ रोजमर्रे की घटनाएँ-सी हो गईं।

जाहिलिया युग में एक ही जनजाति सदस्यों के बीच सम्पत्ति-सम्बन्धी झगड़े उक्त जनजाति की दैनिक सभाओं में हल किये जाते थे। एक से अधिक जनजातियों के सदस्यों के बीच मतभेद के मामले किसी बुद्धिमान पुरुष या स्त्री द्वारा हल किये जाते थे। ऐसे व्यक्ति को पुरोहित या दार्शनिक माना जाता था। पर ऐसे किसी व्यक्ति के निर्णय का पालन लड़ाई में लगे दोनों पक्षों की सद्भावना और उनमें से ज्यादा शक्तिवान पक्ष द्वारा किया जाता था। चूँकि खुद जनजातियों के प्रधानों को

कार्यपालक शक्ति न थी या उस समय कोई आपराधिक कानून न था इसलिए किसी जनजाति के सदस्य के हत्यारे या चोर के विरुद्ध व्यक्तिगत कानून का सहारा लेना पड़ता था। यदि किसी जनजाति का कोई सदस्य उसके क्षेत्र में जनजाति के किसी सदस्य द्वारा मारा गया पाया जाता था या जनजाति के सदस्यों द्वारा किसी पर ऐसा काम करने का संदेह किया जाता था तो वह जनजाति मृत व्यक्ति की ओर से शुद्धिकरण की शपथ लेती थी।

पर इस शपथ का प्रभाव मृत व्यक्ति के वंश द्वारा ली गई नई शपथ से खत्म हो जाता था। मारे गये व्यक्ति के सबसे निकट के सम्बन्धी पर हत्यारे से बदला लेने का भार आ जाता था। पर चूंकि हत्यारे का वंश सामान्यतः ऐसे मामले में हत्यारे का ही साथ देता था, खून का बदला खून से लेने के कारण खूनी लड़ाइयों का एक सिलसिला-सा बन जाता था। यह सिलसिला कभी-कभी तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था और दोनों ही वंश एक दूसरे के सदस्यों के विरुद्ध हत्याओं का आदान-प्रदान करते रहते थे। कभी-कभी हत्यारे का वंश विपक्ष को ऊँट देकर अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेता था। जनजाति में वंशों के नेताओं पर यह निर्भर करता था कि वंशों के बीच समझौता हो जाय। अगर दोनों के बीच समझौता न हुआ तो फिर झगड़ा पुश्त-दर-पुश्त चलता रहता था। अधिकांश मामलों में दोनों वंश जब आपस में लड़ते-लड़ते थक जाते थे तो अन्त में हार कर समझौता कर लेते थे। जब हत्यारा उस वंश को, जिसके सदस्य की हत्या कर दी गई होती थी, खुद-ब-खुद उसके वंश द्वारा विपक्ष को सौंप दिया जाता था (ताकि उसके द्वारा किये गये अपराध के दण्ड-स्वरूप उसकी हत्या कर दी जाय) तो दोनों के बीच झगड़ा जारी रहने का प्रश्न ही न उठता था पर हत्यारे का वंश इस कार्य को अपने लिए असम्मानजनक मानता था। इसके बजाय सम्मानजनक बात यह समझी जाती थी कि हत्यारे का वंश खुद ही हत्यारे की जान मार दे। अपनी इज्जत की ऊँची भावना बद्दुओं की नैतिकता का आधार थी। रेगिस्तान का यही कानून हेज्जाज, तैफ, मक्का और मदीना में भी लागू था। जैसा कि बद्दू अपने-अपने तम्बुओं में करते थे, उसी प्रकार अलग-अलग वंश अपने घरों (तम्बुओं) में करने को स्वतन्त्र थे और वे अपने कार्य के लिए किसी से आज्ञा न लेते थे। सिर्फ एक मक्का के बारे में निश्चित तौर पर कहा जा सकता था कि अपनी इज्जत की भावना, रेगिस्तान में आवश्यकता से अधिक भावप्रवण, होने के कारण, पवित्र काबा के प्रति लोगों के समान हित के कारण कुछ कोमल-सी बन जाती थी।

इस प्रकार मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि जाहिलिया के जमाने में देश में कोई व्यवस्थित न्याय-प्रणाली न थी। उस समय देश का असल कानून था—

"जिसकी लाठी उसकी भैंस"। राजनीतिक तौर पर हजरत मुहम्मद के आगमन के पूर्व अरब अपनी अनुशासन-विहीन जनजातियों के आपसी लड़ाई-झगड़ों, पड़ोस के राज्यों की दुरभिसन्धियों और यहूदी उपनिवेशवादियों को न्याय न दिये जाने की क्षमता के कारण छिन्न-भिन्न और तार-तार था।

सांस्कृतिक जीवन

यद्यपि उस समय आधुनिक युग की जैसी शिक्षा-व्यवस्था न थी पर ऐसी बात न थी कि अरब संस्कृति से बिल्कुल अछूते रहे हों। अरब अपनी भाषा और कविता के लिए विख्यात थे। इस्लाम-पूर्व अरब की भाषा इतनी समृद्ध थी कि उसकी तुलना आधुनिक यूरोपीय भाषाओं से भली-भाँति की जा सकती है। अरब भाषा की पूर्णता उस युग और इस्लाम के अभ्युदय से पहले की अज्ञानता की सबसे बड़ी देन थी। प्रोफेसर हिट्टी लिखते हैं—"इस्लाम की विजय कुछ हद तक भाषा और विशेष रूप से एक ग्रंथ—कुरान—की विजय थी।" अरब लोगों में जिस तरह साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए अत्यधिक उत्साहपूर्ण प्रशंसा का भाव है तथा वे लोग बोले गए या लिखे गए शब्द से जितना प्रभावित होते हैं उतना विश्व के शायद ही कोई लोग होते हों। अरबी भाषा का उसे बोलने वाले के मन पर जो दुर्दमनीय प्रभाव पड़ता है वैसा शायद ही किसी भाषा का उसे बोलने वालों के मन पर पड़ता हो। अरबी भाषा की लय, तुक और संगीत को अरब वैध जादू मानते हैं।" अरब-साहित्य के पाषाण युग की, जिसके अन्तर्गत जाहिलिया अवधि आती है और जिसका काल सन् ५२५ से सन् ६२२ तक है, हमें अरब साहित्य में कुछ कहावतें, कुछ दन्तकथाएँ और प्रचुर परिमाण में कवितायें मिलती हैं। इन सबको बाद के इस्लामी युग में संकलित और सम्पादित किया गया था। इसमें वैज्ञानिक साहित्य केवल कुछ जादूगरी, मौसम-विज्ञान और कुछ चिकित्सीय सूत्रों तक ही सीमित है। कहावतों से तत्कालीन लोक मनोवृत्ति और अनुभव की जानकारी मिलती है। सुप्रसिद्ध हकीम और संत (अल हकीम) लुकमान, जिन्होंने बुद्धिमत्ता की कई प्राचीन बातें कही हैं, या तो अबीसीनिया के थे या यहूदी थे। परम्पराओं से अनेक बुद्धिमान और बुद्धिमतियों के नामों का पता चलता है जैसे कि अक्तम-इब्न-सयफी, हाजीब इब्न जुराह और अल-खस की पुत्री हिंद। अल-मयदानी के "मजमा-अल-अमथल" और अल-मुफद्दाल-अल दब्बी के "अमथल-अल-अरब" में हमें अरब के इस्लाम-पूर्व के बुद्धिमत्तापूर्ण साहित्य के अनेक नमूने मिलते हैं।

फिर भी जाहिलिया साहित्य में गद्य का विकास भलीभाँति न हो पाया। उस अवधि में लेखन की किसी पद्धति का विकास न हो सका था। पर फिर भी लोक-कथाओं और परम्पराओं के वृत्त के कुछ गद्य-खण्ड, जिनकी रचना इस्लामी युग में हुई, ऐसे हैं जिनको इस्लाम-पूर्व से आया माना जा सकता है। इन गद्य-खण्डों

का सम्बन्ध अधिकतर वंशावली (अनसब) और अन्तर-जनजातीय मुठभेड़ों और अरबों के विभिन्न पहलुओं से है। इब्न-दुरैयद की **किताब-अल-इश्तिकाक** और अबू-अल-फारज अल-इस्वहानी (या इस्पहानी) की विश्व-कोष जैसी कृति **किताब अल अगानी** (गीतों की पुस्तक) में वंशावली पर अत्यधिक मूल्यवान सामग्री मिलती है।

केवल काव्यकृतियों के मामले में इस्लाम-पूर्व अरब का प्रशंस्य योगदान है। इस क्षेत्र में उत्कृष्टतम प्रतिभाओं ने अपनी क्षमता प्रदर्शित की है। इसी क्षेत्र में तत्समय की साहित्यिक हस्तियों ने अपना कमाल दिखाया है। बद्दुओं का कविता-प्रेम उनकी खुद अपनी साहित्यिक निधि थी। इस क्षेत्र की सबसे पुरानी कृतियाँ जो हमें उपलब्ध हैं हिजरा के एक सौ तीस वर्ष पहले की है। इनका सम्बन्ध बासस के युद्ध से है। छठी शताब्दी के मध्य के कवि चोटी के कवि रहे हैं जिनके मुकाबले की कविताएँ काव्य-रचना के शिखर जैसी हैं। ये आरम्भिक कविताएँ रट ली जाती और सुनाई जाती थीं और अंततः हिजरा की तीसरी और चौथी शताब्दियों में इनको लिपिबद्ध किया गया। आप्त-पुरुषों और भविष्यवक्ताओं (कुहहान) द्वारा प्रयोग किए गए तुकांत गद्य को कविता-स्वरूप का प्रथम चरण कहा जा सकता है। कुरान में भी ऐसी शैली के दर्शन होते हैं। ऊँट के हाँकने वाले के पथ-गीत को दूसरा चरण कहा जा सकता है। ऐतिहासिक काव्य के शौर्यपूर्ण युग में, जो हिन्दी साहित्य के वीरगाथा-काल जैसा है, कविता ही साहित्य-सृजन का एकमात्र साधन था। **कसीदा** (संबोधि-गीत) एकमात्र और अत्यधिक तराशी हुई काव्य-रचना है। बासस-युद्ध के तगलीव नायक मुहालहिल के बारे में कहा जाता है कि उसने ये लम्बी कविताएँ लिखीं। बहुत संभव है कि अरबों, विशेष रूप से तगलीव या किदाह जनजातियों के समय से संबोधि-गीत (किसी को संबोधित करके लिखा गया गीत) विकसित हुआ। इमारूल केज किदाहों का वीर था। यद्यपि वह सबसे पुराना कवि था पर अब भी कवियों में शिखरस्थ माना जाता है। उसे सामान्यतः महानतम कवि अथवा कवियों का अमीर (राजा) कहा जाता है। दूसरी ओर, एक अन्य कवि इब्न-कुलतुम उत्तरी अरब का तगलीव जनजाति का था। यद्यपि ये दोनों कवि भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोलते ो पर उन्होंने एक ही साहित्यिक स्वरूप में कविताएँ लिखीं। पुराने संबोधित-गीतों । "सात मुआल्कत" (लटकाया गया) का सर्वप्रथम स्थान है। सम्पूर्ण अरब-भाषी ागत में आज भी इस साहित्यिक सृजन का अप्रतिम कृति के रूप में आदर होता है। कहा जाता है कि इनमें से हर संबोधित-गीत को उकाज के मेले में वार्षिक पुरस्कार दया गया था और इनको सुनहले अक्षरों में लिखकर काबा की दीवारों पर लटका देया गया था। उनके सार तत्व की व्याख्या इस तरह की जाती है—अल-हिजाज । नखला और अल-तैफ के बीच में स्थित उकाज में वार्षिक मेला हुआ, कुछ-कुछ

साहित्यिक सभा जैसा। उसमें योद्धा-कवियों ने कविताओं में अपने कारनामे सुनाये और अत्यधिक अभीप्सित सर्वोच्च सम्मान प्राप्ति की इच्छा की। इस साहित्यिक जमावड़े में ही कवि को नामवरी मिल सकती थी और अन्य किसी जगह नहीं। उकाज[५] का मेला इस्लाम-पूर्व अरब की एक विद्वत्तापूर्ण उपलब्धि थी। फिर भी उकाज का मेला पवित्र महीनों में किया जाता था जब लड़ाई वर्जित रहा करती थी। उकाज मेले में इस बात का समुचित अवसर मिलता था कि स्थानीय उत्पादित सामान विक्रेताओं के बीच प्रदर्शित किये जायँ तथा सामानों का आदान-प्रदान हो। हम उस दृश्य की सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि किस प्रकार मरुभूमि के पुत्र इन शांत वार्षिक, जमावड़ों के मौके पर इकट्ठे होते थे, किस तरह लगाई गई दूकानों में एक से दूसरी दूकान घूमते-फिरते खजूर की शराब की चुस्कियाँ लेते तथा गाने वाली लड़कियों के गीतों का पूरी तरह मजा लेते थे।

इन सात संबोधि-गीतों के अलावा हमें एक सौ बीस संबोधित-गीतों का संग्रह भी मिलता है जिसका नाम है "अल-मुफद्दलिआत" और संकलन-कर्त्ता हैं अल-दावी।

अरब का कवि (शायर), जैसा कि नाम से ही प्रकट है, मूलतः वह व्यक्ति होता था जिसे सामान्य लोगों से छिपे हुए ज्ञान का पता रहता था। जो उसे राक्षस,

५. उकाज तफ के पड़ोस में है जहाँ वार्षिक जनजातीय मेले में उस क्षेत्र के पुरुष और स्त्रियाँ अपने हाथों से बनाई चीजें हस्तशिल्प के समान और अपने दिमाग से उत्पादित चीजें (रचनाएँ) लेकर आते थे। रचनाओं में व्याख्यान और कविताएँ होती थीं। इस मौके पर पहलवान और कसरती लोग भी अपने बहादुरी के करतब दिखलाते थे। इसे इस प्रकार एक बहुत बड़े बाजार (सुपर मार्केट) और तलवारबाजी का बड़ा अखाड़ा कहा जा सकता था। एक ओर कविगण अपनी मूल रचनाएँ सुनाते थे और कविता के लिए निर्धारित पुरस्कार पाने की होड़ में होते थे तो दूसरी ओर पहलवान कुश्ती दिखलाते। और व्यापारी अपने सामान दिखलाते थे। लोग खजूर की बनी शराब पीते, घूमते और नाचनेवाली लड़कियों का गीत सुनते रहते थे। कविता का पुरस्कार यह होता था कि विजयी होने वाले कवि की कविता सुनहरे अक्षरों में अंकित की जाती और काबा के दरवाजे पर टाँग दी जाती थी। आज नोबेल पुरस्कार को प्राप्त कर कवियों को जो खुशी होती है उससे कम खुशी उस समय के अरब कवियों को यह पुरस्कार पा कर न होती थी। उनमें से "सात संबोधि-गीत (मुअल्लकत)" हमें अभी भी उपलब्ध है। इनको इस्लाम-पूर्व अरब की सर्वोत्तम कृतियाँ कहा जा सकता है। उस समय अरब की सबसे बड़ी साहित्यिक निधि कविता थी (प्रो० हिट्टी, मेकर्स आव अरब हिस्ट्री, पृ० २५-२६)।

अपने विशेष श्यातान (शैतान) से मिलता था। कवि के रूप में उसका सम्बन्ध अदृश्य शक्तियों से होता था। और उस कारण वह अपने शत्रु को श्राप देकर उसे अनिष्ट कर दे सकता था। इस प्रकार व्यंग्य अरब कविता का सबसे प्रारंभिक-रूप है। इस्लाम-पूर्व अरबी कवि के और अन्य अनेक कार्य होते थे। उसकी जुबान, उसकी अंजनी जनता की बहादुरी के समान ही प्रभावकारी थी। शांति के समय वह अपनी आग उगलती भाषा के कारण शांति और व्यवस्था के लिए खतरा बन सकता था उसी तरह जैसे कि आज के राजनीतिक अभियानों में जनोत्तेजक नेता अपने उत्तेजनापूर्ण भाषण से अशांति पैदा कर देते हैं। उनकी कविताएँ याद कर ली जाती थीं और वे एक जुबान से दूसरी जुबान और दूसरी से तीसरी जुबान तक पहुँचाई जाती थीं। इस प्रकार कविता प्रसार का एक अच्छा जरिया थी। वह जनमत को तैयार करने वाला और साथ ही उसका दूत भी था। कवि जनता के लिए आप्त वचन कहने वाला, उनका मार्ग-दर्शक, व्याख्याता और प्रवक्ता था। साथ ही वह जनता का इतिहासकार और वैज्ञानिक भी था जिस हद तक उस समय जनता का विज्ञान था। वद्दू बुद्धिमत्ता का माप कविता से करते थे। "अल-अगानी" नामक कृति में एक कवि गर्वपूर्वक कहता है—"मेरी जनजाति और घुड़सवारी, कवियों और आवादी में उसकी प्रसिद्धि को चुनौती कौन दे सकता है?"

तीन बातों—सैनिक शक्ति, ज्ञान और संख्या की अधिकता में ही जनजाति की श्रेष्ठता निहित रहती थी। प्राचीन कविता किसी कविता के रूप में अपने स्वरूप, अपनी गरिमा और लालित्य के अलावा ऐतिहासिक महत्व की भी इस कारण है कि उससे, कवि जिस युग में रहा है, उस युग की इतिहास-रचना के लिए सामग्री मिलती है। अरब की प्राचीन कविता इस्लाम-पूर्व के सभी पक्षों पर रोशनी डालती है। इसीलिए कहावत है कि—"कविता अरबवासियों की सार्वजनिक पंजी (दीवान) है"। अंतरा इब्न-शद्दाद अलअबू का, जो स्पष्टतः ईसाई मालूम पड़ता है, नाम युग-युग से चला आया है। वह वद्दुओं की वीरता और शौर्य का मूर्तिमान स्वरूप था। सरदार, कवि, योद्धा और प्रेमी के रूप में अंतरा ने उन गुणों का आदर्श प्रस्तुत किया जिनकी मरुभूमि के पुत्र अत्यधिक सम्मान करते थे।

जाहिलिया युग की कविता अपनी प्रभावकारिता में राष्ट्रीय थी, पर अपनी भावना में नहीं। इस कविता का वर्णित विषय समूचा अरब नहीं बल्कि वहाँ की एक जनजाति है। जाहिलिया युग के कवियों ने अपनी कविताओं और गीतों में अपनी जनजातियों, युद्ध और जनजातीय नेताओं की बहादुरी के कारनामों की गाथा गाई है और साथ ही खूबसूरत औरतों और प्रेमियों की भी चर्चा की है। "उस समय की कविता कुछ थोड़े से सुसंस्कृत लोगों का बुद्धि-विलास न थी बल्कि साहित्यिक

अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन थी।" कहा जाता है कि सकीफ जनजाति के गलान इब्न सलेमा सप्ताह में एक बार साहित्यिक सभा करते थे जहाँ कविताएँ सुनाई जाती थीं और साहित्यिक बहस-मुबाहसा और रचनाओं की आलोचना की जाती थी। उस समय के प्रमुख कवि थे इम्राउल केज, तराफा बिन अल-अब्द, हरिथ बिन हिलीजा, अंतारा इब्न शादाद अल-अबसी (लगभग ५२५-६१५ ई०) और अम्र बिन कुलथुम। प्रथम संबोधि-गीत, जिसे उकाज के निर्णायकों ने पसंद किया, इमारुल केज का लिखा हुआ था।

धार्मिक जीवन

जहाँ तक समाज के धर्म का सम्बन्ध है, इस्लाम-पूर्व अरब और जाहिलिया के मुस्लिम-विरोधी बद्दुओं के पास धर्म जैसी कोई चीज न थी। यहूदियों और ईसाइयों को छोड़ शेष अरब मूर्ति-पूजक था। यहूदियों और ईसाइयों के धर्म भी मुमूर्ष स्थिति में थे। सम्पूर्ण रूप से देखने पर कहा जा सकता है कि अरबों के भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण में धर्म कुछ भी योगदान न कर सके। नीची संस्कृति के अन्य अनेक लोगों की भाँति, अरब भी इस बात में विश्वास करते थे कि उनके प्राकृतिक वातावरण में उनसे अधिक शक्तिशाली शक्तियाँ हैं पर उनको उचित तरीके से बाध्य किया जा सकता है कि वे शक्तियाँ आदमी के काम आएँ। कुछ औ उच्चतर स्तर पर ये शक्तियाँ मानवीय आत्मा जैसी बतलाई गई हैं पर उन प्राप्त खतरनाक शक्तियों के कारण वे राक्षस हो जाती हैं। खास तौर पर सेमेटिक लोगों का विश्वास है कि पेड़ों, गुफाओं, झरनों और बड़े पत्थरों में दुष्ट आत्मा रहती हैं। उसी तरह जिस तरह कि अरब में मक्का के काबा के एक किनारे इस्लाम का काला पत्थर है जिसकी पूजा पेट्रा और अन्य स्थानों में भी की जाती है इस्लाम-पूर्व अरब में बहुत सारे देवताओं की पूजा की जाती थी। अरबवासी अने देवताओं की ही नहीं, अनेक देवियों की भी पूजा करते थे। उस समय मूर्ति-पूजा क बोलबाला था। अकेले मक्का में ३६० मूर्तियाँ थीं।

साहित्यिक निर्देशों के अलावा इस्लाम-पूर्व गैर-मुस्लिमवादी के बारे जानकारी इस्लाम में यहाँ वहाँ पाये जाने वाले गैर-मुस्लिम अवशेषों से भी प्राप्त होती हैं। साथ ही अरब में इस्लाम की स्थापना के बाद के साहित्य में जड़ी हु कुछ कथाओं और परम्पराओं से हमें उक्त युग के बारे में जानकारी मिलती है अलावे, अल-काल्बी द्वारा लिखित "अल असनम (मूर्तियों)" से भी उस युग कं स्थितियों पर रोशनी पड़ती है। मुस्लिम-विरोधी अरब का कोई न पुराण था, धर्मशास्त्र और न सृष्टि-शास्त्र ही। उनके मुकाबले उनके समसामयिक बेबीलोनिया ये सब चीजें, कुछ-कुछ मात्रा में, थीं। वास्तव में मुस्लिम-विरोधी बद्दुओं में उ

दिनों कोई निश्चित धर्म न था। वे लोग परम्पराओं के प्रति अनुदारवादी सम्मान से पथ प्रदर्शन पाते थे। बद्दुओं का धर्म सेमेटिक विश्वासों का सबसे पहले वाला प्राचीनतम रूप था। बद्दुओं का धर्म, अन्य प्राचीन धर्मों की भाँति, आधारभूत से पशुधर्मवादी था। बद्दुओं के नक्षत्रगत विश्वास चन्द्रमा पर केन्द्रित थे जिसकी रोशनी में वे अपनी भेड़ें चराते थे। उनके द्वारा चन्द्रमा की पूजा से सिद्ध होता है कि उनका समाज पशुचारणवादी था। बाद के खेतिहर समुदाय सूर्य की पूजा करने लगे थे। दूसरी ओर, बाद के खेतिहर समुदाय का विश्वास था कि यदि सूर्य की पूजा न की जाएगी तो वह जिस तरह सभी पशुओं और घास-पात, पेड़-पौधे आदि को जला डालता है उसी तरह बद्दुओं को भी जला डालेगा।

बद्दू अधिकतर मूर्त्तियों और नक्षत्रों की पूजा करते थे। ऊँटों और भेड़ों का बलिदान मक्का में किया जाता था। प्राकृतिक चीजों जैसे कि वृक्षों, कुओं, गुफाओं, पत्थर और हवा पवित्र एवं धार्मिक चीजें मानी जाती थीं क्योंकि ऐसा विश्वास था कि इन्हीं चीजों के जरिए पुजारी देवता के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित कर पाएगा। इब्न-हिसाम और अल-तबारी लिखते हैं कि नजरान में एक पवित्र खजूर का पेड़ था। पेड़ को भेंटें दी जाती थीं और उस सिलसिले में हथियार, वस्त्र और कंबल उस पेड़ से लटका दिये जाते थे। बहुत पहले रेगिस्तान में कुएँ की भी पूजा की जाती थी जिसका आधार यह था कि उससे पानी मिलता था जिससे सफाई की जाती थी, रोगों का इलाज किया जाता था और जिसे पी कर जीवन की रक्षा की जाती थी। याकूत और उसके बाद अल काजवीनी लिखता है कि यात्री उरवा के कुएँ से पानी ले जाते थे और उनको अपने परिचितों और मित्रों को विशेष भेंट-स्वरूप देते थे। गुफाओं का सम्बन्ध चूंकि जमीन के नीचे के देवी-देवताओं और शक्तियों से था, इसलिए उनकी पूजा की जाती थी।

यहाँ तक कि देवी-देवताओं को खुश करने के लिए आदमियों की बलि चढ़ाई जाती थी। जब किसी की मृत्यु हो जाती थी तो ऊँट का बलिदान किया जाता था। ऐसा इस विश्वास के साथ किया जाता था कि मृत व्यक्ति को शून्य में चलने के लिए सवारी मिल जाएगी। कुछ लोगों का विश्वास था कि जब आत्मा शरीर से अलग हो जाती है तो वह "हम्द" या "सदा" पक्षी के आकार की हो जाती थी। सच पूछा जाय तो इस्लाम-पूर्व अरब में धर्म जैसी कोई चीज न थी। उनका विश्वास न तो इस बात में था कि कभी "न्याय-निर्णय का दिन" आएगा या आदमी को अच्छे और बुरे काम का फल मिलता है। न ही उनका इस बात में विश्वास था कि इस जिन्दगी के बाद एक दूसरी जिन्दगी भी है। अल्लाह अन्य सभी देवी-देवताओं में प्रधान है पर ऐसी बात नहीं कि केवल वही एक देवता हो। हर

जनजाति की भांति हर नगर के अपने अलग-अलग देवियां और देवता थे, अपने अलग मंदिर थे और अपने पूजा के तरीके भी। हर जनजाति केवल अपने ही देवता की पूजा करती थी पर अन्य जनजातियों के देवी-देवताओं की शक्ति को उनके अपने-अपने क्षेत्रों में मान्यता भी देती थी। हर वंश के लोग अपना नाम अन्य जनजातियों के देवता के नाम पर नहीं वल्कि अपने देवता के नाम पर रखते थे। कभी-कभी एक ही देवता की पूजा सभी जनजातियां अपने-अपने तरीके से करती थीं। देवताओं के अपने निर्धारित निवास-स्थान थे। जनजातियों में किसी की मृत्यु के बाद उसके वंशज भी उस देवता को अपने निवास-स्थान में बने रहने देते थे और उसकी पूजा करते थे।

इस्लाम-पूर्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता और देवियों की अल-उज्जा (सर्वाधिक शक्तिमान, शुक्र, प्रातः-नक्षत्र), देवी अल-लात जिसे तैफ में अर-राबा और अल-मानह कहा जाता था (किसी का निर्धारित भाग्य या भाग्य की देवी), यागुस, वाद, नस्त्र (गिद्ध), ओफ (एक बड़ी चिड़िया) आदि। ये अरब के छोटे पर महत्वपूर्ण देवी-देवता थे। मक्का के कुरैशियों का एक विशेष देवता अल-हुनल था। अल-उज्जा, अल-लात और अल-मानह अल्लाह की तीन पुत्रियां थीं। बद्दुओं के अरब में वे तीनों, क्रमशः सूर्य की देवियां, शुक्र ग्रह और भाग्य के रूप में जानी जाती थीं। मक्का में इनको अल्लाह की पुत्रियां माना जाता था। इस प्रकार अरब में बहुदेववाद अपने सबसे बुरे रूप में प्रचलित था। काबा अरब में गैर-मुस्लिमवाद का केन्द्र था। मुस्लिम परम्परावादियों का कहना है कि मूलतः काबा का निर्माण आदम ने किया था उसके एक दिव्य आदि रूप से किया था और प्रलय के बाद उसका पुनर्निर्माण अब्राहम और इस्माइल ने किया (कुरान २ : ११८-२१)। अरब के विभिन्न भागों से हर वर्ष लोग यहाँ अपने-अपने देवताओं की पूजा करने आते थे। इस अवसर पर अरब में एक बड़ा मेला लगता था जिसे उकाज का मेला कहा जाता था जिसमें वाणिज्यिक और बौद्धिक आदान-प्रदान और बहस-मुबाहसे होते थे। "काले पत्थर को चूमना और काबा के चारों ओर घूमना मुस्लिम तीर्थयात्रियों के धार्मिक रस्म-ओ-रिवाज के महत्वपूर्ण कार्य हैं। यह सब बातें इस्लाम-पूर्व अरब के धार्मिक कार्यों की विरासत के रूप में चली आ रही हैं।"

अलावे, अरब वाले प्रेतों और अधि-प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास करते थे। इन शक्तियों को सामूहिक रूप से जिन या राक्षस (छिपी हुई, अदृश्य आत्माएँ) कहा जाता था। जिन नर और मादा दोनों ही होते थे। जिन और देवताओं के बीच अपनी प्रकृति को लेकर उतना अन्तर न था जितना कि मनुष्य के प्रति उनके दृष्टिकोण को लेकर अंतर था। देवता मोटे तौर पर मनुष्य जाति के

प्रति मैत्रीपूर्ण थे जब कि जिन्न शत्रुतापूर्ण। जिन्न रेगिस्तान के आतंकों और जंगली पशु-जीवन के काल्पनिक विचारों के मूर्तिमान रूप थे। देवता केवल उन जगहों में रहते थे जहाँ आदमी टहलते-घूमते थे जब कि जिन्न जंगल में उन जगहों में रहते थे जहाँ के रास्ते अपरिचित थे और जहाँ कोई भी आदमी न जाता था। पागल आदमी (मजनू) पर जिन्न का प्रभाव रहता है। इस्लाम के साथ जिन्नों की संख्या भी बढ़ती गई क्योंकि गैर-मुस्लिम देवताओं को जिन्नों की कोटियों में नीचे धकेला ही जाता रहा।

अल-हेज्जाज में सांस्कृतिक प्रभाव

"यद्यपि विश्व-घटनाओं के प्रमुख प्रवाह में अल-हेज्जाज की घटनाओं की गणना नहीं की जा सकती पर यह सच है कि इस्लाम पूर्व अल-हेज्जाज की घटनाओं को एक स्थिर और बँधे हुए पानी जैसा नहीं पाया जाता।"[६] यह बिल्कुल निश्चित ढंग से कहा जा सकता है कि हजरत मुहम्मद के आगमन के पूर्व की शताब्दी में बैजेंटाइन, सीरियाई, फारसी और अबीसिनियाई केन्द्रों से प्रसारित होने वाले बौद्धिक, धार्मिक और भौतिक प्रभावों से अल-हेज्जाज घिरा हुआ था। प्रभावों का यह प्रसार मुख्यतः घसानिड, लख्मीद, एमेनियाई स्रोतों से होता था। पर यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता कि हेज्जाज का अरब के उत्तर की उच्चतर सभ्यता के साथ इतना जीवन्त सम्बन्ध था कि उससे मौलिक सांस्कृतिक रूप में ही आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता था और फिर ईसाई धर्म नजरान में पाँव टिकाने की जगह पा गया था और यहूदी धर्म अल-यमन और अल-हेज्जाज में, पर फिर भी ये दोनों ही उत्तरी अरब के मस्तिष्क पर कुछ भी प्रभाव डालने में असमर्थ रहे। फिर भी इस्लाम-पूर्व अरब प्रायद्वीप का प्राचीन गैर-ईश्वरवाद इस विन्दु पर पहुँच गया था कि उससे लोगों की आध्यात्मिक माँगें पूरी हो सकना असंभव हो गया था और उसे एक असंतुष्ट गुट ने उखाड़ फेंका। यह गुट कुछ हद तक, मोटे तौर पर एक ईश्वरवाद में विश्वास करता था और इन लोगों को हनीफ कहा जाता था। इसका राजनीतिक परिणाम यह हुआ कि पहले के दक्षिणी अरब में संगठित राष्ट्रीय जीवन बिलकुल अस्त-व्यस्त और विशृंखलित हो गया था। जिस तरह कि धार्मिक जीवन में अराजकता फैली हुई थी उसी तरह राजनीतिक क्षेत्र में भी। इस प्रकार सभी तैयारियाँ हो चुकी थीं और मनोवैज्ञानिक रूप से समय ऐसा हो चुका था कि एक महान धार्मिक और राष्ट्रीय नेता का उदय हो।

सामाजिक और नैतिक स्थिति

इस्लाम-पूर्व अरब में जहाँ तक सामाजिक और नैतिक स्थितियों का सम्बन्ध था, उस समय के लोगों में अच्छे और बुरे का भाव तो था पर वैसा भाव न था जैसा

६. हिट्टी, हिस्ट्री ऑफ दी अरब्स, पृ० १०४।

कि आज हैं। उस समय के लोग किसी की हत्या करने में कुछ भी हिचक न दिखलाते थे। उस समय हत्या एक साधारण-सी बात मानी जाती थी। अलावे, उन लोगों का दैनिक जीवन किसी किस्म की निश्चित नैतिकता और आचार-संहिता से शासित न थी। उस समय आदमी को जो भी ठीक लगता था वह कर गुजरता था। समसामयिक इतिहास में किसी भी देश में महिलाओं की स्थिति उतनी खराब न थी। जितनी अरब में थी। इस्लाम-पूर्व अरब के लोग औरतों को चल सम्पत्ति समझते थे और उनके प्रति तीव्र घृणा का भाव रखते थे। महिलाओं को कोई अधिकार या सम्मान न था। आदमी चाहे जितनी औरतों से विवाह कर सकता और उन्हें तलाक दे सकता था। पुत्री का जन्म विपत्ति का सूचक माना जाता था। कभी-कभी पिता उनके हृदय-विदारक रोने-चिल्लाने की परवाह न कर उनको जिन्दा जमीन में गाड़ देता था। अनेक पिता अपनी पुत्रियों को, गरीबी के डर से, मार डालते थे। पवित्र कुरान में कहा गया है—"और अपने बच्चे को गरीबी के डर से न मारो। मैं तुम्हारी और उनकी जीविका का भी प्रबंध करता हूँ। उनकी जान मारना निश्चय ही एक जघन्य अपराध है।"

अलावे, महिलाएँ भी अधिकांशतः भ्रष्ट थीं। जब कोई मर जाता था तो उसकी विधवा मृत व्यक्ति के निकटतम के पास छोड़ दी जाती थी जो उसकी जीविका के लिए जिम्मेदार होता था। अधिकांश मामलों में विधवाएँ अपने सौतेले बेटों से ब्याह दी जाती थीं और बहनें भाइयों से। कोई अनैतिक काम करने वाली औरत किसी से भी शरमाती न थी। यदि किसी औरत को बच्चा होता था और अगर वह कुंवारी या विधवा हुई, तो यह कहना मुश्किल था कि वह बच्चा किसका है। बच्चे का चेहरा जिससे मिलता-जुलता रहता उसे ही उसे अपने साथ रखना पड़ता। एक पुरुष का कई स्त्रियों से सम्बन्ध और एक स्त्री का कई पुरुषों से सम्बन्ध रखना एक आम बात थी। अलावे, स्त्रियों को अपने मृत पति, मृत पिता या किसी अन्य मृत संबंधी की सम्पत्ति में कोई हिस्सा न मिलता। औरतों को ऐसा कष्टकर और घृणास्पद जीवन बिताना पड़ रहा था और उसी समय हजरत मुहम्मद आये जिन्होंने उसे उस नीचे के स्थान, उस लम्पट जीवन से ऊँचा उठा कर सम्मान और प्रतिष्ठा दी।

अरब में दास-प्रथा भी प्रचलित थी। वे लोग दासों के साथ बड़ा क्रूर व्यवहार करते थे। उनका जीवन-मरण उनके मालिक के ही हाथ में होता। दासों के बीच एक-दूसरे के साथ विवाह बंध न माना जाता था और स्वतंत्र विवाह पर रोक लगा दी गई थी जिसे तोड़ने पर भयानक सज़ा मिलती।

सारांश में कहा जा सकता है कि अरबों का जीवन पाप-पंक में डूबा हुआ था। और साथ में अन्धविश्वासों और बर्बरता का बोलबाला था। वे लोग अन्धविश्वास में इस तरह डूबे हुए थे कि वे अपनी मूर्तियों से पूछे बिना कोई भी काम न

कर सकते थे। मूर्तियों से सलाह वे तीरों द्वारा अंकित देववाणियों के जरिए करते थे। अरबों में सामाजिक विषमता, उत्पीड़न, मद्यपान, जुआखोरी, लूटपाट और अन्य जघन्य कार्य जोरों से प्रचलित थे। खास तौर पर अरब और सामान्य तौर पर दुनिया की हालत ऐसी खराब थी कि भगवान द्वारा हस्तक्षेप नितान्त आवश्यक हो गया था। करीब सात शताब्दी पूर्व ईसामसीह के जन्म के समय जो स्थितियां थीं वे अब और भी भीषण शक्ति और अधिक जटिल रूप में मौजूद थीं। और इसी कारण अरब में मुहम्मद साहब का अवतरण हुआ। अरब में इसलिए कि वहां की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति अन्य सभी देशों से ज्यादा बुरी थी।

और इस प्रकार जब समूचा अरब उत्पीड़न और घोर कष्ट, अन्याय और हृदयहीनता, पाप और अन्धविश्वास से अवदमित था और उसका दम घुट रहा था तो हजरत मुहम्मद ने देवता के वरदान के रूप में अरब की धरती पर जन्म लिया ताकि अरब और समूची दुनिया का कल्याण हो। हजरत मुहम्मद के उपदेशों ने अरब जनता के रुख में बहुत बड़ा परिवर्तन किया। उन दिनों अरब में कोई निश्चित कानून न था। लोग विभिन्न गुटों में बंटे हुए थे। उनमें एकता न थी। सच्चे धर्म जैसी कोई चीज थी ही नहीं। अधिकतर वे लोग अपने कल्पित देवता को प्रसन्न करने के लिए ऊंटों, घोड़ों आदि का बलिदान करते थे। उनका दैनिक जीवन, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, किसी निश्चित विधि-संहिता से नियंत्रित नहीं था। वे लोग जिन्न से डरते थे। अरबों के लिए सुन्दरी के बाद सुरा और द्यूत क्रीड़ा (जुआबाजी) प्रिय था।

पैगम्बर मुहम्मद अरबों के अनैक्य, एकता के सर्वथा अभाव तथा अज्ञान से पूर्ण परिचित थे। इसलिए उन्होंने पूरी कोशिश की कि अरबों को संगठित किया जाय और गलत परम्पराओं से मुक्ति दिलाई जाय। पैगम्बर ने अरब में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और अन्य क्षेत्रों में सुधार के लिए जीवन के प्रति नये और पुराने रुख की एक दूसरे से तुलना की।

जहां तक सामाजिक सुधारों का प्रश्न है, इस्लाम-पूर्व अरब में विवाह-संस्था का सम्मान न था और लोगों द्वारा बहु-विवाह बराबर किया जाता था। पैगम्बर ने बहु-विवाह खत्म न किया पर व्यवस्था दी कि पुरुष चार स्त्रियों को ब्याह सकता है यद्यपि अमीर आदमी और भी पत्नियां रखते थे। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए नियम और विनियम बनाये गए। जहां तक दास-प्रथा का सम्बन्ध है, पैगम्बर ने इस प्रथा का उन्मूलन तो न किया पर इस प्रथा पर कुछ रोकें लगाई गईं और दासों की स्थिति बेहतर की गई।

पैगम्बर मुहम्मद द्वारा प्रवर्तित नये धर्म (इस्लाम) के फलस्वरूप उनका पुराना विश्वास चरमरा गया। इस्लाम के पूर्व जाहिलिया अवधि में मूर्ति-पूजा का प्रचलन

था और सो भी एक मूर्ति की नहीं अनेक-अनेक मूर्तियों की । यह प्रथा अनन्त काल से, उसी रूप में, चली आ रही थी । पैगम्बर ने उन्हें आदेश दिया कि वे अपनी बातचीत में निष्ठावान और सच्चे बनें, दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करें जिसे वे अपने साथ किये जाने की आशा करते हैं, अपने परिवार के सुख-दुःख में उसके साथ रहें और गलत काम न करें, खून-खराबी से बाज आएँ । उन्होंने अरबों से यह भी कहा कि वे व्यभिचार न करें और न ही गलत और झूठी गवाही दें । उन्होंने उनको यह भी बताया कि अल्लाह एक है जो सर्वशक्तिमान है । उसने ही यह समूची दुनिया बनाई । साथ ही पैगम्बर ने यह भी बताया कि एक "अंतिम निर्णय का दिन" होता है जिसमें अल्लाह का हुक्म अच्छी तरह पूरा करने के लिए स्वर्ग में बहुमूल्य-से-बहुमूल्य पुरस्कार मिलते हैं और जो लोग उन अच्छे काम करने वालों के रास्ते में अड़चन पहुँचाते और उन्हें व्यर्थ में कष्ट देते हैं उन्हें नर्क में कठोर-से-कठोर दंड मिलता है । पैगम्बर ने उन्हें यह आदेश भी दिया कि वे नमाज अदा करें । साथ ही वे जकात (गरीबों को ऋण) दिया करें तथा रमजान में उपवास किया करें । उनके उपदेश सार रूप में यही थे । जहाँ तक राजनीतिक मामलों का सम्बन्ध है, पैगम्बर के उपदेशों से उनके बीच की अनेकता खत्म हो गई । पैगम्बर ने मुस्लिम सम्प्रदाय को संगठित किया । इस प्रकार अरब आपस में लड़ने वाले वंश और धार्मिक गुट न रह गए । उनमें एकता स्थापित हो गई । उनकी एकता की नींव पर ही, बाद में, इस्लाम के विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई । प्रवासियों और थंकों के य नया य, अल्लाह के भक्तों के रूप में, धर्म के आधार पर स्था- हुआ था । अरब के इतिहास में यह पहली कोशिश की गई कि खून के आधार र नहीं बल्कि धर्म के ाधार पर सामाजिक संगठन खड़ा किया जाय । राज्य की वाच्चता का मूर्तिमान रूप अल्लाह था । अल्लाह का पैगम्बर पृथ्वी का सर्वोच्च शासक था । इस प्रकार जनजातीय बंधन का स्थान एक नये बंधन, जो कि इस्लाम के प्रति निष्ठा-स्वरूप था, ने लिया । इस प्रकार पैगम्बर मुहम्मद का प्रभाव सबसे ज्यादा अरब समाज पर था ।

इस प्रकार जब छठी शताब्दी का अंत हो रहा था, अरब जगत के उत्तर और दक्षिण में दो प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्य थे—उत्तर में बैजेनटाइन और फारस तथा दक्षिण में अबीसीनिया । कभी के स्वाभिमानी अरब राज्यों के समक्ष राजनीतिक विनाश और पराधीनता की स्थिति थी । जब उन पर से विदेशियों का राज खत्म हो गया तो वहाँ का राष्ट्रीय जीवन अराजकता का शिकार बन गया । अरब में न केवल आध्यात्मिक और राजनीतिक शून्य की स्थिति व्याप्त हो गई । इस प्रकार अरब एक ऐसे महान नेता के आगमन के लिए तैयार था जो उसे एक नया विश्वास, एक नयी शक्ति और एक नई एकता देता ।

अध्याय २]

पैगम्बर मुहम्मद का जीवन और कार्य

"इस तरह हमने तुम्हारे पास अपना दूत भेजा है जो तुम्हारे ही बीच का है और जो तुम्हारे लिए हमारे रहस्य उद्घाटित करेगा और तुम्हें शुद्ध करेगा, वह 'ग्रन्थ' के जरिए तुम्हें शिक्षा देगा और तुम्हें बुद्धिमत्ता सिखाएगा तथा तुम्हें वह बताएगा जो तुम्हें नहीं मालूम।"

—कुरान—२ : १४६

इतिहास में अनेक व्यक्तियों का उल्लेख आता है जिन्होंने धर्म की स्थापना की, राष्ट्रों का निर्माण किया या राज्य स्थापित किए। पर यदि हजरत मुहम्मद के सिवा कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने ये तीनों काम किए हों तो इतिहास में उसका जिक्र कहीं नहीं मिलता, अर्थात् ये तीनों काम सिर्फ हजरत मुहम्मद ने ही किये। पैगम्बर मुहम्मद ने जिस धर्म, राष्ट्र और राज्य की स्थापना की, वे तीनों एक दूसरे के साथ बहुत मजबूती से गुँथे हुए थे और एक हद तक एक दूसरे पर निर्भर थे।

अरब के पैगम्बर ने जिस धर्म-इस्लाम की स्थापना की उसे आज विभिन्न जातियों और राष्ट्रों के ४५ करोड़ व्यक्ति मानते हैं। विभिन्न भाषायें बोलने वाले ये इस्लाम-अनुयायी मोरक्को और नाइजीरिया से इण्डोनेशिया और मलेशिया तक के विशाल क्षेत्र में फैले हुए हैं। आज दुनिया के प्रति सात या आठ व्यक्तियों में से एक अपने को इस्लाम का अनुयायी बताता है। हजरत मुहम्मद ने जिस राष्ट्र—अरब—की स्थापना की उसमें मोरक्को से ईराक तक १० करोड़ व्यक्ति बसते हैं जो अपने को अरब कहते हैं। उन्होंने अरब प्रायद्वीप में जिस राज्य की स्थापना की वह खलीफा-शासित राज्य के रूप में विकसित हुआ और मध्य काल में सबसे शक्तिशाली राज्य था और उस राज्य के वंशज उत्तरी अफ्रिका और पश्चिमी एशिया में हैं और जिनका प्रिय स्वप्न है कि वे सब एक संयुक्त राज्य में गठित हो जायँ।

जीवन-वृत्त

कुरैश परिवार इस्माइली अरब का एक प्रसिद्ध वंश है। उसी परिवार का एक शक्तिशाली व्यक्ति फिह्र था जो इस्माइल का वंशज था। फिह्र का दूसरा नाम कुरैश था और इसी आधार पर उसके वंशज कुरैश कहलाये।

यद्यपि हजरत मुहम्मद के बारे में कुछ ऐतिहासिक तथ्य हमें मालूम हैं पर व्यक्ति के रूप में उनके बारे में हमें बहुत ही कम बातों का पता चलता है। उनके बारे में सर्वप्रथम उल्लेख सातवीं शताब्दी की सीरियाई भाषा के एक ग्रन्थ में मिलता है। सीरियन भाषा उत्तर तक फैले हुए उपजाऊ अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र के सामान्य-जन की भाषा है। यूनानी भाषा में, जो उक्त उपजाऊ अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र की लोकभाषा है, एक ऐतिहासिक विवरण मेंमुहम्मद साहब की मृत्यु के दो सौ वर्षों बाद "सारासेन के शासक और नकली पैगम्बर"[1] की सर्वप्रथम चर्चा मिलती है। मुहम्मद साहब की मृत्यु के डेढ़ सौ वर्षों के बाद अरबी भाषा में किसी व्यक्ति ने जिसकी मृत्यु बगदाद में हुई, हजरत मुहम्मद की सर्वप्रथम जीवनी लिखी। उसका संशोधन इब्न हिशाम ने किया जिसकी मृत्यु अल फुस्टैट (पुराना काहिरा) में सन् ८३३ में हुई। उस समय तक हजरत मुहम्मद इतिहास-पुरुष न रह कर पौराणिक कथाओं के नायक जैसे बन चुके थे—एक सम्पूर्ण गुणयुक्त आदर्श व्यक्ति। अल-तबारी ने, जिसकी मृत्यु बगदाद में ९२३ ई० में हुई, अपने अनेक ग्रन्थों वाले इतिहास में मुहम्मद साहब की जीवनी शामिल की। बगदाद के ही अल-वकीदी (मृत्यु सन् ९२२) "मुहम्मद साहब के अभियान" (मगजी) नाम की पुस्तक लिखी।

हजरत मुहम्मद के बारे में पूरे साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य किंवदंतियों के साथ बहुत प्रगाढ़ रूप से मिले-जुले हैं और पैगम्बर के रूप में, सदा के लिए, उनके मंडल के चारों ओर एक प्रभा-मंडल कायम रखा जाता है। मुहम्मद साहब के ी उन्हें अपने राष्ट्रीय नेता, अपने धर्म के स्थापनकर्त्ता, अपने राज्य के निर्माता ौर अपने यश के संस्थापक के रूप में पूजते रहे हैं। वे कालान्तर में केवल एक व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि एक मूर्त्ति के रूप में पूजित होने लगे। पवित्र नगर मक्का में इस्लाम धर्म के संस्थापक मुहम्मद साहब ने सन् ५७१ या उसके आसपास जन्म लिया। उनके प्रारंभिक जीवन या पर्यावरण की किसी भी चीज से यह प्रतीत नहीं होता कि आगे चल कर वे इतने महापुरुष होंगे। उनका जन्म-स्थान मक्का, जो अब तीर्थ-यात्रा के एक केन्द्र के रूप में जातिवाचक संज्ञा की तरह

---

१. अरब के इस विशाल क्षेत्र के लोगों, विशेषकर यूफरेट्स के पश्चिम के रेगिस्तान में घूमने वाले लोगों को यूनानी और रोमवासी "सारासेनी" कहा करते थे। जब वे लोग अपने घर से विश्वविजय के लिए निकले तो भी उन्हें इसी नाम से जाना जाता था। "सारासेनी" शब्द शायद सहारा रेगिस्तान और नशीन के रहने वालों से बना है। या यह भी संभव है यह नाम हांगर पक्षी (शार्क) या पूर्वी हांगर (शार्क) से बना हो। अरबी में शार्क का मतलब पूर्व होता है। (सैयद अमीर अली—ए शार्ट हिस्ट्री आव सारासेन्स, मैकमिलन एंड कम्पनी लि०, लंदन, १९३३, पृ० ४)।

प्रयुक्त किया जाता है, उसका राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कहीं उल्लेख नहीं मिलता। और न ही उनके देश हेज्जाज का ही कहीं उल्लेख मिलता है। उस समय पूर्वी रोमन साम्राज्य की ही सर्वत्र ख्याति थी और पूरा अरब प्रायद्वीप अंधकार में पड़ा हुआ था। अपनी जनजाति द्वारा उन्हें अल-अमीन (विश्वसनीय) कहा जाता था। स्पष्टत: यह एक आदरसूचक शब्द है। कुरान में उनका उल्लेख मुहम्मद और अहमद नाम से किया गया है। जनसाधारण के बीच उन्हें मुहम्मद (अत्यधिक प्रशंसनीय) नाम से जाना जाता है। मुस्लिम बच्चों का यह नाम जितना अधिक रखा जाता है, उतना और कोई नाम नहीं। उनके पिता अब्दुल्ला की, उनके जन्म के पूर्व, ऊँटों के कारवाँ के साथ सीरिया जाते हुए, मृत्यु हो गई। जब वे मुश्किल से छ: वर्ष के थे, तभी उनकी माँ अमीना की मृत्यु हो गई। अत: उनके पालन-पोषण का भार उनके दादा अब्द-अल-मुतलिब ने सँभाला। दादा की मृत्यु के बाद उनका पालन-पोषण उनके चाचा—अबू तालिब—ने किया। वे जिस वंश में पैदा हुए थे उसका नाम बनू-हाशिम (हाशिम की संतान) था और उस समय वह वंश बुरे समय से गुजर रहा था जबकि जिस जनजाति—कुरैश—का यह वंश था वह समृद्ध और शक्तिवान थी।

यद्यपि मुहम्मद साहब के प्रारंभिक इतिहास के बारे में निश्चित रूप से बहुत कुछ नहीं मालूम, पर इब्न इशाक और इब्न हिशाम दोनों ही वंश के अभिलेखों से हमें इस बारे में थोड़ी-सी जानकारी मिलती है। इन अभिलेखों से हमें उनके प्रारंभिक जीवन, जीविका के लिए उनके संघर्ष और अपनी पूर्णता के लिए प्रयासों की झांकी मिलती है। साथ ही उनसे यह भी पता चलता है कि जिस महान कर्त्तव्य के लिए वे संसार में आये थे उस ओर धीरे-धीरे और कष्ट के साथ उन्होंने किस तरह प्रगति की। उनके चाचा ने उन्हें भेड़ों और ऊँटों की रखवाली का काम सौंपा। उन्हें अपने प्रारंभिक जीवन में लिख-पढ़ कर कोई जानकारी हासिल करने का अवसर नहीं मिला। पर दूर-दराज स्थानों की यात्राओं से उन्होंने जानकारी हासिल की। बारह वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने चाचा और संरक्षक अबू तालिब के साथ ऊँटों के कारवाँ के साथ सीरिया की यात्रा की। इस यात्रा के दरम्यान उनकी मुलाकात एक ईसाई साधु से हुई जिसका नाम किवदन्तियों में बहिरा बताया जाता है। बहिरा के प्रारंभिक किवदन्तियों से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि इस्लाम और ईसाई धर्मों का सम्बन्ध कैसा था और इस्लाम धर्म के विकास पर ईसाई धर्म का क्या प्रभाव पड़ा। किवदन्तियों में इस बात का जिक्र मिलता है कि एक बार जब अपने लड़कपन में मुहम्मद साहब दमिश्क गये तो शहर के फाटक में घुसने से हिचकिचाते हुए उन्होंने कहा कि वे केवल एक बार स्वर्ग में प्रवेश के लिए इच्छुक हैं। पर इस बात पर यकीन नहीं किया जा सकता है कि उतनी कम उम्र के

लड़के द्वारा उस शहर की, जो उनके जन्मस्थान से इतना अधिक भिन्न था, यात्रा की इस घटना की गूँज कुरान में न सुनाई पड़ी होगी। अपने कर्त्तव्य पूरा करते हुए भावी पैगम्बर ने अवश्य ही सीरिया और अबीसीनिया के ईसाई व्यापारियों, यात्रियों और दासों से व्यक्तिगत सम्पर्क किया होगा। इसके अलावा पैगम्बर मुहम्मद के अपने शहर हेज्जाज की दक्षिणी सीमा पर नजरान में ईसाइयों का एक समूह था और अरब प्रायद्वीप की उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर दो ऐसी अरब जनजातियाँ थीं जिन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। इसका मतलब यह हुआ कि मुस्लिम अरबों के पूर्व अरब में ईसाई अरब थे। साथ ही, इससे यह भी मालूम पड़ता है कि मदीना और उसके आस-पास कुछ अरब-यहूदी जनजातियाँ थीं। ऐसे स्रोतों से मुहम्मद साहब को मालूम हुआ होगा कि जब ईसाइयों और यहूदियों के अपने-अपने ग्रन्थ (धर्म-ग्रन्थ) हैं और वे लोग अधिक आगे बढ़े हुए हैं तो उनकी अरब जनता का अपना कोई ग्रन्थ नहीं और ये लोग पिछड़े हुए हैं।

अपनी किशोरावस्था से ही पैगम्बर मुहम्मद साहब एकान्त स्थानों में ध्यान करने लगे थे। जन-साधारण के दुःखों, उनके दुष्टतापूर्ण कार्यों और उन लोगों के आपसी लड़ाई-झगड़ों को देख कर हजरत मुहम्मद को धक्का-सा लगा। वे अपने बाद के जीवन में पन्द्रह साल तक बहुत चुप रहे और इस अवधि में जनता के ीच केवल एक या दो बार प्रकट हुए। उन्होंने बहुत पहले बने संघ को, जो ।वधव ों, अनाथ बच्चों और निःसहाय विदेशियों के बना था और उस समय निर्जीव-सा पड़ गया था, एक बार पुनः सक्रिय किया। जब पैगम्बर मुहम्मद बड़े हुए तो वे एक धनी आदमी की विधवा—खदीजा के सम्पर्क में आये। वह कुरैश वंश की थी और व्यापार और ऊँटों के कारवाँ का धंधा करती थी जो उस समय बहुत लाभ का व्यवसाय था। वह जवान हजरत मुहम्मद को अपने साथ रखने लगी। हजरत मुहम्मद ने बहुत विनीत और आज्ञाकारी ढंग से खदीजा के काम-काज किये। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भी हजरत मुहम्मद ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा प्रदर्शित की। अलावे, पैगम्बर मुहम्मद से खदीजा पन्द्रह साल बड़ी थी फिर भी उनके प्रति उसका प्रेप निरन्तर बढ़ता ही गया। उसने उनसे विवाह का प्रस्ताव रखा। विवाह हुआ जिससे पैगम्बर मुहम्मद न केवल सांसारिक आवश्यकताओं से ऊपर उठ गए, वरन् अन्य कई मामलों में भी वे पूर्णतः सन्तुष्ट दिखे। २५ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपनी जन-जाति की विधवा खदीजा से विवाह किया। उसके बाद से हजरत मुहम्मद साहब के बारे में स्पष्ट ऐतिहासिक विवरण मिलता है। तब निःसन्देह एक पति के रूप में हजरत मुहम्मद ने अपनी पत्नी के उद्योग-धंधों में काफी उत्साह से काम किया। उन्होंने अपनी पत्नी से कभी झगड़ा न किया।

वे पत्नी के स्नेह-शील पति थे। जब तक उच्च विचारों और शक्तिशाली व्यक्तित्व वाली यह महिला जीवित रही उन्होंने और किसी स्त्री का पति होने के बारे में सोचा तक नहीं। खदीजा की मृत्यु (सन् ६१९) के उपरान्त आयशा उनकी प्रिय पत्नी थी। उन्हें कई लड़के हुए पर सब-के-सब बचपन में ही मरते गए। पर उनकी लड़कियों ने अपने पिता के जीवन की महान घटनाएँ देखीं। उनकी सबसे छोटी बेटी फातिमा का जो "अज़-जोहरा" (खूबसूरत) कही जाती थी और जिसे मुसलमान "हमारी स्वामिनी" भी कहते हैं, इस्लाम के चौथे खलीफा हजरत अली से विवाह हुआ।

अपने आर्थिक जीवन में उन्होंने जिस क्षमता का प्रदर्शन किया उसी से वे अपने दो प्रिय व्यसनों ध्यान और एकान्तवास में आगे बढ़े। मक्का के बाहर पहाड़ की एक गुफा है जिसके बारे कहा जाता है कि वहीं मुहम्मद साहब बैठ कर ध्यान और एकान्तवास करते थे। दो बातों की आग उनके भीतर जल रही थी। पहली बात यह कि वह जिस समाज में रह रहे थे उसकी बुराइयों के प्रति वे बराबर जागरूक रहे। वह समाज यायावरों की जिन्दगी से शहरों की जिन्दगी की ओर संक्रमण कर रहा था। दूसरी बात यह कि उन्हें महसूस हो रहा था कि वह जिन ईसाइयों और यहूदियों से मिलते थे, उन दोनों के पास अपना-अपना धर्म-ग्रन्थ था। साथ ही उनकी अपनी जनता से अधिक प्रगतिशील और विकसित थे। अरब ईसाई धर्म के अनुयायी देशों से घिरा हुआ था। जिन यहूदियों से उन्होंने मुलाकात की वे सीरियाई, मिस्रवासियों (कॉप्ट), अबीसीनियाई और ईसाई धर्म मानने वाले अरब थे। वे सीरिया और ईराक के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहते थे। वे व्यापारियों, दासों और सैलानियों के रूप में आते थे। उनमें यहूदी मदीना और यमन के मूल निवासी या विदेशी व्यापारी और दास होते थे।

मक्का एक बहुत बड़े सामाजिक-आर्थिक परिवर्त्तन से गुजर रहा था। यह आंशिक रूप से बद्दुओं के समाज से नगरीय सभ्यता की ओर संक्रमण कर रहा था। वह उस क्षेत्र की राजधानी बनने के क्रम में था। उसकी प्रमुख जनजाति कुरैश ऊँटों के कारवाँ पर अपने नियंत्रण के कारण प्रमुख व्यापारिक समुदाय के रूप में विकसित हो रहे थे। वह लोबान और मसालों के क्षेत्र—यमन—से उत्तर में भूमध्य सागर के बंदरगाहों तक जाने वाले व्यापारिक मार्गों के चौरास्ते पर था। मक्का नगर जमजम के कुएँ के कारण अपनी अच्छी स्थिति बना सका था। इस कुएँ का पानी यद्यपि खारा था पर रेगिस्तान के कारवाँओं के लिए आकर्षक था। भाव-प्रवण भावी समाजसुधारक (हजरत मुहम्मद) को यह देख कर चिन्ता जरूर हुई होगी कि एक ही जगह बसे हुए धनी लोगों और एक जगह से दूसरी जगह घूमने वाले

गरीब लोगों की आर्थिक स्थिति में जमीन-आसमान का फर्क था। हजरत मुहम्मद ने खुद आर्थिक स्थिति के इन दोनों छोरों—अमीरी और गरीबी—का अनुभव किया था।

जहाँ तक एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में संक्रमण का प्रश्न है, जनजातियों के संक्रमण के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण थे। परम्परागत निष्ठा पर तनाव पड़ रहा था और पुराने मूल्य नीचे गिर रहे थे। जनजातियों की एकता, जो रेगिस्तानी जिन्दगी में जीवित रहने के लिए मूलतः आवश्यक है और शारीरिक उत्साह, जो घुमन्तू लोगों में प्रतिष्ठा और नेतृत्व के लिए परमावश्यक है, के स्थान पर पूँजीवादी समाज का उदय हो रहा था जिसमें व्यक्तिगत पहलकदमी, उद्योग और धन की प्रधानता होती है। समूचे क्षेत्र में निष्ठा में तनाव के साथ-साथ धार्मिक निष्ठा पर भी तनाव पड़ रहा था जो इस बात से स्पष्ट था कि प्रायद्वीप के विभिन्न भागों में बहुत ज्यादा "पैगम्बर" हो गये थे।

पैगम्बर मुहम्मद के आर्थिक जीवन में अब जिस दक्षता ने प्रवेश किया, जिस सम्बन्ध में कुरान में स्पष्ट उल्लेख है, उससे उन्हें समय और सुविधा मिली और वे अपनी रुचियों की पूर्ति की दिशा में आगे बढ़ सके। अल्लाह (भगवान) के प्रति उनका विश्वास बढ़ता गया और अन्य देवताओं के खोखलेपन को वे समझ सके। पर एक उपदेशक के रूप में अपने प्रारंभिक वर्षों में उन्होंने काबा की तीन देवियों का अस्तित्व स्वीकार किया जिन्हें उनके देशवासी अल्लाह (भगवान) की तीन पुत्रियाँ मानते थे। अपने एक उपदेश में उन्होंने इन तीनों को उच्चतर जीव माना है। वे अब मक्का के बाहर 'हिरा' पहाड़ी की एक छोटी-सी गुफा (घर) में ध्यान करने में अपना अधिक-से-अधिक समय लगाने लगे। एक ऐसी ही ध्यानमग्नता की अवधि में, संदेहों और सत्य के लिए लालायित होने के कारण ध्यान टूटने पर, मुहम्मद ने 'हिरा' पहाड़ी पर उस घर में एक आवाज सुनी जो उनसे आदेश के तौर पर कह रही थी—"तुम अपने प्रभु (अल्लाह) जिसने तुम्हें उत्पन्न किया है, के नाम पर पढ़ो आदि" इस पर हजरत मुहम्मद जो काफी पढ़े-लिखे नहीं थे चौंक गए और उन्होंने उस आवाज के उत्तर में जरूर कहा होगा—"मैं यह सब कैसे कर सकूँगा।" तब उस आवाज ने यह बात दुहराई—

"पढ़ो क्योंकि तुम्हारा प्रभु (अल्लाह) अत्यधिक उदार है,
जो तुम्हें कलम से पढ़ाता है,
और आदमी को वह सिखाता है जो
आदमी को नहीं मालूम।"

कुरान-सूरा ९६ : ३-५।

यह उनका पहला उपदेश था। पैगम्बर को अपना आह्वान मिल गया। उस दिन की रात को बाद में "शक्ति की रात" (लयलत-अल-कद्र) कहा जाने लगा और यह रात रमजान के अन्त में पड़ती है (६१० ई०)। हजरत मुहम्मद ने अपने व्यवसाय के दरम्यान पढ़ना और लिखना अवश्य सीखा होगा, पर स्पष्टत: वे इस पवित्र लेख को नहीं लिख सकते थे। फिर उसके कुछ समय बाद वह आवाज फिर सुनाई दी। ऐसा लगा मानो "घंटियों के बजने की गूंज" उठ रही है। हजरत मुहम्मद बहुत ज्यादा भाव के दबाव में, डरे हुए घर लौटे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा वह उन्हें कुछ ओढ़ना ओढ़ा दे। इसके बाद फिर ये शब्द सुन पड़े—"ओ तू अपना लबादा ओढ़े हुए उठ और चेतावनी दे"। अब सन्देह की कोई गुंजाईश न थी। यह आवाज अवश्य ही किसी देवदूत की, बाद में जिसका नाम जिबरील बताया गया, होगी। पैगम्बर को अपना प्रथम आह्वान मिल गया था। मूसा, ईसा—सौल-पौल—जिनका दर्शन दृश्य-श्रव्य होता था, के विपरीत इस देवदूत की आवाज केवल, पूरी तरह, श्रव्य थी। हजरत मुहम्मद ने सोचा कि अल्लाह (भगवान) ने उनकी रुह (आत्मा) से कह दिया है कि वह उठ खड़े हों और जनता में अपने नये उपदेश की शिक्षा दें। अरब की जनता को अपने आह्वान और संदेश में हजरत मुहम्मद उसी तरह सही रूप में पैगम्बर थे जैसे कि ईसाइयों के धर्मग्रन्थ 'टैन टेस्टामेंट' के हेब्रू पैगम्बरों में से कोई भी। ईश्वर एक है। वह सर्वाधिक शक्तिमान है। उसी ने यह संसार बनाया। एक न्याय का दिन होगा। उस दिन, जो लोग ईश्वर का आदेश मानते हैं उन्हें स्वर्ग में विशेष पुरस्कार मिलेंगे और जो लोग उन आदेशों की उपेक्षा करेंगे उन्हें भयावह नर्क में भीषण दंड मिलेगा। पैगम्बर मुहम्मद का संदेश संक्षिप्त रूप में यही था।

अल्लाह के दूत (रसूल) के रूप में जो नया कार्य उन पर सौंपा गया था, उसके प्रति समर्पित और अत्यन्त उत्साहित होकर वह अपनी जनता के बीच गये और उपदेश और शिक्षा देने लगे और उन्हें नया संदेश सुनाया। वे अधोबिन्दु तक पहुँच गए और उन्होंने लोगों को सचेत किया कि सर्वनाश का समय समीप ही है। उन्होंने स्वर्ग के सुखों और नर्क की यातनाओं का स्पष्ट एवं रोमांचक चित्रण किया और उपदेश सुनने के लिए आये लोगों को यह चेतावनी भी दी कि सृष्टि का अन्त अब करीब ही है। उन्होंने कहा कि लोगों को मूर्तियां पूजना बंद कर देना चाहिए। उन्होंने लोगों से यह भी कहा कि वे उदार और दानी बनें तथा अन्य लोगों के प्रति दयालु और सहानुभूतिशील रहें। उन्होंने ईश्वर की एकता (तौहीद) पर जोर दिया जो इस्लाम धर्म की आधारशिला है।

ईश्वर (अल्लाह) का गुणगान करने, लोगों को बुराइयों के प्रति सचेत करने तथा अपने को अल्लाह (ईश्वर) के दूत और पैगम्बर (नबी) के रूप में प्रस्तुत

करने के कारण मुहम्मद के अनुयायी कुछ लोग हो गए। उनकी पत्नी खदीजा उनकी प्रथम शिष्या बनी। पत्नी की धर्म में निष्ठा और विश्वास का ही यह परिणाम था कि हजरत मुहम्मद ने पैगम्बर बनने के रास्ते में सहमते हुए क़दम उठाये। और उसके बाद अली, जैद (जो पहले गुलाम था) और उसके मित्र अबू बकर, उसमान, उमर, हमजा, वरका इब्न-नोफिल उनके शिष्य बन गए और उनके उपदेश को मानने लगे। पर अबू-सूफयान ने, जो कुरैश जनजाति की प्रभावशाली शाखा उमैय्यद के सदस्य और रईसों के प्रतिनिधि थे, अपने विचारों पर दृढ़ रहे। जिसे उन्होंने विधर्मिता समझा, वह ऐसा प्रतीत हुआ मानो अल-काबा के, जहाँ अनेकानेक देव-देवियों की मूर्तियाँ थीं और जो अखिल अरब तीर्थ-स्थान था, संरक्षक के रूप से कुरैश के सर्वाधिक आर्थिक हितों के विपरीत-सी प्रतीत हुई। खंडहर में जो आवाज सुनाई पड़ी उसकी प्रतिध्वनि समाज के सबसे "निचले स्तर के लोगों"—समाज से वहिष्कृत, असहाय और दासों के हृदयों में हुई (कुरान २६ : १११)।

ऐसा लगता है कि प्रारंभ में हजरत मुहम्मद ने शासक दलों के साथ भी अपने सम्बन्ध अच्छे रखे। मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों के सामने यही माँग रखी कि वे एक अल्लाह में विश्वास करें और उसकी इच्छा (इस्लाम) के समक्ष अपने सर झुका दें। इसी कारण उनका धर्म इस्लाम कहलाया। शायद उन्होंने बहुत प्रारंभ में निर्धन-कर भी लगाया ताकि उनके सम्प्रदाय के बहुत ही गरीब और जरूरतमंद लोगों को आर्थिक सहायता दी जाय पर बाद में इस निर्धन-कर ने मदीना में ही बहुत महत्व प्राप्त किया। हजरत मुहम्मद ने अपने स्नेहशील स्वभाव और शानदार व्यक्तित्व के कारण आगे बढ़ने में सफलता पाई।

पैगम्बर मुहम्मद के भगवान यानी अल्लाह (अल्लाह-अल-इलाह का संक्षिप्त रूप) मक्का के लोगों के लिए अपरिचित देवता नहीं थे। वास्तविकता यह है कि काबा के, जिसे अल्लाह का घर (बैत) कहा जाता है, प्रधान देवता अल्लाह ही थे। हजरत मुहम्मद के पिता "अब्दुल्ला" (शायद यह उनका वास्तविक नाम न हो) का मतलब अल्लाह (ईश्वर) का सेवक होता है।

कुरैश का विद्रोह और उसके कारण

बहुदेववाद स्वभावतः उदार और सहिष्णु होता है और एकदेववाद के विपरीत नये देवताओं को अपने धर्म में स्वीकार करने को तैयार रहता है। पर इस मामले में एकमात्र अल्लाह को ही सब कुछ मान बैठना मक्कावासियों को अच्छा न लगा। इसलिए हजरत मुहम्मद की सफलता कुरैश की आंखों में खटकी। मुहम्मद साहब द्वारा बतलाए गए नये धर्मवाद के कारण उन लोगों को अपने माता-पिता

के धर्म से हटना पड़ा और इस हद तक माता-पिता से भी अलग होना पड़ा क्योंकि हजरत मुहम्मद के अनुसार माता-पिता को नर्क ही मिलना था। यह बात सच है कि हजरत मुहम्मद अपने को केवल पैगम्बर-रूप में ही प्रस्तुत कर रहे थे पर उनके सिद्धान्त का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में प्रभाव पड़ रहा था। यह बात कुरैश वंश के लोगों को भी जल्द ही मालूम हो गई। हजरत मुहम्मद के सिद्धान्तों का तीर्थयात्रियों से होने वाली आमदनी पर भी असर पड़ता क्योंकि व्यापार के बाद सबसे ज्यादा आमदनी तीर्थयात्रियों से होती थी। पैगम्बर ने उदारता आदि के सम्बन्ध में जो उपदेश दिये उसका कुरैश वंश के लोगों द्वारा भी बहुत आदर दिया जाता था। पर उन्होंने धन के सम्बन्ध में जो यह नई बात कही कि उसके प्रबंधन में गरीबों का भी हक होना चाहिए वह कुरैश वंश वालों के लिए कड़वी घूंट थी। अरबी भाषा में 'करम' का अर्थ उदारता और आभिजात्य दोनों होता है। मुहम्मद ने जो उपदेश दिया उसके अनुसार रक्त का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्ध माना जाता है। "वास्तव में एक धर्म में विश्वास करने वाले भाई के अलावा और कुछ नहीं होते।" कुरैश वंश वालों ने समझा कि इससे धार्मिक एकता तो स्थापित होगी पर परिवार, वंश और जनजाति की एकता खतरे में पड़ जाएगी। उन लोगों ने यह भी समझा कि इस धर्म की सफलता से राजनीतिक सफलता पर आंच आएगी और खुद उनके अधिकारों में भी कमी होगी। और, इस प्रकार हजरत मुहम्मद के उपदेशों पर विरोध बढ़ता गया। जोसेफ हेल ने कहा है—"हजरत मुहम्मद के उपदेशों का विरोध मक्का के शासक परिवारों ने इस्लाम धर्म को लेकर नहीं किया बल्कि इसलिए किया कि इस धर्म के अनुसार सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तियाँ शुरू किये जाने की कोशिश की जा रही थी।" मुहम्मद साहब के उपदेशों में, पुराने देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा रहा था और इस प्रकार कुरैश के विश्वासों की जड़ों पर आघात किया जा रहा था। कुरैश वंश के लोग प्रतिक्रियावादी थे और अपने तत्कालीन धर्म और समाज में कोई परिवर्तन की बात सोच तक नहीं सकते थे। कुरैश में एक पुरोहित वर्ग था जिसने महसूस किया कि आगे बढ़ रहे इस्लाम धर्म से वे स्वयं बर्बाद और नष्ट हो जायेंगे। वे साधारण जनता की अज्ञानता का फायदा उठा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। उनके इस प्रयास में इस्लाम धर्म अवरोधक-सा था। इसलिए उन्होंने कुरैश जनता को मुहम्मद के विरोध में भड़काया। काबा के पूजा-गृह के प्रबंध का भार एक कुरैश परिवार पर सौंपा गया था। उससे उन लोगों को मुनाफा होता था। वे लोग डरे कि यदि मूर्तिपूजक जनता ने हजरत मुहम्मद के उपदेश सुने तो पुरोहित वर्ग के स्वार्थों पर आंच आएगी। इस बीच बहुत-से लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। फिर भी जनता के एक वर्ग, खासकर पुरोहित वर्ग के लोगों ने इस्लाम धर्म स्वी-

कार न किया। पहले हजरत मुहम्मद के उपदेशों का विरोध शान्तिपूर्ण रहा। पर ज्यों-ज्यों इस्लाम धर्म का प्रभाव बढ़ने लगा, मक्का के रईसों द्वारा हजरत मुहम्मद का विरोध गम्भीर रूप ग्रहण करने लगा। मक्का के शक्तिशाली पुरोहित वर्ग और कुछ अन्य लोग मूर्ति-पूजा के पक्ष में थे। वे हजरत मुहम्मद के सबसे बड़े विरोधी बन गए। वे लोग हजरत मुहम्मद का घृणापूर्ण विरोध करने लगे और उन लोगों का मौखिक विरोध दिन-प्रति-दिन बढ़ता गया। उन लोगों ने कहा कि हजरत मुहम्मद पर जिन्न तथा भूत-प्रेतों का प्रभाव है। उनमें से कुछ लोगों ने यह भी कहा कि वह झूठे जादूगर हैं साथ ही यह भी कि गलत भविष्य-वक्ता हैं। हजरत मुहम्मद का बहुत निचले स्तर पर विरोध करते हुए उन लोगों ने अनचाहे ही, स्वीकार किया कि उनमें कुछ असाधारण शक्ति है।

अबीसीनिया-प्रवास

जब हजरत मुहम्मद पर केवल मौखिक मजाक और व्यंग्य प्रभावकारी न हुआ तो कुरैशी हिंसात्मक प्रहार पर उतर आये। उस जनजाति के रईस लोगों, बनू उमैया, ने हजरत मुहम्मद पर सक्रिय प्रहार शुरू किया। उनके विरोधी केवल उनके उपदेशों को अस्वीकृत करने मात्र से सन्तुष्ट न रहे। उन्होंने नये धर्म के प्रयास से अपनी रोटी-रोजी पर खतरा महसूस किया। तब वे उन दासों और स्वतंत्र व्यक्तियों को, जिन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया था, कष्ट देने लगे। पैगम्बर खुद उस समय अपने वंश द्वारा सुरक्षित रखे जा रहे थे। वास्तव में हजरत मुहम्मद के मित्र अबू-बकर उनकी सुरक्षा के लिए अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग खर्च कर रहे थे। पर हजरत मुहम्मद के सभी अनुयायियों को अपमान से बचाने लायक साधन उनके पास न थे। पैगम्बर ने निश्चय कर लिया कि अपने अनुयायियों के एक हिस्से को उस स्थान पर ले जायँ जहाँ विरोधियों की पहुँच न हो। हजरत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को ईसाई धर्म मानने वाले अबीसीनिया में भेजने का निर्णय किया जहाँ उन पर किसी खतरे की गुंजाईश न थी। इस सम्बन्ध में कार्ल ब्रोकेलमैन ने कहा है—"चूंकि उस समय तक हजरत मुहम्मद अपने धर्म को ईसाई धर्म से बहुत भिन्न न मानते थे इसलिए अपने अनुयायियों को अबीसीनिया के नागुओं के पास भेज दिया। नागू ईसाई धर्म के वैसे राजनीतिक प्रतिनिधि थे जो इस्लाम धर्म के अनुयायियों की पहुँच के भीतर थे।"[2] ८२ या इससे कुछ अधिक परिवारों ने हजरत मुहम्मद की बात मान कर अबीसीनिया जाने का निर्णय किया (सन् ६१५ ई०)। यह अबीसीनिया जाने वाले प्रवासियों (**मुहाजरीन**) का प्रथम दल था जिन्हें अपने साथियों (**सहाबा**) के साथ इस्लाम धर्म का अभिजात वर्ग कहा जा सकता था। हजरत मुहम्मद के संरक्षक अबू-तालिब ने शौर्य के साथ भतीजे (हजरत मुहम्मद)

2. कार्ल ब्रोकेलमैन, हिस्ट्री ऑफ दी इस्लामिक पीपल, पृ० १७।

को अबीसीनिया न भेजने का निर्णय किया। ऐसा निर्णय उन्होंने इसलिए नहीं किया कि उन्हें इस्लाम धर्म में विश्वास था। उन्हें इस्लाम में विश्वास न था। उन्होंने ऐसा निर्णय इसलिए किया कि वे अपने वंश की आचरण संहिता से बँधे हुए थे। किसी को किसी धर्म में विश्वास करने के कारण वंश से निकाला न जा सकता था। अब आर्थिक बहिष्कार का ही रास्ता बच रहा था। इस कार्य में कुरैश जनज़ाति के अन्य वंशों ने अबू-तालिब को सहयोग दिया। पैगम्बर और उनके वंश को शहर के उस हिस्से से अलग-थलग कर दिया गया। साथ ही उन लोगों से व्यापारिक या वैवाहिक सम्बन्ध भी न किया जाने लगा। उन लोगों का बहिष्कार तीन वर्षों तक जारी रखा गया। सन् ६१९ में बहिष्कार खत्म हुआ। उस समय तक हजरत मुहम्मद की अभिजात वर्ग की पत्नी खदीजा और शौर्यपूर्ण चाचा अबू-तालिब की मृत्यु हो चुकी थी।

यद्यपि हजरत मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या बढ़ रही थी पर पैगम्बर के रूप में उनकी स्थिति दिनों-दिन मुश्किल होती जा रही थी। हजरत मुहम्मद के नये अनुयायियों में महत्त्वपूर्ण स्थान कुरैश जनजाति के उमर-इब्न-अल-खताब का था जो हजरत मुहम्मद के दूसरे पद-उत्तराधिकार और उनके श्वसुर भी बनने वाले थे। फिर भी हजरत मुहम्मद के कट्टर विरोधी उमैय्यद थे जिन्होंने कट्टरता से विरोध जारी रखा। फलतः हजरत मुहम्मद ने अपने धर्म-प्रचार के लिए नया क्षेत्र ढूंढ़ना आवश्यक समझा। इसके लिए एक उपजाऊ क्षेत्र तैफ़ चुना गया जो मक्का से पचहत्तर मील दक्षिण-पूर्व में पड़ता है। परन्तु यह काम, एक अरब कहावत के अनुसार, छिद्र से पानी चूते-चूते मुख्य भाग के नीचे पानी जमा होने जैसा था। यह क्षेत्र अमीर मक्कावासियों का प्रिय ग्रीष्म-निवास था। वहीं प्रशंसित देवी अल-लत का मकबरा था। तैफ की देवी ने पुराने देवताओं को सिंहासन से उतारना पसंद न किया, खासकर उस व्यक्ति के माध्यम से जिसके उपदेश तैफ ही नहीं मक्का के भी स्थापित स्वार्थों के विरुद्ध थे। तैफ में हजरत मुहम्मद के साथ कठोर व्यवहार किया गया। भीड़ ने उन पर पत्थर फेंके। उन्होंने बचने के लिए एक बागीचा चुना, जो दुर्भाग्य से, उनके एक विरोधी नेता का था। तब हजरत मुहम्मद ने उस स्थान में लौटने का निश्चय किया जहाँ से वे आये थे। इसके सिवा और कोई मुनासिब रास्ता न था। बहुत ही निराश होकर वे तैफ से मक्का लौट आये जहाँ उनका विरोध पहले ही किया जा रहा था।

मक्का लौट आने के बाद भी हजरत मुहम्मद को उत्साहहीन स्वागत मिला जिसके कारण उन्हें तैफ जाना पड़ा था। पर इस बार वार्षिक मेलों के अवसर पर हजरत मुहम्मद के उपदेशों को कुछ लोगों ने दिलचस्पी के साथ सुना और उनके धार्मिक प्रचार के लिए नई संभावनाएँ दीख पड़ीं। इस प्रकार के मेलों में न केवल मक्का के धार्मिक स्थानों में तीर्थ-यात्री आते थे बल्कि पास के रेगिस्तानी तथा बस्ती

खुद अपने विनाश और बर्बाद हो जाने का खतरा दीख पड़ा। इसलिए इस वर्ग के लोगों ने इस्लाम के आरम्भ से ही उसका जोरदार विरोध किया। पर मदीना में मक्का की तरह कोई पुरोहित या कुरैश जैसे धार्मिक रईस न थे। इसलिए मक्का के मुकाबले मदीना में इस्लाम की सफलता की कहीं ज्यादा गुंजाईश थी। यथरीब (मदीना) में दो जनजातियों औज और खजराज के बीच लगातार संघर्ष और बाद में गृहयुद्ध हो गया। इससे पूरे नगर की आबादी के बीच लोगों की सहानुभूति बँटी हुई थी। इन दो जनजातियों के बीच युद्ध में कभी एक जनजाति की विजय होती थी और कभी दूसरी जनजाति की। इससे नगर में लगातार अव्यवस्था और अशांति मची रहती। इस स्थिति में आपस में बराबर झगड़ते रहने वाली औज और खज-राज जनजातियों को ऐसे प्रबल व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो उनके बीच मध्यस्थ का काम कर सके और नगर में शांति लौटा सके। मक्का की राजनीतिक स्थिति और पैगम्बर-मुहम्मद के व्यक्तित्व के बारे में यथरीब के लोगों को अच्छी तरह पता था। अलावे; इन दोनों धार्मिक नगरों के लोगों के बीच कभी-कभी विवाह-संबंध होते थे। हजरत मुहम्मद की नसों में खजराज का खून बह रहा था क्योंकि उनके एक पूर्वज हाशिम का विवाह यसरीब (मदीना) की एक महिला से हुआ था। उस जनजाति के हितों को संरक्षण दिया गया। यहूदी उस समय यथरीब में रहा करते थे। उनलोगों को ऐसे पैगम्बर के आने की सूचना मिली जो उनके धर्म-ग्रन्थों का भी उत्साही समर्थक था। चूँकि मुहम्मद साहब यहूदी के धर्मग्रन्थों का समर्थक होने का दावा करते थे इसलिए यहूदी भी यथरीब में पैगम्बर का स्वागत करने को तैयार थे। इस प्रकार मुहम्मद के यथरीब में आने के बहुत पहले ही वहाँ उनके स्वागत के लिए जमीन तैयार हो रही थी।

अबू तालिब और खदीजा की मृत्यु हो जाने से हजरत मुहम्मद मक्का में निःसहाय हो गये थे। अबू तालिब पैगम्बर के बहुत बड़े सहायक और समर्थक थे। उनके जीवन-काल में कुरैश ने मुहम्मद साहब को अक्सर तरह-तरह की कठिनाइयों के बीच डाला, पर किसी ने हजरत मुहम्मद को मार डालने की धमकी देने का साहस न किया था। अबू-तालिब के एकाएक मर जाने से मक्कावासियों ने पैगम्बर पर अमानवीय अत्याचार करने का अवसर पाया। मक्कावासियों का यह अत्याचारी रुख भी हज़रत मुहम्मद द्वारा वह शहर छोड़ देने का कारण बना।

कुरैश के इस शत्रुतापूर्ण रुख ने पैगम्बर मुहम्मद को बाध्य किया कि वे अपने धर्म के प्रचार के लिए कोई और स्थान चुनें। उन्होंने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे यथरीब चले जायें। मुसलमान मक्का में अपनी सम्पत्ति बेचने लगे और छोटी-छोटी टुकड़ियों में मक्का छोड़ने लगे। जब कुरैशियों को इस बारे में संकेत मिले

तो वे बहुत क्रुद्ध हो गए और पैगम्बर मुहम्मद को मार डालने की योजना बनाई। इन्हें समय रहते इसकी चेतावनी मिल गई। वह मक्का में अबू-बकर और अली के साथ ईश्वर के आदेश का इन्तजार कर रहे थे। जब खतरा अन्तिम सीमा तक पहुँच गया और ईश्वर का आदेश आ गया तो उन्होंने यथरीब जाने के बारे में निर्णय किया।

बहुत गहराई के साथ सोचने के बाद यथरीब जाने का निर्णय किया गया। शाम के धुंधलके में वह अबू बकर के साथ धीरे से चल पड़े। पैगम्बर ने अपने बिछावन पर अली को लिटा दिया और थवर की गुफा में, जो मक्का से दूर नहीं है, शरण ली। पैगम्बर की हत्या का काम जिन पर सौंपा गया था, उन्होंने जब उनके बिछावन पर अली को देखा तो बहुत आश्चर्य में पड़ गए। वे पैगम्बर को ढूंढ़ने निकल पड़े पर इस काम में सफल न हुए। जब पैगम्बर को मालूम हुआ कि उनको ढूंढ़ने का प्रयास करीब-करीब खत्म हो गया है, तो वह अबू बकर के साथ मदीना रवाना हो गए। वे दोनों २ जुलाई, सन् ६२२ को मदीना पहुँच गए। तीन दिनों के बाद अली भी वहाँ पहुंचा।

इस प्रकार हिज़रा हजरत मुहम्मद के जीवन में एक निर्णायक मोड़ है। यहीं से इस्लाम का इतिहास शुरू होता है और अल्लाह (ईश्वर) के धर्म और मुहम्मद के समुदाय (उम्माह) के विकास में यह एक महत्वपूर्ण चरण है। यहाँ मुहम्मद साहब की निराशा का अंत और स्वात्म-अनुभव का आरंभ होता है। मदीना का इस्लाम समूचे विश्व का इस्लाम हो गया और मदीना का समुदाय अरब राष्ट्र का केन्द्र बना और वहाँ की सरकार मुस्लिम साम्राज्य का आदि-रूप।

अपमान, प्रताड़णा और पैगम्बर मुहम्मद की भविष्यवाणी की स्पष्ट विफलता के वर्ष समाप्त और सफलता के वर्ष आरम्भ हुए। इस्लाम के पैगम्बर मक्का में अपने आदमियों द्वारा उपेक्षित और अपमानित हुए जबकि मदीना में न केवल उनके साथ सम्मानित अतिथि जैसा स्वागत हुआ बल्कि वे वहाँ के गणराज्य के राष्ट्रपति बनाये गए। मदीना में हजरत मुहम्मद के जाने के पहले इस्लाम मक्का के सताये जा रहे अल्पसंख्यकों का धर्म था। तेरह वर्षों के लम्बे समय में हजरत मुहम्मद ने शांतिपूर्वक उपदेश देकर बुतपरस्तों (मूर्ति-पूजकों) को अपने धर्म में सम्मिलित करने की कोशिश की। इस अवधि में मक्का के एक सौ परिवारों यानी करीब तीन सौ व्यक्तियों ने उनका धर्म स्वीकार किया। हिजरा या मदीना में प्रवास के आरंभ से हजरत मुहम्मद की शक्ति और पद ऊँचा होता गया और इस्लाम धर्म का प्रसार क्रमशः बढ़ता गया। यहाँ वे गुमराह लोगों के बीच अपने धर्म का प्रचार शांतिपूर्वक कर सके। लोग धीरे-धीरे इस्लाम धर्म स्वीकार करने लगे और उन्होंने इस्लाम के प्रसार में मदद

भी की। हजरत मुहम्मद अभी तक धार्मिक उपदेष्टा थे, पर अब उन्होंने राजनीतिज्ञ और राजनेता की भूमिका भी अच्छी तरह निभानी शुरू की।

हजरत मुहम्मद मदीना में

मदीना में हजरत मुहम्मद के कामों में परिवर्त्तन आया। वहाँ उनका वास्तविक कार्य और व्यावहारिक राजनीति लोगों के समक्ष आई। अब हजरत मुहम्मद के पैगम्बर के रूप पर उनके भीतर का राजनीतिज्ञ रूप हावी हो गया। मक्का में वह एक मामूली आदमी थे पर मदीना में बहुत कुछ थे। वहाँ वह नव-गठित गणराज्य के प्रशासकीय प्रधान हो गए और इस प्रकार मदीना में वह केवल पैगम्बर नहीं बल्कि एक राजा भी थे। मदीनावालों ने पैगम्बर और उनके साथ आए मक्का के उनके अनुयायियों का स्वागत किया। इन अनुयायियों ने अपने धार्मिक विश्वास के लिए अपना घर-द्वार छोड़ दिया था। मदीनावालों ने पैगम्बर के साथ उनके इन अनुयायियों का भी बड़े उत्साह से स्वागत किया। नगर का पुराना नाम बदल कर **'मदी नत अन-नबी'** (पैगम्बर का नगर), संक्षेप में मदीना कर दिया गया। उस नगर का यही नाम अब तक है। मदीना वालों ने पैगम्बर का धर्म इस्लाम अपना लिया। ईंटों और मिट्टी की एक मस्जिद बनाई गई जिसकी छत खजूर के पत्तों की थी। इस मस्जिद को खड़ा करने में स्वयं हजरत मोहम्मद ने भी अपने हाथ लगाए। उपासना के इस साधारण से मकान में हजरत मुहम्मद ने अपना सरल उप-देश दिया। उन्होंने न केवल अल्लाह (ईश्वर) के यश और उदारता के बारे में बतलाया, पर उसके साथ ही अपने अनुयायियों के मन में अत्यन्त बड़े नैतिक सिद्धांत भी भर दिये। साथ ही उन्होंने सबके साथ भाइयों जैसा व्यवहार, बच्चों, विधवाओं और अनाथों के प्रति दया और पशुओं के प्रति भलमानस का व्यवहार करने पर जोर दिया।

"पवित्र युद्ध-विराम" का फायदा उठाते हुए मदीना के मुसलमान हजरत मुहम्मद के नेतृत्व में एकजुट हो गए। मदीना में मुहम्मद साहब ने प्रशासन के एक महान संगठनकर्ता की भूमिका निबाही। उन्हें पुराने रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और परम्परा को तोड़ना था। सच पूछा जाय तो मदीना में अपने कार्यों मे हजरत मुहम्मद ने समूची दुनिया को दिखला दिया कि वे केवल एक स्वप्नद्रष्टा ही नहीं पर प्रथम श्रेणी के संगठन-कर्ता, प्रशासक एवं राजा भी थे। मदीना में उन्होंने अव्यवस्था में एक सुव्यवस्था कायम की।

मदीना में पैगम्बर मुहम्मद ने आध्यात्मिक विषयों के मुकाबले सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर अधिक लिखा। उन्होंने मक्का में संक्षिप्त, स्पष्ट,

अध्यात्मोन्मुख रहस्योद्घाटन किये थे पर मदीना में उन्होंने युद्ध और लूट के माल, जुआ खेलने, करों, भोजन और पेय, विवाह और तलाक जैसे विषयों के सम्बन्ध में ठोस, शब्दबाहुल्यपूर्ण सुरों का उद्घाटन किया। मदीना के समुदाय ने भावी अरब राष्ट्र के केन्द्र का काम किया और वहाँ की सरकार मुस्लिम साम्राज्य के आरंभिक रूप जैसी थी। मदीना का इस्लाम विश्व-इस्लाम के बीज जैसा था। जिस वातावरण में इस्लाम धर्म ने विकास पाया वह उसके जन्म के वातावरण से सर्वथा भिन्न था।

मदीना का समाज वाणिज्यिक नहीं बल्कि खेतिहर था। उसकी आबादी मिली-जुली थी। उसमें दो शक्तिशाली जनजातियाँ थीं जो एक दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रही थीं। उनके अलावा तीन छोटी जनजातियाँ थीं जो यहूदी धर्म मानती थीं। जहाँ तक राजनीतिक स्थिति का सम्बन्ध है, दोनों के वातावरण भिन्न थे। मक्का, कुरैश जनजाति के नेतृत्व में एक संगठित प्राधिकार था जबकि मदीना ऐसी किसी जनजाति के नेतृत्व में न था। यह बात पैगम्बर के पक्ष में थी। इसके अलावा जिस रोग से वे दोनों नगर पीड़ित थे वह एक जैसा था। मदीना का सम्प्रदाय संक्रमण काल से गुजर रहा था। वहाँ के लोग घुमन्तू स्थिति से नगरवासी स्थिति की ओर जा रहे थे। इस कारण आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक ढांचे में भी गड़बड़ी थी। मदीना में नये आये लोगों के लिए प्रथम दो वर्ष खास तौर पर बहुत कठिनाईपूर्ण थे। उनके सामने भोजन, आवास आदि प्राप्त करने और नये वातावरण से समंजित होने की समस्याएँ थीं। इसका तात्कालिक समाधान यह था कि मदीना में नया धर्म (इस्लाम) अपनाने वाले लोग हर प्रवासी परिवार को पूरा आतिथ्य दें। इस तरह नया धर्म, जिसका घोषित सिद्धान्त सबके साथ भाई-चारा कायम करना था, व्यावहारिक बनने की प्रक्रिया में थे। इसके साथ ही मदीना की आर्थिक स्थिति क्रमशः बिगड़ती जा रही थी। राजस्व यानी आमदनी के नये स्रोत खोज निकालना आवश्यक था। सीरिया से लौटने वाले मक्का के ऊँटों के कारवाँ, जिन पर नकद धन और सामान लदा होता था, आमदनी का एक सरल उपाय था। उसके साथ उन ऊँटों के कारवाँ को लूट कर मक्का की आर्थिक स्थिति को भी क्षतिग्रस्त किया जा सकता था। पर फिर भी मदीना ने जिस राजनीतिक एकता का स्वाद लिया था और जहाँ मसीही प्रत्याशाओं वाला एक सम्प्रदाय था, उस कारण ही मदीना वालों ने एक ऐसे पैगम्बर को स्वीकार किया जिसके अधिकार धार्मिकता से ओत-प्रोत हों।

सर्वप्रथम मदीना में पैगम्बर ने जनजातीय भावना और भेद-भाव समाप्त किया। उस समय, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मदीना में दो प्रमुख जनजातियों के बीच बराबर प्रतिद्वन्द्विता का झगड़ा चलता आ रहा था। अरबी पैगम्बर ने सभी

जनजातीय भेद-भाव समाप्त कर दिये और मदीना के लोगों को एक नयी जाति 'अंसार' (मददगार या सहायक) का नाम दिया। जो लोग मक्का से उनके साथ मदीना आये थे वे 'मुहाजरीन' (निष्कासित या प्रवासी) कहलाये। इन लोगों का अपना विशिष्ट दल बन गया जो इस्लाम के अगले दस्ते का काम कर रहे थे। इनमें से कुछ हजरत मुहम्मद और मुहम्मदवाद के बीच जीवित सम्पर्क-सूत्र जैसे थे। मदीना के जिन लोगों ने नया (इस्लाम) धर्म अपनाया उनको भी मान्यता दी गई। वे 'अंसार' (मददगार) कहलाये। ये दोनों ही दल 'सहाबा' (सहयोगी) कहलाये जाने लगे। यही नये सम्प्रदाय-राज्य के भावी श्रेष्ठ एवं अभिजात वर्ग के लोग हुए। फिर भी 'अंसार' लोगों ने हजरत मुहम्मद के सभी कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लिया और अनेक अवसरों पर इस्लाम के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारी वित्तीय सहायता भी दी। उन्होंने शरणार्थियों (मक्का से हजरत मुहम्मद के साथ आये लोगों) को रहने के लिए आवास और सम्पत्ति दी। 'अंसार' और 'मुहाजरीन' के बीच भ्रातृभाव इतना प्रगाढ़ हुआ कि उनमें से एक की मृत्यु हो जाने पर दूसरे को उसकी सम्पत्ति की विरासत मिलती। 'अंसार' लोगों ने इस्लाम की सफलता में बहुत कुछ ज्यादा योगदान किया। उनकी सेवाओं को देखते हुए पैगम्बर ने अपने प्रमुख सहयोगियों को सलाह दी कि वे अंसारों की आवश्यकताओं, दावों और अधिकारों का विशेष ख्याल रखें। अंसारों और मुहाजरीन (प्रवासियों) के बीच निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पैगम्बर ने उन दोनों के बीच एक भ्रातृत्व स्थापित किया। उन्होंने यह सचाई पूरी तरह समझ ली कि इसलाम साम्राज्य की ठोस नींव के लिए सब लोगों की सद्भावना और सहयोग अत्यावश्यक है। जहाँ भिन्न-भिन्न जनजातियाँ और वंश हों वहाँ दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता भी बहुत जरूरी है। इसके लिए उनका अटल सिद्धान्त था कि—"जिओ और दूसरों को भी जीने दो"। उन्होंने उचित आधार पर राष्ट्रमंडल संगठित करना चाहा। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए उन्होंने एक शासन-पत्र निर्गत किया जिसे मदीना का संविधान कहते हैं। इससे लोगों के बीच खूनी लड़ाइयाँ और अव्यवस्था खत्म हो गईं। जनता के सभी वर्गों विशेष रूप से यहूदियों को समान अधिकार दिये गये। यहूदी बड़ी संख्या में मदीना और आस-पास के क्षेत्रों में रहते थे और अपनी ओर से भी अपने को नगर की रक्षा में मुसलमानों को सहायता देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध मानते थे।

हजरत मुहम्मद के शासन-पत्र की मुख्य बातें ये थीं —

(१) शासन-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले सभी सम्प्रदाय एक राष्ट्र के रूप में संगठित होंगे।

(२) यदि उन सम्प्रदायों में किसी पर बाहरी हमला हुआ तो सब मिल कर अपनी मिली-जुली ताकत से हमलावर के खिलाफ उस सम्प्रदाय की सहायता करेंगे।

(३) सभी सम्प्रदायों में कोई भी कुरैशियों के साथ गुप्त समझौता न करेगा और न ही किसी कुरैशी को अपने यहां शरण देगा। शासन-पत्र पर दस्तखत करने वाला कोई भी सम्प्रदाय मदीनावासियों के विरुद्ध कुरैशियों को उनके षड्यंत्र में सहयोग न देगा।

(४) इस गणराज्य के मुसलमान, यहूदी और अन्य सम्प्रदाय अलग-अलग धर्म रखने को स्वतंत्र होंगे और अपने-अपने धार्मिक समारोह कर सकेंगे। इसमें कोई भी व्यक्ति हस्तक्षेप न कर सकेगा।

(५) किसी गैर-मुस्लिम के हल्के किस्म के व्यक्तिगत अपराध के लिए उसी अनुपात में सजा मिलेगी और उस कारण सामान्य तौर पर उस सम्प्रदाय को सजा न दी जाएगी जिसका वह सदस्य होगा।

(६) उत्पीड़ित व्यक्ति की रक्षा की जाएगी।

(७) अब से मदीना में रक्त-पात, हत्या और उग्रता हराम (जघन्य) मानी जाएगी।

(८) अल्लाह के पैगम्बर मुहम्मद इस गणराज्य के अध्यक्ष होंगे जहाँ राज्य में हुए किसी अपराध के सम्बन्ध में सुनवाई हो सकेगी और इसके लिए वह सबसे बड़ा न्यायालय होगा।

इस शासन-पत्र का यह महत्त्व है कि इसे विश्व में लिखा गया प्रथम संविधान माना जा सकता है। इस्लाम के पैगम्बर के पहले अनेक शासक हुए पर किसी ने अपनी जनता को ऐसा लिखित संविधान न दिया। इस शासन-पत्र को प्रारंभिक इस्लाम का महाधिकार-पत्र (मैग्नाकार्टा) भी कहा जा सकता है। इसमें नगरीय समानता, उपासना की स्वतंत्रता और धार्मिक सहिष्णुता के महान सिद्धान्त दिये गए हैं। संसार के प्रथम शासक हजरत मुहम्मद ही हुए जिन्होंने देश के शासन में वहाँ के नागरिकों के सहयोग और सद्भावना का महत्त्व समझा। इस महाधिकार-पत्र ने सिद्ध कर दिया कि हजरत मुहम्मद सिर्फ धार्मिक उपदेशक न थे पर सम्पूर्ण विश्व में सबसे बड़े राजनीतिज्ञ थे। विलियम म्यूर ने कहा है —"इससे सिद्ध होता है कि उस व्यक्ति का कितना महत्त्व था। वह न केवल अपने युग बल्कि सभी युगों में हुए महान व्यक्तियों में अग्रणी था।" इस शासन-पत्र की धाराओं द्वारा हजरत मुहम्मद ने न केवल कुरैशियों के विरुद्ध अपने हाथ मजबूत किये बल्कि मदीना में उनकी स्थिति सर्वोच्च हो गई। मदीना में उनके आने के पहले जितना कठिन मोल-तोल हुआ उससे अंत में मदीना का संविधान तैयार किया गया और नये राष्ट्रमंडल

जिसे उम्मा कहा जाता है, की नींव पड़ी। इसमें वे सभी लोग शामिल थे जिन्होंने पैगम्बर मुहम्मद के महान कार्य में सहयोग का आधार स्वीकार किया। यह समझौता मदीना के सभी दलों और हजरत मुहम्मद के सभी कुरैशियों के साथ हुआ। इसमें सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह थी—नये राष्ट्रमंडल में शामिल लोगों को नया धर्म भी स्वीकार न करना था। उन सबको केवल हजरत मुहम्मद का विशेष प्राधिकार स्वीकार करना था। वे केवल मध्यस्थों का प्राधिकार स्वीकार करने के आदी थे जैसी कि अरब परम्पराओं में व्यवस्था थी। पर हजरत मुहम्मद को केवल छोटे-मोटे झगड़ों में निर्णय न देना था बल्कि उनके समक्ष और भी जिम्मेवारियाँ थीं। इसलिए उन्होंने और प्राधिकार की माँग की जो उन्हें दिया गया। पर उम्मा के सबसे धनिक लोग यहूदी थे। उन्हें इकरारनामा स्वीकार करने के लिए तैयार किया गया जिसे उन्होंने संभवतः पूरी रजामंदी के साथ स्वीकार न किया। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी नये उम्मा में सतत विकास की व्यवस्था थी। इसमें वैसा कोई भी दल शामिल हो सकता था जो उसमें सहयोग का आधार और हजरत मुहम्मद का प्राधिकार स्वीकार करता था। यद्यपि "संविधान" में किसी व्यापारिक करारनामे का उल्लेख न था, संभवतः इसलिए कि यह बात मान ली गई थी कि करारनामे पर दस्तखत करने वाले लोग इसके अधीन कोई भी व्यापारिक समझौता कर सकते थे। करारनामे में यह व्यवस्था की गई थी कि बाहर के लोगों के साथ भी संधियाँ या समझौते किये जा सकते थे।[3] इस प्रकार मदीना में इस्लामी भ्रातृत्व के संगठन के कठिन और महान कार्य में पैगम्बर मुहम्मद ने अपनी राजनीतिज्ञता दिखलाई। उनके पास अपना कोई साधन न था। उनके पास न तो धन था न फौज और न ही जमीन। फिर भी वे इसके लिए कृतसंकल्प थे कि मदीना में दक्षतापूर्ण प्रशासन कायम हो सके। उनके पास एक महान चीज यह थी कि ईश्वर ने उन्हें साहस दिया था। मदीना में हजरत मुहम्मद ने जो काम किया वह मनुष्य जाति के इतिहास में अद्वितीय था। इसमें उनका सहायक केवल अल्लाह (ईश्वर) था और उसके दूत के रूप में पैगम्बर मुहम्मद ने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि वे अपने लोगों को घोर अन्धकार और अज्ञानता से मुक्ति दें। अपने परिश्रम से पैगम्बर ने सभी जनजातियों को एकजुट किया और वे उन सबको एक ही आश्रय-स्थल पर ले आये। यह वास्तव में मनुष्य जाति को संगठित करने का अद्वितीय कार्य था। मदीना में रहने की अवधि में हजरत मुहम्मद ने अरबीकरण की स्थापना और इस्लाम का राष्ट्रीयकरण पूरा किया। इस बीच धार्मिक कार्यकलाप को इस्लामी रूप देने का आन्दोलन भी चल रहा था जो यहूदीवाद से प्रभावित था। नये पैगम्बर (मुहम्मद)

३. एम० मोंटगुमरी कृत 'मुहम्मद ऐट मदीना', आक्सफोर्ड, १९५६ पृ० २२-५ में इस घोषणा-पत्र का अनुवाद देखें।

ने यहूदी और ईसाई दोनों ही धर्मों से हट कर नये धर्म (इस्लाम) की स्थापना की। सब्बाथ का स्थान शुक्रवार ने लिया। बिगुलों और घंटों की आवाज का स्थान अजान (मीनार पर से आह्वान) ने लिया। रमजान में ही उपवास का महीना नियत किया गया। किबला (परमात्मा की पूजा के समय दिया जाने वाला निदेश) जेरूसलेम से मक्का ले आया गया, कावा की तीर्थ-यात्रा प्राधिकृत की गई और इस्लाम-पूर्व की पूजा-वस्तु (काला पत्थर) चूमना मंजूर किया गया। इस प्रकार तीर्थ-यात्रा के सम्बन्ध में बहुदेववादी अरब की समृद्धतम विरासत को इस्लाम ने स्वीकार किया और यहूदी धर्म और ईसाई धर्म से अपना अस्तित्व अलग कर लिया।

पैगम्बर मुहम्मद अब केवल धार्मिक उपदेशक न रहे बल्कि उन लोगों के, जिन्होंने उन्हें तथा उनके अनुयायियों को अपने नगर की सुरक्षा का भार सौंपा था, प्रमुख दंडाधिकारी हो गए। उनका कर्तव्य था कि वे मदीना में देशद्रोह और विश्वासघात पर कड़ी निगाह रखें ताकि उनको कुचला जा सके।

बद्र की लड़ाई (सन् ६२४ का मध्य मार्च)

जबकि पैगम्बर मदीना राज्य संगठित करने के काम में संलग्न थे तो अरब के एक क्षेत्र में युद्ध का डंका बज उठा। पैगम्बर और कुरैशियों के बीच लड़ाई के कई कारण थे। इन लड़ाइयों में बद्र की लड़ाई सर्वप्रमुख और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थी।

लड़ाई के कारण

हजरत मुहम्मद अब मदीना के सर्वोच्च शासक थे। मदीना-प्रवास के प्रथम छः महीनों तक उनके काम में किसी ने बाधा न डाली। पर मुहम्मद साहब की बढ़ती हुई शक्ति से कुरैश ईर्ष्या से जल उठे और उनका शत्रु भाव और भी बढ़ गया। वे अब पैगम्बर मुहम्मद और उनके अनुयायियों को नुकसान पहुँचाने के लिए कृतसंकल्प थे। उन्हें मदीनावासियों पर भी क्रोध हुआ जिन्होंने अपने नगर में पैगम्बर और उनके अनुयायियों को शरण दिया था। उन्होंने उन्हें विद्रोही घोषित किया और हजरत मुहम्मद के साथ उन्हें भी दण्ड देने का संकल्प किया। वे इसके लिए अवसर ढूँढ़ रहे थे जब मदीना के ही एक क्षेत्र से उन लोगों को ऐसा अवसर मिला। यद्यपि मदीना के लोगों ने हजरत मुहम्मद का धर्म-पंथ स्वीकार कर लिया था पर फिर भी वहाँ के बहुत सारे लोगों को हजरत मुहम्मद के बारे में संदेह और ईर्ष्या-भाव था। वे हजरत मुहम्मद की प्रधानता को सह न सके और अपने राज्य मदीना से उन्हें बाहर कर देने के लिए परोक्ष रूप से काम कर रहे थे। ऐसे लोगों ने अब्दुल्ला इब्न उबय्या के, जो मदीना का शासक बनना चाहते थे, पर मुहम्मद साहब के वहाँ

पहुँच जाने से उनकी इस आशा पर तुषारपात हो गया था, नेतृत्व में कुरैशियों के साथ मिल कर पैगम्बर को हटाने का षड्यंत्र किया। मदीना के असंतुष्ट मुसलमानों का सहयोग पा कर पैगम्बर के शत्रुओं की शक्ति बढ़ गई। यहूदी भी, गुप्त रूप से, कुरैश के साथ मिलकर षड्यंत्र कर रहे थे ताकि पैगम्बर की बढ़ती शक्ति क्षीण हो जाये। इसके अतिरिक्त कुरैश मदीना की बाहरी सीमा पर लूट-पाट करते थे। हजरत मुहम्मद ने अब्दुल्ला इब्न जहश के अधीन ६ व्यक्तियों की टुकड़ी भेजी ताकि वे लोग शत्रुओं की गति-विधि पर नजर रख सकें। यह टुकड़ी एकाएक मक्का के निकट नखला में कुरैश के कारवाँ पर टूट पड़ी और एक मुठभेड़ में कुरैश नेता अम्र-बिन-हजरामी मारे गये। नखला की घटना से पैगम्बर और कुरैश के बीच शत्रुता और भी बढ़ गई। इसी अवसर पर एक अफवाह यह भी फैली कि अबू-सूफयान का कारवाँ जब सीरिया से लौट रहा था तो उस पर मुसलमानों ने हमला किया। इस पर अबू जहल के नेतृत्व में कुरैश ने एक बड़ी फौज मदीना पर हमले के लिए भेजी। जब पैगम्बर को यह मालूम हुआ तो उन्होंने अपनी युद्ध-परिषद् की बैठक बुलाई जिसमें निर्णय लिया गया कि सीरिया से घर वापस आते हुए अबू-सूफयान के ऊँटों के कारवाँ पर हमला किया जाय। इस प्रकार कुरैशियों और हजरत मुहम्मद के बीच युद्ध अपरिहार्य हो गया। कारवाँ पर हमला करना मक्का के जीवन-स्रोत पर हमला करने के बराबर था। यह हमला रमजान (मध्य-मार्च ६२४) के ही एक दिन "पवित्र युद्ध-विराम" के दरम्यान हुआ। इस सम्बन्ध में इतिहासज्ञ प्रो० हिट्टी कहते हैं—"यदि ईसा-मसीह **सब्बाथ** के दिन अपने अनुयायियों के आचरण को इस आधार पर जायज ठहराते हैं कि **सब्बाथ** पुरुषों के लिए है तो उसी आधार पर हजरत मुहम्मद "पवित्र युद्ध-विराम" भंग किये जाने को उचित क्यों नहीं कह सकते ?"[४]

यह मुठभेड़ मक्का की फौजों और मदीनावासियों, जिनमें अधिकांश प्रवासी थे, के बीच, रमजान में सन् ६२४ को हुई। इब्न हिशाम के अनुसार हजरत मुहम्मद सिर्फ ३१४ पुरुषों को युद्ध के लिए उतार सके। कारवाँ के नेता और उमैय्यद के प्रधान अबू सूफयान को मदीनावासियों के इस हमले की महक मिल गई और उसने मक्का से और फौजें बुलाई। मक्का से नई फौज आ जाने पर अबू-सूफयान के पास लड़ने के लिए नौ सौ पुरुषों की फौज हो गई। उन लोगों के साथ **गायिकाएँ** भी थीं जो लड़ाकुओं का उत्साह बढ़ाने के लिए गा रहीं थीं। दोनों पक्षों के सरदारों के बीच आपस में सिर्फ एक चुनौती का आदान-प्रदान हुआ। अपनी

४. **फिलिप के० हिट्टी, "मेकर्स आव अरब हिस्ट्री", मैकमिलन (लंदन), मेलबोर्न, (टोरंटो), १९६८, पृ० १४।**

विजय में विश्वास के कारण कुरैश बिना किसी योजना और किसी अनुशासन के लड़े। उन पर हमला करने वाले मदीनावासियों को उनके नेता ने संगठित किया और उन्हें एक निश्चित पद्धति से लड़ने का आदेश दिया। मदीनावासी अपने अस्तित्व और अल्लाह के लिए लड़ रहे थे। उनके मन में लड़ाई जीतने का संकल्प था। दुश्मन यानी अबू सूफयान के नेतृत्व में फौजें अपने लूट के माल की हिफाज़त के लिए लड़ रही थीं, फलतः उखाड़ फेंकी गईं। उनमें सत्तर व्यक्तियों की मृत्यु हुई और सत्तर को युद्ध-बन्दी बनाया गया। मदीनावासियों में केवल अस्सी "शहीद" हुए। फिर भी, जैसा कि उस समय होता था, फौज के प्रधानों के बीच अकेले लड़ाई हुई, और उसके बाद दोनों फौजों के बीच मुठभेड़ हुई। मुसलमानों को आदेश था कि वे आपस में पूरे सहयोग के साथ लड़ें, पहले तीरों से और बाद में तलवारों से लड़ें। कुरैश लड़ाई में जीतने के लिए इतने आश्वस्त थे कि वे बिना किसी योजना और अनुशासन के लड़े। जबकि वे अपने लूट के लिए लड़े, मदीनावासी अपने अस्तित्व और अल्लाह के लिए लड़े। कुरैशियों की भयानक हार हुई। मुसलमानों के चौदह आदमी मारे गए। ये अल्लाह के पुण्य प्रयोजन के लिए लड़ते हुए शहीद हुए। उमर-इब्न-अल-खताब तथा अन्य युद्धलिप्त व्यक्तियों की सलाह के विपरीत, रक्षा-धन स्वीकार किया गया। रक्तपात के मुकाबले यह अच्छा था। इस सम्बन्ध में कोई संदेह न था। अल्लाह की मर्जी से असाधारण साहस का काम कर दिखाया गया। कुरान (९ : ९—१२, १७) में उन देवदूतों की ठीक-ठीक संख्या एक हजार दी गई है जिन लोगों ने स्वयं भी इस लड़ाई में हिस्सा लिया। एकदेववाद और बहुदेववाद के बीच पहले संघर्ष में एक-देववाद की विजय हुई। इसका मतलब यह हुआ कि नये धर्म को अल्लाह की मंजूरी मिल गई थी। कुरान में बद्र की लड़ाई का विशेष रूप से उल्लेख है (कुरान ३, ११९)। यह लड़ाई मुसलमानों की भावी विजय-यात्राओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी। लड़ाई के माल में ईश्वर और उनके संदेश-वाहक को पाँचवाँ हिस्सा मिला। यह भावी विजयों के लिए पूर्वोदाहरण-सा हो गया। इस प्रकार बद्र की लड़ाई में मक्कावासी हार गए, उनके कई युद्धबन्दी मदीना-वासियों (मुसलमानों) के हाथों में चले गए। उन लोगों के साथ, उनकी कैद में बहुत दयालुता के साथ व्यवहार किया गया। विश्व के इतिहास में युद्धबन्दियों के साथ, मुसलमानों का उदार व्यवहार अपूर्व और अद्वितीय है।

लड़ाई के परिणाम और प्रभाव

बद्र की लड़ाई इस्लाम के इतिहास में सबसे ज्यादा निर्णायक घटना है। इस युद्ध के पश्चात् इस्लाम की नियति बदल गई। यदि इस लड़ाई में मुसलमानों की हार होती तो इस्लाम आज पृथ्वी के इतिहास में निश्चित न हो जाता।

इतिहासकार आर० ए० निकलसन ने कहा है—"एक दौड़ की भाँति बद्र की लड़ाई पूरे इतिहास में सबसे बड़ी एवं सर्वाधिक चिर-स्मरणीय लड़ाई है।" बद्र की लड़ाई वास्तव में प्रकाश और अंधकार तथा सत्य और असत्य की शक्तियों की लड़ाई थी। बद्र की विजय, जिसमें मुसलमानों में, जिन्होंने अपने से अधिक शक्तिमान शत्रु पर विजय पाई, नई आशा का संचार हुआ और उससे हजरत मुहम्मद की इहलौकिक शक्ति की नींव पड़ी। इस्लाम ने अपनी पहली और निर्णायक फौजी विजय पाई। बद्र की विजय को नये धर्म-इस्लाम के लिए ईश्वरीय स्वीकृति के रूप में लिया गया। इस्लाम ने शत्रु से हुई पहली फौजी मुठभेड़ में अनुशासन की भावना और मृत्यु के तिरस्कार की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखलाई जो उसकी बाद की और बद्र से अधिक बड़ी लड़ाइयों में विजय में सहायक बनी।

इस लड़ाई में कुरैश कुचल दिये गए और उन्हें बुरी तरह अपमानित होना पड़ा। दूसरी ओर मदीना के बाहर भी हजरत मुहम्मद और इस्लाम के झंडे मजबूती से गाड़ दिये गए। ब्रिटानिया विश्वकोष में कहा गया है:—"बद्र की लड़ाई न केवल मुसलमानों के लिए सर्वाधिक स्मरणीय लड़ाई है बल्कि उसका ऐतिहासिक महत्व भी है। इससे हजरत मुहम्मद की स्थिति में बहुत ज्यादा इजाफा हुआ।"

इस लड़ाई से न केवल यहूदियों पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ा बल्कि पड़ोस की बद्दू जनजातियों को भी अरब की अपराजेय शक्ति अच्छी तरह महसूस करनी पड़ी। उस समय तक यहूदी लोग मुसलमानों को कोई महत्त्व न देते थे पर अब उन्हें भी मुसलमानों की शक्ति कबूल करनी पड़ी। इस लड़ाई के बाद से किसी को भी मुहम्मद साहब से आँखें मिलाने का साहस न रहा। बद्र की लड़ाई से मुसलमानों ने मदीना में अपनी स्थिति सुदृढ़ की जिससे वे वहाँ की संकोचहीन जनता से निर्भयता के साथ बर्ताव करने में समर्थ हो सके। बद्र की लड़ाई के सम्बन्ध में इतिहासकार कार्ल बोकेलमैन ने लिखा है—"इस पहली लड़ाई की विलक्षण नैतिक सफलता हुई। मक्का के करीब-करीब सभी परिवारों में हरेक का या तो कोई सदस्य लड़ाई में मारा गया या कोई गिरफतार किया गया जिसे रक्षा-धन देकर छुड़ाना पड़ा। इससे मदीना में पैगम्बर का प्रभाव अद्भुत रूप से बढ़ा और वे अपने सब विरोधियों से निबट सके और पहले जिनके अन्याय को उन्हें चुपचाप सहना पड़ रहा था उनके खिलाफ हजरत मुहम्मद शक्तिशाली कदम उठा सके। मदीना के वे लोग, जो उस समय तक अनीश्वरवादी थे, इस्लाम धर्म कबूल करने को बाध्य हुए। उनमें से बहुतों ने अपनी स्थिति से बाध्य होकर और अपने भीतरी विरोध को दबा कर इस्लाम धर्म कबूल किया। उस "संदेहशीलों" के

बारे में पैगम्बर को बराबर चिन्ता बनी रही।"[५] कार्ल ब्रोकेलमैन ने इस लड़ाई के महत्वपूर्ण प्रभावों और पैगम्बर की बेहतर स्थिति के बारे में कहा है—"यहूदियों की हालत तो और भी खराब थी। सोनारों के कानुका जनजाति ने हजरत मुहम्मद की बढ़ती हुई शक्ति को सबसे पहले महसूस किया। बद्र की लड़ाई खत्म हुए एक महीना भी नहीं बीता था कि हजरत मुहम्मद ने अपने योद्धाओं को बुलाकर सोनारों की जनजाति के खिलाफ कार्रवाई करने पर विचार किया। इसका प्रत्यक्ष कारण यह था कि उन लोगों ने एक मुसलमान की, एक यहूदी को मारने के दण्डस्वरूप, हत्या कर दी थी। हजरत मुहम्मद के आदेश-स्वरूप उन योद्धाओं ने कानुका जनजाति के लोगों को उनके निवास-स्थान पर कई सप्ताहों तक घेरा डाल कर उन्हें आत्म-समर्पण करने को बाध्य किया। खजराज जनजाति के प्रधान द्वारा हस्तक्षेप किये जाने पर हजरत मुहम्मद ने उन लोगों को पहले दी गई मौत की सजा को देश-निकाला की सजा में बदल दिया।"[६]

उहद की लड़ाई

बद्र की लड़ाई में हुई अपनी करारी हार को कुरैश भूल न सके थे। यह हार निश्चय ही मक्कावासियों के लिए अपमानजनक थी पर इससे वे पूरी तरह विनष्ट न हुए थे। बारह महीनों बाद (मार्च सन् ६२५) वही लोग अपने उसी नेता अबू-सूफयान के अधीन तलवार से तलवार भिड़ाने आ पहुँचे। यह मुठभेड़ मदीना के निकट वाली घाटी की ओर बसे उहद में हुई। यद्यपि पहले हजरत मुहम्मद खज-राज जनजाति के प्रधान की सलाह पर मक्कावासियों का इन्तजार करने पर तैयार हो गए पर बाद में अपने अनुयायियों की युद्ध-लिप्सुता के अनुसार धावा बोल देने के लिए राजी हुए। जब उनके अनुयायियों ने मक्कावासियों की अपने से कहीं विशाल सेना देखी तो उनका उत्साह भाफ की तरह उड़ गया। हजरत मुहम्मद ने स्थिति को समझा और खजराज जनजाति के प्रधान जब अपनी फौज को मदीना नगर में भीतर ले भागे तो भी हजरत मुहम्मद शस्त्र डालने के लिए तैयार न हुए। यद्यपि लड़ाई की शुरुआत खराब हुई पर मुसलमानों ने अपनी स्थिति मक्कावासियों से बेहतर होने का लाभ उठाया और वे मक्कावासियों से जूझते हुए उनके शिविर के भीतर तक पहुँच गए। पर यह देखते हुए कि धनुषों से सज्जित सैनिक, जिनके बारे में समझा गया था कि वे हजरत मुहम्मद की बाईं ओर का मोर्चा सँभालेंगे, डर गए। उन्हें इस बात का डर था कि उनके पास के लूटे गए सामान में से कुछ

५. कार्ल ब्रोकेलमैन "हिस्ट्री आव दी इस्लामिक पीपुल्स", रटलेज ऐंड कगन पाल लिमिटेड, लंदन, १९६४, पृ० २४।

६. कार्ल ब्रोकेलमैन—"हिस्ट्री आव दी इस्लामिक पीपुल्स", रटलेज ऐंड कगन पाल, लंदन, पृ० २४।

छीन लिया जायगा। इसलिए वे अपनी जान बचाते हुऐ भागे। तब खालिद इब्न अल-वलीद ने अपनी सैन्य विलक्षणता का, जिसे उन्होंने बाद में इस्लाम की सेवा में बार-बार प्रदर्शित किया, परिचय देते हुए इसका फायदा उठाया और मक्का की घुड़सवार सेना के आगे अरक्षित मुसलमानों को परास्त कर दिया। इस प्रकार मुसलमान लड़ाई में हार गए और अबू सुफयान के नेतृत्व में मक्कावासियों की फौज की जीत हुई। इस लड़ाई में पैगम्बर पर शत्रु में से किसी ने पत्थर फेंक दिया जिससे उनके दाँत टूट गए और होंठ के एक हिस्से में चोट आ गई। पर मक्कावासियों की इस विजय ने बद्र की लड़ाई की आभा धूमिल न की और दोनों पक्ष समझ गए कि उनके बीच आखिरी लड़ाई फिर होगी। दूसरे शब्दों में, मक्कावासियों की जीत स्थायी न हो सकी। इस्लाम फिर से अपनी पुरानी विजय की मुद्रा में आ गया और उसका प्रचार सुनिश्चित हो गया। इस समय तक इस्लाम एक राज्य मदीना का धर्म था पर अब वह राज्य का धर्म न रह कर उस दिशा में आगे बढ़ने लगा कि उसका प्रचार एक राज्य तक ही सीमित न रह सका। वह धर्म स्वयं राज्य मदीना से संयुक्त हो गया था और अब वह वैसा रूप धारण करने की ओर बढ़ रहा था जिस रूप में आज वह है। वह विश्वव्यापी धर्म और एक लड़ाकू राज्यतंत्र बन गया।

खंदक की लड़ाई

यद्यपि उहद की लड़ाई में मुसलमान हार गए पर अपनी पुरानी स्थिति में फिर लौट गए और बाद में अपनी स्थिति क्रमशः मजबूत करते गए। कुरैशी मदीना में हजरत मुहम्मद की बढ़ती हुई शक्ति को बर्दाश्त न कर सके। उन्होंने मुसलमानों की बढ़ती हुई शक्ति को अपने सामाजिक, धार्मिक एवं वाणिज्यिक समृद्धि के लिए एक बड़ा खतरा समझा। इसलिए उन्होंने चाहा कि वे सदा के लिए अपने भाग्य का निबटारा कर लें। उहद में अपनी विजय से उन्हें साहस मिला। कुरैशियों ने अपने यहूदी मित्रों और भाड़े पर लाए गए बद्दू सैनिकों (अहजब संघीय दल) के साथ मदीना पर हमला करने की आखिरी कोशिश की। सन् ६२७ में अबू सूफयान संघीय दल, अहजब के साथ १० हजार आदमी लेकर मदीना नगर पहुँचे। हजरत मुहम्मद सैनिकों के रूप में केवल ३००० आदमियों को इकट्ठा कर सके। उन्होंने अपने और अपने लोगों के लिए नगर के चारों ओर गहरी खाइयाँ खुदवाईं ताकि वे अपने को घुड़सवारों के प्रहार से बचा सकें। सुरक्षा का यह साधन अब तक अरबवासियों को न मालूम था। सुरक्षा का यह साधन हजरत मुहम्मद को एक फारसी अनुयायी सलमान से प्राप्त हुआ था। पैगम्बर मुहम्मद ने अपने नगर के चारों ओर एक चौड़ी खाई खुदवा ली। इससे

इतनी सनसनी फैली कि इस लड़ाई को खंदक की लड़ाई के नाम से जाना जाने लगा। इससे हजरत मुहम्मद का लक्ष्य पूरा हो सका। शत्रु को प्रतीत हुआ कि उसे चारों ओर से घेर लिया गया है और वह इससे बहुत जल्द थक गया। बंजर भूमि में भोजन आदि की आपूर्त्ति में कठिनाई होने लगी। लड़ाई के इस आविष्कार से शत्रु का मनोबल उसी प्रकार टूट गया जिस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध में टैंक-युद्ध के आविष्कार से टूटा था। खाइयों की वजह से छः सौ घुड़सवार सैनिक अप्रभावकर हो गए। विशेष रूप से भाड़े पर लाए गए बद्दू सैनिकों में नफरत फैल गई क्योंकि उन्हें केवल तनख्वाह और लूट के माल से सरोकार था। ढीला-ढाला संघीय सैन्य दल बिखरने लगा। इस रण-नीति का आविष्कार पिछले विश्वयुद्ध में किया गया था। आश्चर्य की बात यह थी कि पैगम्बर मुहम्मद को इसका पता चौदह सौ वर्ष पहले ही लग गया था। शत्रु के संघीय सैन्य दल ने मदीना पर घेरा डाल दिया और नगर पर कब्जे की कोशिश की। पर हर बार मक्कावासियों की उस कोशिश को विफल कर दिया गया। फिर भी यह माना जाएगा कि यह मुठभेड़ सैनिकों की संख्या और लड़ाई के दोनों पक्षों की बुद्धिमत्ता के बीच थी। मुसलमानों का नेतृत्व न केवल अत्यधिक बुद्धिमत्तापूर्ण था बल्कि उसकी जासूसी का तंत्र भी बेहतर था। घेरा डालने के बाद शत्रु को हट जाना पड़ा। उनके बीस आदमी खेत रहे और फिर उन्होंने इस्लाम को चुनौती न दी। लड़ाई का जिक्र कुरान की ३३वीं सूरा (संघीय सैन्य दल) में किया गया है और उसे खंदक की लड़ाई का नाम दिया गया है। जब मदीना पर से घेरा उठा लिया गया तो हजरत मुहम्मद ने यहूदियों के विरुद्ध "शत्रु के साथ मिलीभगत के लिए" अभियान छेड़ा। इससे बनू-कुरैजा नामक जनजाति के सर्वप्रमुख छः सौ तन्दुरुस्त यहूदी मार डाले गए और शेष को मदीना से बाहर निकाल दिया गया। प्रवासियों को उन खजूर बगीचों का, जिन्हें यहूदियों ने छोड़ा था, मालिक बना दिया गया। इस प्रकार जनजाति बनू कुरैजा इस्लाम के प्रथम और अंतिम शत्रु बच रहे जिनके सामने अब दो ही विकल्प बच रहे थे—स्वधर्मत्याग या मौत। एक वर्ष पूर्व हजरत मुहम्मद ने मदीना की एक और यहूदी जनजाति को देश-निकाला दे दिया था। खैबर के यहूदी मदीना के उत्तर बसे उर्वर मरुद्यान से सन् ६२९ में निकाल दिये गये थे। इस प्रकार अरब-यहूदी का समाधान निकाला गया।

खंदक की लड़ाई के परिणाम

खंदक की लड़ाई इस्लाम के इतिहास में एक नये मोड़ जैसी थी। कुरैशियों की आक्रामक कार्रवाइयों के दिन चुक गये और साथ ही उनकी प्रतिष्ठा अधिकांशतः खत्म हो गई। इससे कुरैशियों की सैनिक शक्ति की दुर्बलता सबके सामने आई।

खंदक की लड़ाई में सफलता से हजरत मुहम्मद की जिन्होंने मदीना को शत्रु के हमलों से बचाया, स्थिति और मजबूत हुई। मदीना के लोगों ने अब पैगम्बर को नगर का सम्पूर्ण शासक बना दिया। अपने से बड़ी ताकत के विरुद्ध जीत के कारण पास-पड़ोस की जनजातियों पर चमत्कारिक असर पड़ा और वे मुसलमानों के मित्र बन गए। इसके बाद से पड़ोस की जनजाति में इस्लाम धर्म द्रुत गति से बढ़ने लगा।

ईसाइयों के लिए घोषणा-पत्र

हिजरा के छठे वर्ष में पैगम्बर मुहम्मद ने सिनाई पहाड़ के निकट बसे सेंट केथेराइन के ईसाई पुरोहितों को घोषणा-पत्र दिया जो सभी ईसाइयों के लिए दिया गया था और जिसे प्रबुद्ध उदारता का एक चिर-स्मरणीय प्रतीक माना जा सकता है। इसके जरिए पैगम्बर ने ईसाइयों को महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार और अनेक मामलों में उन्मुक्ति दी और मुसलमानों द्वारा, ईसाइयों की इन उन्मुक्तियों में से किसी का उल्लंघन अथवा दुरुपयोग करने पर कठिन दंड की व्यवस्था की गई। इस घोषणा-पत्र के जरिए पैगम्बर ने अपने से तथा अपने अनुयायियों को काम सौंपा कि वे ईसाइयों की रक्षा करेंगे, उनको सभी आघातों से रक्षा करेंगे और ईसाई पुरोहितों को बचाएंगे। साथ ही यह व्यवस्था भी की गई कि ईसाइयों पर अनुचित कर न लगाया जाय। किसी भी ईसाई-पुरोहित को उसके धर्म प्रान्त से न हटाया जाए तथा किसी भी ईसाई को अपना धर्म छोड़ने के लिए बाध्य न किया जाए। साथ ही यह व्यवस्था भी की गई कि किसी भी ईसाई साधु को उसके मठ से न निकाला जाएगा, किसी भी ईसाई तीर्थ-यात्री को धर्म-यात्रा से न रोका जाएगा और न ही ईसाइयों के किसी भवन को इस कारण गिराया जाएगा ताकि वहाँ मुसलमानों के लिए भवन या मस्जिद बनाई जाए। साथ ही मुसलमानों से ब्याही गई ईसाई महिलाओं को अपना धर्म छोड़ने के लिए बाध्य न किया जाएगा और न इस कारण उन्हें निकाला जाएगा और उनको कोई दंभ दिखलाया जाएगा। यदि ईसाइयों को अपने गिरजाघर या मठों की मरम्मत के लिए धन की ज़रूरत होगी तो मुसलमानों को उन्हें मदद देनी पड़ेगी।

जब सन् ६३० में नजरान के ईसाई शिष्टमंडल ने पैगम्बर मुहम्मद के प्रति श्रद्धा निवेदित करने के लिए अपने को पैगम्बर के सामने स्वतंत्रतापूर्वक और बिना किसी पूर्व शत्रुता के, प्रस्तुत करना चाहा तो उनकी इस प्रार्थना पर समुचित ध्यान दिया गया। नजरान के लोगों के साथ एक विशिष्ट कर की रकम तथा विभिन्न प्रकार की सेवायें देने के लिए संधि की गई। उस संधि की एक प्रति मुस्लिमों की विजय के एक प्रारंभिक इतिहासकार अल-बलादुरी के पास सुरक्षित है। "वे इस बात के हकदार थे कि अल्लाह की सुरक्षा तथा पैगम्बर मुहम्मद द्वारा बचाव पा सकें।

यह सुरक्षा उनके ऊँटों, दूतों और उनकी प्रतिभाओं (गिरजाघर के चित्रों एवं कई क्रास चिह्नों) आदि के संबंध में भी लागू थी। वे पहले जिस स्थिति का लाभ उठा रहे थे उसमें कोई परिवर्तन न किया जाएगा और न ही उनकी किसी धार्मिक सेवा या धर्म-मूर्तियों में परिवर्तन किया जाएगा। उनके धर्माध्यक्ष (बिशप) को गिरजाघर में उसके पद से न हटाया जाएगा, साधु को भी उसके और गिरजाघर की सामग्री संभालने वाले व्यक्ति (सेक्सटन) को भी उसके पद से न हटाया जाएगा, चाहे उसके अधीन बड़ा काम हो या छोटा। ईसाइयों को इस्लाम पूर्व शासन में किसी गलत काम या रक्तपात के लिए जिम्मेवार न माना जाएगा। उन्हें न तो सैन्य सेवा में भेजा जाएगा और न ही अपनी आमदनी का दसवां भाग देने को बाध्य किया जाएगा।"[७]

अल-हुदेबिया का समझौता (सन् ६२८)

सन् ६२८ में हजरत मुहम्मद अपने साथ अपने १४०० अनुयायियों को अपने जन्म-स्थान ले गए और वहाँ के लोगों को हुदेबिया का समझौता करने को बाध्य किया। इस समझौते में मक्कावासियों और मुसलमानों को समान अधिकार दिए गए। इस समझौते द्वारा हजरत मुहम्मद की, अपने जन्म-स्थान के लोगों, कुरैशियों, से लड़ाई का अंत किया गया। इस जनजाति के अन्य सदस्यों—खालिद इब्न अल-वलीद तथा अम्र-बिन-अल-अस से इस्लाम धर्म स्वीकार कराया गया। बाद में दोनों व्यक्ति सैन्य-वादी इस्लाम की दो मजबूत तलवारों जैसे बन गए।

हुदेबिया का समझौता इस्लाम के लिए एक महान विजय थी। उससे पैगम्बर की महानता और उनके लक्ष्य की ऊँचाई सिद्ध होती है। यद्यपि समझौता सतही तौर पर मुसलमानों के लिए अपमानजनक था पर उससे हजरत मुहम्मद को बहुत बड़ा लाभ मिला। इस समझौते से उनकी राजनीतिक स्थिति को एक स्वतंत्र राज्य के शासक की स्थिति जैसी मान्यता प्राप्त हुई। और फिर दस वर्षों के युद्ध-विराम से इस्लाम को फलने-फूलने तथा पुष्पित-पल्लवित होने का समय और अवसर मिला। उसने (ईसाई धर्म ने) कुरैशियों के धार्मिक विश्वास पर चोट की और उन्हें भी इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा। इस समझौते के परिणामस्वरूप मुसलमानों ने बड़ी संख्या में हजरत मुहम्मद का धर्म-पंथ अपनाया। हजरत मुहम्मद के जीवन-लेखक जहरी ने लिखा है :—"मूर्ति-पूजकों में से सभी दुरुस्त दिल-दिमाग वालों ने इस्लाम धर्म

७. अल बलादुरी—"दी ओरिजिन्स ऑव इस्लामिक स्टेट (किताब फुतुह अल बुल्दान), अनुवादक फिलिप के० हिट्टी (न्यूयार्क १९१६, पुनर्मुद्रण, बेरुत, १९६६), पृ० १००-१०१

स्वीकार किया।" इस सन्दर्भ में इब्न हिशाम ने लिखा है —"हुदेबिया में पैगम्बर अपने चौदह सौ अनुयायियों के साथ गए। पर दो वर्ष बाद उन्होंने अपने साथ दस हजार मुसलमानों को लेकर मक्का पर हमला किया।"

दो वर्ष बाद जनवरी सन् ६३० में मक्का पर पूरी विजय हासिल कर ली गई। हमें इस संबंध में ऐतिहासिक इति-वृत्त से पता चलता है कि हजरत मुहम्मद काबा गए और वहाँ ६६० मूर्त्तियाँ तोड़ डालीं। उन्होंने घोषणा की कि "सत्य का प्रदीप जल उठा है, असत्य का कुहासा खत्म हो गया।" इस प्रकार मूर्त्तिपूजकों का धार्मिक स्थान पवित्र किया गया और वहाँ इस्लाम धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। इस्लाम ने काबा को उसके काले पत्थर और पड़ोस के जमजम को स्वीकार करके मानो बहुदेव-वादी मूर्त्तिपूजकों से सबसे बड़ी विरासत हासिल की और उस सीमा तक इस्लाम ने दो साथी एकेश्वरवादी धर्मों, यहूदी एवं ईसाई से अपना रास्ता अलग कर लिया, संभवतः करीब-करीब उसी समय हजरत मुहम्मद ने काबा के चारों ओर की भूमि को **हराम** (निषिद्ध) घोषित कर दिया। इसका बाद में यह अर्थ निकाला गया कि सभी गैर-मुस्लिम लोगों को वहाँ जाने से रोक दिया गया।

तैफ के विरुद्ध सफलता

मक्का विजय के पश्चात पैगम्बर मुहम्मद अपनी जन्मभूमि में केवल पन्द्रह दिन ही रह पाए। उन दिनों तैफ में इस्लाम विरोधी भावनाएँ सबल हो रही थीं। तैफ की थकीफ जाति के लोग नेज्द की 'हवाजीन' कबीले के साथ सांठ-गांठ कर हजरत मुहम्मद के विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण करने की योजना बना रहे थे। अवतास में दुश्मनों की लगभग तीस सहस्र सम्मिलित सेना इकट्ठी हो गयी। जब हजरत मुहम्मद उनके विरुद्ध बढ़े तो सेना ने हुनायन के पास उनपर आक्रमण कर दिया। यद्यपि प्रारंभ में दुश्मनों को सफलता मिली किन्तु अन्त में इस्लाम के सैनिकों ने उन्हें तैफ की ओर खदेड़ दिया। इस युद्ध में हजरत मुहम्मद को लूट से एक बड़ी धनराशि प्राप्त हुई जिसका प्रयोग उन्होंने संगठन के कार्यों पर किया तथा अपने सैनिकों के बीच बाँटा। पैगम्बर मुहम्मद ने खास तैफ पर भी आक्रमण किया किन्तु इसमें विशेष सफलता न मिली।

राजदूत विदेश भेजे गए

मुस्लिम इतिहासकार हमें यह विश्वास करना सिखाना चाहते हैं कि इस अवधि में पैगम्बर ने पड़ोस के राज्यों में, जिनमें बैजेन्टाइन और फारस भी शामिल थे, इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। अपने उन दूतों को उन्होंने जिस संदेश के साथ भेजा था उनके कुछ की प्रतियाँ भी उद्धृत की गई हैं। इस संबंध में

प्रो० हिट्टी ने कहा है—"यह विचार स्वीकार करना मुश्किल है कि एक स्वतः घोषित पैगम्बर के बारे में, जिन्हें उनकी अपनी जनता ने ही उस रूप में पूरी तरह स्वीकार न किया था, लोग इस तरह के विचार रखें।"[८]

पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु तक की महत्वपूर्ण घटनाएँ

घटना-चक्र तेजी के साथ अपनी चरम परिणति की दिशा में घूमने लगा। जनवरी, सन् ६३० में हजरत मुहम्मद ने अपने एक हजार अनुयायियों के साथ अपने जन्म-स्थान अर्थात् मक्का की यात्रा की। अब पैगम्बर का और विरोध करने की निरर्थकता समझते हुए कुरैशियों ने उनके सामने आत्म-समर्पण कर दिया। यहाँ तक की इस्लाम के सबसे बड़े शत्रु अबू सुफयान भी उस इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया जिसके विरुद्ध उसने अब तक कट्टरता के साथ संघर्ष किया था। उमर इब्न-अल-खत्ताब और अन्य सहयोगियों के विरोध के बावजूद, विजेता पैगम्बर ने केवल अपने दस विरोधियों को देश-निर्वासन की सजा दी। अबू सुफयान को छोड़ दिया गया। आत्म-संयम और राजनीतिज्ञता की ऐसी मिसाल मुश्किल से ही शायद कहीं मिले।

हिजरा का नवाँ वर्ष (सन् ६३०-३१) मुस्लिम इतिहास में "शिष्टमंडलों का वर्ष" कहा जाता है। कुछ इतिहासकार हमें बतलाते हैं कि इस वर्ष में हद्रामाउंट, उमान और बहरैन जैसे दूर-दराज के स्थानों और अन्य देशों से शिष्टमंडल पैगम्बर एवं राजा मुहम्मद से धर्म-दान (जकात) की रकम के साथ मिले। बड़ी संख्या में नये धर्म-इस्लाम को स्वीकार किया गया। उनके बारे में उमर की एक कथित उक्ति के अनुसार उनका उल्लेख "इस्लाम धर्म के कच्चे माल के रूप में किया गया है।" तय्यी की जनजातियों ने अपना शिष्टमंडल भेजा और उसी प्रकार हमदान और किंडा तथा अरब ने जो इसके पूर्व किसी एक व्यक्ति की इच्छा के सामने नत-मस्तक नहीं हुआ था, अब इस्लाम धर्म, जिसमें पैगम्बर का प्राधान्य था स्वीकार करने और उनकी नई धर्म-प्रसार योजना में अपने को सम्मिलित करने की घोषणा की। अरब तथा अन्य उपर्युक्त स्थानों ने मूर्ति-पूजा को तिलांजलि देकर एक उच्चतर धर्म एवं नैतिक सिद्धांतों को स्वीकार किया। सन् ६३२ के वसंत में बासठ वर्ष के वयोवृद्ध पैगम्बर मुहम्मद ने अपने बहुत सारे अनुयायियों के साथ मक्का की तीर्थ-यात्रा की जो अब नये धर्म (इस्लाम) की राजधानी हो गया था। उनकी यह मक्का-यात्रा अन्तिम सिद्ध हुई और उसे विदाई की तीर्थ-यात्रा कहा जाता है। वहाँ उन्होंने

---

८. फिलिप के० हिट्टी, "इस्लाम ए वे आव लाइफ", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, १९७०, पृ० २१।

एक उच्चस्तर का उपदेश दिया जिसे उनकी वक्तृता का चरम और परम बिन्दु समझा जाता है। उसमें उन्होंने कहा—

"सुनो, हे लोगो, मेरे ये शब्द और उनको हृदय से अंगीकृत करो। यह समझ लो कि हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है और तुम लोग एक नये भ्रातृ-बन्धन में संग्रन्थित हो। इसलिए यह उचित नहीं कि तुम अपने भाई की कोई चीज छीन लो। वह चीज तुम उसी स्थिति में स्वीकार करो जब तुम्हारा भाई अपनी पूरी रजामंदी के साथ तुम्हें वह चीज दे दे।"

प्रो० हिट्टी ने इस सन्दर्भ में ठीक ही कहा है—"अनेक शताब्दियों के लिए धार्मिक बन्धन के स्थान पर, सामाजिक एकता का आधार पुराने रक्त बन्धन को मानना सचमुच अरब के पैगम्बर का एक साहसिक और मौलिक कृतित्व था।"[९]

तीन महीने बाद जून सन् ६३२ में हजरत मुहम्मद अकस्मात् बीमार हो गए और सर-दर्द के कारण उनकी मृत्यु हो गई। अन्तिम समय में उन्होंने ये शब्द धीमे-धीमे, कोमलता के साथ कहे—"हे अल्लाह, तू मुझे माफ कर, मुझे दया दिखला और मुझे उच्चतम बहिश्त में ले चल।" उनको उनकी प्रिय पत्नी एवं अबू बकर की पुत्री आयशा की मिट्टी की झोपड़ी में दफनाया गया।

पैगम्बर के कार्यों का मूल्यांकन—इस्लाम, ईसाई और यहूदी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन

इस प्रकार केवल एक चोट से अरब-संबंधों के अत्यन्त शक्तिशाली जनजातीय बंधन का स्थान धार्मिक विश्वास के एक नये बंधन ने ले लिया। नये अरब-वासी समुदाय में न पुरोहितों की व्यवस्था थी और साथ ही न कोई पद-सोपान था। इसके अलावा कोई केन्द्रीय धर्माध्यक्ष का अधिकार भी न था। मस्जिद उसकी लोक मंच थी और वही फौजी ड्रील का स्थान थी और सार्वजनिक प्रार्थना का भी। जो व्यक्ति इबादत में अगुवा या नेता होता था उसे इमाम कहा जाता था। वह इस्लाम धर्म में विश्वास करनेवालों का सेनानायक भी होता था तथा उस पर यह भार भी रहता था कि समूची दुनिया के विरुद्ध एक दूसरे इस्लाम धर्म विश्वासियों की रक्षा करे। वे सभी अरब, जो अब भी मूर्तिपूजक थे, इस्लाम धर्म के दायरे में न रह गए और लगभग विधिवाह्य (गैरकानूनी) हो गए। इस्लाम ने पहले वाले समझौते को तोड़ दिया।[१०] सुरा, सुन्दरी और जुएबाजी, जो पहले

९. फिलिप के० हिट्टी, "इस्लाम ए वे आव लाइफ", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, १९७०, पृ० २२।

१०. हजरत मुहम्मद के धर्म को इस्लाम नाम दिया गया। इस्लाम "सा'म" शब्द से निकला है जिसका मतलब है पूर्ण शांति।

अरववासियों के लिए वहुत प्रिय चीजें थीं, उनको कुरान के एक पद्य-खंड से समाप्त कर दिया गया। गान पर, जो भी उन चीजों जैसा ही आकर्षक था, एतराज किया गया। नई व्यवस्था और पुरानी व्यवस्था के बीच अंतर के बारे में अवीसीनिया के मुस्लिम प्रवासियों के प्रवक्ता जफर-इव्न-अवी तालिब द्वारा कहवाये गए इन संबोधनबोधक शब्दों में कहवाया गया है—"हम जाहिलिया लोग थे, मूर्ति-पूजा करते थे, मरे हुए जानवरों का मांस खाते थे, अनैतिकता का जीवन बिताते थे, अपने परिवारों को छोड़ देते थे, पारस्परिक सुरक्षा के करारनामे का उल्लंघन करते थे और हम लोगों के वीच के कमजोर लोगों को मजवूत लोग निगल जाते थे। हम लोगों की ऐसी स्थिति तव तक थी जव तक अल्लाह ने हमारे बीच अपना संदेशवाहक न भेजा था जो हमारे बीच का ही व्यक्ति था और जिसके पूर्वजों की सत्यशीलता, निष्ठा और शुद्धता को हम सव मान्यता देते थे। यह वही व्यक्ति था जो हमें अल्लाह के पास ले गया और हमें वतलाया कि अल्लाह एक ही है, केवल उसी की उपासना करनी चाहिए, पत्थरों और मूर्तियों का पूरी तरह तिरस्कार करना चाहिए, उन पत्थरों और मूर्तियों का, जिनकी हमने और हमारे पूर्वजों ने, पूजा की और अल्लाह को भूल गए। पैगम्वर ने हमें यह भी वतलाया कि हम अपनी वातचीत में सच्चे रहें, दूसरों के साथ वही व्यवहार करें जो उचित है, अपने परिवार के साथ रहें और गलत काम और खून वहाने आदि से वचें। पैगम्वर ने हमें यह भी निर्देश दिया है कि हम गलत गवाही न दें, अनाथ वच्चों को उनके उचित अधिकार से वंचित न करें तथा पवित्र स्त्रियों के वारे में गलत-सलत वातें न करें। पैगम्वर ने हमें यह भी वतलाया है कि हम केवल उसी की पूजा करें, उसी से (अल्लाह से) अपने को जोड़ें, किसी अन्य से नहीं। परमात्मा ने हमें निर्देश दिया है कि हम प्रार्थना करें, जकात (भिक्षा) दें और उपवास करें।"[११] मदीना के धार्मिक समुदाय से वाद में इस्लाम का उससे भी वृहत्तर राज्य का जन्म हुआ। प्रवासी और इस्लाम समर्थकों के इस नये समुदाय की स्थापना धर्म के आधार पर उम्मत (अल्लाह की सभा) के रूप में हुई। अरव के इतिहास में पहली वार प्रयास किया गया कि रक्त के आधार पर नहीं वल्कि धर्म के आधार पर सामाजिक संगठन बने। अल्लाह राज्य के प्राधान्य का मूर्त रूप था। उसके पैगम्बर जब तक जीवित रहे, अल्लाह के प्रतिनिधि और पृथ्वी के सर्वोच्च शासक रहे। अपने इस रूप में पैगम्बर अपने आध्यात्मिक कार्य के अतिरिक्त उसी ऐहिक अधिकार का उपभोग कर रहे थे जिसका उपयोग किसी राज्य का प्रधान करता है। इस समुदाय के भीतर सभी लोग, चाहे वे जिस भी जनजाति के हों या उनकी पुरातन निष्ठा जो भी हो, अव कम-से-कम सिद्धान्त में ही सही, आपस में एक-दूसरे के भाई थे। अपने ऐहिक जीवन के थोड़े-से वर्षों में ही कभी भी न झुकने

११. इब्न हिशाम, पृ० २१९।

वाले अनम्य और कट्टर तत्वों से एक राष्ट्र का निर्माण किया जैसा इतिहास में पहले कभी न हुआ था। उस देश में जो अब तक भौगोलिक इकाई के अलावा कुछ न था, एक धर्म की स्थापना की गई जिसने विशाल क्षेत्रों में ईसाई और यहूदी धर्मों का प्रभाव-क्षेत्र छीन लिया और अत्यन्त द्रुत गति से अन्य क्षेत्रों की ओर फैलने लगा। अब भी इस्लाम धर्म के अनुयायी मनुष्य जाति के एक बड़े भाग में पाए जाते हैं। इससे एक ऐसे साम्राज्य की नींव पड़ी जिसमें तत्कालीन सभ्य संसार के अच्छे-से-अच्छे प्रान्त शामिल हुए। यद्यपि हजरत मुहम्मद स्वयं स्कूली शिक्षा से वंचित रहे पर उन्होंने एक ऐसे ग्रन्थ (कुरान) की रचना की जिसे मनुष्य जाति का आठवां हिस्सा सभी विज्ञानों, बुद्धिमत्ता और धार्मिक नीतियों का मूर्त्त रूप मानता है।

ईसाइयों को इस्लाम के केवल कुछ ही सिद्धान्त आपत्तिजनक लगते हैं। दोनों-इस्लाम और ईसाई-धर्म के बीच कोई धार्मिक मतभेद नहीं, पर दोनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमियां अलग-अलग हैं। जरथ्रुस्त्र (यानी ईरानियों का धर्म), हिन्दू धर्म और बुद्ध धर्म ईसाइयों के लिए बिल्कुल ही खतरनाक न थे। पर इस्लाम उनके लिए प्रतिद्वन्द्वी धर्म था। इस्लाम के साम्राज्य ने शुरू-शुरू में बैंजेन्टाइन को नुकसान पहुँचाया और उसके अस्तित्व के लिए खतरा साबित हुआ। इस्लाम के साल्जुक अनुयायियों ने पूर्वी यूरोप के लिए खतरा पैदा किया। इससे इस्लाम के विरुद्ध धर्म-युद्ध छिड़े। इस्लाम की अरब फौजों ने स्पेन और सिसली पर शताब्दियों तक अपना कब्जा रखा तथा फ्रांस और जर्मनी पर बीच-बीच में हमले किये। उसके आखिरी हिमायती ओटोमैनविएना के बाहरी फाटक पर दो बार जमा हुए।

मध्यकालीन ईसाइयों ने पैगम्बर मुहम्मद को ठीक से नहीं समझा। इसका कारण विचारात्मक नहीं बल्कि आर्थिक एवं राजनीतिक था। अंग्रेजी कवि थामस कारलाइल ने हजरत मुहम्मद को अपने नायक के रूप में चुना जो पश्चिमी जगत में इस संबंध में नई विचारधारा का द्योतक था पर कुरान की उन्होंने आलोचना की।[१२] अंग्रेजी लेखक यह भूल गया कि संसार के अन्य महान ग्रन्थों की भांति कुरान भी ऐसा शास्त्रीय ग्रन्थ है जिसे उस समय तक समझा नहीं जा सकता है जब तक उस अवधि के अर्थतंत्र, राजनीति और धर्म का पूरा ज्ञान प्राप्त न किया जा सके। साथ ही कुरान को समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि उस संस्कृति की विशाल पृष्ठभूमि में जो एक धार्मिक और साहित्यिक आन्दोलन का अंग है, अपने मन को प्रक्षेपित किया जाय। यह प्रसन्नता की बात है कि आधुनिक यूरोपीय विद्वानों ने इस्लाम के संस्थापक को उनका उचित स्थान दिया और कुरान को समझे जाने लायक बनाया है।[१३]

---

१२. थामस कारलाइल—ऑन हीरोज, हीरो वर्शिप ऐंड दी हीरोइक इन दी हिस्ट्री (लंदन, १८९७), पृ० ६४-६५।

१३. जैसे कि मोंटगोमरी वाट, "मुहम्मद ऐट मक्का", (ऑक्सफोर्ड १९५३),

पर इस्लाम धर्म के संस्थापक की ईसाई धर्म के संस्थापक से तुलना नहीं की जा सकती। हजरत मुहम्मद में असाधारण गुण न थे और न ही, उन्हें कोई विशेष प्राधिकार था। वे केवल अल्लाह के शब्दों को जन-सामान्य तक पहुँचाने के निमित्त मात्र थे। इस सीमा तक वे ठीक वर्जिन मेरी (ईसा मसीह की माँ) की भाँति थे। पर यह बात याद रखी जानी चाहिए कि यह उनके संबंध में पढ़े-लिखे लोगों का विश्वास था न कि जनसाधारण का। इसलिए मुसलमान यह पसन्द नहीं करते कि हजरत मुहम्मद की ईसा-मसीह के साथ तुलना की जाय। जो आधुनिक प्राच्यवादी हजरत मुहम्मद के आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग करते हैं उन्हें जानना चाहिए कि लोग अपने बारे में जो नाम प्रयुक्त किया जाना पसंद नहीं करते उसका उनके संबंध में प्रयोग न करना चाहिए। मुसलमान (मुस्लिम) का शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जिसने अपने-आपको अल्लाह की मर्जी पर पूरी तरह छोड़ दिया है। इसलिए इस्लाम हजरत मुहम्मद का धर्म नहीं है बल्कि अल्लाह के समक्ष अपने आपको समर्पित करने वालों का धर्म है। इसके पीछे अब्राहम द्वारा अपने आपको और अपने पुत्र को सर्वोच्च परीक्षा के समय अर्थात् उनके प्रत्याशित बलिदान के पूर्व उनके द्वारा अपने आपको समर्पित करने के लिए असलाम (३७ : १०३) शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसी से हजरत मुहम्मद को प्रेरणा मिली कि अपने नये धर्म का नाम इस्लाम रखें।

जब इस्लाम धर्म अपनी निर्माणात्मक स्थिति में था उस समय हजरत मुहम्मद को यह अवसर नहीं मिला कि वे ईसाई समुदाय के लोगों से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर सकें। इस तुलना में उन्हें यहूदी धर्मवालों के साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने का अवसर मिला। इसलिए हजरत मुहम्मद के धर्म (इस्लाम) पर यहूदियों के धर्म का स्पष्ट प्रभाव है। जहाँ तक ईसाई धर्म के साथ संबंध का प्रश्न है, हजरत मुहम्मद केवल कुछ ही ईसाई धर्मावलंबियों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सके। सिद्धान्ततः कुरान का उद्देश्य ईसाई धर्म-शास्त्रों को सम्पुष्ट करना और शुद्ध करना है पर व्यवहारतः वह उनको रद्द करता है। ईसाइयों के जिन चार नये विधानों (टेस्टामेन्ट) के नायकों की जानकारी पैगम्बर मुहम्मद को थी उनमें ईसा मसीह सर्वाधिक प्रमुख हैं। वास्तव में हजरत मुहम्मद ने भी अन्य मसीहाओं के बीच अपने लोकोत्तर जीवन अर्थात मसीहा होने और अल्लाह का सन्देश लोगों तक पहुँचाने और खुद "अल्लाह की आत्मा" होने के संबंध में अन्तर किया। हजरत मुहम्मद को त्रिदेवता और इससे संबंधित अवतार के सिद्धान्त से जैसा कि उन्होंने समझा,

"मुहम्मद एट मदीना," (आक्सफोर्ड, १९५६), टौर ऐनड्राक "मुहम्मद दी मैन ऐंड हिज फेथ", अनुवादक थियोफिल मेंजेल (न्यूयार्क,१९५७), रिचार्ड ब्रेल—"दी कुरान" दो खण्डों में अनुवादित, (एडिनबर्ग १९३७—३९)।

एतराज था। त्रिदेवता का सिद्धान्त हजरत मुहम्मद के, अपने आधारभूत सिद्धान्त अर्थात् "अल्लाह एक है" से सर्वथा भिन्न था। भगवान के लड़के-लड़कियाँ होने का ईसा मसीह का सिद्धान्त हजरत मुहम्मद के दुश्मनों को प्रसन्न करता था जिनका विश्वास था कि अल्लाह के बेटे-बेटियाँ हैं। कुरान के कई प्रसंगों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि हजरत मुहम्मद ईसाइयों के सिद्धान्त से मतभेद रखते हैं, जैसा कि "तीन देवताओं की बात न कहो क्योंकि अल्लाह सिर्फ एक ही है"। वे निश्चय ही विश्वासहीन हैं जो कहते हैं कि "अल्लाह का अपने तीन भाइयों में तीसरा नम्बर था।" पर फिर भी समग्र रूप में देखा जाय तो मालूम होगा कि हजरत मुहम्मद यहूदी धर्म से नहीं बल्कि ईसाई धर्म से ज्यादा सहानुभूति रखते थे। उन्होंने ईसाइयों से कोई लड़ाई न लड़ी। कुरान की एक सूरा में यहूदियों और मूर्त्तिपूजा के प्रति शत्रुता का भाव दिखलाया गया है, दूसरी ओर ईसाई धर्म को इस्लाम धर्म के सबसे अत्यधिक ज्यादा निकट माना गया।

सच पूछा जाय तो कुरान में हजरत मुहम्मद का चरित्र जितनी निष्ठा से चित्रित किया गया है उतना और कहीं नहीं। उन्होंने जो लड़ाइयाँ लड़ीं, जो निर्णय घोषित किये और उनके पराक्रम दिखलाए हैं उनसे पता चलता है कि हजरत मुहम्मद का व्यक्तित्व शक्तिशाली था, उनके विश्वास गहरे थे तथा उनमें ऊँचे आदर्शों के प्रति समर्पण के भाव के साथ ही अन्य अच्छे गुण थे जो किसी नेता में होते हैं। अपनी कमजोरी के एक क्षण में उन्होंने मक्का की तीन शक्तिशाली देवियों (अल्लत, अल-उजा और मानह) को अल्लाह और जनसाधारण के बीच मध्यस्थ घोषित किया। कुछ बाद में उन्होंने अपनी इस मान्यता को वापस ले लिया। अपने इस लोभ को उन्होंने शैतान का कार्य बतलाया।

फिर भी, यहूदी धर्म और ईसाई धर्म से इस्लाम ने रहस्योद्घाटन की धारणा ली, यद्यपि इस्लाम में इसका रूप भिन्न है। इस धारणा का कारण यह है कि जब आदमी जीवन की कठिन समस्याओं को सुलझाने में अपने को अरक्षित और असमर्थ पाता है तो संसार के सर्वाधिक बड़े और अनजाने स्रोत के समक्ष सिर झुकाता है। ईसाई धर्म में जिसे प्रेरणा कहते हैं, इस्लाम में रहस्योद्घाटन का अधिक गहरा अर्थ है। इस्लाम के अनुसार वह प्रक्रिया जिसके द्वारा दैवी मस्तिष्क मानवीय चेतना के जरिए काम करता है, रहस्योद्घाटन अल्लाह के आदेश जैसा है। उसके शब्द और विषय-वस्तु अल्लाह के होते हैं। इस प्रक्रिया को स्वर्ग से जहाँ वह आदेश मूल रूप में रहता है, इस पृथ्वी पर 'भेजा जाना' कहते हैं। इसके अन्तर्गत व्यवस्था यह है कि इसमें ईश्वरीय आदेश पाने वाला व्यक्ति निष्क्रिय होता है और अल्लाह जिसे अपने विचार तथा इच्छा प्रेषित कर देता है। हर आदमी के पास अल्लाह एक संदेशवाहक भेजता है। कुरान का रहस्योद्घाटन अरबी भाषा में हुआ। इस प्रकार

अरबी भाषा उस रहस्योद्घाटन की अभिन्न अंग बन गई। अरबों के लिए अरबी भाषा "देवदूत की जीभ" बन गई। अलावे, कुरान की भाषा अरबी भाषा द्वारा हजरत मुहम्मद ने बिखरी अस्त-व्यस्त अरबी जनजातियों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया। यह एकता ऐसी थी जैसी एकता उन जनजातियों में पहले कभी न देखी गई। इस प्रकार इस्लाम धर्म के संस्थापक ने अपने तीन योगदानों—धर्म; राष्ट्र और संस्कृति में एक नया आयाम जोड़ा।

"अतः अल्लाह अपने दूत के अलावा और कुछ नहीं है।" संदेशवाहक की धारणा ईसाई धारणा है जो सदियों से एक संस्था जैसी हो गई। ईसा मसीह ने अपने बारह शिष्यों को भेजा जो देवदूत या संदेशवाहक थे। हर देवदूत ईश्वर द्वारा भेजा गया था। बाद में यह उपाधि शिष्यों के अलावा उन लोगों पर लागू हो गई जो संत पॉल की भाँति संदेश लाते थे। कुरान ने मुहम्मद को एक दूसरी उपाधि 'पैगम्बर' दी है। पैगम्बर के लिए अरबी शब्द 'नबी' है जो अरबी और यहूदियों की भाषा हेब्रू में एक जैसा है। यह इस बात का द्योतक है कि अरबों या यहूदियों के पूर्वजों से यह शब्द चला आ रहा है। इस शब्द का कुरान में इसके प्रयोग के पूर्व का बहुत लम्बा इतिहास है, पर इस्लाम-पूर्व साहित्य में इसका प्रयोग नहीं है। यह ईसा मसीह के एक हजार वर्ष पूर्व "ओल्ड टेस्टामेंट" में वर्णित सेमुएल की कहानी में आया है। कुरान में जिन पैगम्बरों की चर्चा है उनका जिक्र मुख्य रूप से "ओल्ड टेस्टामेंट" में हुआ है। उन पैगम्बरों में चित्रित एक पैगम्बर अब्राहम हजरत मुहम्मद के प्रिय थे। पैगम्बर मुहम्मद ने बार-बार कहा है कि "मेरे बाद कोई पैगम्बर न होगा।" मुहम्मद साहब के जरिए अल्लाह ने मानव जाति के लिए अपना आखिरी संदेश भेज दिया। कोई और उससे अच्छा संदेश नहीं ला सकता।

जब इस्लाम अपनी निर्माणावस्था में था तो हजरत मुहम्मद को ईसाई समुदाय से इस तरह संबंध स्थापित करने के लिए वैसा अवसर न मिला जैसा अवसर यहूदियों के साथ सम्पर्क कायम करने के लिए मिला। इसलिए इस्लाम धर्म पर यहूदी धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव दीख पड़ता है। जहाँ तक ईसाइयों के साथ निकट सम्पर्क स्थापित करने का प्रश्न है, हजरत मुहम्मद केवल कुछ ईसाइयों से ही सम्पर्क स्थापित कर पाये। अपने प्रारंभिक जीवन की पूरी अवधि में मुहम्मद साहब ने प्रयत्न किया कि दो पुराने एक-ईश्वरवादी धर्मों के बीच सहअस्तित्व कायम करने की एक कार्यविधि तैयार की जाय। ईसामसीह के धर्म के अत्यावश्यक लक्षणों को इस्लाम में ज्यों-का-त्यों अपना लिया गया। उनकी पैगम्बरी का स्वरूप कुछ-कुछ उस क्रम का था जैसा कि अब्राहम और ईसामसीह का था।

हजरत मुहम्मद और उनके उपदेश : एक समीक्षा

पैगम्बर मुहम्मद का, जो अपने को, अल्लाह द्वारा जनता के बीच भेजा गया पैगम्बर और 'चेतावनी देने वाला' महसूस करते थे, अति धार्मिक उत्साह निरन्तर बढ़ने लगा। साथ ही मदीना के बारे में उनमें यह धारणा बद्धमूल होती गई कि वे मदीना में एक राजनीतिक समुदाय के रहनुमा, एक प्रतिभासम्पन्न राजनेता, जिसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में लगने वाले प्रतिघातों और प्रत्यक्ष अस्वीकृतियों से कतई विचलित न होना है, जैसा अवसर हुदेबिया की संधि के समय आया था और साथ ही वे अरब के शासक भी हैं। मदीना में उनके राज्यादेश 'कुरान' में जन-सामान्य के लिए स्पष्टतः अंकित हैं और वे आदेश यह जोर देकर कहे गये कि, ईश्वर की प्रेरणा से अनुप्राणित हैं। केवल अन्तर्ग्रस्त विषय-वस्तु की खातिर वर्ण्य विषय के स्वरूप को समंजित करना आवश्यक है। और केवल 'कुरान' में वर्णन की लय को, जिसे कमजोर ढंग से पेश किया जाता रहा है, रहस्योद्घाटन के चिह्न-स्वरूप कायम रखना है। खुद कुरआन शब्द का तात्पर्य है उच्चारण, भाषण और उपदेश। इस्लाम के आधार के रूप में वह मुसलमानों पर धार्मिक प्रभाव रखता है और धार्मिक और नीति-विषयक बातों के संबंध में यह अंतिम एवं संपूर्णतः प्राधिकृत ग्रन्थ है पर वास्तविकता का यह केवल एक पक्ष है। मुसलमानों की निगाह में अध्यात्म, धर्म और विज्ञान एक और केवल एक ही बात के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। इस प्रकार कुरान उदार शिक्षा प्राप्त करने के लिए हस्त-पुस्त और पाठ्य-पुस्तक है। अलअजहर में, जो विश्व में मुसलमानों का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है, यह ग्रन्थ पूरे पाठ्य-क्रम के आधार के रूप में अपनी हैसियत आज, हजरत मुहम्मद के जीवन के पन्द्रह सौ वर्षों के बाद भी, बनाये हुए है। हजरत मुहम्मद के धर्म की परख निःसंदेह केवल कुरान से ही नहीं की जा सकती। उनकी कोई सुगठित, भली-भाँति समेकित प्रणाली न थी। दरअसल तीक्ष्णता, यथातथ्यता और बौद्धिक संगति उनके गुण न थे। पैगम्बर मुहम्मद का बौद्धिक जगत, कम-से-कम मात्रा में भी उनका अपना था। उसका उत्स यहूदी और ईसाई धर्म थे। इन दो धर्मों को, अपनी जनता की धार्मिक आवश्यकताओं के अनुरूप, उन्होंने बुद्धिमत्ता के साथ अपनाया था। ऐसा करते हुए उन्होंने जनता की धार्मिक आवश्यकताओं को सहज विश्वास और नैतिक भावप्रवणता के उच्चतर स्तर तक उठा दिया।

हजरत मुहम्मद का अल्लाह, प्रथमतः और मुख्यतः स्वामी है। बेबीलोनिया के जमाने से यहूदियों ने अपने ईश्वर में कोई स्वेच्छाचारी, चंचल, क्रूर और सभी वस्तुएँ प्राप्त करने में असमर्थ सेनानायक देखा है जिसकी इच्छा अथाह है क्योंकि वह किसी पूर्वी निरंकुश सम्राट जैसा अस्थिरमति है। भगवान अपने आदेश इसलिए

नहीं देता कि वे पवित्र और न्याय्य हैं बल्कि इसलिए कि वैसे ही आदेश देना उसकी मौज है, फलस्वरूप अगर उसकी मौज में यह आया कि अपने निर्णय बदल दे तो वह ऐसा कर गुजरता है या किसी निर्णय को किसी भी समय समाप्त भी कर देता है। पर हजरत मुहम्मद का खुदा दयालु, सहानुभूतिशील और विचारवान है।

फिर भी अमूर्त एकदेववाद, जो बहुत हद तक इस्लाम की आकर्षण-शक्ति का आधार रहा है, शनैः-शनैः बढ़ा। पैगम्बर का शुरू-शुरू में झुकाव था कि मक्का की देवियों को आदमी और खुदा के बीच मध्यस्थ होने के लिए मान्यता दें। इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। देव की धारणा ज्यों-ज्यों ठोस होती गई, उसके विपरीत "ईश्वर को मनुष्य के आकार को समझने की भावना" भी बढ़ती गई। इसी कारण बाद में चलकर धार्मिक मतवाद के आपसी उग्र संघर्ष हुए जिनमें कुरान के सभी प्रासंगिक अंशों की अति नियमनिष्ठ व्याख्या का रुख अपनाने वाले पक्ष की ही विजय हुई। ऐसा स्पष्टतः खुद इस धर्म के संस्थापक की भावना के अनुरूप ही हुआ।

इस्लाम का दूसरा आधारभूत धर्म सिद्धान्त है: हजरत मुहम्मद खुदा के धर्मप्रचारक हैं। उन्होंने ईसाइयों के 'ओल्ड टेस्टामेंट' से मनुष्य के पतन का सिद्धांत लिया और अपने अनुयायियों को शिक्षा दी कि मानव जाति को खास तौर से मूर्ति-पूजा के खिलाफ चेतावनी देने के लिए अल्लाह ने समय-समय पर, देवदूत और पैगम्बर भेजे हैं जिनको महान देवदूत जिबरील के जरिए भगवान ने अपनी इच्छा बतलाई। ईसा मसीह अपने पूर्ववर्ती मसीहाओं की तरह उन्होंने भी भविष्यवाणी की थी कि पैगम्बर आ रहे हैं जो आखिरी मसीहा होंगे। पैगम्बर मुहम्मद सबसे पहले अरब भेजे गए, पर उनका धर्म समूची दुनिया में अब्राहम का विशुद्ध सिद्धान्त एक बार फिर लौटा लाने वाला था जिसे यहूदियों और ईसाइयों ने झुठला दिया था। क्यों और किस बिन्दु के बाद से पैगम्बर मुहम्मद ने यह विश्वव्यापी आह्वान पाया, इस प्रश्न का उत्तर निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं दिया जा सकता। पैगम्बर मुहम्मद के लिए भगवान की वाणी कुरान के रूप में उद्घाटित हुई। प्रथम तो कुरान शब्द का अर्थ ही किसी व्यक्ति को होनेवाला रहस्योद्घाटन है। फिर थोड़े ही समय के बाद इस शब्द (वाचन) का प्रयोग सभी संग्रहीत रहस्योद्घाटनों के बारे में किया जाने लगा।

मक्का में हजरत मुहम्मद के धार्मिक विचार सर्वप्रथम प्रलय या दुनिया का अन्त शीघ्र होने की धारणा के इर्द-गिर्द घूम रहे थे। इस दुनिया के बाद की उनकी धारणा यहूदियों और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से फारस और प्राचीन बेबीलोनिया के सूत्रों से आई थी। पहले तो हजरत मुहम्मद की धारणा थी कि अब अन्तिम निर्णय

की घड़ी समीप है, पर बाद में उसके बारे में ठीक-ठीक बतलाने की बात वे स्थगित करते रहे, क्योंकि इस संबंध में पैगम्बर के कथनानुसार जानकारी अल्लाह ने अपने तक ही सीमित रख छोड़ी है।

अन्तिम निर्णय के दिन, जैसा कि कुरान कि 'सूराओं' में चित्रित किया गया है, 'पवित्र ग्रन्थ' खोला जाएगा जहाँ कि मनुष्य-मात्र के कार्य दर्ज हैं जिसके अनुसार उनके बारे में न्याय किया जायगा। फिर जब सभी मरे हुए लोग अपनी कब्र से उठ खड़े होंगे तो उन्हें अपने-अपने कार्यों की सूची दी जायगी ताकि वे उसे खुद जोर-जोर से पढ़ें। अगर सूची उनके दाहिने हाथ में गई तो उसका मतलब यह हुआ कि जिन्दगी में उसने अच्छे काम किए हैं और जिन्हें बाएँ हाथ में दी गई है तो उसका मतलब है कि उस आदमी ने पाप किए हैं जिसकी उसे सजा भुगतनी पड़ेगी। पुण्यवान व्यक्ति अल्लाह के दाईं ओर खड़े होते हैं और पापी बाईं ओर। अल्लाह के सबसे ज्यादा करीब, इन तीनों में से सर्वाधिक पुण्यवान, खड़े होते हैं। इसके बाद पैगम्बर निर्णय के दिन की कार्यवाही का वर्णन और भी जीवन्त ढंग से करते हैं—

"....और तब अल्लाह एक तराजू पर बारी-बारी से आदमियों के कामों को तोलता है। जो पापी होते हैं वे अपने गुनाहों के लिए माफी माँगते हैं पर उनके खिलाफ उन लोगों के पैगम्बर गवाही देते हैं। तुरन्त ही उन्हें इनाम या सजा दी जाती है। ईमानदार और अच्छे लोगों को पुरस्कार-स्वरूप जन्नत के उद्यान या बिहिश्त में भेजा जाता है। धरती पर उसे अरब के लोगों ने घाटी की चिलचिलाती गर्मी में विकसित किया था और जिसके बारे में हजरत मुहम्मद की धारणा थी कि यह जगह बिहिश्त जैसी एक ऊँचे पर्वतीय स्थान पर है। इसके अलावा ईमानदार और सच्चे लोगों को काली-काली आँखों वाली हूरों (सुन्दरियों) का साथ मिलता है जिनको ईश्वर ने अक्षय-यौवना बनाया है। अलावे, ऐसी जिन सुन्दरियों को अल्लाह ने बिहिश्त आने दिया है उन्हें नफरत और जलन से मुक्त भी कर दिया है। इन रूपवतियों को पवित्र ईश्वरोपदेश और अल्लाह की वन्दना करने में सुख मिलता है। तात्पर्य यह कि अल्लाह पुण्यात्मा लोगों को सुख-समृद्धि से भरा-पूरा स्वर्ग देता है और पापियों को जहन्नुम भेजता है जो कि धधकती लपलपाती आग की धू-धू करती लपटों से हर पल, हर क्षण दहकता रहता है। हजरत मुहम्मद दुष्टों को यह भी चेतावनी देते हैं कि उन लोगों को नर्क की इस आग के अलावा और भी यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी। पर यहूदी और ईसाई धर्मों में जो यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किस तरह के पाप के लिए किस तरह की सजा मिलेगी, वैसी कोई व्यवस्थित योजना इस्लाम धर्म में नहीं है। यहूदी और ईसाई धर्मों में स्वर्ग और नर्क के चित्रण के सिलसिले में कहा गया है कि नर्क एक ऐसी जगह है जहाँ गर्म, बदबूदार,

नमकीन पानी का कुआँ है जिसकी नमी प्यासे आदमी की अंतड़ियाँ दीर्ण-विदीर्ण कर देती हैं। नर्कवासियों को फलों के बजाय एक मीठा पौधा दिया जाता है जो भूख नहीं मिटा पाता। हजरत मुहम्मद ने कुरान में अनेक अन्य स्थानों पर नर्क (दोजख) का चित्रण किया है जिसे उन्होंने कठिन यंत्रणा-गृह बतलाया है जहाँ पापी के गले में लोहा डाल दिया जाता है और उसे जंजीर से कसकर बाँध दिया जाता है तथा नर्क के एक वरिष्ठ पहरुए की देख-रेख में उन्नीस पहरुए उसे तरह-तरह की मानसिक-शारीरिक यंत्रणाएँ देते हैं। नर्क की यातनाएँ वैसे ही स्थायी होती हैं जैसे स्वर्ग (बिहिश्त) के आनन्द। यहूदीवाद में पापियों को दंड के सम्बन्ध में जो यह आशा की जाती है कि इजरायल के (पापी) लोगों को केवल ऐहिक (इस लोक से सम्बन्धित) सजा दी जाती है, उस आशा का मदीना में हजरत मुहम्मद ने पूरी शक्ति के साथ पूर्णतया विरोध किया।

कुरान में वर्णित धार्मिक दायित्वों का धर्म में विश्वासियों के विश्वास से अन्तर्निहित सम्बन्ध नहीं है जैसा कि बाद के यहूदीवाद में हुआ। इस्लाम में धार्मिक दायित्व का एक बाहरी वैध स्वरूप है। विशुद्ध आनुष्ठानिक आदेश जैसे कि नमाज के पहले पानी से मुँह, हाथ, पाँव धोने को ठीक उसी प्रकार उच्च महत्व दिया जाता है जिस प्रकार कि ईमानदारी को। नमाज के पहले मुँह, हाथ और पाँव धोना धर्म-विश्वासियों का विहित कर्त्तव्य है। यदि कहीं पानी उपलब्ध न हो, बालू को मुँह, हाथ और पाँव साफ करने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। दूसरा कर्त्तव्य खुद नमाज पढ़ना है। इस सिलसिले में कई निर्धारित नियम हैं और कुरान की जो आयतें नमाज में मन-ही-मन दुहराई जाती हैं वे और उसके साथ-साथ बदलती शरीर की मुद्रायें भी पूर्व-निश्चित और निर्धारित हैं। नमाज में इन नियमों और शारीरिक मुद्राओं को सब मिलाकर 'रकाह' कहा जाता है। इसे हर नमाज में कम-से-कम दो बार दुहराना चाहिए। जबकि हजरत मुहम्मद और उनके अनुयायी मक्का में दिन में दो बार नमाज पढ़ते थे तो यहूदियों के उदाहरण के अनुसार मदीना में तीन बार नमाज पढ़ने लगे। बाद में प्राचीन ईरान के प्रभाव के कारण दिन में पाँच बार नमाज पढ़ना अनिवार्य बना दिया गया। पहली नमाज भोर के कुछ पहले, दूसरी दोपहर में, तीसरी सूर्यास्त से कुछ पहले, चौथा शाम को और पाँचवीं रात हो जाने के बाद। शुक्रवार को दोपहर की नमाज समूह में मस्जिद में की जाती है। उसके बाद धर्मोपदेशक के आसन से नमाजियों के नेता धर्मोपदेश करते हैं। इस क्रिया को खुतबा कहते हैं। तीसरा मुख्य धार्मिक कर्त्तव्य उपवास होता है। इसमें रमजान के महीने में भोजन, पानी या कोई और द्रव-पान और सभी मौज-मजे जैसे कि मीठी गन्धों को भोर से सूर्यास्त तक छोड़ दिया जाता है। चान्द्र वर्ष के कारण रमजान का महीना कभी जाड़ा और गर्मी या बरसात में पड़ता है। इस कारण इस कर्त्तव्य को, विशेषकर

और नियमों से बँधी हुई है जिनका अनुपालन धर्म का ही एक हिस्सा है। इन आदेशों और नियमों में से कुछ बहुत महत्वपूर्ण का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

मुसलमान धर्म में अविश्वासियों के प्रति अपना विरोध-भाव प्रकट करते हैं। उन लोगों के विरुद्ध लड़ना वे एक धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं। मूर्त्तिपूजकों पर बिना किसी हिचकिचाहट, बराबर हमला किया जाना चाहिए। पर यहूदियों और ईसाइयों पर केवल तभी हमला किया जाना चाहिए जब इस्लाम धर्म अपनाने के लिए उनकी तीन बार बुलाहट किये जाने पर भी वे इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करते। जब वे लोग लड़ाई में हार जायँ तो उनमें से पुरुषों को मार डालना चाहिए और महिलाओं और बच्चों को दासों के रूप में बेच दिया जाना चाहिए। जो कोई भी मुसलमान इस धार्मिक युद्ध में मारा जाता है उसे शहीद के रूप में निश्चय ही बिहिश्त (स्वर्ग) मिलेगा। अलावे, पैगम्बर के उदाहरण के अनुसार यहूदियों और ईसाइयों से सन्धि भी करने की अनुमति है। बाद में पारसियों को इसी स्तर पर रखा गया जिस स्तर पर "किताब (कुरान) के लोगों" को रखा जाता है। पर इस तरह के करारों से धार्मिक युद्ध के दायित्वों को केवल टाला जाता है, उनको पूरी तरह खत्म नहीं कर दिया जाता।

दैनिक जीवन में ईसाइयों के धार्मिक ग्रन्थ 'ओल्ड टेस्टामेंट' के अनुसार खाद्य और विशेषरूप से मद्यपान को कुछ हद तक विनियमित किया गया है। सभी जानवरों का, जो शिकार में काटे या मारे गये हों, मांस अस्वच्छ है और इसीलिए उसे खाना वर्जित है। साथ ही वह मांस और खून भी जो किसी अस्वच्छ चीज जैसे कि धर्म में अविश्वासी या काफिर से छुआ गया हो, खाना वर्जित है। शिकार के जानवरों और कुत्तों, बिल्लियों और सुअरों का मांस खाना पूरी तरह वर्जित है। साथ ही सभी मादक द्रव्यों का सेवन भी वर्जित है। यद्यपि इस संबंध में कुरान केवल शराब का नाम लेता है पर इस्लाम के बाद के धर्म-गुरुओं ने किसी भी रूप में मद्यसार (अलकोहल) के सेवन को वर्जित करार दिया है पर अपनी इस आज्ञा का पालन करा सकने में उन्हें सफलता न मिली। शराब की तरह कुरान में जुआ पर भी रोक लगाई गई है।

यद्यपि इस्लाम की विवाह-सम्बन्धी संहिता से पुरुषों और स्त्रियों के बीच संक्षिप्त यौनाचार का, जो प्राचीन अरब में बहुत ज्यादा प्रचलित था, अंत हो गया। यों उससे बहु विवाह का अन्त तो न हुआ पर पुरुषों के लिए नियम बना दिया गया कि वे चार पत्नियों से ज्यादा नहीं रख सकते। इसके अलावा यह भी व्यवस्था की गई कि आदमी अपनी सेवा के लिए दास रख सकता है। इस्लामी कानून में पुरुष द्वारा चार विवाह तक कर सकने की छूट जरूर है पर साथ ही यह भी अनिवार्य

कर दिया गया है कि उसे अपनी चार पत्नियों का उनकी सामाजिक स्थिति के अनुरूप पालन-पोषण करना पड़ेगा। इसका फल हुआ कि साधारण लोगों को, चार पत्नियों के पालन-पोषण के लायक अपनी आर्थिक स्थिति न होने के कारण एक विवाह से ही संतुष्ट होना पड़ा। निश्चित रूप से तलाक आसान है पर वह, रीति-रिवाज या प्रथा द्वारा निदेशित पुरुष और स्त्री के अलग होने का मुआवजा जैसा है। इन रीति-रिवाजों और प्रथाओं के अन्तर्गत प्रेम-विवाह नहीं आता। बच्चे की वैधता अपनी माँ की स्थिति पर निर्भर नहीं करती बल्कि पिता द्वारा उसे मान्यता दिए जाने पर करती है। पिता द्वारा ऐसा किये जाने पर ही दास-स्त्रियों और वैध पत्नियों के बच्चों को साम्पत्तिक अधिकारों के मामले में समानता प्राप्त होती है।

जहाँ तक प्राचीन आर्थिक व्यवस्था की नींव दास-प्रथा का सम्बन्ध है, हजरत मुहम्मद ने इस दिशा में पुरानी ईसाई चर्च की भाँति ही कुछ खास न किया। पर उन्होंने दासों के कष्ट कम करने का प्रयास जरूर किया। दास के मामले में, चाहे वह युद्ध में बंदी बनाया जाकर दास बनने को मजबूर हुआ हो, चाहे खरीदा गया हो या मालिक के घर में पैदा हुआ हो, कानूनी तौर पर ऐसी वस्तु है जो विरासत में पाई जाती है या किसी को दे दी जाती है। दास के मालिक को दास के शरीर और श्रम पर पूरा अधिकार होता है पर मालिक इसके लिए बाध्य है कि वह उसके साथ अच्छा व्यवहार करे। यदि मालिक किसी दास-स्त्री से अपनी संतति चाहता है, वह उसे घर से बाहर नहीं भेज सकता और उसकी मृत्यु हो जाने पर वह स्त्री गुलामी से मुक्त हो जाती है। सामान्यत: किसी दास को मुक्त करना एक अच्छा काम समझा जाता है। दास अपनी आजादी खरीद भी सकता है यदि उसने प्रयत्नों से इसके लिए जरूरी साधन जुटा लिए हों, यद्यपि स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी उसका अपने मालिक के साथ जो अब उसका ग्राहक हो जाता है, कुछ हद तक निर्भरता की स्थिति होती है।

इस्लाम की दंड-संहिता कुछ-कुछ प्राचीन स्तर की है पर पहले के मूर्तिपूजकों की कानून की धारणा से वह कुछ हद तक अच्छी है। हत्यारे को खून के बदले के रूप में मौत के घाट उतार दिया जाता है। यदि असावधानी से किसी की हत्या हो जाती है तो उसके परिवार में उसके बाद बचे हुए लोगों को क्षतिपूर्त्ति के रूप में एक धन-राशि दी जाती है। शरीर को चोट पहुँचाने के लिए अपराधी से इस आधार पर क्षति-पूर्त्ति की जाती है कि—"आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत।" अप-राधी क्षतिपूर्त्ति के लिए निर्धारित की गई धन-राशि देकर भी मुक्त हो सकता है। चोरी के लिए सजा है कि चोर का दायाँ हाथ काट लिया जाय। यदि वह इसके बाद भी चोरी करता है तो उसे पंगु बनाकर सजा दी जानी चाहिए। पर-स्त्री-गामी के

लिए सजा है एक सौ बेंत लगाये जाना। यदि कोई धर्म-अविश्वासी किसी मुस्लिम महिला के साथ संभोग करता है तो उसे मौत की सजा दी जानी चाहिए। अल्लाह, पैगम्बर और उनके पूर्वजों की निन्दा की सजा भी मृत्यु-दण्ड है और उसी तरह इस्लाम-धर्म छोड़ने की भी, यदि ऐसा व्यक्ति अपनी विश्वासहीनता पर अटल रहता है।

पैगम्बर का चरित्र

पृथ्वी पर आज तक हुए सभी पैगम्बरों में हजरत मुहम्मद ही एक मात्र ऐसे पैगम्बर हैं जिनकी जिन्दगी की छोटी-छोटी बातें भी समूची दुनिया जानती है। वह एक प्रिय अनाथ बच्चे, एक वफादार पति, स्नेहशील पिता और सच्चे दोस्त थे। वे एक सफल व्यापारी, दूरदृष्टिसम्पन्न सुधारक, एक वीर योद्धा, चतुर सेना-नायक, एक आदर्श प्रशासक थे और ऐसा कोई क्षेत्र न था जहाँ उनका वर्चस्व न रहा है। अपनी सभी भूमिकाओं में उन्होंने अपना कर्त्तव्य योग्यता, ईमानदारी और सच्चाई के साथ भलीभाँति निभाया। उनके बारे में कहा जा सकता है कि ऐसी कोई चीज नहीं जिसे उन्होंने न छुआ हो और साथ ही यह बात भी है कि उन्होंने जिस भी चीज को छुआ उसे ठीक किया और सुधार दिया।

पूरी दुनिया जब दमन और अन्याय के नीचे दबी पड़ी कराह रही थी तो वे अवदमित मानवता के उद्धारक के रूप में आये। तेईस वर्षों की छोटी-सी अवधि में उन्होंने बर्बर और अपवित्र अरबों को एक सभ्य और धार्मिक राष्ट्र के रूप में बदल दिया। उन्होंने अपनी जनता को नैतिक और आध्यात्मिक अधःपतन की मृत्यु से अल्लाह, नैतिकता और न्याय की उच्च धारणा की ऊँचाई पर बैठा दिया। उन्होंने जनजातीय गुटबंदी को खत्म कर दिया और पूरे अरब राष्ट्र को एकरूपता का राष्ट्र बना दिया। शत्रु और मित्र, मुसलमान और गैर-मुसलमान आदि सभी उनके लिए और कानून की निगाह में एक जैसे थे। न्याय, बराबरी और सत्य उनके सिद्धान्त थे। वह गरीबी और निःसहाय, कमजोर और अवदमित के स्थायी मित्र जैसे थे। अपने पूर्व धार्मिक नेताओं के विपरीत उन्होंने जीवन के सुख-दुःख सहे। उन्होंने कभी किसी से बदला लेना न चाहा। यही नहीं अपने बड़े-से-बड़े दुश्मन को क्षमा करने और उसके प्रति दया दिखलाने में उन्होंने सुख पाया। इस अर्थ में वे मानवता के पूरे इतिहास में अद्वितीय थे और शायद उनके पहले उन जैसे महापुरुष और कोई न हुआ।

पैगम्बर मुहम्मद के आचरण के पहलू थे आत्मा की उच्चता, आचरण की सादगी, भावनाओं की परिष्कृति और कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा। नम्रता और दया तथा धैर्य और उदारता से उनका आचरण ओत-प्रोत था जिससे वे सब लोगों का

ध्यान अपनी ओर खींच लेते थे। अपने प्रिय जन की मृत्यु से दुःखी अथवा किसी और संकट से ग्रस्त लोगों के प्रति वे कोमलता के साथ सहानुभूति रखते थे। कठिनाई के समय भी वे दूसरों को अपने भोजन से खिला देते थे और अपने इर्द-गिर्द हर आदमी की सुख-सुविधा का ख्याल रखते थे। वह अपने नीचे के लोगों के प्रति ऊँची किस्म की मनुष्यता से पेश आते थे। उनकी जिन्दगी का एक-मात्र मिशन था कि वे लोगों को संगठित करें, स्वतंत्र करें, शिक्षित बनायें। एक वाक्य में कहा जा सकता है कि आदमी को मनुष्य बनाना उनका महान् मिशन था। इस मिशन में ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। उन्होंने अपनी जिन्दगी में अपनी जनता के लिए युद्ध किया और अपनी जनता के लिए जीवनोत्सर्ग कर दिया।

सादगी और निष्ठा, सच्चाई और ईमानदारी हजरत मुहम्मद के आचरण के मुख्य रूप और उनके व्यक्तित्व के हर पहलू में समाये हुए गुण थे। एक गरीब अनाथ बच्चे की अपनी स्थिति से ऊपर उठते-उठते वे एक शक्तिशाली राजा की स्थिति तक पहुँच गए पर उनका रहन-सहन राजा के जैसा न था। उनके पास न हथियार थे, न स्थायी सेना, न अंगरक्षक, न महल, और न कोई स्थायी आमदनी ही। पर फिर भी वह राजा थे। वे मानों सीजर और पोप दोनों के मिले-जुले स्वरूप थे। वे बिना विशाल सेना के सीजर थे और बिना मिथ्याडम्बर के पोप। वे एक विशाल राष्ट्र के शासक थे पर अपने छोटे-छोटे प्रजाजनों से पूरी समानता के आधार पर मिलते थे। अपने ढोर खुद चराते थे, अपने फटे कपड़ों की खुद मरम्मत करते थे और अपनी टूटी चप्पलों की भी मरम्मत करते थे। एक बार मदीना में जब एक मस्जिद बनाई जा रही थी तो उसे बनाने के काम में उन्होंने एक साधारण मजदूर की नाईं मेहनत की और अपने कंधों पर ईंटें ढोईं। "खाई की लड़ाई" में उन्होंने खाई खोदने के काम में हिस्सा लिया। इस प्रकार उन्होंने श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाई और लोगों के हृदय में आदर का स्थान पाया। जब कुरैश से लड़ाई में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तो वे उससे कतई न घबड़ाये। रास्ते के सभी खतरों और बाधाओं के सामने वे बद्धपरिकर खड़े रहे। किसी भी पेशे में लगे किसी भी व्यक्ति के लिए वे आदर्श थे।

अपनी गरिमा और महानता के दिनों में भी वे अपना सादा जीवन उसी प्रकार बिताते रहे जिस प्रकार कठिनाइयों के बीच बिताया था। वे मिट्टी के मकान में रहते थे जैसे कि आज के अरब और सीरिया के पुराने ढंग के मकान होते हैं। उनसे किसी भी समय, कोई भी आदमी मिल सकता था। जो कुछ भी उन्होंने जीवन के अंत में छोड़ा उसे राज्य की सम्पत्ति माना गया। "उनके दैनिक जीवन का व्यवहार, चाहे बड़ा हो या छोटा, आज भी लाखों लोगों द्वारा एक धार्मिक

सिद्धान्त जैसा माना जाता है और जान-बूझ कर उसका अनुसरण किया जाता है। मनुष्य जाति के किसी भी भाग में हजरत मुहम्मद के जैसा सम्पूर्ण व्यक्तित्व नहीं मिलता जिसके कामों की नकल आज भी की जाती हो।"[१५]

क्या हजरत मुहम्मद प्रवर्त्तक थे ?

अपने सभी कार्य-कलापों में हजरत मुहम्मद प्रवर्त्तक न थे और इस बात को उन्होंने बार-बार दुहराया है। यहाँ तक कि उनका धर्म भी नया न था। उन्होंने जोर देकर कहा है कि उनका धर्म नया नहीं है और अब्राहम से लेकर उस समय तक हुए सभी पैगम्बरों ने जिस भी धर्म की शुरुआत की हजरत मुहम्मद का धर्म भी वैसा ही है। उन्होंने कहा कि उनका आह्वान केवल इस बात के लिए है कि चिरन्तन सत्य सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना और कार्यान्वियन हो। इस पुनर्स्थापना से न्याय और उनके सभी अनुयायियों का मोक्ष सुनिश्चित हो सकेगा। सभी के लिए न्याय, जो सभी के पारस्परिक सहयोग पर आधारित हो, शांति और समृद्धि की सर्वोत्तम गारण्टी है। जहाँ तक मानवीय मूल्यों का संबंध है यह कोई नई बात न थी। वास्तव में छठी सदी के मध्य में हुए हजरत मुहम्मद के परदादा इब्राहीम ने परस्पर-सहयोग के इसी सिद्धान्त से मक्का में समृद्धि का रास्ता दिखलाया था। यह सहयोग इसमें भाग लेने वाले विभिन्न गुटों के बीच, विभिन्न स्तरों पर कायम किया गया था। मक्का के राष्ट्रमंडल की मूलभूत कमजोरी उसमें शामिल लोगों के बीच का भेदभाव था जिस कारण व्यवस्था के दुरुपयोगों से उसपर खतरा पैदा हो गया। हजरत मुहम्मद द्वारा यह नया कदम जरूर उठाया गया, जिससे उन्हें प्रवर्त्तक माना जा सकता है, कि नये राष्ट्रमंडल (उम्मा) के सदस्य अपने सभी कार्यकलाप में परस्पर सहयोग के सिद्धान्त का कड़ाई के साथ पालन करें। पैगम्बर मुहम्मद ने एक ऐसे धर्म की स्थापना की जिसके सभी सिद्धान्तों में सभी लोगों के बीच पारस्परिक सहयोग की अनुगूंज है। नेता हजरत मुहम्मद ने सभी मानवीय सम्बन्धों में पारस्परिक सहयोग के आधार पर एक समुदाय कायम किया। पर इस सामाजिक संगठन में मूलभूत रूप से कोई नई बात न थी। यह समुदाय या संगठन निश्चय ही अरब था जो अरब की परम्पराओं पर आधारित था और अरब ढांचे में ढला हुआ था। अगर कोई नई बात थी तो यह थी कि इसकी स्थापना में पैगम्बर मुहम्मद ने अपनी विलक्षण सांगठनिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया था। अरब स्वरूपों का इस्तेमाल करते और अरब परम्पराओं के अनुरूप आगे बढ़ते हुए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि लोग पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्तों का सबसे अच्छी तरह लाभ उठाते

१५. डी० एच० होगार्ड, अरेबिया, ऑक्सफोर्ड, १९२२, पृ० ५२।

हुए कार्य करें। इस प्रकार वंश आधारभूत सामाजिक इकाई है जैसा कि बराबर से रहा है और वंश **उम्मा** की अधि-संरचना में समाया हुआ-सा है। उम्मा से जुड़े हुए हजारों हजार लोग, समानता के आधार पर, उसी संगठन के सदस्य हैं। हजरत मुहम्मद ने किसी राज्य की स्थापना न की और न ही उन्होंने अरबों को एकताबद्ध किया। उन्होंने तत्समय मौजूद शासन को लिया और उसमें यथासंभव कम-से-कम परिवर्त्तन किए। पर चूंकि उनमें संचालन की अपूर्व क्षमता थी, वे इस बात को कभी न भूले कि उन्हें कहाँ जाना है? उनके द्वारा किए गये सूक्ष्म परिवर्त्तनों का दूरव्यापी, संचयी प्रभाव हुआ जिससे न केवल उनकी सन्तुलित क्रांति सफल हुई बल्कि एक विश्वव्यापी धर्म की भी, कामयाब तरीके से, बुनियाद पड़ी।

एक सुधारक के रूप में पैगम्बर मुहम्मद

इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद संसार में अब तक हुए सबसे बड़े सुधारक थे। उनके आगमन से पूर्व अरब पापों, अन्धविश्वासों और बर्बरता में आकण्ठमग्न था। सामाजिक असमानता, भ्रष्ट महिला-समाज, दासता, मद्यपान, विलासिता, जुआखोरी, लूट, लोगों में एक दूसरे के खून की प्यास और इसी प्रकार के जघन्य पापों का अरब में बोलबाला था। उस समय अरब जितने पतित थे उतना शायद ही कोई और होगा। साथ ही अरब जितने असंगठित थे उतना असंगठित कोई और न होगा। अरब में मूर्त्ति-पूजा बड़े पैमाने पर जारी थी और वहाँ उसकी जड़ें बहुत भीतर तक पैठ चुकी थीं। पृथ्वी पर अरब जैसा अंध-देश शायद कोई और न होगा। मुहम्मद साहब के पहले किसी और पैगम्बर ने अरबों को सुधारने जैसी भीषण समस्या सुलझाने के बारे में सोचा तक न था। पैगम्बर मुहम्मद ने उन समस्याओं पर कठोरतापूर्वक प्रहार किया और अंत में उन पर विजय पाई।

जनजातियों के बीच झगड़ों और एक दूसरे पर आक्रमणों ने अरब को सतत उपद्रवग्रस्त और अशांत क्षेत्र बना दिया था। पूरे प्रायद्वीप में राजनीतिक अनैक्य व्याप्त था। पैगम्बर ने सभी युद्धरत जनजातियों को एकता के सूत्र में बांधा और उनको एक शक्तिशाली राष्ट्र में परिणत किया। उन्होंने अरबों को मदीना में स्थापित एक मात्र सरकार के अधीन लाने में सफलता पाई। सरकार के नीति-निर्धारण में जनसाधारण को भी अपनी राय देने का अधिकार दिया गया। पैगम्बर ने एक सुव्यवस्थित संहिता तैयार की और देश में शांति-समृद्धि सुनिश्चित करने के उपाय किए।

अरब इस्लाम के पूर्व की अवधि में भ्रष्ट थे। वे लोग बुतपरस्त और अंधविश्वास में अकंठ-मग्न थे। उन लोगों ने अपने देवताओं को नर और मादा में बांट

रखा था। अकेले कावा में ३६० मूर्तियाँ रखी गई थीं। जब तक पैगम्बर ने उन बेजान मूर्ति को हटा न दिया तब तक अरब उन मूर्तियों की पूजा करते रहे। हजरत मुहम्मद ने मूर्त्ति-पूजकों में केवल एक ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने और उन्हीं की पूजा करने की ओर उन्मुख किया। अरब लोग अक्सर अनेक देवी-देवताओं की निर्जीव पूजा करते हुए अपने कर्त्तव्य और जिम्मेदारियाँ भूल जाते थे। हजरत मुहम्मद ने तेईस वर्ष की छोटी अवधि में अपवित्र अरबों को एक धार्मिक राष्ट्र में परिवर्त्तित कर दिया।

यही नहीं, हजरत मुहम्मद महान समाजवादी थे। उन्होंने पाया कि आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोगों का शोपण सूदखोर करते थे। उन्होंने सूदखोरी को हराम (निषिद्ध) करार दिया। और समाज में जकात, सदाह और फित्र आरंभ किये। समाज में धन के वँटवारे से पूंजीवाद को मर्मान्तक आघात लगा। उन्होंने इस पर जोर दिया कि लोगों को व्यापार और कृषि की ओर ध्यान देना चाहिए क्योंकि इससे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के निर्माण में मदद मिलेगी।

इस्लाम के पैगम्बर ने सबसे वड़ा सुधार किया वह था सामाजिक असमानताएँ दूर करना। इसके बहुत महत्त्वपूर्ण और दूरव्यापी परिणाम हुए। उनको यह बात बहुत अटपटी लगी कि किसी विशेप परिवार या देश का होने के कारण आदमी-आदमी के बीच फर्क किया जाय। उन्होंने उन सभी कृत्रिम दीवारों को ढाह दिया जो धन-कार्य और रंग के विशेपाधिकारों को रक्षा प्रदान करती थीं। उनका उद्घोप था कि सभी आदमी बराबर हैं और उनमें यदि सर्वोच्च किसी को माना भी जाए तो उसे माना जाय जो अल्लाह के प्रति बहुत आज्ञाकारी हो और बिना किसी भेद-भाव के, सबके फायदे का काम करता हो। इस तरह उन्होंने विश्वव्यापी भ्रातृत्व की स्थापना की जिसमें ऊँचे और नीचे, अमीर और गरीब तथा काले और गोरे एक भ्रातृत्व में बँधे हुए थे। "अल्लाह आपका वंश और चेहरा नहीं देखता," पैगम्बर कहते हैं, "पर वह तुम्हारे दिल में झांक कर देखता था...... तुम यानी वह जो अल्लाह के सबसे ज्यादा प्यारे हो और अल्लाह की सृष्टि की पवित्रतम रचना।" इस मामले में पैगम्बर का उद्देश्य यह था कि समूची मानवता को मात्र एक वर्ग, एक समुदाय और राष्ट्र के रूप में एक मंच पर ले आया जाय जिसमें सभी लोगों का आदर्श एक हो और विशेषाधिकार भी एक ही जैसे। पैगम्बर ने अरबों के बीच प्रचलित दास-प्रथा को भी समाप्त करने की कोशिश की। न केवल अरब में बल्कि यूनानियों, रोमवासियों, यहूदियों और ईसाइयों के बीच भी दास-प्रथा प्रचलित थी। दासों के मालिक अपने अधीन के दासों के साथ घोर हृदयहीनता का व्यवहार करते थे और यह मालिकों के ही वश की बात थी कि वे अपने दासों को जिन्दगी बख्शें या

नहीं। ईसाइयों ने दास-प्रथा को एक मान्यताप्राप्त संस्थान का रूप दे रखा था और उन्होंने दासों की भलाई के लिए कुछ भी न किया। वह हजरत मुहम्मद ही थे जिन्होंने दासों की स्थिति ऊपर उठाने के लिए जो कुछ संभव था, किया। उन्होंने जोर देकर कहा दासों को मुक्त करने से बड़ी, अल्लाह को स्वीकार्य सेवा और कुछ नहीं है। उन्होंने अनेक दासों को इसलिए खरीदा कि उन्हें मुक्त कर सकें। उन्होंने अपने अनुयायियों को परामर्श दिया कि वे दासों के साथ दया और न्याय का सलूक करें।

हजरत मुहम्मद द्वारा किया गया एक और कल्याणकारी सुधार था स्त्रियों की स्थिति में सुधार। इस्लाम के पूर्व किसी और धर्म ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार की दिशा में कुछ भी न किया। उनको कड़वी नफरत और घृणा के साथ देखा जाता था। संसार में किसी भी जगह स्त्रियों को वह अधिकार नहीं मिला जो उन्हें पुरुषों की भागीदार की हैसियत से मिलना चाहिए। पुराने एथेन्स राज्य में, जो अपने समय के राज्यों में सबसे ज्यादा सभ्य और सुसंस्कृत माना जाता था, पत्नी अपने पति की सभी मौज और सनक को, सर झुका कर मानने को बाध्य थी। उसे परिवार के प्रधान की इच्छा मात्र से बेचा और एक हाथ से दूसरे हाथ में अंतरित किया जा सकता था। उसे पिता और पति की सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाता था।

इस्लाम ने महिलाओं को ऐसे अधिकार और विशेष सुविधायें दी हैं जो उन्हें पहले, किसी के भी द्वारा न दी गई थी। कुरान कहता है—"स्त्री को पति के सम्बन्ध में वे ही अधिकार मिलने चाहिए जो पति को स्त्री के संबंध में मिले हैं।" सभी वैधिक शक्तियों और कार्यों को उपयोग के संबंध में उसे पति के बराबर ही अधिकार दिया गया है। जहाँ तक पैतृक धन और व्यक्तिगत सम्पत्ति का संबंध है, मुस्लिम महिलाओं को जितने अधिकार मिले हुए हैं उतने किसी और धर्म की महिलाओं को नहीं। बालुकामय प्रदेश (अरब) पैगम्बर मानव जाति के अर्द्धांश यानी महिला जगत की दुर्दशा देख अत्यन्त द्रवित हुए। उन्होंने अपने धर्म का एक मुख्य उपदेश यह बतलाया कि स्त्री के प्रति, यदि इसे जबर्दस्ती भी लागू करने की जरूरत हो, आदर-भाव रखा जाना चाहिए। उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट कहा कि "माँ के कदमों के नीचे जन्नत है और अपने पति के घर की प्रधान महिला ही है।" उन्होंने यह भी कहा—"तुम लोगों में सबसे अच्छा वह है जो अपनी बीवी की इज्जत करता है।" हजरत मुहम्मद ने औरतों को अपना खाविंद (पति) चुनने और अपने पिता और (मृत हो जाने पर) पति की जायदाद में अपने हिस्से का उपभोग करने की आजादी देकर उसे पुरुषों के बंधन से मुक्त कर दिया है। नवजात बच्चों को, दहेज के डर से, मार डालने पर उन्होंने हमेशा के लिए पूरी पाबन्दी लगा दी है। औरत अब अपने

निष्ठुर पति के दमन और अन्याय का शिकार न रही। हजरत मुहम्मद के पहले अरब प्रेतात्माओं, राक्षसों, परियों और इसी प्रकार के अन्य अंध-विश्वासों को मानते थे। हजरत मुहम्मद ने अरबों को अंधविश्वास की कड़ियों से मुक्त किया। इस तरह उन्होंने अरब की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्त्तन किया और स्वभावतः अपने युग के सबसे बड़े क्रान्तिकारी कहलाये।

राष्ट्र-निर्माता के रूप में पैगम्बर

हजरत मुहम्मद न केवल सामाजिक सुधारक वल्कि एक शक्तिशाली राष्ट्र-निर्माता भी थे। वास्तव में उन्होंने ही विभिन्न जातियों के लोगों के बीच एकता कर उन्हें एक ही सामाजिक इकाई के झंडे के नीचे लाने का प्रयत्न किया। यह वे ही थे जिन्होंने सभी जातियों और धर्मों की उपेक्षा करते हुए सभी वर्गों के लोगों की सद्भावना और सहयोग के आधार पर एक साम्राज्य की स्थापना की और इस कार्य में सफलता पाने वाले भी एक मात्र वे ही थे। उन्होंने मदीना में एक गणतन्त्र की स्थापना और न्याय-संहिता (शरीयत) की रचना की जिसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न जातियों और वंशों के लोगों पर बिना किसी भेदभाव के, शासन किया गया। पैगम्बर मुहम्मद द्वारा इस्लाम के राष्ट्रमंडल पर दस वर्षों तक शासन किया गया तथा इस अवधि में अरब जनता में परिवर्त्तन की शक्तिशाली हवा वही। उन्होंने विभिन्न जातियों और नगरों के प्रतिनिधियों को एक समिति के रूप में चुना और उन लोगों पर, आपस में मिल-जुल कर, आंतरिक और जनजातियों के बीच के झगड़ों को सुलझाने का भार सौंपा। इस प्रकार से क्रूरतापूर्वक पारस्परिक वैर-भाव का अन्त हुआ और व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहन मिला।

मदीना में पहुँचने के बाद उन्होंने जो अधिकार-पत्र निर्गत किया उसमें मुसल-मानों और गैर-मुसलमानों दोनों के जीवन, सम्पत्ति और धर्म की सुरक्षा की गारण्टी दी गई है। वे वैसे सर्वप्रधान और सर्वप्रमुख पैगम्बर—राजनेता थे जिन्होंने दुनिया में आपस में संघर्परत धर्मों के बीच स्थायी शांति की व्यवस्था की। उन्होंने अपना संरक्षण देने में कोई भेद-भाव न किया और उनमें अपने पहले हुए पैगम्बरों के प्रति कोई द्वेष या ईर्ष्या-भाव विल्कुल न था। उन्होंने अपनी जनता से कहा कि वे संसार में हुए सभी धार्मिक नेताओं के प्रति विश्वास रखें। संसार में उनके पहले हुए किसी भी पैगम्बर ने अपने अनुयायियों को दूसरे धार्मिक पैगम्बरों पर विश्वास करने का उपदेश न दिया था।

पैगम्बर के आने से पहले अरबों में कोई एकता न थी। प्रायद्वीप विभिन्न जन-जातियों के बीच विभाजित था और वे आपस में अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए लड़ते-

भिड़ते रहते थे। जबकि अरब में अव्यवस्था और अशांति का बोलबाला था तो उसी समय उनके बीच पैगम्बर का आविर्भाव हुआ। अपनी विलक्षण सूझ-बूझ के कारण अरब की स्थिति समझने में उन्हें कोई देर न लगी और उन्होंने अपना जीवन और मस्तिष्क अरबों के कल्याण के लिए लगा दिया। आपस में एकता के अभाव और लगातार अंदरूनी झगड़ों के चलते अरब सुरक्षा-विहीन हो गये थे जिससे दुश्मन उनकी आजादी के लिए सहज ही खतरा पैदा कर सकता था। इसलिए सर्वाधिक आवश्यकता थी एकता की। पैगम्बर ने अरब के युद्धरत पक्षों के बीच एकता तुरत स्थापित की। उन्होंने उन लोगों को एक सुसम्बद्ध मुस्लिम भ्रातृत्व के सूत्र में बांध दिया। अरबों के विभिन्न समुदायों को एक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से हजरत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों से यहाँ तक कहा कि वे मूर्तिपूजकों तथा धर्मविश्वासियों को गालियाँ न दें। दरअसल इस धरती पर उनका आगमन ही इस प्रयोजन के लिए हुआ था कि वे विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच समझौते का मार्ग दिखलाएँ और जनता में पारस्परिक सद्भावना और एकता स्थापित करने का वातावरण बनाएँ। अरब की जनता के किसी भाग को, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, पैगम्बर की सरकार के क्षेत्राधिकार से अलग न रखा गया। और फिर जो जमीन, संघर्षों और लड़ाई-झगड़ों का केन्द्र थी, वहाँ शांति और समृद्धि की सुखदायक हवा के झोंके बहने लगे।

पैगम्बर मुहम्मद—संक्षिप्त आकलन

अनेक गैर-अरब इतिहासकारों ने पैगम्बर मुहम्मद के बारे में लिखा है कि मदीना की घटनाओं के बाद वे (पैगम्बर मुहम्मद) एक आदेश पर आदेश देने वाले महत्वोन्मादी शासक बन गये और अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सभी नियम-कानून बदलने लगे। पर हजरत मुहम्मद पर यह आरोप सर्वथा अनुचित है। जब तक उन्होंने अपने कार्य-कलाप के लिए एक केन्द्र न बना लिया तबतक विजय के उनके सारे इरादे बेकार ही होते। उन्होंने शुरू से ही अरब में इस्लाम की स्थापना के प्रयास किए। यह मान लेना जरूरत से कहीं ज्यादा होगा कि उनके द्वारा किये गए सभी रहस्योद्घाटन बिल्कुल ठीक हैं पर उनका विश्वास था कि वे, निःसंदेह अल्लाह का पैगाम लेकर आये हैं और अल्लाह की ही इच्छा कार्यान्वित करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य है और मदीना की घटना के बाद उन्होंने यदि अपनी पूर्व विनम्रता और निष्क्रियता के स्थान पर अपने विरोधियों तथा धोखा देनेवालों के प्रति आक्रामकता और कहीं-कहीं हृदयहीनता का रुख अपनाया तो उसका मतलब मात्र यह था कि कठिनतम बाधाएँ पार करने के बाद उन्हें जो शक्ति हासिल हुई थी, उसका उपयोग वे, पुनः जनहित में ही कर रहे थे। यदि वे महात्मा गांधी की भांति निष्क्रिय विरोध का रास्ता अपनाते तो वे अबू सूफयान जैसे अप्रशम्य और कठोर शत्रु से पार न

पाते। अपने पराजित शत्रु के प्रति वे दया भी दिखला सकते थे, इसका प्रमाण उन्होंने मक्का और तैफ में तब दिया जब कुरैशियों ने अपनी पराजय के बाद हजरत मुहम्मद के सद्व्यवहार के कारण ही उनका धर्म अपनाया और वे मुहम्मद साहब के मित्र और उनके धर्म में विश्वास करने वाले बन गए।

और ऐसे थे पैगम्बर मुहम्मद। पैगम्बर बन जाने के बावजूद एक सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति। मक्का का एक व्यापारी जिसने यह आह्वान महसूस किया कि वह जिस दुष्ट दुनिया में रहता है, उसे बदलने की जरूरत है। वह लड़का, जो एक ईसाई पादरी के प्रभाव में पला-बढ़ा और युवावस्था में जाकर इस बात के लिए कृतसंकल्प हो गया कि उसे अरबों को बदलना है और उनकी बुतपरस्ती खत्म कर सिर्फ एक अल्लाह में ही उनके विश्वास को जगाना है। हाँ, यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि उनका धर्म पूरी तरह उनकी अपनी मौलिक सर्जना न थी और यह भी कि उन्होंने ईसाइयों और यहूदियों के धर्मों से बड़े पैमाने पर भाव लिए और यहाँ तक कि गैर-मुसलमानों के रीति-रिवाजों में से भी कुछ को लेकर इस्लाम के नियमों और धार्मिक क्रियाओं को तैयार किया। एक बात, निश्चित रूप से कही जा सकती है कि उन्होंने अपने देशवासियों को जितना ठीक से समझा उतना और किसी ने भी न समझा था। अपनी जनता के बारे में उनकी इस लामिसाल समझदारी के चलते ही वे लोगों के बीच स्वार्थ-भावना और अंधविश्वासों पर विजय पा सके और एक ऐसे धर्म के सृजन में सफल हुए जो आज अंततः मानवता के आठवें हिस्से के हृदय पर विजय पाने में सफल हो सका है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उनकी सफलताओं और उपलब्धियों को देखते हुए हजरत मुहम्मद, एक मनुष्य, एक शिक्षक, एक व्याख्याता, एक लेखक, एक राजनेता और एक योद्धा के रूप में विश्व के सम्पूर्ण इतिहास में एक अद्वितीय और लामिसाल हस्ती हैं। उन्होंने एक धर्म—इस्लाम—की नींव डाली, एक राज्य—खलीफा-शासित राज्य—की शुरुआत की, एक संस्कृति—अरब-इस्लामी संस्कृति—का आरंभ किया। और एक राष्ट्र—अरब राष्ट्र—स्थापित किया। लाखों-लाख लोगों के जीवन में हजरत मुहम्मद अभी भी एक जीवन्त शक्ति हैं।

●

अध्याय-३

पैगम्बर मुहम्मद के अधीन प्रशासन

पैगम्वर मुहम्मद एक राजनीतिक नेता, सैनिक और राजनेता ही न थे वल्कि एक वड़े प्रशासक भी थे। दस वर्षों (सन् ६२२-६३२) के लिए वे इस्लाम के राष्ट्र-समूह के अध्यक्ष थे। उनके धार्मिक प्रचार ने न केवल राजनीतिक स्थिति में सम्पूर्ण परिवर्त्तन आरंभ किया बल्कि सामाजिक स्थितियों पर भी उसका उतना ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। प्रारंभिक वर्षों में गरीब और बेसहारा लोग अपने भरण-पोषण के लिए मदीना के खुशहाल लोगों की उदारता और आतिथ्य-भावना पर ही निर्भर करते थे। उन खुशहाल लोगों ने पैगम्वर के उपदेशों को स्वीकार कर अपना भाग्य उनके साथ ही जोड़ दिया था। युद्ध से प्राप्त धन का वँटवारा करने का काम पैगम्वर ने खुद अपने ऊपर ले लिया था। इस प्रकार उन्होंने अपने सम्प्रदाय में विवादों और फूट के कारणों को समाप्त कर दिया था। अपने अनुयायियों के लिए वे ही सव कुछ थे। यदि वे धन की कमी और गरीवी से पीड़ित होते तो उनके साथ उनके अनुयायी भी पीड़ित होते। फिर भी पैगम्वर मुहम्मद अपने सवसे नजदीकी संवंधियों को ही प्राथमिकता देते। कोई भी अरव इसे अनुचित न मानता था। वे अपने सवसे अच्छे गुणों से जोरों के साथ जुड़े रहे। इन गुणों में अरवों की सच्ची उदारता भी थी। उनमें यह उदारता केवल अपने संवधियों के लिए न थी वल्कि सवके लिए थी। वे अपने द्वारा निर्धारित सिद्धान्त के प्रति वरावर सच्चे वने रहे। यह सिद्धान्त सभी मुसलमानों के वीच समानता और भ्रातृत्द का था। यह सिद्धान्त पूरे संसार में लागू किये जाने के लिए था। पैगम्वर अपने प्रति निष्ठावान सभी लोगों की सम्पत्ति के प्रवंधक थे। यदि उनमें से कोई लिए हुए ऋण को न चुका पाता तो उसे चुकाने की जिम्मेदारी पैगम्वर अपने ऊपर लेते। वुखारी ने एक हदीस लिख छोड़ी है जिसमें कहा गया है कि—"जव कोई मुसलमान मर जाता तो पैगम्वर पूछते कि क्या मरने वाले ने इतनी पर्याप्त सम्पत्ति छोड़ी है कि उसके कर्ज की अदायगी हो सके?" यदि इसका उत्तर हां में होता तो उसका अंतिम कामकाज वे खुद करते। यदि उत्तर हां में न होता तो वे उसके कामकाज की जिम्मेदारी सम्प्रदाय के अन्य लोगों पर छोड़ देते। अपनी विजय के वाद उन्होंने कहा—"मुसलमान जितने अपने नजदीक हैं मैं उससे ज्यादा उनके नजदीक हूं। यदि उनमें से

कोई मर जाता है और अपने पीछे ऋण छोड़ जाता है तो उसे चुकाने की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूं। यदि कोई सम्पत्ति छोड़ जाता है तो वह उसके वारिसों की होगी।"

सामाजिक और आर्थिक संगठन

इस्लाम के पूर्व अरबों के जनजातीय संगठन में रेगिस्तानी क्षेत्रों में शेखों का विकेन्द्रीकृत शासन था और उपजाऊ क्षेत्रों में छोटे-छोटे राजाओं और सरदारों का शासन था। इस्लाम के बाद उनकी एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार बन गई जिसमें सबके लिए एक ही कानूनी, नैतिक और धार्मिक संहिता या नियमावली थी। बद्दुओं की प्राचीन, अलग-थलग और करीब-करीब स्थितिशील सामाजिक व्यवस्था बुरी तरह हिल गई और उसके स्थान पर एक गतिशील और आक्रामक सामाजिक व्यवस्था स्थापित हुई। समाज का आधार पहले वंशगत था और कार्यरूप में वह अभी भी कायम था। अब उसके स्थानों पर ऐसा समाज आया जो कम-से-कम सिद्धान्त के रूप में धार्मिक भाई-चारे पर आधारित था जिसने भौगोलिक सीमाओं और जातिगत या भाषागत मतभेदों का अतिक्रमण किया।

बद्दुओं का प्राचीन आर्थिक संगठन समतावादी थी। शहरों में सम्पत्ति के तीन रूप थे—साम्प्रदायिक, निजी और सामन्ती।

इस्लामी क्रान्ति अधिकांश अरबों को उनकी जनजातीय स्थिति से बाहर खींच लाई और उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संगठन के रास्ते पर ला खड़ा किया। यह उनके विकास का दूसरा चरण था। घुमन्तू अरब, जिसकी जीविका के साधन बहुत अनिश्चित थे, अब अल्लाह के रास्ते में नियमित सिपाही था। अब उसे बड़ी सम्पदा और काफी धन-दौलत का स्वामी होना निश्चित-सा था। दास-प्रथा को बहुत बड़ा धक्का लगा और जहाँ तक अरब राष्ट्र के लोगों का संबंध था, कुछ ही वर्षों में दास-प्रथा समाप्त हो गई। पहली बार माँ-बाप की सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकार को मान्यता मिली। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस्लाम ने प्राचीन समतावादी बद्दू समाज को एक ऐसे समाज में परिणत किया जिसमें निजी जमीन-जायदाद रखने वाले लोग थे।

सार्वभौम अधिकार

इस्लामी राज्य का सार्वभौम अधिकार अल्लाह के हाथों में होता है। अल्लाह ने अपनी इच्छा कुरान के जरिए पैगम्बर को बतलाई। अल्लाह के उद्घाटित रहस्यों के रूप में कुरान पैगम्बर समेत सभी मुसलमानों पर बाध्यकारी है। कुरान

की आज्ञाओं को कार्यरूप देने के लिए जिन विषयों पर कुरान ने कुछ भी नहीं कहा है उनके संबंध में पैगम्बर सर्वोच्च अधिकारी हैं।

बोदां, हाब्स, आस्टिन आदि विचारकों ने कहा है कि भगवान के कानूनों को मानना पूरी सार्वभौमता के लिए बाधक नहीं है। इस कथन के अनुरूप भी पैगम्बर पूरे सार्वभौम थे। उनके व्यक्तित्व में पैगम्बर और सार्वभौम दोनों ही रूप समाहित थे।

यद्यपि पैगम्बर का प्राधिकार सर्वोच्च था पर वे सभी महत्वपूर्ण मामलों में अपने प्रमुख सहयोगियों से सलाह-मशविरा करते थे। वे पैगम्बर, कानून देने वाले, शासक, सेनापति, मुख्य न्यायाधीश और पूरे प्रशासनिक यंत्र के प्रधान थे। वे सामाजिक संबंधों का विनियमन और नियंत्रण करते थे और साथ ही कुरान की व्यवस्थाओं के आधार पर कानून बनाते थे और उनको लागू करते थे। वे सेना जुटाते थे और उनका संचालन करते थे। वे क्षेत्रों पर कब्जा करते थे और उन पर शासन करते थे।

मदीना पहुँचने पर पैगम्बर ने सबसे पहले एक मस्जिद बनवाई। इस मस्जिद को पैगम्बर की मस्जिद (अल-मस्जिदुन नबवी) कहा जाता था। यहीं इस्लामी राज्य का कार्यालय बना। वे शासन के अधिकांश कार्य वहीं से निबटाते थे। पैगम्बर की मस्जिद प्रार्थना-घर भी था और उनका कार्यालय और इजलास भी। उन्हें बहुत सारा पत्राचार करना पड़ता था। विभिन्न जनजातियों को पत्र भेजने पड़ते थे, संधियां करनी पड़ती थीं और गवर्नरों तथा कर वसूल करने वालों को आदेश देने पड़ते थे। यह सब काम मस्जिद में किया जाता था। पैगम्बर के जीवन-काल में शासन आदि के लिए कोई दूसरा कार्यालय न बना। इसके अलावे, मस्जिद पैगम्बर का इजलास भी थी जहाँ वे मामलों को सुनते थे और झगड़ों को निबटाते थे।

पैगम्बर का सचिवालय

अली और उसमान पैगम्बर द्वारा किये गये रहस्योद्‌घाटनों को अंकित करते थे। उन दोनों की अनुपस्थिति में यह काम उबै बिन काब और जैद बिन थबित किया करते थे। अज ज़ुबैर बिन अल-अव्वाम और अल-जुहैयम बिन अल-साल्त अज जकात और सदाक के जरिए इकट्ठा की गई सम्पत्ति के कागज-पत्र और अभिलेख रखते थे। हुदैहफा बिन अल-यमन खजूर और ताड़ के पेड़ों से हुई आय का लेखा-जोखा तैयार करते थे। अल-मुगिरन बिन शुबाह और अल-हसन बिन नामिर लोगों के बीच हुए लेन-देन को अंकित करते थे। अब्दुल्लाह बिन अल-अल

अरकाम और अल-अला बिन उकबा जनजातियों और उनके द्वारा संचित पानी का अभिलेख रखते थे और साथ ही पुरुष और महिला अंसारों (मददगारों) का भी अभिलेख रखते थे। जैद-बिन थबित राजाओं और जनजातियों के प्रधानों को भेजी जाने वाली चिट्ठियाँ तैयार करते थे। कभी-कभी अब्दुल्ला बिन अरकम इस काम पर लगाया जाता था। मुआयकिब बिन अबी फातिमा राज्य की आय (अल-मगानिम) का अभिलेख रखते थे। मजा लाह बिन अल-रबी को पैगम्बर का सचिव कहा जाता था और उसके पास पैगम्बर की मुहर रहती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पैगम्बर के जीवन-काल में ही अपने प्रारंभिक रूप में एक सचिवालय बन गया था।

प्रान्तीय प्रशासन

अरब समुदाय में एकता लाने और उसे सुदृढ़ करने के बाद पैगम्बर ने अरब प्रायद्वीप को पहले के इतिहास और भौगोलिक स्थिति के आधार पर अनेक प्रान्तों में बाँट दिया। मदीना पूरे राज्य की राजधानी थी। उस नगर और उसके आस-पास के क्षेत्रों का प्रशासन सीधे पैगम्बर के अधीन था। अरब क्षेत्र मदीना, तयमा, जनद, बनू किन्दाह के क्षेत्र, मक्का, नजरान, यमन, हद्रामाउंट, उमान और बहरैन में बाँट दिया गया। इनमें से हर एक प्रान्त में पैगम्बर ने गवर्नर (अल-वाली) को नियुक्त किया और उसे आदेश दिया गया कि वह प्रान्त में न्याय और व्यवस्था की स्थिति ठीक रखे और न्याय के प्रशासन का भी प्रबंध करें। वाली अपने कामों के लिए पैगम्बर के प्रति जिम्मेदार था। वह अपने क्षेत्र में वे ही काम करता था जो पैगम्बर मदीना में करते थे। केवल पैगम्बर के रूप में हजरत मुहम्मद के कार्य वह न करता था।

गवर्नरों के अलावा पैगम्बर मुहम्मद ने हर जनजातीय क्षेत्र में समाहर्त्ताओं (एक वचन-अलअमीन) को नियुक्त किया जो निर्धन कर (जकात) और स्वेच्छा से दी गई भीख (सदकात) इकट्ठी करते थे। समाहर्त्ता विशेषज्ञ लोग होते थे जिन्हें पैगम्बर जकात की वसूली के लिए नियमों में प्रशिक्षित करते थे। पैगम्बर द्वारा नियुक्त पदाधिकारी बहुत अच्छे चरित्र के एवं ईमानदार होते थे। उनमें से किसी के भी विरुद्ध कहीं से शिकायत न आती थी।

पैगम्बर स्वयं राज्य के मुख्य न्यायाधीश का काम करते थे जिनका कार्यालय मदीना में था। प्रान्तों के न्यायाधीशों (एक वचन काजी) को या तो पैगम्बर स्वयं नियुक्त करते थे या गवर्नरों को आदेश दिया जाता था कि वे पैगम्बर द्वारा दिये गये व्यक्तियों के नामों में से न्यायाधीश की नियुक्ति करें। पैगम्बर बहुत प्रसिद्ध विद्वानों

को, जिनका चरित्र भी उत्तम होता था, न्यायाधीश के पदों पर नियुक्त करते थे। अली और मुआज़ बिन जबल न्यायाधीशों में से थे।

राजस्व के स्रोत

दरअसल इस्लाम-पूर्व अवधि में कोई केन्द्रीय प्राधिकार या सरकार न थी। इसलिए, स्वभावतः, कोई भी व्यक्ति सरकार के आय और खर्च के बारे में कुछ भी न जानता था। पैगम्बर मुहम्मद ने ही पहले-पहल अरब में केन्द्रीय सरकार स्थापित की। उन्होंने ही पहले-पहल अरब में सार्वजनिक कोषागार भी स्थापित किया। पैगम्बर के समय मुस्लिम राज्य के राजस्व के पाँच स्रोत थे—

(१) युद्ध में प्राप्त वस्तु (अल गनीमा)।
(२) (क) निर्धन कर (जकात)।
    (ख) स्वेच्छा से दी गई भीख (सदकात)।
(३) प्रति व्यक्ति कर (जजिया)।
(४) भूमि कर (खिराज)।
(५) राज्य कर (फे)।

गनीमा :

गनीमा में अस्त्र-शस्त्र, घोड़े और अन्य चल सम्पत्ति होती थी जो धर्म में विश्वास न करने वाले लोगों से युद्ध में प्राप्त की जाती थी। इस लूट के अस्सी प्रतिशत हिस्से को उन सैनिकों में वितरित किया जाता था। घुड़सवार को पैदल सैनिक के मुकाबले लूट का माल दुगुना मिलता था।[1] जैसा कि इस्लाम के पूर्व के जमाने में होता था, ऐसे सैनिक को, जो लड़ाई में किसी शत्रु-सैनिक को मार डालता था, लूट के माल में अपने सामान्य हिस्से के अलावा सलाब मिलता था। लूट के माल में जो पाँचवाँ हिस्सा बच जाता था, वह अल्लाह और पैगम्बर यानी राज्य को मिलता था। उसका इस्तेमाल कुरान के अनुदेशों के अनुसार होता था। उससे पैगम्बर के रिश्तेदारों, अनाथों, जरूरतमंदों, राहगीरों और मुस्लिम सम्प्रदाय के सामान्य हितों का खर्च चलता था। इस्लाम की सेना से लड़ाई करने वाले मर्द, औरत और बच्चे युद्धबंदी बना लिए जाते थे। उनको भी गनीमा या लूट के

१. यह बात अबू हनीफा की रिपोर्ट के अनुसार है। अबू यूसुफ का कहना है कि पैगम्बर दो हिस्से घोड़े को देते थे और एक घुड़सवार को। इस प्रकार उसके अनुसार घुड़सवार को तीन हिस्से और पैदल सैनिक को एक हिस्सा मिलता था। देखें "किताब-उल-खिराज" लेखक—अबू युसूफ, बुलाक, १३०२, अल हिजरा, पृ० ११।

माल में शामिल समझा जाता था और इस्लाम के सैनिकों में उन्हें दासों के रूप में वितरित कर दिया जाता था।

जकात :

कुरान में अल्लाह की प्रार्थना के बाद एक कर की अदायगी की अनुशंसा की गई है जिसे जकात कहा जाता है। जकात शब्द हिब्रू (यहूदी) शब्दावली से लिया गया है जिसका अर्थ "शुद्धिकरण" होता है। अरबों का कहना है कि यह कर देने से धर्म-विश्वासी और उसकी सम्पत्ति सभी पापों से मुक्त हो जाती है। इस कर का जोरदार समतावादी स्वरूप है जो निम्नलिखित हदीस से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। पैगम्बर ने माद को यमन भेजा और उससे कहा—"लोगों को बुलाओ कि वे धर्म की शपथ खायें कि अल्लाह के सिवा और कोई भगवान नहीं और मैं उनका दूत हूँ। अगर वे यह बात सुनते हैं तो उन्हें शिक्षा दो कि अल्लाह ने दिन में पाँच प्रार्थनाएँ करने का आदेश दिया है। यदि वे तुम्हारी बातें इसके बाद भी सुनने को तैयार न रहते हैं तो उन्हें आगे बताओ कि अल्लाह ने यह भी आदेश दिया है कि वे अपनी सम्पत्ति पर निर्धन-कर (सदका) दें। यह कर अमीरों से इकट्ठा किया जाएगा और गरीबों में बाँटा जाएगा।" पैगम्बर ने निर्धन-कर को प्रार्थना के जैसा ही महत्व दिया है। आदेश दिया गया है कि हर सच्चे मुसलमान के लिए वह पूरी तरह अनिवार्य है।

जकात एक कर था जो सम्पत्ति के ठोस आकार पर लगाया जाता था। यह उन मुसलमानों से वसूल किया जाता था जो बालिग होते थे और जिनका दिल और दिमाग दुरुस्त होता था। यह इन वस्तुओं पर लगाया जाता था—(क) अनाज, फल, खजूर, अंगूर आदि, (ख) जानवर जैसे कि ऊँट, मवेशी और अन्य घरेलू चौपाये (ग) सोना और चांदी और (घ) व्यापार के सामान।

अपने प्राचीन अर्थ में जकात का मतलब शुद्धिकरण होता है। साथ ही इसका मतलब भीख में दिया गया सम्पत्ति का अंश भी होता है जिससे शेष बची सम्पत्ति पवित्र हो जाती है। यह इस्लाम की एक प्रथा है जो कुरान के स्पष्ट आदेश से शुरू की गई है (देखें सूरा ११, ७७)। यह व्यावहारिक धर्म की पांच आधार-शिलाओं में से थी। यह किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए अनिवार्य था जो स्वतंत्र, दुरुस्त दिमागवाला, वयस्क और मुसलमान हो। इसके साथ शर्त्त यह भी थी कि उसका ऐसी सम्पत्ति या सामानों पर, जिनको कानून में निसाब[२] कहा गया था, पूरा कब्जा हो और यह कब्जा कम-से-कम पूरे एक वर्ष की अवधि तक रहा हो।

---

२. एक भू-सम्पत्ति या सम्पत्ति जिसके लिए 'जकात' या कानूनी भीख अवश्य दी जाती हो।

निसाब या सम्पत्ति के उस हिस्से के बारे में जिस पर जकात देय था, भिन्न-भिन्न नियम थे। जकात उस व्यक्ति के लिए अनिवार्य न था जिस पर उसकी सम्पत्ति के बराबर या उससे अधिक कर्ज होता था। यह कर जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं पर न लगता था जैसे कि रहने के लिए घर, पहनने के लिए कपड़े, घरेलू फर्नीचर, तात्कालिक उपयोग के लिए मवेशी, वास्तविक नौकरों की भाँति काम पर लगाये गये दास, वर्त्तमान उपयोग के लिए तैयार किए गए शस्त्रागार और अस्त्र-शस्त्र, विद्वानों द्वारा उपयोग की जाने वाली विज्ञान और धर्मशास्त्र की पुस्तकें और शिल्पकारों के औजार।

पैदावार पर लगाये जाने वाले जकात का भुगतान फसल कट जाने के तुरत बाद करना पड़ता था और जानवरों, सोना और चाँदी तथा व्यापारिक सामानों पर जकात का भुगतान उन पर निरन्तर एक वर्ष तक कब्जे के बाद करना पड़ता था। जायदाद (निसाब) का कुछ कम-से-कम हिस्सा नियत किया जाता था जिस पर जकात लगता था। जो भी चीज जमीन से उपजती थी उसके दसवें हिस्से (अशोर या नश्र) पर कर लगता था चाहे जमीन की सिंचाई नदियों के पानी से होती हो या समय-समय पर होने वाली वर्षा से। जमीन की उपज में लकड़ी, बाँस और घास पर कर न लगता था। जो जमीन पानी के वर्त्तनों, यंत्रों या पानी लेकर चलने वाले ऊँटों से सींची जाती थी उनकी उपज के बीसवें हिस्से पर कर लगता था। खंडहरों या जंगलों से जो शहद या फल पैदा किये जाते थे उन पर जकात लगता था।

जकात एक समाहर्त्ता (कलक्टर) प्राप्त करता था जो इसके लिए विधिवत नियुक्त किया जाता था। यों कानूनन जायदाद रखने वाले व्यक्ति को ही अपनी भीख, कर आदि दे देना चाहिए था। यदि कोई व्यक्ति कलक्टर के पास आता था और शपथ लेकर घोषणा करता था कि उसकी जायदाद के कितने हिस्से पर जकात देय है तो उसकी घोषणा को माना जाता था। जिन व्यक्तियों पर जकात नहीं लगाया जा सकता है वे सात किस्म के होते थे—(१) फकीर या वह व्यक्ति जिनके पास जायदाद होती थी जो निसाब न होती थी यानी जिस जायदाद के एक अंश पर ही कर लगाया जा सकता था, (२) मिस्किन या वे व्यक्ति जिनके पास जायदाद ही न होती थी, (३) जकात वसूल करने वाले, (४) दास, (५) ऋणी, (६) फिसाबिलिल्लाह यानी वे व्यक्ति अल्लाह की सेवा में या धार्मिक युद्ध में लगे होते थे और (७) यात्री।

जहाँ तक जानवरों का प्रश्न है, विभिन्न जानवरों पर लगने वाले कम-से-कम कर की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती थी। जकात के लिए जानवरों को तीन कोटियों में बाँट दिया गया था। पहली कोटि में ऊँट आते थे, दूसरी कोटि में मवेशी और तीसरी कोटि में छोटे चौपाये।

जहाँ तक ऊँटों पर जकात का संबंध था, पांच से कम ऊँटों पर जकात न लगता था। पांच ऊँटों पर एक बकरा या भेड़ जकात के रूप में लिया जाता था यदि वे पूरे वर्ष चारागाह में चर कर रहते थे। जो ऊँट चारागाह में न चरते थे और जिनको घर पर चारा खिलाकर रखा जाता था उन पर जकात न लगता था। पांच से नौ तक किसी भी संख्या में ऊँटों पर एक बकरा जकात के रूप में लिया जाता था। दस से चौदह तक किसी भी संख्या में ऊँटों पर दो बकरे जकात के रूप में लिए जाते थे। बीस से पच्चीस तक की किसी संख्या में ऊँटों के लिए तीन बकरे जकात के रूप में लिए जाते थे। छब्बीस से पैंतीस तक की किसी संख्या में ऊँटों पर जकात के रूप में एक बिंट मिखाज[3] या एक वर्ष की ऊँटनी ली जाती थी। छत्तीस से पैंतालिस तक की किसी संख्या में ऊँटों पर एक बिंट लबून[4] या दो वर्ष की ऊँटनी जकात में ली जाती थी। छियालीस से साठ तक किसी संख्या में ऊँटों पर एक हिक्का[5] या तीन वर्ष की ऊँटनी जकात में ली जाती थी। एकसठ से पचहत्तर तक की किसी संख्या में ऊँटों पर एक जजाह[3] या चार वर्ष की ऊँटनी जकात के रूप में ली जाती थी। इसी तरह छिहत्तर से नब्बे तक की संख्या में दो ऊँटनियाँ और साल-साल भर के दो ऊँट के बछड़े जकात के रूप में लिए जाते थे। इक्यानबे से एक सौ बीस तक की किसी संख्या में ऊँटों पर दो ऊँटनियाँ और तीन साल-साल वर्ष के ऊँट के बछड़े जकात के रूप में लिए जाते थे। जब ऊँटों की संख्या एक सौ

---

३. 'बिंट मिखाज' (बिंट मिकाज) से तात्पर्य है एक गर्भवती ऊँटनी की बछड़ी। एक वर्ष की ऊँटनी को यह नाम इसलिए दिया जाता था कि उसकी माँ इसी बीच फिर गर्भवती हो जाती थी। उस ऊँटनी की यह ठीक आयु है जो छब्बीस से पैंतीस तक के ऊँटों के लिए जकात के रूप में दी जाती थी।

४. 'बिंट लबून' से तात्पर्य है "दूध देने वाली ऊँटनी की बछड़ी।" यह ऊँटनी दो वर्ष की होती थी। उसे 'बिंट लबून' इसलिए कहा जाता था कि उसकी माँ उसके बाद हुए ऊँट के बछड़े को दूध पिलाने लगती थी। छत्तीस से पैंतालीस तक की संख्या में ऊँटों पर "जकात" या "वैध भीख" के रूप में एक बिंट लबून ली जाती थी।

५. 'हिक्का या तीन वर्ष की ऊँटनी। यह उस ऊँटनी की ठीक आयु थी जो छियालीस से साठ तक की किसी संख्या में ऊँटों पर 'जकात' या वैध भीख के रूप में ली जाती थी।

६. 'जजाह' अर्थात् ऐसी ऊँटनी जिसने पाँचवें वर्ष की उम्र में प्रवेश किया हो। यह उस ऊँटनी की ठीक आयु है जो एकसठ से पचहत्तर तक की संख्या में ऊँटों से जकात या "वैध भीख" के रूप में ली जाती थी।

बीस से ज्यादा होती थी तो उन पर उपर्युक्त हिसाब जोड़कर ऊँटनियाँ और ऊँट के बछड़े जकात या "वंध भीख" के रूप में लिए जाते थे।

जहाँ तक बैलों, गायों और भैंसों पर जकात का संबंध था तीस से कम मवेशियों पर जकात न लगता था। तीस या अधिक मवेशियों पर, यदि वे साल के अधिकांश भाग में चारागाह पर चर कर रहते थे तो उन पर वर्ष के अंत में एक तबिया या एक साल का बछड़ा जकात के रूप में देना पड़ता था। चालीस मवेशियों पर एक मुसिनाह या दो वर्ष का बछड़ा जकात के रूप में दिया जाता था। यदि उनकी संख्या चालीस से बढ़ जाती थी, तो उपर्युक्त नियम के अनुसार जकात का हिसाब होता था। उदाहरण के लिए ३० मवेशियों पर एक तबी या तबिया जकात के रूप में लिया जाता था। ४० मवेशियों के लिए एक मुसीनाह (एक साल की गाय या एक वर्ष का बैल जकात के रूप में लिया जाता था। ६० मवेशियों के लिए दो तबिया (एक वर्ष का बछड़ा) और ६० मवेशियों के बाद हर ३० मवेशियों के लिए एक तबिया और हर ४० मवेशियों के लिए एक मुसीना (एक वर्ष की गाय या एक वर्ष का बैल) जकात के रूप में लिया जाता था। साठ से अधिक होने पर हर एक तीस पर एक तबिया और हर एक चालीस पर एक मुसीना जकात के रूप में लिया जाता था। जहाँ तक भेड़ों और बकरों पर जकात का संबंध था चालीस से कम पर जकात देय न था। चालीस भेड़ों और बकरों पर जो वर्ष के अधिकतर भाग में चारागाह पर चरते थे, जकात केवल एक बकरे के रूप में देय था। जकात का यह परिमाण एक सौ बीस भेड़ों और बकरों तक लागू था। एक सौ बीस से दो सौ तक भेड़ों और बकरों पर दो बकरे या भेड़ जकात के रूप में देय थे। इसके अधिक संख्या पर हर एक सौ पर एक बकरा या भेड़ जकात के रूप में देय थे।

जहाँ तक घोड़ों पर जकात का संबंध था, जब घोड़े और घोड़ियाँ बिना सोचे-बिचारे या बिना हिसाब लगाये, वर्ष के अधिकतर भाग में, चारागाह में चरा कर रखे जाते थे तो उनके मालिक पर यह छोड़ दिया जाता था कि वह या तो सभी घोड़ों-घोड़ियों पर हर एक पर एक दिनार के हिसाब से जकात दे या मालिक के अधीन के सभी घोड़े-घोड़ियों के मूल्य का हिसाब जोड़ कर उस पर पाँच प्रतिशत की दर से जकात दिया जाय। घोड़ों के झुण्ड पर, चाहे वह पूरी तरह घोड़ों का हो या घोड़ियों का, जकात न लगता था। घोड़ों और खच्चरों पर, यदि वे खरीद-बिक्री यानी व्यापार के सामान न हुए, जकात न लगता था। उसी तरह युद्ध के घोड़ों या भारवाही मवेशियों या हल जोतने के काम में आने वाले अथवा इसी तरह के और मवेशियों पर जकात न लगता था।

दो सौ दिरहम से कम मूल्य की चाँदी पर जकात न लगता था। पर कोई इतनी चाँदी पूरे एक वर्ष तक अपने पास रखता था तो उससे पाँच दिरहम जकात के

रूप में लिया जाता था। दो सौ दिरहम से अधिक राशि पर जकात न लगता था। पर यदि यह अधिक राशि चालीस दिरहम हो जाती थी तो जकात के रूप में एक दिरहम लगता था। और उससे अधिक हर चालीस दिरहम जकात के रूप में एक-एक दिरहम[७] लगता जाता था। इन दिरहमों में मुख्यतः चांदी होती थी और जकात का हिसाब करने में उनको भी चांदी समझा जाता था। यों दिरहम में कुछ मिलावट भी होती थी। और यही नियम चाँदी की तश्तरी, थाली आदि के अन्तर्गत बर्त्तनों, प्यालों, शराब पीने के पात्रों आदि सभी पर जकात के मामले में लागू होता था।

बीस मिस्कल[८] से कम मूल्य के सोने पर जकात न लगता था। बीस मिस्कल से अधिक पर आधा मिस्कल जकात लगता था। जब सोने का परिमाण बीस मिस्कल

७. दिरहम या चाँदी का सिक्का जिसका आकार खजूर के बिये का होता था। पैगम्बर मुहम्मद के बाद हुए द्वितीय खलीफा ने उसका आकार 'बदलकर' गोलाकार कर दिया और जेवर के समय उस पर "अल्लाह", "बरकाह" और "आशीर्वाद" (ब्लेसिंग) शब्द अंकित कर दिये गये।

८. "मिस्कल" यानी एक अरब वजन जिसका वर्णन अक्सर मुसलमानों की कानून पुस्तकों में आता है। रिचार्डसन उस वजन को एक बूंद (ड्राम) और ३।७ के बराबर बताता है। यह इस वजन के सोने के सिक्के के लिए भी प्रयुक्त होता है।

कुरान में तीन सिक्कों का वर्णन आता है—(१) किन्टार, (२) दिनार और (३) "दिरहम," बहुवचन "दराहिम।

(१) किन्टार, सूरा। । । -६८ : "पुस्तक (कुरान) के लोगों में से, जिनमें से तुम एक हो, यदि किसी को तुम एक किन्टार सौंपों तो वह उसे वापस कर देगा।" "मजमोल बिहार" पुस्तक के लेखक मुहम्मद ताहिर ने कहा है कि "किन्टार" धन की बड़ी राशि है। यह इतनी बड़ी राशि है जिससे मरी हुई गाय के शरीर का चमड़ा भर सकता है, अन्य लोगों के अनुसार यह ४,००० दिनार के बराबर है। और दूसरों का कहना है कि यह असीम धन है जिसका मतलब है बहुत ही ज्यादा राशि।

(२) "दिनार सूरा। । ।, ६८: "ऐसे लोग हैं जिन्हें यदि तुम एक दिनार सौंपों तो वह उसे तुमको वापस न करेंगे।" वह दिनारिन भी कहा जाता था जो सोने का छोटा सिक्का होता था।

(३) "दिरहम" सूरा × ii -२० "और उन्होंने उसे बहुत थोड़े से धन या गिने हुए दिरहमों में बेच दिया।" यह चाँदी का सिक्का होता था।

से अधिक होता था तो बीस मिस्कल से अधिक हर चार मिस्कल पर दो किराट जकात लगता था और इसी हिसाब से अधिक सोने के परिमाण पर जकात लगता था। जकात सोने और चांदी की ईंटों और सोने-चाँदी के गहनों और वर्त्तनों पर भी लगता था। व्यापार की चीजों का हिसाब कर लिया जाता था। यदि उनका मूल्य दो सौ दिरहम से ज्यादा होता था तो मूल्य का अढ़ाई प्रतिशत जकात के रूप में देना पड़ता था।

जहाँ तक खानों या गड़े हुए खजानों पर जकात का संबंध है, सोना, चाँदी, लोहा, सीसा या ताँबा की खानों का पाँचवाँ हिस्सा (खूम) जकात के रूप में देना पड़ता था। पर यदि खान किसी व्यक्ति के घर के अहाते के भीतर पाई गई तो कोई जकात न देना पड़ता था। पर यदि किसी व्यक्ति को गड़े हुए खजाने का माल मिल जाता था तो उस पर उसे पाँचवाँ हिस्सा जकात के रूप में देना पड़ता था। कीमती पत्थरों-हीरों आदि पर जकात न लगता था।

अल्लाह के प्रयोजनों का अर्थ फौजी अभियान और अन्य राजनीतिक कार्य थे। गरीबों और जरूरतमंद लोगों में माता-पिता, संबंधी, अनाथ, भिखारी और ऐसे लोग, जो जीविका के साधनों के अभाव में गलत काम करने को वाध्य होते थे और संदेहपूर्ण आचरण की औरतें भी शामिल की जाती थीं।

पैगम्बर द्वारा विहित सिद्धान्त के अनुसार निर्धन कर (जकात) से होने वाला राजस्व (आमदनी), जो विभिन्न प्रकार के पशुओं या अन्य समूहों अथवा सोने में होता था, निम्न प्रकार से उपयोग में लाया गया था : (१) गैर-मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने वाले सैनिकों का साज-सामान, (२) इस कर को लगाने और वसूल करने के काम में लगे पदाधिकारियों को वेतन आदि और (३) जरूरतमंद और गरीब मुसलमानों का पालन-पोषण पैगम्बर के सबसे निकट के संबंधियों और मुत्तलिब और हाशिम के दो ऊँचे कुरैश परिवारों को निर्धन कर (जकात) से होने वाले राजस्व में हिस्सा नहीं मिलता था, क्योंकि उन्हें सामान्य राज्य-राजस्व से पहले ही वार्षिकी (वार्षिक सहायता) स्वीकृत कर दी गई थी। पर राज्य के प्रधान (पैगम्बर) को जल्द ही, न केवल निर्धन-कर परन्तु अन्य राज्य-राजस्व स्रोतों से भी होने वाली आमदनी पर पूरा नियंत्रण और अपनी स्वेच्छा से उसे खर्च करने का अधिकार मिल गया। मदीना के न्यायिक सिद्धान्तों की विचारधारा में, जो मलिक की विचारधारा के नाम से जानी जाती थी, आरंभ में, इस मत का समर्थन किया गया। इसके विपरीत आरंभ में अलग-अलग प्रान्तों को अधिकार था कि वे अपने यहाँ निर्धन-कर से वसूल होने वाले धन को गरीबों में वितरित करें। खासकर यमन में ऐसी ही स्थिति थी। और भी अधिक धन-राशि, जिससे सामान्य राज्य-राजस्व (फे) बनता था, अन्य स्रोतों से होती थी।

कभी-कभी जकात और सदकात एक ही शब्द के रूप में प्रयुक्त होते हैं। पर सदकात का उचित रूप में प्रयोग स्वैच्छिक भीख देने के अर्थ में होता है। कुरान में सदका शब्द का उपयोग "भीख देने के" अर्थ में होता है, जैसे सूरा ।।, २६५: "चिढ़ कर भीख देने (सदका) से दयापूर्ण बातें और क्षमा ज्यादा अच्छे हैं क्योंकि ईश्वर समृद्ध और दयालु है।"

मिस्र, सीरिया, मेसोपोटामिया और फारस की जनता को दो तरह के कर देने पड़ते थे, (१) गैर मुसलमानों पर प्रति व्यक्ति-कर (जजिया) (२) भूमि-कर (खिराज—मिट्टी पर कर)। वैजेन्टाइन साम्राज्य से संभवतः ये कर लिए गये थे। उस साम्राज्य के समय भी इनके यही नाम थे। प्रति व्यक्ति कर के बारे में हमें ज्ञात होता है कि वह फारस-साम्राज्य में ससानिदों के अधीन भी था। प्रति-व्यक्ति कर और भूमि-कर लगाने में अरबों ने सभी विजित देशों में एक ही सिद्धान्त अपनाया।

जजिया और खिराज

फिर भी प्रति व्यक्ति कर (जजिया) गैर-मुसलमानों पर इस स्पष्ट उद्देश्य से लगाया जाता था कि राज्य उनके जीवन और सम्पत्ति को सुरक्षा देता है। वह कुरान के एक स्पष्ट आदेश के अनुसार लगाया जाता था—"उन लोगों के खिलाफ युद्ध करो जिनके बारे में धर्म-ग्रन्थ कहते हैं कि वे अल्लाह में विश्वास नहीं करते और न न्याय के अंतिम दिन में ही विश्वास करते हैं। और वे उस बात का निषेध नहीं करते जिसे अल्लाह और उसके दूतों ने निषिद्ध बतलाया है। जब तक वे अपने हाथ से कर (जजिया) नहीं देते और उन्हें इस प्रकार नम्र नहीं बनाया जाता या झुकाया नहीं जाता तब तक वे सत्य में अपना विश्वास प्रकट नहीं करते।" पैगम्बर के समय गैर-मुसलमानों के हर पुरुष सदस्य पर, जो कर देने लायक होते थे, प्रति वर्ष एक दिनार जजिया लगता था। स्त्रियों, बच्चों, भिखारियों, साधुओं, बूढ़ों, पागलों और असाध्य रोग से पीड़ितों पर, यदि उन्हें पर्याप्त, स्वतंत्र आय न होती थी, यह कर न लगता था। पैगम्बर द्वारा लगाया गया यह कर नया न था। फारस के लोगों के बीच भी यह कर प्रचलित था और वहाँ इसका नाम गैज़िट था और रोमनों के अधीन इसका नाम ट्रिब्यूटम कैपिटिस था। जजिया से होने वाली आय एक मात्र सैनिकों की तनख्वाह, उनके भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यकताओं पर खर्च की जाती थी। हिदाया[१] के अनुसार जजिया दो प्रकार का होता था—एक वह जो

---

१. हिदाया, लेखक—चार्ल्स हैमिल्टन, खंड—२, लंदन १७९१, पृ० २११। हिदाया का मतलब मार्गदर्शन होता है। सुन्नी कानून पर इस नाम की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है—अल-हिदाया। इस शीर्षक की अनेक मुस्लिम पुस्तकें हैं पर इस पुस्तक का नाम 'हिदाया—फिल फुरू' या विशेष बातों पर मार्गदर्शन है। इसकी रचना

लोग स्वयं देते थे और दूसरा वह जो जबर्दस्ती लगाया जाता था। जजिया की सामान्य दर प्रति पुरुष के लिए एक दिनार[१०] थी। इतिहासकार अबू हनीफा ने कहा है कि स्त्रियों और बच्चों पर यह कर न लगता था जबकि अशशाफी का कहना है कि औरतों और बच्चों पर भी यह कर लगता था। यहूदियों, ईसाइयों और मैजियानों पर यह कर लगता था। पर यह कर अरब मूर्त्तिपूजकों या स्वधर्मत्यागियों से न स्वीकार किया जाता था। उनको मार डालने का नियम था पर मूर्त्ति-पूजकों से यह कर स्वीकार कर लिया जा सकता था। यह कर साधुओं, संन्यासियों, भिखारियों और दासों पर लगाया जाता था। जो व्यक्ति प्रति व्यक्ति-कर देता था और इस कारण जिसे मुस्लिम राज्य से सुरक्षा मिलती थी उसे **जिम्मी** कहा जाता था।

खिराज :

खिराज भूमि-कर था जो गैर-मुस्लिमों से इकट्ठा किया जाता था। इस्लाम-पूर्व अरबों में खिराज की कोई व्यवस्था न थी क्योंकि उस समय कोई संगठित केन्द्रीय सरकार न थी जो कर वसूलती हो। फारसियों में यह कर प्रचलित था और उसे **खारग** कहा जाता था। रोमनों में इस कर को **ट्रिब्यूटम सोली** कहा जाता था। जब पैगम्बर मुहम्मद ने खैबर पर अधिकार किया तो मुसलमानों के पास न तो इतनी संख्या में दास थे जो नव-विजित भूमि में बोआई कर सकते और न उन्हें खुद यह काम करने का समय था। और फिर यहूदियों ने उन दिनों की परम्परा के अनुसार मुस्लिम विजेताओं को पूरी भूमि का मालिक मान कर प्रस्ताव किया कि वे राज्य के काश्तकारों के रूप में जमीन बोएँगे और फसल का एक भाग सरकार को देंगे। पैगम्बर ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और फसल का आधा भाग **खिराज** के रूप में निश्चित किया। इस प्रकार **खिराज** की प्रथा अरबों में शुरू हुई। हर वर्ष अब्दुल्ला बिन रवाहा फसल का हिसाब करने और उसका आधा कर के रूप में लेने के लिए भेजा जाता था।

जजिया की भाँति ही **खिराज** से इकट्ठी की जाने वाली राशि सैनिकों के वेतन और अन्य फौजी प्रयोजनों पर खर्च की जाती थी। पैगम्बर के समय सैनिकों का निश्चित वेतन न था। जैसे ही करों की रकम आती थी, उसे सैनिकों में वितरित कर दिया जाता था—एक हिस्सा कुंआरे सैनिकों को दिया जाता था और उसका दुगुना विवाहित सैनिकों को।

शेखबुरहान-उद-दीन अली ने की थी जो ट्रान्सोक्सियाना में मार्गीनान में करीब अलहिजरा ५३० (सन् ११३५) में हुए थे और मृत्यु अल-हिजरा ५९३ में हुई।

१०. 'दिनार' यानी एक मिस्कल या छियानवे जौ के दानों के वजन का सोने का सिक्का जो दस शिलिंग के मूल्य के बराबर होता था।

अल-फे :

अल-फे शब्द, सीमित अर्थ में; विजित क्षेत्रों की उस भूमि के लिए प्रयुक्त होता था जो राज्य के प्रत्यक्ष स्वामित्व के अधीन आ जाती थी। पैगम्बर के अधीन कुछ सम्राट या राज्य की जमीन होती थी, जैसे कि फिदक आदि की जायदाद। इससे होने वाली आय पैगम्बर के सम्बन्धियों, अनाथों, गरीबों, यात्रियों और मुसलमानों के सामान्य हित पर व्यय की जाती थी।

पैगम्बर के अधीन धार्मिक संगठन

पैगम्बर ने अनेक धर्म-प्रचारकों (एक वचन-अद-दई) को अरब की विभिन्न जनजातियों में भेजा था ताकि वे लोग उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए आमंत्रित करें। इसके अलावे, तेजी के साथ बढ़ते हुए मुसलमानों की दिनों-दिन अधिक-से-अधिक होती धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पैगम्बर ने धार्मिक शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का काम भी शुरू किया। यह उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य पैगम्बर खुद भी करते थे और अपने प्रसिद्ध साथियों से, जिन्हें वे इसी काम के लिए प्रतिनियुक्त करते थे, कराते थे। कुरान पढ़ने वाले (एकवचन-अल कारी) बहुत बड़ी संख्या में पैगम्बर और उनके मुख्य साथियों द्वारा प्रशिक्षित किये जाते थे और देश के विभिन्न भागों में भेजे जाते थे।

केवल मदीना में दस मस्जिदें थीं जहाँ दिन में पाँच बार नमाज अदा की जाती थी। पूरे अरब में हर जनजाति की अपनी मस्जिद या मस्जिदें थीं। सामान्यतः नगर के मुख्य सरकारी पदाधिकारी या जनजाति के सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यक्ति मस्जिदों में प्रार्थनाओं (नमाज) का नेतृत्व करते थे। तब तक कोई स्थायी मुअज्जिन (वे लोग जो धर्म-विश्वासियों को नमाज पर आने के लिए आवाज या अजान देते हैं) नियुक्त न किये गये थे।

फौजी संगठन

यह सोचना गलत होगा कि फौजी मामलों में इस्लाम के अरब पूरी तरह अनुभवहीन थे। वे लोग बैजेन्टाइन और फारस की लड़ाई के तरीकों और अपने बीच की, कभी अंत न होने वाली, लड़ाइयों में युद्ध का काफी व्यावहारिक ज्ञान हासिल कर चुके थे। सीरिया के दक्षिणी और पूर्वी सीमाओं पर वे जनजातियाँ रहती थीं जो बैजेंटाइनों की सैनिक सेवा में थीं। उन जनजातियों के नाम बहर, काफ, सालिख, तनुख, लखाम, जुडम और घसान थे। उन्होंने अपने प्रधान शासकों (बैजेन्टाइनों) के युद्ध के अनेक तरीकों को अच्छी तरह अपना लिया था। फिर भी, इस्लामी विजयों के प्रारम्भिक वर्षों में युद्ध के तरीके अनिवार्य रूप से इस्लामपूर्व अरब युद्ध की सीमित धारणाओं पर ही आधारित थे। हजरत मुहम्मद के जीवन-काल में ही इस बात के

संकेत मिलने लगे थे कि युद्ध के और नये तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है और इस काम में बैजेन्टाइनों और फारसियों का प्रभाव महत्त्वपूर्ण था।

पैगम्बर के युद्धों में भी मक्कावासियों के लड़ने की एक प्रणाली और तरीका था उसी तरह जिस तरह मदीनावासियों का युद्ध में बचाव का तरीका खाई खोदना और बड़े आकार या महल में सेना को रख कर लड़ना था। हाँ, यह बात जरूर थी कि उस समय सेना की टुकड़ियों, दलों या सघन रूप से गठित समूहों में बाँटने की पद्धति विकसित न हो सकी थी। सेना उस समय जनजातियों के अनुसार व्यवस्थित रहती थी और केवल घुड़सवारों और पैदल सैनिकों के रूप में ही बँटी हुई थी।

पैगम्बर सेना के प्रधान सेनाध्यक्ष थे। उन्होंने सभी महत्त्वपूर्ण मुठभेड़ों और अभियानों जैसे बद्र, उहुद और हुनैन की लड़ाइयों और मक्का की विजय में स्वयं सेना का नेतृत्व किया था। छोटी लड़ाइयों और मुठभेड़ों में एक सेनापति (अमरूल-अस्कर) के अधीन सेना लड़ने के लिए भेजी जाती थी। सेना में भरती, सैनिकों को अस्त्र-शस्त्र से सज्जित करने; उनके लिए अन्य वस्तुओं और भोजन आदि का प्रबन्ध करने, पूरी सेना की हिफाजत और उन्हें कार्रवाई तथा अन्य कामों का आदेश देने का अधिकार पैगम्बर के पवित्र हाथों में निहित था।

प्रारंभिक मुस्लिम सेना का आरंभ बहुत ही साधारण रूप से हुआ था। पहले अल्लाह के भक्तों का एक छोटा-सा दल, जिसे अपना घर-द्वार छोड़ने को बाध्य होना पड़ा था; बराबर शत्रु के भय से त्रस्त रहता था क्योंकि शत्रु ने मुठभेड़ में उस दल को भागने को मजबूर किया था। इस छोटे-से दल के लोग नहीं जानते थे कि दुष्ट शत्रु अब उनको और क्या नुकसान पहुँचाना चाहता है। तब उन्होंने शत्रु की कार्रवाइयों पर नजर रखना शुरू किया। जब यह निश्चित हो जाता था कि पवित्र क्षेत्र मदीना पर हमले के लिए शत्रु तैयारियाँ कर रहा है, तब उस समय के प्रचलित अरब तरीकों के अनुसार उस दल के लोग कुछ कारवाँ पर हमला करते और उसे लूटते थे। इस प्रकार उनकी नीति थी कि—"मारो और भाग जाओ" (कर्र वा फर्र)

हजरत मुहम्मद की छोटी-सी सेना और उनके शत्रु में जो पहली लड़ाई—बद्र की लड़ाई—हुई उसमें मुस्लिम सेना में सिर्फ ३१४ सिपाही थे और शत्रु की सेना में करीब १००० सिपाही। पैगम्बर मुहम्मद ने अपने आदमियों को—"सीधी नियमित पंक्तियों में खड़ा किया। वे स्वयं इस बात का निरीक्षण घूम-घूम कर कर रहे थे कि पंक्तियाँ बिल्कुल सीधी हैं या नहीं। वे अपने हाथ में एक तीर लिए रहते थे। यदि कोई व्यक्ति पंक्ति में ठीक सीधा न होता था तो वे उसे तीर से धक्का देकर पंक्ति में सीधा खड़ा कर देते थे।" सैनिकों का जमाव तबिया या पाँच

बाजुओं (पार्श्वों) का जमाव होता था। फौज का पिछला भाग (अस-सदाक) न केवल पीछे की सुरक्षा रखता था बल्कि फौजियों के वस्त्रों तथा अन्य कपड़ों के बैग, आपूर्ति तथा सेना के साथ के भारवाही पशुओं का प्रभारी रहता था।

पैदल सैनिकों के हथियारों में एक ढाल, बल्लम, तलवार या केवल तीर-धनुष अथवा गुलेल रहती थी। ढाल सुरक्षा के हथियार का काम करती थी। ढाल दो तरह की होती थी बड़ी और छोटी। बड़ी ढाल लकड़ी की होती थी। या वह चमड़े से ढँकी होती थी अथवा धातु से मढ़ी होती थी। छोटी ढाल गोलाकार होती थी। एक और किस्म की छोटी ढालें होती थीं जो बाद में चलकर सारासेन्स (अरब) घुड़सवारों की सुरक्षा की एकमात्र अस्त्र बन गई। ये छोटी ढालें तुर्की और फारसियों द्वारा मध्य युग में बाद तक इस्तेमाल की जाती थीं और उन लोगों द्वारा अभी भी इस्तेमाल में लाई जाती हैं। घुड़सवार सेना का मुख्य अस्त्र बल्लम होता था। यह लम्बाई में दस क्यूबिट[11] का होता था। एक फौजी लेखक का कहना है कि किसी भी हालत में बल्लम की लंबाई १०, ११ क्यूबिट से अधिक न होनी चाहिए अर्थात् इसकी लंबाई पाँच से छः गज के बीच होनी चाहिए। बाण लचकदार लकड़ी का होता था। इसके लिए सबसे अच्छा बाँस का सरकंडा होता था जो इस काम के लिए भारत से आयातित होता था। पूर्वी अफ्रीका में बहरैन में सबसे अच्छे बल्लम बनाये जाते थे। उनमें एक लोहे की नोक होती थी जिसका अंतिम हिस्सा तेज और पतला होता था ताकि उसको जमीन में टिकाया जा सके। ये बल्लम बद्दुओं के बल्लम जैसे न होते थे जो बहुत ही पुराने समय से आज तक ज्यों के त्यों ही रहे हैं। हजरत मुहम्मद के सैनिक छोटे भाले भी इस्तेमाल करते थे जो गरदन और बाँह के सहारे बगल में लटके होते थे। पैगम्बर के चाचा बाहसी ने ऐसे ही अस्त्र से और इसी तरह के औजार से मसलामा के नकली पैगम्बर की हत्या की। प्राचीन अरब कविता में भारत के निर्माताओं द्वारा बनाई गई तलवारों की बड़ी प्रशंसा की गई है। पैदल सैनिकों में बल्लम वाले सैनिक सबसे पहली पंक्ति में रहते थे। वे अपनी बल्लमों के साथ तैयार होकर कुछ आगे की ओर झुके हुए, शत्रु के प्रहार की इन्तजारी करते थे। कवचधारी सैनिक उन स्थानों पर खड़े किये जाते थे जहाँ प्रहार की सबसे ज्यादा संभावना रहती थी। धनुषधारी सैनिक दूसरी पंक्ति में खड़े होते थे। अपने धनुष-बाण से वे तैयार रहते थे ताकि बढ़ते हुए शत्रु पर प्रहार कर सकें और उसके घुड़सवारों को मुसलमानों की फ़ौज पर हावी न होने दें।

सिर पर टोप या शिरस्त्राण अंशतः चमड़ा और अंशतः धातु का बना होता था। चेहरा गरदन तक नकाब और लोहे के तार के जाल से ढंका होता था। यह

११. क्यूबिट एक पुरानी नाप है। बाँह में केहुनी से लेकर मध्यमा (तीसरी उंगली) के सिरे तक इसकी लंबाई (अर्थात् १८ से २२ इंच तक) होती है।

उसी तरह का होता था जिस तरह पूरे शरीर में पहने जाने वाला कवच होता था। चूंकि कवच का दाम बहुत ज्यादा होता था इसलिए उसका प्रयोग बहुत कम किया जाता था। लोहे के सिर का टोप या शिरस्त्राण का निर्माण लोहे के उन्हीं गोल टुकड़ों को मिलाकर किया जाता था जिनसे कवच का निर्माण किया जाता था। इसका उपयोग सारासेनों (अरबों) द्वारा सैनिक अभियानों के समय किया जाता था।

पैगम्बर के समय में सेना का विभाजन केन्द्र में रहने वाली टुकड़ी, दोनों बाजुओं (पार्श्वों) में रहने वाले सैनिकों की टुकड़ियों, सबसे आगे लड़ने वाली टुकड़ी और सबसे पीछे रहने वाली टुकड़ी में करने के बारे में लोगों को मालूम था और लड़ाई में सेना का विभाजन इसी प्रकार किया जाता था। घुड़सवार सैनिक दोनों बाजुओं में रहने वाले पैदल सैनिकों की रक्षा करते थे और धनुषधारी सैनिक अलग ही टुकड़ी में रहते थे। सेना के इन पाँच विभाजनों को खामी कहा जाता था। हर जनजाति का अपना झंडा रहता था जहाँ वे लोग इकट्ठे होते थे। वह एक कपड़े का टुकड़ा होता था जो एक बल्लम में जुड़ा रहता था। बद्र की लड़ाई में मुसलमानों के तीन झंडे (लीवा) थे। मुहाजरिन पैगम्बर का महान झंडा लेकर चलते थे। ओज और खजराज की हर जनजाति के, जो पैगम्बर मुहम्मद के प्रति निष्ठावान थीं, अपने-अपने झंडे थे। कुरैशियों के इनमें से तीन झंडे थे। सबसे ज्यादा प्रसिद्ध और सबसे ज्यादा बहादुर योद्धा इसलिए चुने जाते थे कि वे आगे-आगे झंडे लेकर चलें। पैगम्बर के झंडे को उक्राब या बड़ी चील (गरुड़) से अंकित झंडा कहा जाता था। संभवतः यह रोमवासियों के झंडे की नकल थी। कहा जाता है कि यह झंडा काले रंग का था। प्रारम्भिक समय में भी अरब युद्ध के यन्त्रों से परिचित थे। इनका उपयोग उन्होंने फारसियों और यूनानियों से सीखा था। उन्होंने बाद में इनको विकसित किया। इस्लाम ने अनुशासित सैनिकों की टुकड़ियाँ बनाईं जिनमें सम्पूर्ण और चिरस्थायी आज्ञाकारिता की भावना थी। केवल इससे ही वे यूनानी और फारसी भाड़े के सैनिकों से सौ गुना अच्छी थीं। इसके अलावा उनके अपने देशवासियों में, जो बहुत प्राचीन समय से सीरिया और ईराक में रहते आये थे; अपने अप्रत्यक्ष या छिपे और प्रकट मित्र थे। जनजातीय सहानुभूति और शत्रु के प्रति वंशगत घृणा के कारण वे विजय की ओर बढ़ती इस्लामी सेना को सहयोग देते थे। वे इस्लामी सेना के लिए जासूसी भी करते थे और अक्सर खुली लड़ाई में अपनी जनजाति के लोगों के साथ लड़ते भी थे। इस्लामी सेना की इसी तरह की सेवा मिस्र के असन्तुष्ट प्राचीन वंशज भी करते थे।

फिर भी अन्य देशों में प्रथम मुस्लिम अभियान केवल रजिया या धावे थे जिनमें मुस्लिम सैनिक प्रकट रूप से अल्लाह और उनके पैगम्बर का नाम ज्यादा

रोशन करने के नाम पर सुरक्षाविहीन बस्तियों पर हमला करते थे और वहाँ के लोगों को लूटते और उनकी हत्या करते थे। उस समय के मुस्लिम योद्धा लोभी, लुटेरे और साथ ही धार्मिक उत्साही भी थे। दरअसल वे धार्मिक उत्साही कम और लोभी लुटेरे ज्यादा थे। लूट के माल का लोभ और मरने के बाद बिहिश्त मिलने की इच्छा उन लोगों के लिए सबसे अधिक प्रेरक तत्व थे। पर इन दोनों में भी लूट का माल मिलने का लोभ उनके लिए अधिक प्रेरक था।

मक्कावासियों ने पहले हमला किया। मुसलमानों की सेना ने उनका तबतक इन्तजार किया जब तक वे उनके बिल्कुल करीब न चले आये। तब उन्होंने उन पर एक ठोस चट्टान की तरह इतनी शक्ति और दृढ़ता से प्रहार किया कि मक्कावासी भाग खड़े हुए और उनकी भयानक हार हुई। ठोस चट्टान की तरह इस प्रहार को **बुनियानून मारसस** (धनुषधारी अपने तीरों से प्रहार करते थे और साथ ही तलवारें खींचे रहते थे) कहते थे।

कुरान के एक पद्य में कहा गया है कि-"निश्चित रूप से अल्लाह उनको प्यार करता है जो उसके समान पंक्तियों में लड़ते हैं मानो वे सुदृढ़ और सुगठित ढाँचे हों।"[१२] जिस अध्याय में यह पद्य है उसका शीर्षक है—"पंक्तियाँ (अस-सफ)।" बाद में कुछ लोगों ने विचार प्रकट किया कि एक पंक्ति में लड़ना मुसलमानों के लिए लाजिमी है। जब मंसूर ने इब्राहीम बिन अब्दिलाही-इ-हसनी (अल हिजरा-१४५) के विद्रोह को दबाने के लिए फौज भेजी तो हसनी के सलाहकारों ने सलाह दी कि वह लड़ने के लिए सैनिकों के दस्तों (एक बचन-कुरदूस) का तरीका अपनाएँ। हसनी ने यह सुझाव नामंजूर कर दिया और अपने पक्ष के समर्थन में कुरान का वह पद्य सुनाया। चौथे खलीफा अली ने सिफिन की लड़ाई में अपनी पैदल सेना को **सफ** के तरीके से व्यवस्थित किया।

सफ के तरीके को बाद में मुसलमानों ने विकसित किया। फौजी नीति के महान लेखक टीरटोसा ने अबू बकर के बहुत प्रशंसा के साथ इस नीति को अपनाने की अनुशंसा की है। उसके अनुसार युद्ध की प्रथम पंक्ति में अच्छी ढालों, बड़ी बल्लमों और खूब तेज नोकों वाले भालों के साथ पैदल सेना को होना चाहिए। "हर आदमी को अपने बायें बल्लम पर झुका रहना चाहिए और अपनी ढाल ठीक अपने साथ रखनी चाहिए। जबकि उसके बल्लम का कुन्दा पीछे जमीन पर टिका रहता था और सैनिक उससे शत्रु की ओर प्रहार के लिए उद्यत रहता था।" पैदल सैनिकों के पीछे धनुषधारी सैनिक रहते थे और उनके पीछे घुड़सवार रहते थे। जब ईसाई सैनिक सामने बढ़े तो मुस्लिम सेना में से कोई भी सैनिक तब टस से मस

१२. होली कुरान, लेखक —मौलवी मोहम्मद अली अहमदिया—अंजुमन-ए-इशात-इ-इस्लाम, लाहौर, १९२०, अध्याय ४१, पद्य ४, पृ० १०७।

न हुआ जब तक वे लोग प्रहार की परिधि में न आ गये। जब ईसाई सैनिक प्रहार की परिधि में आ गए तो उन पर धनुषधारियों ने तीर चलाये और बल्लम वाले सैनिकों ने भाले फेंके। और जब शत्रु बहुत निकट आ गया तो बल्लम वाले सैनिकों ने अपने कुन्दे उनके शरीर में भोंक दिये और अपनी तलवारों से उन्हें काट दिया। जब उन्होंने हार मान ली और भाग गये तो घुड़सवार के सैनिक सामने आये और "अल्लाह की जैसी मर्जी थी उन लोगों से वह सब कुछ ले लिया।"

सन् ६२७ में मक्का वालों ने मदीना पर दस हजार आदमियों के साथ हमला किया। पैगम्बर ने इस शक्तिशाली शत्रु के साथ खुले मैदान में लड़ना उचित न समझा, इसलिए वे नगर में चले गए और अपने असुरक्षित पक्ष की, नगर के चारों ओर खंदक खोद कर, रक्षा की। मक्कावासियों के लिए यह नई बात थी क्योंकि यह फारसी तरकीब थी जिसके लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले फारसी सलमान ने सलाह दी थी। यद्यपि सुरक्षा का यह तरीका कमजोर था, फिर भी लगता है कि इसकी नवीनता से आक्रमणकारियों को आगे बढ़ने में असफलता मिली।

हुनैन की जबर्दस्त लड़ाई में जब मुसलमानों पर शत्रु का बहुत ज्यादा दबाव था तो पैगम्बर ने कहा कि जब शत्रु की ओर हवा बह रही हो तो शत्रु की सबसे आगे बढ़ी हुई टुकड़ी पर एक मुट्ठी बालू फेंक दी जाय। इससे एक क्षण के लिए शत्रु की आँखें चौंधिया गईं। उसके बाद मुसलमानों ने भीषण प्रत्याक्रमण किया जिससे शत्रु परास्त हो गया। पैगम्बर की इन मामूली-सी तरकीब ने लड़ाई की नियति ही बदल दी।

पैगम्बर मुहम्मद के सामने तैफ नगर पर कब्जा करने की समस्या उपस्थित हुई। यह अरब में एकमात्र नगर था जो सुरक्षा की दीवारों से घिरा हुआ था। कहा जाता है कि उन्होंने नगर को घेरने के लिए शस्त्रों के लिए लोगों को भेजा। पर नगर की दीवारों को लाँघने की बेकार कोशिशों में उनके सैनिकों की मृत्यु होती रही। अंत में तैफ ने स्वयं आत्म-समर्पण कर दिया। तैफ को घेरने के लिए उन्होंने पत्थर फेंकने के लिए यंत्रों (**मंजनीक**) और मरी गायों की खाल और ऊन का बना बंदूक की गोली न लगने लायक पर्दे (**दब्बाब**) का प्रयोग किया। ये लड़ाई के यंत्र पहियों से युक्त लड़ाई की गाड़ियों पर ले जाये गए। उन गाड़ियों में सुरंगों में बढ़ने वाले और सुरंग खोदने वाले सैनिक चढ़ गये और गाड़ियों को तैफ के किले के निचले भाग के पास ले गये। जबकि किले के आदमी मुसलमानों के पत्थर फेंके जाने वाले यंत्रों से फेंके गये पत्थरों से अपनी रक्षा कर रहे थे तो पहियों से युक्त गाड़ियों से जमीन के नीचे-नीचे किले के निचले भाग तक पहुँच। गये सैनिकों ने गैंतियों और खोदनियों (खोदने के औजारों) से किले के निचले भाग को खोदना शुरू किया।

किले की रक्षा करने वाले तैफ के सैनिकों ने उन पर आग में तपाई गई लाल-लाल लोहे की छड़ों को फेंका जिससे गाय की खाल और ऊन से बने पर्दे (दब्बाव) जल गए और गाड़ियों पर चढ़े लोग मर गये।

युद्ध में सैनिकों की पंक्तियाँ बना कर तैयार रहना और शत्रु के बिल्कुल निकट आने की बल्लमों के साथ प्रतीक्षा करने और जब शत्रु पास पहुँच जाय तो उस पर बहुत शक्ति के साथ प्रहार करने की लड़ाई के तरीके को पैगम्बर ने इतनी पूर्णता के साथ तैयार किया जिससे मुसलमानों को शत्रुओं पर निश्चित प्रमुखता मिल गई क्योंकि शत्रु युद्ध के पुराने तरीकों को ही इस्तेमाल करते थे।

अरब के बाहर मुसलमान बहुत जल्द युद्ध के यंत्रों का प्रयोग सीख गए। संभवतः वे अरब जो सीरिया और ईराक सीमाओं पर रहते थे और जिन्होंने यूनानियों और फारसियों की सेनाओं में सहायक रक्षियों के रूप में काम किया था, कुछ हद तक लड़ाई के यंत्रों से परिचित थे। इसलिए पत्थरों को फेंकने के यंत्रों या इसी तरह के अन्य यंत्रों से शत्रु पर पत्थर या अन्य प्रहार की सामग्री फेंकना, दीवारों को गिराना, शत्रु के महल या किले की दीवारों की ओर बढ़ने के लिए मीनारों से सैनिकों की कार्रवाइयाँ, सुरंग खोदना तथा शत्रु की सुरंगों के जवाब में सुरंग खोदना आदि तरकीबें क्रमशः अपनाई गईं। ये तरीके बैजेन्टाईन फौजों द्वारा बहुत काफी विकसित किये गये थे। बड़े आकार के पत्थर के टुकड़े फेंकने वाली गुलेलों या शिलाप्रेक्षपकों के लिए अरबी शब्द **मंजनीक** यूनानी शब्द **मैंगानीकों** से बना है। सन् ६३५ में दमिश्क को घेरने और सन् ६३७ में फार्स में इस्तखार को घेरने के सिलसिले में इस तरह की बड़ी गुलेलों की चर्चा मिलती है।

उस समय अरब फौजें छोटे और बहुत तेज चलने वाली टुकड़ियों से भी, जिसमें लोग ऊँटों या घोड़ों पर चढ़ कर चलते थे, बनी होती थीं। ये टुकड़ियाँ निकट पूर्व और उत्तरी अफ्रिका के रेगिस्तानों और घास के मैदान में तेजी से बढ़ती हुई और आर्मीनियाई और इरानी पठारों तक बढ़ जाती थीं। ये किले की दीवारों से भलीभाँति घिरे स्थानों और नगरों को पार करती और आगे बढ़ती थीं। बाद में लौटती हुई ये टुकड़ियाँ या तो उनको पराजित कर देती थीं और या उनको खुद आत्म-समर्पण करने को बाध्य करती थीं। परम्परागत बैजेन्टाईन और फारसी फौजों के घुड़सवार और पैदल सैनिक भारी-भारी कवच पहने रहते थे और उनके पीछे-पीछे उनका बहुत काफी और भारी सामान चलता था। इसके विपरीत अरब आक्रमणकारी बहुत ज्यादा स्वावलम्बी होते थे। वे अपने पास बहुत कम सामान, खाद्य आदि रखते थे और गांवों में वे जो कुछ लूटते थे उससे अपना जीवन-यापन कर लेते थे। इसलिए बड़ी आक्रमणकारी फौजों और उनके लिए आपूर्ति की लंबी पंक्तियों का

सामना करना कोई बड़ी समस्या न थी। हम पाते हैं कि अरबों ने अपनी इसी नीति के कारण दूर-दूर के क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की। वे अटलांटिक सागर के उत्तरी अफ्रिकी तट से मोरोक्को तट तक पहुँच गए और काकेशस होते हुए वोल्गा के मुहाने तक चले गए। भारतीय महासागर के तट से वह स्थान, जिसे अब बलूचिस्तान कहते हैं, होते हुए वे सिन्धु नदी तक पहुँच गए, यद्यपि इन स्थानों के बीच के क्षेत्रों पर उन्होंने बराबर तुरत कब्जा न किया।

अध्याय—४

विजय, विस्तार और उपनिवेशीकरण की अवधि और खिलाफत

(सन् ६३२-६६१)

सन् ६३२ से ६६१ तक की अवधि मध्यकालिक इस्लाम के इतिहास में विजय, विस्तार और उपनिवेशीकरण की अवधि थी जिसमें बारी-बारी से चार धर्मनिष्ठ खलीफाओं ने शासन किया। ये थे अबू बकर (६३२-३४), उमर (६३४-४३), उस्मान (६४४-५६) और अली (६५६-६१)। अबू बकर और उमर ने धर्मनिष्ठतापूर्ण खिलाफत का आरम्भ किया जो मदीना पर आधारित थी। उनके उत्तराधिकारियों उस्मान इब्न अफ्फान और अली इब्न अबी-तालिब ने उसे आगे बढ़ाया। ये चारों कुरेशी थे। उनमें से तीन पैगम्बर के साथ विवाह-सम्बन्ध से जुड़े थे। यह वह समय था जब पैगम्बर के जीवन की चकाचौंध का असर कायम था और उस रोशनी का प्रभाव खलीफाओं के विचारों और कार्यों पर पड़ा था। इनमें से अन्तिम खलीफा अली की मृत्यु सन् ६६१ में हुई। इस प्रकार उस अवधि का अन्त हुआ जो अबू बकर (सन् ६३२) से प्रारम्भ हुई थी और जिसे खिलाफत का गणतांत्रिक चरण कहा जा सकता है। इस युग के उक्त चार खलीफाओं को अरब इतिहासकार अव अल-रसीदुन (धर्मनिष्ठ) कहते हैं। खिलाफत की अवधि की समीक्षा एवं धर्मनिष्ठ खलीफाओं की उपलब्धियों पर विचार करने के पूर्व इस पर गौर करना जरूरी है कि उनकी विजय, विस्तार और अरब के बाहर उनके उपनिवेशीकरण के भिन्न-भिन्न कारण क्या थे।

इस्लाम के विस्तार के मुख्य कारण

तत्कालीन प्राचीन समय की दो मुख्य और उल्लेखनीय घटनाएँ थीं। एक घटना तो प्राचीन जर्मन लोगों का देश छोड़ कर दूसरे देश में चला जाना है जिसके कारण संवेदनशील रोमन साम्राज्य में आंतरिक फूट पड़ गई तथा दूसरी घटना अरबों की विजय है। अरबों की विजय ने ईरानी साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यही नहीं, अरब के इस्लामी साम्राज्य ने बैजेन्टाइन सत्ता को बुरी तरह आमूल-चूल झकझोर दिया। इन दो में से अरब की जीत और स्पेन पर उसके कब्जे से मध्य युग का आरम्भ हुआ। सातवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में शायद ही किसी ने कल्पना की

होगी कि एक दशक के ही भीतर, अब तक के बर्बर, नासमझ और दुनिया से बेखबर अरब इतनी जल्दी ही अपनी विशाल विजय से सबकी आँखों में चकाचौंध पैदा कर देंगे और क्रमशः महान ईरानी साम्राज्य के उत्तराधिकारी बन जाएंगे और बैजेन्टाइन साम्राज्य के अनेक बड़े हिस्सों को उनसे छीन लेंगे। पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के बाद बंजर अरब की भूमि मानों हरी-भरी वीरप्रसवा भूमि बन गई और वहाँ इतने वीर एक साथ हुए जितने एक साथ कहीं न हुए होंगे। इन वीरों में से कुछ बहुत उल्लेखनीय हैं, खालिद इब्न अल वलीद जिसे बाद में "इस्लाम की तलवार" कहा गया, तथा अम्र इब्न-अल-अस, जो बाद में मिस्र का गवर्नर बना। इन लोगों के सैन्य अभियानों में, जो ईराक, फारस, सीरिया और मिस्र में हुए, तीक्ष्ण बुद्धि और सूझ-बूझ से किये गए युद्ध थे और उनमें उनकी वीरता की तुलना, बड़े मजे से, सिकन्दर, नेपोलियन और हैनिबाल से, की जा सकती है।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या कारण थे जिनसे अरबों ने अपनी मातृभूमि के बाहर जा कर सैनिक अभियान का जीवन शुरू किया। उन दिनों की वे क्या वस्तुगत स्थितियाँ थीं जिनके कारण अरब जनजातियाँ विस्तार और विजय का झण्डा लिये आगे बढ़ीं। इसके आधारभूत कारण अनेक और भिन्न-भिन्न थे। अरब के बाहर इस्लाम का विस्तार एक मिश्रित तथ्य था, इसलिए उसका कोई खास कारण नहीं दिया जा सकता। हाँ, इसके अनेक कारणों में कुछ बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे और कुछ कम। ये कारण मोटे तौर पर तीन शीर्षों में बांटे जा सकते हैं—धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक।

फिर भी, इस्लाम के विस्तार के राजनीतिक व्याख्या में, जो मुख्य रूप से अरब स्रोतों ने की है, उसमें उसे पूर्णतः और मुख्यतः एक राजनीतिक आंदोलन बतलाया गया है। इस्लाम में कट्टरपंथियों ने इसे नये धर्म के लिए ईश्वर (अल्लाह) का आशीर्वाद माना और साथ ही यह भी कहा कि इस्लाम अत्यन्त उल्लेखनीय धर्म है। दूसरी ओर, कुछ ईसाई लेखकों ने इस बात पर जोर दिया है कि इस्लाम की विजय, विस्तार आदि पूर्णतः धार्मिक तथ्य है और वे इस्लाम विजय को इस्लाम धर्मान्धता के अलावा और कुछ नहीं मानते। उन लोगों का कहना है कि मुसलमान एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार लिए निकले। उन्होंने जब भी किसी क्षेत्र पर विजय पाई तो पराजित लोगों के सामने दो विकल्प रखे या तो इस्लाम गले लगाओ या मौत। चाहे जो कुछ भी हो, इस पर गौर रखा जाना चाहिए कि अरब के बाहर इस्लाम के विस्तार के लिए एक मात्र धर्म ही जिम्मेदार नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि धर्म ने इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह एक नये नारे जैसा हुआ, एक युद्ध-घोष जो लोगों को एक मंच पर एकत्र करने का सुविधा-जनक उपाय था। इससे इस्लाम के झण्डे को लिए हुए मुसलमानों को आगे बढ़ाने

का संकेत, चिह्न मिला। भिन्न-भिन्न तरह के लोगों को, जो पहले एकता के सूत्र में कभी न वँधे थे, एकजूट करने तथा संगठन में बांधने के लिए धर्म ने बहुत अहम भूमिका अदा की और उत्प्रेरक शक्ति सिद्ध हुआ। पर केवल इतने से ही इस्लाम की विजय और विस्तार की व्याख्या नहीं की जा सकती।

ईसाई लेखकों और पुरोहितों की व्याख्या में इस्लामी आन्दोलन को मुख्यतः और सम्पूर्णतः एक धार्मिक आन्दोलन बतलाया गया है। ऐसा करते समय अन्तर्निहित आर्थिक कारणों पर कोई बल नहीं दिया गया है। सच पूछा जाय तो धर्मान्धता नहीं बल्कि आर्थिक जरूरतों ने ही बद्दू गिरोहों को लड़ने और नये क्षेत्रों पर कब्जा करने के लिए बाध्य किया। पहले भी अरब की बंजर भूमि के बाहर उत्तर की उपजाऊ, हरी-भरी जमीन तक बद्दूओं को ही विजय की सेनाओं में भरती किया जाता रहा था। इसमें सन्देह नहीं कि बद्दू आक्रमणकारी अपने बंजर और आबादी बहुल निवासस्थल से अपने नेताओं द्वारा दिये गए इस विश्वास के साथ आगे बढ़ने को प्रोत्साहित हुए कि इस्लाम धर्म के प्रसार के लिए लड़ने पर उन्हें बिहिश्त (स्वर्ग) मिलने पर वे अल्लाह (भगवान) की शरण में चले जाएँगे। आक्रमण के प्रारम्भ में धार्मिक कारणों से मुसलमानों को आगे बढ़ने में सहायता मिली। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि सातवीं सदी के प्रथम पच्चीस वर्षों में अरब की आबादी तेजी के साथ बढ़ी और उसी अनुपात में जनता की आवश्यकताएँ भी बढ़ीं। अरब में जीवन-यापन के जो साधन उपलब्ध थे, वे इस बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपर्याप्त थे। अतः यह बहुत जरूरी हो गया कि अरब व्यापार-वाणिज्य में लगें और इसलिए आवश्यक हुआ कि वे अन्य क्षेत्रों को अपने कब्जे में लायें। यह सर्वथा संभव है कि विजय-अभियान में लगे अरबवासियों में से कुछ इस उद्देश्य से प्रेरित हुए हों कि इस प्रकार के धर्म-युद्ध में शामिल होकर वे मौत के बाद बिहिश्त (स्वर्ग) जाएँगे। पर अधिकांश लोग विजय-युद्ध के लिए इस कारण निकले कि उन्हें भी सभ्य अर्द्धचद्राकार क्षेत्र की सुख-सुविधाओं की प्राप्ति हो सके। इस प्रकार जीवन में अधिक आराम तथा सुख-सुविधायें उपलब्ध करने के लिए नये क्षेत्र प्राप्त करने की इच्छा से संबंधित आर्थिक कारण धार्मिक उत्साह से अधिक शक्तिशाली था। इस प्रकार अरबवासियों ने बाहरी क्षेत्रों पर हमला किया। अनेक इतिहासकारों ने इस्लाम द्वारा विजय, विस्तार और उपनिवेशीकरण के आन्दोलन के इस पक्ष पर, सही ही, जोर दिया है।

सीटानी, बेकर तथा अन्य आधुनिक इतिहासविदों ने मुसलमानों के विजय-अभियान के विवेचन में आर्थिक पक्ष पर जो जोर दिया है उसकी पूर्ण उपेक्षा प्राचीन अरब इतिहासकारों ने भी नहीं की है। मुसलमानों की विजय के सबसे अधिक युक्तियुक्त विवेचक-इतिहासकार अल-बलाधुरी; अरब कवि अबू तम्माम तथा अन्य अनेकों ने भी विजय और विस्तार के इस आर्थिक पक्ष पर जोर दिया है। अल-बलाधुरी ने

कहा है कि सीरिया पर हमले के लिए सेना में भरती के समय प्रथम धर्मनिष्ठ खलीफा अबू-बकर "मक्का, अल-तैफ अल-यमन और नज्द और अल हेज्जाज के सभी अरबों को लिखा और 'धार्मिक युद्ध' के लिए उनका आह्वान किया और इसके लिए उनकी इच्छा जगाई और साथ ही यूनानियों से छीने जाने वाले लूट के माल की भी बात इन लोगों से कही।" ईरानी सेनाध्यक्ष रुस्तम ने अरब हमले से अपने देश की रक्षा की और मुस्लिम दूत से कहा—"मैंने जान लिया है कि तुम यह सब और किसी और वजह से नहीं बल्कि जीविका कमाने और गरीबी से लड़ने के संकीर्ण उद्देश्य से कर रहे हो।"

अरब कवि अबू-तम्माम ने इसी बात को एक संक्षिप्त कविता में इस प्रकार कहा है—

"नहीं, तुम अपनी घुमन्तू जिन्दगी बिहिश्त के लिए नहीं छोड़ रहे हो; बल्कि मैं यकीन करता हूँ कि रोटी और खजूर मिलने की उत्कट इच्छा से तुम ऐसा कर रहे हो।" यदि इस्लाम-विस्तार को उचित परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो उसे बंजर भूमि से अर्द्ध-चन्द्राकार उपजाऊ क्षेत्र में युगों से चली आ रही घुसपैठ की प्रक्रिया का अंतिम चरण कहा जा सकता है या अंतिम सामी (सेमेटिक) प्रव्रजन के रूप में भी जाना जा सकता है। फिर भी इस संबंध में अनेक ईसाई लेखकों की यह भ्रान्त धारणा रही है कि मुसलमान एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार लिए अपने विजय-अभियान में आगे बढ़े। अरब प्रायद्वीप से बाहर और खास तौर पर अहल-अल-किताब (ईसाइयों और यहूदियों) की प्रेरणा से कुरान और तलवार के बीच एक तीसरी बात भी थी जो विजय करने वालों के लिए अधिक स्वीकार्य भी थी। इस तरह विजेताओं के दृष्टिकोण से कुरान और तलवार से भी प्रिय एक वस्तु खिराज (कर) थी "जिन्हें किताब (कुरान) दी गई उनके विरुद्ध तब तक युद्ध जारी रखो जब तक पूरी तरह अपमानित होकर वे अपने हाथ से कर न अदा करने लगें।" (कुरान ९-२९)। विजय-अभियान खूब ठीक ढंग से और ठंढे दिमाग से सोचे गये कार्य का परिणाम होने के बजाय ये धावा बन कर रह गए। पहले की भाँति जनजातियों द्वारा एक दूसरे से लड़ाइयाँ बंद कर दिए जाने के कारण अब उनका लड़ाकू जोश-खरोश अभिव्यक्ति के नये माध्यम ढूंढ़ने लगा था। इन धावों का उद्देश्य था कि रुपये-पैसे और माल छीना जाय। उनका उद्देश्य किसी देश में पाँव जमाना और उस पर कब्जा करना न था। पर इस प्रकार जोश-खरोश को अभिव्यक्ति देने का जो यंत्र बनाया गया, वह आगे जाकर निर्माता के ही हाथ से बाहर चला गया। समय-क्रम में धावा करने का यह आन्दोलन विजय करने की ब्योरेवार नीति में परिणत हो गया जिससे, फलतः विशाल साम्राज्य बनाया जाने लगा। जब हमलावरों को विजय-पर-विजय मिलती गई तो धावे करने का यह आन्दोलन

भी उसी अनुपात में, तेजी के साथ, बढ़ता गया। धावों के ब्योरेवार ढंग से बढ़ने से अनिवार्यतः अरब साम्राज्य का निर्माण होता चला गया। साम्राज्य का निर्माण किसी पूर्व-निर्धारित योजना की वजह से न हुआ बल्कि वह तात्कालिक परिस्थितियों के तर्क का फल था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इन धावों के परिणाम-स्वरूप बाद में चल कर जो अरब साम्राज्य बना वह उस समय की परिस्थिति की उपज थी।

अरबी इतिहास में इस्लामी क्रान्ति की मुल्लाओं द्वारा जो व्याख्या की गयी है उसमें उसके धार्मिक पहलू पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया गया है और उसके अन्तर्गत आर्थिक तत्वों पर दृष्टि भी नहीं डाली गयी है। इसी प्रकार के निराधार अनुमान यहूदियों और ईसाइयों के भी हैं जिनमें कहा गया है कि अरब मुसलमानों के एक हाथ में "कुरान" होता तथा दूसरे हाथ में "तलवार"। इनमें किसी को स्वीकार करने का विकल्प दिया जाता था।

इस्लाम शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया गया है। प्रथम तो इसका अर्थ पैगम्बर मुहम्मद द्वारा फैलाया धर्म है, बाद में इसका अर्थ राज्य के रूप में किया गया और तीसरे एक संस्कृति के अर्थ में। यहूदी धर्म और बौद्ध धर्म के विपरीत और ईसाई धर्म की भाँति इस्लाम धर्म एक हमलावर और साथ ही मिशन जैसा धर्म हुआ। फलतः उसने अपना एक राज्य भी बना लिया। जिस इस्लाम ने उत्तरी क्षेत्रों को जीता वह इस्लाम धर्म नहीं बल्कि इस्लाम राज्य था। इस्लाम धर्मावलम्बी अरब एक राष्ट्रीय धर्म-तंत्र के सदस्यों के रूप में वैसे संसार के सामने वेगपूर्वक प्रकट हुए जिसे यह घटना होने की कोई उम्मीद न थी। पहले मुहम्मदवाद की नहीं अरबवाद की विजय हुई। मुस्लिम सन् की दूसरी और तीसरी शताब्दियों के बाद ही सीरिया, मेसोपोटामिया और ईरान ने हजरत मुहम्मद का धर्म अपनाया। इन क्षेत्रों की फौजी विजय और इस्लाम धर्म में इनके परिवर्तित होने के बीच बहुत बड़ी अवधि का अन्तराल है। फिर जब इन लोगों का धर्म-परिवर्तन हो गया तो वे शासक वर्ग के लोगों के साथ इसलिए मिल गए ताकि वे अरबवासियों द्वारा विहित कुरान के प्रति श्रद्धांजलि से बच सकें। जहाँ तक इस्लाम का एक संस्कृति के रूप में संबंध है, फौजी विजय के बाद इस संस्कृति का विकास धीरे-धीरे हुआ जिसका आधार, इस संस्कृति के पूर्व वर्तमान सामी—अर्मनी, ईरानी और यूनानी सभ्यताओं का सारभाग बना। इस्लाम द्वारा शुरू की गई नई व्यवस्था ने न केवल अपने पहले के पूरे राजनीतिक क्षेत्र पर फिर से कब्जा कर लिया बल्कि अपनी सभ्यता के क्षेत्र में अपने प्राचीन बौद्धिक उत्कर्ष को भी आत्मसात कर लिया। इस्लामी राज्य ने आक्रमणात्मक नीति पर चलते हुए अपना विकास इस्लामी साम्राज्य के रूप में कर लिया। इसीलिए हम पाते हैं कि समय-क्रम में इस्लाम केवल धर्म के रूप में प्रसिद्ध नहीं हुआ बल्कि एक राजनीतिक शक्ति के रूप में भी।

अरब के बाहर इस्लाम के अभियान का एक परिस्थितिजन्य कारण था। अपने घर के बाहर इस्लाम के द्रुतगति से विकास का कारण यह था कि उस समय, उसे इस कार्य में उचित ढंग से चुनौती देने वाली और कोई शक्ति न थी। इनके पड़ोस के राज्य—फारस और बैजेन्टाइन—अन्दरूनी उपद्रवों से ग्रस्त थे। इसके अलावा ये दो राज्य आपस में भी लड़ रहे थे। यों ये दोनों आंतरिक समस्याओं से अत्यधिक परेशान थे। इस प्रकार पास-पड़ोस में इस क्षेत्र में इस्लाम राज्य के समान या उससे ज्यादा शक्तिशाली राज्य न रहने और फारसी और बैजेन्टाइन राज्यों की कमजोरियों के कारण इस्लाम के अरब से बाहर विस्तार में बहुत ज्यादा मदद मिली।

प्रतिद्वन्द्वी बैजेन्टाइन और सासानी (ईरानी) राज्यों की दुर्बल स्थिति हो गई थी जिसके कारण कई पीढ़ियों से उनके बीच चला आ रहा सांघातिक युद्ध और उस कारण उन दोनों द्वारा अपनी-अपनी जनता पर लगाया जाने वाला कर था जिससे उन लोगों में अपने शासकों के प्रति निष्ठा की कमी हो गई थी। सीरिया और मेसोपोटामिया और खासकर उनकी सीमाओं पर अरब जनजातियाँ पहले से ही बस गई थीं; ईसाई गिरजाघरों में आंतरिक फूट पड़ गई थी तथा साथ ही कट्टर (कैथोलिक) गिरजा द्वारा अपने अनुयायियों का उत्पीड़न बढ़ रहा था। इन सब कारणों से अरब सेनाएँ आश्चर्यजनक, तेजी से आगे बढ़ीं। अलावे, सीरिया और फिलस्तीन के मूल निवासी सामियों और मिस्र के हामी निवासियों (हैमाइटों) ने अपने दमनकारी विदेशी शासकों के बजाय विजयी अरब सेना को अपने निकट के भाई-बंधुओं के रूप में देखा।

सीरिया और ईरान की सीमाओं पर कुछ अरब जनजातियाँ पहले से बस गई थीं और उन्होंने काफी समय तक ईसाई शासन को भी देखा था। यह भी उल्लेखनीय है कि सीरियाई, इराकी और मिस्री उस ईसाई दल के थे जिन्हें आधिकारिक बैजेन्टाइन चर्च वाले विधर्मी मानते थे (और ऐसे समय भी आते थे जब इन पूर्वी ईसाइयों को इनके बैजेन्टाइन शासक लोग उत्पीड़ित भी करते थे)। जाहिर था कि इस प्रकार उत्पीड़ित ईसाइयों को इस्लाम धर्म एक नये ईसाई धर्म जैसा लगा। इसके अलावा जातिगत तथ्य भी था। स्वयं सामी होने के कारण सीरियाइयों और इराकियों ने बैजेन्टाइनों के मुकाबले अरब लोगों को अपने अधिक निकट माना। न केवल दमिश्क बल्कि अनेक नगरों में भी मूल निवासियों ने मुस्लिम आक्रमणकारियों का स्वागत किया और आक्रमण के बाद बेहतर दिन आने की आशा की। सच्चाई यह है कि मुस्लिम विजय को प्राचीन निकट पूर्व द्वारा अपने प्रारम्भिक क्षेत्र की पुनर्प्राप्ति कहा जा सकता है। इस्लाम को उत्प्रेरक शक्ति पाकर अब पूर्व जाग गया था और हजारों वर्षों के ईसाई आधिपत्य के बाद अपने अधिकारों पर फिर से जोर देने लगा था। अलावे, नये आक्रमणकारी अपने ग्रन्थ कुरान के लिए विजित लोगों से जो

श्रद्धांजलि जबर्दस्ती वसूलते थे वह पुराने शासकों से वसूल की जाने वाली से कहीं कम कठिन थी। मुस्लिम आक्रमणकारियों के अधीन विजित लोग अपने धार्मिक क्रियाकलाप अधिक स्वतंत्रता और कम उल्लंघन के साथ पूरे कर सकते थे। जहाँ तक खुद अरब-वासियों का संबंध था, वे ताजगी से भरे, शक्तिशाली लोग थे जो नये उत्साह-उमंग से पूर्ण और जीतने के संकल्प से भरे हुए थे और उनके नये धर्म द्वारा उनके मन में यह बात बैठा दी गई थी कि धर्म का आदेश पूरा करते समय उन्हें मृत्यु से बिलकुल न डरना चाहिए तथा उसकी पूरी अवज्ञा करनी चाहिए। पर उनकी सफलता का कारण, बहुत हद तक, उनकी नई युद्ध-नीति थी जो पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रिका के घास के मैदानों में बहुत सफल सिद्ध हुई थी। वे घुड़सवारों और ऊँट पर चढ़ कर लड़ने वालों के सहारे अप्रत्याशित रूप से आगे बढ़ने में सफल हुए।

अलावे, प्रथम खलीफा अबू बकर ने आक्रमण करने का निर्णय शक्तिशाली ढंग से कार्यान्वित किया और उनसे भी ज्यादा जोरदार ढंग से दूसरे खलीफा उमर ने इस काम को आगे बढ़ाया। यही नहीं, उमर ने प्रशासन और सेना का व्यवस्थित और कारगर रूप से पुनर्गठन किया। मुसलमानों की विजय के ये भी कारण थे। इस्लाम की विजय, विस्तार और उपनिवेशीकरण की योजना प्रथम खलीफा अबू-बकर और दूसरे खलीफा उमर ने विलक्षणता और दूरदर्शिता के साथ, एक अच्छी तरह सावधानी से तैयार की गई योजना के अनुसार, कार्यान्वित की और इस प्रकार उसमें सफलता न मिलने का कोई प्रश्न ही न था। यह सही है कि इस्लामी विस्तार की प्रगति की संभावनाएँ अरब के इस आंतरिक स्थायित्व से पुष्ट हुई जो द्वितीय खलीफा उमर के प्रशासनिक पुनर्गठन के कारण संभव हो सका था। यदि इस्लाम के द्वितीय खलीफा उमर ने टिकाऊ, शक्तिशाली और सक्षम आंतरिक प्रशासन न कायम किया होता तथा इस्लाम की सेना खूब मजबूत न बना दी होती तो अरबों द्वारा बाहरी राजनीतिक और फौजी अभियान और सफलताएँ प्राप्त किया जाना संभव न होता।

अरब इतिहासकारों—अधिकतर धर्मशास्त्रियों—ने इस्लाम की इस अभूतपूर्व विजय का कारण केवल ईश्वरीय कृपा बतलाया है जैसा कि पूर्व विधान (ओल्ड टेस्टामेंट) द्वारा यहूदियों की विजय के बारे में कहा गया था। उन लोगों ने विजय के लिए **फथ** (फतह) शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ हुआ इस्लाम का प्रसार सुगम बनाना। पर लड़ाइयों के लिए उन्होंने **गज्ब** (रजिया अर्थात् आक्रमण) शब्द इस्तेमाल किया। यही शब्द जनजातियों के बीच लूट के लिए होने वाली लड़ाइयों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वास्तव में उन प्रारंभिक विजयों में इस्लाम धर्म नहीं बल्कि हजरत मुहम्मद द्वारा स्थापित राष्ट्र-राज्य इस्लाम की जीत हुई। विजित लोगों द्वारा इस्लाम धर्म अपनाये जाने का काम तो जाकर दो शताब्दियों में पूरा

हुआ। इसके पूर्व कई अन्य अवसरों पर बंजर भूमि वाला अरब प्रायद्वीप, जो तीन ओर से पानी से घिरा हुआ है, ऐसी स्थिति में पहुँच गया था कि वह समृद्ध जीवन बिताने के लिए उपजाऊ अर्द्ध-चन्द्राकार भूमि में घुस पड़े। इस बार धर्म वह चिनगारी सिद्ध हुआ जिससे राष्ट्रीयता की बारूद में भड़भड़ाकर आग लग गई।

कुछ अरब इतिहासकारों का कहना है कि अरबों द्वारा ये अभियान पूर्व-निर्धारित योजनाओं के अनुसार किये गए। इससे अधिक निराधार बात कुछ और नहीं हो सकती। अरब साम्राज्य का निर्माण किसी योजना के अनुसार नहीं बल्कि बाध्यकारी स्थितियों के तर्क के कारण हुआ। न तो प्रथम खलीफा अबू बकर और न द्वितीय खलीफा उमर ने ही घटना-क्रम की, जो उनके सामने चल रहा था पर जो पूरी तरह उनके नियंत्रण में न था, चरम परिणति के बारे में सोचा होगा। उमर के ही शासन में अधिकांश विजय हुई थी। उन्होंने अपने अधीन सेनाध्यक्षों से बार-बार कहा कि समुद्र को उन लोगों और उनके (उमर के) बीच हस्तक्षेप न करने दिया जाय। उमर ने जोर दिया कि उनकी फौजें (शहरों में रहने के बजाय) शिविरों में रहें और आगे चलती जायँ। इस प्रकार इराक में कूफा और बसरा और अल-फुस्तात (जो बाद में मिस्र में शामिल किया गया) बसाये गए। प्रारंभिक अरब विजय के बारे में उल्लेखनीय बात यह थी कि वह न केवल शीघ्रता के साथ की गई बल्कि उनमें एक प्रकार की व्यवस्था भी थी। उनमें बेकार की लूट-मार न की गई और युद्ध से शांति और विजय से प्रशासन की ओर संक्रमण आसानी से हुआ।

खिलाफत (उत्तराधिकारी) का आधार और तात्पर्य और खलीफा की उपाधि

जब तक हजरत मुहम्मद जीवित रहे उन्होंने पैगम्बर, न्याय प्रदानकर्ता, धार्मिक नेता, मुख्य न्यायाधीश, सेना का प्रधान और राज्य का प्रधान, इन सब कामों को अकेले ही किया। अपने सारे जीवन में हजरत मुहम्मद ने अल्लाह के प्रवक्ता का काम किया और इस रूप में विधायक, न्यायाधीश और कार्यपालक इन तीनों की भूमिकाएँ एक साथ निबाही। पर उनकी मृत्यु के बाद, जिस द्वार से ईश्वरीय न्याय मिलता था वह बराबर के लिए बन्द हो चुका था। उनके बाद और कोई पैगम्बर न आने वाला था। हजरत मुहम्मद ने अपने जीवन-काल में बार-बार कहा था "मेरे बाद और कोई पैगम्बर न आएगा।" इसलिए सवाल उठा कि धार्मिक कार्यों को छोड़कर अन्य कामों में उनका उत्तराधिकारी, उनका खलीफा कौन होगा? मानव जाति का सबसे अन्तिम उपदेश देने वाले अन्तिम और सबसे बड़े पैगम्बर के रूप में अपनी भूमिका निभाने के बाद हजरत मुहम्मद की जब मृत्यु हुई तो स्पष्टतः ऐसा कोई व्यक्ति न था जो उनका उत्तराधिकारी बन पाता।

पैगम्बर को कोई पुत्र न था। उनकी केवल एक पुत्री—फातिमा—बच रही थी जो चौथे खलीफा अली की पत्नी थी। पर अरब के प्रधान या शेख का पद वंशगत न था। इस पद पर नियुक्ति चुनाव के द्वारा होती है जिसमें जनजाति की वरीयता को तरजीह दी जाती है। इसलिए यदि हजरत मुहम्मद के पुत्र उनके पहले न मर गए होते तो भी यह समस्या अनसुलझी ही रह जाती। और हजरत मुहम्मद अपना कोई उत्तराधिकारी भी घोषित न कर गये थे। इसलिए मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद इस्लाम के समक्ष पहली समस्या यह आई कि उनका उत्तराधिकारी कौन हो? धर्मों के सुप्रसिद्ध इतिहासकार अल-शहगस्तानी ने कहा है—"ऐसी कोई इस्लामी समस्या नहीं हुई है जिसमें खिलाफत (**इमाम**) की समस्या से अधिक रक्तपात हुआ हो।"

जैसा कि बराबर होता है, जब कोई गम्भीर प्रश्न जनता के निर्णय के लिए आता है तो विभिन्न परस्पर-विरोधी गुट अपने-अपने दावे के साथ उठ खड़े होते हैं। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद भी ऐसा ही हुआ। एक ओर प्रवासी (**मुहाजरीन**) थे जिन्होंने अपना दावा इस आधार पर रखा कि वे उस जनजाति के हैं जिसके हजरत मुहम्मद थे और सबसे पहले हजरत मुहम्मद के सिद्धान्त भी उन्हीं ने स्वीकार किए। दूसरी ओर मदीना के समर्थक (**अंसार**) थे जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि उन्होंने पहले-पहल इस्लाम को आश्रय न दिया होता तो हजरत मुहम्मद और उनके सबसे पहले के अनुयायी—दोनों ही—नष्ट हो गये होते। बाद में इन दोनों दलों ने इस बात पर एक दूसरे के साथ समझौता कर लिया कि वे साथी (**सहाबा**) बन जायें। और तब विधिवादियों (असहाब) ने कहा कि अल्लाह और हजरत मुहम्मद ने इस्लाम धर्म विश्वासियों को यों ही किन्हीं अनिश्चित मौकों और मतदाताओं की सनक पर न छोड़ा होता। इसलिए उन लोगों ने कहा कि इस बात की ठीक-ठीक व्यवस्था की जाय कि नेता कौन खास व्यक्ति होगा। इसलिए हज़रत मुहम्मद का उतराधिकारी ग्रहण करने के लिए किसी व्यक्ति को नामजद किया जाय। पैगम्बर के भतीजे और उनकी एक मात्र बच रही संतान—फातिमा—के पति तथा उनके दो-तीन प्रारम्भिक धर्मावलम्बियों में से एक अली को इस तरह नामजद करने का सुझाव दिया गया और उन्हें ही एकमात्र वैध उतराधिकारी बताया गया। यह सुझाव देने वालों ने, जो चुनाव के सिद्धान्त के विरोधी थे, शासन के दैवी अधिकार पर जोर दिया। इन लोगों के अलावा अन्तिम, पर किसी से कम महत्वपूर्ण नहीं, लोग थे कुरेश जनजाति के कुलीन लोग उमैय्यद जो इस्लाम-पूर्व अवधि में शासन की बागडोर अपने हाथों में रखे हुए थे। इन लोगों ने सबसे अन्त में इस्लाम धर्म कबूल किया था। इन लोगों ने दावा किया कि हजरत मुहम्मद का उत्तराधिकारी उन्हीं लोगों में से किसी को बनाया जाय। उनके प्रधान अबू-सूफयान

ने मक्का का पतन होने तक हजरत मुहम्मद का विरोध करना जारी रखा था। फिर भी, जिन दो बड़े सम्प्रदायों में इस्लाम शुरू से ही विभाजित हो गया था, वे इस बात पर सहमत थे कि कानून (शरीयत) द्वारा विहित अधिकारों और कर्त्तव्यों की धार्मिक उपादेयता इस बात पर निर्भर करती है कि पैगम्बर का एक प्रतिनिधि हो जो धर्म और धर्मावलम्बियों का धार्मिक प्रधान (इमाम) हो। पैगम्बर मुहम्मद के शिष्य इमामों का सिद्धांत मानने वाले इन लोगों का अपना विकास-सिद्धान्त और दर्शन था जो "परम्पराओं के अनुयायियों" के दर्शन से सर्वथा भिन्न था। इन लोगों के अनुसार पैगम्बर द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई आध्यात्मिक विरासत पाने का हक अली तथा उनके और उनकी पत्नी और हजरत मुहम्मद की पुत्री फातिमा के वंशजों को है। उन लोगों का कहना था कि इमाम ईश्वर द्वारा भेजे गए धर्म-दूतों की परम्परा में दैवी नियुक्ति से इस धरती पर आता है। यह सिद्धान्त मानने वालों ने अबू बकर, उमर और उस्मान का धर्माध्यक्ष संबंधी अधिकार न माना। वे लोग मानते हैं कि अली, जिसके बारे में हजरत मुहम्मद ने अपना उत्तराधिकारी होने का संकेत दिया था, प्रथम अधिकारपूर्ण खलीफा और धर्मावलम्बियों का इमाम था। साथ ही वे लोग यह भी मानते हैं कि अली की हत्या के बाद आध्यात्मिक अध्यक्षता उसके और उसकी पत्नी फातिमा के वंशजों में से पुरुषों को मिलती जाएगी। और यह क्रम अली के बाद उनके ग्यारहवें उत्तराधिकारी इमाम हसन अल-असकरी तक चलेगा। असकरी की मृत्यु सन् ८७४ (हिजरा सन् २६०) में हुई। उस समय अब्बासिद खलीफा मुतामिद का शासन था।

मध्य युग के आरम्भिक काल में दो प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिक प्रणालियाँ थीं, एक पश्चिम में और दूसरी पूर्व में। ये दोनों प्रणालियाँ एक दूसरे के ठीक आमने-सामने खड़ी थीं और दोनों एक दूसरे से बिल्कुल अज्ञान थीं और एक दूसरे के विचारों और आदर्शों को न समझती थीं। दोनों का ही कहना था वे ईश्वर द्वारा नियुक्त की गई थीं। उन्होंने यह भी अपील की कि ईश्वर के व्यक्त शब्द के अनुसार उनके प्राधिकार को स्वीकृति मिले। पर इस्लाम एक विश्वव्यापी धर्म है और उसका दावा है कि सभी पुरुषों और स्त्रियों को उसके प्रति निष्ठा रखनी चाहिए। इसके लिए वे या तो मुस्लिम धर्म स्वीकार करें या प्रजा के रूप में कुरान के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करें। इस प्रकार एक ही धर्म सभी के द्वारा स्वीकार किये जाने के बाद उन सब पर जिम्मेदारी आती है कि वे एक सुदृढ़ ऐक्यबद्ध राजनीतिक संगठन बनाएँ और उसकी एकता कायम रखें, साथ ही सभी धर्म-विश्वासियों को समुदाय के प्रधान खलीफा के प्रति आज्ञाकारी रहना है। इन दोनों प्रणालियों की स्पष्ट समानता के बावजूद दोनों के बीच आधारभूत रूप से मत-विभिन्नता थी। पवित्र रोमन साम्राज्य पूरी समझदारी

और जानकारी के अधीन पूर्ववर्ती राजनीतिक संस्थान का पुनरुज्जीवित रूप था। वह राजनीतिक संस्थान ईसाई धर्म के जन्म के पूर्व का था और अब विशेष रूप से ईसाई स्वरूप के अधीन सुसज्जित किया गया था।

जिन स्थितियों में खिलाफत का उदय हुआ वे पूरी तरह ऊपर की स्थिति से भिन्न थीं। वह किसी जान-बूझ कर एवं पूर्व दर्शिता के बिना इन स्थितियों में से आगे बढ़ी। विशाल साम्राज्य की उन परिस्थितियों में से उसका जन्म हुआ जो (परिस्थितियाँ) मानो कहीं से अरबों के मुँह पर फेंक दी गईं। उन्हें कम-से-कम प्रयत्न से इरानी और रोमन साम्राज्यों ने, जो एक दूसरे को टुकड़े-टुकड़े करने के युगों-पुराने अपने आपसी संघर्षों से थक गये थे, चुना और उसे नया रूप दिया। सातवीं शताब्दी के आरंभ में किसी ने भी नहीं, और अरबों ने तो निश्चय ही नहीं, पूर्व-कल्पना की होगी कि पैगम्बर के उत्तराधिकारी के पास, जब वह दमिश्क या बगदाद में शासन कर रहा होगा, इतना प्रचुर धन और शक्ति होगी। पवित्र रोमन साम्राज्य के प्रतिकूल खिलाफत सभ्यता के किसी पूर्व-स्थित स्वरूप या राजनीतिक संगठन की जान-बूझ कर की गई नकल न था। वह उन स्थितियों की उपज थी जिससे अरब बिल्कुल अनजान थे और ठीक इन स्थितियों द्वारा पूरी तरह ढाला गया उनका रूप था। इस प्रकार खिलाफत एक ऐसा राजनीतिक संस्थान था जो अपने युग की उपज था और उसने किसी पूर्व-समय के राजनीतिक संस्थान के पुनरुज्जीवित स्वरूप को अपने ऊपर न ओढ़ा।

इस्लामी धर्म-शास्त्रियों और न्याय-शास्त्रियों द्वारा इस धारणा का इस कारण विशद रूप से विवेचन किया गया था ताकि वह तत्काल कार्यरत तथ्यों के अनुरूप हो सके। इस धारणा के विकास का इतिहास मृत-सा है, अरब साम्राज्य के एक वास्तविक तथ्य बन जाने पर यह धारणा फिर कहीं दीख न पड़ी। यह धारणा या सिद्धान्त के दर्शन सर्वप्रथम परम्पराओं में होते हैं और इस बारे में कहा जाता है कि यह सिद्धान्त पैगम्बर मुहम्मद या उनके किसी निकटस्थ साथी का कथन बतलाया जाता है। ये परम्पराएँ पहले बतलाई गईं और एक मुंह से दूसरे मुँह के कथन द्वारा इनको चलाया जाता रहा। बाद में हिजरा सन् की तीसरी शताब्दी में इनके आधिकारिक संकलन तैयार किए गए। धर्म-सिद्धान्त, धार्मिक क्रिया-कलाप के कार्यान्वयन, धार्मिक जीवन के कानून और क्रिया-कलाप में इनको कुरान के बाद का स्थान दिया गया। वास्तव में परम्पराओं के प्रति सम्मान एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गया कि उनमें बताई गई बातों को कुरान के ठीक बाद का महत्व दिया जाने लगा। हिजरा सन् की पहली शताब्दी के अंत में यह विनिहित किया गया कि कुरान के किसी का अर्थ स्पष्ट न होने पर परम्पराओं का निष्कर्ष ही निर्णायक माना जायगा। दूसरी ओर इस व्यवस्था का अर्थ यह निकला कि इन परम्पराओं के संबंध में कुरान

मध्य युग के आरम्भिक काल में दो प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिक प्रणालियां थीं, एक पश्चिम में और दूसरी पूर्व में। ये दोनों प्रणालियां एक दूसरे के ठीक सामने-सामने खड़ी थीं और दोनों एक दूसरे से बिल्कुल अज्ञान थी और एक दूसरे के विचारों और आदर्शों को न समझती थीं। दोनों का ही कहना था वे ईश्वर द्वारा नियुक्त की गई थीं। उन्होंने यह भी अपील की कि ईश्वर के व्यक्त शब्द के अनुसार उनके प्राधिकार को स्वीकृति मिले। पर इस्लाम एक विश्वव्यापी धर्म है और उसका दावा है कि सभी पुरुषों और स्त्रियों को उसके प्रति निष्ठा रखनी चाहिए। इसके लिए वे या तो मुस्लिम धर्म स्वीकार करें या प्रजा के रूप में कुरान के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करें। इस प्रकार एक ही धर्म सभी के द्वारा स्वीकार किये जाने के बाद उन सब पर जिम्मेदारी आती है कि वे एक सुदृढ़ ऐक्यबद्ध राजनीतिक संगठन बनाएं और उसकी एकता कायम रखें, साथ ही सभी धर्म-विश्वासियों को समुदाय के प्रधान खलीफा के प्रति आज्ञाकारी रहना है। इन दोनों प्रणालियों की स्पष्ट समानता के बावजूद दोनों के बीच आधारभूत रूप से मत-विभिन्नता थी। पवित्र रोमन साम्राज्य पूरी समझदारी

और जानकारी के अधीन पूर्ववर्ती राजनीतिक संस्थान का पुनरुज्जीवित रूप था। वह राजनीतिक संस्थान ईसाई धर्म के जन्म के पूर्व का था और अब विशेष रूप से ईसाई स्वरूप के अधीन सुसज्जित किया गया था।

जिन स्थितियों में खिलाफत का उदय हुआ वे पूरी तरह ऊपर की स्थिति से भिन्न थीं। वह किसी जान-बूझ कर एवं पूर्व दर्शिता के बिना इन स्थितियों में से आगे बढ़ी। विशाल साम्राज्य की उन परिस्थितियों में से उसका जन्म हुआ जो (परिस्थितियाँ) मानो कहीं से अरबों के मुँह पर फेंक दी गईं। उन्हें कम-से-कम प्रयत्न से इरानी और रोमन साम्राज्यों ने, जो एक दूसरे को टुकड़े-टुकड़े करने के युगों-पुराने अपने आपसी संघर्षों से थक गये थे, चुना और उसे नया रूप दिया। सातवीं शताब्दी के आरंभ में किसी ने भी नहीं, और अरबों ने तो निश्चय ही नहीं, पूर्व-कल्पना की होगी कि पैगम्बर के उत्तराधिकारी के पास, जब वह दमिश्क या बगदाद में शासन कर रहा होगा, इतना प्रचुर धन और शक्ति होगी। पवित्र रोमन साम्राज्य के प्रतिकूल खिलाफत सभ्यता के किसी पूर्व-स्थित स्वरूप या राजनीतिक संगठन की जान-बूझ कर की गई नकल न था। वह उन स्थितियों की उपज थी जिससे अरब बिल्कुल अनजान थे और ठीक इन स्थितियों द्वारा पूरी तरह ढाला गया उनका रूप था। इस प्रकार खिलाफत एक ऐसा राजनीतिक संस्थान था जो अपने युग की उपज था और उसने किसी पूर्व-समय के राजनीतिक संस्थान के पुनरुज्जीवित स्वरूप को अपने ऊपर न ओढ़ा।

इस्लामी धर्म-शास्त्रियों और न्याय-शास्त्रियों द्वारा इस धारणा का इस कारण विशद रूप से विवेचन किया गया था ताकि वह तत्काल कार्यरत तथ्यों के अनुरूप हो सके। इस धारणा के विकास का इतिहास मृत-सा है, अरब साम्राज्य के एक वास्तविक तथ्य बन जाने पर यह धारणा फिर कहीं दीख न पड़ी। यह धारणा या सिद्धान्त के दर्शन सर्वप्रथम परम्पराओं में होते हैं और उस बारे में कहा जाता है कि यह सिद्धान्त पैगम्बर मुहम्मद या उनके किसी निकटस्थ साथी का कथन बतलाया जाता है। ये परम्पराएँ पहले बतलाई गईं और एक मुँह से दूसरे मुँह के कथन द्वारा इनको चलाया जाता रहा। बाद में हिजरा सन् की तीसरी शताब्दी में इनके आधिकारिक संकलन तैयार किए गए। धर्म-सिद्धान्त, धार्मिक क्रिया-कलाप के कार्यान्वयन, धार्मिक जीवन के कानून और क्रिया-कलाप में इनको कुरान के बाद का स्थान दिया गया। वास्तव में परम्पराओं के प्रति सम्मान एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गया कि उनमें बताई गई बातों को कुरान के ठीक बाद का महत्व दिया जाने लगा। हिजरा सन् की पहली शताब्दी के अंत में यह विनिहित किया गया कि कुरान के किसी का अर्थ स्पष्ट न होने पर परम्पराओं का निष्कर्ष ही निर्णायक माना जायगा। दूसरी ओर इस व्यवस्था का अर्थ यह निकला कि इन परम्पराओं के संबंध में कुरान

के वचनों को माना जाता है। मुस्लिम धर्मशास्त्र में अनेक मामलों में 'हदीस' को अल्लाह के वास्तविक शब्दों का प्रतिनिधि मानते हैं जैसे कि कुरान की आयतों को अल्लाह के अमर शब्दों का प्रतिनिधित्व करना माना जाता है। यदि हदीस में से सभी को अल्लाह के वचनों का लिखित रूप नहीं माना जाता पर यह जरूर माना जाता है कि उनको लिखने की प्रेरणा अल्लाह से ही मिली थी भले ही वह अल्लाह के वचनों का वास्तविक रूप न हो। इस प्रकार वे अपने साथ दैवी प्राधिकार की स्वीकृति रखते हैं और कुरान के साथ-साथ धार्मिक सिद्धान्त, धार्मिक क्रिया-कलाप और रस्मों के अनुपालन संबंधी बातों के आधार जैसे हैं। यही नहीं हदीस राजनीतिक सिद्धान्त और कानून के आधार भी माने जाते हैं। यूरोपीय विद्वानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पैगम्बर की तथाकथित परम्पराएं (हदीस) राजनीतिक दल या धर्मशास्त्रीय समूह के हित में तैयार किये गये हैं। यहां तक कि हजरत मुहम्मद के धर्मशास्त्रियों ने यह साफ तौर पर स्वीकार किया है कि हदीस में पैगम्बर द्वारा कही गई बातों संबंधी वे दावे गलत हैं और वे बातें जालसाजी के अलावा और कुछ नहीं हैं। जब तीसरी शताब्दी में परम्पराओं (हदीस) के आधिकारिक संग्रह प्रकाशित किये गए तो उनको बिना शक-शुबहा स्वीकार किया गया और उनमें कोई गलती या विवाद होने की बात नहीं मानी गई। वास्तव में बौद्धिक और व्यावहारिक आवश्यकताओं के चलते परम्पराओं का साहित्य तैयार करने की बात उठी और इसी कारण उनको ऐसा परमाधिकार प्राप्त हुआ जिसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। जिन परम्पराओं (हदीस) में खिलाफत का सिद्धान्त दिया गया है, उसके प्रति लोगों को श्रद्धा रखनी चाहिए और धर्म-विश्वासी को बिना किसी संदेह के उसके प्रति विश्वास रखना चाहिए।

खलीफ़ा के कोई आध्यात्मिक कार्य न थे। इमाम की भांति वह धर्म-विश्वासियों को, सार्वजनिक नमाज में, नमाज पढ़ने के लिए ले जा सकता था पर ऐसा मामूली

से मामूली मुसलमान भी कर सकता है। इस्लाम में पुरोहिती जैसी कोई बात नहीं है। उसमें ऐसे कोई निर्धारित लोग नहीं हैं जो धार्मिक क्रियायें पूरी करने के लिए लोगों का नेतृत्व करें। धार्मिक क्रियाओं के लिए लोगों को ले जाने का काम धर्म-विश्वासियों का कोई साधारण समूह भी कर सकता है। इमाम को पुरोहित नहीं माना जाता। पुरोहिती का कार्य करने वाले किसी उच्चतर व्यक्ति ने इमाम के लिए पुरोहिती की व्यवस्था नहीं की। मुस्लिम जगत में गिरजाघर और राज्य के बीच पृथकता जैसी कोई बात नहीं। ईसाई धर्म में इस कारण न जाने कितने वाद-विवाद और मतभेद हुए हैं। यह सही है कि मुस्लिम उलेमा (विद्वान) ने अक्सर खलीफा और उसकी सरकार की आलोचना की है। उलेमा ने माँग की है कि धार्मिक कानून को और व्यापक रूप से लागू किया जाय। यह माँग सरकार के अधिकारियों ने सामान्यतः स्वीकार नहीं की है पर पुरोहितों और शासनाधिकारियों के बीच इस बात को लेकर कभी मतभेद और वाद-विवाद नहीं हुए हैं। अगर इस प्रश्न पर मतभेद हुए भी हैं तो बिल्कुल सामान्य लोगों के बीच ही। खलीफा की स्थिति के बारे में अच्छी तरह समझदारी के लिए यह मानना पड़ेगा कि वह उत्कृष्ट रूप से एक राजनीतिक कर्मी है। यद्यपि वह कभी-कभी धार्मिक कार्य करता है पर इन कार्यों का मतलब और परिणाम यह नहीं होता और वह अन्य निष्ठावान लोगों से अलग-थलग जा पड़ता।

पैगम्बर मुहम्मद ने अपना कोई उत्तराधिकारी नामजद नहीं किया। इस प्रश्न पर विचार करना कुछ व्यर्थ-सा होगा कि संगठन की इतनी अच्छी प्रतिभा के बावजूद उन्होंने अपने द्वारा स्थापित धर्म के भविष्य के बारे में इस सामान्य-सी बात पर विचार न किया। अपनी अन्तिम बीमारी के पूर्व उनका स्वास्थ्य तेजी से गिर रहा था। वे शरीर और मन से इतने दुर्बल हो गये थे कि संभवतः उन्हें इस प्रश्न पर विचार करने की शक्ति ही न रही। ज्यादा संभव यह हुआ होगा कि इस प्रश्न पर उनकी विचार-प्रणाली अपने युग के अनुकूल थी। वे इस संबंध में अरब भावनाओं की शक्ति समझते थे जिसमें, राजनीति के प्राचीन स्वरूप में, वंशगत उत्तराधिकारी को मान्यता नहीं दी जाती थीं। जनजाति पर ही यह जिम्मा छोड़ दिया जाता था कि राजनीतिक प्रधान की मृत्यु की दशा में अपना नेता वह खुद चुने। उनकी मृत्यु की खबर उनके निष्ठापूर्ण अनुयायियों और इस्लाम धर्म पहले ही स्वीकार करने वालों अबू बकर, उमर और अबू उबैदा को ज्यों ही मिली उन लोगों ने अबू बकर को नेता चुनने की कार्रवाई तुरंत ही पूरी की। यह संभव हो सकता है कि अपने धर्म के अधिष्ठाता पैगम्बर की प्रत्याशित मृत्यु की आशंका देखते हुए उन्होंने इस बारे में आपस में पहले ही निर्णय कर लिया था। जब उन्होंने यह सुना कि मदीना की बहुसंख्यक जनजाति बनू खजराज के, जो मुस्लिम धर्म का समर्थन करती

हमें प्राचीन अरब प्रथा का उदाहरण मिलता है जिसके अनुसार जनजाति के प्रधान की मृत्यु की दशा में उस व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाया जाता था जो जन-जाति में प्रधान के बाद सबसे ज्यादा प्रभावशाली होता था। चुना जाने वाला यह व्यक्ति जनजाति में ऐसा होता था जो अपनी उम्र या प्रभाव अथवा जन-कल्याण के लिए की गई अपनी सेवाओं के कारण समादृत होता था। उत्तराधिकारी के चुनाव का तरीका पेचीदा या औपचारिक न होता था। जनजाति जैसे छोटे सामाजिक समूह में प्रधान चुनने के लिए किसी भारी-भरकम प्रक्रिया की जरूरत भी न होती थी। उस सभा में जो लोग उपस्थित रहते थे, वे एक-एक कर नये चुने गए प्रधान से हाथ मिला कर उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करते थे।

जब अबू बकर पैगम्बर के उत्तराधिकारी चुने गए तो उनकी उम्र साठ साल थी। वे इस पद पर केवल दो साल रह सके। मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित परम्परा (हदीस) के अनुसार जब अबू बकर की खिलाफत चल रही थी तो उस समय वास्तविक शासक उमर ही थे। अबू बकर की मृत्यु के बाद उमर ने बिना किसी औपचारिकता के राज्य के प्रधान का काम शुरू कर दिया। यह भी प्राचीन अरब प्रथा के अनुसार ही हुआ। जब जनजाति में किसी व्यक्ति के विशिष्ट स्थान के कारण मान लिया जाता है कि जनजाति के प्रधान की मृत्यु के बाद वही व्यक्ति प्रधान बनेगा तो प्रधान की मृत्यु की दशा में वह व्यक्ति बिना किसी औपचारिकता के प्रधान बन जाता है और जनजाति के शेष लोग उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करते हैं। जब दस वर्षों बाद, उमर पर एक हत्यारे के हमले के कारण उनके हाथ में सांघातिक चोट आई तो, कहा जाता है कि, उन्होंने छः सदस्यों का एक चुनाव-मंडल बनाया जिसका काम उनका उत्तराधिकारी चुनना था। इस बात की सच्चाई के बारे में संदेह प्रकट किया गया है पर यह पूरी तरह संभव है कि पैगम्बर मुहम्मद की भाँति उमर ने भी अपने उत्तराधिकारी चुनने का काम संबद्ध लोगों पर ही छोड़ दिया।

इस समय के सबसे बड़े इस्लामी इतिहासकार प्रिन्स सीटानी का कहना है कि उमर द्वारा अपने उत्तराधिकारी के लिए चुनाव-मंडल नामजद किये जाने की बात बाद में जोड़ी गई है और इस प्रकार अब्बासिद अवधि में प्रचलित प्रक्रिया को न्यायोचित ठहराने की कोशिश की गई है। अब्बासिद अवधि की प्रक्रिया यह थी—पहले साम्राज्य के विशिष्ट अधिकारियों के सामने, व्यक्तिगत रूप से नये खलीफा के बारे में घोषणा कर दी जाती थी जिसमें वह लोग नये शासक (खलीफा) के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करते थे और बाद में उस बारे में सार्वजनिक रूप से घोषणा की जाती थी और जन-साधारण नये खलीफा के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट कर उसकी नियुक्ति पर अपनी स्वीकृति देते थे। हो सकता है कि उक्त बात सही हो। पर फिर भी चार खलीफाओं—अबू बकर, उमर, उस्मान और अली—की नियुक्ति कुछ हद तक चुनाव के जरिए हुई। साथ ही इनके चुनाव में वंशगत उत्तराधिकार का कोई प्रश्न न था और न कोई ऐसी बात ही थी कि पैगम्बर का संबंधी होने के कारण किसी को खलीफा बनाया जाय। तात्पर्य यह कि खलीफा बनाये जाने के लिए कुछ हद तक चुनाव की पद्धति जरूर अपनाई जाती थी। सुन्नी विधि-वेत्ताओं के अनुसार खलीफा का पद बराबर चुनाव से भरा जाता था। इन विधि-वेत्ताओं ने नियम निर्धारित कर दिये जो मतदाताओं की योग्यता के संबंध में थे। जब तक केन्द्रीय सरकार मदीना में थी उस पर प्रधान रूप से इस्लामी प्रभाव था और पैगम्बर के प्रति निष्ठावान उनके साथी, जिनमें से ही अधिकांशतः खलीफा बने, पैगम्बर की शिक्षा के अनुसार, नया समाज बनाने की चेष्टा करते रहे। पर सन् 661 में मुआबिया की खिलाफत में साम्राज्य की राजधानी दमिश्क बन गई तब अरब की गैरमुस्लिम भावनाओं ने अपना प्रभाव दिखलाना फिर शुरू किया। इस्लाम में सिद्धान्ततः सभी धर्म-विश्वासियों के साथ समानता का व्यवहार रखा जाता है पर अब अरबों ने इस बात पर जोर देना शुरू किया कि वे लोग साम्राज्य के साधारण प्रजा-जन पर शासन करने वाले कुलीन लोग हैं। खलीफा मुआविया ने खिलाफत को लौकिक सार्वभौमसत्ता-सम्पन्न राज्य घोषित कर दिया। इसमें वह खलीफा के पद पर रहते हुए सांसारिक सुख-सुविधा और ऐश-ओ-आराम प्राप्त करने की तीव्र इच्छा से प्रेरित थे। फिर अब्बासिद खिलाफत में पहले धार्मिक विचारों पर जो जोर दिया जाता था, अब मानो उसकी प्रतिक्रिया हुई और इमाम की उपाधि अथवा पदनाम पर ही अधिक जोर दिया जाने लगा। सबसे पहले मामून (सन् ८१३-८३३) के शासन में यह उपाधि सिक्कों और शिलालेखों पर अंकित की गई। साथ ही पैगम्बर के कुछ परम्परागत कथन यह सिद्ध करने के उद्देश्य से उद्धृत किये गए कि जन-साधारण को इमाम के प्रति भक्ति रखनी चाहिए। इस प्रकार इमाम की उपाधि को नई गरिमा से परिवेष्ठित करने की कोशिश की गई। इस बड़े पद

के लिए जो नये तकनीकी नाम दिये गए उनमें से कुछ पहले के हैं। उदाहरण के लिए सन् ६६२ में पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के बाद यह जरूरी हो गया था कि समुदाय के नये नेता को कुछ आधिकारिक पदनाम दिया जाय। अबू बकर ने अपने लिए विनम्रता के भाव से पूर्ण उपाधि खलीफा रसूल अल्लाह (ईश्वर के दूत का उत्तराधिकारी) चुनी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विश्व के सबसे बड़े साम्राज्यों में से एक के शासक की उपाधि कुछ-कुछ लापरवाही के ढंग से चुनी गई।

पैगम्बर एक साथ ही राज्य के प्रधान थे और साथ ही धर्म के प्रधान भी। राजनीतिक समस्याओं की नीति निर्धारित करने का सर्वोपरि अधिकार उन्हीं के हाथों में था। अरब की विभिन्न जनजातियों की इस्लामी राज्य के प्रति निष्ठा का संदेश ले कर आने वाले राजदूतों से वे ही राज्य के प्रधान के रूप में मुलाकात करते थे और वे ही, प्रजाजन से बकायों और करों को वसूल करने के लिए अफसरों की नियुक्ति करते थे। इसके साथ ही वे सर्वोच्च विधायक थे जो न केवल विधान बनाते बल्कि मुकदमों की सुनवाई भी करते थे। उनके निर्णय के खिलाफ कहीं कोई सुनवाई न थी। प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों में शासक, सेनापति और न्यायाधीश के ये काम करने के अलावा वे अल्लाह द्वारा प्रेरित पैगम्बर भी थे। उन्होंने जो धार्मिक सिद्धान्त बतलाए उनको अनुयायियों ने दैवी सत्य के उद्‌घाटन के रूप में लिया और उनके संबंध में किसी संदेह या विवाद की गुंजाइश न थी। इसके अलावा उन्होंने सर्वोच्च पुरोहित के कर्त्तव्य भी पूरे किए और मदीना की मस्जिद में प्रार्थना के समय सार्वजनिक इमाम की भाँति लोगों को प्रार्थना के लिए ले भी जाते थे। इन सब अर्थों में अबू बकर धर्म-संस्थापक (हजरत मुहम्मद) के उत्तराधिकारी थे पर पैगम्बर के रूप में स्वभावतः उनका कोई कार्य न था। पैगम्बर की मृत्यु के साथ पैगम्बर का कार्य समाप्त हो गया था। अबू बकर ने अपने को जो पैगम्बर का उत्तराधिकारी घोषित किया वह उनकी विनम्रता का परिचायक था। ऐसा उन्होंने उस समय किया जब कम उम्र के मुस्लिम समुदाय का अस्तित्व ही खतरे में था। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि हजरत मुहम्मद ने कुरान का उपदेश देते समय कभी इस संभावना के बारे में सोचा हो कि शब्द "खिलाफत" उनके उत्तराधिकारी की उपाधि हो जाएगी। और न ही इस बात की संभावना है कि कुरान में इस शब्द की कोई उपयोगिता थी जिससे अबू बकर को प्रेरणा मिलती और वे अपने को "अल्लाह के दूत का उत्तराधिकारी", घोषित करते। "उत्तराधिकारी" या "खिलाफत" की मामूली-सी उपाधि को इस प्रकार का सम्मान तेजी से होने वाली अरब विजय के कारण मिला। जब अरब विजय से धन और शक्ति मिली तो नव-स्थापित साम्राज्य के शासकों की उपाधि भी सम्मानजनक हो गई।

इसके अलावा दो और उपाधियाँ हैं जो खलीफा की उपाधि के साथ ामान्यतः सम्बद्ध हैं। खलीफा उमर सन् ६३४ में अबू बकर के बाद खलीफा हुए। न्होंने अपने शासन के आरम्भ में पहले अपनी उपाधि रखी "ईश्वर के दूत के ख़लीफ़ा" पर जल्द ही जब यह उपाधि बहुत ज्यादा लंबी और भद्दी मालूम पड़ने गी तो उन्होंने अपनी उपाधि सिर्फ "खलीफा" रखी। उमर के समय में अरब ी विजय बहुत ज्यादा क्षेत्र में हुई, अतः यह मामूली-सी उपाधि बहुत महत्त्वपूर्ण न गई। पर उमर ने सबसे पहले "अमीर उल मुमीनिन" (निष्ठावानों का सेना- ति) की उपाधि धारण की। यह स्पष्टतः अधिक दंभपूर्ण पदनाम था। कहा जाता ै कि उमर ने पहले इस मिथ्याभिमानी लगनेवाली उपाधि से संबोधित किये जाने में ंकोच प्रकट किया। पर मध्यकालिक युग में ईसाई धर्मावलंबी यूरोप में सामान्यतः ख़लीफा इसी नाम से जाना जाता था। वहाँ इस नाम ने भिन्न-भिन्न रूप ारण किये जैसे "अलमीरम मोम्मिनी", "मीदलोमिन", "मिरमुमनुस" आदि। ाधिकार के संकेत-चिह्न के रूप में यह उपाधि इस बात की द्योतक थी कि खिलाफत े उमर के शासन में कितनी अधिक शक्ति हासिल कर ली थी। जबकि 'अमीर- अल-मुमीनिन' की उपाधि खलीफा के उच्च पद के धर्म निरपेक्ष स्वरूप पर प्रकाश डालती, एक तीसरी उपाधि 'इमाम' खलीफा द्वारा सार्वजनिक प्रार्थना में धर्म- विश्वासियों के नेता के रूप में उसके धार्मिक कार्य की द्योतक थी। कुरान में यह शब्द बार-बार आया है जिसका मतलब है नेता, मार्गदर्शक, उदाहरण, नमूना आदि। यह आश्चर्यजनक है कि कुरान में इमाम शब्द के प्रयोग में सार्वजनिक प्रार्थना के नेता के रूप में उसके सामान्य महत्त्व पर प्रकाश नहीं डाला गया है। जैसा कि सबको विदित है, मुस्लिम जगत में यह रिवाज है कि दिन में पाँच बार नमाज में धर्म-विश्वासी नमाज पढ़ाने वाले व्यक्ति के, जिसे इमाम कहा जाता है, पीछे खड़े हो जाते हैं। मुस्लिम सम्प्रदाय के नेता के रूप में पैगम्बर मुहम्मद ने मदीना में दस वर्ष रहने की अपनी अवधि में इमाम का कर्त्तव्य पूरा किया और अपने अनुयायियों का सार्वजनिक प्रार्थना में नेतृत्व किया। केवल जब वह किसी फौजी अभियान के कारण मदीना से बाहर रहते थे तो स्पष्ट रूप से इस कर्तव्य के लिए अपने किसी अनुयायी को नामजद कर जाते थे। अपनी अन्तिम बीमारी में जब वह इस पवित्र नगर में थे तो अपने बदले अबू बकर को आदेश दिया था कि वे मस्जिद में नमाज में लोगों का नेतृत्व करें। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद एक के बाद दूसरे खलीफा ने यह काम करना जारी रखा। नमाज में धर्मविश्वासियों का नेतृत्व करना सामान्यतः नेता का काम माना जाता था। शब्द 'मिम्बर' आज तक प्रयोग में आता है जिसका मतलब होता है मस्जिद का प्रवचन-मंच। हजरत मुहम्मद के जीवन और मदीना के प्राचीन मुस्लिम समाज में मस्जिद केवल प्रार्थना की ही जगह न थी। उसका अर्थ वही था जो ईसाइयों के रोमन 'फोरम' का था, अर्थात् मस्जिद

राजनीतिक और सामाजिक जीवन का केन्द्र भी थी। मदीना में भी मस्जिद में पैगम्बर विभिन्न अरब जनजातियों द्वारा भेजे गये निष्ठा संदेश प्राप्त करते थे और उनके राजदूतों से मिलते थे। मस्जिद में प्रवचन-मंच से पैगम्बर सभी राज-काज के काम करते थे। वहाँ से धार्मिक कार्य-कलाप के सिद्धान्तों के बारे में अपने अनुयायियों को आदेश अनुदेश देते थे और साथ ही वहाँ से राजनीतिक घोषणाएँ भी करते थे। मिम्बर शासक के अधिकार का केन्द्र बन गई। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद भी उसका महत्त्व घटा नहीं। मदीना में "मिम्बर" से ही खलीफा उमर ने एकत्र जनसमूह के समक्ष वह सन्देश पढ़कर सुनाया जिसमें कहा गया था कि ईरान में मुस्लिम सेना की प्रगति भयानक रूप से अवरुद्ध हो गई है, इसलिए उमर ने स्वयंसेवकों को सेना में भरती होने की अपील की। और फिर वह मस्जिद का मिम्बर ही था जहाँ से उमर के उत्तराधिकारी खलीफा उस्मान ने वह प्रसिद्ध भाषण किया था जिसमें उन्होंने प्रशासन के मामले में अपनी आलोचनाओं का उत्तर दिया था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया खलीफा धीरे-धीरे मिम्बर का उपयोग कम करते गये और उसके स्थान पर प्राधिकार के प्रयोग के और प्रतीक सामने आये। इसी प्रकार मिम्बर के ही जैसा एक और शब्द है, खुतबा। उससे उस भाषण का बोध होता है जो प्रार्थना के पूर्व उपस्थित जन-समूह के बीच, अक्सर शुक्रवार को, किया जाता है। यह प्रथा पिछली कई शताब्दियों से आज भी चली आ रही है। इस्लाम-पूर्व दिनों में खातिब अरब जनजाति का व्याख्यानकर्ता हुआ करता था जो प्राचीन अरब समाज में न्यायाधीश के रूप में भी काम करता था। प्राधिकार के आसन से वह जो भी बोलता था उसे खुतबा कहा जाता था। हजरत मुहम्मद द्वारा की गई राजनीतिक घोषणाओं को खुतबा कहा जाता था। अतः कहा जा सकता है कि उनके द्वारा राजसिंहासन से की गई घोषणाएँ खुतबा थीं। उनकी मृत्यु के बाद ज्यों-ज्यों मुस्लिम साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ती गईं, प्रान्तीय गवर्नर अपना मिम्बर रखता था जहाँ से वह एकत्र जनसमूह के समक्ष भाषण करता था जो राजनीतिक भाषण जैसा ही होता था। स्पष्ट था कि उसके भाषण का वह महत्त्व न होता था जो सर्वोच्च शासक के भाषण (खुतबा) का होता था। धीरे-धीरे, परिस्थितियों के क्रम से, 'खुतबा' का मूल अर्थ और महत्व, काफी हद तक, कम होने लगा। जैसे जैसे मिम्बर धीरे-धीरे सम्राट के सिंहासन अथवा न्यायाधीश के आसन का रूप छोड़ते-छोड़ते, केवल मिम्बर (प्रवचन-मंच) ही रह गया उसी प्रकार खुतबा भी केवल एक मामूली-सा धर्मोपदेश या नमाज शुरू करने के पूर्व का छोटा भाषण-मात्र रह गया जो उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो मस्जिद का इमाम होता है।

प्रारम्भिक खलीफाओं का चित्रण इनमें से किसी भी उपाधि से किया जा सकता है—खलीफा, अमीर-उल-मुमीनीन और इमाम। ये सभी उपाधियाँ एक ही

व्यक्ति की हैं। खलीफा का जोर इस बात पर है कि इस उपाधि वाले व्यक्ति का धर्म के संस्थापक 'अल्लाह के दूत' से क्या संबंध है और इसके साथ इसमें यह बात भी निहित है कि "अल्लाह के दूत" का उत्तराधिकारी होने की हैसियत से खलीफा को धर्म-विश्वासियों की आज्ञाकारिता भी प्राप्त करने का हक है। दूसरी उपाधि "अमीर-उल-मोमिनीन" में इस पर जोर दिया गया है कि यह उपाधि शासक की है जो सर्वोच्च योद्धा और गैर-सैनिक प्रशासन का प्रधान भी है। तीसरी उपाधि 'इमाम' में राज्य के प्रधान के धार्मिक कार्य-कलाप पर जोर दिया गया है जिसके अधीन उसे एक निश्चित धार्मिक कार्य करना पड़ता है। यह अन्तिम उपाधि शिया लोगों में धर्म के प्रधान लिए एक प्रिय उपाधि है क्योंकि वे लोग पैगम्बर के उत्तराधिकारी के परम पवित्र स्वरूप पर विशेष जोर देते हैं। उसमें वे अभी तक रहस्यपूर्ण और अधिसामान्य या असामान्य शक्तियों को आरोपित करते हैं। वे एक छिपे हुए इस्लाम में भी विश्वास करते हैं जो यद्यपि देखा नहीं जाता पर पृथ्वी पर धर्म में निष्ठावान लोगों का पथ-प्रदर्शन एवं मार्ग-संचालन करता है। यद्यपि सुन्नी धर्म शास्त्र में इमाम का सिद्धान्त कम महत्त्वपूर्ण नहीं और यद्यपि सुन्नी खिलाफत का आधिकारिक वर्णन इमाम के रूप में किया गया है पर फिर भी सुन्नी लोगों में इमाम शब्द इतना प्रिय नहीं जितना शिया लोगों में है। संभवतः उन लोगों के बीच इस शब्द के प्रिय होने के कारण अब्बासिद खलीफा मामून (८१३-८३३) ने सबसे पहले अपने सिक्कों और शिलालेखों पर इमाम शब्द अंकित कराया। मामून के पूर्वजों के सिक्कों पर "अमीर उल मोमिनीन" अंकित रहता था। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि अब्बासिदों के अधीन खलीफा पद ने जो पुराहिती स्वरूप धारण कर लिया था उसी के कारण मामून के शासन में सिक्कों पर यह पुरोहिती उपाधि अंकित की गई। उसके बाद अन्य अब्बासिदों ने यह प्रक्रिया जारी रखी।

जब मुस्लिम धर्मशास्त्रियों ने इन उपाधियों के इस्तेमाल का औचित्य कुरान में ढूंढ़ना शुरू किया तो उनको वहाँ अमीर-अल-मुमीनिन का कोई औचित्य नहीं मिला। इमाम उपाधि का औचित्य बहुत कम मिला और इमाम के जो भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जा रहे थे उनका औचित्य तो बिलकुल ही नहीं मिला। मुस्लिम जगत के धर्मशास्त्रियों और विधिवेत्ताओं ने अल्लाह की प्रकट कृति (कुरान) में खलीफा के राजनीतिक सिद्धान्त के समर्थन की खोज की। उनके लिए कुरान में इस संबंध में पाये जाने वाले वजन और महत्त्व बहुत ज्यादा था। इसका कारण है कि कुरान धार्मिक और लौकिक कानून का प्रारंभिक आधार है। उत्तराधिकारी (खलीफा) और उत्तराधिकारियों (खिलाफत या खुलफा) का उल्लेख सामान्य तौर पर किया गया है और इस संबंध में किसी एक उच्च व्यक्ति का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। कुरान की आयतें इस सिलसिले में ये हैं—"अल्लाह ने तुम लोगों में से

उनके प्रति, जो धार्मिकता में विश्वास करते और उसी के अनुसार कार्य करते हैं, वायदा किया है कि वह उनको पृथ्वी पर उत्तराधिकारी बनाएगा जैसा कि उसने उनके पूर्व के लोगों को बनाया था और वह उनके लिए वह धर्म स्थापित करेगा जो उन्हें प्रीतिकर है। 'अल्लाह के प्रति लोगों को जो भय है उसके बदले वह उनको सुरक्षा देगा।" "यह वही (अल्लाह) हैं जिसने पृथ्वी पर तुम्हें खलीफा बनाया है और तुम में से कुछ को अन्य लोगों से कई श्रेणियाँ ऊपर उठा दिया है ताकि वह तुम लोगों को कई भेंटें देकर तुम्हारी परीक्षा करे।" इनमें खलीफा का जो उल्लेख किया गया है वह सामान्य धर्मविश्वासियों के लिए किया गया है जो उसे अपने पूर्वजों की विरासत में पा रहे हैं।

फिर भी कुरान की उक्त आयतों में खलीफा शब्द का जो अर्थ लिया गया है वह उत्तराधिकारी से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण अर्थ में है यद्यपि कुछ व्याख्याकारों का कहना है कि जब अल्लाह ने आदम की सृष्टि करने का अपना इरादा बतलाया तो उसने आदम को अपने खलीफा या उत्तराधिकारी के रूप में संबोधित किया क्योंकि आदम उन देवदूतों का उत्तराधिकारी था जो दुनिया में आदमियों की सृष्टि होने के पहले रहते थे। पर अन्य मुस्लिम विद्वानों ने खलीफा का अर्थ प्रतिनिधि और प्रतिस्थानी बतलाया है। वह उत्तराधिकारी इस अर्थ में कहा जाता है कि वह एक बड़े कार्य का उत्तराधिकार पाता है। इसी क्रम में मुस्लिम विद्वान आगे कहते हैं कि आदम और डेविड को खलीफा पदनाम इसलिए दिया गया कि दोनों ही पृथ्वी पर अल्लाह के प्रतिनिधि थे। उन्होंने अल्लाह के आदेश के अनुसार लोगों का पथ-प्रदर्शन किया और चेतावनियाँ दीं। स्पष्ट है कि खलीफा शब्द की यह [illegible] खलीफा का सम्मान और प्राधिकार बढ़ाने के लिए की जाती है।

खलीफा शब्द की और अधिक स्पष्ट और निश्चित व्याख्या के लिए परम्प-[illegible]ओं (हदीस) पर दृष्टिपात करना आवश्यक होगा। हम मुस्लिम धर्मशास्त्रियों [illegible] विधि-वेत्ताओं की कृतियों में खिलाफत सिद्धान्त का जो व्यवस्थित चित्रण पाते हैं उसका आधार ये ही परम्पराएँ (हदीस) हैं। फलतः खलीफा के संबंध में विचार करने वाला विधिज्ञ (कानून-विशेषज्ञ) परम्पराओं को ईश्वर द्वारा नियुक्त संस्थाएँ मान सकता है और अपने विषय की व्याख्या के लिए, मार्गदर्शन हेतु, परम्पराओं में ईश्वर द्वारा उद्घाटित सत्य की ओर देख सकता है। परम्पराओं में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि खलीफा कुरैश जनजाति का ही होगा। इसी जनजाति से स्वयं पैगम्बर भी आये थे। खलीफा के संबंध में योग्यता का यह आधार ऊपर वर्णित सम्पूर्ण ऐतिहासिक अवधि में निबाहा गया। उमैय्यद और अब्बासिद खलीफा तथा शिया विचारों के समर्थक उनके प्रतिद्वन्द्वी खलीफा और मिस्र के फातिमिद

आदि सभी कुरैश जनजाति के थे। इस संबंध में स्पष्ट रूप से ये सिद्धान्त दिये गये हैं :

"इमाम कुरैश जनजाति के होंगे।"

"आदमियों पर शासन करने वाला बराबर कुरैश जनजाति का होगा"

"खलीफा कुरैश जनजाति का होगा, न्यायिक प्राधिकार सहायक लोगों के हाथों में होगा और प्रार्थना के लिए आह्वान अबीसीनियाइयों के हाथों में होगा।"

"इमाम कुरैशियों में से होंगे। उनमें से धर्मनिष्ठ धर्मनिष्ठों के शासक होंगे और उनमें से दुष्ट दुष्ट लोगों के शासक होंगे।"

खिलाफत इस प्रकार निरंकुश शासन माना गया जिसमें शासकों (खलीफाओं) के हाथों में अनिबंधित अधिकार थे और वे अपने प्रजाजन से, बिना किसी हिचकिचाहट के आज्ञाकारिता की माँग करते थे। मुस्लिम खलीफाओं का कुलीन तंत्रीय स्वरूप संभवतः फारसी साम्राज्य की विरासत था जिनके क्षेत्र में मुस्लिम विजेताओं ने प्रवेश किया। इस्लाम पूर्व अरब समाज में कोई ऐसा राजनीतिक संस्थान न था। हमें एक के बाद दूसरी परम्परा (हदीस) में भद्र-अवज्ञा का समझौताविहीन सिद्धान्त मिलता है, उदाहरण के लिए अल्लाह के दूत ने कहा—"जो मेरी आज्ञा मानता है, वह अल्लाह की आज्ञा मानता है, जो मेरे विरुद्ध विद्रोह करता है वह अल्लाह के विरुद्ध विद्रोह करता है।" ईश्वर के दूत ने कहा—"मेरे बाद शासक आएँगे, तुम उनके प्रति आज्ञाकारी बनना क्योंकि शासक एक ऐसी ढाल होता है जिससे आदमी अपनी रक्षा करता है, यदि शासक धर्मनिष्ठ हुए और उन्होंने तुम्हारे ऊपर अच्छी तरह शासन किया तो उन्हें उसका पुरस्कार मिलेगा, यदि वे बुरे हुए और तुम्हारे ऊपर अच्छी तरह शासन न किया तो उन्हें सजा मिलेगी और तुम्हें सजा से मुक्त कर दिया जाएगा क्योंकि वे तुम्हारे लिए जिम्मेवार हैं और तुम्हें कोई जिम्मेवारी नहीं है।"

"चाहे कुछ भी हो जाय तुम अपने शासकों का आदेश मानो, क्योंकि यदि वे मेरे द्वारा तुम्हें सिखलाये गए से कुछ भी भिन्न आदेश तुम्हें देते हैं तो जिम्मेदारी उनकी होगी और तुम उससे मुक्त रहोगे। जब न्याय किये जाने के दिन तुम अल्लाह से मिलना तो कहना—"ऐ अल्लाह, तूने हमारे यहाँ पैगम्बर भेजे और हमने तेरी अनुमति से उनकी आज्ञा मानी, और तूने हमारे यहाँ खलीफा भेजे और हमने तेरी अनुमति से उनकी आज्ञा मानी, और हमारे शासकों ने हमें आज्ञा दी और हमने तेरी खातिर उनकी आज्ञा मानी।" अल्लाह जवाब देगा—"तू सच कहता है, उनकी जिम्मेदारी है और तू उससे मुक्त होता है।" "पैगम्बर ने कहा—हर शासक

(अमीर) की आज्ञा मानो, हर इमाम के साथ खड़े होकर प्रार्थना करो और अपने साथियों में से किसी का अपमान न करो।" केवल खलीफा ही नहीं, विधि-संगत रीति से बनाये गये किसी भी प्राधिकार की आज्ञा हर प्रजाजन को माननी है, जैसा कि एक परम्परा (हदीस) में पैगम्बर यह कहते हुए बताये गये हैं—"ऐ लोगो, अल्लाह का हुक्म मानो, भले ही किसी अंगक्षत अबीसिनियाई दास को तुम्हारा शासक बना कर भेजें।"

इस प्रकार राजनीतिक सिद्धान्त यह निकला है कि पृथ्वी के सभी प्राधिकार को ईश्वरीय नियुक्ति माना जाय, प्रजाजन का कर्त्तव्य है कि उसकी आज्ञा माने चाहे शासक न्यायपूर्ण है या अन्यायपूर्ण, क्योंकि जिम्मेदारी ईश्वर की है। प्रजाजन को संतोष सिर्फ इस बात का है कि ईश्वर अन्यायपूर्ण शासक को उसके बुरे काम के लिए दंडित करेगा जिस तरह वह धर्मनिष्ठ सम्राट को पुरस्कृत करेगा। यही सिद्धान्त परम्परा (हदीस) में पैगम्बर के एक और कथन में यों कहा गया है—"जब अल्लाह लोगों का कल्याण चाहते हैं तो वे उन पर अल्लाह से डरने वाले, बुद्धिमान शासकों को भेजते हैं पर जब वह लोगों का बुरा चाहते हैं वे उन पर शासन करने के लिए बुद्धिहीन और नीच शासकों को भेजते हैं और उनका भाग्य धनलोलुप शासकों के हाथों में सौंप देते हैं।"

खलीफा की ऊँची स्थिति पर जोर देने के लिए उसकी एक और उपाधि "पृथ्वी पर अल्लाह की छाया" है जो बहुत आरम्भ में ही प्रयोग में आने लगी। अल्लाह की छाया का वास्तव में मूल रूप से मतलब वह छाया नहीं था जो मानव केन्द्रित अर्थ में वह पृथ्वी पर खुद डालता है बल्कि वह छाया जो अल्लाह द्वारा प्रदत्त है। यहाँ छाया का मतलब है ठहरने की एक जगह, क्योंकि जिस तरह छाया सूरज की चिलचिलाती धूप से आदमी को सुरक्षा देती है उसी तरह सरकार अपने प्रजाजन को नुकसानों से सुरक्षा देती है। इस पद को खलीफा की एक और उपाधि "अल्लाह का खलीफा" से उच्चता दी गई। कहा जाता है कि पहले खलीफा अबू बकर इन संबोधनों से पुकारे जाने का विरोध करते थे। उनका कहना था कि वह केवल अल्लाह के दूत के खलीफा हैं। अब्बासिदों के शासन में खलीफा की यह एक सामान्य उपाधि हो गई। यहाँ तक कि इस राजवंश के दूसरे खलीफा मंसूर ने एक खुतबा में सन् ७७५ में घोषणा की कि वह पृथ्वी पर अल्लाह की शक्ति (सुल्तान) है। पर उसके उत्तराधिकारियों के अधीन अल्लाह का खलीफ़ा जैसे साधारण पद का प्रयोग एक परम्परा बन गया। बाद की शताब्दियों में होनेवाले अनेक शासकों ने अब्बासिदों से यह उपाधि अपना ली। इन शासकों ने अब्बासिद राजवंश के टूट जाने पर खलीफा की उपाधि भी अपने पर आरोपित कर ली।

(अमीर) की आज्ञा मानो, हर इमाम के साथ खड़े होकर प्रार्थना करो और अपने साथियों में से किसी का अपमान न करो।" केवल खलीफा ही नहीं, विधि-सगंत रीति से बनाये गये किसी भी प्राधिकार की आज्ञा हर प्रजाजन को माननी है, जैसा कि एक परम्परा (हदीस) में पैगम्बर यह कहते हुए बताये गये हैं—"ऐ लोगो, अल्लाह का हुक्म मानो, भले ही किसी अंगक्षत अबीसिनियाई दास को तुम्हारा शासक बना कर भेजें।"

इस प्रकार राजनीतिक सिद्धान्त यह निकला है कि पृथ्वी के सभी प्राधिकार को ईश्वरीय नियुक्ति माना जाय, प्रजाजन का कर्त्तव्य है कि उसकी आज्ञा माने चाहे शासक न्यायपूर्ण है या अन्यायपूर्ण, क्योंकि जिम्मेदारी ईश्वर की है। प्रजाजन को संतोष सिर्फ इस बात का है कि ईश्वर अन्यायपूर्ण शासक को उसके बुरे काम के लिए दंडित करेगा जिस तरह वह धर्मनिष्ठ सम्राट को पुरस्कृत करेगा। यही सिद्धान्त परम्परा (हदीस) में पैगम्बर के एक और कथन में यों कहा गया है—"जब अल्लाह लोगों का कल्याण चाहते हैं तो वे उन पर अल्लाह से डरने वाले, बुद्धिमान शासकों को भेजते हैं पर जब वह लोगों का बुरा चाहते हैं वे उन पर शासन करने के लिए बुद्धिहीन और नीच शासकों को भेजते हैं और उनका भाग्य धनलोलुप शासकों के हाथों में सौंप देते हैं।"

खलीफा की ऊँची स्थिति पर जोर देने के लिए उसकी एक और उपाधि "पृथ्वी पर अल्लाह की छाया" है जो बहुत आरम्भ में ही प्रयोग में आने लगी। अल्लाह की छाया का वास्तव में मूल रूप से मतलब वह छाया नहीं था जो मानव केन्द्रित अर्थ में वह पृथ्वी पर खुद डालता है बल्कि वह छाया जो अल्लाह द्वारा प्रदत्त है। यहाँ छाया का मतलब है ठहरने की एक जगह, क्योंकि जिस तरह छाया सूरज की चिलचिलाती धूप से आदमी को सुरक्षा देती है उसी तरह सरकार अपने प्रजाजन को नुकसानों से सुरक्षा देती है। इस पद को खलीफा की एक और उपाधि "अल्लाह का खलीफा" से उच्चता दी गई। कहा जाता है कि पहले खलीफा अबू बकर इन संबोधनों से पुकारे जाने का विरोध करते थे। उनका कहना था कि वह केवल अल्लाह के दूत के खलीफा हैं। अब्बासिदों के शासन में खलीफा की यह एक सामान्य उपाधि हो गई। यहाँ तक कि इस राजवंश के दूसरे खलीफा मंसूर ने एक खुतबा में सन् ७७५ में घोषणा की कि वह पृथ्वी पर अल्लाह की शक्ति (सुल्तान) है। पर उसके उत्तराधिकारियों के अधीन अल्लाह का खलीफा जैसे साधारण पद का प्रयोग एक परम्परा बन गया। बाद की शताब्दियों में होनेवाले अनेक शासकों ने अब्बासिदों से यह उपाधि अपना ली। इन शासकों ने अब्बासिद राजवंश के टूट जाने पर खलीफा की उपाधि भी अपने पर आरोपित कर ली।

मावर्दी के अनुसार उसके समय में खलीफा की उपाधि अपनी अवनति के अधोविन्दु पर पहुँच गई थी और उसका सैद्धान्तिक स्वरूप वास्तविक तथ्यों के बिल्कुल विपरित हो गया था। मावर्दी अपने समय का एक महान विधिवेत्ता था। उसने अनेक नगरों में न्यायाधीश के रूप में काम किया। अन्त में वह बगदाद में भी न्यायाधीश रहा। उसने राजनीतिक सिद्धान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। साथ ही उसने कुरान पर भी एक टिप्पणीनुमा पुस्तक लिखी। उसने ताई के शासन में जन्म लिया और सन् १०५८ में, कईम के शासन में ८६ वर्ष की उम्र में उसकी मृत्यु हुई। मावर्दी का कहना है कि खलीफा या इमाम का पद चुनाव से भरा जाना चाहिए। मतदाताओं की योग्यता यह दी गई कि उनका चरित्र निष्कलंक हो और वे धर्मनिष्ठता की जिन्दगी बिताते हों। मतदाता केवल पुरुष हों और उनकी उम्र पूरी हो, उन्हें इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि इमाम में क्या योग्यता होना जरूरी है और साथ ही मतदाताओं में बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय करने की योग्यता और अन्तर्दृष्टि भी होनी चाहिए। सीधे-सादे और स्पष्ट ढंग से उन्होंने कोशिश की कि वे जो तथ्य जानते थे, ठीक उनके अनुसार खलीफा के चुनाव का सिद्धान्त तैयार करें। इस सम्बन्ध में वास्तविक तथ्य था कि हर खलीफा उत्तराधिकारी होता था। वे कहते हैं कि अधिकारी इस बात पर सहमत नहीं हैं कि खलीफा के चुनाव को वैध बनाने के लिए मतदाताओं की संख्या कितनी होनी चाहिए। कुछ अधिकारियों ने कहा कि इस सम्बन्ध में मुस्लिम जगत के हर हिस्से में सभी विधिवत योग्य मुसलमानों के बीच सर्वसम्मत समझौता होना चाहिए। स्पष्टतः उस अवधि में जीवन की स्थितियों में ऐसे मतदाताओं ने कभी काम न किया होगा। इसलिए वे अबू बकर के चुनाव का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि वह इस बात का प्रमाण था कि समुदाय के भूतपूर्व नेता (हजरत मुहम्मद) की मृत्यु के समय जो लोग उपस्थित थे वे पूरे समुदाय के मत का प्रतिनिधित्व के लिए पर्याप्त थे। मावर्दी का कहना है कि अबू बकर के चुनाव के समय उपस्थित समुदाय के प्रतिनिधियों की संख्या पाँच थी। अपनी मृत्यु के पूर्व दूसरे खलीफा उमर ने छः व्यक्तियों का निर्वाचक मंडल नियुक्त किया। अन्य अधिकारियों का कहना है कि इस काम के लिए तीन ही व्यक्ति पर्याप्त हैं उसी तरह जिस तरह कि विवाह में एक आदमी और दो गवाह होते हैं। दूसरी ओर, कुछ अन्य व्यक्तियों का कहना है कि केवल एक आवाज से खलीफा का चुनाव किया जा सकता है। इस प्रकार मावर्दी इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि हर खलीफा अपना उत्तराधिकारी स्वयं चुन सकता है और फिर भी इस संस्थान का चुनाव सम्बन्धी स्वरूप कायम रखा जा सकता है।

पर कोई व्यक्ति इस पद पर चुने जाने के योग्य समझा जा सके उसके लिए उसमें ये योग्यताएँ होनी चाहिए: उसे निश्चित रूप से कुरैश जनजाति का सदस्य

होना चाहिए, वह पुरुष और पूरी उम्र का होना चाहिए, उसका चरित्र निष्कलंक होना चाहिए और उसे किसी तरह की मानसिक या शारीरिक बीमारी न होनी चाहिए, कानून के विभिन्न मामलों में निर्णय लेने के लिए उसे पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। साथ ही उसमें सार्वजनिक प्रशासन के लिए अपेक्षित उचित निर्णय लेने की उचित न्याय-निर्णय शक्ति होनी चाहिए तथा उसे मुस्लिम क्षेत्र की रक्षा के लिए साहस और शक्ति दिखलाना चाहिए।

इस प्रकार खलीफा ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो प्रशासनिक, न्यायिक एवं सैनिक कर्त्तव्य पूरे कर सके। मावर्दी ने ये कर्त्तव्य इस प्रकार गिनाये हैं—धर्म की रक्षा और संधारण, कानूनी विवादों का निर्णय, इस्लाम के क्षेत्र की रक्षा, बुरा काम करने वालों को दण्ड देना, सीमाओं की रक्षा के लिए सेनाओं की नियुक्ति, जो लोग इस्लाम स्वीकार नहीं करते और मुस्लिम शासन के समक्ष नहीं झुकते उनके खिलाफ अभियान (जिहाद) छेड़ना, करों को वसूलना और उनका व्यवस्थापन करना, सरकारी कर्मचारियों को वेतन देना और सार्वजनिक निधि का अच्छा उपयोग करना, सक्षम पदाधिकारियों की नियुक्ति और अंतिम पर सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह कि सरकार के सभी काम-काज पर व्यक्तिगत ध्यान देना। मावर्दी खलीफा से इच्छित विभिन्न कार्यों का संक्षिप्त रूप यह बतलाता है—"धर्म की रक्षा और राज्य का सुप्रशासन।"

मुस्लिम जगत के सबसे बड़े विचारकों में से एक इब्न खाल्दुन इमाम और खलीफा की आवश्यकता दैवी रहस्योद्घाटन द्वारा दिये गए धार्मिक कानून पर आधारित बतलाते हैं। उसके साथ ही वे सुन्नी विधिवेत्ताओं के सामान्य रूप से स्वीकृत सिद्धान्त यानी स्वधर्म मानने वाले साथियों और उनके अनुयायियों के बीच वंसहमति की बात भी जोड़ते हैं। खाल्दुन उन दार्शनिकों का मत अस्वीकार करते हैं जो इमाम की आवश्यकता का तार्किक आधार देते हुए कहते हैं कि सभी लोगों को एक नेता इस कारण चाहिए कि एक सुव्यवस्थित समाज से ही सभ्य जीवन संभव है। इसके विपरीत खाल्दुन का कहना है कि खलीफा दैवी नियुक्ति के आधार पर ही रहता है और अल्लाह उसे अपना प्रतिनिधि इसलिए बनाकर भेजता है कि वह अच्छे कामों में लोगों को मार्ग-दर्शन दे और उन्हें बुराई से दूर रखें। साथ ही वे यह शिया सिद्धान्त भी नहीं मानते कि इमाम का पद धर्म-विश्वास का एक स्तंभ है। खाल्दुन इस पद (इमाम) पर इस उपयोगितावादी दृष्टिकोण से विचार करते हैं कि वह केवल सामान्य लोगों के हित के लिए रहता है और इसी रूप में उसे मानव-जाति को सौंपा गया है। वह इस सिद्धान्त के पक्ष में भी कुछ हद तक कहता है कि खलीफा कुरैश जाति का होना चाहिए। इब्न खाल्दुन का कहना है कि न केवल धर्मशास्त्रीय इस पद को अल्लाह का आशीर्वाद प्राप्त रहेगा बल्कि इस कारण भी कि पैगम्बर

मुहम्मद भी इसी (कुरैश) जनजाति के थे। अल्लाह ने खुद इस बात को मान्यता दी है कि इस जनजाति में ऐसे लोग हैं जो खलीफा के कठिन कार्यों को कर सकते हैं। इस जनजाति के सदस्य को ही खलीफा का पद दिये जाने का विशुद्ध ऐतिहासिक कारण यह है कि कुरैश सबसे शक्तिशाली और सम्मान-प्राप्त जन-जाति थी जो अरब की अन्य जनजातियों का नेतृत्व कर सकती थी। इस जनजाति के किसी सदस्य को यदि खलीफा का पद दिया जाता तो उसे शक्तिशाली लोगों के समूह का समर्थन प्राप्त रहता जो सब उससे रक्त-संबंध के बँधे होते। इस प्रकार अरबों के बीच पृथकतावादी प्रवृत्तियों के बावजूद संयुक्त राजकीय जीवन का केन्द्र बन पाता। मावर्दी के विचारों से विपरीत विचार रखते हुए इब्न-खाल्दुन ने इस तथ्य को मान्यता दी कि खलीफाओं के कई राजवंशों की अवधि समाप्त हो जाने के कारण खलीफा के पद की स्थिति में काफी परिवर्तन हो चुके हैं।

इब्न-खाल्दुन का कहना है कि आरंभ में खलीफा का पद केवल धार्मिक पद था जो धार्मिक कानून के पालन में निष्ठावान लोगों का मार्ग-दर्शन करता था पर उमैय्यदों के शासन में खलीफा धर्म-निरपेक्ष सम्राट हो गया। उसका आरंभिक धार्मिक स्वरूप वैसे राजा के निरंकुश शासन के साथ घुल-मिल गया जो तलवार के बल पर लोगों की आज्ञाकारिता हासिल करता था। हारुन-अल रसीद की मृत्यु के तुरत बाद अब्बासिदों की सत्ता ज्यों-ज्यों समाप्त होने लगी त्यों-त्यों खिलाफत के सबसे उल्लेखनीय स्वरूप धीरे-धीरे समाप्त होते गए। फिर स्थिति ऐसी हो गई कि खलीफा पद का कुछ भी शेष नहीं रहा। अब जब राजनीतिक सत्ता अरबों के हाथ से बिल्कुल निकल गई, खलीफा का पद भी समाप्त हो गया। गैर-अरब सम्राट केवल धार्मिक सम्मान के भाव से खलीफा के प्रति आज्ञाकारिता की घोषणा करते रहे।

धर्मनिष्ठ खलीफाओं का शासन एवं "इस्लाम की गणतंत्रीय अवधि" (सन् ६३२-६१)

अबू बकर (६३२-३४):

अरब पैगम्बर के व्यक्तित्व का अपने अनुयायियों पर इतना प्रभाव था कि उनमें से कोई भी यह विश्वास न करता था कि पैगम्बर की कभी मृत्यु भी होगी। वे लोग यह न समझ सके कि जिस व्यक्ति ने कुछ ही वर्षों के अंदर अरब को सम्पूर्ण रूप से बदल दिया है वह भी उन्हीं नियमों के अधीन है जो सभी मानव-जाति को नियंत्रित करते हैं। यदि वह कुछ कम ऐतिहासिक महत्त्व के समय में रहे होते या खुद अपने संबंध में उनके निर्देश कुछ कम तार्किक होते तो अन्य महान व्यक्तियों की भाँति, संभवतः उन्हें भी दैवी सम्मान मिला होता। पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के

बाद यह अत्यावश्यक प्रश्न उठा कि उनके बाद राष्ट्रसमूह की सरकार का प्रधान कौन बने। हजरत मुहम्मद अक्सर अपनी पुत्री फातिमा के पति अली को अपना उत्तराधिकारी बताते थे पर उस संबंध में उन्होंने कोई निश्चित नियम विहित नहीं किया। इससे उनके बाद बचे उनके अनुयायियों में व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ जगीं और उससे इस्लाम को क्षति हुई। बाद में इससे राजवंशों में लड़ाइयां हुईं और फूट पड़ी। यदि अली को इस्लाम का प्रधान मान लिया जाता तो मुस्लिम-जगत में इतनी अधिक खूंरेजी का कारण बनने वाली महत्त्वाकांक्षाओं और मिथ्याभिमान उत्पन्न न होते। अरबों में किसी जनजाति के प्रधान का पद वंशगत नहीं है। उसे चुनाव से भरा जाता है। अतिवादी रूप में व्यापक मताधिकार को मान्यता दी जाती है और अपने प्रधान के चुनाव में जनजाति के सभी सदस्यों की आवाज का महत्त्व होता है। मृत प्रधान के परिवार के जीवित पुरुष सदस्यों में वरीयता के आधार पर चुनाव होता है। पैगम्बर के उत्तराधिकारी के चुनाव में भी पुरानी जनजातीय प्रथा का पालन किया गया क्योंकि समय ऐसा था जिसमें देर करने की कोई गुंजाईश न थी।

अबू बकर का जन्म मक्का के एक ऊँचे और सम्मानित परिवार में सन् ५३७ में हुआ था। उसका नाम अब्दुल्ला था। उनके इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पूर्व उनका उपनाम अबू बकर था। अबू बकर का हजरत मुहम्मद के प्रति विशेष आकर्षण था। जब हजरत मुहम्मद ने लोगों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने का आह्वान दिया तो अबू बकर प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने उनके आह्वान का अनुकूल उत्तर दिया और उनका धर्म स्वीकार कर लिया। अबू बकर का पूरा जीवन हजरत मुहम्मद के उच्च ध्येय के प्रति अर्पित था। जिन अनेक दासों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के कारण उनके मालिकों की ओर से प्रताड़ना और दंड मिला उन्हें अबू बकर ने ख़रीद कर मुक्त कर दिया। हजरत मुहम्मद का धर्म फैलाने के लिए अबू बकर ने कोई कोशिश उठा न रखी। इस्लाम धर्म को आगे बढ़ाने में अबू बकर को अनेक कष्ट उठाने पड़े। पैगम्बर मुहम्मद के मदीना जाने में अबू बकर ने उनका साथ दिया और हर स्थिति में हजरत मुहम्मद के साथ बने रहे। बद्र, उहद और खन्दक की लड़ाइयों में हिस्सा लिया। वे हुदैबिया की सन्धि के समय भी मौजूद थे।

अपनी उम्र और मक्का में अपनी स्थिति के कारण अबू बकर के प्रति अरब वालों का बड़ा सम्मान था। वे तुरंत खलीफा या पैगम्बर के प्रतिनिधि के पद पर चुने गए। बुद्धिमान और सन्तुलित व्यक्ति के रूप में उन्हें मान्यता मिली। उनका चुनाव पैगम्बर के दामाद अली और उनके परिवार के मुख्य सदस्यों ने सामान्य निष्ठा के साथ स्वीकार किया। खलीफा या पैगम्बर के उत्तराधिकारी के रूप में उन्हें सलाम दिया गया। पहला संकट खत्म हो गया और इस्लाम की दृढ़ता और एकता

कायम रखी जा सकी। अबू बकर के चुनाव से इस्लाम के प्रधान उत्तराधिकारी की महत्त्वपूर्ण समस्या हल हो गई। जब चुनाव पूरा हो गया अबू बकर उठ कर खड़े हुए और बोले—"मेरे प्रति आभारी बनो। उस समय के प्रति आभारी बनो जो सरकार की चिन्ता से परिपूर्ण है। मैं आप सब लोगों में से सबसे अच्छा नहीं हूँ। मैं आप सब की सलाह और सहयोग चाहता हूँ। अगर मैं ठीक काम करता हूँ तो मुझे सहयोग दो। यदि मैं गलत करता हूँ तो मुझे सलाह दो। जिस आदमी पर शासन सौंपा गया है उसे सच बात बतलाना उसके प्रति सबसे अच्छी निष्ठा है, उससे कोई बात छिपाना देशद्रोह है। मेरी दृष्टि में शक्तिमान और शक्तिहीन दोनों ही बराबर हैं और दोनों के ही प्रति मैं न्याय करना चाहता हूँ। चूँकि मैं अल्लाह और पैगम्बर दोनों की आज्ञा मानता हूँ, तुम मेरी आज्ञा मानो। अगर मैं अल्लाह और उसके पैगम्बर का कानून नहीं मानता तो मुझे तुम्हारी निष्ठा पाने का अधिकार नहीं है।" अबू बकर के प्रारंभिक भाषण में ही प्रजातांत्रिक सरकार का सिद्धांत निहित है। उसमें कहा गया है कि खलीफा निरंकुश शासक न होगा। उसे अपने देश का शासन "शरीयत" के अनुसार करना होगा और अपने कामों के बारे में जनता के प्रति जिम्मेदार होना होगा।

अरब का विजेता और वहाँ शांति स्थापित करने वाला अबू बकर शासन के पिता-तुल्य प्रधान की भाँति सादगी से रहता था। अपने संक्षिप्त शासन-काल के प्रथम छः महीनों में वह अपने निवासस्थान अल-सुन्ह से, जहाँ वह एक साधारण से घर में अपनी पत्नी हबीबा के साथ रहता था, राजधानी मदीना तक रोज जाता और लौटता था। वह कोई पारिश्रमिक न लेता था क्योंकि उस समय राज्य को कोई आमदनी न थी। वह राज्य के सभी काम-काज पैगम्बर की मस्जिद के दालान में करता था। उसके दामाद पैगम्बर मुहम्मद उससे उम्र में तीन साल बड़े थे। उनके प्रति अबू बकर को अगाध श्रद्धा थी। पैगम्बर के प्रति इस श्रद्धा और अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं के कारण वह अभ्युदयशील इस्लाम के अत्यधिक आकर्षक व्यक्तित्व थे। उन्हें अल-सिद्दीक (विश्वासी) की उपाधि मिली थी। उस समय की परम्परा (हदीस) में वे जितने बली और शक्तिशाली बताये जाते थे उससे कहीं अधिक बल और शक्ति उसमें थी। कहा जाता है कि वह साफ रंग और दुबले-पतले शरीर के थे। वह अपनी दाढ़ी रंगाये रहते थे और झुक कर चलते थे।

अबू बकर पहले कपड़ा-व्यापारी थे। उन्होंने सबसे पहले इस्लाम धर्म स्वीकार किया। उन्होंने पैगम्बर के उत्तराधिकार में, उनके निजी कार्य को छोड़ कर और सभी कार्य किए। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, अबू बकर इस ऊँचे पद पर चुने न गए थे, बल्कि वे राजधानी मदीना में बड़े लोगों द्वारा खलीफा घोषित किये गए थे। यह कार्य एक सादा समारोह में हुआ था। उसके बाद लोगों ने उनसे

हाथ मिलाए जो उनके प्रति निष्ठा प्रकट किये जाने का द्योतक था। इस्लामी राजनीतिक सिद्धान्त के अनुसार खलीफा के प्रति निष्ठा पैगम्बर के प्रति निष्ठा के बराबर है और पैगम्बर के प्रति निष्ठा अल्लाह के प्रति निष्ठा के बराबर। राज्य के विरुद्ध पाप अल्लाह के विरुद्ध पाप है। इस्लाम में, यहूदी धर्म और ईसाई धर्म के समान ही, सरकार की उत्पत्ति दैवी है और सभी प्राधिकार अल्लाह से ही प्राप्त होते हैं। राज्य औचित्य केवल ईश्वर की इच्छा है।

सत्तारूढ़ होने पर अबू बकर की समस्याएँ

खलीफा बनने के बाद अबू बकर के सामने अनेक समस्यायें आईं। अरब के विभिन्न भागों में नकली पैगम्बरों का प्रकट होना, अरब की विभिन्न जनजातियों में स्वधर्म-त्याग आन्दोलन और जनता के एक बड़े भाग द्वारा जकात देने से इन्कार करना आदि ऐसी समस्यायें थीं जिनसे नये राज्य को चुनौती मिली। एक अरब इतिहासकार ने कहा है—"सभी ओर अरब विद्रोह कर रहे थे, स्वधर्म-त्याग और घृणा की शक्तियों ने अपना सर उठा लिया था, यहूदी और ईसाई धर्मावलम्बी इस्लाम के मामले में दखल देने के लिए उत्सुक थे, पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के बाद इस्लाम-धर्मनिष्ठ भेड़ियों के उस गिरोह जैसे हो गये थे जिसका कोई चरवाहा न था, उनकी संख्या कम थी और उनके दुश्मन थे अनेक।" स्पष्ट था कि हजरत मुहम्मद इस सब में प्रत्यक्ष रूप से अन्तर्ग्रस्त न थे। इस्लाम की सभी विजय मुहम्मद साहब के बाद हुई। उनके जीवन-काल में इस्लाम के राजनीतिक नियन्त्रण का विस्तार हेज्जाज की सीमा के बाहर न हो सका। उत्तर और दक्षिण की जनजातियों ने, जिनमें ईसाई नजरान भी शामिल थे, हजरत मुहम्मद के जीवन-काल में उनके साथ संधियाँ कीं। इन क्षेत्रों के बाहर कहीं भी उनका कारगर नियन्त्रण न था। यहाँ यह स्मरणीय है कि मक्का ने उनकी मृत्यु के केवल दो वर्ष पूर्व ही उनका नियन्त्रण स्वीकार न किया था। उन्होंने यह पूर्वोदाहरण प्रस्तुत कर दिया था कि इस्लाम के संदर्भ में राजनीति और जबर्दस्ती असंगत चीजें न थीं। प्रारंभिक इतिहासकारों के मत के विपरीत प्रथम खलीफा के समक्ष महान कार्य यह नहीं था कि इस्लाम के प्रभाव-क्षेत्र में अरब के दक्षिणी और पूर्वी भागों के लोगों को लाया जाय बल्कि यह कि प्रथम बार के लिए इन विभिन्न क्षेत्रों में इस्लाम के प्रभाव का विस्तार किया जाय। बूढ़े खलीफा वह काम करने के लिए कृतसंकल्प थे। अबू बकर का कहना था कि इस्लाम भी अरबवासियों पर विजय प्राप्त कर उनको अपने नियन्त्रण में लाने के लिए सक्षम नहीं है। वह अन्य देशों में भी अपने प्रभाव का विस्तार न कर सकता था। फिर भी अबू बकर को स्थिति का सामना करने का साहस था।

फिर समूचे अरब में धर्म से भागने की प्रवृत्ति उदित हुई। इसमें धार्मिक प्रयोजनों ने कोई भी भूमिका अदा न की, बल्कि इसके पीछे प्रवृत्ति मात्र यह थी कि

मदीना में मुसलमानों के कष्टकर शासन से छुटकारा पाया जाय। इन विद्रोहियों का नेतृत्व नकली पैगम्बरों ने संभाला। वे हजरत मुहम्मद की भाँति अनेक देवताओं के नाम पर नहीं बल्कि अल्लाह के नाम पर काम करने का दावा करते थे। कुछ विद्रोहियों ने कहा कि वे अब भी अल्लाह की पूजा करना चाहते हैं पर वे कोई कर देने को तैयार नहीं हैं। वे मुख्यतः इसलिए क्रुद्ध थे कि पिछले कुछ वर्षों में हजरत मुहम्मद ने अपने कई धार्मिक दूतों को उन जनजातियों के यहाँ भेजा था जिसका उद्देश्य था कि नये धर्म के तौर-तरीकों में उन लोगों को शिक्षित किया जाय और उनसे मदीना सरकार के लिए कर वसूला जाय। वे धार्मिक दूत जनजातियों को घृणात्मक प्रतीत हुए। जनजातियाँ अब तक भेड़ें चराने के अपने मैदानों में स्वतंत्र और स्वच्छंद थीं।

खलीफा का पद संभालने के बाद अबू बकर का सर्वप्रथम काम यह था कि वे अपने मालिक पैगम्बर की इच्छा पूरी करते। अपने जीवन के आखिरी वर्षों में पैगम्बर अपनी सेना को शस्त्र-सज्ज करके तैयार कर रहे थे ताकि मुता में बैजेन्टाइन विजय का बदला चुकाया जाय। अबू बकर ने अपना यह कर्तव्य समझा कि वह पैगम्बर की इस अंतिम योजना को पूरा करें पर अरब के सभी क्षेत्रों से उपद्रव की खतरनाक खबरें लगातार आ रही थीं। अरबों में स्वधर्मत्याग की घटनाओं के साथ यहूदियों और ईसाइयों द्वारा विद्रोहात्मक कार्रवाइयाँ होने लगीं और इस्लामी सेना के सीरिया प्रस्थान के पूर्व ये विद्रोही बड़ी संख्या में मदीना में पहुँच गए। इन स्थितियों में पैगम्बर के साथी अबू बकर के पास पहुँचे और उनसे अपने आदेश वापस लेने के लिए कहा। पर अबू बकर ने कहा—"मैं फौज को रोक लेने वाला कौन होता हूँ जब अल्लाह के पैगम्बर ने खुद फौज बढ़ने का आदेश दिया है।" "चाहे जो कुछ भी हो," अबू बकर ने कहा—"मदीना पर दुश्मनों का कब्जा हो या न हो, खिलाफत रहे या न रहे, पैगम्बर के आदेश का पालन होना चाहिए।" उसी के अनुसार इस्लाम की सबसे अच्छी लड़ाकू फौजें उस्मान के सेनापतित्व में उत्तर की ओर रवाना हुईं। हमें इतिहास में इसका कोई जवाब नहीं मिलता कि वे फौजें विजयी हुई या नहीं अथवा यह कि वे मदीना से दो महीने तक बाहर रहीं या नहीं। अब फौजों की सुरक्षा के अभाव में राजधानी मदीना की स्थिति बहुत खराब हो गई। इसका फायदा पास में रहने वाली असद और घटफान जनजातियों ने उठाया। पर अबू बकर ने इस्लामी फौजों के वापस आने तक मदीना को बचाये रखा। उन्होंने 'खुदा की तलवार' उपाधि वाले वीर सेनापति खालिद इब्न वलीद को मदीना की सुरक्षा करने वाली फौज का सेनापतित्व सौंप दिया। खालिद इब्न-अल-वलीद ने बुजक्का के कुएँ पर उक्त दो आक्रामक जनजातियों को ऐसी बुरी तरह पराजित किया कि उन्होंने तुरन्त आत्म-समर्पण कर

दिया। इन प्रारंभिक अभियानों का नेता नौजवान बहादुर सेनापति खालिद इब्न-अल-वलीद था। थोड़े ही महीनों में उनके प्रतिभापूर्ण सेनापतित्व से दक्षिणी, केन्द्रीय और पूर्वी अरब की जनजातियों पर विजय प्राप्त कर ली गई। इस प्रकार अरब प्रायद्वीप इतिहास में पहली बार खालिद की तलवार के चलते एक आदमी के अधीन संयुक्त हुआ। तब खालिद ने अपना प्रारंभिक दावा पेश किया कि उसे "खुदा की तलवार" की उपाधि दी जाय।

नकली पैगम्बरों का दमन और स्वधर्म-त्याग आन्दोलन

"अबू बकर के खिलाफत की छोटी-सी अवधि रिदाह् (दमन और स्वधर्म-त्याग) की लड़ाइयों से पूर्ण थी," प्रोफेसर हिट्टी ने कहा है।[1] जब पैगम्बर की मृत्यु की खबर बाहर फैली तो जनता में से एक वर्ग ने मदीना के इस्लामी राजतंत्र के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया और या तो इस्लाम धर्म छोड़ा अथवा भर्त्सना की। ऐसे लोगों के नेतृत्व में चलने वाला आन्दोलन स्वधर्मत्याग आन्दोलन कहलाया। जैसा कि इस्लामी इतिहासकारों ने कहा है, पैगम्बर की मृत्यु के बाद, हेज्जाज के, जिसके द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार किये जाने तथा पैगम्बर के सांसारिक प्राधिकार को मान्यता दिये जाने की बात कही जाती है, बाहर सारे अरब ने उनके नव स्थापित राज्य से सभी संबंध तोड़ लिए और अनेक स्थानीय और नकली पैगम्बर का नेतृत्व स्वीकार करना आरंभ किया।

वास्तविकता यह थी कि सूचना के आदान-प्रदान के सर्वथा अभाव, मिशन जैसी संगठित कार्रवाई की कमी और समय कम रहने के कारण पैगम्बर के जीवन-काल में अरब के एक तिहाई से अधिक लोगों ने इस्लाम धर्म न अपनाया और न उनके शासन को ही मान्यता दी। यहाँ तक कि उनके कार्यक्षेत्र के समीप स्थित अल-हेज्जाज ने भी उनकी मृत्यु के एक-दो वर्ष पूर्व ही इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। उनकी मृत्यु के बाद जो प्रतिनिधि उन्हें श्रद्धांजलि देने आये, वे सभी अरबों का प्रतिनिधित्व न कर रहे होंगे। उन दिनों किसी जनजाति के मुसलमान बनने का अर्थ था कि उनके प्रधान मुसलमान बन जायँ। अल यमन, अल-यमामा और उमान की कई ऐसी जनजातियों ने मदीना-स्थित सरकार को जकात देने से इन्कार कर दिया। पैगम्बर की मृत्यु से उन्हें बहाना मिल गया कि वे सरकार को कर न दें। अरबों के जीवन में जिन पुरानी विच्छेदकारी शक्तियों का बराबर से प्राधान्य था, वे अब पुनः पूरी तरह सक्रिय हो गई थीं। अबू बकर ने विद्रोहियों के विरुद्ध जो युद्ध छेड़ा उसे अनेक इतिहासकारों ने स्वधर्मत्याग के विरुद्ध युद्ध कहा है। पर

१. **फिलिप के० हिट्टी—हिस्ट्री ऑव अरब्स, सातवाँ संस्करण (लंदन और न्यूयार्क), पृ० १४०।**

बेकर ने अपने ग्रन्थ "कैम्ब्रिज मेडीवियल हिस्ट्री" में इस विचार का खंडन किया है। उनका कहना है कि जिन लोगों ने इस्लाम के विरुद्ध झण्डा उठाया उन्होंने पूरे हृदय से कभी भी इस्लाम धर्म स्वीकार न किया था। वे केवल पैगम्बर के विराट व्यक्तित्व से डरते थे। इसलिए ऐसे लोगों द्वारा स्वधर्म-त्याग का प्रश्न नहीं उठता। इसलिए बेकर अबू बकर द्वारा छेड़े गये युद्ध को स्वधर्मत्याग के विरुद्ध युद्ध नहीं कहते।

अबू बकर इस बात पर दृढ़ रहे कि या तो राज्य से अपने को अलग करने के लिये आत्म-समर्पण करें या अंत तक युद्ध लड़ा जाय। उन्होंने स्वधर्मत्याग आन्दोलन को भय की दृष्टि से देखा। "पूरे प्रायद्वीप में," डब्ल्यू म्यूर ने कहा है, "अरब स्वधर्मत्याग कर रहे थे।" अबू बकर ने हिम्मत न हारी। उन्होंने स्थिति का सामना साहस के साथ किया। अविलम्ब उन्होंने स्वधर्मत्याग आन्दोलन के विरुद्ध अभियान छेड़ा। एक वर्ष के भीतर पूरे अरब प्रायद्वीप में इस्लाम का फिर से बोल-बाला हो गया। इन युद्धों के नायक खालिद इब्न वलीद थे। उनके द्वारा सेनापतित्व ग्रहण करने के छः महीने के बाद ही मध्य अरब की सभी विद्रोही जनजातियों ने आत्म-समर्पण कर दिया।

पैगम्बर के कार्य में सफलता के बाद अनेक लोगों की महत्त्वाकांक्षा जगी और देश में अनेक दावेदार उठ खड़े हुए। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद नकली पैगम्बरों ने विद्रोह की चिनगारी फिर सुलगाई। इन नकली पैगम्बरों में कुछ के नाम हैं, यमन के असद अन्सी, मध्य एशिया के मसायलिमा। उत्तरी अरब के तलहन या तुलैहा। मध्य एशिया की एक महिला साजाह ने अपने को महिला-पैगम्बर घोषित किया। पर खालिद के छः महीने के सेनापतित्व में सेनाओं ने इन सब के छक्के छुड़ा दिये और उन लोगों को आत्मसमर्पण करने को बाध्य होना पड़ा। सबके पहले खालीद ने तययी को पराजित किया, फिर असद और घटा फान को जिनके पैगम्बर ताल्हा थे। अन्त में यमामा की बानू हनीफा को जो मसायलिमा (मसल्मा) पैगम्बर के झण्डे के नीचे विद्रोह कर रही थी। छोटे कद के मसायलिमा ने दमन का घोर प्रतिरोध किया। उसने मदीना सरकार से मांग की थी कि वह उसके द्वारा समान अधिकार पाने का हक रखता है। मुस्लिम परम्परा ने, स्वभावत. उसके राजनीतिक विचारों के केवल कुछ अंश ही इस युग में, हमारे पास तक, आने दिये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मसायलिमा ने तपस्या पर खास तौर पर जोर दिया। उसने उपवास की अनुशंसा की, शराब पीने पर रोक लगाने के लिए कहा। उसने अपने अनुयायियों में चारित्रिक शुद्धता पर भी जोर दिया और कहा कि पुरुष को स्त्री-प्रसंग केवल तभी तक करना चाहिए जब तक उसे पुत्र न हो जाय। हजरत मुहम्मद

के व्याख्यानों में ईसाई मत के सिद्धान्तों का उतना प्रभाव न था जितना मसायलिमा के व्याख्यानों में रहता था।

मसायलिमा ने अपने धार्मिक और सांसारिक हितों को साजाह के साथ बांध रखे थे। साजाह संभवतः ईसाई धर्मावलम्बिनी थी। उसने अपने को महिला-पैगम्बर घोषित कर रखा था। वह तमीम जनजाति की थी। मसायलिमा (मसल्लाह) ने उससे विवाह किया था। साजाह के संबंध में विस्तार में इस प्रकार बतलाया गया है कि जिस तरह मसायलिमा ने हनीफा जनजाति में इस्लाम के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया। उसी तरह प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में साजाह ने अपनी जनजाति तमीम में आन्दोलन शुरू किया। अपनी जनजाति तमीम में साजाह के बहुत काफी अनुयायी थे। तमीम शुद्ध बद्दू थे, पर उस जनजाति का सांस्कृतिक स्तर नीचा था और वे देवता के रूप में सूर्य की पूजा करते थे। सर्वप्रथम केवल साजाह के संबंधियों—हनजालाह—ने उसका समर्थन किया पर बाद में पूरा तमीम जनजाति उसके झण्डे के नीचे आ गई। तब, कहा जाता है कि वह और दक्षिणी भाग में गई और वहाँ मसायलिमा के साथ साठ-गाँठ कर ली। पर इन दोनों को मदीना सरकार के विरुद्ध समान युद्ध के लिए अपने-अपने अनुयायियों को एकजुट करने में सफलता न मिली। फलतः वे दोनों फिर अलग हो गए। साजाह मेसोपोटामिया वापस चली गई जहाँ उसकी जीवन-वृत्ति का अंत हो गया। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु एक मुसलमान के रूप में हुई। जब खालिद इब्न-अल वलीद तमीम जनजाति के क्षेत्र में गया तो वहाँ सब लोगों ने उसके समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। तमीम जनजाति को पराजित करने के बाद, खालिद, ने यमामा में मसायलिमा के समर्थकों पर धावा किया। सन् ६३२ में भीषण जनजाति बनू हनीफा-को यमामा के युद्ध में पराजित किया गया और उसका नेता मसायलिमा मारा गया। इसके बाद विद्रोही खुद-ब-खुद, धीरे-धीरे, आत्मसमर्पण करते गए और उन्होंने इस्लाम धर्म फिर स्वीकार कर लिया। स्पष्ट रूप से जीती गई इस विजय ने न केवल बनू हनीफा जनजाति के भाग्य का फैसला कर दिया बल्कि सामान्यतः समूचे अरब का। मसायलिमा के यहाँ-वहाँ बिखरे समर्थक अपने-अपने किलों में बंद हो गए और इस्लाम के समक्ष आत्म-समर्पण करके अपनी जान बचाई। और इस प्रकार इस्लाम के सारे विरोधियों का प्रतिरोध हमेशा के लिए खत्म हो गया।

यमामा की लड़ाई के बाद स्वधर्मत्याग के विरुद्ध अभियान का अंत हो गया। इस्लाम से सत्ता छीनने के चार दावेदारों में असद अंसी और मसायलिमा पराजित होकर मौत के शिकार हुए और तलहा और साजाह ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार एक साल के भीतर सभी अभियानों को सफलता

मिली। सेनापतियों की सहायता से अबू बकर ने अशांति और स्वधर्मत्याग की शक्तियों को कुचल दिया। आन्दोलन के दमन में उन्होंने अद्भुत साहस और योग्यता से काम किया। डब्ल्यू० म्यूर का कहना है—"यदि अबू बकर न होते तो इस्लाम को बद्दुओं से समझौता कर अपना प्रभाव और शक्ति खत्म कर देनी होती और संभवत: जन्म लेते ही मर जाना पड़ता।" स्वधर्मत्यागियों के दमन के फलस्वरूप इस्लाम सुदृढ़ और सुरक्षित हुआ और विद्रोही जनजातियों पर विजय से इस्लाम के आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इन अभियानों में मुसलमानों की विजय से उन्हें आशा मिली और बैजेन्टाइनों और ईरानियों से युद्ध के लिए नया प्रोत्साहन। इन अभियानों में युद्ध की जो तकनीकें इस्तेमाल की गई और जो सैनिक इकट्ठे हुए उनका उपयोग बैजेंटाइनों और ईरानियों के साथ भावी युद्धों में किया गया।

बाहरी अभियान :

जब अरब के विद्रोहियों को परास्त कर दिया गया और इस्लाम की पुनर्स्थापना हो गई तो इस्लाम राज्य के विजयी सेनापति खालिद इब्न-अल वलीद विदेशी क्षेत्रों के विजय-अभियान पर चल पड़े। फारस की खाड़ी के तट पर बहरैन को हजरत मुहम्मद की मृत्यु के कुछ समय पूर्व पराजित किया गया था। उसके बाद पैगम्बर की मृत्यु होने पर, बहरैन ने अपने को इस्लाम राज्य के बंधन से मुक्त करने की चेष्टा की। उसकी राजधानी, हजर, में वहाँ के पुराने "हीरा" राजवंश के जिसका वहाँ पहले विस्तृत राज था, एक वंशज इस्लाम राज्य से अलग होने के आन्दोलन का नेतृत्व किया। हजरत मुहम्मद ने स्वयं उस क्षेत्र के लिए आला को अपना गवर्नर नियुक्त किया था। जब वहाँ इस्लाम राज्य के विरुद्ध विद्रोह हुआ तो आला ने राजधानी हजर के उत्तर एक किले में अपने को बन्द कर लिया। खालिद द्वारा मसायलिमा (मसल्लाह) के पराजित होने के बाद आला को किले से मुक्त किया गया। खालिद खुद राजधानी हजर के लिए रवाना हुआ और वहाँ का विद्रोह दबा दिया गया। पैगम्बर की मृत्यु के तुरत बाद बहरैन का मुस्लिम गवर्नर मुंधीर की मृत्यु हो गई। इस व्यक्ति की मृत्यु से उस प्रान्त में उपद्रव मच गया। "बनू अबुल केज" और "बनू बकर" की जनजातियों में झगड़ा छिड़ गया। इनमें से प्रथम ने मुसलमानों से सहायता माँगी और द्वितीय ने फारस से सहायता माँगी। जब दोनों पक्षों के लिए सहायता आ गई तो मुसलमानों और फारसियों में लड़ाई छिड़ी जिससे फारसी पूरी तरह पराजित हो गए और विद्रोह पंगु हो गया और कुचल दिया गया।

उमान और मेहरा के विद्रोही भी कुचल दिये गये। उमान में अधिकतर मछुए और समुद्री डाकू रहते थे। इस प्रदेश ने मध्य काल से लेकर आज तक मस्कट

के सुलतानों के रूप में अपनी आजादी कायम रखी थी। उस समय पुराने समय से स्थापित जल-दाह राजवंश के, जिन लोगों ने अब्बासिदों के समय तक वहाँ शासन किया था, विरुद्ध विद्रोह छिड़ गया। इस कारण मुसलमानों को वहाँ हस्तक्षेप का बहाना मिल गया। राजा अम्र ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। केन्द्रीय (मदीना) सरकार के आदेश से अम्र ने इस प्रदेश के भीतरी भागों में मालगुजारी इकट्ठा करने वालों को भेजा जिनके खिलाफ बद्दुओं ने विद्रोह कर दिया। इक्रिमाह को, जिनसे पहले मसायलिमा (मुसल्ला) के विरुद्ध विफल लड़ाई लड़ी थी, अबू बकर ने आदेश भेजा कि वह राजा अम्र की सहायता करे। मुसलमानों के संयुक्त आक्रमण से बद्दुओं को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य होना पड़ा।

उमान से इक्रिमाह अपनी सेना के साथ हद्रमाउंट और यमन के लिए रवाना हुआ जहाँ पहले विद्रोह छिड़ा था। उसे दबाने में मुसलमानों को सबसे ज्यादा समय लगा। हद्रमाउन्ट में जनजाति के बीच एक नकली पैगम्बर प्रकट हुआ जिसे पैगम्बर मुहम्मद के समय से ही आयहा बाह धुई-हिमार अर्थात् गदहे पर सवार[2] कहा जाता था। अबू बकर के शासन में हद्रामाउन्ट में असद बिन केज के नेतृत्व में, जो आयहाबाह का सबसे ज्यादा विश्वस्त साथी था, विद्रोह उभरा। अबू बकर ने उसके दमन के लिए पैगम्बर मुहम्मद द्वारा हद्रामाउन्ट के बड़े क्षेत्र के लिए नियुक्त गवर्नर के अधीन एक सेना भेजी। उस सेना ने विद्रोह कुचल दिया। विद्रोह के नेता को गिरफ्तार कर लिया गया। यमन प्रांत पर भी मुसलमानों ने कब्जा कर लिया।

इस प्रकार जब सारे अरब ने अपेक्षाकृत कम समय में इस्लाम के प्राधिकार के समक्ष घुटने टेक दिये तो अबू बकर ने पैगम्बर मुहम्मद की अंतिम योजना यानी स्वदेश के बाहर इस्लाम धर्म के अभियान का आरम्भ किया। उन्हें उन शक्तियों के, जो आपस में अन्तहीन रूप से लड़कर एक दूसरे को धक्का देती थीं, अपने देश के बाहर मुस्तैद करने का अवसर प्रस्तुत करना पड़ा। हजरत मुहम्मद ने अपनी शक्ति को अधिक समझकर और आंतरिक स्थिति का विशेषकर बैजेन्टाइनों के मामले में,

२. पूर्व में प्राचीन समय से ही गदहा उद्धारक की, जिनकी प्रतीक्षा की जा रही है, सवारी माना जाता था। यही कारण है कि ईसामसीह ने जेरूसलेम में एक गदही पर सवार होकर प्रवेश किया। दसवीं सदी में उत्तरी अफ्रीका के एक धर्मोन्मुक्त समुदाय के संस्थापक को 'धुई हिमार' कहा जाता था। यहाँ तक कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मोरक्को के सुल्तान के विरुद्ध विद्रोही नेता को 'बू हमारा' कहा जाता था। दक्षिणी अरब में यहूदियों और ईसाइयों ने एकदेववाद का व्यापक रूप से प्रचार किया था। इसलिए पैगम्बर ने भी किसी मूर्ति या किसी देवता के नाम पर नहीं पर अल्लाह (ईश्वर) सर्वदयालु के नाम पर काम किया।

गलत मूल्यांकन कर पहले बैजेन्टाइन पर हमला करने का प्रयास किया था। उनके उत्तराधिकारी (अबू बकर) ने सबसे पहले फारसी साम्राज्य की ओर निगाह डाली जिसकी कमजोरी का उन्हें अहसास हो गया होगा।

फारस के साथ युद्ध

जैसा कि ऊपर कहा गया है, थोड़े ही समय में देश में अशांति और विद्रोह की सभी शक्तियों का दमन कर दिया गया। अबू बकर ने फारस और सीरिया की सीमाओं की ओर दृष्टि डाली। बहरैन के विद्रोह में फारसियों ने विद्रोहियों की सहायता की थी और इसकी वजह से मुसलमान उन लोगों पर कुपित हो गये थे। फारसियों ने अपनी शत्रुता की कार्रवाई के कारण मुसलमानों का ध्यान आकर्षित किया कि वे अपनी सीमा पर चौकसी बरतें। अबू बकर के सेनापतियों में से एक मुथना इब्न-अल-हरीथ, जिसने बहरैन को परास्त करने में हिस्सा लिया था, फारस की सीमा की ओर छापा मारने लगा था। खलीफा के आदेश से सन् ६३३ में यमामा में मसायलिमा के विद्रोह को दबाने के बाद खालिद इब्न-अल-वलीद ने मुथना इब्न-अल हरीथ के साथ मिलकर बाहर के प्रदेश पर चढ़ाई आरम्भ की। वे लोग सबसे पहले हिरा की ओर मुड़े। खालिद, १०,००० की फौज के साथ फारस साम्राज्य की सीमा की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचने पर उसने फारस की फौजों के सेनापति हरमूज को पत्र लिख कर कहा कि या तो वह इस्लाम धर्म स्वीकार करे या मदीना सरकार को कर दे अथवा लड़ाई का सामना करने के लिए तैयार हो। हरमूज ने मुठभेड़ करने का रास्ता चुना। मुसलमानों और फारसियों के बीच पहला युद्ध उबल्ला से प्रायः ५० मील दक्षिण हाफिर नामक स्थान में हुआ। इस युद्ध को "सीकड़ी का युद्ध" कहा जाता है क्योंकि फारसी सैनिकों ने आपस में एक दूसरे को सीकड़ी से बाँध रखा था।" "फारसी सैनिक पराजित हुए और उनका सेनापति मारा गया। सन् ६३३ में हिरा बिना किसी और प्रतिरोध के मुसलमानों के कब्जे में आ गया। वहाँ की ईसाई सरकार ने आत्म-समर्पण कर दिया और मुसलमानों से संधि कर अरब को कर देना मंजूर किया। ईसाई सरकार द्वारा दिए जाने वाले कर को जजिया कहा जाता था। गैर-मुसलमानों को सेना के साथ युद्ध में लड़ने के विकल्प के रूप में यह कर देना पड़ता था।

सीरिया पर अभियान और अज्नदेन की लड़ाई :

हिरा की जीत के बाद खालिद उत्तर की ओर बढ़ा और यूफ्रेटस की नदी की ओर अन्बर तक गया। अन्बर पर कब्जा कर लिया गया। दक्षिणी बेबीलोनिया की विजय अप्रत्याशित रूप से सरलता के साथ हुई। इस प्रकार पैगम्बर द्वारा निर्धारित किये गये दैवी भूमि पर अधिकार के लक्ष्य का मदीना में पुनः स्मरण किया गया। अरब

जिस प्रकार फारस की भूमि में रह रहे थे उसी प्रकार बैजेन्टाइन साम्राज्य में भी रह रहे थे। उन लोगों तक इस्लाम का आशीर्वाद पहुँचाना था और उन्हें नव-अभ्युदित राष्ट्रीय राज्य में एकीकृत करना था। अबू बकर ने पाया कि रोम के सम्राट हेराक्लियस ने सीरिया की सीमा के बद्दुओं के साथ मिल कर उनके खिलाफ साजिश की थी। अतः उन्होंने निर्णय किया कि सीमा की रोमनों के आक्रमण से रक्षा की जाय। बहुत ही पहले से अरब सीरिया के साथ व्यापार करता रहा था। पहले अरब का अस्तित्व ही सीरिया के साथ उसके व्यापार पर निर्भर करता था। कार्ल ब्रोकेलमैन ने कहा है—"प्रारम्भ से ही सीरिया पर हमले के लिए काफी सावधानी से तैयारी की गई।"[3] सन् ६३४ में वसन्त के मौसम में अबू बकर ने सीरिया पर दो फौजें भेजीं। उनमें से एक अम्र इब्न-अल-आस के अधीन भेजी गई जिसने दक्षिणी फिलीस्तीन पर हमला किया। दूसरी फौज यजीद इब्न-शुराईबिल और अबू उबैदा के अधीन गई जिसने प्राचीन मोआब क्षेत्र पर हमला किया। जब अम्र के अधीन फौज काफी दूर तक बढ़ गई तो बैजेन्टाइनों ने मुकाबले में उसके विरुद्ध काफी बड़ी फौज भेजी। पश्चिम में इन सफलताओं की खबर सुनकर बेबीलोनिया से खालिद चुने हुए घुड़सवारों के साथ आया और ट्रांसजोर्डन में फौज का सर्वोच्च कमान अपने हाथों में ले लिया। इसके साथ खालिद अब अम्र की सहायता के लिए आया। सन् ६३४ में जुलाई या अगस्त में फिलीस्तीन में अज्नदेन में एक बड़ा युद्ध हुआ जिसमें मुसलमानों की संयुक्त सेना ने बैजेन्टाइनों को हरा दिया। सम्राट हेराक्लियस इस बीच ऐन्टओक चले गये थे। खालिद दमिश्क की दीवालों के सामने बैजेन्टाइनों को दूसरी लड़ाई में लाया और उन्हें दमिश्क की दीवालों के पीछे जाने को बाध्य किया। छः महीने तक मुस्लिम सैनिकों ने दमिश्क पर नाकेबन्दी जारी रखी। सन् ६३५ की गर्मियों में दमिश्क ने आत्म-समर्पण किया। तब तक आला कमान खालिद से अबू उबैदा के हाथों में चला गया था। इस परिवर्त्तन के कारण का पता नहीं है। आला कमान हाथों में न रहने के बावजूद खालिद अभी भी मुसलमानों के अभियान में प्रेरक शक्ति था। इसी बीच सम्राट हेराक्लियस ने ऐंटिओक से सीरिया एक नई फौज भेजी ताकि दमिश्क को मुक्त कराया जा सके। यद्यपि अब तक काफी देर हो चुकी थी। अब दमिश्क को मुक्त करा सकना असंभव हो चुका था। पर उस सेना ने हिम्स पर फिर से कब्जा कर लिया। ऐसा लगता है, शरद ऋतु और जाड़े में बैजेन्टाइनों और मुसलमानों के बीच युद्ध-विराम हुआ। इस बीच और पूरब में फारसवालों के साथ लड़ाई चल रही थी। सन् ६३४ में बसंत ऋतु में खालिद के अभियान के बाद बकर जनजाति के एक वंशज मुथन्ना ने हिरा में सर्वोच्च अधिकार ग्रहण कर लिया था। उसी साल जुलाई

३. कार्ल ब्रोकेलमैन "हिस्ट्री ऑव इस्लामिक पीपुल", पृ० ५२।

महीने में अबू बकर की मृत्यु हो गई और मुहाजरीन वर्ग के सबसे ज्यादा शक्तिशाली और सम्मानित सदस्य उमर ने सत्ता सँभाली।

अब अरब प्रायद्वीप अबू बकर के अधीन और खालिद की तलवार के बल पर संयुक्त हो गया था। इसके पहले कि अरब दुनिया को जीतता उसे अपने को जीतना आवश्यक था। इन आंतरिक अभियानों में एक संवेग प्राप्त हुआ जिससे पैग़म्बर की मृत्यु के कुछ ही महीनों के बाद अरब एक हथियारबन्द शिविर में परिवर्त्तित हो गया। उसे अब नये विकास की खोज थी। इन युद्धों में उसने जो नई युद्ध-तकनीक सीखी थी उसे उसका प्रयोग अब किसी नई जगह में करना आवश्यक था। जनजातियों की युद्धप्रिय भावना, जो अब एक नाम-मात्र के सामान्य भ्रातृत्व में एक साथ ले आई गई थी, अपनी स्थिति का अहसास कराने के लिए नये रास्ते ढूँढ़ रही थी।

अबू बकर का मूल्यांकन :

अबू बकर ने इस्लामी इतिहास के बहुत ही नाजुक और संकटपूर्ण दौर में ख़िलाफ़त सँभाली। मुसलमानों को फूट, नकली पैगम्बरों की बढ़ती फसल और विद्रोहों ने शिशु-इस्लाम राज्य का जीवन संकटग्रस्त कर रखा था और साम्राज्य की शांति खतरे में थी। अबू बकर ने मुसलमानों के बीच एकता स्थापित की, नकली पैगम्बरों की शक्ति कुचल दी, घर में विद्रोहों का अन्त किया और बाहर के आक्रमणकारियों को धूल चटा दी। इस तरह उन्होंने इस्लाम की नींव पोख्ता कर दी। पैगम्बर की मृत्यु के बाद जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं और उस संकट की घड़ी में अबू बकर ने इस्लाम की जो सेवा की, उसे देखते हुए उनको ठीक ही इस्लाम का त्राता कहा जा सकता है। उन्होंने न केवल इस्लाम को फूट से बचाया पर "परस्पर युद्धरत जनजातियों का ध्यान आंतरिक उपद्रवों से हटा कर फारस और बैजेन्टाइन साम्राज्य को पराजित करने और समृद्धि प्राप्त करने की ओर लगाया और इस प्रकार इस्लाम को विश्व-धर्म बना दिया।" वे कोई निर्णय शांतिपूर्वक लेते थे। उनमें ऊँचे किस्म की दूरदर्शिता थी। उनका हृदय भद्रता और दयालुता से पूर्ण था। इस प्रकार कुल मिलाकर उनका व्यक्तित्व इस्लाम की सेवा के लिए अत्यधिक उपादेय था।

अबू बकर बराबर पैगम्बर के साथ रहे। भयानक विरोध के बावजूद उन्होंने पैगम्बर के धर्म का पालन किया और इस्लाम के लिए वे कोई भी कष्ट और कठिनाई उठाने को तैयार रहते थे। उनकी ताकत का रहस्य हजरत मुहम्मद में उनका विश्वास था। "मुझे अल्लाह का खलीफा न कहो," अबू बकर ने कहा "मुझे अल्लाह के पैगम्बर का खलीफा कहो।" अबू बकर ने ही सबसे पहले कुरान के पद्यों

का संग्रह एक किताव में किया। वे ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी पूरी सम्पत्ति राष्ट्र के हित में समर्पित कर दी। गरीव और जरूरतमंद के लिए उनका हृदय अत्यन्त सहानुभूति-शील था। पीड़ितों को मदद और निःसहायों की सहायता के लिए वे रातों को सड़क पर घूमते थे। पर इसके साथ ही "उनमें इस्पात का-सा संकल्प और अपने धर्म में अडिग विश्वास था।" नवजात राज्य के प्रशासन और प्रजा के हित में वे अपनी पूरी शक्ति लगाते थे। उनके व्यक्तित्व के मुख्य स्वरूप थे, अपने नये धर्म के प्रति अविचलित निष्ठा, इस्लाम के सिद्धांतों में पूर्ण विश्वास और अत्यन्त सादा जीवन। वे इस्लाम की भावना के मूर्तिमान रूप थे। परिश्रमी, बुद्धिमान, व्यावहारिक और पक्षपातहीन अबू बकर का इस्लाम के इतिहास में अप्रतिम स्थान है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि—"उनके शासन का समय यद्यपि संक्षिप्त था पर हजरत मुहम्मद के वाद उनके प्रति ही इस्लाम धर्म सबसे ज्यादा कृतज्ञ है।"

उमर इब्न-अल-खत्तान : मुस्लिम साम्राज्य के संस्थापक (सन् ६३४-६४४)

अपनी मृत्यु के पहले अबू बकर ने उमर को खलीफा के पद के लिए अपना उत्तराधिकारी चुना और इस चुनाव को जन-सामान्य ने स्वीकृत किया। उमर के बारे में जानने के लिए पूर्व की बातों को जानना जरूरी है। जब सन् ६३२ में जून महीने के एक उमसदार दिन में पैगम्बर मुहम्मद अपनी पत्नी आयशा की झोपड़ी में मरे पड़े थे तो उनका शिशु इस्लाम धर्मावलम्बी सम्प्रदाय अस्त-व्यस्तता की स्थिति में पड़ा हुआ था। तब उनके अनुयायियों में से कुछ पैगम्बर की नश्वरता की स्थिति स्वीकार कर रो रहे थे। कुछ यह मानने को तैयार ही न थे कि पैगम्बर भी मर सकते हैं। कुछ और लोग भौंचक और किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़े थे तथा तय ही न कर पा रहे थे कि क्या किया जाय और क्या सोचा जाय। तब एक कड़कती-सी आवाज ने कहा—"ख़ुदा की कसम, तुम लोगों में जो यह सोचता है कि पैगम्बर मर गए उसके अंग शरीर में से कट कर अलग हो जाएँगे।" यह आवाज थी लंबे-चौड़े, पहलवान के से शरीर और दाढ़ी वाले अधवयस आदमी, उमर इब्न-अल-खत्ताव, की।

खलीफा बनने के पूर्व उनका प्रारम्भिक जीवन और इस्लाम के प्रति सेवा

आदिया वंश के एक प्रसिद्ध कुरैश परिवार में सन् ६१२ में उमर इब्न-अल-खत्ताव का जन्म हुआ था। उनका उपनाम था अबू हफ्स। अपनी बाल्यावस्था में वे एक प्रसिद्ध पहलवान और वक्ता था। वह उन कुछ थोड़े-से आदमियों में से थे जो इस्लाम के आरंभ होने के समय लिख और पढ़ सकते थे। उनका मुख्य धंधा व्यापार था। इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पहले वह हजरत मुहम्मद के मुख्य शत्रुओं में से थे। पर हजरत मुहम्मद द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए

आह्वान के वर्ष में उनमें नया आध्यात्मिक भाव जगा और उन्होंने शीघ्र जाकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। यह पैगम्बर मुहम्मद के लिए बहुत उपयोगी हुआ।

उमर के इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पूर्व अबीसिनिया के लिए प्रथम प्रव्रजन हुआ था अतः उसमें वह कोई भाग न ले सके। पर जब पैगम्बर अपने अनुयायियों के साथ मदीना गये तो उमर भी बीस आदमियों के साथ उनके साथ गये थे। उन्होंने अच्छे और बुरे दिनों, दोनों में ही, हजरत मुहम्मद का साथ दिया। उन्होंने बद्र और उहद की लड़ाइयों में भाग लिया था। खाई की लड़ाई में जब मुसलमान मदीना नगर में घिर गए तो उमर ने बड़ी वीरता दिखाई। वह हुदेबिया की संधि के समय भी मौजूद थे। वह इस संधि को स्वीकार करने के पक्ष में न थे। क्योंकि उनके विचार से यह संधि मुसलमानों के लिए अपमानजनक थी। पर अंत में उन्हें पैगम्बर की इच्छा के समक्ष झुकना पड़ा। पैगम्बर ने उन्हें एक दिव्य संदेश देकर आश्वस्त किया। उमर ने खैबर की लड़ाई में भी हिस्सा लिया। हिजरा सन् के आठवें वर्ष में उन्होंने मक्का की ओर धावे में भी हिस्सा लिया।

अबू बकर पहले उमर के सहयोगी थे और बाद में जब वह खलीफा बने तो, स्वभावतः, उनके प्रधान बन गये। साथ ही वे अबू बकर के कानूनी सलाहकार भी बन गये। उमर को अबू बकर के खिलाफ जलन या द्वेष न था। इतिहास में उल्लेख है कि वह अबू-बकर के खिलाफत में सर्वोच्च न्यायाधीश (काजी) थे। पर इसके अलावा भी उनका प्रभाव बहुत व्यापक था। कहा जाता है कि सर्वप्रथम उन्होंने ही सुझाव दिया कि अल्लाह द्वारा कहे गये वचनों को एक जगह जुटा कर लिखा जाय क्योंकि उनको याद रखने वाले (हुफ्फाज) तत्कालीन युद्धों से तेजी के साथ खत्म होते जा रहे थे। इस पर खलीफा ने आपत्ति करते हुए कहा—"मैं ऐसा किस तरह कर सकता हूँ? जो काम पैगम्बर ने खुद नहीं किया उसे क्या मैं कर सकता हूँ?" हजरत मुहम्मद के लिपिक जैद इब्न थाबित ने भी, जिन पर ही स्वभावतः इस काम की अध्यक्षता करने का भार सौंपा जा सकता था, यही आपत्ति की।

पैगम्बर मुहम्मद के सलाहकारों के बीच भी उमर का स्थान महत्त्वपूर्ण था। कहा जाता है कि इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पूर्व वे शराब पीते थे पर बाद में उन्होंने ही पैगम्बर को सलाह दी कि शराब पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। कहा जाता है कि उन्होंने काबा के निकट स्थल के चुनाव के लिए सिफारिश की थी जहाँ परंपरा (हदीस) के अनुसार, अब्राहम ने एक मस्जिद बनाई जाने के लिए प्रार्थना की थी। सार्वजनिक प्रार्थना के लिए आह्वान में ईसाई और यहूदी बाजे या आवाज करने के किसी अन्य यंत्र का प्रयोग करते थे, पर उमर ने सुझाव दिया कि किसी आदमी द्वारा अजान देकर लोगों को प्रार्थना के लिए बुलाया जाय। उनकी यह बात मान ली गई

पर अन्य मामलों में उनका विचार न माना गया । वह म्यान से तलवार निकालने के लिए बराबर तैयार रहते थे । उन्होंने बद्र की लड़ाई के बाद सुझाव दिया कि सभी बंदियों के सर काट दिए जायँ । बाद में, जब विजय के बाद, हजरत मुहम्मद ने मक्का में प्रवेश किया तो उमर ने सुझाव दिया कि वहाँ के प्रमुख नागरिक अबू सूफयान को, जो भावी खलीफा मुअविया के पिता थे, मौत की सजा दी जाय। पैगम्बर ने उमर को फारूक (सच और झूठ के बीच भेद करने वाला) की उपाधि दी थी जिससे पता चलता है कि उनका कितना आदर किया जाता था। पैगम्बर के इन दो वचनों को इसका आधार-स्रोत माना जाता है, "अल्लाह ने उमर की जीभ और हृदय में सच्चाई रख दी है ।" और "अगर अल्लाह ने मेरे बाद कोई पैगम्बर भेजा होता तो वह यही (उमर ही) होता ।" उसके बाद आज तक न जाने कितने ही लोगों का नाम फारूक रखा जाता रहा है। मिस्र के अंतिम बादशाह का भी नाम फारूक था ।

उमर अपने पूर्ववर्त्ती खलीफा अबू बकर और अपने बाद होने वाले एक अन्य खलीफा अली की भाँति इस्लाम धर्म अपनाने वाले सर्वप्रथम व्यक्तियों में से न थे। दरअसल इस्लाम धर्म अपनानेवालों की उनकी संख्या पैंतालिसवीं थी। बहुत दिनों तक वे पैगम्बर के कट्टर विरोधियों में थे। पर जब एक बार उन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया तो उसके प्रति उनकी वही कट्टर निष्ठा हो गई जैसी कि पहले उसके प्रति घृणा थी। इस्लाम अपनाने के पूर्व उमर द्वारा प्रताड़ित उसकी इस्लाम धर्माव-लंबिनी दास कन्या थी जिसे उन्होंने चाबुकें लगाई थीं। वह जब बेहोश हो जाती तो वे चाबुक लेकर उसके होश में आने का इन्तजार करते और होश में आते ही उसे फिर चाबुक से मारते। उनके द्वारा प्रताड़ित दूसरा व्यक्ति उनकी बहन थी। सन् ६१६ में एक संयोगपूर्ण दिन को जब हजरत मुहम्मद को उनके थोड़े-से अनुयायियों के साथ बंदी बना लिया गया और उनके सभी नगरवासी उनका बहिष्कार कर रहे थे तो उमर अपनी आँखों को आग जैसा लाल-लाल किये और हाथ में तलवार लिए उनके अनुयायियों सहित उन पर हमला करने के लिए तैयार थे। तब बंदीगृह के दरवान ने यह आश्चर्यपूर्ण उक्ति कही—"तुम पहले अपनी बहन और बहनोई को मारना शुरू क्यों नहीं करते ?" उमर लौट आये और जब अपनी बहन के घर में घुसे तो देखा कि वह अपने पास कोई चीज छिपाये हुए है। उन्होंने अन्दाज लगाया कि वह नये धर्म के बारे में लिखी कोई चीज छिपा रही है। इसलिए उमर ने अपनी बहन और बहनोई दोनों पर हमला किया। जब प्रहार से बहन के चेहरे से खून बहने लगा तो उसने चीख कर कहा—"चाहे तुम जो कुछ भी करो, इस्लाम हम दोनों के हृदयों से न जाएगा।" यह कहते हुए उसने उमर को वह कागज का टुकड़ा दिया जिसे वह छिपाने की कोशिश कर रही थी। टुकड़े पर लिखा हुआ था—

"जिसने यह पृथ्वी बनाई और यह बहुत ऊँचा आसमान बनाया और जो दयालु और करुणापूर्ण तथा सिंहासन पर आरूढ़ है उसके द्वारा रहस्योद्घाटन। जो कुछ आसमान में है और जो कुछ पृथ्वी पर है और जो कुछ उन दोनों के बीच में है तथा जो तृणभूमि के नीचे है वह उसी सर्जनहार का है.........। स्पष्ट रूप से मैं अल्लाह हूँ। मेरे सिवा और कहीं, कोई भी अल्लाह नहीं है। इसलिए मेरी सेवा करो......।"

और अब काफी हो चुका था। उमर अब दूसरे व्यक्ति थे, बिल्कुल परिवर्तित। अब वे लौट कर पैगम्बर के दरवाजे पर आये। भीतर से एक आवाज आई—"उसे अन्दर आने दो, वह शांति के लिए कृतसंकल्प है और शांति उसे मिलेगी और अगर वह अब भी हत्या करने को तैयार है तो उसकी ही तलवार से उसकी हत्या होगी।" नये धर्मावलम्बी (उमर) शांति की तलाश में थे और शांति उन्हें मिली भी। उसके बाद उमर का नया विक्षुब्ध और उथल-पुथल से भरा जीवन शुरू हुआ जिसका अनुभव किसी भी अरबवासी ने न किया होगा।

यदि हजरत मुहम्मद के बाद इस्लाम में सबसे बड़े व्यक्तित्व उमर के, जैसा कि इब्न हिसाम और इब्न सैद ने अपने ग्रन्थ "अल-तबकात" में और अन्य प्रारम्भिक इस्लामी इतिहासकारों ने भी कहा है, इस्लाम अपनाने की इस कहानी के नाटकीय तत्वों को छाँट दिया जाय तो इतनी बात तो साफ और निर्विवाद है कि वे आवेगशील और क्रोधी स्वभाव के थे। उन्होंने जिस तरह विरोधी धर्म छोड़ कर इस्लाम धर्म अपनाया उससे उन्हें "इस्लाम के सन्त पाल" की उपाधि दी जाती है, पर दोनों के बीच उपमा यहीं खत्म हो जाती है। दोनों ने अपने-अपने धर्म के प्रसार में जो तरीके अपनाये उनके बीच मौलिक मतभेद थे। वास्तव में अपने तटस्थ स्वभाव के कारण इस्लामी सन्त से ईसाई धर्म के सन्त पीटर्स की अधिक याद आती है।

यहाँ इस बात की चर्चा रोचक होगी कि हजरत मुहम्मद की निन्दा करने में उमर ने कुरान के ही छिटपुट अंशों को प्रस्तुत किया। ऐसा वह हजरत मुहम्मद द्वारा उपदेश दिये गये धर्म के विपरीत एक नकली धर्म के रूप में करते थे। उमर को जनजातीय एकता, जो हर अरब को प्रिय थी और जिसे राष्ट्रीयता का तत्कालीन अथवा पूर्व रूप कहा जा सकता है, बहुत प्रिय थी। वह अन्य जनजातियों में चाहे वह मैत्रीपूर्ण हो या विरोधी, अपनी जनजाति के दूत का काम करते थे। उनकी विशेषताएँ दो थीं, एक तो उसकी वक्तृत्व शक्ति और दूसरी सुपुष्ट, पहलवानों के जैसी देह। उकाज के वार्षिक मेले में उन्होंने अपनी इन दोनों विशेषताओं का विकास किया था। अपनी जवानी में वे अक्सर इन मेलों में जाते होंगे। उन्हें काव्यात्मक और व्याख्यानात्मक रचनाओं में खास दिलचस्पी थी। वे जो कुछ सुनते

होंगे उसे याद कर लेते होंगे। उमर के बाद के भाषणों और पत्र-व्यवहारों में उनकी भाषा संक्षिप्त, तीक्ष्ण, लयबद्ध और तुकान्तयुक्त वाक्यों वाली होती थीं। यह उकाज मेले के शैलीगत प्रभाव और कुरान के प्रभाव का मिला-जुला रूप था। उनकी चाबुक उतनी ही प्रभावशाली थी जितनी कि उनकी जीभ या कलम। इस कारण यह कहावत चल पड़ी—"उमर की चाबुक उतनी ही कष्टप्रद है जितनी कि उनकी तलवार।" उकाज मेले में उमर के लिए दूसरा आकर्षण था वहाँ होने वाली पहलवानी। कुश्तियों में भी वे भाग लेते थे। कम-से-कम एक अवसर पर उन्होंने एक वद्दू पहलवान को पछाड़ दिया। बताया जाता है कि वे एक बिल्कुल स्वतंत्र छोड़े गए रेस के घोड़े पर चढ़ जाते थे और उसकी पीठ पर सीधे खड़े भी हो जाते थे। मक्का की गायिकाएँ अपने नगर के व्यक्ति (उमर) की बहादुरी की वाह-वाही करतीं और उनकी प्रशंसा के गीत गातीं। जब उमर ने इन सब कामों में भाग लेना बन्द कर दिया तो उन गायिकाओं से कहा गया कि अब वे एक व्यापारी (ताजिर) बन गए हैं और अपने परिवार के पालन-पोषण में लग गये हैं।

इस बात का जिक्र पहले ही किया जा चुका है कि मक्का एक व्यापारी गणतंत्र था। उमर खुद अनाज का व्यापार करते थे। उनको ऊँटों के कारवाँ के व्यापार में भी, जिसका केन्द्र उनका नगर था, दिलचस्पी थी। बाद के इतिहासकार अल मसूदी ने अपनी पुस्तक "मुर-उज अल-धहाब" में यह लिखा है कि उमर सीरिया और फारस भी गये थे। पर यह विश्वसनीय नहीं मालूम पड़ता। व्यापार-वाणिज्य के लिए लिखने-पढ़ने की जानकारी होनी चाहिए। उमर लिखना-पढ़ना जानने वाले प्रथम १७ कुरेशियों में से थे।

मुस्लिम इतिहासकार और जीवनी-लेखक घरेलू मामलों को बहुत महत्त्व नहीं देते। उमर के बारे में जो छिटपुट विवरण मिलते हैं उनसे प्रकट होता है कि इस्लाम धर्म अपनाने के पहले उन्हें चार या पाँच पत्नियाँ थीं। उनकी एक पत्नी आसिया (विद्रोहिणी) ने अपना नाम बदल कर जमीला (खूबसूरत) रख लिया। इनमें से कुछ विवाह राजनीतिक थे। उनकी एक पत्नी अतीका ने जीवन के अंतिम दिन तक उनका साथ दिया। उनकी मृत्यु के बाद उसने एक शोक-गीत लिखा जो अभी भी एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

उमर को नौ लड़के और चार लड़कियाँ हुईं। उनकी एक लड़की हाफशा अपने भाई-बहनों में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध हुई। हजरत मुहम्मद ने हिजरा के तीसरे वर्ष में उससे विवाह किया। विवाह के सम्बन्ध में जो झगड़े उमर के पास विचारार्थ आये उनमें एक को छोड़ और सभी में उन्होंने पति के पक्ष में ही निर्णय दिया। एक पति और पिता के रूप में उमर ने अपने किसी कार्य को उन भारी कर्त्तव्यों और

जिम्मेदारियों के निष्पादन में बाधक न बनने दिया जो मुस्लिम राज्य के प्रधान के रूप में उन्हें करने पड़े।

जब पहले हजरत मुहम्मद और उनके बाद अबू बकर मंच से हटे तो फिर इस्लाम के दो प्रमुख अभिनेता उमर और खालिद इब्न-अल-वलीद बचे रहे। खलीफा बनाये जाने के बाद उमर ने अपने प्रारम्भिक भाषण में कहा—

"ओ तुम सब लोगों, याद रखो कि मुझे तुम पर शासन करने का अधिकार इसलिए दिया गया है कि तुम सब में मैं सबसे ज्यादा योग्य, सबसे ज्यादा मजबूत और शासन के सामान्य कार्य चलाने में सबसे ज्यादा निपुण हूँ।"

बाद में लगता है कि पुनः सोचने के बाद उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की—"ओ अल्लाह, मैं कड़ा और रूखा हूँ, मुझे कोमल बनाओ। मैं शक्तिहीन हूँ, मुझे शक्ति दो। मैं कृपण हूँ, मुझे उदार बनाओ।" उमर के इन प्रारम्भिक वचनों से हमें उनके जीवन की गति का पता चलता है। उन्हें तीन चीजों में निष्ठा थी, अल्लाह, पैगम्बर मुहम्मद और अपने में। अपने प्रति उनको निष्ठा इस कारण थी कि वह वीर और बुद्धिमान थे, अल्लाह के प्रति इस कारण थी कि उन्होंने इस्लाम धर्म अपनाया था और हजरत मुहम्मद के प्रति इस कारण कि उन्होंने उन्हें अल्लाह के पैगम्बर के रूप में स्वीकार किया था। पर जब अल्लाह के प्रति उनकी निष्ठा शुरू हुई तो अपने प्रति निष्ठा खत्म हो गई।

उमर के अधीन इस्लाम का विस्तार

उमर जब खलीफा के पद पर आसीन हुए तो इस्लाम को अपार लाभ हुआ और उसकी विजय और विस्तार हुआ। वह मजबूत नैतिकता से पूर्ण, विलक्षण न्याय-भावना वाले व्यक्ति थे। उनमें अपार शक्ति और चारित्रिक सुदृढ़ता थी। अबू बकर की मृत्यु के बाद उमर ने खलीफा का पद संभाला और शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती शासक की सीमानीति अपने सहज उत्साह और शक्ति के साथ आगे बढ़ाई। बहुत ही थोड़ी अवधि में वह फारस और रोम के विशाल साम्राज्यों को इस्लाम के झण्डे के तले ले आये।

उमर के सत्तारूढ़ होने के समय अरब के लोगों का मुख्य काम लड़ाई थी। अब वे विदेशी भूमि पर यह लड़ाई लड़ रहे थे, उनकी अपनी भूमि पर, नाम मात्र को ही सही, शांति थी। इस्लाम के झण्डे तले अबू बकर के शासन में खालिद की तलवार के सहारे अब अरब एकताबद्ध हो गये थे। अरब प्रायद्वीप में कुछ गैर-मुस्लिम क्षेत्र अभी भी थे। अपने पूर्ववर्ती शासक (अबू बकर) की राष्ट्रीय नीति के अनुरूप उमर ने नजरान से ईसाइयों को निकाल दिया। उनको मुआवजा दिया गया और सीरिया जाने की अनुमति भी।

खलीफा उमर ने तकीफ जनजाति के अबू उबैयद के अधीन बेबीलोनिया में सेना भेजी। पर फारसी लोग आक्रमणकर्त्ताओं से अपने को बचाने के लिए तैयारियाँ कर रहे थे। हिरा के नजदीक दूसरा अन-नतीफ में मुसलमानों के खिलाफ एक फ़ारसी सेना आई। अबू उबैयद ने जलपोतों का एक पुल बना कर यूफ़्रेट्स नदी पार की और फारसी फौज का मुकाबला किया। पर लड़ाई में अबू उबैयद पराजित हुआ और मारा गया। चूंकि अति-उत्साही मुसलमान सैनिकों ने यूफ़्रेट्स नदी पर बनाए गए जलपोतों के पुल को अंशतः भंग कर दिया था इसलिए मुथना इब्न-हरीथ को भागती हुई मुस्लिम फौज को वापस लाने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। फारस साम्राज्य की मतभेदग्रस्त आंतरिक स्थिति के कारण वे लोग अपनी इस सफलता का अपने लिए अच्छा उपयोग न कर सके। अपनी इस प्रथम पराजय के कारण बैबीलोनिया के युद्ध-मंच में उमर की पूरी दिलचस्पी समाप्त हो गई।

इराक और फारस (ईरान) की विजय

अबू बकर की खिलाफत के समय (सन् ६३३) में हिरा की पराजय से फारस सरकार की आँखें खुल गईं और वह खतरे को समझ गई। उसके दरवाजे पर अब एक नया और उगता राष्ट्र था, जो धार्मिक उत्साह के रूप में परिवर्त्तित राष्ट्रीय भावना से जीवन्त था। इस बीच फारस प्रत्याक्रमण की तैयारी कर रहा था। उसे सन् ६३४ की २६ नवम्बर को हिरा के निकट पुल की लड़ाई में अरब सैनिकों के एक दस्ते को पराजित करने में सफलता भी मिल गई थी। अगले वर्ष फारस सरकार पुनः अरबों पर हमले के लिए बढ़ी। मुथना, जो पुल की लड़ाई में पराजित मुस्लिम सैनिकों को अरब वापस ले आया था, यूफ़्रेट्स नदी की एक पश्चिमी नहर की दूसरी ओर बुवायद में फारसी सैनिकों का इन्तजार कर रहा था। वहाँ भीषण और बहादुरी से भरे प्रतिरोध के बावजूद मिहरान के सेनापतित्व में फारसियों की पराजय हुई। इसके बाद फारस पर हमले में मुस्लिम सैनिक देश के काफी भीतर तक चले जाते थे। सन् ६३५ की गर्मियों में फारसी सैनिकों ने आखिरी और निर्णायक हमले का प्रयास किया। इस बीच मुथना की मृत्यु हो गई थी और उसका स्थान पैगम्बर मुहम्मद के सबसे पुराने और वफादार सेनापति सैद इब्न-अबी-वक्कास ने ले लिया था। बद्र की लड़ाई की समाप्ति पर हजरत मुहम्मद ने उससे बिहिश्त (स्वर्ग) जाने का वायदा किया था। दूसरी ओर फारसी सैनिकों का सेना-पतित्व शाही सेनापति रुस्तम कर रहा था। सैद ने समय बिल्कुल न खोया। वह हिरा से पड़ोस में अल-कादिसिया बढ़ा जो फारस का प्रवेश द्वार समझा जाता था। वहाँ सन् ६३७ के वसंत ऋतु में फ़ारस के सैनिकों से पहली मुठभेड़ हुई। अपनी छः हज़ार सेना के साथ सैद ने पहली बार रुस्तम से, जो अल-कादिसिया में फारस साम्राज्य का प्रशासक था, पहली बार मुकाबला किया। सैद के मुकाबले रुस्तम के

अधीन ६ गुने सैनिक थे। चूंकि फारस के संबंध में यह सोचा न जा सकता था कि वह संयुक्त हो कर एक कमान के नीचे काम करेगा और दूसरी ओर अरब भी भिन्न-भिन्न जनजातियों के अधीन लड़ रहे थे, अतः दोनों पक्षों के बीच कई मुठभेड़ें अलग-अलग हुईं। युद्ध में हाथी भी प्रकट हुए जो प्रथम विश्व-युद्ध में टैंकों के प्रकट होने के जैसा एक अजूबा वाकया था। अरबों के विचार के अनुसार हाथी दैत्याकार जीव थे जो झण्डों से सजे हुए चलते-फिरते महलों जैसे लगते थे और महावतों से संचालित होते थे। इस लड़ाई में वन्दी बनाये गए एक फारसी सैनिक ने ठीक ही सलाह दी कि—'सेना के आगे-आगे चलने वाले सफेद हाथी पर प्रहार करो और उसकी आँखों को लक्ष्य बनाते हुए तीर चलाओ। इससे फौज भौंचक रह जाती है और भाग खड़ी होती है।" लड़ाई के दौरान जल्द ही रुस्तम पकड़ा गया और उसकी हत्या कर दी गई। उसकी फौज में घबड़ाहट फैल गई और वह तितर-वितर होकर भाग खड़ी हुई। और अब टिगरिस (दिजलाह) के, पश्चिम उपजाऊ निचली भूमि खलीफा उमर इब्न-अल-खत्ताब के अधीन थी।

जो कुछ भी हो, फारस की बड़ी करारी हार हुई। पर मुसलमानों की हालत भी कुछ बहुत अच्छी न थी। उन लोगों को आश्वासन दिया गया था कि लड़ाई के दौरान सीरिया से कुमुक पहुँचेगी जो नहीं पहुँच पाई। मुसलमानों को भी काफी क्षति पहुँची। हारा हुआ दुश्मन, विना कुछ विशेष क्षति के भाग सका और इसमें वे उसे वाधा न पहुँचा सके।

रुस्तम की मृत्यु के वाद फारसी सैनिक बुरी तरह भाग खड़े हुए। कादिसिया की लड़ाई केवल इस्लाम के ही नहीं, विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इससे फारस की शक्ति पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई और वहाँ इस्लाम को पैर जमाने का अच्छा अवसर मिला।

कादिसिया की निर्णायक जीत और टिगरिस के सफलतापूर्वक पार किये जाने की खबर फारस की राजधानी टेसीफोन[४] में पहुँची तो वहाँ लोगों का दिल दहल उठा। फारसियों ने अपने पिछवाड़े की रक्षा के लिए दो वार और मामूली-सी फौजी कार्रवाइयाँ कीं पर अंत में उन्हें वेवीलोन छोड़ देना पड़ा। फारस की राजधानी में अरबों ने सन् ६३७ के जून महीने में सैद के सेनापतित्व के अधीन प्रवेश किया। इस प्रकार निनेवेह और वेवीलोन के उत्तराधिकारी तथा कान्स्टेन्टीनोपुल के प्रतिद्वन्द्वी

---

४. अरबी शब्द "अल मदाइन" जिनका तात्पर्य बगदाद के उत्तर-पश्चिम से प्रायः २० मील दूर टिगरिस के दोनों ओर के नगर से था जिनमें सेल्यूसिया और टेसीफोन भी शामिल थे।

पश्चिमी एशिया के सबसे अभिमानी नगर का पतन हुआ। उस दिन को सैन्य प्रवृत्ति वाले इस्लाम के लंबे इतिहास में सर्वाधिक गौरवपूर्ण माना जाता है। अरबों ने उस दिन जितना माल लूटा [जिसके बारे में परम्परा (हदीस) में सभी तरह की आश्चर्य-जनक बातें कही गई हैं] उससे अरबों का मनोबल काफी ऊँचा हुआ। यह बात उस समय देखी गई जब युद्ध में मारे गए सैनिकों के स्थान की पूर्ति के लिए नये लोगों की बहाली का प्रश्न आया। उस दिन लूटे गए बेशकीमती माल को देखकर रेगिस्तान के योद्धाओं की आँखें चौंधिया गईं और फारस के धन के बारे में लोगों की कल्पना ने धमाचौकड़ी मचाई। उस कल्पना के कारण जो बातें कही गईं उनको बड़े-से-बड़े अरब-इतिहासकार, मिसाल के तौर पर अल-तबारी ने भी स्वीकार किया है। यद्यपि उस समय जोड़-घटाव के लिए कम्प्यूटर नहीं था पर लोगों का दावा है कि लूट के माल में ९० करोड़ चाँदी के सिक्के थे। साथ ही लूट में बेशकीमती कढ़ाई की गई सिल्क, सोने के घड़े और सोने के ही रसोईघर के और बर्त्तन, हीरे के किनारियों वाली कुर्सियाँ और मूल्यवान सोफा-सेट थे।

फारसी पीछे हटकर हलवान चले गए जो टेसीफोन (अल-मदाइन) के उत्तर में सौ मिल पर स्थित है। अपना साम्राज्य वापस पाने की फारसियों को अभी भी आशा थी। फारसी राजा येजदेगर्द ने अपनी शाही सेना के ध्वंसावशेष- को फिर जुटाया और कुछ और सैनिक भर्ती किए। तब फारसी, टेसीफोन के ऊपर टिगरिस नदी में गिरने वाली दियाला नदी की घाटी में धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। सैद ने अपने भतीजे को बारह हजार फौजों के साथ उनका मुकाबला करने के लिए भेजा। सन् ६३७ के अंत में सैद के भतीजे ने उनको जालुला में पराजित किया जो दियाला नदी के दायें किनारे पर स्थित है। हलवान पर भी कब्जा कर लिया गया और वहाँ मुसलमान फौजें बहुत बड़ी संख्या में पहरेदारी के लिए ठहर गईं। फारसी राजा से युद्धविराम संधि कर ली गई और कुछ महीनों तक दोनों पक्षों के बीच शांति रही। पर फारसियों ने सन् ६३८ में शांति-संधि भंग कर दी। फलतः मुस-लमान उनसे फिर युद्ध के लिए बाध्य हुए। अरब सैनिक सन् ६४१ में प्राचीन निनेवा के स्थल के निकट अल मवाइल (मोसुल) पहुँचे और उस पर कब्जा कर लिया। फिर भी उसी साल निहावंद में अंतिम, और विशाल युद्ध हुआ जिसमें फारसी राजा येजदेगर्द की फौज की बची-खुची ताकत को चकनाचूर कर दिया गया। इस युद्ध से एशिया के भाग्य ने पलटा खाया जिस कारण इसमें विजय को लामिसाल माना जाता है। फारसी फौजों की संख्या अरब सैनिकों के मुकाबले सत-गुनी थी पर उनको धूल चटा दी गई। उनको अपार क्षति हुई। सन् ६४० में खुजि-स्तान (प्राचीन एलाम, बाद का सुसियाना और आधुनिक अरबिस्तान) पर बसरा और कूफा से सैनिकों ने आकर कब्जा किया। इस बीच निकटवर्त्ती क्षेत्र फारस

खाड़ी के पूर्वी किनारे पर स्थित पार्स (फारिस, खास फारस)[५] पर वहरैन से, हमले की कोशिश की गई। बसरा और कूफा के बाद वहरैन तीसरा सैनिक अड्डा वन गया जहाँ से अरब ईरान पर हमला करते थे। फारिस के बाद उत्तर-पूर्व में महान और सुदूर प्रान्त खुरासान की पारी आई। उसके बाद ऑक्सस तक रास्ता खुला हुआ था। सन् ६४३ में बलूचिस्तान के समुद्र तटवर्ती क्षेत्र मकरान पर कब्जा किया गया और इस प्रकार अरब भारत की सीमा पर पहुँच गए।

इस प्रकार फारस मुस्लिम आधिपत्य के अधीन आ गया और वहाँ इस्लाम धर्म का बोलवाला हो गया।

फारस पर विजय का प्रभाव

इस प्रकार एक के बाद दूसरे फारस की पराजय होती गई। सन् ६५१ में उसके अभागे भगोड़े सम्राट की, उसके अपने एक आदमी ने लोभ में आकर मर्व में हत्या कर दी। उसकी मृत्यु से बारह सौ वर्ष पुराने साम्राज्य का अंत हो गया। फारस पर कब्जे के वाद इस्लाम नये मानव-समुदायों के सम्पर्क में आया। ये लोग इंडो-इरानी थे और अरवों के मुकावले यूनानियों और रोमनों के अधिक निकट थे। वे लोग अन्य-स्त्रोतीय भाषा वोलते थे और व्यावहारिक रूप से एक विचित्र धर्म जरथुस्त धर्म को मानते थे। फारस पर पूरी तरह विजय में अरबों को दस वर्ष का समय लग गया। यहाँ मुसलमानों को जितने प्रतिरोध का सामना करना पड़ा उतना सीरिया में न करना पड़ा था। इस विजय अभियान में ३५,०००—४०,००० अरबों ने भाग लिया होगा जिनमें महिलायें, बच्चे और दास भी शामिल थे। फारसी लोग सामी नहीं, आर्य थे। वे सदियों से एक पृथक् राष्ट्रीय अस्तित्व रखते आये थे। उनकी सैनिक शक्ति और उसका संगठन भी अच्छा था। वे रोमवासियों से चार सौ साल से अधिक समय से लड़ते आये थे। फारस में अरबों के तीन शताब्दियों के शासन के बाद अरब भाषा राजभाषा एवं सुसंस्कृत समाज की भाषा बन गई थी। कुछ हद तक सामान्य बोलचाल और प्रयोग में भी उसका इस्तेमाल होने लगा था। पर पराजित राष्ट्र की पुरानी भावना फिर जोर मारने लगी थी और वह कोशिश करने लगा था कि उसकी उपेक्षित भाषा को पुनः उचित स्थान मिले। फारस ने कारमेथिआई आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसने अनेक खिलाफत शासन की जड़ हिला दी थी। फारस ने शिया समुदाय के विकास और मिस्र पर दो सौ

५. फारसी अपने देश को ईरान कहते थे जिसका दक्षिणी हिस्सा पार्स था। यह वहाँ के सबसे बड़े राजवंशों एकेमेनिड और ससानिड का घर था। यूनानियों ने पुराने पार्स को बदल कर पर्सा या परसीस कर दिया और इस नाम का प्रयोग पूरे राज्य के लिए करने लगे।

वर्षों तक शासन करने वाले फातिमिद राजवंश की स्थापना में भी योगदान किया था। फारस की कला, साहित्य, दर्शन और चिकित्सा-विज्ञान अरब जगत की सामान्य सम्पदा बन गए और उन्होंने विजेता अरबों का हृदय जीत लिया। फारस पर अरबों के प्रथम तीन सौ वर्षों के शासन में इस्लाम धर्म अपनाये हुए फारसियों में से कुछ इस्लाम के साहित्यिक और बौद्धिक क्षितिज के ज्वाजल्यमान नक्षत्र बन गए।

बैजेन्टाइनों से युद्ध : उसके कारण

इस्लाम धर्म के आरंभ में मुस्लिम और बैजेन्टाइन साम्राज्यों के बीच सम्बन्ध बड़े अच्छे थे। बैजेन्टाइन साम्राज्य यानी पूर्वी रोमन साम्राज्य के अधीन सीरिया, फिलस्तीन और मिस्र थे। जब पैगम्बर मुहम्मद के जीवन-काल में रोमन सम्राट हेराक्लियस के दरबार में मुस्लिम दूत गया तो उसने उसका बड़े सम्मान के साथ स्वागत किया। पर बाद में दोनों साम्राज्यों के बीच सम्बन्ध ठंढे होने लगे। जब पैगम्बर मुहम्मद का दूत बसरा के राजा से मिलने जा रहा था तो सीरिया के बनू हसन स्थान के ईसाई राजा ने मुता में उसकी हत्या कर दी। तब सीरिया पर आक्रमण किया गया ताकि मुस्लिम दूत की हत्या का बदला लिया जाय। इस प्रकार मुसलमानों और बैजेन्टाइनों के बीच शत्रुता बढ़ी।

अबू बकर के खलीफा पद पर रहने की अवधि में कुछ कारणों से मुसलमानों और बैजेन्टाइनों के बीच सम्बन्ध अच्छे न थे। उनके सत्तारूढ़ होने के तुरंत बाद सारासेनियों (अरबों) और बैजेन्टाइनों के बीच झगड़ा शुरू हुआ। मेसोपोटामिया और चाल्डीया के पश्चिम का पूरा क्षेत्र पूर्वी रोमन साम्राज्य (बैजेन्टाइन) के अधीन था। सम्राट हेराक्लियस ने मुसलमानों के विरुद्ध बद्दूओं को भड़काया जिससे उन पर (सम्राट पर) खलीफा बिगड़ गए। इसके परिणामस्वरूप अज्नदेन का युद्ध हुआ जिस का जिक्र इस अध्याय में किया जा चुका है। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के तुरंत बाद जो अरब जनजातियां सीरिया और फिलस्तीन की सीमा पर रहती थी वे अरब में अपने सम्बन्धियों को मदद करती थीं। तब मुस्लिम क्षेत्र पर बार-बार हमले से अरब जनता को काफी कष्ट और मुसीबत का सामना करना पड़ता था। फलतः मुसलमानों और बैजेन्टाइनों के बीच सम्बन्धों में तनाव बढ़ता गया।

अलावे, अन्य कारण भी थे जिनकी वजह से दोनों साम्राज्यों के बीच मतभेदों की खाई और चौड़ी हुई। अरब रेगिस्तानी भूमि है, इसलिए जैसा कि ऊपर कई प्रसंगों में कहा गया है, इस जगह के निवासियों को सम्पत्ति की खोज में अरब के बाहर जाना पड़ा। यही नहीं, बैजेन्टाइन साम्राज्य अपनी समृद्धि और रहन-सहन के ऊँचे स्तर के लिए प्रसिद्ध था, अतः मुसलमानों की निगाहें उस ओर गईं। साथ

ही रणनीतिक दृष्टिकोण से बैजेन्टाइन साम्राज्य की स्थिति ऐसी थी कि मुसलमानों को इस्लाम की रक्षा और हिफाजत के लिए उस पर कब्जा करना जरूरी था। इस कारण मुसलमानों और बैजेन्टाइन साम्राज्य के बीच झगड़े हुए। मुसलमानों और रोमनों के बीच सम्बन्ध अच्छे कभी न थे। यारमुक की लड़ाई में रोमनों की पराजय के बाद मुसलमानों के साथ उनके सम्बन्ध सुधरने लगे। जब जेरूसलेम पर घेरा डाला गया तो वहाँ के नागरिकों ने खलीफा के साथ सन्धि कर ली। जेरूसलेम की सन्धि के बाद मुसलमानों और रोमनों के बीच सम्बन्ध अच्छे हो गए। उसके बाद मुसलमानों और बैजेन्टाइनों के बीच बराबर शत्रुता का सम्बन्ध रहा। पर जब मुसलमान किसी देश पर कब्जा कर लेते थे तो बैजेन्टाइन उनसे मेल करने का रूप अपनाते थे। जब बैजेन्टाइन साम्राज्य पर इस्लाम का कब्जा हो गया तो उन लोगों के साथ मुसलमानों ने न सिर्फ मित्रता का रुख अपनाया बल्कि उनके हालात सुधारने की हर कोशिश की। बैजेन्टाइनों के साथ दया और न्याय का व्यवहार किया गया। मुसलमानों के अधीन उन्होंने जो शांति और स्थिरता का युग विताया वैसा उन्होंने कभी न विताया था।

सीरिया की विजय और यारमुक का निर्णायक युद्ध

जब अबू बकर अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े थे तो मुसलमानों ने सीरिया की सीमा पर रोमनों को हराया। उसके बाद खालिद बिन वलीद ने एक के बाद एक दमिश्क, आरदान और हिम्स को इस्लामी राज्य में मिलाया। इन तीन नगरों के पतन के कारण हेराक्लियस क्रुद्ध हो गया। सन् ६३६ में बैजेन्टाइन के शासक सम्राट हेराक्लियस ने अरबों के विरुद्ध अभियान फिर आरंभ किया। उसने अपने भाई सासेलेरिस (फौज का महान नियंत्रक) थोडोरस के अधीन ५०,००० फौज तैयार की और अरबों के विरुद्ध निर्णायक हमले के प्रयास में लग गया। बैजेन्टाइन फौज में आर्मेनियाई, सीरियन और भाड़े के अन्य अनेक सैनिक थे। बैजेन्टाइनो की राजधानी कान्स्टैंटीनोपुल के प्रति इन लोगों की गहरी वफादारी न थी। फलतः उनमें विजय का संकल्प न था। वह संकल्प दूसरे पक्ष में था। इस्लाम ने वायदा कर रखा था कि जो भी सैनिक युद्धस्थल में मारा जाता है उसे विशेष अधिकारों के साथ बिहिश्त मिलता है। २० अगस्त सन् ६३६ के गर्म दिन में जोर्डन नदी की पूर्वी सहायक नदी यारमुक के किनारे पर दोनों पक्षों की फौजें मुकाबले के लिए एक दूसरे के सामने खड़ी थीं। अरब फौज (यदि उसे इस नाम से पुकारा जाय) २५००० थी यानी बैजेन्टाइन फौज की आधी। फिर भी उन लोगों ने थियोडोरस की फौज को करारी हार दी। उस फौज में करीब आधी संख्या आर्मेनियाइयों की थी जिन्हें बैजन्टाइनों के विरुद्ध शिकायत थी, इसलिए वे लड़ने को तैयार न थीं। विजय के उल्लास में वे लोग उत्तर की ओर बढ़े और हिम्स पर

दुबारा कब्जा किया। फिर तो शेष सीरिया पर कब्जे का रास्ता खुल गया। और तब बढ़ते हुए मुस्लिम साम्राज्य में एक देश और जुड़ गया। सीरिया पर कब्जे से मिस्र और आर्मेनिया पर और जीतें हासिल करना संभव हो सका। मुसलमानों के शत्रु पक्ष की फौज के साथ पुरोहित चलते थे और वे अपने मंत्र पढ़ते जाते थे। उन लोगों के मंत्र के मुकाबले मुसलमानों का "अल्ला हो-अकबर" (अल्लाह सबसे बड़ा है) ज्यादा प्रभावकारी हुआ। पराजित फौज में जो लोग निर्ममतापूर्ण हत्या से बच गए उनको निर्दयतापूर्वक नदी में फेंक दिया गया। इस प्रकार बहुत ही कम लोग बच पाए। तब सीरिया के, जो बैजेन्टाइन साम्राज्य का सबसे अच्छा प्रान्त था, भाग्य का बँटवारा हो गया। ऐंटिओक में अपने सदर मुकाम में सम्राट हेराक्लियस ने इस तथ्य को समझ लिया। उसने बहुत बड़ी फौज जुटाई थी और उस पर पूरी आशाएँ लगा रखी थीं, पर सब कुछ व्यर्थ सिद्ध हुआ। "विदा, विदा, ओ सीरिया," अंत में सम्राट ने यही कहा, "शत्रु के लिए यह कितना अच्छा नगर है।"

यारमुक की लड़ाई सीरिया के इतिहास में एक मोड़ सिद्ध हुई। इस लड़ाई में रोमनों की शक्ति बराबर के लिए कुचल दी गई। कुछ लोगों ने इस्लाम धर्म अपना लिया। जिन लोगों ने नहीं अपनाया उनसे जजिया कर देने को कहा गया। जिन लोगों ने न इस्लाम धर्म अपनाया और न जजिया कर ही दिया उनसे इस आधार पर समझौता हुआ कि वे मुसलमानों के लिए लड़ेंगे। सीरिया के मोर्चे से सम्राट हेराक्लियस का जो असम्मानजनक प्रस्थान हुआ उससे उत्तरी सीरिया का मनोबल टूट गया।

और अब प्रशासक एवं शांति-स्थापक के रूप में अबू उबैदा की बारी आई। वह मदीना के धार्मिक राज्य का सबसे ज्यादा सम्मानित साथी और सदस्य था। अब तक वह सीरियाई मोर्चे पर मात्र एक फौजी टुकड़ी का प्रधान था। उमर ने उसे खालिद के स्थान पर खलीफा का प्रतिनिधि बनाया। खालिद के साथ अबू उबैदा उत्तर की ओर बढ़ा। सीरिया की प्राकृतिक सीमा टोरस के पर्वत तक पहुँचने में अरब फौजों के लिए कोई गंभीर प्रतिरोध न बचा। साथ ही उन लोगों ने जिन नगरों पर पहले कब्जा किया था उन पर अच्छी तरह अधिकार स्थापित करने में भी कोई दिक्कत न हुई। हिम्स के लोगों द्वारा विजेताओं के नाम जारी एक वक्तव्य में मूल सीरियावासियों की उन लोगों के प्रति भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—'हम लोग अब तक जिस दमन और अन्याय के नीचे रह रहे थे उसके मुकाबले हम आपका शासन और न्याय अधिक पसंद करते हैं।' ऐंटिओक, अल्पो और अन्य उत्तरी नगरों पर भी जल्दी ही कब्जा कर लिया गया। पर इस बीच रोमनों का रुख पुनः आक्रामक हो गया। अभी सन् ६३८ की वसंत ऋतु शुरू भी न हुई थी कि हेराक्लियस

ने पूर्व के उन लोगों के साथ हाथ मिलाया जिन पर अभी तक विजय न हो सकी थी। और तब उसने सीरिया में भारी फौज ठेल दी। जिन नगरों पर मुसलमानों का कब्जा हो गया था उन लोगों ने हेराक्लियस के लिए दरवाजे खोल दिये और ईसाई अरब जनजातियों ने भी इसमें अपना सहयोग दिया। इस प्रकार सारासेनियों (अरबो) के लिए चारों ओर से खतरा उत्पन्न हो गया। पर उनमें हिम्मत, जोश और अच्छे सेनापतित्व के साथ अपने उद्देश्य के प्रति उत्साह और विश्वास था। लड़ाई में हेराक्लियस का पुत्र पराजित हुआ। वह बड़ी मुश्किल से कुछ मुट्ठी भर लोगों के साथ भाग गया। सीरिया ने पुनः मुसलमानों के समक्ष आत्म-समर्पण किया। रोमनों के हाथ में केवल एक स्थान बच रहा। तटवर्ती सेसेरिया जिसे मिस्र समुद्री रास्ते से सहायता दे रहा था, कुछ दिनों तक मुसलमानों के समक्ष घुटने न टेके। पर हेराक्लियस के पुत्र कान्स्टेंटाइन के भाग खड़े होने से बचाव करने वालों की हिम्मत पस्त हो गई। सात वर्षों तक लगातार हमलों और घेरेबंदी के बाद सेसेरिया ने आत्म-समर्पण कर दिया। उस पर मुआविया ने हमला किया था जिसकी सहायता घेरेबंदी की दीवालों के भीतर एक विश्वासघाती यहूदी कर रहा था। सन् ६३३ से ६४० के बीच में दक्षिण से उत्तर तक सीरिया को भलीभाँति दबाया जा सका। अब सीरिया की परतंत्रता पूरी हो चुकी थी।

सीरिया पर विजय के समय उसके जो रोमन और बैजेन्टाइन प्रान्त थे उसके अनुसार अब उसे चार फौजी जिलों (जुंड) में बाँट दिया गया। ये जिले थे दिमश्क, हिम्स, अल उरदन (जोर्डन) और पिलास्टीन (फिलीस्तीन)। अल उरदन में गैलिली से सीरियाई रेगिस्तान तक का क्षेत्र था और फिलिस्तीन में आद्वेलन (मर्ज इब्न अमीर) के बड़े मैदान से दक्षिण की भूमि। बाद में उमैय्यद खलीफा यजीद प्रथम ने उत्तरी जिले किनासरीन को भी फौजी जिले में शामिल कर लिया।

इस क्षेत्र की जो आसान विजय हुई उसके अपने कारण थे। सन् ३३२ ई० पू० में सिकन्दर द्वारा इस क्षेत्र पर अधिकार किये जाने के बाद में इस पर हेलेनिस्टिक (यूनानी) संस्कृति थोपी गई थी। इस संस्कृति का क्षेत्र पर नाम मात्र का प्रभाव था और वह भी केवल शहरी आबादी तक ही सीमित था। ग्रामवासी इस सम्बन्ध में बराबर सचेत रहे कि उनके और उनके शासकों के बीच सांस्कृतिक और जातिगत अंतर है। सीरिया की सामी जनता और यूनानी शासको के बीच जातिगत द्वेष साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण और बढ़ा।

जेरुसलेम पर विजय

उमर ने खालिद इब्न-वलीद को जेरुसलेम पर विजय के लिए भेजा। नगर ने शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दिया। दक्षिणी जेरुसलेम ने, जो इस्लाम में मक्का और मदीना के बाद तीसरा पवित्र नगर है, बहुत देर तक घेराबंदी के बाद आत्म-

समर्पण किया। उमर ने खुद उसके आत्मसमर्पण के लिए अपेक्षाकृत आसान शर्तें रखीं। ईसाइयों को जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा दी गई, उनके गिरजाघरों के उचित रख-रखाव का वायदा किया गया। साथ ही उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता भी दी गई। बदले में उन लोगों को मुस्लिम शासकों को कर देना था। यहूदियों को मनाहट कर दी गई कि वे ईसाइयों के साथ न रहें। तब उमर खुद जेरुसलेम गए। उन्होंने वहाँ के उजाड़ पड़े मन्दिर में पवित्र चट्टान को, जिसे यहूदी, ईसाई और मुसलमान पृथ्वी की नाभि मानते हैं, साफ कराया और वहाँ देवी पूजा कराना आरंभ कराया। तब रामलेह से आये प्रतिनिधिमंडल को भी समझौते के लिए वैसी ही उदार शर्तें दी गईं जब कि समारी यहूदियों को, जिन्होंने मुसलमानों को सहायता दी थी, इस बात की गारन्टी दी गई कि वे अपने कब्जे में अपनी सभी चीजें अच्छी तरह रख सकते हैं और उन्हें कर भी नहीं देना था।[६]

खालिद बिन-वलीद का पतन

यहाँ खालिद बिन-वलीद की सेवाओं और बाद में कमान से उसके हटाये जाने के सम्बन्ध में तथ्यों पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा। बहादुर, खतरनाक, फुर्तीबाज और अपार साहसी खालिद बिन वलीद का बहादुरी के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। उहद की लड़ाई में वह कुरैशियों के साथ लड़ा और मुसलमानों को पहली पराजय दी। इस्लाम धर्म अपनाने के बाद उसने अपना पूरा जीवन इस्लाम को अर्पित कर दिया। उसने मुता की लड़ाई में मुस्लिम फौज को संकट से बचाया और इस्लाम का नाम रौशन किया। वह खालिद का ही कुशल सेनापतित्व था जिसने अरब को नकली पैगम्बरों से बचाया और प्रायद्वीप में शांति स्थापित की। ईराक और सीरिया की विजय भी खालिद बिन-वलीद की ही वजह से संभव हो सकी। अपनी बहादुरी और साहस के कारण ही इस्लाम के इतिहास में उसे "इस्लाम की तलवार" कहा जाता है।

इसे इतिहास का व्यंग्य माना जाएगा कि "इतिहास की तलवार" खालिद बिन-वलीद जब अपने उत्कर्ष के चरम बिन्दु पर था तो खलीफा उमर ने उसे हटा दिया। यहाँ यह स्मरणीय है कि खलीफा अबू बकर के समय से ही उमर खालिद के विरुद्ध द्वेषभाव रखते थे। खालिद फिजूल-खर्च था और बहुत शान-औ-शौकत में रहता था। वह अपने मित्रों और प्रशंसकों को बहुत बड़े-बड़े उपहार देता था। यह बात सादगी में रहने वाले खलीफा उमर को अच्छी न लगी। एक शायर ने खालिद के सेनापति की प्रशंसा के गीत लिखे थे और उसे खालिद ने पुरस्कार में १०,००० दिरहम दिये। जब उससे अपने खर्च का हिसाब माँगा गया और पूछा

६. उनसे यह विशेषाधिकार उमैय्यद खलीफा मुआविया के पुत्र मजीद ने छीन ली।

गया कि उसने राष्ट्रीय कोषागार से अपने खर्च के लिए कितनी रकम ली है तो खालिद ने वही जवाब दिया जो उसने अबू बकर को दिया था—"आप अपना काम देखिये। लूट के माल का पाँचवाँ हिस्सा (फे) कोषागार में जाता है।"

तब उमर ने प्रधान सेनापति अबू उबैदा को इस बारे में खालिद से जवाब तलब करने को कहा। साथ ही उन्होंने आदेश दिया कि यदि उसका अपराध सिद्ध हो जाए तो अपनी ही पगड़ी से उसके हाथ बांध दिये जायँ और सर मुड़ा दिया जाय। इस आदेश से जनता को वैसा ही धक्का लगा जैसा अमेरिका की जनता को राष्ट्रपति ट्रूमेन के उस आदेश से लगा होगा जिसके अधीन उन्होंने जापान और कोरिया में वीरता दिखाने वाले अमेरिकी जनरल मैकआर्थर को वापस बुला कर बर्खास्त कर दिया। ऐसा लगता है कि खालिद ने खुद-ब-खुद सीरिया में अपने सर्वोच्च सैनिक पद को छोड़ दिया और अपने को मदीना में इस्लाम धर्मविश्वासियों के सर्वोच्च सेनापति (अबू उबैदा) के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। उसने राष्ट्रीय कोषागार में २०,००० दिरहम जमा किए और इस प्रकार अपनी फिजूलखर्ची के एक अंश की अदायगी कर दी। एक सार्वजनिक बयान देकर खलीफा उमर ने खालिद को अवज्ञा के आरोप से मुक्त कर दिया। खालिद के बारे में अपने आदेश के सम्बन्ध में उमर ने यह सफाई दी कि खालिद के प्रति लोगों की श्रद्धा इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि उससे अल्लाह के प्रति श्रद्धा से लोगों का ध्यान हट सकता है। उन्होंने अनजाने ही खालिद के प्रति अपने सच्चे इरादे यानी जलन की बात लोगों पर प्रकट ही कर दी। उमर ने अपने इस कदम से सिद्ध किया कि एक जंगल में दो शेर नहीं रह सकते। खालिद की बढ़ती प्रशंसा उन्हें फूटी आँखों भी न सुहाई।

खालिद को हटाये जाने के कुछ और कारण भी थे। खालिद लड़ाई के मैदान में शत्रुओं के साथ बहुत क्रूर व्यवहार करता था। उमर को यह बात पसंद न थी। उन्होंने प्रधान सेनापति अबू उबैदा को नरम स्वभाव का पाया। सीरिया प्रान्त में खलीफा के प्रधान प्रतिनिधि (गवर्नर जनरल) के रूप में अबू उबैदा की संपुष्टि कर दी गई। खालिद के हटाये जाने के बारे में इतिहासकार डब्ल्यू० म्यूर ने कहा है—"उमर ने अपनी सरकार से खालिद को क्रूरता या बेईमानी के कारण न हटाया बल्कि उन लोगों के, जिन्हें सभी विजय को संभव करने वाले (अल्लाह) की ओर पथ-प्रदर्शन के लिए देखने के बजाय एक हाड़-मांस के व्यक्ति (खलीफा) में ही अपना विश्वास रखने का लोभ होता है।" फिर भी, खालिद के हटाये जाने से सिद्ध होता है कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितने ही ऊँचे पद पर क्यों न हो, अपने आचरण के लिए खुद ही जिम्मेवार है और उसके लिए उसे जवाब देना ही पड़ता है। खालिद उन सैनिक योद्धाओं में सर्वप्रथम था जिसे अरब इतिहास के

कूड़ाखाने में फेंक दिया गया। सन् ६४२ में हिम्स के एक अंचल में एक शानदार आधुनिक मस्जिद में उसका नाम चिरस्मरणीय रखा गया है।

उसके बाद अमवास से, जिसे बाइबिल में एमौस नाम दिया गया है और जहां फिलिस्तीन फौज का शिविर था, प्लेग फैला। उससे समूचे प्रान्त में विनाश का ताडंव नृत्य मच गया। उमर ने एक पत्र में अबू उबैदा और अन्य लोगों को इसके लिए प्राधिकृत किया कि वे मदीना लौट आएँ। पर गवर्नर जनरल अबू उबैदा ने जवाब दिया—"हम अल्लाह के आदेश से कैसे भाग सकते हैं ?" उमर ने इसका एक खास जवाब दिया—"आप ईश्वर के एक आदेश से दूसरे आदेश में भागते हैं।" प्लेग में जिन २८००० व्यक्तियों की मृत्यु हुई उनमें गवर्नर-जनरल अबू उबैदा भी थे। उसकी कब्र मुसलमानों के लिए एक धार्मिक स्थल बन गई। यहूदियों को किराये पर एक बड़ी सम्पदा दिये जाने के पाप के प्रायश्चितस्वरूप ट्रान्सजोर्डन के अमीर अब्दुल्ला सन् १९३३ में इस कब्र पर आये थे।

मेसोपोटामिया और मिस्र पर विजय

जब मुसलमानों का आधिपत्य सीरिया और बेबीलोनिया पर हो गया तो उन दोनों के बीच स्थित मेसोपोटामिया का पतन तो होना ही था, वहाँ बैजेन्टाइन फौजें केवल कुछ किलाबंद स्थानों में ही अपने को बंद किये हुए थीं। वहाँ की देशी आर्मेनियाई जनता को उनके एक स्वभाववादी धार्मिक विश्वास के कारण क्षेत्र की प्रमुख कट्टर यूनानी जनता बराबर सताती थी इसलिए आर्मेनियाई लोगों को बैजेन्टाईन साम्राज्य को कायम रहने देने में कोई दिलचस्पी न थी। अनेक शताब्दियों तक पहले की घुमन्तू अरब जनजातियों ने इस देश पर बीच-बीच में हमला किया था और एडेसा और हटरा में शासन भी किया था। इसलिए मेसोपोटामिया अरब आक्रमण और विजय के लिए एक तरह से तैयार ही था।

मुसलमानों ने सीरिया से यहाँ हमला किया। जब अमवास (एमोस) के प्लेग में सन् ६३९ में अबू उबैदा की मृत्यु हुई तो उमर ने हिम्स और किनासरीन का गवर्नर जनरल इयाद इब्न-गन्म को बनाया और यह आदेश दिया कि उसकी सत्ता मेसोपोटामिया तक विस्तृत रहेगी। वर्ष के उत्तरार्द्ध में वह उस क्षेत्र में बढ़ा और करीब डेढ़ साल में हर नगर को आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया। केवल रेशायना पर बड़े कठिन युद्ध के बाद कब्जा हो सका। सन् ६४१ में इयाद इब्न-गन्म ने आर्मेनिया पर हमला किया। पर वहाँ से घर लौटने के तुरन्त बाद मृत्यु हो गई।

मेसोपोटामिया पर विजय के साथ मिस्र पर भी विजय हुई।[७] इस देश (मिस्र) के अन्न-भंडार होने की बहुत पहले से ख्याति थी। इस पर मदीना सरकार की नजर बहुत पहले से थी। वहाँ की अशांत आन्तरिक स्थिति की खबर पैगम्बर को भी थी। मिस्र पर विजय के कारणों को ढूँढ़ने के लिए बहुत दूर न जाना होगा। मिस्र की विशेष रणनीतिक स्थिति थी। वह सीरिया और हेज्जाज दोनों के निकट था जो उसके लिए खतरे की बात थी। उनकी मिट्टी प्रचुर अन्न उत्पादक थी। फलतः मिस्र कान्स्टैंटीनोपुल का अन्न-भंडार था। उस पर हमले का एक कारण यह था कि वहाँ बैजेन्टाइन की नौसेना का अड्डा था और साथ ही यह भी कि वह शेष उत्तरी अफ्रिकी गलियारे के निकट था। इन सब कारणों से नील नदी की घाटी में स्थित मिस्र पर, अपने विस्तार की अवधि के बहुत शुरू से ही, अरब की लुब्ध दृष्टि थी।

मिस्र पर आक्रमण अरबों द्वारा किये जाने वाले छिटपुट हमलों के दौरान नहीं बल्कि उनके व्यवस्थित अभियान की अवधि में हुआ। मिस्र पर अभियान का नायक अम्र इब्न अल आस का जो पहले सीरिया की फौज में सेनापति था, उसने मिस्र पर आक्रमण के लिए प्राधिकार पाने के उद्देश्य से खलीफा उमर को लिखा कि वह जाहिलिया अवधि में हेज्जाज-मिस्र मार्ग पर कारवाँ चलाता था और उसे प्राचीन फराओं की भूमि (मिस्र) के बारे में पूरी जानकारी है। कहा जाता है कि उमर ने जवाब दिया—"यदि यह पत्र तुम्हारे द्वारा सीमा पार करने के पहले पहुँचता है तो लौट आओ, नहीं तो बढ़ो और अल्लाह तुम्हारा साथ दे।" अम्र को इस संदेश की भनक मिल गई। उसने यह पत्र तब तक न खोला जब तक वह दिसम्बर ६३९ में मिस्र न पहुँच गया। अम्र कुरैश वंश का था। उसने इस्लाम धर्म बाद में अपनाया था। उसकी उम्र पैंतालीस साल थी। वह युद्धप्रिय, उग्र स्वभाव वाला, सुवक्ता और चालाक था। जोश और फौजी निपुणता में अम्र का एक ही प्रतिद्वन्द्वी था, प्रारंभिक इस्लाम का अरब सेनापति खालिद इब्न-अल-वलीद। अम्र ने जोर्डन के पश्चिम फिलस्तीन पर कब्जे में भी योगदान किया था। ४००० फौज के, जो बाद में बढ़ा कर २०,००० कर दी गई, साथ उसने सीरिया से मिस्र में प्रवेश किया। सीरिया से दक्षिण उत्तर मिस्र में बढ़ाव से भी आसान मिस्र में पूरब-पश्चिम बढ़ाव सिद्ध हुआ। मूलतः इसके कारण एक समान थे। खून, भाषा और नाम, तीनों में ही बैजेन्टाइन शासक मिस्र के लोगों से भिन्न और पराये थे। मिस्र में बैजेन्टाइन गवर्नर साइरस को सम्राट हेराक्लियस ने राजधानी एलेक्जेन्ड्रिया में पादरी का पद दिया था। गवर्नर साइरस पुरोहिती नीति पर चल

७. देखिए, ए० जी० बटलर का "अरब कॉक्वेस्ट ऑफ इजीज एँड दी लास्ट थर्टी ईयर्स ऑफ रोमन डोमिनियन", ऑक्सफोर्ड, १९०२।

रहा था और पुराने मिस्रवासियों द्वारा ईसाई धर्म अपनाये जाने की कोशिशों में लगा हुआ था। इन पुराने मिस्रवासियों को, जो ईसाई थे, साइरस की तरह ही ईसाई शास्त्र में विश्वास था और वे सहायता के लिए नये लोगों के आने की आशा में थे। ऐसे ईसाई धर्मावलंबी जो मिस्रवासी थे उनके सामने विजयी मुसलमानों ने तीन विकल्प रखे, या तो वे कर दें या इस्लाम धर्म अपनाएँ अथवा लड़ें। इन तीनों में से कौन विकल्प चुना गया होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

उमर में पैगम्बर मुहम्मद के एक समादृत साथी जुबैर को पाँच हजार फौज के साथ मिस्र भेजा। उसे अम्र पर चौकसी रखनी थी क्योंकि वह कोई स्वतंत्र कार्रवाई भी कर सकता था। जून सन् ६४० में अम्र ने बैजेन्टाइनों को अपने बंद किलों से बाहर आने का प्रलोभन दिया और जब वे बाहर आए तो उन्हें हेलियोपालिस में बुरी तरह पराजित कर दिया। बेबीलोन के किले में अभी भी कुछ बैजेन्टाइन मौजूद थे। उन्हें भी उक्त तीन विकल्प दिये गए। साइरस ने मुसलमानों को कर देना स्वीकार किया और उनकी शर्तें सम्राट हेराक्लियस के पास भेजने के लिए तुरत अलेक्जेंडरिया आया। सम्राट हेराक्लियस ने उसे देशद्रोही करार दिया और उसका देश-निर्वासन कर दिया। हेराक्लियस की मृत्यु ११ फरवरी, ६४१ को हो गई। बैबेल्यून (आधुनिक काहिरा से बाहर) में बहुत मजबूत किलेबंदी थी। उस पर कब्जा करने के लिए घेरा डाला गया जो सात महीनों में समाप्त हुआ और उससे राजधानी अलेक्जेन्डरिया का रास्ता खुल गया। इस बीच अरब आक्रमणकारी देश में घुस कर एक सिरे से दूसरे सिरे तक लूटमार करते हुए तबाही मचाये हुए थे। हेराक्लियस के भाई ने बैजेन्टाइन सरकार से और फौज भेजने का अनुरोध किया पर फौज न भेजी गई। नये क्रांस्टेन्स द्वितीय (६४१-६६८) के, जो उस समय केवल सात साल का था[८], रीजेन्टों (संरक्षकों) ने पूर्व में घटनाओं का क्रम उसी तरह जारी रहने दिया। अप्रैल, ९ ईस्टर के दिन, बैबेल्यून ने आत्म-समर्पण कर दिया। अम्र ने नील नदी के उस पार अलेक्जेंडरिया में धीरे से प्रवेश किया।

पश्चिमी अलेक्जेन्डरिया ने, जहाँ ५० हजार सैनिक थे और जिसकी दोहरी दीवालें, टीला और मजबूत जहाजी बेड़ा था, आत्मसमर्पण कर दिया। यह क्षेत्र पहले अपराजेय समझा जाता था पर वहाँ कुछ भी प्रतिरोध न मिला। नगर में भिन्न-भिन्न राजनीतिक गुट थे और लड़ाई से भागे हुए सेनापति वहाँ तरह-तरह की डरावनी खबरें फैला रहे थे। फलतः वह क्षेत्र भी मुसलमानों के कब्जे में आसानी से आ गया। वहाँ के लोगों ने वायदा किया कि वे मुसलमानों को कर देंगे। बदले में विजेता मुसलमानों ने वायदा किया कि वे वहाँ के ईसाइयों के कब्जे उनके गिरजाघरों

---

८. हेराक्लियस का पौत्र। उसके पहले उसके पिता ने चार महीने तक शासन किया था जिसके बाद उसकी मृत्यु हो गई।

को छोड़ देंगे और उनके साम्प्रदायिक मामलों के प्रशासन में कोई भी हस्तक्षेप न करेंगे। इसी संधि के अनुसार १७ सितम्बर, ६४२ को बैजेन्टाइनों ने अलेक्जेन्डरिया को छोड़ दिया और उस पर अरबों ने कब्जा कर लिया। अलेक्जेन्डरिया की संधि पर ८ नवम्बर, ६४१ को कान्सटेंटीनोपुल के बिशप और अम्र ने हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार नये शासकों ने क्षेत्र की पूर्व शासन-व्यवस्था के प्रमुख अंगों पर अधिकार कर लिया। अधिकारियों को, जिनमें अधिकांश प्राचीन मिस्रवासी ईसाई थे, उनके पदों पर रहने दिया गया और सामान्य कर लगा दिया गया। अम्र इब्न अल-आस ने नील नदी की घाटी पर इस्लाम द्वारा अधिकार के प्रतीक के रूप में फुस्टेट में, जहाँ बेबीलोन का फौजी पड़ाव था और जो बाद में प्राचीन काहिरा के नाम से जाना जाने लगा, एक मस्जिद बनवाई। वह मस्जिद आज भी अम्र के नाम के साथ मौजूद है। अम्र ने खलीफा उमर को भेजी गई अपनी संक्षिप्त रिपोर्ट में कहा—"मैंने एक नगर पर कब्जा किया है जिसका वर्णन करने से मैं इन्कार करता हूँ। उसमें मैंने ४००० महलों, ४०,००० स्नानघरों, ४०,००० कर देने वाले यहूदियों और राज-घराने के लोगों के लिए ४०० मनोरंजन-गृहों पर कब्जा किया है।"

सिकंदरिया का पुस्तकालय

खलीफा उमर द्वारा अपने सेनापति अम्र को सिकंदरिया का पुस्तकालय जला डालने के आदेश के बारे में कही और अनकही कहानियाँ हैं। उमर ने कहा कि यदि पुस्तकालय की पुस्तकों में कुरान से सहमति प्रकट की गई है तो उनका कोई उपयोग नहीं और यदि कुरान से सहमति प्रकट नहीं की गई है तो वे अवांछनीय हैं। यह कहानी एक अच्छी कहानी हो सकती है पर अच्छा इतिहास नहीं। इस कथित कार्य के ६ शताब्दियों बाद इसे पहले बतलाया गया। कहा जाता है कि इन अधजली पुस्तकों से नगर के स्नानघरों को ६ महीनों तक इंधन मिला। पर यह कहानी विश्वसनीय नहीं। उस समय इतना बड़ा पुस्तकालय और कहीं न था। महान् टोलेमेक पुस्तकालय को जूलियस सीजर ने ईसा पूर्व ४८ में जला डाला था। बाद में डाटर लाइब्रेरी के नाम से जाना जाने वाले पुस्तकालय को सन् ३८९ में सम्राट थियोडोसियस के आदेश से जला डाला गया। इसलिए मिस्र पर अरब विजय के समय सिकंदरिया में कोई महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय न था। किसी समसामयिक लेखक ने अम्र या खलीफा उमर पर ऐसा आरोप नहीं लगाया है। अब्द-अल-लतीफ अल बगदादी, ने काफी देर बाद, अल हिजरी ६२९ (सन् १२३१) में पुस्तकालय जलाये जाने की बात कही। उन्होंने ऐसा क्यों किया, इसका पता नहीं। हाँ, बाद के लेखकों ने उनकी इस बात की नकल की और इसे बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया। दो और प्रसिद्ध इतिहासकारों, गिबन और गियोर, की भी राय है कि यह पुस्तकालय सिकंदरिया पर

मुसलमानों के कब्जे के बहुत पहले जलाया गया होगा। म्यूर ने कहा—"जलाने की घटना का बाद में आविष्कार किया गया।"

राजनीतिक दृष्टि से अरब द्वारा अधिकृत यह नई भूमि अफ्रिका में और विकास के लिए साधन बनी। आर्थिक दृष्टि से अरब के लिए यह अन्न-भंडार था जिस तरह कि रोमन-साम्राज्य के लिए था। आर्थिक दृष्टि से नील घाटी पर विजय ने उत्तरी घाटी पर विजय के लिए द्वार खोला और अरबों का नई सभ्यता—बर्बर—से सम्पर्क स्थापित हुआ। अपने फौजी शिविर और नई राजधानी फुस्टेट (बैबीलून के बाहर) से अम्र ने उस स्वतंत्रता के साथ नये विजित प्रदेश पर शासन किया जिस तरह खालिद ने अपने विजित प्रदेशों पर किया था। पर वह खालिद के मुकाबले अधिक धूर्त राजनीतिज्ञ था। जब मदीना सरकार ने उस क्षेत्र के लिए एक गैर-सैनिक गवर्नर नियुक्त किया और इस प्रकार फौज की कमान पर अम्र की जिम्मेदारियाँ कम कीं तो अम्र ने विरोध में कहा—"इसका मतलब यह हुआ कि एक आदमी गाय की सींग थामे हुए है और दूसरा उसे दुह रहा है।"

उमर की विजय की संक्षिप्त समीक्षा

यदि उमर के सत्तारूढ़ होने के वर्ष, सन् ६३४ में किसी ने यह भविष्यवाणी की होती कि अब तक अपेक्षाकृत कम ख्यात अरब एक दशक में एक नई शक्ति के रूप में उदित होगा जो दो विश्व-शक्तियों में से एक फारस को नष्ट कर देगा और दूसरे बैजेन्टाइन से उसका सबसे अच्छा प्रान्त छीन लेगा तो उसे असंतुलित मस्तिष्क का माना जाता। पर वास्तव में हुआ यही और सब हुआ एक ही व्यक्ति के शासन-काल में। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि इस व्यक्ति ने दुनिया को हिला डालने वाली घटनाओं में क्या विशेष भूमिका की।

इतिहासकारों के मन में इस सम्बन्ध में कोई दुविधा नहीं है। प्रारंभिक युद्धों की योजना प्रथम खलीफा अबू बकर ने बनाई थी जिनको पूरे ब्योरे में, छोटी-से-छोटी बातों में, उनके पद-उत्तराधिकारी उमर ने जारी रखा और कार्यान्वित किया। इस पर विश्वास करना मुश्किल है। हमें जो प्रमाण मिलते हैं उनसे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उन्होंने जिस साम्राज्य का निर्माण किया उसके वह अनिच्छुक से निर्माता थे। उन्होंने अपने सेनापतियों को आदेश दिया—"हमारे और तुम्हारे बीच समुद्र को हस्तक्षेप न करना चाहिए।" रेगिस्तान के निवासी के लिए समुद्र का एक रोक-सा होता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अम्र को मिस्र की सीमा पार करने का आधे मन से जो प्राधिकार दिया उसका उल्लेख किया जा सकता है। उमर ने इस बात पर जोर दिया कि उनकी फौज एक साथ नहीं बल्कि अलग-थलग रहे और आपस में मिलने से बचें और इस प्रकार बढ़ती रहें। इसीलिए उनके फौजी शिविर

कूफा, अल-जबिया और फुस्टेट में रहे। अरब इतिहासकार अधिकतर धार्मिक थे। उन लोगों ने इन घटनाओं के दो शताब्दियों बाद इनके सम्बन्ध में लिखा। उन्होंने कालक्रम और विचारधारा दोनों ही दृष्टियों से इन घटनाओं को गलत परिप्रेक्ष्य में देखा। उन लोगों ने इन घटनाओं को अल्लाह की मर्जी माना उसी तरह जिस तरह कि फिलिस्तीन की विजय को हेब्रू (यहूदी) व्याख्याकारों ने माना था।

प्रारम्भिक अभियान पूर्व-व्यवस्थित योजनाएँ और धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित कार्य न थे। हम ऊपर देख ही आये हैं कि इनसे जनजातियों की लड़ाकू प्रवृत्ति का बाहर निकास हो सका और आबादी-बहुल अरब प्रायद्वीप के लोगों को रहने के लिए स्थान मिलने की भी व्यवस्था हो सकी। साथ ही यह बात भी थी कि यह फौजी कार्रवाई खलीफा के नाम पर, उसके सामान्य मार्ग-दर्शन तथा दूर से कायम रखे गये उसके नियंत्रण के अधीन और उसकी पूरी जिम्मेदारी के रूप में किए गए।

प्रशासक के रूप में उमर

साथ ही नव-सृजित साम्राज्य की सरकार में उमर की भूमिका के बारे में बढ़-चढ़ा कर बातें कही गई हैं। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने साम्राज्य की नींव डाली पर उसका सामान्य ढाँचा बाद में जाकर बना। सीरिया में 'दीवान' की भाषा यूनानी ही रही और मेसोपोटामिया और फारस की भाषा फारसी। ऐसी स्थिति उस समय तक रही जब तक उमैय्यद राजवंश अपनी प्रतिष्ठा की पूरी ऊँचाई तक न पहुँच सका। उमर पहले एक व्यापारी थे। अपने उसी मूलस्वभाव के कारण उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रान्तीय गवर्नर शासन के खर्च के अंतिम दिरहम तक के लिए जिम्मेदार माने जायँ। उमर जो प्रति वर्ष धार्मिक यात्रा पर जाते थे उससे उनको अपने शासन के अधीन क्षेत्रों में हिसाब की जांच के लिए मौका मिलता था। उमर सरकार के खर्च में भी बड़ी सावधानी बरतते थे। जब बसरा स्थित उनके गवर्नर ने उनके दो पुत्रों को हेज्जाज में एक व्यापारिक सौदा तय करने में राज्य के धन से सहायता की तो काफी अनुनय-विनय के बाद ही उमर इस बारे में इस शर्त पर राजी हुए कि चूँकि व्यापारिक सौदे में राज्य का धन लगा है, इसलिए उनके लड़कों को केवल लाभ मिले और मूल राज्य को वापस कर दिया जाय। राजकोष से जिस परिमाण में काम काज के लिए धन बाहर निकलता था, उमर उसकी कल्पना तक कर सकने में असमर्थ थे। बहरैन में उनके प्रथम गवर्नर ने एक विवरण में बतलाया है कि जब उसने मदीना सरकार के यहाँ ५० लाख दिरहम पहुँचाये तो उमर ने इस बात की सत्यता पर विश्वास न किया और उससे दूसरे दिन ठीक हिसाब किताब के साथ धन लेकर आने को कहा। पर जब दूसरे दिन भी गवर्नर ने ही परिमाण में धन लेकर गया तो उमर ने वहाँ उपस्थित लोगों की भीड़ के सामने

कहा—"हमें इतना धन मिल गया है कि समझ में नहीं आता कि इसे कैसे खर्च किया जाय। यदि तुम चाहो तो हर व्यक्ति को धन गिनने के लिए उसकी एक राशि दी जाय अथवा धन को तौला जाय।"

उमर की सरकार को जिस तरह आर्थिक मोर्चे पर सफलता मिली उसी तरह न्यायिक मोर्चे पर भी। यह बात स्वीकार्य है कि उमर ने न्यायिक प्रणाली का विकेन्द्रीकरण किया और बसरा और कूफा में प्रान्तीय न्यायाधीश की नियुक्ति की, पर उन्होंने उन लोगों को जो निदेश दिये उससे न्याय के क्षेत्र में भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास मिलता है। इस तरह उमर के तथाकथित प्रतिज्ञापत्र में ईसाई प्रजा के साथ व्यवहार के प्रश्नों पर जो विचार किया गया है वह बाद में उठने वाली समस्या थी। उस समय उस पर विचार करने की आवश्यकता को इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस्लामी कानून में उमर की जानकारी बहुत ज्यादा थी और उनकी न्याय-भावना बहुत विकसित थी। न्याय-सम्बन्धी उनका आदर्श इस प्रकार था—

"अल्लाह की शपथपूर्वक कहना है कि जो व्यक्ति तुम लोगों के बीच सबसे ज्यादा कमजोर है, वह मेरी निगाह में तब तक सबसे ज्यादा शक्तिशाली है जब तक उसके अधिकारों को उसके लिए सुनिश्चित नहीं कर दिया जाता। और जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली है वह तब तक सबसे ज्यादा कमजोर माना जायगा जबतक वह इस्लाम के कानूनों का पूरी तरह पालन नहीं करता।"

उमर के आदर्श कार्यरूप में परिणत किये गए। सीरिया में घासानिड राजवंश के नष्ट होने पर उसके आखिरी वंशधर ने इस्लाम धर्म अपनाया और मक्का की यात्रा की। जब वह काबा की परिक्रमा कर रहा था तो एक बद्दू के सामने आ जाने से उसके कपड़े छुआ गए। इस पर उसने बद्दू को एक तमाचा मार दिया। जब बद्दू उस बारे में शिकायत लेकर उमर के यहाँ पहुँचा तो उन्होंने आदेश दिया कि राजवंश के उस आदमी को उसकी इस हरकत के लिए बद्दू से उसे तमाचा लगवाया जाय। इस पर राजवंश के उस आदमी को बड़ा धक्का लगा। उसने इस्लाम का समतावादी धर्म छोड़ दिया और कान्स्टैंटीनोपुल के कुलीनतन्त्रीय ईसाई धर्म को फिर अपनाया और उसके बाद खुशी के साथ जीवन बिताया।

उमर के पुत्र अब्द-अल-रहमान का मामला तो और भी करुणाजनक है। वह मिस्र में शराब पिये हुए पकड़ा गया। गवर्नर अम्र ने उसे निर्धारित से कम सजा दी। खलीफा ने अपने पुत्र को वापस बुलाया। उसे उस अपराध के लिए जितने कोड़े मरवाये जाने चाहिए थे उतने कोड़े मरवाये। अब्द-अल-रहमान ने कहा कि वह बीमार है। फिर भी उसे सजा दी गई। उससे उसकी मृत्यु हो गई। खलीफा के

समसामयिक जीवनी-लेखकों ने इस घटना में अमानवीय तत्व मानने से इन्कार कर दिया जिस तरह सेनापति खालिद के प्रति उमर के व्यवहार में वे कोई अनौचित्य नहीं देखते। किसी व्यक्ति को देवता की भाँति पूजा करने से ऐसा विश्वास नहीं होता कि वह गलती भी कर सकता है। उमर ने बद्दू से राजवंश के आदमी को तमाचा लगवाने की उक्त घटना में अपनी गलती स्वीकार की। शिया लोग, जो पैगम्बर के दामाद अली को खलीफा न बनने देने के लिए उमर को कभी माफ न कर सके थे, उमर की देवता की भाँति पूजा करने के इस विचार से सहमत नहीं हैं। साथ ही सूफी भी, जिन्हें उमर बहुत ज्यादा व्यावहारिक प्रतीत हुए, उनकी उस तरह पूजा नहीं करते।

उमर ने अपने दस वर्ष की खिलाफत में न केवल एक विशाल साम्राज्य पर कब्जा किया पर उसे प्रशासन की एक बहुत अच्छी प्रणाली में समेकित भी किया। प्रशासक के रूप में समूचे इस्लामी इतिहास में सभी महान् मुस्लिम शासकों के लिए वे एक आदर्श बन गए हैं। "समूचे तीस वर्षों में जब तक कि गणतन्त्र कायम रहा", अमीर अली कहते हैं "जो नीति अपनायी गयी है उसने उमर के जीवनकाल में और उनकी मृत्यु के बाद भी अपना स्वरूप मुख्यतः उनसे ही ग्रहण किया।" उमर ने राज्य का संविधान बनाया जिसकी आधारशिला प्रजातन्त्र थी। प्रजातन्त्र का जो बीज अबू बकर ने लगाया था, उसमें अब फूल उग आये थे। प्रजातन्त्र का यह वृक्ष उमर के ही शासन में सुविशाल हुआ। उमर ने अपनी सलाहकार समितियाँ बनायी थीं। इन समितियों को शूरा या सलाहकार समिति कहा जाता था। उमर सभी महत्वपूर्ण मामलों में शूरा की सलाह लेते थे। उमर ने जोर देकर घोषणा की है, "सलाहकार समिति के बिना खिलाफत चल ही नहीं सकती।" खलीफा की स्थिति एक सामान्य प्रजा की जैसी होती थी।

अरबों की राष्ट्रीय एकता के हित में उमर ने अरब प्रायद्वीप को एक विशुद्ध मुस्लिम राज्य बनाने के लिए कदम उठाये। गैर मुस्लिमों के शत्रुभाव को देखते हुए उन्होंने खैबर के यहूदियों और नजरान के ईसाइयों के समक्ष विकल्प रखा कि वे या तो अरब में, वहाँ के राजकाज में हस्तक्षेप डाले बिना रहें या राज्य से उचित मुआवजा प्राप्त कर दूसरे स्थानों पर चले जाएँ। उनलोगों ने प्रस्तावित क्षतिपूर्ति की रकम लेकर अरब से चले जाना ही पसन्द किया। खलीफा ने उन्हें दूसरे स्थानों में जाने की सभी सुविधायें दीं। उमर की नीति का दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह था कि अरबों का सैनिक कुलीनतंत्र कायम रखा जाए। इसके लिए उनकी आज्ञा थी कि अरब सैनिक विजित प्रदेशों में भूमि नहीं रख सकते क्योंकि इससे उनकी फौजी शक्ति को क्षति पहुँचती। उन्होंने यह आदेश भी दिया कि वे नगरों में बसाये गये लोगों के साथ भी न रहें। उनका आदेश था कि अरब सैनिक फौजी छावनियों में ही रहें।

उमर इस्लाम के राजनीतिक प्रशासन के संस्थापक थे। प्रशासन की सुविधा के लिए उन्होंने साम्राज्य को प्रान्तों में बाँट दिया और हर प्रान्त में अपना एक कुशल गवर्नर रखा। मक्का, मदीना, जजीरा, बसरा, कूफा, मिस्र और फिलिस्तीन साम्राज्य के मुख्य प्रान्त थे। प्रान्तीय गवर्नर को वाली या अमीर कहा जाता था। वाली केवल प्रान्तों का शासक ही नहीं होता था बल्कि फौजी तथा धार्मिक प्रधान भी। अपने प्रशासन के लिए वह खलीफा के प्रति जिम्मेदार होता था। प्रान्तों को जिलों में बाँटा गया था और जिला पदाधिकारी को "अमील" नाम से पुकारा जाता था। खलीफा ने पदाधिकारियों के कार्य-कलाप पर नजर रखने के लिए अपने जासूस रख छोड़े थे।

उमर ने कृषि और कृषकों के कल्याण पर विशेष ध्यान रखा। उन्होंने कानून बना दिया कि कोई भी अरब विजित प्रदेशों के निवासियों से जमीन प्राप्त न करेगा। भूमि सर्वेक्षण के बाद उसकी मालगुजारी निश्चित की जाती थी। विजित प्रदेशों में खेती की भली-भाँति सिंचाई के लिए नहरें खोदी गईं और पुलिस दल का गठन किया गया। उमर ने वृद्धावस्था पेंशन की व्यवस्था की। डब्ल्यू० म्यूर ने कहा है—"उमर की पेंशन व्यवस्था संसार भर में विशिष्ट है और उस जैसी व्यवस्था कहीं नहीं है।" कमजोर और अपंगों के लिए उमर ने सार्वजनिक कोषागार से भत्तों की व्यवस्था की। उन्होंने साम्राज्य के विभिन्न भागों में पाठशालाएँ और मस्जिदें बनवाईं।

उमर ने एक वित्त विभाग स्थापित किया जिसका नाम "दीवान" था। इस पर केन्द्र और राज्यों के राजस्व प्रशासन का भार था। दीवान साम्राज्य की आय को नियंत्रित करता था और राजस्व का संवितरण करता था। राजस्व के स्रोत ये थे—व्यक्ति कर (जजिया), निर्धन कर (जकात), भूमि कर (खिराज), युद्ध में आय और संबंधित आमदनियाँ (विजित प्रदेशों से आमदनी)। इन करों के अलावा उमर ने कुछ नये कर लगाए। इनके नाम थे अल-उश्र या जमींदारियों की उपज का दसवाँ हिस्सा, विदेशी गैर-मुस्लिम व्यापारियों पर लगाया गया वाणिज्य कर और घोड़ों पर जकात। अन्तिम कर पैगम्बर और अबू बकर के शासन में न लगाया गया था।

सामान्य प्रशासन और कल्याण-कार्यों पर खर्च के बाद जो रुपया बचता था उसे मुसलमानों में बाँट दिया जाता था। इस वितरण में तीन सिद्धांत रखे जाते थे—पैगम्बर के साथ सम्बन्ध, इस्लाम को पहले अपना लेना और इस्लाम के प्रति फौजी सेवाएँ। इन सिद्धांतों के आधार पर हर मुसलमान को, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री पेंशन या वृत्तिका मिलती थी। इसके लिए दीवान में एक पंजी रखी जाती थी। इन व्यक्तियों को सूची में सबसे ऊपर पैगम्बर की विधवाओं और निकट संबंधियों के नाम होते जिनमें से हरेक को दस हजार दिरहम प्रतिवर्ष मिलते थे। इसके बाद

योद्धाओं के नाम आते थे जिन्होंने इस्लाम की लड़ाइयों में भाग लिया था। जिन योद्धाओं ने बद्र की लड़ाई में भाग लिया था उनमें से हरेक को दस हजार दिरहम और जिन्होंने उहद की लड़ाई में भाग लिया था 'उनमें से हरेक को चार हजार दिरहम प्रतिवर्ष मिलते थे। जिन लोगों ने मक्का की विजय के पूर्व इस्लाम अपनाया था उनमें से हरेक को तीन हजार दिरहम प्रतिवर्ष मिलते थे। इसी प्रकार अन्य लोगों को भी वृत्तिकाएँ मिलती थीं। सामान्य सिपाहियों में से हरेक को, जिन्होंने उमर की महान विजय में हिस्सा लिया था, ५००-६०० दिरहम मिलते थे। यहाँ तक कि दासों, महिलाओं, नवजात-शिशुओं, और मुसलमानों के आश्रितों का भी बैत-अल-माल यानी सार्वजनिक कोषागार के धन में हिस्सा होता था।

उमर ने काजी पर न्याय-कार्य सौंपें। काजी प्रान्तीय गवर्नर से स्वतंत्र होता था और अपने कामों के लिए उसे एक निश्चित रकम मिलती थी।

उमर के अधीन एक भलीभाँति अनुशासित सेना थी। मदीना में सेना के प्रधान (सेनापति) वही थे। पर सामान्यतः वे सेनापतियों पर अधिकार सौंप देते थे। उनकी फौज दो भागों में बँटी हुई थी, घुड़सवार और पैदल। अपने सैनिकों के कल्याण के बारे में विशेष रूप से सावधान रहते थे। पर अगर सैनिक कर्त्तव्य का उल्लंघन करते थे तो वह उनको कठिन दंड देते थे। इस प्रकार इस्लाम के इतिहास में प्रशासन के हर क्षेत्र में उमर अद्वितीय हैं।

उमर की मृत्यु (सन् ६४४)

जब ३ नवंबर, ६४४ को मदीना की मस्जिद में दोपहर की नमाज पढ़ने के लिए धर्म-विश्वासियों की भीड़ हुई तो उस समय लोगों ने सबसे किनारे खंभे के सहारे झुके हुए और काली पोशाक पहने हुए एक व्यक्ति पर लोगों का ध्यान नहीं गया। जब खलीफा उमर, जो अपनी ऊँचाई के कारण सबके लिए सुगोचर थे, पहुँचे तो वह आदमी अपनी पोशाक में से निकल आया और उसने एक छुरा खलीफा की छाती में भोंक दिया। खलीफा जमीन पर गिर पड़े। उनके घाव से तेजी के साथ खून बहने लगा। एक चिकित्सक ने उनके घाव पर दूध उड़ेला। बहुत ज्यादा खून गिर जाने के कारण खलीफा का रंग सफेद पड़ गया। चिकित्सक ने कहा कि उसकी चिकित्सा कारगर नहीं हो रही है। उमर की मृत्यु हो गयी। उनको आयशा की झोपड़ी की जमीन में दफन किया गया जहाँ उनके दो मित्र, अबू बक्र और पैगम्बर मुहम्मद पहले ही दफन किये जा चुके थे। ऐसा इस आशा से किया गया कि उमर भी बिहिश्त के सुख-चैन को अपने उन दो मित्रों के साथ भोगेंगे। इस घटना के कारण जो हल्ला-गुल्ला हुआ उसमें हत्यारा, जो एक फारसी ईसाई था और जिसका नाम अबू लू लू आ फिरोज था, भुलाया नहीं गया। जब उसने भागने की कोशिश

की तो उसे पकड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। बात यह थी कि जब उसने एक बार खलीफा उमर से अपने मालिक के बारे में शिकायत की तो उमर ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और कहा उसका मामला विचारणीय नहीं है। कुछ और लोगों का विश्वास है कि यह अपराध व्यक्तिगत नहीं था बल्कि हत्यारे ने फारसियों के, जो अपना मुल्क खो देने के कारण बहुत क्रुद्ध थे, षड्यंत्र के तहत काम किया था। उमर इस्लाम धर्म के मारे जाने वाले खलीफाओं में प्रथम थे। उनके बाद के दो खलीफाओं की भी मृत्यु इसी प्रकार हुई। "उमर की मृत्यु", अमीर अली कहते हैं, "इस्लाम के लिए एक सच्ची विपत्ति थी।" वे बहुत कड़े न्यायशील और दूरदर्शी थे। उन्हें उपद्रवी और उच्छृंखल अरबों के नेता का स्वभाव पूरी तरह मिला हुआ था। वे एक ऊँचे स्तम्भ की भाँति थे और अरब जनता को हर प्रकार से, जो उनकी शक्ति क्षीण कर सकता था, बचाते रहे। वे राष्ट्र की पतवार मजबूती से सँभाले रहे। उन्होंने अरब की घुमन्तू जन-जातियों और अर्द्ध-सभ्य लोगों के नगर की शानशौकत और बुराइयों के सम्पर्क में आने से उनका मनोबल तोड़ने वाली स्वाभाविक प्रवृत्तियों को निर्दयता के साथ कुचला। उनकी मृत्यु से वे सभी शक्तियाँ, जैसे कि जन-जातिवाद, जाहिलिया के दिनों की अनैतिकता, और वह जन-जातियों की केन्द्र से हट कर स्वच्छंद काम करने की प्रवृत्ति ने अपना सर उठाया और मुसलमानों की एकता खत्म कर दी। उमर का यह कथन सत्य ही था कि "अरब वास्तव में अनियंत्रित ऊँट जैसे हैं और अल्लाह की कसम, मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो उन्हें सही रास्ते पर रख सकता हूँ।"

उमर का प्राक्कलन और आचरण

उमर इतिहास में उन असाधारण व्यक्तियों में हैं जिन्होंने न केवल राष्ट्र के भाग्य को अपनी इच्छा के अनुकूल ढाला बल्कि उसके इतिहास को भी। उनकी शानदार विजयों और उदार प्रशासन ने विश्व के इतिहास में एक नये युग का समारंभ किया। उन्हें फारसियों और रोमनों से, जो शिशु इस्लाम राज्य के विनाश के लिए तत्पर थे, लड़ना पड़ा। उनकी दक्षता और योग्यता से ही यह संभव हो सका कि शक्तिशाली फारस और रोमन साम्राज्य इस्लाम की फौजों के सामने चूर चूर हो गए और उनके लिए कोई साधारण श्रेय की बात नहीं कि पूरा अरब और मिस्र मुसलमानों के प्रभाव में आ गया। यह वही थे जिन्होंने न केवल विजित प्रदेशों को समेकित और सुदृढ़ किया बल्कि साम्राज्य को एक कुशल प्रशासन भी दिया। इस प्रकार धर्मतांत्रिक साम्राज्य में जो पैगम्बर की मृत्यु के बाद विकसित हुआ और जिसे उमर ने विशाल राष्ट्रीय राज्य का रूप दिया, जो धार्मिक और इस कारण राजनीतिक रूप से विशिष्ट वर्ग हुए। मुसलमान शासक भी थे और लड़ाई लड़ने वाले योद्धा भी। धर्मपरायणता कुछ समय के लिए पूरी तरह पृष्ठभूमि में चली

आई और उसका स्थान फौजी माँगों ने ले लिया। मुसलमान एक फौज के रूप में संगठित हो गए। फौज में भर्ती होने की उम्र के सभी मुसलमानों को जनजातिवाद या वंशवार, फौज में भरती कर दिया गया। वे लोग विजित नगरों में बस गए और इसलिए उन्हें मुहाजिर या प्रवासी कहा गया। पर अकसर उनके लिए नयी फौजी बस्तियाँ बसा दी जाती थीं जैसे कि मिस्र में फुस्टेट (पुराना काहिरा), रोमन अफ्रिका में कैरावान और वाद में; ईराक में विशेष रूप से कूफा और बसरा। उमर ने अरब समुदाय के बीच, जो अक्सर गृहबन्दी की चालों और छोटी-छोटी जलन से उत्तेजित रहा करते थे, एक कठिन कार्य किया। पैगम्बर मुहम्मद के पुराने साथियों ने एक राज्य सभा (सिनेट) के रूप में उमर के कार्यों का पर्यवेक्षण किया। उमर के बारह वर्षों के शासन में उनके सामने रोज नई-नई समस्यायें आती थीं जिससे उमर राज्य के सख्त संगठन के बारे में न सोच सकते थे।

हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद अरब जनजातियाँ आपस में लड़ने-भिड़ने लगीं और उन्हें सिर्फ परिश्रम के बल पर ही इस्लाम से सम्बद्ध रखा जा सका। अब जब मुसलमानों ने विजय-अभियान और युद्ध किए तो इस्लाम के प्रति उनका लगाव नये सिरे से मजबूत हुआ। उन्हें विजय अभियान से जो फायदे मिले उनके बदले वे अपनी उन्मुक्त स्वतंत्रता का बलिदान करने को तैयार हो गए। इसके बाद से अरब प्रायद्वीप में केवल एक धर्म-इस्लाम को ही बर्दाश्त किया जा सका। इसी कारण यहूदियों को जिन्हें पैगम्बर मुहम्मद ने खैबर में रहने दिया था, उमर ने सीरिया भेज दिया।[९] साथ ही जो कोई भी इस्लाम धर्म अपनाता था, वह स्वयमेव अरब हो जाता था, और किसी न किसी जनजाति में शामिल हो जाता था। पर पहले किसी ने यह विश्वास नहीं किया था कि गैर अरब से भी धर्म परिवर्तन करा कर मुसलमान बनाया जा सकता है। पवित्र युद्ध का उद्देश्य यह था कि गैर अरबों पर कब्जा करके उन्हें धर्मतान्त्रिक राज्य में जन्मे नागरिकों के शासन के अधीन रखा जाय।

उमर को इस्लाम के राजनीतिक प्रशासन का सच्चा संस्थापक माना जा सकता है। उनके द्वारा "शरीयत" कानून का कार्यान्वियन, पुलिस बल का संगठन, जनगणना का आरम्भ, वृत्तिकाओं का प्रदान और मुस्लिम संवत् हिजरा का आरम्भ आदि उल्लेखनीय कार्य थे। इसी तरह सीमाओं पर किलो के निर्माण, वित्त विभाग की स्थापना, कृषि और कृषकों की स्थिति में सुधार और महिला शिक्षा के आरम्भ आदि से प्रकट होता है कि उमर में एक महान शासक और प्रशासक के गुण थे। अरब की रक्षा के लिए उन्होंने खैबर के यहूदियों और नजरान के ईसाइयों को प्रायद्वीप छोड़ देने के लिए कहा। उन्होंने अरबों पर विजित देशों में जमीन खरीदने या खेती करने के बारे में जो रोक लगायी उससे उनके एक दूरदर्शी शासक होने का

---

९. केवल दक्षिणी अरब में ही यहूदी समुदाय बचे रह सकें।

प्रमाण मिलता है। इस प्रकार एक विजेता, एक प्रशासक और राजनेता के रूप में उमर को संसार के महानतम शासकों में से एक माना जा सकता है।

उमर आदर्श आचरण के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थे। आदमी के सभी अच्छे गुण उनके आचरण में थे। सादगी, कर्त्तव्यपरायणता और निष्पक्षता उनके आचरण के मुख्य स्वरूप थे। उमर के आचरण और कृतित्व के बारे में प्रो० हिट्टी ठीक ही कहते हैं—"खलीफा बनने के बाद कम-से-कम कुछ समय तक अपना निर्वाह व्यापार से किया। उन्होंने समूचा जीवन एक बद्दू शेख की भाँति आडम्बर हीनता के साथ बिताया। मुस्लिम परम्परा (हदीस) के अनुसार प्रारंभिक इस्लामी युग में उमर का स्थान हजरत मुहम्मद के बाद आता है। मुस्लिम लेखकों ने उनकी धर्मनिष्ठा, न्याय, धर्माध्यक्ष के रूप में सादगी और दूसरों के साथ व्यवहार के लिए उनको आदर्श और पूजनीय बतलाया है। किसी खलीफा में जो कुछ भी गुण चाहिए उन सबके वे मूर्त्तिमान रूप थे। उनका अनिंद्य आचरण उनके बाद होने वाले सभी कर्त्तव्य-निष्ठ खलीफाओं के लिए आदर्श था। बतलाया जाता है कि उनके पास सिर्फ एक कमीज और एक लबादा था जिनमें जगह-जगह, मरम्मत के लिए, सिलाई की हुई दीख पड़ती थी। वे खजूर के पेड़ के पत्तों के बिछावन पर सोते थे। उनकी चिन्ता मात्र यह रहती थी कि धर्म की पवित्रता और न्याय को कायम रखा जाय और इस्लाम तथा अरब आगे बढ़े और उनकी सुरक्षा बरकरार रहे। अरब साहित्य उन किस्सों-कहानियों से भरा पड़ा है जिनमें उमर के कड़े और संयत आचरण की प्रशंसा की गई है।"[१०] उमर एक मामूली आदमी की तरह रहे। उनकी प्रजा का छोटे-से-छोटा आदमी उनसे मिल सकता था। वे रात में कोई पहरेदार या साथी लिए बिना प्रजा की स्थिति जानने के लिए नगर की सड़कों पर घूमा करते थे। ऐसा था आचरण अपने समय के सबसे बड़े शासक का। वे नर्मी और साथ ही कड़ाई के प्रतिमूर्त्ति थे। वे गरीबों के प्रति दयालु और सहानुभूतिशील थे और उनके लिए कई रातें जाग-जाग कर बिताते थे। सुखाड़ के दिनों में वे अपने कन्धों पर अन्न का गट्ठर लाद पीड़ितों के बीच बाँटने के लिए निकलते थे। न्याय के मामले में वे बहुत बड़े थे। यदि उनके पुत्र भी गलती करते थे तो वे उनको न बख्शते थे। भाई-भतीजावाद और तटस्थता उनको छू तक न गए थे। ऊँचे और नीचे, अमीर और गरीब उनके लिए न्याय की दृष्टि से एक समान थे। जब किसी प्रान्तीय गवर्नर के विरुद्ध उनको शिकायत मिलती तो वे उसे बर्खास्त करने में न हिच-किचाते थे। वे अन्त तक सादा, मितव्ययी और समर्पित रहे। अल्लाह, हजरत मुहम्मद और अपने में उनका त्रिकोणात्मक विश्वास बराबर कायम रहा। अपने जीवन में सत्ता के कारण उनका आचरण कभी दूषित न हुआ और मृत्यु के बाद भी

१०. हिट्टी—"हिस्ट्री ऑव अरब्स", पृ० १७५-१७६

उनकी प्रसिद्धि बराबर निष्कलंक रही। पाकिस्तानी जीवनी लेखक शिवली नोमानी का कहना है—"वे एक साथ ही सिकन्दर और अरस्तू, मसीहा और सुलेमान, तैमूर और अनुशिरवान (फारसी सम्राट), तथा इमाम अबू हनीफा (अरब विधिवेत्ता) और इब्राहीम अधम (सूफी संत) थे।"[११] वे एक समर्पित विश्वासी, जोशीले और आवेगपूर्ण नेता थे। उन्होंने अपने समय के दो महानतम साम्राज्यों में एक को नष्ट कर दिया और तेरह शताब्दियों तक इस्लामी एकता के बंधन का काम करने वाली खिलाफत संस्था का निर्माण किया। इस प्रकार उमर इब्न अल-खत्ताब ने अरब इतिहास में पैगम्बर मुहम्मद के बाद दूसरा सबसे बड़ा स्थान प्राप्त किया। इस्लाम धर्म और राज्य के हित में उन्होंने अपनी समूची शक्ति, समय और दिमाग लगाया। इन सब कारणों से आने वाले सभी समय में मुसलमानों के दिल में और दिमाग में खलीफा उमर अपना स्थान बनाये रहेंगे।

उस्मान इब्न-अफ्फान (सन् ६४४-६५६) : खलीफा बनने के पूर्व प्रारंभिक जीवन और सेवायें

उस्मान इब्न-अफ्फान का जन्म सन् ५७३ में उमय्या वंश के कुरैश परिवार में हुआ था। उनके पूर्वजों की वंशावली के अनुसार उनके पाँचवें पूर्वज और पैगम्बर मुहम्मद के पाँचवें पूर्वज सगे भाई थे। इस्लाम धर्म अपनाने के पूर्व उनका उपनाम अबू अम्र था। इतिहास में वे धुन्नुरायन के नाम से भी जाने जाते हैं क्योंकि उन्होंने मुहम्मद की दो लड़कियों से विवाह किया। उनके बाप का नाम अफ्फान और माँ का आरवा था। इस्लाम का कट्टर शत्रु अबू सूफ़यान इसी वंश का था। उस्मान ने पढ़ना-लिखना सीखा। अपने बचपन से ही वे उदार और ईमानदार थे। वे अरब के कुछ खुशहाल आदमियों में से थे। प्रथम खलीफा उनके निकट मित्रों में से थे।

जब पैगम्बर मुहम्मद ने लोगों को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए आह्वान किया तो वे चौंतीस वर्ष के थे। एक रात उन्होंने एक सपना देखा जिसमें उनसे कोई कह रहा था—"उठ जाग, ओ सोने वाले, अहमद मक्का में प्रकट हुए हैं।" उनका मन एक दैवी प्रेरणा से भरा हुआ था। वे जल्द दौड़ कर पैगम्बर के पास गए और इस्लाम धर्म अपना लिया। जब उनके चाचा को इस बारे में मालूम हुआ तो उसने उनको बुरा-भला कहा। यहाँ तक कि उनके चाचा ने उन्हें कड़ा दंड भी दिया पर उन्होंने हजरत मुहम्मद का धर्म न छोड़ा।

---

११. शिबली नोमानी—उमर दी ग्रेट : अनुवाद, मुहम्मद सलीम (लाहौर, १९५७), खण्ड २, पृ० ३५१।

जब मुसलमानों का प्रताड़न सभी सीमाओं को पार कर गया तो पैगम्बर मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को सलाह दी कि वे अबीसीनिया में चले जायें। उन्हीं लोगों के साथ उस्मान भी अपनी पत्नी के साथ अबीसीनिया चले गए। दो वर्षों बाद वे मक्का वापस आ गए और फिर वहाँ से मदीना चले गए। मदीना में रहने के दरम्यान उन्होंने मुसलमानों के हित में किए जाने वाले कार्यों में प्रमुख योगदान दिया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण धन राष्ट्र को दे दिया। इस मामले में उनका स्थान अबू बकर के बाद ही आता है। जब हजरत मुहम्मद ने इच्छा जाहिर की कि मुसलमानों के लिए कुआँ खोदवाया जाय तो बीस हजार दिरहम खर्च कर उन्होंने कुआँ खोदवाया और पैगम्बर की इच्छा पूरी की। फिर जब पैगम्बर मुहम्मद ने इच्छा प्रकट की कि उनकी अपनी मस्जिद के विस्तार के लिए उसके पास की जमीन खरीदी जाय तो उस्मान ने उनकी वह इच्छा पूरी की। बद्र की लड़ाई में अपनी पत्नी रुकय्या की बीमारी के कारण उस्मान हिस्सा न ले सके थे। परंतु उस समय भी उन्होंने पैगम्बर के आदेश का पालन किया कि वे अपनी पत्नी की ही सेवा-सुश्रूषा प्राथमिकता दें। उस्मान ने और सभी लड़ाइयों में भाग लिया पर पैगम्बर की ही इच्छा के अनुसार हुदैबिया की संधि के समय वे उपस्थित न थे। अबू बकर और उमर दोनों की खिलाफत में राज-काज में उनका पद प्रमुख था। दोनों ही शासन से संबंधित अपनें कर्त्तव्य पूरे करने में उस्मान से सलाह लेते थे।

उस्मान का चुनाव और सत्तारूढ़ होने पर उनकी समस्यायें

अपनी अप्रत्याशित मृत्यु से आश्चर्यचकित-सा होने के कारण उमर अपने पद-उत्तराधिकारी के बारे में कोई प्रावधान न कर सके थे। अबू बकर के बाद अबू उबैदा उमर के सबसे ज्यादा निकट के थे पर उनकी मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। इस बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या उमर ने अपनी मृत्यु-शय्या के समीप ही खलीफ़ा का चुनाव करने वालों की बैठक बुलाई जिसमें उनकी मृत्यु के बाद होने वाले खलीफा के बारे में निर्णय किया गया। दूसरी ओर इतिहासकार अमीर अली लिखते हैं :—"उमर ने पैगम्बर के दामाद अली या अपने पुत्र गुणवंत अब्दुल्ला को, जिसका उपनाम इब्न उमर था, अपने बाद होने वाले खलीफा के रूप में आसानी से नामजद कर दिया होता पर अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी के अनुसार ही उन्होंने मदीना के छः प्रतिष्ठित लोगों की समिति पर चुनाव का यह भार सौंपा।"[१२] पैगम्बर के दोनों दामाद अली और उस्मान और पैगम्बर के अत्यधिक

१२. अमीर अली, सैयद, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव सारासेन्स, मैकमिलन एंड क० लि०, न्यूयार्क, १९५५, पृ० ४५।

निकट के साथियों अब्द-अर-रहमान इब्न औफ, जुबैर और साद-इब्न अबी वक्कास की चुनाव परिषद की बैठक हुई। परिषद के छठे सदस्य के रूप में तलहा ने चुनाव में हिस्सा लिया होता पर वे गैरहाजिर थे और समय पर मदीना में न पहुँच सके। काफी और लंबे विचार-विमर्श के बाद, जो सात दिनों तक चला, चुनाव-परिषद ने उमैय्यद घराने के सबसे महत्त्वहीन सदस्य, उस्मान इब्न-अफ्फान, को खलीफा पद के लिए चुना। वें कुलीन वंश के थे। पैगम्बर मुहम्मद की निगाह में भी यह बात उनकी व्यक्तिगत योग्यता की कमी की पूर्ति कर देती थी। अतः उनके खलीफा पद पर चुने जाने में यह बात निःसंदेह निर्णायक थी। साथ ही यह भी आशा की गई कि उनके साथ व्यवहार कर सकना आसान होगा पर यह आशा पूरी न हो सकी। इसके लिए निश्चित तौर पर खुद खलीफा जिम्मेदार न थे, पर उनका वंश जिम्मेदार था। अपने वंश के प्रभाव के समय उन्होंने पूरी तरह समर्पण कर दिया। यहाँ यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि अपने पूर्व के खलीफा अबू बकर के उदाहरण से हट कर उमर ने गलती की थी जिससे उमैय्यदों का कुचक्र संभव हो सका। उमैय्यदों ने अब मदीना में एक मजबूत दल बना लिया था। वे लोग बहुत पहले से पैगम्बर मुहम्मद के परिवार हाशिमिदों के प्रतिद्वन्द्वी थे और उनको बहुत भयानक रूप से घृणा की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने कटु भयानकता के साथ हजरत मुहम्मद का पीछा किया था। जब मक्का का पतन हो गया तभी उन्होंने स्वार्थ की दृष्टि से इस्लाम धर्म अपनाया। उन्होंने इस्लाम की उन्नति को स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाया। सादगी से रहने वाले पैगम्बर के साथियों के प्रति, जो इस्लाम राज्य में शासन कर रहे थे, उनकी घृणा जलन से भरी और कठोर थी। जिन पुराने मुसलमानों ने राज्य परिषद बना रखी थी और जो सरकार में उच्च पदों पर थे, उन्हें वे लोग बुरे उद्देश्यों से प्रेरित जलन की दृष्टि से देखते थे। इन सन्तों का शुद्ध और सादा जीवन उमैय्यदों के लिए भर्त्सना का विषय था। उमैय्यद खुद ढीला-ढाला और स्वार्थपूर्ण जीवन बिताते थे। उन लोगों को बद्दू जनजातियों के वे प्रधान, जिनका उनके साथ रक्त-संबंध था आसानी से साथी के रूप में मिल गए। अपने षड्यंत्र से उन्होंने पैगम्बर के दूसरे दामाद अली को खलीफा न बनने दिया।

उमैय्यद पैगम्बर मुहम्मद के वंश हाशिमिदों से संबंधित थे, पर अपनी गैर-मुस्लिम अवधि में वे शक्ति और प्रतिष्ठा में बहुत ज्यादा आगे थे। अनेक वर्षों तक उनका चालाक नेता अबू सूफयान कुरैशियों द्वारा पैगम्बर के विरोध में मुख्य भूमिका अदा करता रहा। मक्का के पतन के बाद कुरैश मदीना में बस गए जहाँ पैगम्बर मुहम्मद ने उन्हें बहुत सारी रियायतें दीं। अबू बकर और उमर की खिलाफत में अबू सूफयान के पुत्र यजीद ने समाज में विशिष्टता प्राप्त कर ली थी। उमर ने

मृत्यु के बाद यजीद के भाई मुआविया ने समाज में विशिष्टता और महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। जब उस्मान खलीफा बने तो शासन उनका नहीं बल्कि उनके वंश उमैय्यदों का हो गया। यद्यपि उस्मान खुद गुणी और ईमानदार आदमी थे पर वे बहुत बूढ़े और कमजोर चरित्र के थे। वे सरकार का काम-काज चलाने के काबिल न थे। जैसी कि लोगों को आशंका थी वे अपने परिवार उम्मैय्यद के प्रभाव में बहुत जल्द आ गये। उन्होंने सरकार का कामकाज अपने चचेरे भाई मरवान के हाथों में सौंप दिया और अपने संबंधियों को सरकार के ऊँचे पदों पर बैठाया। मरवान उमैय्यदों में सबसे ज्यादा सिद्धान्तहीन व्यक्ति था। उसे पैगम्बर मुहम्मद ने एक बार विश्वासघात के अपराध में निकाल दिया था। पैगम्बर के पुराने साथी विजय-अभियानों के दौरान असाधारण रूप से धनी हो गए थे। मक्का में अपनी असल जायदाद के अलावा उन्होंने तैफ और बाहर के प्रदेशों में भी जमीन-जायदाद प्राप्त कर ली थी। अब नये राजवंश उमैय्यद का बढ़ता हुआ प्रभाव उन्हें अपनी स्थिति के लिए खतरनाक प्रतीत हुआ। उन्होंने पहले कोशिश की कि खलीफा को अपने वंश के प्रभाव से बाहर निकाल सकें। जब इसमें वे नाकामयाब रहे तो वे व्यक्तिगत रूप से खलीफा के विरोधी हो गए। फिर बहुत जल्द मदीना में उस्मान के बहुत कम मित्र बच गए, खासकर उस स्थिति में जब पैगम्बर की जवान और षडयंत्र-निपुण विधवा आयशा भी, जिसने अपने को "धर्म-विश्वासियों की मां" घोषित कर रखा था, उनके विरुद्ध हो गई और प्रान्तों में भी अरबों ने अपने को खलीफा के विरुद्ध उत्तेजित होने दिया।

पर अपनी बराबर की जैसी देशभक्ति और धर्म में विश्वास के कारण पैगम्बर के दूसरे दामाद अली ने उस्मान के खलीफा चुने जाने के बाद उनके प्रति अपनी निष्ठा और लगाव प्रकट किया। उस्मान की खिलाफत में हाशिमिदों और उमैय्यदों के बीच कटु लड़ाई शुरू हुई जो सौ से ज्यादा वर्षों तक चलती रही। उस्मान के शासन में केवल सही बुराई शुरू न हुई। सामान्यत: सभी अरब शुरू से ही जिद्दी और अधीर किस्म के थे और किसी के नियंत्रण में रहना नहीं चाहते थे। केवल पैगम्बर के महान व्यक्तित्व के कारण ही उनमें एकता स्थापित हो सकी थी। अबू बकर और उमर की कड़ाई के कारण ही उनमें अनुशासन संभव हो सका था। वे अब कुरैशियों के प्राधान्य के कारण खुलेआम असंतोष और क्रोध प्रकट करने लगे थे। उन लोगों ने राज्य के विभिन्न स्थानों में राजद्रोह के बीज बोने शुरू किए। "मोघारितो" और "हिमयारितो" के बीच पुरानी जातीय जलन भावना, जो करीब-करीब खतम हो गई थी, फिर सुलगने लगी। इन बातों से इस्लाम पर अत्यन्त अनिष्ट-कारी प्रभाव पड़ा। उमर द्वारा प्रान्तों में नियुक्त अनेक राज्याधिकारियों को उस्मान ने हटा दिया और अनेक स्थान पर अपने वंश के निकम्मे और बेकार लोगों को

नियुक्त किया। उनके शासन के प्रथम छः वर्षों में जनता यद्यपि नये प्रान्तीय गवर्नरों द्वारा बहुत बुरी तरह सताई जा रही थी, पर फिर भी लोग चुप रहे। और इस्लाम राज्य के बाहर फैले हुए प्रान्तों में सामान्य शत्रुओं से सारसेनियों (अरबों) को जिन मुश्किलों और खतरों का सामना करना पड़ रहा था, उनको दबाने में ही सेना व्यस्त रही।

जब युद्ध के प्रथम कुछ वर्षों का उपद्रव शांत हो गया तो इस्लाम धर्म के योद्धा धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लूट-मार की सरकार छोड़ कर उन्होंने अपने स्वार्थों के प्रतिकूल काम किया है। इससे राज्य अपने को सेना से स्वतंत्र बना सका। यद्यपि सेना के प्रति ही वह सब तरह से ऋणी था। राज्य ने अपने मन से सैनिको को दी जाने वाली वृत्तिकाएँ निश्चित कीं और अवांछित तत्वों पर सेना में घुसने पर रोक लगाई। इससे सेना में असंतोष फैल गया जो कभी-कभी प्रान्तीय धन के सन्दूकों की लूट के रूप में प्रकट हुआ। विशेष रूप से राजधानी में राज-काज के खर्च से बचे हुए धन को भेजने का विरोध किया जाने लगा। यह सही है कि इसके पूर्व उमर ने इस प्रणाली का आरंभ किया था पर इसका विरोध करने की किसी ने हिम्मत न की थी। उमर की भाँति उस्मान का रोब न था। असंतोष का एक कारण यह भी था कि अब प्रान्तीय गवर्नर साधारणतः उस्मान के वंश के ही थे। उन लोगों की मौज और सनक के लिए उस्मान को ही दोषी माना जाता था।

उस्मान की खिलाफत में विजय

उमर की मृत्यु के ६ महीने बाद फारस के राजा येजदेगर्द ने, जो अब निर्वासन में था, इस्लाम के अधिकार के विरुद्ध देश में विद्रोह कर दिया। इसी बीच खुरासन में येजदेगर्द के एक जागीरदार ने पड़ोस के तुर्की राजकुमार को भी इस्लाम के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसाया। इस प्रकार फारस के राजा येजदेगर्द के बीच बचे हुए अनुयायियों ने भी उसको छोड़ दिया। वह भाग कर "मर्व" चला गया पर उस शहर ने भी उसको वहाँ प्रवेश न करने दिया। एक चक्की के मालिक ने उसे आश्रय दिया। जब राजा इस प्रकार छिपा हुआ था तो उसके विश्वासघाती सूबेदार ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार अंतिम ससानिद का यह हाल हुआ। भारत में पारसी लोग राष्ट्रीय फारसी धर्म के अंतिम अनुयायी हैं। वे उस राजा की स्मृति अब भी बरकरार रखे हुए हैं। वे अपने संवत का आरम्भ उसके सत्तारूढ़ होने की तारीख से मानते हैं। उस्मान ने इस्लाम के विरुद्ध विद्रोह को कुचल दिया। इस प्रकार अन्य फारसी राज्य इस्लाम के प्रभाव में आ गए। ट्रान्सौक्सियाना में तुर्कों के हमले के फलस्वरूप बल्ख पर भी मुसलमानों का कब्जा हो गया। उसी तरह हेरात, काबुल और गजनी भी अधिकार में आ गए। दक्षिणी फारस में विद्रोहों को दबाने के क्रम

में करमान और सिस्तान पर भी मुसलमानों का कब्जा हुआ। नये विजित क्षेत्रों की व्यवस्था के मामले में उमर की नीति अपनाई गई। इन क्षेत्रों पर ज्यों ही कब्जा हुआ इसके विकास का कार्य आरम्भ हो गया। वहाँ नालियाँ बनाई गईं, सड़कों का निर्माण हुआ, फलों के पेड़ लगाये गये और नियमित पुलिस दल का संगठन कर व्यापार को सुरक्षित किया गया। खुरासान के अधिकांश भाग, जैसे कि निसापुर, टुस और मार्व पर मुसलमानों का कब्जा सन् ६५० में हो गया। उस्मान के शासन में देश में शांति स्थापित हो गयी थी। अब सीमाओं के पूर्व और उत्तर में मुस्लिम साम्राज्य की सीमाएँ और आगे बढ़ गई थीं।

उमर ने अपनी मृत्यु के कुछ पहले यह पाया कि अम्र पर्याप्त राजस्व नहीं प्राप्त कर रहा है। इसलिए उन्होंने अब्दुल्ला इब्न सद के ऊपरी मिस्र का प्रभारी बना दिया। खलीफा उस्मान ने अम्र इब्न अल-आस को वापस बुला लिया और उसके स्थान पर, सन् ६४५ में समूचे मिस्र पर अपने दत्तक भाई अब्दुल्ला को गवर्नर नियुक्त किया। सन् ६४५ के अन्त में सिकन्दरियावासियों ने, जो नये शासन के अधीन बेचैन हो गए थे, सम्राट कान्सटैन्स के नाम अपील की कि वह उस नगर पर फिर कब्जा कर ले। कान्सटैन्स ने मैनुअल के (जो आर्मेनियाई था) अधीन ३०० जहाज भेजे कि वह शहर पर फिर से कब्जा कर ले। लड़ाई में एक हजार अरब सेना को मार डाला गया और सिकन्दरिया एक बार फिर बैजेन्टाइनों के कब्जे में चला गया और वहाँ अरब द्वारा अधिकृत मिस्र पर हमले के लिए अड्डा बन गया। अम्र को तुरत फिर गवर्नर बनाकर भेजा गया। निकिऊ के पास अम्र की फौजों का शत्रु की फौजों से मुकाबला हुआ और बैजेन्टाइनों की उग्रतापूर्वक हत्या की गई। सन् ६४६ में सिकन्दरिया पर कब्जा किया गया। नगर की अभेद्य दीवारों को ढाह दिया गया और प्राचीन मिस्र की राजधानी उसके बाद से अब तक मुसलमानों के हाथ में है। इस विजय के बाद उस्मान ने अम्र को फौज का प्रधान रहने दिया और अब्दुल्ला को वित्तीय प्रशासक बना दिया। अब्दुल्ला को खलीफा के प्रतिनिधि पद पर भी फिर से नियुक्ति हुई।

अब्दुल्ला सैनिक कम और आर्थिक मामलों में दिलचस्पी रखनेवाला अधिक था। वह अब केवल, मुख्यतः लूटमार के उद्देश्य से, पश्चिम और दक्षिण की ओर बिजय-अभियान को बढ़ा। उसे साम्राज्य की सीमाएँ दोनों ओर बढ़ाने में सफलता मिली। उसकी प्रमुख भूमिका यह थी कि उसने प्रथम मुस्लिम जहाजी बेड़ा की स्थापना की। सीरिया के गवर्नर मुआविया की भाँति ही जहाजी बेड़ा की स्थापना में उसे भी सफलता मिली थी। सिकन्दरिया स्वभावतः मिस्री जहाजी बेड़ा के ठहरने का स्थान बना। अब्दुल्ला के अधीन मिस्र से अथवा मुआविया के अधीन सीरिया से समुद्री

कार्रवाइयाँ बैजेन्टाइनों के विरुद्ध होने लगीं। सन् ६४९ में मुआविया ने साइप्रस पर कब्जा कर लिया।

यह इस्लाम की पहली समुद्री विजय थी। साइप्रस अरब साम्राज्य में मिला लिया गया। अगले साल सीरियाई समुद्र तट के अरबद (आरदस) पर भी कब्जा कर लिया। सन् ६५२ में अब्दुल्ला ने अरब बेड़े से बड़े यूनानी बेड़े को सिकन्दरिया से हटा दिया। दो वर्षों बाद मुआविया के अधीन एक कप्तान ने रोड्स की लूट-मार की। सन् ६५५ में मुआविया और अब्दुल्ला के सीरियाई-मिस्र जहाजी बेड़े ने लीसियाई समुद्र-तट पर फोयनिक्स के निकट बैजेन्टाइन नौसेना के ५०० जहाजों को नष्ट कर दिया। इस लड़ाई में बैजेन्टाइनों का नेतृत्व सम्राट कान्स्टैन्स द्वितीय कर रहे थे। अपनी जान पर आये खतरे से वे बाल-बाल बचे। इस लड़ाई को घुल-अल-सतारी (मस्तुल की लड़ाई) कहा जाता है। इससे बैजेन्टाइन नौसेना की प्रधानता के लिए खतरा तो उपस्थित हुआ पर नौसेना नष्ट न हुई। अपने आंतरिक उपद्रवों के कारण मुसलमान अपनी विजय को आगे न बढ़ा सके और कांस्टैन्टीनोपुल की ओर जिस पर विजय करना उनका प्रधान उद्देश्य था, बढ़ न सके। उस्मान की खिलाफत में इस्लाम के दो नौसेनापति मुआविया और अब्दुल्ला सामने आये। इन नौसेना-अभियानों को मदीना के खलीफा उस्मान के सहयोग से नहीं बल्कि उनके बावजूद चलाया गया। जब मुआविया ने खबर दी कि साइप्रस द्वीप के निकट तक मुस्लिम नौसेना पहुँच चुकी है तो उस्मान ने नौसेना-अभियान जारी रखने के लिए उसे प्राधिकृत किया पर शर्त रखी कि मुआविया इस अभियान में अपनी पत्नी को साथ ले जाय।

मुसलमानों के हाथ में मिस्र के चले जाने से उसके पश्चिम के बैज़ेन्टाइन प्रांत असुरक्षित हो गए। साथ ही सिकन्दरिया पर अधिकार जारी रखने के लिए मुसलमानों के लिए यह आवश्यक हो गया कि उन प्रान्तों पर भी विजय कर ली जाय। सिकन्दरिया के पहली बार पतन के बाद अपनी सेना के पिछले भाग की रक्षा के लिए अम्र ने, उल्लेखनीय तेजी के साथ, अपनी घुड़सवार सेना के साथ पश्चिम की ओर पड़ोस में स्थित पेन्टापोलिस पर चढ़ाई की और बरका पर बिना किसी प्रतिरोध के, कब्जा कर लिया। ट्रिपोलिस की बर्बर जनजाति और लवाता ने भी उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। अम्र के बाद उसका पद सँभालने वाला अब्दुल्ला ट्रिपोलिस में बढ़ा और इफ्रकियाह के एक भाग पर कब्जा कर लिया। उसकी राजधानी ने कर देना स्वीकार कर लिया। उस्मान ने गैर-मुस्लिम बर्बर जनजाति को जिनका नाम मुस्लिम धर्म-ग्रन्थकारों की सूची में नहीं आता, वे ही अधिकार दिये जो धिम्मिओं (गैर मुस्लिमों) को दिये गये थे। दक्षिण में नूबिया पर भी कब्जे की कोशिश की गई। उसके चारागाह बहुत कुछ अरब भूमि के चारागाह से थे। इसलिए वह, मिस्र से कहीं ज्यादा, घुमन्तू जनजातियों के लिए उपयुक्त था। इस्लाम

के उदय के शताब्दियों पूर्व अरबों ने मिस्र और यहाँ तक कि सूडान में भी करीब-करीब बराबर घुस-पैठ जारी रखी थी। सन् ६५२ में अब्दुल्ला ने नूबिया के साथ सन्धि कर ली पर अभी तक वहाँ के लोग पराजित न किये जा सके थे।

उस्मान की हत्या तक की महत्वपूर्ण घटनाएँ

उस्मान ने अपने शासन-काल के प्रथम छः वर्षों तक नेकनामी के साथ शासन किया। अज जहरी का कहना है कि "वह कुरैशों के बीच उमर से ज्यादा लोकप्रिय थे।" उनके शासन काल में कई जगह विजय हासिल की गई और इस्लाम का झण्डा मोरक्को से काबुल तक फहराता रहा। पर यह एक अद्भुत विसंगति थी कि जो लोग कभी उनके बहुत ज्यादा प्रशंसक थे उन्हीं लोगों ने उस निर्दोष खलीफा के विरुद्ध आरोप लगाने शुरू किये। कार्ल ब्रोकेलमैन ने ठीक ही लिखा है—"यहाँ तक कि उन्होंने उस्मान ने जो ठीक काम भी किये उनके विरुद्ध सभी जगह अप्रतिष्ठापूर्ण आलोचना होने लगी।"[१३] सन् ६५३ में आरमेनिया में एक अभियान में, जिसमें सीरिया और ईराक की फौजों ने भाग लिया। इन दोनों के कुरान के पाठों में अंतर स्पष्ट दीख पड़ा। चूँकि इन दोनों प्रान्तों के निवासियों के बीच तनाव, कम-से-कम इस समय मामूली न था, कुरान के विभिन्न पाठों के उचित होने के प्रश्न पर यह मतभेद उनके बीच हिंसा शुरू हुए बिना खत्म न हो सका। इस बात की पुनरावृत्ति असंभव बनाने के लिए खलीफा ने कुरान का एक अधिकृत पाठ प्रकाशित करने का निश्चय किया। पैगम्बर मुहम्मद के जीवनकाल में भी कुरान में दिये गये रहस्योद्घाटन भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से दिये जाते थे। उस्मान के पहले उमर ने एक जवान मदीनावासी जैद इब्न-थाबित द्वारा, जिसने उमर के लिपिक के रूप में काम किया था कुरान की सभी प्रतियाँ एक जगह इकट्ठी कराईं और अधिकृत पाठ प्रकाशित कराया। पर यह एक व्यक्तिगत प्रयास ही सिद्ध हुआ जिसके अधिकृत पाठ होने का दावा न किया जा सका। उमर की मृत्यु के बाद कुरान का यह पाठ उनकी पुत्री हफशा के अधिकार में चला गया। उस्मान ने कुरान का यह पाठ मँगवाया और लिपिक जैद और तीन अन्य सम्मानित कुरैशियों पर इस पाठ को संशोधन का भार सौंपा। उस्मान द्वारा स्थापित की गई इस समिति ने अपना कार्य कितनी सावधानी के साथ किया, यह इसी से प्रकट है कि उसके द्वारा संशोधित पाठ बिना किसी विरोध के, सभी जगहों में मान्य हुआ। पर उस समय ऐसा प्रकट हुआ कि कूफा के लोग खलीफा के विरुद्ध लोगों को उभाड़ने के लिए कारण ढूँढ़ रहे थे। इनमें से एक व्यक्ति था अब्दुल्ला इब्न मसूद, जो पैगम्बर मुहम्मद के साथियों में सबसे बूढ़ा था, अपने को कुरान का सबसे बड़ा विशेषज्ञ मानता था। उसने यह

---

१३. कार्ल ब्रोकेलमैन, हिस्ट्री ऑव दि इस्लामिक पीपुल, पृ० ६४।

भयानक आरोप लगाया कि कुरान का संशोधित संस्करण गलत और अधूरा है। उसने कहा कि कुरान के जिन अंशों में उमैय्यदों को भी पैगम्बर मुहम्मद के दुश्मनों में माना गया है, उन अंशों को कुरान के इस पाठ में से छांट दिया गया है।

मदीना में उस्मान के विरोधी, जिनका नेतृत्व अली, तलहा और जुबैर कर रहे थे, जनता में फैले हुए असन्तोष का फायदा उठा सके। यद्यपि वे अपने अभियान को उस्मान के धर्मनिरपेक्ष शासन के विरुद्ध एक सच्चे धार्मिक कार्य के रूप में मान रहे थे, पर वे उस्मान के विरुद्ध खुलेआम संघर्ष छेड़ने की हिम्मत न कर सके। उन्होंने यह घृणास्पद काम प्रान्तों के लोगों पर छोड़ दिया जिनके हाथों में इस्लाम की सासांरिक शक्ति सीमित थी। सन् ६५५ में उस्मान के विरोधी नेताओं ने प्रान्तों के लोगों को सूचित किया कि धर्म के पक्ष में सक्रिय संघर्ष की गुंजाइश केवल सीमावर्ती क्षेत्रों में ही है। तब तूफान कूफा में शुरू हुआ। जून ६५५ में जब वहाँ का स्थानीय गवर्नर सईद तीर्थ यात्रा से लौटा तो यमन के एक निवासी मलिक अल अश्तर के नेतृत्व में एक हजार आदमियों ने गवर्नर के नगर में घुसने पर रोक लगाई। मलिक अल अश्तर अली के प्रति व्यक्तिगत रूप से वफादारी रखता था। उस्मान ने सोचा कि वह इस विपत्ति को दूर करने में सफल हो सकेंगे। उन्होंने कूफा के गवर्नर सईद के स्थान पर अन्य व्यक्ति को नियुक्त किया जिसे कूफा के निवासी भी पसन्द करते थे।

मिस्र में उस्मान ने अम्र इब्न-अल-अस को, जो वहाँ का विजेता था, हटाने में भी कोई हिचकिचाहट न दिखाई। अम्र के स्थान पर उन्होंने अपने चचेरे भाई इब्न-अबी-सार को गवर्नर बनाया जिसे पैगम्बर ने धर्म बहिष्कृत कर दिया था। उस्मान के विरुद्ध न केवल अम्र बल्कि प्रथम खलीफा अबू बकर के दत्तक पुत्र मुहम्मद इब्न-अबी हुदयफाह द्वारा भी, जो अली का उत्साही समर्थक था, विद्रोह चलाया जा रहा था। लीसियाई समुद्र-तट पर मिस्र के जहाजी बेड़े ने सम्राट कान्स्टैंन्स द्वितीय के वैजेन्टाइनों को एक बड़ी समुद्री लड़ाई के लिए चुनौती दी थी। जब लड़ाई चल ही रही थी तो उसके बीच ही असन्तुष्ट अरब नौसैनिक एक जहाज के साथ यह बहाना करके लड़ाई से हट गये कि सच्चे धार्मिक युद्ध की उपेक्षा की जा रही है। दूसरे साल मिस्र से पाँच सौ अरब मदीना की ओर वह लड़ाई छेड़ने के लिए गए जो उनके अनुसार अल्लाह भीतरी शत्रु के विरुद्ध छेड़ना चाहता था। अप्रैल ६५६ में वे विद्रोही मदीना नगर के सामने पहुँचे। अधिकांश मदीनावासी उनके पक्ष में हो गए। उस्मान के पास, जो कि विश्व के सबसे बड़े साम्राज्य का शासक था, अपने निवास स्थान पर लड़ने के लिए अस्त्र न थे। फलतः उन्हें उन पाँच सौ विद्रोहियों से समझौते के लिए बात-चीत चलानी पड़ी। उस्मान ने कहा कि वे वापस चले जायें और वचन दिया कि उनकी सब शिकायतें दूर की जाएंगी। पर उनके वंश वाले

उमैय्यदों ने अपना सर फिर उठाया और उस्मान पर जोर दिया कि वे शुक्रवार को नमाज के अपने भाषण में कहें कि मिस्र के विद्रोही इसलिए वापस चले गए कि उन लोगों ने देखा कि वे खुद गलती पर थे। इस पर मदीना वाले इतने क्रुद्ध हो गए कि उन्होंने खलीफा को गालियाँ दीं और उन्हें पत्थरों से मारा। वे बेहोश हो गए और उसी हालत में उनको मस्जिद से वापस लाना पड़ा। मस्जिद में अब भविष्य में वे कभी न आने को थे।

मदीनावासी उस्मान के मकान के सामने इकट्ठा हुए। वे लोग वहाँ से हटने को तैयार न थे। मिस्रवासी विद्रोही भी वापस आ गए। उन लोगों ने कहा कि मिस्र के गवर्नर इब्न-अबी-सार को खलीफा द्वारा भेजा गया एक पत्र उनके हाथ लगा है जिसमें आदेश दिया गया था कि विद्रोहियों के मिस्र लौट आने पर उनके नेताओं को उनके पदों से हटा दिया जाय। खलीफा उस्मान ने पत्र उनके समक्ष पेश किये जाने पर कहा कि उन्हें ऐसे किसी पत्र की जानकारी नहीं है। इस पर विद्रोहियों द्वारा कहा गया कि यदि ऐसा कुछ उनके पीठ पीछे हो रहा है तो उन्हें गद्दी छोड़ देनी चाहिए। उन्होंने खलीफा के पद की प्रतिष्ठा के अनुरूप इस धृष्टतापूर्ण सुझाव को अस्वीकार कर दिया। इस पर उनका मकान चारों ओर से घेर लिया गया। मकान की रक्षा केवल उनके कुछ संबंधी, दास और आश्रित कर रहे थे। इस विद्रोह को सचमुच भड़काने वाले अली, तलहा और जुबेर पीछे ही थे ताकि उन्हें कोई देख न सके। पैगम्बर मुहम्मद की चालाक पत्नी आयशा ने भी, जो विद्रोह भड़काने में से थी, मक्का की तीर्थ यात्रा पर जाने का बहाना करके नगर छोड़ दिया ताकि वह बाद में उपस्थित न रहे।

अन्तिम लड़ाई उस्मान के रक्षकों में से एक ने शुरू की। उसने विद्रोहियों पर एक पत्थर फेंक दिया जिससे एक मिस्रवासी मारा गया। जब उस व्यक्ति को उस स्थान से निकाल देने की माँग न मानी गई तो विद्रोही मकान तोड़ कर उसमें घुस गए और खलीफा को, जो लड़ाई में कोई भाग न लेते हुए प्रार्थना कर रहे थे, मार डाला और घर लूट लिया। यह घटना १७ जून, ६५६ को हुई। उनका खून कुरान की उस प्रति पर बह गया जिसे वे मारे जाने के समय पढ़ रहे थे। उस प्रति को एक ध्वंसावशेष की भाँति छिपा दिया गया, पर कई पुस्तकालयों ने दावा किया कि उनके पास उस कुरान की सच्ची प्रति है। उस्मान की पत्नी नायला ने, जो खुद घायल हो गई थी, अपने कुछ मित्रों के साथ रात के सन्नाटे में उस्मान की लाश गाड़ दी। नायला की कुछ कटी हुई उंगलियाँ सीरिया के गवर्नर और उस्मान के चचेरे भाई मुआविया के पास भेजी गईं। उसने मंच से वे उंगलियाँ धर्मविश्वासियों को दिखलाईं और उन्हें खलीफा की मृत्यु का बदला लेने के लिए प्रेरित किया। मुआविया ने जो सेना खलीफा के सहयोगियों की मदद के लिए मदीना भेजी थी वह

खलीफा की मृत्यु की खबर पाकर बीच रास्ते से ही लौट आई। अपनी हत्या के समय उस्मान ८२ वर्ष के थे। कुछ लोगों का कहना है कि वे ८६ वर्ष के थे। वह औसत कद के आदमी थे और दाढ़ी रखते थे। वह मजबूत शरीर पर कमजोर चरित्र के व्यक्ति थे। उनका मुख्य गुण उनकी धर्म-परायणता थी। वह अक्सर अपने सम्बन्धियों को उपहार भेंट किया करते थे और कई अवसरों पर अपने प्रतिभावान पर दुष्ट सलाहकार मरवान को राज्य कोषागार से धन दिया। इस कारण वह स्वभावतः जनता के बीच बहुत बदनाम हो गए।

उस्मान की हत्या के परिणाम

इस पूरी अवधि के दौरान उस्मान की हत्या के परिणाम दूरव्यापी हुए। प्रसिद्ध जर्मन इतिहासकार वेलहौसन ने कहा है—"उस्मान की हत्या जितनी युगान्तकारी थी उतनी इस्लाम के इतिहास की और कोई घटना न थी।" इस्लाम की एकता, जिसे प्रथम दो खलीफाओं ने कायम रखा, खत्म हो गई और मुसलमानों के बीच गंभीर मतभेद पैदा हो गए। मुस्लिम जगत दो दलों—उमैय्यदों और हाशिमितों—में बँट गया। मुआविया के नेतृत्व में उमैययदों ने उसमान के खून का बदला लेने के लिए अली से बहुत लंबे अरसे तक लड़ाई की और अन्त में उमैय्यद राजवंश की स्थापना की। श्री जोसेफ हेल कहते हैं—"उस्मान की हत्या गृहयुद्ध के लिए संकेत चिह्न था।" गृहयुद्ध पहले अली, तलहा और जुबैर के साथ हुआ और फिर अली और मुआविया के बीच। उसका अन्त कर्बला की दुखान्त घटना में हुआ। अली के सत्तारूढ़ होने के बाद मदीना का अधिकार कम होने लगा और दमिश्क का अधिकार बढ़ने लगा। उस्मान की मृत्यु के समय से प्रान्तीय नगरो ने प्रधानता के लिए संघर्ष किया जिसका प्रभाव जल्द ही देखा गया।

उस्मान के समय का इतिहास उमैय्यदों और अब्बासीदों के बीच जलन और द्वेष की भावना से पूर्ण था। जब अब्बासीद सत्तारूढ़ हुए तो उन्होंने उमैय्यदों का इतिहास कलंकित करने की कोशिश की। विलियम म्यूर का कहना है—"अधिकांश हदीसों ने खलीफा के बदनाम चचेरे भाई मरवान पर आरोप लगाया है कि उसीने खलीफा के आदेश लिखे और उनको मुहरबन्द किया। मरवान को उस काल की सम्पूर्ण हदीस में गालियाँ मिली हैं और उस्मान की सभी समस्याओं का कारण उसे ही बताया गया है। पर स्पष्ट रूप से यह सब अब्बासीदों द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर कही गई बातें हैं जो उमैय्यदों के प्रति उनकी घृणा के भाव से ओत-प्रोत हैं।" वह आगे लिखते हैं—"कुछ अधिकारियों के अनुसार उस्मान ने लूट-मार का सरकारी हिस्सा मरवान को, जो उनका प्रधान मंत्री था, भेंट स्वरूप दिया। वे लोग आगे कहते हैं कि उस्मान पर चलाये जाने वाले महाभियोग का एक आधार यह भी था। पर यह एक दल द्वारा दूसरे दल के विरुद्ध मिथ्यापवाद या निन्दा जैसा है।"

मध्यकालिक इस्लाम का विद्यार्थी यह भी जानता है कि उमर और अली भी जिनके लिए विद्रोहियों ने लड़ाई लड़ी और उस्मान की हत्या की, मार डाले गए। इसलिए उस्मान की हत्या के आलोक में उनके बारे में कोई निर्णय देना उचित न होगा।

उस्मान के शासन और उनके चरित्र का मूल्यांकन

कोई भी व्यक्ति इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि उस्मान के शासन में इस्लाम के साम्राज्य पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने न केवल विद्रोहों को कड़ाई से दबा दिया बल्कि अफगानिस्तान, तुर्किस्तान और खुरासान को इस्लाम के साम्राज्य में मिला लिया। रोमन लुटेरे भगा दिये गए और उसके अलावा आर्मेनिया, अजरबैजान और एशिया माइनर भी इस्लाम के साम्राज्य में मिलाये गए। उस्मान के शासन में ही इस्लाम की प्रथम नौसेना विजय आरम्भ हुई और मुसलमानों के जहाजों ने साइप्रस द्वीप पर कब्जा किया। सिकंदरिया को रोमनों से फिर छीना गया और सीजर की शक्ति हमेशा के लिए कुचल दी गई। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि उस्मान के शासन में इस्लाम की शक्ति अपने चरम विन्दु पर थी।

खलीफा सरकारी कोषागार से कुछ भी ग्रहण न करते थे। दूसरी ओर वे जनता के कल्याण पर अपना ही धन व्यय करते थे। तबारी का कहना है कि उन्होंने (उस्मान ने) अपने जीवन के अन्तिम दिनों में दो ऊँटों को, जो तीर्थ-यात्रा के लिए रख छोड़े गए थे, अपना सभी धन जनता के कल्याण के लिए ख़र्च कर दिया। उन्होंने प्रशासन का मौजूदा स्वरूप नहीं बदला। सलाहकार परिषद कायम रखी गई और परिषद द्वारा ही सब मामले तय किए जाते थे। राज्य के सभी विभाग उसी तरह कायम रखे गए जिस तरह उमर के शासन में थे। राजस्व विभाग खूब बढ़ रहा था। साम्राज्य के विभिन्न भागों में कई नये भवन बनाये गए और सड़कें, पुल, मस्जिदें और अतिथि-गृह बनवाये गए। मदीना को बाढ़ों से बचाने के लिए एक बड़ा पुल बनवाया गया मदीना में जल की आपूर्ति के लिए व्यवस्था की गई।

उस्मान ईमानदार, कर्तव्यपरायण और उदार थे। पवित्रता और ईमानदारी में उस्मान पर्वत की भाँति दृढ़ थे। उनके चरित्र का सबसे प्रमुख गुण नम्रता थी। खलीफा के पास धन-दौलत इफरात थी पर वह सादे लिबास और सादे भोजन में सन्तुष्ट थे। उन्होंने इस बात का खास ध्यान रखा कि कुरान के बिखरे हुए भाग एक खंड में संग्रहीत कर दिए जायँ। अपने भाई मुसलमानों के प्रति उनके प्रेम का यह प्रतीक था कि उन्होंने उन पर तलवार चलाने के बजाय अपना ही बलिदान कर दिया। वैसे व्यक्ति को, जिसने इस्लाम की एकता और अपनी प्रजा के कल्याण

के लिए अपने जीवन का बलिदान किया सच्चा देशभक्त और दयालु शासक कहा जा सकता है। उस्मान के चरित्र के बारे में प्रो० हिट्टी ने कहा है—"उस्मान, जिन्होंने अल्लाह के शब्दों को एक अपरिवर्तनीय रूप में ढाल दिया और जिनके शासन में ईरान, अजर बैजान और आर्मेनिया के हिस्सों पर इस्लाम का पूरा कब्जा हो गया, एक धर्मात्मा और अच्छे इरादों वाले वृद्ध पुरुष थे पर वे चरित्र के कमजोर थे और अपने लोभी सम्बन्धियों के दुराग्रहों को जीत न सके। उन्होंने अपने दत्तक भाई अब्दुल्ला को मिस्र का गवर्नर नियुक्त किया। अब्दुल्ला पहले पैगम्बर मुहम्मद का लिपिक था। उसने कुरान के रहस्योद्घाटनों के शब्दों में हेरफेर की थी और वह उन दस व्यक्तियों में से था जो मक्का-विजय के बाद पैगम्बर द्वारा गैर-कानूनी आचरण वाले घोषित किये गए थे। उन्होंने अपने सौतेले भाई अल वलीद इब्न उकबा को कूफा का गवर्नर बनाया। उस्मान ने अपने चचेरे भाई मरवान इब्न अल हकाम को, जो भविष्य में उमैय्यद खलीफा बनने वाला था, दीवान या वित्त विभाग का प्रभारी बना दिया। बहुत-से पद खलीफा के वंश-उमैय्यद के लोगों द्वारा भरे गये। खलीफा स्वयं अपने गवर्नरों या उनके समर्थकों द्वारा भेजे गए उपहार स्वीकार करते थे। यहाँ तक कि बसरा के गवर्नर ने एक सुन्दरी खलीफा को उपहार स्वरूप भेजी जिसे उन्होंने स्वीकार किया। उनके विरुद्ध भाई-भतीजावाद के आरोप खुलेआम लगाये जाते थे। उनके बदनाम प्रशासन के विरुद्ध असन्तोष को खलीफा पद के तीन कुरैश उम्मीदवारों अली, तलहा और अल जुबैयर द्वारा भड़काया जाता था।"[१४] इस प्रकार इस्लाम का वह युग जिसमें पितातुल्य खलीफाओं ने शासन किया और जिसमें पैगम्बर के प्रति श्रद्धायुक्त भय और मदीना के साथ पवित्र सम्बन्ध उनके उत्तराधिकारियों के जीवन में प्रेरक शक्ति जैसे थे, सत्ता हथियाने के लिए रक्त-रंजित युद्ध में समाप्त हुआ। पहले यह युद्ध अली और उसके निकट के प्रतिद्वन्द्वियों तलहा और जुबैर के बीच हुआ और फिर अली और गद्दी के नये उम्मीदवार मुआविया के बीच हुआ। मुआविया उमैय्यद वंश के, जिसके एक प्रतिनिधि उस्मान थे, उद्देश्यों को आगे बढ़ाने वाला था।

अली इब्न अबी तालिब : (६५६-६६१)

प्रारम्भिक जीवन—चौथा खलीफा अली पैगम्बर मुहम्मद के चाचा अबू तालिब का पुत्र था। पैगम्बर मुहम्मद के दादा अब्दुल मुतल्लिब की मृत्यु के बाद अबू तालिब ने अपनी संरक्षकता में उन्हें रखा और पाला-पोसा। उसका उपनाम अबू तोराब था। वह बनू हाशिम वंश का था। पैगम्बर भी उसी वंश के थे। काबा के पवित्र गृह के सभी कार्य इसी वंश को सौंपे गए थे। अली का जन्म

१४. फिलिप के० हिट्टी—हिस्ट्री ऑव अरब्स, लंदन, १९६०, पृ० १७६-१७७

पैगम्बर मुहम्मद द्वारा इस्लाम धर्म अपनाने का आह्वान दिये जाने के दस वर्ष पूर्व हुआ था। अली का विवाह पैगम्बर की प्रिय पुत्री फातिमा से हुआ था। अली पैगम्बर के दो जीवित नातियों, हसन और हुसैन, का पिता भी था। अली हजरत मुहम्मद के पैगम्बर होने में विश्वास करने वाला पहला या दूसरा पुरुष था।

हिजरत के मौके पर अली को मक्का में छोड़ दिया गया और उस अवधि में इस्लाम के इतिहास में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जिस रात पैगम्बर तथा उनके साथियों द्वारा मक्का छोड़ कर मदीना जाने का अवसर आया और पैगम्बर का घर दुश्मनों द्वारा घेर लिया गया था तो उन्होंने अली से कहा कि वह उनके विस्तर पर सो रहे। अली द्वारा वैसा करने के वाद रात के अँधेरे में पैगम्बर मदीना तक सुरक्षित पहुँच गये। जब दुश्मनों ने देखा कि पैगम्बर के विस्तर पर अली था तो उन्हें वड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्हें उससे कुछ लेना-देना नहीं था। दुश्मनों ने पैगम्बर को मारने का निश्चय किया था और जब उनका यह प्रयत्न असफल हो गया तो फिर वे अपने कामकाज में लौट गए। जब दुश्मन लौट गए तो अली पैगम्बर के पास मदीना चल पड़ा और वहाँ इस्लाम की वड़ी सेवा की।

अली में अद्भुत हिम्मत थी जिससे उसने इस्लाम की सेवा की। उसने प्राय: हर युद्ध में, जो पैगम्बर मुहम्मद के जीवनकाल में हुए, भाग लिया। बद्र के युद्ध से लेकर सभी युद्धों में अली ने अभूतपूर्व वीरता दिखाई। उस युद्ध में और उसके बाद सभी युद्धों में अली ने पैगम्बर मुहम्मद के रूप में काम किया और दुश्मनों का सफाया किया। उहुद की लड़ाई में अली मैदान में डटा रहा। हिजरा संवत के छठे वर्ष में अली ने खैबर के यहूदियों के नेता बनू साद को हराया। हुदेबिया की सन्धि के अवसर पर वह मौजूद था और उसने लिपिक का काम किया। उसकी सभी सैनिक विजय में खैबर के प्रसिद्ध किले कामुस की विजय सबसे महत्त्वपूर्ण थी। हिजरा संवत के दसवें वर्ष में अली को इस्लाम का प्रचार करने के लिए यमन भेजा गया और यह उसकी योग्यता का ही फल था कि यमन प्रान्त में पहली बार इस्लाम का प्रचार किया जा सका। अबू बकर के प्रथम खलीफा होने के समय उसने उनका पूरा समर्थन किया और उनका अभिन्न मित्र वना रहा। जब अरब में कुछ लोग पैगम्बर वने तो उनसे इसने राजधानी मदीना की रक्षा करने में समुचित योगदान किया। प्रथम खलीफा अबू बकर की मृत्यु के वाद उसने द्वितीय खलीफा उमर के प्रति निष्ठा की कसम खाई और राज्य के प्रशासन में उनका वरावर साथ दिया। उस्मान के तृतीय खलीफा के रूप में चुनाव के अवसर पर अली ने उनके पक्ष में मत दिया।

अली की खिलाफत और उसकी समस्यायें

पर तृतीय खलीफा उस्मान की मृत्यु के बाद सब कुछ गड़बड़ हो गया। मदीना नगर में उपद्रव और अशांति का भयानक दौर आ गया। विद्रोहियों के तीन दलों में मिस्र सबसे ज्यादा शक्तिशाली था। पाँच दिनों में मिस्री नेता इब्न-इ-संबा ने अली का समर्थन करते हुए कहा कि वह पूरी तरह वैध खलीफा है और पैगम्बर ने उसके लिए वसीयत की है। बाद में उस्मान की हत्या के बाद २४ मई, ६५६ को मदीना में पैगम्बर की मस्जिद में, बिना किसी विरोध के, अली चौथा खलीफा घोषित किया गया। वास्तव में पूरे मुस्लिम जगत ने खलीफा के रूप में उसे मान्यता दी। वह मिलनसार, धर्मनिष्ठ और वीर था। वह जिस दल का प्रतिनिधित्व करता था उसका नाम था—'**अहल अल-नास व-अकल-तयीन** (दैवी धर्मविधि और निर्देश के लोग—दक्षिणपंथी)।' इस दल ने जोर देकर कहा था कि आरम्भ से ही अल्लाह और उसके पैगम्बर ने स्पष्ट रूप से अली को ही खलीफा बनने का निर्देश दिया था। पर प्रथम तीन खलीफाओं ने धोखा देकर उसे उसके जायज पद से अलग रखा। अली राज्य परिषद का प्रमुख सदस्य था। वह अपने पूर्व के तीन खलीफाओं को सलाह और मार्गदर्शन देकर उनकी सहायता के लिए बराबर तैयार रहता था। द्वितीय खलीफा उमर के समय में जो अनेक प्रशासनिक कार्य किये गए उनमें से कई अली की सलाह से किये गये। वास्तव में उनके पूर्व के खलीफा उन पर बहुत हद तक निर्भर करते थे। जब वे बाहर जाते थे तो राज-काज चलाने के लिए मदीना में अली को अपना प्रतिनिधि बना कर जाते थे। इस पूरे समय में अली ने अपना चरित्र उच्च किस्म का तथा स्वतंत्र बना रखा था। वह खुद पढ़ने-लिखने और अपने पुत्रों को शिक्षा देने के काम में ही लगा रहता था। खलीफा चुने जाने पर वह अपनी सामान्य सादगी के साथ सार्वजनिक मस्जिद में गया और वहाँ झुक कर जनता द्वारा उसके प्रति प्रकट की गई निष्ठा स्वीकार की। उसने उस समय यह भी कहा कि खलीफा पद के लिए यदि उससे योग्य कोई और व्यक्ति आया तो वह अपने पद से हट जाएगा।

सत्ता संभालने के बाद नये खलीफा अली के समक्ष अनेक समस्यायें आईं। उसकी प्रथम समस्या थी कि खलीफा पद के लिए, जिसे उसने अभी तुरत संभाला था, अपने दो प्रतिद्वन्द्वियों तलहा और इब्न-अल जुबैर[१५] को उनके पदों से हटाये। ये दो मक्का दल का प्रतिनिधित्व करते थे। तलहा और अल-जुबैर के अनुयायी हेज्जाज और ईराक में थे। उन लोगों ने अली के खलीफा पद संभालने का विरोध किया। तलहा और जुबैर तृतीय खलीफा उस्मान का विरोध करने में अली के साथ

१५. इब्न अल जुबैर की माँ पैगम्बर के पिता की बहन थी।

में थे पर बाद में उन्होंने उसका साथ छोड़ दिया और उस पर उस्मान की हत्या का आरोप लगाया। वे लोग आयशा[१६] (पैगम्बर की सबसे प्रिय पत्नी) के साथ-साथ मक्का गये। वह "धर्मविश्वासियों की माँ" कही जाती थी। अली के प्रति उसकी घृणा अभी भी वर्तमान थी। जब उसे मालूम हुआ कि अली ने खलीफा पद की शपथ ले ली है तो उसने धर्म-विश्वासियों को बुलाया और उनसे कहा कि वे उस्मान की हत्या का बदला लें। आयशा के साथ न केवल उमैय्यदों (उस्मान के वंश के लोग) ने दिया बल्कि उन लोगों ने भी उसका साथ दिया जिनकी आयशा के साथ सिर्फ इसी बात में समानता थी कि वे भी अली से नफरत करते थे। इब्न-अमीर की सलाह पर उन लोगों ने बसरा की ओर बढ़ने का निश्चय किया। वह वहाँ बहुत दिनों तक रहा था और वहाँ अब भी उससे सम्बन्धित बहुत-से लोग थे। तृतीय खलीफा उस्मान की मृत्यु के चार महीनों के बाद षडयंत्रकारी ईराक वाले एक शिविर में इकट्ठे होने के बाद ईराक के लिए रवाना हुए।

बसरा पहुँचने के बाद उन लोगों ने धोखेबाजी के साथ वहाँ के गवर्नर को हटा दिया जो उन लोगों में शामिल हो जाने के बजाय खलीफा अली के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था। नगर पर कब्जा करने के बाद तलहा और जुबैर के बीच इस बात पर झगड़ा हो गया कि नमाज का नेतृत्व कौन करेगा। आयशा ने इस झगड़े को तत्काल यह निर्णय देकर सुलझाया कि नमाज का नेतृत्व उसका भतीजा और जुबैर का पुत्र अब्दुल्ला करेगा।

चूँकि अली के साथ कोई सेना न थी इसलिए वह मदीना में भी न रह सका। अक्टूबर ६५६ में वह करीब सौ आदमियों के साथ ईराक के लिये रवाना हुआ। उसे उम्मीद थी कि उसे कूफा में समर्थक मिल जाएँगे। यह ईराक की दूसरी फौजी छावनी थी जहाँ के लोग, शुरू से ही, बसरा के लोगों से एक प्रकार की ईर्ष्या रखते थे। अली ने पहले अपने पुत्र हसन को वहाँ भेजा। वह वहाँ के सैनिकों को अपने पिता के पक्ष में लाने में सफल हुए। पर अली उस समय भी 'धु-कार' में अपने शिविर में था। जब उसके साथ बारह हजार कूफावासी इकट्ठा हो गए तो वह वहाँ से बसरा के लिए रवाना हुआ। वहाँ तलहा और जुबैर के साथ उसकी

१६. इब्न हिशाम के अनुसार जवान आयशा का जब पैगम्बर मुहम्मद से विवाह हुआ था तो वह केवल नौ या दस वर्ष की थी। वह जब अपने ससुराल गई तो अपने पिता (अबू बकर) के घर से अपने साथ खिलौने लेती गई। वह चोट खाये अभिमान की पूरी कटुता के साथ अली से घृणा करती थी। एक बार जब वह अपने पति पैगम्बर के कारवाँ के पीछे टहल रही थी तो अली ने उसकी सच्चरित्रता में संदेह किया था।

समझौता-वार्ता विफल हो गई तो दोनों पक्षों में लड़ाई शुरू हुई। तलहा बुरी तरह घायल हुआ। जुबैर लड़ाई के मैदान से भागते हुए मारा गया। आयशा ऊँट पर सवार हो कर, पुरानी अरब प्रथा के अनुसार, अपने सैनिकों को उत्साहित कर रही थी। उसी समय युद्ध का अन्त हो गया। अली के पहले के खलीफा और बाद के अधिकांश खलीफा स्वयं युद्ध में न जाते थे पर अली ने स्वयं युद्ध में भाग लिया। वह अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए युद्ध-स्थल गया और लड़ाई में भी सेना का नेतृत्व किया। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर ९ दिसम्बर, ६५६ को आसानी से विजय प्राप्त कर ली। लड़ाई बसरा के बाहर लड़ी गई। इसे 'ऊँट का युद्ध' कहा जाता है क्यों कि पैगम्बर मुहम्मद की पत्नी आयशा ने ऊँट पर चढ़ कर विद्रोही सेना को प्रोत्साहित करने की कोशिश की थी। अली के दोनों प्रतिद्वन्द्वी तलहा और जुबैर मारे गए। अली ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया और सम्मान के साथ उन्हें दफनाया।[१७] आयशा पकड़ी गई, पर उसके साथ भी अली सम्मान के साथ पेश आया जो "देश की प्रथम महिला" के अनुरूप था। उसे मदीना वापस भेज दिया गया। आयशा ने विजेता अली को अपना समर्थन देने का वचन दिया पर उसने उसका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। आयशा की मृत्यु ६४ वर्ष की आयु में १३ जुलाई, ६७८ को हुई।[१८] इस प्रकार मुसलमानों की पहली आपसी लड़ाई का अन्त हुआ पर यह उनके बीच की अन्तिम लड़ाई न थी। वंशगत लड़ाइयों का क्रम, जिनसे इस्लाम बीच-बीच में अशान्त और उद्वेलित होता रहा है और उसकी नींव हिलती रही है, अभी शुरू ही हुआ था।

अब अली पूरे ईराक में खलीफा माना जाने लगा। वहीं कूफा में उसने अपना निवास-स्थान बनाया। इसका फल यह हुआ कि अब इस्लाम का नेतृत्व अरब और विशेषकर मदीना से हट गया और प्रान्तों की ओर चला गया जहाँ काफी लंबे समय से भौतिक सुख-साधन केन्द्रित थे। पैगम्बर मुहम्मद के जो साथी मदीना में रह गए उनकी सभी राजनीतिक शक्ति खत्म हो गई और उन्होंने हदीस को पढ़ने का अभ्यास जारी रखा। उन लोगों के वातावरण में हजरत मुहम्मद की हदीस पर, जिसके बारे में माना जाता रहा है कि उसके अनुसार व्यक्ति और समुदाय अपना जीवन ढालेंगे, उत्साह के साथ विचार-विमर्श होता रहा। उस हदीस को मानक के तौर पर निर्धारित किया गया। पर धार्मिक कार्यकलाप, जो हम प्रति दिन की नमाजों की संख्या में देखते हैं, नये वातावरण से अछूता न रह सका। मदीना-

---

१७. अल जुबैर के मकबरे के आस-पास उसके नाम का शहर बस गया।

१८. एन० एबोट, आयशा, शिकागो, १९४२।

वासियों ने खिलाफत के विषय में जो राजनीतिक सिद्धान्त स्थिर किये उनको कभी पूरी तरह कार्य रूप में परिणत न किया जा सका।

नागरिक जीवन के बारे में हर व्यक्ति के मामले में कोशिश की गई कि वह इस्लाम के सिद्धान्तों पर ढाले गए सामान्य कानून के अनुसार बने। इस कानून के प्रान्तीय रोमन कानूनों द्वारा प्रभावित होने की सम्भावना तो थी ही। कोई काम किया जाना चाहिए या नहीं, इस बात का निर्णय नीति शास्त्र के अनुसार होता था न कि कानून के अनुसार। हदीस का अलिखित और मौखिक रूप ही बहुत दिनों तक बना रहा। यदि उसका कोई लिखित रूप था भी तो केवल कुछ आदमियों के हाथों में ही था। इस प्रकार एक शताब्दी बीत गई और तब जाकर हदीस और कानूनी संहिता को लिखित रूप दिया गया। मदीना शहर, जो कि पहले निकट पूर्व के शासन का केन्द्र था, अब धर्मनिष्ठ लोगों के अध्ययन का केन्द्र बन गया। वहाँ के कुलीन लोग, जिनके हाथों से शासन प्रान्तों के प्रधानों ने छीन लिया, अब जिन्दगी के सस्ते मौज मजे का सुख उठाने में डूब-से गये। मक्का में एक अमीर नागरिक ने, जिसका सरकार से कोई सम्बन्ध न था, पहले क्रीड़ा और अध्ययन-कक्ष का निर्माण कराया। इस कक्ष में अतिथियों के लिए शतरंज आदि खेलों और पुस्तकों की व्यवस्था थी। मदीना में कवि अल-अहवास ने प्रेम की कविता का आरम्भ किया और फारसी गायक यूनुस ने संगीत को नये विदेशी स्वर-माधुर्य से सजा कर उसे बढ़िया तथा सुन्दर रूप दिया। पर मदीना में मनबहलाव के सभी साधन इस प्रकार निर्दोष न थे। मदीना की प्रसिद्धि अब सर्वश्रेष्ठ गायिकाओं के नगर के रूप में ही न रही बल्कि वहाँ ऐसी गाने वाली लड़कियाँ भी मिलने लगीं जो अपने जिस्म को बेचने के लिए भी तैयार रहती थी।

मुआविया के साथ शत्रुता और सिफिन की लड़ाई

अली खलीफा की गद्दी पर सुरक्षित न बैठ सका। उसने नई राजधानी कूफा में अपने शासन का आरम्भ इस प्रकार किया कि अपने पूर्व के खलीफा द्वारा प्रान्तीय गवर्नरों के रूप में चुने गए अधिकांश व्यक्तियों को सत्ता से हटा दिया और अन्य गवर्नरों से निष्ठा की शपथ दिलाई। इनमें से एक सीरिया के गवर्नर और भूतपूर्व खलीफा उस्मान के वंश के मुआविया इब्न अबी-सूफयान से अली की पटरी न खाई। मुआविया ने अपने को खलीफा उस्मान की हत्या का बदला लेने वाला घोषित न किया बल्कि अपने को खिलाफत की वैधता का पक्षधर घोषित किया। पर वह इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पूरा करता उसके पहले उसके लिए अपने प्रान्त को सुरक्षित करना आवश्यक था। इस प्रान्त पर बैजेन्टाइनों से अब भी खतरा था। इस खतरे को दूर करने के लिए मुआविया को सबसे अधिक मिस्र की जरूरत थी वहाँ

खलीफा अली ने जिसे गवर्नर बना कर भेजा था उसे बन्दी बनाने में मुआविया को सफलता मिली। पर इसके पहले कि वह मिस्र पर कब्जा करने के लिए बढ़ता उसे अली से हिसाब-किताब पूरा करना था। अली को खलीफा के रूप में पूरे साम्राज्य द्वारा मान्यता दिये जाने के लिए सबको बाध्य करना आवश्यक था। मुआविया ने दमिश्क की मस्जिद में बूढ़े खलीफा उसमान की हत्या के समय की उसकी खून से लथपथ कमीज और उसे बचाते हुए उसकी पत्नी नायला की दो कटी उँगलियां दिखाई। नाटककार शेक्सपीयर के नाटक जूलियस सीजर में जिस प्रकार जूलियस सीजर के कथित अन्यायों के विरुद्ध एन्टोनी ने वकालत की थी उसी प्रकार मुआविया ने अपने भाषण में खलीफा अली के विरुद्ध कुशलता के साथ तर्क दिये। मुआविया ने अली के सामने उभय-संकट की स्थिति पेश करते हुए यह तर्क दिया कि—"या तो उस्मान के हत्यारों को पेश करो या उस हत्या में सहापराधी बन कर अपने को खलीफा पद के लिये अयोग्य बताओ।" अब यह प्रश्न व्यक्तिगत न रहा। इसने व्यक्ति या परिवार का भी अतिक्रमण कर दिया। अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि कूफा (ईराक) या दमिश्क (सीरिया) में से कौन स्थान इस्लाम की सत्ता का केन्द्र बनता है? अली ने खलीफा बनते ही सन् ६५६ में इस्लाम का उस समय तक का सत्ता-केन्द्र मदीना छोड़ दिया था जहां वह फिर कभी नहीं गया। अतः अब मदीना के सत्ता-केन्द्र बनने का प्रश्न ही नहीं रहा। इस्लाम को दूर-दूर स्थानों में जो विजय मिली उस कारण सत्ता का केन्द्र उत्तरी क्षेत्र बन गया।

वासियों ने खिलाफत के विषय में जो राजनीतिक सिद्धान्त स्थिर किये उनको कभी पूरी तरह कार्य रूप में परिणत न किया जा सका।

नागरिक जीवन के बारे में हर व्यक्ति के मामले में कोशिश की गई कि वह इस्लाम के सिद्धान्तों पर ढाले गए सामान्य कानून के अनुसार बने। इस कानून के प्रान्तीय रोमन कानूनों द्वारा प्रभावित होने की सम्भावना तो थी ही। कोई काम किया जाना चाहिए या नहीं, इस बात का निर्णय नीति शास्त्र के अनुसार होता था न कि क़ानून के अनुसार। हदीस का अलिखित और मौखिक रूप ही बहुत दिनों तक बना रहा। यदि उसका कोई लिखित रूप था भी तो केवल कुछ आदमियों के हाथों में ही था। इस प्रकार एक शताब्दी बीत गई और तब जाकर हदीस और कानूनी संहिता को लिखित रूप दिया गया। मदीना शहर, जो कि पहले निकट पूर्व के शासन का केन्द्र था, अब धर्मनिष्ठ लोगों के अध्ययन का केन्द्र बन गया। वहाँ के कुलीन लोग, जिनके हाथों से शासन प्रान्तों के प्रधानों ने छीन लिया, अब जिन्दगी के सस्ते मौज मजे का सुख उठाने में डूब-से गये। मक्का में एक अमीर नागरिक ने, जिसका सरकार से कोई सम्बन्ध न था, पहले क्रीड़ा और अध्ययन-कक्ष का निर्माण कराया। इस कक्ष में अतिथियों के लिए शतरंज आदि खेलों और पुस्तकों की व्यवस्था थी। मदीना में कवि अल-अहवास ने प्रेम की कविता का आरम्भ किया और फारसी गायक यूनुस ने संगीत को नये विदेशी स्वर-माधुर्य से सजा कर उसे बढ़िया तथा सुन्दर रूप दिया। पर मदीना में मनबहलाव के सभी साधन इस प्रकार निर्दोष न थे। मदीना की प्रसिद्धि अब सर्वश्रेष्ठ गायिकाओं के नगर के रूप में ही न रही बल्कि वहाँ ऐसी गाने वाली लड़कियाँ भी मिलने लगीं जो अपने जिस्म को बेचने के लिए भी तैयार रहती थी।

मुआविया के साथ शत्रुता और सिफिन की लड़ाई

अली खलीफा की गद्दी पर सुरक्षित न बैठ सका। उसने नई राजधानी कूफा में अपने शासन का आरम्भ इस प्रकार किया कि अपने पूर्व के खलीफा द्वारा प्रान्तीय गवर्नरों के रूप में चुने गए अधिकांश व्यक्तियों को सत्ता से हटा दिया और अन्य गवर्नरों से निष्ठा की शपथ दिलाई। इनमें से एक सीरिया के गवर्नर और भूतपूर्व खलीफा उस्मान के वंश के मुआविया इब्न अबी-सूफयान से अली की पटरी न खाई। मुआविया ने अपने को खलीफा उस्मान की हत्या का बदला लेने वाला घोषित न किया बल्कि अपने को खिलाफत की वैधता का पक्षधर घोषित किया। पर वह इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पूरा करता उसके पहले उसके लिए अपने प्रान्त को सुरक्षित करना आवश्यक था। इस प्रान्त पर बैजेन्टाइनों से अब भी खतरा था। इस खतरे को दूर करने के लिए मुआविया को सबसे अधिक मिस्र की जरूरत थी वहाँ

खलीफा अली ने जिसे गवर्नर बना कर भेजा था उसे बन्दी बनाने में मुआविया को सफलता मिली। पर इसके पहले कि वह मिस्र पर कब्जा करने के लिए बढ़ता उसे अली से हिसाब-किताब पूरा करना था। अली को खलीफा के रूप में पूरे साम्राज्य द्वारा मान्यता दिये जाने के लिए सबको बाध्य करना आवश्यक था। मुआविया ने दमिश्क की मस्जिद में बूढ़े खलीफा उसमान की हत्या के समय की उसकी खून से लथपथ कमीज और उसे बचाते हुए उसकी पत्नी नायला की दो कटी उँगलियाँ दिखाईं। नाटककार शेक्सपीयर के नाटक जूलियस सीजर में जिस प्रकार जूलियस सीजर के कथित अन्यायों के विरुद्ध एन्टोनी ने वकालत की थी उसी प्रकार मुआविया ने अपने भाषण में खलीफा अली के विरुद्ध कुशलता के साथ तर्क दिये। मुआविया ने अली के सामने उभय-संकट की स्थिति पेश करते हुए यह तर्क दिया कि—"या तो उस्मान के हत्यारों को पेश करो या उस हत्या में सहापराधी बन कर अपने को खलीफा पद के लिये अयोग्य बताओ।" अब यह प्रश्न व्यक्तिगत न रहा। इसने व्यक्ति या परिवार का भी अतिक्रमण कर दिया। अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि कूफा (ईराक) या दमिश्क (सीरिया) में से कौन स्थान इस्लाम की सत्ता का केन्द्र बनता है? अली ने खलीफा बनते ही सन् ६५६ में इस्लाम का उस समय तक का सत्ता-केन्द्र मदीना छोड़ दिया था जहाँ वह फिर कभी नहीं गया। अतः अब मदीना के सत्ता-केन्द्र बनने का प्रश्न ही नहीं रहा। इस्लाम को दूर-दूर स्थानों में जो विजय मिली उस कारण सत्ता का केन्द्र उत्तरी क्षेत्र बन गया।

अल-राक्का के दक्षिण और यूफ्रेटस नदी के पश्चिमी तट पर अली और मुआविया की सेनायें सन् ६५७ की बसंत ऋतु में एक दूसरे का सामना करती हुई खड़ी हो गईं। कहा जाता है कि अली के साथ ५० हजार ईराकियों की सेना थी और मुआविया के साथ सीरिया-निवासियों की सेना थी। इसमें ईराकियों का यह व्यक्तिगत स्वार्थ था कि वे सीरिया-निवासियों की प्रधानता स्वीकार न करना चाहते थे। करीब-करीब एक महीने तक दोनों पक्षों के बीच बातचीत चली जो व्यर्थ रही। अली मुआविया की यह माँग पूरी न कर सका कि उस्मान के हत्यारों को पेश किया जाय। मई महीने में दोनों पक्षों की मुठभेड़ के अलावा कोई रास्ता न बचा। अली को यूफ्रेटस नदी तक अपनी सेना को लाने में सफलता मिली। १९ जून को शांतिपूर्ण मुहर्रम का महीना शुरू हुआ। इस महीने को ध्यान में रखते हुए दोनों पक्षों के बीच युद्ध-विराम समझौता हो गया। पर मुहर्रम के महीने में भी दोनों पक्षों के बीच वार्ता विफल रही और उनके बीच छोटी-मोटी मुठभेड़ें होती रहीं। उनके बीच अंतिम टकराव २६ जुलाई ६५७ को हुआ। कुछ समय तक यों ही टकराव चलते रहे। दोनों पक्षों की सेनाओं में उत्साह की कमी रही। इसका कारण यह था कि दोनों ही सेनाओं में बहुत हद तक एक ही जनजाति के लोग थे। यद्यपि सीरिया

निवासियों में अस्त-व्यस्त ईराकियों से कहीं अधिक सैनिक योग्यता थी, फिर भी मलिक अल-अश्तर के सेनापतित्व में अली की सेना ने विरोधी सीरियाइयों को ऐसी स्थिति में ला दिया कि मुआविया भाग निकलने की सोचने लगा। पवित्र कुरान को पढ़ कर सुनाने वाले कोशिश कर रहे थे दोनों पक्षों में शांति स्थापित हो जाय। उस समय मुआविया के धूर्त और चालाक सेनापति अम्र इब्न-अल-आस ने, जो मिस्र का विजेता और वहाँ का गवर्नर रह चुका था, एक चाल चली। कहा जाता है कि उसने मुआविया को सलाह दी कि वह युद्ध-स्थल में नई सेना इस तरह भेजे कि सैनिकों की वल्लमों में कुरान खोंसा रहे जो इस बात का प्रतीक हो कि शस्त्रास्त्रों से नहीं, अल्लाह के शब्दों से यह निर्णय किया जाय कि मुआविया और अली में से कौन शासक हो। यह बात कोरी अफवाह भी हो सकती है पर यह सच है कि अली को, जिसकी विजय होने की पूरी सम्भावना हो गई थी, उसके ईराकी सैनिकों ने बाध्य किया कि वह लड़ाई न करे और मुआविया से फिर से बातचीत शुरू करे। लड़ाई खत्म हो गई। अपने अनुयायियों द्वारा बाध्य किये जाने पर सीधे-सादे अली ने मध्यस्थता कराने और इस प्रकार मुसलमानों का खून न बहाने का मुआविया का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मध्यस्थता "अल्लाह के शब्दों के अनुसार" (इसका मतलब चाहे जो कुछ भी हो) होनेवाली थी। उस समय तक दोनों ही पक्षों की सेनायें लड़ते-लड़ते थक गई थीं। इतिहासकारों का कहना है कि दोनों पक्षों में कुल मिलाकर ७०,००० आदमी मारे जा चुके थे। अली ने मुआविया का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि मुसलमानों का खून न बहाया जाय और इस मामले में मध्यस्थता कराई जाय। उसके राज्य के समक्ष जो अनेकानेक समस्यायें पेश हो गई थीं उससे अली जरूर ही बहुत ज्यादा घबड़ा गया होगा। वह साठ वर्ष का था और उसके १४ पुत्र और १९ पुत्रियाँ थीं।

दोनों पक्षों से एक-एक मध्यस्थ चुने जाने की बात तय पाई गई। अम्र इब्न-अल-आस, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह राजनीतिक प्रतिभावाला अरब था, मुआविया की ओर से मध्यस्थ चुना गया और अबू मूसा अल-अशरी, जिसकी धर्मनिष्ठता में कोई संदेह न था, अली की ओर से मध्यस्थ चुना गया। मध्यस्थ कुरान के आधार पर दोनों पक्षों के बारे में निर्णय करने वाले थे। तय हुआ कि वे लोग रमजान के महीने में सीरिया और ईराक के बीच एक स्थान पर बैठ कर इस प्रश्न पर विचार करेंगे। मध्यस्थों की अदालत अहुरा में जनवरी ६२९ में बैठी। यह स्थान मदीना और दमिश्क (सीरिया) के मुख्य कारवाँ मार्ग पर मान और पेत्रा के ठीक बीचो-बीच है। दोनों मध्यस्थ चार सौ आदमियों के साथ उपस्थित हुए। पैगम्बर के अनेक प्रमुख साथी भी गवाह के रूप में मौजूद थे। चूंकि मध्यस्थों के बीच बात-

चीत के लिए कोई निश्चित विषय निर्धारित न था इसलिए दोनों पक्षों ने भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार प्रकट किये। ईराकियों (अली) की ओर से कहा गया कि वे लोग अली की खिलाफत की मान्यता से कम किसी बात के लिए राजी नहीं हैं जबकि मुआविया की ओर से कहा गया है कि इस बात की जांच की जाय कि उस्मान की हत्या में दोषी होने के कारण अली को खलीफा बनाना उचित है या नहीं। पर मुवाविया के प्रतिनिधि अम्र इब्न-अल-आस ने दोनों ही प्रतिद्वन्द्वियों (अली और मुआविया) को खलीफा की गद्दी का दावेदार बताया और अपने विरोध पक्ष के मध्यस्थ के सामने एक के बाद एक प्रस्ताव रख कर उसे यह घोषित करने के लिए राजी करने की कोशिश की कि दोनों ही दावेदारों को खलीफा के पद के लिए अयोग्य घोषित किया जाय।

इस ऐतिहासिक बैठक में वास्तव में क्या निर्णय हुआ, यह जानना मुश्किल है। विभिन्न स्रोतों ने इस सम्बन्ध में तरह-तरह के विचार दिये हैं। बहुप्रचारित हदीस में कहा गया है कि दोनों मध्यस्थ इस बात पर राजी हो गए कि खलीफा पद के दोनों ही दावेदारों को अयोग्य सिद्ध किया जाय और किसी अनजान व्यक्ति के इस पद पर आने का रास्ता बनाया जाय। जब दोनों मध्यस्थों में से अधिक उम्र के अबू मूसा ने, जो अली का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, अली की खिलाफत को अवैध घोषित किया तो मुआविया के प्रतिनिधि अम्र ने अपने विरोधी मध्यस्थ अबू मूसा को धोखा दिया और मुआविया को खलीफा पद पर सम्पुष्ट किया। पर इस सम्बन्ध में पैरे लैमन्स के और उसके पूर्व वेल हौसेन[19] का अध्ययन यह सिद्ध करता है कि यह हदीस ईराकियों की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है। इस सम्बन्ध में हमारे अधिकांश वर्त्तमान स्रोत इसी विचारधारा के हैं। यह विचारधारा अब्बासिदों के, जो उमैय्यदों के भयानक शत्रु थे, समय में पली-बढ़ी। शायद हुआ यह था कि दोनों ही मध्यस्थों ने खलीफा पद के दोनों दावेदारों—अली और मुआविया को अयोग्य घोषित किया जिससे वास्तव में नुकसान पहुँचा अली को जो कि वास्तव में खलीफा था। मुआविया तो खलीफा था नहीं इसलिए उसकी हानि होने का कोई प्रश्न न था। वह तो मात्र एक प्रान्त का गवर्नर था। मध्यस्थों की नियुक्ति के कारण मुआविया को अली की स्थिति तक ऊँचा उठा दिया गया और अली की स्थिति काफी नीचे आ गई और वह खलीफा पद के लिए मात्र एक मिथ्या दावेदार बन कर रह गया। मध्यस्थों के निर्णय के कारण अली को वास्तविक पद से हाथ धोना पड़ा और मुआविया को केवल एक गलत दावे से हाथ धोना पड़ा जिस दावे को वह अभी तक खुलेआम न रख सका था। सन् ६६१ में यानी मध्यस्थों की अदालत होने के दो

१९. दी अरब किंगडम एंड इट्स फाल, (अनुवाद), मार्गरेट जी० वीयर, कलकत्ता, १९२७, अध्याय—२।

वर्ष बाद, मुआविया ने जेरुसलेम में अपने को खलीफा घोषित किया। फिर भी मध्यस्थों का निर्णय था कि अली और मुआविया दोनों ही खलीफा पद के लिए अपना दावा छोड़ दें। पर सीरिया के गवर्नर के रूप में मुआविया की स्थिति पर विचार न किया गया था। इस प्रकार उसे सीरिया के गवर्नर के रूप में काम करने दिया गया जब कि अली को खलीफा पद से हटा दिया गया था। इसलिए यह निर्णय एकतरफा था जिसे स्वीकार न किया गया क्योंकि देश संकट की स्थिति से गुजर रहा था। अली यह निर्णय न स्वीकार कर सका और उसने पाया कि वह शपथ भंग कर रहा है। चूँकि ऐसा करने में अली अनुचित करता प्रतीत हुआ, मुआविया की सेना ने खलीफा के रूप में उसे सलामी दी।

ईराक में, जहाँ अली ने अपना मुख्यालय बनाया था, उसकी स्थिति बहुत खराब हो गई। जब वह सिफिन से सड़क के रास्ते होता हुआ वापस जा रहा था तो उसकी फौज के एक भाग ने, जिसमें अधिकांशतः तमीम जनजाति के लोग थे, उसकी भर्त्सना बहुत जोरों से इसलिए की कि उसने आदमियों द्वारा बनाई गई मध्यस्थों की अदालत के समक्ष आत्म-समर्पण किया। उन लोगों का विचार था कि यह निर्णय करने का भार केवल अल्लाह को सौंपा जाना चाहिए था। वे लोग अली से अलग हो गए और हरूरा गाँव में, जो कूफा से बहुत दूर न था, चले गए और अपने में से ही एक आदमी अब्दुल्ला अर-रसीदी को खलीफा चुन लिया। मध्यस्थता का सिद्धान्त स्वीकार करने से अली को अनेक तरह से नुकसान हुआ। उसके अपने अनुयायियों में से अधिकांश लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। जब मध्यस्थों का निर्णय कूफा में लोगों को मालूम हुआ तो अली के और भी अधिक समर्थकों ने प्रवासियों (खवारिज)[२०] या (खारिजियों)[२१] की भाँति नगर छोड़ दिया। इन खारिजी (अलग होने वाले) के

---

२०. यह नाम बाद में स्थापित सरकार के विरुद्ध अन्य विद्रोहियों को भी दिया गया। साथ ही यह नाम विभिन्न गुटों को भी दिया गया जिनका समान रूप से यह अतिवादी विचार था कि खलीफा वह व्यक्ति होता है जिसे समुदाय उस पद के लिए चुनता है चाहे वह व्यक्ति काला दास ही क्यों न हो। इन लोगों के अन्तिम वंशज अभी भी इमाम और ट्रिपोलीटानिया (उत्तरी अफ्रिका) में है।

२१. खवारिज (खारिजी का बहुवचन) सबसे प्रारम्भ का इस्लामी गुट था। खारिजी शब्द का सम्बन्ध किसी विधर्मी सिद्धान्त से नहीं है। इसका मतलब केवल 'विद्रोही' या 'क्रान्तिकारी कार्यकर्ता' है। एक आरंभिक खारिजी नेता अबू बिलाल मीरदस (सन् ६८१) की मृत्यु पर एक प्रसिद्ध शोकगीत में एक खारिजी कवि कहता है "अबू बिलाल की मृत्यु ने मेरा जीवन असहाय बना दिया है

रूप में जाने वाले व्यक्ति, जो इस्लाम के सबसे प्रारंभिक गुट के थे, अली के महा भयानक शत्रु सिद्ध हुए। उन्होंने नारा दिया कि ला हुकमा इल्ला-लिल्लाह (मध्यस्थता सिर्फ अल्लाह कर सकता है) और ४००० व्यक्तियों को जुटा कर अब्दुल्ला इब्न-वहाब अल-रसीदी के नेतृत्व में अली के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह किया। खारिजियों के प्रधान ने फारस जाने वाली सड़क पर नहरावान नहर के, जो अपने पुल के निकट टिगरिस नदी में मिलती है, किनारे उस स्थान के निकट अपना शिविर लगाया जहाँ बाद में बगदाद नगर बसने वाला था। वहाँ अली ने १७ जुलाई, सन् ६५८ को विद्रोहियों पर हमला किया और उन्हें करारी हार दी पर वे पूरी तरह समाप्त न हुए। बाद में वे फिर भिन्न-भिन्न नामों से अपना सर उठाने लगे और अब्बासिदों की अवधि में खिलाफत के लिए सर दर्द बने रहे।

इस बीच मुआविया मिस्र पर विजय के लिए रवाना हुआ जो वह अली के हमले के कारण पहले न कर सका था। अली द्वारा नवनियुक्त गवर्नर मुआविया का विरोध करने के लिए सामने आया। उस समय वह नील नदी की घाटी में आगे बढ़ रहा था। जुलाई ६५८ में गवर्नर को हमलावरों ने पराजित किया। मुआविया ने मिस्र को और भी अच्छी तरह पराजित करने का काम अम्र इब्न अल-आस पर छोड़ दिया। उसी समय बैजेन्टाइनों ने भी मुआविया के क्षेत्र पर हमला किया जिससे बचने के लिए उसने बैजेन्टाइन सम्राट कान्स्टैन्स द्वितीय को वार्षिक कर देने का वायदा कर समझौता कर लिया। तब मई सन् ६६० को उसने खलीफा के रूप में निष्ठा की शपथ ली। चूंकि मुआविया की फौजें अली के क्षेत्र ईराक पर बराबर हमला कर रही थीं, अली ने सीरिया पर हमले की तैयारियाँ कीं। पर युद्ध शुरू करने के पहले वह २४ जनवरी, ६६१ को कूफा (ईराक) की मस्जिद में मारा गया। यह काम बदले के रूप में किया गया था। कतम नाम की एक स्त्री ने अपने प्रेमी अब्दुल इब्न मुल्जम रहमान के, जो एक खारिजी था, सामने शर्त रखी थी कि जब वह अली को मार देगा तभी वह उससे विवाह करेगी।

और मेरे लिए विद्रोह को प्रिय बना दिया है।" अपनी धर्मान्धता और भयानक तरीकों के अलावा खारिजी बहुत ज्यादा धर्मनिष्ठ और शुद्ध रूप में धार्मिक व्यक्ति रहे हैं। खारिजियों में अरब प्रायद्वीप और ईराक की सीमाओं के घुमन्तू और अर्द्ध-घुमन्तू लोग शामिल थे, पर उनके आदर्शवाद और पूर्ण समानता के सिद्धान्त से उनकी ओर फारसी मवाली बहुत बड़ी संख्या में आकर्षित हुए। खारिजियों की सेना आरम्भिक शताब्दियों में कुचल दी गई। उनके वंशज अभी पूर्वी अफ्रिका और उत्तरी अफ्रिका में उमान और जंजीबार (जहाँ वे उमान से गए) में पाये जाते हैं।

मुसलमानों के बीच गृह-युद्ध, जिसमें पहले अली की पराजय और फिर उसकी मृत्यु हुई, इस बात का प्रतीक था कि इस्लाम का प्रजातांत्रिक शासन समाप्त हो गया। इसके फलस्वरूप पहली बार खारिजी समुदायों का उदय हुआ जिन्होंने इस्लाम के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अली के साथ ही इस्लाम का गणतंत्र समाप्त हो गया। "इससे लोकप्रिय शासन समाप्त हो गया" एक दार्शनिक लेखक ने लिखा है, "जिसमें पिता-तुल्य खलीफाओं की सादगी थी। फिर वह शासन किसी मुस्लिम राज्य में नहीं देखा गया। इस शासन के अन्त के बाद कुरान पर निर्भर करने वाले कानून शास्त्र और नियम ही बरकरार रह सके। गणतंत्र के कुछ जोश ने छोटे राज्यों को गरिमा प्रदान की और बड़े राज्यों को अधिक सेना रखने की छूट दी। फिर भी राष्ट्र में, सत्ता हड़पने वालों की भीड़ के सामने गणतांत्रिक जोश बना रहा।"

अली की असफलता के कारण

अली की असफलता और मुआविया की सफलता के कारणों में प्रथम तो यह था कि अली को तलहा, जुबैर और आयशा के खिलाफ लड़ना पड़ा जिन्होंने उसके विरुद्ध मोर्चा बना लिया था। पहले खलीफा उस्मान के विरुद्ध अली ने तलहा और जुबैर के साथ मोर्चा बनाया था। जब अली से हारने के बाद, उन लोगों के साथ हुई बातचीत के अनुसार युद्धस्थल से जा रहे थे तो उन दोनों को पकड़ लिया गया और अली के अनुयायियों ने उनकी हत्या कर डाली। उनकी मृत्यु ने अन्ततः मुआविया की शक्ति बढ़ाई और अली के हितों को कमजोर किया। दूसरा कारण यह था कि साम्राज्य में विद्रोह हो गए थे। विशेषकर बसरा, मिस्र और फारस के विद्रोहों और इन प्रान्तों द्वारा स्वतंत्रता की घोषणा ने अली के सामने भयंकर समस्या उपस्थित की। मिस्र के साम्राज्य से निकल जाने से अली की प्रतिष्ठा और शक्ति को मार्मिक आघात पहुँचा। तीसरा कारण यह था कि मुआविया सीरिया-वासियों पर निर्भर था जो उसके प्रति बराबर ईमानदार और निष्ठापूर्ण बने रहे। दूसरी ओर अली को कूफा (ईराक) के निवासियों पर निर्भर करना पड़ा जो कमजोर दिल के थे और जिन्होंने संकट और खतरों के समय अली का साथ न दिया। चौथा कारण यह था कि उमैय्यदों और हाशिओं के बीच की लड़ाई भी अली के लिए एक कठिन सरदर्द जैसी थी। समय भी मुआविया के अनुकूल था क्योंकि उस समय उसकी शक्ति बढ़ने लगी थी जब कि अली की शक्ति कम होने लगी थी। पाँचवाँ कारण यह था कि अली का आचरण भी उसकी असफलता के लिए जिम्मेवार था। इसमें शक नहीं था कि वह बहादुर योद्धा था पर अच्छा संगठनकर्ता और राजनेता न था। खलीफा बनने के बाद अपनी स्थिति सुदृढ़

किये बिना ही उसने जल्दी-जल्दी प्रान्तों के गवर्नर बदलने की उसने जो नीति अपनाई वह राजनीतिक अदूरदर्शिता की परिचायक थी। दूसरी ओर मुआविया की राजनीतिक दूरदर्शिता और उसके साथी अम्र बिन-आस की कूटनीति से उसे सफलता मिली। मुआविया चालाक और सूझ-बूझ वाला राजनीतिज्ञ था। सिफ़िन की लड़ाई से अच्छी तरह सिद्ध होता है कि वह एक अच्छा संगठनकर्त्ता और सफल राजनेता था।

अली का चरित्र : एक मूल्यांकन

अपने शिया-समर्थकों के लिए चौथा खलीफा जल्दी उसी तरह मुख्यतः उनके सम्प्रदाय का संत और अल्लाह का वाली (मित्र और प्रतिनिधि) बन गया जिस तरह हजरत मुहम्मद इस्लाम के पैगम्बर और अल्लाह के दूत थे। मृत अली जीवित अली से ज्यादा प्रभावकर सिद्ध हुआ क्योंकि हत्या होने के बाद वह शहीद माना जाने लगा और जिन्दगी में उसने जो कुछ खोया था उससे कहीं अधिक बहुत जल्दी मृत्यु के बाद पा लिया। यह सही है कि राजनीतिक नेता के गुण, दूरदर्शिता, संकल्प, जागरूकता और कार्यसाधकता आदि उसमें न थे पर अन्य वे सभी गुण उसमें थे जिनसे कोई व्यक्ति आदर्श अरब बनता है। वह धर्मनिष्ठ, लड़ाई में बहादुर, अच्छा वक्ता, मित्रों के प्रति सच्चा और शत्रुओं के प्रति उदार था। अपने अनुयायियों के लिए वह मुस्लिम उच्चता और अरब वीरता का मूर्तिमान आदर्श था। उपाख्यानों के साहित्य में अली को आज भी मुस्लिम सुलेमान (एक वीर का नाम) माना जाता है। अनजाने ही वह इस्लाम में फूट का कारण बना। शिया लोग आज मुसलमानों में सबसे बड़े और सबसे महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक हैं। मुसलमानों में पहले दो सिद्धान्त थे—"अल्लाह के सिवा और कोई अल्लाह नहीं" और "हज़रत मुहम्मद अल्लाह के दूत हैं"। इनमें एक तीसरा सिद्धान्त जोड़ दिया गया कि—"अली अल्लाह के वाली (मित्र) हैं।" वास्तव में शिया लोगों के लोक धर्म में अली पैगम्बर मुहम्मद से भी ज्यादा महत्वपूर्ण माने जाते हैं। अतिवादी तत्व भी अली की देवता की भांति पूजा करते हैं और उसके उत्तराधिकारियों को संतों का दर्जा देते हैं। अली की तलवार धु-अल-फकर (रीढ़ की हड्डी तोड़ने वाली) जिसे पैगम्बर ने बद्र की लड़ाई में इस्तेमाल किया था, एक कहावत का विषय बन गई है। यह निश्चयपूर्ण कहा जाता है कि अली जब उससे किसी घुड़सवार पर प्रयोग करता था तो घुड़सवार के शरीर का निचला हिस्सा घोड़े की पीठ पर रह जाता था और ऊपरी हिस्सा जमीन पर लुड़कता नजर आता था। "धु-अल-फकर की तरह कोई तलवार नहीं" एक प्राचीन कवि ने कहा है, "और अली की तरह कोई जवान नहीं।" अली की धर्मनिष्ठता भी अतुलनीय थी। वह इस्लामी नियमों और रीति-रिवाज का कड़ाई से पालन करता था और

सांसारिक सुखों का बहिष्कार करता था। अली का सांवला रंग था, बड़ी-बड़ी काली आँखें, गोल सर और पतली, लम्बी सफेद दाढ़ी। वह स्थूलकाय और औसत आकार का था। वह नम्र, परोपकारी और मानवीय गुण-सम्पन्न था। वह दीन-दुखियों की सहायता के लिए बराबर तैयार रहता था। उसका जीवन इस्लाम की सेवा में अर्पित था। यदि वह द्वितीय खलीफा उमर की तरह कड़ाई बरतता तो अरबों जैसे अनुशासनहीन लोगों के शासन में सफल होता। पर उसकी सहनशीलता और उदारता का गलत मतलब लगाया गया और उसकी मनुष्यता और सत्यप्रियता का फायदा शत्रुओं ने अपने लाभ के लिए उठाया। अपनी वीरता के लिए उसे "अल्लाह के शेर" की उपाधि मिली और ज्ञान के लिए "ज्ञान के द्वार" की उपाधि। वह वीर, मानवीय गुण-सम्पन्न और इतना सहनशील था कि इसे उसकी कमजोरी माना जा सकता था। दरअसल वह ऐसा शासक था जो अपने समय के पहले ही आ गया था। द्वितीय खलीफा उमर ने जो अनेकों जन-कल्याण कार्य किये वे अली की ही सलाह से किये थे। उसके गुणों की चर्चा करते हुए इतिहासकार मसूदी ने कहा है—"अली का नाम पहले मुसलमान के रूप में लिया जा सकता है। साथ ही उसका नाम ऐसे व्यक्ति के रूप में भी लिया जा सकता है जो पैगम्बर मुहम्मद के देश-निष्कासन के समय उनके साथ था और धर्म-युद्ध में उनका विश्वासी साथी रहा। वह सामान्य जीवन में भी उनका निरन्तर साथी और सम्बन्धी था। यदि यह पूछा जाय कि पैगम्बर की पुस्तक (कुरान) के उपदेशों की भावना किसने आत्मसात की थी, किसने अपने क्षुद्र स्वार्थों का पूरी तरह त्याग किया था और किसने न्याय के नियमों को अपने अभ्यास में उतारा था तो भी अली का ही नाम लिया जा सकता है। साथ ही ईमानदारी, पवित्रता, सत्यप्रियता और न्याय तथा विज्ञान की जानकारी के कारण किसी को उत्कृष्ट माना जा सकता है तो भी सभी को अली का नाम मुसलमानों में अग्रणी के रूप में लेना पड़ेगा। यदि इसे अल्लाह द्वारा दिये गये गुणों की खोज उसके पहले के एक खलीफा को छोड़कर अन्य खलीफाओं और उसके बाद के खलीफाओं में की जाय तो वह कोशिश बेकार ही होगी।"

अध्याय-५

धर्मनिष्ठ खलीफाओं के अधीन प्रशासन और सामाजिक जीवन

मदीना में पैगम्बर के जीवन के दस वर्षों के दरम्यान आपस में लड़ने वाली तरह-तरह की युद्धरत जनजातियाँ और वंश एक महान धर्म के प्रभाव के अधीन बहुत जल्द एक राष्ट्र में समेकित हो गए। इस छोटी-सी अवधि में जो यह काम हुआ वह एक सबसे आश्चर्यजनक सफलता थी जो इस रूप में मानवीय इतिहास में बराबर अंकित रहेगी। पैगम्बर के बाद प्रथम खलीफा अबू बकर के समय में इस प्रकार एक राष्ट्र की अधीनता में लाई गई जनजातियों ने जोरदार और प्रभावकर कोशिश की कि वे पुराने तौर-तरीकों की ओर फिर लौट जायें। अबू बकर और उनके बाद के अन्य तीन धर्मनिष्ठ खलीफाओं की अवधि में एक समस्या यह उठी कि नये विजित विशाल क्षेत्रों पर किस प्रकार शासन किया जाय। साथ ही यह प्रश्न भी सामने आया कि प्राचीन अरब समाज के अलिखित नियमों और परम्परागत कानूनों को किस तरह संहितावद्ध किया जाय ताकि विभिन्न तरह की स्थितियों में रहते हुए विशाल बहुजातीय समूह की आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें। इस सम्बन्ध में मूल न्यायविधायक (पैगम्बर) न सोच पाए थे कि इस्लाम के सामने इस दिशा में कितना बड़ा काम उपस्थित होगा। द्वितीय खलीफा उमर ने इस कार्य की ओर ध्यान दिया। हदीस में कहा गया है कि उमर ने ही इस समस्या का समाधान किया और इस तरह उनको इस्लाम के द्वितीय धर्मतंत्र का अन्वेषक माना जाता है जो एक तरह का इस्लामी आदर्श राज्य है जो बहुत लंबे समय तक जारी रहने के लिए बना।

खिलाफत का आरम्भ : उसमें चुनाव का तरीका

अरब राज्य का भव्य बाहरी विस्तार हुआ। वह इस्लामी राज्य के आंतरिक विकास के समरूप न हुआ। धारणा के क्षेत्र में अरब राज्य धर्मतंत्र पर स्थापित था पर उसका लौकिक नेता कौन बनेगा, यह प्रश्न वास्तव में अनसुलझा ही रह गया। जब तक हजरत मुहम्मद जीवित थे वे निश्चित रूप से ईश्वर के दूत और धर्म-प्रचारक थे और लौकिक अर्थ में शासक भी जिनके अधिकार को चुनौती

देने वाला कोई न था। पर किसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किये बिना ही उनकी मृत्यु हो गई। उनके जीवन-काल में उनके धर्म में विश्वास करने वालों ने शायद उम्मीद की हो कि वे खुद न्याय के दिन तक अपने अनुयायियों को नेतृत्व और प्रशासन देते रहेंगे। पर उनकी मृत्यु के बाद मदीना में दलीय-संघर्ष होने लगे जिससे खतरा पैदा हुआ कि राष्ट्र की राजनीति ही विघटित होकर खंड-खंड हो जाएगी। ऐसा लगा कि एक व्यक्ति का शासन अत्यधिक अनिवार्य है। उस समय शासन के वंशगत अधिकार तो थे ही नहीं। चुनाव के तरीके की बात तो और भी दूर थी। कुरान में भी जिसके अनुसार पैगम्बर ने समुदाय पर शासन किया था, किसी व्यक्ति के जननेता होने के बारे में मार्गदर्शन नहीं दिया है। इन आंतरिक्त मतभेदों से केवल निर्भीक निर्णय ही राज्य को बचा सकता था। पैगम्बर के जीवन-काल में भी सबसे बूढ़े और उनसे बहुत निकट न रहने वाले मक्का के उनके समर्थक उनको राजकाज में बराबर सलाह देते थे। सलाहकारों के सबसे प्रमुख और सीमित दल में पैगम्बर के दो श्वसुर अबू बकर और उमर इब्न अल-खत्ताब थे। इस दल के एक और सदस्य उबैदा अमीर इब्न-अब्दुल्ला इब्न अल-जराह भी थे जो अपनी फौजी क्षमता के लिए प्रसिद्ध थे। इनमें से एक शासक के रूप में सबसे महत्त्वपूर्ण उमर थे। पैगम्बर की मृत्यु के बाद उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से शासन अपने हाथों में न लिया, पर इस मामले में हजरत मुहम्मद के सबसे बूढ़े मित्र अबू बकर को प्राथमिकता दी। जब पैगम्बर के बाद प्रथम खलीफा अबू बकर की दो वर्षों में मृत्यु हो गई तो उमर ने औपचारिक रूप से सत्ता सँभाली। अबू बकर और उमर इस बात के बारे में बराबर जागरूक रहे कि वे धर्मतंत्र के एकमात्र वास्तविक अधिकारपूर्ण राजा पैगम्बर मुहम्मद के प्रतिनिधि के रूप में पद सँभाले हुए थे। अबू बकर अपने को खलीफा कहते थे—खलीफा यानी अल्लाह के धर्म-प्रचारक का प्रतिनिधि। उनके बाद खलीफा हुए उमर जो अपने को प्रारंभ में अल्लाह के धर्मप्रचारक के 'खलीफा का खलीफा' कहते थे। जब यह उपाधि दैनन्दिन जीवन में उपयोग के लिए आवश्यकता से कहीं अधिक भारी-भरकम मालूम पड़ी तो उन्होंने अपने को खलीफा और धर्मविश्वासियों का सेनापति कहना शुरू किया। अबू बकर के सत्तारूढ़ होने के बाद खिलाफत की परिपाटी शुरू हुई। पैगम्बर को कोई पुत्र न था। अपनी मृत्यु के पूर्व उन्होंने किसी ऐसे व्यक्ति को नामजद न किया जो इस्लाम गणतंत्र का प्रधान बनता। पर यह आवश्यक था कि कोई व्यक्ति इस पद पर आरूढ़ होता ताकि नये राज्य और धर्म की एकता कायम रखी जा सकती। आरम्भ में उनके अनुयायियों और हितैषियों में से किसी ने पैगम्बर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक ध्यान न दिया। फिर जल्द एक दुर्घटना हुई जिससे मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग बाध्य हुए कि इस बारे में शीघ्र कदम

उठायें। इस समय अंसार (मददगार) पैगम्बर का उत्तराधिकारी चुनने के लिए सक्रिय हो गये और इस उद्देश्य से एकत्र हुए ताकि अपने में से किसी व्यक्ति को इस पद के लिये चुन लें। इस स्थिति में अबू बकर, उमर और अबू उबैद उस स्थान पर तुरत पहुँचे और स्थिति को इस तरह सँभाला कि अबू बकर खलीफा (उत्तराधिकारी) चुन लिए गए। अबू बकर का चुनाव अकस्मात् और बिना योजना के हुआ। यद्यपि खलीफा का चुनाव अंसारों की एक सभा में हुआ पर दूसरे दिन मस्जिद में मुसलमानों की सामान्य सभा में इसका अनुमोदन हो गया। बाद में खलीफाओं के चुनाव के लिए यह एक पूर्वोदाहरण-सा हो गया।

पवित्र खलीफाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण स्वरूप उनके चुनाव का तरीका था। सभी चार खलीफा एक या किसी अन्य तरीके से चुने गये थे। चुनाव के इस तरीके के दो चरण थे, (१) नये खलीफा का चुनाव और (२) वहाँ उपस्थित लोगों द्वारा उसके प्रति बैत (निष्ठा की शपथ) द्वारा खलीफा के पद पर उसकी सम्पुष्टि।

पैगम्बर के एक या अधिक प्रमुख साथी नये खलीफा को चुनते थे। अबू बकर हजरत मुहम्मद के सबसे पुराने समर्थकों और सबसे बड़े मित्रों में से एक थे। वे उनके अभिन्न मित्र थे। हजरत मुहम्मद की अंतिम बीमारी में वे सार्वजनिक नमाज का नेतृत्व करते थे। ८ जून सन् ६३२ में एक तरह के चुनाव में वे पैगम्बर मुहम्मद के उत्तराधिकारी चुने गये। उस चुनाव में उन नेताओं ने भाग लिया था जो उस समय राजधानी मदीना में उपस्थित थे। उन्होंने पैगम्बर के सभी कर्त्तव्यों और विशेषाधिकारियों को ग्रहण किया। उन्होंने केवल उनके उन कर्त्तव्यों को ग्रहण न किया जो उनके पैगम्बर पद से संबंधित थे। वे कर्त्तव्य और अधिकार उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गए। उपाधि खिलाफत रसूल अल्लाह (अल्लाह के दूत के उत्तराधिकारी) अबू बकर पर लागू हुई। उसका संभवतः उन्होंने प्रयोग न किया हो। वे खलीफा कहलाते थे। खलीफा शब्द कुरान में केवल दो बार आता है। दोनों में से किसी भी बार में इसका कोई तकनीकी महत्त्व नहीं है और न इसका प्रयोग इस उद्देश्य से हुआ है कि यह हजरत मुहम्मद के उत्तराधिकारी के अर्थ में आएगा।

उमर भी उसी प्रकार चुने गए जिस प्रकार अबू बकर चुने गए थे। उमर अबू बकर के बाद खलीफा पद के लिए तार्किक रूप से उचित उम्मीदवार थे। अबू बकर ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी चुना। कहा जाता है कि पहले उन्होंने "खिलाफत खिलाफत रसूल अल्लाह" (रसूल अल्लाह के खलीफा के खलीफा) उपाधि ग्रहण की। बाद में यह बहुत लंबी उपाधि सिद्ध हुई, इसलिए उसे संक्षिप्त कर दिया गया। दूसरे खलीफा उमर (सन् ६३४-६४४ ई०) ने मुस्लिम सत्ता के सेनाध्यक्ष

का पद भी सँभाला। इसे अमीर अल मोमिनीन (धर्म-विश्वासियों का सेनापति) की विशिष्ट उपाधि से पुकारा जाता है। मध्य युग के ईसाई लेखकों ने इसका रूप "मिरामोलिन" कर दिया। अपनी मृत्यु से पूर्व उमर ने चुनावकर्त्ताओं की समिति बनाई जिसमें अली इब्न-अबी-तालिब, उस्मान इब्न-अफ्फान, अल जुबैर, इब्न-अबी-वक्कास, अब्द अल रहमान और इब्न-औफ थे। इस चुनाव समिति के सामने शर्त रखी गई कि उनका (उमर का) अपना लड़का खलीफा के पद पर न चुना जाय। इस समिति या पर्षद के गठन को 'अल-शूरा' (परामर्शदाता) कहा गया। इसमें सबसे बूढ़े और पैगम्बर के जीवित साथी थे। इसके गठन से सिद्ध हुआ जनजातीय प्रधान की प्राचीन अरब धारणा ने वंशागत सम्राट के विचार पर विजय पाई।

उस्मान को अब्दुल रहमान इब्न औफ और चुनाव-समिति के अन्य सदस्यों ने चुना या उनका चुनाव किया। फिर भी तीसरे खलीफा उस्मान (सन् ६४४) के मामले में वरीयता के कारण अली, जो बाद में चौथे खलीफा बने, उस समय चुने न जा सके। उस्मान ने उमैय्यद कुलीन तंत्र का प्रतिनिधित्व किया जब कि उनके दो पूर्ववर्त्ती खलीफा अबू बकर और उमर प्रवासियों या मदीना में बाहर से आकर बसने वालों का प्रतिनिधित्व करते थे। इनमें से किसी खलीफा ने किसी राजवंश की स्थापना न की।

चौथे खलीफा अली को मदीना के विद्रोही नेताओं और प्रमुख लोगों ने चुना। खलीफा को चुनने के मामले में प्रमुख इस्लाम अनुयायी और सम्मानित व्यक्ति सम्मिलित रूप से वरिष्ठ लोगों के चुनाव पर्षद (समिति) या 'शूरा' जैसा काम करते थे। वे लोग खलीफा को प्रत्यक्ष रूप से और सर्वसम्मति से चुनते थे। खलीफा को चुनने का यह विशिष्ट तरीका था। जो लोग किसी व्यक्ति के खलीफा चुने जाने का पहले विरोध करते थे उन्हें खलीफा का एक बार चुनाव हो जाने पर वैसा करने की अनुमति न दी जाती थी। अली, जो चौथे खलीफा के रूप में चुना गया, पहले अबू बकर और फिर उस्मान को, जो क्रमशः प्रथम और तृतीय खलीफा चुने गये, अपनी निष्ठा देने को तैयार न था। पर ज्यों ही उनके चुनाव की घोषणा की गई, अली ने उन्हें खलीफा के रूप में स्वीकार कर लिया। इस्लाम के प्रारंभिक दिनों में विरोध की गुंजाइश न थी।

जब खलीफा के चुनाव के निश्चय के बारे में पैगम्बर के पुराने साथियों द्वारा, जो चुनाव समिति के सदस्य होते थे, घोषणा कर दी जाती थी तो मुस्लिम सम्प्रदाय को उसे स्वीकार करना पड़ता था। मुसलमानों से कहा जाता था कि वे मनोनीत खलीफा के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करें। जब खलीफा शपथ ग्रहण कर

लेता था तो वह लोगों के बीच भाषण करता था जिसमें वह संक्षिप्त रूप से बतलाता था कि अपने पद (खिलाफत) के निर्वाह के दौरान किन नीतियों पर चलेगा।

धर्मनिष्ठ खलीफाओं की चुनाव-प्रणाली में अनेक गुण दर्शनीय थे। इन गुणों के कारण प्रारंभिक इस्लाम राज्य प्रजातांत्रिक एवं गणतंत्रीय था। पर जनजातीय पर्यावरण और परिस्थितियों के कारण इन गुणों का दायरा कुछ सीमित था। खलीफाओं की चुनाव-प्रणाली में कुछ दोष भी थे। चारों धर्मनिष्ठ खलीफाओं में सबका चुनाव एक ही प्रकार से न हुआ। एक के चुनाव का तरीका दूसरे के चुनाव के तरीके से भिन्न था। चूंकि चुनाव की कोई निश्चित और नियमित प्रणाली न थी, खलीफाओं के चुनाव के समय राजनीतिक झगड़े से इस्लाम के प्रारंभिक समय में गृह-युद्ध आरंभ हो जाते थे।

खलीफा की स्थिति और शक्ति

खलीफा सरकार का सर्वोच्च प्रधान होता था। उसके अधिकार पर कोई संवैधानिक या राजनीतिक रोक न थी। पर इसका यह मतलब न था कि वह निरंकुश था और उसके अधिकार असीम थे। खलीफा को कुरान के आदेशों के अनुसार अपने प्राधिकार का उपयोग करना पड़ता था। बाद के दिनों में खलीफाओं के लिए यह बाध्यकारी हो गया कि वे प्रथम दो खलीफा अबू बकर और उमर के रास्ते पर चलें। खलीफा को वरिष्ठ लोगों की समिति मदद करती थी जिसमें पैगम्बर मुहम्मद के प्रमुख साथी सदस्य होते थे। इन लोगों की बैठक प्रमुख मस्जिदों में होती थी। इन्हें राजधानी मदीना में उपस्थित प्रमुख लोग और बद्दुओं के प्रधान इनके काम में सहयोग देते थे। पैगम्बर के अनेक साथियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्त्तव्य सौंपे जाते थे। उदाहरण के लिए प्रथम खलीफा अबू बकर की खिलाफत में, उमर, जो उनके बाद खलीफा बने, न्याय के प्रभारी बने और निर्धन-कर वितरण का काम भी उन्हें सौंपा गया। अबू बकर के समय चौथे खलीफा होने वाले अली पर, जो पढ़े-लिखे विद्वान आदमी थे, पत्राचार का काम सौंपा गया। वे युद्ध-बंदियों का विभाग भी देखते थे जिसके अन्तर्गत बंदियों की देखभाल और उनकी निष्कृति (रिहाई), धन और इस तरह के अन्य मामले भी आते थे। पैगम्बर मुहम्मद का एक और साथी सेनाओं के साज-सामान की देख-भाल करता था। इस प्रकार प्रशासन का हर ब्योरा किसी-न-किसी की देख-रेख में था। किसी भी विषय पर आपस में सलाह-मशविरा किये बिना निश्चय न लिया जाता था।

खलीफा को, स्पष्ट था कि, पैगम्बर के कार्य न करने पड़ते थे; पर उनको कुछ धार्मिक कार्य पूरे करने पड़ते थे। उनका मुख्य धार्मिक कार्य इमाम के रूप में

भक्तगण की प्रार्थनाओं का नेतृत्व करना था। यह इस बात का प्रतीक था कि वे इस्लाम में धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व दोनों ही करते थे। जो आदमी यह कर्त्तव्य करता था उसे सर्वोच्च अधिकार प्राप्त होता था। खलीफा न केवल राज्य का प्रधान था बल्कि सर्वोच्च सेनाध्यक्ष भी था। वह अन्य राज्य पर आक्रमण के लिए फौजें भेजता था, सेनापतियों की नियुक्ति करता था और शत्रुओं के दमन के लिए आदेश देता था जैसा कि द्वितीय खलीफा उमर ने कादीसिया की लड़ाई में किया। सेनापतियों की नियुक्ति और फौज को आक्रमण के लिए भेजने के मामले में खलीफा सामान्यतः अपने साथियों और सलाहकारों की सलाह लेता था। खलीफा साम्राज्य का मुख्य न्यायाधीश भी होता था। पहले न्यायाधीश न हुआ करते थे। खलीफा स्वयं सभी मामलों का विचारण करता और उनमें निर्णय देता था। प्रान्तों में गवर्नर खलीफा की ओर से सभी न्यायिक कार्य करते थे। सच बात यह थी कि उस समय कार्यपालिका और न्यायपालिका अलग-अलग न थी। जब अन्य राज्यों पर विजय के कारण सरकारी पदाधिकारियों के काम बढ़ने लगे और साथ ही मुसलमानों की भी संख्या बढ़ी तो द्वितीय खलीफा उमर ने कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्य अलग करने की समस्या पर ध्यान दिया। उन्होंने छावनी और प्रान्तीय नगरों में न्यायाधीश या काजी नियुक्त किये। इसके अलावा खलीफा राजस्व की वसूली, नहरों की खुदाई और अन्य सार्वजनिक निर्माण की भी देख-रेख करते थे। धर्मनिष्ठ खलीफा, विशेषतः प्रथम खलीफा अबू बकर और द्वितीय खलीफा उमर अपने कर्त्तव्यों और कार्यों के निष्पादन में वरिष्ठ व्यक्तियों की समितियाँ शूरा से जरूर सलाह लिया करते थे।

शूरा

सलाहकार समिति या 'शूरा' धर्मनिष्ठ खलीफाओं के शासन का एक और उल्लेखनीय स्वरूप थी। इसे शूरा के अलावे 'मजलिस-ए-शूरा' भी कहा जाता था। खलीफा राज्य के सभी मामलों में इस समिति की सलाह लेते थे। पवित्र कुरान के उपदेशों में शूरा का आरम्भ या उसकी जड़ है। पैगम्बर स्वयं शूरा का सिद्धान्त मानते थे और अरब की जनजातियों में यह परिपाटी प्रचलित थी। कुरान में एक पद्य में मुसलमानों को सलाह दी गई है कि वे अपने "मामले आपस में सलाह-मशविरा करके सुलझावें।" "पैगम्बर अपने साथियों से उन मामलों में भी सलाह लेते थे जिनके बारे में सलाह लेने के लिए कुरान में आदेश नहीं दिया गया है। इस सम्बन्ध में वे अरब जनजातियों की प्रथाओं का अनुसरण करते थे। युद्ध और शांति के मामले में जनजातीय प्रधान अपनी जन-जाति या वंश के प्रमुख व्यक्तियों से सलाह-मशविरा करते थे। शूरा के महत्व के सम्बन्ध में द्वितीय खलीफा ने जोरदार तरीके से कहा है—"सलाह-मशविरे (शूरा) के बिना कोई खिलाफत नहीं हो सकती।"

शूरा या सलाहकार-समिति बनाने या उसकी सदस्य-संख्या के बारे में कोई निश्चित नियम नहीं था। सामान्यतः उसमें मुहाजरीन में से प्रमुख साथी चुने जाते थे। कभी-कभी प्रमुख अंसार भी (पैगम्बर मुहम्मद के मददगार) मुहाजरीन के साथ शूरा में चुने जाते थे। विशेष अवसरों पर मदीना के सामान्य नागरिकों या जनजातियों अथवा प्रान्तों के विशिष्ट व्यक्तियों को जो मदीना आये हुए होते थे, शूरा की बैठक में सम्मिलित होने के लिए बुलाया जाता था। शूरा की बैठकें पैगम्बर की मस्जिद में होती थीं। शूरा की बैठक बुलाने के लिए एक दूत यह घोषणा करता चारों ओर घूमता था "अल सलातू जमिया" जिसका अर्थ होता था कि "प्रार्थना के लिए इकट्ठा हो।"

शूरा खलीफा को विभिन्न कर्त्तव्यों के निष्पादन में परामर्श देता था। खलीफा फौजों को भेजने तथा सेनापतियों, गवर्नरों और अन्य पदाधिकारियों को नियुक्त करने में शूरा से सलाह लेता था, साथ ही सिपाहियों के वेतन-निर्धारण, कर-निर्धारण और नये पदों के सृजन में भी खलीफा शूरा की सलाह लेता था। पर शूरा सार्वभौम विधायिका संस्था न थी। खलीफा की भाँति उसे इस्लामी कानूनों या कुरान के आदेशों को भंग करने की शक्ति न थी।

शूरा पवित्र खिलाफत का एक प्रजातांत्रिक संगठन था। उसके अपनें दोष भी थे, जैसे कि उसके गठन, कार्यों और प्रतिक्रिया के बारे में निश्चित नियम न थे। निर्धारित नियमों के अनुसार शूरा की बैठकें न होती थीं। बल्कि खलीफा की मर्जी पर होती थीं। यही कारण है कि शूरा के काम खलीफा उमर के अधीन अच्छी तरह चलते थे जो कोई भी आपातस्थिति उपस्थित होने पर उसकी बैठक बुलाते थे। पर उमर के उत्तराधिकारियों—उस्मान और अली—के अधीन शूरा की नियमित बैठकें होना बन्द हो गया।

राजस्व प्रशासन

पैगम्बर मुहम्मद के समय राजस्व के स्रोत केवल पांच वस्तुओं तक सीमित थे। ये वस्तुयें थीं जकात, जजिया, खिराज, खूम (गनीमा या युद्ध से आमदनी) और सरकारी भूमि से आमदनी (फे)। इस कारण राजस्व-संग्रह की कोई नियमित प्रणाली विकसित न हो सकी। इन स्रोतों से जो भी थोड़ा राजस्व या राज्य की आमदनी होती थी उसे लोगों के बीच वहीं तत्काल वितरित कर दिया जाता था।

उमर की खिलाफत में इस्लामी राज्य का जो विस्तार होता गया उससे राजस्व का नियमित संग्रह बढता गया और एक विनियमित राजस्व प्रणाली की आवश्यकता महसूस की गई। इस कारण उमर ने अपना ध्यान राजस्व प्रशासन को संगठित करने की ओर दिया जो कड़ाई के साथ इस्लाम के सिद्धान्तों और पैगम्बर

मुहम्मद तथा प्रथम खलीफा अबू बकर के विचारों के अनुसार होता। उमर ने अनेक नये कर शुरू किये जैसे कि **उश्र**। उस समय इस्लामी राज्य-मंडल का राजस्व तीन स्रोतों से आता था—(१) धर्म शुल्क या निर्धन कर जो सभी समृद्ध मुसलमानों पर उनकी आय के अनुसार, क्रमिक रूप से लगता था। इस प्रकार होने वाला राजस्व राज्य की सुरक्षा, इस राजस्व के संग्रह के लिए नियुक्त पदाधिकारियों के वेतन और निर्धन मुसलमानों की सहायता पर खर्च होता था, (२) जिम्मियों या धिम्मियों (गैर-मुस्लिम प्रजा) पर लगाए जाने वाले भूमि कर जिसे **खिराज** कहा जाता था और (३) प्रति व्यक्ति पर लगाया जानेवाला कर जिसे **जजिया** कहा जाता था। पिछले दोनों कर रोमन साम्राज्य में भी इन्हीं नामों से जारी थे। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि फारस साम्राज्य में सासानिदों के राज्य में प्रति व्यक्ति कर व्यापक रूप से प्रचलित थी। इसलिए इन करों को मिस्र, सीरिया, ईराक और फारस में लागू कर मुसलमानों ने पुराने पूर्वोदाहरणों का ही अनुसरण किया। ये दोनों पिछले कर नर्म और न्यायसंगत तरीक़ों से लगाए गए। पर विशेष नगर, प्रान्त और जनजातियाँ इन करों के बोझ से मुक्त कर दी गईं और जहाँ ये कर अनिवार्य और बाध्यकारी भी थे, वहाँ यह नियम बना दिया गया था कि इस बात का ध्यान रखा जाय कि इसकी वसूली से कर देने वालों को कम-से-कम परेशानी हो। यहाँ आगे चेष्टा की गई है कि राजस्व के इन स्रोतों के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया जाय।

पवित्र कुरान में **जकाह या जकात** का उल्लेख नमाज के ठीक बाद किया गया है। उस स्थल पर कहा गया है—"नमाज अदा करो और निर्धन-कर दो।" जकाह वास्तव में गरीबों के लिए कर है। यह कर समृद्ध और धनी व्यक्तियों पर लगाया जाता था। इस कर-जकाह से इकट्ठा होने वाला धन गरीबों और जरूरत-मंद लोगों में बाँट दिया जाता था। जकाह की इस प्रणाली से उस समय के लोगों की सामाजिक जागरूकता प्रकट होती है। इस जागरूकता के पीछे एक भावना निहित थी। इस्लाम के आरंभिक दिनों में व्यक्तिगत सम्पत्ति तब तक पाप-स्वरूप मानी जाती थी जब तक उसमें से जकात देकर उसे शुद्ध और पापमुक्त नहीं कर लिया जाता था। सभी समर्थ मुसलमानों द्वारा यह कर दिया जाना अनिवार्य था। जज़िया के बजाय नव धर्म-परिवर्तित व्यक्ति पर एक नया दायित्व आता था और यह दायित्व होता था जकाह या जकात (निर्धन-कर) चुकाने का, पर दूसरी ओर उन लोगों को मुसलमान के रूप में उन्हें दिये जाने वाले परिदान (अनुवृत्ति) और अन्य लाभ मिलते रहते थे।

जजिया या प्रति व्यक्ति कर राजस्व का एक अन्य स्रोत था। यह धिम्मियों[1] के नाम से जाने वाले गैर-मुसलमानों पर लगता था। द्वितीय खलीफा उमर ने

---

१. या अहल अल-धिम्मा (प्रतिज्ञापत्र या दायित्व के लोग)। यह शब्द पहले केवल "अहल अल किताब" यानी यहूदियों, ईसाइयों और साबियानों (इन्हें

इस कर की एक वार्षिक दर नियत कर दी। उसके अनुसार यह कर कम आय वालों और गरीब आदमियों से हर साल एक दीनार[2] (या फारस में चलने वाले सिक्कों में दस दिरहम) वसूल किया जाता था। उसी तरह मध्यम वर्ग के लोगों से २ दीनार (या बीस दिरहम) और अमीर लोगों से ४ दिनार (या चालीस दिरहम) वसूल किया जाता था। मिस्र में अम्र बिन अल-आस ने जजिया कर की वसूली के लिए सबके लिए एक समान दरें लागू कीं। वह मिस्रवासियों से इस कर के रूप में दो दीनार नकद और दो दीनार का अन्न अथवा अन्य वस्तुएँ वसूल करता था। परन्तु गरीबों, फकीरों, साधुओं, औरतों, बच्चों और पुरोहितों पर यह जजिया कर न लगता था। खिराज या भूमि-कर राजस्व का दूसरा महत्त्वपूर्ण साधन था। यह कर उन सभी जमीनों पर लगता था जो मुसलमानों की जीत के बाद गैर-मुस्लिम मालिकों के कब्जे में रह गई थीं। भूमि-कर मिट्टी की किस्म, उपज के परिमाण, जोत के प्रकार, सिंचाई-सुविधाओं की उपलब्धता आदि के अनुसार लगता था। बाद में राज्य के हित में मुसलमानों से भी खिराज अदा करने के लिए कहा गया।

बड़े मुसलमान भूमि-मालिक जो कर दिया करते थे उसे उश्र कहा जाता था। वह उसकी भूमि की उपज का दशमांश होता था। अनेक बड़े भूमि-मालिक उश्र के रूप में बहुत बड़ी राशि भुगतान करते थे।

फे राज्य के राजस्व का एक और स्रोत था। राज्य की जमीनें, विद्रोहियों से जब्त की गई जमीनें और वैसी जमीनें जिनका दावेदार कोई न होता था आदि फे कही जाती थीं और इनसे होने वाली आमदनी सार्वजनिक कार्यों तथा लोक-उपयोग के कार्यों पर खर्च की जाती थीं।

गनीमा या युद्ध से लाभ (या लूट) का पाँचवाँ हिस्सा राज्य को देने के बाद मुसलमानों में बाँट दिया जाता था। युद्ध की लूट का जो हिस्सा राज्य के लिए सुरक्षित रखा जाता था उसे अल-खुम कहते थे। प्रथम दो खलीफाओं के अधीन राज्य की आमदनी का यह एक महत्त्वपूर्ण स्रोत था। पवित्र कुरान के अनुसार उसे तीन भागों में बाँट दिया जाता था। उसमें से पैगम्बर और उनके संबंधियों के लिए जो हिस्सा होता था उसे हथियारों की खरीद पर और उतना ही हिस्सा सेना पर खर्च किया जाता था।

साबासीन न मानना चाहिए जो इनसे निम्न लोग थे) पर लागू होना था पर बाद में यह जरथुस्त्रों (पारसियों) और अन्य लोगों पर भी लागू होने लगा।

२. दीनार शब्द यूनानी-लैटिन शब्द देनारियस से निकला है। यह खिलाफत में सोने का सिक्का था जो ४ ग्राम वजन का होता था। उमर की खिलाफत के समय यह १० दिरहम के बराबर था पर बाद में १२ दिरहम हो गया।

द्वितीय खलीफा उमर ने एक नया कर उशुर लगाया। यह गैर-मुस्लिम व्यापारियों के व्यापारिक सामानों पर लगाया जाता था। खलीफा को ऐसी खबर मिली कि जो मुसलमान व्यापारी विदेश में व्यापार करते थे उन्हें सभी जगह अपने व्यापारिक सामानों पर दस प्रतिशत कर देना पड़ता था पर मुस्लिम देशों में विदेशी व्यापारियों को कोई कर न देना पड़ता था। खलीफा ने आदेश दिया कि विदेशी व्यापारियों पर भी वैसा ही कर लगाया जाय और बाद में वह कर गैर-मुस्लिम व्यापारियों पर भी लगाया जाने लगा। पर २०० दिरहम से कम के सामान पर कर न लगाया जाता था।

जब कोई प्रजा-जन इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता था वह कोई भी कर देने के दायित्व से मुक्त हो जाता था। हदीस ने यह प्राचीन प्रथा लागू करने के लिए उमर को जिम्मेदार ठहराया है। वैसा व्यक्ति जजिया समेत सभी कर देने के दायित्व से मुक्त रहता था। भूमि कर भूमि पर तब लगाया जाता था जब भूमि फे समझी जाती थी जिसकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। फे यानी 'वक्फ'[3] मुस्लिम समाज पर लगाया जाता था और मुसलमान उसे अदा करते थे। फे भूमि के एकमात्र अपवाद वे जिले थे जिनके निवासी, हदीस के विवरण के अनुसार, अरब विजेताओं के समक्ष इस शर्त के साथ आत्म-समर्पण करते थे कि उन्हें अपनी भूमि

३. 'वक्फ' शब्द मस्जिद के संबंध में प्रयुक्त होता था। इस संबंध में दो परिभाषाएँ दी गई हैं। किसी विशेष वस्तु को इस प्रकार ले लेना जिससे उस पर दैवी सम्पत्ति के नियम लागू होने लगें और उस पर उस सम्पत्ति को लेने वाले के व्यक्ति के अधिकार समाप्त हो जायें। वह इस प्रकार अल्लाह की सम्पत्ति हो जाती है और उसका लाभ उसके द्वारा बनाये गए जीवों को मिलने लगता है। जब तक वह सम्पत्ति कायम रहती है उसका किसी खास व्यक्ति द्वारा भोगाधिकार खत्म हो जाता है। इस्लाम में जाना जाने वाला सातत्य का यह एक मात्र रूप है और इसमें किसी तरह परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता है। दातव्य न्यास (ट्रस्ट) इस शब्द का इसका संतोषजनक अनुवाद है। नष्ट हो जाने वाले सामान और धन (सूद पर रोक) को वह उद्देश्य नहीं बनाया जा सकता जो अल्लाह को अरुचिकर हो अर्थात् कोई आदमी अपनी सम्पत्ति को इस तरह नहीं रख सकता कि वह उससे अपने ऋणों का भुगतान न करे और कोई ईसाई किसी मस्जिद या गिरजाघर (चर्च) के लिए न्यास (ट्रस्ट) नहीं बना सकता क्योंकि पहली बात उस व्यक्ति (मुसलमान) के अपने धर्म के खिलाफ है और दूसरी बात इस्लाम के विरुद्ध है (ए० एस० ट्रिटन, इस्लाम बिलीफ एंड प्रैक्टिसेस, लंदन, द्वितीय संस्करण, १९५४, पृ० ११५)।

उनके पास रहने दी जाएगी। ऐसे जिले दार-अल-सुलह (प्रति व्यक्ति क्षेत्र) कहे जाते थे।

हर्दीस के अनुसार बाद की घटनाएँ, जो अनेक वर्षों के अभ्यास के परिणाम-स्वरूप थीं, द्वितीय खलीफा उमर की पहलकदमी के कारण हुई। तथ्य यह है कि प्रथम खलीफाओं और प्रारंभिक मुस्लिम गवर्नरों ने कर लगाने और वित्तीय प्रशासन के लिए जो, मूल भूमिका अदा की वह बड़ी न थी। बहुत प्रारंभ से ही कर लगाया जाना मिट्टी के स्वरूप और पुराने शासन के अधीन, चाहे वह बैजेन्टाइनों का रहा हो अथवा फारसियों का, संबंधित स्थान पर प्रचलित कर-प्रणाली पर निर्भर करता था। यह कर आत्म-समर्पण या जोर-जबर्दस्ती से अर्जित भूमि या द्वितीय खलीफा द्वारा जारी कानून पर आवश्यक रूप से निर्भर न करता था।[४] आत्म-समर्पण और जोर-जबर्दस्ती से जीती गई भूमि, जैसा कि कर लगाए जाने के संबंध में विभेदों के बारे में बतलाया जाता रहा है, प्रायः बाद में जोड़ा गया कानूनी मुद्दा था, न कि कर लगाए जाने का यह वास्तविक कारण था। उसी तरह जजिया और भूमि-कर के रूप में खिराज का भेद उमर के समय में न उठा था। आरंभ में यह दोनों शब्द एक दूसरे के बदले प्रयुक्त होते थे। दोनों का ही मतलब सामान्यतः कर होता था। कुरान में जजिया का प्रयोग केवल एक स्थान पर हुआ है जहाँ किसी भी अर्थ में उसका कानूनी मतलब नहीं है। खिराज का प्रयोग भी कुरान में केवल एक स्थान पर हुआ है और वहाँ उसका अर्थ भूमि कर नहीं बल्कि पारिश्रमिक है। स्पष्ट है कि विजित लोगों के संबंध में प्रयोग किए गए इन मूल शब्दों का अर्थ इतिहासकार उस समय तक करीब-करीब भूल गए जब उन्होंने इस संबंध में बाद की घटनाओं का उल्लेख शुरू किया। तब उन्होंने बाद की स्थितियों और घटनाओं के आलोक में इन शब्दों की व्याख्या की। इन दो प्रकार के करों—जजिया और खिराज के बीच अन्तर बाद के उमैय्यद शासकों के समय तक स्पष्ट नहीं किया गया। भूमि-कर किस्तों में और उपज के रूप में दिया जाता था। भूमि से होने वाली उपज और जानवरों से पैदा होने वाली वस्तुओं से इसकी अदायगी होती थी। पर यह कर शराब, सूअरों और मरे हुए जानवरों के रूप में कभी भी अदा न किया जाता था। जजिया कर एकमुश्त लिया जाता था और ऊपर इस कर की व्याख्या की जा चुकी है। इसके अलावा विजित लोगों अथवा प्रजा-जनों से मुस्लिम सेना के पालन-पोषण के लिए दूसरे रूपों में भी कर लिए जाते थे। ये कर केवल स्वस्थ लोगों से ही वसूल किये जाते थे। महिलाओं, बच्चों, भिखारियों, फकीरों, बूढ़े आदमियों, पागलों

---

४. डेनियल सी डेनेट—कन्वर्जन एंड पोल टैक्स इन अर्ली इस्लाम, पृ० १२।

और असाध्य रूप से रोगियों पर यह कर न लगता था। पर यदि उनकी कोई स्वतंत्र आय होती थी तो उन पर यह कर लगता था।

उमर ने अपने साथियों में से अपने सलाहकारों के विचारों के अनुरूप इस संबंध में एक और सिद्धांत तय किया कि युद्ध में लूट के माल में केवल चल-सम्पत्ति और गिरफ्तार किये गये कैदी ही गनीमा थे और केवल उन्हीं पर मुस्लिम सेना के सैनिकों का अधिकार था, युद्ध में जीती गई भूमि पर उनका अधिकार न था। भूमि और युद्ध में विजित लोगों से प्राप्त किया गया धन फे[५] होता था और वह पूरे मुस्लिम सम्प्रदाय का होता था। फे भूमि के खेतिहरों को बाध्यकारी रूप से भूमि-कर देना पड़ता था, भले ही उन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया हो। यह सब धन सार्वजनिक कोषागार में जमा करना पड़ता था। इसमें से जो धन प्रशासन और युद्ध के खर्च के बाद बचा रहता था उसे मुसलमानों के बीच बाँट दिया जाता था। बँटवारा ठीक से हो सके, इसके लिए जनगणना जरूरी हो गई। राज्य के राजस्व के बँटबारे के लिए इतिहास में यह प्रथम जनगणना थी। जनगणना की सूची में प्रथम स्थान आयशा का था जिसे निवृत्ति-वेतन के रूप में प्रति वर्ष १२,००० दिरहम[६] मिलता था। अहल-अल-बैत (पैगम्बर के परिवार) के बाद प्रवासी और इस्लाम के समर्थक आते थे जिनमें से हरेक को इस अनुपात में धन मिलता था कि उन्होंने इस्लाम धर्म कब अपनाया है। जिन लोगों ने इस्लाम धर्म पहले अपनाया होता था उन्हें बाद में अपनाने वालों के मुकाबले लूट के माल में से अधिक धन मिलता था। इस श्रेणी के लोगों में हर आदमी को औसतन प्रति वर्ष ५००० या ४००० दिरहम मिलता था। सबसे अंत में अरब जनजातियों का नम्बर आता था जिनका उल्लेख रजिस्टर में उनकी सैनिक सेवा और कुरान की जानकारी के अनुसार क्रम से रहता था। साधारण योद्धा को ५००-६०० दिरहम मिलते थे। यहाँ तक कि महिलाओं, बच्चों और आश्रितों[७] के नाम भी इस रजिस्टर में शामिल रहते थे जिनको प्रति वर्ष २०० से

---

५. कुरान के अनुसार युद्ध की लूट का पाँचवाँ हिस्सा अल्लाह और पैगम्बर यानी राज्य का होता था। शेष ८० प्रतिशत उन योद्धाओं का होता था जो युद्ध में उस लूट को प्राप्त करते थे (८-४२)।

६. दिरहम (दिरम) अरबों के धन-प्रणाली में चाँदी का सिक्का होता था। वह मूल्य में युद्ध-पूर्व फ्रेंच फ्रैंक यानी दस डालर (अमेरिका के सिक्कों में १९ सेन्ट) के बराबर होता था पर स्वभावतः उसके मूल्य में काफी परिवर्तन होता रहता था।

७. मवाली (एक वचन मौला) गैर-अरब थे जिन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया था और जो अरब जनजाति से सम्बद्ध होते थे। उनकी हीन-कोटि के कारण उन्हें मुस्लिम अरबों के नीचे रखा जाता था।

६०० दिरहम मिलते थे। इतिहासकार इब्न अल तिकता का कहना है कि **दीवान** या प्राप्तियों और खर्चों के रजिस्टर का आरंभ स्पष्ट रूप से उमर द्वारा किया गया बतलाया जाता है पर इसे फारसी प्रणाली से लिया गया था।

कोषागार

पैगम्बर मुहम्मद के समय कोषागार या "वैत अल-माल" की जरूरत न थी। विभिन्न स्रोतों से इकट्ठी की गई सभी रकम और सभी धन प्राप्त होते ही लोगों में वितरित कर दिया जाता था। प्रथम खलीफा ने पैगम्बर की पद्धति का कड़ाई से पालन किया। अतः उमर के पूर्व कोषागार या "वैत अल-माल" किसी निश्चित संस्था का नहीं बल्कि राज्य-राजस्व के वितरण का नाम था। पर जब खलीफा उमर के अधीन राज्य की आमदनी वढ़ने लगी तो उन्होंने आवश्यकता महसूस की कि धन को राज्य के पदाधिकारियों के अधीन कार्यालय में रखा जाय। इसलिए उन्होंने "वैत-अल-माल" या सार्वजनिक कोषागार राजधानी और प्रान्तीय मुख्यालयों में स्थापित किया। उसका नियंत्रण कोषागार-पदाधिकारी करते थे जिन्हें "साहिब वैत अल-माल" कहा जाता था। उमर प्रथम व्यक्ति था जिसने सन् ६३६ में मदीना में कोषागार स्थापित किया जिसका मुख्य कोषागार पदाधिकारी अब्दुल्ला विन अल अरकम था। अब्दुर रहमान बिन उमयादी अल कारी और मुआकिव उसके सहायक नियुक्त किये गये थे। वाद में सार्वजनिक कोषागार सभी प्रान्तीय मुख्यालयों में स्थापित किये गये। हर प्रान्त में अलग कोषागार पदाधिकारी होते थे जो गवर्नर के नियंत्रण से मुक्त होते थे। वास्तव में पहले कोषागार पदाधिकारी अपने कामों के लिए गवर्नर के प्रति जिम्मेदार होते थे पर जव एक गवर्नर ने सरकारी धन गवन किया तो तीसरे खलीफा उस्मान ने कोषागार पदाधिकारियों को सीधे खलीफा के प्रति जिम्मेदार वना दिया। प्रान्तीय प्रशासन और सार्वजनिक कार्यों पर खर्चों के बाद जो धन वचा रहता था उसे मदीना के केन्द्रीय कोषागार में भेज दिया जाता था।

प्रान्तीय प्रशासन

उमर इस्लाम के राजनीतिक प्रशासन का प्रमुख निर्माता और वास्तविक संस्थापक था। मक्का पर विजय और अरव-प्रायद्वीप को अपनी अधीनता में लाने के वाद पैगम्बर मुहम्मद ने सभी प्रमुख नगरों और प्रान्तों में गवर्नर नियुक्त किये जिनका पदनाम 'अमीर' था। प्रशासन की सुविधा के लिए पैगम्बर ने साम्राज्य को आठ प्रान्तों में बांटा। ये प्रान्त थे मक्का, मदीना, सीरिया, जजीरा (वास्तविक मेसोपोटामिया), वसरा, कूफा, मिस्र और फिलस्तीन। ये प्रान्त जिलों में बांटे जाते थे।

प्रान्त का प्रशासन 'वाली' या गवर्नर को सौंपा जाता था। उमर ने विजित देशों में सुदृढ़ गवर्नरी कायम की और अपने अनुयायियों और समर्थकों को इस योग्य बनाया कि वे अपने प्रभार के अधीन प्रदेश के साधन-स्रोत बढ़ा सकें। इस प्रकार अहवाज और बहरैन को मिलाकर एक प्रान्त बनाया गया; सिजिस्तान, मकरान और करमान मिला कर एक दूसरा प्रान्त बनाये गये और तबरिस्तान और ख़ुरासान अलग-अलग प्रान्त रखे गये। दक्षिणी फारस तीन गवर्नरों के अधीन रखा गया—जब कि ईराक दो गवर्नरों के अधीन जिनमें से एक कूफा में रखा गया और दूसरा बसरा में। ऐसा ही सीरिया के साथ भी हुआ और वहाँ भी दो गवर्नर रखे गए। उत्तरी प्रान्तों के गवर्नर का मुख्यालय हिम्स में था जब कि दक्षिणी भाग का गवर्नर या 'वाली' दमिश्क में रहता था। फिलस्तीन अन्य गवर्नर के अधीन था। अफ्रिका में तीन गवर्नर थे, एक उत्तरी मिस्र में, दूसरा मिस्र में और तीसरा लीबियाई रेगिस्तान के पार-स्थित प्रान्तों में। अरब पाँच प्रान्तों में बाँटा गया। छोटे प्रान्तों के गवर्नर 'वाली' या 'नायब' (उप-गवर्नर) कहे जाते थे। वाली प्रान्तों में खलीफा के प्रतिनिधि होते थे। वह अपने क्षेत्र में वे सभी कार्य करता था जो खलीफा मदीना में करता था। अधिकांश स्थानों में गवर्नर अपने पद के चलते सार्वजनिक या मस्जिद की नमाज का नेतृत्व करता था। वह शुक्रवार का भाषण (खुतबा) भी दिया करता था जो अधिकतर राजनीतिक घोषणा होती थी। प्रान्त में शांति और व्यवस्था की जिम्मेदारी उस पर होती थी। वह प्रान्तीय सेना का सेनापति होता था और कभी-कभी सैनिक अभियानों का नेतृत्व वह स्वयं करता था। 'वाली' या गवर्नर प्रान्त में कर को इकट्ठा करने की देखभाल करता था। जबकि गवर्नर प्रान्त का सैनिक और नागरिक प्रधान था तो वित्तीय और प्रशासनिक कार्य व्यवहारतः अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा किये जाते थे जो इस प्रकार के विशेष कर्त्तव्य के लिए खास तौर पर नियुक्त किये जाते थे। हर जिला का अपना जिला पदाधिकारी (अल-अमील) और जिला काजी होता था। सभी जिला-पदाधिकारी प्रान्तों के गवर्नरों के अधीन होते थे। किसी वाली या अमील की नियुक्ति के बाद उसे अपनी शक्ति और कर्त्तव्यों के बारे में जनता से संबंधित निदेश दिये जाते थे। अपनी नियुक्ति के बाद 'वाली' या 'अमील' को भी अपनी सम्पत्ति और माल-मता का विस्तृत ब्योरा देना पड़ता था। यदि उसकी सम्पत्ति में कोई असाधारण वृद्धि देखी जाती थी उसे राज्य द्वारा जब्त कर लिया जाता था। इसी आधार पर उमर ने अबू हुरेरा और अम्र बिन-आस की सम्पत्ति जब्त कर ली।

विजित देशों के प्रशासन में खेती के सुधार और व्यापार के विकास पर विशेष रूप से जोर दिया जाता था। मिस्र, सीरिया, ईराक और दक्षिणी फारस में हर खेत नापे गये और उन पर एक समान दर से मालगुजारी लगाई गई। यह

शानदार भूमि-कर मान-चित्र एक पक्का सूची-पत्र होता था जिसमें भूमि का क्षेत्र-फ़ल, मिट्टी की किस्म का व्योरा, उपज का स्वरूप, जोत के प्रकार आदि का विवरण होता था। बेबीलोनिया में नहरों का जाल बिछाया गया। टिगरिस और यूफ्रेट्स नदियों पर बाँध बनाये गये। इनकी निगरानी का भार विशेष पदाधिकारियों पर सौंपा गया। उमर ने अनाज और विकसित होने वाले उद्योग पर कर कम कर दिया। मिस्र और अरब के बीच सीधा रास्ता बनाने के लिए उमर ने नील नदी और लाल सागर (रेड सी) के बीच प्रयोग में न लाई जाने वाली नहर को फिर से खुदवाया। अरबों ने उस नहर का नाम दिया—"धार्मिक विश्वास वालों के नेता की नहर"। इस नहर की खुदाई एक साल से कम समय में पूरी हुई। जब भी नदी की नावें मिस्र में होने वाली उपज के साथ मक्का और मदीना के बाजारों में पहुँचीं तो वहाँ उनके दाम गिर गए। मिस्र में उनके दाम मक्का और मदीना में उनके दाम से कम न थे।

काजी का वेतन खुद खलीफा निश्चित करता था। उसका काम न्याय-विभाग का प्रबंध करना था। वह मस्जिद और मदरसा के वक्फ (अल्लाह की सम्पत्ति) के बारे में निर्णय करता था और आवश्यकता होने पर नमाज का नेतृत्व करता था। "कती बुद-दीवान" और "साहिब अल-बैत अल-माल" क्रमशः सेना और वित्त-विभाग के प्रभारी थे। प्रान्तों के पदाधिकारियों को अधिक वेतन दिया जाता था ताकि उन्हें घूस लेने का प्रलोभन न रहे।

न्याय-प्रशासन

न्याय-प्रशासन गैर-सैनिक-न्यायाधीश करते थे जिनकी नियुक्ति खलीफा करता था। गवर्नरों के नियंत्रण से वे मुक्त रहते थे। इस्लाम में उमर प्रथम शासक हुआ जिसने अपने न्यायाधीशों के वेतन निर्धारण किये। साथ ही उसने उसके पद को प्रशासनिक पदाधिकारियों के पदों से अलग कर दिया[८]। काजियों या न्यायाधीशों के लिए 'हाकिम' या पदाधिकारी का खिताब सुरक्षित था।

वौन क्रेमर लिखता है—"न्यायाधीश 'हाकिम उस-शरा' नाम से जाना जाता था और अब भी जाना जाता है। 'हाकिम-उस-शरा' अर्थात् कानून के जरिए शासक उसे इसलिए कहते थे क्योंकि न्याय न्यायाधीश के कथन के जरिए काम करता था और गवर्नर की शक्ति थी कि न्यायाधीश के कथन को कार्य-रूप दे। इस प्रकार इस्लामी प्रशासन ने अपने शैशव-काल में ही शब्दों और कार्यों में न्यायपालिका और कार्यपालिका के पृथक्करण का सिद्धान्त घोषित कर दिया था।" न्याय-प्रशासन

८. साबित का पुत्र जैद मदीना का प्रथम वैतनिक न्यायाधीश था।

सबके लिए पूरी तरह एक समान था। खलीफाओं ने न्यायत: स्थापित न्यायाधीश के आदेशों के अन्तर्गत अपने को भी रखा था। प्रारंभिक चरणों में कोई सेनापति जब किसी क्षेत्र को जीतता था तो वह वहाँ नमाज का नेतृत्व करता था और न्यायाधीश के रूप में काम करता था। अल-बलाधुरी ने बतलाया है कि उमर ने एक काजी (न्यायाधीश) को दमिश्क के लिए और अन्य दो को हिम्स और किनासरीन के लिए नियुक्त किया। ऐसी स्थिति में वह ऐसा खलीफा था जिसने न्यायाधीशों की परम्परा कायम की। प्रारंभ में पुलिस के कार्य सामान्यत: जनता ही करती थी। उमर ने रात में पहरेदारी और गश्त की व्यवस्था शुरू की, पर संगठित पुलिस की नियुक्ति चौथे खलीफा अली के शासन में ही शुरू हुई। अली ने नगरों के लिए पहरेदार नियुक्त किये जिनको शुर्ता कहा जाता था और इनके प्रधान को "साहिब उश-शुर्ता" कहा जाता था। उमर ने अली की सलाह पर हिजरा संवत् शुरू किया और समूचे साम्राज्य के हर हिस्से में मदरसे और मस्जिदें स्थापित कीं।

सैनिक-प्रशासन

सेना उम्मा या सम्पूर्ण कार्यरत राष्ट्र था। उसका अमीर या प्रधान सेनापति खलीफा था जिसका मुख्यालय मदीना में था। वह अपने लेफ्टिनेन्टों या सेनापतियों को अधिकार प्रदान करता था। सेना में जनजातियों के लोग और स्वयंसेवक होते थे जो मदीना, तैफ और अन्य नगरों से भरती किये जाते थे। उन्हें पहले जनता से वसूले गये दशमांश कर (धर्मशुल्क) और अन्य करों से वेतन दिया जाता था। आरंभ में खलीफा केवल प्रधान सेनापति नियुक्त करता था जिनके ऊपर ही अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों को नियुक्त करने की जिम्मेदारी थी। चूँकि प्रधान सेनापति खलीफा का प्रतिनिधित्व करता था, वह दैनिक नमाज का नेतृत्व करता था। जबकि अनेक सैन्य दल एकता के सूत्र में बँधे हुए थे, यह स्पष्ट रूप से बतला दिया जाता था कि सेनापतियों में से कौन सेनापति नमाज का नेतृत्व करेगा क्योंकि उससे प्रकट होता था कि वह प्रधान सेनापति है। लड़ाई के मैदान में अनुशासन-भंग और कायरता को लकड़ी के कठघरे में अपराधी का सर डाल कर दंडित किया जाता था और इन अपराधों के अपराधी की पगड़ी फाड़ दी जाती थी। ये दंड उन दिनों इतने घृणास्पद माने जाते थे कि इनके भय से लड़ाई के मैदान में कोई भी सैनिक निश्चित रूप से न तो अनुशासन-भंग करता था और न कायरता दिखलाता था। सेना घुड़सवारों और पैदल सैनिकों में बँटी होती थी। घुड़सवार ढालों, तलवारों और लंबे भालों से लैस होते थे, पैदल सैनिकों के पास ढालें, भाले और तलवारें या ढालें और धनुष-बाण होते थे। पैदल सैनिकों में धनुषधारी सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण होते थे। पैदल-सवार सामान्यत: तीन घनी पंक्तियों में होते थे। सबसे आगे भाले से लैस सैनिक

होते थे जो विपक्ष के घुड़सवारों के आक्रमण को रोकने के लिए होते थे। उनके पीछे धनुषधारी सैनिक होते थे। पैदल सैनिकों के दोनों बाजुओं की ओर घुड़सवार सैनिक होते थे और लड़ाइयाँ दोनों ओर से चुनौतियाँ देने और दोनों पक्षों के एक-एक सैनिक की गुत्थमगुत्थी से शुरू होती थीं। मुस्लिम फौजों की असाधारण विशेषता यह थी कि उनके लड़ने के तरीके बिल्कुल नये थे, उनमें अपार धैर्य था और गजब की सहनशक्ति। उन लोगों में जोश और उत्साह भी काफी था। इन सब गुणों के कारण वे अपराजेय हो गये थे। उन लोगों के पास खाने-पीने आदि का सामान भी बराबर काफी रहता था। ऊँटों पर सवार मुस्लिम सेनायें बहुत दूर-दूर तक आक्रमण पर जाती थीं। पहले सेनाओं के ठहरने के स्थान केले के पत्तों से बनी झोपड़ियाँ थीं। बाद में खलीफा उमर ने सेनाओं के ठहरने के लिए स्थायी जगहें या छावनियाँ बनवाने के आदेश दिये। इस प्रकार ईराक में बसरा और कूफा, मिस्र में फुस्टैट, अफ्रिका में केरूवां, सिन्ध में मन्सुरा आदि में फौजी छावनियों की शुरुआत हुई। अन्य स्थानों जैसे हिम्स, गाजा, एडेसा, इस्फहान और सिकन्दरिया में अचानक आक्रमण को रोकने के लिए भारी परिमाण में फौजें रखी गईं। घुड़सवार जंजीरों से बने जिरह-वस्तर और लोहे के टोप पहनते थे तथा सर पर पगड़ी में उकाब पक्षी के पंख लगाते थे। पैदल सैनिक खूब कसा हुआ घुटनों तक आने वाला कुर्ता, शलवार और बूट-जूते पहनते थे जो अभी भी अफगान और पंजाबी पहनते हैं। वे कुरान की आयतें जोरों से दुहराते हुए लड़ाई में आगे बढ़ते थे और "अल्ला-हो-अकबर" तथा "अल्लाह सबसे बड़ा है" की आवाज करते हुए हमला बोलते थे।[१] ढोल और नक्कारे भी साथ-साथ बजाये जाते थे। फौज के जनजातीय सिपाही अपने साथ अपने परिवार भी रखते थे। फौजी नगरों और सेना ठहरने के स्थानों में उनके लिए विशेष क्वार्टर होते थे। बदचलनी पर कड़ाई से रोक लगाई जाती थी। शराब पीने पर अस्सी कोड़े मारे जाते थे। जिन सैनिकों को उनके परिवारों से दूर बाहर लड़ाई पर भेजा जाता था उन्हें एक बार में चार महीनों से अधिक फौजी सेवा नहीं करनी पड़ती थी। उमर ने सैनिकों की हाजिरीबही की प्रणाली शुरू की। उसने सीमाओं पर किले बनवाये और दलदली क्षेत्रों में सेनापति नियुक्त किए।

सेना का विभाजन मध्य और अगले तथा पिछले दस्तों में करने की बात पैगम्बर मुहम्मद के समय में भी ज्ञात थी और यह बैजेन्टाइनों और सासनिदों के प्रभाव का द्योतक है। खामियाँ (पाँच) शब्द का प्रयोग फौजी इकाई के लिए किया जाता था। घुड़सवार पैदल सेना की रक्षा के लिए उसके अगल-बगल और आगे-पीछे रहते थे। जनजातीय फौजी इकाई सुरक्षित रखी जाती थी। उसका अपना झंडा होता था। यह भाले में लगा हुआ एक कपड़ा होता है। उसे सेना का सबसे बहादुर

---

१. इसे तकबीर कहा जाता था।

सैनिक लिये रहता था। पैगम्बर मुहम्मद के झण्डे पर **उकाब** पक्षी का निशान होता था। पैदल सेना धनुष और तीर, गुलेल और कभी-कभी ढाल और तलवार का भी प्रयोग करती थी। तलवार म्यान में रखी जाती थी और दाहिने कंधे पर लटकी रहती थी। **हरबे** (एक प्रकार का भाला या नेजा) का प्रयोग अबीसीनिया के आदर्श पर शुरू किया गया। घुड़सवार सेना का मुख्य अस्त्र **रम्ह** (बल्लम) होता था जिसमें लगा डंडा अरब साहित्य में **खत्ती** कहा जाता था। यह नाम **अल-खत्त** के आधार पर रखा गया था। अल-खत्त बहरैन का समुद्र-तट था जहाँ ही पहले-पहल बाँस उगाया गया था। वहाँ उसका निर्यात भारत से हुआ था। यह (बल्लम) और धनुष-बाण मुसलमानों के दो राष्ट्रीय अस्त्र थे। सबसे अच्छी तलवारें भी भारत में बनती थीं जिस कारण उसे हिन्दी कहते थे। रक्षात्मक हथियार कवच और ढाल होती थी। अरब कवच बैजेन्टाइनों के कवच से हल्के होते थे।

युद्ध का तरीका पुराना होता था। वह लाइनों या पंक्तियों और सुगठित व्यूह-रचना में होता था। दोनों पक्षों के आमने-सामने आ खड़े होने पर विशिष्ट सैनिकों की आपसी मुठभेड़ से लड़ाई शुरू होती थी। वे साधारण सैनिकों की पांतों से अलग खड़े हो जाते थे और एक पक्ष दूसरे पक्ष को चुनौती देता था। अरब सैनिकों का वेतन फारसी या बैजेन्टाइन सैनिकों के वेतन से अधिक होता था और उन्हें लड़ाई की लूट के माल में निश्चित रूप से हिस्सा मिलता था। सैनिक कार्य न केवल अल्लाह की निगाह में अच्छे किस्म का सुखप्रद काम समझा जाता था बल्कि सबसे ज्यादा लाभप्रद कार्य भी था। अरब मुसलमानों की सेना की शक्ति न केवल उनके हथियारों की श्रेष्ठता और उनके संगठन की उत्तमता बल्कि उनके ऊँचे नैतिक बल में भी निहित थी जो उन्हें अपने धार्मिक विश्वास से प्राप्त होता था। उन लोगों में गजब की सहन-शक्ति थी जो उन्हें अपने रेगिस्तानी जीवन से प्राप्त होती थी। वे तेज चल भी सकते थे क्योंकि वे ऊँटों पर चलते थे। सैनिकों को ज्यादा-से-ज्यादा आराम देने का ध्यान रखा जाता था। अपने घर से बाहर लड़ाई पर जाने वाले सैनिक को लगातार चार महीनों से ज्यादा समय तक घर से बाहर न रहने दिया जाता था। सैनिकों के स्वास्थ्य पर भी बहुत ज्यादा ध्यान रखा जाता था। उनके बैरकों में हवा की समुचित व्यवस्था रहती थी। उनमें जगह भी ज्यादा होती थी और उनका निर्माण जाने-माने स्वास्थ्यकर स्थानों में किया जाता था। हर सेना में कुछ चिकित्सक शल्य-चिकित्सक होते थे।

समुद्र के रास्ते पहला मुस्लिम आक्रमण फारसियों के विरुद्ध अल्ला बिन हदरामी ने फारस की खाड़ी को पार कर किया और इसके लिए खलीफा उमर की पूर्व अनुमति प्राप्त न थी। पर अरबों के नौसैनिक अभियानों का वास्तविक युग खलीफा उस्मान के शासन में आरंभ हुआ। प्रथम अरब नौसेनापति अब्दुल्लाह

बिन कैस हदीस था जिसने रोमनों पर पचास नौसैनिक हमले किये। रोमन उससे थर-थर कांपते थे पर बाद में रोमनों ने ही उसकी हत्या कर दी। २८ अल हिजरी में अरबों ने साइप्रस पर हमला किया। मुआबिया और अब्दुल्लाह ने क्रमशः सीरियाई और मिस्री नौसेनाओं का सेनापतित्व किया। अरबों ने धीरे-धीरे भूमध्य सागर के अधिकांश द्वीपों पर कब्जा कर लिया। खलीफा उस्मान ने अपने भाई हकम को बहरैन का उप-शासक (वाइस-रीजेन्ट) नियुक्त किया। उसे एक नौसेना तैयार करनी थी जिसे उसने भारत भेजा।

उमर का संविधान और प्रशासनिक नीति

इस्लामी गणतंत्र तीस वर्ष तक चला। इस अवधि में उसकी प्रशासनिक नीति ने अपना स्वरूप मुख्यतः द्वितीय खलीफा उमर से ग्रहण किया। ऐसा न केवल उनके जीवन-काल बल्कि उनकी मृत्यु के बाद भी हुआ। उमर की नीति अरब को सुदृढ़ बनाना और अरब जनजातियों को एक राष्ट्र के रूप में एकता के सूत्र में बांधना था। अन्य देशों की विजयों को संतुलित बनाने की स्थितियों से बाध्य होकर उमर ने इसके लिए उत्सुकता दिखलाई कि सारासेनों (अरबों) द्वारा विजित देशों में अपनी राष्ट्रीयता खो न दें और अन्य देशों के लोगों में अपना अस्तित्व विलीन न कर दें। यदि उमर कुछ दिन और जीवित रहते तो अपने चरित्र-बल से वे अरबों में और एक-रूपता ला देते और इस प्रकार उनके बीच वे गृहयुद्ध न होते जिनसे अंततः इस्लामी साम्राज्य का विनाश हो गया।

उमर के सिद्धान्त का प्रारंभिक सूत्र यह था कि अरब प्रायद्वीप में इस्लाम धर्म के अलावा और किसी धर्म को पनपने न दिया जाय। इस उद्देश्य से उन्होंने प्रारंभिक संधियों की उपेक्षा करते हुए अल-हिजरी १४-१५ (सन् ६३५-३६) में अन्य लोगों के अलावा यहूदियों को अरब से निकाल कर खैबर[१०] भेज दिया। उन लोगों ने जेरिको और अन्य स्थानों में अपना निवास बनाया। इसी तरह उमर ने नजरान के ईसाइयों को भी अरब से निकाल बाहर किया जो भाग कर सीरिया और ईराक चले गए। उमर की नीति की दूसरी मूलभूत बिन्दु यह थी कि अरबों को, जो सभी अब मुसलमान हो गये थे, एक सम्पूर्ण धार्मिक-सैनिक राष्ट्रमंडल में परिवर्तित कर दिया जाय जिसके सदस्य शुद्ध और अमिश्रित हों। यह एक प्रकार का फौजी कुलीन-तंत्र होता जिसमें गैर-अरबों को कोई विशेषाधिकार न होते। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नियम बनाया गया कि अरब मुसलमान अरब प्रायद्वीप के बाहर न कोई भू-सम्पत्ति रख सकते थे और न ही उसे जोत-बो सकते थे। अरब प्रायद्वीप में जो अरब भू-सम्पत्ति रखते थे उनको दशमांश कर (उश्र) के रूप में देना

---

१०. सीरिया के रास्ते पर मदीना से प्रायः सौ मिल उत्तर एक मरुद्यान।

पड़ता था। इसलिए सीरिया में अरब विजेता पहले शिविरों में रहते थे। ये शिविर जाबिया, हिम्स, अगवास, तबरिया (जोर्डन जिले के लिए), लड (लीडा) और बाद में फिलस्तीन जिले के लिए रामला में थे। मिस्र में वेफुस्टेट और सिकन्दरिया शिविरों में रहते थे। ईराक में नव-निर्मित कूफा और बसरा में मुख्यालय था। जिन देशों पर विजय कर ली जाती थी वहाँ के लोगों की सम्पत्ति और उन लोगों द्वारा जमीन जोतने-बोने के काम में दखल न दिया जाता था। पर उन्हें द्वितीय किस्म के नागरिक की हैसियत दी जाती थी और मुसलमानों के लाभ के लिए वे रिजर्व (आवश्यकता पड़ने पर बुलाये जाने वाले सैनिक) के रूप में इस्तेमाल किये जाते थे। यदि गैर-अरब इस्लाम धर्म अपना भी लेते थे तो भी उनकी स्थिति मुस्लिम अरबों से नीचे की ही रहती थी।

गैर-अरब अरब सैनिकों की जाति के मुकाबले प्रजा समझे जाते थे, प्रजा यानी 'रियाया' जिसका बहुवचन 'राया' और जिसका अर्थ समूह होता है। वे पुराने रंगभेद की उपमा के कारण प्रजा यानी रियाया माने जाते थे। असीरियनों के बीच भी उन्हें यही मान्यता दी जाती थी। जबकि मुसलमानों को निर्धन-कर देना पड़ता था, 'राया' यानी गैर-अरब प्रजा को कर देना पड़ता था जो मुसलमानों की सहायता के लिए खर्च किया जाता था। प्रशासन अरब जनजातियों के अन्दरूनी मामलों के बारे में जितना चिन्तित रहता था उतना गैर-अरबों के अन्दरूनी मामलों के बारे में नहीं। जिन ईसाई देशों पर मुसलमान विजय प्राप्त करते थे वहाँ के सामुदायिक मामलों का प्रशासन बिशपों (ईसाई धर्माध्यक्षों) पर सौंपा जाता था और फारस में वहाँ के भद्रलोक-दिहकान-या-ग्राम-दंडाधिकारी प्रशासन में प्रमुख स्थान रखते थे।

जो नगर और ग्राम-क्षेत्र मुसलमानों के समक्ष बिना प्रतिशोध या संघर्ष के आत्मसमर्पण कर देते थे उनकी स्वतंत्रता और सम्पत्ति को बरकरार रहने दिया जाता था। उन्हें जो कर देना पड़ता था वह प्रत्यक्ष रूप से, उनके द्वारा किए गए आत्मसमर्पण की शर्तों के अनुसार, तय किया जाता था। जिन स्थानों पर हथियारों के जोर से कब्जा किया जाता था, विजेता मुसलमानों द्वारा उनकी सम्पत्ति लूट का माल समझी जाती थी। लूट के माल का पाँचवाँ हिस्सा इस्लामी सरकार द्वारा ले लिया जाता था। इसके अलावा भूतपूर्व शासक की भूमि और अन्य लोगों द्वारा छोड़ी गई जमीन भी इस्लामी सरकार की ही हो जाती थी। इसके अलावा भू-सम्पत्ति और उसके निवासी उन सैनिकों के बीच बाँट दिये जाते थे जो वहाँ की विजय में भाग ले चुके होते थे। फिर भी, चूँकि मुसलमान विजित भूमि पर खुद बसने, उसे जोतने-बोने के लिए अपनी फौजी इकाइयाँ नहीं छोड़ सकते थे, जमीन के भूतपूर्व मालिक ही अपनी जमीन का उपभोग करने के लिए छोड़ दिये जाते थे। इसके

अनुसार व्यवहार में बिना प्रतिरोध आत्मसमर्पण करने वालों के क्षेत्र को कोई खास दर्जा न दिया जाता था। अन्य क्षेत्रों और उन क्षेत्रों के बीच भेद यही रखा जाता था कि अन्य क्षेत्रों का कर मनमाने तौर पर कभी भी बढ़ाया जा सकता था, जबकि उनका नहीं। फिर भी इस्लामी साम्राज्य को दिए जाने वाले कर का एक हिस्सा साम्राज्य अपने उपयोग के लिए रख छोड़ता था। वह उससे सैनिकों और उनके वंशजों के लिए पेंशन निर्धारित करता था। इस व्यवस्था की रूप-रेखा जाबिया सम्मेलन में उमर ने निर्धारित की थी।

इसके अलावा द्वितीय खलीफा उमर की नीति के कई अंग उल्लेखनीय हैं। सबसे पहले उसने ही सभी विरोधी या विदेशी तत्त्वों को अरब से निकाल बाहर किया और अरब को केवल मुसलमानों के लिए ही सुरक्षित कर दिया। नीति का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग था कि उमर ने इस्लामी गणतंत्र का हद से ज्यादा विस्तार न किया।

उनकी जैसी दूरदृष्टि बाद के खलीफाओं में न थी। उसी दूरदृष्टि के कारण उमर की धारणा थी कि साम्राज्य का स्थायित्व और आर्थिक उन्नति किसानों की समृद्धि पर निर्भर करती है। इसी उद्देश्य से उसने विजित देशों में जोतों और कृषि-भूमि की बिक्री पर रोक लगा दी।[१२] अरब लोग विजित क्षेत्रों के लोगों की भूमि का अतिक्रमण न करें उसके लिए उमर ने आदेश दिया कि कोई भी मुसलमान विजित क्षेत्र के लोगों से भूमि प्राप्त न करे। इस प्रकार विजित क्षेत्र के किसानों और भू-स्वामियों को अपनी जमीन की बेदखली से दुहरे तौर पर सुरक्षा प्रदान की गई। इन नियमों को बनाने में संभवतः उमर का उद्देश्य यह था कि अरब जिन विजित देशों में बसें वहाँ के लोगों और समुदायों में उनका वंश और जाति विशिष्ट हो और वहाँ वे सबके बीच प्रमुख बन कर रहें। यह उद्देश्य वर्त्तमान और प्राचीन इतिहास में कोई नया नहीं है। पर उमर ने मुसलमानों को जो प्रमुखता दी और उन्हें जो विशेषाधिकार प्रदान किये वे अपने आप में विशिष्ट या अलग से न थे। रंग, वंश और राष्ट्रीयता समानता की राह में बाधक न थे। उमर के युग में इस्लाम धर्म अपनाने से या किसी गैर-अरब द्वारा इस्लाम धर्म का अनुयायी बन कर मुसलमानों की जमात में शामिल होने से उस गैर-अरब की स्थिति जन्मजात अरब की-सी हो जाती थी। यह नीति कम-से-कम बाद के सभी शासकों (खलीफाओं) के समय में जारी रही। इस प्रकार अनेक फारसी परिवार, अपना धर्म बदले बिना, अरब परिवारों के मौला बन गए। इसी प्रकार सीरिया और मिस्र के अनेक ईसाई कुल और अफ्रिका के बर्बर जाति के लोग अरब जनजातियों से सम्बद्ध हो गए।

---

१२. हिरा जिले में पहले से भूमि की स्वतंत्र बिक्री जारी थी। उसे इस नियम से मुक्त रखा गया।

वास्तव में प्रमुख धर्मावलम्बियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे जैसा कि अन्य देशों और अन्य समुदायों में होता है जिस कारण अन्य धर्मों और सम्प्रदायों के लोग निश्चित तौर पर, तेजी के साथ, अपना धर्म छोड़ कर प्रमुख धर्म अपनाने को प्रेरित होते हैं। इस्लाम धर्म के नियम और सिद्धान्त प्रजातंत्र की ओर उन्मुख हैं और उनमें समाजवाद का भी पुट है। सभी लोग, चाहे वे अमीर हों या गरीब, अल्लाह की निगाह में बराबर हैं और शासक उनके ऐसे प्रधान हैं जो उन्हें अराजकता से बचाते हैं। राज्य का राजस्व खलीफा के लाभ के लिए अथवा उसे धनी बनाने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाता था बल्कि उसका उपयोग गरीबों की भलाई में होता था। ऐसा आदेश था कि धनी लोगों से प्राप्त होनेवाला निर्धन-कर गरीबों की सहायता के लिए खर्च होता था और कानून में दान की स्पष्ट व्यवस्था थी। फलतः इस्लाम गणतंत्र के प्रारम्भिक दिनों में कोषागार में न पहरेदार की जरूरत थी और न लेखा-बहियों की। धर्म-शुल्क के रूप में धन प्राप्त होते ही सीधे गरीबों में बाँट दिया जाता था या उसका उपयोग सेना को शस्त्र-सज्ज करने में किया जाता था जिनपर राज्य की रक्षा की जिम्मेवारी होती थी। लड़ाई में होने वाली लूट भी उसी तरह वितरित की जाती थी। इस बँटवारे में सबको एक समान हिस्सा मिलता था। जवानों और बूढ़ों, पुरुषों और स्त्रियों, दासों और स्वतंत्र लोगों सबको लड़ाई के लूट में से भाग मिलता था। बाद में यह वितरण व्यवहार में, भारी-भरकम सिद्ध हुआ। इसलिए उसे नियत भत्तों में बदल दिया गया। पूरे राष्ट्र को अधिकार था कि उसे लोक-राजस्व (सरकारी आय) से वृत्ति मिले। यह वृत्ति क्रमबद्ध रूप में मिलती थी। और यह लाभ केवल मुसलमानों तक ही सीमित न था। धिम्मी लोग (गैर-मुस्लिम प्रजा) को इसी प्रकार की वृत्ति मिलती थी यदि वे वफादारी और ईमानदारी के साथ सेवा करते थे। खलीफा को कोई राजकुल-व्यय या असाधारण भत्ता न मिलता था। पैगम्बर मुहम्मद या उनके बाद के सबसे योग्य खलीफा उमर ने पारिवारिक भू-सम्पत्ति के विभाजन के बारे में कभी न सोचा था क्योंकि इससे अंत में परिवारों के गरीब हो जाने का खतरा था। इस परिणाम से बचने के लिए मदीनावासियों की भूमि वक्फ द्वारा, जिसके संबंध में ऊपर विस्तार से बतलाया गया है, पुनः विभाजन और दूसरों द्वारा हड़पे जाने से बचाई गई। इसी उद्देश्य से विजित देशों में सार्वजनिक भूमि सैनिकों के बीच न बाँटी जाती थी बल्कि उस पर सरकार का कब्जा होता था। उससे होने वाली आय, संबंधित खर्चों को काट कर, उन लोगों के बीच बाँट दी जाती थी जो उसके हकदार होते थे।

दुर्भाग्य से तीसरे खलीफा उस्मान के अधीन उनके महान पूर्ववर्ती शासक उमर की नीति पूरी तरह उलट दी गई। उमर ने जिन योग्य और समर्थ गवर्नरों को प्रान्तों का प्रभारी बनाया था उस्मान ने उन लोगों को हटा दिया। उस्मान ने न

केवल ऐसा किया वल्कि अपने सगे-संबंधियों के बीच नियुक्तियाँ नये सिरे से वितरित की। राज्य की भूमि, जो जनता की सम्पत्ति होती है, उसे बुरी सलाह में पड़कर इस कमजोर खलीफा ने अपने संवंधियों के बीच वितरित किया। इस प्रकार मुआविया ने सीरिया में सभी और मेसोपोटामिया में आंशिक रूप से जमीन हथिया ली। राज्य कोषागार को, जो क्रमशः प्रथम खलीफा अबू बकर और द्वितीय खलीफा उमर के अधीन सार्वजनिक न्यास समझा जाता था, समय-समय पर उस्मान के अयोग्य प्रियजनों द्वारा खाली किया जाता रहा। प्रान्तों के धन से उमैय्यद धनी बनने लगे और उससे उन्हें सत्ता के संघर्ष के लिए तैयारी करने में सहायता मिली। गैर-मुसलमानों को जो विशेषाधिकार दिये गये थे उनको भी उस्मान ने वापस ले लिया। उसने उनके सम्बन्ध में अनेक कड़े नियम लागू किये जो प्रत्यक्षतः उसके पूर्ववर्ती शासकों की नीति के विरोध में थे। उसने भूमि की विक्री की अनुमति दे दी और वही सर्वप्रथम शासक (खलीफा) था जिसने फौजी जागीरें बनाईं। चौथे खलीफा अली का प्रशासन गृह-युद्ध से अत्यधिक उपद्रवग्रस्त था जिस कारण वह अपने पूर्व प्रशासक उस्मान के समय आ गई बुराइयाँ दूर न कर सका। पर अली ने अधिकांश भ्रष्ट गवर्नरों को हटा दिया और जहाँ तक उसकी शक्ति थी, उमर की नीतियाँ फिर से लागू कीं। उसने एक राज्य अभिलेखागार स्थापित किया ताकि खिलाफत के अभिलेख सुरक्षापूर्वक रखे जा सकें। उसने हाजीब या प्रवंधक (चैम्बरलेन) और "साहिब उश-शुर्त्ता" या पहरेदारों के प्रधान के पद सृजित किये। उसने पुलिस-व्यवस्था का पुनर्गठन किया और उनके कर्तव्यों के बारे में नियम बनाये।

इस प्रकार निःसंदेह कहा जा सकता है कि इस्लामी संसार के इतिहास में इस्लामी गणतंत्र की अवधि शानदार और महत्वपूर्ण रही। एक छोटी-सी अवधि में खलीफाओं ने प्रशासन और सरकार के क्षेत्र में जो कार्य किये उनको इतिहास में बराबर आश्चर्यजनक मानवीय कृत्य माना जाएगा।

सामाजिक जीवन

खलीफाओं का जीवन सादा और ईमानदारी से भरा था। ऐतिहासिक कृति 'अल-बयन' में कहा गया है कि खलीफा यद्यपि विशाल साम्राज्य के शासक थे पर वे फकीरों का-सा जीवन विताते थे। उनके रहने के लिए राजाओं के-से महल न थे और उनके दरबार के लिए बड़े भवन न थे। खलीफा जिन झोपड़ियों में रहते थे उन पर उन्हें गर्व था। वे अपनी जीविका के लिए परिश्रम के साथ कार्य करते थे। अपने हाथों से अपने दैनन्दिन कार्य करने में उन्हें शर्म महसूस न होती थी। वे लोग अपने दरवाजे पर अपनी शारीरिक सुरक्षा के लिए अंगरक्षक रखने की जरूरत महसूस न करते थे यद्यपि उनमें से कई हत्यारों के छुरे के शिकार हुए। उनके दरवाजे गरीबों

के लिए बराबर खुले रहते थे और वे खुद जनता की शिकायतें सुनते थे। वे लोग अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए क़ोषागार से प्रति मास तीस रुपये लेते थे।

प्रारम्भ में भवन-निर्माण की कोई व्यवस्था न थी। मक्का में कुछ भवन थे जैसे कि काबा जिसमें भवन-निर्माण कला का प्रदर्शन था। वहाँ कुछ धनी नागरिकों के मकान थे जो या तो पत्थर अथवा ईंटों के बने हुए थे। मदीना में मकान ईंटों के बने हुए थे। यहाँ तक कि उसकी प्रमुख मस्जिद एक मामूली से मकान में थी जो धूप में पकाये गये ईंटों से बनी थी और जिस पर मिट्टी का पलस्तर था। मकान अधिकांशत: एकमंजिले थे जिनमें दालान और उसके बीच में एक कुआँ होता था। द्वितीय खलीफा उमर के शासन के अन्त में इस्लाम साम्राज्य की राजधानी में बहुत बड़ी संख्या में विदेशी वास्तुकार (भवन-निर्माणकर्ता) आ गए जिससे भवन-निर्माण-कार्य में तेजी आई। मक्का और मदीना के सभी प्रमुख लोगों ने संगमर्मर पत्थर के बड़े-बड़े भवन बनवाये। तृतीय खलीफा उस्मान के लिए जो महल बनवाया गया वह काफी बड़ा, सुन्दर और शानदार था। मदीना की प्रमुख मस्जिद गिरा दी गई और उसके स्थान पर पत्थर और संगमर्मर पत्थर की एक सुन्दर मस्जिद बनवाई गई। इतिहासकार मसूदी का कहना है कि उस्मान की खिलाफ़त में पैगम्बर के साथियों ने अपने लिए शानदार भवन बनवाये। हिजरा संवत के ३५वें वर्ष में, जब कि मसूदी ने उस समय के सम्बन्ध में लिखा, आवाम के पुत्र जुबैर द्वारा बनवाया गया भवन कायम था। उसका उपयोग व्यापारिक कार्यों के लिए व्यापारी और बैंक-स्वामी करते थे। जुबैर ने कूफा, फुस्टैट और सिकंदरिया में अनेक बड़े भवन बनवाये। इन भवनों के साथ बागीचे भी संलग्न थे जो इतिहासकार मसूदी के समय में अच्छी स्थिति में थे। इन भवनों, बागीचों और विशालता के अन्य चिह्न देख कर इतिहासकार मसूदी अफसोस के साथ कहता है—"यह सब द्वितीय खलीफा उमर के महान युग के सादे और संयमपूर्ण तरीकों और जीवन से कितना भिन्न था।" जबकि मक्का मुख्यत: व्यापार और वाणिज्य का केन्द्र था तो मदीना अपनी खुशहाली और समृद्धि के लिए अपने खेतों और भूमि पर निर्भर करता था। इस कारण दोनों नगरों के बीच वर्षों से चली आ रही प्रतिद्वन्द्विता में और कटुता बढ़ी। मक्का के निवासी जुआ, शराब और आरामतलबी में लगे रहते थे। दूसरी ओर मदीना के निवासी, खासकर इस्लामी शासन में, अपने नेताओं के उदाहरण पर चलते हुए सादा और संयमपूर्ण जीवन बिताते थे और निष्ठापूर्वक धर्मपरायण यह बहुत कुछ एथेन्स और स्पार्टा नगरों के बीच के सम्बन्ध जैसा था। मक्का के पतन के बाद उस मौज-मजा और ओछे किस्म का जीवन बिताने वाले नगर को इस्लाम द्वारा चलाये गये नैतिकता के सिद्धान्तों के आधार पर चलने को बाध्य होना पड़ा। ऐसी स्थिति प्रथम दो खलीफाओं—अबू बकर और उमर—के शासन में चलती रही। तीसरे खलीफा उस्मान के

शासनारूढ होने के बाद बड़े घरों के नवयुवक जो मुख्यत: उमैय्यद परिवार के थे फिर मौज-मजा और ऐश का जीवन बिताने लगे। खुद उस्मान के अपने भतीजे ने एक जुआ-घर खोला जिसमें महिलाओं का गाना-बजाना होता था। उमैय्यदों के शासन में दमिश्क में मक्का का ओछेपन से भरा जीवन और भी भद्दे और बुरे रूप में शुरू हुआ। दूसरी ओर मदीना में लोगों ने अपने जीवन को और गंभीरतापूर्वक लिया। व्याख्यान कक्षों में उत्साही छात्र भरे रहते थे और, खलीफाओं के उपदेशों को पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही सुनते थे। उस समय तक संगीत पर रोक न लगी थी। अपने दिन भर के काम के बाद लोग अपना मनोरंजन गा-बजा कर करते थे। बाँसुरी और सितार प्रचलित बाजे थे। उत्तरी नगर की महिलाएँ अच्छी गायिकाएँ थीं।

समृद्ध लोगों के मकानों के फर्शों पर दरियाँ बिछी होती थीं। उस समय कुर्सियाँ और मेजें न हुआ करती थीं। पर दरियों के ऊपर और कमरे में चारों ओर गलीचे, कम्बल और नमदे बिछे होते थे और उन पर घर के स्वामी और उनके मेहमान बैठते थे। महिलाओं के कमरे अलग होते थे और वे भी पुरुषों के कमरों की भाँति सजे होते थे। भोजन फर्श के एक कपड़े पर परोसा जाता था जो गलीचों के सामने चमड़े के एक टुकड़े पर बिछाया जाता था। जैसा कि यूरोप में प्राचीन काल और मध्य काल के लोगों के बीच प्रचलन था, भोजन के पहले और बाद में हाथ धोये जाते थे। उस समय तक खाने के लिए काँटों और छुरियों का प्रयोग शुरू न हुआ था और लोग खाने के समय अपनी ऊँगलियों का सहारा लेते थे जैसा कि यूरोप में बहुत हाल तक होता था। पर खाने के समय भोजन के बर्तन में तीन उँगलियों से अधिक डालना अत्यधिक असभ्यतापूर्ण समझा जाता था।

उस समय शेख से नीचे के बद्दुओं का वस्त्र, जैसा कि इस समय भी होता है, एक सादी लंबी कमीज होती थी। वह ढीली-ढाली होती थी और उसे पहन कर कमर चमड़े की एक पेटी से बाँध लिया जाता था। अब भी यही बद्दू-पुरुषों और महिलाओं का वस्त्र होता है। कमीज पर एक ढीला वस्त्र ओढ़ लिया जाता है जो आम तौर पर ऊँट के बालों का होता है। जब बद्दू घोड़े पर सवार हो कर लड़ते थे तो कमीज के साथ पाजामा भी पहन लेते थे। उन लोगों का शिरोवस्त्र (सर का कपड़ा) लंबा-सा रूमाल होता था जिस पर, सर और गरदन ढाँकने के भाग पर, फुदने और झब्बे कढ़े होते थे। यह वस्त्र सर से ऊँट के बालों की बनी डोरी-से बँधा होता था।

घुमन्तू बद्दुओं के मुकाबले एक स्थान पर बस गए लोगों में से धनी-मानी और जनजातीय शेखों के वस्त्रों में घुटनों तक की कमीज होती थी। वे उसके नीचे

शलवार या पाजामा पहनते थे। उन लोगों का दूसरी तरह का वस्त्र ढीला-ढाला कुरता होता था जो एड़ी तक लम्बा होता था। उसे पहनते समय कमर में सिल्क की डोरी या शाल बाँधा जाता था। उसके ऊपर एक वस्त्र पहना जाता था जिसे जुब्बा या आवा कहते थे। शरीर में खूब फबने वाला वस्त्र आवा बैजेन्टाइनों के अनुकरण पर प्रचलन में आया था। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इसका प्रचलन फारसियों के अनुकरण पर हुआ। कावा का प्रयोग इस्लाम-गणतन्त्र के अन्त में शुरू हुआ। कावा दो तरह का होता था। एक तरह के कावा की बाँहें ऐंग्लो-सेक्सन सरदारों के बाहरी लम्बे कोटों की बाँहों की तरह ढीली-ढाली होती थीं और दूसरी तरह के कावा की बाहें पास-पास लगाई गई बटनों से खूब कसी होती थीं। दूसरी तरह का कावा आज भी फारस के सरदारों द्वारा अक्सर पहना जाता है। उस समय एक स्थान पर बसे हुए जिन लोगों के वस्त्रों की चर्चा की जा रही है वे सर पर पगड़ी बाँधते थे जो उम्र, हैसियत और पढ़ाई-लिखाई के अनुसार भिन्न-भिन्न किस्म और आकार की होती थी। पगड़ी पर उसके पिछले भाग में एक कपड़ा लगा होता था जो कंधों पर लटकता रहता था और जिससे धूप से गरदन का बचाव होता था। पाँवों में सैंडिल या बूट जूते पहने जाते थे।

महिलाओं के वस्त्रों में ढीले-ढाले शलवार के अलावा कमीज होती थी जो गले पर खुली होती थी। उसके ऊपर, खासकर जाड़े के मौसम में कस कर पहनी जाने वाली, जाकिट होती थी। पर उनका मुख्य वस्त्र एक लम्बा वस्त्र होता था जो बहुत कुछ उस प्रकार का होता था जैसा ऐंग्लो-सैक्सन महिलायें पहनती हैं। बाहर जाने के प्रयोजन के लिए उस पर चारों ओर से एक ढीला वस्त्र पहन लिया जाता था जिससे शरीर छिपा रहे या गर्द और धूल से रक्षा हो सके। सर पर एक रूमाल ढंका होता था जो माथे से बँधा होता था। इस्लाम-पूर्व दिनों में महिलाओं की कमीज और जाकिट छाती पर खुली रहती थी। पैगम्बर मुहम्मद ने आदेश दिया कि बाहर जाने के समय महिलाएँ लम्बा वस्त्र पहनें जिससे वे अपने को अच्छी तरह छिपा सकें। तब से ही बाद के अब्बासिदों में यह प्रथा शुरू हुई कि महिलाएँ अपना शरीर पूरी तरह कपड़ों से ढका रखा करें जैसा कि हम आज कल मिस्र और अन्य मुस्लिम देशों में देखते हैं।

अरबों में महिलाएँ पूरी तरह स्वतन्त्र होती थीं। मुस्लिम देशों में आजकल महिलाओं के अलग-थलग रहने का जो रिवाज शुरू हुआ है वह बहुत बाद में शुरू हुआ। इस्लाम गणतन्त्र में मुस्लिम महिलाएँ लोगों के बीच खुलेआम घूमती-फिरती थीं। वे खलीफाओं के धार्मिक उपदेश सुनती थीं और चौथे खलीफा अली, इब्न अब्बास तथा अन्य लोगों के भाषणों में भी शामिल होती थीं। पुरुषों के बीच प्राचीन काल से

चली आ रही अरब वीरता बैजेन्टाइनों और फारसियों के साथ उनके सम्पर्क से खत्म नहीं हुई। इस्लाम-पूर्व समय के अरब प्राचीन काल के हेब्रुओं जैसे होते थे जो अनेक औरतों से विवाह करने के आदी थे। यह इस बात का परिणाम था कि अरब जन-जातियों के बीच युद्धों में मारे जाने के कारण पुरुषों की संख्या कम हो गई थी। यदि वे अनेक महिलाओं से विवाह करके उनका भरण-पोषण न करते तो महिलाओं के भूखे मरने की नौबत आ जाती। पैगम्बर मुहम्मद ने विवाह की जाने वाली महिलाओं की संख्या की एक सीमा नियत कर दी और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से बहुविवाह पर रोक लगा दी। पर पैगम्बर ने इस नियम को समाज के सभी स्तरों के लिए एक समान बना दिया। इस प्रकार इस्लाम गणतन्त्र में पारिवारिक जीवन पितृसत्तात्मक था। दासों की खरीद-बिक्री पर बड़ी रोक लगाई गई थी। आदमियों को दास बनाकर उनको सम्पत्ति की भाँति रखने की कड़े शब्दों में निन्दा की गई थी। केवल उन व्यक्तियों को, जो न्यायपूर्ण युद्धों में बंदी बनाये जाते थे; दास बना कर रखने की अनुमति थी और ऐसा तब तक होता था जब तक उनके लिए फिरौती (छुड़ाने के लिए धन) न मिल जाता था। इस प्रकार बन्दी बनाकर रखे गये पुरुषों और स्त्रियों के साथ परिवार के सदस्यों की नाईं व्यवहार किया जाता था।

जो प्रजाजन मुसलमानों का संरक्षण प्राप्त करते थे उनको धिम्मी कहा जाता था। चूंकि धिम्मी मुसलमानों के संरक्षण का उपभोग करते थे, उन्हें सैनिक कर्त्तव्य न करने पड़ते थे। धार्मिक कारणों से उन पर मुस्लिम सेना में सेवा करने पर रोक थी। पर उन्हें एक कर देना पड़ता था। चूंकि वे मुस्लिम कानून के दायरे से बाहर थे उन्हें अपने धार्मिक कानून के क्षेत्राधिकार में रहने की अनुमति थी जिनका नियमन उनके सम्बद्ध धार्मिक नेता करते थे। आंशिक स्वायत्तता की स्थिति, जिसे बाद में तुर्की के सुलतान ने मान्यता दी, अरब के परवर्त्ती राज्यों में भी कायम रहने दी गई। मुसलमानों के अधीन धिम्मी पूर्ण शांति और सौहार्द्र के वातावरण में रहते थे। उन्हें राज्य में समान अधिकारों और विशेषाधिकारों के उपभोग का हक था। इस सन्दर्भ में वेलहौसेन ने लिखा है—"उमर ने गैर मुसलमानों के लाभों के सम्बन्ध में पूरा ध्यान रखा और उनके कल्याण के लिए कोई कोशिश उठा न रखी।" उसने गैर-मुसलमानों में से गरीब और बेसहारा लोगों को "बैत अल-माल" (कोषागार) से निवृत्त-वेतन (पेंशन) देकर उनकी सहायता की। खलीफाओं ने गिरजाघरों, धर्म-

गिर्जों (कैथेड्रल), यहूदी-धर्म सभाघरों और गैर-मुसलमानों के अन्य धार्मिक स्थानों की रक्षा की। अपने धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता के अलावा गैर-मुसलमानों को अदालत और कानून के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। प्रो० हिट्टी का कहना है—"वे मुस्लिम कानून के दायरे के बाहर थे और उन्हें अपने धार्मिक सम्प्रदायों के सम्बद्ध ने प्रधानों द्वारा विनियमित धार्मिक कानूनों के क्षेत्राधिकार में रहने की अनुमति थी। धार्मिक और कानून-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के साथ-साथ उन्हें अपने सम्मान, जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा के उपभोग का भी अधिकार था।"

तथाकथित अरब सभ्यता

धर्मनिष्ठ खलीफाओं की अवधि में उपजाऊ अर्द्धचन्द्राकार भूमि और फारस तथा मिस्र पर विजय किये जाने के बाद अरबों का कब्जा न केवल भौगोलिक क्षेत्रों पर हो गया पर समूचे विश्व की प्रारम्भिक सभ्यता के केन्द्रों पर भी हो गया। इस प्रकार रेगिस्तान में रहने वाले ये लोग पुरानी सभ्यताओं के उत्तराधिकारी बने जिनकी सुदीर्घ परम्पराएँ थीं। ये पुरानी सभ्यताएँ यूनानी-रोमन, ईरानी, प्राचीन मिस्री और असीरिया-बेबीलोनिया के समय की थीं। कला और वास्तुकला (भवन-निर्माण कला), दर्शन, चिकित्सा-शास्त्र, विज्ञान, साहित्य और प्रशासन में मूल अरब-वासियों के पास किसी को कुछ सिखाने को न था बल्कि सब कुछ सीखने को ही था। और उन्हें सीखने की इच्छा बहुत ही तीव्र थी। साथ ही उन्हें बहुत ही ज्यादा उत्सुकता और इस सम्बन्ध में उनके भीतर ऐसी मूलभूत शक्ति थी जो इसके पहले कभी जाग्रत न हुई थी। अपनी इन क्षमताओं से मुस्लिम अरबों ने अब अपनी प्रजा की बौद्धिक और सौन्दर्य-बोधक विरासत के अनुकूल बनना, उसे सीख कर पचाना और उसे वास्तविकता में उतारना शुरू किया। "टेसी पोन", एडेसा, दमिश्क, जेरूसलेम और सिकन्दरिया में उन्होंने वास्तुकलाकार, शिल्पी, आभूषणनिर्माता और अन्य वस्तुओं के निर्माणकर्त्ता के कार्यों को परखा, पसंद किया और उनका अनुकरण किया। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि प्राचीन सभ्यता के इन केन्द्रों में वे आये, उन्होंने वहाँ की सौन्दर्यपूर्ण कृतियों को देखा और उस सौन्दर्य से अभिभूत हो गए। एक ऐसा उदाहरण था जहाँ विजेता (अरब) पराजितों द्वारा परास्त कर दिये गए।

इस प्रकार जिसे हम "अरव सभ्यता" कहते हैं वह न तो अपनी प्रारंभिक और मूलभूत संरचना और न ही अपने प्रमुख जातीय पहलुओं में अरव थी। इसमें शुद्ध अरव योगदान भाषा के संबंध में और कुछ हद तक धार्मिक क्षेत्रों में था। खिलाफत की पूरी अवधि में इस्लाम धर्म में परिवर्तित होने वाले सीरियाई, फारसी, मिस्री और अन्य लोग या ईसाई और यहूदी उसी प्रकार जागरण और शिक्षा की ज्योति के अग्रगण्य वाहक थे जिस प्रकार पराजित यूनानी विजयी रोमनों के संबंध में थे। इस्लामी सभ्यता अपनी तह में यूनानी आर्मेनियन और ईरानी सभ्यताओं का मिला-जुला रूप था जो खलीफाओं के अधीन और उनके संरक्षण में फूली-फली तथा उसकी अभिव्यक्ति अरब भाषा में हुई। दूसरी शब्दों में कहा जा सकता है कि यह उपजाऊ अर्द्धचंद्राकार भूमि की सारी सभ्यता का स्वाभाविक विकास था और इस विकास का आरंभ और उसे आगे वढ़ाने का काम असीरियाई, वैवीलोनियाई, फोनीसियाई; आरमीनियाई तथा हेब्रू (यहूदियों) ने दिया। इस प्रकार इन जातियों की एकता में पश्चिमी-एशिया की भूमध्यसागरीय सभ्यता अपने चरम बिन्दु पर पहुँची।

अध्याय-६

उमैय्यद खिलाफत की स्थापना और मुआविया : अरब साम्राज्य का निर्माता

सन् ६६१ में मदीना में धर्मनिष्ठ खलीफाओं का पतन हुआ और दमिश्क में उमैय्यद राजवंश की स्थापना। यह केवल राजवंश और उसके भौगोलिक केन्द्र का परिवर्त्तन न था। यह परिवर्त्तन राजनीतिक, और दर्शनशास्त्रगत, एवं धार्मिक दृष्टिकोण तथा सांस्कृतिक रूझान के संबंध में भी परिवर्त्तन था। इस प्रकार सन् ६६१ शायद इस्लाम की प्रथम शताब्दी का सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इस परिवर्त्तन और नये कार्य-कलाप के दो नायक थे अली इब्न-अबी-तालिब तथा मुआविया इब्न-अबी-सूफयान।

उमैय्यद-अवधि के विशेष स्वरूप

जैसा कि ऊपर कहा गया है, उमैय्यदों का राजसत्ता में आना केवल राजवंश का परिवर्त्तन न था। उसका अर्थ था कि एक सिद्धांत में ही परिवर्त्तन हो गया और वह बिल्कुल उलट गया तथा नये तत्वों का उदय हुआ जिससे इस्लाम साम्राज्य के भाग्य और राष्ट्र के विकास पर अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। धर्मनिष्ठ खलीफाओं के समय खलीफा मदीना में जनता के मत से चुना जाता था और बाहर के अरब उस चुनाव को विधिवत मान्यता देते थे। पर प्रथम उमैय्यद खलीफा मुआविया के समय से राज करने वाला शासक अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने लगे। और साम्राज्य के प्रमुख प्रधान द्वारा खलीफा की उपस्थिति में उसके प्रति निष्ठा की शपथ लेने की परम्परा शुरू हुई। खलीफा द्वारा अपने उत्तराधिकारी के मनोनयन से इस्लाम की गणतंत्रीय भावना की जड़ पर आघात हुआ।

राजवंश के इस परिवर्त्तन से वास्तव में खिलाफत की प्रकृति और स्वरूप अनिश्चित हो गए। उमैय्यदों का शासन शुरू होने के बाद वास्तव में इस्लाम के इतिहास में प्रथम राजवंश (मुल्क) का सच्चे अर्थों में प्रारंभ हुआ। अब खिलाफत एक प्रकार की सांसारिक सार्वभौमसत्ता में परिवर्त्तित हो गई और प्रथम उमैय्यद खलीफा मुआविया के पद के साथ शान और शौकत तथा राजवंश की गरिमा

संवद्ध हो गई। मुआविया के खलीफा होने के वाद खलीफा के पद के सम्वन्ध में वंशगत उत्तराधिकार के सिद्धान्त की विजय हुई। मुआविया के सत्ता में आने के पूर्व खलीफा के पद पर नियुक्ति के लिए परम्परागत चुनाव सिद्धान्त कायम था। पहले खलीफा जनता की सामान्य इच्छा से चुने जाते थे। पर अव यह परम्परागत चुनाव समाप्त हो गया और राजसत्ता पर वंशगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त कार्यरूप में आ गया। इस सिद्धान्त को सबसे पहले मुआविया ने कार्य-रूप दिया और अपने जीवन-काल में ही सन् ६७९ में अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इस घटना के दूरव्यापी परिणाम हुए। इस सिद्धान्त से इस्लाम-साम्राज्य में भविष्य के लिए उपद्रव के बीज पड़े और एकता के वदले फूट के चिह्न उभरने लगे। इसके अलावा, अब सामान्य नियम यह हो गया कि खलीफा अपने सबसे बड़े या सबसे ज्यादा प्रतिभावान पुत्र को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने लगा। ऐसा भी होता था कि वह कभी-कभी अपने सवसे ज्यादा योग्य सम्वन्धी को भी अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर देता था। खलीफा विभिन्न नगरों के लोगों को कहता था कि वे उसके द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी के प्रति निष्ठा की शपथ लें। इस प्रकार खलीफाओं के वंशगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त शुरू हुआ और उसमें फिर कभी पूरी तरह परिवर्त्तन न किया गया। राजसत्ता के उत्तराधिकारी के रूप में यजीद मनोनयन के वाद साम्राज्य के नगरों के प्रधानों की ओर से प्रतिनिधिमंडल राजधानी दमिश्क में आने लगे। जव सीरिया और ईराक ने यजीद को अपने भावी शासक के रूप में मान्यता दे दी तो मुआविया अपने पुत्र को मक्का और मदीना ले गया ताकि वहाँ के लोग उसे आवश्यक मान्यता दे दें। मुआविया ने लोगों पर दवाव डाला कि वे जनता द्वारा खलीफा का उत्तराधिकारी चुने जाने के सिद्धान्त के विरुद्ध यजीद को अपने भावी शासक के रूप में मान्यता दे दें।

धर्मनिष्ठ खलीफाओं के अधीन "वैत अल-माल" या सार्वजनिक कोपागार जनता की सम्पत्ति थी और इस्लामी राष्ट्रमंडल के हर आदमी को उस संवंध में समान अधिकार थे। मुआविया के सत्ता में आने के वाद सार्वजनिक कोपागार उमैय्यदों की पारिवारिक सम्पत्ति के रूप में परिवर्तित हो गया। उमर विन अब्दुल अजीज को छोड़ कर सभी उमैय्यद खलीफा "वैत अल-माल" (सार्वजनिक कोपागार) को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझते थे और अपनी मनमानी इच्छा के अनुसार उसमें से खर्च करते थे।

इस्लामी गणतंत्र के दिनों में राज-काज में खलीफा की सहायता "वरिष्ठ जनों की परिषद" करती थी। सभी महत्वपूर्ण विषयों पर सार्वजनिक तौर पर विचार-विमर्श होता था। सरकार में साधारण जनता की भी आवाज सुनी जाती थी। उस

समय स्वतंत्र चिन्तन और सरकारी नीति की स्वतंत्र आलोचना उस अवधि के सबसे विशिष्ट स्वरूपों में से था। पर उमैय्यदों के अधीन खलीफा को सलाह देने वाली "वरिष्ठ जनों की परिषद" समाप्त हो गई और सरकार की स्वतंत्र आलोचना को बर्दाश्त न किया जाने लगा।

पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों से जनजातियों के बीच पारस्परिक द्वेष-भावना खत्म हो गई थी और इस्लामी गणतंत्र के दिनों में उसे काफी हद तक रोक दिया गया था। उमैय्यद खलीफाओं ने जनजातियों के बीच द्वेष-भावना को अपने प्रयोजनों की सिद्धि के लिए फिर उभार दिया। वे एक जनजाति को दूसरी जनजाति से लड़ाने लगे। मुदाराइतों और हिमाराइतों के बीच जनजातीय द्वेषभावना इस्लामी गणतंत्र के दिनों में करीब-करीब खत्म हो गई थी। उमैय्यदों ने उसे फिर से उभाड़ दिया जिससे साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी। उमैय्यद राजवंश के पतन का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ।

धर्मनिष्ठ खलीफाओं के पास अपनी शिकायतें लेकर गरीब-से-गरीब जनता पहुँच सकती थी। वे अपनी जनता की सच्ची हालत से परिचित होने के लिए, बिना किसी रक्षक के, रात में घूमा करते थे। वे इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताते थे। उनके रहने के लिए शानदार महल न थे। उनमें से कई को हत्यारों ने छुरे से मार डाला। फिर भी उन लोगों ने अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए अपने मकान पर रक्षक रखने की जरूरत महसूस न की। दूसरी ओर उमैय्यद किलों और महलों में रहते थे और अपनी सुरक्षा के लिए पहरेदार और रक्षक रखते थे। समाज में शराबखोरी, जुआ, घुड़दौड़ आदि के व्यसन शुरू कर दिये गये। इस प्रकार उमैय्यदों के सत्तारूढ़ होने के बाद इस्लाम के इतिहास में एक नये युग की शुरुआत हुई।

उनके अधीन दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर यह हुआ कि इस्लामी राज्य की राजधानी और केन्द्र में परिवर्त्तन हुआ। अब इस्लाम राज्य का केन्द्र और राजधानी मदीना के बजाय दमिश्क हो गया। सीरिया में दमिश्क में उमैय्यद राजवंश की स्थापना से कूफा एक महत्त्वपूर्ण नगर हो गया। मुआविया ने अपना सुसमृद्ध दरबार बनवाया जहाँ शान-शौकत और शाही तौर-तरीकों का बोलबाला था।

उमैय्यदों के अधीन अन्य उल्लेखनीय परिवर्त्तन खलीफाओं के स्वभाव के संबंध में हुआ। इस्लाम के प्रथम चार खलीफा फकीरों के जैसे चरित्र के थे। वे सादगी-पसन्द और अच्छे इरादों वाले थे। वे अपने पदों को सार्वजनिक न्यास (ट्रस्ट) जैसा समझते थे। उनकी चिन्ता केवल यह थी कि वे अपनी प्रजा का जीवन

सुखमय कैसे बनायें। जनहित को आगे बढ़ाने के लिए वे अपनी नीतियां लोकप्रिय बनाने की कोशिशों में लगे रहते थे। पर उमैय्यद शासक स्वार्थी और निरंकुश हो गये। वे केवल अपने स्वार्थों और इच्छाओं की पूर्ति के बारे मे ही सोचते थे। प्रारंभिक शासकों (खलीफाओं) का फकीराना तौर-तरीका अब अतीत की बात हो चुकी थी। दमिश्क में उमैय्यद राजवंश की स्थापना से प्रारंभिक खलीफाओं की धार्मिक परम्परा स्पष्ट रूप से टूट गई।

खिलाफत सरकार के स्वरूप के पहलू में भी परिवर्त्तन हुआ। उमैय्यद मुसलमान अपने को प्रथम चार खलीफाओं के समय के मुसलमानों से श्रेष्ठ समझते थे। वे उन लोगों को हिकारत की निगाह से देखने लगे। अलावे, उमैय्यद शासक राज्य कोषागार और सम्पत्ति को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझने लगे। उन्होंने राज्य की सम्पत्ति का उपयोग अधिकतर अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति और बड़ी शान-शौकत से भरे-पूरे दरबार और हरम (रनिवास) को कायम रखने के लिए ही किया। उन्होंने अपने खास-खास संबंधियों को प्रशासन के ऊँचे-से-ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। पर, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रारंभिक शासक (खलीफा) उमैय्यद शासकों से पूर्णतः भिन्न प्रकृति के थे। वे राज्य के राजस्व (आमदनी) को पवित्र निधि जैसा समझते थे और उनके विचार से उसे जनहित में ही खर्च किया जाना चाहिए था। पर इसके विपरीत उमैय्यद शासक सार्वजनिक धन को अपने खर्चीले दरबार और अमीरों, अफसरों आदि पर ही खर्च करते थे।

उमैय्यदों के अधीन सरकार आ जाने से अन्य स्थानों में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। जब तक सरकार का मुख्यालय मदीना रहा, मुस्लिम प्रशासन-व्यवस्था में धर्मनिष्ठ इस्लामी प्रभाव प्रमुख रूप से रहा। इस्लामी समाज और राज्य में भी मदीना के धर्मनिष्ठ मुसलमानों का प्रभाव बहुत अधिक था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उस अवधि में कुरान के धर्मनिष्ठ सिद्धान्तों और पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों और जीवन से इस्लामी राज्य और समुदाय के तौर-तरीकों पर बहुत ज्यादा असर पड़ा था। पर जब मुआबिया खलीफा हो गया और सरकार का मुख्यालय सीरिया (दमिश्क) में स्थापित हो गया तो एक बार फिर अरबों की पुरानी गैर-इस्लामी भावनाएँ अनियंत्रित हो गईं। वे इस्लाम के अनुयायी होने के बजाय अपनी इस्लाम-पूर्व हरकतों पर उतर आये और उसी ढंग के काम करने लगे। मुसलमान अपने वंश और जन्म के बारे में घमंड के साथ बोलने लगे। इस प्रकार साम्राज्य के मुसलमानों और उमैय्यद राजवंश के मुसलमानों के बीच घृणा और नफरत बढ़ने लगी।

मुआविया (सन् ६६१-६८३) : प्रारंभिक जीवन और खलीफा बनने के पहले की सफलताएँ

मुआविया इब्न-अबी सूफयान ने अपना जीवन उस सेना के एक अफसर के रूप में आरंभ किया जिसने सीरिया पर विजय पाई थी। विजय के बाद वह वहाँ का गवर्नर हो गया। प्रथम खलीफा अबू बकर ने उसे फौजी अफसर के रूप में सीरिया भेजा। द्वितीय खलीफा उमर ने उसे वहाँ का गवर्नर बनाया और तृतीय खलीफा उस्मान ने उसे पद पर सम्पुष्ट किया। उस समय उसकी जो भी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ रही हों उसने उनको छिपाये ही रखा। उस अवधि में उसने सक्रिय रूप से आस-पास के बैजेन्टाइन साम्राज्य के क्षेत्रों में इस्लामी शासन विस्तृत करने की भूमिका सम्पादित की। गवर्नर के रूप में उसने पहला काम सेना के पुनर्गठन के संबंध में किया। पहले सेना जनजातीय टुकड़ियों में थी जिनमें से हर टुकड़ी अपने शेख के अधीन होती थी। उसने सेना के इस रूप को बैजेन्टाइन सेना के आदर्श पर भलीभाँति एक अनुशासित रूप दिया जिसमें अफसरों और सैनिकों को अच्छी तनख्वाह मिलने लगी। जब मुआविया को समुद्र-तट के किनारे-किनारे समुद्री जहाज निर्माण-स्थल (शिपयार्ड) जिसे अरबी 'दार-अल सिना' कहते हैं जिससे ही अंग्रेजी शब्द 'आर्सेनल' बना है मिले तो उसने प्रथम इस्लामी नौ-सेना तैयार की और उसका नौ-सेनाध्यक्ष (अमीर अली-बहर यानी समुद्र का सेनापति) बना। उसकी पत्नी मैसून तथा उसका चिकित्सक और उसका कवि ईसाई थे जिस कारण वह अपने प्रति सीरियावासी प्रजा की पूरी निष्ठा पा सका। दमिश्क में इस्लाम रेगिस्तानी धर्म कम और भूमध्यसागरीय क्षेत्र का धर्म अधिक हो गया।

मुआविया ने अली को चालाकी से परास्त किया और उसकी मृत्यु के पहले ही अपने सीरियाई अनुयायियों द्वारा खलीफा घोषित कर दिया गया। पर साधारण आदमी से एकाएक बड़ा आदमी बन जाने वाला यह व्यक्ति और कोई नहीं बल्कि पैगम्बर मुहम्मद के सबसे बड़े शत्रु और कुरैश वंश की कुलीन शाखा उमैय्यद के प्रधान अबू-सूफयान का पुत्र था। खलीफाओं के शासन में सीरिया का गवर्नर बीस साल तक रहने की अवधि में मुआविया ने अपने प्रान्त को सबसे ज्यादा समृद्ध और प्रगतिशील बना दिया। उसने अपने कार्य का प्रारंभ इस बिन्दु से किया कि सबसे पहले बैजेन्टाइन सेना के आदर्श पर इस्लामी सेना का "आधुनिकीकरण" किया। मुआविया ने अपनी सीरियाई सेना को एक प्रशिक्षित और अनुशासित सैनिक इकाई का रूप दे दिया। खिलाफत शासन में यह अपने प्रकार की प्रथम सेना थी। उसने सीरियाई सेना में सीरिया में बहुत दिनों से बसे हुए ईसाई सीरियाइयों और यमन से आये सीरियाइयों को ही अधिकतर भरती किया। इस काम में उसने

हेज्जाज से आये नये लोगों (अप्रवासियों) को तरजीह न दी। उसने सैनिकों की तनख्वाह दुगुनी कर दी और इसका भी प्रबंध किया कि उन्हें नियमित रूप से और समय पर वेतन मिले। फलतः उसके प्रति सैनिकों की अपार निष्ठा हो गई। सीरिया पर विजय के बाद उसे साज-सामानों से भरपूर बैजेंटाइनों के समुद्री जहाज निर्माण-स्थल (शिपयार्ड) मिले जिसका उपयोग उसने इस्लाम की प्रथम नौसेना तैयार करने में किया। इस प्रकार मुआबिया अरब इतिहास में प्रथम नौसेनापति बना। उसकी नौसेना का प्रबंध आरंभ में बैजेन्टाइन सीरियाइयों द्वारा किया जाता था क्योंकि उत्तरी अरबों को समुद्री यात्रा का कुछ भी अनुभव न था।

अपने कार्यकाल के आरंभ में ही मुआविया ने भाँप लिया होगा कि बैजेन्टाइनों से उसके राज्य को एकमात्र सबसे बड़ा खतरा है। उसके समुद्रतट से मात्र एक सौ मील पर साइप्रस था जो मुआविया के प्रान्त पर प्रहार के लिए एक बंदूक जैसा था। इस द्वीप में एक छोटा-सा नौसैनिक अड्डा था जो सिकन्दरिया में बैजेन्टाइनों का प्रमुख अड्डा था। ज्योंही मुआविया ने अक्का (एकरे) ने अपने नौसैनिक इकाई को अस्त्र-शस्त्र से सज्जित किया, उसने खलीफा उमर से इस द्वीप पर हमला करने की अनुमति माँगी। पर उमर ने यह अनुमति न दी क्योंकि वह नहीं चाहता था कि उसके और उसके सेनापतियों के बीच समुद्र का अन्तराल आ जाय। तृतीय खलीफा उस्मान इस संबंध में मुआबिया द्वारा बार-बार किये जाने वाले अनुरोधों के समक्ष झुक गया और उसकी बात मान ली। उसका खास कारण यह था कि मुआविया ने अपने ऐसे एक अनुरोध में उस्मान को आश्वासन दिया कि समुद्री अड्डे पर विश्राम करने वालों की बातें समुद्र के इस पार भी सुनी जा सकेंगी बशर्ते मुआबिया को अपने साथ अपनी पत्नी को भी ले जाने की अनुमति दी जाय। सन् ६४९ में या उसके आस-पास मुआबिया ने साइप्रस पर अनेक हमले किये पर उनका कोई स्थायी परिणाम न हुआ। अल-बालाधुरी के विवरण[1] में, जो बिल्कुल सही-सही नहीं है कहा गया है कि साइप्रस पर मुआविया के एक आक्रमण में ५०० समुद्री जहाज इस्तेमाल में लाये गये थे। उसी विवरण में कहा गया है कि मुआबिया ने साइप्रस से उतना कर लिया जितना वह द्वीप बैजेन्टाइनों को देता था। जैसा कि फ़ोनिसियनों के दिनों में होता था समुद्री जहाजों के लिए लकड़ी लेबनान के देवदार पेड़ों से काटी जाती थी।

कान्स्टैंटीनोपुल के रास्ते में इसके बाद रोड्स पड़ता था। सन् ६५३ में मुआविया ने उस पर समुद्री हमला किया जिसमें अस्थायी सफलता मिली। इस द्वीप पर उमैय्यद राजवंश के उत्तराधिकारी ने फिर से कब्जा किया। रोड्स

---

१. औसबोर्न, इस्लाम अंडर दी अरब्स।

द्वीप को इस बात पर गर्व था कि वहाँ सूर्य देवता की एक विशाल मूर्त्ति थी जिसकी ऊँचाई १०५ फुट थी और उसे विश्व के सात आश्चर्यों में से एक समझा जाता था। जब अरबों ने उस द्वीप पर कब्जा किया तो उन्होंने उस मूर्त्ति के धातु अवशेषों को पुराने और टूटे-फूटे धातुओं के एक विक्रेता के हाथों बेच दिया। विक्रेता को मूर्त्ति के धातु-अवशेष ले जाने में ५०० ऊँटों का उपयोग करना पड़ा। एजियन और पूर्वी सागर क्षेत्र में क्रेट और अन्य द्वीपों पर अरबों ने बार-बार हमला किया और उनको लूटा। सन् ६४४ में सुदूरस्थ सिसली द्वीप पर अरब पहुँचे। सिसली बाद में अरब-अफ्रिकी राज्य का एक फलता-फूलता सम्बद्ध क्षेत्र बनने वाला था। उमैय्यदों के अधीन अरबों का साहस इन हमलों और जीतों से बहुत ही ज्यादा बढ़ गया था। इस कारण सन् ६५५ में एक सीरियाई-मिस्री नौसैनिक बेड़े ने बैजेन्टाइनों की राजधानी पर हमला किया। हेराक्लियस के पौत्र कान्स्टैन्स (द्वितीय) ने लीसियाई समुद्री तट पर फोयनिक्स (फिनिके) में उस हमले का मुकाबला किया और उसकी बुरी तरह पराजय हुई। अरबों ने अपने हर समुद्री जहाज को बैजेन्टाइनों के हर जहाज के साथ बाँध दिया और इस समुद्री युद्ध को एक जहाज से दूसरे जहाज की मुठभेड़ में परिणत कर दिया। अरबों की विजय हुई। यह इस्लाम की पहली नौसैनिक विजय हुई।

अगले वर्ष मिस्र पर चतुर्थ खलीफा अली की विजय हुई। अली उस समय अनेक घरेलू समस्याओं के जाल में फँसा हुआ था। मुआबिया ने अपने अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति अम्र इब्न-अल-आस पर, जो मिस्र का प्रथम विजेता था, यह भार सौंपा कि वह उसके (मुआविया के) नाम पर मिस्र पर फिर से कब्जा करे। अम्र ने यह काम बिना किसी कठिनाई के कर डाला। उसने वहाँ के जवान गवर्नर को पराजित किया और उसकी हत्या कर दी। सन् ६५० में इस फौजी विजय के बाद वह (अम्र) आधरुह की शांतिपूर्ण विजय के लिए बढ़ा।

उमैय्यद राजवंश की स्थापना के बाद मुआबिया की भूमिका : उसकी आंतरिक समस्यायें :

मुआविया सन् ६६१ में इलिया (जेरुसलेम) में खलीफा घोषित किया गया। उसने उमैय्यद नाम के नये राजवंश की स्थापना की। उसके साथ ही यह राजवंश शुरू हुआ। मुआविया के प्रान्तीय सरकार की सत्ता पर बैठने के बाद दमिश्क मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी हो गया। यह साम्राज्य कुछ-कुछ सीमाबद्ध-सा था। चतुर्थ खलीफा अली की मृत्यु के बाद मुआबिया के समक्ष कठिन समस्यायें आईं। सर्वप्रथम तो अली का ज्येष्ठ पुत्र हसन एक समस्या बन कर आया।

उसके ईराकी समर्थकों ने उसे दैवी अधिकार के बल पर अली का जायज उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। यह जानते हुए कि उसके नये विरोधियों की दिलचस्पी साम्राज्य के प्रशासन से अधिक हरम (रनिवास) में है, मुआविया ने हसन को लिखा कि "मैं जानता हूँ कि (अली के साथ) रक्त-संबंध के कारण खलीफा के उच्च पद के लिए आपका अधिक स्पष्ट अधिकार है। और यदि मैं इस संबंध में निश्चित होता कि अपने कर्त्तव्य पूरे करने की आपको योग्यता है तो बिना हिचक आपके प्रति अपनी निष्ठा की शपथ लेता। पर अब यह बताइए कि आप कितना अधिक धन चाहते हैं।" इस पत्र के साथ लिफाफे में एक कागज था जो बिना रकम भरे हुए (ब्लैंक) चेक के समान था। कुछ सौदेबाजी के बाद हसन मुआविया से वार्ता के लिए तैयार हो गया। वह इस शर्त पर खलीफा का पद छोड़ने के लिए राजी हुआ कि उसे कूफा में राज-कोषागार से पचास लाख दिरहम दिये जायँ और साथ ही उसे जीवन भर के लिए फारस के एक जिले का राजस्व (राज्य-आय) भी दिया जाय। अब्बासिद राजवंश का, जो बाद में सत्ता में आने वाला था, पूर्वज अब्दुल्ला इब्न अब्बास बसरा के सार्वजनिक कोष की तिजोरी लेकर भाग गया और इस प्रकार उसने मुआविया से लड़ाई ठान दी। पैगम्बर मुहम्मद का नाती और अली का पुत्र हसन मदीना में आराम और मौज-मजे की जिन्दगी गुजारने लगा। उसकी मृत्यु पैंतालीस वर्ष की आयु में हो गई। उसने बार-बार विवाह किये और तलाक दिये। कहा जाता है कि उसने करीब-करीब एक सौ विवाह किये और तलाक दिये। इसलिए उसे "मितलाक" (सबसे बड़ा तलाक देने वाला) की उपाधि दी जाती है। उसकी मृत्यु संभवतः हरम (रनिवास) के षडयंत्र में जहर देने से हुई। यह काम मुआविया के पुत्र यजीद की प्रेरणा से हुआ बतलाया जाता है। पर अली के समर्थक शिया मुसलमानों ने इस घातक काम के लिए मुआविया को जिम्मेदार माना और हसन को अपने सबसे ज्यादा समादृत शहीदों में स्थान दिया।

इस प्रकार अपहरण करके हसन की हत्या के बाद मुआविया इस्लाम का वास्तविक शासक बन गया। यह भाग्य का एक विलक्षण तथ्य है जिसे इतिहास में इस प्रकार चित्रित किया गया है—"इस प्रकार पैगम्बर मुहम्मद को सताने वालों ने उनके संतान की विरासत हड़प ली और बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) के पक्षधर इस्लाम धर्म और साम्राज्य के सर्वोच्च प्रधान बन गए।" जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि सरकार का मुख्यालय कूफा से हटा कर दमिश्क ले जाया गया। वहाँ नये शासक मुआविया ने अपने इर्द-गिर्द फारसी और बैजेन्टाइन सम्राटों की भाँति शान और शौकत तथा शोभापूर्ण प्रदर्शन का वातावरण बना लिया। वह अक्सर किसी असुविधाजनक शत्रु या वस में न आने वाले मित्र को अपने रास्ते से हटाने के लिए जहर या छुरे का सहारा लेता था। न तो राजा बनने के दावे और न ही

इस्लाम की सेवा के आधार पर ही किसी को सुरक्षा मिलती थी। इस्लाम धर्म न तो सुविधाजनक और न ही विश्वास के रूप में माना जाता था। इस प्रकार मुआविया के रास्ते में महत्त्वाकांक्षा या नीति के कारण जो भी बाधक बन कर आये वे मारे गए। उनमें सीरिया के महान विजेता का पुत्र अब्दुल रहमान भी था। अब्दुल रहमान की हत्या का कारण यह था कि सीरियाइयों के बीच वह बहुत लोकप्रिय था और विचारवान मुसलमान उसे बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे। मुआविया के चरित्र और उसकी सफलता के लिए जिम्मेदार स्थितियों के बारे में अंग्रेजी लेखक ऑसबोर्न ने जो संक्षिप्त विश्लेषण दिया है वह पूर्ण निष्पक्ष प्रतीत होता है। "उमैय्यद राजवंश का प्रथम खलीफा मुआविया घाघ, अनैतिक और निर्दयी था। अपने पद को बाधाहीन बनाने के लिए वह कोई भी अपराध कर सकता था। अपने किसी बड़े विरोधी को अपने रास्ते से हटाने के लिए उसकी हत्या कर डालना उसके लिए आम बात थी। पैगम्बर मुहम्मद के नाती (हसन) को उसने जहर दे दिया। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के बहादुर सिपहसालार मलिक अल-अस्तर को भी उसने अपने रास्ते से उसी तरह हटाया। अपने पुत्र यजीद को अपने बाद निश्चित रूप से राजगद्दी दिलाने के लिए वह चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के एकमात्र जीवित पुत्र हुसेन को दिये गये बचन को भंग करने से नहीं हिचकिचाया। पर फिर भी इस धैर्यवान, चालाक और अल्लाह में विश्वास न करने वाले अरब ने इस्लाम के क्षेत्र पर राज किया और उसके परिवार में राज-सत्ता करीब नब्बे वर्ष तक रही। इस विरोधाभासपूर्ण स्थिति का कारण दो परिस्थितियाँ थीं। इनमें से एक परिस्थिति यह थी कि वास्तव में धार्मिक और ईमानदार मुसलमान की धारणा बन गई कि मुआविया संसार के मामलों से अपने को अलग रख कर उनके धर्म का प्रभावकर तरीके से प्रतिनिधित्व करता था। दूसरी परिस्थिति थी अरबों की जनजातीय भावना। एशिया, उत्तरी अफ्रिका और स्पेन के विजेता अरब अपनी वास्तविक स्थिति के स्तर तक नहीं उठ सके। कुछ-कुछ ऐसा हुआ मानो अरबों पर महानता थोप दी गई थी, पर इस महानता के बीच भी उन्होंने अपने मूल क्षेत्र रेगिस्तान की अपनी भावनाओं, प्रतिद्वन्द्वियों और तुच्छ जलन-भावना को न छोड़ा। वे फिर केवल एक बड़े स्तर पर लड़ते रहे। इस्लाम के पूर्व के अरबों की आपसी लड़ाई फिर जारी हो गई।"[२]

मुआविया ने कूफा और बसरा में स्थित अपने गवर्नरों पर यह कठिन काम सौंपा कि वे बराबर लड़ने-झगड़ने वाले ईराकियों के बीच उसकी शक्ति प्रभावकर बनायें। उसने कूफा में मुगीरा इब्न शुबाह को नियुक्त किया जो जीवन में आगे

२. औसबार्न, इस्लाम अंडर दी अरब्स।

बढ़ने के लिए प्रयत्नशील अनैतिक व्यक्ति था। अपनी युवावस्था में एक सामान्य हत्या-कार्य के लिए उसे अपना मूल स्थान तैफ छोड़ना पड़ा था। सन् ६२९ में वह मदीना में पैगम्बर मुहम्मद से मिला। तब उनके आदेश से उसने शहर में एक देवी की मूर्ति तोड़ डाली और इस्लाम धर्म के नये अभिजात और कुलीन वर्ग में अपना स्थान बना लिया। ससानीद साम्राज्य के विरुद्ध युद्धों में फारसी भाषा की अपनी जानकारी के कारण उसने कूटनीतिक सेवाएँ कीं। इस पर संतुष्ट होकर द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर ने उसे बहरैन का गवर्नर बनाया और फिर उसे बसरा के गवर्नर के अधिक महत्त्वपूर्ण पद पर स्थानान्तरित कर दिया। सन् ६३८ में उसे व्यभिचार के आरोप पर हटा दिया गया। पर गृहयुद्ध के फलस्वरूप, जिसमें कि उसने विवेकपूर्ण आत्मसंयम दिखलाया, वह फिर प्रकाश में आ गया। कूफा के गवर्नर के रूप में उसने 'खारीजाइटों' और अली के समर्थकों (शिया लोगों) को एक दूसरे से लड़ाने की चालाकी से भरी नीति पर चल कर अपनी प्रजा को सीरियाइयों का खुला विरोध करने से रोका यद्यपि वहाँ की प्रजा ने इस बात को कभी न छिपाया कि सीरियावासियों के प्रति उनमें घृणा-भाव है।

ईराक के बाद फारस शिया लोगों का मजबूत गढ़ था। उसके गवर्नर जियाद इब्न-अबीह ने, जो खिलाफत में सबसे ज्यादा योग्य गवर्नरों में से था, अली का झंडा झुकाने से इन्कार कर दिया। उसके दूसरे नाम का मतलब "पिता का पुत्र" था। यह नाम उसे इसलिए दिया गया कि इस बात का ठीक-ठीक पता न था कि उसका पिता कौन है। उसकी माँ समुय्या तैफ नगर की एक दासी थी। अन्य लोगों के अलावा अबू-सूफयान भी उसे जानता था। जियाद ने बसरा की फौज में एक लिपिक के रूप में अपना जीवन शुरू किया था। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली ने उसे फारस भेजा। इस प्रान्त में उसने वहाँ के निवासियों की निष्ठा हिंसा के बल पर नहीं बल्कि अपने आचरण की बुद्धिमत्ता से प्राप्त की। सन् ६६२ तक उसने मुआविया से अपने को स्वतंत्र रखा। कूफा में मुआविया द्वारा नियुक्त गवर्नर मुगीरा ने, नये राज्य के साथ अच्छे संबंधों के लिए उससे बातचीत शुरू की। मुआविया ने जियाद को दमिश्क बुलाया और इस अत्यधिक उपयोगी आदमी को अपने घर की सेवा से सम्बद्ध किया। उसने उसे अपने पिता अबू-सूफयान को उसके विवाहेतर पुत्र के रूप में मान्यता दी। इस प्रकार एक संकटपूर्ण घड़ी में मुआविया ने जियाद को अपने जायज भाई के रूप में मान्यता दी। उसने उसे बसरा और बाद में कूफा का भी गवर्नर बना दिया जिसके साथ ही पूर्वी अरब का क्षेत्र भी आता है। इस प्रकार मुआविया ने उसे साम्राज्य के पूर्वी भाग का प्रशासक (वाइसराय) बना दिया। बसरा में जियाद ने अपने शासन का आरंभ बिना पूर्व तैयारी के एक उपदेश-मंचीय भाषण से किया जो इतना अच्छा था कि अरब साहित्य में प्रसिद्ध हो गया है। इस भाषण में उसने

घोषणा की कि उसकी प्रजा में अब तक जो असंयम प्रचलित था उसे बर्दाश्त न किया जाएगा। उसकी अत्यन्त दृढ़ शक्ति ने साम्राज्य के प्राधिकार को, जो जनजातियों के बीच झगड़ों से पूरी तरह समाप्त हो गया था, वहाँ फिर से स्थापित किया। उसके प्रान्त में और खुद रेगिस्तान के भीतरी भाग में सुरक्षा की ऐसी भावना उत्पन्न हुई जो पहले कभी न थी। सन् ६७० में अल-मुगीरा की मृत्यु के बाद जियाद ने उसके प्रान्त का शासन भी अपने हाथों में ले लिया। इससे वह साम्राज्य के पूर्वी भाग का पूर्ण शासक बन गया। जियाद अपने भाई खलीफा मुआविया के लिए बहुत बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। खलीफा का व्यक्तिगत स्वार्थ पश्चिम में था। जियाद ने अपनी निष्ठा चतुर्थ खलीफा अली के सम्बन्ध में आन्दोलन से हटा कर उमैय्यद के स्वार्थों के प्रति कर दी। उसके अंगरक्षकों की संख्या ४ हजार थी जो उसके लिए जासूसों और पुलिस का काम भी करते थे। उनकी सहायता से उसने अपने राज्य में क्रूरतापूर्वक शासन किया। जिस किसी व्यक्ति ने अली के वंशजों के प्रति पक्षपात दिखलाया और मुआविया की निन्दा की, जियाद ने उसे निर्दयतापूर्वक ढूंढ़ निकाला और दंडित किया। यहाँ तक कि बद्दुओं पर भी जो अब इस्लाम की विचारधारा से अधिक लूट-मार के माल में दिलचस्पी रखने लगे थे, रोक लगाई गई। इस्लाम के चार प्रतिभासम्पन्न राजनेताओं में इतिहासकार मुआविया और अम्र के बाद जियाद को ही स्थान देते हैं।

जैसी कि उम्मीद की जाती थी, मक्का और मदीना के निवासी मुआविया के प्रति अनुकूल नहीं थे। पैगम्बर मुहम्मद के साथ अपने संबंध के कारण इन दोनों स्थानों के लोग अली के पुत्रों के पक्ष में थे। वे अपनी आशा हसन के छोटे भाई हुसेन पर लगाये हुए थे। पर न तो हुसेन और न मक्का और मदीना के लोगों की ही हिम्मत थी कि वे दश्मिक के शासक (मुआविया) के विरुद्ध सर उठा सकें।

मुआविया की नीति

सन् ६६१ ने मुआविया के राजनीतिक जीवन को दो बराबर-बराबर भागों में बाँट दिया। इनमें से हर भाग बीस वर्षों का था। प्रथम बीस वर्षों तक वह सीरिया का गवर्नर था और द्वितीय बीस वर्षों तक खलीफा। इन दोनों ही अवधियों में उसकी कोई बड़ी पराजय न हुई। इस पूरे समय में उसने पीछे की ओर नहीं बल्कि आगे की ओर ही देखा। अपने कार्यों से वह प्रारंभिक मुस्लिम शासकों में पूर्वी अथवा पुरातन कम प्रतीत होता है बल्कि उसे अत्यधिक "आधुनिक" माना जा सकता है।

खलीफा के रूप में मुआविया सिर्फ इससे सन्तुष्ट न था कि उसके भौगोलिक क्षेत्र में शांति रहे। वह जनता से मेल स्थापित करने के पक्ष में था। अपने से मतभेद

रखने वालों के प्रति उसका प्रारंभ में यही प्रयत्न रहता था कि वह उन्हें मनाये। वह कहा करता था—"लोगों का नेतृत्व निश्चित रूप से जीभ से (उन्हें समझा-बुझा कर) किया जाता है न कि तलवार से।" जो हठी और सहज ही मानने वाले लोग न थे उन्हें उपहार और भेंट आदि देकर अपने पक्ष में किया जाता था। इनमें अली और पैगम्बर मुहम्मद के दादा हाशिम के समर्थक आदि लोग थे। मुआविया यह भी कहता था कि युद्ध से निश्चित रूप से अधिक क्षति होती है। स्पष्ट रूप से पैगम्बर मुहम्मद की भी यही नीति थी। जिन लोगों के हृदयों को जीतना होता था उनके बारे में वे भी यही नीति अपनाते थे। अपने उमैय्यद संबंधियों के साथ मुआविया विवेकपूर्ण सावधानी की नीति बरतता था। उसने तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के अनुभव से, जिसने अपने संबंधियों के प्रति पक्षपात की नीति बरती थी, यह सबक सीखा था। उस समय के कवियों, पत्रकारों और मूर्त्तिकारों को, जो शासन के प्रति जनमत बना और बिगाड़ सकते थे, तरह-तरह की सहायताएँ दीं। उस समय का कवि व्यंग्यकार हो सकता था जैसे कि आज के भयादोहन करने वाले या डरा-धमका कर रुपये ऐंठने वाले होते हैं। ऐसे मामलों में खलीफा कहता था—"मैं लोगों की बातों की परवा तब तक नहीं करता जब तक वे काम पर उतारू नहीं होते।" पर कविता के प्रति उसका रुख पूरी तरह नकारात्मक न था। वह कवियों का उपयोग अपनी जनता के बीच एकता बढ़ाने और उनमें देशभक्ति की भावना भरने के लिए करता था, क्योंकि अरबों द्वारा बद्दुओं के घुमन्तू जीवन से नागरिक जीवन में आ जाने से उनमें जनजातीय और व्यक्तिवादी भावना खत्म नहीं हुई थी। इस प्रकार नये शासक मुआविया ने अपने लिए असुविधाजनक और कष्टकर लोगों के विरुद्ध मानो सोने की चाबुक का इस्तेमाल किया। उसने मैकियावेली जैसे धूर्त्त राजनीतिज्ञ के होने के पहले ही उसकी अवसरवादिता, स्वार्थसिद्धि और अपने लाभ के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले अन्य सिद्धान्त अपनाये थे। शासन की अपनी नीति उसने संक्षेप में इस प्रकार बतलाई है—"जहाँ मेरा कथन पर्याप्त होता है वहाँ मैं चाबुक का इस्तेमाल नहीं करता है और जहाँ चाबुक काफी होती है वहाँ तलवार का प्रयोग नहीं करता। मेरे अनुयायियों से मेरा जो भी मामूली-सा भी सम्बन्ध होता है उसे मैं टूटने नहीं देता। यदि वे खींचते हैं तो मैं ढील दे देता हूँ और यदि वे ढील देते हैं तो मैं खींचता हूँ।"[3] अरब इतिहास में इस सूत्र को "मुआविया का बाल" कहा जाता है।

अपनी ईसाई प्रजा के साथ उसके व्यवहार को समझने के लिए हमें मुस्लिम स्पेन की चर्चा करनी पड़ेगी। मुआविया ने उस ऋण का ख्याल रखा होगा जो उस

---

३. फिलिप के० हिट्टी—"हिस्ट्री ऑव सीरिया इन्क्लूडिंग लेबनान ऐंड पैलेस्टाइन," द्वितीय संस्करण (लंडन ऐंड न्यूयार्क), १९५७, पृ० ४३२।

पर सीरियाई ईसाइयों का था। उसकी प्रिय पत्नी मेसून उन सीरियाई-अरबों में से थी जो मूलत: यमनी थे। मुआविया की जनजाति उन अनेक जनजातियों में से थी जो इस्लाम धर्म के पूर्व दक्षिणी अरब से सीरियाई रेगिस्तान की पश्चिमी छोर पर आ बसे थे। मुआविया की पत्नी मेसून ने दमिश्क का दरबारी जीवन पसन्द न किया और रेगिस्तान की स्वतंत्रता के लिए तीव्र इच्छा प्रकट की। उसके पति मुआविया ने, जिसकी बहुत बड़ी तोंद थी और जिस संबंध में लोग नफरत से चर्चा करते थे, अपनी पत्नी की बात मान ली और उसे वहाँ भेज दिया जहाँ से वह आई थी। पर उसने मेसून से हुए अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उसके गवर्नरों ने उसके इस निश्चय पर अपना अनुमोदन दिया। यह नई पद्धति धर्मनिष्ठ खलीफाओं के समय की वरीयता सम्बन्धी पुरानी पद्धति से अच्छी थी। इससे अधिक स्थायित्व और निरन्तरता सुनिश्चित करने की चेष्टा की गई थी। मुआविया का दरबारी कवि एक अत्यन्त उग्र ईसाई अल-अख्तल था। जब वह मुआविया के सामने आता था तो उसके गले से क्रास का चिह्न लटकता रहता था। इसी तरह मुआविया का चिकित्सक इब्न-उथल भी ईसाई था। उसे पुरस्कार-स्वरूप हिम्स जिले का वित्तीय सलाहकार बनाया गया। प्रारम्भिक मुस्लिम इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। ईसाइयों के संबंध में खलीफा की नीति के राजनीतिक सुपरिणाम हुए।

मुआविया के समय में सीरिया शासन-सत्ता का केन्द्र हो गया। ईराक में अधिकांश अरब जनता विजय-युद्धों के फलस्वरूप रेगिस्तानी क्षेत्रों से मैदानी इलाकों में आई थी। दूसरी ओर सीरिया के अरब अपनी जन्मभूमि में वर्षों से रहते आये थे। ईसाई गिरिजाघर और रोमन-साम्राज्य से अपने सुदीर्घ सम्पर्क के कारण वे राज्य के आदेश का पालन करने के अभ्यस्त हो गए थे। वे लोग मुआविया को, जो दमिश्क से शासन करता था, अपने पुराने घासनीद राजघराने का जायज उत्तराधिकारी समझता था। उसकी पत्नी मेसून सीरिया की सबसे शक्तिशाली दक्षिणी अरब जनजाति कल्ब के एक ऊँचे कुलीन घराने की महिला थी। इस कारण अपने संबंधियों की मदद से वह अपने पुत्र यजीद को राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनवा सकी। खलीफा मुआविया नें अपने पुराने विरोधियों अली और अब्बास के परिवारों को प्रचुर उपहार देकर अपने पक्ष में कर लिया। उसने अपने उमैय्यद संबंधियों के साथ विवेकपूर्ण सावधानी की नीति बरती ताकि वे उसके और उसके पुत्र के लिए खतरा न बन सकें। अपने राजवंश के स्वार्थों के लिए उसके समय के कवियों का जनमत पर जो व्यापक प्रभाव था उसका उसने बराबर फायदा उठाया। आरमीनियाई वंश के ईसाइयों के साथ अरबों का बराबर अच्छा संबंध था। वे लोग

उन्हें बहुत समय से जानते थे। जैसी कि ईराक में स्थिति थी, वे यहाँ नई बनाई गई बस्तियों में न रहते थे बल्कि बड़े शहरों में ईसाइयों के बीच में रहते थे। उन लोगों के साथ अरब एक ही मकान में स्थान-स्थान पर पूजा भी करते थे। मुआविया के दरबार में एक ईसाई सरजुन इब्न मंसूर प्रभावशाली वित्तीय सलाहकार का काम करता था। मुआविया ने ईसाइयों के साथ जो सहिष्णुता बरती उसके बदले में उन लोगों ने उसके प्रति निष्ठापूर्ण श्रद्धा का भाव रखा। यह भाव ईसाइयों की परम्परा में था जिसकी चर्चा हम अभी भी स्पेनी ऐतिहासिक वृत्तान्तों में पाते हैं। मुआविया ने अपने अरबों पर पूर्वी निरंकुश शासकों की भाँति नहीं बल्कि पुराने समय के जनजातीय सैय्यद की भाँति शासन किया। शुक्रवार को मस्जिद में नमाज के बाद वह मिनबर (मंच) से, जो उसके लिए मंच से अधिक एक दंडाधिकारी का आसन था, अपने राजनीतिक कार्य-कलाप के बाद ऊँचे परिवारों के प्रधानों के साथ विचार-विमर्श करता था। अपने महल में भी वह उन लोगों के साथ नियमित रूप से सलाह-मशविरा करता था। वह अक्सर प्रान्तों से आये प्रतिनिधिमंडलों से भी मिलता था ताकि उनकी शिकायतें सुन सके और जनजातियों के बीच उठने वाले मतभेदों को सुलझा सके। ये सभी काम उसके चरित्र के प्रधान गुण थे। साथ ही वह शांत रहता था और उसमें आत्म-नियन्त्रण था जो सैय्यद के प्रधान गुण होते हैं और जिनका अरबों में नितान्त अभाव होता था। उमर ने जिस इस्लामी राज्य की नींव डाली थी उस पर उसने राज्य की पुनः स्थापना की। इस्लामी राज्य गृह-युद्ध में तहस-नहस हो गया था। अपने महान पूर्ववर्ती शासक (उमर) की भाँति उसने हेलेनिस्टिक रोमन शासन-पद्धति अपनाई जिसकी उपादेयता की जाँच अनेक सदियों तक हो चुकी थी। वित्तीय मामलों में उसने उन करों को अनिच्छा के साथ फिर शुरू किया जो उस समय तक प्रान्तों द्वारा केन्द्रीय कोषागार में जमा किये जाते थे। अंतर केवल यह था कि उनकी वसूली नियमित रूप से की जाने लगी। दूसरी ओर भूतपूर्व शासकों ने अपने अनुयायियों को बड़ी राशि में जो निवृत्ति-वेतन (पेंशन) स्वीकृत किये थे उसके एक भाग को उसने अपने करों से मुक्त कर दिया। हेज्जाज में, जिसकी उपेक्षा गृह-युद्धों के दौरान बहुत काफी हद तक की गई थी, उसने कृषि की उन्नति के लिए वृहत परियोजनाएँ शुरू कीं जिससे खेती के तरीकों में सुधार हुआ।

मुआविया के अधीन उमैय्यद खिलाफत का सुदृढ़ीकरण और विजय

राजसत्ता में आने के बाद से ही मुआविया ने उमैय्यद खिलाफत को सुदृढ़ करने का जोरदार प्रयास शुरू किया। तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान की हत्या

के वाद एकता भंग हो गई थी और देश में शांति न थी। प्रारम्भ में अपनी सुविधा के लिए मुआविया अपनी राजधानी कूफा से दमिश्क ले आया। कुछ अरब जनजातियाँ जैसे कि खारिजाइट, हिमयाराइट और मोधाराइट साम्राज्य के लिए कष्टकर सिद्ध हो रहे थे। उसने खारिजाइटों को कुचल दिया और फिर हिमयाराइटों और मोधाराइटों की ओर ध्यान दिया।

पैगम्बर मुहम्मद के युग के आरम्भ के समय अरव में तरह-तरह के लोग रहते थे। उनका दावा था कि उन लोगों के पूर्वजों की शुरुआत अब्राहम के पुत्र इस्माइल से हुई थी। इस्माइल अरब के दक्षिण यमन में रहता था। अरब लेखकों ने उन्हें यमनी वतलाया है। वाद में कहतनाइतों को हिमयाराइट कहा जाने लगा। उनका यह नाम हिमार से पड़ा जो अब्दुस शम्स के पुत्रों में से एक था। अरव की इस्माइलाइट जनजातियाँ हेज्जाज में रहती थीं और उन लोगो को कभी-कभी "बनू माद" पर अक्सर "बनू मोघार" या "मोघाराइट" कहा जाता था। यह नाम माद के पौत्र मोघार से पड़ा। इस वंश की शाखायें थीं, वनू कुरैश, वनू केज, बनू वकर, बनू तगलीव और बनू तमीम। जैसा कि हम पूर्व अध्यायों में बतला चुके हैं, कुरैश मक्का और इसके आसपास रहते थे और अन्य शाखाओं के लोग यसरीव या मदीना को छोड़ कर हेज्जाज के अन्य क्षेत्रों और मध्य अरब में फैल गए। हिमयाराइटो ने ऊँची सभ्यता हासिल कर ली थी जव कि मोघाराइट घुमन्तू लोग थे जो पशुओं को पालते-पोसते और चराते फिरते थे। इन दो जनजातियों—हिमयाराइटों और मोघाराइटों के वीच शत्रुता और घृणा की भावना थी। पैगम्बर मुहम्मद ने जनजातियों के वीच शत्रुता समाप्त कर दी थी और द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा महान उमर ने उनलोगों के बीच संबंध में बहुत सुधार ला दिया था। मुआविया के अधीन वे लोग फिर झगड़ने लगे और खलीफा ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन लोगों के वीच शत्रुता बढ़ाई। खलीफा की नीति थी कि इन दोनों जनजातियों के बीच सन्तुलन कायम रखा जाय। उसने एक जनजाति को दूसरी जनजाति का दमन न करने दिया। उसके उत्तराधिकारियों के अधीन जिस समय जो भी जनजाति प्रबल हुई उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी जनजाति को भीषणता और क्रूरता के साथ सताया।

मुआविया यह ठीक से समझ लेता था कि उसके काम का आदमी कौन होगा। उसने अनेक प्रशासकों को नियुक्त किया जिन्होंने उपद्रवी तत्वों के दमन और उसके साम्राज्य के विस्तार में उसकी मदद की। इन लोगों में अम्र इब्न अल-आस, मुगीरा बिन शुबाह और जियाद बिन सुमय्या सर्वाधिक प्रमुख थे। अम्र की ही वजह से, जो रणक्षेत्र में बहादुर, सलाह देने में चालाक, शब्दों और कामों में कठोर और

अनैतिक था, मुआविया अली को परास्त कर सका और जिससे अंत में उमैय्यद राजवंश की स्थापना हुई।"[४]

फिर भी उमैय्यद वंश, जो शासन-सत्ता और स्वार्थ के बन्धनों से एक साथ बँधा हुआ था, अपने प्रधान (मुआबिया) के प्रति अपनी निष्ठा से कभी न डिगा। सीरियाई वेतनभोगी सैनिक मुआविया और उसके परिवार की रक्षा के लिए मानो शक्तिशाली दुर्ग की मजबूत दीवार जैसे थे। अधिक चिन्तनशील और धार्मिक विचारों के लोग सभी राजनीतिक और सार्वजनिक मामलों से हटने लगे। उन्होंने अपने को साहित्य के अध्ययन और इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार आचरण में लगाया। वे धर्म के प्रचार में भी सहायता करते थे पर साम्राज्य की सरकार में कोई हिस्सा न लेते थे। जिन कट्टर धार्मिक लोगों ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के विरुद्ध विद्रोह किया था उन्हें नहरवान के समीप कुचल दिया गया। उन लोगों ने भाग कर अल-अहसा और मध्य अरब के अन्य भागों में शरण ली। जहाँ साधारण लोगों का पहुँचना मुश्किल था। वहीं वे अपने अंधकारपूर्ण, उदासी से भरे एवं कट्टर सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। वे जो कुछ ठीक समझते थे उसके प्रति अपने गहरे लगाव के कारण वे दमिश्क सरकार के घोर शत्रु बन गए। उन्होंने मुआविया के विरुद्ध विद्रोह भी किया, चाल्डीया पर हमला किया और ईराक के लिए खतरा उपस्थित कर दिया। पर अन्त में उन्हें पूरी तरह पराजित कर दिया गया और वे रेगिस्तान के अपने मजबूत ठिकानों में शरण लेने को बाध्य हुए।

बैजेन्टाइनों के साथ शत्रुता

मुआविया (सन् ६६१-६८०) अपने साम्राज्य के क्षेत्र में अपने विरोधियों पर आधिपत्य कर लेने के बाद उत्तर-पश्चिम में इस्लाम के महान शत्रु, बैजेन्टाइनों से निबटने के लिए स्वतन्त्र हो गया। उन लोगों के विरुद्ध मुआविया के अभियान मुस्लिम विस्तार की दूसरी लहर जैसे थे। बैजेन्टाइनों के विरुद्ध अभियानों की पहली लहर, जैसा कि हम अध्याय ४ में देख आये हैं, प्रथम धर्मनिष्ठ खलीफा अबू बकर के शासन में आरम्भ हुई और अपने चरमोत्कर्ष पर द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के शासन में पहुँची। सन् ६५६ से ६६१ के गृह-युद्ध में यह लहर समाप्त-सी हो गई। मुआविया ने बैजेन्टाइनों के खिलाफ युद्ध को अपना एक महत्वपूर्ण कार्य समझा। इसके पूर्व यह भी उल्लेख किया जा चुका है कि खलीफा उमर के अधीन गवर्नर की हैसियत से भी मुआविया ने बैजेन्टाइनों के विरुद्ध आक्रमण किया था। तब उसने पाया था कि फोनिसिया के समुद्र तटवर्ती नगर अभी भी बैजेन्टाइनों के कब्जे में हैं।

४. डब्ल्यू० म्यूर-दी कैलिफेट, इट्स राईज, डिक्लाइन ऐंड फाल।

तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के शासन में बैजेन्टाइनों पर दूसरी बार हमला कर उसने उन नगरों को उनके हाथ से निश्चित रूप से छीन लिया। इन नगरों को अपने कब्जे में सुनिश्चित रूप से रखने के लिए मुआविया को अपने शत्रुओं (बैजेन्टाइनों) से समुद्र में भी मुकाबला करना पड़ा। उमर ने इसके लिए उसे अनुमति न दी थी। तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के शासन में उसे इस बात के लिए अनुमति मिल गई। समुद्र ऐसा क्षेत्र था जो अरबों के लिए अनजाना-सा था। जल्द ही वह उनके लिए एक परिचित क्षेत्र बन गया। सन् ६४९ की गर्मियों में मुआविया ने साइप्रस पर हमला किया और इसके केवल छः वर्ष बाद वह कान्स्टैंटीनोपुल पर समुद्री हमले के लिए जहाजों के बेड़े को शस्त्र-सज्ज कर रहा था। हेराक्लियस का पौत्र सम्राट कान्स्टैंस (द्वितीय) मुआविया के इस हमले का सामना करने लीसियाई समुद्र तट पर आया, पर उसकी करारी हार हुई। इस सफलता के बावजूद अरब अब तक अपना लक्ष्य हासिल न कर सके थे। इसका कारण यह था कि समुद्री चढ़ाई के साथ-साथ मुआविया बैजेन्टाइनों के विरुद्ध भूमि-क्षेत्र में भी बढ़ रहा था। इस सिलसिले में वे काप्पाडोसिया में सेसारिया तक न पहुँच सके। तब चतुर्थ खलीफा अली से लड़ने के लिए मुआविया को बैजेन्टाइनों के साथ शांति कायम करनी पड़ी। पर जब उसने साम्राज्य को एकता के सूत्र में बाँध लिया तो उसने एशिया माइनर पर हर वर्ष गर्मियों में हमला जारी रखा। बैजेन्टाइन साम्राज्य की राजधानी के द्वार तक उसकी फौजें दो बार पहुँची पर बैजेन्टाइनों ने अपनी सांस्कृतिक वरिष्ठता के बल पर बर्बर अरबों को पीछे हटा दिया। सन् ६६७ में आर्मेनिया में बैजेन्टाइनों के एक राजद्रोही सेनापति सबोरियस ने अरबों को अपने देश में बुलाया, पर जब तक अरब मेलिटेन पहुँचे, बैजेन्टाइन सम्राट द्वारा राजद्रोह दबाया जा चुका था। पर फिर भी अरब चाल्सडन तक पहुँच चुके थे। इस बार मुआविया ने अपने पुत्र यजीद को जो अब तक अपने मन की मौज के लिए फौज में था, बैजेन्टाइनों पर हमले के लिए भेजा। जबकि अरब जाड़ों में चाल्सडन के बाहर घेरा डाले रहे, वे लोग वसन्त में बिज़ैन्टियन तक पहुँचे पर जब गर्मियों का मौसम आया तो यजीद को घेरा उठाना पड़ा और वह सीरिया वापस चला आया। सन् ६७४ में मुआविया ने ईसाई राज्य-बैजेन्टाइन पर एक बार और कस कर हमला किया। उसने एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा भेजा। जहाजी बेड़ा प्रोपोन्टिस के दक्षिण समुद्री तट पर साइजिसस तक पहुँच गया। वहाँ ठहर कर अरबों ने बैजेन्टाइन साम्राज्य की राजधानी को सात वर्षों (६७४-६८०) तक परेशान किया[५] पर वहाँ की मजबूत किलेबन्दी और यूनानी

---

५. जे० बी० ब्यूरी, ए हिस्ट्री ऑव दी लैटर रोमन इम्पायर (लंदन, १८९९), खण्ड २, पृ० ६१०।

आग्नेयास्त्रों के वार के विरुद्ध कुछ भी न किया जा सका। अन्त में मुआविया ने इस व्यर्थ की लड़ाई को छोड़ दिया और बैजेन्टाइनों के साथ संधि कर ली।

अफ्रिका में विजय

पर फिर भी मुआविया के शासन में न केवल अरब साम्राज्य सुदृढ़ हुआ बल्कि खिलाफत के अधीन क्षेत्रों का विस्तार भी हुआ। युद्ध के एक दूसरे स्थल पर यानी अफ्रिका में ईसाइयों के विरुद्ध अरबों को स्थायी सफलताएँ मिलीं। सन् ६४७ के तुरत बाद तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के मिस्र-स्थित गवर्नर इब्न-अबी-सार ने ट्रिपोलिस पर विजय प्राप्त कर ली थी पर वहाँ के शासक से केवल कर लेकर संतोष कर लिया था। सन् ६६७ में मुआविया के गवर्नर इब्न हुदायज ने पश्चिम में ईसाइयों के विरुद्ध फिर युद्ध छेड़ दिया और अपने पहले ही आक्रमण में वह सिसिली तक पहुँच गया। पर उत्तरी अफ्रिका में अरब शासन का वास्तविक संस्थापक उकबा इब्न नफी था। वह मिस्र के विजेता अम्र का भतीजा था। इस अवधि में उत्तरी अफ्रिका में अरब शासन का विस्तार हुआ जिसका श्रेय मुख्यतः उकबा को था। उकबा ने पहले ही मिस्र में से बरका को जीत लिया था और सन् ६७० में बर्बरों के साथ मिल कर उत्तरी अफ्रिका से हमेशा के लिए ईसाइयों का शासन खत्म करने में सफलता प्राप्त की। उसने कैरवां में एक फौजी बस्ती स्थापित की और तब उसे वापस बुला लिया गया।

अन्य अंतिम विजय

पूर्व की ओर पड़ने वाले क्षेत्रों को फिर से जीतने, वहाँ शांति स्थापित करने और शासन सुदृढ़ करने की समस्या और अधिक मुश्किल थी। ईराक शिया लोगों का मजबूत अड्डा था। फारस राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद की गर्वपूर्ण स्मृति अभी तक संजोये हुए था। इसके साथ ही उसे उसी प्रकार अपनी सांस्कृतिक सफलताओं की गर्वपूर्ण परम्पराओं की भी स्मृति थी। सन् ६५६ से ६६१ के गृह-युद्ध में इस्लामी साम्राज्य की पूर्वी परिधि पर स्थित अनेक नगरों ने साम्राज्य के प्रति अपनी नाम मात्र की निष्ठा उतार फेंकी। इस कारण उन पर फिर से विजय प्राप्त करना जरूरी था। जैसे ही स्थिति पर मुआविया का निर्विवाद रूप से बाधाहीन अधिकार हो गया उसके अधीन सेनाध्यक्षों ने फौजी कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। सन् ६६१ में फारस के पूर्व में स्थित मार्व पर, जो मुस्लिम खुरासान की भावी राजधानी होने वाली थी, आक्रमण किया गया। उसी वर्ष हिरात पर, जो अब अफगानिस्तान में है, हमला किया गया। दो वर्षों बाद काबुल की दीवारों को तीरों और यंत्रों से ढेला आदि फेंक कर तोड़ दिया गया और ओकसस नदी के दक्षिणी भाग पर घेराबन्दी कर दी गई। जियाद की मृत्यु के एक वर्ष बाद सन् ६७४ में उसका पुत्र ट्रांसोक्सि-

याना में सेना के साथ प्रवेश कर गया और बुखारा पर कब्जा कर लिया। वह समरकंद तक आगे बढ़ गया जो इस समय सोवियत रूस में उजबेक गणतंत्र में है। ये तीनों नगर बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव में थे जहाँ सिकन्दर महान के दिनों से चली आने वाली परम्परा के कारण थोड़ा-थोड़ा हेलेनिस्टिक प्रभाव भी था। ये नगर और मध्य एशिया के अन्य नगर बाद में इस्लाम धर्म और अरब संस्कृति के बहुत बड़े केन्द्र बने। इस क्षेत्र का निकट सम्पर्क एक नये जातीय तत्त्व से हुआ। यह जातीय तत्त्व तुर्कों का था जो मंगोलों से संबंधित था। बाद में जब इस्लाम का आक्रामक प्रभाव कम हो गया तो तुर्कों ने उस आक्रामक शक्ति का प्रभावपूर्ण ढंग से इस्तेमाल किया। इस प्रकार मुआविया न केवल एक राजवंश का अधिष्ठाता (पिता) बना वरन द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के बाद खिलाफत का द्वितीय संस्थापक भी।

मुआविया ने अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी बनाया

बसरा के गवर्नर मुगीरा की प्रेरणा पर मुआविया के मन में यह योजना आई कि वह अपने पुत्र यजीद को अपने राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनाये। सन् ६७९ में खलीफा मुआविया ने अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और प्रान्तों से प्रतिनिधिमंडल बुलवाये जिन्होंने उत्तराधिकारी यजीद के प्रति अपनी निष्ठा की शपथ ली। इस प्रकार मुआविया ने खिलाफत में वंशगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त शुरू किया जिसका अनुसरण अन्य प्रमुख मुस्लिम राजवंशों ने किया जिनमें अब्बासिद भी थे। बाद में इस पूर्वोदाहरण का अनुसरण करते हुए शासक खलीफा अपने पुत्रों या संबंधियों में से उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता था जिसे वह सबसे ज्यादा योग्य समझता था और लोगों से शपथ दिलवा लेता था कि वे उस उत्तराधिकारी के प्रति निष्ठा रखेंगे। पहले यह शपथ राजधानी के लोगों से ली जाती थी और फिर साम्राज्य के अन्य प्रमुख नगरों के लोगों से। मुआविया मदीना और मक्का गया ताकि हेज्जाज के लोगों से अपने उत्तराधिकारी के बारे में सहमति ले सके। वहाँ भी उसका डराना-धमकाना और चालाकी आंशिक रूप से सफल रही। मुसलमानों में से चार अग्रणी लोगों ने किसी भी शर्त पर निष्ठा की शपथ लेने से इन्कार कर दिया। ये लोग थे चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली का पुत्र हुसेन, द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर का पुत्र अब्दुल्ला, प्रथम धर्मनिष्ठ खलीफा अबू बकर का पुत्र अब्दुर रहमान और जुबैर का पुत्र अब्दुल्लाह। इन लोगों द्वारा रखे गए उदाहरण से हेज्जाजवासियों में साहस उत्पन्न हुआ। जुबैर का पुत्र अब्दुल्लाह, जिसे मुआविया "कुरैश वंश की धूर्त लोमड़ी" कहता था, खुद खलीफा होना चाहता था। दूसरे लोग यजीद के प्रति, जिसकी दुष्टता प्रसिद्ध थी, घृणा के कारण निष्ठा की शपथ न लेना चाहते थे।

जब इन सभी मोर्चों पर इस्लाम-साम्राज्य के विस्तार का युद्ध चल रहा था, दमिश्क में मुआबिया इसके लिए सावधानीपूर्वक योजनाएँ बना रहा था कि उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य का स्थायित्व सुनिश्चित हो सके। वह नहीं चाहता था कि उसकी मृत्यु के बाद फिर उसी प्रकार गृह-युद्ध हो जिस प्रकार तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान की मृत्यु के बाद हुआ था जिससे कि शिशु साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होने से बड़ी मुश्किल से बचाया जा सका। इस बारे में वह दृढ़ संकल्प था कि पहले अपनाया जाने वाला खलीफा के चुनाव का सिद्धान्त बराबर के लिए छोड़ दिया जाय। उसने अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर खिलाफत के लिए वंशगत उतराधिकार के सिद्धान्त की शुरुआत की। सीरियावासियों ने यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जैसे कि वे लोग मुआबिया द्वारा पेश किया जाने वाला हर प्रस्ताव स्वीकार कर लिया करते थे। ईराक ने भी, जिस पर गवर्नर जियाद का नियंत्रण था, आपत्ति न की। संभवतः यहाँ मुआविया ने अपनी कुछ थोड़ी-सी नीतिगत गलतियों में से एक गलती की। उसका उद्देश्य था कि उसकी मृत्यु के बाद गृह-युद्ध न हो। पर जब उसका प्रस्ताव चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के द्वितीय पुत्र हुसेन ने न माना और मुआविया ने उसे डांटा-फटकारा भी नहीं तो मक्का में इसे उसकी कमजोरी मानी गयी। पर मुआबिया अब सत्तर पार कर चुका था। वह जहाँ देखता था कि अन्य तरीकों से काम चल सकता है वहाँ वह जोर-जबर्दस्ती से काम न लेता था। इसके अलावा वह स्वभावतः लड़ाकू नहीं बल्कि कूटनीति और चालाकी से काम चलाने वाला था।

मुआविया की मृत्यु

लंबे समय तक समृद्धिपूर्वक शासन करने के बाद मुआविया की मृत्यु १८ अप्रैल, सन् ६८० में हुई। कहा जाता है कि वह साफ रंग का, लंबा और बेतौर डौल-डील का आदमी था। इतिहासकार कहते हैं—"वह इस्लाम का पहला राजनेता था जो बैठ कर लोगों के बीच उपदेश करता था और जिसने अपनी व्यक्तिगत सेवा के लिए हिजड़ों को नियुक्त किया था। साथ ही वह प्रथम शासक था।" वह घाघ, अनैतिक और साफ दिमाग वाला था। वह कंजूस था पर जरूरत पड़ने पर शाहखर्च भी। बाहर ही बाहर वह सभी धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करता था। पर वह अपनी योजनाओं या महत्वाकांक्षाओं को कार्यरूप देने में किसी मानवीय या दैवी सिद्धान्त को बाधक न बनने देता था। ऐसा था, मुआविया। पर एक बार जब वह दृढ़ता से सत्तारूढ़ हो गया और उसके रास्ते से सभी शत्रु हट गए तो मनोयोग से प्रयत्न किया कि साम्राज्य को अच्छी सरकार दी जाय।

मुआविया एक राजा और शासक के रूप में

मुआविया पहला व्यक्ति था जिसने खिलाफत को मुल्क यानी गणतंत्र को राजशाही में परिणत कर दिया। उसने एक बार कहा था—"मैं राजाओं में प्रथम राजा हूँ।" उसने अपने पुत्र यजीद को राजगद्दी के लिए अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर खिलाफत को वंशगत राजशाही का रूप दे दिया। उसके उदाहरण का अनुसरण उमैय्यद राजवंश के बाद के खलीफाओं ने भी किया। इस परम्परा का पालन अब्बासिद राजवंश और बाद के राजवंशों ने भी किया। इसलिए मुआविया को इस्लाम के इतिहास में वंशगत राजशाही का संस्थापक कहा जा सकता है। उसके पूर्ववर्त्ती खलीफाओं का जनजातीय प्रजातंत्र सर्वदा के लिए समाप्त हो गया। मुआविया ने इस प्रजातंत्र को व्यक्तिगत शासन और निरंकुशता का रूप दिया। उसके उत्तराधिकारियों ने इस शासन को बैजेन्टाइन और फारसी तानाशाही का ढाँचा दे दिया। बाहरी तौर पर मुआविया अपने पूर्ववर्त्ती धर्मनिष्ठ खलीफाओं की भाँति शुक्रवार को नमाज का नेतृत्व करता था। पर वह उन लोगों के विपरीत सामान्य मुसलमानों से अलग-थलग रहता था। साथ ही वह उन लोगों की भाँति सादगी से न रहता था और उनके पास जितनी आसानी से सामान्य लोग पहुँच सकते थे, मुआविया के पास न पहुँच सकते थे। उसके राजमहल पर सशस्त्र सैनिकों का पहरा रहता था। जब वह जनता के बीच जाता था तो अपने अंगरक्षकों से घिरा रहता था। वह सरकारी कोषागार को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानता था। वह सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओं का समाधान व्यक्तिगत स्तर पर करता था। वरिष्ठ लोगों की परिषद से, जिसका अस्तित्व पूर्ववर्त्ती धर्मनिष्ठ खलीफाओं के समय में था, उसका कोई संबंध न था। इस प्रकार उसने इस्लामी गणतंत्र की परम्पराओं को तिलांजलि दे दी। इस प्रकार मुआविया के दमिश्क में सत्तारूढ़ होने के बाद खिलाफत का अंत हो गया और राजशाही का आरंभ।

सीरिया के गवर्नर के रूप में मुआविया ने न केवल सैनिक बल्कि प्रशासनिक संस्थानों की भी स्थापना की और नया कर्मचारी वर्ग बनाया। ऐसा उसने एक निर्भर-योग्य और सक्षम सरकारी यंत्र की स्थापना के लिए किया। सरकार में प्रतिरक्षा के बाद वित्त का महत्त्व था। एक सीरियाई ईसाई सरजुन परिवार था जिसका सदस्य वित्त नियंत्रक होता था और यह पद वंशगत था। इस बात की चर्चा पहले की जा चुकी है कि राजधानी के खलिद इब्न अल वलीद के समक्ष समर्पण के समय इस परिवार के एक सदस्य का नाम आया था। मुआविया के दो उत्तराधिकारियों अब्द-अल मालिक (सन् ६८५-७०५) और अल-वलीद (७०५-७१५) के समय तक पुस्तकों की भाषा यूनानी ही थी। उन लोगों के पूर्व तक अरबी भाषा लिखने वाले अफसरों

ने राजकोष की पंजियाँ लिखना शुरू न किया था। इसके साथ-साथ ईराक और फारस में भी समानान्तर परिवर्त्तन हो रहा था जहाँ की भाषा अब तक फारसी थी। बैजेन्टाइनों के प्रभाव से मुआबिया ने भी निबंधन का विभाग (दीवान) शुरू किया। जिसका एक केन्द्र द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर ने स्थापित किया था। इस बीच मुआविया ने एक डाक सेवा व्यवस्था भी शुरू की जो इस्लाम में सर्वप्रथम थी। पहले इस डाक-व्यवस्था का उद्देश्य सरकारी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करना था। डाक घोड़ों पर ले जाई जाती थी। डाक-व्यवस्था का और विकास मुआविया के महान उत्तराधिकारी अब्द-अल-मालिक ने किया। इसका उद्देश्य विशाल साम्राज्य के सुदूरस्थ विभिन्न भागों का संबंध एक दूसरे से जोड़ना था।

भाषा में परिवर्त्तन के साथ सिक्कों में भी परिवर्त्तन हुआ। मुआबिया और उसके पूर्व के खलीफाओं ने विदेशी मुद्रा-रोमन और फारसी को ही, जिनका उस समय प्रचलन था, कायम रहने दिया। कुछ मामलों में कुरान के वचन मुद्राओं पर खुदे रहते थे। प्रथम अरब मुद्रा अब्द-अल-मालिक ने बालबाक (बालाबाक) में तैयार कराई थी। वह बैजेन्टाइन मुद्रा की नकल पर थी। इस प्रकार इस्लाम राज्य के अरबीकरण में पचास वर्षों से अधिक का समय लगा।

मुआबिया द्वारा अपनी प्रान्तीय राजधानी को साम्राज्य की राजधानी बनाये रखना एक बहुत बड़ा कदम था। इससे इस तथ्य को मान्यता मिली कि इस्लाम के प्रारंभिक विजय अभियानों के कारण इस्लाम की आकर्षण-शक्ति का केन्द्र उत्तर की ओर चला गया। उस समय इस्लाम का क्षेत्र अरब न था और न ही ईराक उसका केन्द्र स्थान। सीरिया का प्राधान्य समाप्त होने के लिए ईराक को नब्बे वर्षों तक इन्तजारी करनी पड़ी। यहाँ तक कि हेज्जाज का राष्ट्रीय स्तर पर उल्लेख बीसवीं सदी तक न आया। सीरिया में अब समुद्र तटवर्त्ती नगरों पर नौसैनिक हमले हो सकते थे। क्षेत्र के भीतरी भाग में स्थित दमिश्क आरमीनियाओं की शाही राजधानी थी पर सिल्यूसिडों ने अपनी बनाई राजधानी ऐंटिओक के पक्ष में उसे छोड़ दिया। रोमनों ने भी उसका उपयोग राजधानी के रूप में ही किया। मदीना यथास्थिति के पक्ष में था जबकि दमिश्क परिवर्त्तन के पक्ष में। सीरिया में, हेज्जाज के विपरीत, इस्लाम का झुकाव रेगिस्तान के पक्ष में कम और पश्चिम के पक्ष में अधिक हो गया।

इसके अलावे जैद के सहयोग से मुआविया ने एक पुलिस दल बनाया जिसे **अस-शुर्त्ता** कहा जाता था। मुआविया ने आपराधिक प्रशासन को वित्त प्रशासन से अलग कर दिया। उसने प्रान्तीय प्रशासन के लिए गवर्नर नियुक्त किए और राजस्व प्रशासन के लिए विशेष अफसर नियुक्त किया जिसे **"साहिब अल-खिराज"** कहा

जाता था। उसने आज कल के जैसा आय-कर शुरू किया जिसके जरिए वह नियत राशियों में से निर्धन-कर काट लिया करता था।

राजसत्ता प्राप्त करने और इस्लामी साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ाने के लिए मुआविया मुख्यत: सीरियाइयों पर निर्भर करता था जिनमें तब भी मुख्यत: ईसाई थे। साथ ही वह सीरियाई अरबों पर निर्भर करता था जिनमें प्रधानत: यमनवासी थे। इनमें हेजाज से आये नये मुस्लिम प्रवासियों को शामिल न किया गया था। अरब इतिहासकार बतलाते हैं कि सीरिया की जनता अपने नये प्रधान (मुआबिया) के प्रति कितनी निष्ठा का भाव रखती थी। यद्यपि एक सिपाही के रूप में वह निश्चय ही चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के जैसा न था पर सैनिक संगठनकर्त्ता के रूप में उसके समसामयिकों में वह अद्वितीय था। उसे सीरियाई सेना के रूप में जो कच्चा माल मिलता उसे उसने एक भली भाँति सुगठित और अनुशासित सेना के रूप में परिवर्त्तित कर दिया जो इस्लामी युद्ध में अपने किस्म की पहली सेना थी। प्राचीन पितृसत्तात्मक दिनों के अवशेष-रूप में अरब सेना में जो प्राचीन जनजातीय संगठन था उससे उसने सेना को मुक्त कर दिया। साथ ही उसने सरकार के अनेक परम्परागत स्वरूपों को समाप्त कर दिया और पहले के बैजेन्टाइन ढाँचे पर एक स्थायी और भलीभाँति सुगठित राज्य का निर्माण किया। समाज में जो प्रत्यक्ष अराजकता थी उसे समाप्त कर उसने एक व्यवस्थित मुस्लिम समाज खड़ा किया। इतिहासकार मुआबिया को इस बात के लिए श्रेय देते हैं कि इस्लाम में वह प्रथम शासक था जिसने निबंधन विभाग शुरू किया और डाक-व्यवस्था आरंभ करने में रुचि ली। डाक-व्यवस्था ने, जिसे 'अल-बरीद' कहा जाता था और जो बाद में एक सुगठित व्यवस्था के रूप में विकसित हुई, सुविस्तृत साम्राज्य के विभिन्न भागों को एक दूसरे के साथ सम्बद्ध किया।

खिलाफत की राजधानी अब आधिकारिक रूप से दश्मिक में ले आई गई थी जहाँ वह नवासी वर्ष तक रही। मुआविया ने कुछ प्रशासनिक सुधार भी किये जिनका उद्देश्य साम्राज्य की सरकार को एक नया रूप-रंग देना था। अब तक साम्राज्य प्रशासनिक इकाइयों या गवर्नरों के प्रान्तों में बँटा हुआ था। यह बहुत कुछ बैजेन्टाइन और फारसी साम्राज्यों की इकाइयों जैसा था। सीरिया और फिलस्तीन, ईराक, पश्चिमी और मध्य-फारस, बहरैन और ओमन, पूर्वी फारस, हेज्जाज, आर्मेनिया, मिस्र उत्तरी अफ्रिका और यमन तथा दक्षिणी अरब में अलग-अलग गवर्नर थे। इस भारी-भरकम विभाजन को उपराजाओं (वाइसरायों) के शासन में परिणत करके सुदृढ़ कर दिया गया। ईराक, सम्पूर्ण सीरिया और पूर्वी अरब का शासन एक गवर्नर या वाइसराय के अधीन कर दिया गया। उसकी राजधानी कूफा में रखी गई। इसी तरह

हेज्जाज, यमन और दक्षिणी अरब को एक में मिला दिया गया। आर्मेनिया के गवर्नर का क्षेत्र बढ़ा। उसके अधीन जंजीरा का क्षेत्र शामिल कर दिया गया जो टिगरिस और यूफ्रेट्स नदियों के बीच पड़ता है। मिस्र और उत्तरी अफ्रिका पश्चिमी और पूर्वी फारस भी एक साथ मिला दिए गए।

इसके अलावा मुआविया पहला खलीफा था जो अपने अधीन मंत्रियों को अधिकार सौंपता था। अब सरकार के तीन काम—राजनीतिक प्रशासन, कर-संग्रहण और धार्मिक नेतृत्व—खलीफा के ही हाथों में केन्द्रित न रहे पर इनमें से हर एक का काम विभिन्न मंत्रियों को सौंप दिया गया। वाइसराय इस बात के लिए स्वतंत्र थे कि वे अपने क्षेत्र में दमिश्क (केन्द्रीय सरकार) से पूछे बिना अपने अधीनस्थ मुख्य अधिकारी (डिप्टी) नियुक्त कर सकते थे। मुआविया के पूर्व के खलीफा सभी न्याय-निर्णय खुद करते थे, पर उसने अब सम्पूर्ण साम्राज्य में स्वतंत्र न्यायाधीश नियुक्त किये। उसने सरकारी सेवा व्यवस्था, डाक-व्यवस्था और राज्य अभिलेखागार भी स्थापित किया ताकि बढ़ते हुए पत्राचार को निबटाया जा सके और सरकारी कागजात को सुरक्षित रूप से रखने की सुनिश्चित व्यवस्था की जा सके। ये और अन्य सुधार खिलाफत के तेजी से बढ़ते हुए क्षेत्र की शासन-व्यवस्था को ठीक से चलाने के लिए उठाये गए। इस प्रकार मुआविया अरब साम्राज्य का प्रथम शासक हुआ जिसने सरकार की पुरानी जनजातीय व्यवस्था समाप्त कर दी और आधुनिक राजनीतिक प्रशासन की नींव डाली।

मुआविया का मूल्यांकन

अपने शासन के उन्नीस वर्षों (सन् ६६१-६८०) में मुआविया ने रोमनों के विरुद्ध भूमि पर और समुद्र में अधिक उत्साह के साथ लगातार युद्ध किया जैसा उसके पूर्व के किसी खलीफा ने न किया था। यद्यपि वह स्वयं अच्छा सैनिक न था पर उसके समसामयिकों में उसके जैसा सैन्य-संगठनकर्त्ता कोई भी न हुआ। सिफिन की लड़ाई इसका एक अच्छा सबूत है। मुआविया ने जो काम कर दिखाए उससे उसकी गिनती मुस्लिम जगत के महान शासकों में की जाती है।

एक राजनेता के रूप में मुआविया ने कैसाइटों (उत्तरी अरबों) और कालवाइटों (दक्षिणी अरबों) के बीच संतुलन रखा। यद्यपि वह कैसाइटों से निकट रूप से संबंधित था, पर फिर भी अपनी कालवाइट पत्नी से हुए पुत्र को उसने अपना उत्तराधिकारी बनाया और इस प्रकार दोनों को मिलाये रखा। राज्य की नीति में उसकी महत्त्वाकांक्षा एक राजवंश स्थापित करने की थी। जब अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर उसकी राजवंश संबंधी आकांक्षा पूरी हो गई तो

अब उसकी एकमात्र चिन्ता राज्य का कल्याण रह गई। एक शासक के रूप में मुआविया बड़ा उदार और न्यायी था। इतिहासकार मसूदी उसके दैनिक जीवन का विवरण देता है जो विचित्र और दिलचस्प है। सुबह की प्रार्थना के बाद वह नगर-शासक की रिपोर्ट प्राप्त करता था। तब उसके मंत्री और सर्वोच्च शासन समिति के सदस्य आते थे और राज्य-काज आरंभ होता था। जब वह सुबह का नाश्ता कर रहा होता था तो वह प्रान्तों से आये पत्राचार को सुनता था जो उसे उसका एक सचिव पढ़कर सुनाता था। दोपहर में वह सार्वजनिक नमाज के लिए रवाना होता था। वह मस्जिद में एक घेरे के भीतर बैठता था और जो कोई भी चाहता था, उसे अपनी फरियाद सुनाता था। महल में लौटने के बाद वह नगर के भद्र लोगों से बात-चीत करता था। जब यह काम खत्म हो जाता था तो दिन का प्रमुख भोजन परोसा जाता था। उसके बाद थोड़ा आराम करता था। तीसरे पहर की प्रार्थना के बाद वह राज-काज के लिए मंत्रियों से फिर बातें करता था। शाम को वह राजकीय भोज में शामिल होता था और फिर सर्वसाधारण लोगों से पुनः मिलता था। यही था उसके पूरे दिन का कार्यक्रम। मोटे तौर पर देखने पर कहा जा सकता है कि मुआविया का शासन देश में समृद्धि और शांति से भरपूर था और विदेश में सफल।

अरब इतिहासकार मुआविया को वैसे नायक के रूप में नहीं लेते जो कि वह वास्तव में था। इतिहासकारों का विचार उनकी शुद्धितावादिता का द्योतक है। वे उस पर आरोप लगाते हैं कि उसने इस्लाम को लौकिक रूप दिया और पैगम्बर मुहम्मद के सिद्धान्तों पर आधारित धार्मिक खिलाफत को परिवर्तित कर दिया। इतिहासकारों में वह शिया-समर्थकों का घोर शत्रु था। उन लोगों का कहना है कि उसने न केवल खलीफा का पद उसके जायज हकदार से छीन लिया बल्कि उसे अपनी संतति (वंश) को अंतरित कर दिया। शिया लोगों की प्रार्थना के मुख्य भाग में मुआबिया और उसके उत्तराधिकारी यजीद पर, जो चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के द्वितीय पुत्र हुसेन की हत्या के लिए जिम्मेदार था, खुदा का कहर गिरने की बात कही जाती है। दूसरी ओर सुन्नी इतिहासकारों ने, जो अधिकांशतः विरोधी अब्बासिद वातावरण में काम कर रहे थे, कहा है कि प्रथम उमैय्यद खलीफा ने इस्लाम धर्म में बाद में विश्वास करना शुरू किया। उसने विश्वास के कारण नहीं बल्कि सुविधा के चलते इस्लाम धर्म कबूल किया। इस्लाम धर्म स्वीकार करने में प्राथमिकता के आधार पर ही पदसोपान में स्थिति निर्धारित होती थी। जो इस्लाम धर्म जितना पहले स्वीकार करता था, पदसोपान में उसकी स्थिति उतनी ऊँची होती थी। फिर भी सुन्नी इतिहासकार शिया इतिहासकारों का यह विचार स्वीकार नहीं करते कि मुआबिया का खलीफा होना विधिसम्मत न था। पर वे यह स्वीकार करते हैं कि मुआ-

विया के समय से खिलाफत का रूप बदल गया। खिलाफत अब मुल्क हो गई थी, एक राजशाही या लौकिक सार्वभौमसत्तासम्पन्न राज्य। मुआविया "मालिक" था। अरबों द्वारा उस समय यह घृणास्पद उपाधि समझी जाती थी और वह बैजेन्टाइन सम्राट या फारसी शासकों के लिए इस्तेमाल की जाती थी। मुआविया ने खिलाफत में जो अन्य नई बातें लायीं उनमें एक यह भी थी कि उसने अपने लिए अंगरक्षक रखा। उसकी आलोचना इसलिए भी की जाती थी उसके अपने महल में एक सिंहासन (सरीर अल-मुल्क) और अपनी मस्जिद में एक कुंज या छायादार स्थान बनवाया जहाँ बैठ कर वह भाषण करता था। इसके लिए उसका यह स्पष्टीकरण संतोषजनक न माना गया कि अपनी बड़ी तोंद के चलते उसे खड़े होकर भाषण देने में कठिनाई होती है। मुआविया के विरोधियों द्वारा उसकी आलोचना का एक प्रिय विषय यह है कि उसने अपने पुत्र को, जो हद दर्जे का शराबी था, अपना उत्तराधिकारी बनाया। यजीद खलीफाओं में प्रथम शराबी खलीफा था पर अन्तिम नहीं। इतिहासकार उसे 'यजीद अल खुमार' (शराबों वाला यजीद) कहते हैं।[६]

अरब-इतिहास ग्रन्थों में, जो अधिकांशतः अब्बासीद अवधि में या शिया लोगों के प्रभाव में लिखे गए, मुआविया, की धार्मिकता के विरोध में लिखा गया है। सीरियाई परम्पराओं में, जो 'इब्न असाकीर' में उल्लिखित है, मुआविया को अच्छा मुसलमान बतलाया गया है। मुआविया एक बहुत चतुर राजनीतिज्ञ, धूर्त्त कूटनीतिज्ञ और अनैतिक राजनेता था जो अपना कार्य साधने के लिए कोई भी तरीका अपनाने में न हिचकिचाता था। उसने राज्य का आधुनिकीकरण किया और उसे साम्राज्य का रूप दिया। उसने अपने उमैय्यद उत्तराधिकारियों के लिए नम्रता, शक्ति, चतुरता और राजनीतिज्ञता का एक पूर्वोदाहरण रखा जिसका अनुकरण उनमें से बहुतों ने किया, यद्यपि उसमें बहुत कम को सफलता मिली। मुआविया ने धूर्त्ततापूर्ण राजनीतिज्ञता को इस हद तक विकसित किया जिस हद तक किसी अन्य खलीफा ने न किया था। उसके अरब जीवनी लेखक ने उसका मुख्य गुण उसका हिल्म बतलाया है। यह एक असाधारण योग्यता थी जिसके अनुसार जोर-जबर्दस्ती तभी अपनाई जाती थी जब वह बहुत जरूरी होती थी अन्यथा अन्य सभी मामलों में शांतिपूर्ण तरीके अपनाये जाते थे। उसमें चतुरतापूर्ण नम्रता थी जिससे वह शत्रुओं को निरस्त्र और अपने विरोधियों को लज्जित कर देता था। वह जल्द क्रोध में न आता था और हर स्थिति में अपने पर नियंत्रण रखता था। फलतः वह बराबर विजयी रहता था। अपने हिल्म (सहिष्णुता, उदारता और आत्म-नियंत्रण का

---

६. मुआविया को अच्छे रूप में पेश करने वाले आधुनिक इतिहासकारों में हेनरी लेमेन्स का नाम लिया जा सकता है।

मिश्रण) और दूहा (राज-काज करने की शैली) से उसने ऐसा उदाहरण छोड़ा जिसके अनुकरण की कोशिश उसके अनेक उत्तराधिकारियों ने की पर उसके जैसा कोई न हो सका। इसी कारण इतिहासकार हिट्टी कहता है—"वह न केवल राजा था बल्कि सबसे अच्छे अरब राजाओं में से एक।"[७] इस कारण यह पूरे औचित्य से कहा जा सकता है कि उसने राज्य को जिस रूप में पाया उसे उससे अधिक समृद्ध और वृहत तथा अधिक सुरक्षित रूप में छोड़ा।

मुआविया हिल्म की नीति में विश्वास करने वाला था। यह अरबी शब्द जटिल और जानकारी से भरा है। इसका अनुवाद आसानी से नहीं किया जा सकता। पर एक नेता के रूप में मुआविया के विशेष गुणों के वर्णन के लिए यदि यह एक मात्र नहीं तो सबसे अच्छा शब्द है। चाहे तनाव कितने भी अधिक और खतरनाक क्यों न हो, एक हिल्म के आदमी की भाँति वह पूर्ण आत्म-नियंत्रण रखता और निश्चय से पूर्ण निर्णय करता था। वह काफी समय तक विवेकपूर्ण ढंग से सोच कर निर्णय लेता था और जब भी संभव होता था, अपनी समस्याओं के समाधान के लिए शक्ति का प्रदर्शन न करता था। वह किसी समस्या को पूरे रूप में देखता था और जाँच करता था कि समस्या का संबंध किन तत्वों से है ताकि समस्या का दक्षतापूर्वक हल निकाला जा सके। मुआविया किसी से बराबर बहुत जल्द समझौता कर लेता था। वह अपने पराजित शत्रु से निश्छल उदारता और विशाल हृदयता से पेश आता था जिससे शत्रु की प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान की रक्षा होती थी और वह उसके प्रति निष्ठावान हो जाता था। उसका मस्तिष्क पूरी तरह वास्तविकता पर आधारित एवं राजनीतिक रूप से दक्ष था। उसमें संयम और आत्म-नियंत्रण था। वह ऐसा नेता था जिसकी वास्तव में उस समय जरूरत थी। कम-से-कम उसकी मृत्यु तक एक स्थायी राज्य कायम करने की चेष्टा सफल रही। पर उसकी मृत्यु के बाद उस चेष्टा की विफलताओं से स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ कि उसके समय की समस्याएँ कितनी असाध्य थीं। इस बात पर बहुत जोर देने की जरूरत नहीं, चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की मृत्यु के समय स्थिति कैसी नाजुक थी। साम्राज्य गृह-युद्ध से तुरत मुक्त हुआ था। गृहयुद्ध ने जितनी समस्यायें हल कीं उससें कहीं ज्यादा

७. फिलिप के० हिट्टी, हिस्ट्री ऑव दी अरब्स, सातवाँ संस्करण (लंदन और न्यूयार्क, १९६०), पृ० १९८।

पैदा कीं। उनका व्यापक और स्थायी हल संभव नहीं था क्योंकि विभिन्न राजनीतिक गुटों के स्वार्थों में विशाल अंतर था और उनमें आपस में कोई मेल न था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुआविया ने शासन में अनेक नये तत्व दिये। वह इस्लाम की चार राजनीतिक प्रतिभाओं में सर्वप्रथम था। वह अरब साम्राज्य का निर्माता था। साथ ही वह उस राजवंश का संस्थापक था जिसके अधीन सीरिया ने अत्यधिक समृद्धिपूर्ण युग का उपभोग किया और इस्लाम-संसार का सबसे अधिक विस्तार हुआ। अरब इतिहास के निर्माताओं में मुआविया का स्थान पैगम्बर मुहम्मद और द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के बाद ही आता है।

अध्याय ७

मुआविया के उत्तराधिकारी और उमैय्यद राजवंश की पराकाष्ठा

यजीद (सन् ६८०-६८३)

मुआविया के बाद उसका पुत्र यजीद खलीफा हुआ जिसके प्रति उसने अपने जीवन-काल में ही लोगों से निष्ठा की शपथ ले ली थी। यजीद के राजसत्ता में आने के बाद उस गणतंत्रीय सिद्धांत की मानो हत्या कर दी गई कि "इस्लाम धर्म-विश्वासियों का नेता" जनमत-संग्रह से चुना जाय। यह सिद्धान्त अरबों को बहुत प्रिय था। इसके कारण पैगम्बर मुहम्मद के परिवार के लोगों के इस अधिकार की उपेक्षा की गई कि इस्लाम का आध्यात्मिक और लौकिक नेता उन्हीं लोगों में से किसी को चुना जाय। अब यह परम्परा हो गई कि सार्वभौमसत्ता-सम्पन्न शासक अपना उत्तराधिकारी स्वयं मनोनीत कर देता था और अपने जीवन-काल में ही उसके प्रति सैनिकों और कुलीन लोगों की निष्ठा की शपथ दिलवा लेता था।

मुआविया ने अपने उत्तराधिकारी के लिए स्वयं प्रबंध कर अपने को निरंकुश सिद्ध किया और इस प्रकार इस गलती को और गंभीर बना दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य का स्थायित्व इस बात पर निर्भर करता है कि शासक के बाद उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न सरलता से हल हो जाय। इसलिए उसने अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का निश्चय किया जिस तरह प्रथम धर्मनिष्ठ खलीफा अबू बकर ने किया था। यदि उत्तराधिकारी एक मात्र और निर्विवाद उम्मीदवार होता तो उसे मनोनीत करने में धांधली पर लोगों को ध्यान शायद न जाता। पर दुर्भाग्य से ऐसा हुआ नहीं। उमैय्यद राजवंश सीरियाई सेना और साम्राज्य की क्षमता और मर्यादा को देखते हुए नये खलीफा पद के लिए दो स्पष्ट उम्मीदवार थे। इनमें एक था मरवान इब्न-अल-हकाम। उसके पक्ष में यह बात थी कि वह मुआविया का प्रत्याशित उत्तराधिकारी या दूसरे शब्दों में उमैय्यद राजघराने का नेता था। उसके विपक्ष में यह बात थी कि उसने मुआविया के लिए सीरिया में बहुत कम समय बिताया था जिससे यह बात सुनिश्चित न हो सकी कि उसे सीरियाई झुंड का महत्त्वपूर्ण समर्थन मिल सकेगा और इस संबंध में नये खलीफा पद के लिए दूसरे उम्मीदवार यजीद की स्थिति बहुत अच्छी थी। वह मुआविया का पुत्र था और

उसकी माँ सीरियाई जनजाति कल्ब की थी। यही नहीं, यजीद ने अपनी पूरी जिन्दगी सीरिया में ही बिताई थी। इस कारण मुआविया इस संबंध में पूर्ण निश्चित हो सका कि सीरियाई जनता उसके प्रति निष्ठा प्रकट करेगी। इससे समस्या का समाधान निकल सका यद्यपि इसमें स्पष्ट खतरा यह तो था ही कि मुआविया पर शासन-सत्ता अपने परिवार तक ही सीमित रखने का आरोप लग सके। खलीफा पद के चुनाव के लिए मुआविया यह नई रीति शुरू कर एक तरह से जुआ खेल रहा था। वह इस बात को जानता भी रहा होगा, इसलिए उसने जुआ निश्चित रूप से जीतने के लिए अपनी मृत्यु से पहले ही, यजीद के प्रति लोगों से निष्ठा की शपथ दिलाई, भले ही इसका मतलब यह भी लगाया गया हो कि इस प्रकार संदेहशील और हठी लोगों को निश्चय स्वीकार करने के लिए डराया-धमकाया गया।

पर मुआविया के इरादों के प्रति सहानुभूति न रखना कठिन है। वह एक सावधान व्यक्ति था जो बराबर अप्रत्यक्ष तरीकों को ही तरजीह देता था। यदि उसे उत्तराधिकारी चुनने में निरंकुश रूप से नई रीति अपनानी पड़ी तो उससे सिद्ध होता है कि उसका राज्य अस्थिर और डावाँडोल की-सी स्थिति में था। इसमें शक नहीं कि मुआविया ने राज्य को अस्थायी शांति और स्थायित्व दिया, पर अनेक बहुत जरूरी प्रश्न अभी भी सुलझाये न गए थे। जनजातियाँ अभी भी बहुत शक्तिशाली और स्वतंत्र थीं। ईराक में जियाद के सुधारों ने इस समस्या को और गम्भीर बना दिया। उनसे समाज की आधारभूत इकाई के रूप में वंश की अपनी स्थिति पर फिर जोर दिया गया और उसे सुदृढ़ बनाया गया। मुआविया ने ऐसा राज्य स्थापित करने का प्रयास नहीं छोड़ा जो बिना किसी जोर-जबर्दस्ती के कायम कर सके पर इस प्रयास के लिए सरकार की ओर से एक बहुत ऊँचे स्तर की राजनीतिक और कूटनीतिक दक्षता और स्वार्थ त्याग की आवश्यकता थी जिसे स्वयं मुआविया भी पूरा न कर सका।

सन् ६८० में अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए मुआविया ने अनुभव किया कि अपने हाशिमी विरोधियों की उपेक्षा की उसकी नीति लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई है। उसने अपने उत्तराधिकारी यजीद को चेतावनी दी कि चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा का द्वितीय पुत्र हुसैन "साम्राज्य पर फिर से कब्जा करने की कोशिश करेगा" पर फिर भी उसने उसे सलाह दी कि "उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय" क्योंकि "उसकी (हुसैन की) नसों में अल्लाह के दूत का सच्चा खून बह रहा है।" मुआविया ने यजीद को अब्दुल्लाह इब्न-जुबैर से भी सावधान रहने की चेतावनी दी जो उमैय्यदों का प्रमुख शत्रु था। जुबैर के पिता और चाचा जुबैर और मुहम्मद इब्न अबू बकर ने तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के विरुद्ध विद्रोह किया था। अब्दुल्लाह इब्न-जुबैर के बारे में मुआविया ने कहा कि—"वह शेर की तरह ताकतवर और लोमड़ी की

भाँति काइयाँ है और उसे पूरी नष्ट कर देना चाहिए।" मुआविया द्वारा ये चेतावनियाँ दिये जाने के तुरन्त बाद उसके उत्तराधिकारी के शासन में ये तथ्य बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो गये। महान् मुआविया की मृत्यु के बाद से ही उसका वह राज्य, जिसका निर्माण उसने इतने परिश्रम से किया था, छिन्न-भिन्न होने लगा।

कर्बला की लड़ाई (सन् ६८१) और उसका महत्व

पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि इस्लामी कुलीन तंत्र के प्रधानों—चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के द्वितीय पुत्र हुसेन, द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के पुत्र अब्दुल्ला और जुबैर के पुत्र अब्दुल्ला ने मुआविया के जीवन-काल में यजीद के प्रति निष्ठा की शपथ लेने से इन्कार किया था। जब मुआविया की मृत्यु के बाद उन लोगों से फिर वैसा करने को कहा गया, तो केवल उमर के पुत्र ने निष्ठा की शपथ ली और शेष दो मदीना के प्रभारी गवर्नर की नजर बचा कर मक्का भाग गये। यजीद को पहली चुनौती अली के द्वितीय पुत्र हुसेन से मिली जो अपने पिता की भाँति गुण-सम्पन्न और वीर था। इतिहासकार सेडी लौट ने कहा है—"उसमें कमी सिर्फ यह थी कि उसमें चालबाजी और धूर्त्तता न थी जो उमैय्यद के उत्तराधिकारियों में थी।" मुसलमानों द्वारा कौन्स्टैंटीनोपुल की घेरेबन्दी में उसने ईसाइयों के विरुद्ध प्रतिष्ठापूर्वक युद्ध किया था। मुआविया और अली के प्रथम पुत्र हसन के बीच जो समझौता हुआ था उसमें खलीफा बनने का उसका (हुसेन) का अधिकार स्पष्ट रूप से सुरक्षित रखा गया था। हुसेन की यह इच्छा कभी न थी कि वह दमिश्क के निष्ठुर शासक (मुआविया) को खलीफा माने। मुआविया के अवगुणों को उसने घृणा की दृष्टि से देखा। उसके चरित्र से उसे घृणा थी। मुआविया की मृत्यु के बाद हुसेन का यह विश्वास हो गया कि सत्ता में आने के लिए प्रयत्नों का यही उपयुक्त अवसर है। उसे यह भी विश्वास था कि उसे अली के समर्थकों—शिया लोगों—से इसके लिए पूरा समर्थन मिल जाएगा। उसका यह विश्वास इतना दृढ़ था कि उसने केवल अपने परिवार और मुट्ठी भर समर्थकों के साथ कूफा पर धावा बोल दिया, या यों कहा जाय, वह कूफा पर विजय के लिए दौड़ पड़ा। पर यहाँ उसने गलती की। कूफा-निवासियों ने उस पर जोर डाला था कि वह उनके यहाँ आवे और वहाँ का शासन-सूत्र संभाले। हुसेन अपना लोभ संवरण न कर सका और उसने धावा बोल दिया, पर ईराक में उसे जो समर्थन मिलने की आशा थी वह उसे न मिल सका। उसके चचेरे भाई मुस्लिम इब्न अकिल को, जो हुसेन की विजय के लिए पहले से मैदान तैयार कर रहा था, यजीद के गवर्नर उबयदुल्ला इब्न-जियाद ने गिरफ्तार कर लिया और मरवा डाला। उबयदुल्ला ने, जिसके पिता जियाद को मुआविया ने अपनी

सुविधा के लिए अपने भाई के रूप में मान्यता दी थी, हेजाज से ईराक तक की सभी सड़कों पर चौकियाँ स्थापित कर दीं। मुहर्रम के दसवें दिन यानी अल हिजरा ६१ (अक्टूबर १०, सन् ६८०) को अपने समय के प्रतिष्ठित सेनापति सैद इब्न-अबी-वक्कास के पुत्र उमर ने कूफ़ा के उत्तर-पश्चिम पच्चीस मील पर स्थित कर्बला में हुसेन को घेर लिया। उमर के अधीन ४००० फौज थी और हुसेन के साथ करीब दो सौ हेजाजी और ईराकी। शिया लोगों के धर्मग्रन्थों में इस युद्ध को इतना बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया है कि यह कह सकना मुश्किल है कि उसमें सचाई कितनी है और कल्पना कितनी। पर यह बिल्कुल स्पष्ट लगता है कि यद्यपि हुसेन की सेना बहुत छोटी थी और विरोधी पक्ष की सेना के साथ उसका अनुपात १ और ५० का था पर उन मुट्ठी भर लोगों ने भी कूफ़ा की फौज से कई घंटों तक मुकाबला किया। जब हुसेन की फौज द्वारा तैयार किये गए बचाव के सभी साधन निष्फल और प्रभावहीन हो गए और हुसेन के सभी साथी मारे गए तो उसने अपने शत्रुओं का अकेले ही मुकाबला किया। कूफ़ावासी इससे बहुत ज्यादा आश्चर्यचकित हुए। हुसेन ने उन पर अपना प्रहार जारी रखा पर अंत में वह पराजित हुआ। तलवार से उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया। उबयदुल्ला के आदेश से उसका शरीर कुचल दिया गया और उसे इस तरह क्षत-विक्षत कर दिया गया कि उसके यानी पैगम्बर मुहम्मद के नाती को पहचाना न जा सके। फिर उसका शरीर गिद्धों को खाने के लिए छोड़ दिया गया। पैगम्बर मुहम्मद का नाती इस प्रकार मारा गया। घावों और चोटों से क्षत-विक्षत उसका सर दमिश्क में यजीद के पास भेज दिया गया। उसका सर पहले सुरक्षित रखा गया और कहा जाता है कि बाद में उसे यजीद के आदेश से कर्बला में एक मकबरे में, पैगम्बर के नाती के सम्मान के अनुरूप, दफन कर दिया गया। बाद में वह हुसेन का मकबरे के रूप में प्रसिद्ध हुआ और शिया लोगों के लिए तीर्थस्थान बन गया। कर्बला अब तक ईराक का पवित्र नगर है जहाँ नजफ नामक स्थान में हुसेन का मकबरा है। शिया लोग इस स्थान को मक्का में काबा और मदीना में पैगम्बर मुहम्मद के मकबरे से भी ज्यादा पवित्र मानते हैं। हुसेन बहादुरी के साथ लड़ते हुए मारा गया। इसके साथ ही अली की स्मृति के साथ व्यापक भावनाएँ जुड़ी हुई हैं। इस कारण अली के परिवार के प्रति ईराक में स्नेह और निष्ठा का तीव्र भाव उदित हुआ जो पिछली तेरह शताब्दियों से कायम है। हुसेन अपने पिता अली और भाई हसन की भाँति शहीद हुआ। हुसेन की "शहादत" की स्मृति में शिया मुसलमान प्रति वर्ष मुहर्रम के प्रथम दस दिन शोक-दिनों के रूप में मनाते हैं। यह वार्षिक शोक-भावना प्रदर्शन दो भागों में बाँटा हुआ है जिसमें हुसेन के "वीरतापूर्वक" संघर्ष और यातना पर जोर दिया जाता है। काजिमे में (ईराक की राजधानी बगदाद के समीप) होने वाले

इस प्रदर्शन के प्रथम भाग में से एक को आशुरा (दसवाँ दिन) कहते हैं जो हुसेन और उसके शत्रुओं के बीच लड़ाई की स्मृति में किया जाता है और प्रदर्शन का दूसरा भाग मुहर्रम के दसवें दिन के वाद अन्य चालीस दिनों तक मनाया जाता है जिसे "सर की वापसी" कहा जाता है। इतिहासकार कार्ल ब्रोकेलमेन हुसेन की दुःखद मृत्यु के बारे में लिखता है—"हुसेन की एक शहीद की भांति मृत्यु का कोई राजनीतिक प्रभाव न पड़ा। पर उससे शिया लोगों के जो अली के समर्थकों के एक हिस्सा हैं, धार्मिक विकास को बल मिला जो बाद में सभी अरवोन्मुख प्रवृत्तियों का केन्द्र-विन्दु हुआ। आज भी कर्बला में हुसेन का मकबरा सभी शिया लोगों, विशेषतः फारसियों (ईरानियों) का पवित्र तीर्थस्थल है। उन लोगों की तीव्र इच्छा बराबर से यही रही है कि हुसेन के मकवरे के पास ही उनकी कब्र भी बने।"[1] हुसेन की लड़ाई का दृश्य शिया धर्मावलंबियों की स्मृति में अभी भी ताजा है। इतिहासकार गिवन कहता है—"सुदूर अतीत और वातावरण में हुई हुसेन की मृत्यु का दुःखद दृश्य हृदय-हीन-से-हृदयहीन पाठकों की सहानुभूति को अपनी ओर खींच लेगा।"[2]

इस प्रकार उस युग के एक महान व्यक्ति की मृत्यु हुई। उसके साथ ही उसके परिवार के सभी बूढ़े और जवान सदस्य नष्ट हो गए। केवल अली नामक एक बीमार बच्चा बच गया। बाद में हुसेन को जैन-उल-आवीदीन (धार्मिकों का आभूषण) की उपाधि दी गई। इमाम हुसेन की अत्यधिक शोकजनक मृत्यु समूचे ...स्लिम जगत के लिए एक महान उदाहरण है। यदि उसने यजीद के प्रति अपनी ... प्रकट कर दी होती तो उसने स्वयं अपनी तथा अपने संबंधियों तथा साथ के अनुयायियों की जान बचा ली होती। पर वह अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहा और अन्त में अपना बलिदान कर दिया।

इस्लाम के इतिहास में कर्बला की दुःखद घटना के दूरव्यापी परिणाम हुए। इससे न केवल खिलाफत के भाग्य का निर्णय हो गया पर मुसलमानों की एकता की, जो मुआविया के समय पनपी और बढ़ी थी, संभावनाएँ भी बराबर के लिए समाप्त हो गईं। फिलिप हिट्टी लिखता है :—"हुसेन का रक्त, अपने पिता अली के रक्त से भी अधिक, शिया धर्म की आधारशिला बना।" शियावाद का जन्म मुहर्रम के दसवें दिन हुआ। अब से अली के वंशजों में इमाम का पद शियावाद का धर्ममत उसी तरह हो गया जिस तरह इस्लाम में हजरत के पैगम्बरवाद का सिद्धांत। कर्बला की घटना के दिन शिया लोगों को यह युद्धघोष मिला "हुसेन का बदला लो।" अन्ततः, उमैय्यद राजवंश के विघटन का यह भी एक कारण बना।

---

१. हिस्ट्री औव इस्लामिक पीपुल, पृ० ७६।
२. ई० गिबन, डिक्लाइन एंड फॉल औव रोमन पीपुल।

दो विरोधी गुटों में मुसलमानों का जो विभाजन हो गया। उससे भविष्य में इस्लाम की उन्नति और समृद्धि को हानि पहुँची। दूसरे गुट सुन्नियों का कहना था कि यजीद वास्तविक शासक था और उसके अधिकार को चुनौती देना राजद्रोह था। वे इस बात पर जोर देते थे कि शिया लोगों के तथ्यों को दूसरे दृष्टिकोण से न देखना चाहिए। पर लोग वास्तव में किसी घटना को किस प्रकार देखते हैं यह इतिहास में एक चालक शक्ति के रूप में इस बात से अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें घटना को किस दृष्टिकोण से देखना चाहिए। इस्लाम में बहुत बड़ी फूट पड़ चुकी थी और वह फूट अभी तक समाप्त न हो सकी है। कर्बला के नरसंहार समूचे इस्लाम जगत में एक आतंक-सा फैला दिया और उससे फारस (ईरान) में एक राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ। इस भावना से अब्बास के वंशजों को उमैय्यद राजवंश समाप्त करने में मदद मिली।

हर्रा की लड़ाई (सन् ६८३)

यजीद ने हुसेन को नष्ट कर दिया, पर जैसा कि उसके पिता मुआविया को पहले से भय था, इससे हुसेन शहीद हो गया। यजीद को अब ईराक में अपनी विजय के विस्फोटक परिणामों का मुकाबला करना था। इसके अलावा उसे अब्दुल्ला इब्न जुबैर से भी मुकाबला करना था जिसने अपने को मक्का का गवर्नर घोषित कर दिया था। यजीद अपने सामने उपस्थित इन दोनों समस्याओं में से किसी का, प्रभावपूर्ण ढंग से, समाधान न कर सका। वह राजनीतिक मामलों में अपने पिता मुआविया की भाँति दक्ष न था। यों वह भी अपने पिता की तरह अपने विरोधी से लड़ाई करने के बजाय बातचीत के जरिए ही मामला तय करने के पक्ष में रहता था। इसका कारण यह था कि वह राजकाज के मामलों में अत्यधिक व्यस्त रहने का आदी था। उसकी ईसाई माँ एक प्रतिभासम्पन्न कवयित्री थी। वह एक मिलनसार युवक था जो जीवन का आनंद उठाने की अपार क्षमता रखता था। वह शराब का आदी और काव्यप्रेमी था।

उमैय्यद राजवंश के लिए अब्दुल्ला इब्न जुबैर बहुत बड़ा खतरा सिद्ध हुआ। उसने मक्का के पवित्र स्थल से खलीफा यजीद को चुनौती दी। वहीं से वह मदीनावासियों को भी उकसा रहा था जिन्हें शासन से असन्तुष्ट रहने का प्रमुख कारण यह था कि उमैय्यदों ने राजधानी को सीरिया ले जाकर मदीना की प्राचीन गरिमा नष्ट कर दी थी। यजीद ने सन् ६८३ में मदीनावासियों को अपने पक्ष में लाने की व्यर्थ चेष्टा की। उसके बाद जल्द ही उमैय्यदों ने वहाँ एक हजार आदमियों को तैनात किया। उनको वहाँ अपने प्रधान मारवान इब्न-अल-हकाम-

इब्न-अल-आस के आवास में शरण लेनी पड़ी। मारवान मुआविया के अधीन हेज्जाज में कुछ समय तक गर्वनर रहा। खलीफा ने उन लोगों की सहायता के लिए मुस्लिम इब्न उकबा के सेनापतित्व में बारह हजार सीरियाई सैनिकों को भेजा। इब्न उकबा ने यजीद के पिता मुआबिया की सेवा में अपनी योग्यता प्रदर्शित की थी। उसकी एक आँख जाती रही थी। अपने बुढ़ापे और दुर्बलता के कारण उसे मदीना तक पालकी में ले जाना पड़ा। जो उमैय्यद मदीना में घिरे हुए थे उन्होंने मदीना की तत्कालीन सरकार के समक्ष इस शर्त पर आत्म-समर्पण कर दिया था कि उन्हें अपने यहाँ वापस भेज दिया जाएगा। सीरिया जाने वाली सड़क पर उन लोगों ने इब्न उकबाह के नेतृत्व वाली सेना से मुठभेड़ की। अगस्त सन् ६८३ में नगर के उत्तर में भूचाल वाले क्षेत्र में मुसलमान ठहरे। उन लोगों को थोड़ा समय दिया गया। वह समय समाप्त होने के बाद विद्रोही इब्न उकबा के विरुद्ध युद्ध के लिए बढ़े। लड़ाई के परिणामस्वरूप कुरैश वंश और अंसार कुलीन लोगों में श्रेष्ठ-मुस्लिम इब्न उकबा की करारी हार हुई। अगले दिन उकबा ने यजीद की ओर से मदीना-वासियों की निष्ठा स्वीकार की। इसके पूर्व उसने बचे हुए विद्रोही नेताओं के कत्ल का आदेश दिया। इस सम्बन्ध में इतिहासकार प्रोफेसर हिट्टी ने लिखा है—"मदीना के पूर्व हर्रा के भूचाल वाले मैदान में जिन प्राचीनकालीन आक्रमण-कर्त्ताओं ने अड्डा डाला था उन्होंने २६ अगस्त, सन् ६८३ को विद्रोही मदीनावासियों से युद्ध किया और वे विजयी हुए। यह जो कहा जाता है कि दमिश्क के सैनिकों ने पैगम्बर मुहम्मद का नगर तहस-नहस कर डाला, संदेहजनक लगता है।"[3] मदीना से मुस्लिम इब्न उकबा मक्का गया पर वह रास्ते में ही मर गया और उसके बाद प्रधान सेनापतित्व हुसेन इब्न नुमैयर ने सँभाला। दमिश्क के सैनिकों द्वारा घेराबंदी के दौरान खुद काबा में आग लग गई और वह स्थान जल कर ढेर हो गया। काला पत्थर तीन टुकड़ों में बंट गया और अल्लाह का निवास (काबा) "विलाप करती महिलाओं के कटे स्तनों सा"[4] दीख पड़ने लगा। जब ये संहार-कार्य हो ही रहे थे, उसी समय यजीद की मृत्यु हो गई। इब्न नुमैयर ने सीरिया में अशांति की आशंका करते हुए इन आक्रमण-कार्यों को, जो २४ सितम्बर ६८३ को आरंभ हुए, २७ नवम्बर ६८३ को समाप्त कर दिया।

---

३. फिलिप के० हिट्टी—हिस्ट्री ऑव अरब्स, १९६० (मैकमिलन ऐंड क० लि०, लंदन और न्यूयार्क)—पृ० १९१-१९२

४. उमैय्यद सेना के वापस चले जाने पर इब्न-अल जुबैयर ने काबा का पुर्निर्माण किया (तबारी, खंड २, पृ० ४२७)

फिर भी हुसेन इब्न नुमैयर अब्दुल्ला इब्न जुबैर से बातचीत शुरू की। उसने प्रस्ताव किया कि यदि वह पहले के युद्ध का बदला न ले तो नुमैयर उसे खलीफा के रूप में अपनी निष्ठा देने को तैयार है पर उसे सीरिया जाना पड़ेगा और सरकार का मुख्यालय वहीं रहेगा। अब्दुल्ला दूसरी शर्त मानने को तैयार न हुआ। पर फिर भी हुसेन ने नाकेबंदी उठा ली और सीरिया वापस चला आया। इस प्रकार इस्लाम का दूसरा गृह-युद्ध भी चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली और मुआविया के बीच पहले गृहयुद्ध की भाँति दो राजवंशों के बीच था। तब यह गृह-युद्ध अस्थायी रूप से समाप्त हो गया।

यजीद का चरित्र

यजीद की मृत्यु ११ नवम्बर, ६८३ को हुई। वह क्रूर और धोखेबाज दोनों ही था उसकी विकृत प्रकृति में न दया थी और न न्यायभावना। उसके साथी जिस प्रकार नीच स्वभाव के एवं दुष्ट थे उसी प्रकार वह भी ओछी बातों में सुख लेता था। वह धार्मिक प्रधानों का मजाक बनाया करता था। इसके लिए वह एक बंदर को धार्मिक प्रधान के जैसे कपड़े पहना देता और उसे खूबसूरती के साथ सजे-सजाये ऊँट पर चढ़ा कर खुद जहाँ जाता वहाँ ले जाता। उसके दरबार में लोग शराब पी कर लड़ते-झगड़ते और सड़कों पर भी वैसा ही होता। उसने साढ़े तीन वर्ष तक राज किया पर उसके शासन में इस्लाम का कोई विस्तार न हुआ। इसके विपरीत उत्तरी अफ्रिका में इस्लाम के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न हुए। इब्न टिकटाका का कहना है कि उसका शासन तीन कुकृत्यों के लिए उल्लेखनीय है—"अपने शासन के प्रथम वर्ष में उसने अली के पुत्र हुसेन को मरवा डाला, दूसरे वर्ष में उसने मक्का को लूटा-खसोटा और तीसरे वर्ष में काबा पर हमला किया।" यह सच है कि खलीफा के रूप में उसने शराब, संगीत और खेल-कूद में जितनी दिलचस्पी ली उतनी राज-काज में नहीं। उसने बैजेन्टाइनों के साथ युद्ध समाप्त कर दिया। जब वह राजकुमार था तो उसने इस युद्ध में अनिच्छा से ही भाग लिया था ईसाई इतिहासकारों ने उसकी असाधारण मिलनसारिता और मौजी तबीयत की प्रशंसा की है। पर अपने संक्षिप्त शासन-काल में उसने वित्तीय प्रशासन में सुधार की चेष्टा की और दमिश्क के मरूद्यान गुताब की सिंचाई की ओर भी ध्यान दिया। पर ये काम दक्षता से न किये गए।

मुआविया (द्वितीय) (६८३-६८४)

अपने प्रतिद्वन्द्वी यजीद की मृत्यु और अरब की भूमि से शत्रु-सेना की वापसी के बाद इब्न-अल-जुबैर न केवल हेज्जाज में, जहाँ उसका मुख्यालय था, खलीफा घोषित किया गया बल्कि ईराक, दक्षिणी अफ्रिका, मिस्र और सीरिया के कुछ

भागों में भी। ईराक में उसके भाई मुसब को उसका प्रतिनिधि बनाया गया। जहाँ तक उमैय्यद राजवंश का सम्बन्ध था, यजीद का उत्तराधिकारी उसका उन्नीस वर्षीय पुत्र मुआविया (द्वितीय) बनाया गया। वह इस पद को स्वीकार करने में अत्यधिक अनिच्छुक था। उसने इस प्रस्ताव का विरोध किया। वह इस पद के लिए इतना अनिच्छुक था कि कुछ ही सप्ताहों में उसकी मृत्यु हो गई। वह नम्र स्वभाव का आदमी था। कहा जाता है कि वह अपने परिवार के पापों से घृणा करता था। कुछ महीनों तक राज करने के बाद वह राजकाज छोड़ कर निजी जीवन बिताने लगा और फिर कुछ महीनों बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि उसे जहर दे दिया गया था।

मुआविया द्वितीय के जीवन-काल में ही सीरिया में अरब जनजातियों के बीच युद्ध शुरू हो गया था और उसके बाद उमैय्यद शासन-काल में उसका अंत कभी नहीं हुआ। उत्तरी अरब जनजातीय समूह कैज मुआविया प्रथम से इस कारण असंतुष्ट था कि उसने दक्षिणी अरब जनजाति काल्ब के प्रति पक्षपात शुरू कर दिया था। केज जनजातीय समूह की वह शाखाएँ थीं जैसे घाटाफान, मुदार आदि जो उत्तरी सीरिया, मेसोपोटामिया और ईराक में बस गई थी। दूसरी ओर दक्षिणी अरब जनजाति काल्ब, जो कुदाह की प्रमुख जनजाति थी, पालमीरा और प्राचीन मोआब के बीच बसी हुई थी[५]। और अब जब अब्दुल्ला इब्न जुबैर को ईराक में मान्यता मिल गई और केज जनजाति जफर इब्न-अल हरीथ के नेतृत्व में विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए और किनासरीन के गवर्नर को, जो काल्बाइट[६] था, निकाल बाहर किया। मुआविया की मृत्यु के बाद हिम्स के गवर्नर ने भी इब्न जुबैयर को खलीफा के रूप में मान्यता दे दी। अंत में दहहाक-इब्न-केज भी जुबेर के दल में शामिल हो गया। इस प्रकार मर्ज रहित[७] की लड़ाई में

---

५. आधुनिक इतिहासकार गोल्डजिहर उत्तरी अरबों और दक्षिणी अरबों के बीच विरोध को कुरैशों और अंसारों के बीच प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम मानता है। अंसार दक्षिणी अरब माने जाते थे। पर बहुत प्रारंभ से यह युद्ध पूर्वी उत्तरी अरबों और दक्षिणी अरबों के बीच जातिगत विरोध पर आधारित है। दक्षिणी अरबों में विदेशियों का रक्त का मिश्रण था। इन दोनों दलों के बीच शत्रुता का प्रभाव बहुत लम्बे समय तक कायम रहा। स्पेन के इतिहास में इस पर फिर से विचार किया जाएगा।

६. काल्बाइट सीरियाई-अरबथे जो हिजरा के पहले सीरिया में बस गए थे और अधिकांश ने ईसाई धर्म अपना लिया था।

७. दमिश्क के निकट मर्ज अध्रा गांव के निकट का मैदान।

दहाक-इब्न-केज को उसके कल्वाइट विरोधियों ने (जिनमें यमनी या दक्षिणी अरब वाले शामिल थे) अंतिम रूप से कुचल दिया गया। यह उमैय्यदों के लिए द्वितीय सिफिन के युद्ध के जैसा हुआ। कल्बाइट बूढ़े उमैय्यद मारवान इब्न हकाम का समर्थन कर रहे थे।

मुआबिया द्वितीय की मृत्यु के बाद इब्न जुबैयर हेज्जाज का निर्विरोध नेता हो गया। उसकी स्थिति बड़ी मजबूत हो गई थी। उसे सीरिया को छोड़ कर सभी प्रान्तों की निष्ठा प्राप्त हो गई थी। प्रथम तो सीरियाई यह तय न कर सके कि वे किस ओर मुड़ें। जजीरा के जो अब सीरिया का भाग है, केसाइट दल ही ऐसा था जिसने स्पष्ट निर्णय लिया। इन लोगों ने मुआविया प्रथम को इस बात के लिए कभी क्षमा न किया था कि उसने "उनके" क्षेत्र में बाहर के लोगों को आने दिया। इस कारण वे लोग उसके परिवार का कभी समर्थन न कर सकते थे। उन लोगों ने शीघ्र ही इब्न जुबैर का समर्थन किया। उन्हें आशा थी कि वह प्रान्त में उनकी स्वायतता को फिर कायम कर देगा। अलावे, इब्न जुबैर को अधिक समर्थन हेज्जाज से मिला जहाँ से ही जजीरा की जनजाति वाले शुरू-शुरू में आये थे।

सीरिया के शेष भाग के लोग इन प्रश्न पर विभाजित थे। उन लोगों में कई इब्न अल जुबैर को समर्थन देने के पक्ष में थे क्योंकि वह उनकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्त्तन न करना चाहता था। पर इसके साथ ही वे उसका समर्थन इस हद तक न करना चाहे थे कि वे उसके समर्थन में लड़ें। कल्ब जनजाति के लोग चाहते थे कि अमीर-अल मुमी-नीन का पद उमैय्यद वंश वालों को मिले और उस वंश में इतनी बड़ी उम्र का कोई न था जो इस पद को संभाल पाता। अलावे, कलवाइटों में इतनी शक्ति न थी कि वे अपनी पसंद अपने साथी सीरियावासियों से मनवा लेते। सर्वप्रथम जोर्डन जिले के सकुन के किन्डाइट जनजाति वालों ने इब्न जुबैर का समर्थन करने के पक्ष में विचार प्रकट किया। पर उन लोगों को जल्द ही यह महसूस हो गया कि उमैय्यद राजवंश का ही व्यक्ति सीरियाइयों को एक-जुट कर सकता है और उनके लिए उनके विशेषाधिकार सुनिश्चित करा सकता है।

हर्बाईट राजवंश का अंत

मुआविया द्वितीय की मृत्यु के साथ ही अबू सूफयान की शाखा के शासन का अंत हो गया। इस राजवंश को अबू सूफयान के पिता हर्ब के नाम पर हर्बाइट कहा जाता है। वे लोग हकमाइटों[८] के विपरीत थे। इन लोगों का नाम मारवान

८. इन लोगों को मारवाइन शाखा भी कहते हैं। यह नाम इस शाखा के संस्थापक मारवान के नाम पर पड़ा।

इब्न-अल-हकाम के पिता हकाम के नाम पर पड़ा था। हम आगे देखेंगे कि किस प्रकार मारवान इब्न अल हकाम ने प्रथम मुआविया के कम उम्र वाले पात्र को राज सत्ता पर आसीन न होने दिया।

मारवान इब्न-अल हकाम (६८४-६८५)

मुआविया द्वितीय की मृत्यु के बाद स्वभावत: उसके भाई खालिद[१] को सत्ता मिलनी चाहिए थी पर चूंकि उस समय वह महज कम उम्र का एक लड़का था, उमैय्यदों ने उसे शासक के रूप में स्वीकार न किया। उन लोगों ने मांग की कि जनजातीय रीति के अनुसार किसी अधिक उम्र के व्यक्ति को राजसत्ता दी जाय। उस अवसर पर उमैय्यद पूरी तरह किंर्त्तव्यविमूढ़ जैसी स्थिति में थे। वंश का सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति मारवान अब्दुल्ला बिन जुबैर के प्रति राजभक्ति की शपथ लेने को तैयार था। वह मुआबिया प्रथम का चचेरा भाई था और उमैय्यदों के बीच उसका काफी प्रभाव था। उसके द्वारा राजभक्ति की शपथ लेने से उसका परिवार भी अब्दुल्ला बिन जुबैर के प्रति राजभक्ति की शपथ ले लेता। पर इब्न जुबैर का अत्यन्त सावधान पुत्र अरब, मिस्र, ईराक और खुरासान पर अपने आधिपत्य से सन्तुष्ट था। जबकि अब्दुल्ला इस प्रकार उदासीन और तटस्थ जैसा मक्का में पड़ा हुआ था तो दुष्ट उबयदुल्ला बिन जियाद ने बसरा में, जहाँ उसकी सरकार का मुख्यालय था, अपने को खलीफा के रूप में सत्तासीन करने की कोशिश की। जब उसकी यह कोशिश कामयाब न हुई तो वह मारवान के पास पहुँचा और उसे उत्तेजित किया कि वह खुद सत्तासीन न होने का प्रयास करे। मारवान का काम कठिनाइयों से भरा था। उमैय्यद संदेहशील थे और आपस में विभाजित। सीरिया के हिमयाराइट ईर्ष्या के कारण यह नहीं चाहते थे कि मोधाराइट सत्तासीन हो। पर अधिक उम्र हो जाने के बावजूद मारवान की चालबाजी में कमी न आई थी। उसने खालिद के समर्थकों का समर्थन इस वादे पर प्राप्त किया कि वह अंततः खालिद को ही खलीफा के पद पर आरूढ़ करायेगा। मारवान ने खुद अपने चचेरे भाई अम्र का भी, जिसके अनुयायियों की संख्या वंश में काफी थी, समर्थन उसके साथ भी यही वादा करके प्राप्त किया। इस प्रकार मारवान, जो उमैय्यद वंश का प्रधान था और जिसने यजीद की मृत्यु के बाद दमिश्क में डेरा डाल रखा था, सबकी राय से खलीफा बनाया गया। उसने पहले यह इच्छा प्रकट की कि वह मक्का में रहने वाले खलीफा अब्दुल्ला इब्न जुबैर के पक्ष में अपना दावा छोड़ दे पर बाद में उसने अपनी यह इच्छा छोड़ दी। २२ जून, ६८४ को जबीया में उसने लोगों में निष्ठा

१. यजीद का छोटा पुत्र।

की शपथ स्वीकार की। यजीद का मामा हसन इब्न बहदल, जो ट्रान्सजोर्डन में गवर्नर था और जो ऐसा उमैय्यद समर्थक था, जिसके अधीन वास्तव में कुछ सत्ता और शक्ति थी, भी मारवान का समर्थक हो गया। इसके अलावा उसने सीरिया के हिमायाराइटों के प्रधानों को प्रचुर रियायतें दे कर उन लोगों को अपने पक्ष में कर लिया। इस प्रकार मारवान को वह सत्ता मिली जिसके लिए प्रयासशील था। इतिहासकार मसूदी लिखता है—"वह पहला व्यक्ति था जिसने तलवार के जोर से राज-सिंहासन हासिल किया।"

मर्ज राहित की लड़ाई : उसके प्रभाव

सीरिया के इन हिमयाराइटों के समर्थन से मारवान ने मोधाराइटों के प्रधान जहहाक पर आक्रमण किया। हसन-इब्न बहदल के साथ मारवान दमिश्क के लिए रवाना हुआ। केसाइट (या मोधाराइट) दमिश्क के उत्तर मर्जराहित के मैदान में उससे मुकाबला के लिए सामने आये (जुलाई सन् ६८४) और उनकी पराजय हुई। मारवान की चाल से प्रधान जहहाक की मृत्यु हुई। फिर जो लड़ाई शुरू हुई उसमें मोधाराइट पूर्णतः विनष्ट हो गए। अब पूरा सीरिया मारवान के शासन के अधीन आ गया।

अगस्त सन् ६८४ में मारवान दमिश्क में भी लोगों से निष्ठा की शपथ प्राप्त करने में सफल हो गया। उसके पहले उसने राज्य के कोषागार पर कब्जा कर लिया था। इस प्रकार मारवान (६८४-६८५), जो तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान का चचेरा भाई और पहले उसका राज्य-सचिव था, उमैय्यद राजवंश की मारवानी शाखा का संस्थापक हो गया। यद्यपि मर्जराहित की विजय ने उमैय्यदों का शासन पुनः स्थापित कर दिया पर उसके साथ ही केज और कल्ब जनजातियों के बीच घृणा बढ़ गई और उनके बीच खूनी लड़ाइयाँ हुईं जिससे अंत में उमैय्यदों की सत्ता की नींव हिल गई। कल्ब जनजाति (या हिमाराइट) अब सत्तारूढ़ हो गए थे और उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वियों का निर्दयतापूर्वक दमन कर दिया। करीब-करीब यही स्थिति मारवान के पुत्र और उसके उत्तराधिकारी अब्द-अल मालिक के समय में भी रही।

इस प्रकार मर्जराहित की लड़ाई ने मारवान के पक्ष में प्रश्न का निर्णय कर दिया। अब वह अन्य प्रान्तों की ओर बढ़ा जिन के लोगों ने इब्न-अल जुबैर की सत्ता स्वीकार कर ली थी। इस कार्य में उसका पहला और सबसे आसान लक्ष्य मिस्र था। पर फिर भी मारवान का शासन दीर्घकालिक न हो सका। साथ ही उसके शासन में बराबर लड़ाइयाँ होती रहीं। मिस्र पर कब्जा करने में वह

सफल हो गया। उसने अचानक हमला किया जब कि फिलस्तीन के उसके गवर्नरों ने पीछे से हमला किया जिससे इब्न-अल-जुबैयर के भाई मुसब का हमला नाकाम कर दिया। इसलिए बिना किसी कठिनाई के मारवान ने मिस्र की जनजातियों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे इब्न-अल जुबैर के प्रति अपनी निष्ठा खत्म कर दें और हेज्जाज को जहाज से अन्न भेजना बंद कर दें। नौ महीनों तक पदारूढ़ रहने की अवधि में मारवान की ये सफलताएँ थीं। उसके बाद इब्न अल जुबैर से लड़ाई का काम उसके पुत्र और उत्तराधिकारी अब्दुल मालिक पर आ गया जिसके पास अब व्यापक प्रत्याक्रमण के साधन थे।

पहले मारवान को यजीद प्रथम के पुत्र को अपने उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता देनी पड़ी। पर बहुत लंबी बातचीत के बाद मारवान ने इस काम में सफलता पाई कि यजीद के पुत्र को इस बात के लिए राजी कर ले कि वह उसके अपने पुत्रों अब्द-अल-मालिक और छोटे पुत्र अब्द-अल अजीज के पक्ष में खलीफा पद के लिए अपना दावा छोड़ दे। अपने छोटे पुत्र अब्द-अल-अजीज को उसने मिस्र का गवर्नर बनाया था।

मारवान की मृत्यु (सन् ६८५)

खलीफा मारवान, जो अपनी जवानी में तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा की रक्षा करते हुए और बाद में "ऊँटों की लड़ाई" में बुरी तरह घायल हुआ था, जब अपने सत्तरवें साल में पहुँच रहा था तो ७ मई, सन् ६८५ को प्लेग से जो ईराक से सीरिया में आया था, उसकी मृत्यु हो गई। मुआविया द्वितीय की मृत्यु भी प्लेग में ही हुई थी। यह कहना एक कपोल-कल्पना से अधिक नहीं कि उसकी पत्नी ने, जो यजीद की विधवा थी, उसका गला दबा दिया था क्योंकि उसने उसके पुत्र को खलीफा न बनने दिया था।

अब्द-अल मालिक (६८५-७०५)

उमैय्यद राजवंश की मारवानी शाखा के संस्थापक मारवान (६८४-६८५) का उत्तराधिकारी अब्द-अल-मालिक (राजाओं का पिता) बना। अब्द-अल-मालिक और उसके चार पुत्रों[१०] के शासन में, जो उसके बाद उसके उत्तराधिकारी बने, दमिश्क में मुआविया द्वारा स्थापित राजवंश शक्ति, गरिमा और समृद्धि के चरम

१०. अल वलिद (७०५-७१५), सुलेमान (७१५-७१७), यजीद (द्वितीय) (७२०-७२४) तथा हिसाम (७२४-७४३)। उमर (७१७-७२०) ने पुत्रों द्वारा पिता का उत्तराधिकारी बनने की इस परम्परा को तोड़ा। वह अब्द-अल-मालिक के भाई अब्द-अल-अजीज का पुत्र था।

विन्दु पर पहुँच गया। अल-वालिद और हिसाम के शासन में इस्लामी साम्राज्य का अधिकतम विस्तार हुआ। साम्राज्य अटलांटिक समुद्र के तट और पाइरेन्सेस से सिन्ध और चीन की सीमा तक विस्तृत हो गया। प्राचीन समय में कोई भी साम्राज्य इतना विस्तृत न हुआ था और आधुनिक समय में ब्रिटिश और रूसी साम्राज्य ही इतना विस्तृत हो पाया। इसी अवधि में ट्रान्जोक्सिआना पर कब्जा किया गया, उत्तरी अफ्रिका पर फिर विजय की गई और वहाँ शांति स्थापित की गई और यूरोप के सबसे बड़े देश — स्पेन — पर अधिकार किया गया जिस पर अरवों का अधिकार कभी न हुआ था।

इस अवधि में प्रशासन का राष्ट्रीयकरण या अरवीकरण हुआ। प्रथम शुद्ध अरव सिक्का निकाला गया और डाक व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। इस अवधि में स्मारक वनाये गए जैसे कि जेरूसलेम की चट्टान का गुम्वद। यह इस्लाम का तीसरा पुण्यस्थल है। इसका निर्माण अब्द-अल-मालिक ने उस चट्टान पर शुरू किया जहाँ पैगम्वर मुहम्मद ने अपनी रात्रि-यात्रा के दौरान स्वर्गारोहण किया था। इन स्मारकों के निर्माता वैजेन्टाइन विचाराधारा के सीरियाई थे। सीरियाई मुसलमान अव एक वहुमूल्य और उत्तम स्थान में, जैसा कि मध्य एशिया और पश्चिमी भारत (अव पाकिस्तान) का कोई भी गिरजाघर हो सकता था, पूजा कर सकते थे। सीरियाई मुसलमानों का इस्लामीकरण हो गया जो अभी तक कायम है। यही वात उत्तरी अफ्रिका के वारे में भी लागू हुई जहाँ की बर्वर जनजाति के लोगों का न केवल इस्लामीकरण हुआ पर अंशतः अरबीकरण भी। यहाँ कुछ वर्षों के दौरान अरबों को जो सफलता मिली वह न तो रोमनों और न ही वैजेन्टाइनों को शताब्दियों में भी न मिल सकी थी।

अब्द-अल-मालिक के शासन में विद्रोहियों का दमन

सत्तारूढ़ होने और खलीफा के रूप में अब्द-अल मालिक अपने महान पूर्ववर्त्ती खलीफा मुआविया की भाँति, जिसका वह प्रतिरूप था, चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था। उसे विभिन्न मोर्चों पर शत्रुओं का सामना करना पड़ा। पर जब दो दशकों के अंत में उसकी मृत्यु हुई तो उसके पुत्र और उत्तराधिकारी अल-वालिद को एक समेकित और शांतिपूर्ण साम्राज्य मिला। उसमें न केवल इस्लाम की पूरी दुनिया शामिल थी पर स्वयं उसके द्वारा विजित नये प्रदेश भी। अल-वालिद अपने सक्षम पिता का योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुआ।

अपने उत्तराधिकारी की रक्षा के लिए अब्द-अल-मालिक को घोर संघर्ष करना पड़ा। सीरिया में यूफ्रेटस के केजों के प्रधान जुफर से उसे मुकावला करना

पड़ा। साथ ही सभी प्रान्त इब्न-अल-जुबैर का साथ दे रहे थे। उसे अगले दो वर्षों तक बैजेन्टाइनों के आक्रमण से उत्तरी सीरिया की रक्षा करनी पड़ी। इसके बाद ही वह ईराक की ओर ध्यान दे सका। वहाँ इब्न जुबेर का भाई मुसब गवर्नर के रूप में शासन कर रहा था। इसके पूर्व मुसब को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। चूँकि चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंश में कोई प्रतिभासम्पन्न नेता न हुआ, इसलिए अली के द्वितीय पुत्र हुसेन की कर्बला में पराजय के बाद अली के वंश के लोग चुप बैठे रहे। पर उस वंश में अब एक नेता उभर कर सामने आया था। अल-मुख्तार ताकिफ जनजाति का था। वह अनाथ था जिसका पालन-पोषण उसके चाचा ने किया था जो अल मदाइन में हजरत अली का गवर्नर था। अल-मुख्तार ने मुस्लिम इब्न-अकिल के विद्रोह में भाग लिया था। जेल से छूटने के बाद उसने मक्का में इब्न जुबैर से सांठ-गांठ की। तीन वर्षों के बाद उसने ईराक में अपना सर पुनः उठाया और प्रत्यक्षतः हजरत अली के छोटे पुत्रों में से एक इब्न-अल-हनाफिया, जिसका नाम अपनी माँ के नाम पर पड़ा था, के दूत के रूप में सामने आया।

मुख्तार का विद्रोह, कुछ समय के लिए, सनसनीखेज रूप में सफल हुआ। उस आन्दोलन के शिया स्वरूप के कारण बचे हुए शिया समर्थकों ने उसका समर्थन किया। आन्दोलन के शिया-समर्थकों में कट्टर शिया लोग शामिल थे। इन लोगों का नेतृत्व इब्राहीम इब्न अल-अश्तार कर रहा था जिसके पिता ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा हजरत अली का प्रयोजन कभी न छोड़ा था। उसने हाल में आये लोगों को भी अपने पक्ष में शामिल कर लिया। उमैय्यदों द्वारा नियुक्त वंश के स्थापित नेताओं के प्रति उनकी निष्ठा आसानी से अस्थिर हो गई। इस स्थिति के कारण मुख्तार आसानी से कूफा में इब्न जुबैयर के गवर्नर को हटा सका और उसने अपने को इमाम के वजीर के रूप में स्थापित किया। उसने अत्यधिक सामान्य प्रचार के माध्यम से उमैय्यदों के समर्थकों से कुरान की शैली में स्वधर्मत्याग कराना शुरू किया। वह वैसी घटनाओं की भविष्यवाणी करता जो कभी-कभी हो भी जाती। उसने अली द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली एक पुरानी कुर्सी के रूप में शिया सिद्धान्तों को अपने अनुयायियों के समक्ष प्रस्तुत किया। दरअसल मुख्तार का राज्य एक बढ़-चढ़ कर बोलने वाले नेता के राज्य के अलावा और कुछ न था जो एक अशांत स्थिति का फायदा उठा रहा था। यह एक बहुत ही कमजोर राज्य था जो न तो उमैय्यदों और न उनके प्रतिद्वन्द्वी इब्न जुबैर की सच्ची सत्ता को चुनौती दे सकता था। मालिक अल अश्तर के, जो अली के एक प्रसिद्ध सेनापति का पुत्र था, सेनापतित्व में मुख्तार ने कूफा में अरबों को पराजित किया और वहाँ से मुख्तार ने पूरे ईराक और पूर्वी प्रान्तों पर

विजय हासिल कर ली। वहाँ की प्रजा ने उत्साहपूर्वक उसका नेतृत्व स्वीकार किया। पर वह कूफा में अरबों को अपने पक्ष में न कर सका। उन लोगों ने इब्न-अल अश्तर की अनुपस्थिति का लाभ उठाया जो अपनी फौज के साथ अब्द-अल-मालिक के विरुद्ध, मुख्तार पर आक्रमण के लिए, बढ़ चुका था। मुख्तार उस समय तक बड़े खतरे में था जब तक उसकी फौज उस बारे में खबर पा कर पीछे न मुड़ी और उसे मुक्त न कर दिया। बाद में इब्न-अल अश्तर ने सीरियाई सेना को जिसका सेनापतित्व उबयदुल्ला-इब्न जियाद कर रहा था, खाजिर में हराया। इस युद्ध में इब्न जियाद स्वयं मारा गया। मुख्तार ने अपनी इस सबसे बड़ी विजय को एक विचित्र समारोह में, देवत्व का आसन माने जाने वाले एक खाली सिंहासन के सामने, मनाया। पर उसका पतन समीप था। ईराक का गवर्नर मुसब खारिजियों के विरुद्ध लड़ाइयों के दौरान बसरा में बराबर रहा था। वह मुख्तार के विरुद्ध बढ़ा और दो खूनी लड़ाइयों के बाद उसे कूफा के किले में बंद कर दिया। मुख्तार ने चार महीनों तक अपनी रक्षा की और फिर ४ अप्रैल सन् ६८७ को एक आक्रमण में वह मारा गया। उसके बाद उसके बचे-खुचे शिया समर्थकों में उसकी शिक्षाएँ कायम रहीं यद्यपि मुसब ने उसके समर्थकों को भीषण क्रूरता के साथ समाप्त कर दिया।

ईराक में उमैय्यदों के कुछ छोटे-छोटे आन्दोलन हुए जिनको दबाने में मुसब सफल हुआ पर सन् ६९१ में अब्द-अल-मालिक स्वयं सेना के साथ ईराक में आया। उस समय मुसब की सबसे अच्छी सेनाएँ खारिजियों के साथ संघर्ष में व्यस्त थीं। वह बगदाद के ऊपर के स्थल पर टिगरिस नदी के पश्चिमी तट पर केथोलिक्स के वृक्षों से ढँके मार्ग पर खलीफा के विरुद्ध बढ़ा। पर उसके अफसर योग्य सिद्ध न हुए। वे, मुसब की अनुमति के बिना, खलीफा अब्द-अल मालिक से समझौता के लिए, बातचीत करने लगे। पर खलीफा ने उनकी इस धोखेबाजी को स्वीकार न किया। उसने मुसब के सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वह उसके साथ मिल जाय तो वह उसे ईराक का गवर्नर बने रहने देगा। पर मुसब अपने भाई इब्न जुबैर के प्रति वफादार बना रहा और उसने खलीफा का यह प्रस्ताव स्वीकार न किया। उसी साल अक्टूबर के मध्य में एक लड़ाई में वह मारा गया।

अब अब्द-अल-मालिक को सिर्फ इब्न जुबैर से निबटना था जो मक्का-स्थित अपने निवास से सम्पूर्ण हेज्जाज में अपना शासन कायम रखे हुए था। इब्न जुबैर के विरुद्ध अब्द-अल मालिक ने इब्न यूसुफ को भेजा जिसने मुसब के विरुद्ध लड़ाई में उसका विश्वास प्राप्त कर लिया था। इब्न-यूसुफ ने अपने मूल निवास के नगर को अपनी कार्रवाइयों का केन्द्र बनाया और मक्का की ओर बढ़ा। उसने मक्का

की पवित्रता की उपेक्षा करते हुए उस पर अबू कुवैज के पहाड़ से बमबारी की। प्रतिद्वन्द्वी खलीफा इब्न जुबैर कावा के अपने निवास से सात महीना और डटा रह सका और अक्टूबर सन् ६९२ में हुए आक्रमणों में मारा गया। उसके पूर्व उसके पुत्र भी धोखा देकर उसे छोड़ चुके थे। इस प्रकार, अंत में, साम्राज्य की एकता फिर से कायम की गई। इस विजय के पुरस्कार स्वरूप विजयी सेनापति इब्न यूसुफ को यमन और यमामा के अलावा हेज्जाज का गवर्नर भी बना दिया गया। इब्न यूसुफ ने दो वर्षों में वहाँ शांति और व्यवस्था कायम कर दी। दिसम्बर सन ६९४ में खलीफा अब्द-अल-मालिक उसे साम्राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण पद दिया। वह ईराक का गवर्नर बनाया गया। इसके पूर्व ईराक का गवर्नर खलीफा का भाई बिश्र था जिसकी मृत्यु हो गई थी। इब्न यूसुफ ने कूफा में एक मंच पर भाषण देकर गवर्नर के पद का भार संभाला। यह भाषण उतना ही प्रसिद्ध हुआ जितना उसके पूर्वाधिकारी जियाद का भाषण हुआ था।

अब्द-अल-मालिक पूरे साम्राज्य द्वारा नया "अमीर अल मुमीनीन" घोषित किया गया। उसके पहले उसने अपने चचेरे भाई अम्र इब्न साद द्वारा सत्ता के लिए दावे का प्रयत्न विफल किया। अम्र ने अपना दावा अपने इस अधिकार पर आधारित किया था कि वह उमैय्यद परिवार का प्रधान था। पर यह सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। उसको गिरफ्तार कर लिया गया और अब्द-अल-मालिक के आदेश से मौत की सजा दी गई। फिर भी अब्द-अल-मालिक को ईराक और हेज्जाज में इब्न जुबैर के विरुद्ध सीरिया-वासियों के समर्थन की जरूरत थी। हनीफा, तमीम और अब्दुल केज की जनजातियों ने बड़ी संस्था में सीरिया के बाहर अपनी सेवाओं के बदले सबसे ज्यादा वृत्तियों की माँग की और वह माँग मंजूर की गई। अब्द-अल-मालिक के शासन के दौरान यह परम्परा किसी खास काम के लिए पुरस्कार या उसे करने के लिए प्रोत्साहन के रूप में भी अपनाई जाने लगी। उस समय अनेक अवसरों पर यह परम्परा अपनाई गई और लोगों को वृत्तियाँ या पुरस्कार दिये गए। फलतः उसके शासन के अंत में अधिकांश सीरियावासियों को नियमित वृत्तियाँ दी जा रही थीं और समूचे साम्राज्य में उनकी सेवाओं की आवश्यकता थी।

अब्द-अल-मालिक के अधीन उमैय्यद साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण और विजय

जब अब्द-अल-मालिक सन् ६८५ में सत्ता में आया तो उसका इसके सिवा और कोई स्पष्ट राजनीतिक प्रयोजन न था कि मुआविया की जैसी सावधानी से भरी नीतियों पर चलकर शासन में स्थायित्व पुनः लाया जाय। यद्यपि इस रुख से केन्द्रीय सरकार के शक्ति-केन्द्र सीरिया का स्थायित्व सुनिश्चित हुआ पर इससे शेष साम्राज्य की बहुत दिनों से चली आती समस्याओं का कोई हल नहीं निकला। अब्द

अल-मालिक जानता था कि विशेष तौर पर जब साम्राज्य में ऐसी अस्थायी स्थितियाँ हैं तो आधारभूत परिवर्त्तन शुरू करने में खतरे हैं। फलतः उसने बहुत सावधानी के साथ शासन शुरू किया। उसने किसी आधारभूत परिवर्त्तन का प्रस्ताव न किया और प्रभावकारी व्यावहारिकता से साम्राज्य की नई स्थिति से निबटना शुरू किया। सरकार के प्रति उसका रुख किसी व्यावहारिक नेता के जैसा था जो चली आ रही नीतियों से तब तक हटना जरूरी न समझता था जब तक वैसा करने का सख्त तकाजा न हो। इसमें शक नहीं कि वह एक योग्य शासक था पर ऐसा लगता है कि उसमें कल्पना और दूरदृष्टि का अभाव था जो सिलसिलेवार ढंग से दूरव्यापी नीतियाँ निर्धारित करने के लिए आवश्यक होती हैं। उसने अपनी पहल पर कदम उठाने के बजाय मुख्यतः साम्राज्य में हो रही घटनाओं की प्रतिक्रिया में शक्तिशाली ढंग से काम किया। इन कार्यों का कठिन विरोध हुआ जिसके प्रतिकार के लिए और भी कड़े कदम उठाने पड़े। फलतः जो कार्य अस्थायी किस्म के होने चाहिए थे वे कठिन नीतियों में परिवर्त्तित हो गए और अब्द-अल-मालिक के बीसवर्षीय शासन के उत्तरार्द्ध के तानाशाही शासन के स्वरूप हो गए। और भी बुरी बात यह थी कि उमैय्यद वंश की मारवानी शाखा के शासन के पचास वर्षों में केवल पाँच वर्षों को छोड़ कर शेष काल में इन नीतियों ने सबके लिए राजनीतिक धर्मपरायणता का रूप लिया।

हम जिस नीति से अब्द-अल मालिक और उसके विश्वासी सहायक हेज्जाज को सम्बद्ध करते हैं उसके द्वारा एक रूप ग्रहण करने में इतनी देर क्यों हुई। इसका एक मुख्य कारण यह था कि नीति में मुख्य परिवर्त्तन से ईराक का भी संबंध था जो विजय के समय से ही अन्य सभी प्रान्तों में अत्यधिक अशांत और शासनयोग्य न था। अब्द-अल मालिक के शासन के पूर्वार्द्ध में उसके समक्ष अनेक बहुत जरूरी समस्यायें थीं और वह उस समय की राजनीतिक उथल-पुथल में बुरी तरह फँसा हुआ था। प्रथम तो मक्का में उसका प्रतिद्वन्द्वी अमीर अल मुमीनीन इब्न जुबैर पूरी तरह पराजित न हुआ था। वास्तव में इब्न जुबैर को खत्म करने और मक्का तथा मदीना में शेष विरोध-केन्द्रों को अपने अधीन लाने में आठ वर्षों का समय लग गया। जब यह समस्या हल हो गई अब्द-अल-मालिक को उत्तरी अफ्रिका की ओर ध्यान देना पड़ा जहाँ बर्बर जनजाति ने गृहयुद्ध का फायदा उठाते हुए अपने ऊपर से अरब आधिपत्य उतार फेंका था। सन् ६९४ में सीरियाई फौज बड़ी संख्या में उत्तरी अफ्रिका में पहुँची; बर्बर जनजाति वालों को परास्त किया और अंततः अरब सीमा टैंगियर तक बढ़ा दी। सीरियाई फौजों को इतनी सफलता मिली कि बहुत-से बर्बरों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और उनमें से १२,००० अरब फौज में भरती कर लिए गए। वास्तव में बाद में स्पेन पर विजय अरब फौजों की नहीं बल्कि उनमें शामिल बर्बरों की सफलता थी।

यदि अब्द-अल-मालिक ने ईराक की समस्याओं पर ध्यान दिया भी होता तो अपने शासन के प्रथम दस वर्षों में किसी भी समय वह इस स्थिति में न था कि इस संबंध में अपने विचारों को कार्य रूप दे पाता। फिर भी इस संबंध में कुछ तो करना ही था। सीरिया मारवानी शासन का मुख्य स्तंभ न था पर फिर भी सीरिया प्रभावकारी ढंग से आन्तरिक राजनीति में इस अर्थ में प्रमुख स्थान रखता था और हर शासक का अधिकांश समय उसकी समस्याओं से जूझने में लगता था, बल्कि कहना तो यह चाहिए कि उसके स्वार्थ सभी राजनीतिक निर्णयों पर हावी रहते थे। इसका कारण यह था कि प्रान्तों में वह न केवल सबसे ज्यादा अशांत और अस्थिर स्थितियों वाला प्रान्त था बल्कि अरबों की बहुल-आबादी वाला भी था मोटे तौर पर वहाँ सीरिया के मुकाबले जनजाति-आबादी की संख्या तिगुनी थी। जब कि सीरिया के अभियानों में प्रायः ३०,००० व्यक्तियों से अधिक की आवश्यकता न पड़ी, जियाद और हेज्जाज ने विभिन्न समयों में पूर्वी क्षेत्रों में इतनी ही संख्या में लोगों को भेजा ताकि ईराक की आवश्यकता से कहीं अधिक अरब आबादी से मुक्ति पाई जा सके।

सर्वप्रथम अब्द-अल मालिक ने ईराक का गवर्नर पद अपने भाई बिश्र-इब्न मारवान को सौंपा। बिश्र ने वहाँ की समस्याओं के समाधान के लिए कुछ खास न किया। वह प्रभावशाली शासक सिद्ध न हुआ। दरअसल उसकी नियुक्ति का कारण भी यही था क्योंकि अब्द-अल-मालिक उस समय ईराक में शक्तिशाली गवर्नर रखने का खतरा मोल न ले सकता था। जैसी कि आशा थी, बिश्र के शासन-काल में ईराक की स्थिति संतोषजनक न थी। मुख्य समस्या यह थी कि मारवानी शासन के लिए कूफानिवासियों का समर्थन पूरा न था। उसी तरह नये खवारिजों के विरुद्ध अभियान में बसरानिवासियों ने अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में पूरा समर्थन दिया।

अब्दुल मालिक के शासन का निर्णायक मोड़ सन् ६९५ में आया। उस समय तक उसने इब्न जुबैर और बर्बर जनजाति वालों को पराजित कर दिया था। अतः अब अंत में उसके लिए ईराक की समस्याओं पर ध्यान और समय देना संभव हो सका था। प्रभावहीन गवर्नर बिश्र की मृत्यु के बाद उसने तकीफ जनजाति के हज्जाज को ईराक का नया गवर्नर नियुक्त किया। हज्जाज तीस से चालीस के बीच उम्र का जवान आदमी था। उसने गृहयुद्ध में अपनी उल्लेखनीय योग्यताओं का सबूत दिया था। वालिद और हिशाम के शासन की अवधियों में शानदार सैनिक सफलताओं का श्रेय पूर्व में हज्जाज इब्न युसुफ अल तकाफी को और पश्चिम में मूसा इब्न तसैयर को था। हज्जाज ने, जो अल-हेज्जाज में तैफ में एक जवान स्कूल-मास्टर था, अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़ी और लड़खड़ाते हुए उमैय्यद राज्य के समर्थन

में सैनिक का धंधा अख्तियार किया। उसने एकतीस वर्ष की उम्र में, सन् ६९२ में खलीफा पद के भयानक झूठे दावेदार इब्न जुबैर का दमन कर दिया। इब्न जुबैर ने नौ वर्षों तक खलीफा की उपाधि और शक्ति धारण कर रखी थी। तब हेज्जाज अरब का गवर्नर नियुक्त किया गया। अब्द-अल मालिक नहीं चाहता था कि ईराक में किसी दूसरे मारवानी की विफलता से उसके परिवार की ख्याति को धक्का पहुँचे, अत: स्वभावत: हेज्जाज नये गवर्नर पद के लिए चुना गया। सर्वप्रथम न तो अब्द-अल-मालिक और न हेज्जाज की कोई स्पष्ट धारणा थी कि ईराक में क्या किया जाय। पर उनका यह दृढ़ निश्चय था कि कुछ शक्तिशाली और सक्षम कदम उठा कर विश्व के निष्क्रिय शासन के परिणाम समाप्त किये जायँ। नीति में बड़े परिवर्तन से ही इस आसन पर अस्पष्ट से ध्येय की पूर्त्ति हो सकती थी। दो वर्षों में हज्जाज ने हज्जाज को और पूर्व में यम्माह को भी शांत किया। दिसम्बर सन् ६९४ में अब्दल-अल-मालिक ने उसे वही काम अशांत और असन्तुष्ट ईराक में भी करने को बुलाया जहाँ के "लोग फूटपरस्त और पाखंडी" थे। हज्जाज के कदम न्यायसंगत रहे हों या नहीं, पर उनसे बसरानिवासियों और कूफानिवासियों में शांति और व्यवस्था कायम करने में सफलता प्राप्त की। हज्जाज की गवर्नरी के पूरे क्षेत्र में, जिसमें ईराक और फारस भी शामिल थे, शांति और व्यवस्था कायम हो गई। इब्न-अली-सफरा के नेतृत्व में उसके सहायकों ने अजराकियों[११] को जड़ से उखाड़ फेंका। ये लोग खजराइटों में मुस्लिम एकता के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक थे। खजराइटों ने इब्न अल फूजा के नेतृत्व में करमान, फारिस और अन्य पूर्वी प्रान्तों पर कब्जा कर रखा था। फारस की खाड़ी के दूसरे तट पर उमान, जो पैगम्बर मुहम्मद और अम्र-अल-आस के दिनों में इस्लाम के अधीन नाम मात्र को लाया गया था, अब उमैय्यद राज्य में पूरी तरह शामिल कर लिया गया। इसके बावजूद अब्द-अल-मालिक मध्य और पूर्वी अरब में उपद्रव के स्रोत से निबटने में कम सफल हुआ। वह सिर्फ इस बात में सफल हुआ कि विद्रोहियों का संबंध समुद्र से तोड़ सका और इस प्रकार फारस की खाड़ी से उस पार की उनकी जनजातिवालों से उनका सम्पर्क खत्म कर सका। इसके अलावा उसकी नव-निर्मित राजधानी टिगरिस नदी के पश्चिमी तट पर थी जिसे वेस्ट (मध्य स्थित) नाम से पुकारा जाता था। उसका यह नाम इसलिए पड़ा कि वह ईराक के दो मुख्य नगरों—कूफा और बसरा—के ठीक बीचो-बीच थी। हज्जाज की सीरियाई सेना ने इन सभी क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में कर लिया। जिस प्रकार

---

११. इन्हें अपने प्रथम नेता नफी इब्न-अल-अजरक के नाम पर इस नाम से पुकारा जाता था। अजरक ने अपने सभी अनुयायियों को सिखाया कि खजराइट सिद्धांत से भिन्न सिद्धांत मानने वाले, बिना अपवाद के नास्तिक थे और अपनी पत्नियों और बच्चों सहित उनकी मृत्यु अवश्यंभावी थी।

उमैय्यद राजवंश के प्रति उसकी विशुद्ध निष्ठा की कोई सीमा न थी उसी प्रकार अपनी सीरियाई सेना में उसका अन्ध-विश्वास-सा था। वास्तव में निर्दय उमैय्यद गवर्नर हज्जाज के लिए अपने किसी विरोधी का दमन करना असंभव न था चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो या कितनी ही ऊँची स्थिति का क्यों न हो।

जब उसके अधीन का क्षेत्र शांत और सुव्यवस्थित हो गया तो गवर्नर हज्जाज ने अपने सहायकों को यह अधिकार देने में अपने को स्वतंत्र महसूस किया कि वे और पूर्वी क्षेत्रों में प्रवेश करें। उनमें से एक अब्द-अल-रहमान इब्न अल-असथ को, किंडा के राजघराने का वंशज और सिजिस्तान का गवर्नर था, काबुल (अब आधुनिक अफगानिस्तान में) के तुर्की राजा जुनबिल[12] के विरुद्ध भेजा गया (६९९-७००) जिसने परम्परागत कर[13] देने से इन्कार कर दिया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अब्द-अल-रहमान इब्न अल असथ ने बाद में हज्जाज के विरुद्ध भयानक विद्रोह छेड़ा। काबुल के राजा के विरुद्ध इब्न अल असथ ने एक शानदार ढंग से सुसज्जित सेना के साथ अभियान छेड़ा। उसका नाम "मोरों की सेना" (आर्मी ऑफ पीकाक्स) था। यह अभियान पूरी तरह सफल हुआ। पर रहमान इब्न अल असथ की वीरता के कार्य कुतयबाह इब्न मुस्लिम और हज्जाज के दामाद मुहम्मद इब्न अल कासिम की वीरता के कार्यों के समक्ष फीके रहे। इतिहासकार बालाधुरी और तबारी के अनुसार कुतयबाह सन् ७०४ में खुरासान में गवर्नर नियुक्त किया गया। उसकी राजधानी मार्व में थी। हज्जाज के अधीनस्थ के रूप में खुरासान में उसके कमान में बसरा की ४० हजार अरब सेना, कूफा की ७००० सेना और ७००० अन्य अधीनस्थ लोग थे।

विजैन्टियम के साथ सम्बन्ध

अपने प्रतिद्वन्द्वी से सफलतापूर्वक निबटने के बाद अब्द-अल मालिक ने विजैन्टियम से युद्ध पुनः शुरू किया। यह युद्ध पिछले पन्द्रह वर्षों से शांत था। अब्द-अल-मालिक ने बिजैन्टियम को कर देकर स्वयं उनके साथ शांति कायम की थी। वास्तव में जब पूर्व में बड़े अभियान चल रहे थे तो भी विजैन्टाइन मोर्चे की पूरी तरह उपेक्षा नहीं की गई थी। अब्द-अल-मालिक के शासन के प्रारंभिक काल में जब इब्न जुबैर खिलाफत के लिए संघर्ष कर रहा था तो उसने "मुआविया के पूर्वोहारण" का अनुकरण कर "रोमनों के अत्याचारियों" (वैजेन्टाइनों) को कर

---

१२. जुनबिल उपाधि थी। ये राजा फारस के रहे होंगे।

१३. मध्य एशिया के इस और अन्य राजाओं की प्रायः सभी प्रजा ईरानी रही होगी। उनके राजवंश और फौजें अधिकांशतः तुर्की थीं।

देना शुरू किया। उन लोगों का एजेन्ट लुक्कम का ईसाई जरजीमा लेवनान में प्रवेश कर गया था। अब जब आंतरिक राजनीतिक स्थिति शांत हो गई तो बाहरी शत्रु के साथ शत्रुता की कार्रवाइयाँ शुरू हुई। अब्द-अल-मालिक के खिलाफत में सन् ६९२ में जसलीनियन द्वितीय सिसली के सेबास्तों पोलिस के निकट पराजित किया गया। करीब सन् ७०७ में कापाडोसिया के सबसे महत्वपूर्ण किले त्याना पर अधिकार कर लिया गया। बैजेन्टाइनों से शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयों के पुनः आरंभ होने के बारे में ऐसा समझा जाता है कि उनका सम्बन्ध अब्द-अल-मालिक द्वारा शुरू किये सिक्कों में सुधार से था। उस समय तक, बतलाई जाने वाली परम्पराओं के अनुसार, केवल बैजेन्टाइन सिक्के अरब साम्राज्य में प्रचलित थे। बैजेन्टाइन स्वयं अपने सिक्कों के कागज मिस्र में लेते थे जहाँ वे उनके लिए राज्य के कारखानों में निर्मित होते थे। उन सिक्कों पर विशिष्ट व्यापारिक चिह्न के रूप में ईसाई लिखावट और क्रास का चिह्न होता था। कहा जाता है कि खलीफा अब्द-अल मालिक ने उनके स्थान पर अपने सिक्के चलवाये जिनमें इस्लामी धार्मिक सिद्धांत अंकित कराये। इस पर बैजेन्टाइनों ने धमकी दी कि वे अरबों को सोने का सिक्का दिनार, जो अरब अभी भी केवल उन्हीं लोगों से प्राप्त करते थे, इस प्रकार का बना कर देंगे जिन पर पैगम्बर के सम्बन्ध में आपत्तिजनक बातें खुदी होंगी। परिणामस्वरूप सन् ६९३ में खलीफा ने दमिश्क में अपने सिक्के बनवाने शुरू किये। अगले वर्ष कूफा में हज्जाज ने इस उदाहरण का अनुकरण किया। इसके परिणामस्वरूप सरकारी लेखा-व्यवस्था में अरबी भाषा शुरू की गई। अब तक सीरिया में यूनानी भाषा में और ईराक में फारसी में लेखा रखा जाता था। यद्यपि अफसर, पूर्व की भाँति, गैर-अरब थे, अब्द-अल मालिक ने ईसाई प्रजा को अब तक दी जाने वाली स्वतन्त्रता को काफी सीमित कर दिया ताकि साम्राज्य की एकता कायम रखी जा सके।

उत्तरी अफ्रिका में विजय

पश्चिमी मोर्चे पर मूसा इब्न नुसैयर और उसके अधीनस्थ सैन्य पदाधिकारियों की विजय पूर्वी मोर्चे पर अल हज्जाज और उसके सेनापतियों की विजय से कम अच्छी और महत्त्वपूर्ण न थी। मिस्र पर अधिकार (६४०-६४३) के तुरत बाद पश्चिम में इफ्रिकियाह पर अभियान किये गये। पर उस क्षेत्र पर पूरी तरह विजय तक न की गई जब तक मुआविया के प्रतिनिधि उकबा इब्न नफी ने सन् ६७० में कैरवान की स्थापना न कर दी। इसका उपयोग उकबा ने बर्बर जनजातियों के विरुद्ध कार्रवाइयों के अड्डे के रूप में किया। हदीस में उकबा के बारे में कहा गया है कि वह निरन्तर बढ़ते जाने वाला वीर सैनिक था जब तक अटलांटिक समुद्र की लहरें उसके घोड़ों को न रोक लेतीं। वह आधुनिक अलजीरिया में बिसकरा के निकट शहीद की मौत मारा गया (६८३)। वहाँ उसका मकबरा एक राष्ट्रीय धार्मिक

स्मारक के रूप में स्थापित है। इफ्रिकियाह पर अरबों का कब्जा इतना अनिश्चित था कि उकवा की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी को वह क्षेत्र छोड़ देना पड़ा। हसन इब्न-अल-नूमान अल-गसानी (६९३-७००) के गवर्नर बनने के बाद ही वैजेन्टाइनों का अधिकार और वर्वर जनजातियों के प्रतिरोध का अन्त किया जा सका। एक मुस्लिम जहाजी बेड़े के सहयोग से हसन ने वैजेन्टाइनों को कार्थेज (सन् ६९८) और अन्य समुद्र तटवर्ती नगरों से खदेड़ दिया। उसके बाद वह वर्वर जनजातियों का सामना करने के लिए स्वतंत्र हो गया। उनका नेतृत्व एक महिला पैगम्बर (कही नाह)[14] कर रही थी जिसका अपने अनुयायियों पर रहस्यपूर्ण प्रभाव था। यह पैगम्बर महिला अंत में धोखेबाजी से पराजित की गई और एक कुंए के पास मारी गई जो अभी भी मौजूद है।

हसन इब्न अल नूमान के बाद, जिसने इफ्रिकियाह पर फिर से विजय पाई थी और जिसने वहाँ शांति स्थापित की थी, सुप्रसिद्ध मूसा नुसैयर हुआ जिसके अधीन उस प्रदेश का शासन कैरवान से होता था। उसने उस प्रदेश को मिस्र से स्वतंत्र बना दिया। उसे सीधे दमिश्क के खलीफा के अधीन कर दिया गया। मूसा ने अपने प्रांत की सीमा टैंगियर तक विस्तृत कर दी। इससे इस्लाम निश्चित रूप से और स्थायी तौर पर एक अन्य जातीय समूह-वर्बरों[15] के सम्पर्क में आ गया।

अब्द-अल-मालिक के सुधार और प्रशासन

जब आंतरिक शांति स्थापित हो गई तो अब्द-अल-मालिक ने प्रशासन की सुविधा के लिए अनेक सुधार और प्रशासनिक उपाय किये। अब्द-अल-मालिक और उसके उत्तराधिकारी अल-वालिद के अधीन प्रशासनिक भाषा का जो सुधार हुआ उसका जो अरबीकरण हुआ उसके अंतर्गत सार्वजनिक पंजियों (दीवान) की भाषा दमिश्क में यूनानी से अरबी और ईराक और पूर्वी प्रान्तों में पहलवी से अरबी

१४. इस अवधि में वर्बर और ऐटलस की अन्य जंगली जनजातियाँ एक महिला के प्राधिकार को मान्यता देते थे जिसे अरब इतिहासकारों ने कही नाह (देवी) नाम दिया है।

१५. अंगरेजी शब्द वर्बर (Berber) के बारे में ऐसा समझा जाता है कि वह सामान्यतः, अन्त में, वार्बर, शब्द से आया है। उसी से इस शब्द ने अरबी रूप धारण किया होगा। यह शब्द वार्बरी (Barbari) मूलतः यूनानी शब्द यूनान से आया होगा। बार्बेरियन शब्द आज कल रोमन अफ्रिका के लैटिन नगरों में उन मूल निवासियों के लिए प्रयुक्त होता है जो लैटिन बोली का प्रयोग नहीं करते। वर्बर श्वेत परिवार के हेमेटिक शाखा के और प्राक्ऐतिहासिक समय में संभवतः सामियों की एक शाखा के थे।

कर दी गई। साथ ही सिक्कों के बारे में भी सुधार किये गये। भाषा में परिवर्त्तन से सरकारी कर्मचारी वृन्द में भी स्वभावतः परिवर्त्तन हुआ। प्रारंभिक विजेताओं को, जो रेगिस्तानी क्षेत्र से नये-नये आये थे, लेखा की वहियाँ रखने और वित्तीय मामलों का ज्ञान न था। इस कारण उन्हें सीरिया में यूनानी भाषा लिखने वाले अफसरों और ईराक और फारस में फारसी भाषा लिखने वाले अफसरों को अपने-अपने पदों पर रखना पड़ा था जो लेखा और वित्त-सम्वन्धी मामलों के जानकार थे। पर अब स्थिति बदल गई थी। इसमें संदेह नहीं कि कुछ गैर-अरब अफसर उस समय तक अरबी भाषा के अच्छे जानकार हो गये थे, उन्हें उनके पदों पर कायम रखा गया जैसी कि पुरानी परम्परा थी। भाषा का परिवर्त्तन मंद गति से हुआ होगा। वह अब्द-अल मालिक के शासन में शुरू हुआ और उसके उत्तराधिकारी अल-वालिद के शासन तक जारी रहा। यही कारण है कि इतिहास के कुछ विद्वान भाषा के परिवर्त्तन के लिए पिता अब्द-अल-मालिक को जिम्मेदार मानते हैं और कुछ विद्वान पुत्र अल-वालिद को। यह कदम एक पूर्व नियोजित योजना का अंग था। ईराक और पूर्वी अधीनस्थ क्षेत्रों में स्पष्टतः सुप्रसिद्ध गवर्नर हज्जाज ने भाषा में परिवर्त्तन किया था।

अब्द-अल मालिक ने दूसरा महत्वपूर्ण सुधार अरबी भाषा की लिखावट में किया। उसके योग्य प्रशासक हज्जाज बिन यूसुफ को इसका अधिक श्रेय था। अरबी लिपि में दो खराबियाँ थीं। सर्वप्रथम अरबी लिपि में केवल व्यंजन अक्षर होते हैं जिनके परिणामस्वरूप एक शब्द का कई तरह की ध्वनियों में उच्चारण न किया जा सकता था। गैर-अरबों को इस कारण बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था, क्योंकि वे स्वर अक्षरों के बिना शब्द न समझ सकते थे। दूसरे, अरबी वर्णमाला में अनेक अक्षर थे जिनको केवल एक ही रूप में लिखा जा सकता है जैसे दाल, जाल आदि। हज्जाज ने अरबी लिपि में स्वर के चिह्न शुरू किये ताकि एक ही रूप के अक्षरों के बीच अन्तर किया जा सके। इसके लिए उसने एक तरह के नीचे नुक्ता (बिन्दु) का प्रयोग शुरू किया। इन सुधारों से अरबी भाषा लिखने की कला अधिक पूर्ण हुई और पाठकों के व्यापकतर क्षेत्र में अरबी भाषा समझने में आसानी होने लगी।

ऊपर खलीफा के साथ वैजेन्टाइनों के सम्बन्धों के बारे में जिक्र किया जा चुका है कि अब्द-अल-मालिक ने अरब सिक्कों के बारे में जो सुधार किया उससे वैजेन्टाइनों के साथ उसके सम्बन्ध बिगड़े। यह अब्द-अल-मालिक का दूसरा सुधार था। इस्लाम-पूर्व दिनों में हेज्जाज में रोमन और फारसी सिक्के चलते थे। साथ ही कुछ हिमाराइट चांदी के सिक्के भी प्रचलन में थे। उमर, मुआविया और पहले के खलीफाओं ने इन प्रचलित सिक्कों के विरुद्ध कुछ भी कदम न उठाये और कुछ मामलों में इन सिक्कों

पर खुदी हुई बातों पर कुरान के वचन खुदवा दिये। अब्द-अल-मालिक के काल के पूर्व कुछ सोने और चाँदी के सिक्के बनवाये गये पर वे बैजेन्टाइन और फारस के सिक्कों की नकल पर थे। अब्द-अल-मालिक ने सन् ६९५ में प्रथम सोने के दीनार और चाँदी के दिरहम सिक्के टकसाल में खुदवाये जो पूरी तरह अरबी थे। ईराक में वाइसराय हेज्जाज ने अगले साल कूफा के टकसाल में चाँदी के सिक्के खुदवाये।

विशुद्ध इस्लामी सिक्के शुरू कराने और शासन के अरबीकरण के अलावा अब्द-अल मालिक ने एक नियमित डाक सेवा शुरू की। उसने इसके लिए घोड़ों का इस्तेमाल किया। जब कुछ घोड़े चलते-चलते थक जाते थे तो उनके स्थान पर नये घोड़ों का प्रयोग किया जाता था। ऐसी व्यवस्था स्थान-स्थान पर की जाती थी। इससे यात्रियों को सुविधा होती थी और राजधानी दमिश्क से प्रान्तीय राजधानियों को डाक भेजना संभव हो पाता था। डाक सेवा मुख्यतः सरकारी अफसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति और सरकारी पत्राचार के लिए शुरू की गई थी। पोस्ट मास्टरों पर अन्य कर्त्तव्यों के अलावा यह भार भी सौंपा गया था कि वे खलीफा को अपने-अपने क्षेत्रों की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं से अवगत रखें।

मुद्रा-सम्बन्धी परिवर्त्तनों के सिलसिले में यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि उस समय क्या-क्या वित्तीय और प्रशासनिक सुधार हुए। सिद्धांततः किसी भी मुसलमान पर चाहे उसकी राष्ट्रीयता कुछ भी हो, यह दायित्व न था कि वह जकाह या निर्धन कर के अलावा कोई और कर चुकाये पर व्यवहारतः यह विशेषाधिकार केवल अरबों तक ही सीमित था। इस नियम का लाभ उठाते हुए खास कर ईराक और खुरासान के, जिन लोगों ने इस्लाम धर्म नया-नया अपनाया था, वे गाँवों को छोड़ कर बड़ी संख्या में इस आशा में शहर आने लगे कि वे मवालियों[१६] (इस्लाम-अनुयायियों) के समूह में शामिल हो सकेंगे। गाँवों में वे खेतिहरों के रूप में काम करते थे। इससे कोषागार को दुहरा नुकसान हुआ क्योंकि धर्म-परिवर्त्तन से उनके कर बहुत कम हो गए और उनके सेना में शामिल हो जाने से वे विशेष आर्थिक सहायता पाने के हकदार हो गए। हज्जाज ने इसके लिए आवश्यक कदम उठाये कि उन लोगों को फिर से खेतों में वापस भेज दिया जाय और इस्लाम धर्म अपनाने से पूर्व वे जो कर देते थे उससे अधिक कर उन पर फिर से लगा दिया जिसमें खिराज (भूमि-कर) और जजिया शामिल था। हज्जाज ने उन अरबों पर भी जिन्होंने खराज क्षेत्र में भू-सम्पत्ति हासिल की थी, सामान्य भूमि-कर लगाया।

---

१६. इस शब्द में जिसका प्रयोग बाद में मुक्त हुए गुलामों के लिए किया गया, उस समय हीनता का कोई भाव न था।

अब्द-अलमालिक ने अपने दरबार का स्वरूप भी बदल दिया। उसके पूर्व के खलीफा अपनी प्रजा से प्राचीन अरब प्रधानों जैसा व्यवहार करते थे। अब्द-अल-मालिक एक निरंकुश के रूप में प्रकट हुआ। एक धार्मिक राज्य के प्रतिनिधि के रूप में वह धर्मशास्त्रियों पर अधिक प्रभाव रखता था और पूरी कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ अपने धार्मिक कर्त्तव्य पूरे करता पर इससे उसने अपने दरबार में ईसाई कवि अल-अख्तल को, जिसका जन्म हिरा में हुआ था और जो तगलिब जनजाति का था, आने से नहीं रोका। वह पहले यजीद प्रथम की सेवा में था। चूंकि कवि किन्हीं धार्मिक विचारों से न बँधा था, खलीफा अब्द-अल-मालिक उसकी प्रभावकारी कविता को मदीना के धार्मिक क्षेत्रों के, जो अभी भी कभी-कभी उपद्रव कर बैठते थे, विरोध के विरुद्ध इस्तेमाल करता था।

ईराक, मिस्र और उत्तरी अफ्रिका को छोड़ कर उसने सभी प्रांतों में अपने सम्बन्धियों को गवर्नर बनाया था ताकि वे प्रांत पूरी तरह उसके प्रभाव में रह सकें। ईराक, मिस्र और उत्तरी अफ्रिका में, जहाँ बर्बर जनजातियों का विरोध खत्म किया जा चुका था, उसका भाई अब्द-अल-अजीज को आश्वासन दिया था कि उसे ही खलीफा का पद दिया जाएगा। बाद में अब्द-अल-मालिक ने अपने भाई को मनाया कि वह खलीफा पद के लिए अपना दावा छोड़ दे पर अब्द-अल-अजीज इसके लिए तैयार न हुआ। अब्द-अल-अजीज की मृत्यु अब्द-अल-मालिक के पहले ही हो गई, फलतः सन् ७०५ में अब्द-अल-मालिक का पुत्र वालिद, बिना किसी विरोध के, उसका उत्तराधिकारी हुआ।

अब्द-अल-मालिक का आकलन

इक्कीस वर्षों तक शानदार ढंग से शासन करने के बाद ६२ वर्ष की उम्र में, सन् ७०५ में अब्द-अल-मालिक की मृत्यु हो गई। वह उमैय्यद राजवंश का द्वितीय संस्थापक था। उसने उस समय सत्ता सँभाली जब साम्राज्य बाहरी खतरों से घिरा हुआ था। उन खतरों का तो उसने सफलता के साथ मुकाबला किया ही, साथ ही आंतरिक शत्रुओं से भी साम्राज्य को बचाया। यह उसकी असाधारण योग्यता और बुद्धिमत्तापूर्ण राजनीतिज्ञता के कारण हुआ। अपने सभी शत्रुओं पर विजय पाने के बाद उसने अपने उत्तराधिकारी एवं पुत्र वालिद को एक फलता-फूलता साम्राज्य सौंपा। अपने सुधारों द्वारा उसने इस्लामी संस्कृति और सभ्यता की नींव डाली। वह एक बड़ा निर्माता भी था। उसने जैरुसलेम की चट्टान का प्रसिद्ध गुम्बद बनवाया जिसे यूरोपीय गलती से "उमर का मकबरा" कहते हैं। आज भी यह गुम्बद प्रारंभिक वास्तुकला के सुन्दर नमूने की भाँति खड़ा है। वह कविता भी पसंद करता था विशेषतः यदि वह उसकी प्रशंसा में लिखी गई हो। धनलोलुपता

और क्रूरता उसके आचरण में प्रचुर परिमाण में थे और इतिहासकार मसूदी कहता है कि उसके अधीनस्थ अफसर खूँरेजी में उसके पदचिह्नों पर चलते थे। अब्द-अल-मालिक के बारे में कहा जाता है कि अपनी जवानी में वह धार्मिक और खुदापरस्त था। विश्लेषक कहते हैं कि वह प्रथम खलीफा था जिसने अपने सामने किसी को बोलने की अनुमति न दी थी और साथ ही वह प्रथम खलीफा था जिसने उसके सामने न्याय का आह्वान किये जाने पर रोक लगा दी थी। उसने कहा था—"कोई भी मुझे खुदा का डर या निष्पक्षता के प्रति प्रेम के लिए आदेश न दे। मैं ऐसे आदमी की गर्दन उतार लूँगा।" चरित्र में वह शार्लमेन जैसा था। जबकि न्याय उसके राजवंश के स्वार्थों के प्रतिकूल न था। वह न्याय के विरुद्ध न जाता था। वह हिम्मतवर, शक्तिशाली, दृढ़ और महत्त्वाकांक्षी था। अपनी योजनाओं को पूरा करने में वह पथ से कभी विचलित न होता था। पर वह निश्चय ही शार्लमेन से कम क्रूर था। फ्रिसियनों या सैक्सनों के अन्धाधुन्ध हत्याकांड जैसे क्रूर कार्यों का उस पर आरोप नहीं लगाया जा सकता। शार्लमेन या रूस के पीटर महान की तुलना में उसे मानवीय भी माना जा सकता है। मूसब और अब्दुर रहमान के अधीन विद्रोहियों से युद्ध छेड़ने से पूर्व उसने उनके सामने बार-बार शांति की शर्तें रखीं। उसके द्वारा प्रायिक विश्वासघातों की भाँति उसकी निर्दयता का कारण यह होता था कि वह अपने राजवंश के स्वार्थों की रक्षा करने और उनको आगे बढ़ाने के लिए बराबर चिन्तित रहता था। पर अपने क्रूर गवर्नर हज्जाज की निर्दयताओं के लिए जिम्मेदारी से वह किसी भी तरह मुक्त नहीं किया जा सकता यद्यपि कभी-कभी वह उस क्रूरता के शिकार व्यक्तियों को बचाने के लिए हस्तक्षेप भी करता था। अब्द-अल-मालिक इस्लाम में वह पहला व्यक्ति है जिसने टकसाल खोली। उसके बाद सारासेन (अरब) शासक इस बात के लिए अत्यधिक सावधान हो गए कि अपने सिक्कों का मूल्य बरकरार रखें और जाली सिक्के न बनने दें। सिक्कों के साथ जाल-फरेब करने वालों को मृत्युदण्ड मिलता था। अब्द-अल-मालिक के समय तक सभी सरकारी बहियाँ और करों के अभिलेख या तो यूनानी या फारसी भाषा में रखे जाते थे। इससे अक्सर गलत फायदे उठाये जाते थे। अतः उसने आदेश दिया कि उसके बाद से सभी अभिलेख अरबी भाषा में रखे जाएँगे। अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व उसने अपने भाई अब्दुल अजीज को मनाने की कोशिश की कि वह उसके पुत्र वालिद के पक्ष में उत्तराधिकार का अपना दावा छोड़ दे। अब्दुल अजीज ने दृढ़तापूर्वक ऐसा करने से इन्कार कर दिया। पर उसकी मृत्यु शीघ्र ही हो गई और वालिद शान्तिपूर्वक सत्तारूढ़ हो गया। कांस्टैंटीनोपुल में अब्द-अल-मालिक का समसामयिक शासक पोगोनैटस का पुत्र अत्याचारी जस्टिनियन द्वितीय था।

वालिद प्रथम (७०५-७१५)

अब्द-अल-मालिक का उत्तराधिकारी उसका पुत्र वालिद हुआ और उसके बाद खलीफा हुआ अब्द-अल-मालिक का द्वितीय पुत्र सुलेमान। वालिद प्रथम के शासन में हर तरह से अपने पिता के शासन का प्रत्यक्ष सातत्य था और उस शासन-व्यवस्था में किसी तरह का विघ्न या रुकावट न पैदा की गई। ईराक में अब्द-अल-मालिक का गवर्नर हज्जाज सत्ता में कायम रहा, बल्कि वास्तव में वह और शक्तिशाली हो गया। साथ ही इन वर्षों की शांति से वालिद को इस बात के लिए अवसर मिला कि वह अब्द-अल-मालिक और हज्जाज की संयुक्त नीति के आंतरिक उद्देश्यों को और विकसित करे।

मारवानियों और हज्जाजियों के समूह ने साम्राज्य पर शासन करना जारी रखा। वालिद का उत्तराधिकारी सुलेमान फिलिस्तीन के गवर्नर के रूप में प्रशिक्षण पाता रहा और उसका भाई मसलमा बैजेन्टाइनों की सीमाओं पर अपनी सैनिक प्रसिद्धि के झण्डे गाड़ता रहा। वालिद का चचेरा भाई उमर बिन अब्दुल अजीज अगले सात वर्षों तक गवर्नर के रूप में मदीना का शासन करता रहा पर उसका इतिहास बताता है कि हज्जाज इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसके समक्ष उमर बिन अब्दुल अजीज जैसा मारवानी भी सत्ता में सुरक्षित न था। वह सन् ७१२ में हज्जाज के एक अपने आदमी के पक्ष में अपने पद से हटा दिया गया। उसकी पदोन्मुक्ति का कारण उसकी अक्षमता या अयोग्यता न थी बल्कि यह था कि वह हज्जाज की नीतियों को इस हद तक नापसन्द करता था कि उसने मदीना में उसके राजनीतिक विरोधियों को शरण दी।

साम्राज्य का विस्तार

इस्लाम के इतिहास में वालिद प्रथम का शासन खिलाफत के विस्तार के लिए प्रसिद्ध है। इस अवधि में पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही क्षेत्रों में महान विजय के युद्ध उत्तरी अफ्रिका और मध्य एशिया में पूरे वेग से जारी रहे। हज्जाज ने सिन्धु घाटी के उस भाग से, जिसे, अब बलूचिस्तान के नाम से जाना जाता है, होते हुए भारत में भी नया मोर्चा खोला।

मध्य एशिया में विजय

वालिद प्रथम ने एक बार फिर अपने साम्राज्य की सीमाओं से बहुत दूर अपना विजय-अभियान जारी रखा। एशिया माइनर में एक लंबी घेरेबंदी के बाद त्याना पर अरबों का अधिकार हुआ, पर कान्स्टैंटीनोपुल के विरुद्ध छेड़ा जाने वाला

उसका अभियान कार्यरूप ग्रहण न कर सका। पूर्व में विजय ईराक से आरंभ हुई जिसका गवर्नर हज्जाज पूरे ईरान का भी गवर्नर था। सन् ७०४ में उसकी सलाह पर अब्द-अल-मालिक ने कुतयबाह इब्न मुस्लिम को खुरासान के पूर्वी प्रान्त का गवर्नर बना दिया था। अब तक आक्सस नदी (आज का अमू दरिया) "ईरान और तूरान" की पारम्परिक, यद्यपि ऐतिहासिक नहीं, सीमा-रेखा थी। ईरान की जनता फारसी-भाषी थी और तूरान की तुर्की-भाषी। अब वालिद के अधीन इस नदी को पार कर लिया गया और उसके पार मुसलमानों का स्थायी आधार-स्थल बन गया। कुतयबाह ने शानदार विजय-अभियानों के सिलसिले में उसकी राजधानी बल्ख के साथ निचले तखारिस्तान पर सन् ७०५ में फिर से कब्जा किया। और फिर सन् ७०६ से ७०९ तक कुतयबाह ने अल सुग्द (सोगदियाना) में बुखारा और उसके आस-पास के क्षेत्र पर विजय प्राप्त की और सन् ७१० से ७१२ तक समरकंद तथा ख्वारिज्म (आधुनिक खीवा) की सीमा धकेल कर पश्चिम तक ला दी। वहाँ से कुतयबाह जक्सार्टस प्रान्तों, विशेषकर फरगना, से विरुद्ध पूर्व की ओर बढ़ा। सन् ७१४ की गर्मियों में वहाँ उसे हज्जाज की मृत्यु की खबर मिली। फलतः वह मर्व में अपने अड्डे में वापस लौट आया। आक्सस नदी नहीं बल्कि जक्सार्टस नदी ईरानियों और तुर्कों के बीच प्राकृतिक और जातिगत सीमा-रेखा थी और उसको पार कर इस्लाम ने मंगोल लोगों और बौद्ध धर्म को प्रथम प्रत्यक्ष चुनौती दी। बुखारा, बल्ख और समरकंद में बौद्ध मठ थे। समरकंद में कुतयबाह ने अनेक मूर्तियों पर प्रहार किया। इसी तरह बुखारा के अग्नि-मंदिर और उसके पूजा-स्थल नष्ट कर दिये गये। इस तरह बुखारा, समरकंद और ख्वारिज्म का प्रान्त जल्द ही उसी तरह अरब संस्कृति के केन्द्र बन गए जिस तरह खुरासान में मर्व और नयसाबुर (निशापुर) अरब संस्कृति के केन्द्र बन गए थे। अल-तबारी तथा अन्य इतिहासकारों ने कहा है कि कुतयबाह ने सन् ७१५ में चीनी तुर्किस्तान में काशघड़ पर विजय की और खास चीन तक पहुँच गया।

भारत की विजय

सन् ७११ में बसरा में हज्जाज के गवर्नर और उसके दामाद इब्न-अल-कासिम ने दक्षिणी फारस और बलूचिस्तान से सिन्ध पर हमला किया जिससे भारत में इस्लाम के एक दूसरे विशाल शक्ति-क्षेत्र का आरंभ हुआ। सन् ७१० में एक बड़ी सेना का, जिसमें ६००० सीरियाई थे, मुहम्मद इब्न-अल-कासिम ने मकरान पर कब्जा किया, फिर उस क्षेत्र में आगे बढ़ा जिसे इस समय बलूचिस्तान कहा जाता है और सन् ७११-१२ में सिन्धु, निचली घाटी और सिन्धु नदी के मुहाने की भूमि पर कब्जा किया। वहाँ जिन नगरों पर कब्जा किया गया उसमें समुद्र का बंदरगाह

अल-देवुल और अल-निरुल (पाकिस्तान-स्थित आधुनिक हैदरावाद) था। अल-देवुल में बुद्ध की मूर्त्ति थी जो "चालीस घन-फुट" थी। यह विजय उत्तर में दक्षिणी पंजाब-स्थित मुल्तान तक की गई जहाँ बुद्ध का पवित्र तीर्थस्थान है। आक्रमण-कारियों को वहाँ बहुत-से भक्त मिले जिन सबको कैद कर लिया गया। इससे दक्षिणी पाकिस्तान के सिन्ध पर इस्लाम का स्थायी कब्जा हो गया पर शेष भारत दसवीं शताब्दी के अंत तक, जब कि महमूद गजनी ने हमला किया, अप्रभावित रहा। इस तरह सेमेटिक इस्लाम और भारतीय बौद्ध धर्म के बीच उसी प्रकार स्थायी रूप से सम्पर्क स्थापित हो गया जिस प्रकार और उत्तर में इस्लाम का तुर्की संस्कृति के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ था। इस प्रकार दक्षिण में सिन्ध और उत्तर में काशघड़ और ताशकंद खिलाफत सुदूरपूर्वी सीमा बन गई और बनी रही।

दक्षिणी-पूर्वी यूरोप पर विजय

मूसा द्वारा अटलांटिक तक उत्तरी अफ्रिकी समुद्र तट पर विजय के बाद यूरोप के पास-पड़ोस के दक्षिणी-पश्चिमी भाग पर विजय का मार्ग खुल गया। सन् ७११ में स्वतंत्र किया गया एक बर्बर जनजातीय सदस्य तारीक ने, जो मूसा का सहायक (लेफ्टिनेन्ट) था, एक आक्रामक अभियान के सिलसिले में स्पेन में प्रवेश का महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। जिस पहाड़ पर तारीक अपनी फौज के साथ उतरा, उसे उसके नाम (जबल तारीक) पर (अभी तक जिब्राल्टर) कहा जाता है। तारीक की इस अप्रत्याशित सफलता से उसके ऊपर के सैन्य अधिकारियों को ईर्ष्या हुई। वह उसके पीछे तुरत मुख्य रूप से अरब फौजें लेकर आया और स्पेन में और भीतर तक घुस गया। मदीना-सीदोनिया और कारमोना में अपनी प्रारंभिक सफलता के बाद उसे सेविले और मेरिडा को घेरे हुए एक वर्ष तक रुकना पड़ा। उसके बाद तोलेदो के पूर्व वह अपने अधीनस्थ सेनापति तारीक के साथ मिल गया और दोनों ने मिल कर सारगोसा से नेवरे तक समूचे उत्तरी स्पेन पर कब्जा कर लिया। सन् ७१४ में मूसा बहुत ज्यादा लूट का माल लेकर अफ्रीका लौटा और एक राजकीय विजय-जुलूस में सीरिया की सड़क पर रवाना हुआ जहाँ वालिद अधीरता से उसका इन्तजार कर रहा था। पर ज्यों ही वह दमिश्क पहुँचा उसके तुरत बाद खलीफा वालिद की, जो मुश्किल से चालीस साल का था, फरवरी सन् ७१५ में मृत्यु हो गई।

मुसलमानों द्वारा स्पेन की विजय से प्रायद्वीप के लिए एक नये युग की शुरुआत हुई। इससे एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक क्रान्ति हुई। विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के, जिनमें पादरियों और सरदार लोगों का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान था, क्रूर अधिकार और शक्तियाँ खत्म हो गईं। वे भारी बोझ भी खत्म हो गए जिनसे उद्योग कुचले हुए से थे और समाज का मध्यम वर्ग बर्बाद और तबाह हो रहा था।

कष्टकर और अनियमित आयातों के स्थान पर करों की एक न्याययुक्त, एवं समानता पर आधारित और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रणाली आरंभ की गई। करों में सामान्य जजिया या जाँत्र कर लगाया गया जो गैर-मुसलमानों को देना पड़ता था। साथ ही सभी खेती-योग्य भूमि पर कर लगाया जाता था जो मुसलमानों और गैर-मुसलमानों—सबके द्वारा देय था। सताये गये और पद-दलित यहूदियों को बिना विघ्न-बाधा के अपने धर्म-पालन का अधिकार मिला। ईसाइयों को भी अपनें धर्म और कानूनों के बेरोकटोक पालन की छूट मिली। उन लोगों के धर्म का प्रशासन उनके अपने निर्णायकों को सौंप दिया गया। किसी को भी अपने धार्मिक विश्वास के लिए तंग न किया जाता था। हर पुरुष, महिला और बच्चा जिस तरह या जिसकी भी पूजा करना चाहता था उसे वैसा करने दिया जाता था। ईसाइयों के अपनी जाति के गवर्नर रखे गये जो उनसे कर वसूल करते थे और उनके बीच के झगड़े तय करते थे। सरकारी सेवा की हर शाखा और हर कोटि और वेतन के पदों पर मुसलमान यहूदी और ईसाई एक समान नियुक्त किये जा सकते थे।

प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए मुसलमानों ने हर प्रान्तों को एक गवर्नर के अधीन कर दिया जो वाईसराय के प्रति सीधे उत्तरदायी होता था। प्रथम प्रान्तों में ऐंडा-लूसिया स्थान था जो समुद्र और गुआडलक्विरर के बीच अवस्थित था। यह क्षेत्र इस नदी (गुआडलक्विरर) से गुआडियाना तक विस्तृत था। इसमें कारडोवा, सेविले, मालगा, एसिजा, जेने और बोसुना नगर थे। दूसरे प्रान्तों में पूरा मध्य स्पेन था जो पूर्व में भूमध्यसागर से पश्चिम में लुसिटानिया (आधुनिक पुर्तगाल) की सीमाओं तक और उत्तर में डोउरो तक विस्तृत था। तीसरे प्रान्त में गैलिसिया और लुसिटानिया सम्मिलित थे जिसके अन्तर्गत मेरिडा, इवोरा, वेजा, लिसबन, कोयमब्रा, लूगो, आस्टोर्गा, जमोरा, सलमानका आदि नगर थे। चौथा प्रान्त इब्रो नदी की दोनों ओर डोउरो की सीमा से पिरेमीज तक था तथा उसके पश्चिम में गेलीसिया था। इसमें सरागोसा, टोरटोसा, टारागोना, वारसीलोना, गिरवेनो, उरगेल; टुडेला, वालाडोलिड, हुएस्का, जोड, बोबास्ट्रो आदि नगर थे। इस प्रकार स्पेन पर विजय अरबों के विजय-अभियानों में अंतिम और सबसे ज्यादा सनसनीखेज थी। इससे मुस्लिम जगत में विस्तार हुआ और उस समय उनके अधीन जितना यूरोपीय क्षेत्र था उतना पहले और बाद में कभी न था।

साम्राज्य के अन्दर वालिद अपने पिता के सुकार्यों का फल भोग रहा था और सभी स्थानों में सम्पूर्ण सार्वभौम शासक के रूप में उसकी ख्याति थी। वह प्रशासन-यंत्र से ईसाइयों को अधिक-से-अधिक हटा रहा था। उसने सरजुन-इब्न-मंसूर के परिवार की सेवायें भी समाप्त कर दीं। मुआविया के समय से ही इस

परिवार के हाथों में वित्तीय मामलों का नियंत्रण था। अनेक पूर्वी राजाओं की भाँति उसे भी सार्वजनिक निर्माण का शौक था। ऐसा वह सिर्फ प्रदर्शन की नीयत के कारण न करता था वरन् अपने राज्य की आय बढ़ाने के लिए करता था। सीरियावासी उसे आदर्श शासक मानते थे।

वालिद की सामाजिक और आर्थिक नीति

वालिद की सामाजिक और आर्थिक नीतियाँ और अधिक दिलचस्प और नई थीं। उसकी अवधि इस बात के लिए उल्लेखनीय है कि हर तरह के सार्वजनिक निर्माण और प्रवुद्ध जनकल्याण नीति पर सरकारी खर्च में वृद्धि हुई। पर यह बिल्कुल नई नीति न थी क्योंकि वालिद के पिता खलीफा अब्दुल मालिक ने सार्वजनिक निर्माण में कुछ दिलचस्पी दिखलाई थी। उसी ने "प्रसिद्ध चट्टान की गुम्बद" का निर्माण कराया था। पर सार्वजनिक निर्माण में उसकी दिलचस्पी अपने पुत्र की तुलना में कहीं कम थी। ईराक में अब्दुल मालिक के गवर्नर हज्जाज ने ईराकी सिंचाई व्यवस्था को, विशेषतः दक्षिण में, फिर से शुरू करने और उसे विस्तृत करने के लिए पर्याप्त सरकारी धन व्यय किया था और उसने यह व्यय जारी रखा।

इन सार्वजनिक निर्माण-कार्यों के लिए हज्जाज के प्रयोजन पूरी तरह स्पष्ट थे। उसे एक बहुत अच्छी कृषि-व्यवस्था फिर से कायम करनी थी जो लंबे युद्ध के दरम्यान क्षतिग्रस्त हो गई थी। साथ ही उसे इन योजनाओं के जरिए कूफा और बसरा नगरों के उन सारे लोगों को नियोजन देना था जो सेना की नौकरियों से मुक्त हो गए थे। पर सार्वजनिक निर्माण में वालिद की योजनाएँ, विशेषतः सीरिया और हेजाज में, अधिक व्यापक और विस्तृत थी। इसके पीछे कारण को समझ पाना ज्यादा मुश्किल है।

यदि हम उस समय की सामान्य आर्थिक स्थिति पर विचार करें तो वालिद की नीतियों को समझ पाना आसान होगा। उसने अपने पिता से जो साम्राज्य विरासत में पाया उसके अन्तर्गत युद्धों में विजय से प्राप्त प्रचुर धन भी शामिल था जो विकृत मुद्राओं के रूप में था। उसके साथ ही साम्राज्य के नगर बहुत तेज रफ्तार से बढ़ रहे थे और व्यापारों और उद्योगों से नगर की नई जनता को नियोजन नहीं मिल पा रहा था। शासन इस बात में अत्यधिक उदार था कि उसके द्वारा शासक वंश, अरब नेताओं, कवियों और यहाँ तक कि अपने पुश्तैनी दुश्मनों—पैगम्बर मुहम्मद के वंशजों—को भी बड़े परिमाण में भूमि और धन से सहायता दी जाने लगी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि उस समय सामाजिक अशान्ति के सभी तत्त्व मौजूद थे। इसलिए वालिद ने नगरों की स्थिति के सुधार काम में अपने को लगाया।

दरअसल यह सब धन नगरों में खर्च किया जाने लगा। शानदार आकार-प्रकार की अनेक मस्जिदें, जिनमें दमिश्क की उमैय्यद मस्जिद सबसे ज्यादा उल्लेखनीय थी, अस्पतालों और सड़कों का निर्माण कराया जाने लगा। वास्तव में इन भवनों की कुछ उपयोगिता भी थी, पर अनेक मामलों में वे इतने बड़े आकार-प्रकार में और ऐसे शानदार ढंग से बनाये गए जितना नगर की बेरोजगार जनता को रोजगार के लिए पर्याप्त न था। ये योजनाएँ अधिकांशतः सीरिया की गैर-अरब जनता के फायदे के लिए बनाई गई जिनकी दक्षता का ऐसे कामों में अच्छी तरह उपयोग किया गया। उनमें से जो अदक्ष थे उनसे सस्ती मजदूरी पर काम कराया गया। यद्यपि ये योजनाएँ दूरव्यापी आर्थिक महत्व की नहीं मानी जा सकतीं पर उनको सही दिशा में कदम तो माना ही जा सकता है। पहली बार, अरब शासकों ने, कम-से-कम, सीरिया की अपनी प्रजा की समस्याओं के समाधान के संबंध में सोचा। इसमें संदेह नहीं कि इस निर्माण-कार्य से निचले तबके के लोगों का ही संबंध था पर सच्चाई यह थी कि उस काल में मध्यम वर्ग के बारे में सोचा तक न जा सकता था। शासकों के विचार से उस समय केवल दो ही वर्ग थे : शासक अरब वर्ग और अधीनस्थ स्थानीय जनता।

यद्यपि, स्वभावतः ऊपर के वर्ग वालों के कल्याण के लिए अच्छी तरह सावधानी बरती जाती थी पर प्रजाजन में गरीब लोग भी थे जैसे कि कोढ़ी, असाध्य रोगी और अंधे। इन लोगों के फायदे के लिए वालिद प्रथम ने जो कुछ किया उसे भलीभाँति शासक वर्ग के लिए विशेष राजकीय सहायता कहा जा सकता है। यह बात न भूली जानी चाहिए कि उस समय का समाज पितृसत्तात्मक समाज था जिसमें भाग्यहीनों की जिम्मेदारी अपने अपेक्षाकृत भाग्यवान संबंधियों पर थी। यह सच है कि कुरान में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि गरीब मुसलमानों को भीख दी जाय पर भीख लेने की व्यवस्था तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के समय बदल दी गई थी। पहले की व्यवस्था यह थी कि किसी भी धन पर देय भीख का हिसाब लगाया जाता था, उसे इकट्ठा किया जाता था और फिर उसे सरकारी कोषागार में जमा कर दिया जाता था। इस कार्य के लिए जो अफसर नियुक्त था उसे अमील अल-सदाक कहते थे। मुस्लिम भूमि-कर कर-संग्रहर्त्ता अफसर को अदा किया जाता था। राज्य द्वारा यह भीख भूमि उत्पादन पर धर्मशुल्क के रूप में इकट्ठा की जाती थी। इस प्रकार गरीबों का कल्याण उसकी विशेष जिम्मेदारियों में से एक जिम्मेदारी हो जाती थी। वालिद प्रथम ने व्यवस्था की कि राज्य की यह जिम्मेदारी केवल अरब मुसलमानों तक सीमित रहे और केवल उन्हीं के लिए निवृत्ति-वेतन निर्धारित किया। उसने इससे भी आगे बढ़कर अन्धे अरबों को अनेक दास दिए जो उन्हें हाथ पकड़ कर चलने-फिरने और अन्य कार्यों में सहायता दें। जिन नये क्षेत्रों में विजय हुई थी उनमें

लूट के माल के पांचवें हिस्से के रूप में अनेक युद्धवन्दी मिले थे। फलतः दासों का मूल्य बहुत कम हो गया था और उन पर कोषागार का खर्च अपेक्षाकृत कम पड़ता था। पर उससे शासक अरब वर्ग का सन्तोष अधिक सुनिश्चित होता था। इन बातों के प्रकाश में वालिद प्रथम का कल्याण कार्यक्रम शासक वर्ग के लिए सहायता की एक सुविशाल प्रणाली के सिवा और कुछ नहीं माना जा सकता।

हज्जाज की मृत्यु वालिद की मृत्यु के ठीक एक वर्ष पूर्व सन् ७१४ में हो गई। यह उसके लिए एक सौभाग्यपूर्ण घटना मानी जाएगी क्योंकि वह इस बात को ठीक से जानता था कि वालिद के उत्तराधिकारी सुलेमान के शासन में उसे अपमान का शिकार होना पड़ेगा। यह कोई छिपी बात न थी और पूरी तरह स्पष्ट थी कि वालीद प्रथम का उत्तराधिकारी सुलेमान होगा। वालिद प्रथम की मृत्यु के पूर्व ही इसे उसके परिवार के सभी सदस्यों ने स्वीकार कर लिया था। यह आश्चर्यजनक था कि जिस नीति द्वारा कम-से-कम पन्द्रह वर्षों तक इतनी सुगमता से कार्य चला था उस पर अब प्रश्नचिह्न लगाया जाएगा। इस नीति का साम्राज्य की सभी जनता के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। यदि इस नीति के कट्टर समर्थक थे तो तीव्र विरोधी भी। आधुनिक समय में सार्वजनिक प्रश्नों पर ऐसे मत-विभाजन ने एक दूसरे की विरोधी पार्टियों को जन्म दिया होता। आज से तेरह शताब्दी पूर्व ऐसा कोई सूक्ष्म सामाजिक यंत्र न था पर फिर भी ऐसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न होते थे जिन पर जनता भिन्न-भिन्न तरह के विचार रखती थी। इस अवधि के इतिहास में ऐसे समूहों के नाम बहुत वड़ी संख्या में मिलते हैं जो किसी एक प्रश्न पर एकतावद्ध होते थे।

अब्द अल-मालिक हज्जाज की नीतियों को कायम रखना एक वड़ा विवादास्पद प्रश्न था। ऐसा न केवल लोगों के जीवन में था वलिक उमैय्यद राजवंश की शेष अवधि में भी। उनकी नीतियों का एक मुख्य पक्ष साम्राज्य-विस्तार था। इसका पूरे साम्राज्य की जनता के जीवन से संवंध था। जो इन नीतियों का समर्थन करते थे उन्हें केज-मुडार कहा जाता था और जो विरोधी थे, वे यमन कहे जाते थे। दुर्भाग्यवश इन पदों का अर्थ सामान्य जनजातीय गुट समझा जाता रहा।

अब्द-अल मालिक—हज्जाज की नीतियों की सबसे वड़ी कमजोरी यह थी कि उनमें साम्राज्य की सभी बुराइयों के विश्वजनीन समाधान के रूप में विजय-युद्धों पर अधिक जोर दिया जाता था। इस प्रकार इस अवधि के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटना की या तो उपेक्षा की जाती थी या विरोध किया जाता था। उस समय इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि अपने नये परिवेश में अरबों के बीच अन्य जनजातियों को विलीन करने की क्रिया गहरी जड़ें पकड़ रही थीं। यह एक वहुत महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या थी, क्योंकि जो जनजातियाँ अरवों के बीच

विलीन होकर ज्यादा अच्छी तरह बस जाती थीं उन्हें निरन्तर चल रहे युद्ध से असुविधा होती थी और वे उस नीति का विरोध करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अरबों के बीच अन्य जनजातियों को विलीन करने की प्रक्रिया अंततः मारवानी राजवंश के विरुद्ध चली गई और जीवंत शक्ति होने के नाते उस राजवंश का विनाश कर दिया। युद्धों के विरोधी यमनों ने कुछ-कुछ इस घटना के महत्त्व को समझा और वे लोग युद्ध समर्थक 'केज' लोगों की प्रणाली के विरुद्ध अपने विकल्प के रूप में इस पर दृढ़ रहे। यह अब्द-अल-मालिक और वालिद प्रथम की नीतियों की सबसे घोर आलोचना है क्योंकि उनके समय में ही अरबों के बीच अन्य जनजातियों के स्वार्थों, संस्कृति, धर्म और वंश को विलीन करने की प्रक्रिया जारी थी।

वालिद प्रथम का आकलन

वालिद की सन् ७१५ में दैर-मरान में मृत्यु हो गई। उसने नौ वर्ष, सात महीनों तक शानदार ढंग से शासन किया। इतिहासकार मसूदी और इब्न-अल अतीर उसे एक निरंकुश और अत्याचारी शासक मानते हैं। पर अब जब बहुत ज्यादा समय बीत चुका है तो केवल उसके अच्छे कामों पर ही ध्यान देना उचित होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह अपने पिता अब्द-अल-मालिक और दादा मारवान से अधिक मानवीय गुण-सम्पन्न था। वालिद प्रथम पूरे मुस्लिम जगत में सबसे महान खलीफाओं में था। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि वह अपने पिता अब्द-अल-मालिक का सबसे योग्य पुत्र था। उसका शासन देश और परदेश दोनों ही जगह शानदार माना जाता था। वालीद ने शिया लोगों और खारिजियों का विद्रोह कुचला और उसके शासन में जनजातियों के बीच आपसी द्वेष-भाव नियंत्रण रखा गया। इस अवधि में विशाल क्षेत्रों पर विजय की गई। बुखारा, समरकंद, सिन्ध, अफ्रीका और स्पेन मुसलमानों के कब्जे में ले आए गए। इतिहासकार म्यूर कहता है—"मुसलमानों का कोई ऐसा राज्य नहीं हुआ, यहाँ तक कि द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर का भी नहीं, जिसमें इस्लाम का इस प्रकार प्रसार और सुदृढ़ीकरण हुआ।" उसने पाठशालाएँ और अस्पताल खोले और राज्य द्वारा कमजोरों और निर्धनों को अन्धाधुन्ध दान दिये जाने के स्थान पर नियत राशियाँ निर्धारित कर दीं। उसने दमिश्क की कैथेड्रल मस्जिद का निर्माण कराया और मदीना और जेरूसलेम की मस्जिदों को विस्तृत और सुन्दर बनवाया। उसके आदेश पर हर शहर में, जहाँ कोई उपासना का स्थान न था, मस्जिदें बनवाई गईं। उसने सीमाओं की रक्षा के लिए किले बनवाये और समूचे साम्राज्य में सड़कें बनवाई और कुएँ खुदवाये। उसके राज्य में शांति और समृद्धि थी। पूरे तथ्यों पर विचार करने पर कहा जा सकता है कि वालिद प्रथम का शासन अपने पूर्ववर्ती और उत्तराधिकारी शासकों से कहीं अधिक शानदार और उल्लेखनीय था।

सुलेमान (सन् ७१५-७१७)

वालिद का उत्तराधिकारी उसका भाई सुलेमान हुआ। उनके पिता द्वारा पूर्व में ही की गई व्यवस्था के अनुसार यह हुआ। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में हज्जाज ने इसका जोरदार विरोध किया था और खलीफा वालिद को परामर्श दिया था कि वह अपने भाई सुलेमान के स्थान पर अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाये। इसके कारण सुलेमान के मन में हज्जाज के प्रति तीव्र घृणा हो गई थी। अब सत्ता में आने के बाद ही वह अपनी इस घृणा को कार्य रूप दे सकता था। उसने मदीना के गवर्नर उस्माम-अल-मरी को उसके पद से हटा दिया। खुरासान के गवर्नर कुतयबाह-इब्न-मुस्लिम ने, जिसकी पूर्वी क्षेत्रों की विजय ने उसे बड़ी प्रतिष्ठा दी थी, इस घटना को रोकने की कोशिश की। उसने अपने अधीनस्थ फौजों का आह्वान किया कि वे खलीफा के विरुद्ध विद्रोह छेड़ें। पर बनू तमीम जनजाति ने, जिसका कुतयबाह के साथ मतभेद हो गया था, इस योजना पर अपना विरोध प्रकट किया और कुयतबाह की हत्या कर डाली। खलीफा सुलेमान ने ईराक का गवर्नर हज्जाज के सबसे बड़े शत्रु यजीद को बनाया जो प्रसिद्ध सेनापति अल-मुहल्लाब इब्न-अबी-सफरा का पुत्र था। अपने पिता की मृत्यु के बाद यजीद खुरासान में गवर्नर के रूप में उसका उत्तराधिकारी हुआ था पर शीघ्र ही ईराक-स्थित अपने ऊपर के अधिकारी यानी गवर्नर हज्जाज से उसका मतभेद हो गया। हज्जाज से उसकी बहन का विवाह हुआ था पर उसने इस मामले में बहन की मध्यस्थता को बहुत रुखाई के साथ ठुकरा दिया। उसने इस बात की व्यवस्था की कि खलीफा यजीद को ईराक के गवर्नर के पद से हटा दें। उसने उसे एक वर्ष का कारावास भी दिला दिया। तब यजीद रामला भागने में सफल हो गया और खलीफा के उत्तराधिकारी से मिल गया जिसने उसे ईराक वापस भेज दिया। वहाँ उसने अपने पद-पूर्वाधिकारी के अनुयायियों से अपना बदला चुकाया। खलीफा ने केवल वित्त सम्बन्धी मामले एक तकनीकी पदाधिकारी के प्रभार में कर दिये। कहा जाता है कि उसने ऐसा यजीद के अनुरोध पर किया। यजीद ने ऐसा इसलिए कराया कि वह करों के बोझ के नीचे कराह रही जनता की घृणा से बचना चाहता था। पर खलीफा इस प्रकार पुरानी और भलीभाँति जाँची गई प्रणाली के अनुसार ही काम कर रहा होगा। यजीद का बहुत जल्द ही वित्त के निदेशक से झगड़ा हो गया। ऐसा इसलिए हुआ कि वित्त-निदेशक ने राज्य-कोषागार से धन निकालने के सम्बन्ध में यजीद की माँग के अनुसार काम नहीं किया। तदनुसार यजीद अपने लिए और लाभप्रद पद की तलाश में लग गया। उसने खलीफा से अपना स्थानान्तरण खुरासान करा लिया पर उसने इराक में अपना सर्वोच्च अधिकार कायम रखा। पूर्वी क्षेत्रों में उसकी सैनिक सफलताएँ महत्वहीन थीं। जनसाधारण से धन ऐंठने के अपने कार्यों से यजीद

जनता के बीच तीव्र घृणा का पात्र बन गया। स्थिति यहाँ तक पहुंच गई कि खलीफा अपनी मृत्यु के पूर्व उससे कार्यों के लिए जवाब तलब करने के बारे में भी सोच रहा था। यजीद का भाग्य खलीफा के दो उत्तराधिकारियों के अधीन पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ।

यदि सुलेमान के प्रथम कार्य से प्रकट होता है कि उसने हज्जाज की नीतियों का पूर्ण परित्याग कर दिया था तो उसकी बाद की परराष्ट्र नीति मंद गति वाली और सतर्कतापूर्ण थी। सुलेमान अपना दरबार फिलस्तीन स्थित रामला में करता था। वहाँ वह पहले राजकुमार के रूप में रह चुका था। इस कारण उसे वहाँ के निवासियों का प्यार मिला हुआ था। उत्तरी सीरिया में उसने दबीक में बैजेन्टाइनों से युद्ध के लिए एक शिविर खोला जिसका निरीक्षण वह खुद अक्सर करता था। पर उसे कोई निर्णायक सफलता न मिल सकी। बैजेन्टाइनों से युद्ध सम्बन्धी मोर्चे पर सुलेमान की नीति यद्यपि स्पष्ट और सरल थी पर उससे उसकी सामान्य राजनीतिक नीति के सम्बन्ध में निर्णय कर सकना सम्भव नहीं है। बैजेन्टाइन मोर्चे पर अन्तहीन और थकाने वाले आक्रमणों का अंत करने के लिए सुलेमान ने बैजेन्टाइन साम्राज्य का पूरी तरह दमन करने का निश्चय किया। उसने साम्राज्य की राजधानी कान्स्टैन्टीनोपुल के चारों ओर घेरा डाल दिया। इस घेरे के सम्बन्ध में बहुत परिश्रम के साथ योजना तैयार की गई थी और यह बहुत ही मजबूत था। इस घेरे में सीरियाई सेना और मिस्र की नौसेना बड़े पैमाने पर सम्मिलित थी और उसका सेनापतित्व सुलेमान का भयंकर भाई मसलमा कर रहा था। यह योजना उतनी महत्वाकांक्षापूर्ण न थी जितनी इसके बारे में कल्पना की जा सकती है। उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया ने खुद पहले सन् ६६९ और ६७४ में कान्स्टैंटीनोपुल पर घेरा डाला था। उसे बैजेन्टाइन साम्राज्य के दमन में करीब-करीब सफलता मिल गई थी। सुलेमान द्वारा नगर का घेरा सन् ७१६ में शुरू किया गया। बहुत जल्द बैजेन्टाइनों ने अपने को बहुत खतरनाक स्थिति में पाया। यह उन लोगों का सौभाग्य था कि सन् ७१७ में एक बहुत दृढ़ लौहपुरुष लियो इसोरियम बैजेन्टाइन साम्राज्य में सत्ता में आया जो मूलतः सीरियाई था। वह बहुत चालाक कूटनीतिज्ञ था और उसने मसलमा की घेराबन्दी की योजना विफल कर दी। साथ ही उसी साल सुलेमान की अचानक मृत्यु हो गई। इन कारणों से अरबों को घेराबंदी उठानी पड़ी और वापस लौट जाना पड़ा। फिर भी यह सच है कि सन् ७१५ की शरत ऋतु और जाड़ों में सुलेमान की फौजों ने अमोरियम को एक प्रकार से व्यर्थ ही घेरे रखा और पश्चिम की ओर पैरगामस और सरदीस तक घुस गई और एक वर्ष तक कान्स्टैन्टीनोपुल को घेरे रखा पर अंत में बिना सफलता के फौजों को

वापस लौट आना पड़ा।[१७] इसके केवल एक साल बाद सितम्बर ७१७ में दबीक में सुलेमान की मृत्यु हो गई।

यह स्पष्ट है कि सुलेमान अपने इरादे पूरे करने के मामले में अपने परिवार पर भी विश्वास न करता था। जिस वसीयतनामे में उसने उमर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया उसे दबीक में बहुत गुप्त रूप से तैयार किया गया। वह बैजेन्टाइन पर आक्रमण करने की सीमा पर उस स्थान पर गया जहाँ तक जाने की हिम्मत की जा सकती थी। सुलेमान का चरित्र विसंगतियों से भरा हुआ था। वह अपने पक्ष के लोगों के प्रति उदार था और शत्रुओं के प्रति अपने पिता की भाँति ही क्रूर। वह मौज-मजे और आराम की जिन्दगी पसंद करता था पर संकट-काल में वह बहुत साहस और शक्ति के काम भी कर सकता था। उसने पूरे क्षेत्र में अत्याचारी द्वारा बंदी बनाये गये लोगों को मुक्त कर दिया जिस कारण उसे जनता का बहुत प्यार मिला और उसे "कल्याण के केन्द्र" (मिफ़्ता-उल खैर) की उपाधि मिली। उसने न केवल बंदियों को मुक्त किया बल्कि उन्हें काफी रकमें दान भी दिये।

फिर भी सुलेमान ने अपेक्षाकृत निष्क्रिय जीवन बिताया। वह युद्ध-क्षेत्र के बजाय रनिवास (हरम) में रहना पसंद करता था। उसने राज-काज अपने सलाहकारों के हाथों में छोड़ दिया। उन लोगों में उसका सबसे प्रिय यजीद इब्न मुहालब था। यजीद कुतयबाह इब्न मुस्लिम के स्थान पर खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया गया। वहाँ उसने प्रतिज्ञा की कि वह क्षेत्रों पर विजय के मामले में अपने पूर्वाधिकारी कुतयबाह को मात दे देगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह क्रूरता में कुतयबाह से कहीं बढ़ा-चढ़ा था, पर वह साम्राज्य के क्षेत्र का विस्तार रंचमात्र भी न कर सका। फिर भी सुलेमान का राज्य के प्रति एकमात्र योगदान यह था कि उसने अपने योग्य चचेरे भाई उमर को राजसत्ता पर मनोनीत किया।

उमर द्वितीय (सन् ७१७-७२०)

सुलेमान के पिता अब्द-अल-मालिक के लिखित आदेशों के अनुसार उसके बाद उसके भाई को राजसिंहासन मिलना चाहिए था। पर सुलेमान ने उसके बदले अपने पुत्र अय्यूब को जनता की निष्ठा की शपथ दिला दी। चूंकि अय्यूब की मृत्यु

१७. रज्जियाओं (आक्रमणों) का परिणाम मात्र यह हुआ कि सीरिया में यूनानी युद्धबंदियों से दासों का बाजार पट गया। एक बार जब सुलेमान मदीना में था और हज करके वापस लौट रहा था तो उसने अपने प्रियजनों को चार सौ युद्धबंदी दासों के रूप में दिये। उन लोगों ने उन दासों की सामूहिक हत्या करने के अलावा और कोई उपयोग न किया। इस हत्याकांड में भाग लेनेवाले कवि जरीर के एक दंभपूर्ण गीत से हमें इस बात का पता लगता है।

सुलेमान से पहले ही हो गई, इसलिए उसे धर्मशास्त्री रजा इब्न हसन ने इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह अपने धार्मिक चचेरे भाई उमर इब्न-अब्द-अल अजीज को अगले खलीफा के पद पर आसीन करा दे। उमर वास्तव में बिना किसी रोक-टोक के खलीफा बना दिया गया।

उमर द्वितीय मिस्र के बहुत दिनों तक गवर्नर पद पर रहे। अब्द-अल-अजीज इब्न मारवान का पुत्र था। अपने मातृ-पक्ष से वह उमर प्रथम का वंशज था जिस बात पर उसे बड़ा अभिमान था। उसका जन्म मदीना में हुआ था। उसने वहाँ अपनी यौवनावस्था पैगम्बर मुहम्मद के साथियों के उत्तराधिकारियों के बीच बिताई। वह उन लोगों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था जबकि सन् ७०६ में सुलेमान के पिता वालिद ने उसे हेज्जाज का गवर्नर नियुक्त किया। हदीस के दस धार्मिक पारखियों ने यह सुनिश्चित किया कि उमर का आचरण पैगम्बर के सुन्नाह के अनुसार हो। परंतु चूंकि उसने ईराक से आये शरणार्थियों को मदीना में शरण दी थी, हज्जाज ने खलीफा वालिद से कह कर उसे वापस बुलवा लिया। फिर भी वालिद ने उस पर से अपना पक्षपात वापस न लिया।

उमर द्वितीय की नीति और उसकी सरकार का स्वरूप

जबकि सुलेमान की नीतियाँ सावधानी से भरी और अस्पष्ट थीं; उमर द्वितीय की नीतियाँ स्पष्ट और उग्र थीं। सुलेमान ने अन्य राज्यों पर आक्रमण जारी रखे थे, पर उमर ने उन सबको रोक दिया। ज्योंही वह दृढ़तापूर्वक सत्तारूढ़ हुआ, उसने कान्स्टैंटीनोपुल पर से घेरेबंदी वापस कर ली। उसने बैजेन्टाइन क्षेत्रों में स्थापित सभी अग्रवर्त्ती चौकियों से अरब फौजों को वापस बुला लिया। उसी तरह उसने पूर्वी मोर्चों पर किये गए सभी आक्रमणों को रोक दिया और ट्रान्जोक्सियाना से सभी फौजों को वापस बुला लिया। जिस बहादुरी के साथ उसने ये कदम उठाये, उसकी तुलना में सुलेमान के समय यमनियों की परराष्ट्र नीति खलीफा अब्द-अल मालिक के अधीन शक्तिशाली गवर्नर हज्जाज की परराष्ट्र नीति जैसी थी। ज्योंही वह खलीफा हुआ उसने एशिया माइनर में मुस्लिम सेनाओं का बढ़ाव रोक दिया। वह इस प्रकार वास्तव में देश के अन्दरूनी भागों की ओर ध्यान देना चाहता था जहाँ वह राजनीतिक जीवन के उन आदर्शों को चरितार्थ करना चाहता था जिनकी शिक्षा मदीना में उसे अपने आरंभिक युवावस्था से मिली थी।

सन् ७१९ में उमर को स्पेन में फैली अशांति के बारे में बतलाया गया। वहाँ का प्रशासक अल-हर्र उन उपद्रवों को शांत करने में असमर्थ सिद्ध हुआ था।

उमर ने उसे सत्ता से हटा दिया। उसके स्थान पर यमनी प्रधान अस-साम बिन मलिक को नियुक्त किया गया। अस-साम भी उसी तरह एक प्रशासक और योद्धा के रूप में प्रसिद्ध था। उस पर यह काम सौंपा गया कि वह वित्त संबंधी मामलों को फिर से व्यवस्थित करे और सरकार को पूरी तरह पुनर्गठित करे। खलीफा उमर द्वितीय के आदेशों के अधीन उसने देश में रहने वाले विभिन्न राष्ट्रीयताओं, वंशों, और धार्मिक विश्वास मानने वाले लोगों की जनगणना कराई। उसी प्रकार उसने पूरे प्रायद्वीप का सामान्य सर्वेक्षण कराया। इसके अधीन उसने उसके "नगरों, पहाड़ों, नदियों और समुद्रों", उसके मिट्टी के स्वरूप, उपजों के प्रकार आदि के बारे में छानबीन कराई और भूमि के साधन-स्रोतों के बारे में सूक्ष्मता और सावधानी के साथ अभिलेख तैयार कराये गये। सरगोस में एक गिरिजाघरनुमा मस्जिद बनवाई गई और अनेक पुलों का निर्माण और मरम्मत कराई गई।

स्पेन में शांति स्थापित करने के बाद अस-साम ने ईसाई विद्रोहियों का दमन आरंभ किया और लैंगुरडौक और प्रोवेन्स प्रान्तों को बसाने के काम में हाथ लगाया जहाँ गोथिक (पश्चिमी यूरोपीय) स्थापत्य कला ने अपनी उच्चता प्राप्त की। विद्रोही पराजित कर दिये गये और वे अस्तूरियाज नगर के पहाड़ी दरारों में जा छिपे। पर सुदूर पश्चिम में उमर द्वितीय के शांति-प्रेम के बावजूद उसके गवर्नर आक्रमण की नीति अपनाये रहे और वह उनको नियंत्रित न कर सका। उन लोगों ने पायरेनीस क्षेत्र पार किया और दक्षिण फ्रांस पर हमला बोल दिया। उसने उमैय्यद राजवंश के पुराने विरोधियों-चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों को भी अपने पक्ष में लाने की कोशिश की। उसने उन्हें फिदक का मरूद्यान दे दिया। इस मरूद्यान पर विजय करने के बाद पैगम्बर मुहम्मद ने इसे अपने लिए सुरक्षित रखा था और यह एक राज्य-क्षेत्र हो गया था। उमर द्वितीय ने धर्मोपदेश के धंधे से अली के समर्थकों का बहिष्कृत किया जाना समाप्त किया जो उसके पूर्ववर्ती खलीफाओं के समय एक परम्परा-सी बन गई थी। उसने जहाँ और जिस क्षेत्र तक संभव हो सकता था, ईसाइयों के साथ भी समझौता किया। दमिश्क के सेन्ट थामस के गिरजाघर के बदले, जिसे खलीफा वालिद ने अपने अधिकार में कर लिया था, उमर द्वितीय ने उन्हें घुराह का गिरजाघर दे दिया। इस गिरिजाघर का उपयोग इसके क्षेत्र पर विजय के बाद मस्जिद के रूप में किया जाने लगा था जो ईसाइयों द्वारा अरबों के समक्ष आत्मसमर्पण की शर्तों के विरुद्ध था। उमर द्वितीय ने साइप्रस में आइलाह (अकबाह की खाड़ी के किनारे) में और दक्षिणी अरब के नजरान में ईसाइयों पर करों का बोझ भी कम कर दिया। उसने नव-इस्लाम धर्म परिवर्तित लोगों (मवालियों) की निचली कानूनी स्थिति को अरबों की स्थिति के बराबर बना दिया। स्थिति बराबर न रहने के कारण ईराक में अनेक विद्रोह हुए थे। इसके लिए उसने खुरासान

में मवाली (नव-इस्लाम धर्म-परिवर्तित) सैनिकों को उन्हें वेतन देने के अलावा करों से मुक्त कर दिया। इस प्रकार उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसने यह आवश्यकता महसूस की कि उसके राजवंश द्वारा मुस्लिम रीति से शासन किया जाना चाहिए। यह कोई राजनीतिक धर्मान्धता न थी, पर एक यथार्थवादी नीति थी। उसमें यह समझ सकने की अन्तर्दृष्टि थी कि मुआविया की संयम की नीति अब्द-अल-मालिक तक आते-आते एक संकीर्ण अरब निरंकुशतावाद की नीति में परिणत हो गई थी। उसने यह भी देखा कि जो नीति उसने विरासत में पाई है वह इतनी संकीर्ण है कि बहुत दिनों तक न चल सकेगी। उमर द्वितीय इस संबंध में सुनिश्चित था कि किसी पुलिस बल से नहीं बल्कि विचारधारा से साम्राज्य एकता के सूत्र में बंधा रह सकेगा। यह इस्लाम में ऐसी विचारधारा थी कि जो साम्राज्य भर में उद्घोषित थी। उमर द्वितीय को सिर्फ यही करना पड़ा कि उसने बिना किसी भेदभाव के इस्लाम के सिद्धान्तों को सब पर लागू किया और इस प्रकार ऐसा समाज स्थापित किया जिसमें समान जिम्मेदारियों के बदले सबके समान अधिकार थे। इसका परिणाम हुआ कि सभी मुसलमान, अरब और गैर-अरब एक मुस्लिम सम्प्रदाय में संयुक्त और सम्मिलित हो गए। यह ऐसी घटना थी जिसे आगे बढ़ाने के लिए उमर द्वितीय ने प्रोत्साहन दिया।

इस नई नीति द्वारा केन्द्रीय सरकार ने अपना कोई प्राधिकार प्रत्यर्पित नहीं किया। वास्तव में उमर द्वितीय अपने गवर्नरों के हर काम पर अभूतपूर्व ढंग से नजर रखता था। अपने ठीक पहले के तीन खलीफाओं के विपरीत उसने हज्जाज और यजीद जैसे शक्तिशाली वाइसरायों (गवर्नरों) को अपनी सेवा में नहीं रखा। अपने विश्वस्त सहायकों के विवेकाधिकार पर निर्भर करने के बदले उमर द्वितीय ने अपने गवर्नरों से यही मांग की कि वे लोग उसके विस्तृत अनुदेशों का पालन करें। सुलेमान के अपेक्षाकृत कम केन्द्रीकृत शासन में हर गवर्नर के विचारों का महत्व था, अब उनका वह महत्व न रह गया। उमर द्वितीय अपेक्षा रखता था कि गवर्नर योग्य हो और उसके प्रति गुप्त रूप से आज्ञाकारिता रखे। यदि हज्जाज के समर्थकों में ऐसी योग्यताएँ होतीं तो वह उन्हें भी गवर्नर नियुक्त करने को तैयार था। उसके प्रथम कार्यों में एक यह था कि उसने पूर्व में सुलेमान के विश्वस्त यजीद इब्न अल-मुहलब को बर्खास्त कर दिया। फिर उसने इस विशाल क्षेत्र को तीन भागों—कूफा, बसरा और खुरासान में बाँट दिया और इनमें से हरेक में एक गवर्नर नियुक्त किया। ऐसा उसने इसलिए किया कि यह क्षेत्र उसके अपने बड़े नियंत्रण में

रह सकें। यही नहीं, उसने यजीद की गिरफतारी का आदेश इस आधार पर दिया था कि उसने गुरगन की विजय में प्राप्त लूट के माल में दमिश्क स्थित केन्द्रीय सरकार को उचित हिस्सा नहीं दिया था। पर इस बात की अधिक संभावना है कि ऐसा कदम उठाने में उमर के समक्ष और शक्तिशाली कारण थे।

हमें इस शासन के स्रोतों से इस संबंध में प्रचुर सामग्री मिलती है जिससे पता चलता है कि प्रान्तीय गवर्नरों को विस्तृत अनुदेश दिए गए। उमर द्वितीय की दृष्टि में ऐसी कोई भी बात न थी जो महत्त्वहीन और ध्यान देने लायक न हो। उदाहरण के लिए उसके इस कदम का सभी मिस्रवासियों ने स्वागत किया कि उसने नील नदी के किनारों पर वृक्षारोपण पर रोक लगा दी क्योंकि किनारों के वृक्षों के कारण नदी के ऊपरी चढ़ाव में नावों को कठिनाई और बाधा होती थी। मात्र इस एक उदाहरण से प्रकट होता है कि वह सभी प्रान्तों की समस्याओं की कितनी गहरी जानकारी रखता था कि उनको सुलझाने में कितनी बारीकी और परिश्रम से ध्यान देता था। इन अनुदेश के स्वरूप पर समग्र दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि साम्राज्य पर प्रशासन का यह नया दृष्टिकोण था। यह दृष्टिकोण पूर्ववर्ती योग्य ख़लीफा अब्द-अल-मालिक के दृष्टिकोण से अधिक और साथ ही कम निरंकुशतावादी भी था। अधिक इसलिए कि इसमें केन्द्र सरकार के अधिकार ज्यादा बढ़ गए थे और कम इसलिए कि उमर द्वितीय अपनी नीतियों के कार्यान्वियन में जोर-जबरदस्ती पर अधिक निर्भर न करता था। उसने ईराक और खुरासन से बहुत अधिक संख्या में सीरियाई फौजें वापस बुला लीं और हर प्रान्त में राजनीतिक शक्तियों के पुनर्संतुलन के जरिए स्थायित्व लाने की कोशिश की। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसने अपनी विनान्तर पूर्ववर्त्ती खलीफा सुलेमान की अपेक्षा ग़ैर-अरबों के अरबों में शामिल होने की प्रक्रिया को मान्यता और प्रोत्साहन दिया। उसने सभी स्थानीय समस्याओं पर जिस सूक्ष्मता के साथ ध्यान दिया उससे प्रकट होता है कि उसने हर मुसलमान के लिए, चाहे वह अरब हो या ग़ैर-अरब समान अधिकारों एवं समान जिम्मेदारियों के सिद्धान्त पर जोर दिया। इन सभी विस्तृत अनुदेशों का संचयी प्रभाव यह हुआ कि प्रान्तों की आंतरिक नीति में वृहत परिवर्त्तन हुआ। इससे सामाजिक विषमताएँ खत्म हुई। वैसे समाज के लिए, जिसमें अरब और ग़ैर-अरब दोनों ही शामिल थे, मार्ग-निदेशक सिद्धान्त स्थिर हुए। उसने अपने को साम्राज्य के अरब स्वरूप पर ध्यान देने तक सीमित न रख कर उसके मुस्लिम स्वरूप पर ध्यान दिया। उसके प्रमुख कदमों में उसकी वित्तीय राजाज्ञा इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह राजाज्ञा उसके सभी गवर्नरों के बीच परिचारित की गई। यों इसका संबंध अधिकांश समयों के सामान्य दुरुपयोगों से है, पर इस राजाज्ञा की एक धारा ने साम्राज्य के कार्य-

कलाप में मानों क्रांति ही ला दी। इस धारा द्वारा आज्ञा दी गई थी कि हर मुसलमान को, चाहे वह अरब हो, या नहीं; उसके द्वारा अपने सैन्य दायित्व स्वीकार किये जाने पर वृत्तिका मिलेगी। यह एक क्रान्तिकारी कदम था पर इससे भी अधिक व्यापक महत्व का कदम यह था कि समूची राजाज्ञा में कदम-कदम पर जोर दिया गया था कि सभी इस्लाम-धर्म-परिवर्त्तित लोगों को, चाहे वे जिस भी पेशे में हों, ठीक उतने ही कर देने पड़ेंगे जितने संबंधित पेशे के किसी अरब को देने पड़ेंगे।

मिस्र में उमर द्वितीय ने अपने पिता और वहाँ के भूतपूर्व गवर्नर अब्द-अल अजीज की नीतियों को विकसित और गहन रूप दिया। वहाँ की स्थिति उमर द्वितीय की समान जिम्मेदारियों के लिए समान अधिकार की नीति के लिए अत्यधिक अनुकूल थी। उसके राज्य में मिस्र के **दीवान** (सरकारी पंजी) में ५,००० नई वृत्तिकाओं की वृद्धि हुई। चूँकि उस समय मिस्र में बाहर से आकर लोग नहीं रह रहे थे, इन नई वृत्तिकाओं से केवल मूल मिस्र-निवासियों को ही और उसमें भी पूरी तरह संभवतः नौसेना के सदस्यों को ही लाभ हुआ। इस बात पर फिर जोर देने की आवश्यकता नहीं कि उमर प्रथम के उत्तराधिकारियों ने अपने प्रजाजन को वृत्तिकाएँ देना बंद कर दिया था। इस कदम की गलती पचीस वर्षों बाद अच्छी तरह प्रकट हो गई जब उन लोगों ने खुद उसी तरह की योजना आरम्भ की। पर तब तक काफी देर हो चुकी थी कि मूल मिस्रवासियों का विश्वास और कृतज्ञता हासिल किया जा सके।

उमर द्वितीय के सुधार

उमर का सर्वोच्च प्रयत्न यह था कि साम्राज्य की एकता फिर कायम की जा सके। उसने सार्वजनिक नमाजों में चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली को कोसने की परिपाटी पर, जो मुआविया ने शुरू की थी, रोक लगा दी। उसने अली के वंशजों को वह सम्पत्ति सौंप दी जो पैगम्बर मुहम्मद ने सार्वजनिक दान के लिए रख छोड़ी थी। उमर द्वितीय के इस कदम पर उसके उमैय्यद दरबार की बहुत प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। फिर उसने यह सिद्धान्त आरम्भ किया कि किसी मुसलमान को, चाहे वह अरब हो या **मवाली** (नव-धर्मान्तरित मुसलमान) उस कर से मुक्त रखा जाएगा जो खलीफा की विदेशी प्रजा को देना पड़ता था। वह इससे भी आगे गया और इस्लामी नीति की धारणा ही मूलभूत रूप से बदल दी जो इस्लाम के प्रारम्भिक दिनों से चली आ रही थी। अब तक उमर प्रथम के संविधान के अधीन अरब प्रायद्वीप और विजित प्रदेशों के बीच तथा उसी तरह मुस्लिम अरबों और शेष लोगों के, जिनमें **मवाली** भी शामिल थे, बीच स्पष्ट रूप से अन्तर किया जाता था। अरब प्रायद्वीप इस्लाम का गढ़ था। वहाँ उत्साहपूर्वक इस्लाम के

इस गढ़ की रक्षा की जाती थी। मुस्लिम अरब इस गढ़ के प्रहरी थे। उन पर सख्ती के साथ अपने धर्म और रक्त की शुद्धता के बरकरार रखने की जिम्मेदारी थी। दूसरी ओर, विजित प्रदेशों को इस्लाम धर्म जबरन स्वीकार करने से मुक्त रखा था। खलीफा की ईसाई और यहूदी प्रजा को इसके लिए अनुमति थी कि वे अपने धर्म और भूमि को अपने पास सुरक्षित रखें पर इसके लिए उन्हें कर देना पड़ता था। प्रशासन का मुख्यालय मक्का से दमिश्क ले जाये जाने के बाद भी इस्लाम और अरबों का प्रशासकीय प्रभुत्व कायम रहा। द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर प्रथम की अरबों को अन्य धर्मावलम्बियों से अलग रखने की नीति में प्रमुख परिवर्तन यह किया गया कि विजित प्रदेशों में अरबों के बसने पर लगा प्रतिबंध हटा दिया गया और जिन मवालियों ने इस्लाम धर्म अपना लिया था उन्हें कर देने से विमुक्ति दी गई पर इस्लाम धर्म न अपनाने वाले "विदेशी" नास्तिकों (गैर-मुसलमानों) पर पूरी दर पर कर लगाया गया। इसका परिणाम केवल यह हुआ कि धार्मिक पृथक्करण की मौजूदा व्यवस्था में अरबों के पक्ष में वंशगत भेदभाव का एक नया तत्व जुड़ गया। परिणामतः गैर-अरबों में इस्लाम धर्म अपनाने में उत्साह का सर्वथा अभाव हो गया। इसका परिणाम यह भी हुआ कि अरब सेनाओं ने जिस विशाल क्षेत्र पर विजय हासिल की थी उसके अनुपात में "विदेशी" लोगों ने इस्लाम धर्म न अपनाया।

पर उमर द्वितीय की सबसे ज्यादा चिन्ता वित्तीय सुधार के संबंध में थी। उमर प्रथम द्वारा लागू कर-नीति प्रभावकर न हो सकी थी क्योंकि अनेक मुसलमानों ने विजित प्रान्तों में भू-सम्पत्ति प्राप्त कर ली थी और वे दावा कर रहे थे कि उन्हें कर से विमुक्ति दी जाय। परिस्थिति ऐसी थी कि जिन क्षेत्रों पर कर लगता था वहाँ के निवासियों ने इस्लाम धर्म अपना लिया था वे अब आकर राजधानी में बस गए थे और कर से विमुक्ति हासिल करने में सफल हो गए थे। हज्जाज ने लोगों के राजधानी में आकर बसने पर रोक लगा दी थी और भूमि-कर मुस्लिम भू-सम्पत्ति पर भी लगा दिया था। इसके विपरीत उमर द्वितीय इस सिद्धान्त पर पूरी तरह दृढ़ था कि सभी मुसलमानों को कर से विमुक्ति दी जाय। पर उसने उमर प्रथम द्वारा स्थापित परम्परा पुनः लागू की कि सम्पूर्ण विजित प्रदेश पूरे मुस्लिम समुदाय का है और व्यक्तिगत रूप से मुसलमानों पर रोक लगा दी कि वे भविष्य में उस प्रदेश से कोई भी चीज हासिल न करें। यदि कोई कर देने वाला किसान इस्लाम धर्म अपना लेता था तो उसकी जमीन फिर ग्राम-समुदाय की हो जाती थी। यदि वह उसके बाद भी उस जमीन में खेती करना चाहता था तो उसे उसके लिए मालगुजारी देनी पड़ती थी और इस मालगुजारी से वे कर दिए जाते थे जिनको ग्राम-समुदाय को इकट्ठा करना पड़ता था।

फिर भी उमर द्वितीय एक महत्वाकांक्षी धर्मप्रचारक था। वह इस मामले में अवसर खोना न चाहता था। उसने इस्लाम को उसके सीमित दायरे से बाहर निकाला और इस संबंध में सरकारी नीति बदल दी तथा विजित प्रदेशों के संपूर्ण लोगों के धर्मान्तरण का अभियान आरम्भ किया। चूँकि उसकी उदार कर-सुविधाओं ने उसके धर्म-प्रचार तर्कों को बल दिया, उसकी नई नीति के तात्कालिक आश्चर्यजनक परिणाम हुए। साम्राज्य के हर भाग, विशेषत: आक्सस और सिंधु नदियों के पार पूर्व स्थित क्षेत्रों, जहाँ विशेष ईसाई और बौद्ध धर्मों के सिद्धान्त प्रचलित थे, हजारों-हजार धर्मान्तरितों ने इस्लाम धर्म अपना लिया। उमैय्यद नीति के वंशगत भेदभाव के कारण, हाल में, मूर्ति पूजा भी धीरे-धीरे खत्म हो रही थी। पर अब स्थिति दूसरी ही थी। अब धर्म-परिवर्तन इतनी बड़ी संख्या में होने लगे कि उमर द्वितीय के गवर्नरों ने शिकायत की कि राज्य की इस तरह आय कम होती जा रही है कि इस कारण राज्य का खर्च चल सकना मुश्किल होता जा रहा है। इस पर उमर ने जवाब दिया—"अल्लाह ने अपना पैगम्बर धर्म-प्रचारक के रूप में भेजा, टैक्स इकट्ठा करने वाले के रूप में नहीं।"

सभी मुसलमानों के लिए समानता की नीति का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि उससे ईराक और फारस में विभिन्न विश्वास वाले मुसलमानों के बीच मेल-मिलाप कायम हो गया। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थक और हशीमाइट अस्थायी तौर पर उमैय्यदों के विरुद्ध अपनी दुश्मनी भूल गए और यहाँ तक कि नाशवादी खारीजियों ने तीन वर्षों तक उमैय्यदों पर अपने प्रहार रोक दिये जब तक कि संतस्वरूप खलीफा (उमर द्वितीय) ने शासन किया। उमर द्वितीय के पूर्ववर्ती खलीफाओं के दरबार में अधिकांशत: कवि और भाषणकर्ता रहते थे। उसके स्थान पर उसके दरबार में धार्मिक व्यक्ति थे। इससे उसका दरबार अधिक धार्मिक और पवित्र हो गया। पर उसने प्रशासन में ईसाई और यहूदी अफसरों को रखने की प्रक्रिया आरम्भ की। इससे प्रशासन की प्रभावकारिता बहुत अंशों में कम हो गई। अरबों द्वारा की गई विजय से जो प्रचुर धन मिला उसका सदुपयोग करने में नये अफसर बिल्कुल दक्ष न थे। उनमें से अनेक सीधे-सादे रेगिस्तान-निवासी बद्दूओं के वंशज थे। वे वित्तीय मामलों में अनजान थे और उनके पास जो कुछ धन होता था उसे बेहद लापरवाही से खर्च करते थे। इससे कदाचार और भ्रष्टाचार बढ़े। स्थानीय गवर्नर रुपयों का कोई हिसाब-किताब न रखते थे और अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए बहुत सारे धन का गोल-माल करते थे।

पर फिर भी ये दुर्भाग्यवश परिणाम जो भी हुए हों, साम्राज्य में उमर द्वितीय के प्रशासनिक सुधार कम-से-कम इस दृढ़ संकल्प से प्रेरित थे कि प्रशासनिक

कार्य में अच्छे-से-अच्छे मुसलमान को स्थान दिया जाय, न कि खलीफा के साथ पारिवारिक या जनजातीय संबंध रखने वाले मुसलमानों को। अनिवार्यतः यजीद इब्न मुहालब प्रथम व्यक्ति था जिसे इस नई नीति से नुकसान पहुँचा। उससे उन बढ़ी-चढ़ी खबरों के लिए जवाब-तलब किया गया जो उसने पूर्ववर्त्ती खलीफा सुलेमान से अपने आक्रमणकारी सैन्य दलों द्वारा लूट का माल लिये जाने के संबंध में की थीं। इसके लिए उसने केवल यह बहाना दिया कि उसने केवल अपने प्रचार के लिए अपनी सफलताओं को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया था। उसे इसके लिए लाल सागर में एक द्वीप की जेल में निर्वासन दे दिया गया। पर फिर भी उमर के इरादे एक प्रकार से अच्छे थे। उनको एक गैर दुनियाबी धार्मिक मस्तिष्क की उपज नहीं कहा जा सकता। उसकी मृत्यु ९ फरवरी सन् ७२० को हो गई। अपने संक्षिप्त राज्य-काल में शायद यह उसके भाग्य में न था कि वह अपनी नीतियों को कार्यरूप दे सके। उसके बाद के अन्य खलीफा हज्जाज की अधिक आरामदेह नीतियों पर ही चलते रहे। उमर द्वितीय के अद्वितीय आशाप्रद शासन-प्रयोग का अन्त उसकी जल्द होने वाली दुःखजनक मृत्यु से हो गया। हिम्स के निकट दायर सिमान नामक स्थान में उसकी हत्या कर दी गई। उसके शासन की महज दो वर्षों की संक्षिप्त अवधि में उसके सुधार दृढ़ता के साथ अपनी जड़ें जमा न पाये। साथ ही सबसे बुरी बात यह थी कि उनलोगों की राजनीतिक आदतें बदलने के लिए अत्यल्प अवधि थी जो अन्य मारवानी शासकों के इर्द-गिर्द जमा हो गए थे।

उमर द्वितीय का आकलन

सुन्नियों द्वारा उमर द्वितीय राशदीन या विधिसम्मत खलीफाओं में पांचवां खलीफा माना जाता है। उसमें अकृत्रिम धार्मिक भावना, न्याय की अत्यन्त समुचित भावना, ऊँचे किस्म की ईमानदारी, आत्म संयम और करीब-करीब पुराने जमाने की सी जीवन की सादगी थी। उमर द्वितीय अपने पूर्ववर्ती विलासी खलीफा सुलेमान से अधिक भिन्न नहीं हो सकता था। सच बात यह है कि वह अपने नाम के खलीफा उमर प्रथम से अधिक धार्मिक था। उमर द्वितीय पूरी तरह धर्मशास्त्रियों के प्रभाव में था। उसे धार्मिकता और साधुता के लिए एक युग से प्रसिद्धि प्राप्त थी। वह उमैय्यद शासन की कथित अधार्मिकता के बिलकुल विपरीत था। दरअसल वह उमैय्यद शासकों में संत शासक था। बचपन में एक खच्चड़ द्वारा लात चलाये जाने के प्रहार के कारण उसकी आकृति खराब हो गई थी। वह गंजा था और बहुत ही दुबला-पतला। खलीफा सुलेमान जिस शान-शौकत में रहता था उसका उसने पूरी तरह त्याग कर दिया। वह राजधानी दमिश्क की सड़कों पर इतने फटे-पुराने और पैवंद लगे कपड़ों में घूमना पसंद करता था कि उसे लोग भीड़ में

विल्कुल ही पहचान न पाते थे। उसने दुनियावी धन-दौलत और निजी सम्पत्ति छोड़ दी। उसके भूतपूर्व खलीफा के घुड़दौड़ के बहुत बड़ी संख्या में जो घोड़े थे उन सबको उसने बेच दिया और उससे प्राप्त धन राज्य-कोषागार में जमा कर दिया। उसकी पत्नी के गहनों का भी यही हाल हुआ। जब उसके एक प्रतिनिधि ने कहा कि नव-मुस्लिम धर्मान्तरितों के पक्ष में उसके वित्तीय सुधारों से राज्य-कोषागार खत्म हो जाएगा तो उमर द्वितीय ने जवाब दिया—"अल्लाह कसम, में इस बात से प्रसन्न होऊँगा कि हर आदमी मुसलमान हो जाय बल्कि तुम्हें और मुझे अपनी जीविका कमाने के लिए खुद अपने हाथों जमीन जोतनी पड़े।"

दूसरी ओर, कुछ इतिहासकारों का मत है कि उमर द्वितीय के कुछ सुधारों से उमैय्यद राजवंश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा जिनसे अंततः उमैय्यद राजवंश का पतन हुआ। इस संबंध में प्रोफेसर हिट्टी का कहना—"यद्यपि उमर द्वितीय के इरादे बहुत ही अच्छे थे, पर उसकी नीति सफल न थी। उससे राज्य की आय कम हो गई और नगरों में राज्य से सहायता प्राप्त करने वालों की संख्या बढ़ गई। बर्बर जनजाति के अनेक लोगों और फारसियों ने इस्लाम धर्म इसलिए अपनाया ताकि ऐसा करने से उन्हें आर्थिक लाभ मिल सकेंगे। बाद में उमर द्वितीय की नीति केवल कुछ अन्तरों के साथ अल-हज्जाज की नीति जैसी ही हो गई। उस समय तक **जजिया** और खिराज करों में अन्तर नहीं किया गया था। **जजिया** कर एक ऐसा बोझ था जो इस्लाम धर्म अपनाने के बाद खत्म हो जाता था जब कि **खिराज** कर का बोझ खत्म न होता था। चूंकि जजिया अपेक्षाकृत एक छोटा-सा कर है; इसलिए कोषागार में मुख्य आय **खिराज** से ही आती रही और उससे कोषागार के धन पर कोई खास दूरव्यापी प्रतिकूल प्रभाव न पड़ा।"[१८]

इन सब बातों के बावजूद उमर द्वितीय द्वारा साम्राज्य के प्रति की जाने वाली सेवाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। न्याय और निष्पक्षता उसके प्रशासन के प्रमुख सिद्धान्त थे। उसने राज्य में उसके पूर्ववर्ती शासकों की अवधि में आ गए सभी प्रकार के भ्रष्टाचार समाप्त किए। उसने अरब मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच सभी भेदभाव का अन्त कर दिया। सभी प्रजाजन उसके अधीन प्रसन्न थे। उसका शासनावधि शांति और उपद्रवहीनता की अवधि थी, अतः उसके बारे में विलियम म्यूर की यह अभियुक्ति पर्याप्त रूप से सही है कि "उमर द्वितीय का शासन-काल रक्तपात, षडयंत्र और धोखेबाजी की पहले से चली आ रही श्रृंखला में एक राहत की सांस जैसी थी।" उसके पूरे शासन-क्षेत्र में शांति और समृद्धि बराबर बरकरार थी। इस प्रकार उमर द्वितीय का शासन उमैय्यद राजवंश की सर्वाधिक आकर्षक अवधि थी।

---

१८. फिलिप के० हिट्टी—हिस्ट्री ऑव अरब्स, पृ० २१९।

यजीद द्वितीय (सन् ७२०-७२४)

सुलेमान द्वारा किये गये मनोनयन के अनुसार उमर द्वितीय का उत्तराधिकारी अब्दुल मालिक का तृतीय पुत्र यजीद द्वितीय हुआ। वह यजीद प्रथम का पौत्र था। वह उसकी पुत्री अतीका का, जिससे अब्दुल मालिक ने विवाह किया था, पुत्र था। उसने एक मुदराइट महिला से, जो अब्दुल मालिक के शक्तिशाली गवर्नर हज्जाज की भतीजी थी, विवाह किया था। इस महिला ने उसे बहुत प्रभावित किया। यजीद के इस विवाह के कारण मुदाराइटों का हिमाराईटों के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष आरंभ हो गया। उमर द्वितीय ने मोदर और हिमयार की इन दोनों प्रतिद्वन्द्वी जनजातियों के बीच सावधानी के साथ संतुलन कायम रखा था। यजीद द्वितीय के अधीन हिमराइटों को मुदराइटों की बदले की भावना की पूरी तरह अनुभव करना पड़ा। जब यजीद खलीफा हुआ तो उसे ईराकियों के एक और विद्रोह को कुचलना पड़ा। खुरासान के गवर्नर यजीद इब्न मुहालब को उमर द्वितीय ने कैद कर लिया था क्योंकि वह ऋण न चुका पाया था। ऋण मुहालब द्वारा अपने आखिरी अभियान में लूटे गए सामान के पाँचवें हिस्से के रूप में था जो उसे कानूनन राज्य को देना चाहिए था। सचाई यह थी कि उसने घमंड में आकर उस अभियान के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर बातें कही थीं। मुहालब खलीफा यजीद द्वितीय से दया की उम्मीद न कर सकता था क्योंकि खलीफा ने उसके पुराने शत्रु हज्जाज की भतीजी से विवाह किया था। इसलिए मुहालब एलेप्पों में जेल से भाग निकला। वहाँ उसने अपनी जनजाति-अज्द और उनके दक्षिणी अरब संबंधियों का अह्वान किया कि वे अपने धार्मिक शत्रु उमैय्यदों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध छेड़ें। उसके साथ पारसी और किरमान भी आ मिले। पहले यजीद द्वितीय ने उसके साथ बातचीत करके मामला सुलझाना चाहा। जब बात चीत सफल न हुई तो उसने विद्रोहियों के विरुद्ध अपने पूर्ववर्ती खलीफा उमर द्वितीय के सबसे अच्छे सेनापति मसलमा इब्न-अल-मालिक के अधीन सेना भेजी। वसीत और कूफा के बीच स्थित गाँव अल-अकर में २५ अगस्त सन् ७२० को लड़ाई हुई। विद्रोहियों का सफाया कर दिया गया। इस लड़ाई में खुद यजीद इब्न मुहालब मारा गया। उसका परिवार गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। इसके आदमी मारे गए और सभी प्रथाओं और रीति-रिवाजों के विपरीत स्त्रियाँ और बच्चे दासों के रूप में बेच दिये गए।

उमैय्यद विरोधी परम्पराएँ यजीद द्वितीय को अपने चचेरे भाई खलीफा यजीद प्रथम की भांति खेल-कूद और गायन के शौकीन हैं, के रूप में चित्रण करती है। वह गाने वाली लड़कियों के साथ अपना अधिकांश समय बिताता था और राज-काज का काम अपने गवर्नरों पर सौंप देता था। ईराक का विद्रोह शांत कर दिए

जाने के बाद भी उसका शासन-काल उपद्रवों और अशांति में पूर्ण रहा। उसने मक्का और मदीना के प्रशासन का एकीकरण किया। उसने मिस्र में जनजातियों की पंजी का संशोधन कराया जो उन लोगों के निवृत्ति-वेतन (पेंशन) का आधार बना। उसने उन बुराइयों को भी दूर करने की कोशिश की जो उमर द्वितीय के वित्तीय सुधारों के बाद पनपी थीं। इसके लिए उसने भूमि-कर, जिसे उसके पूर्ववर्ती खलीफाओं ने कई प्रान्तों में समाप्त कर दिया था, फिर से लगाने के जन विरोधी उपायों का सहारा लिया। पूर्ववर्ती खलीफा ईसाइयों के साथ मित्रता का जो व्यवहार किया था, यजीद द्वितीय ने उसका भी विरोध किया। उसने न केवल उनके कुछ गिरिजाघरों में से कुछ को ले लिया बल्कि धार्मिक मूर्त्तियों को ध्वस्त करने का भी आदेश दिया। ऐसे आदमी के बारे में यह कहना कठिन है जैसा कि उमैय्यद विरोधी परम्पराएँ कहती हैं कि वह गाने वाली लड़की की मृत्यु से ऐसा आहत हुआ कि उसके फलस्वरूप ट्रान्सजोर्डन में अरबद (कुछ दूसरों के अनुसार इजविद) के किले में जनवरी सन् ७२४ में उसकी मृत्यु हो गई।

अब्बासिदों का प्रचार

यजीद द्वितीय के शासन-काल में अब्बासिदों का प्रचार जोरों से जारी था। उनके प्रचार के मुख्य विन्दु ये थे—मुआविया प्रथम की धोखेबाजी, कर्बला की दुःखान्त घटना, हज्जाज बिन यूसूफ की क्रूरतायें, अरब मुसलमानों और गैर-अरब मुसलमानों के बीच भेदभाव, ऊँचे पदों और सामाजिक जमावों से प्रजाजनों और खास कर फारसियों का हटाया जाना और बाद के खलीफाओं द्वारा राज-काज की उपेक्षा। इन बातों का प्रचार उमैय्यदों के स्वार्थों के प्रतिकूल था। उमर द्वितीय ने अपने पूर्ववर्त्ती खलीफाओं द्वारा की गई गलतियों में से कुछ को खत्म करने की कोशिश की, पर यजीद द्वितीय के कुशासन के कारण अब्बास के वंशजों को यह अवसर मिला कि वे पैगम्बर मुहम्मद के वंश को उसके अधिकार वापस दिलायें। पहले तो उन्होंने अपना प्रचार गुप्त रूप से जारी रखा, बाद में उन्होंने उमैय्यदों को उखाड़ फेंकने के लिए खुलेआम काम शुरू किया।

हाशिमी (हाशिमाइट) वंश, जिसमें पैगम्बर मुहम्मद ने जन्म लिया था, दो शाखाओं में बँटा हुआ था। एक शाखा थी अब्बासिदों (अब्बास के वंशजों) की और दूसरी चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों की। वे लोग अपने ही लोगों में से ही किसी के खलीफा बनने का वैध हकदार मानते थे। उनके विचार से उमैय्यदों ने जबर्दस्ती शासन-सत्ता हथिया रखी थी। पैगम्बर मुहम्मद के चाचा अब्दुल अब्बास के चार पुत्र हुए—अबदुल्ला, फजल, उबैदुल्ला और कासिम। अब्बास इतिहास में इब्न अब्बास के नाम से प्रसिद्ध है। उसके चारों पुत्र "ऊँट की लड़ाई"

में और फिर सिफिन की लड़ाई में मौजूद थे। इब्न अब्बास जितना विद्वान था उससे किसी भी तरह कम बड़ा योद्धा न था। उसके बाद वह पद उसके पुत्र अली को मिला जो पैगम्बर मुहम्मद की पुत्री फातिमा के बच्चों को बहुत प्यार करता था। वह प्रायः चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के दूत का काम करता था। जब अली की हठी सेना ने उसके और मुआविया के बीच खलीफा बनने के प्रश्न पर मध्यस्थता किये जाने के लिए उसे बाध्य किया तो उसकी इच्छा थी कि उसका दूत अली ही पैगम्बर मुहम्मद के वंश का प्रतिनिधित्व करे। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र मुहम्मद परिवार का प्रधान हुआ। वह बहुत ही ज्यादा योग्य निःसीम महत्वाकांक्षा वाला व्यक्ति था। मुहम्मद प्रथम व्यक्ति था जिसके मन में स्वयं खलीफा बनने का विचार उठा। उसने अपने वंश के लिए खलीफा का पद हथियाने के औचित्य के बारे में एक नया सिद्धान्त आरंभ किया। जब कर्बला के मैदान में चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली का पुत्र हुसेन मारा गया तो इस्लाम की आध्यात्मिक प्रधानता हुसेन के जीवित पुत्र अली (जैन-उल-अबीदीन) को नहीं बल्कि मुहम्मद अल हनीफा को सौंपी गई। यह चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली का उसकी हनीफा जनजाति वाली पत्नी से उत्पन्न हुआ पुत्र था। वह कर्बला के नरहत्या-कांड से इसलिए बच सका था कि वह वहाँ उस अवसर पर मौजूद न था। मुहम्मद अल-हनीफा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अबू हसीम हुआ जिसने इस्लाम का आध्यात्मिक नेतृत्व मुहम्मद-बिन-अली-बिन अब्दुल्ला को सौंपा। कुछ लोगों ने इसे एक सचाई के रूप में स्वीकार किया परंतु बहुसंख्यक लोगों से अब्बासिदों ने इस बात की पुष्टि की कि वे पैगम्बर मुहम्मद के परिवार के लिए काम कर रहे हैं। फातिमा के परिवार के अनुयायियों ने मुहम्मद और उसके दल को अपना समर्थन और सुरक्षा प्रदान की।

मुहम्मद की मृत्यु सन् ७४३ में हो गई। उसने अपने पुत्रों—इब्राहीम और अब्दुल्ला अबुल अब्बास (उपानम अल-सफा) को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इस व्यवस्था के अनुसार मुहम्मद के बाद इब्राहीम और उसके बाद अब्दुल्ला अबुल-अब्बास इस्लाम का आध्यात्मिक नेता बनता। मुहम्मद ने जो प्रचार अपने जीवन-काल में शुरू किया था वह उसकी मृत्यु से बाद भी उसी निष्ठा, तन्मयता और साहस के साथ जारी रखा गया।

ऐसा कुछ सबल कारण था जिससे अब्बासिदों की सत्ता में आने में मदद मिली। यजीद द्वितीय के पापों और कुशासन के कारण हर क्षेत्र में यह बलवती इच्छा जाग्रत हो गई थी कि पैगम्बर मुहम्मद के वंश को उसके अधिकार वापस कर दिए जाएं। जनता उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी कि इस संबंध में इमाम लोग संकेत दें। पर ये संत पुरुष दुनियावी कार्यों से अवकाश ग्रहण कर चुके थे,

अब उनका कार्यक्षेत्र यह संसार न रह गया था। संदेह और उथल-पुथल की ऐसी स्थिति में बनू अब्बास अपने दावों, छल-कपट और महत्त्वाकांक्षाओं के साथ सामने आये।

हिशाम : उमैय्यद साम्राज्य का अस्तित्व (७२४-७४३)

यजीद द्वितीय के बाद अब्द-अल मालिक का चौथा पुत्र हिशाम खलीफा बना। सत्ता का यह अंतरण जितनी सुगमता के साथ हुआ उससे इस बात का सबल संकेत मिला कि उमैय्यदों में विस्तारवादियों की पूरी जीत हो गई है और वे दृढ़ संकल्प हैं कि उमैय्यद राजवंश के प्रतापी खलीफा अब्द-अल मालिक और उसके शक्तिशाली गवर्नर हज्जाज की नीतियाँ कायम रखी जाएँगी। इसमें कोई शक नहीं कि हिशाम का इरादा भी यही था। पर उसके शासन-काल की परिस्थितियों ने, समय-समय पर उसे बाध्य किया कि वह उन विशेष नीतियों से तत्काल हट जाय और दूसरे देशों के क्षेत्रों को साम्राज्य में मिलाने की नीति के इच्छुकों के सामने आत्म-समर्पण करे। पर यह स्थिति अस्थायी थी। एक बार जब आसन्न खतरा खत्म हो गया तो हिशाम ने पूरी कर्त्तव्यपरायणता के साथ विस्तारवादी नीतियों को पूरी तरह कार्यान्वित करना शुरू कर दिया। एक राजनेता के रूप में अपनी योग्यता और दक्षता के कारण वह काफी लम्बे समय तक खलीफा पद पर आसीन रह सका। इस लम्बे शासन-काल (सन् ७२४-७४३) में हिशाम को अपने साम्राज्य की सभी सीमाओं पर अत्यधिक गंभीर खतरों का सामना करना पड़ा। देश की आंतरिक स्थिति ऐसी थी कि उसे ऐसे लोगों पर शासन करना था जिनके स्वार्थ परस्पर-विरोधी थे और जो अपने ही विरुद्ध काफी लंबे समय से विभाजित थे। जब कि आंतरिक संघर्ष भीतर-ही-भीतर उबल रहे थे तो हिशाम को अपने सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग साम्राज्य की रक्षा के लिए करना पड़ रहा था। बाहरी शत्रु साम्राज्य को क्षत-विक्षत करने में कृत संकल्प प्रतीत हो रहे थे। साम्राज्य को उनसे बचाने में उसे सफलता मिली, पर हिशाम जैसा सर्वसत्तासम्पन्न शासक भी उस पर अपनी प्रजा के शक्तिशाली वर्गों द्वारा डाले जाने वाले भारी दबाव के विरोध में जाने में असमर्थ रहा। दरअसल उसे अपनी प्रजा के समर्थन की बहुत ज्यादा आवश्यकता थी। अपने पूरे शासन-काल में वह इन दबावों का प्रभाव कुछ हद तक कम करने में सफल रहा, पर उसकी मृत्यु के बाद विनाश अवश्यंभावी था।

हिशाम सामान्यतः अपना निवास यूफ्रेटस नदी के किनारे रूसाफा में रखता था। उसकी प्रथम समस्या ने, जो वास्तव में साम्राज्य के लिए सबसे गंभीर खतरा थी, सुदूर पूर्वी सीमा पर कार्यरूप ग्रहण किया। सन् ७२३ में यजीद द्वितीय के अधीन मध्य एशिया में साम्राज्य-विस्तार के लिए युद्ध आरम्भ होने पर उसका

विरोध तुर्गेश की घुमन्तू जातियों की बढ़ती हुई शक्ति द्वारा किया गया। खान-सुलू (सन् ७१६-७३८) के नेतृत्व में तुर्गेश जनजातियों ने अपनी स्वतंत्रता हासिल करने में सफलता प्राप्त की और पश्चिमी तुर्कों का नेतृत्व स्थापित कर दिया। चीनियों की सहायता से उन्होंने इली की घाटी (नदी-संग्रहण क्षेत्र) में एक नया राज्य स्थापित किया। सन् ७२४ में उन लोगों ने खुरासान के अरबों को बुरी तरह पराजित किया। पराजय के उस दिन को "प्यास का दिन" (डे आव थर्स्ट) कहा जाता है। यह पहला अवसर था जब अरबों ने तुर्गेश सेनाओं का, उनकी पूरी संख्या में, मुकाबला किया। इस समय के बाद से, करीब पन्द्रह वर्षों तक, उनके मुकाबले अरबों की स्थिति कमजोर रही और उन लोगों को औक्सस नदी के उस पार पीछे धकेल दिया गया। अब हिशाम की प्रमुख जिम्मेदारी यह हो गई कि अरबों के इस खतरनाक शत्रु को पराजित किया जाय और खुरासान में उनकी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित की जाय। उसने इस कार्य के आरंभ में यजीद द्वितीय द्वारा नियुक्त ईराक और पूर्वी क्षेत्र के गवर्नर को बर्खास्त कर दिया और उसके स्थान पर खालिद इब्न-अब्दुल्लाह अल कासरी को नियुक्त किया। यह हिशाम की मनमानी इच्छा की पूर्ति के लिए केवल एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को बैठाना भर न था बल्कि इस बात का सुस्पष्ट संकेत था कि साम्राज्य के इस हिस्से में नीतियों में बड़ा परिवर्त्तन आया है। ईराक का अब तक का गवर्नर उमर इब्न हुबायरा मारवानियों का एक भली-भाँति जाँचा-परखा, निष्ठापूर्ण सेवक था। इसके अलावा वह हज्जाज का ईमानदार शिष्य और एक प्रमुख केसाइट नेता था। दूसरी ओर हिशाम का यह सौभाग्य था कि उसे खालिद अल-कासरी के रूप में ईराक के लिए दूसरा गवर्नर मिला जो वहाँ के पूर्ववर्ती महान गवर्नरों जियाद और हज्जाज का सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुआ। खालिद अल कासरी साम्राज्य में यमनवासियों का एक जाना-माना नेता था। चूँकि खालिद, एक महत्वहीन जनजाति से आने के बावजूद, अपने दल के स्वार्थों से बराबर ऊपर रहा, उसे केज लोगों में उपद्रवियों को दबाने में सफलता मिली। उसकी नियुक्ति इस बात की यथासंभव अधिक-से-अधिक स्पष्ट घोषणा थी कि कम-से-कम ईराक और पूर्वी क्षेत्र में केज लोगों की कठोर और अनम्य नीति के बदले यमनवासियों की नरम और नम्य नीति अपनाई जाएगी। हिशाम जानता था कि तुर्गेश-खतरे का सामना करने के लिए काफी सीरियाई न मिल सकेंगे जिन्हें खुरासान भेजा जा सके। वह इस बात को महसूस करता था कि इस प्रयोजन के लिए खुद पूर्वी प्रान्तों से सेना जुटानी पड़ेगी। इसके लिए उसे इन प्रान्तों की जनता-अरब और गैर-अरब दोनों—के पूरे सहयोग की आवश्यकता थी। यमनवासी खालिद इस विशेष कार्य के लिए मुख्य रूप से उपयुक्त था। गवर्नर नियुक्त होने के बाद उसने पूर्व में अपनी नीतियों के कार्यान्वियन का भार अपने भाई पर सौंपा। खालिद प्रबुद्ध विचारों का आदमी था। उसने मोधरों और हिमयारों के बीच चतुरता और न्यायप्रियता के

साथ सन्तुलन कायम रखा और उसके सम्पूर्ण शासन-काल में इन दोनों जनजातियों के बीच शायद ही कभी मुठभेड़ हुई।

ईसाइयों और यहूदियों के प्रति खालिद का व्यवहार विचारपूर्ण, न्यायसंगत और उदार था। उसने ईसाइयों के गिरजाघरों और यहूदी पूजा-गृहों की मरम्मत कराई और उन लोगों को ऐसे सरकारी पद दिए जिनमें वेतन तो अच्छा था ही, साथ ही जिन पर विश्वस्त लोग नियुक्त किए जाते थे। उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण और कुशल राजनेता की-सी नीति का धर्मान्ध लोग तीव्र विरोध करने लगे। यह विरोध उसके शासन-काल के किसी खास समय या क्षेत्र तक ही सीमित न रहा। उसके शत्रुओं का समर्थन धर्मान्धों को मिल रहा था। उसने ईराक के भूतपूर्व योग्य गवर्नर हज्जाज द्वारा शुरू किए सुधार-कार्यों को बड़े पैमाने पर जारी रख कर देश की बड़ी सेवा की। उसने वासित के ईद-गिर्द, टिगरिस नदी के निचले हिस्से में, दल-दल वाली जमीन को सुखाया और उस क्षेत्र को कृषियोग्य बनाया। वहाँ खेती होने से राजकोष की आमदनी बहुत बढ़ी। खालिद के अधीन ईराक विशेष रूप से समृद्ध हुआ। हसन अल-नबाती के अभियंत्रण और दलदल सुखाने के कार्य के कारण यह समृद्धि संभव हो सकी। इस दिशा में नबाती के कार्य से खालिद ने अपने लिए १३,०००,००० दिरहम की बचत की और यह बचत उसके द्वारा इससे तिगुनी रकम मनमाने तौर पर खर्च करने के बावजूद हुई।

खालिद ने इस प्रकार अपनी जेब खूब भरी, पर इससे खलीफा की निगाह में उसकी इज्जत कम न हुई क्योंकि राजधानी दमिश्क के दरबार में अपने कर बराबर चुका देता था। पर वह अनाज की सट्टेबाजी के अपराध में फँस गया। उसके विरोधियों ने इसका फायदा उठा कर उसे गवर्नर पद से हटवा दिया। वह इस पद पर पन्द्रह साल तक रहा। अंततः खालिद का वही भाग्य हुआ जो उसके पहले, ऐसे अपराधों में, अन्य लोगों का हुआ था। सन् ७३८ में उसे गिरफ्तार किया गया, जेल की सजा मिली और तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। उसका मामला इस बात का एक प्रमाण है कि उमैय्यदों के शासन में राजनीति में किस प्रकार का कुशासन और भ्रष्टाचार आ गया था जिससे उन लोगों की सत्ता डगमगा उठी। इस प्रकार उमैय्यद शासक अपनी अब्बासिद प्रतिद्वन्द्वियों के प्रहार के शिकार आसानी से हो गए।

पर तस्वीर का दूसरा पक्ष यह भी था कि ज्यों ही ईराक में खालिद का मजबूत शासन खत्म हुआ, वहाँ से शांति ने भी विदा ली। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के परपोता जैद इब्न अली ने कूफा में खलीफा पद के लिए अपना दावा रखा।

उसने निष्ठा की शपथ ली और वायदा किया कि खलीफा हो जाने के वाद वह अल्लाह की किताव और पैगम्बर के सुन्ना[१९] को अपना पथ-प्रदर्शक मानेगा, अन्यायी

---

१९. शब्द "सुन्ना" का मतलव (उसका जो अर्थ मूल रूप में भी था) पैगम्बर मुहम्मद का आचरण होता है। उसमें आदर्श की जो भावना है वह पैगम्बर से ही ली गई है। पर जिस सीमा तक हदीस (परम्पराएँ) इस संबंध में मौन हैं और अपना कोई मंतव्य नहीं देतीं; यह शब्द हर आने वाली पीढ़ी के वास्तविक आचरण और व्यवहार पर भी लागू होता है जहां तक उसका संवंध पैगम्बर के तौर-तरीकों का उदाहरण पेश करने के दावे से है। सुन्ना का शाब्दिक अर्थ है "एक चला हुआ रास्ता" और किसी रास्ते की भांति उसका हर भाग "सुन्ना" है चाहे वह रास्ते के आरंभ से निकट हो या उससे दूर। इस शब्द द्वारा वर्ण्य विषय के अनुसार वह वैसा रास्ता नहीं है जो नये तत्वों को अपने में वरावर पचाता है, पर सुन्ना शब्द का अभिप्राय पैगम्वर के शिष्यों के व्यवहार के ढांचे से है। शब्द के अर्थ के मामले में इस उलझन के कारण, करीव-करीव आठवीं शताब्दी तक आधुनिक इतिहास-लेखक जोर देते रहे कि सुन्ना का अर्थ पैगम्वर द्वारा अपनाई गई कार्य-पद्धति नहीं वल्कि मदीना और ईराक में स्थानीय मुस्लिम सम्प्रदाय की कार्य-पद्धति है। चूंकि सुन्ना की धारणा का अर्थ मौन जीवन-प्रक्रिया के रूप में लिया जाने लगा अतः एक प्रकार से जवरन, इसका मतलव हर आने वाली पीढ़ी की जीवन-परम्परा माना जाने लगा। इसलिए यद्यपि एक धारणा के रूप में मूलतः सुन्ना का अर्थ पैगम्वर के व्यवहार से लगाया जाता था पर उसके द्वारा वर्ण्य विषय-तत्व परिवर्तित हो गया और उसका अर्थ अधिकतर प्रारंभिक मुस्लिम सम्प्रदाय की वास्तविक कार्य-प्रक्रिया से लगाया जाने लगा। पर इस संवंध में जो भी नई वातें सोची या जोड़ी गई हों, इस शब्द का अर्थ कुरान और सुन्ना के सिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत करना है। यह व्याख्या पहले स्वतंत्र और सुविचारित व्यक्तिगत सम्मति पर आधारित थी जिसका स्थान दूसरी शताब्दी में व्योरेवार उपमा की धारणा ने लिया। शब्द सुन्ना का अर्थ संभवतः उस समय तक एक जागरूक धारणा के रूप में न लिया गया जव तक कि इस संवंध में राजनीतिक विषयों पर मतभेद न उठे। वाद में सुन्ना का अर्थ विस्तृत किया गया और इसमें प्रथम चार खलीफाओं (जिन्हें कभी-कभी आधुनिक इतिहासकार सिर्फ सत्ता के प्रतीक खलीफा भी मानते हैं) द्वारा छोड़े गए दृष्टांत-उदाहरण और उनके साथियों या उनमें से अधिकांश द्वारा किए गए समझौते भी शामिल कर लिए गए। इनको क्रमशः भलीभांति निर्देशित खलीफाओं और उनके साथियों का सुन्ना कहा जाता है।

लोगों के विरुद्ध लड़ेगा, कमजोरों की रक्षा करेगा, सरकारी आय को सबके बीच बराबर-बराबर बाँटेगा और सुदूर देशों में लड़ रहे सैनिकों को स्वदेश वापस बुला लेगा। इस विद्रोह को ईराक के तत्कालीन गवर्नर यूसुफ इब्न उमर अल-तकाफी ने बिना किसी कठिनाई के दबा दिया। अली का समर्थन जैद-इब्न-अली सड़क पर लड़ते हुए मारा गया। उमैय्यदों की सत्ता के विरुद्ध शिया लोगों द्वारा बार-बार जो विद्रोह किये गए और जिनके कारण अंततः उनका पतन हुआ, उनमें यह पहला विद्रोह था।

हिशाम ने बैजेन्टाइनों के विरुद्ध भी लड़ाई शुरू की। उनलोगों पर सन् ७१६-१७ में जो अंतिम असफल हमला किया गया था उसके बाद से उनके विरुद्ध बहुत धीमी गति से अभियान किया गया था। पर हिशाम के शासन-काल में भी अरब सैनिक ने जाड़े के मौसम में बैजेन्टाइनों से जो स्थान जीते थे उन्हें उनको गर्मी में छोड़ देना पड़ा। सन् ७१४ में खलीफा ने बैजेन्टाइनों के विरुद्ध अभियान में खुद भी हिस्सा लिया। ऐसा उस समय हुआ जब बैजेन्टाइनों में उसके पूर्व के वर्ष में फ्राइगिया में ऐक्रिइनोस में अरबों को बुरी तरह हराया और फिर मेलीटीन के नगर पर हमला किया। खलीफा को एक बार फिर उन लोगों को पीछे हटाने में सफलता मिली।

हिशाम के शासन-काल में अरबों ने अपने अग्रवर्त्ती ठिकानों पर ज्यादा दबाव डालना शुरू किया। स्पेन में ईसाइयों के विरुद्ध लड़ाई में मुसलमानों को इस कारण रुकावट पड़ी कि जनजातियों और बर्बरों के बीच फूट पड़ गई थी। बर्बरों की धारणा हो गई थी कि उनके विरुद्ध भेद-भाव बरता जा रहा है। बर्बर नेता मुनाजा अरबों से अलग भी हो गया था और उसने उत्तरी सीमा पर अपना स्वतंत्र क्षेत्र स्थापित किया। उसने एक्विटेन के ड्यूक यूडो के साथ संधि भी कर ली थी। हिशाम ने अब स्पेन में एक नया गवर्नर अब्द-अल रहमान इब्न अब्दुल्ला नियुक्त किया जिसने मुनाजा को परास्त कर दिया और यूडो की ओर मुड़ा। उसे उसने गैरौन और डोरडोगन के बीच शिकस्त दी और लोयर की ओर बढ़ा। पर वहाँ टूर्स और पोयटियर्स के बीच उसका सामना, सन् ७३२ में[२०] फ्रैंकिस सेना के

२०. लड़ाई का वर्ष (सन् ७३२) इस अर्थ में एक सुविधाजनक वर्ष है कि यह वर्ष पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु का शताब्दी-वर्ष था। विशेषतः इस कारण इस वर्ष से स्थिति का लेखाजोखा उचित है। इस प्रकार पैगम्बर की मृत्यु के एक सौ साल बाद अरबों का साम्राज्य उतना विशाल था जितना विशाल रोमन साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष के समय भी न था (फिलिप के० हिट्टी-"इस्लाम ए वे औव लाइफ", पृ० ८४)।

सेनापति चार्ल्स मार्टेल से हुआ। आस्ट्रेसियाई फ्रैंकों ने अरबों के हमले का डट कर मुकाबला किया। उस रात अरब वापस चले गए। उनका नेता लड़ाई में मारा गया था। उसके पद-उत्तराधिकारियों ने गौल तक अपने हमले जारी रखे, पर आंतरिक अशान्तियों के कारण उन्हें अपने प्रयास में बार-बार रुकना पड़ा।

अफ्रिका में बर्बर असन्तुष्ट थे। यद्यपि धार्मिक युद्ध में वे अच्छे मुसलमानों और उत्साही योद्धाओं की भाँति लड़ते थे पर फिर भी उन्हें प्रजा माना जाता था और कर अदा करना पड़ता था। फलतः ईराक से खारीजी दूतों ने उमैय्यद खलीफा के विरुद्ध बर्बरों को अपने समर्थकों के रूप में पाया। ये दूत खलीफा के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे और लोगों को भड़का रहे थे। जब बर्बर अपनी एक फरियाद लेकर दरबार में गए तो उन्हें वहाँ प्रवेश की अनुमति तक न मिली। फलत: पूर्वी अफ्रिका में मोरक्को से कैरेवान तक एक भयानक विद्रोह छिड़ गया जिनकी आग धू-धू कर चारों ओर फैल गई। अफ्रिकी अमीर (स्थानीय शासक) उस विद्रोह को दबाने में सर्वथा असमर्थ रहे यद्यपि उनकी सहायता के लिए गवर्नर उकबा स्पेन से वहाँ पहुँचा था। सन् ७४१ में हिशाम को कुल्थम इब्न इयाद के सेनापतित्व में एक सेना बर्बरों के विरुद्ध भेजनी पड़ी पर उसे भी यह आन्दोलन दबाने में सफलता न मिली। नदी नावम के किनारे एक भीषण लड़ाई छिड़ी जिसमें खुद कुल्थम मारा गया। बहुत कठिनाई के साथ उसका भतीजा बल्ज इब्न बिश बची हुई एक तिहाई सेना के साथ, किसी तरह स्पेन से होते हुए अपनी जान बचा कर भाग पाया। फिर एक साल बाद अरबों के लिए विजय सुनिश्चित हो सकी और वे कैरेवाँ पर विजय हासिल कर सके।

हिशाम की सबसे बड़ी कमजोरी उसकी धनलोलुपता थी। उसने राज्य को शोषण का स्रोत माना। फलतः वह अपने गवर्नरों पर जोर डालता रहा कि वे प्रजा से अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा करें। उसने साइप्रस का कर बढ़ा दिया और सिकन्दरिया का दुगुना कर दिया। हिशाम की नीतियों के कारण अफ्रिका की बर्बर जनजाति की भाँति ट्रान्सोक्सियाना में फारसी और तुर्क हताश हो गए थे। इससे पूर्व उमैय्यदों के खिलाफ अब्बासिदों को प्रचार का सुअवसर और सुविधा मिली। सन् ७४३ में हिशाम के शासन का अंत होते-होते तक उत्तरी अफ्रीका और स्पेन ही नहीं बल्कि पूरा साम्राज्य आंतरिक अशांति से त्रस्त था। पर हिशाम को इस बात का श्रेय निःसंशय दिया जा सकता है कि उसे सभी भयानक बाहरी खतरों को दूर करने में सफलता मिली। पर ६ फरवरी, ७४३ को हिशाम की मृत्यु के बाद उमैय्यद साम्राज्य अत्यधिक बुरी स्थिति में था।

हिशाम का आकलन

हिशाम उमैय्यद राजवंश का अंतिम महत्त्वपूर्ण खलीफा था। वह एक धार्मिक व्यक्ति था और उन बुराइयों तथा अनैतिक कार्यों से मुक्त था जिनका उसके पूर्ववर्ती खलीफा यजीद द्वितीय और उसके उत्तराधिकारी खलीफा वालिद द्वितीय के दरबार में बोलबाला था। हिशाम ने राज्य की आय नहरें खुदवाने, महलों का निर्माण कराने और बाग-बागीचे लगवाने में खर्च की। वह ईसाइयों के प्रति सहिष्णु था और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के प्रति उसमें सबसे ज्यादा आदर था। जब एक तीर्थयात्रा के अवसर पर तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के वंशजों ने उससे कहा कि वह चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की निन्दा करे तो उसने वैसा करने से इन्कार कर दिया। वह स्वयं तो विद्वान था ही, साथ ही कला और साहित्य का संरक्षक भी था। एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार का कहना है—"हिशाम बिन अब्दुल मालिक निःसंदेह उमैय्यद राजवंश के योग्यतम शासकों में से था। वह जितना बड़ा योद्धा था उतना ही बड़ा विद्वान भी"[२१]। उसका मुख्य सचिव सलाम भी विद्वान और साहित्यिक था। पर एक शासक के रूप में हिशाम में अनेक दोष थे। वह संदेहशील और लालची था। वह किसी पर विश्वास न करता था और अपने गवर्नरों और अफसरों को अक्सर बदलता रहता था। अपनी इस नीति के कारण उसे खालिद-अल-कासरी जैसे सक्षम और योग्य गवर्नरों से हाथ धोना पड़ा। धन के लालच के कारण उसने चरम सीमा तक कर बढ़ा दिए। अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए कृषि-उपज को अधिक मूल्य पर बेचने और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों का विद्रोह क्रूरतापूर्वक दबाने की नीति के कारण वह बदनाम हो गया जिससे उमैय्यद राजवंश के हितों को भारी नुकसान पहुँचा।

वालिद द्वितीय (सन् ७४३-७४४)

हिशाम का उत्तराधिकारी उसका भतीजा वालिद द्वितीय हुआ जो यजीद द्वितीय का पुत्र था। उसने अपने पिता की रईसी और मौजी तबीयत पाई थी। चूँकि उसका चाचा हिशाम उसे अपना उत्तराधिकारी न बनाना चाहता था, उसे अपनी युवावस्था राजदरबार से दूर फिलस्तीन के एक रेगिस्तानी महल में बितानी पड़ी थी। जब हिशाम की मृत्यु के बाद उसने राजधानी दमिश्क में प्रवेश किया तो सामान्यतः सभी लोगों ने उसका स्वागत किया और उसे अपने चाचा हिशाम की धन ऐंठने की नीति के रक्षक के रूप में देखा। पर उसने लोगों को निराश ही

२१. वौन क्रेमर, "इस्लामिक सिविलिजेशन", अनुवादक खुदा बख्श।

किया। वह कुछ ही समय बाद पुनः अपने रेगिस्तानी महल में वापस चला गया और खेल-कूद, शराब और शेर-ओ-शायरी में गर्क हो गया।

उस अवधि के बारे में जानकारी के जो भी स्रोत उपलब्ध हैं उनमें वालिद द्वितीय का चित्रण भोग-विलास में लिप्त व्यक्ति के रूप में किया गया है जिसे अपनी सुख-सुविधा की ही चिन्ता थी। पर उक्त स्रोतों द्वारा उस पर मढ़े जाने वाले ये दोष अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। ऐसा लगता है कि वालिद द्वितीय के अनेक शत्रुओं के प्रचार के आधार पर ही ये बातें लिखी गई हैं। वालिद का प्रमुख दोष यह था कि वह सीरियाई सेना की सीमित शक्ति पर लादे गए भारी बोझ का सही-सही अंदाज न कर सका। उसने यह भी महसूस न किया कि जजीरा से नई फौज की भरती से साम्राज्य में नये राज्य के वैकल्पिक शक्ति-केन्द्र का उदय हुआ। दरअसल वालिद द्वितीय का विचार था कि ऐसी सेना को साम्राज्य-विस्तार के नये युद्धों में लगाना साम्राज्य के लिए अच्छा ही होगा।

वालिद द्वितीय ने अपने शासन के आरंभ में हिशाम के परिवार को शाही महल से निकाल बाहर किया। यहाँ तक कि मृत सम्राट को दफनाने संबंधी रीति-रस्मों में भद्दे किस्म से दखलन्दाजी की गई। उसने अपने चचेरे भाइयों – वालिद प्रथम और हिशाम के पुत्रों के साथ क्रूरता की। ये दोनों परिपक्व उम्र के व्यक्ति थे और उन्होंने रोमनों के विरुद्ध युद्ध में प्रसिद्धि पाई थी। इनके साथ वालिद द्वितीय के व्यवहार से उसके प्रति लोगों की घृणा बढ़ी। अपने शासन के आरंभ में उसने सैनिकों की वृत्तियाँ बढ़ा कर और सामान्य जनता में उदारतापूर्वक दान करके उन लोगों के बीच लोकप्रिय बनने की कोशिश की। जनता के बीच लोकप्रिय होने के लिए उसने गरीबों, लंगड़ों और कमजोर लोगों के भत्ते बढ़ा दिए। पर उसके चंचल स्वभाव और भ्रष्ट प्रकृति के चलते, जिससे वह अक्सर क्रूर कार्य कर दिया करता था, उसके ये प्रयत्न विफल हो गए।

वालिद द्वितीय अपने संक्षिप्त शासन-काल में हिशाम के मुकाबले कहीं ज्यादा सैन्यवादी क्वेजों की विस्तारवादी नीतियों को पसन्द करता था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यमनवासियों के नेता खालिद अल-कासरी के प्रति उनके [illegible] से मिलता है। ईराक और पूर्व के गवर्नर पद से बर्खास्त होने के बाद खालिद दमिश्क में रहने लगा था। कहा जाता है कि वह बैजेन्टाइन क्षेत्रों पर सीरिया से होने वाले आक्रमणों में भाग लेता था। प्रायः छः साल तक उसने अपने को राजनीतिक संघर्ष से अलग रखा। पर फिर भी उस पर आरोप लगाया गया कि वह शासन का लगातार विरोध करता रहा है और [illegible] के विरुद्ध षडयंत्र में लगा रहा है। वालिद द्वितीय ने आदेश दिया कि उसे गिरफ्तार

करके उसके घोर शत्रु तथा ईराक के गवर्नर एवं क्वेसाइट नेता यूसुफ बिन उमर को सुपुर्द किया जाय। यूसुफ ने उसे यातनाएँ देने का आदेश दिया। फलतः सन् ७४३ में जेल में खालिद की मृत्यु हो गई। यमनवासियों के मान्य नेता के खिलाफ इस कदम से सिद्ध होता है कि वालिद द्वितीय क्वेसाइट नीतियों के समर्थन के प्रति पूरी तरह प्रतिज्ञाबद्ध था। उसने मारवानी परिवार के एक प्रमुख सदस्य के विरुद्ध बहुत कड़ा और असामान्य कदम उठाया। उसने सुलेमान इब्न हिशाम को पीटने का आदेश दिया और उसे निर्वासित कर उमान भेज दिया जहाँ वह जेल में रखा गया। जैसी कि हमें जानकारी मिलती है, सुलेमान ने अपने पिता हिशाम के शासन-काल में बैजेन्टाइनों के विरुद्ध ग्रीष्म आक्रमणों में बहुत सक्रिय हिस्सा लिया था। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने जजीरा में गैर-अरब लोगों की अपनी निजी सेना संगठित की थी। ऐसी सेना के साथ और मारवानियों के बीच फूट के चलते सुलेमान वालिद द्वितीय के लिए एक बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया था। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्यजनक न था कि वालिद द्वितीय ने अपने चचेरे भाई के विरुद्ध ऐसा अभूतपूर्व कदम उठाया।

जहाँ तक सीरियाई सेना का प्रश्न था, वालिद द्वितीय अच्छी तरह जानता था कि वह बर्बर जनजाति को रोकने के लिए भेजी गई उक्त सेना को वापस नहीं बुला सकता। इसके बदले उसने चिर-विस्मृत साइप्रस द्वीप की ओर ध्यान दिया। इस द्वीप को अरबों ने सन् ६४९ में बैजेन्टाइनों से छीना था जब मुआविया सीरिया का गवर्नर था। वहाँ सीरिया से ले जाकर अरब बसाये गये थे। वालिद द्वितीय ने सन् ७४३ में वहाँ एक नौसैनिक दल को भेजा। इसका उद्देश्य वहाँ बस गए अरबों को वापस बुलाना था और उन्हें बैजेन्टाइनों के विरुद्ध आक्रमण में भी शामिल होने को बाध्य करना था। जहाँ तक सीरिया के बची हुई सेना का प्रश्न था, उसने उसकी वृत्तिकाएँ बढ़ा कर उनकी और अधिक निष्ठा प्राप्त करने की कोशिश की। इसके अलावे केन्द्रीय कोषागार में आवश्यकता से अधिक धन के सहारे उसने अंधों और कठिन रोगों से पीड़ित लोगों को निवृत्ति-वेतन देने और उनकी सेवा के लिए दासों की व्यवस्था करने की परिपाटी फिर आरंभ की। इस परिपाटी का उद्देश्य सीरिया के अरबों को सहायता देना था। इसे हिशाम ने बंद कर दिया था। पर इन सब सहायताओं का कोई फल न निकला। सीरियावासी उस नीति से अत्यधिक असंतुष्ट थे जिसके अधीन साम्राज्य के सभी हिस्सों में निरन्तर आक्रमण आयोजित किये जा रहे थे। वे लोग वालिद द्वितीय के विरुद्ध हो गए। सीरियाई सेना के सेनापतियों मारवानी परिवार के सदस्यों के सहयोग से एक सफल सत्ता-पलट संगठित किया और मुश्किल से एक वर्ष बीता होगा कि वालिद द्वितीय के शासन का अंत हो गया।

वालिद द्वितीय के अधीन कविता का विकास

जिस प्रकार इस्लाम ने अब तक अपने अरब समर्थकों की जीवन-पद्धति पर बहुत ही कम प्रभाव डाला, उसी प्रकार मौलिक रूप से उनकी कविता भी उनकी पुरानी परम्पराओं के अनुकूल रही। नये देशों सीरिया और ईराक में प्रायद्वीप अरब के मुकाबले जीवन-स्तर उच्चतर मानकों तक उन्नत हो गया था। केज और कल्ब जनजातियों के बीच अनेक दशकों से संघर्ष चल रहा था। उमैय्यद शासन के विकास-काल में, अब्द-अल-मालिक और हज्जाज के अधीन, ये ही जनजातीय संघर्ष कविता के प्रमुख विषय थे। दरबार के कवि अल-अख्तल और उसके प्रतिद्वन्द्वी कवि जरीर और फरजदाक अभूतपूर्व क्रूरता के साथ एक दूसरे से लड़ते थे। उनके इस संघर्ष में अनेक छोटे-छोटे कवि हस्तक्षेप करने और उनके जैसी प्रसिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। बाद की अवधि में भी राजनीतिक कविताओं की प्रमुखता रही। हिशाम के शासन-काल में कवि अल-कुमायत ने अपनी कविता के जरिए चेष्टा की कि पैगम्बर मुहम्मद के वंशजों और विशेषकर फातिमा के समर्थकों के खलीफा पद के लिए दावों की पुष्टि की जाय। केवल खास अरब प्रायद्वीप में कवियों ने अपनी कविता का विषय कोमलतर रखा। मक्का और मदीना में कवियों ने कविता के जरिए अपनी राजनीतिक भूमिका पूरी करने के बाद चिन्तामुक्त **जीवनोपभोग** की कविताएँ आरम्भ कीं। स्त्री-प्रेम ने नये किस्म की प्रेम-कविता का रूप लिया। इस विषय का चित्रण प्राचीन कविता में रहा करता था और उसे सीरिया और ईराक में प्रायः एकमात्र नितान्त रूप से कसीदा काव्य के अनिवार्य आरम्भ के रूप में जारी रखा गया था। मक्का मे, अब्द-अल-मालिक के शासन में पुराने मखजम वंश के कवि उमर इब्न-अबी-रबिया अपने कोमल एवं अत्यधिक व्यक्तिगत गीत रचे। सभी का विषय मक्का की तीर्थयात्रा पर आने वाली बड़े घर की स्त्रियों से छेड़-छाड़ और प्रेम था। उन कविताओं में प्रेम की पीड़ा और वियोग की वेदना की पूरी तरह उपेक्षा की गई और इन बातों को छोड़ दिया गया था। स्मरणीय है कि पुरानी कविता की विषय-वस्तु केवल ये ही बातें थीं। नई प्रकार की कविताओं का, जो अरबों के लिए बिलकुल नवीन थीं, समूचे साम्राज्य में उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया। सांसारिक सुखों को ही जीवन का लक्ष्य मानने वाली कविताओं या शराब पीने के वक्त के गीतों के लिए वालिद द्वितीय ने नये क्षेत्र का उद्‌घाटन किया। यद्यपि पुराने मूर्तिपूजक अरबों की कविता में शराब ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, पर शराब को लेकर मुख्यतः कवि एक-दूसरे के सामने घमंड किया करते थे। इस दिशा में पैगम्बर मुहम्मद द्वारा लगाए प्रतिबंधों ने संसार से शराब पीने से आनन्द प्राप्त करने की आदत खत्म न की और न उससे कविता में शराब की प्रशंसा ही रुकी। फिर भी वालिद द्वितीय को इस्लामी मध्य-

गीत-प्रणाली का सच्चा सर्जनहार माना जा सकता है। इस गीत-प्रणाली को बाद में अब्बासिदों के शासन-काल में उत्साहपूर्वक आगे बढ़ाया गया। ऐसा करने में वालिद द्वितीय ने, ईसाई कवि अदी इब्न-जैद की, जो हिरा में हुआ था, परम्परा का अनुसरण किया।

वालिद द्वितीय की मृत्यु

महिलाओं, गायक-गायिकाओं और कवियों के बीच ऐश-मौज की जिन्दगी बिताने के कारण वालिद द्वितीय ने अपने पूर्ववर्ती खलीफा हिशाम द्वारा जुटाया गया धन खर्च कर दिया। फलतः उसे भी हिशाम की भाँति अपने गवर्नरों से धन चूसने को बाध्य होना पड़ा। उसने अपने दो पुत्रों को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया यद्यपि वे दोनों उस समय नाबालिग थे। इस कारण उसके सगे-संबंधी उसके विरोध में यजीद इब्न अल वालिद इब्न-अब्द-अल मालिक को राज-सिंहासन पर बैठाया। उसने बिना किसी विरोध के दमिश्क में जनता द्वारा निष्ठा की शपथ स्वीकार की। यद्यपि वालिद द्वितीय ने अपने विरुद्ध भेजी गई सेना का प्रतिरोध किया और इतनी वीरता से लड़ा जिसकी उम्मीद उससे न थी, पर फिर भी वह पराजित हुआ। तब वह पालमीरा के दक्षिण बुखरा में अपने किले में वापस लौट गया। फिर उसका वही हश्र हुआ जो तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान का हुआ। १७ अप्रैल सन् ७४४ को जब वह पवित्र कुरान पढ़ रहा था तो उसकी हत्या कर दी गई। यह काम सीरियाई जुंड ने किया जो उमैय्यद राजवंश के सर्वाधिक स्वामिभक्त लोग रहे थे। इस संबंध में ऐतिहासिक स्रोतों का कहना है कि ये लोग यमनवासियों की नीति के समर्थक थे। इन लोगों द्वारा वालिद द्वितीय की हत्या के दो कारण बतलाये जाते हैं। प्रथम तो अपनी नाम मात्र की जनजातीय निष्ठा के बावजूद, ये लोग वालिद द्वितीय की स्पष्ट रूप से घोषित 'केज' जनजाति के समर्थन की नीति के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। दूसरा कारण यह बतलाया जाता है कि अपने यमनवासी नाम के अनुरूप वे केज जनजाति के समर्थन की नीति के विरुद्ध थे। उस समय 'केज' जनजाति के समर्थकों का मतलब जजीरा की सेना थी। महत्वपूर्ण बात यह थी कि जजीरा की सेना ने सीरिया में होनेवाली इस उथल-पुथल से अपने को अलग रखा। पर बहुत जल्द ही इस सेना को सीरिया का नियन्त्रण करने के लिए भेजा गया। वास्तव में वालिद द्वितीय के विरुद्ध इस सत्ता-पलट से मारवानी शासन का अन्त हो गया। जब उससे सीरिया की सेना ने अपना समर्थन हटा लिया तो उसका आधार ही खत्म हो गया।

वालिद द्वितीय की हत्या से उमैय्यद राजवंश का अन्त शुरू हुआ। चूंकि खुद उमैय्यदों ने, जो अब तक स्थायी रूप से राजभक्त रहे, सीरिया में खलीफा पद की प्रतिष्ठा कम कर दी थी, खारिजियों का क्रांतिकारी प्रचार स्वयं सीरिया में बहुत ज्यादा बढ़ गया। अब तक इस प्रचार ने प्रान्तों में ही बड़ी प्रगति की थी। राजनीतिक विशृंखलन शुरू हो गया था।

यजीद तृतीय (सन् ७४४)

वालिद द्वितीय की मृत्यु के बाद यजीद, जिसने विद्रोह का नेतृत्व किया था, खलीफा बनाया गया। उसे धार्मिक व्यक्ति बतलाया गया है जो अपने धार्मिक कर्त्तव्यों का कड़ाई से पालन करता था और शब्दों और कामों, दोनों में, सच्चा था। जब लोगों ने उसके प्रति निष्ठा की शपथ ले ली तो उसने अपने सार्वजनिक भाषण में उन कारणों पर प्रकाश डाला जिनकी वजह से उसे चचेरे भाई (वालिद द्वितीय) के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ा। उसने वायदा किया कि वह सीमाओं को मजबूत और सुरक्षित बनाएगा, नगरों की भी उचित सुरक्षा की व्यवस्था करेगा, जनसाधारण पर से उन बोझों को हटाएगा जिनसे वे अब तक दबे रहे हैं और साथ ही सरकार के बेईमान अफसरों को हटाएगा। यदि वह लंबे समय तक जीवित रहता तो यह संभव था कि वह एक योग्य शासक सिद्ध होता, पर उसका शासन-काल बहुत संक्षिप्त और अत्यधिक उपद्रवग्रस्त रहा जिसमें कोई सुधार या उन्नति की गुंजाइश न थी। हिम्स और फिलिस्तीन के विद्रोह कुचल दिए गए।

यजीद तृतीय को सीरियाई सेना के सेनापतियों ने सन् ७४४ में उसके चचेरे भाई वालिद द्वितीय के स्थान पर खलीफा चुना था। इसलिए आश्चर्य की बात है कि यजीद का सबसे पहला काम यह हुआ कि उसने सीरियाई सेना को अपने पूर्ववर्त्ती खलीफा द्वारा स्वीकृत की गई वृत्तियाँ बंद कर दी। वास्तव में यजीद तृतीय वादा कर रहा था कि वह सीरियाई सेना को सीरिया में ही रहने देगा और उन पर इस बात के लिए निर्भर किये बिना साम्राज्य पर शासन करेगा कि उनसे अन्य प्रान्तों में शांति स्थापित कराई जाएगी। साम्राज्य की केज जनजाति समर्थक नीतियों को पूरी तरह बदलने के लिए उसने जिन अनेक कदमों की घोषणा की उनमें से यह एक कदम था। एक व्यापक रूप से प्रचारित उद्घाटन-भाषण में उसने उस नीति की रूप-रेखा प्रस्तुत की जिसे अच्छी तरह यमनवासियों का घोषणा-पत्र कहा जा सकता है। उसने वायदा किया कि (क) सभी अनावश्यक स्मारक भवनों का निर्माण बन्द किया जाएगा, (ख) उसके (खलीफा के) परिवार के सदस्यों को जोतने-बोने के लिए जमीन देने के लिए सरकारी खर्च पर अब कृषि-योजनाओं को शुरू न किया जाएगा, (ग) हर क्षेत्र से होने वाली सरकारी आय वहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं पर ही

खर्च की जाएगी और उससे जो बचत होगी केवल उसे ही निकटवर्ती क्षेत्रों की आवश्यकता पर खर्च किया जाएगा, (घ) सुदूर क्षेत्रों पर आक्रमण न किये जाएँगे ताकि सैनिकों को अपने घरों से दूर न जाना पड़े, (ङ) विजित देशों की प्रजा के साथ, उन पर कर-लगाने के मामले में अच्छा व्यवहार किया जाएगा ताकि उन्हें अपनी भूमि न छोड़नी पड़े या उन्हें किसी प्रकार कष्ट न पहुँचे, (च) साम्राज्य के सभी क्षेत्रों में सभी मुसलमान, चाहे वे अरब हों या गैर अरब, एक समान वृत्तियाँ पाएँगे, तथा (छ) अंत में उसने सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में रखने के सभी दावे छोड़ दिए और वायदा किया कि यदि वह इन वायदों को पूरा न कर सका तो सत्ता से हटने को तैयार रहेगा।

यद्यपि सीरियाई सेना के बड़े बहुमत ने यजीद तृतीय का समर्थन किया, पर हिम्स और फिलस्तीन के कुछ जुंडों ने, जो संभवतः सत्ता-पलट के कार्य में सम्मिलित थे, अपने वैध शासक (वालिद द्वितीय) की हत्या का विरोध किया। फिर भी उनका विरोध गंभीर न था और उसे आसानी से दबा दिया गया। इस संबंध में सुलेमान इब्न-हिशाम ने, जिसको वालिद द्वितीय के आदेश से गिरफ्तार किया गया था और जिसे यजीद तृतीय ने रिहा करा दिया, महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपनी निजी सेना 'धाक्वानिय्या' की मदद से वह आपत्ति करने वालों को नये शासन के विचार से सहमत करा सका। उसने आर्मेनिया, अजरबैजान और जजीरा के गवर्नर मारवान इब्न मुहम्मद को, जो जजीरा की काफी बड़ी केज जनजाति की फौज का सेनापति भी था, अपनी ओर मिला लिया। इसके लिए उसने उसकी गवर्नरी के क्षेत्र में समृद्ध और काफी बड़ी जनसंख्या वाले क्षेत्र मौसिल को भी शामिल करा दिया। स्पष्टतः यजीद तृतीय बहुत सतर्कता के साथ आगे बढ़ रहा था ताकि वह इस शक्तिशाली समूह को अपनी नीतियों से सहमत करा ले और अपनी ओर मिला ले। साथ ही उसका यह उद्देश्य भी था कि वह लोगों को अपने पूर्ववर्ती खलीफाओं की पुरानी नीतियों की व्यर्थता के बारे में सहमत करा ले।

मिस्र में यजीद की नई नीतियों के सम्पूर्ण कार्यान्वयन के लिए स्थिति बहुत अनुकूल थी। यद्यपि वहाँ हिशाम के शासन-काल में कुछ थोड़ी-सी अशांति हुई थी, पर उसे आसानी से दबा दिया गया। मिस्र की जनता आधारभूत रूप से अरबों के प्रति सहयोग की नीति अपनाए हुई थी जो इस बात से प्रकट है कि वे लोग-अरब-मिस्री नौसेना की कार्रवाइयों में लंबे अरसे से हिस्सा ले रहे थे। यह स्पष्ट था कि मिस्रियों को छोटी-मोटी रियायतें देने से शासन उन्हें पूरी तरह अपनी ओर मिला सकता था और वे बाद में अरबों का और अच्छी तरह समर्थन करते। मिस्र

के गवर्नर को आदेश दिया गया कि यह ३०,००० मिस्रियों को प्रति वर्ष २५ दीनार की वृत्ति स्वीकृत करे। यहाँ यह स्मरणीय है कि अरब नौसेना वैजेन्टाइन नौसेना के ढांचे की प्रतिकृति थी। यजीद तृतीय एक मिस्री सेना तैयार करना चाहता था जिसका प्रयोग नौसेना के संबंध में किया जा सके। वह ऐसा उत्तरी अफ्रिका और स्पेन में सीरियाई सेना पर दबाव कम करने के उद्देश्य से करना चाहता था। इन क्षेत्रों में स्थिति नियंत्रण के बाहर होती जा रही थी क्योंकि स्पेन में बर्बरों के बीच निरन्तर मतभेद चल रहे थे। जहाँ तक ईराक का संबंध है यजीद तृतीय ने केज जनजाति के समर्थक गवर्नर यूसुफ इब्न उमर को बर्खास्त कर दिया। उसके स्थान पर मंसूर इब्न जुम्हार अल-कालबी को ईराक का गवर्नर नियुक्त किया गया जो सत्ता पलट के जरिए वालिद द्वितीय को हटाने और उसकी हत्या कराने में यमन जनजाति का मुख्य षड्यंत्रकारी था। यजीद तृतीय के संक्षिप्त शासन-काल में उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य ईराकी सेना का पुनर्गठन और केन्द्रीय कोषागार की स्थिति सुदृढ़ करना था ताकि सेना में नये भरती होने वालों को वृत्ति दी जा सके। ईराकियों ने सामान्यतः ऐसे कदम का स्वागत किया होता पर नये गवर्नर मंसूर की नीति उन्हें स्वीकार्य न थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह चाहता था कि ईराक में स्थित सीरियाई सेना नई सेना में पूरी तरह शामिल होने पर कोई आपत्ति न करे।

ईराक और पूर्वी क्षेत्र में गवर्नर रहने की अपनी संक्षिप्त अवधि में मंसूर इब्न जुम्हार ने अपने भाई मंजूर को पूर्वी क्षेत्र में अपना प्रतिनिधि (लेफ्टिनेन्ट) नियुक्त किया। पर खुरासान क्षेत्र के गवर्नर नस्र इब्न सय्यार ने इस नियुक्ति को मान्यता देने से इन्कार कर दिया और अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए खुरासान के यमनी नेताओं के विरुद्ध कार्रवाई शुरू की। इन कदमों से अंततः उमैय्यद शासन के सभी विरोधियों में एकता हो गई जिससे खुरासान में अब्बासिद क्रान्ति की सफलता में बड़ी मदद मिली।

दुर्भाग्य से यजीद तृतीय की मृत्यु एकाएक २६ सितम्बर सन् ७४४ को हो गई। इस प्रकार उसने ६ महीने से अधिक शासन न किया। उसके बाद उसका भाई इब्राहीम इब्न-अल-वालिद खलीफा बना पर चार महीने तक ही शासन कर सका। सभी गुटों ने उसे अमीर अल-मुमीनीन (खलीफा) के रूप में मान्यता न दी। सीरिया में खुद सीरियाई सेना में गुटबंदी फैल गई और स्थिति इतनी बिगड़ गई कि समूचे साम्राज्य में पूर्ण अराजकता फैल गई। फलतः इब्राहीम के हाथों में केवल दो मास दस दिनों तक शासन-सूत्र रह सका। उसकी गिनती खलीफाओं में नहीं होती। आर्मेनिया के गवर्नर मारवान द्वितीय एक बहुत बड़ी सेना के साथ सीरिया

रवाना हुआ। उसका मुकाबला इब्राहीम से वालवेक और दमिश्क के बीच एक घाटी में हुआ। 'आइन उल-जार' की वह लड़ाई पूरे एक दिन चली पर अंत में इब्राहीम पराजित हुआ और मारवान द्वितीय को नये खलीफा के रूप में सलामी दी गई।

मारवान द्वितीय (सन् ७४४-७५०) और उमैय्यदों का पतन

उमैय्यदों के प्रतापी खलीफा अब्द-अल मालिक के वंश का एक विरोधी खलीफा मारवान इब्न-अल-हकाम का पौत्र मारवान इब्न-मुहम्मद भी हुआ जो एक कुर्दिश दासी महिला का पुत्र था। उसके पिता ने मेसोपोटामिया और आर्मेनिया के गवर्नर की हैसियत से अनेक वर्षों तक वैजेन्टाइनों के विरुद्ध आक्रमणों का नेतृत्व किया था। मारवान द्वितीय ने स्वयं काकेशस में बारह वर्षों तक युद्ध किया था। अपने इस अनुभव के आधार पर उसने इस्लामी सेना का पुनर्गठन किया। अव जो आक्रमण किये जा रहे थे उनमें यह पुरानी व्यवस्था काम नहीं कर रही थी जिसके अनुसार करों से प्राप्त राजस्व से सैनिकों को तनख्वाह दी जाती थी। अव और वड़े अनुशासन की आवश्यकता थी। फलतः मारवान द्वितीय ने फौज के पुराने जनजातीय संगठन के स्थान पर नई फौजी टुकड़ियाँ वनाईं जिनके प्रधान पेशेवर सैनिक वनाए गये। पुरानी फौजें विस्तारित पंक्तियों में लड़ती थीं जिनके आगे दो-दो व्यक्तियों के वीच कुश्तियाँ होती थीं जिनसे ही सामान्यतः युद्ध के परिणाम निर्णीत होते थे। इनके वदले मारवान ने छोटी, अत्यन्त चलन्त रणनीतिक इकाइयाँ गठित कीं।

मारवान ने यजीद तृतीय को मान्यता देने से इन्कार किया और उसके उत्तराधिकारी इब्राहीम इब्न-अल-वालिद के प्रति भी अपना विरोध प्रकट किया। वह सीरिया में वढ़ा और ऐसा करते हुए उसने वालिद के वारिसों के दावों का प्रतिनिधित्व किया। उसने अपने विरुद्ध वढ़ रही सरकारी सेना को पराजित किया। सेना के नेता सुलेमान, जो खलीफा हिशाम का पुत्र था, दमिश्क लौटते हुए वालिद के दोनों पुत्रों की हत्या कर दी और जो भी धन उसके हाथ लग सका उसे लेकर वह देश से भाग गया। ७ दिसम्वर सन् ७४४ को मारवान ने खुद दमिश्क में जनता द्वारा निष्ठा की शपथ स्वीकार की। फिर वह अपना निवास स्थान हर्रान में ले गया जहाँ उसके जनजाति के लोगों के; जो उसके प्रति वफादार थे, समर्थन पर टिक सकता था। इससे सीरिया में कल्व जनजाति के लोग उत्तेजित हो गए और उन्होंने विद्रोह कर दिया जिसे उसने उसी साल दवा दिया। तव उसने उन लोगों की एक फौज तैयार की और ईराक पर, जिसने उसके सामने अभी भी आत्मसमर्पण न किया था, आक्रमण किया। जव मारवान उस ओर वढ़ रहा था तो रुसाफा में जहाँ सुलेमान

रहता था, सीरियावासियों ने उससे अनुरोध किया कि वह खलीफा के रूप में उनका नेतृत्व करे। सुलेमान ने किनासरीन पर कब्जा कर लिया। फलतः मारवान को ईराक की ओर उसके बढ़ाव में हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने सुलेमान इब्न-हिशाम को पराजित कर दिया। सुलेमान पहले भाग कर हिम्स गया और फिर कूफा। चूँकि हिम्स ने अनेक महीने तक की घेराबन्दी के बाद ही आत्मसमर्पण किया था, मारवान ने घेराबंदी-दीवारों को गिरवा दिया। उसके बाद उसने बाबेक, दमिश्क जेरूसलेम और सीरिया के अन्य नगरों को घेरने वाली दीवारों (किलेबंदी) को भी गिरवा दिया। इसके बाद सन् ७४६ की गर्मियों में ही वह पूरे देश पर अपना वास्तविक अधिकार स्थापित कर पाया।

इस बीच साम्राज्य के पूर्व में उमैय्यदों की सत्ता पूरी तरह समाप्त हो गई थी। कूफा में चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों ने अली के भाई जफर के परपोता अब्दुल्लाह इब्न मुआविया को इमाम घोषित कर दिया था। चूँकि अब्दुल्ला ने मारवान के एक सेनापति अमीर इब्न-दुबारा द्वारा टिगरिस नदी के किनारे पराजित खारिजियों को अपने क्षेत्र में शरण दी थी, मारवान ने उस पर हमला किया और उसे मर्व में सन् ७४७ में पराजित कर दिया। वह खुरासान भाग गया पर वहाँ उसे एक कष्टकर प्रतिद्वन्द्वी समझ कर अब्बासिद नेता अबू मुस्लिम ने उसकी हत्या कर डाली।

अलावे, खारिजी कूफा में बीस महीने रहने के बाद मेसोपोटामिया में लौट आये और उन्होंने मौसुल पर कब्जा कर लिया। मारवान अभी भी सीरिया पर ही अपने अधिकार अच्छी तरह करने में व्यस्त था, अब तुरन्त अपने साम्राज्य के प्रमुख आधार-स्थल मेसोपोटामिया को बचाने के लिए दौड़ा। उसने अपने पुत्र को विद्रोहियों के विरुद्ध भेजा, पर एक दुर्भाग्यपूर्ण युद्ध के बाद वह नसीबीन की दीवार के पीछे लौट गया। सितम्बर सन् ७४६ में मारवान ने खारिजियों को निश्चित रूप से बुरी तरह पराजित किया। पर उन लोगों की शक्ति निश्चित रूप से अगले वर्ष पराभूत हुई जब मरवान के सेनापति यजीद इब्न हुबायराह को उनसे ईराक एक बार फिर छीन लेने में सफलता मिली। मारवान ने तब पूर्वी क्षेत्र में शांति स्थापित करने का काम अपने सेनापति पर छोड़ दिया और स्वयं हर्रान में रहने वापस चला गया।

पर जब मारवान अपने लक्ष्य को पूरी तरह प्राप्त करता-सा प्रतीत हुआ तो उसके जीवन के कार्य पर पूर्व से पुनः खतरा आता-सा प्रतीत हुआ। कुछ समय से खुरासान का गवर्नर नस्र इब्न सय्यार अब्बासिदों के षडयंत्रों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था। अब्बासिद वहाँ अपने अनुयायियों को काले झण्डों के साथ इकट्ठा कर

रहे थे, पर मारवान अपने गवर्नर द्वारा सहायता के लिए जरूरी अनुरोधों पर ध्यान देने में असमर्थ था।

खुरासान में अरब शासन के राष्ट्रीय ईरानी विरोधियों ने धर्मनिष्ठ मुसलमानों के साथ एकता कायम की जो वैधता के सिद्धान्त को मानते थे और जिनका विचार था कि बहुत आरंभ से ही उमैय्यदों का शासन खलीफा का नहीं पर एक लौकिक शासन था जिसका अल्लाह के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया था। उन लोगों का विचार था कि धर्मतंत्र में राज्य पैगम्बर मुहम्मद के परिवार यानी चौथे धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंशजों को मिलना चाहिए था। पर अब्बासिदों ने पूर्वी क्षेत्र में उमैय्यदों के विरुद्ध हवा अपने पक्ष में लाने में सफलता प्राप्त की। उन लोगों का पूर्वज अब्दुल्लाह इब्न अब्बास था जो पैगम्बर मुहम्मद और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली का चचेरा भाई था। अली की मृत्यु के बाद उसने मुआविया के साथ मित्रता कर ली थी और उसे बसरा में राज्य कोषागार के साथ सम्बद्ध कर दिया गया था। इधर अरबों में फूट का फायदा उठाते हुए अब्बासिद नेता अबू मुस्लिम ने मर्व पर कब्जा कर लिया जो मरगब घाटी के उपजाऊ मरूद्यान का केन्द्र था। वहाँ से उसने निशापुर के गवर्नर नश्र इब्न सय्यार के विरुद्ध संघर्ष आरंभ किया जो ऐसे युद्ध के रूप में परिणत हुआ जिससे अंत में उमैय्यद साम्राज्य खत्म हो गया। प्रथम आक्रमण अबू मुस्लिम ने खुद न किया, पर तय्यी जनजाति के कहतबाह इब्न-सलीह ने किया जो सन् ७१८ में ही खुरासान में अब्बासिद दल के बारह प्रधानों में से एक था। सन् ७४८ में मक्का में उसे इब्राहीम ने काला झण्डा दिया और अपना प्रतिनिधि बनाया। खुरासान लौटने पर उसने नश्र के पुत्र को तूस (ईरान) के निकट पराजित किया। नश्र स्वयं जरजान भाग गया था। सन् ७४८ में अबू मुस्लिम ने निशापुर में प्रवेश किया। नश्र के आह्वान पर ईराक के गवर्नर यजीद इब्न-हुबायरा ने जरजान में सेना भेजी। कहतबाह ने उसका मुकाबला किया और उसे १ अगस्त सन् ७४८ को पराजित किया। नश्र भागते हुए मारा गया। उसकी बची-खुची सेना फारस में निहावंद में सीरिया की शेष सेना में शामिल हो गई। वहाँ उन लोगों को कहतबाह के पुत्र हसन ने घेर लिया। किरमान के गवर्नर अमीर अल-मुरी के अधीन उन लोगों की सहायता के लिए एक बड़ी सीरियाई सेना भेजी गई जिसे १८ मार्च सन् ७४९ को इस्फाहान के निकट कहतबाह ने पराजित किया। कुछ महीनों के बाद निहावंद में घेर लिए गए सीरियाइयों ने खुरासान वालों के बारे में कोई परवा किये बिना आत्मसमर्पण कर दिया। खुरासान वालों का बिना किसी दया या हिचक के, कत्ले-आम कर दिया गया।

कहतबाह तुरत ईराक से निहावंद के लिए रवाना हो गया। पहले उसने इस प्रांत के गवर्नर से बचने की कोशिश की जो उससे मुकाबला करने के लिए टिग-

रिस नदी के उस पार आया था। मारवान तुरत कूफा की ओर मुड़ गया। जब गवर्नर यजीद इब्न हुवायरा ने उसका पीछा किया तो कहतबाह ने २७ अगस्त ७४९ को अनबर के निकट उसके शिविर पर हमला किया और उसे वासित लौट जाने को बाध्य किया। इस रात्रिकालीन मुठभेड़ में कहतबाह या तो नदी में डूब जाने से मर गया अथवा मारा गया। पर उसके पुत्र हसन ने, जो पहले भी एक वहुत स्वतंत्र नेता की भूमिका अदा कर चुका था, अपने पिता के नेतृत्व को बिना किसी दुर्घटना के अपने हाथों में ले लिया और कूफा पर कब्जा कर लिया।

यह नगर पहले से ही अब्बासिद आन्दोलन का केन्द्र रहा था। अबू सलाम, जो "पैगम्बर के परिवार का वजीर" था, खलीफा मारवान के आदेश से हुमयामा में गिरफ्तार कर लिया गया था और हर्रान ले जाया गया था। उसने अपने समर्थकों को पहले सलाह दे रखी थी कि वे कूफा में शरण लें और अपने भाई अबुल अब्बास को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। अक्टूबर ७४९ में चौदह अब्बासिद कूफा पहुँचे।

वजीर अबू सलामा, जिसने अपने को इब्राहीम के साथ केवल व्यक्तिगत स्तर पर सम्बद्ध किया था, बिना किसी चीं-चपड़ के अब्बासिदों के अधीनस्थ होने को इच्छुक न था। उसने खुरासानवासियों से अपने को अलग रखने की चेष्टा की। कहा जाता है कि उसने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों के साथ सहयोग के लिए बातचीत भी शुरू की। पर वहाँ पुनः यही समस्या थी कि अली के समर्थकों का कोई नेता न था जो उनका नेतृत्व करने को तैयार होता। अबू मुस्लिम का एक प्रतिनिधि बारह खुरासानवासी प्रधानों का नेतृत्व करता हुआ अबुल अब्बास से मिला और उन लोगों ने उसके प्रति निष्ठा की शपथ ली। अब अबू सलामा अब्बासिदों के पूरे सहयोग के संबंध में अपनी आपत्तियाँ अपने तक ही रखने को विवश हुआ और २८ नवम्बर ७४९ को अबुल अब्बास ने कूफा में एक मस्जिद में नये राजवंश के प्रति सार्वजनिक निष्ठा की शपथ ली। जो कुछ भी नई स्थिति हुई हो, खलीफा मारवान ने कूफा में अपने को कुछ असुरक्षित महसूस किया और अबू सलामा के साथ खुरासानवासियों के शिविर में गया। बाद में मारवान ने उसे छोड़ दिया। और हिरा चला गया। कुछ समय बाद ही उसने अबू सलामा का साथ छोड़ दिया। बाद में अबू सलामा की अबू मुस्लिम के एक साथी ने हत्या कर डाली।

टिगरिस नदी के ऊपरी भाग में जो सेनाएँ काम कर रही थीं उनका प्रधान अवन अल-आजदी था जिसे कहतबाह ने नियुक्त किया था। अब्बासिदों के कब्जे में कूफा के चले जाने के बाद अब्दुल्ला इब्न-अब्बास के आदेश से अल-आजदी को अपना पद छोड़ना पड़ा। मारवान खुरासानियों के विरुद्ध बढ़ा और वृहत् जब नदी के बायें किनारे उन लोगों के बीच युद्ध हुआ। नौ दिनों तक लड़ाई चलने के बाद मारवान

की पराजय हुई । खुरासानियों ने उसका पीछा किया तो वह हर्रान और दमिश्क के रास्ते भागते हुए मिस्र तटवर्ती नगर फार्मा चला गया । सीरिया के नगरों ने बिना किसी प्रतिरोध के नये शासकों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया । केवल दमिश्क में कुछ समय तक प्रतिरोध किया गया । अगस्त सन् ७५० के प्रथम पक्ष में निचले मिस्र में बुसीर में हुई अंतिम लड़ाई में मारवान मारा गया ।

मारवान के अंत के साथ ही पूर्व में उमैय्यदों के शक्तिशाली राजवंश के शासन का भी अंत हो गया । अपने अनेक पूर्ववर्त्ती खलीफाओं की चाल-चलन के प्रतिकूल मारवान अपने जीवन और आदतों में संत स्वभाव का था । वह प्राचीन इतिहास के अध्ययन के प्रति अनुरक्त था । वह इस संबंध में अपने सचिव और साथियों के साथ विचार-विमर्श करता था । वह काफी उम्र में सत्तासीन हुआ । पर उसके कार्य-कलाप में जो क्षिप्रता थी और जिस ठीक ढंग से उसने सभी ओर से उभरते अपने शत्रुओं का दमन किया उससे प्रतीत होता है कि उसकी बढ़ी हुई उम्र ने उसकी शक्तियों की धार कुंठित न की थी । यदि उसमें किसी सफल राजनेता के से व्यापक विचार और विस्तृत दृष्टिकोण और साथ ही विभिन्न स्वार्थों वाले तत्वों को एकजूट करके काम करने की मेल-मिलाप वाली प्रवृत्ति होती तो आज एशिया का इतिहास कुछ दूसरा ही होता ।

उमैय्यद सत्ता का अंतिम शरण-स्थल शिविर-नगर वासित था जिसे प्रतापी उमैय्यद गवर्नर हुज्जाज ने टिगरिस नदी के दलदली स्थान में स्थापित किया था । यह नगर और ग्यारह महीनों तक अब्बासिदों के विरुद्ध प्रतिरोध करता रहा यद्यपि वहाँ शत्रुओं से घिरे हुए उत्तरी और दक्षिणी अरबों के बीच फूट थी । जब तक वहाँ के गवर्नर यजीद इब्न-हुबायरा ने मारवान की मृत्यु की खबर सुन न ली तब तक उसने अब्बासिदों के साथ बातचीत शुरू न की । चालीस दिनों तक अनवरत वार्ता के बाद जो शर्तें स्वीकृत की गईं और जिन पर खुद अबुल-अब्बास ने अपना अनुमोदन दिया, उनका भी विजित पक्ष ने उल्लंघन किया । तब उन लोगों के अफसर गिरफ्तार कर लिए गए जिनमें गवर्नर यजीद भी था । बाद में उन लोगों को मृत्यु-दंड दिया गया ।

विजयी अब्बासिद भू-लुंठित और धूल-धूसरित उमैय्यद राजवंश पर अभूतपूर्व नृशंसता के साथ टूट पड़े । समूचे सीरिया में एक-एक उमैय्यद का पीछा किया गया और जंगली जानवरों की भाँति शिकार किया गया । यहाँ तक कि मुआविया और उमर द्वितीय की कब्रों को छोड़कर और सभी खलीफाओं की कब्रें ध्वस्त कर दी गईं । खलीफा हिशाम का केवल एक पौत्र स्पेन भाग सकने में सफल हुआ और वहाँ उसने एक नया साम्राज्य स्थापित किया ।

उमैय्यदों के पतन के साथ न केवल सीरियावासियों बल्कि सामान्यत: सभी अरबों ने इस्लाम में अपनी सार्वभौमसत्ता खो दी। उनका मूल निवास सम्पूर्ण बर्बरता का अखाड़ा बन गया। नये इस्लाम धर्मान्तरित गैर-अरब, जिन्हें अरब अब तक द्वितीय श्रेणी का मुसलमान समझते रहे, अब उन लोगों के समान स्थिति में आ गये। चूंकि अब्बासिदों ने अपनी विजय का श्रेय पूर्वी ईरान को दिया और चूंकि खुरासानियों के लिए भी उस विजय में उनका हिस्सा सुनिश्चित हो गया, अब से इस्लाम में ईरानियों का प्राधान्य हो गया। पर फिर भी वे लोग अरबों को पूरी तरह अवदमित न कर सके क्योंकि अफसरों और राज-काज करने वालों में उन लोगों की अभी भी नियंत्रणात्मक स्थिति थी और उन्हें पैगम्बर मुहम्मद के वंश के राजघराने का शक्तिशाली समर्थन प्राप्त था। फलत: नये साम्राज्य में सरकारी कामकाज और बौद्धिक जीवन और सबसे ऊपर धर्म में अरबी भाषा का प्राधिकार अभी भी अक्षुण्ण रहा।

इस प्रकार वालिद के अधीन उमैय्यद साफल्य की ग्रीष्मीय ऊष्मा के बाद, प्रकटत:, नयी शरद ऋतु का अभ्युदय हुआ। उसके बाद खलीफा होने वाले उसके कम योग्य भाइयों के अधीन उमैय्यद विजय की हरी-भरी पत्तियां मुरझाने लगीं और जल्द उन पत्तियों वाला पेड़ सूख कर ठूंठ हो गया जो अब्बासिदों की प्रतिशोधात्मक कुल्हाड़ी के निरन्तर प्रहार से टूक-टूक हो गया।

●

अध्याय-८

उमैय्यद खलीफाओं के अधीन प्रशासन और सामाजिक स्थिति

उमैय्यद राजवंश के राजनीतिक संस्थानों या सरकार के स्वरूप का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि कम-से-कम अपने प्रथम चरण में मुसलमानों की राजनीतिक धारणायें अरबों के पूर्व-अनुभवों से विकसित हुई थीं। वे लोग जनजातियों और उनके संघों तथा जनजाति के प्रधान और उसके सामान्य सदस्यों के बीच संबंधों और शक्तिशाली जनजातियों द्वारा कमजोर जनजातियों को दी जाने वाली सुरक्षा से भी पूरी तरह परिचित थे। यह अनिवार्य था कि जिस साम्राज्य का राजनीतिक ढाँचा उन्होंने इतनी शांति के साथ जीता, उसकी कार्य-नीति वे अपने परिचित ढांचे के अनुरूप स्थिर करते। बैजेन्टाइन, फारसी और इथियोपियाई साम्राज्यों के साथ अरबों के कुछ सम्पर्क थे, पर इन साम्राज्यों के राजनीतिक कार्यकलाप के बारे में उन्हें गहरी जानकारी न थी। जब वे वर्णन करते हैं कि सम्राट के दरबार के काल्पनिक दृश्य वास्तव में क्या थे (उदाहरण के लिए यह कि सम्राट इस्लामी धर्म के प्रति सहानुभूतिशील था) तो उसके मन में सम्राट के लिए किसी अरब प्रधान का कुछ भव्य रूप ही होता था। केवल सन् ७५० से ही, जब कि उमैय्यदों का पतन हुआ, उन लोगों ने राजनीतिक रूप से सरकार की फारसी परम्पराओं से कुछ सीखना शुरू किया।

प्रान्त और उनके महत्त्वपूर्ण अफसर

उमैय्यद खलीफाओं के शासन-काल में साम्राज्य के प्रशासनिक प्रभाग सामान्यत: उनके पूर्व के बैजेन्टाइन और फारसी साम्राज्यों के प्रभागों के जैसे ही थे। उसमें (१) सीरिया-फिलिस्तीन, (२) ईराक-समेत कूफा, (३) बसरा और फारस, सिजिस्तान, खुरासान, उमान और सामान्यत: यमामाह, (४) आर्मेनिया (५) हेज्जाज, (६) करमान और भारत के सीमावर्ती जिले, (७) मिस्र, (८) इफ्रिकियाह और (९) यमन और दक्षिणी अरब के शेष भाग शामिल थे। धीरे-धीरे इन स्थानों के समूह बना दिये गये और इनको पांच प्रदेशों में बाँट दिया गया जिनमें से हरेक में एक वाइसराय रहा करता था। मुआबिया ने बसरा और कूफा को मिला कर वाइसराय के अधीन कर दिया। इसी के अन्तर्गत ईराक को भी शामिल कर

दिया गया जिसमें फारस का अधिकांश भाग और पूर्वी अरब भी था और इसकी राजधानी कूफा में थी। बाद में ईराक के वाइसराय के अधीन एक डिप्टी गवर्नर पदस्थापित कर दिया गया जो खुरासान और ट्रान्जोक्सियाना का शासन का प्रबन्ध देखता था जो सामान्यतः मर्व में रहता था। इसी प्रकार एक अन्य डिप्टी गवर्नर को सिन्ध और पंजाब का शासन सौंप दिया गया। इसी प्रकार हेज्जाज, यमन और मध्य अरब को मिला कर एक वाइसराय के अधीन कर दिया गया। टिगरिस और युफ्रेटस नदियों के बीच भूमि के उत्तरी भाग, जो जजीरा नाम से जाना जाता था तथा अजरबैजान और पूर्वी एशिया माइनर को मिला कर एक तीसरे वाइसराय के अधीन कर दिया गया। निचला और ऊपरी मिस्र चौथे वाइसराय के शासन के अधीन था। इफ्रिकियाह, जिसमें उत्तरी अफ्रिका, मिस्र का पश्चिमी भाग, स्पेन, सिसली और अन्य निकटवर्त्ती द्वीप थे, पाँचवें वाइसराय के अधीन थे और उसका शासन-केन्द्र कैरबा था। पर सरकारी कार्य के तीन हिस्से राजनीतिक प्रशासन, कर-संग्रह और धार्मिक नेतृत्व, नियमतः तीन विभिन्न अफसरों के अधीन थे। वाइसराय (**अमीर, साहब**) किसी विशेष जिले के लिए अपना **अमील** (एजेन्ट, राज्य पद का अधिकारी) खुद नियुक्त करता था और केवल उसका नाम खलीफा के यहाँ अग्रसारित कर देता था। खलीफा हिशाम (सन् ७२४-४३) के अधीन आर्मेनिया और अजरबैजान का नव-नियुक्त गवर्नर दमिश्क में रहता था और अपने **नायब** (प्राधिकृत सहायक) को शासन-क्षेत्र में भेज देता था। वाइसराय या गवर्नर के अधीन अपने प्रान्त के राजनीतिक और सैनिक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण प्रभार था पर राजस्व का प्रबंध एक विशेष अफसर, **साहिब-अल-खिराज** के अधीन था जो खलीफा के प्रति सीधे उत्तरदायी रहा करता था। मुआविया ने ही सर्वप्रथम ऐसे अफसर को नियुक्त किया था और उसे कूफा भेज दिया था। इसके पूर्व मुस्लिम साम्राज्य में किसी सरकार का मतलब मुख्यतः उसके वित्तीय प्रशासन से होता था।

खिलाफत के उत्तराधिकार का स्वरूप :

धर्मनिष्ठ खलीफाओं के अधीन, जैसा कि हम देख आये हैं, खलीफा मदीना की जनता द्वारा चुना जाता था। चुनाव एक सार्वजनिक मस्जिद में होता था जहाँ नया खलीफा लोगों से निष्ठा की शपथ लेता था। खलीफा या सरकार का प्रधान चुनने की यह श्रेष्ठ पद्धति चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के बाद छोड़ दी गई। उसके स्थान पर खलीफा राजा का पद निजी सम्पत्ति जैसा हो गया। मुआविया ने खलीफा के पहले चुनावों में होने वाली जटिलताओं और अड़चनों को समझा और जान-बूझ कर उससे बचने के लिए अपने पुत्र यजीद को भावी खलीफा पद के लिए अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। उसके बाद से पैगम्बर मुहम्मद के समय से चला आने वाला खलीफा पद वास्तविक राजा के पद में परिवर्तित कर दिया गया।

उसके बाद यजीद ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुआविया द्वितीय को अपना उत्तराधिकारी खलीफा मनोनीत किया। **सूफियानियों** के अधीन भावी खलीफा के रूप में केवल एक व्यक्ति को चुनने की व्यवस्था के स्थान पर मारवानियों ने दो व्यक्तियों को भावी खलीफाओं के रूप में चुनने की व्यवस्था शुरू की। मारवान ने अपने चचेरे भाई और अपने भाई उमर द्वितीय और यजीद द्वितीय को बारी-बारी से अपने उत्तराधिकारी के रूप में मनोनीत किया। यजीद द्वितीय ने भी अपने भाई और एक पुत्र, हिशाम और वालिद द्वितीय को अपने उत्तराधिकारियों के रूप में मनोनीत किया।

बाद में सत्तारूढ़ शासकों द्वारा, एक ही समय, दो उत्तराधिकारियों के मनोनयन से एक नये किस्म की बुराई शुरू हुई। वंश की वरीय शाखा के अनेक बड़े और सक्षम सदस्यों को खलीफा का उत्तराधिकारी चुने जाने की आशा बिल्कुल छोड़ ही देनी पड़ी। मनोनयन की इस पद्धति के कारण वालिद द्वितीय के अधीन गंभीर उपद्रव हुए जिनके चलते अंततः उसकी हत्या कर दी गई। बाद में, वालिद द्वितीय की हत्या के कारण उमैय्यद दो गुटों में बँट गए जो उमैय्यद राजवंश के पतन का एक कारण हुआ। व्यवहारतः मुआविया के समय से ही शासकों ने अपने उत्तराधिकारियों के मनोनयन की पद्धति शुरू की और उस संबंध में खलीफा की उपस्थिति में राज्य के भद्र लोक और फौजी प्रधान उसके द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी के बारे में अपनी स्वीकृति देते थे। मनोनीत खलीफा की ओर से प्रान्तों में गवर्नर जनता द्वारा निष्ठा की शपथ लेते थे। इस पद्धति में प्रजातंत्र और निरंकुशता दोनों की बुराइयाँ शामिल थीं पर अच्छाइयाँ दोनों में से किसी की भी न थीं। एक बार जनता द्वारा निष्ठा की शपथ ले ली जाती थी तो जनता के मताधिकार को सीमित कर दिया जाता है। ऐसा अक्सर जोर-जबर्दस्ती, धोखा या किसी रूप में घूस देकर किया जाता था और इस प्रकार ऐसा माना जाता था कि मनोनयन को चुनाव-पद्धति का रूप दिया जा रहा है।

शूरा और खलीफा की स्थिति :

प्रारंभ में शूरा एक चुनी हुई या प्रतिनिधि समिति होती थी। पर तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के अधीन शूरा से परामर्श की पद्धति ही समाप्त हो गई। हेज्जाज के गवर्नर के रूप में उमर द्वितीय ने एक परिषद का गठन किया और वह प्रान्त के सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उससे सलाह लेता था। जब वह खलीफा बना तो यथासंभव अच्छे-से-अच्छे लोगों को उसने सलाहकार परिषद में लिया। पर उसका शासन-काल इतना संक्षिप्त रहा कि वह इस दिशा में कुछ विशेष हासिल न कर सका।

सर्वप्रथम उमैय्यद खलीफा अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए अपने द्वार पर किसी प्रहरी की नियुक्ति की बात सोच तक न सकते थे। पर जब मुआविया की हत्या का प्रयास किया गया तो उसने प्रहरी को नियुक्त किया और "यहाँ तक कि मस्जिद में उसने अपने लिए प्रार्थना-स्थल को विभाजित कर एक स्थान बनवाया जहाँ ही वह नमाज के समय उपस्थित होता और इस प्रकार संभावित हत्यारों से अपनी रक्षा करता था।"

मुआविया को राज्य में सर्वोच्च शक्ति प्राप्त थी। वह मुसलमानों के विश्वास का सम्पूर्ण अधिकारी और नियामक था। संत स्वभाव के उमर द्वितीय ने खलीफा के पवित्र पद में व्याप्त बुराइयों की जड़ खत्म करने की कोशिश की। उसने अपनी और अपनी पत्नी की पूरी सम्पत्ति राज्य-कोषागार को लौटा दी और गरीबों एवं निःसहायों के लिए राज्य-भोजनालय में दिये जाने वाला भोजन स्वयं भी खाकर अपने दिन गुजारने लगा। साथ ही उसने दरबारियों, गीत गायकों, कवियों, संगीतज्ञों और ऐसे अन्य लोगों को दरबार से निकाल बाहर किया। चूंकि शूरा अपने पुराने रूप में वापस नहीं ली जा सकती थी, उसने अपने को बड़े विद्वानों और प्रसिद्ध लोगों जैसे कि अल बासरी के सम्पर्क में रखा।

उमर बिन अब्दुल अजीज की मृत्यु के बाद उमैय्यदों का पुराना, शान-ओ-शौकत वाला दरबार फिर से कायम हो गया और साथ ही लौट आई खलीफा के महल की पुरानी सजधज और आरामतलबी की जिन्दगी। "मुस्लिम साम्राज्य का शासक अब पैगम्बर मुहम्मद का वास्तविक खलीफा न रहा बल्कि रोम के सीजर जैसा दुनियावी सम्राट हो गया जिसके हाथ में अपनी प्रजा पर अपरिसीम अधिकार थे।"

केन्द्रीय सरकार :

केन्द्र में पाँच परिषदें थीं, दीवान-ए-जुण्ड (सैनिक परिषद), दीवान-ए-उल खिराज (वित्त-परिषद), दीवान-उर रसेल (पत्राचार-परिषद), दीवान-उल खातिम (मुद्रा या मुहर परिषद) और दीवान-उल बरीद (डाक-परिषद)।

उमर प्रथम ने सभी अरबों और अन्य राष्ट्रीयता वाले मुस्लिम सैनिकों को जो विमुक्तियाँ दी थीं उनको उमैय्यदों के अधीन परिवर्तित कर दिया गया। हिशाम ने एकलाभ के रूप में निवृत्ति-वेतन दिये जाने का दुरूपयोग समाप्त कर दिया। किसी को भी यह निवृत्ति-वेतन दिये जाने की प्रणाली खत्म कर दी गई। यहाँ तक कि उमैय्यद राजकुमारों को भी जिन्होंने न तो स्वयं युद्ध में सेवा की थी और न ही अपने बदले किसी प्रतिस्थानी को भेजा था, निवृत्ति-वेतन देना बंद कर

दिया गया। उसने निवृत्ति-वेतन का अपना हिस्सा अपने मौला याकूत को दे दिया जिसने "उसके बदले युद्ध में हिस्सा लिया था।"

केन्द्रीय परिषद राज्य का पूरा वित्त-प्रशासन करती थी। "केन्द्रीय परिषद ही वह संस्था थी जहाँ राज्य की सभी प्राप्तियाँ ली जाती थीं और उससे व्यय किये जाते थे। साथ ही इस संबंध में वहाँ अभिलेख भी रखे जाते थे।"

सरकारी कोषागार और राजस्व :

धर्मनिष्ठ खलीफाओं अबू बकर, उमर और अली के अधीन सरकारी कोषागार वास्तव में जनता की सम्पत्ति थी जिस पर इस्लामी राष्ट्र मंडल के हर सदस्य को हक था कि वह राज्य की आय से भत्ता प्राप्त करे। मुआबिया के अधीन निरंकुश शासन की स्थापना के साथ साम्राज्य का राजस्व सम्राट (खलीफा) की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई और उस पर उसका सम्पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो गया। मुआविया ने इस प्रकार मिस्र से होने वाली पूरी आमदनी आस के पुत्र अम्र को दे दी क्योंकि उसने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के विरुद्ध उसकी (मुआबिया) मदद की थी। अम्र ने अपनी उस मदद के बदले इससे कम कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया था। उसने यह अस्वीकृति जोरदार शब्दों में की। वह नहीं चाहता था कि "जब गाय दूही जा रही हो तो दूध तो दूसरा आदमी ले और सींगें उसे पकड़नी पड़ें।"

राज्य का राजस्व उन्हीं स्रोतों से आता था जिनसे धर्मनिष्ठ खलीफाओं के अधीन आता था, जैसे कि (१) भूमि-कर, (२) गैर-मुसलमानों से जजिया कर, (३) निर्धन-कर, (४) चुंगी और आबकारी कर, (५) शत्रु से संधियों के अधीन लिया जाने वाला कर, (६) युद्ध में लूट का पाँचवाँ हिस्सा, (७) अल-फे, (८) जिन्स (अनाज आदि) रूप में लिए जाने वाले कर, (९) उत्सवों, समारोहों आदि के अवसर पर प्राप्त उपहार और (१०) बर्बर जनजाति से वसूला जाने वाला बाल-कर। हर प्रांत में वसूला जाने वाला कर सम्बद्ध प्रान्तीय कोषागार में जमा किया जाता था। इस संबंध में विकेन्द्रीकरण ही नियम था। प्रान्तीय प्रशासन से संबंधित सभी व्यय प्रान्तीय कोषागार से दिया जाता था, किसी प्रांत में पदस्थापित या उससे संलग्न सैनिकों, वृत्ति-धारियों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को उस प्रांत के राजस्व से ही भुगतान किया जाता था। उसी प्रकार उपयोगिता के सभी निर्माण कार्यों, जैसे कि सड़कों और नहरों तथा सार्वजनिक भवनों जैसे कि मस्जिदों और मदरसों पर निर्माण-व्यय उसी विशेष प्रांत के राजस्व से किया जाता था जहाँ उनकी अपेक्षा होती थी। प्रांतों में इन सब कार्यों से जो राजस्व बचा रहता था उसे दमिश्क में शाही कोषागार में जमा कर दिया जाता था। मुआविया ने जकाह

उगाहने की जो प्रणाली शुरू की थी वह आधुनिक राज्य के आय-कर से बहुत मिलता-जुलता था। जकाह सभी मुसलमानों की वार्षिक आमदनी पर अढ़ाई प्रतिशत की दर से लगता था। राजस्व उगाहने का काम अमीलों पर सौंपा जाता था जो, ऐसा प्रतीत होता है, कार्यपालिका के कार्य भी करते थे तथा उनका वैसा ही पद था जो ब्रिटिश भारत के कलक्टरों का होता था। कभी-कभी जब गवर्नरों के विशेष कर्तव्यों के साथ साहिव-जल-खिराज (कर-संग्राहकों) के कर्त्तव्य भी शामिल कर दिये जाते थे, जैसा कि उमर द्वितीय के शासन में अक्सर होता था, तो वे कर-संग्रह का कार्य अपने सचिव या कातिब को सौंप देते थे। इससे कभी-कभी गबन के मामले भी हो जाया करते थे। पर इसके लिए कठिन दण्ड दिये जाते थे जिसके अन्तर्गत अपराधी की सम्पत्ति भी जप्त कर ली जाती थी। पर सभी प्रान्तों में कर-संग्रह का एक ही मानक न होता था। विभिन्न प्रान्तों में प्रारंभिक खलीफाओं द्वारा लगाए गए वन्धेजों या स्वीकृत किये गये विशेषाधिकारों के अनुसार करों की दरों में अंतर होता था। जब कभी कहीं उस दर में परिवर्त्तन या बढ़ोत्तरी की जाती थी तो फलतः विद्रोह तक हो जाया करते थे।

वाइसराय के प्रदेश :

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है उमैय्यद साम्राज्य वाइसरायों के पाँच प्रदेशों में वंटा हुआ था। हेज्जाज, यमन और केन्द्रीय अरब एक वाइसराय के अधीन थे और निचला और ऊपरी मिस्र तक दूसरे वाइसराय के। दो ईराकों अर्थात् ईराक अरब (प्राचीन बेबीलोनिया और चाल्डिया) और ईराक आजम (खास फारस), उमान, बहरैन, करमान, सिस्तान, काबुल; खुरासान, सम्पूर्ण ट्रान्जोक्सियाना, सिन्ध और पंजाव हिस्सों को मिलाकर एक वृहत प्रान्त वनाया गया था जो ईराक के वाइसराय के अधीन था जिसका शासन-केन्द्र कूफा में था। खुरासान और ट्रान्जोक्सियाना डिप्टी-गवर्नरों द्वारा शासित होते थे जो सामान्यतः मर्व में रहता था। वहरैन और उमान बसरा के डिप्टी-गवर्नर के अधीन थे और सिन्ध तथा पंजाव एक विशेष अफसर के अधीन।

मेसोपोटामिया (अरबों का जजीरा), आर्मेनिया और अजरवैजान तथा एशिया माइनर के मार्गों को मिलाकर एक अन्य प्रान्त वनाया गया था। पर इन सभी वाइसराय-प्रदेशों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण इफ्रिका था। इसमें पूरे उत्तरी अफ्रिका से लेकर पश्चिमी मिस्र, स्पेन और दक्षिणी फ्रांस, सिसिली और सार्डीनिया तक शामिल थे। इसका शासन-केन्द्र कैरवा था। इसके अन्तर्गत टैंगियर्स और भूमध्य सागर के द्वीपों में डिप्टी गवर्नर शासन करते थे। स्पेन का शासन गवर्नर के अधीन न था और उसकी राजधानी कोरडोबा में थी।

न्यायपालिका :

न्यायपालिका केवल मुसलमानों के मामलों की सुनवाई करती थी। सभी गैर-मुसलमानों को अपने-अपने धार्मिक प्रधानों के अधीन स्वायत्त अधिकार प्राप्त था। यही कारण था कि केवल बड़े नगरों में न्यायाधीश थे। पैगम्बर मुहम्मद और प्रारंभ में हुए खलीफा स्वयं न्याय-निर्णय देते थे। प्रान्तों में उनके सेनापति और प्रतिनिधि राज्य-पदधारी यह काम करते थे। ऐसा इसलिए होता था कि सरकार के विभिन्न कार्यों का वर्गीकरण नहीं हुआ था। प्रान्तों में प्रथम विशुद्ध न्यायपालिका-पदाधिकारियों की नियुक्ति गवर्नरों द्वारा की गई। बाद में अब्बासिदों के शासन-काल में खलीफा द्वारा ही सामान्यतः न्यायपालिका-पदाधिकारियों की नियुक्ति होने लगी। हदीस में उल्लेख है कि इस बात का श्रेय खलीफा उमर प्रथम को था कि अल हिजरी २३ (सन् ६४३) में ही मिस्र में उसने न्यायाधीश (काजी) की नियुक्ति की। हम सन् ६६१ के बाद पाते हैं कि उस देश में एक के बाद एक न्यायाधीश की नियुक्ति नियमित रूप से होने लगी। उन लोगों की नियुक्ति प्रायः **फकीह** (आध्यात्मिक) वर्ग से होती थी जिनके सदस्य विद्वान और कुरान तथा मुस्लिम परम्पराओं के ज्ञाता होते थे। मुकदमों को निबटाने के अलावा वे लोग धार्मिक कार्यों (**वक्फ**) और अनाथों तथा अशक्तों के लिए सरकार द्वारा निर्धारित जायदाद का भी प्रबंध करते थे।

राजनीतिक एवं सैनिक प्रशासन :

हर प्रांत का राजनीतिक एवं सैनिक प्रशासन वाइसराय के हाथों में रहता था पर राजस्व का प्रभारी एक अन्य अफसर **साहिब-अल-खिराज** होता था। यह अफसर गवर्नर से पूरी तरह स्वतंत्र होता था और इसकी नियुक्ति सीधे सम्राट (खलीफा) द्वारा की जाती थी। प्रधान नगरों के न्यायाधीशों को अधिकार रहता था कि अपना अधीनस्थ (डिप्टी) न्यायाधीश स्वयं नियुक्त करें। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गैर-मुस्लिम सम्प्रदायों में न्याय-प्रबंधन का कार्य, बुद्धिमत्तापूर्वक, उन सम्प्रदायों के दंडाधिकारियों या पुरोहितों को सौंपा गया था। सार्वजनिक नमाजों की अध्यक्षता, जो एक महत्वपूर्ण कार्यवाही थी, या तो गवर्नर अथवा मुख्य काजी (न्यायाधीश) को सुपुर्द की जाती थी।

पुलिस का प्रधान (**साहिब उस-सुर्ता**) गवर्नर के अधीन काम करता था। हिशाम के शासन के प्रारंभ में एक नया बल (या संगठन) बनाया गया जिसे अहदास कहा जाता था। यह संगठन फौजी कर्त्तव्य पूरे करता था तथा इसकी स्थिति पुलिस और नियमित सेना के ठीक बीच की थी। सम्पूर्ण साम्राज्य के क्षेत्र में सम्राट (खलीफा) और प्रान्तीय गवर्नरों के बीच पत्राचार-व्यवस्था सुगम बनाने

तथा धोखेबाजों द्वारा की जाने वाली सरकारी घोषणाओं से बचाव कायम करने के लिए मुआविया ने एक बड़ी अदालत का विभाग भी खोला जिसका नाम मुहर-परिषद (**दीवान-ए-खातिम**) था। खलीफा द्वारा जारी किये गए हर अध्यादेश की नकल एक पंजी में की जाती थी और तब मूल अध्यादेश मुहरबंद करके गन्तव्य स्थान को भेज दिया जाता था। जब मुआबिया ने पाया कि खलीफा द्वारा हस्ताक्षरित कुछ पत्राचार के बारे में जालसाजी की जा रही है तो उसने एक निबंधन-विभाग खोला जिसका काम था कि हर सरकारी दस्तावेज की एक नकल रख ली जाय और तब मूल दस्तावेज को मुहरबंद कर उसे गन्तव्य स्थान को भेजा जाय। जब अब्द-अल मालिक सत्तारूढ़ हुआ तब तक उमैय्यदों ने दमिश्क में एक राज-अभिलेखागार विकसित कर लिया था।

मुआबिया ने एक डाक-व्यवस्था भी आरंभ की जिसे बाद में अब्बासिदों ने भली-भाँति सम्पूर्ण रूप दिया। उमैय्यदों की नीति को, निश्चित रूप से पूर्वी प्रान्तों में; मुआबिया ने उसका सच्चा स्वरूप नहीं दिया, बल्कि पूर्वी प्रान्तों में मुआविया की नीति का सच्चा संस्थापक अब्द-अल मालिक था। राज्य के मामलों में विदेशियों का प्रभाव हटाने के उद्देश्य से उसने आदेश दिया कि सरकारी पदों पर अरबों को पदस्थापित किया जाय। केवल अरबों को ही सरकारी पदों पर नियुक्त करने की नीति को आगे बढ़ाया। ईराक में उसके प्रतिनिधि गवर्नर हजाज ने जो अपनी ज्यादतियों के लिए प्रसिद्ध था उसने राज्य के पदों से न केवल गैर मुसलमानों को हटाने का प्रयास किया बल्कि उन मुसलमानों को भी जो अरब नहीं थे। यही नहीं, उसने गैर-मुसलमानों पर जजिया कर फिर से लगाया जो धिम्मियों को अदा करना पड़ता था। पर गैर-मुसलमानों को सरकारी पदों से हटाने की नीति सफल नहीं हुई। उसके तुरंत बाद फारसियों और ईसाइयों को बड़ी संख्या में, अधीनस्थ असैनिक सरकारी पदों और वित्त-संबंधी पदों पर पुनः पदस्थापित करना पड़ा। साथ ही उक्त नीति से व्यापक रूप से असन्तोष फैल गया और मारवान द्वितीय के शासन-काल में इस नीति के बुरे परिणाम प्रकट हुए। अब्द-अल-मालिक द्वारा उठाये गये दो कदम, निःसंदेह, अपने उद्देश्य में लाभकर सिद्ध हुए। ये कदम बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सफल राजनीतिक नीति से प्रेरित थे जिनका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। प्रथमतः अब्द-अल-मालिक ने एक सरकारी टकसाल स्थापित की। देश में प्रयोग में आने वाली विभिन्न मुद्राओं को वापस ले लिया गया और उसके बदले सोने और चाँदी, दोनों में ही, नई मुद्राएं जारी की गई।[1] मुद्रा संबंधी उसकी नीति

१. जिस ठीक तरीके से प्रथम अरब स्वर्ण-मुद्राएँ जारी की गई, वह आश्चर्यजनक था। स्वर्ण-मुद्रा का वजन ४.२५ ग्रेन था। चाँदी की मुद्रा (दिरहाम) से स्वर्ण मुद्रा के सम्बद्ध वजन का अनुपात १०:७ था। चाँदी की मुद्रा का वास्तविक वजन २.७२ ग्रेन था।

रोमन और सासानीद (फारसी) मुद्राओं के नामों के मिले-जुले रूप पर आधारित थी। अब्द-अल-मालिक का दूसरा सुधार भी उतना ही महत्वपूर्ण और स्थायी था। अब्द-अल-मालिक के शासन-काल से पूर्व राज्य का लेखा फारसी, यूनानी या सीरियाई भाषा में लिखा जाता था। उसने आदेश जारी किया गया कि अब से सरकारी पंजियों में हिसाब-किताब अरबी भाषा और अक्षरों में लिखा जाएगा।

यजीद द्वितीय के सत्तारूढ़ होने के पूर्व प्रान्तों में नियुक्तियाँ मुख्यतः राजनीतिक या प्रशासनिक कारणों से की जाती थीं। वाइसराय और राज्य पद के अधिकारियों की नीतियाँ तो इसलिए की जाती थी कि वे उन पदों के योग्य होते थे अथवा इसलिए कि उन लोगों ने खलीफा और राजवंश के प्रति अपनी सेवाओं या निष्ठा में विशिष्टता प्राप्त की थी। पर यजीद द्वितीय के शासन में सार्वजनिक पदों पर प्रिय पात्रों के प्रभाव से उनकी नियुक्ति मार्गदर्शक सिद्धांत बन गई। ऐसे लोगों द्वारा दबाव डालने से उन्हें ऊँचे-से-ऊंचे सरकारी पद दिये जाने लगे, भले ही वे लोग उन पदों के योग्य क्षमता रखते हों या नहीं। यहाँ तक हिशाम भी सरकारी पदों पर नियुक्ति में इन बाहरी प्रभावों से मुक्त नहीं था। इसी समय प्रशासन में एक और बुराई आ गई जिससे बाद में बड़ी गड़बड़ी हुई। अब तक सुदूर प्रान्तों के गवर्नरों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी नियुक्ति के स्थानों में ही रहें। पर अब शासक परिवार सदस्यों और यहाँ तक कि दरबार के विशिष्ट लोगों के बारे में यह आम बात हो गई कि सुदूर प्रान्तों में उनकी नियुक्ति के बाद भी वे राजधानी में ही रहते थे और सम्बद्ध स्थान में शासन का काम अपने सहायक अधिकार या अपने बदले किसी अन्य व्यक्ति पर सौंप देते थे। इस व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य होता था कि वह प्रान्त की आमदनी से अपने प्रधान यानी उक्त गवर्नर को अमीर बनाये और खुद भी धन हड़पे।

सैनिक संगठन :

सैनिक सेवा एक प्रकार साम्राज्य के, अरब में जन्म लेने वाले, सभी प्रजाजन के लिए अनिवार्य थी। उनलोगों पर इसके लिए बाध्यता थी कि वे अपने सम्बद्ध सैन्य गुट (झुंड) या सैन्य-दल के पताका-समारोहों में उपस्थित रहें जहाँ उन्हें सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता था। जो सैनिक सक्रिय सेवा में होते थे उन्हें उन लोगों से, जो केवल रिजर्व में रहते थे, अधिक वेतन मिलता था। पर हर व्यक्ति, जिसे अवसर आने पर सैनिक सेवा में बुलाया जा सकता था, राज्य से वृत्ति का अधिकारी होता था।

उमैय्यद सेना का ढांचा, सामान्य संगठन में, बैजेन्टाइनों के सैन्य-संगठन के अनुसार था। सेना की किसी टुकड़ी के पाँच भाग होते थे : केन्द्र भाग, दोनों बाजुओं

पर रहने वाला दो भाग, आगे रहने वाला भाग और पीछे रहने वाला भाग। जैसा पुराने समय से होता आया था, सेना में सैनिक पंक्तियों में रहते थे। सेना का सामान्य संगठन, उमैय्यद राजवंश के आखिरी खलीफा मारवान द्वितीय के पूर्व तक जारी रहा। मारवान द्वितीय (७४४-५०) ने सेना को भागों में बांटने की पुरानी व्यवस्था खत्म कर दी और उसके स्थान पर छोटी, संगठित टुकड़ियाँ बनाईं जो कुर्दूस (सैन्य दल का दसवाँ भाग) के नाम से पुकारी जाती थीं। वेश-भूषा और जिरह-वख्तर के मामले में अरब योद्धा और यूनानी योद्धा के बीच अंतर कर सकना मुश्किल था। उन लोगों के शस्त्रास्त्र भी एक जैसे होते थे। घुड़सवार सेना सीधे और गोल जीन का इस्तेमाल करती थी जो बैजेन्टाइन घुड़सवार सैनिकों जैसा न होता था। वह ठीक वैसा ही होता था जो अभी भी निकट पूर्व में सैनिकों द्वारा इस्तेमाल में लाया जाता है। सेना के भारी तोपखाने में पत्थर फेंकने के यंत्र (आरादाह) इसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त मध्य युग के इंजन और (मंजानीक) और गोला फेंकने के यंत्र होते थे। इन भारी इंजनों और घेरा डालने में प्रयुक्त यंत्रों को बोरों में बाँध कर ऊँटों पर ले जाया जाता था जो फौज के पीछे चलते थे।

साम्राज्य की राजधानी दमिश्क में मुख्यतः सीरियाई या सीरिया में बस गये अरब सैनिक रहते थे। बसरा और कूफा सभी पूर्वी प्रान्तों में सेना के मुख्य भरती-केन्द्र थे। अबू सूफियान का पुत्र होने के कारण मुआबिया और उसके बाद के दो खलीफा यजीद प्रथम और मुआबिया द्वितीय सूफियानिद कहे जाते हैं। उनके शासन में स्थायी सेना में सैनिकों की संख्या ६०,००० थी जिन पर प्रति वर्ष ६०,०००,००० दिरहम खर्च आता था जिसमें सैनिक परिवारों को दी जाने वाली वृत्तियाँ भी शामिल थीं। यजीद तृतीय (सन् ७४४) ने सेना को सभी वार्षिक भुगतानों में १० प्रतिशत की कमी कर दी। इसलिए उसे इतिहास में कम करने वाले नकीस (घटाने वाले) की उपाधि दी गई। उमैय्यद राजवंश के अंतिम खलीफा के समय सेना में सैनिकों की संख्या १,२०,००० हो गई। यह संख्या शायद गलती से १२,००० सैनिकों के स्थान पर दी गई है।

अरब नौसेना भी उसी प्रकार बैजेन्टाइन ढाँचे पर तैयार की गई थी। इसकी लड़ाकू इकाई एक लम्बी नाव जैसा जहाज होता था। इसकी दो निचली गोदियों (डाकों) में से हरेक में कम-से-कम पच्चीस स्थानों (सीटों) की व्यवस्था होती थी। ऐसे हर स्थान में दो आदमी बैठ सकते थे और हर जहाज पर एक सौ या उससे अधिक खेने वाले (मल्लाह) होते थे जो सशस्त्र रहा करते थे फिर जो लोग लड़ाई में विशेषज्ञता प्राप्त किये होते थे, वे जहाज की ऊपरी छत पर बैठते थे। उमैय्यद नौसैनिक-बेड़ा एक पदाधिकारी की कमान के अधीन काम करता था जिसे **अमीर-उल-बहर** "समुद्र का कप्तान" कहा जाता था।

फिर भी उमैय्यदों के अधीन प्रशासनिक यन्त्र प्राचीन किस्म का था। उस प्रशासन-यंत्र में वह विस्तार न था जो वाद में चलकर अब्बासिदों के अधीन हुआ और न ही प्रशासन में लगे अधिकारियों के बीच समुचित कर्तव्य विभाजन था जिससे प्रशासन की क्षमता वढ़ती। पुराना प्रशासनिक यन्त्र अपने तत्वों और प्रक्रिया के साथ ज्यों-का-त्यों वना रहा और स्वयं मुआविया ने अपने सचिव के रूप में एक सीरियाई ईसाई को नियुक्त किया था। साम्राज्य के स्थायित्व के लिए मुख्य समस्या यह थी कि खलीफा का उत्तराधिकारी चुनने का एक विनियम होता। उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया के सामने इस संवंध में पूर्वोदाहरण केवल दो ही थे—चुनाव और गृह-युद्ध। इनमें से पहला काम में लाये जाने लायक न था और दूसरे में प्रत्यक्ष कठिनाइयाँ थीं। खलीफा के वंशगत उत्तराधिकार का प्रश्न अरव विचार-प्रणाली के लिए इतना अधिक विजातीय था कि उसे स्वीकार करना संभव न था। मुआविया ने अपनी विशिष्ट कूटनीतिज्ञता से एक बीच का रास्ता अपनाया और अपने पुत्र यजीद को भावी खलीफा मनोनीत किया। यह प्रक्रिया इस वात का अच्छा उदाहरण है कि उसकी जनज़ातीय सांसद-प्रणाली किस प्रकार काम करती थी। इस संवंध में निर्णय खलीफा और दमिश्क की शूरा (विचारवान व्यक्तियों की समिति) ने मिलकर किया। इस संवंध में जनजातियों से सलाह ली गई और केवल तभी ही इसे लागू किया गया। इस संवंध में जो विरोध हुआ उसे बल-पूर्वक नहीं वल्कि समझा-वुझा कर तथा जहाँ जरूरत हुई वहाँ घूस-घास देकर दवाया गया।

उमैय्यद समाज :

खलीफा के कार्य और जीवन

उमैय्यद खलीफा से उम्मीद की जाती थी कि वड़ी मस्जिद में शुक्रवार को होने वाली नमाज और दैनिक नमाजों में अध्यक्षता करेगा। शुक्रवार की नमाज में मुआविया, अब्द-अल-मालिक और उमर द्वितीय अक्सर उपस्थित होते और उसमें अध्यक्षता करते थे पर रोज की नमाज में उपस्थित होने से वे अक्सर कतराते थे। शुक्रवार की नमाज में शासक (खलीफा) की उपस्थिति अनिवार्य होती थी जहाँ कि वह अपना धर्माध्यक्षीय भाषण करता था। इन अवसरों पर वह जामा मस्जिद में पूरे सफेद कपड़े पहने और नुकीली टोपी लगाए, जिसमें कभी-कभी हीरे जवाहरात जड़े होते थे, प्रकट होता था। पैगम्वर मुहम्मद की अंगूठी और राजदंड खलीफा पद के एकमात्र चिह्न जैसे होते थे। नमाज के वाद वह मंच पर चढ़ जाता था और एकत्र नमाजियों की भीड़ को सम्वोधित करता था। इस राजवंश के कुछ मौजी और ओछी तबीयत के खलीफा शुक्रवार की नमाज में भी शामिल होना

कष्टकर समझते थे। उदाहरण के लिए सार्वजनिक नमाजों में यजीद द्वितीय का प्रतिनिधित्व अक्सर उसका प्रधान अंगरक्षक (**ताहिब उश-शुर्त्ता**) करता था।

इन धार्मिक कार्यों के अलावा खलीफा अपीली उच्च न्यायालय के कर्त्तव्य भी पूरा करता था। वह अपने यहाँ आये राज्य के भद्रजनों और पड़ोस के राज्यों के राजदूतों से भी मिलता था। ये समारोह या तो सार्वजनिक (**आम**) होते थे या विशेष (**खास**)। सार्वजनिक समारोहों के अवसर पर एक बड़े स्वागत-कक्ष में सिंहासन पर खलीफा बैठा रहता था। उसकी दाहिनी ओर शाही वंश के राजकुमार तथा बाईं ओर दरबारी, उच्चाधिकारी और दरबार के सामान्य कर्मचारी बैठते थे। खलीफा के दरबार में पहुँचने के पूर्व वहाँ उपस्थित होने के हकदार सभी लोग उठकर खड़े हो जाते थे तथा खलीफा का अभिवादन करते थे। इनमें नगर के प्रसिद्ध लोग, कला-कौशल और अन्य वृत्तियों में लगे लोगों के प्रधान, कविगण, विधि-विशेषज्ञ आदि होते थे। खास समारोहों में केवल शासक वंश के सदस्य, राज्य के उच्चाधिकारी और विशेष कृपापात्र लोग शामिल होते थे। यह क्रम केवल उमैय्यद राजवंश तक ही सीमित न था। इन समारोहों में खलीफा शानदार पोशाक पहने होते थे।

संध्या समय खलीफा अपने मनोरंजन और लोगों से मिलने-जुलने के लिए रखते थे। मुआबिया विशेष रूप से ऐतिहासिक वर्णन और उपाख्यान सुनने का शौकीन था। खासकर वह दक्षिणी अरब के ऐतिहासिक उपाख्यान और कविताएँ सुनता था। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसने यमन से एक किस्सागो अबीद इब्न-शराया को बुलवाया था। वह उसे अनेक लंबी रातों को अतीत में हुए योद्धाओं की जीवन-गाथाएँ सुनाया करता था। उन दिनों का प्रिय पेय पदार्थ गुलाब का **शर्बत** था। अरब गीतों में इस शर्बत का जिक्र अक्सर आता है और दमिश्क और अन्य पूर्वी प्रान्तों में इस शर्बत का अभी भी प्रचलन है। विशेष रूप से महिलाएँ इसे पसन्द करती थीं।

मुआबिया का पुत्र यजीद खलीफाओं में प्रथम जाना-माना शराबी हुआ। फलतः उसे **यजीद अल-खुमार** यानी शराबी यजीद के नाम से पुकारा जाता था। उसे एक पालतू बन्दर, अबूकेज, को प्रशिक्षण देने में मजा आता था जो उसके शराब पीने के समय उसके साथ रहता था। ऐतिहासिक विवरण में हमें बतलाया गया है कि यजीद रोज पीता था। दूसरी ओर खलीफा वालिद हर दूसरे दिन पीता था। हिशाम शुक्रवार को नमाज आदि के बाद पीता था जब कि अब्द-अल-मालिक महीने में सिर्फ एक बार। पर वह इतना अधिक पीता था कि पीने के बाद जबर्दस्ती बक-झक करके अपनी और दूसरों की शांति में खलल डालता था। यजीद द्वितीय

अपनी दो गायिका लड़कियों—सलामा और हबाबा के प्रति इतना अनुरक्त था जब उसने खेल-खेल में उसमें से एक के मुँह में एकाएक अंगूर डाल दिया तो उसका गला रूंध गया। जवान खलीफा यजीद द्वितीय ने उसे इतना तंग किया कि वह मर गई। पर पीने की आदत उसने अपने पुत्र वालिद द्वितीय (सन् ७४३-४४) को पूरी तरह विरासत में दी। उमैय्यद राजवंश के खलीफाओं के शासन में शीघ्र ही गीत और गायन का स्थान लंबे-लंबे गीतों के उद्धरण सुनाने ने लिया। फलतः मक्का और मदीना से दमिश्क में अच्छे-से-अच्छे गायकों की भीड़ लग गई। दमिश्क उस समय संगीत कला का केन्द्र हो गया।

खलीफा वालिद द्वितीय अपना समय अपने रेगिस्तानी महल में बिताता था जो कार्याटाइन में था। यह स्थान दमिश्क और पालमीरा के बीच में अवस्थित है। इतिहास लेखक आशानी से उस महल में होने वाली भ्रष्ट शराबखोरी के जलसों में से एक का चश्मदीद वर्णन किया है। बराबर की तरह शराबखोरी के दौर में गायन और संगीत भी चलता रहता था। जब इन शराबी खलीफाओं में से कोई वैसी प्रकृति का होता था जो समुचित आत्म-सम्मान भी रखना चाहता था तो वह परदे के पीछे रहता था और इस प्रकार अपने को मनोरंजन-कर्त्ताओं से अलग रखता था और यदि खलीफा वैसा न होता था, तो वह मनोरंजन-कर्त्ताओं के साथ समान स्तर पर मनोरंजन में शामिल हो जाता था।

फिर भी ये मनोरंजन-पूर्ण समारोह पूरी तरह सांस्कृतिक मूल्य से विहीन न होते थे। इनमें कविता, संगीत और जीवन की सौंदर्यबोधपूर्ण विचारधाराओं को प्रोत्साहन भी मिलता था और ये समारोह केवल रंगरेलियाँ ही न होती थीं।

खलीफाओं और उनके दरबारियों के दोषहीन और शानदार मनोरंजन में शिकार; घुड़सवारी और पासे के खेल थे। अब्बासिदों के समय चौगान एक प्रिय खेल हो गया था। उसका आरंभ उमैय्यदों के शासन के अन्त में हुआ और यह फारस से अरबों के क्षेत्र में आया था। मुर्गों की लड़ाइयाँ भी उस समय अक्सर होती थीं। शिकार का पीछा करने का खेल भी आरम्भ हुआ जिसमें एकमात्र (सालुकी जो यमन में सालुक स्थान से लाया गया था) कुत्ते का इस्तेमाल किया जाता था। शिकार में चीते का उपयोग बाद में शुरू हुआ। इस्लाम में उमैय्यद खलीफा यजीद प्रथम पहला शिकारी शासक हुआ। उसी ने चीते को प्रशिक्षण दिया कि वह घोड़े के पिछड़े भाग पर सवारी करे। वह अपने शिकारी कुत्तों को सोने के घुंघरुओं से सजाता था और हरेक की निगरानी एक खास दास को सुपुर्द करता था। अब्द-अल-मालिक का लड़का वालिद खलीफाओं में प्रथम था जिसने सार्वजनिक दौड़-प्रतियोगिताओं का प्रारम्भ किया और उनको संरक्षण दिया था। उसके भाई और उत्तराधिकारी सुलेमान ने एक राष्ट्रीय घुड़दौड़

प्रतियोगिता के लिए तैयारियाँ शुरू ही की थीं कि उसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके भाई हिशाम ने जो घुड़दौड़ें आयोजित की थीं उनमें शाही और अन्य अस्तबलों में घुड़दौड़ों के घोड़ों की संख्या चार हजार हो गई थी जो "इस्लाम-पूर्व और इस्लाम के इतिहास-वृत्त में एक अभूतपूर्व बात थी।" इस खलीफा की एक प्रिय पुत्री घुड़दौड़ के लिए घोड़ों की देख-रेख करती थी। बतलाया जाता है कि हिशाम पहला खलीफा था जो घोड़ों की नस्ल सुधारने के लिए घुड़दौड़ों का आयोजन करता था। इतिहासकार मसूदी कहता है कि उसके द्वारा आयोजित घुड़दौड़ों में उसके अपने और अन्य अस्तबलों में चार हजार घोड़े थे जितनी संख्या में घोड़े पहले कभी नहीं रखे गये थे। यहाँ तक कि राजकुमारियों को भी घुड़सवारी में प्रशिक्षण दिया जाता था और वे घुड़सवारी करती थीं।

ऐसा लगता है कि शाही घराने की महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता मिली हुई थी। मक्का के एक कवि अबू दहबाल ने मुआविया की खूबसूरत पुत्री अतीका को संबोधित करते हुए प्रेम-गीत लिखे। जब वह हज पर मक्का गई थी तो उसके उठे हुए घूंघट से उसकी झलकी देखी और बाद में उसके पीछे-पीछे उसके पिता की राजधानी तक गया। मुआविया को आखिर में अपनी पुत्री के प्रति कवि का प्रेम खत्म करने के लिए "उसकी जीभ काट देनी पड़ी" और साथ ही उसे आर्थिक सहायता के अलावा उसके लिए एक अच्छी पत्नी भी ढूंढ़ देनी पड़ी। एक अन्य कवि वद्दाह अल-यमन ने, जो खुद भी खूबसूरत था, दमिश्क में वालिद प्रथम की पत्नियों में से एक से इश्क फरमाने की हिम्मत की। उसने इस बारे में खलीफा वालिद प्रथम की धमकियों की भी परवा न की जिससे अन्ततः उसे अपनी जान भी गँवानी पड़ी। मुआविया की चालक और खूबसूरत नतिनी अतीका का अपने खलीफा पति अब्द-अल-मालिक पर बहुत ज्यादा प्रभाव था जो इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि एक बार खलीफा से क्रुद्ध हो कर उसने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया और उसे तभी खोला जब एक प्रिय पात्र दरबारी रोता हुआ आया और उसे यह गलत खबर दी कि उसके दो पुत्रों में से एक ने दूसरे को मार दिया है और खलीफा मारने वाले पुत्रों को फाँसी देने को तैयार हैं। हरम व्यवस्था और उसके साथ बेगमों का हुक्म बजाने के लिए हिजड़ों को रखने की परिपाटी वालिद द्वितीय के समय तक पूरी तरह आरम्भ न की गई थी। सबसे पहले के हिजड़े अधिकांशतः यूनानी थे। स्पष्टतः उनको बैजेन्टाइन साम्राज्य में रखे जाने के उदाहरण के प्रभाव से वे अरब साम्राज्य में भी रखे जाने लगे[२]।

---

२. जे० बी० बेरी-इम्पीरियल ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम इन दी नाइन्थ सेन्चुरी, लंदन, १९११, पृ० १२०।

राजधानी दमिश्क

यह मानना अनुचित न होगा कि उमैय्यद राजवंशों की राजधानी दश्मिक के जीवन के सामान्य स्तर और स्वरूप में उस समय से अब तक कोई बड़ा परिवर्त्तन न आया है। आजकल की तरह उस समय भी दमिश्क-निवासी, वहाँ की सँकरी और ढँकी हुई सड़कों पर अपने ढीले-ढाले पाजामे, लाल नुकीले जूते पहने और बड़ी-बड़ी पगड़ी बाँधे धूप के कारण भूरे रंग की चमड़ी वाले बद्दुओं के कन्धे से कन्धे रगड़ते हुए चलते थे। बद्दू लोग ढीले-ढाले लबादे पहने और कूफिया (सर ढँकने का शाल) से अपने को लपेटे तथा इकाल (सर की पट्टी) से सजे रहते थे। कभी-कभी रईस और समृद्ध लोग भी जहाँ-तहाँ देखे जाते थे जो अपना सफेद सिल्क का आबा पहने रहते और तलवार या भाला लिये रहते थे। जैसा कि अन्य नगरों में होता था, अरब अपनी सम्बद्ध जनजातियों के बीच अलग घरों में रहते थे। दमिश्क, हिम्स, एलैप्पो और अन्य नगरों में अरबों के ये मकान भलीभांति चिह्नित होते थे। ऐसे हर घर का दरवाजा सड़क से दालान में खुलता था जिसके मध्य में पानी का एक बड़ा पात्र रहता था। उससे पानी की धार निकलने का एक छिद्र होता था जिससे समय-समय पर घूँघट के आकार की एक बौछार निकलती रहती थी। दालान के एक ओर नारंगी या नींबू का पेड़ होता था जो बड़े घर में वृक्षों के समूह से ढंका होता था **बनू-उमय्या** (उमैय्यद) की यह चिरकालीन कीर्ति है कि उन लोगों ने दमिश्क में एक जल-प्रणाली की व्यवस्था की थी जो समसामयिक पूर्वी देशों में एक अभूतपूर्व-सी बात थी। यह जल-प्रणाली अभी भी काम कर रही है। यजीद के नाम पर अभी भी एक नहर है जिसे नहर यजीद के नाम से पुकारते हैं। इसे उसने बरादा से खुदवाया था या संभवतः विस्तृत कराया था। इसका उद्देश्य घूटा में सिंचाई की व्यवस्था करना था। इसके अलावा नहर यजीद, बरादा से चार अन्य शाखाएँ या धाराएँ निकाली गई थी, जिनसे पूरे नगर के क्षेत्र में उपजाऊपन और ताजगी का विस्तार होता था। इस प्रकार दमिश्क के खलीफाओं ने अपने लिए निश्चित रूप से नगर और उसके आकर्षक पर्यावरण को अप्रतिम सौन्दर्य का निवासस्थल बनाया था। खलीफा का महल सोने और संगमर्मर पत्थर से जड़ा हुआ था। महल के फर्श और दीवारों पर बहुमूल्य पच्चीकारी की गई थी और साथ ही महल में पानी के ठंढे छींटे बिखेरने वाले फव्वारे और जलप्रपात बनाये गये थे। उसके दरबार के चारों ओर खुशनुमा ठंढक का वातावरण बना रहता था। महल के बागीचों में दुर्लभ और छायादार पेड़ लगाए गए थे जिनपर चिड़ियाँ चहचहाती रहती थीं। महल के भीतरी छतों में भी पेड़ों और पौधों का ऐसा ही खूबसूरत वातावरण था। नगर में प्रवेश के लिए छः शानदार फाटक थे। उनकी ऊँची मीनारें नगर की ओर आने वाले यात्रियों को दूर से ही नजर आती थीं। जब अरबों ने सीरिया पर विजय प्राप्त की तो उन

लोगों के पास वहाँ अपनी भवन-निर्माण कला की रचना के लिए समय न था पर उन्होंने जल्द ही वहाँ ऐसी भवन-निर्माण कला का विकास किया जो बनावट और निर्माण-पद्धति की सम्पूर्णता में फारसियों और बैजेन्टाइनों, दोनों, की भवन-निर्माण कला से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ और आकर्षक थी। आरम्भ में सीरियाई घोड़े नव-रोमन शैली के आधार पर तैयार किये गए पर ईराक में वे फारसी पद्धति और रुचि के अनुकूल थे।

सामाजिक प्रभाग

सम्पूर्ण साम्राज्य में आबादी चार वर्गों में विभक्त थी—शासक वर्ग, आश्रित वर्ग (मवाली), धिम्मी और दासगण। इसमें सबसे ऊँचा वर्ग स्वभावतः शासक मुसलमानों का था जिनमें प्रधान थे खलीफा के घराने के लोग और अरबों की विजय के बाद आये रईस परिवार। उमैय्यद खलीफाओं के खर्चीले और शानदार जीवन का ऊपर जिक्र किया जा चुका है। शासक वर्ग में ऐसा जीवन बिताने वाले कितने सदस्य थे यह बात निश्चित रूप से नहीं बतलाई जा सकती। वालिद प्रथम के शासन काल में दमिश्क और उसके जिलों (जुंड) में जिन अरब मुसलमानों को वार्षिक वृत्ति दी जाती थी उनकी संख्या ४५००० तक पहुँच गई थी। मारवान प्रथम के अधीन हिम्स और उसके जिले में २० हजार लोगों को वृत्ति दी जाती थी। जिन गैर-मुसलमानों ने मुस्लिम धर्म अपनाया था उनकी संख्या उमर द्वितीय द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के पूर्व अधिक नहीं रही होगी। यद्यपि खलीफा-शासित क्षेत्र की राजधानी दमिश्क का रूप उमैय्यदों के शासन-काल के अंत तक मुस्लिम नगर जैसा था, पर प्रान्त सीरिया, का रूप, मोटे तौर पर, तीसरी मुस्लिम शताब्दी (अल-हिजरी) तक किसी ईसाई क्षेत्र जैसा था। छोटे नगरों, गाँवों और खासकर पहाड़ी क्षेत्रों, ने, जहाँ तक मुस्लिम रहन-सहन के तौर-तरीके नहीं पहुँच सके, अपना मूल रूप और प्राचीन सांस्कृतिक ढांचा कायम रखा। वास्तव में लेबनान पर अरबों की विजय के शताब्दियों बाद भी वहाँ ईसाई धर्म और बोलचाल में सीरियाई भाषा चलती रही। अरबों के साथ लेबनानियों का सम्पर्क वहाँ पर विजय के बाद समाप्त हो गया। अरबों के साथ लेबनानियों का धार्मिक, जातिगत और सबसे ऊपर भाषागत संघर्ष अभी शुरू ही हुआ था।

मवाली

अरब मुसलमानों के बाद मवाली नये मुसलमान थे जिन्होंने बलपूर्वक या समझाने-बुझाने के बाद इस्लाम धर्म अपनाया था। सिद्धान्ततः उन्हें मुसलमानों में शामिल कर लिया गया था पर व्यवहारतः नहीं। वास्तव में उन्हें इस्लाम नागरिकता के

पूरे अधिकार न मिले थे। इस मामले में अरबों का अन्ध धर्मवाद, जो उनके सैद्धान्तिक दावों के सर्वथा विरुद्ध था, इतना कट्टर था कि नव धर्मान्तरित मुसलमानों के दावे पूरे किये जा सकें।

अरबों ने इस्लाम धर्म फैलाने के लिए जो विशाल धन खर्च किया था उससे एक नया वर्ग मवाली (एकवचन मौला) का विकास हुआ। मवाली मुसलमान था पर वह किसी अरब जनजाति का वंशज न होने के कारण मुस्लिम सम्प्रदाय का पूर्ण सदस्य न था। इस प्रकार उनमें फारसी, आर्मेनियाबासी, मिस्रों, वर्वर और दूसरे गैर-अरब लोग शामिल थे जिन्होंने इस्लाम धर्म अपनाया था। उनमें कुछ ऐसे लोग भी शामिल थे जो अरबी भाषा बोलते थे और अरब के ही किसी स्थान के थे पर जिन्होंने किसी-न-किसी कारण से प्रधान सम्प्रदाय (अरब) की पूर्ण सदस्यता खो दी थी और उसे फिर प्राप्त न कर सके थे। उनके अन्तर्गत गैर-मुसलमान शामिल न थे जिन्हें धिम्मी कहा जाता था। वे सुरक्षित धर्मों के अनुयायी थे। चूंकि उन्होंने अधिक देर से कर देना और कुछ सामाजिक अयोग्यताओं को स्वीकार किया था, इसलिए इसके बदले में उनके प्रति मुस्लिम राज्य सहिष्णुता का बर्ताव करता था।

मवालियों की आश्रितों की-सी स्थिति थी। ये नव-धर्मान्तिरित मुसलमान मुस्लिम सम्प्रदाय में सबसे निचली स्थिति के थे। इस स्थिति के प्रति वे बहुत विरोध भाव रखते थे। यही कारण था कि हम पाते हैं कि वे ईराक में शिया लोगों या फारस में खारिजियों के उदयों का समर्थन करते थे। जैसा कि अक्सर होता है, उनमें से कुछ धार्मिक दृष्टि से खलीफा के बहुत बड़े और यहाँ तक कि आवश्यकता से अधिक समर्थक थे। धर्मान्तरण के बाद अपने नये धर्म के प्रति उनकी निष्ठा कट्टरता की सीमा तक पहुँच गई थी जिससे वे गैर-मुसलमानों को सताते तक थे। प्रारंभ में इस्लाम धर्म अपनाने वालों में अत्यधिक असहिष्णु वे लोग थे जिन्होंने ईसाई या यहूदी धर्म छोड़ कर इस्लाम धर्म अपनाया था।

मुस्लिम सम्प्रदाय में इन आश्रित लोगों (मवाली) ने स्वभावतः सबसे पहले अपने को गहन अध्ययन और ललित कलाओं में लगाया। इसका कारण था कि वे संस्कृति की सुदीर्घ परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते थे। बौद्धिक क्षेत्र में वे मुस्लिम अरबों से भी आगे बढ़ गए। उन्होंने राजनीतिक नेतृत्व में उनसे प्रतिस्पर्धा आरंभ की। विजयी अरबों के साथ साम्प्रदायिक विवाहों के चलते उन्होंने अरब-रक्त मिश्रित कर दिया और अंततः विभिन्न जातीय वंशों के मिश्रण में शुद्ध अरब-रक्त सुस्पष्ट और अलग न रह सका।

फिर भी मवाली बड़ी संख्या में अरब अंसार (पैगम्बर समर्थकों) में इकट्ठे होने लगे जिनमें से हरेक में उन्होंने तेजी के साथ मजदूरों, कारीगरों, दूकानदारों,

व्यापारियों और ऐसे अन्य लोगों का, जो अरब रईसों की आवश्यकताएँ पूरी करते थे, बड़ा बाहरी नगर बसा दिया। मुसलमानों में वे सिद्धान्तः अरबों की बराबरी के ही थे और उनका दावा था कि उन्हें अरबों के साथ आर्थिक और सामाजिक समानता का दर्जा दिया जाय। उनका यह दावा उमैय्यद राजवंश के शासन की अवधि में कभी पूरी तरह स्वीकार न किया गया। जब कि कुछ मवाली जमीन्दार नये शासन के प्रति अपनी सेवाओं के चलते इसमें सफल हुए कि उन पर अरब मुसलमान जमींदारों के जितना ही कर लगाया जाय पर इसमें अधिकांश को असफलता ही मिली। जब अब्द-अल मालिक के सत्तारूढ़ होने तक ऐसी स्थिति आ गई कि मुस्लिम सरकार ने गैर-मुसलमानों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करनेवालों को प्रोत्साहन देना बंद कर दिया। साथ ही मवालियों को नगरों से अपने-अपने गाँवों और खेतों की ओर वापस भेजना शुरू किया गया ताकि राज्य की गिरती हुई आमदनी को ऊपर उठाया जा सके। वास्तव में मवालियों ने, विशेषतः खुरासान के सीमावर्ती प्रान्तों और सुदूर पश्चिम में इस्लामी फौजों में अरबों के साथ-साथ युद्ध किया। पर उन्होंने स्थल सेना के रूप में युद्ध किया और अरब घुड़सवार सेना के मुकाबले उन्हें कम वेतन और युद्ध की लूट में कम हिस्सा मिलता था। तत्कालीन अरब साहित्य में बहुत स्पष्ट रूप से मवालियों की सामाजिक हीनता की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। एक विशुद्ध अरब महिला के साथ मोला के विवाह को कष्टकर एवं अनुपयुक्त संबंध माना जाता था। यहाँ तक कि एक अरब लेखक ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि क्या ऐसे संबंधों को बिहिश्त में चले गए पुण्यवान लोग भी सहन कर सकेंगे।

मवालियों की संख्या तेजी के साथ बढ़ने लगी और वे अरबों की संख्या में ज्यादा बढ़ गए। जिन नगरों में सेनायें रहती थीं वहाँ मवालियों का जमाव होने लगा। वे असन्तुष्ट और खतरनाक नगरवासी थे। अपने बढ़ते हुए राजनीतिक महत्व के बारे में वे जागरूक थे। साथ ही उन्हें अपनी सांस्कृतिक वरिष्ठता और फौजी कार्रवाइयों में अपने बढ़ते हुए अंशदान के बारे में पूरी जानकारी थी। उनकी मुख्य शिकायत आर्थिक थी। अरब राज्य का पूरा ढाँचा इस बात पर आधारित था कि अल्पसंख्यक अरब बहुसंख्यक करदाता गैर-मुस्लिमों पर शासन करेंगे। यदि मवालियों की आर्थिक समानता की बात मान ली जाती तो उसका मतलब होता राज्य की आमदनी में कमी और खर्च में वृद्धि। इसका मतलब राज्य व्यवस्था में पूरी अस्तव्यस्तता ले आना होता। यद्यपि प्रधान जाति (अरब) और मवाली के बीच विभाजन बहुत हद तक अरबों और गैर-अरबों के बीच वंशगत विभाजन जैसा ही था, साथ ही यह राष्ट्रीय विभाजन नहीं बल्कि आधारभूत रूप से आर्थिक और सामाजिक विभाजन के समरूप था। ईराक और बहरीन के गरीब अरब, जिनके

नाम दीवान (पंजी) में अंकित न था बहुत कुछ मवाली के स्तर के होने को बाध्य हो गए थे और उनकी शिकायतें भी मवाली की शिकायतें जैसी ही थीं।

मवाली के असंतोष ने शिया लोगों के आन्दोलन में अपनी धार्मिक अभिव्यक्ति पाई। शिया लोगों का आन्दोलन विशुद्ध रूप से अरब आन्दोलन के रूप में शुरू हुआ। साथ ही पहले यह एक विशुद्ध राजनीतिक गुट था जो खलीफा पद के लिए धर्मनिष्ठ खलीफा अली और उसके वंशजों के दावों को लेकर चला था। पहले अली साम्राज्य की राजधानी कूफा (ईराक) ले गया और फिर उमैय्यद सीरिया ले गए। इस कारण उमैय्यदों के इस कदम से क्षुब्ध स्थानीय ईराकी देशभक्त तत्वों से शिया धर्म को समर्थन मिला। शिया धर्म के प्रचारकों ने असन्तुष्ट जनता और विशेषतः मवाली के प्रति अपना आन्दोलन सम्बोधित किया और इसमें उन्हें बड़ी सफलता मिली। मवाली लोगों में पैगम्बर मुहम्मद के वंश के ही किसी व्यक्ति को वैध रूप से खलीफा का पद मिलने में जितनी दिलचस्पी और रुचि थी उतनी खुद अरबों में न थी। शिया धर्म ने विशेष रूप से धार्मिक अर्थ में राज्य और स्थापित व्यवस्था के विरोध का रूप धारण कर लिया। राज्य या स्थापित व्यवस्था स्वीकार करने का अर्थ हो गया सुन्नी धर्म या कट्टर इस्लामी पंथ का अनुसरण करना। जैसा कि उम्मीद की जा सकती थी मवाली, फारसी और अन्य लोग, विशेष रूप से, शिया धर्म के अधिक उग्र और किसी धर्म-पंथ से समझौता न करने के रूप के प्रति अधिक आकर्षित थे। वे लोग इसमें कई अन्य धार्मिक विचारधाराएं ले आये। ये विचार-धाराएं उनके पूर्व के धर्मों-ईसाई, यहूदी और फारसी से लाई गई थीं।

धिम्मी

समाज के तीसरे वर्ग धिम्मियों में उन धर्म-पंथों के लोग थे जिनके प्रति मुसलमानों ने सहिष्णुता बरती थी। वे किसी धर्म-पुरुष द्वारा उद्घाटित धर्म को मानने वाले अथवा तथाकथित **अहल-अल-धिम्माह** थे। इनके अन्तर्गत ईसाई, यहूदी और साबियन आते थे जिनके साथ मुसलमानों की धार्मिक सहमति थी। साबियनों को मांडियनों अर्थात् तथाकथित सेन्ट जोन्स के ईसाइयों के रूप में जाना जाता है। वे लोग अभी भी यूफ्रेटस नदी के मुहाने पर स्थित दलदल वाले जिले में पाए जाते थे। कुरान में तीन स्थानों पर उनका उल्लेख आता है[3]। इससे स्पष्ट होता है कि पैगम्बर मुहम्मद उनको सच्चे ईश्वर (अल्लाह) में विश्वासी मानते थे। सहि-ष्णुता की दृष्टि से देखे जाने वाले इन धर्मों को मान्यता प्राप्त थी। उन धर्मा-वलम्बियों से शस्त्रास्त्र के लिए और साथ ही उन्हें बाध्य किया गया कि वे कर अदा करें जिसके बदले मुसलमान शासक उन्हें सुरक्षा प्रदान करेंगे। यह नया राजनीतिक

३. **कुरान**, २, ३९ : ५, ७३ : २२, १७

विचार हजरत मुहम्मद का था। उन लोगों को यह सुरक्षा इस कारण दी गई कि पैगम्बर मुहम्मद ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाईविल को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। और साथ ही इसका कारण यह था कि बनू घासन, वकर और तगलीव तथा अन्य ईसाई जनजातियों के संभ्रांत लोगों के आपस में संबंध थे।

इस स्थिति में धिम्मियों को भूमि और प्रति व्यक्ति कर देने के बदले अरब शासकों से बहुत काफी सहिष्णुता का व्यवहार प्राप्त था। यहाँ तक कि दीवानी और फौजदारी न्यायिक कार्यवाही में उन सब मामलों में, जिनमें कोई मुसलमान अन्तर्गस्त न होता था, ये लोग व्यवहारतः अपने-अपने आध्यात्मिक प्रधानों के अधीन होते थे। मुस्लिम कानून को इतना पवित्र समझा जाता था कि उसे उन पर लागू न किया जाता था। इस प्रणाली के प्रमुख भाग ओटोमन शासन की अवधि और ईराक, सीरिया कथा फिलस्तीन के शासन-प्राप्त शासनों में भी लागू थे। पहले यह सहिष्णुता की भावना कुरान धर्मग्रन्थ मानने वालों तक ही सीमित थी जो इस्लाम शासन के अधीन आते थे। वाद में मुसलमानों द्वारा यह सहिष्णुता की स्थिति अग्नि-पूजक जरतुस्त्र धर्मावम्बियों (पारसियों), हर्रान के गैर-मुसलमानों और गैर-मुस्लिम बर्बर जनजातियों के वारे में भी लागू की गई।

फारस के जरतुस्त्र धर्मावलम्वी (पारसी) और उत्तरी अफ्रिका की वर्वर जनजाति के लोग किसी व्यक्ति पर उद्‌घाटित धर्म मानने वाले न थे और इस प्रकार वे मुसलमानों द्वारा दी जानेवाली सुरक्षा के दायरे में न आते थे। उन लोगों के सामने मुसलमानों ने तीन विकल्प रखे; या तो वे इस्लाम धर्म स्वीकार करें, या लड़ाई के मैदान में आएँ अथवा कर अदा कर दें। बल्कि सच पूछा जाय तो उन लोगों ने उनके सामने प्रथम दो विकल्प ही रखे यानी वे या तो इस्लाम धर्म अपनाये या लड़ाई के मैदान में आएँ। पर जो क्षेत्र इस्लाम साम्राज्य की राजधानी से बहुत ही दूर पर स्थित थे और जहाँ तक पहुँचने में कठिनाई थी, उनके मामले में मुस्लिम शासकों द्वारा दिए गए ये विकल्प तकनीकी रूप में लागू न हो सके बल्कि वहाँ तत्काल उचित स्थिति प्रतीत हुई वही लागू की गई। ऐसे सुदूरस्थ स्थान जैसे कि लेबनान में ईसाइयों का हाथ बराबर ऊपर रहा और वे लाभजनक स्थिति में थे। अब्द-अल-मालिक के शासन में भी, जिसे कि उमैय्यद शासन की चरमोत्कर्ष अवधि कही जा सकती है, ईसाइयों ने इस मामले में अरब शासकों की अवज्ञा की। समूचे सीरिया में उमैय्यदों के अधीन ईसाइयों के साथ अच्छा वर्ताव किया जाता था और ऐसा धार्मिक उमैय्यद शासक उमर द्वितीय के समय तक हुआ। हम पिछले अध्यायों में देख आये कि उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया की पत्नी ईसाई थी। उसी प्रकार उसका कवि, चिकित्सक और वित्त-सचिव भी ईसाई

था। इस मामले में हम केवल एक स्पष्ट अपवाद देखते हैं। वालिद प्रथम ने ईसाई जनजाति बन् तगलीब के प्रधान को इस कारण मौत के घाट उतार दिया था कि उसने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था।

उमर द्वितीय की प्रसिद्धि केवल इस बात को लेकर नहीं है कि वह भक्ति-भावना से पूर्ण धर्मात्मा खलीफा था और उसने नव-धर्मान्तरित मुसलमानों पर लगाए गए करों में छूट दी। उमर द्वितीय प्रथम खलीफा था और उमैय्यद राजवंश का एकमात्र खलीफा जिसने ईसाई प्रजा पर अपमानजनक प्रतिबंध लगाए। कहीं-कहीं गलती से कहा गया है कि ये कदम उमर प्रथम ने उठाये थे जो उमर द्वितीय का परनाना था। यह तथाकथित "उमर का समझौता पत्र", जिसके जनक के रूप में उमर प्रथम का नाम लिया जाता है, अधिकांशतः बाद के स्रोतों में, कई अभिलेखों में उल्लिखित है। इसके उपबन्धों में मुसलमानों और ईसाइयों घनिष्ठतर पारस्परिक संबंधों की बात कही गई है जो अरबों की विजय के प्रारंभिक हितों में संभव न था। इस उमैय्यद खलीफा (उमर द्वितीय) द्वारा निर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण आदेश यह था कि उसने ईसाइयों को सरकारी पदों से हटा दिया। उसने इस बात पर भी रोक लगा दी कि वे पगड़ी न बांधा करें, माथे पर सामने के बाल काट लिया करें, विशिष्ट कपड़े और चमड़े का कमरबंद पहनें, घोड़े पर बिना जीन के सवारी करें, या सामान रखने वाली जीन पर सवारी करें, उपासना के घर न बनायें और प्रार्थना के समय अपनी आवाज ऊँची न उठायें। उमर द्वितीय के आदेश के अनुसार यदि कोई मुसलमान किसी ईसाई को मार डालता था तो उसे दंड-स्वरूप सिर्फ जुर्माना होता था और अदालतों में किसी मुसलमान के विरुद्ध किसी ईसाई की गवाही स्वीकार न की जाती थी। यहूदियों पर भी इनमें से कुछ प्रतिबंध लागू थे और उन्हें भी सरकारी पदों पर न रखा जाता था। इनमें से कई सरकारी आदेश बहुत दिनों तक कायम न रह सके जो इस बात से प्रकट है कि हिशाम के अधीन ईराक के गवर्नर खलीद इब्न अब्दुल्ला अल-कासरी ने अपनी ईसाई माँ को प्रसन्न करने के लिए कूफा में गिरजाघर बनवाया, ईसाइयों और यहूदियों को प्रार्थना-गृह बनाने का अधिकार दिया और यहाँ तक कि जरतुस्त धर्मावलम्बियों (पारसियों) को सरकारी पदों पर नियुक्त किया।

दास

दास शब्द उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होता जो इस्लाम में दासों की स्थिति में रहते थे। मुसलमानों में दासता किन्हीं अन्य व्यक्तियों में लागू दासता की स्थिति के जैसी न थी। अरब पैगम्बर मुहम्मद ने माननीय दासता पर रोक लगाई थी। उन्होंने आदेश दिया था कि माता-पिता से उनके बच्चों को अलग न किया

जाय और न किसी संबंधी को अपने संबंधी से। उन्होंने यह आदेश भी दिया था कि "दासों" को उसके स्वामियों और स्वामिनियों की भाँति ही भोजन और वस्त्र दिये जायँ और उनके साथ कभी दुर्व्यवहार न किया जाय। साथ ही उनका यह आदेश भी था कि वे "वन्धन मुक्ति धन" देकर अपने को स्वतंत्र करा सकें या इस प्रकार अपनी मुक्ति के लिए कार्य कर सकें। "दासों" को मुक्त करना सबसे ज्यादा अच्छा काम समझा जाता था। "दास" वास्तव में घर के सदस्य जैसे होते थे। फिर भी अन्य वैध प्रणालियों के मुकावले इस्लाम में दासों की वेहतर स्थिति के वावजूद उनके बहुत काफी वड़ी संख्या में रहने का अरब समाज पर बुरा प्रभाव पड़ा। उससे दासों के संबंध में इस्लाम धर्म के मानकों में गिरावट आई और नैतिकता के वंधन ढीले पड़ गए। उमैय्यदों के शासन-काल में इस संबंध में और भी बुरे तथा दुष्टतापूर्ण फल दीख पड़ने लगे। विदेश में वस गए मुसलमानों ने प्रजा-देशों के लोगों की पुत्रियों से अक्सर अन्तर्जातीय विवाह किये जिसके परिणाम इतिहास में अक्सर देखे जाते थे। यदि विदेश में वसने वाले मुसलमानों ने ऊँची जातियों जैसे गोथों, फ्रैंकों, पारसियों और यूनानी लड़कियों से विवाह किये तो स्वभावतः उन लोगों के वंशजों की स्थिति में सुधार हुआ। और यदि उन लोगों ने निचली जातियों जैसे इथियोपियनों में अंतर्जातीय विवाह किये तो उनके वंशजों की स्थिति विगड़ी।

समाज के सबसे निचले स्तर पर थे दास। इस्लाम ने दासता का पुराना शामी (सेमेटिक) संस्थान कायम रखा था जिसकी वैधता ईसाइयों के पुराने घोषणा पत्र (ओल्ड टेस्टामेंट) में स्वीकार की गई है। उससे दासों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। मुस्लिम कानून ने इस वात पर रोक लगाई है कि अपने समान धर्म के लोगों को दास वनाया जाय पर उसमें इस वात का वायदा नहीं किया गया है कि विदेशी दास को भी स्वतंत्रता दी जाय। प्रारम्भिक इस्लाम में युद्ध-वंदियों में से, जिनमें महिलायें और वच्चे भी शामिल थे, दास भरती किये जाते थे। उन्हें तभी मुक्त किया जाता था जव उनके लिए वंधन-मुक्ति धन दिया जाता था या जव उन्हें खरीदा जाता था अथवा किसी देश के द्वारा आक्रमण करके उन्हें युद्ध-वंदी के रूप में ले लिया जाता था। फिर शीघ्र ही सभी मुस्लिम देशों में दासों की खरीद-विक्री का व्यवसाय वहुत तेज और आर्थिक रूप से आकर्षक हो गया। पूर्व या मध्य अफ्रिका से जो दास लाये जाते थे वे काले होते थे। फरगना या चीनी तुर्किस्तान से लाये गए दास पीले होते थे और निकट पूर्व या पूर्वी और दक्षिणी यूरोप से लाये गए दास गोरे। स्पेनी दासों में से, जिन्हें एकालिबाह कहा जाता था, हरेक का मूल्य एक हजार होता था जवकि तुर्की दासों में से हरेक का मूल्य केवल छः सौ दिनार होता था। इस्लामी कानून के अनुसार किसी महिला दास या किसी पुरु-

दास या उसके स्वामी के अलावा किसी अन्य पुरुष से उत्पन्न पुत्र दास ही होता था। यदि उसके स्वामी से उत्पन्न पुत्र को वह अपने पुत्र के रूप में स्वीकार न करता था तो वह पुत्र भी दास ही होता था। पर किसी आजाद व्यक्ति से महिला दास का उत्पन्न पुत्र आजाद माना जाता था।

विभिन्न देशों पर विजय से मुस्लिम साम्राज्य में बहुत बड़ी संख्या में जो दास आये उनके बारे में निम्नलिखित बढ़ा-चढ़ा कर पेश की गई संख्या से एक अन्दाज मिल सकता है—मूसा इब्न नुसायर ने इफ्रिकियाह में ३००,००० लोगों को बंदी बनाया जिनमें से पाँचवें हिस्से को उसने खलीफा वालिद के सुपुर्द कर दिया। उसने स्पेन[४] में गोथिक भद्र लोगों में से ३०,००० कुँआरी महिलाओं को बन्दी बनाया। कुतयबाह ने केवल सोगदियाना से १००,००० लोगों को बन्दी बनाया। अल-जुबैयर इब्न अल-अब्बास ने वसीयत के रूप में जो सम्पत्ति छोड़ी उसमें एक हजार पुरुष और महिला दास थे। मक्का के प्रेमगीतों के प्रसिद्ध कवि उमर इब्न-अबी-रबिया के यहाँ सत्तर से अधिक दास थे। किसी उमैय्यद राजकुमार के लिए एक हजार दास रखना कोई असाधारण बात न थी। सिफिन की लड़ाई में सीरियाई सेना में किसी सामान्य सैनिक सेवा के लिए एक से दस सेवक रहते थे।

किसी स्वामी के लिए रखेलिन के रूप में, बिना कानूनी ढंग से विवाह किये, किसी महिला दास को रखने की अनुमति थी। इस प्रकार जो बच्चे होते थे वे स्वामी की संतान होते थे इसलिए स्वतंत्र होते थे। पर दासी रखेलिन की स्थिति इसके बाद ऊँची हो जाती थी और उसे **उम्म बलाद** (बच्चों की माँ) कहा जाने लगता था। उसे स्वामी-पति न तो किसी के हाथ बेच सकता था और न किसी को यों ही दे सकता था और उसकी मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र घोषित की जाती थी। इस परस्पर-मिश्रण प्रक्रिया में अरबों और विदेशियों का एक हद तक मिश्रण हो गया। इसमें दासों के व्यवसाय ने निश्चित रूप से बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

दासों की मुक्ति बराबर एक अच्छा काम मानी जाती थी। इस संबंध में धारणा थी कि ऐसा करने वालों को मरने के बाद दूसरी दुनियाँ में पुरस्कार मिलेगा। स्वतंत्र हो जाने के बाद दास अपने पूर्व स्वामी के, जो अब उसका संरक्षक हो जाता था, आश्रित की स्थिति का उपभोग करता था। यदि उसका पूर्व स्वामी (अब संरक्षक) बिना वारिस के मर जाता था तो इसकी सम्पत्ति विरासत में उसे ही मिलती थी।

---

४. अरबों ने "स्लाव" पूर्वी यूरोप में रहने वाली एक जाति के लिए यही शब्द प्रयोग किया है।

मक्का और मदीना का जीवन

मदीना के शांत जीवन में जो अपने प्रारम्भिक मुस्लिम सम्पर्क के कारण संवेदनशील हो गया था, भावी विद्वान पहुँचने लगे जो धर्मग्रन्थों और उनके पवित्र अतीत के अध्ययन में व्यस्त रहते थे और कानूनी तथा रीति-रिवाजों संबंधी सरकारी आदेशों और नियमों के संग्रह में लगे रहते थे। इस प्रकार जिस नगर में पैगम्बर मुहम्मद की कब्रगाह थी, वह इस्लामी परम्परा का प्रथम केन्द्र हो गया। इसके अलावा अनास इब्न मलिक (सन् ७०९ से ७११ के बीच) और अब्दुल्ला इब्न उमर इब्न-अल-खताब (सन् ६९३) के अधीन नगर में प्रथम श्रेणी का विज्ञान विकसित हुआ।

मक्का के विद्यालय की ख्याति का श्रेय अब्दुल्ला इब्न-अल अब्बास को था जिनका उपनाम अबू अल अब्बास था। वे पैगम्बर मुहम्मद के चचेरे भाई और अब्बासिद खलीफाओं के पूर्वज थे। अब्दुल अल अब्बास की सर्वत्र प्रशंसा इसलिए होती थी कि उसे लौकिक और पवित्र परम्पराओं तथा न्यायिक अधिकार-क्षेत्र के बारे में पूरी जानकारी थी और उसे कुरान के बारे में टीका-टिप्पणी देने की दक्षता थी। इस कारण उसे **हिब्र अल उमामा** (समुदाय के संत) की उपाधि मिली। यह उपाधि किसी के लिए भी ईर्ष्या की वस्तु थी। पर आधुनिक आलोचक उसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि उसने अनेक हदीसों[5] (पैगम्बर के परम्परा-ग्रन्थों) के बारे में कपोल-कल्पित बातें कहीं।

---

५. जैसा कि हमें जानकारी है, हदीथ या हदीस (जिसका शाब्दिक अर्थ एक कहानी, वर्णन या प्रतिवेदन है) उस ज्ञान-शाखा की एक इकाई है जिसका नाम भी हदीस ही है। यह एक प्रकार का वर्णन होता है जो साधारणतः संक्षिप्त होता है। उसमें यह जानकारी दी होती है कि पैगम्बर ने क्या कहा तथा क्या किया। साथ ही यह भी कि उन्होंने किस बात को पसन्द किया और किसे नापसन्द। इसी प्रकार हदीस में उनके साथियों खासकर वरिष्ठ साथियों और उनमें भी विशेषतः प्रथम चार खलीफाओं के बारे में ऐसी ही सूचनाएँ संग्रहीत होती हैं। हर हदीस दो भागों में बँटी होती है। ये दो भाग हैं—हदीस का पाठ या विषय-वस्तु (मत्न) तथा उसके संचारकों (प्रसारकों) के नामों की शृंखला या इसनाद। इसनाद हदीस के समर्थन में दिया होता है। पुराने और आधुनिक इतिहासकार दोनों इस बारे में एकमत हैं कि पहले हदीस उनके साथ के इसनाद के बिना ही निकले। इसनाद आठवीं शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में सामने आये। मोटे तौर पर यही वह समय था जब एक लिखित औपचारिक ज्ञान-शाखा के रूप में बड़े परिमाण में हदीस भी निकलें। फिर

उमैय्यदों के शासन में हेजाज के दो नगरों ने अपना रूप ही बिल्कुल बदल दिया। अब अरब की परित्यक्त राजधानी मदीना में वे लोग चले गए जो राजनीतिक

भी इस बात के सबल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं कि आठवीं शताब्दी में औपचारिक ज्ञान-शाखा के रूप में निकलने के पहले ही हदीस सन् ६८०-७०० में मौजूद थे। नौवीं शताब्दी के मध्य तक हदीस ने एक निश्चित रूप ग्रहण किया। तब तक उसकी सभी ब्योरेवार विषय-वस्तु सामने आ चुकी थी और सर्वत्र उसका बोलबाला हो गया था। जहाँ तक उसकी विषय-वस्तु का संबंध है, उससे मुसलमानों के हिजरी संवत् की प्रथम दो शताब्दियों में, प्रत्यक्ष रूप से उनके बढ़ते हुए और परस्पर-विरोधी धार्मिक एवं राजनीतिक विचार-समूहों पर प्रकाश पड़ता है। इस बृहदाकार और आश्चर्योत्पादक विचार-सारणि के संग्रह, खोज-बीन और सुव्यवस्थित उपस्थापना के लिए अनेक प्रसिद्ध विद्वान तत्कालीन मुस्लिम जगत के एक छोर से दूसरे छोर तक की यात्रा पर निकले। यह शक्तिशाली आन्दोलन हदीस की खोज के नाम से जाना जाता है। समुत्सुक खोजकर्ता जगह-जगह गए और जिससे भी उचित समझा इस संबंध में सम्पर्क करके जानकारी हासिल की। दसवीं शताब्दी के आरंभ तक उपर्युक्त विचारों के अनेक संग्रह तैयार कर लिए गए जिनमें छः विशेष रूप से आधिकारिक माने जाते हैं जिनको छः सच्चे हदीस ग्रन्थों की संज्ञा दी गई है। इनमें सर्वप्रमुख मुहम्मद इब्न इस्माइल अल-बुखारी (८१०-८७० ईस्वी) का 'सहीह' (सच्चा या यथार्थ) नामक हदीस-ग्रन्थ है जिसे बाद में मुसलमानों ने आधिकारिक ग्रन्थ की दृष्टि से कुरान के बाद दूसरे ग्रन्थ के रूप में माना। अर्थात् अल बुखारी के ग्रन्थ के तुरंत बाद मुस्लिम इब्न अल-हज्जाज (मृत्यु सन् ८७५ ई०) के सहीह का स्थान आता है। शेष चार हदीस ग्रन्थों के रचयिता अबू दाऊद (मृत्यु सन् ८८८), अल-तिरमिधी (मृत्यु सन् ८९२) अल-नसाई (मृत्यु सन् ९१६) और इब्न माजा (मृत्यु सन् ८८६) थे। उस समय तक हदीस की, जैसा कि मुसलमानों ने उसे समझा, आलोचना-प्रत्यालोचना ने "हदीस के विज्ञान" के रूप की पूर्णता प्राप्त की। हदीस की यह आलोचना एकमात्र इसनाद या हदीस के संचरण ग्रन्थ शृंखला की होती थी। हदीस के संचरण-ग्रन्थों के लेखकों की जीवनियों, उनकी नेक-नीयती आदि का ब्योरेवार तथा जटिल परीक्षण किया गया जिसे "न्याय प्रतिपादन और खंडन का विज्ञान" की संज्ञा दी गई है (फजरुल रहमान का ग्रन्थ "इस्लाम," वेडेनफेल्ड एँड निकलसन, ५ बिन्सले स्ट्रीट, लंदन, १९६६ का संस्करण, पृ० ५३-५४ एवं ६३-६४)।

उथल पुथल से दूर रहना चाहते थे या वे लोग अरब सेना की विजय में अपने लिए प्राप्त लूट के माल का, बिना किसी बाधा और झंझट, के उपभोग करना चाहते थे। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के पुत्र-द्वय हसन और हुसेन के पीछे-पीछे अनेक नवधनाढ्य या "कल के गरीब आज के अमीर" वहाँ पहुँच गए।

नगर के क्षेत्र में महल उठ गए और उनके बाहर छोटे-छोटे सुन्दर भवन। उन सभी में नौकरों और दासों की भरमार थी जो महलों और बाहर के भवनों के स्वामियों के लिए शौक और सुख-सुविधा के विविध सामान मुहय्या करते थे। मदीना की भाँति मक्का भी सुख-सुविधा और ऐश-ओ-आराम के प्रेमियों के लिए आकर्षण-केन्द्र बन गया। इन दो प्राचीन नगरों का जीवन ज्यों-ज्यों ज्यादा खर्चीला और आरामतलबी से भरा-पूरा होता गया, त्यों-त्यों वहाँ ज्यादतियाँ भी बढ़ती गईं जिनकी कुख्याति दूर-दूर तक फैल गई। इन दो पवित्र नगरों में सम्पूर्ण मुस्लिम जगत से हर वर्ष तीर्थयात्री पहुँचते थे जिससे वहाँ दिन-ब-दिन ज्यादा-से-ज्यादा धन पहुँचता था। पुराने दिनों की तुलना में उस समय कैसी विपरीत स्थिति उत्पन्न हो गई थी। द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के एक प्रतिनिधि ने जब उसके यहाँ बहरैन से ५००,००० दिरहम (सिक्के) कर के रूप में लेकर पहुँचने का दावा किया, तो खलीफा ने इतनी अधिक संख्या में सिक्के होने की संभावना पर आश्चर्य प्रकट किया। पर जब उसे दुबारा इसका निश्चय दिलाया गया कि वे पाँच लाख दिरहम हैं तो उसने लोगों को बुलाया और घोषणा की कि "ओ लोगों। हम लोगों को अत्यन्त प्रचुर धनराशि प्राप्त हुई है। यदि तुम लोग चाहो तो मैं तुममें से हरेक को उसमें से तौल कर या गिन कर हिस्सा दे सकता हूँ।"

और अब जब इन दो नगरों की ओर धन का विशाल स्रोत प्रवाहित होने लगा तो फलस्वरूप उनके धार्मिक स्वरूप का ह्रास होने लगा। ये नगर दुनियाबी मौज-मजे और हँसी-खुशी के केन्द्र बन गए और वहाँ कोने-कोने से, अधार्मिक संगीत और गीत-गानों की कर्णप्रिय ध्वनियों की गूँज उठने लगी। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि मक्का में एक क्लबघर स्थापित हो गया जिसका उन अतिथियों द्वारा संरक्षण मिलता था जो तीर्थ-यात्रा के लिए मक्का आते थे और फिर दुनियावी ऐश-मौज करते थे। क्लब की दीवारों पर खूँटियाँ गाड़ी गई थीं जो कि हेज्जाज के लिए एक नई बात थी। अतिथिगण क्लब में शतरंज, चौपड़, पासे आदि के खेल खेलना या पढ़ना शुरू करने के पूर्व उन खूँटियों पर अपने ऊपरी वस्त्र टांग दिया करते थे। मदीना में फारसी, और बैजेन्टाइन दासी गायिकाएँ बड़ी संख्या में आने लगीं। मदीना में बदनाम यौन-क्रीड़ा गृह बढ़ने लगे जिनको उस समय के राष्ट्रीय प्रसिद्धि के कवि अल-फराज-दक तक ने संरक्षण दिया। जब दासी-गायिकाएँ गाती और वाद्यों से कोमल संगीत बजाती थीं तो उनके धनिक स्वामी और रंगीन

परिधान में सजे-सजाये अतिथिगण, चौकोर गालीचों पर मसनद के सहारे आराम करते हुए, चांदी के पात्रों में सीरिया की लाल शराब की चुस्कियाँ लेते रहते थे।

मारवानी राजवंश के शासन के आरंभ में मदीना को इस बात का गौरव था कि वहाँ गर्वीला एवं रूपवती सय्यिदा[६] सुकैना (सन् ७३५) थी। वह शहीद हुसेन की पुत्री और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की पौत्री थी। वह उस समय की अत्यन्त महत्वपूर्ण महिला थी। समाज में सुकैना का ऊँचा स्थान तो था ही साथ ही, आकर्षक होने के साथ-साथ उसे गीत और कविता में गहरी रुचि भी थी। धार्मिक नगरों-मक्का और मदीना में वह फैशन, सौन्दर्य और साहित्य के बारे में निर्णायिका जैसी थी। यही नहीं हँसी-मजाक करना और हँसते-हँसते किसी को धोखे में डाल देना उसकी खास आदत थी। *उस समय ऊँचे समाज में भी भद्दे किस्म का मजाक* पसन्द किया जाता था जो इससे सिद्ध होता है कि एक बार सुकैना ने एक बूढ़े फारसी शेख को मुर्गियों के अंडों से भरी एक टोकरी पर बैठा दिया और उससे कहा कि यह मुर्गी की-सी आवाज करे। ऐसा करके उसने अपने यहाँ पहुंचने वाले मेहमानों का मनोरंजन किया। एक अन्य अवसर पर उसने पुलिस के प्रधान को सूचना भेजी कि एक सीरियाई किवाड़ तोड़ कर उसके मकान में घुस आया है। जब पुलिस-प्रधान कुछ सिपाहियों को लेकर उसके यहाँ पहुँचा तो उसने पाया कि सुकैना की दाई अपने हाथ की उंगलियों के बीच एक पिस्सू दबाये खड़ी है। आज की तरह उस समय भी सीरिया अपने यहाँ के पाये जाने वाले पिस्सुओं के लिए बदनाम था। सुकैना के निवास-स्थान पर कवियों और विधि-वेत्ताओं की शानदार मजलिसें जमती थीं। निवास-स्थान एक बड़े कमरे के आकार का था जहाँ बराबर उसके व्यंग्य और हँसी-मजाक सुने जा सकते थे। उसे न केवल अपने पूर्वजों पर विशेष गर्व था बल्कि अपनी खूबसूरत बेटी पर भी। वह उसे हीरे-जबाहरात से सजाये रखती थी और खुद भी अपने बालों में हीरे-जवाहरात खोंसे रखती थी। सुकैना के तरह का यह केश-विन्यास लोगों के बीच लोकप्रिय हो गया जिस पर बाद में शुद्धतावादी उमर द्वितीय ने कड़ा प्रतिबंध लगाया। चित्ताकर्षक सुन्दरी सुकैना ने, बारी-बारी से अनेक पुरुषों से विवाह किया। उनमें से कुछ के साथ वह छोटी-सी अवधि के लिए रही और कुछ के साथ लंबी अवधि के लिए। उसके पतियों की गिनती उँगलियों पर नहीं की जा सकती। वह अपने पति के सामने यह शर्त रखती थी कि विवाह के बाद भी वह कुछ भी करने को स्वतंत्र होगी।

---

६. अर्थात् महिला। यह एक उपाधि थी जो केवल चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली और फातिमा के वंशजों के लिए प्रयुक्त होती थी।

सुकेना की प्रतिद्वन्द्वी जवान आयशा बिन्त तलहा थी जो मक्का और मदीना के प्रसिद्ध विश्राम भवन तैफ में रहती थी। वहाँ बड़े घरों के लोग जाते थे जो विश्राम भवन में आयशा से संबंधित महत्वपूर्ण दृश्य और घटनाएँ देखते थे। आयशा का बाप तलहा पैगम्बर मुहम्मद का एक विशिष्ट साथी था और माँ प्रथम धर्मनिष्ठ खलीफा अबू-बकर की पुत्री। तलहा की यह पुत्री-आयशा न केवल उच्च वंश की थी बल्कि अप्रतिम सुन्दरी और गर्वपूर्ण उच्च भावना वाली थी। उसके ये तीन गुण ऐसे थे जिनका किसी स्त्री में होना अरबों की दृष्टि में बहुत आदर की बात थी। आयशा की किसी भी बात को कभी भी इन्कार न किया जा सकता था। सुकेना के मुकाबले आयशा का जनता के समक्ष प्रकट होना अधिक प्रभावोत्पादक होता था। एक बार जब वह मक्का की तीर्थयात्रा पर थी, उसने समारोहों के अध्यक्ष से, जो नगर का गवर्नर भी था, कहा कि जब तक वह काबा के (सात) विहित फेरे न लगा ले तब तक जनता द्वारा मक्का की धार्मिक उपासना बंद रखी जाय। बहादुर गवर्नर ने वैसा ही किया जिसके कारण उमैय्यद खलीफा अब्द-अल मालिक ने उसे उसके पद से हटा दिया। आयशा ने तीन बार विवाह किया। उसके दूसरे बार के पति मुसब इब्न-अल-जुबैर ने, जिसने एक बार सुकेना से भी विवाह किया था और उनमें से हरेक को तलाक के धन के रूप में दस लाख दिरहम दिए थे। उसे इसके लिये फटकारा कि वह अपने चेहरे पर बुरका डाल कर क्यों नहीं चलती तो आयशा ने इसका यह विचित्र-सा उत्तर दिया —"जब खुदा ने, वह सदैव धन्य और उच्च रहे, मेरे चेहरे पर सुन्दरता की ऐसी मुहर लगाई है, तो मेरी मन्शा है कि मैं उस चेहरे को लोगों को देखने दूँ ताकि वे मेरी सुन्दरता में उसकी गरिमा देख सकें। इसलिए किन्हीं भी हालात में बुरका डालकर अपना चेहरा लोगों से छिपा कर रख नहीं रख सकती।"

महिलाओं की सामान्य दशा :

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि फारसियों में महिलाओं के अलग-थलग (पर्दे में) रहने की प्रथा बहुत पहले से जारी थी। उमैय्यद खलीफा वालिद द्वितीय के शासन में मुस्लिम सम्प्रदायों में महिला-शिक्षा पुनः आरंभ हुई। सम्राट् (खलीफा) का चरित्र और आदतें ऐसी थीं जिनसे उस प्रथा (स्त्री-पर्दा) के विकास और उन्नयन में मदद मिली। यह प्रथा-रूपी पौधा, अभिमान और अनुकरण के चलते, सीरिया की अनुकूल मिट्टी में बोया गया था। वालिद द्वितीय सामाजिक परम्पराओं की पूरी तरह उपेक्षा करता था। वह दुःसाहस के साथ और ठंढे दिमाग से परिवारों में घुस जाता था। इसी कारण, खलीफा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी परिवार में प्रवेश रोकने के लिए सुरक्षा-नियम लागू करने की बाध्यता उत्पन्न हुई। पर इस संबंध में कठिनाई यह थी कि जब सुरक्षा-नियम एक बार लागू कर दिए जाते

थे वे प्रथाओं का रूप धारण कर लेते थे। पर असंस्कृत अथवा कम पढ़े-लिखे लोगों के दिमाग में यह बात घर किये हुई थी कि भावनाओं की उच्चता और हृदय की शुद्धता से स्त्रियों की उतनी प्रभावकर रक्षा नहीं हो सकती जितनी कि घर की मजबूत दीवारों और द्वार के पहरेदारों से।

इन प्रतिकूल स्थितियों के बावजूद दसवें अब्बासिद खलीफा मुतावकिल के शासनारूढ़ होने तक, महिलाओं को असाधारण रूप से स्वतंत्रता प्राप्त रही। उस समय तक भी पुरुषों में पुरानी वीरता कायम थी। बैजेन्टाइन स्वेच्छाचार और फारसी शान-ओ-शौकत ने अभी तक मरुक्षेत्र निवासी अरबों की सादगी और स्वतंत्रता की भावना खत्म न की थी। पिता अभी भी गर्वपूर्वक अपनी दक्ष और सुन्दरी पुत्रियों के नाम के साथ उपनाम भी रखते थे। भाई और प्रेमी अभी भी, क्रमशः अपनी बहनों और प्रेमिकाओं के बारे में, अपशब्द कहे जाने पर लड़ाई तक पर उतारू हो जाते थे। ऊँचे परिवारों की महिलाएँ बिना किसी झिझक या बुराई के बारे में पूरी तरह अवैध, पुरुषों के साथ बातचीत करती थीं। स्त्रियों के बारे में, कवि फिरदौसी की, जिन्हें "फारस का होमर" कहा जाता है, ये पंक्तियाँ पूरी तरह लागू थीं—

> "मुस्कान से खिले होंठ, विनम्रता से सजे चेहरे,
> दोषहीन आचरण और मजेदार गप-शप।"

उन दिनों महिला अपने मेहमानों से बिना किसी शर्म के बातचीत करती थी और अपने गुणों के बारे में पूरी तरह जागरूक रहती थी। और यही कारण था कि उनका सम्मान सभी क्षेत्रों में होता था। एक सुप्रसिद्ध लेखक[७] लिखता है कि एक बार जब वह मक्का से लौट रहा था तो रास्ते में वह एक जलपूर्ण क्षेत्र में जो मदीना से दूर न था, ठहर गया। सूरज की धूप इतनी तेज थी कि वह पास के एक मकान में आश्रय माँगने को बाध्य हुआ। मकान कुछ शानदार-सा था। जब उसने मकान के बाहरी दालान में प्रवेश किया तो एक महिला की आवाज ने उसे घर में आश्रय लेने की अनुमति दे दी।[८] उसके बाद उसने घर में प्रवेश की अनुमति माँगी। अनुमति मिलने पर वह घर के बड़े कमरे में घुसा।

---

७. अबू तैयब मोहम्मद अल-मुफफजल अद-दब्बी जिसकी मृत्यु सन् ८२० में हुई। उसके इस कथन को अल खारंती ने अपने "इतिलाल उल-कुलव" में उद्धृत किया है। साथ ही इससे अब्बासिद खलीफाओं के शासन की, जिसका वर्णन आगे आएगा, प्रारंभिक अवधि में तरीकों और प्रथाओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

८. यह अंश अपने मूल रूप में यों है—घर की महिला (रानत उल बेत) ने भीतर से कहा—उतर पड़ो।

वहाँ उसने "सूरज से भी ज्यादा सफेद" एक महिला को घर का काम-काज करते देखा। उसने मेहमान से बैठने को कहा। दोनों के बीच बात-चीत होने लगी। महिला के मुँह से "मोतियों जैसे शब्द इधर-उधर बिखरने लगे।" जब बातचीत हो ही रही थी तो महिला की नानी भीतर से निकली और उन दोनों के बगल में बैठ गई। उसने आगन्तुक, को हँसते हुए चेतावनी दी कि वह रूपवती महिला की जादूगरी से सावधान रहे।

अलावे, राजधानी दमिश्क में नीचे तबके की बहुत सारी महिलाओं की भीड़ बाहर से आई। ये महिलाएँ नाचने-गाने का पेशा करती थीं। और इस प्रकार समाज के मनोरंजन में लगी रहती थीं। क्रमशः इन महिलाओं और समाज के आदरणीय वर्गों के महिलाओं के बीच पृथक्करण हो गया। विचारवान इतिहासकार वॉन क्रेमर लिखता है—"जिसे वास्तव में हरम (रनिवास) व्यवस्था कहते हैं, केवल वालिद द्वितीय के शासन में आरंभ हुई। उसने बैजेन्टाइनों की प्रणाली की नकल करते हुए हिजड़ों को महल में रखने की प्रथा आरंभ की। उस समय के बाद से ये अभागे जीव पूर्वी दरबारों में एक सुस्पष्ट भूमिका निभाने लगे। वे गोपनीय समाचार ले जाने वाले दूतों और महिलाओं की इज्जत के प्रहरियों का काम संभालते थे।"

जिस प्रकार उमैय्यद दरबार ने बैजेन्टाइन दरबार की नकल पर हिजड़ों को विशेषतः महल में सेवा के लिए, नियुक्त करने की निन्दनीय प्रथा शुरू की, उसी प्रकार पुराने फारसी राजाओं में प्रचलित अनेक प्रथाओं और शिष्टाचार के नियमों को भी उन्होंने अपनाया। जब कि सम्राट (खलीफा) द्वारा रखे गए उदाहरण का अनुकरण पुरुषों द्वारा व्यापक रूप से किया जाता था, महिलाएँ वह द्रव पदार्थ पिया करती थीं जो दश्मिक और बीरूत के बाजारों में अभी भी बिकता है और जिसे मीठा गुलाब जल की संज्ञा दी जाती है। इसे गर्मियों में बर्फ में ठंडा रखा जाता था। शाही परिवार की महिलाएँ विशेष रूप से इस द्रवपदार्थ की आदी थीं। बाद में बगदाद के कोषागार में, बड़े-बड़े स्फटिक पत्थर और सोने के बने प्याले प्रदर्शित किये गए जिसमें हिशाम की पत्नी उम्म हिशाम शर्बत पिया करती थी।

वालिद प्रथम की पत्नी और उमर द्वितीय की बहन उम्म-उल बनीन भी उस समय की एक उल्लेखनीय महिला थी। अपने पति (वालिद प्रथम) पर उसका काफी प्रभाव था। वह लोगों के हितों के लिए बराबर चेष्टा करती रहती थी। उसने उमैय्यद राजवंश के प्रसिद्ध गवर्नर हज्जाज को एक बार भाषण दिया, वह ऐतिहासिक बन गया। हज्जाज वालिद प्रथम से मुलाकात करने आया। उसने खलीफा को यह सलाह देने की ढिठाई की कि वह साम्राज्ञी यानी अपनी पत्नी के

प्रभाव से मुक्त हो। जब उम्म-अल बनीन ने यह बात सुनी तो अपने पति वालिद से कहा कि वह हज्जाज को उसके यहाँ भेजे। जब हज्जाज साम्राज्ञी के कक्ष में पहुँचा तो उसकी जान-बूझ कर उपेक्षा की गई। फलतः उसे बहुत देर तक इन्तजार करना पड़ा। तब उम्म उल-बनीन ने कक्ष में अपनी दासियों के साथ प्रवेश किया। हज्जाज ने सलाम कर साम्राज्ञी के प्रति आदर प्रदर्शित किया पर उस आदर को शुष्कता के के साथ स्वीकार किया गया। फिर साम्राज्ञी ने उससे पूछा कि क्या उसने सम्राट (खलीफा) को सलाह दी है कि उसे राज-काज के मामले में हस्तक्षेप न करने दिया जाय। हज्जाज ने इसका गोलमटोल जवाब दिया। तब साम्राज्ञी ने उसके समक्ष अपना उक्त भाषण दिया जो इतिहास में स्मरणीय माना जाता है। राजघराने की एक महिला ने हज्जाज के सामने उसके कुकृत्यों का एक-एक कर वर्णन किया जिनमें से कुछ के कारण इस्लाम धर्म के सबसे अच्छे अनुयायियों का बलिदान हुआ था और इस प्रकार साबित किया कि उसने (हज्जाज ने) किस प्रकार अपने को उमैय्यद राजवंश की एक दुष्ट प्रतिभा सिद्ध किया है। फिर उसकी कायरता के लिए उसकी भर्त्सना करते हुए साम्राज्ञी ने आदेश दिया कि उसे कक्ष से बाहर निकाल दिया जाय। इस युग के आस-पास ही सुप्रसिद्ध महिला संत रबिया[१] हुई। उसे उस समय के धार्मिक व्यक्तियों में से एक माना जाता है।

---

१. उपनाम उम्म उल खैर यानी "अच्छाइयों की माता" की मृत्यु सन् ७५२-५३ में हुई। वह जेरूसलेम के निकट तौर पहाड़ में दफनाई गई। अब उसकी कब्र एक तीर्थ स्थान बन गई है।

अध्याय ९

उमैय्यदों के युग में बौद्धिक जीवन

मरूभूमि से आने वाले आक्रमणकारी (अरब) जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते आये वहाँ वे न तो अध्ययन की परम्परा ले गए और न ही संस्कृति की कोई विरासत। उन्होंने जिन देशों—सीरिया, मिस्र, ईराक, फारस आदि पर विजय पाई वहाँ वे पराजित लोगों के चरणों के निकट बैठ कर शिक्षा प्राप्त करने लगे। और कितने तेज शिष्य सिद्ध हुए। वे फिर भी उमैय्यदों की अवधि और जाहिलिया युग के बीच सादृश्य अरबों के अनेक देशी और विदेशी युद्धों और मुस्लिम जगत की अन-सुलझी सामाजिक और आर्थिक स्थितियों ने प्रारम्भिक युग में बौद्धिक विकास की संभावनाएँ करीब-करीब समाप्त कर दी थीं। पर उस समय ज्ञान के वृक्ष का बीज बो दिया गया था और बगदाद में अब्बासिदों के युग के आरंभ में वह वृक्ष पूरी तरह पुष्पित और पल्लवित हुआ। उस वृक्ष की जड़ें निश्चय ही यूनानी, सीरियाई और फारसी संस्कृति की पूर्ववर्ती अवधि में फल और बढ़ रही थीं। इसलिए उमैय्यद अवधि सामान्यतः वह अवधि थी जब शिक्षा की जड़ें भीतर-ही-भीतर फल-फूल और बढ़ रही थीं।

जब फारसियों, सीरियाइयों, प्राचीन मिस्रियों के वंशजों, बर्बरों तथा अन्य लोगों ने इस्लाम धर्म अपनाया और अरबों और उन लोगों के बीच अन्तर-जनजातीय विवाह होने लगे तो अरबों और गैर-अरबों के बीच आरम्भ में खड़ी दीवार ढहने लगी। मुसलमानों की राष्ट्रीयता का प्रश्न गौण बन गया। किसी भी नव-धर्मान्तरित मुसलमानों की राष्ट्रीयता पहले चाहे जो भी रही हो, एक बार जब वह पैगम्बर मुहम्मद का अनुयायी यानी मुसलमान हो गया तो वह न केवल मुसलमान बल्कि अरब भी बन गया। एक अरब वह व्यक्ति माना जाना चाहिए जिसने इस्लाम धर्म कबूल किया हो और जो अरबी भाषा बोल और लिख-पढ़ सकता हो, चाहे उसकी जनजातिगत सम्बद्धता कुछ भी हो। इसलिए जब हम अरब औषधि, अरब दर्शन या अरबगणित की बात कहते हैं तो उसका मतलब निश्चित रूप से वह चिकित्सा-विज्ञान, दर्शन या गणित नहीं होता जो किसी अरब के मस्तिष्क की उपज हो और जिसे अरब प्रायद्वीप में रहने वाले लोगों ने विकसित किया हो। अरबी भाषा में लिखी गई पुस्तकों में ज्ञान-भांडार बिखरा पड़ा है वह मुख्यतः खलीफाओं की शासनावधि में फला-फूला और

उसे कागज पर अंकित करने वाले लोग थे फारसी, सीरियाई, मिस्री, ईसाई, यहूदी या मुसलमान। ऐसे लोगों ने अपनी विषय-वस्तु यूनानियों, आरमीनियाइयों, इंडो-फारसियों या अन्य स्रोतों से ग्रहण किया।

बसरा और कूफा

उमैय्यदों के अधीन हेजाज के दो नगर, मक्का और मदीना, गीत-संगीत, प्रेम और कविता के केन्द्र बन गए, दूसरी ओर इस अवधि में ईराक के जुड़वा नगर-बसरा[1] और कूफा मुस्लिम जगत के अत्यधिक जीवंत बौद्धिक कार्य-कलाप के केन्द्रों में परिणत हो गए।

सन् ६३८ में ईराक की ये दो राजधानियाँ द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के आदेश से मूलतः फौजी केन्द्र थीं। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की भूतपूर्व राजधानी कूफा[2] प्राचीन बेबीलोन के ध्वंसावशेष में से उठ खड़ी हुई थी और एक अर्थ में अपने पड़ोसी अल-हिरा का उत्तराधिकारी-सा था। अपनी अनुकूल अवस्थिति, वाणिज्य तथा अन्य स्थानों से आकर वहाँ लोगों के बसते जाने से ये दोनों नगर, जिनकी आबादी एक लाख से ऊपर थी, घनी और आबादी-बहुल नगर हो गये। उमैय्यद शासनावधि में बसरा से खुरासान प्रान्त का शासन होता था। कहा जाता है कि सन् ६७० में बसरा की कुल आबादी तीन लाख हो गई। बाद में यहाँ एक लाख बीस हजार नहरें खुद गईं। यह नगर फारस की सीमा पर स्थित था। यहाँ इस्लाम धर्म नया-नया अपनाने वाले विदेशियों के लिए और अंशतः उनमें से कुछ के द्वारा ही अरबी भाषा और व्याकरण का अध्यापन आरंभ किया गया। इसके लिए प्रेरणा प्रथमतः इसलिए हुई कि नव-इस्लाम धर्मान्तरितों की भाषागत आवश्यकता पूरी की जा सके ताकि वे कुरान पढ़ सकें, उन्हें सरकारी पदों पर रखा जा सके और वे विजेताओं यानी अरबों से बातचीत कर सकें। इसके अलावा एक ओर जब कुरान की अरबी भाषा शास्त्रीय थी तो दूसरी ओर बोल-चाल की अरबी भाषा में सीरियाई, फारसी और अन्य भाषाओं और बोलियों के शब्द आते जाने की वजह से दूषित होती जा रही थी। इस कारण भी अरबी भाषा के अध्ययन-अध्यापन में रुचि पैदा हुई ताकि, विदेशी नव-धर्मान्तरितों को शास्त्रीय अरबी भाषा से परिचित कराया जा सके।

अरब व्याकरण के सुप्रसिद्ध संस्थापक और प्रणेता अबू-अल-अस्वाद अल-दुआली (सन् ६८०) बसरा में हुए होंगे। सुप्रसिद्ध जीवन-लेखक इब्न-खल्लिकान

१. आधुनिक बसरा प्राचीन बसरा नगर के छः मील उत्तर-पूर्व में अवस्थित है।
२. बसरा के बसने के एक या दो वर्ष बाद कूफा का निर्माण हुआ होगा।

का कहना है—"चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली ने अल दुआली के सामने यह सिद्धान्त रखा कि बोली के तीन भाग होते हैं—संज्ञा, क्रिया और छोटा वाक्यांश, इस पर वह (अल-दुआली) पूरा शोध-प्रबंध तैयार करें।" अल दुआली ने यह काम सफलतापूर्वक किया। फिर भी अरब व्याकरण का विकास मंद गति से, लंबी अवधि में हुआ। साथ ही उस पर यूनानी तर्कशास्त्र का स्पष्ट प्रभाव है। अल-दुआली के बाद यह काम बसरा के एक अन्य विद्वान अल-खलील ने किया जिसकी मृत्यु सन् ७८६ में हुई। यह श्रेय अल-खलील को ही है कि उसने ही सर्वप्रथम अरबी भाषा का शब्द-कोष "किताबल आइन" तैयार किया। जीवनी लेखक 'अरबी छंद-शास्त्र' और उसके नियम बनाने का श्रेय अल-खलील को ही देते हैं। वे नियम आज भी मान्य हैं। अल-खलील के शिष्य फारस के सिबावाय (सन् ७९३) ने अरब व्याकरण की प्रथम ब्योरेवार पाठ्य पुस्तक तैयार की जिसे सम्मान-सूचक नाम अल-किताब (पुस्तक) दिया गया। यह पुस्तक तब से आज तक अरब व्याकरण के मूल अध्ययन का आधार-ग्रन्थ मानी जाती है।

धार्मिक परम्पराएं और न्याय शास्त्र

फिर भी कुरान के अध्ययन और उसकी व्याख्या के लिए दर्शन और शब्दशास्त्र के जुड़वा विज्ञानों का विकास हुआ। उसी के कारण विशिष्ट मुस्लिम साहित्यिक कार्य-कलाप-परम्परा (हदीस) के विज्ञान का भी विकास हुआ। शाब्दिक रूप से हदीस का अर्थ होता है वर्णन। तकनीकी अर्थ में हदीस वह कार्य या कथन है जो पैगम्बर मुहम्मद या उनके किसी साथी द्वारा किया या कहा हुआ बताया जाता है। सन् ६७० और ७६७ के बीच की अवधि में प्रारंभिक धर्मशास्त्री समुदायों का उदय हुआ। विधि (कानून) उद्भव का प्रथम चरण इस तत्व के विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिसे संभवतः उस धार्मिक प्रणाली की संज्ञा दी जा सकती है जो पैगम्बर मुहम्मद और उनके आरंभ के साथियों के न रहने पर जीवन मार्ग-दर्शक सिद्धान्त बने। यह तत्व प्रथमतः हदीस या धर्म-दूतों की परम्परा के नाम से जाना जाता है। बाद में इनको छः ग्रन्थों में संकलित किया गया। ये ग्रन्थ नौवें ईस्वी सन् में प्रणीत हुए। इनको कुरान के अलावा इस्लाम की विषय-वस्तु का दूसरे आधिकारिक स्रोत के रूप में मान्यता मिली। जबकि अधिकांश मुसलमान अब भी मानते हैं कि हदीस पैगम्बर मुहम्मद के कथनों और कार्यों के प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं, पश्चिम के इस्लामवादी इस बारे में सामान्यतः संदेहशील हैं। उनमें से कुछ ने वास्तव में यह अनुशंसा की है कि सम्पूर्ण हदीस को न केवल पैगम्बर मुहम्मद द्वारा रखे गये उदाहरणों के रूप में अस्वीकृत कर दिया जाय बल्कि उनको हजरत मुहम्मद के साथियों की धार्मिक प्रवृत्तियां और कार्यों का प्रतिनिधि ग्रन्थ भी न माना जाए।

एक पश्चिमी विद्वान आई० गोल्डजिहर[3] घोषणा करता है कि हदीस-ग्रन्थों की वृहत् सामग्री में से विश्वासपूर्वक ऐसी कुछ थोड़ी-सी भी सामग्री छाँट कर अलग नहीं की जा सकती जिसे सच्चे रूप में पैगम्बर मुहम्मद या उनके साथियों की प्रारंभिक पीढ़ी का कथन या कार्य माना जा सके। उसका कहना यह भी है कि हदीस को पैगम्बर मुहम्मद या उनके साथियों के जीवन वृत्त और उपदेशों के बजाय मुसलमानों की प्रारंभिक पीढ़ियों के विचारों और प्रवृत्तियों का दस्तावेज माना जा सकता है। पर गोल्डजिहर मानता है कि हदीस इस्लाम की सबसे प्रारंभिक अवधि में लिखे गए और वह यह भी स्वीकार करता है कि हदीस के अभिलेख अनौपचारिक रूप से पैगम्बर मुहम्मद के समय में रहे होंगे पर इसके साथ ही वह उस अवधि के कुछ कथित अभिलेखों के बारे में भी संदेह प्रकट करता है। गोल्डजिहर के तर्क इस प्रकार हैं—चूंकि हदीस की सामग्री मुसलमानों की बाद की पीढ़ियों में विशाल से विशालतर होती गई, अतः स्वभावतः यह सामग्री मुस्लिम धर्मशास्त्र और विधिविचारधाराओं के विविध एवं प्रायः परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करती है और उनके समानान्तर चलती है। इस कारण नौवें ईस्वी सन् में अंतिमरूप से अभिलिखित हदीस ग्रन्थों को पैगम्बर मुहम्मद के अपने उपदेशों और आचरण के ज्ञान-स्रोत के रूप में निर्भर-योग्य नहीं माना जा सकता। हदीस के विकास की समझदारी के लिए मूलभूत रूप से महत्वपूर्ण धारणा यह है कि समूचे मध्यकालिक इस्लाम की अवधि में हदीस का व्यावहारिक मानकों या आदर्श व्यवहार के साथ तादात्म्य किया गया। इस धारणा को सुन्ना कहा जाता है। सुन्ना का शाब्दिक अर्थ चला हुआ मार्ग है और उसका अर्थ इस्लाम पूर्व अरब यह लगाते थे कि किसी जनजाति के पूर्वजों द्वारा आदर्श व्यवहार के मानक क्या स्थापित किये गए हैं ? इस संदर्भ में इस धारणा के दो अंगीभूत तत्व हैं—(क) आचरण का (कथित) ऐतिहासिक तथ्य और (ख) परवर्त्ती पीढ़ियों के नियामक आचरण-सिद्धान्त। कुरान में "सुन्ना" का प्रयोग इस अर्थ में किया गया है। जहाँ इस्लाम के विरोधियों की भर्त्सनापूर्ण चर्चा में कहा गया है कि वे पैगम्बर के उपदेशों के विपरीत अपने पूर्वजों के आदर्श कहे जाने वाले व्यवहार पर चलते हैं। कुरान में अल्लाह के सुन्ना का भी जिक्र है। अल्लाह का सुन्ना अर्थात् समाज के ढाँचे या भाग्य के संबंध में अल्लाह का व्यवहार जो अपरिवर्त्तनीय है।

गोल्डजिहर का यह विचार भी है कि इस्लाम के उद्भव के साथ ही मुसलमानों के लिए सुन्ना का अर्थ बदल गया और उसे हजरत मुहम्मद के प्रतिवेदित

३. गोल्डजिहर आई०, मुहम्मदेनि स्टडीयन, खंड २, हेले १८९९, पृ० ५।

कार्यो और कथनों से निःसृत व्यावहारिक मान-दंडों के रूप में लिया जाने लगा।[४] यह बात मध्यकालिक मुस्लिम सिद्धान्त के अनुकूल ही है। हदीस और सुन्ना (इस्लाम पूर्व प्रयोग के विपरीत इस्लामी प्रयोग के अर्थ में) न केवल समसामयिक बल्कि अभिन्नार्थक भी है (अर्थात् वे दोनों अलग-अलग नहीं बल्कि एक ही हैं)। उन दोनों के बीच अंतर यह है कि जबकि हदीस केवल एक प्रतिवेदन है और सो भी सिद्धान्तपरक, तो सुन्ना वही प्रतिवेदन है जब वह नियामक गुण से युक्त हो जाता है और मुसलमानों के लिए एक व्यावहारिक सिद्धान्त बन जाता है। पर गोल्डजिहर इनके साथ ही यह टिप्पणी भी करता है कि इसके प्रमाण पाये जाते हैं कि प्रारंभिक मुस्लिम इतिहास में इन दोनों के बीच अंतर था और वह अंतर भी ऐसा कि उनमें परस्पर वैचारिक संघर्ष भी हो जाता था और ऐसा होने देने की अनुमति भी थी। इसलिए गोल्डजिहर सुन्ना को प्रारंभिक मुस्लिम सम्प्रदाय की वास्तविक (नियामक के विपरीत) जीवन-प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है।[५] गोल्डजिहर के बाद अनेक विद्वानों ने उसके द्वारा प्रस्तुत पक्ष के सान्निध्य में दो में से एक विचारधारा सामने रखी। पर चूंकि यह बात स्पष्ट रूप से विचार में नहीं रखी गई, इस विवाद के दोनों पक्षों में खामियाँ हैं। डी० एस० मारगोलिओथ[६] का कहना है—(१) कि पैगम्बर मुहम्मद ने अपने पीछे कोई नीतिवचन या धार्मिक निर्णय नहीं छोड़े हैं, अर्थात् उन्होंने कुरान के अलावा कोई सुन्ना या हदीस नहीं छोड़ा, (२) कि हजरत मुहम्मद के बाद प्रारंभिक मुस्लिम सम्प्रदाय ने जिस सुन्ना का प्रयोग किया वह हजरत मुहम्मद का सुन्ना न था बल्कि अरबों द्वारा इस्लाम के पूर्व प्रयोग में लाया जाने वाला सुन्ना था और (३) बाद की पीढ़ियों ने, आठवीं शताब्दी में, इस सुन्ना के प्रयोग को, आधिकारिकता और नियामकता प्रदान करने के लिए, हजरत मुहम्मद के सुन्ना की धारणा को विकसित किया और इस धारणा को कार्य-रूप देने के लिए हदीस का प्रणयन किया। एच० लैमेन्स[७] भी यही विचार प्रकट करता है और संक्षिप्त-सी घोषणा करता है कि व्यवहार (सुन्ना) हदीस की रचना के पहले प्रकट हुआ होगा।

---

४. गोल्डजिहर आई०, द्वितीय खंड, वही, पृ० १२।

५. गोल्डजिहर आई०, खंड दो, वही, पृ० १२, जहाँ हदीस और सुन्ना के बीच एक विचित्र भेदक-रेखा खिंची है।

६. मारगोलिओथ पी० एस०, दी अर्ली डेवलेपमेन्ट ऑव मोहम्मदनिज्म, लंदन १९१४, (हदीस से संबंधित अध्याय देखें)

७. लैमेन्स, एच०, इस्लाम : बिली फस ऐंड इन्स्टीट्युशन्स, अनुवादक सर ई० डी० रौस, लंदन, १९२९, अध्याय-४, पृ० ६९।

फिर भी तथ्य यह है कि कुरान और हदीस वह नींव है जिस पर मुस्लिम धर्मशास्त्र और फिकह (कानून), पवित्र कानून के अनुकूल और विपरीत पक्ष, की इमारत खड़ी हुई है। इस्लाम में कानून विधि-शास्त्र जैसा उसे आधुनिक न्यायवादी समझते हैं, धर्म से और घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। इस में सन्देह नहीं कि रोमन कानून ने उमैय्यदों के कानून को प्रभावित किया, पर किस हद तक, इस बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उस समय के अत्यधिक प्रसिद्ध परम्परा (हदीस)-वादियों और विधि-वेत्ताओं में अल हसन, अल बसरी और इब्न शाहिब अल-जुहरी के नाम लिये जा सकते हैं। इब्न शाहिब अल-ज़ुहरी का कहना था कि वे पैगम्बर मुहम्मद की जन-जाति के हैं। वे अपने अध्ययन-कार्य में इतना व्यस्त रहते थे और इस कारण दुनिया की अन्य बातों की इस तरह उपेक्षा करते थे कि एक बार उनकी पत्नी ने कहा :—"कसम खुदा की, यदि आपको मेरी प्रति-द्वन्द्वी तीन बीवियाँ होतीं तो वे मेरे लिए उतनी बुरी न होती जितनी कि आपकी ये किताबें हैं।" अल-बसरी हदीस के संचारक (प्रसारक) के रूप में अत्यन्त समादृत था। ऐसा इस कारण कि विश्वास किया जाता था कि वह व्यक्तिगत रूप से उन सत्तर व्यक्तियों को जानता था जिन्होंने पैगम्बर मुहम्मद के समय हुई बद्र की लड़ाई (६२४ ई०) में भाग लिया था।

चंचल चित्त एवं कट्टरताहीन निवासियों वाले कूफा का अरब दर्शन और मुस्लिम-अध्ययन की दिशा में प्रायः उतना ही योगदान था जितना कि बसरा-वासियों का था। पर कूफा का अंशदान बसरा के बराबर न था। दो शिविरों के विद्वानों के बीच प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप अरब व्याकरण और साहित्य की दो भलीभाँति मान्यता प्राप्त विचारधाराएँ पनपीं। कूफा में क्रमशः द्वितीय और तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफाओं—उमर और उस्मान—के शासन में पैगम्बर मुहम्मद के जो प्रसिद्ध साथी बस गए थे और जिन्हें हदीस पर अधिकारी माना जाता था, उनमें अब्दुला इब्न मसूद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि उसने आठ सौ अड़तालीस हदीसों का प्रणयन किया। इस प्रकार कूफा के हदीस विशेषज्ञों में अमीर इब्न-शाराहिल अल-शबी था जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने हजरत मुहम्मद के प्रायः एक सौ पचास साथियों से हदीस सुनी है। वह केवल अपनी स्मृति से उनकी बातों को सुनता था और कुछ भी कलम और स्याही से अंकित न करता था। अल-शबी के शागिर्दों में सबसे प्रसिद्ध महान अबू-हनीफ था। अल-शबी का कहना था कि उसे उमैय्यद खलीफा अब्द-अल-मालिक ने एक महत्वपूर्ण काम से बैजेन्टाइन सम्राट से मुलाकात करने कान्स्टैंटीनोपुल भेजा था।

इतिहास-लेखन :

प्रायः इसी समय में परम्परा (हदीस) के रूप में अरब इतिहास-लेखन आरंभ हुआ। अतः यह कहा जा सकता है कि इतिहास-लेखन अरब मुसलमानों द्वारा आरंभ की गई सबसे प्रारंभिक शिक्षा-शाखा है। ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए प्रेरणा इन बातों से मिली—सबसे प्रारंभिक खलीफाओं की इच्छा कि उनके अपने समय के पहले की राजाओं और शासकों के दरबारों की कार्यवाही के बारे में छानबीन, पैगम्बर मुहम्मद और उनके साथियों के बारे में पुरानी कहानियाँ (जो ही जीवनी और विजय-अभियानों के बारे में बाद की पुस्तकों का आधार बनीं) एकत्र करने में धर्म-विश्वासियों की रुचि, हर मुस्लिम अरब की वंशावली अभिनिश्चित करने की आवश्यकता ताकि यह तय किया जा सके कि उसे शाही खजाने से कितनी वृत्तिका दी जाएगी, अरब काव्यों के खंडों के बारे में व्याख्या और धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित व्यक्तियों और स्थानों की पहचान, अरब अन्ध-राष्ट्रवाद के प्रतितोल (या प्रतिक्रिया) के रूप में विजित लोगों (प्रजाजनों) द्वारा अपने वंशों के प्राचीन कृतित्व को अभिलिखित करने की उत्सुकता आदि। प्रारंभिक प्रसिद्ध कहानीकारों (किस्सागो) में अत्यन्त प्रसिद्ध दक्षिणी अरबवासी आबिद (उदैद) इब्न शरयाह था जिसे मुआविया ने दमिश्क बुलाया था ताकि वह खलीफा को "प्रारंभिक अरब राजाओं और उनके वंशों" के बारे में बताएँ। आबिद ने अपने शाही संरक्षक के लिए अपने विशिष्ट विषय के बारे में अनेक कृतियाँ सृजित कीं जिनमें से एक **किताब अल मुलूक वा-अखबार** (राजाओं की पुस्तक और प्राचीन लोगों का इतिहास) इतिहासकार अल-मसूदी के समय बहु-प्रचलित ग्रन्थ था। उत्पत्ति का विज्ञान (इल्म अल-अवेल) में जो लोग निष्णात थे उनमें वहब इब्न-मुनाव्विह का नाम आता है। वह फ़ारसी मूल का यमनवासी यहूदी था जिसने संभवतः इस्लाम धर्म कबूल कर लिया था। उसकी एक कृति हाल ही में प्रकाशित हुई है।[८] एक अन्य इतिहास-लेखक काब-अल-अहबर था। उसने उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया के, जब कि वह सीरिया का गवर्नर ही था, दरबार में शिक्षक और सलाहकार था। इस प्रकार यहूदी-मुस्लिम परम्मपराओं (हदीसों) के बारे में काब सबसे प्रारंभिक अधिकारी हो गया। इस प्रकार काब, इब्न मुनाव्विह और इस्लाम धर्म अपनाने वाले अन्य यहूदियों के जरिए मुस्लिम परम्पराओं (हदीस) में अन्य यहूदी विधि (कानून)-संबंधी कहानियों ने अंततः स्थान प्राप्त किया। इनमें अरब ऐतिहासिक जनश्रुतियाँ भी शामिल कर दी गईं।

---

८. "अल-तिजान-फी मुलुक हिमयार" (हैदराबाद, १३४७, अल-हिजरी)। इसके साथ आबिद-लिखित "अखबार आबिद", शीर्षक परिशिष्ट, पृ० ३११-४८९ है।

धार्मिक-दार्शनिक आन्दोलन, मुतजिला :

उमैय्यदों के शासन में हम उन धार्मिक-दार्शनिक आन्दोलनों का सूत्रपात देखते हैं जिन्होंने बाद में इस्लाम की नींव को आमूल-चूल हिला दिया। आठवीं ईस्वी सदी में बसरा में एक कोई वासिल इब्न अता (सन् ७४८) रहता था जो प्रसिद्ध तर्कवाद की विचारधारा, जिसे मुतजिला कहा जाता था, का संस्थापक था। मुतजिलावादी (पृथकतावादी, विच्छेदकारी) इस नाम से इस कारण पुकारे जाते थे कि उनका प्रमुख सिद्धान्त था कि जो व्यक्ति कोई घातक पाप करता है वह इस्लाम धर्मविश्वासियों की पंक्ति से पृथक हो जाता है, पर वह इस कारण धर्म में अविश्वासी नहीं हो जाता बल्कि उसकी स्थिति धर्म में विश्वासियों और अविश्वासियों के बीच की हो जाती है।

इस संबंध में इस्लाम में पहला प्रश्न यह उठा कि यदि कोई मुसलमान गंभीर पाप करता है तो क्या वह मुसलमान रह जाता है ? या यह कि क्या इस्लाम धर्म में विश्वास करना मात्र ही पर्याप्त है और उस विश्वास को कार्यरूप देने की अनिवार्यता नहीं है ? इस संबंध में अतिवादी दल खारिजी (पृथकतावादी) का कहना था कि गंभीर पाप करने वाला व्यक्ति मुसलमान नहीं रह जाता। उन लोगों ने स्थापित नियम और सामान्यतः मुस्लिम सम्प्रदाय के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया। साथ ही उन लोगों ने अनुभवातीत और अतिवादितापूर्ण आदर्शवाद को समझौताहीन धर्मान्धता के साथ मिला दिया। इन जनजातियों का मार्गदर्शक सिद्धान्त था—"निर्णय (नियम) देना सिर्फ अल्लाह का काम है।" ये लोग ईराक और फारस में शक्तिशाली थे। मदीना में मुस्लिम सम्प्रदाय के धर्मनिष्ठ नेता उमैय्यदों से बहुत ज्यादा असन्तुष्ट थे। पर धार्मिक विचार रखने वाले लोगों में से अधिकांश ने, अपनी विवशता और शक्तिहीनता के चलते, धीरे-धीरे उमैय्यदों का शासन स्वीकार कर लिया और घोषणा की कि किसी व्यक्ति के मुसलमान होने के लिए केवल इस्लाम में विश्वास रखना ही जरूरी है, उसके अनुरूप कार्य करना आवश्यक नहीं। इन लोगों के लिए इस बात की कि—"निर्णय अल्लाह के इच्छा पर निर्भर करता है" अवहेलना न की जानी चाहिए। ये लोग, जो मुरजियाइट (मुरजिया अर्थात् वे लोग जो अंतिम निर्णय के दिन तक के लिए जनता के बारे में निर्णय "स्थगित" करने के पक्ष में थे) ने अनुशंसा की कि किसी गंभीर पापी पर निर्णय देने से लोगों को बाज आना चाहिए क्योंकि उसके भाग्य का निर्णय अल्लाह करेगा।

जहाँ तक इनके राजनीतिक रुझान का प्रश्न है ये क्रमशः तृतीय एवं चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफाओं—उस्मान और अली—के समय में पहली बार प्रकट हुए। ये उस्मान और अली के पक्ष और विपक्ष में, अतिवादी दलों के विपरीत, सौम्य और संतुलित

विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे। उमैय्यदों के शासन में उनका यह सौम्य रुख धीरे-धीरे विशुद्ध संकल्प में परिणत हो गया और वे भी लोक व्यापक नैतिक शिथिलता और स्वच्छंदता के समर्थक बन गये। इस प्रकार वे उमैय्यद शासन के समर्थन के साधक के रूप में परिणत हो गए जिसके फलस्वरूप, इसके पुरस्कार के रूप में, उमैय्यद शासन इनके विचारों के प्रचार में सहायता करने लगा। इस प्रकार चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के प्रारम्भिक समय के मुरजिया, जिन्होंने अली और उसके विरोधियों के बीच तटस्थता का रुख अपनाया था और इसलिये मुतजिला (तटस्थतावादी) कहे जाते थे, उमैय्यदों के शासन में ये लोग जबरिया (पूर्व-निश्चयवादी) कहे जाने लगे।

इन प्रारम्भिक राजनीतिक तटस्थतावादियों और धार्मिक सन्तुलनकारियों की, जिनमें सामान्यतः पैगम्बर मुहम्मद के साथियों और मदीनावासियों में से अधिकांश थे, सच्ची परम्परा (हदीस) उमैय्यदों के शासन के उत्थान-काल में मदीना में अवस्थित थी। मदीना का धार्मिक नेतृत्व यद्यपि इस बात से स्तब्ध-सा था कि उमैय्यदों के अधीन इस्लामी साम्राज्य को भयानक धक्के लग रहे थे और इस कारण वे उससे असन्तुष्ट थे पर फिर भी वे सक्रिय रूप से राजनीति में न आये। इसके स्थान पर उन्होंने अपने को विधि (कानून) और हदीस की व्याख्या तक ही केन्द्रित रखा। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस्लाम के धार्मिक विकास का जन्म-स्थान होने के कारण मदीना का प्रारम्भिक शताब्दियों में केन्द्रीय और प्रमुख स्थान था। उसके धर्मपरायणता, व्यवहारिकता और सन्तुलन के लोकाचार ने इस्लामी कट्टरता के परवर्ती विकास का मार्ग प्रशस्त किया। धार्मिक कट्टरता का केन्द्रीय स्वरूप यह था कि अतिवादिता सन्तुलनवादिता में क्रमशः समाहित होती जा रही थी। मदीना के इस स्वरूप के बाद में आने वाले अब्बासिद खिलाफत में धर्म के संबंध में इस रुख को पूर्ण सिद्धि प्राप्त हुई। हेज्जाज के बाहर, खासकर ईराक में शीघ्र ही व्यावहारिक धार्मिकता की इस प्रवृत्ति का बाहरी प्रभावों के तीव्र दार्शनिक चिन्तन से मुकाबला हुआ। इस्लाम के पूर्व ईराक पहले से ही विभिन्न दिशाओं से आने वाले विचारों और सिद्धांतों का युद्ध-स्थल रहा था। यूनानी, यूनान प्रभावित ईसाई-धर्म, गूढ़ ज्ञान-वाद, द्वैतवाद और बौद्ध तत्वों ने दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक चिन्तन के लिए सामग्री प्रस्तुत की।

बसरा में जिस प्रथम व्यक्ति को हम सातवीं और आठवीं ईसवी सन् के आरंभ में, इतिहास के उल्लेख में पाते हैं वह प्रसिद्ध हसन अल-बसरी था जिसे मदीना की धर्मनिष्ठता का प्रतीक माना जाता है। उसने इस्लाम की निश्चयात्मक व्याख्या का खंडन किया और कहा कि आदमी अपने कार्यों के लिए

खुद जिम्मेदार है। पर उसकी रचनाओं से बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि वह कल्पनात्मक एवं चिन्तनशील जिज्ञासा के बजाय धर्मनिष्ठात्मक नैतिकता से प्रेरित था। फिर भी, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आदमी के धार्मिक विश्वास और उसके कार्यों के बीच संबंधों के बारे में जब कि खारीजी गंभीर पापी को पूरी तरह धर्म-अविश्वासी मानते हैं और अधिकांश मुसलमान ऐसे व्यक्ति को "पापी मुसलमान" की संज्ञा देते हैं तो मुतजिला दल वालों का कहना है कि ऐसा व्यक्ति न तो मुसलमान होता है और न गैर-मुसलमान। इस सिद्धांत को "मध्यवर्त्ती स्थिति" के रूप में जाना जाता है। संभवतः गंभीर पापी को "मध्यवर्त्ती स्थिति" के सिद्धांत के कारण नये आन्दोलन का तकनीकी नाम मुतजिला या "तटस्थतावादी" पड़ा। पर इसी कारण ये लोग पुराने राजनीतिक तटस्थतावादियों से भिन्न हो जाते हैं। फिर भी यह निश्चित नहीं है कि उन लोगों को यह नाम कब दिया गया। सामान्यतः स्वीकृत सुन्नी परम्परा (हदीस) के अनुसार उन्हें यह नाम तब दिया गया जब इस विचारधारा के संस्थापक वासिल इब्न अता (सन् ६९९ से ७४९) ने अल-हसन अल-बसरी की मंडली से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। पूर्वी इतिहासकारों ने इस बात का खंडन किया है और इस संबंध में भिन्न-भिन्न अनुमान लगाये हैं। पर यूरोप के इस्लाम-विशेषज्ञ इतिहासकार गोल्डजिहर का विचार है कि यह नाम (इस शब्द के अरबी मूल का मतलब है "तटस्थ रहना") "किसी पक्ष का समर्थन न करना या अलग रहना" इस दल के तटस्थ रहने की प्रवृत्ति का द्योतक है। अल हसन अल-बसरी तथा अन्य लोगों से ये लोग तटस्थ नीति पर अधिक चलते थे। और न ही इस दल (मुतजिला) को पुराने राजनीतिक तटस्थतावादियों के क्रम को आगे बढ़ाने वाला ही माना जा सकता है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। यही विचार एच० एस० नाइबर्ग का भी है।[१]

पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मुतजिला आन्दोलन ने इस्लाम की बहुत बड़ी आंतरिक सेवा की। आन्दोलन ने न केवल सुसंस्कृत विचार वालों के लिए अल्लाह का उन्नतकारी चित्र या रूप प्रस्तुत किया बल्कि धर्मशास्त्र में तर्क के दावों पर समुचित जोर दिया। इस प्रयास ने अपने पीछे विरासत छोड़ दी जिसे बाद की इस संबंध की घटनाओं में ग्रहण करके आगे बढ़ाया गया। पर जब तक मुतजिला आन्दोलन जारी रहा, उसके द्वारा औपचारिक तर्कसंगतता पर आवश्यकता से अधिक जोर देने और अपने वाद के विकास क्रम में तर्कसंगतता का देवत्व के रूप में गुणगान करने से धार्मिक कट्टरता में भीषण प्रतिक्रिया हुई। जब कि

---

१. एच० एस० नाइबर्ग के इस संबंध का लेख "अल मुतजिला", दी शार्टर इनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम" में देखें।

मुतजिला आन्दोलन "तर्क और अल्लाह के न्याय" और मानवीय इच्छा की स्वतंत्रता पर कड़ाई के साथ दृढ़ रहा तो परम्परागत उसी प्रकार धार्मिक कट्टरता ने, धर्म के मुख्य तत्वों की रक्षा के लिए एकान्त रूप से दैवी शक्ति के सूत्रीकरण, इच्छा, गरिमा और निश्चयवाद पर जोर दिया। इस आन्दोलन के कारण कट्टरता के सामने यह खतरा पैदा हो गया कि कहीं वह मूल सरल विश्वास की व्यापकता न खो दे।

मुतजिला आन्दोलन का संस्थापक वासिल अल हसन अल बसरी का शिष्य था। उसका झुकाव कुछ समय तक स्वतंत्र इच्छा के सिद्धान्त की ओर था। यह सिद्धान्त बाद में मुतजिला विश्वास का मुख्य विन्दु बना। स्वतंत्र इच्छा का यह सिद्धान्त उस समय कदराइटों (कदर का तात्पर्य सत्ता) का था जो जबराइटों (जबर का तात्पर्य बाध्यता) के सिद्धान्त के विरुद्ध था। इस्लाम के कठिन पूर्व नियतिवाद या भाग्यवाद सिद्धान्त के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप कदराइट सिद्धान्त था। यहाँ यह उल्लेख्य है कि कुरान में अल्लाह की सर्वशक्तिमत्ता पर जोर दिया गया है उसी की एक शाखा-स्वरूप पूर्वनियतिवाद का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त पर ईसाई-यूनानी प्रभाव बहुत स्पष्ट है। कदराइट इस्लाम में सबसे प्रारम्भिक विचारधारा है। इसका प्रसार कितना अधिक था इसका अन्दाज इस बात से लग सकता है कि दो उमैय्यद खलीफा मुआविया द्वितीय एवं यजीद तृतीय इस विचारधारा को मानते थे।

स्वतंत्र इच्छा के मूलभूत सिद्धान्त में मुजलाइटों ने एक और सिद्धान्त जोड़ दिया। उन लोगों ने यह बात अस्वीकृत कर दी कि शक्ति, बुद्धिमत्ता और जीवन जैसे दैवी गुणों का अल्लाह के साथ सह-अस्तित्व है। इसके लिए उनका आधार यह था कि इससे अल्लाह की एकता नष्ट हो जाएगी। इसी कारण मजराइटों ने अपना नाम "न्याय और एकता के पक्षधर" दिया। आगे हम अब्बासिदों के शासन की समीक्षा के सिलसिले में देखेंगे कि अब्बासिदों और विशेषतः उनके खलीफा अल-मामून (सन् ८१३-३३) के समय में इस तर्कवादी धार्मिक आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। बौद्धिक रूप से देखने पर कहा जा सकता है कि जहाँ बसरा और कूफा के क्षेत्र का अंत होता है, वहीं से बगदाद का आरम्भ होता है।

दमिश्क का सेंट जौन

उस समय जिन प्रमुख लोगों के माध्यम से ईसाई और यूनानी विचारों ने इस्लाम में प्रवेश किया उनमें से एक था दमिश्क का सेंट जौन। यद्यपि वह यूनानी भाषा में लिखता था, जौन यूनानी नहीं, सीरियाई था। वह ऐसा सीरिया-निवासी था जो अपने घर पर आर्मेनियाई भाषा में बातचीत करता था और यूनानी तथा आर्मेनियाई भाषाओं के साथ-साथ अरबी भाषा भी जानता था। जब अरबों ने सीरिया पर आक्रमण किया तो उसका दादा दमिश्क में वित्तीय सलाहकार था।

उसने दमिश्क की अरब-विजय में नगर के ईसाई धर्माध्यक्ष (विशप) के साथ अपनी मौनानुमति दी। इस कारण अरब-विजय के बाद भी सेंट जौन का दादा मुसलमानों के अधीन अपने पद (वित्तीय सलाहकार) पर बना रहा। दादा के बाद जौन का पिता वित्तीय सलाहकार बना। एक युवक के रूप में जौन ने अल-अख्तल और मुआविया के पुत्र यजीद के साथ शराब पी थी। अरब सरकार के अधीन, अपने पिता की भाँति, वह भी वित्तीय सलाहकार के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हुआ। पर अपने जीवन के चतुर्थ दशक के आरम्भ में सबकुछ छोड़ कर वह संन्यासी हो गया। जेरूसलेम के निकट सेंट सावा के गिरजाघर में उसने संन्यासी और भक्त का जीवन बिताना शुरू किया। वहीं सन् ७४८ में उसकी मृत्यु हो गई। सेंट जौन द्वारा लिखित पुस्तकों में एक है—"ईसा मसीह के देवत्व और मानवीय इच्छा की स्वतंत्रता पर सारासेन (अरबों) के साथ एक संवाद।" इस पुस्तक में ईसाई धर्म का समर्थन किया गया है। पुस्तक लिखने का इरादा यह था कि मुसलमानों के साथ बहस में ईसाइयों के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धान्त दिये जायँ। पुस्तक मुसलमानों से ईसाइयों द्वारा वाद-विवाद के लिए मार्ग-दर्शक हस्त-पुस्त है। जौन ने खुद भी खलीफा के समक्ष अनेक मुसलमानों के साथ इस तरह के वाद-विवाद किए। कदराइट विचारधारा के निर्माण में सेंट जौन का प्रभाव देखना कठिन नहीं है। सेंट जौन के संबंध में हदीस में एक घटना का उल्लेख है जो मध्यकाल की संभवतः राजनीतिक रोमांस की सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानी बन गई है। इसमें संन्यासी बरलाम और हिन्दू राजकुमार जोसाफत की चर्चा आती है। आधुनिक समीक्षकों ने इस कहानी को गौतम बुद्ध के जीवन की एक घटना की ईसाई व्याख्या के रूप में लिया है। उन्हें राजकुमार जोसाफत नाम दिया गया है। इस प्रकार यद्यपि यह अजीब लग सकता है पर सच है कि गौतम बुद्ध लैटिन और यूनानी दोनों ही गिरजाघरों द्वारा संत घोषित किये गये हैं। साथ ही इस प्रकार बुद्ध दो बार ईसाई संत हो जाते हैं। बरलाम और जोसाफत मध्यकालीन कहानी लैटिन, यूनानी और जार्जियन भाषाओं से होती हुई अरबी भाषा में आती है। स्पष्टतः सेंट जौन के दिनों के बाद पहलवी (ईरानी) से यह अरबी अनुवाद है। फिहरिस्त में **किताब-अल-बुद्द** (बुद्ध की पुस्तक) की **किताब बुदसत** (बोधिसत्व) का उल्लेख मिलता है। सेंट जौन को पूर्वी यूनानी गिरजाघर का सबसे बड़ा और अंतिम धर्मशास्त्री माना जाता है।

खारिजी

कादराइट इस्लाम में सबसे प्रारम्भिक दार्शनिक विचारधारा थी पर खारिजी सबसे प्रारंभिक धार्मिक-राजनीतिक समुदाय था। ये लोग पहले चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थक थे पर बाद में उसके भयानक विरोधी हो गए। कुरैशों को यह जो विशेषाधिकार दिया गया था कि खलीफा उन्हीं लोगों में से कोई एक होगा,

उसके खिलाफ उन्होंने बार-बार सशस्त्र विरोध किया। इस्लाम के प्राचीन प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों को कायम रखने के प्रयास में शुद्धतावादी खारिजियों ने प्रथम तीन मुस्लिम शताब्दियों में खून की नदियाँ बहाई। समय के क्रम में उन लोगों ने संतों (फकीरों) के सम्प्रदाय और उसके साथ की तीर्थयात्रियों का वर्जन किया और सूफी भ्रातृत्व पर रोक लगाई। वर्तमान समय में वे इबैदाइत (सामान्यतः अबैदाइत नाम से पुकारे जाने वाले) उप-सम्प्रदाय के रूप में सेवा कर रहे हैं। उन्हें यह नाम इब्न इबाद, जो प्रथम मुस्लिम शताब्दी हिजरा के उत्तरार्द्ध में हुआ, के नाम पर दिया गया। वह खारिजियों के उप-सम्प्रदायों के संस्थापकों में सबसे ज्यादा सहिष्णु था। ये लोग अलजीरिया, ट्रिपोलिटानिया और उमान में फैले थे जहाँ से बाद में वे जंजीबार चले गए।

मुरजाइट :

एक और पन्थ का, जो कम महत्वपूर्ण था, उमैय्यद शासन में उदय हुआ। इन लोगों को मुरजाइट कहते थे। उनके विश्वास का प्रमुख तत्व था कि पाप करने वाले धर्म-विश्वासियों के विरुद्ध न्याय को (अंतिम न्याय के दिन तक के लिए) स्थगित रखा जाय और उन लोगों को धर्मनिन्दक घोषित न किया जाय। मुरजाइटों के बारे में और भी खास बात यह थी कि उनके खयाल से उमैय्यद खलीफाओं द्वारा धार्मिक कानून का दमन करने के कारण उन्हें इस्लाम के वास्तविक राजनीतिक नेता के दर्जे से हटाया नहीं जा सकता था। इस सिद्धान्त के अनुयायियों के लिए केवल यही पर्याप्त था कि उमैय्यद मुसलमान थे। उनका कहना था कि क्रमशः तृतीय और चतुर्थ खलीफा उस्मान और अली तथा उमैय्यद राजवंश के संस्थापक खलीफा मुआविया आदि सभी अल्लाह के सेवक थे और उनके बारे में निर्णय केवल अल्लाह पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। सामान्यतः मुरजाइट सहिष्णुता के पक्षधर थे। इस विचारधारा के नरम दल के सर्वाधिक प्रतिनिधि नेता अबू-हनीफा थे जिन्होंने इस्लाम के विधि (कानून) शास्त्र की चार कट्टर विचारधारा में से एक की स्थापना की।

शिया :

खिलाफात के सवाल पर प्रारंभिक इस्लाम दो भागों में बँट गया था जिनमें से एक शिया नाम से जाना था। उमैय्यद शासनावधि में शिया पंथ ने निश्चित रूप ग्रहण किया। दूसरे भाग को सुन्नी (कट्टर) कहा जाता था। ये दोनों धर्म-पंथ आज भी कायम हैं। इन दोनों के बीच विभेदक तत्व इमाम का पद बना और आज भी है। पैगम्बर मुहम्मद ने कुरान में रहस्योद्घाटन किया है कि अल्लाह और आदमी के बीच एक मध्यवर्ती शक्ति है। शिया लोगों ने उस मध्यवर्ती शक्ति को एक व्यक्ति इमाम को माना। कुरान में कहा गया है "मैं अल्लाह में विश्वास

करता हूँ जो सिर्फ एक ही है ।" और यह भी कि "मैं कुरान के रहस्योद्घाटन में विश्वास करता हूँ जो अनन्त काल से असृजित है ।" इसमें शिया लोगों ने धर्म-विश्वास में यह एक नई बात जोड़ दी—"मैं विश्वास करता हूँ कि इमाम अल्लाह द्वारा चुना गया प्रतिनिधि है जो ईश्वरीय अस्तित्व के एक भाग का वाहक और मुक्ति का नेता है ।"

इमाम के पद को शक्ति की लौकिक धारणा के धर्मतंत्रीय विरोध की उपज माना जा सकता है । सुन्नी लोगों के विचारों के प्रतिकूल इस सिद्धान्त के अनुसार इमाम मुस्लिम सम्प्रदाय का एकमात्र वैध प्रधान है जो सर्वोच्च शक्ति द्वारा दैवी रूप से मनोनीत है और साथ ही वह पैगम्बर मुहम्मद की पुत्री फातिमा और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के जरिए पैगम्बर के वंश का भी है । शिया लोगों में से अतिवादी तो यहाँ तक कहते हैं कि अपने दैवी और ज्योतियुक्त स्वरूप के कारण इमाम स्वयं अल्लाह का अवतार है । उनके अनुसार अली और उनके वंशज इमाम मानवीय रूप में दैवी शक्ति के प्रकटीकरण के सातत्व-स्वरूप हैं । बाद के एक अतिवादी शिया विचार के एक उप-पंथ ने तो यहाँ तक कह डाला कि ईसाई संत जिबरील ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली को गलती से पैगम्बर मुहम्मद मान लिया । इस विचार-धारा के अनुसार अली को मूलतः रहस्योद्घाटनों का ग्रहणकर्ता माना गया । इन सब बातों में शिया लोग सुन्नी पंथ के विपरीत हैं । पहेलीनुमा व्यक्तित्व वाला अब्दुल्ला इब्न साबा, जिसने तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के समय इस्लाम धर्म अपनाया था और अली को भी अत्यधिक आदर दिया था, एक अतिवादी शिया पंथ का संस्थापक हुआ । वह यमन का एक यहूदी था । इस्माइली, कारमातियाई, ड्रूज-नुसेरी और इस तरह के कुछ अन्य उप-पंथ शिया पंथ की शाखाओं जैसे थे ।

व्याख्यान-कला :

उमैय्यदों के युग में सार्वजनिक भाषण-कला ने अपने विभिन्न रूपों में इतना विकास किया जितना पहले कभी नहीं किया था । बाद में इस पुस्तक में आगे चर्चित अब्बासिदों के युग में व्याख्यान-कला ने और भी उन्नति की । कातिब (लिपिक) ने अपने शुक्रवार दोपहर के धर्मोपदेशों में धर्मप्रसार के साधन के रूप में उसका उपयोग किया, सेनापति ने उसका उपयोग अपने अधीन सेना में फौजी उत्साह जगाने के लिए किया और प्रान्तीय गवर्नर अपनी प्रजा में देशभक्तिपूर्ण भावनाएँ जगाने के लिए व्याख्यान कला पर निर्भर रहे । उस युग में जबकि प्रचार की विशेष सुविधाओं का अभाव था, व्याख्यान-कला विचारों के प्रसार और भावनाएँ जगाने के लिए उत्कृष्ट साधन थी । चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के अत्यधिक नीति-शास्त्रीय व्याख्यानों में एक तरह की लय होती थी और साथ ही अनेक बुद्धिमत्तापूर्ण उक्तियाँ

भी। मुस्लिम संन्यासी अल-हसन अल बसरी ने खलीफा उमर इब्न-अब्द-अल-अजीज के समक्ष एक उल्लेखनीय भाषण किया था जिसे उमर के जीवन-लेखकों ने उसकी जीवनी में सुरक्षित रखा है और जियाद इब्न अबीह और आग उगलने वाले हज्जाज (उमैय्यद राजवंश का प्रसिद्ध गवर्नर) के भाषण आदि कुल मिलाकर वह मूल्यवान सांस्कृतिक धरोहर है जो उस प्रारंभिक युग से हमें विरासत के रूप में मिली है।

पत्राचार :

धर्मनिष्ठ खलीफाओं के युग में राजनीतिक पत्राचार इतना संक्षिप्त और सटीक होता था कि हमें शायद ही उस जमाने की कोई ऐसी सरकारी टिप्पणी मिलती हो जो थोड़ी-सी ही पंक्तियों से कुछ बड़ी हो। अंतिम उमैय्यद खलीफाओं के सचिव अब्द-अल हमीद अल-कातिब (अर्थात् लेखक) के बारे में इब्न खलिक्कान ने लिखा है कि उसने सरकारी पत्राचार में अलंकृत और समास शैली का समारंभ किया जिसकी नम्र शब्दावली पर फारसी का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से झलकता है। यह कृत्रिम और बनावटी-सी शैली भावी लेखकों के लिए एक आदर्श-सी बन गई। इस संबंध में एक लोकप्रिय अरब उक्ति है कि—"पत्राचार-लेखन की कला (इन्शा) अब्द-अल हमीद के समय शुरू हुई और इब्न-अल अमीद के साथ उसका अंत हुआ।"

काव्य :

उमैय्यदों के युग में बौद्धिक क्षेत्र में जो सबसे ज्यादा प्रगति हुई वह निश्चय ही काव्य-रचना की दिशा में हुई। फिर भी धर्मनिष्ठ खलीफाओं के युग में इस्लाम की विजय और विस्तार से कवियों के देश में किसी कवि को प्रेरणा न मिली। पर जब सांसारिक सुखों में आनंद लेने वाले उमैय्यद सत्ता में आये तो काव्य के साथ शराब और गीत का संयोग फिर से स्थापित हुआ। इस युग में अरबी भाषा में प्रेम का कवि प्रथम बार सामने आया। जबकि इस्लामपूर्व कवि अपने लंबे पद्य-खंडों (कसीदाओं) के आरंभ में कुछ रसपूर्ण एवं कामोद्दीपक किस्म के पद्य जोड़ देते थे, पर उन कवियों में से कुछ ने प्रेम-कविताओं (गजलों) में महारत हासिल कर रखी थी। प्रारंभिक कसीदाकारों की शृंगारिक प्रस्तावना (नसीब) से अरब गीत-काव्य फारसी गायकों और उनके उदाहरण पर आगे बढ़ने लगे।

शृंगारिक अरबी कविता का बेताज का बादशाह उमर इब्न अबी रबिया, जिसे अरब का औविद (लैटिन कवि ओविद-ईसा पूर्व ४३-१७ ईसवी सन्) कहा जाता है, स्वतंत्र साधनों का नास्तिक कुरैश था। उमर इब्न-अबी रबिया ने अपना यह पेशा-सा बना लिया कि मक्का और मदीना की तीर्थ-यात्रा पर आई किशोरियों से मुहब्बत की जाय। उसने प्रसिद्ध सुकेना, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा

चुकी है, जैसी आकर्षक स्थानीय महिलाओं से भी मुहब्बत की। गहरे भावावेग और उत्कृष्ट शृंगारिकता की काव्य-भाषा में उसने युवतियों और महिलाओं के प्रति अपने प्रेम को अमर स्वरूप प्रदान किया। उसकी कविता की ताजगी और शौर्य एक ओर इमरू-अल-क्रैज की प्राचीन भावावेग पूर्ण कविता और दूसरी ओर बाद के युग के रूढ़िवादी विचारों की कविता से स्पष्ट रूप से भिन्न है। यदि उमर इब्न अली रबिया की कविता स्वतंत्र प्रेम का प्रतिनिधित्व करता है तो उसका समसामयिक कवि जमील की कविताओं में शुद्ध, निर्दोष और निष्काम प्रेम की अभिव्यक्ति है। वह बनू उधराह जनजाति का था जो हेजाज में बस गई यमनी मूल की ईसाई जनजाति थी। उसकी सभी कविताएँ उसी जनजाति की अपनी प्रेमिका बुथेना को सम्बोधित हैं। उन कविताओं में कोमलता और सुकुमारता की ऐसी भावना है जो उस युग में सर्वथा अद्वितीय थीं। जमील-अल-उधरी की भाँति अर्द्ध-पौराणिक कवि मजनूं लैला, जिसका मूल नाम इब्न-अल मुलावा बताया जाता है, कवियों में गीत-काव्य रचयिताओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस संबंध में कहानी यह है कि वह अपनी ही जनजाति की लैला नामक युवती के प्रेम में पागल-सा हो गया था जिसके कारण उसे मजनूं उपनाम दिया गया। उस युवती ने उसके प्रेम का अनुकूल प्रत्युत्तर तो दिया पर अपने पिता की इच्छा से उसे दूसरे व्यक्ति से विवाह करना पड़ा। इस कारण निराशोन्मत्त होकर वह अधनंगा ही अपने मूल गाँव नज्द के पहाड़ों और वादियों में अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य के गीत गाता फिरा। इन गीतों में अपनी प्रेमिका का दीदार कर लेने की उसकी तीव्र इच्छा झलकती है। इस प्रकार ही उसने अपना शेष जीवन बिताया। जब उसकी प्रेमिका का नाम लिया जाता था, सिर्फ तभी वह अपनी सामान्य मनोदशा में आता था। इस प्रकार मजनूं-लैला अनेकानेक अरबी, फ़ारसी और तुर्की रूमानी कथाओं का नायक बन गया जिसने अमर प्रेम के गुनगान में ही अपना जीवन बिताया। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी अनेक कविताएँ, जो जमील और मजनू की लिखी बताई जाती हैं, दरअसल उन लोगों द्वारा लिखी नहीं गई थी बल्कि अपने मूल रूप में गाथा और लोक गीत थीं।

उमैय्यद युग में प्रेम-कविताओं के अलावा राजनीतिक कविताएँ भी लिखी गईं। इसका प्रथम अवसर तब आया जब मिसकिन अल-दरीमी से अनुरोध किया गया कि वह मुआविया के पुत्र यजीद के खलीफा पद के लिए मनोनीत किए जाने के उपलक्ष्य में गीत लिखे और उनको गाये। इसी युग में पहली बार हम्माद-अल-रबिया द्वारा प्रयास किया गया कि इस्लाम की प्राचीन युग की कविताएँ संकलित की जायँ। हम्माद का जन्म कूफा में हुआ था। वह एक दयलामी (फारसी) युद्ध-बंदी का पुत्र था और अरबी भाषा एक खास लहजे से बोलता था। अरबी इतिहास वृत्तान्तों में कहा गया है कि उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। वालिद द्वितीय

के एक प्रश्न के उत्तर में उसने कहा कि वह जाहिलिया युग की कविताएँ अकेले ही सुना सकता है। उसने वर्णमाला के हर अक्षर पर सौ विभिन्न गीत सुनाए। इतिहास हमें बतलाता है कि खलीफा वालिद ने उससे खुद या किसी अन्य से उसके २९०० लंबे पद्य-खंड (कसीदा) सुने। खलीफा सन्तुष्ट हुआ। उसने पद्य-खंड सुनाने वाले को १००,००० दिरहम पुरस्कार के रूप में दिए। इसमें संदेह नहीं कि हम्माद का सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने "प्रसिद्ध सुनहले गीतों" (मुआल्लकात). का संकलन कर रखा था।

उमैय्यदों की शासनावधि में कविता की प्रान्तीय विचारधारा का नेतृत्व अल-फराजदक (प्रायः सन् ६४०-७३२) और जरीर (प्रायः सन् ७२९) तथा राजधानी की कविता-विचारधारा का नेतृत्व अल-अखतल (प्रायः सन् ६४०-७१०) ने किया। इन तीनों विचारधाराओं का जन्म ईराक में हुआ और वहीं से पली बढ़ीं। ये सभी व्यंग्यकार और स्तुतिगायक थे। ये तीनों कवि उस समय के कवियों की प्रथम पंक्ति में थे। अरब आलोचकों ने अरबी के कवियों में इनकी तुलना का कोई कवि नहीं पाया। अल-अख्तल, जो ईसाई था, धर्मतंत्रीय दलों के विरुद्ध उमैय्यदों का समर्थक था। कामुक कवि अल-फराजदक खलीफा अब्द-अल-मालिक और उसके पुत्रों-वालिद, सुलेमान और यजीद के दरबारों का राजकवि था। उस युग का सबसे बड़ा व्यंग्यकार जरीर उमैय्यद शासन के प्रसिद्ध गवर्नर अल-हज्जाज का राजकवि था। पर इन सभी की जीविका शासकों के स्तुति-गान से चलती थी, उनके व्यंग्य-लेखन से नहीं। इस प्रकार ये कवि वही काम अंजाम देते थे जो आज के राजनीतिक दलों के अखबारों का है। अल-फराजदक और जरीर-अक्सर एक दूसरे पर अत्यधिक विष-भरी एवं गाली-गलौज वाली भाषा में हमला करते थे और इसमें अल-अख्तल-नियमतः अल फराजदक का साथ देता था।

शिक्षा :

उन दिनों औपचारिक किस्म की शिक्षा का प्रचलन न था। प्रारंभिक उमैय्यद राजकुमारों के लिए बादिया, जो सीरिया का एक रेगिस्तान था, विद्यालय का काम करता था जहाँ वे नवयुवक शुद्ध अरबी भाषा की शिक्षा पाते थे। वहीं पर उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआबिया से अपने पुत्र एवं भावी खलीफा यजीद को भेजा। जनता उस व्यक्ति को शिक्षित समझती थी जो अपनी मूलभाषा पढ़ और लिख सकता था, तीर-धनुष चला सकता था और तैर सकता था। भूमध्यकालीन समुद्र के तट पर जीवन के कारण तैरने का महत्त्व बढ़ा।

अब्द-अल मालिक के बाद अध्यापक या शिक्षक, जो सामान्यतः कोई प्राचीन व्यक्ति या ईसाई होता था, दरबार का एक स्थायी सदस्य बन जाता था। इस

खलीफा (अब्द-अल मालिक) ने अपने पुत्रों के बारे में अध्यापक को आदेश दिया :— "उन्हें तैरना सिखाइये और कम सोने का अभ्यस्त बनाइए।" उमर द्वितीय अपनी संतान द्वारा अरबी भाषा के व्याकरण में गलती के लिए कस कर डाँटता था और इसके लिए उन्हें शारीरिक दंड तक भी देने को तैयार रहता था। यह महत्वपूर्ण है कि उसने अपने बच्चों की शिक्षा के बारे में अध्यापकों को सरकारी तौर पर ये निर्देश दिये :—"उन लोगों को पहली नैतिक शिक्षा यह दीजिए कि घृणा या मनोरंजन के साधन की प्रेरणा शैतान से मिलती है और उसका फल होता है अल्लाह का क्रोध।"

जैसी शिक्षा उस समय थी, उसे प्राप्त करने के इच्छुक जन-साधारण मस्जिदों को संरक्षण देते थे जहाँ कुरान और हदीस से संबंधित शिक्षा होती थी। इसलिए इस्लाम के प्रारंभिक शिक्षक कुरान-वाचक (**कुर्रा**) थे। बहुत प्रारंभिक काल में, सन् ६३८ ईसवी सन् में, द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर ने ऐसे अध्यापकों को सभी दिशाओं में भेज दिया और जनसाधारण को आदेश दिया कि वे उनसे मस्जिदों में शुक्रवार को मिला करें। उमर द्वितीय ने इब्न अबी हबीब (सन् ७४६) को मुख्य न्यायाधीश के रूप में भेजा। कहा जाता है कि यह प्रथम व्यक्ति था जिसने वहाँ अध्यापक के रूप में प्रसिद्धि पाई। कूफा में हमें विवरण मिलता है कि दहाक इब्न मुजाहिम ने (सन् ७२३) एक प्रारंभिक विद्यालय (कुत्तब) खोला जहाँ वह विद्यार्थियों से कोई शुल्क न लेता था। हमें यह विवरण भी मिलता है कि द्वितीय मुस्लिम सदी में एक बद्दू बसरा में बस गया था और एक विद्यालय चलाता था जिसमें वह छात्रों से शुल्क लिया करता था।

विज्ञान :

अरबों का कहना है कि पैगम्बर मुहम्मद के शब्दों के अनुसार विज्ञान दो तरह का होता है। "इसमें से एक धर्म से संबंधित होता है और दूसरा शरीर से (अर्थात चिकित्सा)।" अरब प्रायद्वीप की दवायें वास्तव में बहुत प्राचीन थीं। रोगियों को वैद्य द्वारा दवाएँ तो दी जाती थीं; साथ ही उनको भूत-प्रेत से बचाने के लिए कुछ जादुई किस्म के काम किये जाते और ताबीज आदि दिये जाते थे। हदीस में कुछ नुस्खों का जिक्र आता है जिनमें शहद के प्रयोग, शल्य-चिकित्सा या घाव से खून गिराने आदि की बातें कही गई हैं और जिसे "पैगम्बर की औषधि" की संज्ञा दी गई है। औषधि का यह नुस्खा सुरक्षित रखा गया है और आने वाली पीढ़ियों को उपयोग के लिए सुपुर्द किया गया है। इस संबंध में आलोचनात्मक रुख अपनाने वाले इब्न-खाल्दुन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "मुकद्दमा" में इस तरह की चिकित्सा के बारे में तिरस्कारपूर्वक लिखा है। उनका कहना है कि पैगम्बर को अल्लाह ने

धार्मिक विधियों और अभ्यासों के शिक्षण के बारे में भेजा था, न कि औषधियों के बारे में शिक्षण के लिए।

वैज्ञानिक अरब चिकित्सा-प्रणाली का उद्‌भव मुख्यतः यूनानी और अंशतः फारसी स्रोतों से हुआ। खुद फारसी चिकित्सा यूनानी चिकित्सा-परम्पराओं से प्रभावित थी। इस्लाम की प्रथम शताब्दी में अरब चिकित्सकों में सर्वप्रथम स्थान तैफ के अल-हरीश-इब्न-कालादाह का है जिन्होंने फारस में चिकित्सा-पद्धति का अध्ययन किया था। अल-हरीश अरब प्रायद्वीप में वैज्ञानिक पद्धति से प्रशिक्षित प्रथम चिकित्सक थे और उन्हें "अरबों के चिकित्सक" की सम्मानार्थ उपाधि दी गई थी। चिकित्सा की कला में उनका उत्तराधिकारी, जैसा कि बराबर होता है, उनका पुत्र अल-नद्र हुआ जिसकी माँ पैगम्बर की चाची थी।

जब अरबों ने पश्चिमी एशिया पर कब्जा किया, उस समय यूनानी विज्ञान कोई जीवन्त शक्ति न रह गया था, बल्कि वह यूनानियों या सीरियाई लेखकों, समीक्षकों और चिकित्सा-पेशे वालों के हाथों एक परम्परा मात्र थी। उमैय्यदों के दरबार के चिकित्सक इसी समूह के थे। इनमें प्रमुख ये लोग थे :—मुआविया का ईसाई चिकित्सक इब्न-उतल और अल-हज्जाज का यूनानी चिकित्सक तयादुक। तयादुक के कुछ चिकित्सा-सूत्र सुरक्षित रखे गये हैं पर तत्कालीन चिकित्सा की तीन या चार पुस्तकों में से उसकी लिखी पुस्तक कोई नहीं है। बसरा के फारसी मूल के यहूदी चिकित्सक मसरजवाय ने, जो मारवान इब्न-अल-हक्काम के शासन के प्रारंभिक दिनों में हुआ, चिकित्सा पर एक सीरियाई शोध-प्रबंध का अरबी में अनुवाद किया (सन् ६८३)। यह शोध-प्रबंध यूनानी भाषा में सिकन्दरिया के ईसाई पुरोहित अहरुन ने लिखा था। उमैय्यद खलीफा के बारे में कहा गया है कि उसने कोढ़ से पीड़ित लोगों को जन-साधारण से अलग रखने की व्यवस्था की और उनके इलाज के लिए विशेष प्रबंध किये। कहा जाता है कि उमर द्वितीय चिकित्सा-विद्यालय सिकन्दरिया से जहाँ चिकित्सा की यूनानी परम्परा चल रही थी, हटा कर एंटिओक और हारान ले गया।

कीमियागरी चिकित्सा के बाद उन कुछ विज्ञानों में थी जिसमें अरबों ने बाद में अत्यन्त स्पष्ट योगदान किया। यह बहुत पहले विकसित होने वाली एक शिक्षा-शाखा थी। **फिहरिस्त** (सबसे पुराने और सबसे अच्छे सूचना स्रोत) के अनुसार द्वितीय उमैय्यद खलीफा यजीद का पुत्र खालिद जिसे "मारवानियों का दार्शनिक" (हकीम) भी कहा जाता है, इस्लाम में पहला व्यक्ति था जिसने कीमियागरी, चिकित्सा और ज्योतिष पर यूनानी और पुरानी मिस्री पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया। यद्यपि यह बात एक दन्तकथा जैसी है और इसका कोई खास ठोस

प्रमाण नहीं पर अरबी में इन पुस्तकों का अनुवाद-कार्य खालिद द्वारा किया गया बतलाया जाना इस बात का सबूत है कि अरबों ने अपनी वैज्ञानिक जानकारी पुराने यूनानी स्रोतों से प्राप्त की और वे इस मामले में उन्हीं से प्रभावित रहे। उक्त कथन में खालिद के साथ इस दिशा में सुप्रसिद्ध जाबिर इब्न हय्यान का नाम भी जोड़ा जाता है। पर जाबिर खालिद के बाद सन् ७७६ में हुआ। उसके बारे में अब्बासिदों के युग के विवेचन के सिलसिले में आगे उल्लेख किया जाएगा। इसी प्रकार चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंशज और शिया लोगों के बारह इमामों में से एक, जफर अल सादिक को ज्योतिष और कीमियागरी की पुस्तक का जो लेखक बतलाया गया है उसका आधुनिक विद्वानों ने खंडन किया है। उमैय्यदों के अधीन बौद्धिक जीवन के बारे में सबसे ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि उस युग में हुई वैज्ञानिक गतिविधियों के बारे में दस्तावेजों के रूप में कोई चिह्न वर्तमान नहीं है जिसके आधार पर हम इस दिशा में उस युग की प्रगति के बारे में सही लेखा-जोखा कर सकें।

चित्रकला :

इस्लाम के धर्मतांत्रिकों का कहना है कि आदमियों और पशुओं के स्वरूप के द्योतक और निरूपण का विशेषाधिकार केवल अल्लाह को है और उसके इस अधिकार क्षेत्र का जो भी उल्लंघन करता है वह अधार्मिक व्यक्ति है। चित्रकला और मूर्त्तिकला जैसी द्योतन-कलाओं के विरुद्ध यह रुख कुरान के कट्टर एकेश्वरवाद और मूर्त्तिपूजा-निषेध विचारधारा के परिणामस्वरूप है। इस रुख की प्रत्यक्ष स्वीकृति हदीस द्वारा दी गई है जिसमें पैगम्बर मुहम्मद का यह कथित वक्तव्य मिलता है कि जो लोग अंतिम निर्णय के दिन कठोरतापूर्वक दंडित होंगे उनमें चित्रकार भी हैं। चित्रकारों के लिए मुसाव्विरुन (चित्रण-कर्त्ता) शब्द का प्रयोग किया गया है जो मूर्त्तिकला में लगे लोगों पर भी लागू होता है। यही कारण है कि मस्जिदों में हमें कहीं भी मनुष्यों की आकृति का चित्रण नहीं मिलता, यों कुछ मामलों में महलों और पुस्तकों में ऐसा चित्रण मिलता है। अलावे, खुद अरबों में मिट्टी से निर्माण-संबंधी या चित्रांकन कला के लिए कोई अभिरुचि न थी। यह बात अरब प्रायद्वीप में उनके ध्वंसावशेषों और उनके पुण्य स्थानों के साहित्यिक वर्णनों से अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। जिसे हम मुस्लिम कला कहते हैं वह अपने मूल, प्रमुख स्वरूप और कार्यान्वयन में मुसलमानों द्वारा विजित लोगों की कला-प्रतिभा से उत्पन्न थी। पर उसका विकास मुसलमानों के संरक्षण में हुआ। साथ ही उस कला ने अपने को मुस्लिम धर्म की माँगों के अनुरूप बना लिया।

मुस्लिम चित्रकला के सबसे प्रारंभिक कुसैर आमरा के भित्तिचित्र हैं जो ईसाई चित्रकारों की कलाकृति के प्रमाण हैं। वालिद प्रथम के ट्रांसजोर्डानिया

स्थित इस मनोरंजन एवं स्नान-गृह की दीवारों पर छः शाही व्यक्तियों के चित्र हैं। इनमें स्पेन का आखिरी विशिगोथिक वंश का राजा रोडारिक भी शामिल है। कैसर (सीजर) और नजशाही (नेगस) के नाम इन दोनों के भित्ति-चित्रों के ऊपर अंकित हैं। तीसरे चित्र के ऊपर कोसरोस का नाम यूनानी में अंकित है। इस चित्रकला पर सासानिदों (फारसियों) का प्रभाव स्पष्ट है। अन्य भित्ति-चित्रों पर विजय, दर्शन, इतिहास और काव्य के प्रतीकात्मक चित्र हैं। शिकार के एक चित्र में एक शेर एक जंगली गधे पर झपटता हुआ दिखलाया गया है। कुछ नग्न चित्रों में नर्त्तकों, गायकों, और मौज-मजा उड़ाने वालों का चित्रण है। इन चित्रों में सजावट खूबसूरत वस्त्र-सज्जा, कलशों से उत्पन्न-सी होने वाली पत्तियों के समूहों, अंगूर-लताओं, फल-गुच्छों के साथ खजूर वृक्षों, विजय चिह्न की प्रतीक हरी चिकनी पत्तियों और रेगिस्तान की चिड़ियों के चित्रण से की गई है। भित्ति-चित्रों में खुदी भाषा अधिकांशतः अरबी है, पर कुछ नाम यूनानी में भी दिये गए हैं।

संगीत :

इस्लाम-पूर्व युग में अरबों के बीच विभिन्न प्रकार के गीत प्रचलित थे जिनमें प्रमुख थे कारवाँ-गीत, धार्मिक गीत एवं गुप्त प्रेम-संबंधी गीत। तीर्थ-यात्रा संबंधी समारोह के तलबियाह[१०] में अभी भी प्राचीन धार्मिक गीतों के चिह्न सुरक्षित हैं। कुरान के भजनों (तजवीद) में अभी भी इन्शाद या काव्य-पठन की रीति को कायम रखा गया है। जाहिलिया युग के पेशेवर गायकों में अधिकांश महिलाएँ थीं। उनमें से कुछ के नाम "अगानी" में जो गीतों का संग्रह है, अब भी हमें मिलते हैं। कुछ शोक-गीत भी मिलते हैं जिनमें पैगम्बर मुहम्मद की समसामयिक कवयित्री अल-खानसा द्वारा अपने भाई और प्रसिद्ध योद्धा सख्र की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है। अल-खानसा अरबों द्वारा सबसे बड़ी कवयित्री मानी जाती है। उसके द्वारा लिखे गये ये शोकगीत प्रत्यक्षतः सामान्य गीतों-जैसे ही रचित हैं। इस्लाम-पूर्व कवियों में से अधिकांश ने अपने गीत संगीत से सजा कर पेश किये। फिर भी पैगम्बर मुहम्मद ने संगीत को इसलिए पसंद न किया होगा कि इनका संबंध इस्लाम-विरोधी धार्मिक कार्यविधि से है। अधिकांश मुस्लिम विधि-वेत्ताओं और धर्म-तांत्रिकों ने संगीत पर नाक-भौं सिकोड़ी है। कुछ ने संगीत के सभी पहलुओं की निन्दा की है। कुछ और ने इसे धार्मिक रूप से प्रशंसनीय नहीं माना है पर साथ ही इसे पापपूर्ण भी करार नहीं दिया है। पर इस संबंध में जनसाधारण के विचार इस उक्ति से स्पष्ट हैं—"शराब शरीर जैसा है और संगीत आत्मा जैसा, एवं उनकी संतान है खुशी।"

---

१०. प्रार्थना-गीत का पाठ, जिसका आरंभ "लब्बयका" (यहाँ मैं हूँ) से होता है।

मदीना का तुवेज (छोटा मोर, सन् ६३२ से ७१०) इस्लाम में संगीत का पिता माना जाता है। कहा जाता है कि उसने अरब संगीत में लय समाविष्ट की। वह प्रथम व्यक्ति था जिससे वाद्य यंत्र खंजरी की ध्वनि के साथ अरबी भाषा में गीत गाया। मुस्लिम गायकों की पहली पीढ़ी में, जिनका प्रधान तुवेज था, *अधिकांशत: विदेशी इच्छा-स्वातंत्र्यवादी थे। तुवैज के अनेक शिष्यों में से इब्न*-सुरायज (सन् ६३४-७२६) इस्लाम के चार महान गायकों में से एक माना जाता है। इसके अलावा उसे इस बात का श्रेय दिया है कि उसने न केवल अरब संगीत में फारस की सितार-प्रणाली का आरंभ किया बल्कि उसके साथ संगीत-प्रक्रिया के निदेश के लिए छोटे डंडे के प्रयोग का आरंभ भी किया। इब्न सुरायज बंदी जीवन से स्वतंत्र किया हुआ व्यक्ति था। उसका पिता तुर्क था। उसे पिछले अध्याय में चर्चित एवं अल हुसेन की पुत्री सुन्दरी सुकेना का संरक्षण प्राप्त था। सैद इब्न-मिस्जा मक्का का प्रथम और शायद उमैय्यद युग का सबसे बड़ा संगीतकार था। सैद ने सम्पूर्ण सीरिया और फारस की यात्रा की और वह प्रथम व्यक्ति था जिसने वैजेन्टाइन और फारस के गीतों को अरबी भाषा में प्रस्तुत किया। विवरणों से स्पष्ट होता है कि उसने पुराने युग के अरब संगीत-सिद्धान्त और अभ्यास को सुव्यवस्थित किया। उसका दूसरा छात्र अल-गारिद मिश्रित रक्त वाला वर्बर जन-जाति का था और सुकेना के यहाँ दास के रूप में काम करता था। उसे भी इब्न-सुरायज ने संगीत में प्रशिक्षित किया। बाद में वह संगीत में इतना निष्णात और प्रवीण हो गया कि उसे भी इस्लाम के चार महान् ईर्ष्येय गायकों में से एक का पद दिया गया। इन चार महान संगीतकारों में अन्य दो थे इब्न मुहरिज और माबद। इब्न मुहरिज मूलतः फारसी था और उसे जन-साधारण में अरबों का मंजीरवादक कहा जाता था। माबद मदीना का था और वालिद प्रथम, यजीद द्वितीय और वालिद द्वितीय के दरबारों का विशेष प्रिय संगीतकार था। संगीतकार महिलाओं में जमीला, जो मदीना की बंदीगृह से मुक्त की गई महिला थी, संगीतकारों की पहली पीढ़ी की कला-साम्राज्ञी थी। उसका निवास-स्थान मक्का और मदीना के प्रमुख संगीतज्ञों और गायकों के लिए आकर्षण-केन्द्र था। उनमें से अनेक उसके शिष्य थे। उसकी संगीत-सभाओं में अक्सर उपस्थित होने वालों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रेम-गीतों के कवि उमर इब्न-अबी रबिया का था। उसकी शिष्याओं में हबावा और सलामा थीं जो दोनों यजीद द्वितीय की प्रिय-पात्राएं थी। उसके चित्रमय से जीवन-वृत्त की सबसे प्रमुख घटना थी मक्का की तीर्थ-यात्रा पर उसके नेतृत्व में जाने वाला शानदार जुलूस जिसमें सभी उत्सव-वस्त्र धारण किए और अमीरी ठाट से सजी सजाई सवारियों पर बैठे हुए गायक, गायिकायें, कवि और संगीतकार, प्रशंसक और मित्र शामिल थे। अलावे, समृद्ध और अमीर महिलाओं के घरों में बीच-बीच

में जो संगीत-सभाएँ और उत्कृष्ट संगीत-संबंधी घटनाएँ होती थीं उनमें संगीत का आनंद उठाने के लिए कला-प्रेमियों की भीड़ जमा हो जाया करती थी। इस समय तक संगीत में अल-हिरा द्वारा फारस से लाये गये लकड़ी के बने सितार ने अंशतः चमड़े के बने देशी सितार का स्थान ले लिया था। संगीत कृति "अगानी" में वे गीत भरे पड़े हैं जिनको उमैय्यदों के युग में संगीत की धुनों में बाँधा गया, पर उसमें ऐसी एक भी धुन का उदाहरण नहीं दिया गया है। एक बार जब ईराकी गायकों का बेताज का बादशाह, हुनैन अल-हिरी, जो ईसाई था, अपने संगीत के प्रदर्शन के लिए अल-हिजाज आया तो इस समारोह के स्थल सुन्दरी सुकेना के निवास-स्थान पर उसका संगीत सुनने के लिए आने वालों की इतनी भीड़ हुई कि उसका द्वार मंडप (ड्योढ़ी) धँस गया जिससे वहाँ आने वाले एक विशिष्ट कलाकार की मृत्यु हो गई। मक्का की वार्षिक तीर्थ-यात्रा के समय मुस्लिम जगत के प्रायः सभी प्रसिद्ध व्यक्ति इकट्ठा होते थे। इससे हैज्जात के संगीतज्ञों और गायकों को हर वर्ष अवसर मिलता था कि वे आने वाले लोगों के समक्ष अपनी कला प्रतिभा का प्रदर्शन करें। इस संबंध में वृत-ग्रन्थ "अगानी" में इस तीर्थ-यात्रा-सामारोह का विस्तृत वर्णन दिया गया है जिसमें उस युग की काव्य-भावना का प्रतिनिधि उमर इब्न-अबी रबिया प्रमुख भूमिका अदा करता था। उसके साथ उस जमाने का प्रसिद्ध गायक इब्न-सुरायज भी रहा करता था। जब वह उमर की कविताएँ अपने संगीत की धुनों में सजा कर गाता था तो तीर्थयात्रा पर आये श्रद्धालुओं का ध्यान धार्मिक क्रिया-विधियों से हट जाता था और वे समारोह की संगीत रस-धारा में डूब-से जाते थे।

इस प्रकार मक्का और विशेषकर मदीना ने उमैय्यद युग में गीतों की सृजन-शाला और संगीत के संरक्षण-स्थल का रूप धारण कर लिया। इसी कारण उमैय्यदों की राजधानी दमिश्क के दरबार में पहुँचने वाली प्रतिभाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगी। अनुदारवादियों और उलेमाओं ने इस संबंध में आपत्तियाँ उठाईं पर वह सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। उन लोगों ने अपनी आपत्तियों में संगीत और गीत तथा मद्य-पान और क्रीड़ा को प्रतिबंधित सुखों की संज्ञा दी और कहा कि ये शैतान द्वारा सृजित मन-बहलाव के ऐसे शक्तिशाली साधन हैं जिनके जरिए शैतान इंसान को लुभाता और अपने रास्ते से विचलित करता है। दमिश्क के लोग इसके उत्तर में कह सकते थे कि कविता, संगीत और गीत बराबर मनुष्य को दूषित नहीं करते बल्कि सामाजिक सम्पर्कों को उच्च स्तर प्रदान करते तथा पुरुष-स्त्री संबंधों को उन्नत बनाते हैं।

उमैय्यद खलीफाओं ने संगीत को बहुत ज्यादा संरक्षण प्रदान किया। द्वितीय उमैय्यद खलीफा यजीद प्रथम ने जो स्वयं गीत-लेखक था, दरबार में गायन और

संगीत वाद्य-यंत्रों का प्रयोग आरंभ किया। उसने महल में विशाल संगीत-समारोह भी कराए जो बाद में चल कर शाही समारोहों के अनिवार्य अंग बन गये। अब्द-अल मालिक ने हेज्जात संगीत-विचारधारा के इब्न-मिस्जा को संरक्षण दिया। उसका पुत्र वालिद ललित कलाओं का बड़ा संरक्षक था। उसने महान संगीतकारों इब्न-सुरायज और माबद को राजधानी में आमंत्रित किया जहाँ बड़े सम्मान के साथ उनका स्वागत हुआ। अति-संयमी और शुद्धतावादी उमैय्यद खलीफा उमर द्वितीय के उत्तराधिकारी यजीद द्वितीय ने अपनी प्रियपात्र गायिकाओं हबाबा और सलामा के माध्यम से गीत और संगीत को सार्वजनिक तौर पर पुनः प्रतिष्ठा दी। महान उमैय्यद खलीफा हिशाम ने श्रेष्ठ ईसाई संगीतकार अल-हिरा के हुनेन को संरक्षण दिया। मनोरंजन-प्रेमी वालिद द्वितीय ने, जो खुद सितार-वादक और गीतकार था, अपने दरबार में अनेक संगीतकारों एवं गायकों का स्वागत किया जिनमें प्रसिद्ध संगीतज्ञ माबद भी था। उसके शासन के समय ही अल-हेज्जाज के जुड़वाँ नगरों-मक्का और मदीना में संगीत-कला बड़े पैमाने पर पुष्पित और पल्लवित हो रही थी। इस प्रकार उमैय्यदों के युग में संगीत-कला को व्यापक रूप से प्रचार का अवसर मिला।

वास्तुकला :

यदि अरबों की कभी कोई देशी वास्तु-कला (या भवन-निर्माण) रही हो तो वह केवल यमन में होगी। पर अभी तक अन्वेषकों और खोज-कर्त्ताओं को उस संबंध में पर्याप्त सामग्री और आंकड़े नहीं मिल सके हैं। यदि ऐसी बात रही भी हो तो दक्षिणी अरब की, जिसका एक भाग यमन है, कला ने अरब प्रायद्वीप के उत्तरी भाग के जीवन में बहुत अहम भूमिका निश्चय ही अदा न की। वहाँ लोगों का निवास-स्थान तंबू था, खुले आसमान की छत के नीचे पूजा-स्थल होते थे और रेगिस्तानी बालू के नीचे कब्रें। रेगिस्तानी क्षेत्रों में जो मरूद्यान पाये जाते थे वहाँ के निवासियों की वास्तुकला फूहड़ किस्म की होती थी और उस संबंध में आज भी वैसी ही स्थिति है। उनके घरों की छतें खजूर की लकड़ी और मिट्टी की बनी चौरस होती थीं। उन घरों में न कोई सजावट होती थी और न कोई अलंकरण। उनका निर्माण ही जिन्दगी की सबसे आवश्यक जरूरतों को ध्यान में रख कर किया जाता था। यहाँ तक कि हेज्जाज के राष्ट्रीय तीर्थ-स्थल-अल-काबा का भवन प्राचीन प्रकार का घनाकार ढाँचा मात्र है जिस पर कोई छत नहीं। वास्तुकला, जिसका स्थान कलाओं में सर्वप्रथम और सबसे अधिक चिरस्थायी है, अपने धार्मिक वैभिन्य में भवन-निर्माण कला का सबसे अधिक प्रतिनिधि स्वरूप है। पूजा का स्थान जो शाब्दिक अर्थ में देवता का घर होता है, वह पहला ढाँचा है जिसे नव-जाग्रत आत्मा उस निवास-स्थान से, जो मानवीय आवास की भौतिक आवश्यकताओं

की पूर्ति के लिए बनाया जाता है, उच्चतर स्वरूप देने का प्रयास करती है। मुस्लिम अरब कलाओं के मामले में, भवन-निर्माण कला ने धार्मिक भवन-निर्माण में अपनी सर्वोच्च अभिव्यक्ति प्राप्त की। मुस्लिम वास्तुकारों (भवन-निर्माताओं) अथवा उनके द्वारा नियोजित व्यक्तियों ने धार्मिक भवन-निर्माण की ऐसी योजना विकसित की जो सीधी-सादी पर साथ ही प्रतिष्ठापूर्ण थी। यह नई कला धार्मिक भवनों के पुराने ढांचे पर आधारित थी पर इसके बावजूद विशेष रूप से नये धर्म की भावना अभिव्यक्त करती थी। इस प्रकार मस्जिद (वह स्थान जहाँ अल्लाह की इबादत में आदमी पेट के बल लेट जाता है) इस्लामी सभ्यता एवं उसके अन्तर-जातीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के इतिहास का निचोड़ सी है। इस्लाम का अपने पड़ोसियों के साथ जो पारस्परिक संबंध था उसका सुस्पष्ट उदाहरण मस्जिद के अलावा और कुछ नहीं मिल सकता।

मुसलमानों के लिए पुण्य-स्थान मक्का की नहीं बल्कि मदीना की पैगम्बर मुहम्मद की सीधी-सादी-सी मस्जिद, इस्लाम की पहली सदी में, उन मस्जिदों के लिए नमूना-स्वरूप बनी जहाँ इकट्ठा हो कर लोग नमाज पढ़ते हैं। इस मस्जिद में एक खुला-सा आँगन था जो चारों ओर धूप में पकाई गई मिट्टी की दीवारों से घिरा हुआ था। बाद में सूरज की धूप से बचने के लिए पैगम्बर ने आस-पास के मकानों पर छाई चौरस छत को विस्तृत कर उस आँगन को भी छपा दिया। छत ताड़ के पेड़ों के पत्तों और मिट्टी की बनी हुई थी जो ताड़ के पेड़ों के तनों के सहारे टिकी हुई थी।

अरबों द्वारा विजित क्षेत्र में पहली मस्जिद अल-बसरा में उतबाह इब्न गजबान द्वारा बनबाई गई (सन् ६३७ अथवा ६३८)। उतबाह ने ही इस नगर की स्थापना सेना के लिए शीत-शिविर के रूप में की थी। बाद में मस्जिद की दीवार में **मिहराब** अथवा एक छोटी खुली जगह या कोना बनाया गया। यह प्रार्थना की दिशा के संकेत का द्योतक था जो गिरजाघर की नकल पर बनाया गया था। उमैय्यद शासक अल-वालिद और उसके गवर्नर तथा एक अन्य उमैय्यद शासक-उमर इब्न-अब्द-अल अजीज को मस्जिद में मिहराब बनवाने का श्रेय दिया जाता है, यद्यपि इसका कुछ श्रेय मुआविया को भी है। स्पष्टतः मदीना की मस्जिद में ही सबसे पहले मिहराब बनवाया गया। बाद में, बहुत जल्द, मिहराब सभी मस्जिदों का एक सामान्य अंग बन गया और जिस प्रकार गिरजाघरों में वेदी को पवित्रतम स्थान प्राप्त है उसी प्रकार मस्जिदों में मिहराब को प्राप्त हो गया। मस्जिद में एक काम यह किया गया जिसके लिए सामान्यतः मुआविया को जिम्मेदार ठहराया जाता है, कि वहाँ एक घेरेदार स्थान **मकसुरा** बनाया गया जो खलीफा के उपयोग के लिए सुरक्षित रहता था। यह परम्परा आरंभ करने के लिए अनेक कारण दिये जाते

हैं। इनमें मुख्य है कि खलीफा के जीवन पर खारिजियों ने जो हमला किया था उसके बाद से उसकी रक्षा के लिए मस्जिद में **मक्सुरा** बनाया जाने लगा जहाँ खलीफा ध्यान करने के लिए बैठा करता। **मिहराब** की तरह मीनार भी उमैय्यदों द्वारा शुरू की गई। इसलिए सीरिया मीनार का मूल स्थान है। वहाँ सीरिया ने देशी बुर्ज का स्थान ले लिया। उसके बाद बनाई जाने लगी गिरजाघर की बुर्ज की जैसी ही, जो कि चौकोर होती है, मस्जिद की बुर्ज ने भी रूप धारण कर लिया।

सीरिया की राजधानी दमिश्क में उमैय्यदों की मस्जिदों में बनाये गये बुर्जों पर सबसे प्रारंभ में लिखने वाले एक इतिहास-लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह सेंट जौन के बड़े गिरजाघर के बुर्ज के आधार पर बनवाया गया। उमैय्यद शासक एवं महान भवन-निर्माण कर्त्ता अल-वालिद ने सीरिया और हेज्जाज में मस्जिदों में कई बुर्ज बनवाये। वालिद के गवर्नर उमर ने मदीना की मस्जिद में बुर्ज बनवाई। उसके बाद तो मस्जिदों में बुर्जों की संख्या निरन्तर अधिक-से-अधिक होती गई।

उमैय्यद वास्तुकला अब्द-अल-मालिक और उसके पुत्र वालिद के शासन में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची। जेरूसलेम में अब्द-अल-मालिक के शासन में बनवाई गई चट्टान की गुम्बद (कुब्बाह-अल-सखरा) प्रारंभिक मुस्लिम वास्तुकला की सबसे सुन्दर नमूना है। इसे गलती से "उमर की मस्जिद" कहा जाता है। यह ऐसी उदात्त सुन्दरता का वास्तुकला स्मारक है कि उसकी तुलना में कहीं भी कोई स्थापत्य नमूना नहीं मिलता। यह सबसे प्रारंभिक मस्जिद है जिस पर गुम्बद बनाया गया। गुम्बद इमारती लकड़ी की बनाई गई है। उस पर बाहर सीसा चढ़ाया गया है और भीतर पलस्तर चढ़ा कर रंग दिया गया है। इसकी दीवारें अर्द्ध-वर्तुलाकार पत्थरों की बनी हुई हैं। अब्द-अल-मालिक ने जेरूसलेम में चट्टान का गुम्बद उस समय बनवाया जब उसके प्रतिद्वन्द्वी खलीफा इब्न-जुबैर ने मक्का पर अधिकार कर रखा था। अब्द-अल मालिक ने इसे काबा का जहाँ उसकी प्रजा पहुँच न सकती थी, स्थान लेने के लिए बनवाया था। इसलिए उसने इसे तीर्थ-यात्रा के स्थान में बनवाया। "चट्टान का गुम्बद" मुसलमानों के लिए कोई वास्तुकला संबंधी अभि-रुचि और कलात्मक मूल्य की वस्तु नहीं बल्कि उनके धार्मिक विश्वास का जीवन्त प्रतीक है।

अब्द-अल मालिक ने "चट्टान के गुम्बद" के पास एक और मस्जिद-"आक्सा मस्जिद"-बनवाई। "आक्सा मस्जिद" या जामी अल-आक्सा का यह नाम इसलिए दिया गया कि यह हजरत मुहम्मद की रात्रि-यात्रा की कहानी से संबंधित है। इसे

पूजास्थल (चट्टान की गुम्बद) के क्षेत्रों में बनवाया गया। इस मस्जिद को आक्सा नाम इसलिए दिया गया क्योंकि इसे चट्टान के गुम्बद के समीप बनवाया गया। इसके निर्माण में जस्टिनियाई सेंट मेरी के गिरजाघर के ध्वंसावशेष का प्रयोग किया गया। यह ध्वंसावशेष उस स्थल पर तब तक वर्तमान रहा जब तक उसे फारसी सम्राट् खुसरू प्रथम (अनुशिरवान) ने नष्ट न कर दिया। सन् ७७१ में जब एक भूकम्प से यह मस्जिद ध्वस्त हो गई तो अब्बासिद खलीफा अल-मंसूर ने इसे फिर से बनवाया। बाद में धर्म-युद्ध करने वालों ने इसकी मरम्मत करवाई।

सीरिया में दूसरी महत्त्वपूर्ण इमारत दमिश्क की मस्जिद है। सन् ७०५ में खलीफ़ा अब्द-अल-मालिक के पुत्र खलीफा अल वालिद ने दमिश्क के बडे सभा-कक्ष के स्थल को, जो सेंट जौन को समर्पित था और जहाँ मूलतः बृहस्पति-देवता (जूपिटर) का मंदिर था, अपने कब्जे में ले लिया और वहाँ "उमैय्यद मस्जिद" बनवाई। यह निश्चित कर सकना कठिन है कि अल-वालिद की इस मस्जिद में किस हद तक ईसाई बृहस्पति (जुपिटर) मन्दिर के अंश को बरकरार रहने दिया गया। इस मन्दिर की दो दक्षिणी मीनारें गिरजाघर की पुरानी मीनारों पर ही, जो बड़े सभा-कक्ष की थीं, खड़ी हुई हैं। पर मस्जिद की उत्तरी मीनार, जो प्रकाश-स्तंभ के रूप में इस्तेमाल की जाती थी, निश्चय ही वालिद की बनवाई हुई थी। बाद में सीरिया, उत्तरी अफ्रिका और स्पेन में बनाई गई मस्जिदों की इस तरह की मीनारों के लिए वह मीनार नमूना बनी। यह अभी भी वर्तमान सबसे पुरानी विशुद्ध मुस्लिम मीनार है। मीनार के तीन मध्य भाग और आड़ा बाजू, जिसके ऊपर ही बड़ा गुम्बद खड़ा है, और उसकी पच्चीकारी भी वालिद द्वारा ही कराई गई है। कहा जाता है कि उनका निर्माण भी वालिद ने ही कराया। उसने इसके लिए फारसी और भारतीय कारीगरों और यूनानी राजमिस्त्रियों को नियोजित किया जो यूनानी राजमिस्त्री कान्स्टैंटीनोपुल के सम्राट् द्वारा दिए गए थे। इतिहासकार पेपीरी ने इस संबंध में हाल में जो खोज की है उससे प्रकट होता है कि इस मस्जिद के लिए सामग्री और दक्ष कारीगर मिस्र से बुलाये गए थे। भूगोलकार अल-नकदिसी का, जिसने दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह मस्जिद देखी, कहना है कि इसमें पच्चीकारी सोने और हीरे-जवाहरात से की गयी थी जिनसे पेड़ों और नगरों के चित्र बनाये गए थे और खूबसूरत कुरान-वाक्य अंकित किये गए थे। इस मस्जिद में प्रथम बार प्रार्थना के लिए कोना (मिहराब) बनाया गया था। यहाँ बनाया गया घोड़े के नाल के आकार का मेहराब भी स्पष्ट और उल्लेखनीय है। साथ ही, यह भी ध्यातव्य है कि मुसलमानों की दृष्टि में उमैय्यद मस्जिद दुनिया का चौथा आश्चर्य है। इसे इस्लाम का चौथा पुण्य-स्थान भी माना जाता है।

उमैय्यद खलीफा सुलेमान ने रामला की स्थापना की और उसकी सामूहिक प्रार्थना की मस्जिद बनवाई। भूगोलकार मकदिसी के अनुसार यह एक खूबसूरत इमारत थी जिसमें संगमर्मर पत्थर के खंभे और रास्ते थे। सुलेमान ने अलेप्पो में भी प्रथम सामूहिक प्रार्थना की मस्जिद बनवाई।

भवन-निर्माण-कला में उमैय्यद कुछ भवन भी छोड़ गये हैं जिनमें कुसेर आमरा (कुसेर का छोटा महल) प्रधान है। इसे वालिद प्रथम ने बनवाया है। यह जोर्डन के पूर्व में है तथा मृत सागर के उत्तरी छोर से सीधे पंक्ति में है। इस महल के बारे में जो सन् ७१२ से ७१५ के बीच बनवाया गया, मुस्लिम ने १८९८ में पता लगाया और इस बारे में इतिहास के विद्वानों को बतलाया। संभवतः महल का यह नाम आधुनिक है क्योंकि अरब साहित्य में इस नाम का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। यह इमारत इस कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इसमें असाधारण भित्ति-चित्रकारी है। यह महल निकटवर्ती पहाड़ों के कड़े, लाल रंग के चूना के पत्थर से बनाया गया है और इसके दो प्रमुख अंग हैं—(१) आयताकार सभा-कक्ष और (२) तीन छोटे कमरों वाला स्नानघर।

●

अध्याय १०

उमैय्यद राजवंश की अवनति और पतन

खलीफा अल-वालिद के बाद उमैय्यद राजवंश सहसा अपने पतन के ढालुवाँ रास्ते पर लुढ़कने लगा। यह रास्ता बहुत चिकना था जिस पर पाँव तेजी के साथ रपटते चले जायँ और साथ ही छोटा भी था। अल-वालिद के उत्तराधिकारियों में से शायद ही कोई उसकी गौरवशाली विरासत को संभालने लायक था। उनमें से अधिकांश यदि लम्पट और भ्रष्ट न थे तो खलीफा पद के लिए अयोग्य तो जरूर ही थे। उनके दरबारों में दास, गायक-गायिकाओं, शराब की बोतल के साथियों, मौज-मजा उड़ाने वालों और अन्य प्रकार के कुत्सित व्यसनों के आदी लोगों की भरमार हो गई। रेगिस्तान के बेटे (अरब) अपने को सभ्यता की बुराइयों से मुक्त न रख सके। उमैय्यदों के राज्य में सहसा धन की जो बाढ़ आई उसके साथ ही उनके यहाँ दासों की अप्रत्याशित वृद्धि हुई और उन्होंने अपने विजित क्षेत्रों से अनेकानेक रखेलिनें रखने की परम्परा भी अपना ली। इससे वे शान-ओ-शौकत और मौज-मजों में बुरी तरह डूब-से गये। यह साफ था कि जो दुश्मन उनके विनाश के लिए कृतसंकल्प हो कर अंतिम और निर्णायक मुठभेड़ के लिए तैयारियाँ कर रहा था, उससे लड़ने के पहले वे खुद ही आत्म-घात में लग गये। जब गले के प्रदाह की बीमारी से सन् ७४३ में हिशाम की मृत्यु हो गई और अब्द-अल-मालिक के पुत्रों ने एक-एक कर अपना शासन पूरा कर लिया तभी वास्तव में उमैय्यद राजवंशों का दीया बुझ गया। अनेक कारण थे जिनसे इस राजवंश का पतन हुआ।

खलीफाओं की अन्तर्निहित दुर्बलता :

उमैय्यद शासकों की अयोग्यता और उनका चारित्रिक कलुष इस राजवंश के उखाड़ फेंके जाने के मुख्य कारण थे। यदि साम्राज्य का शासक ही कमजोर हुआ तो अपने अधीन शक्तिशाली तत्वों पर से उसकी पकड़ ढीली पड़ जाती है और फलतः आरंभ होती है उसके विनाश की प्रक्रिया। कुछ खलीफाओं जैसे कि मुआविया, अब्द-अल-मालिक, वालिद प्रथम, उमर द्वितीय और हिशाम को छोड़ कर उमैय्यद खिलाफत में शायद ही अन्य खलीफा ऐसा हुआ जिसे योग्य शासक कहा जा सके। उनमें अधिकांश सुरा, सुन्दरी और संगीत के आदी थे और कुरान तथा राज-काज से उन्हें कोई लगाव न था। अरब इतिहास के अधिकारी हिशाम

को बहुत आदर देते हैं और उसे मुआविया और अब्द-अल-मालिक के बाद उमैय्यद राजवंश का तीसरा और अंतिम राजनेता मानते हैं। ऐसा इसके बावजूद कि उस पर अपने लंबे शासन-काल में नींद में चलने वाले व्यक्ति की तरह काम करने वाले का आरोप लगाया गया है। उस पर यह आरोप भी है कि वह अपने राज्य की रक्षा करने के बजाय बड़ी नहरें खुदवाने, बाग-बगीचे लगवाने और अपने चार हजार घोड़ों की दौड़ देखने में ही ज्यादा व्यस्त रहता था। दरअसल हिशाम अपने बाद हुए खलीफाओं की तुलना में कहीं ज्यादा वीर और गुणी शासक था। यहाँ तक कि आरामपसंद सुलेमान और यजीद द्वितीय हिशाम के भतीजे और उत्तराधिकारी वालिद द्वितीय से कहीं कम भ्रष्ट और अधिक प्रभावशाली शासक थे। जब हिशाम के पुत्र की शिकार करते हुए मृत्यु हो गई तो उसकी तीखी प्रतिक्रिया यह थी कि—"मैंने उसे खलीफा बनाने के लिए पाल-पोस कर बड़ा किया पर वह एक लोमड़ी का पीछा करते हुए मारा गया।" मारवान द्वितीय को, जिसके शासन में राजवंश का अंत हुआ, छोड़ कर हिशाम के चार उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। हिशाम के शासन के पूर्व ही उमैय्यद खलीफाओं की नीति हो गई थी कि अपना समय शिकार खेलने और शराब पीने में बिताएँ और कुरान तथा राज-काज पर ध्यान देने के बजाय संगीत और काव्य में ही अधिक-से-अधिक डूबे रहें। इसका ज्वलंत उदाहरण यजीद द्वितीय था। हिजड़ों को नियोजित करने की प्रणाली, जिससे रनिवास (हरम) रखने की परम्परा शुरू हुई, अब पूरी तरह विकसित हो गई थी। शासकगण, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धन में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण, शान-ओ-शौकत और भोग-विलास में पूर्णतः लिप्त हो गए और दासों को बहुत बड़ी संख्या में रखा जाने लगा। यजीद तृतीय (सन् ७४४) पहला खलीफा था जो एक मुक्त की गई दास महिला से जनमा था। उसके दो उत्तराधिकारी भी इसी तरह मुक्त की गई दास महिलाओं के बेटे थे। वालिद द्वितीय भी इनसे किसी कदर, बेहतर न था। यद्यपि वह अच्छी सूरत-शक्ल वाला बुद्धिमान आदमी था पर उसकी दिलचस्पी केवल घोड़ों, हरम, काव्य और संगीत में थी। उसके दरबार में कवियों, गायकों और नर्त्तकों की भरमार थी। वह प्रचुर मात्रा में शराब पीता था। जब कुरान में उसने यह पद्य पढ़ा कि—"हर अविनीत शासक का अंत में विनाश होगा" तो उसने कुरान पर तीरों का प्रहार कर उसे चिद्दी-चिद्दी कर डाला। चौदह महीनों तक भ्रष्टतापूर्वक शासन करने के बाद उसने हद तब कर दी जब सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि उसके बाद उसके उत्तराधिकारी उसकी दासी रखेलिन से उत्पन्न उसके पुत्र होंगे। इस पर उसके चचेरे भाई यजीद तृतीय ने, जो महान उमैय्यद शासक वालिद का पुत्र था जिसकी फारसी माँ सम्राट यजदागिर्द के वंश की थी, सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह इस अत्यधिक भ्रष्ट उमैय्यद शासक

को उखाड़ देगा और उसका विनाश करके रहेगा। इसके बाद दमिश्क की जनता पूरी-की-पूरी यजीद के यहाँ गई, उसके रेगिस्तान-स्थित किले पर हमला बोल दिया और उसका सर काट डाला। जनता की भीड़ ने उसके कटे हुए सर को दमिश्क की सड़कों पर घुमाया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शासक परिवार अब इस बात का घमंड न कर सकता था कि उसमें शुद्ध अरब रक्त था। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि यजीद तृतीय (सन् ७४४) प्रथम खलीफा था जो दास माँ से जनमा था। उसके दो उत्तराधिकारी भी मुक्त की गई दास माताओं के पुत्र थे। शासक परिवार में ऐसे दुर्गुण केवल सामान्य नैतिक भ्रष्टता के द्योतक थे। सभ्यता के ये विशिष्ट दुर्गुण, जो शराब, महिलाओं और शेरों ओ शायरी से संबंधित थे, रेगिस्तान के पुत्र—अरबों—पर हावी हो गये थे और धीरे-धीरे नये जोश से भरे अरब समाज की जीवन्तता समाप्त करते जा रहे थे।

आज से बारह सौ वर्ष पूर्व अब्बासिदों ने जिस तेजी के साथ उमैय्यदों का सफाया किया वह वास्तव में आश्चर्यजनक थी। अब्बासिद विद्रोहियों को जिसे अबू मुस्लिम[1] की सेना का समर्थन प्राप्त था वह असीम उत्साह से पूर्ण थी तथा अब्बासिदों की गतिविधि के प्रति फारसी और ईराकी जनता की प्रतिक्रिया भी अत्यधिक अनुकूल थी। फिर भी उमैय्यदों का उस द्रुत गति से अन्त न हुआ होता यदि उन लोगों ने अपने विरोध में उसे काले झण्डों के पूरी तरह फहराये जाने के पहले ही अपना विनाश खुद ही न कर दिया होता। जब महान उमैय्यद खलीफा का उत्तराधिकारी मोटा, थुलथुल सुलेमान सत्तासीन हुआ तभी से उमैय्यदों के पतन की प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। उसके बाद जो भी उमैय्यद खलीफा आये उन सबके शासन-काल में, एक केवल धार्मिक उमर द्वितीय की अवधि को छोड़ कर, विषयासक्ति और लोभ ने खिलाफत की भावना को तेजी के साथ जर्जर कर दिया और उसकी शक्ति ही समाप्त कर दी। ज्यों-ज्यों साम्राज्य के कोने-कोने से धन और लूट का माल राजधानी में तेज रफतार से पहुँचने लगा, उमैय्यद शासक अपने पूर्वजों की कठिन रेगिस्तानी जीवन-पद्धति और पैगम्बर मुहम्मद द्वारा विहित आध्यात्मिक अनुशासन भूलने लगे और ऐश-ओ-आराम और भोग-विलास में पूरी तरह लिप्त हो गए।

---

१. अबू मुस्लिम ईराक का एक ईरानी मौला (मवाली का एकवचन) था। वह ईरानी मवालियों के लिए एक गोपनीय दूत और प्रचारक का काम करता था। उसे ईरानी जनता में जिसमें ग्रामवासी समृद्ध लोग भी शामिल थे, बहुत काफी सफलता मिली। यद्यपि नर्म विचार के शिया लोग उसे कुछ संदेह और असन्तोष की दृष्टि से देखते थे, पर अबू मुस्लिम का नेतृत्व सामान्यतः स्वीकार किया जाता था।

सीरिया और हेजाज में शराबखोरी और जुआ को जिसे कुरान में निषिद्ध ठहराया गया है, बोलबाला हो गया। इसी तरह कट्टर मुसलमानों द्वारा निन्दित घुड़सवारी और सलूकी कुत्तों और चीताओं का शिकार तथा पर-स्त्रीगमन, जिसके लिए मृत्यु-दंड विहित है आदि दैनन्दिन जीवन की मामूली-सी बातें हो गईं। मुसलमानों के धार्मिक स्थान मक्का और मदीना पूजा-स्थल के बदले ऐश-ओ-आराम करने के स्थान बन गये। जिन लोगों ने विजय-अभियानों में धन बटोरा था वे उसका उपभोग करने के लिए, सीरिया या ईराक के राजनीतिक दाँव-पेंच से दूर हट कर, मक्का या मदीना में चले गये। वहाँ कई जुआ-घर भी खुल गए जहाँ नव-धनाढ्यों के लिए पासे, चौपड़ और शतरंज के खेल कस कर जमने लगे। वेश्यालयों का कारबार भी बहुत जोरों से चला जहाँ यूनानी, फारसी, तुर्क, अफ्रिकी, स्पेनी आदि हर वंश और रंग की दास-युवतियाँ उपलब्ध रहती थीं जो विजय-युद्धों में गिरफ्तार करके लाई गई होती थीं। अवैध प्रेम और कामुकता-अभिव्यंजक काव्य उसी गति से पनपने लगा जिस गति से इस्लाम-पूर्व युग के चरमोत्कर्ष काल में पनपा था। यूनानी गायिकाओं ने अपने गायन के साथ फारसी सितार का प्रयोग आरम्भ किया जिसे पैगम्बर मुहम्मद ने "शैतान के मुरज्जिन (आह्वानकर्त्ता)" की संज्ञा दी है।

वालिद के पहले अनेक खलीफा संतुलित मात्रा में शराब पीते थे। पर उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों में से अधिकांश की शराबखोरी सभी सीमाओं को पार कर गई। कहा जाता है कि शारीरिक शक्ति से भरपूर खलीफा वालिद द्वितीय शराब के कुंड में नियमित रूप से नहाता था। यहाँ तक कि, उमैय्यदों के शासन के अंत में महिलाओं के व्यवहार के नियामक नियमों में भी ढील दे दी गई। समाज के ऊँचे तबकों में घूंघट और स्त्री-पुरुषों के एक दूसरे से अलग रहने की प्रथा समाप्त हो गई। जिन महिलाओं में तीव्र बुद्धि और सुन्दरता थी और साथ ही समाज में ऊँचा पद, वे फ्रांस के लुई १५ के दरबार की प्रसिद्ध स्वेच्छाचारिणी महिलाओं के जैसा व्यवहार करने लगीं। इस बारे में एक उदाहरण चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के शहीद पुत्र हुसैन की एक पुत्री सईदा सुकेना का था जिसकी चर्चा पिछले अध्यायों में की जा चुकी है। वह मदीना में रहती थी। उसने अपनी सुन्दरता, आकर्षण और ऊँचे वंश में जन्म का पूरा-पूरा लाभ उठाया। अपने एक से अधिक पतियों से विवाह के करारनामे में यह शर्त रखी कि वह जैसे भी चाहेगी रहने को स्वतंत्र होगी। उसके सजे-सजाये और शानदार कमरे को उस युग के श्रेष्ठ कवियों और साहित्यिकों का संरक्षण प्राप्त था जिनके साथ बैठ कर वह भद्दे-भद्दे हंसी-मजाक और दिल्लगी की अपनी इच्छा पूरा करती थी। इस सम्बन्ध में दूसरा उदाहरण तैफ नगर की सुन्दरी युवती आयशा का है जो परम्प-

राएँ तोड़ने में मानो सुकेना से प्रतिद्वन्द्विता में लगी हुई थी। इस सम्बन्ध में पिछले अध्याय में इस घटना का उल्लेख किया जा चुका है, कि जब आयशा के एक पति ने उससे घूँघट पर रहने का आग्रह किया तो उसने जवाब में कहा कि—"किसी भी हालत में घूँघट न करूँगी। अल्लाह ने मुझे हुस्न और खूबसूरती बख्शी है। मेरी तमन्ना है कि लोग उस खूबसूरती का दीदार करें........।" उन दिनों एक और लोकप्रिय और शक्तिशाली महिला मदीना की गायिका जमीला थी जो पहले एक दास महिला थी। उसके रंग-बिरंगे जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना मक्का की उसकी तीर्थ-यात्रा थी जिसमें उसके साथ पुरुष और महिला गायकों, कवियों, संगीत-कारों और प्रशंसकों का भड़कीला, चमक-दमक से भरा जुलूस था। सभी लोग शानदार और पर्याप्त कपड़े पहने हुए और सजे-सजाये घोड़ों पर सवार थे।

केवल उमैय्यद खलीफाओं की शान-ओ-शौकत और विलासी जीवन के कारण ही उनकी प्रतिरोध-शक्ति समाप्त न हुई और अब्बासिदों के लिए रास्ता सुगम न हुआ, बल्कि महान शासक खलीफा वालिद और शक्तिशाली गवर्नर हज्जाज के बाद उन लोगों ने जो कुछ भी किया उससे वे अपने शत्रुओं के हाथों में ही खेलते रहे।

पर उमैय्यद खिलाफत के पतन में जो कोई कोर-कसर रह गई थी उसे यजीद तृतीय ने पूरा कर दिया। सन् ७४४ में उसने घोषणा की कि उस समय के बाद से इस्लाम के पूर्वनियतिवाद सिद्धान्त का स्थान स्वतंत्र इच्छा का तर्कवादी सिद्धान्त लेगा। विचारों की तर्कवादी विचारधारा बहुत कुछ सीरिया के एक ईसाई दमिश्कवासी सेंट जौन के प्रभाव के कारण शुरू हुई। जब अरबों ने सीरिया पर कब्जा किया तो उसका दादा बैजेन्टाइनों का वित्तीय सलाहकार था। बाद में सेन्ट जौन का पिता वित्तीय सलाहकार बना। अरबों द्वारा सीरिया पर कब्जा करने के बाद, अरबों में प्रतिभा की कमी के कारण, सेन्ट जौन भी अपने पिता की मृत्यु पर अंततः अरब शासन में इस पद-वित्तीय सलाहकार पर आसीन हुआ। एक ईसाई मठ में अपना शेष जीवन बिताने के लिए जाने के पूर्व सेन्ट जौन ने यजीद को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह तर्कवादी विचारधारा अपना ले और कुरान के इस विश्वास को छोड़ दे कि मानव-जीवन की अवधि और किस्मत अल्लाह द्वारा पहले से ही नियत कर दी जाती है। यद्यपि पूर्वनियतिवाद का, आलस्य के सिद्धान्त के रूप में, विरोध करने के लिए तर्कवादी विचारधारा का आरम्भ किया गया था पर तर्कवादी विचारधारा के अधीन स्वतंत्र इच्छा के सिद्धांत ने उमैय्यदों के अनुशासन में शेष चिह्नों को भी मिटा डाला। अनुशासन के अभाव के कारण उमैय्यद खिलाफत खुरासान से तेजी के साथ बढ़ती हुई अब्बासिदों का समर्थक अबू मुस्लिम की दुर्दमनीय सेना के समक्ष एक आसान-सा शिकार बन गई।

यह संभव-सा प्रतीत होता है कि यदि मुस्लिम एकता और कुरान में विहित अनुशासन का धार्मिक अनुयायी और भक्त उमर द्वितीय उमैय्यद शासन के अंतिम तीस वर्षों तक शासन के लिए जीवित रह पाता तो उसने अरब-फारस संबंधों के सुकुमार तन्तुओं को एक सूत्र में बाँध रखने में सफलता पाई होती जिनको शक्तिशाली गवर्नर हज्जाज और उसके अनुसरण में अन्य लोगों ने छिन्न-भिन्न कर डाला था। या यदि वालिद के उत्तराधिकारी हज्जाज की भाँति ही जागरूक और सचेष्ट रहते तो अब्बासिद विद्रोह अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया जा सकता था। पर जब न तो साम्राज्य को भ्रातृत्व के बंधन में ऐक्यबद्ध रख सकने वाला उमर द्वितीय जैसा कोई शासक हुआ और न ही साम्राज्य को जंजीरों से कस कर रखने वाला गवर्नर हज्जाज जैसा ही कोई शासक हुआ तो यह निश्चित सा हो गया कि कोई विस्फोट होकर रहेगा। और जब विस्फोट की घड़ी आ पहुँची तथा विजय अभियान पर अग्रसर अब्बासिद सेना बिजली की गति से आगे बढ़ने लगी तो फिर फ़ारस और ईराक की लाखों-लाख चरित्रभ्रष्ट जनता उसे पीछे ठेल सकने में सर्वथा असमर्थ और विवश हो गई।

केज बनाम यमन संघर्ष :

दूसरी ओर अरब सामाजिक जीवन की अन्तर्निहित कमजोरियाँ जैसे कि व्यक्तिवाद पर आवश्यकता से अधिक जोर, जनजातीय भावना और जनजातियों के बीच आपसी लड़ाइयाँ आदि अपना सर फिर उठाने लगी थीं। उन कमजोरियों को दूर करने और अरब सामाजिक जीवन में, अन्तर्निहित केन्द्र से दूर हटने की शक्तियों को रोक रखने के लिए इस्लाम धर्म के बंधन तथा ऐसे अन्य बंधनों ने उन पर अस्थायी तौर पर ही अंकुश लगाया। इन शक्तियों पर, जो व्यापक स्तर पर संगठित थीं, ये बंधन ढीले पड़ने लगे थे। तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान के समय से ही अरबों की दबी हुई पारिवारिक भावना फिर कसमसाने और जोर मारने लगी थी। इस्लाम के पूर्व जो उत्तरी अरब जनजातियाँ ईराक में आकर बस गई थीं उन्होंने टिगरिस नदी के किनारे दियार रबिया (रबिया जनजाति का वासस्थान) और यूफ्रेटस नदी के किनारे दियार मुदार (मुदार जनजाति का वास-स्थान) स्थापित किया था। बनू मुदार में प्रथम स्थान केज वंश वालों का था। जो अन्य जनजातियाँ सीरिया में आकर बस गई थीं वे मूलतः दक्षिणी अरब से आई थीं और इसलिए यमनवासी नाम से पुकारी जाती थीं। सीरिया के यमनवासियों में प्रमुख दल बानू कल्ब का था। फारस के उत्तरी-पूर्वी प्रान्त खुरासान के अरब मुख्यतः बसरा से आकर बस गये थे और इस कारण अधिकांशतः उत्तरी अरब थे। इनमें प्रमुख जनजाति तमीम थी जिस तरह कि यूफ्रेटस क्षेत्र में प्रमुख लोग कल्ब थे। दूसरे क्षेत्रों में केज लोग

नजराइट या मुदराइट कहे जाते थे। पर इन जनजातियों का जो भी नाम दिया जाता रहा हो, इन लोगों का गठन ऐसा हो गया था कि उत्तरी अरब की जनजातियाँ दक्षिणी अरब की जनजातियों के विरुद्ध थीं। उमैय्यद राजवंश का संस्थापक मुआविया राजसत्ता को यमनवासियों के सहारे संभाले हुए था। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी यजीद ने भी, जिसकी माँ मेसून यमनवासियों में से कल्ब गुट से आई थी, एक कल्ब महिला से विवाह किया। इस कारण ईर्ष्या में पड़ कर केज लोगों ने यजीद के उत्तराधिकारी मुआबिया द्वितीय को मान्यता देने से इन्कार किया और उसके बदले नकली खलीफा इब्न-अल जुबैर को मान्यता दी। कल्ब और केज लोगों के बीच मतभेद और कटुता बढ़ती ही चली गई और अंततः उनके बीच मर्ज-रहित में युद्ध हुआ (सन् ६८४)। युद्ध में कल्ब लोगों की निर्णयात्मक विजय हुई जिसके फलस्वरूप उमैय्यद राजवंश की मारवानी शाखा का संस्थापक मारवान सत्तारूढ़ हुआ। परंतु वालिद प्रथम के शासन काल में केज लोगों की शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। शक्तिशाली गवर्नर अल-हज्जाज उनका प्रतिनिधित्व करता था। यही नहीं, उनका प्रतिनिधि अल-हज्जाज का चचेरा भाई एवं भारत के कुछ भागों का विजेता मुहम्मद बिन कासिम और मध्य एशिया का विजेता कुतय-वाह भी करता था। दूसरी ओर वालिद का भाई सुलेमान, जो उसके बाद खलीफा हुआ, यमनवासियों का समर्थक था। बाद में खलीफा पद पर आसीन होने वाला यजीद द्वितीय मुदारी जनजाति की अपनी माँ के प्रभाव में आकर केज लोगों को संरक्षण देता था जिस नीति पर ही वालिद द्वितीय भी चला। फिर यजीद तृतीय ने यमनवासियों की सहायता पर निर्भर कर अपने पूर्ववर्ती खलीफा वालिद द्वितीय से सत्ता छीनी। इस प्रकार उमैय्यद युग के परवर्ती भाग में जो भी खलीफा आया वह केज और यमनवासियों की संयुक्त शक्ति का प्रतिनिधि सम्राट होने के बदले उनमें से किसी एक का ही प्रमुख बन कर रहा।

इसका फल स्वभावतः बुरा हुआ। केजों और यमनवासियों के बीच निरन्तर संघर्ष से साम्राज्य की शक्ति क्षीण हुई। उमैय्यद युग के बाद के खलीफा इस संघर्ष को दबाने और समाप्त करने के बदले एक पक्ष को दूसरे पक्ष से लड़ाने में ही लगे रहे और इन दोनों के बीच संघर्ष की आग में वे घी डालते रहे। इनका संघर्ष बराबर चलता रहा। फल यह हुआ कि मुसलमान दो विरोधी शिविरों में बँट गए केजों और यमनवासियों के, जिनको मुदराइट और हिमयाराइट नामों से भी जाना जाता है, रूप में इस अरब द्वैतवाद के कारण मुस्लिम जगत में ध्रुवीकरण या विभाजन अब पूरा हो चला था। इससे उमैय्यद राजवंश का पतन द्रुतगति से हुआ। साथ ही इसके बुरे प्रभाव आने वाले वर्षों में व्यापक क्षेत्रों में दृष्टिगत हुए। राजधानी दमिश्क के जिले में दो वर्षों तक क्रूर युद्ध चलता रहा और उसका सबब

महज यह था कि एक मुदराइट ने एक यमनवासी (हिमयाराइट) के बगीचे से एक तरबूज चुरा लिया था। सुदूर-स्थित मुरसिया (स्पेन) में अनेक वर्षों तक केवल इस कारण खून बहाया जाता रहा कि एक मुदाराइट (केज) ने एक हिमयाराइट (यमनवासी) के आंगन से अंगूर की एक पत्ती चुरा ली थी। इन दोनों के बीच, जो कि दो राजनीतिक दलों का रूप धारण कर चुके थे और एक दूसरे के विपरीत मुकाबले के लिए बराबर उद्यत र ते थे, लड़ाई के चिह्न हर जगह दीख पड़ रहे थे। राजधानी और साम्राज्य के प्रान्तों में सिन्धु नदी के किनारे और सिसली के समुद्रतट पर तथा सहारा रेगिस्तान की सीमाओं पर इनकी वंश परम्परागत लड़ाई से उत्पन्न कंपन महसूस किया जा सकता था। उमर द्वितीय को छोड़कर सत्तासीन होने वाला हर खलीफा इन मूलतः उत्तरी अरबों (केज) और दक्षिणी अरबों (यमनवासियों) को एक दूसरे से लड़ा कर राज कर रहा था। फूट डालो और राज करने की इस नीति से वालिद तक भी अछूता न था। और तब अब्बासिदों ने जनजातियों को यह समझाने में कतई देर न की कि सीरियाई साम्राज्य कायम रखने में उनका दुरुपयोग किस बुरी तरह किया जा रहा है।

मंत्रियों और सेना की धोखेबाजी और स्वार्थपरता

अलावे, खलीफाओं के मंत्रियों की स्वार्थपरता और सैनिकों की धोखेबाजी भी उमैय्यद राजवंश के पतन का एक दूसरा कारण बनी। इस राजवंश के शासक (खलीफा) राज्य के प्रशासन की पूरी जिम्मेदारी सामान्यतः अपने मंत्रियों पर छोड़ देते थे, पर मंत्रिगण अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों और महत्त्वाकांक्षाओं की बलिवेदी पर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री कर देते थे और राज-काज पूर्ण स्वेच्छाचारिता से चलाते थे। फलतः साम्राज्य में उत्तरोत्तर अराजकता और गड़बड़ी फैलने लगी। फौज ने, जिसे राज्य से वेतन मिलता था, पर ठीक समय पर न मिलने के कारण बराबर बकाया रहता था, संकट और कठिनाई के समय शत्रु का साथ दिया।

उत्तराधिकारी के निश्चित नियम का अभाव

खिलाफत के सिंहासन के लिए वंशगत उत्तराधिकारी के निश्चित और सुनिश्चित नियम के अभाव के कारण भी राष्ट्रीय स्तर पर उपद्रव और अशांति फैली। राजवंश के संस्थापक मुआबिया ने अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने की बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सुदूर दृष्टि वाली नीति अपनाई। जैसा कि इतिहासकार प्रो० हिट्टी ठीक ही कहते हैं—"परन्तु उत्तराधिकार में वरीयता का ध्यान रखने और इस संबंध में चले आ रहे प्राचीन अरब सिद्धान्त का इस बात से बराबर विरोध रहा कि शासक पिता की यह स्वाभाविक महत्त्वाकांक्षा रहती है कि

वह अपने पुत्र को ही राजसत्ता सौंपे। जनता द्वारा भावी शासक के प्रति निष्ठा का प्रदर्शन ही सिंहासन पर हक के लिए एकमात्र सुनिश्चित उपाय रह गया।"[२]

चौदह उमैय्यद खलीफाओं में से केवल चार—मुआविया प्रथम, यजीद प्रथम, मारवान प्रथम और अब्द-अल-मालिक—के पुत्र उनके विनान्तर उत्तराधिकारी बने। यह जटिल समस्या और भी जटिल तब हो गई जब उमैय्यद राजवंश की मारवानी शाखा के संस्थापक मारवान प्रथम ने अपने पुत्र अब्द-अल-मालिक को अपना उत्तराधिकारी बनाया और अब्द-अल मालिक के बाद अपने दूसरे पुत्र अब्द-अल अजीज को खलीफा पद के लिए मनोनीत किया। जब अब्द-अल-मालिक सत्तारूढ़ हो गया तो उसने अपने बाद अपने भाई अब्द-अल-अजीज के बदले अपने पुत्र अल-वालिद को खलीफा पद के लिए मनोनीत कर दिया। इस बीच उसने अपने प्रथम पुत्र अल-वालिद के बाद अपने द्वितीय पुत्र सुलेमान का, खलीफा बनाये जाने के लिए, मनोनयन किया। अल-वालिद ने भी अपने पिता के नक्शे-कदम पर चलते हुए अपने भाई सुलेमान के स्थान पर अपने बाद अपने पुत्र को खलीफा पद के लिए मनोनीत करने की असफल चेष्टा की। उत्तराधिकारी के लिए इन हरकतों से उमैय्यद राजवंश में स्थायित्व और मजबूती आने के बजाय अस्थायित्व और कमजोरी ही आई।

शिया लोगों का प्रचार

उमैय्यद राजवंश के शक्तिशाली शत्रु सभी प्रान्तों, विशेषकर फारस, के नव इस्लाम-धर्मान्तरित एवं अनुयायीगण थे। और फिर भिन्न मतावलम्बी शिया लोग थे जिनके क्रोध और असंतोष की आग से ईराक उबल-सा रहा था। वे दमिश्क के खलीफाओं (उमैय्यदों) को ईश्वर-विरोधी एवं जबर्दस्ती सत्ता हड़पने वाला समझते थे जिन्हें उनके विचार से यथासंभव शीघ्र शासन से उखाड़ फेंकना चाहिए था। उन लोगों ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली और उसके पुत्र हुसेन के साथ जो अनुचित व्यवहार किया उसके लिए शिया लोगों ने उन्हें कभी माफ न किया। शिया लोग अब पहले से कहीं ज्यादा सक्रिय हो गए थे। पैगम्बर मुहम्मद के वंशजों के प्रति अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के कारण वे जनता की सहानुभूति के केन्द्र बन गये। उनके शिविर को उन सभी लोगों में से अधिकांश का समर्थन मिलने लगा जो उमैय्यद राजवंश से राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक कारणों से असन्तुष्ट थे। ईराक की अधिसंख्यक जनता अब तक शिया मत अपना चुकी थी। वे लोग उमैय्यद शासकों का मूलतः इसलिए विरोध कर रहे थे कि उन शासकों ने देश को राष्ट्रीय स्वतंत्रता से वंचित कर दिया था। यहाँ तक कि कुछ सुन्नी लोगों ने भी, विशेषतः उन्होंने जो कि कट्टर इस्लाम धर्मावलम्बी थे; उमैय्यदों की घोर सांसारिकता और भौतिक-

---

२. प्रोफेसर हिट्टी—हिस्ट्री ऑव अरब्स, १९६०, संस्करण, पृ० २८२।

वादिता से ऊब कर अब्बासिदों और अली के अनुयायियों के प्रति सहानुभूति रखना शुरू किया। अलावे सुन्नियों ने उमैय्यद खलीफाओं पर आरोप लगाया कि वे कुरान और परम्परागत धर्मविधि की उपेक्षा कर रहे हैं। साम्राज्य में जहाँ कहीं भी उमैय्यद का विरोध हो रहा हो उसके प्रति वे अपनी धार्मिक स्वीकृति देने को तैयार थे। इस प्रकार साम्राज्य में चारों ओर विस्फोटक तत्व विखरे हुए थे, बस किसी के भी द्वारा पलीते में आग लगाने का वेसब्री से इन्तजार था।

अब्बासिद दावेदार

साथ ही एक और विध्वंसक शक्ति काम कर रही थी। इसके लिए चिन-गारी फेंकी कुरैश-वंशी इब्न-अल-अब्बास मुत्तलिब इब्न-हाशिम ने जो पैगम्बर के निकटतम चचेरे भाई का एक वंशज था। जनता के बीच उसकी विश्वसनीयता इस कारण थी कि उमैय्यद खलीफाओं की तुलना में पैगम्बर मुहम्मद के साथ उसके निकटतर रक्त-संबंध और अधिक पहले से चले आ रहे धार्मिक संबंध थे। अब्बासिदों ने चालाकी से चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों का इस प्रश्न पर समर्थन करना शुरू किया कि इब्न-अल-अब्बास के परिवार के अधिकारों को माना जाय। इस परिवार के बारे में शिया लोगों की मान्यता थी कि उन लोगों में मुख्यत: चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंशज हैं। अब्बासिदों ने अपने को भी कुरैश वंश की इब्न-अल-अब्बास शाखा के सदस्यों में से ही बतलाया और घोषित किया कि वे (अब्बासिद) उमैय्यदों की तुलना में पैगम्बर से अधिक निकट संबंध वाले हैं। इब्न अल-अब्बास की माँग थी कि धर्मनिष्ठों को खलीफा का पद वापस दिया जाय और उमैय्यद-विरोधी दलों को संतुष्ट किया जाय। उसकी योजना थी कि वह सभी उमैय्यद विरोधियों को अपने नेतृत्व में संगठित करे। उधर अब्बासिद चालाकी के साथ वर्षों से छिपे तौर पर अपना प्रचार चला रहे थे। व्यापक रूप से फैले हुए असंतोष का फायदा उठाते हुए अब्बासिदों ने अपने को इस्लाम धर्म का रक्षक घोषित किया। फिर वे बहुत जल्द उमैय्यद-विरोधी आन्दोलन के समर्थक एवं नेता बन गये। उन्होंने अपने मुख्यालय और प्रचार-केन्द्र के रूप में मृत सागर के दक्षिण-स्थित एक छोटा-सा गाँव चुना जिसका नाम-अल-हुमायमा था। वह शेष दुनिया से अलग-थलग और बाहरी तौर पर निर्दोष-सा प्रतीत होता था। पर रणनीतिक रूप से अल-हुमायमा ऊँटों के कारवाँओं के मार्ग और तीर्थ-यात्रा के रास्तों के मिलन-स्थल (जंक्शन) के निकट था। यहाँ ही इस्लाम की राजनीति में सबसे प्रारंभिक और समुचित प्रचार के लिए भूमि तैयार की जा रही थी।

अरबों का असमान व्यवहार

अरबों का असमान व्यवहार उमैय्यदों के पतन के मुख्य कारणों में से था। पैगम्बर मुहम्मद ने इस्लाम साम्राज्य का व्यापक आधार सभी अरबों के

बीच समानता और भ्रातृत्व-भावना को बनाया था। पर बाद में उमैय्यदों के शासन में समानता का विचार ही पूरी तरह छोड़ दिया गया। सामान्यतः गैर-अरब मुसलमानों और विशेषतः फारस के मुसलमानों को; जिन्होंने इस्लाम के लिए युद्ध में भाग लिया था और जिनमें से कई उस युद्ध में मारे भी गये थे, अरब-मुसलमानों के मुकाबले सामाजिक और आर्थिक समानता प्राप्त न थी। यदि वे फौज में नौकरी करते थे तो उन्हें घुड़सवार के रूप में नहीं बल्कि पैदल सैनिक के रूप में काम करना पड़ता था। उन लोगों पर विश्वास न किया जाता था। फौज में उन्हें निश्चय ही वेतन और लूट के माल में हिस्सा मिलता था पर नियमित निवृत्ति-वेतन (पेंशन) न मिलता था यद्यपि उनके नाम **दीवान** यानी फौजी निवृत्ति-वेतनभोगियों की पंजी में निकलते थे। यद्यपि वे मुसलमान थे पर उन्हें गैर-मुसलमानों द्वारा दिया जाने वाला प्रति व्यक्ति-कर देना पड़ता था। उन्हें इस कारण इस बात पर और भी असंतोष था कि वे अपनी मूल संस्कृति को उच्चतर तथा अधिक प्राचीन मानते थे। खुद अरबों ने यह बात यानी उनकी संस्कृति की उच्चता और प्राचीनता को माना है। इन असंतुष्ट नव-इस्लाम-धर्मान्तरितों में शिया-अब्बासिद प्रचार के बीज ने पनपने के लिए अधिक उपजाऊ भूमि पाई। शिया लोगों का सिद्धान्त ईराक से, जो चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों के उद्देश्यों के प्रति बराबर वफादार रहा, फारस में फैला। विशेष रूप से वहाँ के उत्तरी प्रान्त खुरासान में, जो उस समय आज से कहीं ज्यादा बड़ा था, उस सिद्धान्त ने अपनी जड़ें गहरी जमा लीं। इसके परिणामस्वरूप वे लोग उमैय्यद शासन से विमुख हो गए और उस शासन को उखाड़ फेंकने के लिए अवसर ढूँढ़ने लगे। पर फारस में इससे भी अधिक गहरी शक्तियाँ काम कर रही थीं। शियावादी इस्लाम की आड़ में फारसवाद अपने को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास कर रहा था।

अलावे, उमैय्यद इतने अदूरदर्शी थे कि उन्होंने उस कठोर वर्ग-ढाँचे को ज्यों-का-त्यों रखा जिसके अन्तर्गत अरब मुसलमान शासक कुलीन लोग माने जाते थे और **मवालियों**—नव इस्लाम धर्मान्तरितों—को स्थायी तौर पर द्वितीय श्रेणी के नागरिकों का स्थान दिया गया था। इस प्रकार ईराक और फारस के मवालियों के बीच जो घृणा उत्पन्न हुई उसके कारण वे किसी क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने के लिये सहज ही तैयार हो गये। ईराक और फारस के ये लोग बैजेन्टाइन और फारस के शासकों के साथ अपने पूर्व सम्पर्क के कारण अभी भी असंस्कृत अरबों के मुकाबले अधिक संस्कृत थे। अपने साथ अरबों के इस दुर्व्यवहार से दुखी होकर वे बौद्धिक क्षेत्र में अपने अरब शासकों से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित हुए। उस समय यह कोई मुश्किल काम भी न था जब कि अरब राजकुमार पाठशाला में भेजे जाने के बदले शिक्षा पाने के लिए रेगिस्तान में भेजे जाते थे। यही नहीं, सामान्य अरब

लोग बौद्धिक सफलता के मुकाबले पुरुषार्थ और वीरता को अधिक महत्त्व देते थे। बौद्धिक क्षेत्र में मवालियों—नव-इस्लाम धर्मान्तरितों—की श्रेष्ठता के कारण उनके बीच ऐसे नेता हुए, जिनमें से अबू मुस्लिम भी एक था कि वे अब्बासिदों के खिलाफ ऐसा प्रखर और सफल आंदोलन छेड़ा जैसा इस्लाम के उद्भव के बाद कभी न छेड़ा गया था।

उमैय्यद खिलाफत में बौद्धिक क्षेत्र में मवालियों की श्रेष्ठता के कारण ईराक में बौद्धिक कार्य-कलाप के दो नये केन्द्र कूफा और बसरा में बने। इसे भी एक व्यंग्य ही माना जाएगा कि प्रथम अरबी शब्दकोष और अरब-व्याकरण की पहली पाठ्य-पुस्तक का संकलन बसरा और फारस के विद्वानों ने किया। अब्द-अल-मालिक ने इस पर जोर दिया था कि ईराक, फारस और सीरिया में राजकाज की भाषा के रूप में फारसी और यूनानी का स्थान अरबी भाषा ले। बाद में फारस के लोग, जो द्वितीय श्रेणी के मुसलमान समझे जाते थे, अपने अरब शासकों को उनकी अपनी ही भाषा पढ़ा रहे थे। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता के कारण ईराकियों और फारसियों में अरबों के प्रति तिरस्कार का भाव पैदा हुआ और जब खलीफाओं में जागरूकता की कमी आई तो वही भाव बढ़ कर उनके विरुद्ध विद्रोह का फैलता और पनपता बीज बना।

अब्बासिद प्रचार और अंतिम प्रहार :

अब्बासिदों के विद्रोह ने उमैय्यद साम्राज्य के विघटन में बहुत सहायता की। इस सम्बन्ध में अंतिम चरण तब आया जब शिया लोगों, खुरासानियों और अब्बासिद शक्तियों का संयुक्त मोर्चा बनाया गया। अब्बासिदों ने इसका लाभ अपने फायदे के लिए उठाया। इस मोर्चे का प्रधान अबू-अल-अब्बास था जो पैगम्बर मुहम्मद के चाचा अल-अब्बास के पोते का पुत्र था। उसके नेतृत्व में क्रांतिकारी इस्लाम ने धर्मतंत्र के एक नकली आदर्श का सहारा लिया और वायदा किया कि वे लोग धर्मनिष्ठता वापस लाएँगे। जून ९, सन् ७४७ को एक लम्बे अरसे से विचारित विद्रोह खुरासान में अबू मुस्लिम के नेतृत्व में शुरू हुआ और समूचे साम्राज्य के क्षेत्र में फैल गया। सीरिया में सभी स्थानों में सफेद झण्डे वाले उमैय्यद काले झण्डे वाले अब्बासिदों के प्रहार के आगे-पीछे हटने लगे (काला रंग संभवतः पैगम्बर के झण्डे का था और हरा रंग अली के समर्थकों का)। इस प्रकार उमैय्यद साम्राज्य का सूर्य तेजी के साथ अस्त हो रहा था। सन् ७४९ में खुरासान की राजधानी मर्व का पतन हुआ और फिर ईराक के प्रमुख नगर कूफा का। कूफा ही विद्रोही मोर्चे के प्रधान अबू-अल-अब्बास के छिपे रहने का स्थान था। कूफा ने विद्रोहियों के समक्ष आसानी से आत्म-समर्पण किया। अबू-अल-अब्बास ने कूफा-स्थित अपने

मुख्यालय से ईराकी क्रांतिकारी का नेतृत्व किया। इसी नगर की मस्जिद में वृहस्पतिबार, ३० अक्टूबर, सन् ७४९ को प्रथम अब्बासिद खलीफा के प्रति सार्व-जनिक रूप से निष्ठा प्रकट की गई। इस प्रकार प्रथम अब्बासिद खलीफा सत्तारूढ़ हुआ। घटनाएँ अपने चर्मोत्कर्ष की ओर बढ़ रही थीं। अंतिम मुकाबला जनवरी सन् ७५० को टिगरिस नदी की एक सहायक नदी के किनारे हुआ जिसमें अब्बासिद शक्तियों का नेतृत्व नये खलीफा का चाचा अब्दुल्ला इब्न-अली कर रहा था। सीरि-याई यानी उमैय्यदों की सेना में अब न तो जीतने की इच्छा थी और न आशा ही। "जब की लड़ाई" में सीरिया ने अब्बासिदों के समक्ष अंतिम रूप से आत्म-समर्पण कर दिया। सीरियाई यानी उमैय्यदों की सेना में जो स्वामिभक्त तत्व बच रहे थे और जिनकी संख्या १२००० थी उनका नेतृत्व स्वयं आखिरी उमैय्यद खलीफा मार-वान द्वितीय (सन् ७४४-५०) कर रहा था। उस सेना का पूरी तरह सफाया कर दिया गया। सेना के भागते हुए सेनापति मारवान द्वितीय का मिस्र तक पीछा किया गया। उसने एक गिरजाघर में शरण ली। वहाँ से उसे निकाल कर उसका सर काट लिया गया जिसे विद्रोहियों के नेता अबू-अल-अब्बास के पास कूफा में भेज दिया गया। मारवान उमैय्यद का चौदहवाँ और अंतिम खलीफा था।

सीरिया की राजधानी पर एक संक्षिप्त घेरेबंदी के बाद वहाँ आक्रमण-कारियों का कब्जा हो गया। वहाँ खलीफाओं की कब्रें अपवित्र की गईं। उनमें बचे हुए लाश के अंशों को निकाल बाहर किया गया। इस प्रकार मरे हुए लोगों को भी बख्शा नहीं गया। जहाँ तक जीवित लोगों का सवाल था, उन्हें प्रकट तरीकों से नहीं तो अप्रकट तरीकों से नष्ट कर दिया गया। पराजित राजवंश के पुरुष सदस्यों को एक दावत पर बुलाया गया। उसे अच्छी नीयत से बुलाई गई दावत समझ कर राजवंश के प्रायः अस्सी पुरुष सदस्य उसमें उपस्थित हुए। यह दावत जाफा के निकट हुई। ज्यों ही उन लोगों ने भोजन शुरू किया, मेहमानों पर धोखे-बाजी से हमला किया गया। उन लोगों के सर निर्दयता से काट दिये गए। मरे हुए लोगों को चमड़ा से ढंक दिया गया। एक ओर मारे हुए लोग कराह रहे थे, दूसरी ओर उन्हें मारने वाले भोजन कर रहे थे। कुत्तों को, जिन्हें पहले से ही इन्तजार कराया जा रहा था, लाशों को खाने के लिए छोड़ दिया गया। उसमें से एक जवान राजकुमार अब्द-अल रहमान मुआबिया इब्न-हाशिम नाटकीय ढंग से स्पेन भाग गया। वहाँ उसने एक नया और बहुत अच्छा उमैय्यद राजवंश स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इसकी चर्चा एक अगले अध्याय में की जाएगी।

इस प्रकार एक मुस्लिम राज्य का अंतिम अध्याय खून से लिखा गया। उमैय्यदों के पतन के साथ सीरिया की चमक-दमक समाप्त हो गई और अंत हुआ उसके प्राधान्य का। सीरियावासियों को बहुत देर बाद यह सच्चाई मालूम हुई कि

इस्लाम में अब उनकी भूमि गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र न रही। वह केन्द्र अब पूर्व की ओर बढ़ गया था। उन लोगों ने अपने क्षेत्र को पुनः गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र बनाना चाहा और अपनी पूर्व प्रतिष्ठा हासिल करने की कोशिश की पर उनके सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। अंत में उन्होंने अपनी आशा इस बात पर टिकाई कि एक-न-एक दिन एक प्रत्याशित सूफियानी, एक तरह का मसीहा, आएगा जो उन्हें ईराकी दमनकारियों से मुक्ति दिलाएगा। आज भी सीरिया में मुसलमान यह कहते सुने जाते हैं कि उमैय्यद राजवंश का एक वंशज पुनः आएगा। पर उमैय्यदों के पतन का मतलब इससे भी कुछ गहरा हुआ। इस्लाम में अब वास्तविक अरब युग समाप्त हो गया था। और प्रथम अरब साम्राज्य तेजी से अब अपने अंत की ओर बढ़ रहा था। उसके बाद आने वाले अब्बासिद शासक अपने शासन को दौला या एक नया युग कहते थे और वास्तव में वह एक नया युग था भी। ईराकियों ने अपने को सीरियावासियों की अधीनता से मुक्त महसूस किया। शिया लोगों ने अनुभव किया कि उनकी पराजय का बदला ले लिया गया है। जो पहले आश्रित थे वे अब स्वतंत्र हो गये। फारस की सीमा पर स्थित अब नई राजधानी बनाई गई। खुरासानवादी खलीफा के अंग-रक्षक हो गये और फारसियों ने सरकार में प्रमुख पद हथिया लिए। मूल-अरब निरंकुश शासक वर्ग का स्थान उन पदाधिकारियों के पद सोपान ने लिया जो खिलाफत के अधीन विभिन्न राष्ट्रकिताओं के लोगों में से आये थे। पुराने अरब मुसलमान और नव इस्लाम-धर्मान्तरित अब एक दूसरे के निकट आ रहे थे और एक दूसरे में समाहित हो रहे थे। अरबवाद का पतन हो गया था पर इस्लाम कायम रहा। अन्तर्राष्ट्रीय इस्लाम के लिबास में ईरानवाद हाथ में विजयपताका लिए आगे बढ़ रहा था।

अध्याय ११

अब्बासिद राजवंश की स्थापना (सन् ७५०-१२५८)

वर्ष सन् ७५० में "जब की लड़ाई" में उमैय्यदों की पराजय के बाद मुस्लिम-जगत का प्रधानत्व अब्बासिदों के हाथों में चली गई। फिर लगातार पांच शताब्दियों तक एक के बाद एक खलीफा इसी राजवंश से होता चला गया। जैसा कि अब्बासिदों के नाम से प्रकट है, उन लोगों का दावा था कि वे लोग अब्बास के वंशज थे जो पैगम्बर मुहम्मद का चाचा था। वे पैगम्बर मुहम्मद के साथ इस तरह के संबंध के दावे से अपने पद की मर्यादा बढ़ा सके। इस प्रकार अब्बासिद मुख्यतः अपने इस दावे के परिणामस्वरूप सत्ता में आये कि वे इस्लाम के रक्षक थे और अंशतः इस कारण कि सत्ता को हड़पने वाले पुराने गैर-इस्लाम अरब कुलीन वर्ग के प्रतिनिधियों यानी उमैय्यदों के विपरीत उन्हें पैगम्बर मुहम्मद के वंश का समर्थन प्राप्त था। उन्होंने इस्लाम के प्रति अपनी इस निष्ठा का प्रमाण नव इस्लाम-धर्मान्तरियों और उनकी सन्तान को मुस्लिम समाज में समानता का स्थान दे कर प्रस्तुत किया जो कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है। अब तक अरब लोग अपने वंशाभिमान के चलते नव-धर्मान्तरितों को अपने समक्ष स्थान न देते थे और इस प्रकार सभी इस्लाम धर्म-विश्वासियों के भ्रातृत्व के सिद्धान्त की उपेक्षा करते थे।

अब्बासिदों का स्वरूप :

इस्लामी समुदाय के प्रमुख के रूप में उमैय्यदों के स्थान पर अब्बासिदों का स्थापन केवल एक राजवंश के बदले दूसरे राजवंश द्वारा शासन-सूत्र संभालना मात्र न था। यह वास्तव में इस्लाम के इतिहास में उसी प्रकार एक क्रान्ति और ऐतिहासिक मोड़ था जिस प्रकार पश्चिम के इतिहास में फ्रांस और रूस की क्रान्तियाँ थीं। यह कोई महल के भीतर की दुरभिसंधि का परिणाम या मात्र सत्ता-पलट न था, बल्कि एक व्यापक और सफल क्रान्तिकारी प्रचार और संगठन की परिणति थी। इससे उमैय्यद शासन के विरुद्ध जनता के विभिन्न प्रमुख तत्वों का बहुत लंबे अरसे से चला आ रहा असंतोष और क्षोभ प्रकट हुआ। अधिकांशतः क्रान्तिकारी आन्दोलनों की भाँति यह विभिन्न तत्वों और स्वार्थों का एक मोर्चा था जो मौजूदा शासन को उखाड़ फेंकने की समान इच्छा से बना था। पर अधिकांश क्रान्तियों के लिए बने मोर्चों की भाँति इसकी भी वही नियति हुई कि एक बार विजय हासिल हो जाने के बाद मोर्चा परस्पर-विरोधी समूहों में बिखर गया। ऐसी स्थिति में

विजयी अब्बासिदों का प्रथम कार्य आन्दोलन के निराश अतिवादी तत्वों को, जो नये राजवंश को सत्ता में लाये थे, कुचलना हुआ। क्रान्ति के मुख्य सूत्रधार अबू मुस्लिम और उसके कई साथियों का कत्ल कर दिया गया और उन लोगों के समर्थकों के दंगे को कुचल डाला गया।

पर इस क्रान्ति का स्वरूप क्या था? क्रान्तिकारी कौन थे और उनकी विजय का लक्ष्य क्या था? उन्नीसवीं सदी के यूरोपियन प्राच्यवेत्ताओं ने जो यूरोपीय प्राच्यवेत्ता गोविन्यू और अन्य लोगों द्वारा प्रतिपादित वंशगत सिद्धान्तों से दिग्भ्रमित थे, उमैय्यदों और अब्बासिदों के संघर्ष और वास्तव में प्रारंभिक इस्लाम की सम्पूर्ण राजनीतिक फूट को अरबों के शामी (सेमेटिक) सिद्धान्तों और ईरान के आर्यधर्मावलम्बी सिद्धान्तों के बीच मत-वैभिन्य के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार वे उमैय्यदों पर अब्बासिदों की विजय को अरबों पर फारसियों की विजय मानते हैं। उनके कथनानुसार फारसी लोग एक नये फारसी इस्लाम का लिबास पहने पराजित अरब साम्राज्य के स्थान पर नया ईरानी साम्राज्य स्थापित कर रहे थे। इस विचारधारा का समर्थन कुछ अरब स्रोतों में भी मिलता है। उन्नीसवीं सदी के अरब निबंधकार जहीज का कहना है कि—"अब्बास के पुत्रों का साम्राज्य फारसी (ईरानी) और खुरासानी था जबकि मारवान के पुत्रों का साम्राज्य उमैय्यद और अरब था।" पर हाल के अनुसंधान से पता चलता है कि यद्यपि वंशगत विरोध ने उमैय्यदों को उखाड़ फेंकने वाले आन्दोलन में अपनी भूमिका अदा की पर यह विरोध क्रान्ति की मुख्य चालक शक्तियों में न था। विजयी लोगों में यद्यपि अनेक फारसी थे पर उन्होंने फारसियों के रूप में विजय हासिल न की और न ही उन्होंने शत्रुओं को अरबों के रूप में पराजित किया। क्रान्ति के तत्वों में अनेक अरब शामिल थे, विशेषतः वे जो दक्षिणी जनजातियों के थे। वे लोग विजयी शक्तियों यानी अब्बासिदों में कम मजबूती से स्थापित थे। मवालियों यानी नव-इस्लाम धर्मान्तरितों ने आन्दोलन को मुख्य रूप से अपना समर्थन दिया। उनमें किसी भी अर्थ में केवल फारसी ही न थे वरन् ईराकी, सीरियाई, मिस्री और यहाँ तक कि अरब भी थे जो जनजातीय कुलीन तंत्र के पूर्ण सदस्य न थे। नगर की आबादी के जो अधिकारविहीन एवं सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से असन्तुष्ट तत्व थे और उनमें भी विशेषतः मवाली (नव-धर्मान्तरित) व्यापारी और राजमिस्त्री अरबों द्वारा स्थापित रक्षक सेनाओं के नगरों में बड़ी संख्या में रहते थे। वे ही क्रान्ति के चालक तत्व थे। जब उमैय्यदों के युग में विजय-अभियान समाप्त हो गए तो उस राजवंश के शासक वर्ग अरब कुलीन-तंत्र की अपनी एकमात्र उत्पादक कार्रवाई ने उन मवालियों को ऐतिहासिक दृष्टि से अनावश्यक और व्यर्थ-सा बना

दिया। इस प्रकार नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए रास्ता साफ हो गया जो कृषि और व्यापार की शांतिपूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर आधारित हो और जिसमें अफसरों, व्यापारियों, बैंक चलाने वालों, भूमिपतियों, धार्मिक विद्वानों (उलेमाओं), विधिवेत्ताओं, शिक्षकों और पुरोहित वर्ग के इस्लामी दृष्टिकोण के सबसे नजदीकी प्रतिष्ठित वर्गों के लोगों को मिश्रित आबादी का योगदान हो। चूँकि स्वयं अरबों में राजनीतिक अयोग्यता और छोटे-मोटे मतभेद थे, इसलिए यह काम और भी आसान हो गया। उनमें से बहुत सारे लोग क्रान्ति में शामिल भी हो गये।

अब्बासिदों की विजय के बाद जो परिवर्त्तन किये गये उनसे आन्दोलन के स्वरूप को बहुत स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। इनमें सबसे प्रथम और सबसे स्पष्ट परिवर्त्तन यह था कि शासन के गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र सीरिया से ईराक में आ गया। ईराक निकट और मध्यपूर्व के मिश्रित आबादी वाले महान साम्राज्य का परम्परागत केन्द्र था। प्रथम अब्बासिद खलीफा अल-सफा ने अपनी राजधानी कूफा के निकट हाशिमिया के छोटे से नगर में बनाई। राजवंश के दूसरे खलीफा ने बगदाद के नये नगर में स्थायी राजधानी स्थापित की। राजवंश में परिवर्त्तन से राज्य के संगठन के विकास की वह प्रक्रिया पूरी हुई जो उमैय्यदों के अधीन पहले ही शुरू हो गई थी। अब खलीफा एक स्वेच्छाचारी शासक बन गया जिसका दावा था कि उसके अधिकार का दैवी उत्स है। उसका शासन नियमित सशस्त्र सेना के बल पर टिका हुआ था और उसे वेतनभोगी अफसर चलाते थे। प्राधिकार के एक तत्व के रूप में सेना के बढ़े हुए महत्व का स्पष्ट प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि अब्बासिद दरबार में जल्लाद का महत्वपूर्ण स्थान था। अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स) के पाठकों को उसके बारे में सहज ही परिचय मिल जाता है। नये शासन में किसी खास वंश का होना ही आगे बढ़ने में सहायक न था बलिक उसके लिए खलीफा का अनुग्रह जरूरी था। अब अरब कुलीनतंत्र का स्थान पदाधिकारियों के पदसोपान ने ले लिया था। खलीफा के ऊँचे पद की अभिव्यक्ति उसकी नई उपाधियों से होती थी। खलीफा अब मात्र अल्लाह के पैगम्बर का प्रतिनिधि न था बलिक खुद अल्लाह का प्रतिनिधि था और उसका दावा था कि उसे अपना अधिकार खुद सीधे अल्लाह से मिलता है। खलीफा की भारी-भरकम उपाधि "पृथ्वी पर अल्लाह की छाया" से यही विचार ध्वनित होता है जब कि पहले के खलीफा का अन्य अरबों की भांति सामान्य अरब थे जिनके पास कोई भी पहुँच सकता था और उन्हें उनके नाम से पुकार सकता था तो अब्बासिदों ने अपने आस-पास एक बहुत बड़े, शान-ओ-शौकत और पदाधिकारियों के पद-सोपान से भरे दरबार की विधि व्यवस्थायें बना लीं और उनके पास प्रबंधकों और दूतों की शृंखला

से हो कर ही पहुँचा जा सकता था। सिद्धान्ततः खलीफा अभी भी इस्लाम के धार्मिक कानून शरीयत के नियमों के अधीन था। पर व्यवहारतः उसके असीम अधिकारों पर यह रोक प्रभावकर न थी क्योंकि रोक लगाने के लिए विद्रोह के अलावा कोई और साधन न था। इस प्रकार अब्बासिद खिलाफत एक शासकीय स्वेच्छाचारिता थी जो फौजी ताकत पर निर्भर थी और अपने लिए दैवी अधिकार का दावा करती थी। अब्बासिद उमैय्यदों से इस कारण भी अधिक शक्तिशाली थे कि उन्हें अरबों के समर्थन पर निर्भर न करना पड़ता था जिससे वे लोगों को अपने विचारों से सहमत कराने के बजाय उन पर शासन करते थे। दूसरी ओर वे इस अर्थ में पुराने पूर्वी स्वेच्छाचारी शासकों से कमजोर थे कि उन्हें सुस्थापित सामन्ती जातियों और खूब जमे हुए पुरोहित वर्ग का समर्थन प्राप्त न था।

अब्बासिद प्रशासन बाद के उमैय्यद खलीफाओं की शासन-विधि का विकास मात्र था। अब्बासिद खलीफा मंसूर ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह राज्य के प्रशासन में उमैय्यद खलीफा हिशाम के प्रति बहुत ज्यादा ऋणी है। पर अब्बासिद शासन-प्रणाली पर सासानिदों की पुरानी फारसी व्यवस्था का प्रभाव निरन्तर मजबूत पड़ता गया। अब्बासिदों के अधिकांश कार्य-कलाप सासानीद अभ्यासों के, जो फारसी अफसरों और अवशिष्ट सासानीद साहित्य से ज्ञात हो सके थे, जानबूझ कर किये गये अनुकरण थे। अब्बासिद प्रशासन अब वंशगत भेद-भाव और अलग-थलग रहने की इच्छा पर आधारित न था। प्रशासन के सुविस्तृत लिपिक एवं अधिकारी वर्ग में बहुत काफी हद तक मवालियों (नव इस्लाम-धर्मान्तरितों) से भरती की गई थी और इनकी सामाजिक स्थिति बहुत सम्मानजनक थी। यह वर्ग विभिन्न विभागों जैसे कि उच्च न्यायालय, सेना, मुहर कार्यालय, वित्त, डाक-घर, गुप्त सूचना आदि में विभाजित था। इन विभागों में नियोजित अधिकारी वर्ग विजीर (वजीर) के सर्वोच्च नियंत्रण के अधीन थे। "विजीर" का पद अब्बासिदों का नया आविष्कार था और संभवतः मूलतः फारसी था। वजीर पूरे प्रशासन-यंत्र का प्रधान और खलीफा के अधीन मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी के अधीन उसे प्रचुर अधिकार प्राप्त थे।

अब्बासिद एक धार्मिक आन्दोलन के शिखर पर चढ़ कर सत्ता में आये थे, इसलिए उन लोगों ने अपने अधिकार के धार्मिक पक्ष पर जोर देते हुए जनता में अपना समर्थन कायम रखने की चेष्टा की। प्रारंभिक अब्बासिद खलीफाओं के बारे में अक्सर देखा जाता है कि वे बराबर धार्मिक नेताओं और न्याय-परामर्शदाताओं का आदर करते थे और, कम-से-कम, सार्वजनिक तौर पर धार्मिक सुरुचि के अनुसार चलने पर जोर देते थे। बाद के अरब इतिहासकारों के शब्दों में —"इस राजवंश ने धर्म और राजशाही की मिश्रित नीति से शासन किया। सबसे

अच्छे और सर्वाधिक धार्मिक व्यक्तियों ने धर्म के चलते इनके आदेश माने और शेष लोगों ने भय के चलते इनके आदेशों को शिरोधार्य किया।" अरब वंशगत एकता के भंग होने से जो खाई बनी उसे धार्मिक संगठन ने पाटा और यही संगठन विभिन्न जातीय और सामाजिक संगठनों को एक दूसरे से मिलाने का साधन बना। समाज़ के धार्मिक स्वरूप और खलीफा की सार्वभौमसत्ता पर जोर के कारण अब्बासिदों पर अक्सर पाखंड का आरोप लगाया गया।

अब्बासिद साम्राज्य के आर्थिक जीवन में हमें क्रांति द्वारा लाये गये परिवर्त्तन अत्यन्त स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। साम्रज्य प्रचुर और समृद्ध साधनों का निबटाव करता था। एक क्रम से गेहूँ, जौ और चावल नदियों की घाटियों से सिंचित बड़े क्षेत्र की मुख्य फसलें थीं जबकि खजूर और जैतून के फलों का दूसरा स्थान था। साम्राज्य के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के धातु भी होते थे। चाँदी पूर्वी प्रान्तों से लाई जाती थी और विशेषतः हिन्दुकुश पर्वत से। वहाँ दसवीं सदी के स्रोतों के अनुसार इसकी खुदाई के लिए, पूँजीवादी आधार पर, दस हजार खनिक नियोजित किये गये थे। सोना पश्चिमी क्षेत्र, विशेषतः नूबिया और सूडान से लाया जाता था, ताँबा इस्फहान के पड़ोस से लाया जाता था जहाँ नौवीं सदी में ताँबा की खानें पाँच हजार दिरहाम (उस समय प्रचलित एक तरह का सिक्का) प्रति वर्ष कर के रूप में देती थीं। लोहा फारस, मध्य एशिया और सिसिली से लाया जाता था। हीरे-जवाहरात साम्राज्य के विभिन्न भागों में पाये जाते थे और मोती फारस की खाड़ी के मछलीगाहों से प्राप्त होते थे। मकान बनाने की लकड़ी पश्चिमी प्रान्तों में न पाई जाती थी पर पूर्वी क्षेत्रों में कुछ मात्रा में मिलती थी। उसका आयात भारत और उसके आगे के क्षेत्रों से बड़े परिमाण में होता था।

आर्थिक परिवर्त्तनों से सम्बद्ध सामाजिक परिवर्त्तन भी हुए। आबादी के जातीय और सामाजिक तत्वों में तदनुसार नये किस्म के सम्बन्ध कायम हुए। लोगों को कोषागार से अनुदान मिलना बंद हो गया और उनके विशेषाधिकार भी समाप्त हो गए। उस समय के बाद से अरब इतिहासकार अरबों के जातीय झगड़ों की चर्चा बहुत ही कम करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है उन लोगों के बीच हिंसा बिल्कुल ही कम हो गई थी क्योंकि उन्नीसवीं सदी तक में हम देखते हैं कि केज और कल्ब जनजातियों के वंशज एक दूसरे का गला काटने को तैयार हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अरब जनजातीय कुलीनतंत्र ने सार्वजनिक मामलों में हस्तक्षेप और उनको प्रभावित करने का अधिकार खो दिया था। उनकी आपसी लड़ाइयाँ और झगड़े अब महत्वहीन हो गये थे। उनमें से कुछ ने घुमन्तुओं की जिन्दगी फिर शुरू की जिसे उन्होंने कभी पूरी तरह न छोड़ा था। उनमें से कुछ

और जमीन पर ही बस गए। इस्लामी नगरों का स्वरूप भी बदल गया। वे अब अन्य देशों पर अधिकार करने वाली विजयी सेनाओं की छावनियाँ न रह गये बल्कि व्यापार के बाजार और विनिमय-स्थान बन गये जहाँ व्यापारिक और राजमिस्त्रियों ने संयुक्त सहायता और प्रतिरक्षा के लिए अपनों को संगठनों में आयोजित कर लिया।

पर इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि अरबों ने अभी तक अपनी सर्वोच्चता खोई न थी। सर्वप्रथम सरकार अपने पदाधिकारियों की उच्चतर कोटियों की दृष्टि से अभी भी अरब थी और अरब होने में उसे गर्व था। अरबी अभी भी सरकार और संस्कृति की भाषा थी। अरबों की सैद्धान्तिक बरीयता अभी भी कायम थी। इस समय के बाद से खुद अरब शब्द के अर्थ में भी महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हो गया। अब अरब एक सीमित वंश परम्परागत जाति न रहे। अब वे ऐसे लोग हो गये थे जो एक प्रकार के अभ्यास के चलते अरबी बोलने वाले किसी मुसलमान को अपने में से ही एक मानने को तैयार हो गये थे।

इस प्रकार उमैय्यद से अब्बासिद राजवंश में परिवर्त्तन का अर्थ हुआ कि अरब साम्राज्य के स्थान पर मुस्लिम शासन स्थापित हो गया। उमैय्यदों के अधीन अरब राष्ट्रवाद को प्रमुखता प्राप्त थी। इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व की पुरानी गैर-मुस्लिम अरब संस्कृति की आदतें और अभ्यास अनियंत्रित रूप से उस समय भी चल रहे थे। उमैय्यद खलीफाओं ने अन्य जातियों और वंशों की तुलना में अरब कुलीनतंत्र के सदस्यों के प्रति पक्षपात की नीतियाँ बरती थीं। उमैय्यद शासक वंश के सदस्यों ने ये जो संकीर्ण जनजातीय सहानुभूति प्रदर्शित की उससे उनका प्राधिकार कमजोर पड़ गया और फलतः अब्बासिदों के विद्रोह का मार्ग प्रशस्त हो गया।

अब्बासिदों के अभ्युदय के बाद पश्चिम एशिया का दृश्य बदल गया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, खिलाफत का मुख्यालय सीरिया से ईराक चला गया और सीरियाइयों के प्रभाव और शक्ति का एकाधिकार, जिसका वे उपभोग करते आये थे, समाप्त हो गया और प्रगति की धारा पश्चिम से पूर्व में चली गई। नये युग का एक स्वरूप यह हो गया कि अब्बासिद खलीफा इस्लाम की सीमाओं से समन्वय न रखने लगे। खिलाफत की एकता बराबर के लिए समाप्त हो गई। नये राजवंश के प्राधिकार को स्पेन में कभी मान्यता न मिली। पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि जिस दावत में उमैय्यद राजवंश के बचे हुए पुरुष सदस्यों का कत्ले-आम किया गया था उसमें से एक राजकुमार अब्दुर रहमान ने भाग कर स्पेन में उमैय्यद राजवंश का शासन कायम किया और वहाँ इतनी समृद्धि कायम

की जो अब्बासिदों के राज्य की समृद्धि से भलीभाँति मुकाबला कर सकती थी। पश्चिमी अफ्रिका में प्रारंभिक अब्बासिदों का पर्याप्त प्रभुत्व था पर समय के प्रवाह के साथ वह नाम मात्र के अधिकार में परिणत हो गया। दूसरी ओर पूर्व में स्वतंत्र राजवंशों का अभ्युदय होने लगा। साम्राज्य की सीमायें संकुचित होने के लाभ भी हुए। इससे अब्बासिद खलीफाओं को अपनी शक्ति ठोस करने में मदद मिली, वे अपने साधन-स्रोतों को सुनियोजित कर सके और अपनी प्रजा के भौतिक एवं बौद्धिक विकास और अच्छी तरह कर पाये। इस राजवंश के प्रथम नौ खलीफा, एक अपवाद को छोड़ कर, असाधारण योग्यता के व्यक्ति और श्रेष्ठ किस्म के राजनीतिज्ञ थे। वे सार्वजनिक कल्याण को आगे बढ़ाने में निरन्तर व्यस्त रहते थे। वे सभी अच्छे योद्धा थे और साथ ही बौद्धिक रूप से सुदक्ष भी। उनमें से कुछ ने क्रूर कार्य भी किये पर वह उस युग का एक स्वरूप था जिसके बारे में सारी दुनिया जानती थी। साथ ही यह राजवंश की नीति का परिणाम था।

नये राजवंश के रुख के कारण अरब जनता में जो दूसरा परिवर्तन आया वह यह था कि अरब राष्ट्र ने अपनी सैनिक वीरता खो दी। "कठिनता बर्दाश्त करने वाला उनका जीवन और उनका सैनिक शौर्य इस कारण था कि पहले इस्लाम का प्रसार हुआ और फिर खिलाफत में सैनिक समृद्धि हुई। पर अब अरब वंश ने अपनी पहले की कठिन सहन-शक्ति और वीरता बहुत ज्यादा अंशों में खो दी थी।" विजित लोगों से लूटे गये माल से धीरे-धीरे उनकी युद्ध-क्षमता समाप्त हो गई और बेगमों से भरे अपने हरमों से संतुष्ट हो कर जीवन बिताने लगे। "सारासेन (अरब) अब विश्व-विजेता न रहे।" एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान और इतिहासकार ने लिखा है—"प्रारंभिक अब्बासिदों का शासन पूर्वी सारासेनों (अरबों) के लिए सबसे बड़े वैभव का युग था। विजय का युग समाप्त हो गया था तथा सभ्यता का युग आरंभ हुआ था।"

फिर भी दरबार में फारसी प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ने लगा और फारसी युग के अभ्युदय के साथ अरब जीवन के खुरदुरेपन में मुलायमियत आई। संस्कृति, सहिष्णुता और वैज्ञानिक अनुसंधान का युग आरंभ हुआ। खिलाफत में अरब प्रभाव का स्थान फारसी प्रभाव ने ले लिया। फारसी संस्कृति, शिक्षा और सामाजिक प्रथायें शुरू की गईं। खलीफा के अंग-रक्षक और सेना के अफसर अब अरबों में से न लिये जाते थे पर खुरासान और बाद में तुर्कमानों से लिए जाने लगे जिन्होंने अंततः प्राचीन रोम के राजभवन-प्रहरियों की भाँति इस स्थिति का फायदा उठाना शुरू किया और अब्बासिद खलीफाओं को अपना मातहत और आश्रित बना लिया। इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों की अरब आबादी के कुछ भागों पर प्रतिकूल

प्रतिक्रिया हुई जो अब यदि कानूनी तौर पर नहीं तो वास्तविक तौर पर तो अवश्य ही अपने ही साम्राज्य में द्वितीय श्रेणी के नागरिक हो गए थे। पर इसका कोई प्रतिरोध नहीं किया गया। अरबों ने न तो प्रथम बार और न ही अंतिम बार के लिए नई स्थिति को स्वीकार कर लिया क्योंकि उससे उन्हें कम-से-कम एक मुस्लिम समाज तो मिला यद्यपि उस पर विदेशी रंग था। साथ ही या तो उन्होंने स्थिति को स्वीकार किया अथवा विभाजित और पराजित हो कर अपने-अपने पूर्व शिविरों में लौट गए। ऐसा उन्होंने नये शासन के प्रति अपनी शिकायत दर्ज करने के लिए किया और अपने अधिकार के लिए संघर्ष का रास्ता न चुना।

फारस और ईराक ने मवालियों (नव-धर्मान्तरितों) के लिए यह नये और शानदार युग का प्रभात था। उनके हितों को आगे बढ़ाने वाले अब्बासिदों ने एक महत्त्वपूर्ण विजय हासिल की थी और साम्राज्य के पूर्वी अर्द्ध भाग के पददलितों के लिए पृथ्वी पर स्थान हासिल किया था। और जब एक बार प्रारंभिक रक्तपात समाप्त हो गया तो नये शासन ने अब तक की विरासत को सच्ची फारसी चमक-दमक से समृद्ध किया। अबू-जफर जो दूसरा खलीफा बना इस नेतृत्व के लिए योग्य व्यक्ति था। वह अपने भाई और पूर्ववर्ती खलीफा अबुल अब्बास से भिन्न था। वह सम्राट था और क्रूर तथा अत्याचारी न था।

इस प्रकार उमैय्यद से अब्बासिद राजवंश में परिवर्त्तन केवल राजवंश का परिवर्त्तन न था। उसके भौगोलिक, जातिगत, आर्थिक-सामाजिक और राजनीतिक पक्ष थे। अब ईराक का महत्व बढ़ गया और सीरिया का महत्व बिल्कुल कम हो गया। अब हर कार्यकलाप का उन्मुखता फारस की ओर हो गई। अरब कुलीनतंत्र के, जिसका अब तक नियंत्रण था, स्थान पर शनैः-शनैः बहुजातीय समूह का नियंत्रण स्थापित होने लगा। यह समूह भी इस अर्थ में अरब कहा जाता था कि इसकी बोल-चाल की भाषा भी अरबी थी। पर इसमें नव-मुसलमान और अरबों के आश्रित व्यक्ति थे और उनमें भी अधिकांश फारसी थे जो विभिन्न अरब जनजातियों के संरक्षण में थे। जब फौजी जाति सिंहासनच्युत हो गई तो सरकार का ध्यान युद्ध से व्यापार और उद्योग की ओर गया। धीरे-धीरे अरब योद्धाओं को दिया जाने वाला निवृत्ति-वेतन (पेंशन) समाप्त कर दिया गया।

अब्बासिद शासन ने अपने कार्य-काल का आरंभ एक गलत बहाने के आधार पर किया। उसका दावा था कि उसने एक गैर-मुस्लिम या गैर-धार्मिक राज्य के स्थान पर शासन-सूत्र संभाला है और अब सच्ची खिलाफत का आरंभ होगा। वास्तव में अब्बासिदों ने धार्मिकता का ढोंग किया। उन्होंने अपने लोगों को आपस में जोड़ने के लिए धर्म के आध्यात्मिक तत्वों के बजाय केवल धर्म के नाम की

सहायता ली। इतिहास से पता चलता है कि वे उमैय्यदों से कम गैर-धार्मिक न थे। राज्य को इस्लाम के अधीन बनाने की बात तो दूर रही; उन्होंने शासन को वैधता और सम्मानास्पदता प्रदान करने के लिए इस्लाम का सहारा लिया।

अबू अल अब्बास-अल-सफा (सन् ७५०-७५४)

हम धर्मनिष्ठ खलीफाओं और उमैय्यदों के शासनों के रूप में महान इस्लामी नाटक के दो अंक देख चुके हैं। अब अब्बासिदों के शासन के आरंभ से इस्लामी नाटक का तीसरा अंक शुरू होता है। इसमें प्रथम अब्बासिद खलीफा अबू-अल-अब्बास ने मुख्य भूमिका अदा की। इस नाटक का मंच ईराक था जहाँ कूफा के मंच पर अबू-अल-अब्बास खलीफा घोषित किया गया और सन् ७५० में उसके प्रति सार्वजनिक निष्ठा प्रकट की गई। उसने अपने उद्घाटन-भाषण में अपने को अल सफा "रक्तपात करने वाले" की आदरसूचक उपाधि दी। बाद में इतिहास में वह मुख्यतः उमैय्यदों की हत्या करने वाले के रूप में विख्यात हुआ। इसलिए उसने सर्वाधिक प्रयत्न किया कि वह "अल-सफा" की उपाधि के अनुकूल काम करे। दरअसल यह उपाधि उसका दूसरा नाम बन गई। उसके सिंहासन के पास ही राज्य का जल्लाद बैठा रहता था। उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया के प्रतिकूल अबू-अल-अब्बास अल सफा ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए हिंसा की परम्परा छोड़ी। अपने शत्रुओं और संदेहास्पद व्यक्तियों की अंधाधुंध हत्या से उसकी उपाधि "अल-सफा" उचित सिद्ध हुई। पर उन दिनों पश्चिमी या पूर्व में मानव जीवन का कोई खास मूल्य या अहमियत न थी। साथ ही मनुष्य की स्वाभाविक भयानकता और क्रूरता को रोकने के लिए धर्म का नियंत्रण बहुत ही कम था। पर इसके साथ ही यह कहना पड़ेगा कि अपनी क्रूरता के बावजूद अल-सफा एक उदार सम्राट माना जाता था। वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग था और ऐय्याश न था। उस युग और जनता में प्रचलित प्रथा के प्रतिकूल उसे एक ही पत्नी थी। पत्नी उम्म सलमा के प्रति वह बहुत अनुरक्त था। वह उस पर बहुत प्रभाव रखती थी। इन सबके बावजूद कभी-कभी वह उमैय्यदों के विरुद्ध अपना उन्मत्त क्रोध रोक न पाता।

फिर भी अल-सफा का शासन उसकी नीतियों के कार्यान्वयन की शक्ति पर निर्भर करता था। इस्लाम के इतिहास में प्रथम बार खलीफा के सिंहासन के निकट चमड़े का टुकड़ा बिछाया जाने लगा जिस पर जल्लाद बैठा करता था। बाद में यह शाही सिंहासन का आवश्यक अंग हो गया। इस प्रकार अल-सफा इस्लाम में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध और सबसे ज्यादा लंबे समय तक रहने वाले अरब राजवंश का संस्थापक बना। धर्मनिष्ठ खलीफाओं (रशीदीन) और उमैय्यदों के बाद यह तीसरा

अरब राजवंश था। सन् ७५० से १२५८ तक अबू-अल-अब्बास के उत्तराधिकारियों ने शासन की बागडोर संभाली पर उनमें से शासन कम ही लोगों ने किया।

अब्बासिद विजय के समय यह दावा किया गया था कि इस शासन के जरिए उमैय्यदों के विरुद्ध विशुद्ध धर्म-निरपेक्ष राज्य (मुल्क) के स्थान पर खिलाफत की सच्ची भावना यानी धार्मिक राज्य की धारणा को कार्य रूप दिया गया है। अपने ऊंचे पद को धार्मिक स्वरूप के प्रतीक के रूप में अब खलीफा समारोहों के अवसर पर उस तरह के वस्त्र धारण करता था जो कभी उसके दूर के रिश्ते के चचेरे भाई पैगम्बर मुहम्मद धारण करते थे। ये अवसर उनके सत्तारूढ़ होने का दिन तथा शुक्रवार की नमाज जैसे अवसर होते थे। खलीफा ने अपने इर्द-गिर्द धार्मिक विधि-विधान में विशेषज्ञ व्यक्तियों को रखा और उन्हें संरक्षण दिया। उनसे वह राज के काम-काज में सलाह लेता था। प्रचार के जिस अत्यधिक संगठित यंत्र की सहायता से उमैय्यद शासन में जनता का विश्वास समाप्त किया गया। अब उसका उपयोग चतुरता के साथ अब्बासिदों के लिए स्थायी रूप से जन-समर्थन प्राप्त करने में किया जाने लगा। बहुत आरंभ से इस भावना का बीजारोपण किया गया कि अब शासन सदैव अब्बासिदों के हाथों में रहेगा और उसे अंत में मसीहा जीसस (ईसा) को सुपुर्द कर दिया जाएगा। बाद में यह सिद्धान्त प्रचारित किया गया कि यदि खिलाफत नष्ट हो जाती है तो पूरी सृष्टि विशृंखलित हो जाएगी। सच बात यह थी कि धार्मिक परिवर्त्तन जितना दृष्टिगोचर होता था उतना वास्तविक न था। यद्यपि उमैय्यदों के मुकाबले अब्बासिद खलीफा धर्मनिष्ठता और धार्मिकता का दावा करता था पर वह भी उतना ही दुनियावी था जितना कि कोई उमैय्यद खलीफा था। पर एक बात में उन लोगों के बीच मूलभूत अंतर था और वह यह कि जब कि उमैय्यद साम्राज्य अरब था तो अब्बासिद साम्राज्य अधिक अन्तर्राष्ट्रीय था। यह साम्राज्य नव-मुस्लिमों का था जिसके अंगीभूत वंशों में अरब भी एक थे।

सिंहासनारूढ़ होने के बाद प्रथम खलीफा का पहला काम यह हुआ कि पृथ्वी पर से पूरे उमैय्यद वंश का सफाया कर दिया जाय। इस पूरे हत्याकांड के सामने वे सभी जघन्य कार्य फीके पड़ गए जिनका उमैय्यद शासन पर आरोप लगाया जा सकता था। फिलस्तीन में खलीफा के चाचा ने अनेकानेक क्रूर और नृशंस कार्य किये। स्वभावतः इस दुर्व्यवहार के परिणाम हुए। पराजित उमैय्यद राजवंश के अनुयायी दमिश्क, हिम्स और मेसोपोटामिया में अल-सफा के विरुद्ध उठ खड़े हुए। इस आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए अलसफा ने अपने भाई को एक फौज के साथ विद्रोह-स्थल पर भेजा। विद्रोह दवाने के अब तक जितने तरीके प्रचलित थे उनके मुकावले कहीं नर्म तरीकों से विद्रोह दवाया गया। विद्रोहियों के समक्ष अनुकूल शर्तें रखे जाने पर उन्होंने बहुत जल्द हथियार रख दिये।

उमैय्यद राजवंश की मारवान शाखा के संस्थापक मारवान का ईराक स्थित वायसराय यजीद बिन होबेरा वासित पर, जो उमैय्यद शासन-काल में ईराक की राजधानी थी, कब्जा रखे रहा। उस पर हसन बिन कहतबा और अलसफा के भाई एवं उत्तराधिकारी अबू जफर ने घेरा डाला। पहले तो होबेरा ने उमैय्यदों से सहायता के लिए अपील की पर जब उसने देखा कि कहीं से कोई सहायता नहीं मिल रही है तो उसने आत्म-समर्पण कर दिया। अबू जफर ने विद्रोहियों को पूरा क्षमादान दिया जिसे बाद में खलीफा ने दृढ़ शपथ के अधीन सम्पुष्ट किया। बाद में अबू मुस्लिम से, जिसने अब्बासिदों की क्रान्ति में प्रमुख भाग लिया था, प्रभावित हो कर खलीफा ने होबेरा की हत्या करा दी। अबू जफर ने बहुत समय तक इस क्रूर आदेश को कार्यान्वित न किया पर अंत में उसे इस आदेश को कार्यान्वित करना ही पड़ा। होबेरा के घर पर एक सैनिक दल भेजा गया जहाँ उसे और उसके सबसे बड़े लड़के तथा उसके कुछ अनुयायियों को मार दिया गया।

अब अल-सफा एशिया तथा मिस्र का निर्विवाद शासक बन गया। पश्चिमी अफ्रिका ने भी उसके प्राधिकार को मान्यता दे दी। गवर्नरों के पदों के वितरण में वह इस संबंध में सावधान था कि गवर्नर का पद उन्हीं को दिया जाय जो या तो उसके परिवार के सदस्य हों या जिन्होंने अब्बासिदों की क्रान्ति की सफलता में विशेष भाग लिया हो। खलीफा का भाई और उत्तराधिकारी अबू जफर मेसोपोटामिया, आर्मेनिया और यमन का वाइसराय (गवर्नर) बनाया गया। उसका चाचा दाऊद बिन अली हेज्जाज, यमन और यमामा का, अब्दुल्ला बिन अली सीरिया का, सुलेमान बिन अली बसरा और उसके अधीनस्थ प्रदेशों का, अबू मुस्लिम खुरासान का और अबू ऐयून मिस्र का गवर्नर बनाया गया। खालिद बिन बरमाक को वित्तमंत्री पद दिया गया। अबू सलमा वजीर बनाया गया। इस प्रकार अब्बासिदों का हाशिमी झण्डा सभी जगह लहरा रहा था पर साम्राज्य के कुछ भागों में हिंसा का दौर भी चल रहा था। मोसुल में गंभीर हिंसा की घटनाएँ हुई। वहाँ जो गवर्नर नियुक्त हुआ था वह निम्न वंश का था। वहाँ के लोगों ने न केवल उनके प्रति अवज्ञा प्रदर्शित की बल्कि उसे नगर से निकाल बाहर भी किया। इस पर खलीफा बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने अपने भाई याहिया को वहाँ के लोगों के दमन के लिए भेजा। मोसुल की जनता का निर्ममतापूर्वक कत्लेआम किया गया। इस प्रकार खलीफा अपनी अल-सफा (रक्तपात करने वाले) की उपाधि सार्थक की।

इस बीच एक और घटना हुई। अबू सलमा जो वजीर बनाया गया था, कभी-कभी खलीफा के गोपनीय सलाहकार का काम भी करता था। खलीफा पर उसके प्रभाव के कारण अबू मुस्लिम को ईर्ष्या हुई। एक रात जब वह खलीफा

निवासस्थान से अकेले लौट रहा था तो अबू मुस्लिम द्वारा नियुक्त उसकी घात में बैठे लोगों ने उसकी हत्या कर डाली।

नये शासक द्वारा किये गए प्रबंधों के बावजूद साम्राज्य अभी भी अव्यवस्थित था। बैजेन्टाइनों ने इसका लाभ उठा कर उत्तर में मुस्लिम क्षेत्रों में ध्वंस-कार्य आरंभ किया। उन लोगों ने शांतिपूर्ण नागरिकों की या तो हत्या कर डाली या उन्हें गिरफ्तार कर लिया तथा उन क्षेत्रों को वीरान बना दिया।

खलीफा अल-सफा ने अस्थिर स्थिति वाले और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के समर्थकों से पूर्ण नगर कूफा में अपने को असुरक्षित महसूस किया। अल अन्बर[1] में अल-हशीमिया नाम का शाही निवासस्थान बनवाया। यह नाम उसके परिवार के एक प्रारंभिक पूर्वज हाशिम के नाम पर रखा गया था। जिस कारण कूफा को असुरक्षित समझा गया उसी कारण उसके पड़ोसी नगर बसरा को भी असुरक्षित समझ कर वहाँ भी शाही निवासस्थान और राज्य का केन्द्र न बनाया गया। बसरा दक्षिण में स्थित था इसलिए भी वहाँ राज्य की राजधानी न बनाई गई।

इस प्रकार अल-सफा का रक्त-रंजित शासन समाप्त हो रहा था। उसने अपने भाई अबू जफर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया तथा अपने भतीजे ईसा को वैकल्पिक उत्तराधिकारी। अपनी नव-निर्मित राजधानी में अल-सफा की सन् ७५४ में चेचक से मृत्यु हो गई। उस समय उसकी उम्र तीस से कुछ ही ज्यादा थी। उसका शासन पाँच वर्ष से कुछ समय तक चला। यह खलीफा सामान्यत: अल-सफा ("या रक्तपात करने वाला" अथवा "खून का प्यासा") के नाम से जाना जाता है। उसका यह नाम बहुत उपयुक्त था। इस राजवंश में वह इस मामले में सभी खलीफाओं से आगे बढ़ा हुआ था और उसने सबको मात दे दी थी। उसके शासन में मानव-जीवन का कोई मूल्य न रह गया था। उसने अपनी क्रूरता को अपने उस अपराध से गहनतर बनाया कि दृढ़ प्रतिज्ञाओं के बावजूद वह उनसे मुकर जाता था और अपने साथियों के प्रति अकृतज्ञता का व्यवहार करता था। उसकी क्रूरता के शिकार वैसे अनेक व्यक्ति हुए जिन्होंने उसे सत्तारूढ़ करने में अपना जीवन अर्पित कर दिया था। पर जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, अपनी क्रूरताओं के बावजूद, अल-सफा एक उदार और धार्मिक सम्राट था। वह अपने कर्त्तव्यों के संबंध में जागरूक रहता था।

---

१. ईराक के उत्तर में यूफ्रेटस नदी के बाईं ओर। अब यह स्थल बिल्कुल वीरान है।

अल मंसूर, अब्बासिद राजवंश का वास्तविक संस्थापक (सन् ७५४-७५)

अब्बासिदों के राजवंश का वास्तविक संस्थापक अल-सफा का भाई अबू जफर हुआ। वह, जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, जून सन् ७५४ में सिंहासनारूढ़ हुआ। नये खलीफा अबू जफर ने आदरणीय उपाधि अल मंसूर (खुदा द्वारा विजयी बनाया गया)[२] धारण की। वह अब्बासिदों में महानतम खलीफाओं में से था यद्यपि उसका चरित्र अत्यधिक अनैतिक था। यों अल-सफा अब्बासिद राजवंश का प्रथम खलीफा था पर अबू जफर को राजवंश का वास्तविक संस्थापक माना जाना चाहिए। यह उसी की दूरदर्शी नीतियों का परिणाम था कि उसके परिवार को स्थायित्व मिला, अब्बासिद खलीफाओं की शक्ति अपार थी और प्रभाव अपरिमित। ऐसा उस स्थिति में हुआ जब उन लोगों की सार्वभौमसत्ता समाप्त हो गई थी।

मंसूर के साथ आरंभ होता है उन तेजस्वी खलीफाओं का युग जो एशिया में बहुत लोकप्रिय हुए। अलसफा के प्रथम उत्तराधिकारी (अल-मंसूर) ने अपनी शक्ति राष्ट्र की जनता में कल्याण और भलाई में लगाई। "ये खलीफा अपने पड़ोसियों द्वारा समादृत थे। उन लोगों ने एक सक्रिय और उदार शासन चलाया तथा महान लोकोपकारक उद्यम सावधानी के साथ कार्यान्वित किए। फलतः वे अपनी प्रजा का आदर और प्रेम प्राप्त कर सके।" उन्होंने नये नगर निर्मित कराये, सड़कें बनवाईं, ऊँटों के कारवां के लिए सराय स्थापित कीं, नहरें खुदवाईं, झरने बनवाये, दातव्य और शैक्षिक संस्थान शुरू किये, साहित्य को प्रोत्साहन और संरक्षण दिया तथा वाणिज्य एवं शांतिकालीन कलाओं को आगे बढ़ाया। उनके शासन में विजय-अभियान बंद कर दिए गए। "युद्ध-कार्य छोड़ देने से", इतिहासकार सेडिलोट कहता है—"अब्बासिद खलीफाओं ने समय की नब्ज को पहचाना। पूर्ण सारासेन (अरब) सभ्यता के लाभों को समझने लगे। अपनी जनता के लिए नियमित शासन और कड़ाई से पालन की जाने वाली न्याय-व्यवस्था स्थापित कर अब्बासिद खलीफाओं ने जनभावना का आदर किया। साथ ही उन्होंने शिक्षा का प्रसार किया और जटिल वाणिज्यिक संबंधों के सूत्र से साम्राज्य के विभिन्न भागों को एकीकृत कर दिया।"

फिर भी यह बात उल्लेखनीय है कि अल मंसूर का चरित्र अच्छाई और बुराई का विचित्र सम्मिश्रण था। एक राजनीतिक, राजनेता एवं सम्राट के रूप में वह अद्वितीय था। साथ ही दूरदर्शिता अथवा जनहित पर ध्यान देने के मामले में

२. वास्तविक शब्द अल-मंसूर बिल्लाह "जिसे अल्लाह ने विजयी बनाया। बाद में इस प्रकार के धार्मिक प्रकार के शाही नाम सभी अब्बासिद खलीफाओं ने रखे।

वह किसी से भी कम न था। जहाँ तक उसके अपने परिवार का संबंध था, वह अपने बच्चों को बहुत प्यार करता था। पर साथ ही वह धोखेबाज और आवश्यकता पड़ने पर मानव-जीवन को कभी भी क्षमादान करनेवाला न था। उसका पूर्ववर्त्ती खलीफा अल-सफा बदले की पागलपन से भरी योजना से क्रूरता करता था तो अल-मंसूर सुनियोजित ढंग से विरोधियों का रक्तपात करता था। निर्दयता के साथ, योजनाबद्ध तरीके से तथा नैतिकता या अनैतिकता का परवाह किये बिना वह किसी ऐसे व्यक्ति को न छोड़ता था जिसे वह अपने या अपने राजवंश के लिए थोड़ा-सा भी खतरनाक समझता था। उसने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंशजों के साथ जो क्रूर व्यवहार किया वह अब्बासिद राजवंश के इतिहास का सबसे अंधकारपूर्ण पृष्ठ है। इतिहासकार सयूती कहता है कि—"अल मंसूर पहला खलीफा था जिसने अब्बासिदों और अली के समर्थकों के बीच भयानक फूट डाली। ये दोनों पहले एकताबद्ध थे।"

अब्दुल्ला इब्न अली का विद्रोह

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अल सफा नहीं बल्कि अल-मंसूर ही वह अब्बासिद खलीफा है जिसने नया राजवंश दृढ़तापूर्वक स्थापित किया। सभी ३५ खलीफा, जो अल मंसूर के बाद एक-एक कर सत्तारूढ़ हुए, उसके वंशज थे। अल-मंसूर को सत्तारूढ़ होने के बाद अपने चाचा अब्दुल्ला इब्न अली द्वारा उठाये गए दावे के विरुद्ध अपनी सत्ता सुरक्षित करनी थी। अब्दुल्ला इब्न अली उत्तरी सीरिया में वैजेन्टाइनों के विरुद्ध रखी गई सेना के साथ डटा हुआ था। 'जब' के जिस युद्ध में उमैय्यदों का सफाया हुआ, अब्दुल्ला उसका नायक था। वह प्रथम खलीफा अल-सफा के अधीन सीरिया का गवर्नर था। उसने अब अल-मंसूर के खिलाफत को चुनौती दी पर सन् ७५४ में नसीबिन में उमैय्यदों के विरुद्ध अभियान के एक दूसरे एवं अधिक प्रसिद्ध नायक अबू मुस्लिम ने अब्दुल्ला को पराजित कर दिया। पर अबू जफर ने अपने अस्तित्व के लिए अब्दुल्ला को जीवित रहने देना खतरनाक समझा। उसे सात वर्ष के लिए वंदी रखा गया। फिर बड़ी शान-ओ-शौकत के साथ उसे एक ऐसे मकान में ले जाया गया जिसकी नींव, जान-बूझ कर, नमक पर रखी गई थी जिसे चारो ओर पानी से घेर दिया गया था। अब्दुल्ला के प्रवेश करते ही मकान धंस गया जिसके नीचे वह दब कर मर गया।

अबू मुस्लिम का पतन और मृत्यु

नसीबिन के युद्ध के तुरत बाद खुद अबू मुस्लिम की पारी आई। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उस युद्ध में अबू मुस्लिम ने अब्दुल्ला को हराया था। अबू मुस्लिम चाहता था कि उसे खुरासान में अपने राज्य में भेज दिया जाय। वहाँ

जाने पर वह व्यावहारिक रूप में वहाँ का राजा बन गया। उस प्रान्त में उसकी शक्तियाँ असीम थीं और उस रूप में वास्तव में वह अब्बासिदों के लिए खतरा बन गया। वहाँ उसके अनेकानेक अनुयायी थे और उसके सचिव उसे पैगम्बर समझते थे। फलतः वह सिर्फ उँगली के इशारे से अब्बासिदों के राजवंश को उसी तरह नष्ट कर सकता था जिस तरह उसने उसकी स्थापना की थी। उसका रुख भी अत्यन्त दंभपूर्ण हो गया था। नसीबिन में जब खलीफा का दूत उससे लूट के माल की सूची मांगने पहुँचा तो जागरूक खलीफा के लिए उसने जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया वह न तो सम्मानजनक थी और न सहयोगपूर्ण। परिणामतः अल मंसूर की पहली चिन्ता अब यह हुई कि अबू मुस्लिम को खुरासान से, जहाँ उसकी शक्ति की सुदृढ़ नींव थी, हटाया जाय। इसके लिए अबू मुस्लिम को मिस्र का गवर्नर बनाने का प्रस्ताव किया गया जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। पर बाद में वह ब्रेबीलोनिया का गवर्नर बनाये जाने का प्रस्ताव स्वीकार करने का लोभ संवरण न कर सका। अंत में मदाइन की राजधानी के निकट खुरासान के नेता अबू मुस्लिम को मार डाला गया। अबू मुस्लिम की हत्या का बदला लेने की कोशिश करने वाला एक ईरानी संदबाध हुआ जिसने खुरासान में विद्रोह का झण्डा उठाया और अपनी सेना के साथ मदीना तक पहुँच गया। वहाँ हमादान और रय्य के बीच खलीफा की सेनाओं ने उसे पराजित कर दिया और मार डाला।

इसके अलावा फारसी अतिवादियों के रवानदिया नामक एक नये दल ने खलीफा को खुदा जैसा चित्रित करना शुरू किया तो उन लोगों का सन् ७५८ में निर्दयतापूर्वक दमन किया गया।

अली के समर्थकों के विद्रोह का दमन

अली के समर्थक या असन्तुष्ट शिया, जो अंत अंत तक मानते थे और इस आशा में थे कि खुरासान में स्थापित नया शासन उनके पक्ष में काम कर रहा है, अपने चचेरे भाइयों यानी अब्बासिदों के साथ सहयोग का रुख न अपना सके। पर अपने पूर्वजों की भाँति उनमें शक्ति और राजनीतिक दक्षता का अभाव था। विशेषकर मदीना में, जो अब तक छिन्न-भिन्न हो चुके थे, इस वंश का मुख्य केन्द्र था, उन्होंने अब्बासिद राजवंश के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। खलीफा अल-मसूर द्वारा नियुक्त गवर्नर ने उन लोगों में से अनेक को गिरफ्तार कर लिया और उनके नेता मुहम्मद की तेजी के साथ खोज शुरू कराई। मुहम्मद चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के प्रथम पुत्र हसन और अपनी दादी के संबंध से द्वितीय पुत्र हुसेन का भी परपोता था। यही कारण था कि जिसके चलते अली के समर्थकों ने विद्रोह किया।

सन् ७६२ के अंत में अली के समर्थकों ने विद्रोह किया तथा अपने बंदी वंशवालों को जेल से छुड़ा दिया। उस समय के प्रसिद्ध धर्मशास्त्री मलिक इब्न

अनास ने, जो पूरे उत्तरी अफ्रिका में आज भी मलिकाई नाम की प्रमुख धार्मिक विचारधारा का संस्थापक था, उन लोगों को अब्बासिदों के प्रति ली गई निष्ठा की शपथ से इस आधार पर मुक्त कर दिया कि उन लोगों द्वारा शपथ जबर्दस्ती दिलाई गई थी। वास्तव में अब्बास शासकों के लिए आसान था कि वे तत्काल खुरासानी सेना मक्का भेज कर अनुभवहीन विद्रोहियों को पराजित कर देते। विद्रोहियों के खिलाफ कार्रवाई की गयी। शासन की कार्रवाई का साहसपूर्वक प्रतिरोध करते हुए मुहम्मद मारा गया और उसके परिवार की सम्पत्ति जब्त कर ली गई। इसके अलावा मक्का नगर के साथ जिससे अब खलीफा को कोई खतरा न था, सभ्यतापूर्ण व्यवहार किया गया।

पर इससे भी ज्यादा चिन्ता का विषय बसरा में अली समर्थकों का विद्रोह था। इसका नेता मुहम्मद का भाई इब्राहीम था। पर राजनीतिक योग्यता उसमें भी न थी। यद्यपि उसने बसरा पर कब्जा कर लिया और वहाँ लोगों से धन ऐंठ कर फारस और सुसियाना पर भी अधिकार किया पर उसे कूफा के विरुद्ध आक्रमण की हिम्मत न हुई जहाँ खुद खलीफा मंसूर थोड़ी-सी सेना लेकर ठहरा हुआ था। मंसूर का सेनापति ईसा-इब्न-मूसा तुरत सुसियाना की ओर बढ़ा और उस देश पर कब्जा कर लिया। उसके और इब्राहिम के बीच कुछ भीषण युद्ध हुआ। खुद इब्राहिम, जिसने अंत में कूफा की ओर बढ़ने का निर्णय किया था, कूफा के दक्षिण-स्थित बहमारा में, सेनापति ईसा के सैनिकों के साथ लड़ाई में, मारा गया। यह घटना १४ फरवरी सन् ७६३ में हुई। उसका सर काट कर खलीफा के पास भेज दिया गया। इस प्रकार खलीफा अल मंसूर ने अली के जिद्दी समर्थकों पर निर्णयात्मक विजय हासिल की। अली के समझौताविहीन समर्थकों के लिए अब्बासिद खलीफा जबर्दस्ती सत्ता हड़प करने वाले थे। अली-समर्थकों का विचार था कि खलीफा बनने का वास्तविक अधिकार इमामों का था जो अली और उसकी पत्नी एवं पैगम्बर की पुत्री फातिमा के वंशज थे। अली समर्थकों ने इस्लाम की राजनीति पर ध्वंसात्मक प्रभाव डालना कभी खत्म न किया और इस बात का दावा बराबर करते रहे कि उनके इमामों में पैगम्बर से प्राप्त वंशगत बुद्धिमत्ता का अंश है।

मंसूर के अन्य अभियान

अपने साम्राज्य की आंतरिक स्थिति नियंत्रित करने के बाद खलीफा अल मंसूर ने बाहरी शत्रुओं की ओर अपना ध्यान दिया। वह लगातार इसमें व्यस्त था कि अपने शक्तिशाली साम्राज्य की सीमाएँ सुरक्षित रखे और जहाँ तक संभव हो, साम्राज्य का विस्तार करे। यद्यपि जिस तरह उमैय्यद राजवंश के अधीन बैजेन्टाइनों के विरुद्ध प्रायः निरंतर युद्धों में अरबों को जो सफलता मिली वह अल-मंसूर के

शासन में नहीं मिली। उसी प्रकार काकेशस में तुर्क खजारों के विरुद्ध, कैस्पियन सागर के तट पर डेलामाइटों के विरुद्ध, आक्सस नदी की दूसरी ओर तुर्कों के विरुद्ध और भारतीयों के विरुद्ध जो साम्राज्य की शक्ति में उल्लेखनीय विस्तार करने में असफल रहे, अल मंसूर को कोई खास सफलता न मिली।

अलावे, मंसूर के अधीन अब्बासिद शासन खुरासान में कुछ गुटों के आन्दोलन के कारण लगातार खतरे में पड़ा हुआ था। यह प्रदेश इस्लाम का सीमा-स्थित प्रदेश था। वहाँ ईरानी राष्ट्रीय धर्म का लोगों के मन-मस्तिष्क पर अभी भी शक्तिशाली प्रभाव था। यह सही है कि मंसूर ने खुद अबू मुस्लिम को अपने रास्ते से हटा दिया था। सन् ७५८ में जब खुरासान के धर्मान्धवादी हाशिमिया में मंसूर के निवासस्थान पर पहुँचे। उनका उद्देश्य दैवी शासक के अवतार (प्रतीक) के रूप में उसे उलटने की कोशिश करना था। वे जब शांतिपूर्ण तरीकों और शब्दों से शांत होने को तैयार न हुए तो मंसूर ने उन सबके सर कटवा दिये। पर सन् ७७८ में हाशिम ने, जो फारस का मर्व जाति का था और अबू मुस्लिम का भूतपूर्व सचिव था, अपने अनुयायियों के साथ विद्रोह किया। उसका दावा था कि अपने नेता अबू मुस्लिम की मृत्यु के बाद वह देवता का नया अवतार था। इतिहास में वह अल-मकाना "घूंघट वाला" के उपनाम से जाना जाता है। क्योंकि वह भीड़ के सामने सोने के बने किनारे वाली घूंघट अपने चेहरे पर डाले प्रकट होता था। ट्रांजोक्सियाना में केश के निकट अपने सनम नामक किले से उसने समूचे प्रान्त को अपने अधिकार में कर लिया। उसी समय खुरासान में एक और खारिजी विद्रोह शुरू हो गया। अनेक सेनाओं को पराजित करने के बाद उसने अपने को अपने किले में बंद कर लिया जहाँ सन् ७८० में उसने खुद आग लगा ली और अपनी पत्नी और अनुयायियों के साथ मर गया। पूर्ववर्ती वर्षों में ससानीद युग में मजदक के साम्यवादी विचार जुरजान प्रान्त में फिर से उदित हुए। बाद के अब्बासिद खलीफा हारुन-अल-रशीद (७८६-८०९ ई०) के समय में इन विचारों ने एक खतरनाक विद्रोह का रूप धारण किया।

उत्तरी अफ्रिका में भी, जहाँ अल-मंसूर का शासन-क्षेत्र कैरवान से बहुत आगे तक विस्तृत न था, एक अन्य बर्बर विद्रोह हुआ जिसका दमन करना आवश्यक हो गया। बर्बर जाति के लोगों ने यद्यपि इस्लाम के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया था पर अरबवाद स्वीकार करने के सभी प्रयत्नों के विरुद्ध वे दृढ़तापूर्वक डटे रहे। फलतः खारिजियों ने, जो साम्राज्य के केन्द्र में प्रायः विनष्ट कर दिये गये थे, बर्बरों के बीच अपने प्रचार के लिए अनुकूल क्षेत्र पाया।

अल-मंसूर की इच्छा थी कि स्पेन पर विजय प्राप्त की जाय जहाँ प्रसिद्ध उमैय्यद शासक हिशाम के पौत्र अब्द-अल-रहमान ने उमैय्यद शासक के अन्त में

सीरिया के रक्त रंजित भोज से किसी तरह भाग कर अपना आधिपत्य कायम किया था। अल-मंसूर की फौजों ने स्पेन पर हमला किया पर अब्द-अल रहमान के हाथों उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस प्रकार स्पेन पर विजय की अल-मंसूर की योजना विफल हो गई।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, अब साम्राज्य की आंतरिक स्थिति पूरी तरह नियंत्रण में थी। जहाँ तक पड़ोस का प्रश्न है, पिछले अध्यायों में जिक्र किया ही जा चुका है कि अरब साम्राज्य के सदा के शत्रु बैजेन्टाइनों के साथ प्रायः एक शताब्दी तक बीच-बीच में अरबों का युद्ध चलता रहा। अब वह युद्ध पड़ोस के मजबूत ठिकानों पर चढ़ाइयों के रूप में परिणत हो गया। लेसर आर्मेनिया में मलात्या का सीमा-स्थित विनष्ट किला और सिलिसिया में मसीसाह पर अरबों ने फिर से कब्जा कर लिया। यहाँ तक कि रूस-स्थित बाकू के ज्वलनशील द्रव (नेप्था) के झरनों तक भी अरब पहुँच गए और वहाँ के लोगों को पराजित कर उन पर कर लगा दिया। कैस्पियन सागर के दक्षिण में पर्वतीय क्षेत्र तबरिस्तान पर भी अस्थायी रूप से कब्जा कर लिया गया। अन्य स्थानों के साथ ही तत्कालीन भारत की सीमा पर स्थित कांधार पर भी कब्जा कर लिया गया। वहाँ गौतम बुद्ध की एक प्रतिमा मिली जिसे नष्ट कर दिया गया। वास्तव में मंसूर के सेनापतियों ने उत्तर-पश्चिमी हिमालय की सुसमृद्ध तथा विस्तृत घाटी कश्मीर तक अपने हमले जारी रखे। सन् ७७० में बसरा से सिन्धु नदी के डेल्टा (तट के त्रिभुजाकार मिट्टी के क्षेत्र) पर समुद्री डाकुओं को, जिन्होंने जद्दा नामक स्थान को लूटने का दुःसाहस किया था, डराने-धमकाने के लिए हमला किया गया।

महदी भावी उत्तराधिकारी घोषित

प्रारम्भ में मंसूर का इरादा था कि उसका उत्तराधिकारी ईसा-इब्न-मूसा बने क्योंकि उसने अली के अनुयायियों का विद्रोह कुचलने में राजवंश की बड़ी सेवा की थी। पर जब मंसूर का पुत्र महदी बड़ा हुआ तो खलीफा का विचार बदल गया और उसने अपने बेटे को अपना उत्तराधिकारी बनाने की योजना बनाई। तदनुसार उसने ईसा को बाध्य किया कि वह उत्तराधिकार का अपना दावा छोड़ दे। ईसा ने बड़ी अनिच्छा से अपना दावा छोड़ा और इस बात के लिए तैयार हुआ कि सन् ७६७ में लोगों ने उसके प्रति जो निष्ठा की शपथ ली थी उससे उन्हें मुक्त कर दे। ७ अक्टूबर सन् ७७५ को तीर्थयात्रा पर जाते हुए मंसूर की मृत्यु हो गई। उसे तीर्थयात्रियों के नेतृत्व का बड़ा शौक था। उसकी मृत्यु पर, बिना किसी विघ्न-बाधा के, महदी खलीफा के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

मंसूर के राज्य प्रशासन

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, खलीफा अल-मंसूर एक सफल प्रशासक और अपने राज्य का अच्छा संगठनकर्त्ता था। अब्बासिद साम्राज्य उसकी सरकार के सिद्धान्तों के लिए उसका बड़ा ऋणी है। अधिकांशतः उसने वह प्रक्रिया कायम रखी जिनकी उपयोगिता की परख उमैय्यदों और बैजेन्टाइनों के दरबारों में की जा चुकी थी। उसने बराबर प्रयत्न किया कि अलग-अलग प्रान्तों के प्रधान के रूप में योग्य गवर्नरों को रखा जाय। यद्यपि इस कार्य में वह अपने वंश की उपेक्षा करने में असमर्थ रहा, पर फिर भी सबसे ऊँचे पदों पर इस्लाम के नये अनुयायियों और मुक्त किए गए दासों को नियुक्त करने में उसने कभी अनिच्छा न दिखलाई। डाक विभाग के निदेशकों की व्यवस्था के माध्यम से उसने प्रान्तीय प्रशासन पर भली-भाँति नियंत्रण रखा। यह व्यवस्था उमैय्यदों के शासन में भी थी पर उसके शासन में इसे वास्तव में विस्तृत और अधिक उपयोगी बनाया गया। ये डाक-निदेशक सरकार की सम्पूर्ण समाचार-व्यवस्था के प्रभारी थे पर उनका मुख्य कार्य खलीफा को इस बात से अवगत कराना था कि उसके गवर्नर अपना कार्य-भार किस तरह

नये शाही नगर मदीनत-अल-सलाम का निर्माण

अल-मंसूर ने खलीफा बनने के तुरत बाद उत्साहपूर्वक नई शाही राजधानी के निर्माण का कार्य आगे बढ़ाया। उसके भाई ने अनवर के निकट यूफ्रेटस नदी के बायें तट पर हाशिमिया में निवास-स्थान-बनवाया था। पर यह स्थान कूफा के निकट था और वहाँ के निवासियों ने उमैय्यद राजवंश के लिए निरन्तर बड़े संकट उत्पन्न किये थे। अतः हाशिमिया में शाही निवासस्थान होने से अब्बासिदों के लिए भविष्य में सहज ही समस्यायें उत्पन्न हो सकती थीं। ऐसी स्थिति में बहुत सावधानी से विचार करने के बाद खलीफा अल मंसूर ने निश्चय किया कि टिगरिस नदी के पश्चिमी किनारे पर बगदाद नामक एक छोटे से ईसाई गाँव में साम्राज्य की राजधानी का पुनर्निर्माण किया जाय। इस गाँव में प्राचीन गाथाओं में वर्णित अनेक साहसिक कार्य हुए हैं जिनका चित्रण शहरजाद ने **"अरब सहस्र रजनी" (दी थाउजैण्ड अरेबियन नाइट)** में बड़ी खूबसूरती और दक्षता के साथ किया है। अल-मंसूर का यह चुनाव बहुत अच्छा सिद्ध हुआ। यह क्षेत्र का द्रुतगति से विकास न केवल शासकों के कारण हुआ बल्कि इस कारण भी कि उसकी अवस्थिति अनुकूल थी। इससे यह भी निश्चित हुआ कि बैबीलोनिया में सभ्यता के सम्पूर्ण विनाश के बाद भी बगदाद का काफी महत्व रहेगा। टिगरिस नदी के पश्चिमी किनारे पर, जहाँ पर यह गाँव बसा हुआ था, खलीफा ने राजधानी के विकास के लिए लोगों से बलात् निःशुल्क श्रम करवाया। अपने दरबार के लिए महल बनवाये और मस्जिदों तथा सरकारी भवनों का निर्माण कराया। उसने निर्माण के लिए अनुकूल शर्तों पर व्यापारियों को आकर्षित किया। अल मदेन में मुख्यतः पुराने सासानिद (फारसी) आवास-स्थानों से निर्माण की सामग्री ली गई। नहरों की व्यवस्था विस्तृत और व्यापक की गई तथा उन पर पुल बनवाये गए। जल-वितरण की व्यवस्था और नगर के चारों ओर किलेबंदी करके उसे निवास-योग्य बनाया गया। नगर के सीमा-क्षेत्रों पर अनेक बस्तियाँ बनवाई गईं जिसमें कर्ख सबसे महत्वपूर्ण थी। नगर के पूर्वी तट पर, जहाँ आधुनिक बगदाद का प्रमुख भाग स्थित है, अल-मंसूर ने सबसे पहले अपने पुत्र महदी के लिए एक शिविर तैयार कराया। उसने अपने वंशवालों, आश्रितों और अफसरों को नगर के आस-पास की बस्तियों को जागीर के रूप में दिया। उसने नये निर्मित नगर का नाम **मदीनत-अस-सलाम** या **दार-उस-सलाम** शांति का निवास (या नगर) रखा पर आम तौर पर उसका पुराना नाम ही प्रचलित रहा। यह एक गोलाकार, किलों का नगर था जिसके चारों ओर दुहरी ईंटों की दीवारें थीं। साथ नब्बे फुट ऊँची एक तीसरी दीवार थी जिसके चारों ओर जल से भरी एक खाई थी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह नगर टिगरिस नदी के पश्चिमी किनारे पर था। दूसरी ओर, नदी के पूर्वी तट पर फौजी बैरक थे जिनसे नगर को अतिरिक्त

सुरक्षा प्राप्त होती थी। जिस जन्मपत्रिका के अनुसार मंसूर ने अपने इस फौजी नगर का निर्माण शुरू कराया उसके परिवार के लोग और उसका खुरासानी अंगरक्षक आदि उतने ही संदेहशील सिद्ध हुए जिस तरह की दरबार के नुजूमी (ज्योतिषी) ने भविष्यवाणी की थी। पर कुछ ही वर्षों में नगर व्यापार और वाणिज्य का केन्द्र हो गया और उस समय उसका अन्तरराष्ट्रीय महत्व सबसे ज्यादा हो गया। इतिहासकार फिलिप हिट्टी कहता है—"ऐसा लगता है कि खलीफा अल-मंसूर की यह विशाल नगरी मानो किसी जादूगर द्वारा प्रयुक्त डंडे से, शक्ति और प्रतिष्ठा में, प्राचीन पूर्वी देशों की राजधानियों जैसे कि टेसीफोन (फारस की पुरानी राजधानी), बैबीलोन, नाइवेवेह, उर आदि की उत्तराधिकारिणी बन गई। शायद केवल कान्स्टैंटीनांपुल को छोड़ कर प्रतिष्ठा और चमक-दमक में मध्य काल में यह नगरी अद्वितीय थी। इसकी नई अवस्थिति के चलते यहाँ पूर्व से विचार आने लगे....अरब इस्लाम फारस के प्रभाव में चला गया। खलीफा का पद अरब शेख के मुकावले ईरानी निरंकुश शासक का रूप धारण करने लगा। क्रमशः फारसी (ईरानी) उपाधियों, फारसी शराब और पत्नियों, फारसी प्रेमिकाओं, फारसी गीतों तथा फारसी विचारों और भावनाओं ने प्रमुखता प्राप्त कर ली।"[3]

एक बात और उल्लेखनीय है कि प्रारंभ से ही नई राजधानी का तौर-तरीका दमिश्क (उमैय्यदों की राजधानी) से भिन्न था। यद्यपि अरब अल-मंसूर के दरबार में भी आते-जाते रहे। वे अब खलीफा के पास पहुँचते भी न थे जैसे कि वे प्रसिद्ध उमैय्यद खलीफा अब्द-अल-मलिक के पास पहुँचते थे। कोई भी जनजातीय शेख बगदाद में न रहता था। अब वहाँ बड़े फारसी राजाओं के उत्तराधिकारी रहते थे। बाद में फारसी किताबों में भी लोगों की रुचि उत्पन्न हुई। सासानिदों (फारसियों) के दरबार की समारोह संबंधी प्रक्रिया के संबंध में भी दिलचस्पी जगी और उसका अनुकरण करने के प्रयत्न किये जाने लगे। दरबार और राज्य में पद और मर्यादा अब केवल सरदारों के वंशगत अधिकार नहीं रह गए। अब उनका वितरण खलीफा के पक्षपात और मनमानी इच्छा के अनुसार होने लगे।

मंसूर के अधीन फारसीकरण : फारसी वजीर के परिवार का संक्षिप्त सर्वेक्षण

कहा जाता है कि अल मंसूर ही वह सर्वप्रथम शासक था जिसने फारसियों द्वारा पहना जाने वाला शिरो-वस्त्र (टोपी) पहनना शुरू किया। फलतः इसमें उसका अनुकरण उसकी प्रजा ने भी किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि फारस के प्रभाव

३. प्रोफेसर हिट्टी; हिस्ट्री औव अरब्स, वही, पृ० २९३-२९४।

से प्राचीन अरब जीवन का खुरदुरापन समाप्त होने लगा। साथ ही इससे एक नये युग का आरम्भ हुआ जो विज्ञान के विकास और विद्याध्ययन के लिए विशिष्ट सिद्ध हुआ। इन दोनों क्षेत्रों में केवल अरबों का ही वर्चस्व रहा। राज्य का धर्म इस्लाम ही रहा और राज-काज की भाषा अरबी। पर फारसीकरण संवैधानिक परिवर्तनों के अलावा और कहीं अधिक प्रत्यक्ष न था। अपने अधिकार का प्रयोग दूसरे को करने देने की प्रणाली, जिसे उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया ने शुरू किया था, और बढ़ाई गई। इस्लाम के इतिहास में प्रथम बार फारस में प्रचलित वजीर के पद को एक प्रकार से प्रधान मंत्री का रूप दिया गया जिसकी व्यापक जिम्मेदारियाँ थीं। खिलाफत के पार्थिव अधिकार इस प्रकार वजीर को दिये जाने से यद्यपि सिद्धान्त में मस्जिद और राज्य एक सर्वोच्च प्राधिकार द्वारा प्रशासित होते रहे पर अब खलीफा इस्लाम के नाम मात्र के प्रधान से कुछ ही अधिक रह गया। दूसरी ओर राज्य के मामले सरकार के प्रधान (वजीर) द्वारा प्रशासित होने लगे। खलीफा राज-काज के मामलों से प्रायः पूरी तरह हट गया और इस सम्बन्ध में अपने अधिकार उसने वजीर को सौंप दिये। पर जहाँ तक जीवन और मृत्यु का प्रश्न है उसने इस सम्बन्ध के अधिकार अपने पास ही रखे। खलीफा के पास ही जल्लाद बैठता जो अब तक इतिहास में एक अनहोनी-सी बात थी। खलीफा के सिंहासन के निकट, जल्लाद के पास अपराधी के सर के लिए चमड़े का फंदा बराबर रहता ताकि उसे, आवश्यक होने पर, कभी भी उपयोग में लाया जा सके। वजीर पर न केवल कोषागार के प्रबंधन का भार था, साथ ही उसे प्रान्तीय गवर्नरों और न्यायाधीशों को नियुक्त और बर्खास्त करने का भी अधिकार था। यहाँ तक कि वह उन सरकारी अधिकारियों की सम्पत्ति भी जब्त कर सकता था जिन पर किसी कारण सरकार नाराज हो जाती थी। एक राज्य परिषद होती थी जो मोटे तौर पर आजकल के मंत्रिमंडल जैसी होती थी। इसमें सभी विभागों के प्रभारी मंत्रिगण होते थे। इसकी बैठकों की अध्यक्षता खलीफा नहीं बल्कि वजीर करता था। कर वसूल करने का विभाग वजीर के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में रहता था। जब इतिहास से हमें यह विदित होता है कि प्रान्तों से केन्द्र को प्रतिवर्ष ४ करोड़ दिरहम से ज्यादा कर वसूल किया जाता था तो हम यह भली-भाँति समझ सकते हैं कि जो अधिकारीगण राज्य की आय के प्रभारी थे वे यद्यपि केवल खलीफा की ओर काम करने वाले अथवा उसकी छाया-मात्र थे, धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों एक के बाद एक नये खलीफा आते गए, अधिक शक्तिशाली होते गए। दूसरी ओर खलीफा अधिकारहीन होते जाने के कारण कमजोर तो होते ही गए, साथ ही राज-काज में उनकी दिलचस्पी कम होने लगी। अल-मंसूर के प्रथम पाँच उत्तराधिकारी तो प्रभुतासम्पन्न रहे पर बाद के खलीफा, कुछ अपवादों को छोड़कर, कमजोर पड़ते गए। नियम कुछ ऐसा हो गया कि हर नया खलीफा पिछले खलीफा से ज्यादा कमजोर और प्रभावहीन होता था। वजीर और

अन्य अधिकारियों को अधिकार सौंपने की प्रणाली मंसूर ने इसलिए शुरू की थी कि सरकारी यन्त्र अधिक सक्षम और सुदक्ष हो सके पर आगे चलकर इसका परिणाम कुछ दूसरा ही हुआ। मंसूर ने अनजाने ही, इस प्रकार, ऐसा सरकारी यन्त्र स्थापित किया जिसे विदेशी प्रभावों—पहले फारसियों और फिर तुर्कों—ने खलीफा की शक्ति हड़पने में प्रयुक्त किया और सैनिक अधिनायकवाद कायम कर दिया। उस अधिनायकवाद में खलीफा विशुद्ध रूप से नाममात्र का प्रधान रह गया।

फिर भी, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वजीर का पद, जो फारसी पद था, इस्लामी सरकार में प्रथम वार आरम्भ किया गया। वजीर के पद पर सर्वप्रथम खालिद इब्न-बरमाक नियुक्त हुआ। इसका पिता पूर्वी खुरासान में बल्ख में प्रधान बौद्ध पुरोहित (बरमाक) था। उसकी माँ एक वंदिनी थी। उसे कुतयबाह इब्न मुस्लिम ने सन् ७०५ में कैद किया था। मंसूर को खालिद अपने भाई अल-सफा (प्रथम अब्बासिद खलीफा) से मिला। अल-सफा और खालिद के बीच सम्बन्ध इतने घनिष्ठ थे कि दोनों की पत्नियाँ एक दूसरे की संतान को स्तनपान कराती थीं।[४] और जैसा कि घनिष्ठ सम्बन्ध उसका अल-सफा से था वैसा ही अल-मंसूर के साथ भी था। इस्लाम धर्मान्तरित बरमाकिद (खालिद) उसका बहुत बड़ा मित्र और सलाहकार बन गया। वास्तव में खालिद इब्न बरमाक के प्रभाव के कारण ही यूनानी और फारसी कलाओं और विज्ञानों के विकास को प्रोत्साहन दिया गया जिसके फलस्वरूप मध्य युग में बगदाद संस्कृति का एक महान केन्द्र बना। उसी तरह खालिद ने नई राजधानी में फारसी चमक-दमक और शान-ओ-शौकत का वातावरण शुरू किया। अब्बासिद शासन के आरम्भ में ही खालिद की पदोन्नति हुई और वह वित्त विभाग का प्रधान (दीवान-अल खिराज) बना दिया गया। सन् ७६५ में वह तबारिस्तान का गवर्नर हुआ जहाँ उसने एक खतरनाक विद्रोह को दबाया। अपने बुढ़ापे में उसने वैजेन्टाइनों के एक किले को फतह कर प्रसिद्धि प्राप्त की। यद्यपि वह वास्तव में वजीर न था, उप पद पर था जिसके लिए बाद में मंत्री शब्द प्रयुक्त होने लगा। फारसी मूल के इस अफसर ने अनेक अवसरों पर खलीफा के सलाहकार का काम किया और वजीरों के एक प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध परिवार का संस्थापक बना।

अल मंसूर के पुत्र और उत्तराधिकारी अल महदी ने अपने पुत्र हारून की शिक्षा का भार खालिद के पुत्र याहिया पर सौंपा। जब हारून अपने भाई अल-

४. फिलिप के० हिट्टी भी लिखता है—"खालिद और अल-सफा के सम्बन्ध इतने घनिष्ठ थे कि उसकी पत्नी भूतपूर्व खलीफा की बेटी का पालन-पोषण करती थी और इसी तरह अल-सफा की पत्नी भी खालिद की बेटी का पालन-पोषण करती थी" (हिस्ट्री ऑव अरब्स, वही, पृ० २९४)।

हादी के संक्षिप्त शासन के बाद खलीफा बना उसने खालिद के पुत्र याहिया को, जिसे वह सम्मानपूर्वक पिता कहकर सम्बोधित करता था, असीमित अधिकारों के साथ वजीर बनाया। याहिया की मृत्यु ८०५ में हुई और उसके दो पुत्रों अल फदल और जफर ने सन् ७८६ से सन् ८०३ तक व्यावहारिक रूप में साम्राज्य का शासन किया।

बरमाक के वंशज इन बरमाकियों ने अपने महल पूर्वी बगदाद में बनवाये थे जहाँ वे बड़ी ठाट से रहते थे। वहाँ जफर का महल "अल-जफरी" अनेक शानदार निवासस्थानों के केन्द्र में था। बाद में इस पर खलीफा अल मामून ने कब्जा कर लिया और उसे खलीफा का निवास-स्थान (दार--अल-खलीफा) बना दिया। ये भवन टिगरिस नदी के किनारे थे। इनमें अनेक बड़े-बड़े बागीचे थे जिनके भीतर छोटे-छोटे भवन थे। बरमाक के परिवार के लोगों ने काफी धन-सम्पदा इकट्ठी की थी। इन लोगों ने अपने आश्रितों, प्रशंसकों और समर्थकों को अपनी इच्छानुसार जो कुछ भी दिया उससे वे लोग काफी धनी हो गए। बरमाक के परिवार वालों की उदारता बड़ी प्रसिद्ध थी। आज भी अरब-भाषी देशों में बरमाकी शब्द उदारता का पर्यायवाची है। "जफर के समान उदार" एक उपमा-सी बन गई है जिसका अर्थ उन स्थानों में हर जगह समझा जाता है।

यही नहीं, अनेक नहरें, मस्जिदें और अनेक सार्वजनिक निर्माण-स्थल बरमाक के वंशजों की पहलकदमी और उदारता के कारण बन सके। जफर के भाई अल-फदल को इस बात के लिए श्रेय था कि उसने रमजान के महीनों में मस्जिदों में दीपों का प्रयोग शुरू कराया। एक अच्छे वक्ता, साहित्यिक दृष्टि से योग्य एवं सुलेखक के रूप में जफर को बड़ी प्रसिद्धि मिली। मुख्यतः उसी के कारण बरमाक के वंशज इतिहासकारों द्वारा उस वर्ग के संस्थापक माने जाते हैं जिसे अहल-अल-कलम (लेखक वर्ग) कहा जाता है। पर वह लेखक से ज्यादा कुछ और भी था। वह नये-नये फैशन शुरू करने वाला था। कहा जाता है कि अपनी लंबी गरदन के कारण उसने कमीजों में ऊँचे कालर लगाने का चलन शुरू किया। खलीफा हारून के साथ जफर की घनिष्ठता को उसका पिता याहिया पसंद न करता था

और अंत में ऐसा समय आया जब खलीफा ने अपने को फारसियों के अभिभावकत्व और सुरक्षा से मुक्त किया। शिया धर्म मानने वाले बरमाक-वंशज खलीफा अल महदी के दृढ़ इच्छा शक्ति वाले पुत्र और बाद में होने वाले खलीफा हारून के लिए आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली होने लगे थे। हारून के शासन का सिद्धान्त यह था कि एक वन में दो शेर नहीं रह सकते। सैंतीस वर्षीय जफर को सन् ८०३ में मार डाला गया। उसका दो हिस्सों में कटा हुआ सर बगदाद के एक पुल पर पाया गया और उसके शरीर के कटे हुए दो हिस्से अन्य दो पुलों पर

फेंके हुए मिले। उसके बाद बरमाक वंश का पतन हो गया जिसका विस्तृत विवरण अगले अध्याय में है।

अल-मंसूर का आकलन

७ अक्टूबर सन् ७७५ को खलीफा अल मंसूर की मक्का के निकट मृत्यु हो गई जब कि वह तीर्थ यात्रा पर था। वह साठ वर्ष से ऊपर का हो गया था। वह पतले-दुबले शरीर वाला, लम्बा और काले रंग का था। उसे छोटी-सी दाढ़ी थी। वह तौर-तरीकों में अति संयमी और कड़े स्वभाव का व्यक्ति था। इस अर्थ में वह अपने उत्तराधिकारियों से बिल्कुल भिन्न था। जिस तरह उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया की नीतियों को उसके उत्तराधिकारियों ने जारी रखा उसी तरह अल मंसूर की नीतियों ने उसके बाद की पीढ़ियों का मार्गदर्शन किया।

मंसूर हर तरीके से अपने कार्य में नेतृत्व करने के योग्य और सही आदमी था। अपने बड़े भाई और पूर्ववर्ती खलीफा से वह बिल्कुल भिन्न था। वह अत्याचारी न था। अपने स्वभाव से मंसूर न तो बौद्धिक था और न ही मौज-मजा में व्यस्त रहने वाला। वह एक तरह से तपस्वी-स्वभाव वाला था। सरकारी कामकाज में वह अत्यधिक दिलचस्पी लेता था और घंटों काम किया करता था। जब कि उसकी प्रजा जल-केलि और तड़क-भड़क वाले सामूहिक आनन्दोत्सवों, नर्तकियों, कविता और संगीत में व्यस्त रहती थी तो बाज की तरह जागरूक यह पतला-दुबला आदमी अपने हिसाब-किताब की जाँच में व्यस्त रहता था। वह कभी-कभी ही अपने रनिवास (हरम) जाता था और शराब छूता तक न था। राज्य का बजट संतुलित रखने में वह कट्टर विश्वास रखता था। उसकी जनता जिन आनंदों और मौज-मजों में व्यस्त रहती उसके लिए उन्हें कर देना पड़ता था। धनी और गरीब दोनों को छोटी-सी-छोटी चीजों के लिये कर देना पड़ता था। इसीलिए "उसे कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखने वाले" का नाम भी दिया गया।

पर मंसूर केवल हिसाब-किताब रखने वाला न था। वह एक सुदक्ष कूटनीतिज्ञ और राजनेता था। खिलाफत को उसकी व्यक्तिगत देन यह थी कि उसके शासन के तीस वर्षों तक साम्राज्य में पूरी शांति रही। राज-काज में उसका अत्यधिक उत्साह था। इसी कारण उसने न केवल राज्य के समक्ष आने वाले सभी खतरों को दबाया, साथ ही साम्राज्य के क्षेत्र का विस्तार भी किया। उसने कैस्पियन सागर के पूर्व में स्थित पहाड़ी प्रान्त तबरिस्तान पर विजय प्राप्त की और साथ ही भारत की सीमा पर स्थित कान्धार को भी जीता। उसकी जागरूकता और शक्ति के कारण अब्बासिद खिलाफत बढ़ी और शक्तिशाली हुई। तब से उसके पौत्र हारून अल-रशीद के, जिसकी चर्चा ऊपर आ चुकी है, सिंहासनारूढ़ होने तक अब्बासिद खिलाफत ने सर्वोच्च बुलन्दियाँ और वैभव हासिल किया और उस पर साम्राज्य में होने वाले गृह-युद्ध का प्रभाव भी न पड़ा। अब्बासिद खलीफाओं के

इतिहास के सबसे उज्ज्वल अध्याय में सबसे ऊपर हारून का नाम अंकित है पर उस इतिहास की भूमिका तैयार करने वाला मंसूर ही था।

इसके अलावा एक और उल्लेखनीय बात यह थी कि मंसूर अपनी सीमाओं से अच्छी तरह वाकिफ था। उसके बड़े भाई और प्रथम अब्बासिद खलीफा अल-सफा ने स्पेन में अब्बासिद शासन स्थापित करने की दिशा में कुछ न किया जब कि उमैय्यदों के विनाश के बाद साम्राज्य के पश्चिमी भाग में एक शून्य-सा हो गया था। मंसूर के सिंहासन पर बैठने के तुरत बाद समस्या यह आई कि स्पेन के अमीरों (प्रारंभ में स्पेन के उमैय्यद राजवंश के शासक) पर कब्जा करे। उसका प्रधान अब्द अल-रहमान था जो प्रसिद्ध उमैय्यद खलीफा हिशाम का पौत्र था। स्मरणीय है कि उमैय्यदों के शासन के अंत में जब अब्बासिदों द्वारा रक्तरंजित भोज आयोजित किया गया उससे बच कर केवल वही भाग निकला था। उसने स्पेन में शक्तिशाली उमैय्यद राज्य कायम किया। इस शक्तिशाली राजा पर मंसूर ने एक बार हमला किया और वह जब विफल हो गया तो उसने अपने सैनिकों को वापस बुला लिया और यह स्वीकार कर लिया कि स्पेन प्रान्त उसके साम्राज्य से कट गया है।

यह चालाक पर साथ ही समर्पित शासक व्यर्थ के दुःसाहसों में अपनी शक्ति बर्बाद करने वाला न था। इसके विपरीत मंसूर जानता था कि उसकी शक्ति का स्रोत कहाँ है और वह उसे सुरक्षित रखने में अभ्यस्त था। वह प्रथम और प्रायः एक मात्र अब्बासिद शासक था जो जानता था कि जो कोई खुरासान को नियन्त्रित करता है वही खिलाफत को नियंत्रित कर सकता है। न केवल यह कठोर प्रान्तीय प्रदेश था बल्कि क्रान्ति का केन्द्र भी था जहाँ के लोगों ने अब्बासिदों को शासन पर बिठाया था बल्कि साम्राज्य के सम्पूर्ण पूर्वी क्षेत्र में खुरासानी जनजातियों का, उनकी वीरता के लिए, बोलबाला था। युद्ध में साहस और अनुशासन के मामले में उन लोगों जैसा कोई भी न था। मंसूर ने मरते समय अपने पुत्र से कहा था—"खुरासान के लोगों को बराबर इज्जत देना।" यदि बाद के अब्बासिद खलीफाओं, ने जो मंसूर के प्रत्यक्ष वंशज थे, उसकी इस सलाह पर ध्यान दिया होता तो उन लोगों ने नाम मात्र के लिए नहीं बल्कि वास्तव में शासन किया होता। अपने स्वर्णिम युग के बाद अब्बासिद राजवंश किसी तरह आगे घिसटता रहा। वास्तव में मंसूर ने अपनी महत्वाकांक्षा के आधार पर राजवंश स्थापित किया था। मंसूर के बाद पैंतीस खलीफाओं ने अच्छा या बुरा शासन किया पर वे नाममात्र के ही शासक रहे। इस प्रकार अब्बासिद साम्राज्य प्रायः पाँच सौ वर्षों तक चला और इन खलीफाओं में से हर एक जफर अल-मंसूर का प्रत्यक्ष वंशज था। और, यह साम्राज्य तब तक कायम रहा, जब तक कि प्रसिद्ध मंगोल हलाकू खाँ के दुर्दान्त आक्रमणकारी सैनिकों ने बगदाद को नष्ट-भ्रष्ट न कर दिया।

मंसूर का चरित्र परस्पर विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। शत्रुओं के लिए वह क्रूर और धोखेबाज तथा मित्रों के लिए दयालु और उदार था। जो भी व्यक्ति उसकी सत्ता के लिए खतरनाक सिद्ध होता उसे वह कभी न बख्शता था। अबू मुस्लिम और अब्दुल्ला की हत्या जिन्होंने की अब्बासिदों को सत्ता में,लाने और उन्हें प्रतिष्ठा का पद दिलाने में बड़ी सहायता की थी, तथा मंसूर द्वारा चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंशजों के साथ निर्दयता का व्यवहार अब्बासिद इतिहास के सबसे काले अध्याय हैं। इतिहासकार म्यूर लिखता है—"यदि मंसूर के आकलन में हम उसके चरित्र के इस विश्वासघाती पक्ष पर ध्यान न दें तो उसका चरित्र बहुत ही भिन्न सिद्ध होगा। एक मुसलमान के रूप में उसका जीवन धार्मिक और उदाहरण योग्य था। उसके दरबार में कोई भी अपवित्र चीज न देखी जाती थी।" इस निरंकुश सम्राट ने, जो अधिकारों के मामले में इतना दृढ़ और कठोर था, अपनी प्रजा के समक्ष उदाहरण रखा कि वह स्थापित न्यायालयों के नियमों का कड़ाई के साथ पालन करे। जब कुछ ऊँट के मालिकों ने काजी के सामने उसके विरुद्ध शिकायत की और काजी की ओर से उसे बुलाया गया तो मंसूर को उसके समक्ष हाजिर होने में कुछ भी शर्म महसूस न हुई। यद्यपि काजी का फैसला उसके पक्ष में न हुआ फिर भी उसने काजी के निर्भीक और निष्पक्ष फैसले के लिए उसकी प्रशंसा की, उसे पुरस्कार दिया। एक राजनीतिज्ञ, राजनेता और शासक के रूप में वह अपने समय में अद्वितीय था। वह अपना समय और शक्ति अपनी प्रजा और उनके निवास स्थानों के विकास में लगाता था। उसके मन की शक्ति और क्षमता अपरिमित थी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वह राज के काम-काज में मुस्तैदी के साथ लगा रहता था। वह रोज मध्याह्न के पूर्व का समय "आदेश जारी करने, अफसरों को नियुक्त और उन्हें बर्खास्त करने, साम्राज्य के बाहर जाने वाले मार्गों और उसकी सीमाओं तथा सड़कों की सुरक्षा पर विचार करने, अपनी प्रजा तथा उनके निवासस्थानों के विकास की व्यवस्था करने तथा राज्य की प्राप्तियों (आय) और उनके व्ययन आदि की जाँच के संबंध में लगाता था।"[५] तीसरे पहर का समय वह अपने परिवार और बच्चों के साथ बिताता था जिन्हें वह बहुत प्यार करता था। शाम की नमाज के बाद वह दिन में बाहर जाने वाले सरकारी पत्रों को सुनता और अपने मंत्रियों से परामर्श करता। जब रात का एक तिहाई भाग बीत जाता तो वह सोने जाता। वह कम सोता और सुबह की नमाज के लिए जल्द ही उठ जाता। वह अपनी फौजों का खुद निरीक्षण करता जिन्हें शस्त्रास्त्रों से खूब अच्छी तरह सज्जित किया गया था। ऐसा था द्वितीय अब्बासिद खलीफा मंसूर जो अनेक अर्थों में नये राज्य का संस्थापक था।

●

---

५. इब्न अल अथीर, भाग ६, पृ० १७।

अध्याय १२

अब्बासिदों का युग

मुस्लिम इतिहास के अन्य राजवंशों की भाँति अब्बासिद राजवंश ने भी अपनी स्थापना के तुरत बाद राजनीतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में अत्यधिक शानदार युग आरम्भ किया। बगदाद की खिलाफत का, जिसे अल-सफा और अल-मंसूर ने स्थापित किया, स्वर्णिम युग तीसरे खलीफा अल-महदी और नवें खलीफा अल-वाथिक तथा खासकर हारून-अल रशीद और उसके विख्यात पुत्र अल-मामून के शासन में आया। मुख्यतः हारून और मामून जैसे सुबुद्धि-सम्पन्न और तेज खलीफाओं के कारण ही अब्बासिद राजवंश ने जनता की दृष्टि में आदर्श प्रसिद्धि पाई। इसी वजह से अब्बासिद राजवंश इस्लाम के इतिहास में सर्वाधिक विख्यात हुआ। इतिहासकार अल थालिवी ने लिखा है अब्बासिद खलीफाओं के युग का "प्रारंभकर्त्ता" मंसूर था, "मध्यवर्त्ती" अल-मामून और "समाप्तिकर्त्ता" अल-मुतादिद (सन् ८९२-९०२) था। यह वास्तव में ऐतिहासिक तथ्य है। खलीफा अल-वाथिक के बाद अब्बासिद राजवंश के पतन का मार्ग शुरू हुआ जिसका अंत उस वंश के सैंतीसवें खलीफा अल-मुस्तसिम से हुआ। अंत में सन् १२५८ में मंगोलों द्वारा उस वंश का विनाश हुआ। अब्बासिद खलीफाओं ने अपने स्वर्णयुग में जो शक्ति, प्रतिष्ठा और प्रगति हासिल की उसका अंदाज हमें उनके वैदेशिक सम्बन्धों, उनकी राजधानी बगदाद में उनके दरबार की सज-धज और कुलीन तंत्रीय जीवन के अध्ययन से हो सकता है। अब्बासिद राजवंश के तेजस्वी खलीफाओं के संरक्षण में जो अद्वितीय बौद्धिक जागरण हुआ उससे भी उनके काल में हुई प्रगति का पता चलता है।

अल-महदी (सन् ७७५-८५)

सन् ७७५ में अल-मंसूर का उत्तराधिकारी उसका पुत्र मुहम्मद हुआ जिसका उपनाम महदी था। नया खलीफा अपने मातृ-पक्ष के यमन के पुराने हिमाराई राजाओं का वंशज था। महदी की नीति अपने पिता की नीति से बिल्कुल भिन्न थी। वह स्वभावतः मानवीय और उदार था। उसने अपने पिता के शासन की निर्दयता और कठोरता को दूर करने का प्रयास किया। उसके पिता अल-मंसूर ने एक महान पूर्वी सम्राट की शान-ओ-शौकत के बावजूद अपनी व्यक्तिगत मितव्ययिता के कारण राजकीय कोषागार में काफी धन रख छोड़ा था। फलतः महदी को

अपने दरबार के लोगों के इस दावे को पूरा करने में सफलता मिली कि रहन-सहन के तरीकों को शानदार बनाया जाय। पर इसके अलावा उसने सड़कों का जाल बिछा कर और डाक व्यवस्था सुधार कर साम्राज्य का भी बड़ा कल्याण किया। अपनी अनुकूल अवस्थिति के कारण उसके शासन में बगदाद भारत के साथ व्यापार का केन्द्र बन गया। पर अल-महदी ने देशी व्यापार को संरक्षण देने की भी बुद्धिमानी की। यही नहीं, संगीत, कविता, साहित्य और दर्शन का रूप भी उसके शासन में सुधरा।

सीरिया और खुरासान में विद्रोह

महदी के शासन में उमैय्यद खलीफा मारवान द्वितीय के एक पुत्र ने सीरिया में क्रांति कराने की कोशिश की। उसे पराजित कर दिया गया और बन्दी बना लिया। महदी ने उसे कुछ समय तक बन्दी रखा और फिर स्वतंत्र कर दिया। साथ ही उसे निवृत्ति-वेतन (पेंशन) की एक अच्छी राशि स्वीकृत की। मारवान द्वितीय की विधवा माजुना को महदी की पत्नी खैज़ुरान ने रहने के लिए महल में कमरे दे दिये। वहाँ शाही परिवार के सभी सदस्य उसके साथ सहृदयता और दया का व्यवहार करते। कहा जाता है कि रानी खैज़ुरान का अपने पति पर बड़ा प्रभाव था। फलतः उसके सम्मेलन-कक्ष में दरबारियों, भद्र लोगों और पद तथा संरक्षण प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों की भीड़ जमा रहती थी।

महदी के शासन में पाखंडी "खुरासान का घूंघट वाला पैगम्बर" हाशिम बिन हकीम प्रकट हुआ। खुरासान में गुटों और सम्प्रदायों की बराबर भरमार रहती आई है। खासकर उस युग की उपद्रवग्रस्त स्थिति में गुटों और सम्प्रदायों की संख्या और भी ज्यादा थी। हाशिम एक छोटा, भद्दा-सा आदमी था। इसीलिए, अपने भद्देपन को छिपाने के लिए वह सुनहले रंग की घूंघट डाले रहता था। जैसा कि पहले अध्याय में बतलाया गया है, इसी कारण उसे मोकान्ना "घूंघट वाला" उपनाम दिया गया था। वह अपने अनुयायियों को उपदेश करता था कि खुदा समय-समय पर अवतार लिया करता है। उसने इस सम्बन्ध में आदमनोआ, अबू मुस्लिम और खुद अपना नाम लिया। उसका यह कहना भी था धर्म विश्वास में निहित है, काम में नहीं। कुछ समय तक उसने शाही सेना का सफलता के साथ मुकाबला किया पर अंत में उसे पराजित कर दिया गया और किश नगर में मार डाला गया। हाशिम बिन हाकिम या "मोकन्ना" के अनुयायियों को मोबायजी या "सफेद वस्त्र वाले" कहा जाता था। फिर उसके तुरत बाद कैस्पियन सागर के पूर्व जुरजान में एक नया सम्प्रदाय मुहामायर या "लाल वस्त्र वाले" प्रकट हुआ। उनके सिद्धान्त भी कुछ-कुछ पागलपन से भरे हुए एवं अनैतिक थे। उनसे भी समस्या उत्पन्न हुई। पर उनको बिना किसी खास कठिनाई के दबा दिया गया।

जिन्दीकियों का दमन

माजदाक नामक व्यक्ति का पुराना शून्यवादी साम्यवाद, अनेक लोगों में लोकप्रिय हो रहा था। माजदाक ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी में हुआ था जो जंगली किस्म के एवं पूर्णतः कानून-विरोधी साम्यवाद का प्रचार करता था। उसका सम्प्रदाय फारस के राजा अनुशीरवान द्वारा अस्थायी रूप से कुचल दिया गया था। पर वह अन्दोलन पूरी तरह समाप्त न हुआ था। मेनेस या मनी[1], जो बाद में हुआ; एक दार्शनिक था। महदी के शासन में माजदाक का शून्यवाद, जो मेनेस के दर्शन से बहुत-कुछ मिश्रित था, खुरासान में फैलने लगा। उसका प्रसार पश्चिमी एशिया और ईराक के हिस्सों में भी होने लगा। इस दर्शन ने समाज के बंधन ढीले कर दिये, अधिकारियों का शासन कमजोर बना दिया और आदमी के मनोविकारों को खुली छूट दे दी। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को जिंदक कहा जाता था। उन लोगों के खिलाफ एक शिकायत यह थी कि वे सार्वजनिक मार्गों (सड़कों) से बच्चों को चुरा लिया करते थे। यह बात सच हो या नहीं; पर इसमें कोई शक नहीं कि जिंदकों ने सामाजिक नियमों और धार्मिक विश्वासों को आघात पहुँचाया। महदी ने इन शून्यवादियों के प्रति कोई दया न दिखलाई। उन्हें निर्दयता के साथ ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारा गया। उन पर नैतिकता, शांति-व्यवस्था और सरकार के शत्रु के रूप में प्रतिबंध लगा दिया गया।

बैजेन्टाइनों के साथ संघर्ष

अरब खिलाफत और बैजेन्टाइनों के बीच एक शताब्दी पुराना युद्ध अल-महदी ने फिर शुरू किया। पर उन लोगों के बीच मुठभेड़ कम ही होती थीं और उनमें किसी एक पक्ष द्वारा सफलता भी कम ही मिलती थी। अरब राज्य में जो आंतरिक विग्रह हुए और जिनके कारण उनकी राजधानी सुदूर बगदाद में आ गई उससे बैजेन्टाइन शासक कान्स्टैंटाइन पंचम (सन् ७४१-७५) के लिए संभव हो सका कि वह अपने राज्य की सीमा को और पूर्व की ओर एशिया माइनर और आर्मेनिया की सम्पूर्ण सीमा तक बढ़ा लें। मुसलमानों के शासन की सीमाओं की किलेबन्दी को, जो सीरिया से आर्मेनिया तक फैली हुई थी, उस समय पीछे हटा लेना पड़ा जब विरोधी दिशा से बैजेन्टाइनों की सेना आगे बढ़ी। महदी ने, जो बैजेन्टाइनों के विरुद्ध "धार्मिक युद्ध" शुरू करने वाला पहला अब्बासिद खलीफा था, खुद शत्रु की राजधानी के विरुद्ध एक शानदार और सफल आक्रमण शुरू किया। हारून, ने जो उसका जवान बेटा और भावी खलीफा था, अभियान का नेतृत्व किया। सन् ७८२ में, अरब फौजें बैजेन्टाइनों की राजधानी कान्स्टैंटीनोपुल नहीं तो बौसफोरस तक

१. अँग्रेजी पद मैनीशियन मेनेस से निकला है।

जिन्दीकियों का दमन

माजदाक नामक व्यक्ति का पुराना शून्यवादी साम्यवाद, अनेक लोगों में लोकप्रिय हो रहा था। माजदाक ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी में हुआ था जो जंगली किस्म के एवं पूर्णतः कानून-विरोधी साम्यवाद का प्रचार करता था। उसका सम्प्रदाय फारस के राजा अनुशीरवान द्वारा अस्थायी रूप से कुचल दिया गया था। पर वह अन्दोलन पूरी तरह समाप्त न हुआ था। मेनेस या मनी[1], जो वाद में हुआ, एक दार्शनिक था। महदी के शासन में माजदाक का शून्य-वाद, जो मेनेस के दर्शन से बहुत-कुछ मिश्रित था, खुरासान में फैलने लगा। उसका प्रसार पश्चिमी एशिया और ईराक के हिस्सों में भी होने लगा। इस दर्शन ने समाज के बंधन ढीले कर दिये, अधिकारियों का शासन कमजोर बना दिया और आदमी के मनोविकारों को खुली छूट दे दी। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को जिदक कहा जाता था। उन लोगों के खिलाफ एक शिकायत यह थी कि वे सार्वजनिक मार्गों (सड़कों) से बच्चों को चुरा लिया करते थे। यह बात सच हो या नहीं; पर इसमें कोई शक नहीं कि जिदकों ने सामाजिक नियमों और धार्मिक विश्वासों को आघात पहुँचाया। महदी ने इन शून्यवादियों के प्रति कोई दया न दिखलाई। उन्हें निर्दयता के साथ ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारा गया। उन पर नैतिकता, शांति-व्यवस्था और सरकार के शत्रु के रूप में प्रतिबंध लगा दिया गया।

बैजेन्टाइनों के साथ संघर्ष

अरब खिलाफत और बैजेन्टाइनों के बीच एक शताब्दी पुराना युद्ध अल-महदी ने फिर शुरू किया। पर उन लोगों के बीच मुठभेड़ कम ही होती थीं और उनमें किसी एक पक्ष द्वारा सफलता भी कम ही मिलती थी। अरब राज्य में जो आंतरिक विग्रह हुए और जिनके कारण उनकी राजधानी सुदूर बगदाद में आ गई उससे बैजेन्टाइन शासक कान्स्टैंटाइन पंचम (सन् ७४१-७५) के लिए संभव हो सका कि वह अपने राज्य की सीमा को और पूर्व की ओर एशिया माइनर और आर्मेनिया की सम्पूर्ण सीमा तक बढ़ा लें। मुसलमानों के शासन की सीमाओं की किलेबन्दी को, जो सीरिया से आर्मेनिया तक फैली हुई थी, उस समय पीछे हटा लेना पड़ा जब विरोधी दिशा से बैजेन्टाइनों की सेना आगे बढ़ी। महदी ने, जो बैजेन्टाइनों के विरुद्ध "धार्मिक युद्ध" शुरू करने वाला पहला अब्बासिद खलीफा था, खुद शत्रु की राजधानी के विरुद्ध एक शानदार और सफल आक्रमण शुरू किया। हारून, ने जो उसका जवान बेटा और भावी खलीफा था, अभियान का नेतृत्व किया। सन् ७८२ में, अरब फौजें बैजेन्टाइनों की राजधानी कान्स्टैंटीनोपुल नहीं तो बौसफोरस तक

१. अँग्रेजी पद मैनीशियन मेनेस से निकला है।

तो जरूर ही पहुँच गई। ईरान पर, जो अपने पुत्र कान्स्टैंटाइन षष्ठ के नाम पर क्षेत्र का शासन संभाले हुए था, जोर डाला गया कि वह शांति के लिए समझौता करे। इसके लिए शर्त रखी गई कि वह विशेष रूप से असम्मानजनक संधि करे जिसके लिए उसे अर्द्ध-वार्षिक किस्तों में ७०,००० से ९०,००० दिनार तक कर के रूप में देना था। इस अभियान के दौरान हारून ने इतनी विशिष्टता दिखलाई कि उसके पिता ने उसे अल-रशीद (सही रास्ते पर चलने वाला) की आदरणीय उपाधि दी और उसके बड़े भाई मूसा अल-हादी के बाद भावी खलीफा पद के लिए द्वितीय उत्तराधिकारी घोषित किया। यह अंतिम समय सिद्ध हुआ जब एक विरोधी अरब सेना एक अभियानयुक्त (बैजेन्टाइनों की) राजधानी के प्राचीर के बाहर विजयी हो कर खड़ी थी। इसको मिलाकर बैजेन्टाइयन के विरुद्ध चार भिन्न अभियान किये गये। इनमें से प्रथम तीन अभियान उमैय्यदों के अधीन उस राजवंश के संस्थापक मुआबिया और एक और खलीफा सुलेमान ने किये। इन चार अभियानों में से केवल दो में विजैन्टिम नगर की वास्तविक घेरेबन्दी की गई, एक बार सन् ६७९ में और दूसरी बार सन् ७१६ में मसलमा ने। तुर्की विवरणों में नगर की घेरेबन्दियों की संख्या सात से नौ तक बतलाई गई है जिनमें से दो हारून द्वारा की गई बतलाई गई हैं। अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स) और अन्य अरबी रूमानी कहानियों में कान्स्टैंटीनोपुल के खिलाफ मुस्लिम अभियानों के विवरणों को बहुत अतिरंजित रूप में प्रस्तुत किया गया है। धर्मयुद्धों के समय इस अतिरंजित रूप का और विकास किया गया है।

सन् ७८५ में अल-महदी ने पूर्व की ओर यात्रा की पर मसादान नामक स्थान में उसकी मृत्यु हो गई। वहाँ वह शिकार के लिए ठहर गया था जिसका वह बहुत शौकीन था। महदी की जब मृत्यु हुई तो वह तैंतालीस साल का था। उसने दस वर्ष तक शासन किया। वह लंबा, सुन्दर और सुगठित शरीर का था। वह देखने में सौम्य था।

महदी का आकलन

महदी का शासन समृद्धिपूर्ण था। उसकी अवधि में साम्राज्य के लिए बहुत कुछ किया गया। कृषि और वाणिज्य में खूब उन्नति हुई। राज्य की आमदनी बढ़ी और लोगों का रहन-सहन उन्नत हुआ। राज्य की सत्ता को सुदूर पूर्व में भी मान्यता मिली। चीन के सम्राट, तिब्बत के राजा और अनेक भारतीय राजाओं ने खलीफा के साथ संधियाँ कीं। अपनी प्रजा के बौद्धिक जीवन का खलीफा स्वयं पर्यवेक्षण करता था। शुद्ध पारसी धर्म नहीं बल्कि मेनेस का जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, धर्म अभी भी खास कर ईराक में नव इस्लाम धर्मान्तरितों में

जो इस्लाम के कड़े नियमों से पूरी तरह सन्तुष्ट न थे, बड़ा प्रभाव रखता था। मैनेग का धर्म प्रायः सभी शिक्षित लोगों का धर्म हो गया था। खुद महदी के पिता ने इसी कारण लेखक अब्दुल्ला इब्न-अल-मुकफ्फा को मौत की सजा दे दी थी। इब्न अल मुकफ्फा, जिसका फारसी नाम रोजबिह था, एक कर-संग्रहकर्त्ता का पुत्र था जो प्रतापी उमैय्यद गवर्नर हज्जाज इब्न-युसुफ की सेवा में था। इब्न अल मुकफ्फा ने प्रथम दो अब्बासिद खलीफाओं के चाचा अली इब्न ईसा का समर्थक होने के बाद इस्लाम धर्म अपनाया था। उसने फारसी इतिहास के मध्य फारसी विवरण खुदायामे का अनुवाद अरबी भाषा में किया था। साथ ही उसने भारतीय कथा-पुस्तकों के फारसी अनुवाद कलीमा और दिमनाह का भी अरबी में अनुवाद किया था। उसने ईरानी शैली में राजनीतिक बुद्धिमत्ता पर कुछ निबंध तैयार किये थे। कहा जाता है कि मंसूर उससे इस कारण क्रुद्ध हो गया कि उसने उसके सचिव के रूप में खलीफा के चाचा अबू अल-अब्बास अब्दुला के लिए राज्य द्वारा क्षमा के आदेश का अस्पष्ट अनुवाद किया था जिसके अनेक अर्थ लगाये जा सकते थे। मंसूर के पुत्र महदी के अधीन कवि सालिह अब्द अल-कुद्दूस का ऐसा ही भाग्य हुआ यानी उसे भी मौत की सजा मिली। उसका अपराध था कि उसने फारसियों के द्वैतवाद का खुलेआम प्रचार किया था। वह इस कारण धार्मिक क्षेत्रों में उत्पन्न शत्रुता से बचने के लिए दमिश्क भाग गया, पर महदी ने उसे वापस बुलवा लिया और सन् ७८३ में उसे मौत की सजा दे दी। उसी वर्ष अन्धे कवि बशर इब्न-बर्द को भी मौत दी गई क्योंकि उसने अपनी कविताओं में अपने पूर्वजों की अग्नि-पूजा का खुलेआम प्रचार किया था। साथ ही इब्न-बर्द एक मिथ्या निन्दक भी था जिसके व्यंग्यों से खलीफ़ा नाखुश था। दूसरी महदी ने विधर्मियों के विरुद्ध जांच का काम एक विशेष पदाधिकारी (आरिफ) को सौंपा। कहा जाता है कि यह पदाधिकारी सर्वप्रथम इस कार्य में तीन वर्ष तक व्यस्त रहा। उसके उत्तराधिकारी अल-हादी के अधीन जांच का यह कार्य इस्लाम धर्म के बौद्धिक दायरे के अधीन सैद्धान्तिक मतों के विरुद्ध भी शुरू किया गया। ये मत यद्यपि निर्दोष से थे पर किसी-न-किसी कारण सरकार को नापसंद थे।

अल-हादी (सन् ७८५-७८६)

अल महदी के दस वर्षों के शासन के बाद सन् ७८५ में उसका पुत्र मूसा खलीफा बना। उसका शाही नाम अल-हादी था। मूसा जब सिंहासनारूढ़ हुआ तो वह २४ वर्ष का था। उसने दो वर्ष से भी कम समय तक शासन किया। उसके बारे में कहा जाता है कि वह हठीला, जिद्दी और निर्दय प्रकृति का व्यक्ति था, पर साथ ही वह बहादुर, शक्तिशाली, उदार और साहित्य के प्रति अनुरक्त था। अल-हादी ने अपनी माँ के प्रभाव का विरोध किया। उसकी माँ खेजुरान, जो बर्बर

जनजाति की मुक्त की गई दास थी, अपने पति के शासन में राजकाज में बड़ी दिलचस्पी लेती थी। उसका अपने पति पर बड़ा प्रभाव और एक प्रकार से प्रभुत्व-सा था। अल-हादी ने अपने भाई हारून की निष्ठा भी पसंद न की। यहाँ यह स्मरणीय है कि अल-महदी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मूसा (अल-हादी) के बाद हारून को खलीफा मनोनीत किया था। उसने संक्षिप्त शासन-काल में इस बात के लिए बड़ी कोशिश की कि हारून के बदले उसका अपना पुत्र जाफर खलीफा बने। इस उद्देश्य से उसने हारून के प्रमुख सलाहकार और राज्य के मंत्री याहिया बिन खालिद बरमाक और अपने भाई के अनेक नौकरों को, जिन्हें उसने अपनी योजना का विरोधी समझा, जेल में डाल दिया। इस बात को लेकर मूसा (अल-हादी) और उसकी माँ खेजुरान के बीच भी मतभेद हो गया। खेजुरान अल हादी के शासन पर भी वही प्रभाव रखना चाहती थी जो वह अपने पति अल-महदी के शासन पर रखती थी। अल-हादी ने इस हस्तक्षेप को पसंद न किया। उसने उन दरबारियों और सरदारों को चेतावनी दी जो राजमाता के स्वागत में अक्सर उपस्थित रहते थे। ऐसा करने वालों पर उसने अपनी नापसंदगी जाहिर की। इस प्रकार दरबार में दो दल हो गए। इनमें से एक दल हारून और राजमाता के विरुद्ध था। हारून ने हर प्रकार से कोशिश की कि वह मनमानी इच्छा वाले अपने भाई के साथ अच्छे संबंध कायम करे। अंत में राज्य के मंत्री और अपने सलाहकार याहिया की सलाह पर हारून दरबार छोड़ कर अन्यत्र चला गया।

मदीना के गवर्नर ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के पुत्र हुसेन के सदस्यों के साथ शराबखोरी के गलत आरोप को लेकर दुर्व्यवहार किया। इस पर हुसैन बिन अली इब्न हसन तृतीय (हजरत हसन के परपोता) ने हुसैन के अनेकानेक समर्थकों के समर्थन से मदीना में विद्रोह कर दिया। वहाँ से वह मक्का चला गया जहाँ उस पर हमला किया गया। उसके चाचा और मुहम्मद के भाई इद्रीस बिन अब्दुल्ला और इब्राहीम मिस्र में मारिटैनिया में भाग जाने में सफल हो गए। वहाँ उन्हें बर्बर जनजाति का समर्थन प्राप्त हो गया जिससे उन्होंने प्रसिद्ध इद्रीस राजवंश स्थापित किया।

मूसा (अल-हादी) ने इस बात की व्यर्थ कोशिश की कि वह हारून को, जिसे अपनी माँ राजमाता खेजुरान का समर्थन प्राप्त था, सत्ता के लिए अपना उत्तराधिकार छोड़ दे। इस कारण मोसुल के निकट अपने रनिवास (हरम) में १५ सितम्बर सन् ७८६ को उसकी हत्या कर दी गयी। निःसंदेह इसके पीछे राजमाता खेजुरान का हाथ था। इतनी जल्दी ही वे बुराइयाँ सामने आ गईं जिनके चलते अब्बासिद राजवंश का अंततः विनाश हो गया।

मूसा अपने पिता अल-महदी की भांति लम्बा और गुलाबी रंग का स्वस्थ व्यक्ति था। उसे सात लड़के और दो लड़कियाँ थीं। लड़कियों में से एक उम्मा-ईसा का बाद में हारून के पुत्र मामून के साथ विवाह हुआ।

हारून-अल रशीद (सन् ७८६-८०९ ई०)

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, सन् ७८५ में खलीफा अल महदी की मृत्यु हुई थी। अपने बड़े भाई मूसा अल-हादी के संक्षिप्त शासन के बाद हारून अल-रशीद सन् ७८६ में खलीफा हुआ। अब्बासिद राजवंश के सच्चे संस्थापक अल-मंसूर की मृत्यु के दस वर्ष के भीतर ही राजवंश एकाएक अपरिपक्व स्थिति से परिपक्व स्थिति में जा पहुँचा। मंसूर के पौत्र हारून-अल रशीद के साथ ही **अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स)** का युग शुरू हो गया। यदि घटनाओं की गति क्षिप्र और तीव्र थी और तत्समय की परिपक्व स्थिति अथवा ग्रीष्म ऋतु में आने वाले तूफान के चिह्न थे तो उन्हें न तो किसी ने देखा और न किसी ने उनकी परवा की। रोमन साम्राज्य में समृद्धि के बाद किस प्रकार अधःपतन आया उस संबंध में लोगों ने कोई शिक्षा न ली और सब कुछ भूल गए। अब्बासिदों की राजधानी बगदाद में शान-ओ-शौकत और मौज-मजे की जिन्दगी मनाई जाने लगी। उन लोगों ने आने वाले कल के बारे में कुछ भी सोच-विचार न किया।

हारून के तेईस वर्ष के शासन में अब्बासिद राजवंश अपनी गरिमा के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया।[2] चूंकि इस अवधि में बड़े पैमाने पर लोगों के लिए कल्याण-कार्य हुए और साथ ही राज्य का अभूतपूर्व उत्कर्ष हुआ, बाद की पीढ़ियाँ इस बात के लिए उत्सुक हुईं कि खलीफा हारून को अल रशीद के शाही नाम से पुकारा जाय तथा उसे आदर्श शासक माना जाय जिसके लिए वह अपने समय की अनुकूल स्थितियों के कारण पूरा हकदार था। हारून के शासन के साथ एशिया में सारासेन (अरब) शासन की सर्वाधिक उज्ज्वल अवधि शुरू हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स) की विश्व-प्रसिद्ध कहानियों में इस महत्वपूर्ण खलीफा (हारून) के प्रति विशेष आकर्षण है। उन कहानियों में वर्णन आता है कि हारून प्रजा के प्रति अन्याय दूर करने और पीड़ितों और अनाथों की सहायता के लिए रात में बगदाद की सड़कों पर भेष बदल कर घूमता था। अपनी तमाम रूमानी चमक-दमक से विहीन होने पर भी हारून आने वाली पीढ़ियों के लिए निःसंदेह संसार के महानतम शासकों की कोटि में गिने जाने के योग्य है और श्रद्धा का पात्र है। वह स्वभाव और प्रशिक्षण से सैनिक था, अतः उसे राज-

१. देखिए अमीडीसिया, हारून-अल-रशीद, कैलिफ औफ बगदाद, न्यूयार्क १९३१; टू क्वीन्स औफ बगदाद, शिकागो, १९४६।

महल में नहीं; बाहर ही पसन्द था। वह अपने साम्राज्य के सभी क्षेत्रों में घूमता था ताकि अन्याय का दमन किया जा सके और प्रजा की सच्ची स्थिति जानी जा सके। यही नहीं; वह साम्राज्य की सीमाओं और बाहर जाने वाले भागों का व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण करता था और सरकारी काम-काज में खुद तकलीफ और कष्ट उठाने से कभी न बचाना चाहता था। उसके विशाल राज्य में व्यापारियों, व्यवसायियों, विद्वानों और तीर्थयात्रियों को सभी प्रकार के खतरों से मुक्ति मिली हुई थी। इससे उसके प्रशासन की उत्कृष्टता और शक्ति का परिचय मिलता है। अपने शासन में उसने मस्जिदों, महाविद्यालयों, विद्यालयों, अस्पतालों, दवाखानों, ऊँट के कारवाँ के सरायों, सड़कों, पुलों और नहर-क्षेत्रों को अपने दरबार के कर्मचारियों से भर दिया। इसी से प्रकट है कि अपनी प्रजा के कल्याण में उसकी कितनी सक्रिय दिलचस्पी थी। जहाँ तक कला और साहित्य के संरक्षण का प्रश्न है, हारून अपने पुत्र से, जो बाद में खलीफा हुआ, पीछे पड़ता है, पर चरित्र की शक्ति और बुद्धि की गौरवशालिता का प्रश्न है, हारून का मुकाबला कर सकने वाला कोई शासक नहीं।

बरमाकिदों का प्रभाव

इसके साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि हारून के शासन की प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि अधिकांशतः इस कारण है कि उसने अपने शासन के प्रथम सत्रह वर्षों तक अपने साम्राज्य की सरकार का प्रबंध जिन व्यक्तियों के हाथों में छोड़ा था, वे बुद्धिमान और योग्य थे। अपने शासन के प्रथम वर्षों में हारून ने राज-काज करीब पूरी तरह अपने वजीरों के हाथों में सौंप दिया। उस अवधि में वजीर का पद बहुत समय तक वंशक्रमानुगत था। वह बरमाकिदों का परिवार था। वे लोग बल्ख नामक स्थान में बौद्ध मठ नौबहार के उच्च पुरोहित परिवार के वंशज थे। बाद के एक फारसी विवरण के अनुसार स्वाभिमान के चलते वे लोग अपने बारे में अग्नि-पुरोहित होने का दावा करते थे। अबू सलामा की हत्या के बाद प्रथम अब्बासिद खलीफा अल-सफा ने खालिद इब्न बरमाक को अपना वजीर या प्रथम सचिव (कातिब) नामजद किया। इस संबंध में पिछले अध्याय में जिक्र किया जा चुका है। अल-सफा के बाद खलीफा अल-मंसूर के शासन-काल में भी खालिद के अधीन ही वित्त विभाग रहा। इसके अलावा उसने बगदाद के, जो बाद में राजधानी हुई, निर्माण में भी विशिष्ट भूमिका अदा की। पर उसकी गुण-गाथा वहीं खत्म नहीं होती। वह एक योग्य सैनिक भी था। वह न केवल अपनी युवावस्था में अबू-मुस्लिम और कुतयबाह के अधीन, जिनका जिक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है, उमैय्यदों के साथ लड़ा था, वरन् सन् ७६५ से ७६९ तक तबारिस्तान के गवर्नर के रूप में उसने पर्वत डेमावेंद पर अंत में दबे हुए

स्वतंत्र राज्य पर कब्जा कर उसे साम्राज्य में मिला लिया। उसका पराक्रम उसकी वृद्धावस्था तक कायम रहा जब उसने बैजेन्टाइनों के विरुद्ध युद्धों में भी हिस्सा लिया। इन सब कामों के सिलसिले में, सभी राज्य पदाधिकारियों की उसे धन-संग्रह करने का अवसर मिला, यह स्वाभाविक ही था। फलतः खलीफा अल-मंसूर ने, अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व, उससे प्रायः तीन करोड़ दिरहाम वसूल किये और तब उसे मोसुल का गवर्नर बना दिया। ऐसा इसलिए किया गया कि मोसुल उपद्रवी कुर्दों के केन्द्रस्थल के निकट था, इसलिए यह विशेष रूप से एक महत्वपूर्ण पद था। इसके साथ-ही-साथ उसके पुत्र याहिया को अजरबैजान का गवर्नर बनाया गया। अल-महदी के अधीन उसे बगदाद वापस बुला लिया गया। सन् ७७७ में जब हारून आर्मेनिया और अजरबैजान के साथ पश्चिमी प्रान्तों का गवर्नर बनाया गया, याहिया को उच्च न्यायालय का प्रमुख बनाया गया।

खलीफाओं की तीन पीढ़ियों के प्रति सर्वाधिक निष्ठावान और विश्वासी बरमाकिद परिवार के प्रति हारून का व्यवहार पहले अत्यधिक मृदु और बाद में अत्यधिक कठोर हो गया। उसका वजीर याहिदा था क्योंकि अपने दादा अल-मंसूर की भाँति हारून सरकार चलाने में सामान्यतः फारसियों पर और विशेषतः बरमाकिद परिवार पर निर्भर करता था। किसी भी खलीफा का इतना निष्ठावान समर्थक न था जितना खालिद का पुत्र याहिया हारून के प्रति था। उसने खलीफा अल-हादी द्वारा हारून के बजाय अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने की योजना का दृढ़तापूर्वक विरोध किया था। उसकी इस अवज्ञा के कारण अल हादी ने उसे जेल तक में डाल दिया था। बरमाकिदों के प्रति खलीफा हारून का ऋण यहीं खत्म नहीं होता। याहिया के एक पुत्र फदल ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के अनुयायियों की चेष्टा को विफल कर दिया कि तबारिस्तान को साम्राज्य से काट कर अलग कर दिया जाय। इसकी कृतज्ञता-स्वरूप हारून ने खलीफा पद पर आसीन होते ही याहिया की पदोन्नति कर उसे सीधे अपना वजीर बना लिया। अपने पुत्रों फदल और जफर के साथ याहिया ने असीमित अधिकारों के साथ सन् ७८६ से ८०३ तक शासन किया, यद्यपि अपने शासन के प्रथम वर्षों में खलीफा की माँ ने उसे अपने बड़े पर्यवेक्षण के अधीन रखा। याहिया का द्वितीय पुत्र जफर असाधारण रूप से खूबसूरत युवक था। उसकी आँखें श्यामवर्ण की थीं और गर्दन लंबी। वह खलीफा हारून का बहुत ही घनिष्ठ मित्र हो गया। जफर और खलीफा हारून पूरी तरह अभिन्न से हो गये थे। खाली वक्त वे दोनों साथ-साथ गुजारते थे। ऐसे समय उन दोनों को महल के बागीचों में एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले या कविता-पाठ सुनते देखा जाता था। जब याहिया इतना बूढ़ा हो गया कि वजीर का पद संभालने लायक न रहा तो यह कोई आश्चर्यजनक बात न थी कि हारून ने इस पद पर जफर को नियुक्त

किया। इसके कारण दोनों के बीच और निकटता हो गई और अपने प्रिय (जफर) के लिए हारून का भाव और गहरा हो गया। अब हारून चाहने लगा कि जफर बराबर उसके समीप रहे। पर इस कारण समस्यायें भी उठीं। जफर को उसके संरक्षक हारून ने इतना आदर-सम्मान और धन दिया कि राजधानी में उन लोगों के संबंध को लेकर तरह-तरह की निंदात्मक बातें चलने लगीं।

दूसरी ओर जफर के भाई फदल ने, पूर्वी प्रान्तों के गवर्नर के रूप में अपने फौजी करतबों और शान्ति के कार्यों के चलते बड़ी प्रसिद्धि हासिल की। जफर खलीफा के प्रिय पात्र के रूप में राजधानी बगदाद में ही रहा। उसे जो प्रान्त शासन के लिए मिले उनका शासन उसने अपने सहायकों को सौंप दिया ताकि उन प्रान्तों का शोषण किया जा सके और उससे धन हासिल किया जाय। पर लगता है कि खलीफा हारून जफर के साथ दोस्ती से ऊबने लगा था। विवरणों में रनिवास (हरम) की एक घटना का जिक्र मिलता है जिसके कारण बाद में खलीफा जफर से अंतिमरूप से नाखुश हो गया। खलीफा ने जफर से कहा कि वह उसकी बहन अब्बासा से नाममात्र के लिए विवाह करे। कहा जाता है कि खलीफा ने सन् ७९० में अपनी माँ की मृत्यु के बाद प्रत्यक्ष रूप से जफर से वह राज्य की मुहर छीन ली जिसका वह उस समय तक प्रभारी था और उसके अधीन राज-काज का एक हिस्सा उसके विरोधी और वजीर पद के लिए उत्तराधिकारी फदल इब्न-रबी के सुपुर्द कर दिया। हारून खुद मक्का की तीर्थ-यात्रा पर जाया करता था। सन् ८०३ के आरंभ में जब हारून मक्का से लौटा तो उसने २९ जनवरी की रात में जफर का सर कटवा दिया। उसने उसका कटा सर सबके समक्ष प्रदर्शन के लिए बगदाद के मध्य में स्थित पुल पर डलवा दिया और उसके शरीर के आधे-आधे टुकड़े अन्य दो पुलों पर फेंकवा दिए गए। उसके पिता और भाइयों को गिरफ्तार कर लिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त हो गई। बरमाकिद परिवार के पतन के बाद हारून अपना निवासस्थान बदल कर यूफ्रेटस नदी के किनारे रक्का में ले गया।

फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बरमाक परिवार ने अडिग निष्ठा और असाधारण योग्यता के साथ खलीफा हारून की सेवा की थी। ऐसी स्थिति में इतिहासकार अमीर अली ने ठीक ही लिखा है—"(उनकी वजारत में) लोग समृद्ध और प्रसन्न थे। साम्राज्य का भी धन बढ़ा था और उसने शक्ति अर्जित की थी। स्वभावतः राष्ट्रीय धन में भी वृद्धि हुई थी और सभ्यतापूर्ण जीवन की कलाएँ सभी स्थानों में पुष्पित और पल्लवित हुई।"[3]

---

३. अमीर अली-हिस्ट्री आव सारासेन्स, पृ० २४३।

पर सहसा उनके पतन से सबको आश्चर्य हुआ। इतिहासकारों ने उनके पतन के कारण भिन्न-भिन्न दिये हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, कुछ इतिहासकारों के अनुसार पतन का कारण जफर के साथ हारून की बहन का विवाह था जिससे उन्हें एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। पर प्रसिद्ध इतिहासकार इब्न खाल्दुन के अनुसार बरमाक परिवार के पतन के कारण "वे तरीके थे जिनसे उन्होंने सरकार के सभी अधिकार हथिया लिये थे और सभी सार्वजनिक धन का व्ययन सम्पूर्ण रूप से स्वयं करते थे। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची थी कि हारून को अक्सर मामूली राशि तक वित्त विभाग के प्रभारी से माँगनी पड़ती थी और वह भी उसे नहीं मिल पाती थी। बरमाक परिवार के अधिकार असीम थे। उनकी शोहरत सब जगह फैल गई थी। राज्य के सभी उच्च पदों पर चाहे वे सैनिक हों या असैनिक, उनके परिवार के लोग या उनके तरफदार नियुक्त किये जाते थे। सभी लोग केवल उन्हीं की ओर देखते थे, सभी सर केवल उन्हीं के अभिवादन में झुकते थे, केवल उन्हीं लोगों पर सरकार के यहाँ सभी आवेदकों और उम्मीदवारों की आशायें टिकी रहती थीं। वे लोग अपना प्रचुर धन और समृद्धि मानो सभी ओर, साम्राज्य के हर प्रान्त, नगरों और गाँवों में बरसाते चलते थे। सभी लोग उनकी जय-जयकार करते थे। मतलब यह कि वे लोग अपने मालिक यानी खलीफा से ज्यादा लोकप्रिय हो गये थे।" अलावे, हारून को यह भी संदेह हुआ कि बरमाकिद परिवार अब्बासिदों के पतन के लिए षड्यंत्र रच रहा है। फलतः (बरमाकिदों की) निरन्तर निंदा से प्रज्वलित संदेह की अंधी आग और निरंकुश आक्रोश के कारण तीन पीढ़ियों की निष्ठापूर्ण सेवा मानो क्षणिक आवेग में भुला दी गई।

हारून के अधीन विद्रोहों का दमन और अब्बासिद साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण

ऐसी बात नहीं कि हारून के शासन में साम्राज्य के अन्दरूनी भागों में बारम्बार विद्रोह नहीं हुए। सीरिया में सन् ७९६ में उत्तरी और दक्षिणी अरबों के बीच पुरानी शत्रुता गंभीर संघर्ष के रूप में पुनः भड़क उठी। दमिश्क में जो अव्यवस्था और अशांति हुई उसका लुटेरों की भीड़ ने फायदा उठाया। पर जब जफर वहाँ विशेष रूप से उपस्थित हुआ और सामान्य रूप से सबके शस्त्र छिनवा लिए तब जाकर वहाँ शांति स्थापित हुई।

पर मुसल में लोगों की दंगाई प्रवृत्ति के कारण उन्हें दंड-स्वरूप हारून ने उनके नगर को घेरने वाली दीवारें ढहवा दीं। दमिश्क में मुधाराइटों और हिमयाराइटों के संघर्षों के कारण लोग त्रस्त थे। कुछ समय तक हारून ने, जो जानता था कि सीरियाई उसके राजवंश के प्रति विरोध का रुख रखते हैं, इन दोनों गुटों

को पहले आपसी मतभेदों और झगड़ों से कमजोर होने दिया। और अंत में उसने मामले में दखल दिया और दृढ़ता के साथ उसे दबा दिया।

अफ्रिका में खलीफा के गवर्नरों के विद्रोह बार-बार होते रहे। वहाँ पहले इब्राहीम इब्न अगलान ने शांति स्थापित की। उसके पिता जब इफ्रिकियाह का गवर्नर था, सन् ६७६ में एक विद्रोह में मारा जा चुका था। सन् ७९५ में उसके पुत्र को बिस्करा नदी के दोनों ओर दक्षिणी अलजीरिया के "जब" क्षेत्र का गवर्नर पद सौंपा गया। 'जब' इफ्रिकियाह में उसके पिता के उत्तराधिकारी गवर्नर इब्न मुकतिल को विद्रोहियों ने फिर निकाल बाहर किया तो इब्न अगलाब सन् ७९९ में उसकी सहायता के लिए आया और बड़ी चतुराई से वहां शांति स्थापित कर दी। इसके पुरस्कार-स्वरूप हारून ने यह प्रदेश उसे वंशगत जागीर के रूप में दे दिया जिसके लिए उसे कर के रूप में प्रति वर्ष चालीस हजार दिनार देने पड़ते थे। इब्न अगलाब ने तुरत ही केरवां के तीन मील दक्षिण अब्बासियाह में एक नई राजधानी का निर्माण शुरू किया।

खारिजियों ने, जैसा कि उनका बराबर दस्तूर रहा था, हारून के शासन में बार-बार विद्रोह किया। पर उन उपद्रवों को बिना किसी कठिनाई के दबा भी दिया जाता था। खारिजियों के बर्बर दलों को उपद्रवों के लिए यूनानी उसकाते थे जिन लोगों के साथ उन लोगों के अच्छे संबंध थे। खारिजी उत्तर से आर्मेनिया में लाव-लस्कर के साथ आते थे। कहा जाता है कि वे बर्बादी और विनाश का जो ताण्डव नृत्य करते थे उनके बारे में न कभी देखा गया और न सुना गया। इन बर्बरों को दंड देने के लिए हारून ने अपने दो सबसे अच्छे सेनापतियों को भेजा। फिर जो उनकी धुनाई हुई वह बहुत ही ज्यादा सख्त और कठोर थी। खारिजियों का एक और विद्रोह इस कारण उल्लेखनीय है कि उसका नेतृत्व एक जवान लड़की लैला कर रही थी। विद्रोह की शुरूआत उसके भाई वालिद ने की थी जो तारिफ का पुत्र था। जब लड़ते-लड़ते वालिद की मृत्यु हो गई तो लैला ने कमान संभाली और हारून की फौजों से बार-बार टक्कर लेती रही। अंत में जब उसके एक संबंधी ने, जो शाही सेना का नेतृत्व कर रहा था, उसे हथियार डालने और औरतों की सी जिन्दगी बिताने के लिए तैयार किया तब जाकर लैला शांति के लिए राजी हुई।

फ्रैंकों के साथ संबंध

नौवीं सदी के आरंभ में तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय जगत में दो शाही नाम सर्वोच्च थे, पश्चिम में शार्लमेन का और पूर्व में हारून-अल रशीद का। इसमें संदेह नहीं कि

इन दो में से हारून निःसंदेह अधिक शक्तिशाली था और उच्चतर संस्कृति का प्रतिनिधि। हारून शार्लमेन द्वारा भेजे गए राजदूतों से भेंट कर सकता था। वे लोग प्रकटतः सेंट साइप्रियन के अवशेष माँगने आते थे पर वे वास्तव में अब्बासिद साम्राज्य से कूटनीतिक संबंध आरंभ करने के लिए पहुँचते थे। पूर्व में हारून की प्रसिद्धि इस कारण भी है कि फ्रैंकों के महान सम्राट शार्लमेन के साथ उसके सुख्यात कूटनीतिक संबंध थे। फ्रैंकों की राजधानी ऐक्जेला चैपेल में अपना दूत भेज कर उसने ये संबंध स्वयं शुरू किये थे। इतिहास के अरब स्रोत इस संबंध में किसी बात पर प्रकाश नहीं डालते। संभवतः पूर्वी व्यापारी, बिना प्राधिकरण-पत्र के, खलीफा के राजदूत बन कर जाते थे। फिर भी इन दो महान समसामयिक सम्राटों के बीच जो मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हुए उनकी प्रेरणा पारस्परिक स्वार्थों के चलते हुई। शार्लमेन ने अपने शत्रु बैजेन्टाइनों के विरुद्ध हारून के साथ एक संभव मित्र के रूप में संबंध बढ़ाया जब कि हारून का उद्देश्य था कि वह शार्लमेन को अपने प्रतिद्वंद्वी और घातक शत्रु स्पेन के, जो फ्रैंकों का पड़ोसी देश था, उमैय्यदों के विरुद्ध इस्तेमाल करे। उन लोगों ने वहाँ एक समृद्धिशाली और शक्तिसम्पन्न राज्य की स्थापना की थी। पश्चिमी इतिहासकारों के अनुसार दोनों ओर से हार्दिक भावनाओं की इस पारस्परिकता के चलते आपस में दूतों और उपहारों का आदान-प्रदान हुआ। इस बारे में अदभुत सी बात यह है कि इस आदान-प्रदान के संबंध में, जो सन् ७९७ और ८०६ के बीच हुआ, बतलाया जाता है, मुस्लिम इतिहासकार पूर्णतः मौन हैं।

बैजेन्टाइनों के साथ युद्ध

बैजेन्टाइनों के साथ खलीफा हारून के युद्ध उसके शासन की सबसे दिलचस्प घटनाएँ हैं। बैजेन्टाइनों ने खलीफा अल-महदी के समय ईरान के साथ हुई संधि, जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, तोड़ दी और फिर मुस्लिम साम्राज्य पर हमला किया। बैजेन्टाइन सम्राट के लिए हारून के मन में इतनी घृणा थी कि वह उसके पास पत्र इन शब्दों से आरंभ करता था—"रोमन के कुत्ते नाइसफोरस को"। बैजेन्टाइन सम्राट ने एकाएक हारून के लिए स्थिति ही पलट दी और एनाटोलिया से अरब फौजों को निकाल बाहर कर दिया। इसमें उसका उद्देश्य था कि पूर्वी साम्राज्य का एक टुकड़ा काट दिया जाय और उसमें से जितना वह अपने राज्य में ले सके उससे अधिक ले ले। यूफ्रेटस नदी के किनारे एवं सीरियाई सीमाओं के आमने-सामने अवस्थित अपने प्रिय आवास-नगर अल-रक्का से हारून ने एकाएक बैजेन्टाइनों के विरुद्ध अनेक अभियान किए। इन अभियानों के फलस्वरूप एशिया माइनर ध्वस्त-विध्वस्त हो गया और सन् ८०६ में हेराक्लिया और ट्याना पर

विजय प्राप्त कर ली गई। बैजेन्टाइन सम्राट को उसकी गुस्ताखी की सजा यह दी गई कि पूर्व में हुई संधि के अधीन दिये जाने वाले कर के अलावा खुद सम्राट नाइसफोरस और उसके घर के हर सदस्य पर एक नया असम्मानजनक कर लगाया गया। हारून अल-रशीद के शासन-काल की इस घटना और इसकी तिथि को अब्बासिद सत्ता द्वारा हासिल सर्वोच्च शिखर-बिन्दु के रूप में माना जा सकता है।

समरकन्द में रफी इब्न लेथ का विद्रोह और हारून की मृत्यु

हारून की ओर से सही तौर पर यह दावा किया जा सकता है कि वह अपने दादा अल मंसूर की सलाह के अनुसार अपनी खिलाफत के इन वर्षों में 'कभी नहीं सोया"। पर अपने घनिष्ठतम मित्रों और संबंधियों पर अपने विरुद्ध षड्यंत्र का संदेह करने के बजाय बेहतर यह किया होता कि यदि अल-मंसूर की ऐसे ही बुद्धिमत्तापूर्ण आदेश का पालन किया होता कि "खुरासान के लोगों को अधिक महत्व दो।" चूंकि हारून ऐसा करने में विफल रहा, उसे अपने शासन के संध्या-काल में खुरासान के एक भीषण विद्रोह का मुकाबला करना पड़ा। साथ ही ईरान में निरन्तर उत्तेजना जारी थी। खुरासान में उमैय्यदों के अंतिम गवर्नर नस्र इब्न जयार के पुत्र रफी इब्न लेथ ने सन् ८०५ में समरकंद में विद्रोह छेड़ा और सम्पूर्ण ट्रांजोक्सियाना पर कब्जा कर लिया। सन् ८०८ में हारून ने, जो अब कैंसर रोग से पीड़ित था, विद्रोहियों से एक-एक हाथ कर लेने के लिए एक बड़ी फौज लेकर चला। पर वह केवल खुरासान में तुस तक पहुँच सका। रफी इब्न लेथ को गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया पर वह भाग निकला और उसने विद्रोह का झण्डा बुलंद किया। उसने समरकंद पर कब्जा कर लिया। उसने घोषणा की कि बगदाद के स्वतंत्रता दिये जाने पर ही विद्रोह वापस लेगा। हारून के लिए यह दारूण और असह्य स्थिति थी। अब्बासिद साम्राज्य को अफ्रिका और एशिया माइनर में भी गंभीर क्षति उठानी पड़ी थी। उसके पिता खलीफा अल हादी के शासन में इद्रीस के, जो सन् ७६२ में बसरा में इब्राहीम के विद्रोह में शामिल लोगों में से बचा हुआ था, अधीन मोरक्को अब्बासिद खिलाफत से अलग हो चुका था। स्वयं हारून के शासन-काल में केरवान के स्थानीय नेता अपने को स्वतंत्र घोषित कर चुके थे।

और फिर रफी का विद्रोह पूरी तरह तोड़ दिया गया। अपराधी रफी बंदी बना लिया गया। पर इस समय तक हारून मृत्यु-शय्या पर पड़ गया था। फिर भी हिम्मत उसकी ऐसी थी कि उसने इस बात पर जोर दिया कि विद्रोही (रफी) उसके सामने अपनी सजा सुनने को लाया जाय। उस समय जब कि हारून एक शिविर में पड़ा हुआ था और जीवन शनैः-शनैः छीज रहा था उसने अपना अंतिम क्रूर निर्णय सुनाया। "मुझे इस हालत पर पहुँचाने के लिए तुम्हें कीमत

चुकानी पड़ेगी।" उसने रफी से कहा,-"तुम्हें इस तरह से मौत दी जाएगी जैसी आज तक किसी को न दी गई होगी।" तब रफी को एक तरतीब से टुकड़े-टुकड़े कर शरीर का हर अंग दूसरे अंग से काट कर अलग कर दिया गया और कटे हुए अंग एक-एक कर खलीफा के पैरों के पास फेंक दिये गए। कुछ घंटों बाद खलीफा की खुद मृत्यु हो गई (२४ मार्च सन् ८०९)। साम्राज्य में अनेक लोगों ने, जिनमें से कुछ सत्ता-केन्द्र के बहुत करीब के लोग थे, खलीफा के संसार से विदा होने पर, राहत की सांस ली। ऐसा था उसका प्रताप और आतंक।

हारून-अल-रसीद और उसके शासन का आकलन

इतिहास और लोक-गाथाओं में हारून-अल-रशीद (सन् ७८६-८०९) के शासन-काल को बगदाद की सर्वाधिक उज्ज्वल अवधि के रूप में वर्णन किया गया है। यद्यपि बगदाद का निर्माण हुए केवल पचास वर्ष ही बीते थे, पर वह इसी छोटी अवधि में एक महत्वहीन स्थान से असाधारण धन-धान्य और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्व-केन्द्र में परिणत हो गया। इस संबंध में उसकी तुलना केवल बैजेन्टाइनों की राजधानी बैजेन्टियम से की जा सकती है। वह जिस अब्बासिद साम्राज्य की राजधानी थी उसकी समृद्धि और वैभव के साथ ही बगदाद की रौनक और चमक-दमक भी बढ़ रही थी। उस समय "सम्पूर्ण संसार में ऐसा कोई नगर न था जो बगदाद की बराबरी कर सके।" शाही महल में रनिवासों (हरमों) हिजड़ों और विशेष राज-कर्मचारियों के अनेक उपगृह थे और महल का दायरा इस गोलाकार नगर के एक तिहाई भाग में फैला हुआ था। महल का विशेष रूप से प्रभावशाली अंग था उसका सभा-भवन जो ऐसे गालीचों, परदों और गद्दों से सजा हुआ था जो पूर्वी देश में सर्वश्रेष्ठ उत्पादित थे। कुरैश जनजाति के हाशिमी गुट के लोगों को, जिनमें से अब्बासिद हुए थे, बड़ी राशि में नियमित निवृत्ति केवल इस कारण मिलता था कि वे लोग उस वंश में पैदा हुए थे। हारून की माँ को ११,२०,००० डालर मिलते थे जिसे वह अपने और अपने महलों के साज-शृंगार पर खर्च करती थी। और हारून की बीबी जुबेदा ऐसी मशहूर खर्चीली औरत थी जितना कि खलीफा हारून खुद था। शाही महलों में, जो ऊपर के वर्णन के अनुसार गोलाकार नगर के एक तिहाई भाग में स्थित थे, हारून की बीबी इस बात पर जोर देती थी कि आने वाले मेहमान रत्न-जटित स्वर्ण एवं रजत पात्रों में खायें-पियें। यहाँ तक कि उसकी जूतियों में हीरे-जवाहरात जड़े हुए थे। एक बार जब उसने मक्का तीर्थ-यात्रा की तो कहते हैं कि इस पर तीन करोड़ दिनार खर्च बैठा। इसमें वह खर्च भी शामिल था जो उसने पचीस मील दूर जल-स्रोत से मक्का तक पानी पहुँचाने के लिए किया। जुबैदा की ननद और हारून के दादा

खलीफा अल-महदी की पुत्री प्रतिद्वन्द्वी सुन्दरी उल्लैया में भी हीरे-जवाहरात के लिए बड़ी कमजोरी थी। उसके माथे पर एक छोटा-सा दाग था। उसे लोगों की नजरों से छिपाने के लिए वह माथे पर एक रत्न-जटित सोने की पट्टी पहनती थी। बाद में यह फैशन में शामिल हो गया जिसे सम्पूर्ण जगत की महिलाओं ने अपनाया।

जैसा कि ऊपर अनेक प्रसंगों में कहा जा चुका है, हारून-अल-रशीद अब्बासिद राजवंश का महानतम खलीफा और विश्व के सर्वश्रेष्ठ शासकों में से एक था। इसके लिए उसे प्रचुर श्रेय दिया जाना चाहिए कि असीमित शक्ति-सम्पन्न होते हुए उसमें न केवल यथेष्ट आत्म-संयम था बल्कि वह अपनी प्रजा का दुख-दर्द कम करने के लिए इतना सावधान रहता था। वह शासन की बुराइयाँ दूर करने, गलतियाँ सुधारने और अपनी प्रजा के दुख-दर्द से खुद व्यक्तिगत रूप से परिचित होने के लिए अपने साम्राज्य का पूर्व से पश्चिम तक खुद बारम्बार दौरा किया। यही नहीं, वह तीर्थ-यात्रियों के कारवाँ के साथ, उनका नेतृत्व करते हुए, खुद नौ बार मक्का तथा अन्य पवित्र नगरों में गया। इस प्रकार उसने अपने प्रभावान्तर्गत देशों को अपने उत्तुंग व्यक्तित्व से परिचित और अभिज्ञात कराया। साथ ही इस प्रकार उसने उन्हें इस्लामी ऐक्य के लाभ भी दिखलाए। उसका दरबार उस समय का सबसे शानदार दरबार था। वहाँ विश्व के कोने-कोने से विद्वान और बुद्धिमान व्यक्ति आते थे जिनका अत्यन्त उदारता से स्वागत किया जाता था। कला और विज्ञान ही नहीं बल्कि बौद्धिकता के हर आयाम को प्रचुर संरक्षण मिलता था। हारून पहला शासक था जिसने संगीत को एक उच्च पेशे का दर्जा दिया तथा विज्ञान एवं साहित्य की भाँति उसमें भी उपाधियाँ और प्रतिष्ठा प्रदान करने की परम्परा आरंभ की।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वह स्वभाव और प्रशिक्षण से एक वीर सैनिक था। उसने यूनानियों के विरुद्ध अक्सर फौजी अभियान किये और अनेक बार विजय हासिल की। ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि जहाँ तक कला और साहित्य का प्रश्न है, उसका महान पुत्र और उसके बाद का खलीफा मामून उससे आगे निकल जाता है पर समसामयिक विश्व के इतिहास में चरित्र की महत्ता और बुद्धि की प्रखरता में हारून से लोहा लेने वाला कोई शासक न था। उसके शासन में लोगों की सामान्य समृद्धि ने उन्नति के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श किया और कला और सभ्यता के क्षेत्र में प्रगति के पग द्रुत गति से उठाये गए।

हारून में अदम्य साहस और प्रखर योग्यता थी जिससे उसने तेईस साल शासन किया। उसे सम्पूर्ण साम्राज्य में सदैव शान्ति और व्यवस्था विराजती

रही। उसके नाम का इतना आतंक था कि साम्राज्य में व्यापारी, व्यवसायी, विद्वान और तीर्थ-यात्री सड़कों पर बिना किसी खतरे की आशंका के चल-फिर सकते थे। उस विशाल साम्राज्य में जनता जिस प्रकार निर्भय होकर चल सकती थी उससे प्रशासन की उत्कृष्टता और शक्ति का परिचय मिलता है। हारून के पहले के और बाद के किसी भी खलीफा ने प्रगति के विभिन्न क्षेत्रों में, चाहे वह तीर्थयात्रा का हो अथवा प्रशासन या युद्ध का, वैसी शक्ति या कर्त्तव्य प्रदर्शित नहीं किया।

पर हारून की खिलाफत जिस कार्य के लिए मुख्य रूप से विश्रुत है वह है साहित्य के युग का समारंभ। उसका शासन विशेष रूप से इस कारण समुज्ज्वल है कि उस समय बेबीलोनिया की प्राचीन संस्कृति की उर्वर मिट्टी में अरबी साहित्य के भिन्न-भिन्न रंग-रूप के फूल खिले। मरु क्षेत्र के कवियों के जो उमैय्यदों के शासन में भी जनजातीय लड़ाई-झगड़ों और क्षुद्र ईर्ष्या-भाव पालने-पनपाने में ही पूरी तरह अपनी ताकत जाया करते रहे, उत्तराधिकारियों का आसन ग्रहण किया नागरिक कवियों की नई पीढ़ी ने। पुराने कवियों ने भी मुहब्बत और शराब की मस्ती के गीत गाये। उन्होंने भी अपने विरोधी कवियों पर दंश-दग्ध शब्दों में विद्रूप किया। प्रसिद्ध उमैय्यद शासक अब्द-अल-मालिक के समय कवि उमर-इब्न-अबी रबिया ने कोमल गीतों में मुहब्बत की शायरी में अपना स्वतंत्र रूप पहले ही ग्रहण कर लिया था। एक अन्य उमैय्यद खलीफा वालिद द्वितीय ने मद्यपान के गीतों की कोटि पुनरुज्जीवित की। अब नये कवियों ने इन काव्य-विषयों को और पुष्पित-पल्लवित किया। उन लोगों ने न केवल अपना साहित्यिक अलंकरण बोल-चाल की भाषा से किया बल्कि उसमें सामान्यतः बहुजनों की शब्दावली रखी जो उस समय भी आदर्श मानी जाती थी। खलीफाओं और उनके वजीरों बरमाकिदों के प्रशस्ति-गान में अधिकांशतः पुरानी काव्य-शैली ही कायम रखी गई और गैर-अरब मूल के कवियों ने भी उस शैली का दक्षतापूर्वक प्रयोग किया। हारून के समय सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रशस्ति-गायक मारवान इब्न-अबी हाफसा था जो एक खुरासानी यहूदी का पौत्र था। वह यमामा का निवासी था। खलीफा के दरबार में उपस्थित हो कर एवं अपने प्रशस्ति गीत सुना कर वह बराबर अपने घर यमामा लौट आया करता था। एक और कवि खलाफ अल-अहमर ने, जो फरगना के एक मुक्त किये गए दास का पुत्र था, अपने को प्राचीन कविता से इस तरह अभिन्न कर लिया था और उसकी ऐसी नकल करता था जिससे लोग धोखे में आ जाया करते थे। पर हारून के शासन काल का सबसे प्रसिद्ध कवि अबू नवास था जिसकी माँ एक फारसी धोबिन थी। उसने अपनी युवावस्था बसरा और कूफा में बिताई थी। उसका भी अरबी भाषा और उसके सभी रूपों पर अक्षुण्ण अधिकार था। अबू नवास की यदा-कदा रचित

कविताओं में रोज-ब-रोज की बोलचाल की भाषा का सौन्दर्य और सीधापन भी है पर इसमें कतई शक नहीं कि उसमें एक मधुर गीतकार की अप्रतिम प्रतिभा थी। ऐसा लगता है कि वह दरबार और बगदाद के समाज में भी विदूषक का काम भी करता था। अपने समसामयिक अबू दलामा के आनंद का वह एक मात्र मुख्य स्रोत था। पर इसके साथ ही अपनी कला के प्रति ईमानदार गायकों की कमी न थी जो राजधानी के नैतिकताविहीन समाज को नैतिकता पर चलने के लिए प्रभावित करते थे। अबूल अताहियाह की कविताओं पर निश्चित रूप से ईसाइयों का प्रभाव है। अपनी युवावस्था में अपनी दिलकश शायरी के चलते हारून के दरबार में उसका अच्छा स्वागत हुआ। पर बाद में उसने दृढ़ता से विश्व छोड़ देने का उपदेश आरंभ किया जिससे अफवाहें फैलाने वालों को उसके इरादों के बारे में शक पैदा हुआ।

जैसे कि पहले उमैय्यदों के शासन में हुआ था, मक्का और मदीना में नई प्रेम-कविताओं का प्रचार-प्रसार गायिकाओं ने किया था, अब्बासिदों के युग में बगदाद के सामाजिक जीवन में भी, इस दिशा में उन लोगों ने प्रमुख भूमिका अदा की। खलीफा अल-महदी के डेलामाईट दासी-पत्नी से उत्पन्न पुत्र ने कुछ समय तक बगदाद और समारा एक नौसिखुआ गायक के रूप में प्रेम गीत-गायन की शुरुआत की। कहते हैं कि अपने कुछ नये आविष्कृत संशोधनों से उसने प्रेम-गीत गायन में अभिसमृद्धि भी की। पर हारून और उसके उत्तराधिकारियों के शासन में राजधानी के संगीत-क्षेत्र में एक फारसी कर-संग्रहकर्त्ता के पुत्र इब्राहीम इब्न-महन अल-मौसिली और उसके भी पुत्र शाक का वर्चस्व रहा। इन दोनों का धंधा था कि ये दासी लड़कियों को गायक का प्रशिक्षण देते थे और फिर उन्हें ऊँचे दामों में बेच देते थे। अरब साहित्य में इन दासी लड़कियों और उनके प्रेमियों की सुरुचिपूर्ण प्रेम-कथायें भरी पड़ी हैं। ये प्रेमी अक्सर वैसे होते थे जो अपनी प्रेमिका दासी लड़कियों के मालिकों की आर्थिक माँगें पूरी न कर पाते थे।

अलावे, अलान नामक एक फारसी ने जो हारून और उसके पुत्र मामून के शासन में अदालत के पुस्तकालय का एक नकलनवीस था, एक विशेष पुस्तिका लिखी जिसमें पुरानी कविताओं में से अरब जनजातियों के बीच पारस्परिक अपमान संबंधी कवितायें संकलित थीं। इसी कारण उसे 'शुबी' अर्थात् राष्ट्रों के बीच अधिकारों की समानता के संरक्षक का उपनाम मिला।

इस युग के बौद्धिक जीवन में अरबी भाषा का जो प्राधान्य था तथा उसमें अरबों ने जो प्रमुख भूमिका अदा की उसका पता हमें वाङ्मय की दो शाखाओं दर्शन और इतिहास के अवलोकन से पता चलता है जिनमें शिक्षित लोगों को प्रमुख रूप से दिलचस्पी थी। दर्शन में शिक्षितों की दिलचस्पी कुरान के चलते थी। विभिन्न भाषाएँ एवं बोलियाँ बोलने वाले समुदायों के जो बहुसंख्य नव-इस्लाम धर्मान्तरित

थे उनके लिए आवश्यक था कि वे इस्लाम दैविक जगत के बारे में अपनी समझदारी बढ़ाते और उसे खुदा की प्रभावकर इबादत (प्रार्थना) में लागू करते। अरबी दर्शन के इतिहास में बसरा के खलीफा द्वारा रचित महान शब्द-कोष का बड़ा महत्व है। कहा जाता है कि खलील ने छंद और व्याकरण की आधारभूत धारणाओं की भी रचना की। खलील के एक शिष्य फारस के सेबोया ने आने वाली पीढ़ियों के लिए खलील की छंद-व्याकरण पद्धति को धार्मिक नियमों में बाँधने की सेवा की यद्यपि उसका एक प्रयास कुछ भद्दा-सा सिद्ध हुआ। इस दिशा में उसका प्रतिद्वन्द्वी कुरान का उच्चारण का एक शिक्षक कूफा-निवासी अल-किसई था। अल-किसई ने खुद हारून को इस संबंध में शिक्षा दी थी जिसके लिए खलीफा के पिता अल-महदी ने उसे भार सौंपा था। कहा जाता है कि अल-किसई का शिष्य अल-फारा कूफा की एक मस्जिद में कुरान की व्याख्या का काम करता था। फिर भी अल-फारा भी अक्सर बगदाद में रहा करता था। कहा जाता है कि उसने व्याकरण सम्बन्धी व्याख्याओं पर एक पुस्तक लिखी जो हारून के पुत्र खलीफा मामून के महल में कहीं गुम हो गई और हमें अब उपलब्ध नहीं।

हारून के शासन-काल में "सिफिन की लड़ाई" का इतिहास नस्र इब्न मुजाहिम द्वारा लिखाया गया। मुजाहिम की मृत्यु कूफा में सन् ८२७ में हुई। यह इतिहास अपने मूल रूप में अभी भी उपलब्ध है। इसे शिया धर्मावलंबी क्षेत्रों में एक राष्ट्रीय गद्य रूमानी कथा के रूप में अभी भी पढ़ा जाता है। हारून के शासन में सेफ इब्न उमर अल असदी नामक इतिहासकार हुआ था जो तमीमी जनजाति का था। उसने अरबों के विजय के अपने इतिहास में पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के बाद अरबों द्वारा स्वधर्मत्याग तथा "ऊँट की लड़ाई" का भी वर्णन किया। सैफ दरअसल अपनी जनजाति के गौरव-गान में ही अधिक दिलचस्पी रखता था और उसे काल्पनिक रूप से सजा-सँवार कर पेश करता था। सैफ का वर्णन यद्यपि चित्र-विचित्रपूर्ण था पर विस्तार में पूर्णतः अनिर्भरयोग्य था। इतिहासकार तबारी को वह इस तरह रुचा कि उसने उस समय का वर्णन उसी के अनुरूप दिया और उस पर निर्भर करने वाले बाद के सभी इतिहासकारों को दिग्भ्रमित किया।

इसके अलावा भारत से मदीना एक दास के रूप में आने वाला और बगदाद में बस जाने वाला अबू माशार प्रथम व्यक्ति था जिसने पैगम्बर मुहम्मद के अभियानों के बारे में लिखा। उसकी मुख्य दिलचस्पी इस बात में थी कि एक ठीक-ठीक ऐतिहासिक वृतान्त प्रस्तुत किया जाय। इसी तरह मुहम्मद इब्न इशाक ने भी किया। बगदाद आकर उसने खलीफा अल-मंसूर के लिए पैगम्बर मुहम्मद की पूरी जीवनी लिखी जो बाद में कुछ जोड़-तोड़ के साथ हमें अभी भी उपलब्ध है। हारून के अधीन उसके कार्य को बरमाकिद वजीर याहिया के आश्रित वाकिदी ने जारी

रखा। उसने पैगम्बर के अभियानों और विजय-युद्धों पर पुस्तकें लिखीं। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली और उनके परिवार के प्रति उसकी सहानुभूति इन पुस्तकों में पूरी तरह उजागर न हो पाई। फिर उसके शिष्य और सहायक इब्न सैद ने वर्गों की पुस्तक (बुक औव क्लासेज) अथवा टिप्पणियों की पुस्तक संग्रहीत की जिसमें पैगम्बर, उनके सहायकों और प्रत्यक्ष उत्तराधिकारियों के बारे में सभी सूचनाएँ संग्रहीत थीं। इससे जीवन-साहित्य सृजित करने की प्रेरणा मिली जिसे बाद की पीढ़ियों ने अत्यधिक सतर्कता के साथ आगे बढ़ाया। इस सिलसिले में निःसंदेह यदि कुछ नगण्य किस्म की पुस्तकें लिखी गईं पर बड़े महत्व की कुछ सूचनाएँ भी संग्रहित हुईं जो सांस्कृतिक इतिहास के लिए बड़े उपयोग और महत्व की हैं। अबू माशार और वाकिफी की कृतियों में खलीफाओं के शासन की तिथियाँ, उनके गवर्नरों के प्रशासन, तीर्थयात्राओं का नेतृत्व, बैजेन्टाइनों के विरुद्ध ग्रीष्मकालीन अभियान आदि बातें ऐसी हैं जो किसी भी ऐतिहासिक वृत्त-ग्रन्थ के एक स्थिर ढाँचें के रूप में प्रयुक्त हो सकती हैं। पर इनमें केवल कभी-कभी ही महत्वपूर्ण घटनाओं का ब्योरे-वार वर्णन है। उन लोगों के काम को आगे बढ़ाया तबारी ने जिसका जन्म तबारि-स्तान में हुआ था। उसे इसके लिए फारसी सरकारी इतिहास वृत्त-ग्रन्थों से प्रेरणा मिली। वह साम्राज्य का महान इतिहासकार हुआ। उसने बाद के यहूदी वर्णनों के अनुसार बाईबिल-संबंधी पूर्व इतिहास से जिनको कुरान के टीकाकारों ने संग्रहीत किया था अपना काम आरंभ किया और अपनी कृति में मध्य फारसी खुदायनामे का अल मुनफ्फा द्वारा किये गये अरबी अनुवाद से चुने हुए कुछ संग्रह जोड़ दिये।

जहाँ तक विधि-ग्रंथों का संबंध है, हारून के शासन में विधि (कानून) की हनाफी विचारधारा को विधिवेत्ताओं ने एक व्यवस्थित रूप दिया। उनमें साम्राज्य के प्रमुख काजी अबू युसूफ, प्रधान थे। यद्यपि इस विचारधारा को अबू हनीफा की विचारधारा के नाम से पुकारा जाता है पर यह वास्तव में खलीफा हारून अल-रशीद के मुख्य काजी के मस्तिष्क की ही उपज है। इस प्रकार आरंभ हुआ महान सुन्नी विचारधारा। इसकी नींव खलीफा अल-मंसूर के समय ही पड़ चुकी थी पर यह तब तक पूर्ण नहीं हुई जब तक बाद के अब्बासिद खलीफा अपनी राज्य-शक्ति का ध्यान कुछ समय के लिए छोड़ कर अपने धार्मिक प्रभाव के अनुरक्षण के लिए अपना ध्यान इस ओर भी देने के लिए बाध्य न हुए। जो लोग इस सिद्धान्त को मानते थे कि प्रमुख (खलीफा) का चुनाव सर्वसम्मति से होने की एक सांस्कारिक प्रभावोत्पादकता है क्योंकि इस प्रकार चुना गया व्यक्ति ही इस्लामी राष्ट्रमंडल का आध्यात्मिक नेता या इमाम होगा, उन लोगों को अब एक विशिष्ट पदनाम मिला। उन लोगों ने अपने को "अहल-उस-सुन्नत वाल जमात" कहना शुरू किया जिसका

अर्थ हुआ "परम्पराओं के अनुयायी और जनता की विश्वजनीनता की आवाज"।

इसके अलावा हारून ने उस विभाग को वृहत् बनाया जिसकी स्थापना उसके दादा खलीफा अल-मंसूर ने की और जिसके अधीन अन्य भाषाओं का अरबी में अनुवाद किया जाता था। उसने विभाग के कर्मचारिवृन्द की संख्या बढ़ाई पर इस विभाग को उसके अधीन उस स्तर पर व्यापक नहीं बनाया गया जिस स्तर पर उसके पुत्र खलीफा अल मामून के अधीन। हारून खुद भी कवि था,[४] इसलिए कवियों के प्रति अत्यधिक उदार था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उसके शासन में न केवल पश्चिमी बल्कि सुदूर पूर्व से भी संवादों का आदान-प्रदान शुरू हुआ। यही नहीं वह प्रथम खलीफा था जिसके दरबार में चीन के सम्राट और फ्रैंक सम्राट शार्लमेन के राजदूतों का स्वागत किया गया। शार्लमेन को जो शानदार उपहार भेजे गए उनका विवरण आज भी सुरक्षित है जो हारून की खिलाफत में संस्कृति के स्तर का द्योतक है। इन उपहारों में एक शानदार कमर से ऊपर का लिबास भी है जिसे एक शानदार कलाकृति बतलाया जाता है।

बैजेन्टाइनों के विरुद्ध अभियानों में विजय और वहाँ के सम्राट नाइसफोरस की असम्मानजनक पराजय से हारून को अपने समसामयिकों के मुकाबले कहीं अधिक प्रसिद्धि मिली। और अंत में उसकी अपनी सफलताओं, जीवन-पद्धति, परिष्कृत सामाजिक आनंद के बारे में उसकी भावना, उसके प्रेरणाप्रद संवादों तथा उसके द्वारा मुक्तहस्त वितरित मूल्यवान उपहारों के कारण उसकी ओर उस समय के प्रतिभावान व्यक्ति खिंचे। अतः उसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि बाद के किस्सागो हारून अल-रशीद के शासन को खिलाफत के स्वर्णिम युग के रूप में चित्रित करते हैं। संक्षेप में "चाहे आप ऐतिहासिक आलोचना के किसी भी मानदंड का चाहे जितनी भी सतर्कता से प्रयोग करें, हारून-अल रशीद विश्व के महानतम सम्राटों और शासकों के कन्धे से कन्धा मिला सकने में समर्थ सिद्ध होगा।"[५]

---

४. हारून की कुछ कवितायें, जो हेलेन को संबोधित थीं, काफी सुंदर थी। हेलेन वास्तव में रही हो अथवा महज कल्पना की उपज हो, इसमें सन्देह नहीं कि वह एक रोमन कुलीन व्यक्ति की पुत्री से बेहद प्यार करता था। वह उसे अपने साथ हेराक्लिया से ले आया था। उसने यूफ्रेटस नदी के तट पर, रफीका से कई मील दूर एक महल बनवाया था। उस महल का नाम उसके भूतपूर्व घर के नाम पर हेराक्लिया रखा गया। उसे हर तरह का ऐश-ओ-आराम दिया गया। इतिहासकार मसूदी के समय यह महल मौजूद था।

५. अमीर अली, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव सारासेन्स, मैकमिलन १९५५, पृ० २५१।

अल-अमीन (सन् ८०९-८१३)

हारून की मृत्यु के तुरत बाद अब्बासिद साम्राज्य के दो टुकड़ों में बँट जाने का खतरा पैदा हो गया। उसने खुद अपने उत्पन्न प्रथम पुत्र[६] मुहम्मद अल-अमीन को सिंहासन के लिए उत्तराधिकारी घोषित किया। वह मंसूर की पौत्री जुबैदा से उत्पन्न उसका पुत्र था। साथ ही हारून ने उसे सीरिया का गवर्नर पद का भार भी सौंपा। उसने अपने कनिष्ठ पुत्र अब्दुल्ला अल-मामून को, जो एक फारसी दासी से उत्पन्न था, पूर्वी प्रान्तों का गवर्नर पद सौंपा। उसने इसके साथ ही यह आदेश भी जारी किया कि यदि उसका ज्येष्ठ पुत्र (अल-अमीन) अपने छोटे भाई के अधिकारों का उल्लघंन करेगा तो उसे खलीफा के सिंहासन से हाथ धोना पड़ेगा। मामून की शक्तियाँ उसके तीसरे भाई अल-कासिम को मेसोपोटामिया में गवर्नर बना कर और भी सीमित कर दी गई। यद्यपि सिंहासन पर आसीन होने के बाद अमीन ने कासिम का गवर्नर पद किन्नासरीन तक ही सीमित कर दिया। उसने अल-मामून के अधिकारों पर अभी तक हमला न किया यद्यपि इसके लिए उसके पिता हारून के वजीर फदल इब्न रबी ने उस पर बहुत जोर दिया।

खलीफा अमीन ऐश-ओ-इशरत और मौज-मजों में डूबा रहता था। वह खुद तो जिन्दगी के लुफ्त उठाने और शान-ओ-शौकत में मशगूल रहने में वक्त बिताता और शासन का काम प्रधान मंत्री फदल इब्न रबी संभालता। उसका भाई मामून पूर्वी प्रान्तों का गवर्नर था। अपने चरित्र और संतुलित प्रशासन के कारण वह सबका प्रिय बन गया और उसे व्यापक प्रसिद्धि मिली। उसकी लोकप्रियता और धन तथा शक्ति के बल के कारण खलीफा अमीन को चिंता हो गई।

इन दो भाइयों के, जो कुछ ही समय बाद आपस में प्रतिद्वन्द्वी और शत्रु हैं, चरित्रों के बीच अंतर जान सकना दिलचस्प होगा। दोनों का लालन-पालन उस समय के प्रतिभाशाली विद्वानों की देख-रेख में हुआ था। अमीन पर उनके बचपन में उसकी माँ और मामा का साया था और उन्हीं पर उसके पालन-पोषण और शिक्षण का प्रभाव था। दूसरी ओर मामून की फारसी माँ उसी समय मर गई जब वह शिशु ही था। इस दिशा में उसका अभिभावक वजीर जफर था जिसके जीवन और दुर्भाग्य का ऊपर वर्णन आ चुका है। दोनों की इन समान स्थितियों के बावजूद चंचल और ऐश-ओ-आराम पसंद करने वाला था यद्यपि अरबी भाषा में उसका पांडित्य असंदिग्ध था और उसी स्तर का विद्वान था मामून भी। उसे इस्लामी

---

६. इतिहास में मुहम्मद के जीवित पुत्रों में प्रसिद्ध हैं—मुहम्मद अल-अमीन, अब्दुल्ला अल मामून, कासिम अल मोतामान, अबू इशाक और मुहम्मद अल-मुतासिम।

विधि, धर्मतंत्र एवं दर्शन का सम्यक ज्ञान था, जहाँ तक वक्तृत्व कला का संबंध था, दोनों एक-दूसरे के जोड़ा पाड़ी थे पर मामून विधि-वेत्ता और दार्शनिक भी था। हारून को अपने दोनों पुत्रों के बीच चारित्रिक अंतर की जानकारी थी और इसलिए उसने दोनों के लिए सतर्कतापूर्वक जो व्यवस्था की उसके परिणाम का उसे पूर्वज्ञान था। उसने वसीयत कर दी थी कि वह खुरासान में लड़ाई के लिए जाने के समय फौज के साथ जो कोष ले गया था उसका उत्तराधिकारी मामून ही हो। पूर्वी प्रान्तों की, जिनकी गवर्नरी मामून को मिली, प्रतिरक्षा के लिए यह एक आवश्यक उपाय था। और दूसरी ओर अमीन बगदाद में अपने पिता द्वारा छोड़े गए प्रचुर धन का स्वामी था। अमीन ने, जो अपने पिता के साथ अपने कनिष्ठ भाई मामून के सम्बन्ध में करार का पालन करने के लिए संभवतः कभी इच्छुक न था, अपने पिता की मृत्यु की प्रत्याशा में सेना में दखलंदाजी करने के लिए दूत भेजे।

अमीन का शारीरिक गठन बहुत ही अच्छा था, काफी लम्बा और भारी-भरकम। उसे शारीरिक बल तो था ही उसके साथ असाधारण साहस भी। कहा जाता है कि एक बार वह अकेले ही अपने छुरे के साथ एक शेर से भिड़ गया था। शेर उसके पास यों ही निरीक्षण के लिए लाया गया था। संयोग से उसे बाँध कर रखने के लिए लगाम हाथ से छूट गई और वह अमीन पर जो इत्मीनान से बैठा शराब पी रहा था, उछल गया था। पर अपने शारीरिक साहस की तरह उसमें बुद्धिमत्तापूर्ण राजनेतृत्व-क्षमता न थी और ऐसा भी प्रतीत होता है कि वह अपने पिता की भाँति शकी मिजाज का भी था। इससे भी ज्यादा खास बात यह थी कि वह अपने भाई मामून को संदेह की दृष्टि से देखता था। मामून अपने पिता की मृत्यु के पूर्व खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया गया था। अमीन ने उस पद पर उसकी सम्पुष्टि कर दी जिसका उद्देश्य मात्र यह था कि उसे राजधानी बगदाद से दूर रखा जाय। पर मामून के इतनी दूर रख देने के बाद भी अमीन को उससे डर बना ही हुआ था। कुछ सप्ताहों के बाद उसने मामून को आदेश दिया कि अपनी फौज को ईराक वापस भेज दे। मामून अपने को असुरक्षित रखने से साफ इन्कार कर दिया। उसे संदेह हुआ कि अमीन पिता की वसीयत से उसका हिस्सा हड़पना चाहता है। उसने खुरासानियों से अपील की कि वे इस अन्याय को खत्म करने के लिए उसका समर्थन करें। यह बात कि उसकी माँ फारसी थी, उसके लिए लाभकर हुई जब कि अमीन ने उसे उसके पद से हटा दिया और उसे समर्थकों को मिटा डालने के लिए चालीस हजार की फौज भेजी।

पहले तो मामून ने अपने भाई के अधिकारों का ध्यान रखा यद्यपि उसके वजीर फद्ल इब्न सहल ने उस पर इस बात के लिए बहुत जोर दिया कि वह

साम्राज्य की एकता को फिर से कायम करे। दूसरी बात यह थी कि वह पूर्व से आने वाले खतरों का मुकाबला करने में व्यस्त था। मध्य एशिया में अरबों की विजय के समय तिब्बतियों ने चीन के विरुद्ध अपने विजय-अभियान जारी कर दिए थे। इसमें उन्हें काशघर के अरबों का समर्थन प्राप्त था। पर बाद में इस्लामी शक्ति की प्रगति और उनकी ओर उनके बढ़ाव से अपने लिए खतरा महसूस हुआ। फलतः उन्होंने समरकंद में रफी-इब्न-लेथ के विद्रोह में उसकी मदद की और अब ट्रांजोक्सियाना के लिए खतरा पैदा कर रहे थे। पर जब अमीन ने शुक्रवार की एक नमाज में हारून नाम के साथ अपने पुत्र मूसा का भी नाम लिया और इस पर खलीफा पद के लिए मामून के उत्तराधिकार पर प्रश्न-चिह्न-सा लगा दिया तो मामून को अपना आत्म-संयम छोड़ देने के लिए बाध्य होना पड़ा और मामून आगे बढ़ा। उसने बगदाद से अपने सभी संबंध तोड़ लिए। अमीन ने उसे अपदस्थ घोषित कर दिया और सेनापति अली इब्न ईसा को आदेश दिया कि मामून के खिलाफ कार्रवाई की जाय। खुरासानी सेना ने तेहरान के निकट राय्य में अमीन के अभियान को निष्फल और विनष्ट कर दिया। अचरज की बात यह थी कि खुरासानी सेना अमीन की सेना के दसवें हिस्से के ही बराबर थी। उसका सेनापतित्व मामून का सेनापति और उसका मुख्य समर्थक ताहिर इब्न अल हुसेन कर रहा था। अमीन का सेनापति अली इब्न ईसा राय्य में ताहिर द्वारा पराजित कर दिया गया और मौत के घाट उतार दिया गया (सन् ८११)।

और अब मामून का खून उबल पड़ा था। उसके भाई ने 'युद्धं देहि' की चुनौती दी थी और अब उसने उस चुनौती को स्वीकार कर लिया था। अलावे, अब यह बात साफ हो गई थी कि अगर उसने अमीन को खत्म न कर दिया तो वह उसके द्वारा खत्म कर दिया जाएगा। इसलिए उसने अपने सेनापति ताहिर को बगदाद की ओर कूच करने का आदेश दिया। उसके साथ उत्तरी अफ्रिका का एक भूतपूर्व अब्बासिद सेनापति हरथामा की कमान के अधीन एक और सेना थी।

इस बीच अमीन अपनी गद्दी से हाथ धो बैठा था। एक नया घमंडी सीरियाई कप्तान महल के रक्षक सैनिकों में से कुछ दलबदलुओं की मदद से खलीफा के कक्ष में जबरन प्रवेश कर गया था। अमीन धर दबोचा गया और एक कैदी के रूप में सड़कों पर घुमाया गया। जब कुछ स्वामिभक्त प्रजा ने उसे पहचाना तो उसे छुड़ा लिया। पर उन दिनों बगदाद में ऐसी स्वामिभक्ति अत्यन्त दुर्लभ थी। इसलिए जब सन् ८१२ में ताहिर के योद्धा राजधानी के सामने पहुँचे तो बसरा से मोसुल तक समस्त ईराक ने मामून को खलीफा के रूप में स्वीकार करने की सर्व-सम्मत घोषणा की।

बगदाद की रक्षा पंक्तियों के पीछे बंदी से बने खड़े अमीन के सैनिक अब एक-एक कर भगोड़े बन कर आक्रमणकारियों की जमात में शामिल होने लगे। जो सैनिक अब भी अपने खलीफा (अमीन) के लिए लड़ने को तैयार थे उनकी प्रेरणा का एकमात्र स्रोत धन था जो अमीन राज्य के खजाने से उन्हें प्रचुर परिमाण में दे रहा था। यदि इस घेरेबंदी के संबंध में इतिहासकार अल-मसूदी द्वारा प्रस्तुत चित्र में कुछ भी सचाई हो तो सैनिकों को अमीन के साथ रहने का धन के अलावा और कोई भी स्रोत या कारण न था। अफसर और जन-साधारण अधनंगे थे और भूख से तड़प रहे थे। सैनिकों के पास न तो उचित शिरस्त्राण थे और न ही ढालें। जो कुछ थे भी वे ताड़ के पत्तों के बने नकली और अप्रभावकर थे। फिर भी इन अवश और असहाय लोगों ने अत्यन्त कठिन चौदह महीनों तक मर्मान्तिक संघर्ष किया जब कि मामून के सेनापतियों ताहिर और हरथामा ने गोलाकार बगदाद नगर की अभेद्य-सी दीवारों पर अपने शिल-प्रक्षेपास्त्रों से शिलाएँ फेंकना जारी रखा। इस प्रकार धीरे-धीरे और बड़े दर्द के साथ नगर का जीवन समाप्त होता गया। पहले नगर का एक चौथाई और फिर दूसरा चौथाई भाग आक्रामकों के कब्जे में आ गया। फिर जब अंत में नगर को घेर रखने वाले सिपाही तूफानी वेग से नगर में घुसे तब तक बगदाद ध्वस्त विध्वस्त हो चुका था। उसकी सड़कें लाशों से पटी पड़ी थीं, मस्जिदों के द्वार बंद थे और वहाँ की सैनिक एवं असैनिक आबादी भीषण थकावट और भोजन की कमी से अर्द्धमृत-सी थी। अमीन अपने किले में और तीन दिनों तक डटा रहा और अंत में उसे अपने आप को हमलावरों के सुपुर्द करना पड़ा। पर उसने मामून के दूसरे सेनापति हारथामा के सामने आत्म-समर्पण किया क्योंकि वह यह ठीक से जानता था कि खूँखार ताहिर उसे अपने हाथों मौत के घाट उतारने के लिए कृतसंकल्प है। यद्यपि हारथामा ने उसकी जिन्दगी बख्श देने की दिलासा दे रखी थी पर जब सन् ८१३ के सितम्बर माह के अंत में वह उसे टिगरिश नदी के उस पार ले जा रहा था पर ताहिर के आदमियों ने उस नाव पर धावा किया और खलीफा का काम-तमाम कर दिया। उसका सर धड़ से अलग करके उसे मामून के पास भेज दिया गया।

जब मामून को अपने भाई के दुःखद अंत की खबर मिली तो वह शोक-विह्वल हो उठा। उसने कभी सपने में भी न सोचा था कि उन दोनों के मतभेदों का ऐसा हादसाकुन हश्र होगा। उसने अमीन के हत्यारों को सजा देने के कदम तुरत उठाये। यहाँ तक कि उसने अमीन के पुत्रों को खुद अपने पुत्रों की भाँति पालने की कारवाई की ताकि वे अपने पिता की मौत से अधिक आहत न हों। उन लोगों को मामून ने अमीन की माँ जुबैदा की देख-रेख में दे दिया और जब वे बड़े हुए, उनका विवाह अपनी पुत्रियों से कर दिया। उनमें से एक कम उम्र में ही मर

गया। उसने इस बात की पुष्टि की कि अमीन का परिवार और उसके नौकर-चाकर अपने पास की सम्पत्ति का उपभोग करने के अधिकार से वंचित न होंगे।

इस प्रकार चार वर्ष, आठ महीनों के अशांतिपूर्ण एवं उथल-पुथल से डांवा-डोल शासन के बाद अठाइस वर्ष की उम्र में अमीन का जीवनान्त हुआ।

मामून-क्रान्तिकारी एवं इस्लाम के बौद्धिक जागरण का खलीफा (सन् ८१३-८३३)

अनेक खलीफा सैनिक पराक्रम और अन्य अनेक राजनेता एवं प्रशासक की योग्यता में मामून से बढ़-चढ़ कर हुए, पर तार्किकता और विदेशी भाषाओं में निहित ज्ञान के संरक्षण में मामून की तुलना में कोई खलीफा नहीं आता। बगदाद में वह जिस बौद्धिक आन्दोलन का जनक था उसके अन्तर्गत यूनानी और सीरियन कृतियों का अरबी अनुवाद मुख्य रूप में आता है। यह आन्दोलन सर्वाधिक प्रारंभिक था और वैचारिक साहित्य में अक्षुण्ण महत्व वाला। जब मध्ययुगीन इस्लाम के सागर में सभ्य संसार का एक व्यापक भाग आकंठमग्न हो गया तो धर्म-रक्षक खलीफाओं की विस्तृत पृष्ठभूमि में इस खलीफा की आकृति एक द्वीप जैसी प्रतीत होती है—सबसे अलग-अलग एवं शांत और सुस्थिर। जहाँ तक धर्मनिष्ठ खलीफाओं का संबंध है, वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से पैगम्बर मुहम्मद के अत्यधिक सन्निकट थे और दमिश्क के उमैय्यद खलीफाओं का बैजेन्टाइन सरकार और संस्कृति से सम्पर्क था पर उनकी अधिक व्यस्तता सैनिक कार्य-कलाप में ही रही। इस प्रकार उमैय्यद अवधि बौद्धिक-उद्भवन की ही अवधि रही। फलतः यह कार्य बगदाद के, जो सीरियन, फारसी और यूनानी संस्कृतियों का संगम तथा एक दूसरे को प्रभावित करने का स्थल था; सातवें अब्बासिद खलीफा मामून के कन्धों पर यह भार आया कि वह इस्लाम धर्म और इस्लाम संस्कृति के अत्युज्ज्वल एवं अद्वितीय अध्याय का प्रणयन करे।

अरबों और गैर-अरबों के सामाजिक संग्रन्थन की जो शुरुआत अब्बासिद साम्राज्य के प्रारंभिक काल में हुई उसे मामून ने त्वरित गति दी। अरबों की प्रारंभिक जनजातीय सभ्यता प्रायः विस्तृत हो चुकी थी। पुराने और नये मुसल-मानों के बीच की खाई पाटी जा चुकी थी। उन लोगों के बीच संबंध का जो पुल बना उसके मेहराब मानों अन्तर्विवाह, बहुविवाह, रखेलिन और दास रखने की प्रथा आदि थे। वे दिन लद गए जब कुरैशों के युग में प्रारंभिक अरब कुलीनतंत्र केन्द्र-बिन्दु-सा था और जब इस्लाम में प्रवेश के लिए वंश ही एकमात्र योग्यता थी। व्यापारियों, अध्यापकों, लेखकों, विद्वानों, चिकित्सकों आदि का, जो गैर-अरबों

में से आये थे, नया वर्ग मामून के अधीन नई ऊँचाइयों पर पहुँचने के कठिन श्रम में लगे हुए थे। आर्थिक परिवर्त्तन सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचों पर गंभीर प्रभाव डाल रहे थे।

खलीफा बनने के पूर्व मामून का प्रारंभिक जीवन

सन् ७८६ में खलीफाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध खलीफा हारून-अल रशीद सिंहासनारूढ़ हुआ और साथ ही उसके दो पुत्रों का जन्म हुआ जो बाद में खलीफा हुए। उनमें से एक मुहम्मद था जिसे अल-अमीन (विश्वसनीय) की उपाधि से जाना जाता है और दूसरा अब्दुल्ला जिसे मामून (विश्वासपात्र) की उपाधि से। पिता हारून किस्सा-कहानियों के नायक के रूप में अपने द्वितीय पुत्र मामून से कहीं आगे बढ़ा हुआ है पर इतिहास में नहीं। उसका नाम सभ्य जगत की विरासत का एक नया हिस्सा बन चुका है जिसका श्रेय अरब सहस्त्ररजनी (**अरेबियन नाइट्स**) के किस्सागो और आख्यायिका-कारों को है।

जब अमीन मुश्किल से पाँच वर्ष का रहा होगा तभी उसे उच्च पद (खलीफा) के रूप में मनोनीत कर दिया गया यद्यपि वह मामून से छः माह छोटा था। अमीन की माँ प्रतिभाशालिनी एवं रूपवती जुबैदा थी जो खलीफा अल-मंसूर की पौत्री थी। अपने चचेरे भाई और पति हारून के साथ ही उसे भी बाद की पीढ़ियों द्वारा खलीफा के दरबार के रोब-ओ-रौनक तथा विशिष्टता के लिए श्रेय दिया जाता है। मामून दासी महिला माराजिल का पुत्र था। अमीन एकमात्र खलीफा था जो कुरैशी माँ-बाप से पैदा हुआ था।

ज्यों-ज्यों दोनों लड़के बड़े हुए पिता ने अवश्य ही "फारसी दासी महिला के पुत्र" की उच्चतर मानसिक और नैतिक गुणों को देखा होगा जिससे उसे उत्तराधिकार के प्रश्न पर दुबारा विचार करने को बाध्य होना पड़ा होगा। पर ऐसा करने की जरूरत अरबी महिला अर्थात् अमीन की माँ ने नहीं समझा। हारून पर उसके प्रभाव का जोर पड़ा। "दोनों पुत्रों का एक इम्तहान क्यों न लिया जाय", एक दिन हारून के मन में यह विचार आया "उनमें से हरेक से पूछा जाय कि यदि वह खलीफा हो गया तो क्या-क्या करेगा।" इसके उत्तर में पद के उत्तराधिकारी ने संदेश लेकर जाने वाले दूत से कहा—"मैं तुम्हें एक जागीर दूँगा और तुम्हारे यहाँ उपहारों का अंबार लगा दूंगा।" दूसरी ओर शांत और सोच-विचार कर जवाब देने वाले मामून ने रोशनाई का पात्र मंगवाया और लिखा—"तुमने मुझसे ऐसा सवाल करने की हिम्मत कैसे की जिसका संबंध धर्म-विश्वासियों के प्रधान (पैगम्बर मुहम्मद) के जीवन से है? हम सब लोगों को अपने जीवन उसे अर्पित कर देने चाहिए।"

सन् ७९९ में हारून ने मामून को अपना द्वितीय उत्तराधिकारी मनोनीत किया। हारून भली-भाँति जानता था कि पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के वाद से ही खलीफा के उत्तराधिकारी का चिरंतन, कुटिल प्रश्न इस्लाम में एक सरदर्द-सा बना हुआ है, अतः उसने दो दस्तावेज तैयार कराये। एक पर अमीन के दस्तखत होने थे जिसमें यह बात दर्ज थी कि यदि उसने उसका उत्तराधिकारी वनने के अपने भाई मामून के अधिकार का हनन करने की कोशिश की तो वह खुद खलीफा के आसन पर बैठने के अपने अधिकार से च्युत हो जाएगा। दूसरे दस्तावेज पर मामून के दस्तखत होने थे जिसमें कहा गया था कि वह अपने भाई अमीन के प्रति बराबर निष्ठावान बना रहेगा। दोनों दस्तावेजों पर दोनों के दस्तखत हुए, गवाहों के दस्तखत हुए और फिर खलीफा की तीर्थयात्रा (सन् ८०२) के अवसर पर काबा में सुरक्षित रख दिया गया। उस वक्त अमीन और मामून दोनों ही बीस की उम्र के नीचे ही थे। मामून खुरासान से सिन्धु नदी तक पूर्वी प्रान्तों का गवर्नर बना दिया गया और अमीन को हारून ने बगदाद में अपने सहायक के रूप में रखा। मामून ने मर्व में अपना निवास स्थान बनाया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि साम्राज्य प्रशासनिक तौर पर दो हिस्सों में बाँट दिया गया। मार्च सन् ८०९ में विद्रोही रफी को दंड देने के अभियान में तूस में हारून की मृत्यु हो गई और तब आरंभ हुआ भाई-भाई के बीच संघर्ष। इससे बचने के लिए हारून ने असामान्य एहतियास कर रखी थी जो ऊपर उल्लिखित हैं। सतही तौर पर इस संघर्ष में एक ओर था चंचल, मद्य-मदिरा एवं संगीत प्रेमी सत्तारूढ़ अमीन और दूसरी ओर बुद्धिमान, महत्त्वाकांक्षी, भावी खलीफा मामून। दोनों के ही प्रेरक वास्तविक थे उनके वजीर। एक का अल-फदल इब्न अल रबी और दूसरे का नाम अल-फदल इब्न सहल था। अमीन का सलाहकार फदल एक सीरियाई दास का वंशज था जिसे दासता से धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान ने मुक्ति दिलाई थी, दूसरा फदल, जो मामून का सलाहकार था, एक फारसी अग्नि-पूजक था जिसने कुछ समय पूर्व इस्लाम धर्म अपनाया था। दोनों ही फदल तत्कालीन कूटनीतिक तकनीकों में माहिर थे। दोनों ही संघर्ष दो खलीफाओं या दो वजीरों के बीच संघर्ष से कुछ और अधिक थे। जबकि यह संघर्ष मुख्य रूप से वंशगत झगड़ा था पर इसके साथ राष्ट्रीय, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलू भी संलग्न थे जो एक दूसरे से मिले-जुले और एक दूसरे को आवृत-सा किये हुए थे। यह नव इस्लाम-धर्मान्तरित नव-मुसलमानों और मूल-मुसलमानों के बीच संघर्ष था। नव-मुसलमानों में मुख्य थे फारसी जिन्हें एक समृद्ध और गर्वीली सांस्कृतिक विरासत प्राप्त थी और मूल-मुसलमानों के केन्द्र में थे अरब। साथ ही यह संघर्ष शियाओं और सुन्नियों के बीच भी था। शिया लोगों में अधिकांशतः फारसी, अरब, चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के अनुयायी और यमनवासी थे। दूसरी ओर

सुन्नियों में कैसी (उत्तरी अरबवासी) केन्द्रीभूत थे। अमीन अरब-कैसी सुन्नी-शिविर का प्रतिनिधित्व करता था और मामून नव-मुसलमान-शिया-फारसी यमनवासी शिविर का।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, चिनगारी उस समय भड़की जब सन् ८१० में खलीफा अमीन ने अपने वजीर इब्न-अल-नबी के उकसाने पर शुक्रवार की एक नमाज में सरकारी आदेश की घोषणा की कि उसके बाद उसका उत्तराधिकारी उसका शिशु पुत्र मूसा होगा। यद्यपि उत्तराधिकारी के रूप में मामून का नाम पूरी तरह उड़ा नहीं दिया गया पर उक्त घोषणा का अभिप्राय पूर्णतः स्पष्ट और संदेहातीत था। और अंत में तेहरान के निकट अल-राय्य में, मई सन् ८११ में हुए युद्ध में अमीन के शासन के अंत का आरंभ हो गया जिसका उल्लेख ऊपर दिया जा चुका है।

एक खलीफा के रूप में मामून और उसकी समस्यायें

सितम्बर सन् ८३३ में अमीन की मृत्यु के बाद मामून साम्राज्य का एकमात्र खलीफा हो गया पर निर्विवाद रूप से नहीं। उसने इस घटना के छः वर्ष बाद ही राजधानी बगदाद में प्रवेश किया। स्पष्ट कारणों से वह खिलाफत के पश्चिमार्द्ध क्षेत्र में जनप्रिय न था और तब अरब जगत के समक्ष उपद्रवों की बाढ़-सी आ गई। यद्यपि अपने भाई पर विजय के बाद मामून एकमात्र शासक हो गया पर वह अपने पूर्व निवास स्थान मर्व में ही बना रहा। उसकी इस अनुपस्थिति का फायदा ईराक में अली-अनुयायियों ने उठाया और वे क्षेत्र की स्थिति की अशान्ति का उपयोग अपने स्वार्थ-साधन के लिए करने लगे। सन् ८१५ के आरंभ में कूफा में इब्न-तबातबा नामक व्यक्ति नकली खलीफा के रूप में आया। उसे सेनापति हारथामा ने, जिसका जिक्र अमीन से युद्ध के सिलसिले में ऊपर आ चुका है, आसानी से परास्त कर दिया। पर अपनी इस सफलता के बाद हारथामा खुद खलीफा मामून और उसके वजीर के लिए एक खतरा बन गया। पर जब वह मर्व में आया तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में वह पदच्युत हो गया। पर आन्दोलन पूर्व की ओर फैल गया और व्यापक तथा खतरनाक रूप धारण किया। पर योग्य तथा अपने पद के भलीभांति हकदार ताहिर इब्न हुसेन को, सेना के साथ यूफ्रेटस नदी के तट पर रक्का भेजा गया जहाँ कभी भी उपद्रव रुकते दीखते ही न थे।

पर मामून को इस बात के लिए राजी किया गया कि अब्बासिद-अली अनुयायियों का कँटीली संघर्ष समझौते के लिए हल किया जाय। अपने वजीर फदल की सलाह पर उसने सोचा कि चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के एक वंशज अली अल रदी से अपनी पुत्री का विवाह करने से वह इराकियों की सहानुभूति हासिल कर सकेगा। उसने मदीना से अली अल रदी को, जो उम्र में उससे चौदह साल बड़ा था, मदीना

से मर्व बुलवाया और उससे अपना पद उत्तराधिकारी घोषित किया। साथ ही उसने अब्बासिदों के काले रंग के झण्डों के स्थान पर अली-अनुयायियों के हरे रंग के झण्डे लगवा दिये। पर यह बात अभी भी रहस्यपूर्ण बनी हुई है कि उसमें राज-नीतिक निर्णय और सही अवधारणा की ऐसी कमी कैसे हुई कि वह समझ न पाया कि इससे साम्राज्य में बहुसंख्यक सुन्नियों और अल्पसंख्यक शियाओं के संबंध और कड़वे होंगे, क्योंकि सुन्नी अपने ही प्रतिनिधियों द्वारा शासित होने पर सन्तुष्ट रह सकेंगे। अली अल-रदी के उत्तराधिकारी बनाये जाने की घोषणा के विरोध में बगदाद में भीषण शोर-ओ-गुल उठा। वहाँ के नागरिक मामून को इस्लाम विरोधी कह कर कोसने लगे। खलीफा का यह एक बहुत बड़ा कदम था जिससे सभी स्थानों पर सुन्नियों में उग्र विरोध-भावना फैल गई। अल-रदी राजनीतिक दक्षता के बजाय अपनी धार्मिकता के लिए विख्यात था। जुलाई सन् ८१७ में बगदाद में मामून के एक चाचा इब्राहीम इब्न अल-महदी को खलीफा घोषित किया गया। मामून के साथ एक दौरे पर अली अल-रदी की अकस्मात मृत्यु हो गई। इसके समर्थकों-शियाओं-का दावा है कि खलीफा मामून की सुविधा तथा उसके समक्ष प्रस्तुत विकट समस्याओं के समाधान के लिए अल-रदी को जहर-मिला अनार का रस पिला दिया गया था। उसकी कब्र तूस नगर के बाहर एक गाँव में हारून-अल रशीद की कब्र के निकट बनाई गई जिसे अल-मशाद अर-रिदवई (या सिर्फ मशाद) के नाम से पुकारा जाता है। इस स्थान पर प्राचीन तूस नगर के क्षेत्र में शियाओं का पुण्य स्थल बन गया है और तूस नगर रह ही नहीं गया है। शियाओं के लिए कर्बला के बाद इसी का महत्त्व है।

अल-रदी की अकस्मात् मृत्यु और उसके बाद असन्तुष्ट अरबों द्वारा मामून के वजीर अल फदल इब्न सहल की हत्या से बगदाद की स्थिति शांत हुई। इस बीच अपने को नकली खलीफा घोषित करने वाले इब्राहीम की अयोग्यता और स्पष्ट हुई। उसके सेनापति उसे एक-एक कर छोड़ने लगे। और तब अगस्त सन् ८१९ में मामून ने राजधानी में विजयी के रूप में प्रवेश दिया। उसने तुरत अब्बासिदों के काले रंग के झण्डों को फिर उनका स्थान वापस दिलाया और वे चारे ओर फहराते फिर नजर आने लगे।

बगदाद का वैभव

बगदाद में मामून का प्रवेश एक विजयी के रूप में हुआ। सड़कें सजा दी गई थीं, लोगों ने रंग-बिरंगे एवं शानदार परिधान पहन रखे थे और हर कोने में

६. देखें पी० एम० साइकेस की पुस्तक 'दी ग्लोरी औव शिया वर्ल्ड, दी टेल औव ए पिलग्रिमेज, लन्दन १९१०, पृ० २३४-५७।

सरकार के केन्द्र में खलीफा की वापसी पर खुशियाँ मनाई जा रही थीं। सन् ८१९ में मामून ने जिस बगदाद में प्रवेश किया वह बगदाद न था जिसे मामून अब तक जानता रहा था। उसका अधिकांश भाग विनष्ट हो चुका था। खत्म हो चुके थे वे दिन जब सन् ७६२ में मामून के दादा अलमंसूर ने गोलाकार नगर की स्थापना की थी और यह भी इतिहास का एक व्यंग्य है कि मंसूर ने उसका नाम 'शांति का नगर" रखा था। उसी बगदाद में अभी कुछ ही दिनों पहले रक्त की नदी बही थी तथा मानव व्यथा अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। नगर दुहरी ईंट की दीवार, गहरी खंदक और नब्बे फुट ऊँची भीतरी दीवार से घिरा हुआ था। नगर के निर्माण में चार साल का समय लगा था और ४,८८८,००० दिरहम खर्च हुए थे। मामून ने यूफ्रेटस नदी के पूर्वी तट पर स्थित अपने वजीर जफर अल-बरमाकी का निवास स्थान अपने रहने के लिए चुना। और फिर शीघ्र ही बगदाद ने प्रगति और समृद्धि की ओर कदम बढ़ाने शुरू किये जैसा कि मामून के पिता हारून के समय हो रहा था पर जिसमें अमीन की अनुचित राज्य-लिप्सा से बाधा पहुँच गई थी। उसके विख्यात पिता हारून और उससे भी अधिक विख्यात खुद उसके (मामून के) शासन को अब्बासिद राजवंश के पाँच दशकों के ही नहीं बल्कि समूची अरब खिलाफत का, विश्वव्यापी रूप से, स्वर्णयुग माना जाता है। मामून की राजधानी वाणिज्यिक, औद्योगिक, और बौद्धिक क्षेत्रों में प्रसिद्धि के चरम शिखर पर पहुँच गई और उर और बेबीलोन से आरंभ होने वाली तथा टेसीफोन तक आकर समाप्त होनेवाली विश्व की महान राजधानियों की सुयोग्य उत्तराधिकारी हो गई। दरअसल उसकी अवस्थिति बड़े अनुकूल स्थान पर थी। राजधानी टिगरिस नदी के तट पर एवं यूफ्रेटस नदी के पास बसी हुई थी तथा फारस की खाड़ी भी उससे दूर न थी। फलतः उस समय की दुनिया के सभी स्थलों से वहाँ यदि स्थल-मार्ग से नहीं तो जल से पहुँचा ही जा सकता था। उस समय नगर ने अति समृद्धि की अपनी भूमिका आरम्भ की जिसका दिलचस्प उल्लेख अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स) की कहानियों में बार-बार आया है।

मामून के बगदाद में पहुँचते ही सभी अशांति खत्म हो गई और नागरिकों की सुरक्षा के लिए बनाई गई निगरानी-समितियाँ भंग कर दी गईं। मामून खुद प्रशासन के पुनर्गठन और घेरेबन्दी के दौरान हुई क्षतियों के पुनर्निर्माण कार्य में स्वयं जुट गया। अबू खालिद के पुत्र अहमद ने, जो कि मामून का प्रबंधक और दूत था, उसे लोगों के दुःख-कष्टों के बारे में बतलाया। वह उस समय मामून के साथ लोगों की स्थिति के निरीक्षण-कार्य पर जा रहा था। प्रजा की व्यथा-कथा सुन कर मामून ने कहा—"लोग तीन किस्मों के होते हैं। प्रथम तो

दलित (मजलूम); दूसरे शोषक (जालिम) और तीसरे वे जो न तो दलित होते हैं और न शोषक ही। और ये तीसरे किस्म के लोग ही सब झगड़ों की जड़ होते हैं।" इतिहासकारों का कहना है कि मामून का यह कथन ही ठीक था।

साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण और विद्रोह का दमन

मामून के खुरासान से हटने के बाद वहाँ एक खारिजी विद्रोह उमड़ उठा। मामून ने उसके दमन का भार अपने योग्य सेनापति ताहिर इब्न-अल-हुसेन पर सौंपा जिसने बहुत ही थोड़े समय में विद्रोह दबा दिया और पूरे प्रांत पर कब्जा कर लिया। और अब खलीफा के घनिष्ठ मित्रों द्वारा ही उसके लिए समस्याएँ उत्पन्न की गई। उसके भूतपूर्व विश्वस्त सेनापति ताहिर ने, जो अब खुरासान का गवर्नर बना दिया गया था, राजधानी बगदाद से अपने स्थान की दूरी का फायदा उठा कर मामून के प्रति अपनी स्वामिभक्ति का परित्याग कर दिया। सन् ८२२ में उसने सार्वजनिक नमाज में "शासक खलीफा की विजय" के स्थान पर "धर्म (अल-दीन) की विजय" शब्द कहलवाना शुरू किया। इस प्रकार ताहिर शीघ्र ही खुरासान में अपने को इतना सुरक्षित महसूस करने लगा कि उसने शुक्रवार की नमाज में खलीफा का उल्लेख न करने की परम्परा आरंभ करने का साहस किया। यद्यपि उसका यह काम प्रत्यक्ष विद्रोह जैसा था फिर भी उसने आदेश दिया कि उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र तलहा खुरासान का अधिपति (गवर्नर) होगा। ताहिर ने अपने पुत्र को शासन सुपुर्द कर दिया और इस प्रकार एक अर्द्धस्वतंत्र राज्य की परम्परा शुरू की जो अपने किस्म का पहला राज्य था। ताहिर के वंशजों ने करीब एक शताब्दी तक खुरासान पर अपना अधिकार रखा। इन घटनाओं के कारण इस्लामी साम्राज्य से उसका सर्वाधिक पूर्वीक्षेत्र और साथ ही सर्वाधिक पश्चिमी क्षेत्र अलग हो गया। यह इस बात का पूर्वाभास था कि अपने पूर्वी छोर पर साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो चुका था।

ताहिर के एक और पुत्र अब्दुल्ला ने पश्चिमी प्रान्तों में साम्राज्य की बड़ी सेवा की। अमीन के एक समर्थक नस्र इब्न-सवाथ ने उसकी मृत्यु के बाद एलेप्पो पर शासन करना जारी रखा। सन् ८२५ में अब्दुल्ला ने उसे निश्चित रूप से उखाड़ फेंका। और अब अब्दुल्ला को मिस्र में शांति व्यवस्था कायम करनी थी। यहाँ अमीन और मामून के युद्ध के दरम्यान उत्तरी और दक्षिणी अरबों के बीच फिर उपद्रव भड़क उठा। केसी (उत्तरी अरब) अमीन का समर्थन कर रहे थे और कल्बाइट (दक्षिणी अरब) मामून का। अभी साम्राज्य की एकता मुश्किल से स्थापित हुई थी कि घुसपैठिये स्पेन-वासियों ने स्पेन से वहाँ के उमैय्यद शासकों द्वारा

निकाल दिये जाने के बाद सिकन्दरिया पर कब्जा कर लिया और नये उपद्रव शुरू किए। पर अब्दुल्ला को उन्हें बहुत जल्द क्रीट लौट जाने को बाध्य किया और अब्बासिद सरकारी यंत्र पुनः व्यवस्थित रूप से स्थापित कर दिया। अपने भाई तलहा की मृत्यु के बाद वह खुरासान में उसका उत्तराधिकारी यानी नया गवर्नर बना। इस बीच मिस्र पर खलीफा पद के उत्तराधिकारी मामून के भाई अल मुतासिन ने अधिकार कर लिया। वह जब पुराने मिस्र-वासियों का विद्रोह अकेले दबा न सका तो वहाँ खुद मामून ने हस्तक्षेप किया और विद्रोह को कुचल दिया।

पर बगदाद पर कब्जा कर लेने और वहाँ मामून द्वारा विजयी के रूप में प्रवेश करने के बाद भी शांति स्थापित न हुई। एक फारसी नगर खुरामा के निवासी खुरामियों के नाम से जाने वाले राजनीतिक आर्थिक गुट ने पूर्वी क्षेत्र को आतंकित करना जारी रखा। उन लोगों को आर्मेनिया-वासियों और शायद बैजेन्टाइनों का भी समर्थन प्राप्त था। उनका विद्रोह मामून के भाई एवं उत्तराधिकारी अल-मुतासिम के शासन में ही दबाया जा सका। एक और विद्रोही दल, जिसे दबाया न जा सका, उस समय एक विचित्र भारतीय जनजाति का था जिसका नाम अल-जह[७] था। इस गुट ने यूफ्रेटस नदी के निचले दलदली भाग पर कब्जा कर रखा था। इसकी जीविका नमक के व्यवसाय से चलती थी। उसने जहाजों पर कर लगाना शुरू किया और बगदाद की आपूर्ति भी रोक दी। उन पर अंत में अल-मुतासिम के एक सेनापति ने हमला करके उन्हें तितर-बितर कर दिया। उनमें से कुछ जिप्सियों के रूप में एशिया माइनर के रास्ते यूरोप भाग गये।

बरान से विवाह

मामून ने अपने वजीर इब्न सहल की सुन्दरी पुत्री खादिजा से विवाह किया जिसका उपनाम बरान था। दोनों की सगाई मर्व में हुई थी। बरन उस समय दस साल की थी। फिर बाद में विवाह के अवसर पर जो रौनक और धूम-धाम हुई उससे बगदाद के दरबार के वैभव और समृद्धि का परिचय मिलता है। सगाई के ८ वर्ष बाद सन् ८२५ में विवाह-समारोह हुआ। विवाह बरान के पिता के निवासस्थान पर हुआ जो टिगरिस नदी और एक नहर के संगम-स्थल पर वासित के बाहर स्थित था। समारोह सत्रह दिनों तक इतने शानदार और विशाल हुए कि अल-तबारी, अल-मसूदी और इब्न अल अथीर जैसे परवर्ती इतिहासकार, बड़े व्यवस्थित रूप से,

७. यह इसलिए उल्लेखनीय है कि वहाँ टिगरिस नदी के किनारे भारतीय जनजाति जाट दिखलाई दी जिसे अरब इतिहासकार "अल-जट्ट" कहते हैं।

समारोह में हुए खर्च का ब्योरेवार वर्णन देते हैं। शाही घराने की महिलाएँ अपने वैवाहिक लिवास में विवाह में शामिल हुईं। इसमें उनका नेतृत्व खलीफा की सौतेली माँ जुबैदा कर रही थी। उसी ने बगदाद में शान-ओ-शौकत का फैशन शुरू किया था। वह प्रथम महिला थी जिसने अपनी जूतियों में रत्न जड़वाये थे। अपनी मेज पर वह ऐसे बर्त्तन पसंद न करती थी जो सोने और चाँदी के तथा रत्न-जटित न हों। उस समय के कवि और संवाददाता विवाह में आमंत्रित किये गए ताकि वे रनिवास की उस समय की शोभा अपनी आँखों देखें तथा समारोह की भव्यता का स्मरण रख सकें। दुलहन के क़क्ष में, सुवर्ण मोमबत्ती-पत्र में, विशिष्ट सुगन्धयुक्त पदार्थ की दो सौ चक्राकार ढंग से सजी मोमवत्तियाँ जला कर सजाई गई थीं जिनसे कई दिनों तक रात का अन्धकार दिन के जगमग तेज प्रकाश में परिणत कर दिया गया था। अंतिम समारोह में, जबकि दूल्हा-दुलहन नील-मणियों से जड़े हुए सुवर्ण आसन पर बैठे हुए थे तो दुल्हन की दादी ने एक सुनहले थाल से उन बड़े आकार के अद्वितीय मोती एक हजार की संख्या में बरसाये।

जब राजा और उच्च पदधारी विवाह-समारोह से विदा हुए उन्हें सम्मान-जनक वस्त्रों से विभूषित किया और उन पर कस्तूरी की बनी गेंदें फेंकी जिनमें से हरेक में एक टिकट छिपा कर रखी गई थी जिनमें से किसी पर किसी जागीर, किसी दास, घोड़ों के दल या किसी अन्य उपहार का नाम दिया हुआ था। अन्य लोगों को सोने और चाँदी के सिक्के और तृणमणि के अंडे उपहार के रूप में दिए गए। इस सब पर दुल्हन के पिता का जो खर्च हुआ उसकी क्षतिपूर्त्ति के लिए खलीफा ने उसे फारस के दो जिलों की एक साल का राजस्व स्वीकृत कर दिया। अब जो नई रानी आई उसने अपनी सुन्दरता और तीक्ष्ण बुद्धि से अपने पति पर प्रचुर प्रभाव डालना शुरू किया। रानी पति से पचास साल अधिक जीवित रही और साम्राज्य के गौरव से पतन-काल तक की अवधि देखी। वह प्रचुर रूप से दया दान करती थी। उसने वगदाद में अनेक अस्पताल और महिला-शिक्षणालय खुलवाये। कहा जाता है कि बरान की मृत्यु सन् ८८३ में हुई।

बैजेन्टाइनों से युद्ध और मामून की मृत्यु (सन् ८३३)

यद्यपि मामून, सामान्यत: अपने शासन के अंत में अपने युद्ध-अभियान स्वयं संचालित न करता था पर इसके वावजूद वह बैजेन्टाइनों के विरुद्ध युद्ध के लिए युद्ध अभियान करने को बाध्य हुआ। अभी भी अजर बैजान में अपराजित विद्रोही दवाव को बैजेन्टाइन मदद कर रहे थे, अतः मार्च सन् ८३० में वह एशिया माइनर पर जहाँ बैजेन्टाइनों का शासन था, आक्रमण करने को बाध्य हुआ। लगातार तीन वर्षों तक खलीफा ने ग्रीष्म-अभियानों में भाग लिया। जब बैजेन्टाइन सम्राट

थियोफिलस (सन् ८२९-४२) ने मामून से सन् ८३२ में सुलह करने का प्रस्ताव रखा क्योंकि अगस्त सन् ८३३ में तारसस के निकट उसके सीमा-स्थित सबसे मजबूत लुलुआ किले पर अब्बासिदों ने अधिकार कर लिया था तो मामून ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और उससे युद्ध जारी रखा। तारसस के निकट बुडेनडन में तीसरे अभियान के सिलसिले में अगस्त सन् ८३३ में खलीफा की मृत्यु हो गई। टाइफाइड ज्वर में अड़तालीस वर्ष की अवस्था में जब वह मरा तो उसने बाइस साल, पाँच महीने, तेईस दिनों तक राज कर लिया था। उसने मिस्र और कुर्दिस्तान के विद्रोहों का दमन कर दिया था, बैजेन्टाइनों के साथ अपनी सीमाएँ सुरक्षित कर ली थीं और अपने सभी शत्रुओं को परास्त कर दिया था। इस प्रकार शांति और समृद्धि का सुखद वातावरण वापस ला दिया था। अपनी अंतिम वसीयत और इच्छापत्र में उसने अपने उत्तराधिकारी (अबू इशाक जो खलीफा बनने के बाद अल-मुतासिन के नाम से प्रसिद्ध हुआ) को आदेश दिया कि वह शासन में न्याय एवं धर्म के प्रति निष्ठा के मार्ग पर चलता हुआ कुरान के सृष्टि-सिद्धान्त को शक्तिपूर्वक लागू करे। जहाँ तक मामून की शासन-उपलब्धियों के आकलन का प्रश्न है, संक्षेप में कहा जा सकता है यद्यपि वह किसी दृष्टि से हीन शासक न था क्योंकि उसने भी अन्य योग्य शासकों की भाँति नहरें खुदवाईं, दलदली क्षेत्रों को सुखवाया और रेगिस्तानों तक पानी पहुँचवाया, पर वह योग्य अरब शासकों में उसे कलाओं और विज्ञानों के सर्वोच्च संरक्षक के रूप में याद किया जाएगा। यह दुख की बात है कि मामून की मृत्यु के बाद सत्तर वर्ष से भी कम समय में अब्बासिदों का प्राधान्य समाप्त हो गया और उनकी खिलाफत पतन के मार्ग पर जा रही थी।

मामून के अधीन बौद्धिक प्रगति

मामून के युग की सच्ची प्रसिद्धि उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों और शिक्षा, विद्वता तथा सांस्कृतिक कार्य-कलाप को उसके द्वारा प्रोत्साहन और प्रेरणा में निहित है। मामून के अधीन मुस्लिम वैचारिक इतिहास में विशिष्ट आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। बगदाद में बीस वर्षों की अपनी निवास अवधि में यूनानी विज्ञान में अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि के कारण उसने इस्लामी संस्कृति में प्राति के नये आयाम निर्मित किए। उसकी पृष्ठभूमि फारसी थी अत: वह निश्चित रूप से शानदार प्रदर्शन की कला से अभिज्ञ था जिसे उसने अपने बाद के शासन के चौदह वर्षों तक बरकरार रखा। वह वास्तव में शानदार व्यक्तित्व का था। किसी चाकचिक्यपूर्ण सर्कस का केवल संचालक होने के बजाय अब वह बगदाद लौट आया था। वह अब केवल मूक दर्शक न था बल्कि घटनाओं का निर्माता हो गया था। वह अपने अब्बासिद साम्राज्य की राजधानी को संस्कृति और विज्ञान का केन्द्र बनाने को कृतसंकल्प

था जो बाद में उस समय के जगत का विश्वविख्यात केन्द्र बनकर रहा। चूँकि वह कला और विज्ञान के प्रति गहरा प्रेम रखता था इसलिए सभी खलीफाओं में वह काव्य, धर्मतंत्र, दर्शन, ज्योतिष और खगोल विद्या का सबसे बड़ा संरक्षक बना। ईसाई, यूनानी, यहूदी, जरतुश्ती (पारसी) और यहाँ तक कि खगोल के विशेषज्ञ माने जाने वाले ईश्वर-विश्वासविहीन नक्षत्र-पूजक सेबियन संरक्षित किये गए और संतुष्ट करके रखे गए ताकि वे अपने ज्ञान और कृतित्व-शक्ति के खिलाफत के ज्ञान-भंडार को सुसमृद्ध बनायें। संस्कृति का जो स्रोत मिस्र, बैबीलोनिया, फोनीसिया और जूड़िया के अपने प्राचीन केन्द्र से यूनान की ओर प्रवाहित हुआ था वह पुनः अपने उद्गम स्थलों में सांस्कृतिक उर्वरता लाने के लिए उनकी ओर वापस लौटने लगा।

मामून की खिलाफत सारासेन (अरब) इतिहास का सर्वाधिक समुज्ज्वल युग है और उसे ठीक ही इस्लाम की भव्य शासनावधि कहा गया है। मामून के तेईस वर्षों के शासन ने विचारों की सभी दिशाओं में मुस्लिम बौद्धिक विकास के चिरस्थायी आन्दोलन आरम्भ किये। उनकी सफलताएँ केवल विज्ञान या साहित्य के किसी क्षेत्र तक ही सीमित न रही बल्कि उनकी सुविशाल परिधि में बौद्धिक क्षेत्र की पूरी सीमा समाहित हो गई। कल्पना-आधारित दर्शन, ललित साहित्य उसी प्रकार विकसित हुए जिस प्रकार गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान आदि वास्तविकता-आधारित विषय। इन सबमें एशियाई इतिहास को इस अत्युज्ज्वल अवधि में अबाध प्रगति अत्यन्त द्रुतगति से हुई। इसकी बौद्धिक विरासत सारासेनी अरब स्पेन (जहाँ उमैय्यदों का शासन था) और ईसाई धर्मावलम्बी कान्संस्टेन्टीनोपुल तक पहुँची जहाँ से उसने आधुनिक यूरोप में कदम रखे। मामून की ठीक ही धारणा थी कि मानव जाति की सच्ची खुशी शिक्षा और संस्कृति में ही उपलब्ध हो सकती है। मामून ने इसके लिए एक नियमित राज्य परिषद स्थापित की जिसमें उसके शासनाधीन सभी समुदायों के प्रतिनिधि थे। उसमें मुसलमान, यहूदी, ईसाई, नक्षत्र-पूजक सैबियन और (पारसी) सदस्य थे। मुस्लिम शासन में सदैव गैर-मुसलमानों को चेतना-स्वातंत्र्य एवं पूजन अधिकार प्राप्त थे।

मामून की खिलाफत में लोक-शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली पुनरुज्जीवित एवं आधुनिकीकृत की गई। इसके पूर्व लोगों की शिक्षा के लिए मस्जिदों के इर्द-गिर्द "गंवारू जैसे स्कूल" थे और लोकशिक्षा के पाठ्यक्रम में अत्यन्त प्रारम्भिक विषय आते थे जैसे कि कुरान का पाठ, थोड़े से गणित का अध्ययन आदि। अरब चिकित्सा और कीमियागरी को राज्य से कम या बिल्कुल ही सहायता न मिलती थी। पर अब परिदृश्य पूर्णतः परिवर्तित हो गया, और पहले के मस्जिद के विद्या-

लय खलीफा द्वारा निर्धारित विषयों के एक मात्र साधन न रह गए। विकसित शिक्षा की अकादमियाँ और विधि विद्यालय की स्थापना की गई। पुस्तकालय और प्रयोगशाला के साथ एक विशाल विज्ञान-कक्ष का निर्माण किया गया। महाविद्यालयों को प्रचुर राज्या-निधि दी गई। साथ ही खिलाफत की साहित्यिक प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाने के लिए व्यापक प्रयास किए गए। यूनानी दार्शनिकों और गणितज्ञों की कृतियों और फारस की काव्य एवं ऐतिहासिक कृतियों की निकट और सुदूर क्षेत्रों में व्यापक खोज की गई। फारसी, संस्कृत और सीरियन भाषाओं में लिखित इन और अन्य पुस्तकों का अनुवादकों के एक दल के द्वारा अरबी भाषा में अनुवाद कराया गया। ये लोग "बुद्धिमत्ता-कक्ष" भवन में रहते थे जिसमें पुस्तकालय, अकादमी और अनुवाद विभाग सम्मिलित था। हुनैन इब्न-इशाक (सन् ८०९-७३) नामक एक ईसाई अरब जिसे "अनुवादकों का शेख (प्रधान)" कहा जाता था, इनके काम की देख-रेख करता था। हुनैन इब्न-इशाक ने खुद प्लेटो के रिपब्लिक, अरिस्टोटल के कैटिगोरीज और फिजिक्स (भौतिक शास्त्र) और इक्लयूड की कृतियों का अनुवाद किया। एक पुस्तक के अनुवाद के लिए उसे पारिश्रमिक के रूप में उसके वजन के बराबर स्वर्ण मुद्रायें मिलतीं। अपने दरबार के पुस्तकालय बुद्धिमत्ता-कक्ष (बैत-उल हिक्मा) मामून ने इस्लामी साहित्य-भांडार और विदेशी साहित्य भांडार के एकीकरण की चेष्टा की। उसने एशिया माइनर से यूनानी कृतियाँ खरीद कराई। उसके शासन में अरब विश्व इतिहास के महानतम पंडित अबू-युसूफ अल किंदी "अरबों का दार्शनिक" ने न केवल अपने देशवासियों को अरस्तू एवं प्लेटो दर्शन का ज्ञान, अनुवादों और रूपान्तरों से, कराया बल्कि उस दर्शन के प्रकाश में प्रकृति के इतिहास और ऋतुविज्ञान के अध्ययन के माध्यम से उनके मानसिक क्षितिज को व्यापक एवं विस्तृत बनाया।

इस प्रकार मामून का शासन-काल न केवल ऐश-ओ-आराम के साथ रहन-सहन के मामले में बल्कि सांस्कृतिक कृतित्व और प्राधान्य में भी इस्लाम का स्वर्ण युग था। यही वजह है कि बाद में चल कर मुस्लिम जगत ने पश्चिमी और साहित्यिक विचारों पर प्रचुर प्रभुत्व स्थापित किया और हमेशा के लिए बरकरार रखा। अब्बासिद साम्राज्य के पूर्वी क्षेत्र और अरब स्पेन के दार्शनिकों, चिकित्सकों, कीमियागरों, खगोल-शास्त्रियों और भौगोलिकों ने प्राचीन यूनान, मिस्र, फारस और तत्कालीन भारत की दार्शनिक और वैज्ञानिक विरासत को एकेश्वरवादी इस्लाम की धार्मिक अवधारणा के अनुकूल ढाला। इस प्रकार उन लोगों ने अरस्तू, गेलेन, यूक्लिड और प्लेटो के सिद्धान्तों और आधुनिक यूरोप की विचार-सरणि के बीच आवश्यक सम्पर्क सूत्र का निर्माण किया। पर इसके साथ यह एक दुख की बात है कि खलीफा मामून की अरब प्रजा का एक बहुत ही थोड़ा-सा भाग शैक्षिक और

स्वभावगत रूप से इतना ज्ञानवान था कि जो अनुसंधान, व्याख्या तथा अनुवाद के बहुत कार्य में, जिससे सुविशाल बौद्धिक विस्फोट हुआ, नेतृत्व दे पाता। यह कार्य सम्पादित किया फारस और साम्राज्य के पूर्वी और पश्चिमी छोरों पर बसे मुसलमानों ने।

नये बौद्धिक युग के प्रथम चरण में विभिन्न मूल की कृतियों का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। इस कार्य का आरम्भ हिन्दी में लिखित खगोल विद्या के प्रबंध (सिद्धान्त) के अल फजरी द्वारा अरबी भाषा में अनुवाद से हुआ। फजरी ने मुस्लिम जगत में इस विज्ञान का आरम्भ किया। मामून के संरक्षण में एक वैज्ञानिक ख्वारिज्मी ने इस दिशा में नई सामग्री का उपयोग कर अरबी गणित ज्योतिष तालिका तैयार की। उसने अपनी तालिका और बीजगणित (अलजबरा) पर अपनी पुस्तक में अंक सम्बन्धी इस प्रणाली का उपयोग किया।

अरबी भाषा में सबसे प्रारंभिक किस्से कहानियाँ फारसी से आये। इनका प्रयोजन जानवरों के अनुभवों के माध्यम से उचित आचरण की सीख देना था। ये कहानियाँ (कलीला वा-दिमनाह) एक भारतीय दार्शनिक बिदपई ने मूल रूप में हिन्दी में लिखी थीं। फारसी या हिन्दी से कहीं ज्यादा समृद्धतर यूनानी स्रोत थे। इन्हीं स्रोतों से इस्लाम को अपनी दार्शनिक धारणायें और वैज्ञानिक विचार उपलब्ध हुए। यूनानी स्रोतों ने यूनानी भाषा, धारणायें और विचार अंगीकृत किये थे। ऐसा सिकन्दर और सेल्यूक्स के समय से होता आया था।

मामून के अधीन मुस्लिम युग में अध्ययन-मनन के प्रधान स्वरूप यही थे जिनका आरंभ अब्बासिद खिलाफत के शुरू में हुआ। इन्हीं से सत्रहवीं सदी के यूरोप में वैज्ञानिक क्रान्ति को प्रेरणा मिली। खलीफा मामून ने इस सांस्कृतिक प्रगति के प्रोत्साहन और उन्नयन के लिए जितना कुछ किया उतना किसी अरब शासक ने न किया। इस दिशा में उसका व्यक्तिगत योगदान यह भी था कि उसने अपने शासन-काल में प्रबुद्ध वाद-विवाद का जो अनोखा युग आरंभ कराया वह पहले न-कभी देखा गया और न अनुमत हुआ। वह शासक के रूप में जितना भव्य और सुदीप्त था उतना ही उदार भी था। अपने दादा खलीफा अल मंसूर के भूतपूर्व महल में सजने वाले अपने दरबार में वह अत्यधिक पवित्र और नाजुक धार्मिक प्रश्नों पर विद्वानों के साथ बहस-मुबाहसा करने से अधिक और कुछ भी पसन्द न करता था। ये वाद-विवाद जो अति कट्टर धर्मनिष्ठ से लेकर पूर्णतः इस्लाम धर्म विरोधी तक सभी विचारधाराओं के प्रतिनिधियों के बीच, पूरी समझदारी के साथ, कराये जाते थे। उससे मामून की यह धारणा बनने में सहायता मिली कि कुरान की रचना पृथ्वी पर अल्लाह के प्रतिनिधियों द्वारा की गई। वह इस बात को तो बहुत ही सहज ढंग से मानता था कि कुरान-रचना की प्रेरणा अल्लाह से मिली पर वह यह

रहस्य भरा-सा विचार न मान सका और न ही मानता था कि कुरान अल्लाह की असृजित वाणी है जिसे सन्त जिबरील आसमान से धरती पर ले आया। इसके फलस्वरूप मामून ने इस्लाम विरोधी सिद्धान्त के प्रति भी अपना विरोध घोषित किया। इसी सिद्धान्त को मानने के कारण बाद के उमैय्यद शासकों का अपनी सेवाओं पर से अनुशासन का अंकुश भोथरा हो गया और उन पर उनका आवश्यक नियंत्रण न रह सका। वह सिद्धान्त यह है कि आदमी का भाग्य पूर्व-नियोजित है जिससे उसकी इच्छा पूर्ण स्वतंत्र है और वह अल्लाह के समक्ष जो भी चाहे कर सकता है और अन्ततः मामून ने इस बात पर जोर दिया कि विश्व के लिए कोई अपरिवर्त्तनीय कानून नहीं है और यह कि हर वस्तु परिवर्त्तित हो रही है।

अध्ययन और विद्वता के जो दो संरक्षक खलीफा हुए, हारून और उसका पुत्र मामून, उनमें से मामून इस दिशा में अपने पिता से बड़ा संरक्षक हुआ। हारून की दिलचस्पी केवल कविता, संगीत और गायन में थी। इनसे दरबार की चमक-दमक और बढ़ती थी। दर्शन और विज्ञान में ध्यान केन्द्रित करने का मामून के लिए एक व्यक्तिगत कारण था। वह उनमें अपने धर्मनिष्ठ विचारों के लिए समर्थन ढूंढ़ता था। उसने अवश्य ही अनुभव किया होगा कि वह अपने समाज से अलग-थलग जा रहा है। उसने अपना जीवन धर्म में दृढ़ विश्वास न रखने वाले के रूप में आरंभ किया और धार्मिक उग्रवादी के रूप में उसका समापन। उसके चरित्र और स्वभाव उसकी माँ, पत्नी, घरेलू शिक्षक, परामर्शदाताओं एवं वजीरों द्वारा ढाला गया। उसके परिपक्व जीवन का अधिकांश भाग खुरासान और फारस में बीता। कुछ समय के लिए उसकी अशांत आत्मा ने शिया धर्म में शांति और संतोष पाने की चेष्टा की पर उसमें विफल रहा। और अब राजधानी बगदाद में लौटने पर उसे उग्रवाद एवं विच्छेदकारी विचारधारा में अपने लिए अनुकूल वातावरण मिला। इन लोगों को अल-मुतजिला (पृथकतावादी) कहा जाता था। मुतजिला कुरान के शाश्वत स्वरूप के विचार के विरोधी थे। उनका कहना था कि यह विचार खुदा के एक और एकमात्र होने के मूलभूत विचार के प्रतिकूल है। उनका तर्क था कि हम किस प्रकार एक ओर यह मानते हैं कि सिर्फ खुदा ही एकमात्र शाश्वत अस्तित्व वाला है और दूसरी ओर उसे असृजित विश्व के साथ रखने की कोशिश करते हैं? उन लोगों को इस बात पर भी अभिमान था कि वे लोग एकता और न्याय में विश्वास करने वाले व्यक्ति हैं। अपदस्थ उमैय्यदों के शासन में जो कदराइट विचारधारा थी, मुतजिला विचारधारा उसी से निकली थी। कदराइट धर्मतांत्रिक शिक्षा देते थे जिसका आदमी को अपने कार्यों पर कदर (शक्ति) है। यह विचार अल्लाह की सर्वशक्तिमत्ता को, जिसका वर्णन कुरान में है, प्रत्यक्ष चुनौती थी। सन् ८२७ में मामून ने एक उग्र कदम उठाया जब कि उसने मुतजिला विचारधारा को राज्य-धर्म घोषित कर

दिया। एक महत्वपूर्ण घोषणा में, जो उसके प्रान्तीय गवर्नरों को सम्बोधित थी उसने कुरान के सृजन सिद्धान्त में अपना विश्वास प्रकट किया। उसके इस सिद्धान्त को नई धर्मनिष्ठता की कसौटी निर्धारित की। इसके बाद एक नया आदेश निकाला गया कि जो भी काजी (न्यायाधीश) यह नया सिद्धान्त न मानेगा वह अपने पद पर न रह सकेगा और न ही भविष्य में ऐसा व्यक्ति काजी पद पर नियुक्त किया जाएगा। इस आदेश की कार्यान्विति के लिए उसने एक परीक्षण न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) स्थापित किया जो इस दिशा में काजी के विश्वास की जाँच के लिए था। इस्लाम में इस प्रकार का यह पहला निर्णय था। और व्यंग्य की बात यह हुई कि इस प्रकार स्वतंत्र विचार के लिए यह (मुतजिला) आन्दोलन विचारों के दमन का माध्यम बन गया। यह परीक्षण मामून के भाई एवं उत्तराधिकारी मुतासिम (सन् ८३३-८४२) के शासन में भी कायम रहा। ८४८ ई० में मुतासिम के पुत्र मुताविक्ल ने इसे समाप्त कर दिया।

मामून का आकलन

मामून का शासन-काल निर्विवाद रूप से इस्लाम के सम्पूर्ण इतिहास में सर्वाधिक समुज्ज्वल और शानदार था। वह न केवल एक बहादुर सैनिक बल्कि सुयोग्य प्रशासक भी था। काम करने का उसका संकल्प, उसका चातुर्य, उसकी क्षमा-भावना और न्याय, उसकी विलक्षणता और विद्वता उसके व्यक्तित्व के प्रमुख अंग थे। इस प्रकार, जैसा कि ऊपर कहा गया है, उसका शासन-काल इस्लाम के इतिहास का समुज्ज्वल युग है। उसके शासन के तेईस वर्षों ने विचार-प्रणाली की सभी दिशाओं में मुसलमानों के बौद्धिक विकास के चिरस्थायी स्मृति-चिह्न छोड़े हैं। उसने वंश और जाति के बारे में कोई भेद-भाव न किया और सभी के लिए राज्य के पद खुले छोड़ दिये। सर्वप्रथम उसके दादा खलीफा अल-मंसूर ने धार्मिक स्वतंत्रता के विषय में जो कहा उसे व्यवहार में उतारा भी। पर जल्द ही उसकी प्रजा में से कट्टर धर्मनिष्ठ उसकी कथित विधर्मिता के बारे में उसके विरोध में इतने उग्र हो गए कि हिंसा पर उतर आये। फलतः खलीफा को हिंसा का मुकाबला हिंसा से करना पड़ा। उसने खिलाफत पर अपना औदार्य लागू करने के लिए अपने विरोधियों को धमकी दी कि यदि वे वैसी कार्रवाइयाँ करते रहे तो उन्हें अपने पद, सम्पत्ति और यहाँ तक कि जीवन से भी हाथ धोना पड़ सकता है। अल-मंसूर के शासन में परम्परावादियों को जिस तरह ढूंढ़ ढूंढ़ कर निकालना पड़ा और खलीफा के समक्ष परीक्षण के लिए उन्हें जिस अन्ध-उत्साह के साथ खींच-खींच कर लाना पड़ा वह बहुत कुछ वैसा ही था जैसा कभी मूर्तिपूजकों के साथ किया गया था। इससे मामून ने यह व्यंग्यपूर्ण सत्य अनुभव किया जिसे आधुनिक समय में "स्वतंत्रतावादियों" को अनुभव करना पड़ता है कि स्वतंत्रता में अपने भावी अत्याचार के बीज छिपे होते हैं। जब उसके शासनारूढ़ होने के बाद कुछ

धर्मनिष्ठ बुजुर्गों ने उससे प्रश्न किया कि वह सच्चे धर्मविश्वासियों की सहमति से या हिंसा के बल से सत्ता पर आया है तो मामून ने उत्तर में जो भाषण किया उसमें आधुनिकता का कुछ सुपरिचित स्वर है। वह बोला—"मैं न तो सच्चे धर्मविश्वासियों की सहमति से और नहीं अपनी हिंसा से सत्ता में आया हूँ·······जब मुझे सिंहासन का उत्तराधिकार मिला तो मैं जानता था कि मुझे साम्राज्य के पूर्व और पश्चिम दोनों ही भागों की जनता की एक जैसी निष्ठा की आवश्यकता है। साथ ही मैंने इस बारे में चिन्तन किया और तब इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि मैं सरकार की बागडोर नहीं संभालता तो इस्लाम की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो जायगा तथा उपद्रव और अशांति छिड़ेगी। इसलिए मैं जनता की सुरक्षा में उठ खड़ा हुआ और मैंने तय किया कि जब तक लोग शासक के रूप में एक व्यक्ति के बारे में सर्वसम्मति पर नहीं पहुँचते तब तक मैं शासन करूँ। ऐसे सर्वसम्मत व्यक्ति को मैं सत्ता सुपुर्द कर दूँगा। मेरा यह संदेश लोगों तक ले जाइए और उन्हें बतला दीजिए कि जिस क्षण वे अपना शासक चुन लेंगे उसी क्षण मैं उसके पक्ष में सत्ता छोड़ दूँगा"। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जनता द्वारा न तो सर्वसम्मत प्रधान चुना जा सका और न ही मामून को किसी के पक्ष में सत्ता छोड़नी पड़ी। ऐसा इस कारण कि उसने इस्लाम के इतिहास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक जागरण की अध्यक्षता की और उसका मार्ग-दर्शन किया। उसके पिता खलीफा हारून-अल रशीद को अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स) की कथाओं की चकाचौंध और रंग-ओ-रौनक के लिए याद किया जाता रहेगा पर जैसा कि इतिहासकार अल थलीबी हमें बतलाता है, अब्बासिद युग मामून के शासन-काल में पूर्ण परिपक्वता की स्थिति में पहुँचा। इस उल्लेखनीय शासक में अरब और फारसी रक्त का सम्मिश्रण था। इसे ही इस बात का श्रेय है कि इसने ही बगदाद को कंकड़-मिट्टी के एक ढूह से संसार में संस्कृति और अध्ययन तथा ऐश-ओ-आराम की जिन्दगी के केन्द्र के रूप में उस समय परिणत किया जब यूरोप के नेता अपना नाम तक लिखना न जानते थे। मामून के शासन में पूर्व और पश्चिम दोनों ही जगह अध्ययन का पुनर्जागरण हुआ। और जैसा कि फिलिप के० हिट्टी ने लिखा है :—"एक विदेशी दासी के पुत्र एवं खिलाफत की लड़ाई में एक शुद्ध अरब रक्त वाले व्यक्ति (अल-अमीन) के विरुद्ध विजेता अनुदारता के युग में उग्रतावादी शासक, वैचारिक क्रान्ति के प्रोत्साहक एवं पश्चिम की शास्त्रीय विरासत में अपनी जनता के सहभागी मामून ने अपनी पहलकदमी से जनता को परम्परोन्मुख सांस्कृतिक चरण से रचनात्मक चरण में ले आने में सफलता प्राप्त की और अपनी राजधानी को विश्व के बौद्धिक केन्द्र में परिणत कर दिया।"[८]

---

८. फिलिप के० हिट्टी, "मेकर्स ऑफ अरब हिस्ट्री," मैकमिलन (मेलबोर्न, टोरंटो, लंदन), १९६८, पृ० ९४।

अल-मुतासिम (सन् ८३३-८४२)

अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व मामून ने राजाज्ञा द्वारा अपने भाई अबू इशाक मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। उस युग से इतने अधिक समय के बाद यह समझ पाना कुछ कठिन-सा है कि किन कारणों से उसने अपने पुत्र अब्बास के स्थान पर अपने भाई अबू इशाक मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी बनाया। पुत्र अब्बास सेना, विशेषकर अरब सैनिकों के बीच लोकप्रिय था। संभवतः मामून ने सोचा हो कि अब्बास बहुत जल्द किसी के प्रभाव में आ जाने वाला है और इस प्रकार, राज्य के संचालन के लिए उसके द्वारा विनिहित नीति पर न चल सके। शायद उसने यह सोचा हो कि मुहम्मद का चरित्र ज्यादा शक्तिशाली और परिपक्व है और वह उसकी नीतियों को अच्छी तरह आगे बढ़ा सकेगा और उसके कार्यों का सातत्व जारी रख सकेगा।

मुहम्मद जो मिस्र में गवर्नर था, बिना किसी संघर्ष और विवाद के शासनारूढ़ हुआ। उसने अपना शाही नाम "अल-मुतासिम-बिल्लाह"[१] रखा, क्योंकि सेना ने जिसने अब तक मामून के पुत्र अब्बास के प्रति निष्ठा की शपथ ले रखी थी, मुतासिम के अभ्युदय के बाद अब उसी के प्रति निष्ठा प्रदर्शित की।

आन्तरिक विद्रोहों का दमन और बैजेन्टाइनों से युद्ध

पर फिर भी ईराक में जो असुरक्षित स्थिति जारी थी वह राजवंश की गिरती प्रतिष्ठा की द्योतक थी। दक्षिणी ईरान में बसरा और वासित के बीच दलदली भूमि में सासानिदों (फारसियों) ने जाट (अरबी में अल-जट्ट) नाम से जाने जाने वाले कुछ भारतीयों को बसा लिया था। न मालूम क्यों इन लोगों ने यह देश पसन्द कर लिया था। मुसलमान पहले इन्हें किसी भेद-भाव के, सेना में भरती करते थे। ये लोग मामून के समय में ही दुर्दमनीय सिद्ध हो रहे थे। अनेक वर्षों तक ये लोग बगदाद और बसरा के बीच सवारियों का आवागमन रोकते रहे। मुतासिम इनके विरुद्ध कड़े कदम उठाने के लिए बाध्य हुआ। इन लोगों के विरुद्ध कारवाई की जाने लगी पर सन् ८२५ में जा कर ही इन पर निश्चित विजय प्राप्त की जा सकी। इन्हें सिलसिया के सीमास्थित किले आइन जरबा में चले जाने को बाध्य किया गया।

अल-मुतासिम का सबसे प्रसिद्ध सेनापति अभी भी निश्चित रूप से एक फारसी हैदर इब्न-कौस था जिससे सामान्यतः आफशिन के नाम से जाना जाता है।

१. "वह जिसकी अल्लाह में दृढ़ निष्ठा है।" इसके बाद से खलीफा इसी प्रकार की उपाधियाँ रखने लगे।

यह नाम उसे अपने पूर्वजों से मिला था जो मध्य एशिया में उशरूशाना के भूतपूर्व राजा थे। सन् ८३७ में, शरत् ऋतु में, अजरबैजान के एक गुट के नेता बाबाक के किले पर जबरन, तेजी से आक्रमण कर उसका शासन भंग करने में आफशिन को सफलता मिली। उसने इसके बाद बैजेन्टाइनों की ओर ध्यान दिया। उनके सम्राट थियोफिलस ने उत्तरी सीरिया और मेसोपोटामिया पर हमला कर दिया था। आफशिन ने धोखेबाजी से गैलेशिया में तत्कालीन बैजेन्टाइन शासक राजवंश के संस्थापक के जन्मस्थान एमोरियम की लम्बी अवधि तक घेरेबन्दी करके सम्राट को परास्त कर दिया। इस कारण सम्राट थियोफिलस को अपनी राजधानी अपने हाथ से निकल जाने का इतना अधिक भय हुआ कि वेनिस से, फ्रैंकिस राजा से और उमैय्यद-शासित स्पेन से, अपने दूत भेज कर सहायता की माँग की। पर सम्भवतः सच बात यह है कि सेनापति आफशिन की इन सफलताओं से खलीफा अल-मुतासिम को ईर्ष्या हुई। घर वापस आने पर आफशिन ने मामून के पुत्र अब्बास को सत्ता दिलाने का एक षड्यंत्र भी कुचल दिया। फिर भी खलीफा ने सन् ८४० में उस पर इस्लाम धर्म-त्याग का आरोप लगाया और उसे एक काल-कोठरी में भूखों मर जाने के लिए डाल दिया क्योंकि अब कोई किसी को सूली पर चढ़ा कर दण्डित करने का साहस न करता था।

पर अब ऊपर उल्लिखित बाबाक के उपद्रव पुनः सभी क्षेत्रों में फैलने लगे थे, अतः उसे परास्त करने की समस्या पुनः अत्यन्त महत्वपूर्ण हो उठी थी।

तुर्की सैन्य दल का निर्माण

अरबी और फारसियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता की समस्या भी थी। फारसियों के प्रति मामून ने अपने शासन के प्रथम वर्षों में विशेष पक्षपात दिखलाया था। इस कारण उसने अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा का भार दासों की एक छोटी-सी सेना को सौंपा था। इसमें बर्बर जनजाति के लोग थे पर मुख्यतः तुर्क थे। तुर्क औक्सस नदी के उस पार से आते थे। उनमें से कुछ को देशी राजा कर-स्वरूप भेजते थे और कुछ दास-व्यवसाय के माध्यम से प्राप्त किये जाते थे। इस छोटी-सी सेना का नियंत्रण मुक्त किये गये लोगों के हाथों में होता था, पर मुतासिम ने, निःसंदेह, अपने प्रति इन लोगों की अधिक निष्ठा सुनिश्चित करने के लिए, सेना के पदाधिकारियों के पदों पर अपने व्यक्तिगत दास नियुक्त करने का निश्चय किया। उसके शासन में इन अंगरक्षक अधिकारियों का सरकार पर प्रभाव बढ़ गया। और फिर कुछ समय बाद तो वे राज्य के वास्तविक स्वामी हो गए। अधिकांशतः तुर्कों से भरे हुए इस लघु सैन्य दल से अरबों को एक लम्बे अरसे से खतरा था, यह बात समझदार लोगों के लिए सुस्पष्ट थी। मुतासिम के शासन का एक लेखक इब्न साद पैगम्बर मुहम्मद के

एक साथी के कथन के रूप में यह भविष्यवाणी अंकित करता है कि दिन आएगा जब तुर्क अरबों को अपने मूल स्थान रेगिस्तानों में वापस भेज देंगे।

राजधानी का परिवर्त्तन

जब कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में खलीफा हारून अल रशीद ने बगदाद की अशांति देखते हुए यूफ्रेटस नदी के किनारे रक्का में अपने रहने के लिए एक छोटा ग्रामीण गृह बनवाया तो सन् ८३६ में मुतासिम ने निश्चय किया कि बगदाद से एक सौ किलोमीटर ऊपर टिगरिस नदी के पूर्वी किनारे पर समारा में अपने लिए निवास स्थान बनवाये। सम्भवतः इस फारसी नाम में अरबों को एक अपशकुन छिपा प्रतीत हुआ, इसलिए सरकारी प्रयोग में इस नाम को बदल कर **"सुरा मान रा"** (अर्थात् इसे देख दर्शक प्रसन्न होते हैं) रखा गया। मुतासिम ने इसके निर्माण का भार अपने एक तुर्की सेनापति आशनास पर सौंपा। टिगरिस नदी से दो शाखा-उपनदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं, उनके और टिगरिस नदी की मुख्य धारा के किनारों पर बसे रहने के कारण खलीफा की सुरक्षा के लिए बने इस नये उपनगर को एक द्वीपीय स्वरूप मिल गया। आठ ईसाई मठ वहाँ पहले ही स्थापित किए जा चुके थे। जासाक का किला पहले खुद मुतासिम ने बनवाया। उसके उत्तराधिकारियों में से सात ने प्रायः अर्द्ध-शताब्दी तक यहाँ अपना दरबार किया। फलतः यहाँ और महल और मस्जिदें बनीं। बाद की विकास और समृद्धि की छोटी-सी अवधि में यहाँ जो अनेक शानदार भवन बने, उनके अब ध्वंसावशेष ही देखे जा सकते हैं। वहाँ हमें अब्बासिद युग की वास्तु (भवन-मिर्माण) कला का जो जीवन्त दृश्य देखने को मिलता है वह उस युग की राजधानी बगदाद में नहीं मिलता। इस स्थान-समारा में सबसे महत्त्वपूर्ण महल बलकुमारा का है जिसकी नींव अभी भी सुरक्षित है। इसे मुतासिम के बाद हुए खलीफा मुतावक्किल ने बनवाया था। यह रूपांकन, क्षेत्रों के व्यवस्थापन और अग्र भाग की बनावट आदि में टेसीफोन के फारसी महलों के नमूने पर बनवाया गया। यह आयताकार है और इसकी दीवारें दो-तिहाई मील लंबी हैं। पश्चिमी किनारे पर, चबूतरों के सामने यह नदी की ओर ढालुआ होता गया है। फिर वहाँ मिट्टी के बने तीन मेहराब हैं जिनके आगे निवास-भवन और सार्वजनिक स्वागत-कक्ष हैं। ये तीन भीतरी दीवारों के चारों ओर बड़े क्रास-चिह्न के रूप में बनाये गये हैं और इनके चारों ओर अनेक स्नान एवं शौच-गृह हैं। पूर्व में एक महल के पास एक उद्यान है जिसमें झरने हैं। उत्तर में गुफाओं और हौदों के बीच एक बड़ा तालाब है। तालाब के चारों ओर दरबार-परिचरों के लिए कमरे और महल-रक्षियों के लिए बैरक हैं।

तबरिस्तान में विद्रोह और मुतासिम की मृत्यु (सन् ८४२)

अपने नये निवास-स्थान (राजधानी) में मुतासिम लौटा ही था कि मैज़ियर नामक व्यक्ति के नेतृत्व में तबरिस्तान में एक भीषण विद्रोह छिड़ गया। इसे बड़ी कठिनाई से दबाया जा सका और मैजियर को मौत की सजा दी गई (सन् ८४१)। "मुतासिम के साथ," इतिहासकार गिब्न लिखता है, "उसके परिवार और राष्ट्र की प्रतिष्ठा एवं उच्चता समाप्त हो गई।" कहा जाता है कि मुतासिम ने कृषि को आगे बढ़ाया और साम्राज्य के साधन-स्रोतों का विकास किया। वह अत्यन्त क्रुद्ध प्रकृति और कठोर हृदय का था। उसके मुख्य काजी (न्यायाधीश) अहमद का, जो दुवाद का पुत्र था, उस पर बड़ा प्रभाव रखता था। उसने उसे अनेक क्रूर कार्य करने से बचाया। काजी की सलाह से अकसर मुतासिम के वजीर के असत्यपरामर्श प्रभावहीन हो जाते थे।

अल-वाथिक बिल्लाह (सन् ८४२-८४७), उसके उत्तराधिकारी एवं अब्बासिद खिलाफत का ह्रास

मुतासिम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अल-वाथिक बिल्लाह हुआ। उसके चरित्र को कुछ धर्मनिष्ठ लेखकों ने गलत ढंग से पेश किया है। वास्तव में वह एक "उदार और क्रोध में धैर्य और शांति रखने वाला" सम्राट था। उसका शासन दृढ़ और प्रबुद्ध था। यद्यपि वह खुशमिजाज था पर फिर भी उसका निजी जीवन अनिंद्य था। वह साहित्य और विज्ञान का संरक्षक एवं व्यापार और वाणिज्य को आगे बढ़ाने वाला था। वह साहित्य में तो रुचि रखता ही था, और साथ ही संगीत में भी पारंगत था। कहा जाता है कि उसने कई लय, तान और रागों की रचना की। उसकी दानशीलता असीम थी। उसके साम्राज्य में उसके शासन-काल में एक भी भिखारी न था। उसके शासन में यूनानी और सारासेनी (अरबी) बंदियों की बड़े पैमाने पर अदला-बदली हुई।

वाथिक ने अपने पिता की यह घातक गलती जारी रखी कि अरबों और फारसियों के मूल्य पर तुर्की को बढ़ावा देता रहा। उसके शासन में तुर्की सेनापतियों ने बगदाद में अपनी-अपनी शक्ति इतनी सुदृढ़ कर ली कि खलीफा को प्रमुख तुर्की सेनापति आशनास को, केवल उसके फौजी कार्यों से परे उसके अधिकारों को मान्यता देते हुए उसे एक सुल्तान की सी प्रतिष्ठा देनी पड़ी। वाथिक ने अपनी जनता के तर्कवादी सिद्धांतों को विकीर्ण और विस्तारित करने के लिए कठिन श्रम किया पर उसके विरुद्ध छिपे तौर पर काम कर रहे उसके प्रतिक्रियावादी विधि-वेत्ताओं ने उसके इन प्रयासों के विरुद्ध कार्य किया। वाथिक की असमय मृत्यु एक अचिन्त्य

विपत्ति सी थी क्योंकि उसके साथ ही अब्बासिदों का उत्कर्ष भी समाप्त हो गया। फिर दो शताब्दियों तक उनके इतिहास का अत्यधिक अव्यवस्थित चित्र मिलता है जिसमें एक के बाद एक ऐसे खलीफा पदासीन हुए जिन्हें कुछ भी वास्तविक अधिकार न था और फलतः, जिनकी मृत्यु पर किसी ने भी शोक न किया।

जब कम उम्र में वाथिक का जीवनान्त हो गया (सन् ८४७), तो ऊपर उल्लिखित तुर्क सेनापति आशनास का उत्तराधिकारी वासिफ इतना शक्तिशाली हो गया था कि वह जिसे भी उचित समझे खलीफा की कुर्सी पर बैठा दे। सबसे पहले उसने वाथिक के नाबालिग पुत्र मुहम्मद को खलीफा बनाया। ऐसा निश्चित प्रतीत होता है कि इसमें उसे सर्वोच्च असैनिक अधिकारियों की सहमति प्राप्त थी। बाद में उसने मुहम्मद को हटा कर उसके चाचा जफर अल मुतवक्किल बिल्लाह को खलीफा के रूप में पदासीन किया। पर नये खलीफा ने जल्द ही अपने सम्राट निर्माताओं के प्रभाव से मुक्त करने की कोशिश की। उसके वजीर इब्न-अज-जययत को, जो उसके विरुद्ध काम कर रहा था, इसके लिए प्रायश्चित करना पड़ा जब तीन वर्ष बाद मुतवक्किल (८४७-६१) सिंहासनारूढ़ हुआ। खलीफा ने तुर्क सेनापति इताख को भी हटा दिया जिसने वाथिक के साथ उपर्युक्त वजीर की ओर से काम किया था। मुतवक्किल ने शिया लोगों के प्रति घृणा प्रदर्शित की। उन लोगों के तीर्थ-स्थान कर्बला में हुसेन का मकबरा ध्वस्त कर दिया गया और कर्बला की तीर्थयात्रा पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

अपने शासन के प्रारम्भ में खलीफा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और यह प्रावधान रखा कि (उसके ज्येष्ठ पुत्र के) बाद उसके दो कनिष्ठ पुत्र एक के बाद एक खलीफा बनेंगे। पर अपने प्रिय पात्र फात इब्न खाकान के प्रभाव से उसने बाद में अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने कनिष्ठ पुत्र अल-मुताज को तरजीह दी। तुर्की अंगरक्षकों की शक्ति को ताहिरी वंश का शासक मुहम्मद भी नष्ट न कर सका जो सन् ८५१ में बगदाद का गवर्नर नियुक्त किया गया। पर खर्चीला खलीफा अपने अंगरक्षकों की माँगें बराबर पूरी न कर पाता था, इसलिए सन् ८५८ में वह उनके प्रभाव से मुक्त होने के लिए दमिश्क चला गया। फिर वह जल्द ही बैबीलोनिया वापस आ गया। बाद में उसने मदीना में सेनापति वासिफ की सम्पत्ति जब्त करने की ढिठाई की। वासिफ ने इसके प्रत्युत्तर में खलीफा पद के उत्तराधिकारी अल-मुंतसिर से मिल कर खलीफा के विरुद्ध षड्यंत्र किया जिसके परिणामस्वरूप दिसम्बर ९-१० सन् ८६१ की रात्रि में खलीफा की हत्या, समारा के फाटक के बाहर नव-निर्मित उसके किले अल-जफरीह में हो गई।

अपने पिता का हत्यारा नया खलीफा केवल छः महीनों तक सत्ता में रह सका। उसने पद पर अपने को सुरक्षित करने के लिए अपने भाइयों को पद के लिए अपना हक छोड़ देने को जबर्दस्ती तैयार करने की कोशिश की पर वह इसमें सफल न हुआ। उसने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के अनुयायियों को भी, इसी उद्देश्य से, संरक्षण दिया। उल्टे उसे जहर देकर मार डाला गया। फिर सम्राट निर्माता के रूप में कार्यरत तुर्कों ने मुतवक्किल के एक भतीजे अहमद अल-मुस्ताइन बिल्लाह (सन् ८६२-६६) को सत्ता पर बैठाया। केवल चार साल के शासन के बाद उसने अपने सब अधिकार खो दिए। दरअसल अब खलीफा का पद तुर्क सेनापतियों की आपसी गुटबंदी की लड़ाई का छायाभास-सा हो गया था। खलीफा अपने को तुर्कों के हाथों में असुरक्षित महसूस कर बगदाद भाग गया। तुर्कों ने अब मुतवक्किल के द्वितीय पुत्र को अल मुताज (जनवरी ८६६) की उपाधि के अधीन खलीफा घोषित किया।

मुताज (८६६-६९) ने तुर्कों को, जिनके कारण ही वह खलीफा बना, अपने अफ्रिकी अंगरक्षक के प्रति संतुलित करने की चेष्टा की। पर साढ़े चार साल बाद वह भी अपदस्थ कर दिया गया और तुर्कों की धन की माँग स्वीकार करने में समर्थ न होने के कारण उन लोगों ने जुलाई ८६९ में उसकी हत्या कर डाली। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद अल-मुहतादी-बिल्लाह ने, जो वाथिक का पुत्र था, अत्यधिक अव्यवस्थित आर्थिक स्थिति में कुछ व्यवस्था लाने के लिए दरबार के खर्च में कटौती की। पर जब वह अपने शासन का पहला साल भी पूरा न कर पाया था, उसकी भी हत्या कर डाली गई।

पर इस बीच राजधानी में अच्छाई के लिए एक परिवर्तन हुआ। यद्यपि नया खलीफा अल मुतामिद (सन् ८७०-९२), जो मुतवक्किल का पुत्र था, स्वयं काफी अयोग्य था, उसने सत्तारूढ़ होने के तुरत बाद अपने शक्तिशाली भाई को अल-मुअफ्फक बिल्लाह को उपशासक के रूप में नियुक्त कर दिया। सन् ८७१ की गर्मियों में नई राजधानी समारा में ज्यों ही अल-मुअफ्फक ने अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली, उसने नीग्रो लोगों के विरुद्ध, जिन्होंने उपद्रव मचा रखा था, एक सेना भेजी। सेना को पहले कुछ सफलता मिली पर वह नीग्रों लोगों से पूरी तरह निबट न सकी। यहाँ तक कि आस-पास के क्षेत्रों में बर्बर जनजाति के लोग भी विद्रोही नीग्रो लोगों से मिल गए थे। ७ सितम्बर सन् ८७१ में शुक्रवार की नमाज के अवसर पर उन्होंने बसरा पर अचानक हमला किया। उस समृद्ध नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और खूँरेजी का अजीब-ओ-गरीब तथा लोमहर्षक समाँ पैदा किया गया। इसमें, कहते हैं कि कम-से-कम ३००,००० आदमी मौत के घाट उतार दिये गये और सर्वत्र आग लगा दी गई। खुद मुअफ्फक, जिसने सन् ८७२ में विद्रोहियों से युद्ध का खुद

सेनापतित्व किया, पराजित हुआ। और तभी पूर्वी क्षेत्र में भी एक नया खतरा पैदा हुआ जिस कारण मुअफ्फक को कुछ समय तक नीग्रो लोगों पर से ध्यान हटा कर उस खतरे से निबटने में लगना पड़ा। विद्रोही नीग्रो लोगों ने न केवल बैबीलोनिया के महत्त्वपूर्ण नगर बासित पर कब्जा कर लिया बल्कि खजिस्तान में भी अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। और तब मुअफ्फक ने, सावधानी और शक्ति के साथ, विद्रोहियों के विरुद्ध अपनी लड़ाई फिर शुरू की। उनके नगर पर, जो चारों ओर से नहरों से घिरा हुआ था, हमले के लिए जहाजों का निर्माण कराना पड़ा। इस लड़ाई में मुअफ्फक का पुत्र अहमद अबू-अल-अब्बास ने भी भाग लिया जो बाद में खलीफा अल-मुतादिद के नाम से सत्तासीन हुआ। पहले मुअफ्फक ने छोटी-छोटी जीत से सन्तोष किया और इसके लिए चेष्टा की कि शत्रु की सेना के अधिकारी और खासकर सामान्य सैनिक उनका साथ छोड़ कर इस ओर चले आएँ। बाद में मुअफ्फक स्वयं युद्ध-मंच पर प्रकट हुआ। पर जुलाई सन् ८८३ में जब सीरिया में शासनारूढ़ मिस्र के गवर्नर के राजपदाधिकारी लूलू की सेना मुअफ्फक की सेना के साथ आ मिली तभी मुअफ्फक ने निर्णायक युद्ध छेड़ा। यहाँ उल्लेखनीय है कि लूलू ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया था। अंत में, अगस्त सन् ८८३ में, लूलू की शक्तिशाली सेना के सहयोग के चलते, शत्रु के नगर का पतन हुआ। इस प्रकार विद्रोह, जिसने इतने लम्बे समय तक खिलाफत के सबसे धनी प्रांत को अशांत और अस्त-व्यस्त कर रखा था, अंतिम रूप से कुचला जा सका। ठीक उसी समय पूर्वी क्षेत्र की भाँति साम्राज्य का पश्चिमी क्षेत्र भी केन्द्रीय सरकार के प्रभाव से पूरी तरह अलग हो चुका था। पहले अनेक दशकों तक मिस्र का शासन साधारणतः अब्बासिद राजाओं या तुर्क भद्रजनों के प्रतिनिधि चलाते थे। वे लोग राजधानी में ही अपनी आमदनी पर रहना पसन्द करते थे ताकि निरन्तर परिवर्तित हो रहे राजनीतिक परिदृश्य में अपने व्यक्तिगत स्वार्थों पर ध्यान रख सकें।

पर खलीफा मुतवक्किल की मृत्यु के बाद, व्यवहारतः, अब्बासिद साम्राज्य का तेजी से विघटन शुरू हुआ। बाद के खलीफा जैसे कि मुन्तासिम (८६१-६२), मुस्तैन (८६२-६६), मुताज (८६६-६९), मुक्तफी (९०२-९०८), मुकतादिर (९०८-से ३२), काहिर (९३२-३४), रदी (९३४-४०), मुत्तकी (९४१-४४), मुस्तक्फी (९४४-४६), मुती (९४६-७४), ताई (९७४-९१), कादिर (९९१-१०३१) और कैम (१०३१-७५) अधिकतर अयोग्य और नाकाबिल थे। वे साम्राज्य के अत्यन्त द्रुत पतन के ज्वार को रोकने के लिए शक्तिशाली कदम न उठा सके। और फिर साम्राज्य में तुर्कों के प्रभुत्व ने उनके पतन की गति को और भी तीव्र कर दिया। साम्राज्य के विघटन के फलस्वरूप अनेक राज्यों और भिन्न-भिन्न

राजवंशों का अभ्युदय हुआ जैसे कि ताहिरिदी (जो सन् ८७२ तक सत्ता में रहे), सफरिदी (८६७-९०८), समनी (८७४-९९९), स्पेन के उमैय्यद (९२९-१०३१), इद्रीसी (७८८-९७४), अगलाविद (८००-९०९), गजनी वंश, मिस्र और बुवेहिद, सीरिया का तुलूनिद राजवंश (८६८-९०५) और अल फुस्तात (फरगना के तुर्की राजवंश) के इख्शीदीद।

इस प्रकार सन् ८२० में एक शक्ति—"बगदाद के खलीफा" के हाथों में केन्द्रित थी, उतनी संसार के और किसी भी व्यक्ति के हाथों में नहीं। सन् ९२० तक उनके उत्तराधिकारी की शक्ति इस प्रकार मंद पड़ गई कि उसे राजधानी नगर तक मुश्किल से महसूस किया जा सकता था। सन् १२५८ आते-आते मंगोलिया के चंगेज खाँ के पौत्र हलाकू के खूँखार हमलों की सफलता से खुद बगदाद नगर नष्ट-भ्रष्ट और ध्वस्त पड़ा था। अब्बासिदों के पतन के साथ ही अरबों के प्राधान्य का हमेशा के लिए अंत हो गया और वास्तविक खिलाफत के इतिहास का अंतिम अध्याय समाप्त हो गया।

●

अध्याय-१३

अब्बासिद : राज्य और प्रशासन

तथ्य और सिद्धान्त के बीच जैसा संघर्ष राजनीति में है वैसा और कहीं नहीं। पैगम्बर मुहम्मद अपने उत्तराधिकारी के बारे में कोई आदेश छोड़े बिना ही गुजर गये। फलतः मक्का और मदीना के बीच मुश्किल से फूट होते-होते बची और हजरत मुहम्मद के सहायक अबू बकर खलीफा चुने गये। उन्होंने अपने उत्तराधिकारी के रूप में उमर का मनोनयन किया। उमर ने अपने बाद का खलीफा चुनने के लिए एक समिति गठित कर दी। अली ने मदीना की जनता द्वारा अपने को खलीफा के रूप में स्वीकार किये जाने के लिए कोशिश की। अरबों के बीच जो प्राधिकार सुपरिचित था वह एक जनजातीय प्रधान का था। यह प्रधान बड़ा प्रभावशाली होता था पर उसे कोई प्रत्यक्ष शक्ति न रहती थी। वह लोगों को मना कर एवं अपने व्यक्तित्व की शक्ति से शासन करता था। ऐसे ही थे धर्मनिष्ठ खलीफा। आधुनिक मुस्लिम लेखक उनके शासन को गणतंत्र कहते हैं पर यह सच नहीं। धर्मनिष्ठ खलीफा किसी भी सलाहकार की बात सुनने को तैयार थे पर करते वही थे जो उन्हें उचित प्रतीत होता था। उमैय्यदों पर आरोप लगाया जाता है, जो कुछ हद तक सही है कि उन्होंने राजसत्ता को वंशक्रमानुगत बना दिया पर पहले के शासक बड़े अरब प्रधानों के जैसा व्यवहार करते थे। पर उन्हें भी अपना उत्तराधिकारी चुनना पड़ता था जिसे जनता द्वारा मान्यता प्राप्त होती थी। अब्बा-सिदों ने इस संबंध में अपने व्यवहार में कोई बड़ा परिवर्त्तन न किया। राजवंश में परिवर्त्तन ने राज्य के संगठन में विकास की एक प्रक्रिया पूरी की जो उमैय्यदों के अधीन पहले से ही आरंभ हो चुकी थी।

अब्बासिद खलीफा की सम्पूर्ण शक्ति

अब्बासिद सरकार का स्वरूप सम्पूर्ण राजतंत्र का था। अब्बासिद प्रशासन में खलीफा का पद सर्वोच्च था और वही सम्पूर्ण शक्ति का मूल स्रोत था। अरब जन-जातीय शेख शासक जाति की अनिच्छुक सहमति से शासन करता था। अब खलीफा एक निरंकुश शासक हो गया जिसका दावा था कि उसके अधिकार का दैवी स्रोत है। वह अधिकार नियमित सशस्त्र सेनाओं पर निर्भर करता था और एक सवैतनिक नौकरशाही-तंत्र द्वारा कार्यरूप में परिणत किया जाता था। [illegible]

अपने असैनिक अधिकार की कार्यान्विति का भार विज़ीर (वजीर) को सौंप सकता था और सौंपता भी था। उसी प्रकार वह अपनी न्यायिक शक्ति न्यायाधीश (काजी) और सैनिक शक्ति सेनापति (अमीर) को सौंप सकता था। पर सभी सरकारी मामलों का अंतिम निर्णायक होता था। अपने शाही आचरण और कार्यों में बगदाद (अब्बासिद राजवंश) के आरंभिक खलीफा पुराने फारसी ढाँचे पर चलते थे। फिर भी उन लोगों ने एक इमाम के रूप में अपने पद के धार्मिक स्वरूप और प्रतिष्ठा पर जोर दिया जो बाद के खलीफाओं के काल में उनकी वास्तविक शक्ति के सम्बन्ध में उलटे अनुपात में बढ़ गया। खलीफा की शक्ति पर व्यवहारतः कोई रोक न थी। वह राज्य, मस्जिद और राष्ट्रमंडल का प्रधान था और इस प्रकार दैवी सत्ता का वास्तविक सरकारी प्रतिनिधि था।

पर इस्लामी कानून के अनुसार अल्लाह ही राज्य का प्रधान है और वह कानून के माध्यम से शासन करता है। राज्य का पार्थिव प्रधान, जिसे कानून में इमाम कहा गया है, वह कार्यपालक प्रधान है जो कानून को प्रवर्तित या कार्य-रूप में परिणत करता है जो कि एक राजनीतिक एवं सामाजिक आवश्यकता है। कुछ लोगों का तर्क है कि चूंकि इमाम का पद संघर्ष का कारण बनता रहा है अतः उसके बिना ही काम चलाना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा और केवल कानून से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए। यह माना गया है कि यदि इमाम का पद बनाया ही जाय तो उसका चुनाव समुदाय के नेता करें। इस धारणा में यह बात निहित है कि समुदाय के ये नेता कानून में पारंगत होंगे। प्राधिकार के तत्त्व में बल का जो निरन्तर बढ़ता प्रभाव है उसका उदाहरण हमें अब्बासिद दरबार में जल्लाद के महत्त्वपूर्ण स्थान के रूप में मिलता है जिससे अरब सहस्र रजनी (अरेबियन नाइट्स) के पाठक सुपरिचित हैं। नये शासन में किसी का वंश उसके विकास में सहायक न था बल्कि आगे बढ़ने का जरिया केवल सम्राट (खलीफा) की कृपा थी और अरब कुलीनतंत्र का स्थान एक पदाधिकारी-पदसोपान ने ग्रहण कर लिया था। अब खलीफा की नई प्रतिष्ठा उसकी उपाधियों के माध्यम से अभिव्यक्त की जाती थी। अब वह मात्र अल्लाह के पैगम्बर का प्रतिनिधि न रह गया था बल्कि खुद ही अल्लाह का प्रतिनिधि बन चुका था। उसका दावा था कि वह अल्लाह से सीधे अपना प्राधिकार प्राप्त कर रहा है। "पृथ्वी पर अल्लाह की छाया" की प्रशंस्य उपाधि में यही धारणा निहित है। जब कि पहले के खलीफाओं के पास कोई भी व्यक्ति पहुँच सकता और उसे उसके नाम से संबोधित कर सकता था तो अब्बासिदों ने अपने इर्द-गिर्द एक व्यापक एवं पदाधिकारियों के पद-सोपान से युक्त दरबार की शान-ओ-शौकत और औपचारिकता कायम कर दी। जहाँ तक व्यवहार का सम्बन्ध है खलीफा अभी भी **शरीयत** यानी इस्लामी दैवी कानून के

अधीन था पर उसके प्राधिकार पर रोक प्रभावी न थी क्योंकि इसे कार्य रूप देने के लिए विद्रोह के अलावा और कोई यंत्र न था। इसलिए अब्बासिद खिलाफत सैनिक बल पर आधारित एवं दैवी अधिकार का दावा करने वाली निरंकुशता मात्र थी। अब्बासिद उमैय्यदों से इस अर्थ में शक्तिशाली थे कि उन्हें अरबों के समर्थन पर निर्भर करने की जरूरत न थी, इसलिए वे लोगों को मनाने के बजाय उन पर शासन कर सकते थे। दूसरी ओर वे इस बात में उनसे कमजोर थे कि उन्हें एक सुस्थापित सामन्ती जाति और जनता के भीतर भलीभाँति जमे हुए एक पुरोहित वर्ग का समर्थन प्राप्त न था। आठवें खलीफा अल-मुतासिम बिअल्लाह (सन् ८३३-४२) से लेकर राजवंश के अंत तक वे अपने लिए आदरणीय उपाधियाँ ग्रहण करने लगे जो अल्लाह के नाम से जुड़ी हुई होती थी। उनके पतन के मार्ग पर जाते हुए उनके प्रजाजन उन पर आवश्यकता से अधिक सम्मानपूर्ण उपाधियों की मानो वर्षा-सी करने लगे जैसे कि खिलाफत-अल्लाह (अल्लाह का खलीफा) और बाद में जिल अल्लाह अला अल-अर्द (पृथ्वी पर अल्लाह की छाया)। ये उपाधियाँ पहले अल-मुतवक्किल (सन् ८४७-६१) को प्रदान की गई और फिर ओटोमान खिलाफत के अन्त तक जारी रहीं।

उमैय्यदों द्वारा शुरू किया गया वंशगत उत्तराधिकार सिद्धांत सम्पूर्ण अब्बासिद शासन-अवधि में जारी रहा और उसके परिणाम भी उतने ही बुरे हुए जितने अब्बासिद अवधि में हुए थे। सत्तारूढ़ खलीफा अपने पुत्रों में से किसी को, जिसके प्रति उसका पक्षपात रहता था या जिसे वह सक्षम समझता था अथवा अपने किसी रिश्तेदार को, जिसके प्रति उसका पक्षपात था या जिसे वह योग्य समझता था अथवा जिसे वह उक्त पद के लिए सर्वाधिक सक्षम समझता था, अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर देता था। सफा ने अपने भाई मंसूर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और मंसूर ने अपने पुत्र हादी को उत्तराधिकारी मनोनीत किया। हादी का उत्तराधिकारी उसका भाई हारून-अल रसीद हुआ। हारून ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अमीन को अपना प्रथम उत्तराधिकारी और अपने कनिष्ठ पर अधिक प्रतिभासम्पन्न पुत्र मामून को द्वितीय उत्तराधिकारी मनोनीत किया। हारून ने साम्राज्य को दो हिस्सों में बांट दिया। मामून के लिए खुरासान की गवर्नरी सुरक्षित की गई और उसकी राजधानी मर्व रखी गई। बाद में दोनों भाइयों के बीच भीषण संघर्ष हुआ जिसका अंत अमीन की हत्या (सितम्बर सन् ८१३) के साथ हुआ। मामून ने तब खिलाफत की सत्ता संभाली। चार वर्ष बाद जब उसने अब्बासिदों के काले झण्डे के स्थान पर शिया लोगों का हरा झण्डा अपनाया और चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के एक अनुयायी अली अल-रिदा को अपना उत्तरा-

धिकारी मनोनीत किया तो इस कारण क्रुद्ध बगदादवासियों ने मामून के चाचा इब्राहीम इब्न-अल-महदी को खलीफा के रूप में चुन लिया। अपने बड़े भाई और पूर्ववर्ती खलीफा अमीन की मृत्यु के छः वर्ष बाद ही सन् ८१९ में मामून साम्राज्य की राजधानी में प्रवेश कर पाया। अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व मामून ने अपने पुत्र अल-अब्बास की उपेक्षा करते हुए अपने भाई अल-मुतासिम को अपना उत्तराधिकारी बनाया जिससे बाद में चल कर सेना की ओर से, जिसके बीच अल-अब्बास लोकप्रिय था, विद्रोह हुआ। मुतासिम के बाद उसका पुत्र वाथिक (सन् ८४७) खलीफा हुआ जिसके साथ ही प्रथम चौबीस अब्बासिद खलीफाओं का गौरव समाप्त हो गया। सब मिलाकर इन खलीफाओं ने अढ़ाई सौ वर्षों तक शासन किया। इनमें से केवल छः के शासन के तुरन्त बाद उनके पुत्र शासक (खलीफा) हुए। जैसा कि उमैय्यदों की अवधि में होता रहा था, शासक खलीफा अपने जीवन-काल में ही प्रायः अनिवार्य रूप से अपना उत्तराधिकारी चुन लेता था। जब वह मनोनीत हो जाता था तो काजी (न्यायाधीश), फौज के सेनापतियों और अधीनस्थ असैनिक एवं सैनिक पदाधिकारियों समेत साम्राज्य के मुख्य पदधारी खलीफा के उत्तराधिकारी के प्रति निष्ठा की शपथ लेने के लिए बुलाये जाते थे।

अब्बासिद खलीफाओं के अधीन राजनीतिक राज्य का राजनीतिक यंत्र अल-मंसूर द्वारा स्थापित किया गया था जिस पर उसकी प्रतिभा की स्पष्ट छाप थी। प्रथम अब्बासिद खलीफाओं के अधीन सरकार, कमो-वेश, निरंकुशतावादी रही यद्यपि विभागीय मंत्रियों और शासक परिवार के प्रमुख सदस्यों ने एक अप्राधिकृत परामर्शदाता समिति बना रखी थी। इसके बावजूद खलीफा सम्पूर्ण सत्ता का मूल-स्रोत था और प्रशासन-संबंधी सभी आदेश उसी के द्वारा निकाले जाते थे। वजीर खलीफा का स्थानापन्न होता था और उसके नाम पर साम्राज्य का पूरे प्राधिकार का प्रयोग करता था। वह अधिकारियों को नियुक्त या पदमुक्त कर सकता था। वह सरकार द्वारा लगाए जाने वाले करों, प्राप्तियों और राजस्व के व्ययन का पर्यवेक्षण करता था। राज्य का सभी पत्राचार उसके अधीन रहा करता था तथा वह सम्राट (खलीफा) की आदेश-प्राप्त सत्ता के रूप में काम करता था। खलीफा को परामर्श एवं विविध कार्य-कलाप में सहायता देने के अलावा उसके व्यक्तित्व में असैनिक और सैनिक प्रशासन संयुक्त रूप से समाहित था।

अलावे, खलीफा के साथ एक प्रबंधक (हाजीब) भी संलग्न रहता था। उसका काम होता था कि अधिकृत विदेशी दूतों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को खलीफा के समक्ष प्रस्तुत करे। इस कारण स्वभावतः उसका प्रभाव बहुत हुआ करता था। उसके अलावा जल्लाद भी होता था जो बगदाद (अब्बासिद) दरबार का एक महत्त्व-पूर्ण एवं विशिष्ट व्यक्ति होता था। दरबार का नुजूमी (ज्योतिषी) भी जल्लाद की

भांति फारस में चल रही इस दिशा में प्रचलित परम्परा के अनुसार अब्बासिद सिंहासन के निकट बैठने वाला व्यक्ति था।

राज्य के प्रमुख विभाग

अब्बासिद खलीफा की सरकार दीवान-उल-अजीज या भव्य पर्षद के नाम से पुकारी जाती थी जिसका अध्यक्ष वजीर होता था। राज्य के अन्य मुख्य विभाग थे **दीवान-उल-खिराज** (वित्त विभाग), **दीवान-उल-दिया** (सम्राट की सम्पत्ति का विभाग), **दीवान-उल-जुमा** (लेखा विभाग), **दीवान-उल-जुन्ड** (युद्ध-कार्यालय), **दीवान-उल-मवाली-वल गिलमन** (आश्रितों और दासों की रक्षा का कार्यालय) **दीवान-उर-जिमनान नफाफत** (सम्राट के परिवार के खर्च का विभाग), **दीवान-उर-रसेल** (पत्राचार-पर्षद का उच्च न्यायालय विभाग), **दीवान-अन-नज्रफित मुजालिम** (गवर्नरों पर निरीक्षण का विभाग) और **दीवान उल-अहदास-वास शुर्ता** (सैन्य एवं आरक्षी विभाग)। इनके अलावा अन्य छोटे विभाग थे।

विजीर-उसकी शक्तियां और स्थिति

खलीफा के तुरत बाद विजीर (वजीर) की स्थिति थी। यह अब्बासिदों के अधीन नया सृजित पद था मूलतः फारसियों की प्रणाली पर आधारित। विजीर प्रशासनिक यंत्र का प्रधान था और खलीफा के अधीन मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में इसकी शक्तियां व्यापक थीं। वजीरों में प्रथम खालिद-अल बरमाकी था जो मध्य एशियाई था तथा जिसने हाल में इस्लाम धर्म अपनाया था। बरमाकी परिवार के अनेक व्यक्ति इस पद पर रहे। उनको सन् ८०३ में हारून-अल रशीद ने उखाड़ फेंका।

वजीर खलीफा के अन्तरंग मित्र के रूप में काम करता था जबकि उसका प्रधान (खलीफा) रनिवास (हरम) की रंगरेलियों में डूबा रहता था। विजीर अक्सर सर्वशक्तिशाली होता था। वह सिद्धान्ततः गवर्नरों और न्यायाधीशों को नियुक्त और पदमुक्त करता था। ऐसा वह वास्तव में खलीफा की सम्मति से करता था। वह वंशानुक्रमगत सिद्धान्त के आधार पर अपना पद भी हस्तान्तरित कर सकता था। विजीर के साथ यह प्रथा थी कि वह खलीफा का अकृपापात्र होनेवाले गवर्नर की सम्पत्ति जब्त कर सकता था। इसी तरह गवर्नर अपने नीचे के अफसरों और गैर-सरकारी नागरिकों की सम्पत्ति जब्त कर सकता था। दूसरी ओर, खलीफा अपदस्थ विजीर को यह दण्ड दे सकता था। साथ ही वास्तविकता यह भी थी कि अपनी सम्पत्ति की जब्ती के साथ लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ता था। अन्ततः "सम्पत्ति की जब्ती का विभाग" सरकार के एक नियमित विभाग के रूप में स्थापित हो गया। खलीफा अल-मुतादिद के समय [illegible]

धिकारी मनोनीत किया तो इस कारण क्रुद्ध बगदादवासियों ने मामून के चाचा इब्राहीम इब्न-अल-महदी को खलीफा के रूप में चुन लिया। अपने बड़े भाई और पूर्ववर्त्ती खलीफा अमीन की मृत्यु के छः वर्ष बाद ही सन् ८१९ में मामून साम्राज्य की राजधानी में प्रवेश कर पाया। अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व मामून ने अपने पुत्र अल-अब्बास की उपेक्षा करते हुए अपने भाई अल-मुतासिम को अपना उत्तराधिकारी बनाया जिससे बाद में चल कर सेना की ओर से, जिसके बीच अल-अब्बास लोकप्रिय था, विद्रोह हुआ। मुतासिम के बाद उसका पुत्र वाथिक (सन् ८४७) खलीफा हुआ जिसके साथ ही प्रथम चौबीस अब्बासिद खलीफाओं का गौरव समाप्त हो गया। सब मिलाकर इन खलीफाओं ने अढ़ाई सौ वर्षों तक शासन किया। इनमें से केवल छः के शासन के तुरन्त बाद उनके पुत्र शासक (खलीफा) हुए। जैसा कि उमैय्यदों की अवधि में होता रहा था, शासक खलीफा अपने जीवन-काल में ही प्रायः अनिवार्य रूप से अपना उत्तराधिकारी चुन लेता था। जब वह मनोनीत हो जाता था तो काजी (न्यायाधीश), फौज के सेनापतियों और अधीनस्थ असैनिक एवं सैनिक पदाधिकारियों समेत साम्राज्य के मुख्य पदधारी खलीफा के उत्तराधिकारी के प्रति निष्ठा की शपथ लेने के लिए बुलाये जाते थे।

अब्बासिद खलीफाओं के अधीन राजनीतिक राज्य का राजनीतिक यंत्र अल-मंसूर द्वारा स्थापित किया गया था जिस पर उसकी प्रतिभा की स्पष्ट छाप थी। प्रथम अब्बासिद खलीफाओं के अधीन सरकार, कमो-बेश, निरंकुशतावादी रही यद्यपि विभागीय मंत्रियों और शासक परिवार के प्रमुख सदस्यों ने एक अप्राधिकृत परामर्शदाता समिति बना रखी थी। इसके बावजूद खलीफा सम्पूर्ण सत्ता का मूल-स्रोत था और प्रशासन-संबंधी सभी आदेश उसी के द्वारा निकाले जाते थे। वजीर खलीफा का स्थानापन्न होता था और उसके नाम पर साम्राज्य का पूरे प्राधिकार का प्रयोग करता था। वह अधिकारियों को नियुक्त या पदमुक्त कर सकता था। वह सरकार द्वारा लगाए जाने वाले करों, प्राप्तियों और राजस्व के व्ययन का पर्यवेक्षण करता था। राज्य का सभी पत्राचार उसके अधीन रहा करता था तथा वह सम्राट (खलीफा) की आदेश-प्राप्त सत्ता के रूप में काम करता था। खलीफा को परामर्श एवं विविध कार्य-कलाप में सहायता देने के अलावा उसके व्यक्तित्व में असैनिक और सैनिक प्रशासन संयुक्त रूप से समाहित था।

अलावे, खलीफा के साथ एक प्रबंधक (हाजीब) भी संलग्न रहता था। उसका काम होता था कि अधिकृत विदेशी दूतों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को खलीफा के समक्ष प्रस्तुत करे। इस कारण स्वभावतः उसका प्रभाव बहुत हुआ करता था। उसके अलावा जल्लाद भी होता था जो बगदाद (अब्बासिद) दरबार का एक महत्त्व-पूर्ण एवं विशिष्ट व्यक्ति होता था। दरबार का नुजूमी (ज्योतिषी) भी जल्लाद की

भांति फारस में चल रही इस दिशा में प्रचलित परम्परा के अनुसार अब्बासिद सिंहासन के निकट बैठने वाला व्यक्ति था।

राज्य के प्रमुख विभाग

अब्बासिद खलीफा की सरकार **दीवान-उल-अजीज** या भव्य पर्षद के नाम से पुकारी जाती थी जिसका अध्यक्ष वजीर होता था। राज्य के अन्य मुख्य विभाग थे **दीवान-उल-खिराज** (वित्त विभाग), **दीवान-उल-दिया** (सम्राट की सम्पत्ति का विभाग), **दीवान-उल-जुमा** (लेखा विभाग), **दीवान-उल-जुन्ड** (युद्ध-कार्यालय), **दीवान-उल-मवाली-वल गिलमन** (आश्रितों और दासों की रक्षा का कार्यालय) **दीवान-उर-जिमनान नफाफत** (सम्राट के परिवार के खर्च का विभाग), **दीवान-उर-रसेल** (पत्राचार-पर्षद का उच्च न्यायालय विभाग), **दीवान-अन-नज्रफिल मुजालिम** (गवर्नरों पर निरीक्षण का विभाग) और **दीवान उल-अहदास-वास शुर्ता** (सैन्य एवं आरक्षी विभाग)। इनके अलावा अन्य छोटे विभाग थे।

विजीर-उसकी शक्तियाँ और स्थिति

खलीफा के तुरत बाद विजीर (वजीर) की स्थिति थी। यह अब्बासिदों के अधीन नया सृजित पद था मूलतः फारसियों की प्रणाली पर आधारित। विजीर प्रशासनिक यंत्र का प्रधान था और खलीफा के अधीन मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में इसकी शक्तियाँ व्यापक थीं। वजीरों में प्रथम खालिद-अल बरमाकी था जो मध्य एशियाई था तथा जिसने हाल में इस्लाम धर्म अपनाया था। बरमाकी परिवार के अनेक व्यक्ति इस पद पर रहे। उनको सन् ८०३ में हारून-अल रशीद ने उखाड़ फेंका।

वजीर खलीफा के अन्तरंग मित्र के रूप में काम करता था जबकि उसका प्रधान (खलीफा) रनिवास (हरम) की रंगरेलियों में डूबा रहता था। विजीर अक्सर सर्वशक्तिशाली होता था। वह सिद्धान्ततः गवर्नरों और न्यायाधीशों को नियुक्त और पदमुक्त करता था। ऐसा वह वास्तव में खलीफा की सम्मति से करता था। वह वंशानुक्रमगत सिद्धान्त के आधार पर अपना पद भी हस्तान्तरित कर सकता था। विजीर के साथ यह प्रथा थी कि वह खलीफा का अकृपापात्र होनेवाले गवर्नर की सम्पत्ति जब्त कर सकता था। इसी तरह गवर्नर अपने नीचे के अफसरों और गैर-सरकारी नागरिकों की सम्पत्ति जब्त कर सकता था। दूसरी ओर, खलीफा अपदस्थ विजीर को यह दण्ड दे सकता था। साथ ही वास्तविकता यह भी थी कि अपनी सम्पत्ति की जब्ती के साथ लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ता था। अन्ततः "सम्पत्ति की जब्ती का विभाग" सरकार के एक नियमित विभाग के रूप में स्थापित हो गया। खलीफा अल-मुतादिद के समय विजीर को प्रतिमास

एक हजार दिनार तनख्वाह मिलती थी। अल-मवारदी और अन्य विधि-सिद्धान्त वेत्ता विजारत (वजारत) की दो किस्मों का वर्णन करते हैं—(क) तफवीद (पूरे, अपरिसीम अधिकारों के साथ) और (ख) तनफिध (केवल सीमित अधिकारों के साथ)। अपरिसीम अधिकारवाले अथवा पहली किस्म के विजीर सम्राट (खलीफा) की सभी शक्तियों (अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने की शक्ति छोड़कर) और विशेषाधिकारों का प्रयोग करते थे। उससे केवल यह अपेक्षा की जाती थी कि वह जो कुछ भी करे उसकी सूचना खलीफा को दे दे। वह खलीफा की प्रारंभिक सहमति के विना ऐसी कोई व्यवस्था कर सकता था जिसे आवश्यक समझे। वह केवल खलीफा द्वारा नियुक्त अफसर को बर्खास्त न कर सकता था। दूसरी ओर उसे सम्राट (खलीफा) के नाम पर अफसरों को नियुक्त करने की शक्ति थी। वह विधि-वादों (मुकदमों) के बारे में अपने इजलास में अन्तिम सुनवाई भी कर सकता था। प्रथम दो अब्बासिद खलीफाओं के अलावा अन्य खलीफाओं के शासन में वजीर सर्वाधिकार-प्राप्त था। खलीफा लोग रनिवास (हरम) के आनंदों में जितना गहरे डूबते गए, बजीरों की शक्ति उतनी ही अधिक-से-अधिक बढ़ती गई।

सीमित अधिकारों वाले वजीर की शक्तियाँ उतनी व्यापक और विस्तृत न थीं। वह केवल खलीफा के आदेशों के पालन एवं उनके अनुदेशों के अनुसार काम करने के अलावा कोई पहलकदमी न करता था। वह केवल शासक और उसके बीच मध्यवर्ती था। विजीरों से यह अपेक्षा भी की जाती थी कि प्रशासन और कराधान तथा प्रान्तों की स्थानीय स्थितियों की पूरी जानकारी हो। खलीफा अल-मुकतादीर (सन् ९०८-३२) के शासन-काल के बाद विजीर का स्थान अमीर अल-उमरा (सेनापतियों का सेनापति) ने ले लिया।

कराधान-विभाग

वजीर, वास्तव में असीमित अधिकारों वाला वजीर ऊपर उल्लिखित ासन परिषद की बैठक की अध्यक्षता करता था जिसके सदस्यों में राज्य के प्रधानों विभिन्न विभाग आते थे। कभी-कभी इन प्रधानों को भी वजीर पदनाम दे दिया जाता था पर उनकी कोटि बराबर वास्तविक वजीर के अधीन होती थी।

अब्बासिदों के अधीन सरकारी यंत्र पहले से ज्यादा जटिल हो गया पर राज-काज के मामलों विशेषत: कराधान प्रणाली और न्याय-प्रशासन में अधिक व्यवस्था आ गई। चूँकि सरकार की चिन्ता का मुख्य विषय वित्त था, अतः कर-विभाग (दीवान-अल-खिराज) या वित्त-विभाग (बैत अल-माल) उमैय्यदों के शासन की भांति ही प्रशासन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई थी। उसका प्रधान, जिसे अक्सर

"करों का स्वामी" कहा गया है, खलीफा की सरकार में महत्वपूर्ण व्यक्ति होता आया था।

राज्य का राजस्व

राज्य के राजस्व में जकाह् शामिल है जो हर मुसलमान पर अनिवार्य रूप से लगाया जाने वाला एक मात्र विधि-सम्मत कर था। जोती जाने लायक जमीन, भेडों और अन्य जानवरों के समूह, सोना-चाँदी, वाणिज्यिक सामानों और प्राकृतिक रूप अथवा पूंजी-निवेश से बढ़ाने वाले अन्य प्रकार की सम्पत्ति पर यह कर लगाया जाता था। जैसा कि इस सम्बन्ध में पहले बतलाया जा चुका है, मुसलमान जजिया कर न देते थे कर-संग्राहक भूमि, भेड़ आदि जानवरों के समूह तथा इस तरह की अन्य वस्तुओं के देख कर उन पर कर निर्धारित करता था पर व्यक्तिगत वस्तुएँ जैसे कि सोना-चाँदी आदि व्यक्तिगत विवेक पर छोड़ दी जाती थी। धर्म-विश्वासियों से इस प्रकार उगाहे गए धन का व्ययन केन्द्रीय कोषागार से धर्म-विश्वासियों के ही हित में किया जाता था। इनमें निर्धन, अनाथ या यतीम, परदेश से आये अपरिचित व्यक्ति धार्मिक युद्ध के स्वयंसेवक और दास तथा मुक्तिधन के लिए कारावास में रखे गए बन्दी आते हैं। सरकारी आय के अन्य स्रोत थे, शत्रु देशों से प्राप्त कर, युद्ध-विराम धन, गैर-मुस्लिम प्रजा पर लगाया जाने वाला प्रतिव्यक्ति कर (जजिया), भूमि-कर (खिराज), और मुस्लिम क्षेत्रों में आयातित गैर-मुसलमानों के स्वामित्व वाले व्यापार के सामानों पर लगाया जानेवाला दशमांश कर। इन सभी करों में भूमि कर का परिमाण सबसे ज्यादा होता था और गैर-धर्म-विश्वासियों से आय का वह मुख्य स्रोत था। इन सब आमदनियों को फे कहा जाता था और खलीफा इनका उपयोग सेनाओं के वेतन, सड़कों और पुलों के निर्माण तथा मुस्लिम जनता के सामान्य कल्याण के लिए करते थे।

अन्य सरकारी विभाग

कराधान विभाग के अलावा अब्बासिद सरकार के अधीन एक लेखा-परीक्षण या लेखा विभाग भी होता था जिसे **दीवान-अल-जिमान** कहा जाता था। लेखा-विभाग खलीफा महदी ने शुरू किया था। इसके अलावा पत्राचार-पर्षद या उच्च न्यायालय विभाग (**दीवान-अल-तवकी**) था जो सभी सरकारी पत्राचार, राज-नीतिक दस्तावेज और सरकारी आदेश तथा उपाधि-पत्र संबंधी कार्य सम्पादित करता था। अन्य विभागों में जनता की शिकायतों और व्यथाओं के निपटाव का विभाग, आरक्षी विभाग तथा डाक विभाग थे। जनता की शिकायतों तथा व्यथाओं के निरीक्षण का पर्षद (बोर्ड), जिसे **दीवान-अल नजर फी-अल मुजालिम** कहा जाता था,

एक अपीली या सर्वोच्च न्यायालय जैसा था जिसका उद्देश्य प्रशासन और राजनीतिक विभाग में न्याय की अवहेलना के बारे में जाँच की जाती थी तथा उस संबंध में उचित कार्रवाई की जाती थी। मूलतः इस विभाग का आरंभ उमैय्यदों के शासन काल में हुआ। इतिहासकार अल मावर्दी लिखता है कि प्रसिद्ध उमैय्यद खलीफा अब्द-अल-मालिक प्रथम शासक था जिसने एक खास दिन निर्धारित कर रखा था जब वह स्वयं अपनी प्रजा द्वारा की गई अपीलों और शिकायतों की सुनवाई करता था। उमैय्यद खलीफा उमर द्वितीय ने इस पूर्वोदाहरण का अत्यन्त उत्साह के साथ अनुपालन किया। अब्बासिद शासन में, प्रत्यक्षतः यह प्रणाली महदी ने शुरू की। उसके परवर्ती खलीफाओं हादी, हारुन-अल-रशीद, मामून तथा उनके बाद के अन्य खलीफा सार्वजनिक तौर पर और सबके समक्ष प्रजा की ऐसी शिकायतें सुनते थे। अब्बासिदों में अंतिम खलीफा अल-मुतादिद (८६९-७०) ऐसा खलीफा था जिसने यह प्रणाली कायम रखी। बाद में नौरमन राजा रौगर द्वितीय (११३०-५४) ने इस प्रकार का विभाग सिसिली में शुरू किया जहाँ इसने यूरोप की मिट्टी में अपनी जड़ें जमाईं।

आरक्षी विभाग

तृतीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान मुख्यतः इस कारण मारा गया क्योंकि मदीना में उसकी सुरक्षा के लिए कोई सैनिक टुकड़ी न थी। उमैय्यद खलीफाओं ने यह गलती सुधारी। वे लोग अपने साथ अंगरक्षक रखने लगे। उनके प्रान्तीय गवर्नरों ने भी ऐसा ही किया। इस उद्देश्य से बनाई गई सैनिक टुकड़ी का नाम **शुर्त्ता** रखा गया और उनका सेनापति **साहिब-अल-शुर्त्ता** के नाम से जाना जाता था। ये सैनिक पुलिस के कुछ कर्त्तव्यों का निर्वाह करते थे। राजधानी में स्थित सेनापति खलीफा के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर विवाद या मतभेद होने की स्थिति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता था। खलीफा की अनुपस्थिति में वह व्यवहारतः उसके प्रतिनिधि के रूप में काम करता था। वह विधि-यंत्र का एक सुस्थापित अंग-सा हो गया यद्यपि धार्मिक कानून में उसके अस्तित्व को मान्यता नहीं दी गई है। इस पद के कार्य और कठिनाइयाँ आगे वर्णित हैं। उमैय्यद शासन के प्रतापी गवर्नर हृज्जाज ने इस पद पर एक व्यक्ति नियुक्त किया पर उसने इसे स्वीकार करने से तब तक इन्कार किया जब तक खलीफा ने उसे यह आश्वासन न दिया कि वह गवर्नर के परिवार और अनुचरों के विरुद्ध उस व्यक्ति को सहायता देगा। अब्बासिदों के शासन में आरक्षी विभाग **(दीवान-अल-शुर्त्ता)** का प्रधान एक उच्च पदाधिकारी था जिसे **साहिब-अल-शुर्त्ता** कहा जाता था। यह प्रधान आरक्षी और शाही अंगरक्षक तथा अक्सर विज़ीर (वज़ीर) के रूप में भी काम करता था। हर बड़े शहर का

अपना विशेष आरक्षी दल होता था जिन्हें फौजी दर्जा भी हासिल था और नियमत: जिनकी तनख्वाह अच्छी-खासी हुआ करती थी। नगरपालिका के आरक्षी मुहतासिब कहा जाता था क्योंकि वह बाजारों और लोगों की नैतिकता के अधिदर्शक के रूप में काम करता था। उसके कर्त्तव्यों में ये कार्य आते थे कि वह इस बात का ख्याल रखे कि व्यापार में उचित बाटों और मापों का इस्तेमाल किया जाता है और यह भी कि विधि-संगत ऋण चुका दिये जाते हैं (यद्यपि उसे न्यायिक शक्ति न थी)। साथ ही उसका कार्य यह भी था कि अनुमोदित नैतिकता-मानदंड कायम रखे जाते हैं और कानून द्वारा प्रतिबंधित कार्य जैसे कि जुआखोरी, सूदखोरी और सार्वजनिक तौर पर मद्य-विक्रय आदि नहीं किया जाता। इतिहासकार अल मावर्दी ने इस आरक्षी-प्रधान के विविध कार्यों में कुछ रोचक कर्त्तव्यों का वर्णन किया है जैसे कि पुरुषों और स्त्रियों के बीच मान्यताप्राप्त सार्वजनिक मानक कायम रखे जायँ तथा जो पुरुष स्त्रियों को आकर्षित करने के लिए अपनी सफेद दाढ़ी को रंगवाते थे उन्हें डाँट-फटकार कर ऐसा करने से रोका जाय।

डाक विभाग

डाक विभाग अब्बासिद शासन का एक महत्वपूर्ण अंग था। उसका प्रधान **साहिब-अल बरीद** कहा जाता था। उमैय्यदों के शासन में इस राज्य के संस्थापक मुआविया ने जैसा कि उस प्रकरण में कहा जा चुका है, सर्वप्रथम डाक-सेवा की स्थापना में रुचि ली। उसके बाद एक अन्य योग्य उमैय्यद खलीफा अब्द-अल-मालिक ने सम्पूर्ण साम्राज्य में उस सेवा का विस्तार किया और खलीफा वालिद से उसका उपयोग अपने प्रिय भवन-निर्माण कार्य के लिए किया। इतिहासकार हारून-अल-रशीद को इस बात का श्रेय देते हैं कि उसने अपने फारसी वजीर याहिया के माध्यम से इस सेवा को एक नया आधार दिया। यद्यपि डाक-सेवा की स्थापना मुख्यत: राज-काज के लिए की गई थी पर एक सीमित ढंग से यह सेवा गैर सरकारी लोगों के पत्राचार के लिए भी काम करती थी। हर प्रान्तीय राजधानी में एक डाक-घर होता था। डाक-सेवा के लिए साम्राज्य की राजधानी से राज्य के प्रमुख केन्द्रों तक मार्ग बनाये गये थे और उन पर भिन्न-भिन्न सवारियों से डाक ले जाई जाती थी। कुल मिला कर डाक-सवारियों के ऐसे कुल सौ रास्ते होंगे। फारस में इन रास्तों में खच्चरों और घोड़ों का प्रयोग होता था। सीरिया और अरब में ऊँटों का प्रयोग होता था। डाक-विभाग के प्रधान बरीद की नियुक्ति नव-नियुक्त गवर्नरों को उनके सम्बद्ध प्रान्तों में ले जाने और फौजों को अपने इस्तेमाल के सामान के साथ ले जाने के लिए भी की गई थी। जन-साधारण को डाक-सवारियों से अपने पत्र आदि भेजने के लिए काफी धन देना पड़ता था। इसके अलावा कबूतरों

को पत्र-संवाहक के रूप काम करने का प्रशिक्षण दिया जाता और इस कार्य के लिए उनका प्रयोग किया जाता था। इस संबंध में प्रथम अभिलिखित उदाहरण खुर्रमी गुट के प्रधान विद्रोही वाविक (वावक) की गिरफ्तारी की खबर इस माध्यम से सन् ८३७ में खलीफा अल-मुतासिम के पास भेजने के वारे में है।

वगदाद में डाक विभाग के मुख्यालय में सम्पूर्ण साम्राज्य के उपर्युक्त मार्गों का वृत्तान्त था जिसमें यह भी वतलाया गया था कि उनमें कहाँ-कहाँ ठहरने के स्थान हैं और उनके वीच कितनी-कितनी दूरी है। इन मार्ग वृत्तान्तों से यात्रियों, व्यापारियों और तीर्थ-यात्रियों को काफी सहायता मिलती थी और वाद में ये मार्ग-वृत्तान्त भौगोलिक शोध के आधार वने। भूगोल के हर अरब विद्यार्थी अपनी शोध-कृति तैयार करने में इन डाक-निर्देशिकाओं का उपयोग करता था। ऐसे भौगोलिक शोध-कर्त्ताओं का एक नेता इब्न खुर्दादवीह था (लगभग सन् ९१२)। उसकी कृति **अल-मसालिक वा-अल-ममालिक**, जो राज्य-अभिलेखागार में उपलब्ध मार्ग-वृत्तान्त सामग्री पर आधारित थी, ऐतिहासिक मार्ग-विवरण के लिए महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रन्थ सिद्ध हुई। वह स्वयं अल-जिवाई (प्राचीन मीडिया) में खलीफा अल-मुतामिद के अधीन **साहिब अल-वारीद** (डाक विभाग प्रधान) था। यह व्यापक सड़क वृत्तान्त, जो शाही राजधानी से प्राप्त होता था, प्रारंभिक फारसी साम्राज्य से विरासत-स्वरूप मिला था। इसमें सबसे महत्वपूर्ण सड़क-मार्ग खुरासान उच्च पथ था जो उत्तर-पूर्व की ओर विस्तृत था तथा जिस पर हमादान, अल-राय्य, नयसावुर, तूस, मर्व, बुखारा और समरकंद पड़ते थे। यह मार्ग राजधानी बगदाद का संबध जकसारटस के सीमा-स्थित नगरों और चीन की सीमाओं से जोड़ता था। इस मार्ग पर स्थित प्रमुख नगरों से मार्ग में दो-राहे और चौराहे भी थे जो उत्तर और दक्षिण की ओर ले जाते थे।

डाक विभाग का प्रधान अफसर शाही डाक की देख-भाल और विभिन्न डाक-संस्थानों के पर्यवेक्षण के अलावा एक और महत्त्वपूर्ण कार्य करता था। वह सरकार की जासूसी प्रणाली का प्रधान भी था जिसके अधीन ही सम्पूर्ण डाक-सेवा थी। इस प्रकार उसकी पूरी उपाधि **साहिब अल बरीद व-अल अखवार** (डाक और खुफिया सेवा का प्रधान) थी। अपनी इस हैसियत से वह केन्द्रीय सरकार के महा-निरीक्षक एवं निदेशक गोपनीय अभिकर्त्ता (एजेंट) के रूप में भी काम करता था। प्रान्तीय डाक सेवा प्रधान उसे या सीधे खलीफा को अपने प्रान्तीय सरकारी अफसरों को जिनमें गवर्नर भी शामिल था, आचरण और कार्य-कलाप के संबंध में सूचनाएँ पहुँचाता था। बाद के एक स्रोत से हमें ज्ञात होता है कि खलीफा मुतवक्किल को वगदाद के गवर्नर के बारे में खबर दी गई कि "गवर्नर अपनी मक्का-तीर्थ-यात्रा से

अपने साथ एक दास-कन्या को ले आया है जिसके साथ वह दोपहर से रात तक ऐश-मौज करता है तथा इस प्रकार राज-काज की उपेक्षा करता है।" खलीफा अल-मंसूर ने अपनी जासूसी प्रणाली में व्यापारियों, फेरीवालों और यात्रियों को अपने जासूसों के रूप में नियुक्त किया था। खलीफा हारून-अल-रशीद और अन्य खलीफा भी ऐसा ही करते थे। बतलाया जाता है कि खलीफा अल-मामून ने अपनी गुप्तचर सेवा में करीब १७०० वयस्क महिलाओं को नियुक्त कर रखा था। खास कर "रोमनों का देश" अब्बासिदों के जासूसों से भरा पड़ा था जिनमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही थे जो व्यापारियों, यात्रियों और चिकित्सकों के भेष में यह काम करते थे।

न्याय-प्रशासन

अब्बासिदों के अधीन न्याय-प्रशासन एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंग था। अब्बासिद खलीफाओं या उसके विजीरों ने न्याय करने का काम फकीह (धर्म-तांत्रिक) वर्ग के एक सदस्य को सौंप रखा था। इस तरह वह काजी बना दिया गया था या अगर वह बगदाद के न्याय-प्रशासन कार्य करता तो उसे काजी अल कुदा (मुख्य न्यायाधीश) कहा जाता था। काजी-अल-कुदा की उपाधि प्राप्त करने वाला प्रथम व्यक्ति अबू यूसुफ (लगभग सन् ७९८) था। उसने इस रूप में खलीफा महदी और उसके दो पुत्रों खलीफा अल-हादी और खलीफा हारून-अल-रशीद के अधीन कार्य किया था। इस संबंध में ठीक-ठीक विवरण प्रस्तुत कर सकना कठिन है क्योंकि विभिन्न अधिकारियों के कार्य-क्षेत्र सभी विषयों में अलग-अलग न थे बल्कि मिले-जुले थे। दीवानी और फौजदारी मामलों के क्षेत्राधिकारों के बीच अंतर न था और सभी प्रकार के वाद (मुकदमे) न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आते थे। उससे विधि (कानून) के संबंध में न्यायी और जानकार होने की अपेक्षा की जाती थी। सामान्यतः वह न्याय की चार विचारधाराओं में से एक के अनुसार फैसला देता था यद्यपि कुछ न्यायाधीश दो या उससे अधिक न्याय विचारधाराओं के अनुसार फैसला देते थे। बड़े नगरों के भी अपने विशेष न्यायाधीश होते थे। प्रारंभिक समय में प्रान्तों के न्यायाधीश (काजी) की नियुक्ति गवर्नर करता था या कभी-कभी खलीफा भी। काजी अपना इजलास अपने मकान में करता था या मस्जिद में। कुछ लोगों का विचार था कि यदि वह अपना इजलास मस्जिद में करता है तो गैर-मुस्लिम वादी उसके पास न पहुँच सकेंगे। गैर-मुस्लिम प्रजाजन मुसलमानों या, अपनी अपेक्षा के अनुसार, दूसरे लोगों के विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई के लिए पहुँचते थे। मुद्दई को अपनी शिकायत के साथ प्रमाण पेश करना पड़ता था। मुसलमानों के बारे में मुस्लिम कानून के अनुसार फैसला किया जाता था। मुद्दई को अपनी शिकायत के साथ प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ता था और फरियादी (मुद्दालेह)

को शपथ के साथ अपनी सफाई देनी पड़ती थी। मुकदमे में काजी की सहायता गवाह करते थे जो मामलों के तथ्यों के बारे में नहीं बल्कि दोनों पक्षों के चरित्र के बारे में साक्ष्य देते थे। वे कुछ हद तक अफसर ही होते थे जो काजी के छोटे-छोटे कर्त्तव्य भी पूरे करते थे। इतिहास में हमें एक ऐसे गवाह का भी विवरण मिलता है जिसकी गवाही इस कारण न मानी गई कि वह शतरंज खेलता था। नियमत: काजी (न्यायाधीश) तब तक अपना कार्य न करता था जब तक मामले का एक या दोनों पक्ष उसके पास पहुँचते न थे। जहाँ तक धार्मिक मामलों का संबंध था, वह अपनी पहलकदमी के अनुसार काम कर सकता था। मुस्लिम कानून के सिद्धान्त के अनुसार काजी को पुरुष, वयस्क, मानसिक शक्तियों से पूर्णत: सम्पन्न, स्वतंत्र नागरिक, धार्मिक निष्ठा में मुसलमान, आचरण में अनिन्द्य, दृश्य और श्रवण शक्ति में त्रुटिहीन और स्वस्थ तथा कानून (धार्मिक) के प्रावधानों का पूरा जानकार होना चाहिए था। गैर-मुसलमान जैसा कि ऊपर कहा गया है, नागरिक अधिकारों के संबंध में दंडाधिकारियों के पौरोहित्य (पुरोहित) प्रधान के क्षेत्राधिकार में आते थे। इतिहासकार अल मावर्दी काजियों की दो किस्मों के बीच अंतर बतलाता है। एक तरह के काजी वे होते थे जिनका प्राधिकार सामान्य और सम्पूर्ण होता था जिन्हें असाह मुतलाक कहा जाता था और दूसरे प्रकार के काजियों का प्राधिकार विशेष और सीमित होता है। इनको खास कहा जाता था। प्रथम कोटि के काजियों के मुख्य कर्त्तव्य होते थे—मामलों की सुनवाई और फैसला करना, अनाथों, पागलों और नाबालिगों के अभिभावक के रूप में कार्य करना, धार्मिक संस्थानों का प्रशासन करना, धार्मिक कानून के उल्लंघन के लिए सजा देना, विभिन्न प्रान्तों में उप-न्यायाधीश (नायब) नियुक्त करना और किन्हीं-किन्हीं स्थितियों में शुक्रवार की सार्वजनिक नमाज के अध्यक्षता करना। प्रान्तीय काजियों की नियुक्ति गवर्नर करते थे पर चतुर्थ मुस्लिम (हिजरा) शताब्दी में वे सामान्यत: बगदाद-स्थित मुख्य काजी के प्रतिनिधि या अधीनस्थ होने लगे। एक बाद के स्रोत के अनुसार खलीफा मामून के समय मिस्र के काजी की तनख्वाह ४००० दिरहम प्रतिमास तक पहुँच गई थी। दूसरी कोटि के काजियों की, जो विशेष और सीमित प्राधिकार रखते थे, शक्ति—खलीफा, विजीर का गवर्नर द्वारा उन्हें दिये गये नियुक्त-उपाधि-पत्र के अनुसार सीमित होती थी।

बड़े नगरों में दो या तीन काजी हो सकते थे जो विभिन्न न्याय-विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे। फौज के लिए एक काजी हो सकता था और एक वह जो तीर्थ-यात्रियों के कारवाँ के साथ चलता था। राजधानी बगदाद में काजी या वरीय काजी मुख्य काजी होता था जो अन्य काजियों पर पर्यवेक्षण रखता था। खलीफा हारून-अल-रशीद ने सर्वप्रथम दमिश्क में एक सर्वोच्च काजी नियुक्त किया। इसके अलावा न्यायाधीश अनाथों, मानसिक रूप से रुग्णों या उन लोगों का अभिभावक

होता था जिन पर कानून द्वारा अपने निजी मामलों के नियंत्रण पर प्रतिबंध लगा रखा गया था। उनके कामों में यह काम भी शामिल था कि अपने आश्रितों के विवाहादि की व्यवस्था करें। वह धार्मिक और दातव्य संस्थाओं (वक्फ) का पर्यवेक्षक होता था तथा उसका कर्त्तव्य इस बात पर ध्यान रखना होता था कि ये संस्थायें उन कार्यों को पूरा करें जिनके लिए उनका सृजन हुआ है। उसे वसीयतनामों पर नजर भी रखनी पड़ती थी और देखना होता था कि उनके प्रावधानों का भली-भाँति पालन किया जा रहा है। कोई काजी जब अपने अधीनस्थों की नियुक्ति करता था तो वह उसकी मृत्यु के बाद समाप्त मानी जाती थी।

सैनिक संगठन

जहाँ तक सैनिक संगठन का प्रश्न है, अब्बासिदों के अधीन जो सेना थी उतनी बड़ी, स्थायी सेना, अपने सही अर्थ में, अरब खिलाफत में कभी न थी। यह सेना भलीभाँति सुनियोजित तथा कड़े अनुशासन में रहती थी तथा इसे नियमित अनुदेश दिये जाते थे तथा इसकी कवायद भी भलीभाँति कराई जाती थी। खलीफा की अंगरक्षक सैनिक टुकड़ी (हरास) एकमात्र नियमित सेना थी जो ऐसा केन्द्र-सी थी जिसके चारों ओर अपने-अपने प्रधानों के अधीन अन्य सैनिक दल थे जिनके अलावा भाड़े पर रहने वाले लोग (सैनिक) थे। इन सैनिक दलों की नियुक्ति विभिन्न जन-जातियों और जिलों से की जाती थी। नियमित सैनिक (जुंड) स्थायी रूप से सक्रिय सेवा में रहते थे। उन्हें सरकार द्वारा वेतन दिया जाता था तथा मुर्तजिकाह (नियमित वेतन भुगतान पाने वाले) कहा जाता था। अन्य लोगों को मुततव्विआह कहा जाता था क्योंकि उन्हें केवल कर्त्तव्य के समय भोजनादि मिलता था। स्वयंसेवक सैनिक बद्दुओं, किसानों और नगर-निवासियों में से भरती किये जाते थे। खलीफा के अंगरक्षक सैनिक को ज्यादा अच्छे कवच-वस्तर और पोशाकें दी जाती थीं। प्रथम अब्बासिद खलीफा के शासन में पैदल सैनिकों का औसत वेतन, सामान्य भोजनादि तथा अन्य भत्तों के अलावा प्रतिवर्ष ९६० दिनार था। घुड़सवार सैनिकों को इससे दुगुना मिलता था। खलीफा मामून के अधीन, जबकि शासन अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गया, ईराकी सेना में सैनिकों की संख्या १,२५,००० हो गई जिनमें पैदल सैनिकों को प्रायः २४० दिरहाम वेतन मिलता था और घुड़सवारों को इससे दुगुना। खलीफा अल-मंसूर बगदाद नगर की स्थापना के समय अपने बड़े भवन-निर्माता को प्रति दिन प्रायः एक दिरहाम देता था तथा साधारण मजदूर को प्रतिदिन एक-तिहाई दिरहाम। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय सैनिकों को अपेक्षाकृत कितना अच्छा वेतन मिलता था।

प्रारंभिक अब्बासिद खलीफाओं के समय नियमित सैनिकों में पैदल सैनिक (हरबिआह), धनुषधारी (रामिवा) और घुड़सवार (फुरसन) रहा करते थे। पैदल सैनिकों के पास भाले, तलवारें और ढालें रहा करती थीं। धनुषधारी और घुड़सवार लोहे के शिरस्त्राण रखते थे और छाती पर लोहे की पट्टियाँ बाँधते थे। साथ ही वे लंबे भालों और लड़ाई की कुल्हाड़ियों से सज्जित रहा करते थे। खलीफा मुतवक्किल ने फारस की प्रणाली के अनुसार सैनिकों द्वारा तलवार रखने की व्यवस्था शुरू की जब कि पहले वे पुरानी अरब प्रणाली के अनुसार कन्धे पर तलवारें रखे चलते थे। हर धनुषधारी सैनिक टुकड़ी के साथ शीघ्र जलनशील तेल (नैफ्था) फेंकने वालों (नफफतून) का दल संलग्न रहता था जिसके सदस्य अग्नि से बचाव वाली पोशाकें पहनते थे और युद्ध में शत्रुओं पर आग्नेय सामग्री फेंकते थे। दुश्मन की किलेबंदी के यंत्रों का प्रभारी-अभियंता, जिसके पास शस्त्रास्त्रों के रूप में गुलेलें, शस्त्र-प्रक्षेपक और भित्ति (दीवार) घातक यंत्र होते थे। ये अभियंता सेना के साथ चलते थे। एक ऐसे ही अभियंता इब्न-साबिर अल-मुंजनिकी ने, जो बाद में अल-नासिर (सन् ११८०-१२२५) के समय हुआ, एक अधूरी किताब लिख छोड़ी है, जिसमें युद्ध-कला की सभी तरकीबों और उपायों का ब्योरेवार वर्णन किया गया है। चलन्त सैनिक-अस्पताल और घायलों को ले जाने वाले वाहन, जो पालकी के आकार के होते थे, ऊँटों पर लाद कर ले जाये जाते थे, और युद्ध-स्थल सेना के साथ ले जाते थे। जैसा कि सामान्यतः होता है, खलीफा हारून को, जो एक बड़ा योद्धा भी था, ने सेना में युद्ध के ये स्वरूप शुरू किये और इस प्रकार युद्ध-सेवा में विज्ञान का समावेश किया।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अब्बासिद शासन के अभ्युदय का श्रेय अरब सेना को नहीं बल्कि फारसी सेना को है। अरब तत्व ने न केवल अपना राजनीतिक प्राधान्य खो दिया बल्कि सैनिक प्राधान्य भी। प्रथम खलीफाओं के समय अंगरक्षक सैन्य-दल फौजी यंत्र का शक्तिशाली अंग था। उसमें खुरासानी सैनिक थे। अरब सैनिकों में दो प्रभाग थे : एक में उत्तरी अरब और मुदराइट जनजाति के लोग और दूसरे में दक्षिणी अरब यमनवासी थे। नव इस्लाम-धर्मान्तरित लोग अनुयायियों के रूप में किसी अरब जनजाति से अपने को संलग्न कर लेते थे और इस प्रकार इस जनजाति के सैन्य संगठन के अंग बन जाते थे। खलीफा अल-मुतासिम ने तुर्कों का, जो फरगना और मध्य एशिया के अन्य भागों से आये उसके भूतपूर्व दास थे, एक नया सैन्य-संगठन बनाया। ये लोग खलीफा की अंगरक्षक सैन्य टुकड़ी के रूप में काम करने लगे। ये नये शाही अंगरक्षक जल्द ही राजधानी में आतंक-सा बन गये और सन् ८३६ में खलीफा को एक नये नगर—समारा—का निर्माण करना पड़ा जहाँ वह अपनी सरकार का मुख्यालय ले गया। खलीफा अल-मुंतसिर (८६१-६२)

की मृत्यु के बाद ये तुर्क सम्राट के और दृढ़ अंगरक्षक हो गये और राज-काज पर निर्णायक प्रभाव डालने लगे।

अब्बासिद खिलाफत के प्रथम सौ वर्षों में शासक (खलीफा) अपने अस्तित्व के लिए एक शक्तिशाली और संतुष्ट सेना पर निर्भर करता था। सेना का उपयोग न केवल सीरिया; फारस और मध्य एशिया में होने वाले विद्रोहों के दमन के लिए किया जाता था बल्कि बैजेन्टाइनों के विरुद्ध आक्रमण के लिए भी। "स्थितियाँ ऐसी थीं" एक आधुनिक विचारक[1] ने लिखा है, "दसवीं शताब्दी ईस्वी में सारासेन (अरब) अपनी जनसंख्या और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल्द जा सकने की क्षमता के कारण एक खतरनाक शत्रु बन गये थे।" पर बात पूरी तरह ऐसी न थी। बुद्धिमान सम्राट लियो (षष्ठ) (सन् ८८६-९१२) की सैनिक संधियों संबंधी प्रबंधों में हमें बतलाया गया है कि—"सभी बर्बर राष्ट्रों में वे (सारासेन अथवा अरब) सबसे सर्वोत्तम परामर्श-प्राप्त हैं और फौजी कार्रवाइयों में सबसे ज्यादा दक्ष हैं।" सम्राट कान्स्टैंटाइन पोर्फीरोजेनिटस (सन् ९१३-५९) के निम्नलिखित गद्य-खंड में अरबों ने अपने बैजेन्टाइन शत्रुओं पर जो धारणा छोड़ी, वह इस प्रकार वर्णित है—"वे लोग शक्तिशाली और अच्छे योद्धा हैं। यदि उनमें से एक हजार किसी शिविर पर कब्जा कर लेते हैं तो उन्हें वहाँ से हटा पाना असंभव होता है। वे घोड़ों पर नहीं बल्कि ऊँटों पर सवार रहते हैं।" इससे और फौजी रणनीति संबंधी अन्य बैजेन्टाइन स्रोतों जैसे कि सम्राट नाइसफोरस फोक्स (९६३-६९) की एक कृति में कहा गया है कि यह स्पष्ट था कि अरब सैनिकों को (युद्ध में) शीत और वर्षा ऋतुयें पसन्द न थीं। साथ ही यह भी कि यदि उनकी पंक्तियाँ एक बार टूट-फूट या बिखर जाती हैं तो सामान्यतः उनमें इतना अनुशासन नहीं होता कि वे उनको पुनः संगठित करके पूर्व स्थिति में ला सकें। साथ ही उनका आधार सामान्यतः लुटेरों का "एक समूह-सा होता है जिससे वे एक युद्ध-यंत्र के रूप में काम कर सकने में असमर्थ होते हैं।"

अब्बासिद सैन्य-शक्ति का पतन तब आरंभ हुआ जब खलीफा मुतवक्किल ने सेना में विदेशी इकाइयों का प्रवेश आरंभ कराया। इससे सेना का मनोबल ऊँचा रखने के लिए आवश्यक स्थितियाँ उत्पन्न हुईं। बाद में खलीफा मुकतदीर (सन् ९०६-३२) प्रान्तीय सेना का भार गवर्नरों, तत्स्थानी फौजी सेनापतियों पर छोड़ना शुरू किया। बुवायहिद वंश के शासन में सैनिकों को नकद वेतन के बजाय भूमि-अनुदान के रूप में भुगतान होने लगा। इससे सामन्ती सैनिक व्यवस्था आरंभ होने का बीज पड़ा जो (व्यवस्था) एक अगले अध्याय में वर्णित सालजुकों के शासन में और विकसित हुई। तब यह एक परम्परा-सी हो गई कि गवर्नर और सेनापति

१. ओमान—दी आर्ट ऑव वार, खंड १, पृ० २०९।

अनुदान के रूप में वह रकम पाने लगे और प्रजा पर वे सम्पूर्ण शक्ति के साथ शासन करने लगे। इसके लिए वे साल्जुक सुल्तान को एक वार्षिक कर देने लगे और युद्ध के समय उस सुल्तान के झण्डे के नीचे अपने द्वारा रखी जाने वाली शस्त्र-सज्जित सेना की नियत टुकड़ियाँ देने लगे।

प्रान्तीय प्रशासन

प्रशासनिक प्रयोजन के लिए पूरा अब्बासिद साम्राज्य अनेक प्रान्तों में बँटा हुआ था। उमैय्यदों के शासन में साम्राज्य का प्रान्तों में जो विभाजन पहले की बैजेन्टाइन या फारस की प्रणाली के अनुसार हुआ था उसमें अब्बासिद शासन में कोई बड़ा परिवर्तन न हुआ। प्रान्त गवर्नर (अमीर या अमील) के अधीन थे। प्रान्तों में शासन अमीर या गवर्नर और अमील या वित्तीय अधीक्षक द्वारा संयुक्त रूप से चलाया जाता था। इन लोगों के अधीन अपने कर्मचारी और आरक्षी-बल थे और इन्हें कुछ सीमा तक स्वायत्तता प्राप्त थी। इन पर डाक सेवा प्रधान (पोस्ट-मास्टर) की निगरानी रहती थी। उसका काम था कि प्रान्त की घटनाओं की खबर सीधे डाक और गुप्तचर सेवा के दीवान को भेजे। अब्बासिदों की प्रान्तों की सूची समय-समय पर बदलती रहती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि बगदाद के प्रारंभिक अब्बासिद खलीफाओं के अधीन मुख्य प्रान्त ये थे—(१) लीबियाई रेगिस्तान के पश्चिमी अफ्रिका के साथ सिसिली; (२) मिस्र; (३) सीरिया और फिलिस्तीन, जो कभी-कभी अलग कर दिये जाते थे, (४) हेज्जाज और यमामा (मध्य अरब), (५) यमन या दक्षिणी अरब, (६) बहरैन और उमान जिसकी राजधानी ईराक-स्थित बसरा थी, (७) सवाद या ईराक (निचला मेसोपोटामिया), (८) जजीरा (अर्थात प्रायद्वीप के बजाय द्वीप प्राचीन असीरिया जिसकी राजधानी मावसिल (मोसुल) थी, (९) अजरबैजान, (१०) जिबई (पहाड़; प्राचीन मेडिया), (११) खजिस्तान जिसके मुख्य नगर अहवाज और तुस्तार[२] थे, (१२) फारिस जिसकी राजधानी शीराज थी; (१३) करमान जिसकी मौजूदा राजधानी का भी यही नाम है, (१४) मुकरान जिसमें वर्तमान बलूचिस्तान था पर सिन्धु घाटी के सामने पड़ने वाला उच्च क्षेत्र न था, (१५) सिजिस्तान या सिस्तान जिसकी राजधानी जारंज थी, (१६ से २०) कुहिस्तान, क्यूमिस, तबरिस्तान, जुरजान और आर्मेनिया, (२१) खुरासान जिसमें वे क्षेत्र थे जो अफगानिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी भाग हैं और जिसके मुख्य नगर नयसाबुर, मर्व, हरात (हेरात) और बल्ख थे, (२२) ख्वारिज, (२३) अल सुग्घ (प्राचीन सोगदामिया) जो ऑक्सस और जक्सारस नदियों के बीच अवस्थित था

२. फारसी इसे शस्तार या शुस्तार कहते हैं।

और जिसके प्रसिद्ध नगर बुखारा और समरकंद थे; २४ (आदि) फरगना, शाश (वर्त्तमान ताशकंद) और उनके तुर्की क्षेत्र[3]।

राज्यपाल का प्राधिकार

अब्बासिदों के युग में शाही राजधानी की ओर से सत्ता के केन्द्रीकरण के सभी प्रयासों के बावजूद आंतरिक आवागमन के कठिन साधनों वाले ऐसे सुदूरव्यापी साम्राज्य में विकेन्द्रीकरण एक अनिवार्य परिणाम था। अपने क्षेत्र के सभी स्थानीय मामलों में गवर्नर का प्राधिकार सर्वोच्च होने की स्थिति स्वभावतः अनिवार्य थी और उसका पद वंशक्रमानुगत था। यों सिद्धान्ततः वह विजीर की इच्छा के फल-स्वरूप ही, अपना पद धारण करता था जो उसकी नियुक्ति की सिफारिश खलीफा से करता था। जब वजीर हटा दिया जाता था तो उसके द्वारा अनुशंसित गवर्नर को भी अपने पद से हट जाना पड़ता था। जैसा कि ऊपर इतिहासकार अल-मावर्दी द्वारा वर्णित वजीरों की दो किस्मों का जिक्र किया गया है, वैसे ही गवर्नरों की भी दो किस्में थीं, इमराह् अम्माह (प्रधान-अमीर) और खास (विशेष)। इमराह् अम्माह को फौजी मामलों के संचालन, काजियों के मनोनयन और नियंत्रण, कर लगाने, सार्वजनिक सुरक्षा कायम रखने, धर्म में अपरम्परागत बातें लाने के विरुद्ध सुरक्षा, आरक्षी (पुलिस) के प्रशासन और शुक्रवार की नमाज की अध्यक्षता आदि करने के अधिकार थे। मावर्दी का कहना है कि दूसरे किस्म के गवर्नर यानी खास के अधिकार सीमित थे। उसे काजी की नियुक्ति करने और कर लगाने का अधिकार न था। पर गवर्नरों का यह वर्गीकरण महज सैद्धान्तिक था। प्रान्तीय गवर्नर का प्राधिकार उसी अनुपात में बढ़ता था जिस अनुपात में वह योग्य होता था तथा खलीफा कमजोर होता था तथा प्रान्त संघीय राजधानी से जितना दूर होता था। हर प्रान्त के मामले में प्रान्त की स्थानीय राजस्व का उपयोग वहाँ के सरकारी खर्चों में किया जाता था। यदि प्रान्त का राजस्व स्थानीय सरकारी खर्च से कम होता था तो उसकी प्रतिपूर्ति खलीफा के कोषागार में जमा रकम से करने की व्यवस्था थी। न्याय-प्रशासन प्रान्तीय काजी के हाथों में रहता जिनकी सहायता के लिए प्रान्तों के विभिन्न अनुमंडलों में स्थित उसके सहायक काजी नियुक्त थे।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अब्बासिद प्रशासन सरकार की हर शाखा में भलीभांति सुगठित था और सरकारी कार्य-कलाप सुव्यवस्थित ढंग से आयोजित थे।

३. यहाँ उल्लिखित अब्बासिद प्रान्तों की सूची के लिये देखें, ले स्ट्रेंज कृत 'ईस्टर्न कैलिफेट", पृ० १ से ९ तक।

अनुदान के रूप में वह रकम पाने लगे और प्रजा पर वे सम्पूर्ण शक्ति के साथ शासन करने लगे। इसके लिए वे साल्जुक सुल्तान को एक वार्षिक कर देने लगे और युद्ध के समय उस सुल्तान के झण्डे के नीचे अपने द्वारा रखी जाने वाली शस्त्र-सज्जित सेना की नियत टुकड़ियाँ देने लगे।

प्रान्तीय प्रशासन

प्रशासनिक प्रयोजन के लिए पूरा अब्बासिद साम्राज्य अनेक प्रान्तों में बँटा हुआ था। उमैय्यदों के शासन में साम्राज्य का प्रान्तों में जो विभाजन पहले की बैजेन्टाइन या फारस की प्रणाली के अनुसार हुआ था उसमें अब्बासिद शासन में कोई बड़ा परिवर्त्तन न हुआ। प्रान्त गवर्नर (अमीर या अमील) के अधीन थे। प्रान्तों में शासन अमीर या गवर्नर और अमील या वित्तीय अधीक्षक द्वारा संयुक्त रूप से चलाया जाता था। इन लोगों के अधीन अपने कर्मचारी और आरक्षी-बल थे और इन्हें कुछ सीमा तक स्वायत्तता प्राप्त थी। इन पर डाक सेवा प्रधान (पोस्ट-मास्टर) की निगरानी रहती थी। उसका काम था कि प्रान्त की घटनाओं की खबर सीधे डाक और गुप्तचर सेवा के दीवान को भेजे। अब्बासिदों की प्रान्तों की सूची समय-समय पर बदलती रहती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि बगदाद के प्रारंभिक अब्बासिद खलीफाओं के अधीन मुख्य प्रान्त ये थे—(१) लीबियाई रेगिस्तान के पश्चिमी अफ्रिका के साथ सिसिली; (२) मिस्र; (३) सीरिया और फिलिस्तीन, जो कभी-कभी अलग कर दिये जाते थे, (४) हेज्जाज और यमामा (मध्य अरब), (५) यमन या दक्षिणी अरब, (६) बहरैन और उमान जिसकी राजधानी ईराक-स्थित बसरा थी, (७) सवाद या ईराक (निचला मेसोपोटामिया), (८) जजीरा (अर्थात प्रायद्वीप के बजाय द्वीप प्राचीन असीरिया जिसकी राजधानी मावसिल (मोसुल) थी, (९) अजरबैजान, (१०) जिबाई (पहाड़, प्राचीन मेडिया), (११) खजिस्तान जिसके मुख्य नगर अहवाज और तुस्तार[२] थे, (१२) फारिस जिसकी राजधानी शीराज थी; (१३) करमान जिसकी मौजूदा राजधानी का भी यही नाम है, (१४) मुकरान जिसमें वर्त्तमान बलूचिस्तान था पर सिन्धु घाटी के सामने पड़ने वाला उच्च क्षेत्र न था, (१५) सिजिस्तान या सिस्तान जिसकी राजधानी जारंज थी, (१६ से २०) कुहिस्तान, क्यूमिस, तबरिस्तान, जुरजान और आर्मेनिया, (२१) खुरासान जिसमें वे क्षेत्र थे जो अफगानिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी भाग हैं और जिसके मुख्य नगर नयसाबुर, मर्व, हरात (हेरात) और बल्ख थे, (२२) ख्वारिज, (२३) अल सुग्घ (प्राचीन सोगदामिया) जो औक्सस और जक्सारस नदियों के बीच अवस्थित था

२. फारसी इसे शस्तार या शुस्तार कहते हैं।

और जिसके प्रसिद्ध नगर बुखारा और समरकंद थे; २४ (आदि) फरगना, शाश (वर्त्तमान ताशकंद) और उनके तुर्की क्षेत्र[3]।

राज्यपाल का प्राधिकार

अब्बासिदों के युग में शाही राजधानी की ओर से सत्ता के केन्द्रीकरण के सभी प्रयासों के बावजूद आंतरिक आवागमन के कठिन साधनों वाले ऐसे सुदूरव्यापी साम्राज्य में विकेन्द्रीकरण एक अनिवार्य परिणाम था। अपने क्षेत्र के सभी स्थानीय मामलों में गवर्नर का प्राधिकार सर्वोच्च होने की स्थिति स्वभावतः अनिवार्य थी और उसका पद वंशक्रमानुगत था। यों सिद्धान्ततः वह विजीर की इच्छा के फल-स्वरूप ही, अपना पद धारण करता था जो उसकी नियुक्ति की सिफारिश खलीफा से करता था। जब वजीर हटा दिया जाता था तो उसके द्वारा अनुशंसित गवर्नर को भी अपने पद से हट जाना पड़ता था। जैसा कि ऊपर इतिहासकार अल-मावर्दी द्वारा वर्णित वजीरों की दो किस्मों का जिक्र किया गया है, वैसे ही गवर्नरों की भी दो किस्में थीं, इमराह अम्माह (प्रधान-अमीर) और खास (विशेष)। इमराह अम्माह को फौजी मामलों के संचालन, काजियों के मनोनयन और नियंत्रण, कर लगाने, सार्वजनिक सुरक्षा कायम रखने, धर्म में अपरम्परागत बातें लाने के विरुद्ध सुरक्षा, आरक्षी (पुलिस) के प्रशासन और शुक्रवार की नमाज की अध्यक्षता आदि करने के अधिकार थे। मावर्दी का कहना है कि दूसरे किस्म के गवर्नर यानी खास के अधिकार सीमित थे। उसे काजी की नियुक्ति करने और कर लगाने का अधिकार न था। पर गवर्नरों का यह वर्गीकरण महज सैद्धान्तिक था। प्रान्तीय गवर्नर का प्राधिकार उसी अनुपात में बढ़ता था जिस अनुपात में वह योग्य होता था तथा खलीफा कमजोर होता था तथा प्रान्त संघीय राजधानी से जितना दूर होता था। हर प्रान्त के मामले में प्रान्त की स्थानीय राजस्व का उपयोग वहाँ के सरकारी खर्चों में किया जाता था। यदि प्रान्त का राजस्व स्थानीय सरकारी खर्च से कम होता था तो उसकी प्रतिपूर्ति खलीफा के कोषागार में जमा रकम से करने की व्यवस्था थी। न्याय-प्रशासन प्रान्तीय काजी के हाथों में रहता जिसकी सहायता के लिए प्रान्तों के विभिन्न अनुमंडलों में स्थित उसके सहायक काजी नियुक्त थे।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अब्बासिद प्रशासन सरकार की हर शाखा में भलीभांति सुगठित था और सरकारी कार्य-कलाप सुव्यवस्थित ढंग से आयोजित थे।

३. यहाँ उल्लिखित अब्बासिद प्रान्तों की सूची के लिये देखें, ले स्ट्रेंज कृत 'ईस्टर्न कैलिफेट", पृ० १ से ९ तक।

अब्बासिदों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

अरब सामाजिक संगठन के मूलभूत ढाँचे की आदिकालीन जनजातीय व्यवस्था अब्बासिदों के अधीन पूरी तरह टूट गई। यहाँ तक कि खलीफा भी अपनी बीवियों और अपने बच्चों की माताओं को चुनने में अरब रक्त को कोई महत्व न देने लगे। उनमें से केवल तीन स्वतंत्र माताओं के पुत्र थे। ये थे खलीफा सफा, महदी और अमीन। अमीन को यह विशिष्ट श्रेय प्राप्त था कि उसके माता-पिता दोनों हजरत मुहम्मद के परिवार के थे। खलीफा मंसूर की माँ बर्बर जनजाति की थी, मामून की माँ एक फारसी दासी थी, बाथिक और मुहतादिद की माताएँ यूनानी थीं, मुंतसिर की माँ यूनानी-अबीसीनियन थी और मस्तेन की माँ स्लाव (सकलाविया)। मुक्तफ तथा मुक्तदीर की माताएँ तुर्की दासियाँ थीं और मुस्तादी की माँ आर्मेनियाई। हारून-अल-रशीद की माँ एक अन्य विदेशी दासी सुप्रसिद्ध अल-खेजरून थी। वह प्रथम महिला थी जो अब्बासिद खलीफा के शासकीय मामलों में कुछ विशेष महत्त्व रखती थी। जैसा कि अध्याय १२ में उल्लेख आ चुका है, अरब रक्त के साथ अपने प्रजाजन के रक्त के साथ इस मिश्रण में बहु-विबाह, रखेलिनें रखने की प्रथा तथा दास-व्यापार ने प्रभावकर भूमिका अदा की। शुद्ध अरब तत्व पृष्ठभूमि में चला-सा गया और उसका स्थान गैर-अरबों, मिश्रित रक्त वाले मुसलमानों और दासता से मुक्त की गई दासियों के पुत्रों ने ले लिया। साथ ही उसके बाद जल्द ही अरब कुलीन-तंत्र का स्थान पदाधिकारियों के उस पद-सोपान ने लिया जिसमें विभिन्न राष्ट्रिकताओं (नागरिकताओं) के प्रतिनिधियों ने लिया जिनमें पहले फारसियों का आधिक्य था और बाद में तुर्कों का।

एक कवि ने गर्वपूर्ण अरब रक्त को निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्ति दी है—

हमारे बीच रखेलिनों के
पुत्र बहुसंख्य हो गये हैं,
ओ खुदा, मुझे ऐसी जगह ले चल
जहाँ न दीख पड़ें मिश्रित रक्त वाले।

दुर्भाग्य से अरब इतिहासकारों ने खलीफा के वृतान्त और उस समय की राजनीतिक स्थिति पर बहुत ज्यादा जोर दिया है और उन दिनों सामान्य जनता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का अपर्याप्त ही विवरण छोड़ा है। पर उनकी कृतियों में यत्र-तत्र मिलने वाले प्रासंगिक विवरणों, मुख्यतः साहित्यिक कृतियों और आज के पूर्वी अनुदार मुस्लिम सामान्य जीवन के जो विवरण मिलते हैं उससे उस समय के ढांचे का एक चित्र बना पाना असंभव नहीं है।

सामाजिक प्रभाग

समाज में सबसे ऊपर खलीफा और उसका परिवार, सरकारी अफसर, हाशीमी वंश के वंशज और इन वर्गों के इर्द-गिर्द रहने वाले लोग आते हैं। सबसे निचले तबके में कृपापात्र मित्र तथा उत्पन्न साथी तथा आश्रित लोग एवं सेवकगण थे।

दास

सेवकगण में प्रायः सभी दास आते थे जो गैर-मुसलमानों तथा युद्ध में सेना द्वारा विजित किये गये और बन्दी बनाये गये या शान्ति-काल में खरीदे गये लोग होते थे। इनमें से कुछ नीग्रो, कुछ तुर्क और अन्य गोरी चमड़े वाले लोग होते थे। ये गोरी चमड़ी वाले लोग (ममालिक) कहे जाते थे जिनमें मुख्यतः यूनानी, स्लाव, आर्मेनियाई और बर्बर जनजाति के लोग होते थे। कुछ दास हिजड़े (खिस्यान) होते थे जो रनिवास (हरम) से संलग्न रहते थे। इस तरह के दूसरे लोगों को (घिलमान) कहा जाता था जो भी संभवतः हिजड़े ही होते थे और अपने मालिकों के प्रिय हुआ करते थे। वे कीमती और आकर्षक वस्त्र पहनते थे, अक्सर खूबसूरत होते थे तथा स्त्रियों की भांति सुगंधित द्रव्यों से अपने शरीर को सुगंधित रखते थे। हमें हारून-अल-रशीद के शासन में घिलमान का विवरण मिलता है पर प्रत्यक्षतः हारून के पुत्र अमीन ने फारस के पूर्वोदारण पर, अरब जगत में घिलमानों की परिपाटी शुरू की।

दासों में से कुमारियों (जवारी) का भी उपयोग गायिकाओं, नर्त्तिकाओं, और रखेलिनों के रूप में किया जाता था और उनमें से कुछ अपने मालिक खलीफाओं पर काफी प्रभाव रखती थी। एक ऐसी ही दासी घात-अल-खाल (छछूंदरी) थी जिसे अपने एक सेवक के प्रति ईर्ष्या के मनोवेग में उसने ७०,००० दिरहम में खरीदा था। एक गायिका से हारून का ध्यान हटाने और उससे उसे विरक्त करने के लिए उसकी पत्नी जुबेदा ने अपने पति के लिए दस जवारियों की व्यवस्था की जिनमें एक बाद में चल कर, मामून की माँ हुई और दूसरी मुतासिम की। अरब

सहस्र रजनी (थाउजैण्ड अरेबियन नाइट्स) में हमें सुन्दरी और प्रतिभाशाली दास-कन्या तबादुदकी दंत-कथा मिलती है। उसे खलीफा हारून-रसीद १००,००० दिनार में खरीदने को तैयार था यदि वह साहित्य-शास्त्र, व्याकरण, काव्य, इतिहास और कुरान के अलावा चिकित्सा-शास्त्र, विधि (कानून), ज्योतिष, दर्शन और गणित में खलीफा के विद्वानों के सामने एक कड़ी परीक्षा में सफल होगी। इससे स्पष्ट होता है कि इन दास-कुमारियों में से कुछ कितनी अधिक सुसंस्कृत हुआ करती थीं। इस दिशा में हारून के पुत्र अमीन का योगदान यही रहा है कि उसने एक महिला-परिचर दल बनवाया। ये महिलाएँ घुंघराले बाल रखतीं, लड़कों जैसी पोशाक पहनतीं और सिल्क की पगड़ी बाँधती थीं। यह नई सज्जा रीति समाज के उच्च एवं निम्न वर्गों में शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। एक आँखों देखे विवरण में जब अमीन ईसाइयों के त्योहार ईस्टर के पूर्व के रविवार को अपने भाई मामून के यहाँ गया तो उसने पाया कि वहाँ उसके सामने बीस यूनानी कुमारियाँ, जो सभी सुसज्जित एवं आभूषण अलंकृत थीं, नाच रही थीं। उनके गलों से सोने का क्रास-चिह्न लटक रहे थे और उनके हाथों में जैतून वृक्ष की छोटी-छोटी शाखायें और ताड़ वृक्ष के पत्ते थे। अन्त में नर्तकियों के बीच ३००० दिनार बांटे गए और तब समारोह समाप्त हुआ।

खलीफाओं के महलों में रहने वाले दास-दासियों की बड़ी संख्या से आभास मिलता है कि दास-प्रथा उस समय कितने व्यापक स्तर पर प्रचलित थी। हमें ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि खलीफा मुक्तदीर (९०९-३२) के महल में ११००० यूनानी और सूडानी हिजड़े थे। एक जगह विवरण है कि अल-मुतवक्किल को ४००० रखेलिनें थीं। एक बार इस खलीफा को अपने एक सेनापति से २०० दास उपहार-स्वरूप मिले। ऐसी प्रथा थी कि गवर्नर और सेनापति खलीफा या वजीर को उपहार भेजते थे जिनमें नर्तकियाँ भी होती थीं जो प्रजाजन से प्राप्त होती थीं या प्राप्त की जाती थीं। यदि वे ऐसा न करते थे तो उसको विद्रोह का चिह्न माना जाता था। मामून ने योजना शुरू की कि वह अपने गवर्नरों के यहाँ अपने विश्वस्त दास उपहार के रूप में भेजता था। उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे उन्हें प्राप्त करने वाले गवर्नरों पर, जिनकी ईमानदारी पर संदेह होता था, जासूस के रूप में काम करें। यदि ऐसे जासूसी की सूचना उन गवर्नरों के विरुद्ध होती थी तो उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता था।

समुदाय में एक उच्च वर्ग होता था जिसे कुलीन तंत्र कहा जा सकता है। इसमें साहित्यिक और काव्य-शास्त्री, विद्वान व्यक्ति, कलाकार, व्यापारी, विभिन्न पेशेवर लोग होते थे। उच्च वर्ग के अलावा एक निम्न वर्ग जो राष्ट्र में होता था, बहुसंख्यक होते थे और जिसमें किसान, चरवाहे और गाँव के लोग आते थे। उन्हें घिम्मियों की स्थिति प्राप्त थी।

नागरिक और घिम्मी

केवल मुसलमान पूर्ण रूप में नागरिक होते थे। यहूदी और ईसाई राज्य में तभी रह सकते थे यदि वे जजिया कर देते थे और राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखते थे। यह अधिकार बाद में फारस के अग्निपूजकों को मिला। उन्हें "अल्लाह और उसके दूत का संरक्षण प्राप्त" या संक्षेप में "संरक्षित व्यक्ति" (अहल उल घिम्मा) कहा जाता था। उन्हें "घिम्मी" का विशेषण प्राप्त था। सरकार की ओर से उन्हें संबोधित किया जाता था "उन लोगों को अभिवादन जिन्हें संरक्षण प्राप्त है।" प्रारंभिक दिनों में ईसाई अरब जजिया कर न देते थे पर मुसलमानों द्वारा दिये जाने वाले करों का दुगुना देते थे। यह वर्ग जल्द ही समाप्त हो गया। कानूनी रूप में अरब में केवल एक धर्म था। घिम्मी अरब प्रायद्वीप से निर्वासित कर दिये गये, पर व्यापार के लिए उन्हें वहाँ आने की अनुमति थी। सर्वप्रथम अरब विजेता अपने रूप-रंग और वस्त्र आदि में प्रान्त के लोगों से अलग दीख पड़ते थे, पर वहाँ ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती गई और अरबों और गैर-अरबों के बीच विवाह आदि होते गये, उन लोगों के बीच का अंतर समाप्त होता गया। ऐसा विनिहित किया गया कि घिम्मी एक विशिष्ट वस्त्र पहनेंगे जिसमें कमरबंद, एक रंगीन निशान के साथ बाहरी वस्त्र तथा पगड़ी थी। ईसाइयों द्वारा नीली पगड़ी और यहूदियों द्वारा पीली पगड़ी पहने जाने का नियम था।

सामान्यतः वे लोग सेना में सेवा न कर सकते थे। सिद्धान्ततः वे लोग अपने पूजा-स्थल मरम्मत की हालत में रख सकते थे पर, विशेषतः बसरा और कूफा में वे अपने नये पूजा-स्थल न बनवा सकते थे। उनके द्वारा हजरत मुहम्मद की निन्दा किये जाने पर उन्हें मौत की सजा मिलती थी। यहाँ तक हजरत मुहम्मद की आलोचना के लिए उन्हें कड़ी फटकार मिलती थी। वे लोग मुसलमानों के मकानों से ऊँचे मकान न बना सकते थे। ऐसा इस कारण कि दैनिक जीवन, जिसे रात्रि का जीवन कहना ज्यादा सही होगा, प्रायः मकानों की छतों पर ही बिताया जाता था। कानून के अनुसार कोई ऐसा व्यक्ति, जो मुसलमान न होता था, मुसलमानों पर अपने प्राधिकार का प्रयोग न कर सकता था। पर आवश्यकता ऐसी हो जाती थी कि वह कानून प्रभावकारी न रह जाता था। घिम्मी बराबर सरकारी दफ्तरों में पाये जाते थे। वे निजी व्यक्तियों की सेवा में भी रहते थे। वे लिपिकों और सचिवों के रूप में काम करते थे। शासकों ने बार-बार आदेश निकाला कि सभी घिम्मी सरकारी और गैरसरकारी सेवाओं से निकाल दिये जायें। पर बीच-बीच में निकाले जाने के बाद वे सेवा में वापस आ जाते थे। जब घिम्मी अपनी नाजुक स्थिति भूल जाते थे तो वे अक्सर अत्याचार पर उतर जाते थे। फलतः दंगे, आगजनी और हत्याओं जैसे काण्ड होने लगते थे। वे मुसलमान दासों को नहीं रख सकते थे।

यदि उसका दास इस्लाम धर्म स्वीकार कर मुसलमान हो जाता था, तो उसे किसी मुसलमान के हाथों बेच देना पड़ता था। औटोमन साम्राज्य में यह सिद्धान्त प्रचलित था कि धिम्मी अतिरिक्त कर इसलिए देते हैं कि उन्हें फौजी सेवा से मुक्त रखा जाता है।

कृषक वर्ग साम्राज्य की आबादी में बहुसंख्यक थे, और राज्य का राजस्व का मुख्य स्रोत वे ही लोग थे। वे उस क्षेत्र के मूल निवासी थे पर अब उनकी स्थिति अवमूल्यित हो कर धिम्मियों की हो गई थी। अरब कृषि-कार्य करना अपनी प्रतिष्ठा के नीचे समझते थे। मूलतः ईसाइयों, यहूदियों और सैबियनों की तरह अपने धर्म-ग्रन्थों के अनुदेशों के अनुसार चलने वाले धिम्मियों ने, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अब अपनी स्थिति व्यापक कर ली थी। उनमें जरतुश्ती, मैनीसियन, हारान सैबियन, और अन्य लोग शामिल हो गये थे। इनमें से उन सभी के साथ एक ही जैसा व्यवहार किया जाता था जिन्होंने आपस में धार्मिक सहिष्णुता का समझौता कर रखा था। ग्रामीण क्षेत्रों और अपने खेत-खलिहानों में वे अपने प्राचीन सांस्कृतिक आदेशों से दृढ़ता के साथ चिपके हुए थे और अपनी मूल भाषा सुरक्षित कर रखी थी। सीरिया और ईराक में आरमाइक और सीरियाई, फारस में फारसी (ईरानी) और मिस्र में प्राचीन मिस्री भाषा प्रयोग में लाई जाती थी। धिम्मियों में से जिन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, वे शहरों में चले गए।

नगरों में भी ईसाई और यहूदी अक्सर महत्त्वपूर्ण वित्तीय, लिपिकीय और अन्य धन्धों के महत्त्वपूर्ण पदों पर रहते थे। इससे मुस्लिम आबादी को जलन होती थी जो इस संबंध में सरकारी बनाये गए कानूनों से अभिव्यक्त होती थी। पर मुसलमानों और गैर-मुसलमानों पर आधारित भेदभाव इन कानूनों में से अधिकतर कागज पर ही रह जाते थे और उनका बराबर पालन और कार्यान्वयन न हो पाता था।

ईसाइयों और यहूदियों को विशिष्ट पोशाकों को पहनने और उन्हें सरकारी पदों से दूर रखने और हटाने का आदेश देने वाला प्रथम खलीफा उमैय्यद राजवंश का उमर द्वितीय था। कहीं-कहीं गलती से इस कार्य के लिए उमर प्रथम को जिम्मेदार माना जाता है। अब्बासिदों में स्पष्टतः सर्वप्रथम खलीफा हारून ने इन पुराने कानूनों को फिर से अधिनियमित किया। सन् ८०७ में उसने आदेश दिया कि साम्राज्य की सीमा पर स्थित सभी गिरजाघर और साथ ही मुस्लिम विजय के बाद निर्मित गिरजा घर भी नष्ट कर दिए जायें। उसने यह भी आदेश दिया कि शासन में जिन (गैर-मुस्लिम) समुदायों का अस्तित्व बर्दाश्त किया जा रहा है, वे उपर्युक्त कानूनों में विहित वस्त्र धारण किया करें। धिम्मियों के खिलाफ कठिनतम कानूनों की परिणति

सन् ८५० से ८५४ के बीच खलीफा मुतवक्किल के समय हुई जिसने आदेश दिया कि ईसाई और यहूदी अपने अपने मकानों के सामने शैतान की मूर्तियाँ लगा दिया करें, अपनी-अपनी कब्रों को ऊँचा न उठायें बल्कि जमीन की सतह के बराबर ही रखें, बाहरी वस्त्र शहद के रंग के यानी पीले रखें, अपने दासों के वस्त्रों पर पीले रंग के दो निशान या थिगलियाँ रखा करें जिनमें से एक वस्त्र के पीछे सिली हुई हो और दूसरा आगे। अपने इस विशिष्ट वस्त्र के कारण धिम्मियों को "दागे गये" की उपाधि मिली। एक और गंभीर अयोग्यता, जिससे धिम्मी पीड़ित थे, यह थी कि मुस्लिम विधिवेत्ताओं ने आदेश दे रखा था कि किसी मुसलमान के खिलाफ ईसाई या यहूदी की गवाही स्वीकार न की जाएगी। ऐसा इस धारणा के कारण कि यहूदियों और ईसाइयों ने अपने धर्मग्रन्थों को दूषित कर रखा है, जैसा कि कुरान का आरोप है और इस कारण उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अंतिम खलीफा, जिसने धिम्मियों के खिलाफ इन विरोधी उपायों का और कड़े रूप में पुनर्नवीकरण किया फातिमिद वंश का खलीफा अल-हकीम (सन् ९९६-१०२१) था। इन प्रतिबंधों के बावजूद अब्बासिद खलीफाओं के अधीन ईसाइयों और यहूदियों को अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णुता का व्यवहार मिला हुआ था वह कई घटनाओं से प्रकट होता है। जिस तरह की धार्मिक बहसें उमैय्यद खलीफाओं मुआविया और अब्द-अल-मालिक के समक्ष हुआ करती थीं, वैसी अब्बासिद खलीफाओं के समक्ष भी होती थी। नेस्टोरियनों[1] के धर्माध्यक्ष टिमोथी ने खलीफा अल-महदी के समक्ष ईसाई धर्म के पक्ष में जो भाषण दिया उसकी प्रति हमें आज भी उपलब्ध है। उसी प्रकार करीब सन् ८१९ में खलीफा अल मामून के समक्ष इस्लाम और ईसाई धर्म के तुलनात्मक गुणों के संबंध में वाद-विवाद का एक समसामयिक विवरण भी जो अल-किंदी के प्रसिद्ध लेख के रूप में है, हमें उपलब्ध है। इसके अलावा हमें यह उल्लेख भी मिलता है कि नौवीं ईस्वी सदी के उत्तरार्द्ध में खलीफाओं के ईसाई वजीर होते थे। इस संबंध में एक उदाहरण अब्दुल इब्न-सैद का है जिसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए बगदाद का एक काजी, सबके सामने, उठ खड़ा हुआ। इस कारण उसे वहाँ खड़े दर्शकों की नापसंदगी का शिकार होना पड़ा। खलीफा मुत्तकी (सन् ९४०-४४) का वजीर ईसाई था। खलीफा मुतादीद (सन् ८९२-९०२) के युद्ध कार्यालय का प्रधान एक ईसाई था। ऐसे ईसाई उच्च पदाधिकारियों का सम्मान भी सामान्य तरीकों से किया जाता था।

---

१. नेस्टोरियन कांस्टेंटीनोपुल के धर्माध्यक्ष नेस्टोरियस (सन् ४२८-३१) से संबंधित। उसका उपदेश था कि ईसा-मसीह का देवत्व और मानवता किसी एक सचेतन व्यक्ति में संयुक्त न थे। इस उपदेश के अनुयायी नेस्टोरियन कहे जाते थे।

नेस्टोरियन

अब्बासिद खलीफाओं की ईसाई प्रजा अधिकांशतः दो ईसाई गिरजाघरों की अनुयायी थीं। वे लोग अपरंपरावादी या असनातनी थे। उन्हें जेकोबाइट और नेस्टोरियन कहा जाता था। नेस्टोरियन लोग प्रधानतः ईराक में थे। नेस्टोरियनों के धर्माध्यक्ष या प्रधान को बगदाद में रहने का अधिकार था। ऐसा अधिकार अपने धर्माध्यक्ष के लिए जेकोबाइटों ने भी मांगा पर उनकी यह माँग कभी पूरी नहीं की गई। धर्माध्यक्ष के पद के जिसे दायर अल-रूम (रोमनों या ईसाइयों का मठ) कहा जाता था, ईद-गिर्द, बगदाद में एक ईसाई क्षेत्र विकसित हो रहा था जिसे दर-अल-रूम कहा जाता था। कैथोलिकों के क्षेत्राधिकार के अधीन सात मिश्रित नगर विकसित हुए जिनमें बसरा, मौसिल और नसीबिन शामिल हैं, दो या तीन धर्माध्यक्ष रहते थे। चुने हुए धर्माध्यक्ष के साथ साम्राज्य में सभी ईसाइयों के प्रधान के रूप में व्यवहार किया जाता था। सन् ९१२-९१३ में कैथोलिक ईसाई खलीफाओं को रोकने में सफल हो गए कि जैकोबाइट धर्माध्यक्ष को, जो ऐंटिओक नगर में अपना निवासस्थान रखता था, बगदाद में अपना निवासस्थान न बना दें। जैकोबाइटों के खिलाफ मुख्य राजनीतिक आरोप यह था कि वे वैजेन्टाइनों के प्रति सहानुभूति रखते थे। पर इसके बावजूद जैकोबाइटों का एक मठ बगदाद में था और उप-धर्माध्यक्षीय केन्द्र ताकरित में था जो बगदाद से बहुत दूर न था। इतिहासकार याकूत उन एक दर्जन ईसाई मठों की सूची प्रस्तुत करता है जो पूर्व बगदाद में थे और इतनी ही संख्या में पश्चिमी बगदाद में थे।

मिस्र में पुराने मिस्री ईसाई निवासियों के साथ भाई-चारा था और इसी तरह नूबियन गिरजाघर भी जैकोबाइट ही था और सिकन्दरिया के धर्माध्यक्ष को प्रधानता की मान्यता देता था। मिस्र के सँकरे समुद्र तटीय क्षेत्र में ईसाइयों के अनुयायी बर्बर जनजाति के थे पर देश के आंतरिक क्षेत्र की आबादी के अधिकांश भाग में ईसाइयों के धार्मिक साम्प्रदायिक दल अपने-अपने जनजातीय प्रभागों के अनुसार थे एवं उनसे सम्बद्ध थे। खलीफाओं के अधीन ईसाइयों का सबसे उल्लेखनीय स्वरूप उनकी जीवन्तता थी जिस कारण उन्होंने अपना प्रभावशाली गिरजाघर बना रखा था। वे लोग अपने धार्मिक दूत भारत और चीन भी भेजते थे।

यहूदी

अब्बासिद खलीफाओं के अधीन सुरक्षित लोगों में से एक यहूदी भी थे जिनके साथ ईसाइयों से भी ज्यादा अच्छा व्यवहार किया जाता था और वह भी इसके बावजूद कि कुरान में कहीं-कहीं उनके प्रतिकूल प्रसंग आये हैं। उनकी संख्या

कम थी और इस कारण उनसे कोई समस्या उत्पन्न न होती थी। सन् ९८५ में इतिहासकार अलमकदिसी का कहना है कि सीरिया में यहूदियों में से अधिकांश धन का आदान-प्रदान करने वाले एवं महाजन थे और ईसाइयों में से अधिकांश लिपिक और चिकित्सक थे। विवरणों से पता चलता है कि अनेक खलीफाओं और विशेषतः अल-मुतादीद (सन् ८९२-९०२) के शासन-काल में राजधानी और प्रान्तों में एक से अधिक यहूदी महत्त्वपूर्ण पदों पर थे। खुद बगदाद में यहूदियों ने अपनी एक बड़ी बस्ती बना रखी थी जो नगर का पतन होने तक कायम रही।

बेबीलोन के यहूदियों के प्रधान को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और उसे डेविड का वंशज माना जाता था। यहूदी सम्प्रदाय का प्रधान वहाँ के सभी यहूदियों के मुखिया के रूप में बगदाद की खिलाफत के प्रति निष्ठा रखते थे।

सैबियन

अरब लेखकों द्वारा वर्णित सच्चे सैबियन, जो वास्तव में मैंडीयन थे, उस धार्मिक समुदाय के थे जो अपने को जुडेयो-ईसाई कहते थे। वे ईसाई संत जौन के अनुयायी थे। इस कारण आधुनिक जगत में गलती से उन्हें मैंडीयन न कह कर संत जौन (बपितसमावादी) के ईसाई के रूप में जाना जाता है। ये लोग (मैंडीयन) अपने यहाँ बच्चे के जन्म के बाद नामकरण (बपित्समा) संस्कार तथा विवाह के पूर्व एवं अन्य अवसरों पर ईसाइयों के से अन्य संस्कार करते हैं। वे लोग बैबीलोन के निचले क्षेत्र में रहते थे और उनके धर्म-पंथ का समय ईसामसीह के बाद पहली शताब्दी है। संभवतः फिलीस्तीन इस धर्मपंथ और अन्य बपित्समावादी समुदायों का मूल स्थान था। इस धर्म पंथ (मैंडीयन) के करीब पांच हजार लोग अभी भी बसरा के निकट दलदली क्षेत्रों में रहते हैं। नदियों के आसपास रहने की आवश्यकता उनको इसलिए पड़ती है कि बहते पानी में गोता लगाना उनके धार्मिक रीति-रिवाज का एक परमावश्यक और निश्चय ही सबसे विशिष्ट अंग है।

मैजियन और अन्य द्वैतवादी

जरतुश्तवादियों का केवल एक बार कुरान (२२-१७) में उल्लेख आता है। वे हजरत मुहम्मद के विचार में धर्मग्रंथवादियों में शामिल नहीं किये जा सकते थे। पर हदीस और मुस्लिम विधिवेत्ताओं ने उन्हें धर्मग्रंथवादियों के रूप में स्वीकार किया है और "सैबियन" शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है कि उन्हें भी उनमें शामिल किया है। व्यावहारिक राजनीति और औचित्य की मांग के कारण यह आवश्यक हो गया कि ईरान की जैसी विशाल जनसंख्या को धिम्मियों की स्थिति प्रदान की जाय। ईरान की विजय के बाद भी जरतुश्तवाद वहाँ का राजधर्म बना रहा और

उसके सुन्दर मंदिर न केवल सभी ईरानी प्रान्तों में वल्कि ईराक, भारत और फारस के पूर्वी क्षेत्र में भी मौजूद थे। भारत में जरतुश्तवादी अभी भी फारसियों के रूप में मौजूद हैं। उनके पूर्वज आठवीं शताब्दी में भारत में आकर बस गये थे। जरतुश्तवादियों में अनेक ने इस्लाम धर्म अपनाया जो आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

मैनीशियनों को, जिन्हें मुसलमानों ने गलती से ईसाई या जरतुश्तवादी समझ लिया। बाद में उन्हें राज्य में रहने लायक समुदाय का दर्जा मिला। फारसी संत मनी (सन् २७३ या २७४) और उसके उपदेशों के लिए पैगम्बर मुहम्मद के अनुयायियों के बीच बराबर से एक आकर्षण रहा है। दो खलीफाओं महदी और हादी ने इस दिशा में प्रवृत्ति के विरुद्ध बड़े कदम उठाये। सन् ७८० में खलीफा महदी ने एलेप्पो में अनेक प्रच्छन्न (गुप्त) मैनीशियनों को सूली पर चढ़ाया। साथ ही उसने शासन के अंतिम दो वर्षों में बगदाद में उनमें से अनेक के विरुद्ध जाँच शुरू कराई। हादी ने अपने पूर्ववर्ती खलीफा महदी द्वारा शुरू किये गये मैनीशियनों को दंडित करने का काम चालू रखा। हारून-अल रशीद ने इसी प्रकार इन द्वैतवादियों (मैनीशियनों) के विरुद्ध जाँच के लिए एक विशेष अफसर नियुक्त किया। पर इसके बावजूद अनेक मैनीशियन और साम्यवादी विचारधारा वाले मजदीकियाँ लोग काफी संख्या में बच रहे।

महिलाओं की स्थिति

अब्बासिदों के प्रारम्भिक काल में महिलाओं को वही स्वतंत्रता प्राप्त थी जो उन्हें उमैय्यदों के शासन में प्राप्त थी। पर दसवीं शताब्दी के अन्त में महिलाओं को कड़ाई के साथ पुरुष-समाज से अलग रखना और पुरुषों और स्त्रियों का सम्पूर्ण पृथक्करण लागू हो गया। हमें विवरण मिलता है कि अब्बासिदों के प्रारम्भिक काल में महिलाओं ने विशिष्टता प्राप्त की थी और वे राज-काज में काफी प्रभाव रखती थीं। उदाहरण के लिए महदी की पत्नी और हारून की माँ अल-खजुरान, महदी की पुत्री उलैय्या, हारून की पत्नी और अमीन की माँ जुबैदा और मामून की पत्नी बारून का उल्लेख किया जा सकता है। यही नहीं, महिलायें युद्ध के मैदान में भी जाती थीं और फौजों का सेनापतित्व भी करती थीं। यही नहीं, वे कविता रचतीं और साहित्य कार्य-कलाप में पुरुषों में प्रतिद्वन्द्विता करती थीं और साथ ही अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण उक्तियों, संगीत-प्रतिभा और जीवन्त वाणिविलास से समाज में सरस वातावरण बनाने में भी योगदान करती थीं। इसी तरह की एक महिला, खलीफा मुतासिन के शासन-काल में उबयदाह अल-तुनबूरियन थी जो सुन्दर होने के साथ गायिका और संगीतज्ञ भी थी और राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। पर अब्बासिदों के पतन-काल में अनेक संख्या में रखेलिन रखने की प्रथा, यौन-नैतिकता में ढील और ऐश-ओ-

इस्लाम में विवाह को प्रायः विश्वसनीय माना गया है और उसकी उपेक्षा करने वाला व्यक्ति भर्त्सना का पात्र होता है और बच्चे और विशेषकर पुत्र अल्लाह के उपहार माने गये हैं। पत्नी का सर्वप्रथम कर्तव्य पति की सेवा, बच्चों की देख-भाल और घर के काम-काज देखना है। इससे जो समय बच जाय उसे कातने और बुनने में बिताना चाहिए। हारून की सौतेली बहन उलैय्या ने स्त्रियों के लिए एक सुन्दर शिरोवस्त्र का आविष्कार किया था जो गुम्बद के आकार की टोपी जैसा होता था जिसके सबसे निचले भाग में टोपी को सर से बाँधने का हिस्सा होता था जो रत्नों से सजाया जाता था। स्त्रियों के आभूषणों में पायजेब (खलखल) और बाजूबंद (असावीर) होता था।

स्त्रियों के सौन्दर्य के बारे में उस युग के कवियों ने जो रागात्मक वर्णन किया है उसे देखते हुए पता चलता है कि नारी सौन्दर्य के प्रारम्भिक अरब आदर्शों में अब्बासिदों के काल में कोई बड़ा परिवर्तन न हुआ था। अल नुवायरी ने अपनी पुस्तक के एक बड़े हिस्से में नारी शारीरिक आकर्षण के उद्धरण दिये हैं। इनके अनुसार नारी का आकार पौधों में बांस (खेजुरान) के समान होना चाहिए, उसका चेहरा पूनम के चाँद-सा होना चाहिए और बाल रात से भी अधिक काले। उसके गाल सफेद और गुलाबी रंग के होने चाहिए जिस पर एक तिल होना चाहिए। उसकी आँखें किसी बाहरी सुरमा (कुहल) की सहायता के बिना काली होनी चाहिए और जंगली हिरण की आँखों जैसी बड़ी-बड़ी। उसकी आँखों की पलकें स्वप्निल या शिथिल (सकीम)। इसके अलावा उसका मुँह छोटा तथा मूँगा में जड़े मोतियों जैसे होने चाहिए। उसकी कमर चौड़ी और उँगलियाँ पतली होनी चाहिए तथा उनके अंतिम छोर सिंदूरी रंग की मेंहदी (हिना) से रंगे होने चाहिए।

पुरुषों की पोशाक

उस समय से अब तक पुरुषों की पोशाक में अंतर जरूर ही हुआ है पर बहुत ही कम। उस समय आदमियों का शिरोवस्त्र काले रंग और ऊँचे शिखर का टोप

होता था जिसे कलनसुवाह कहते थे। वह नमदा या ऊन का बना होता था और उसका प्रारंभ खलीफा अल-मंसूर ने किया था। उसके अलावा सर्वप्रथम फारस में शुरू किये गये चौड़े पंजामे (साराविल), कमीज, वंडी और जाकिट भी पोशाक में आते थे। साथ ही अन्य वाहरी वस्त्र (आवा या जूव्वा) से किसी आदमी की पोशाक पूरी होती थी। हारून-अल-रशीद के प्रसिद्ध काजी के अनुदेशों के अनुसार धर्मतांत्रिक विशिष्ट काली पगड़ी और अन्य वस्त्र पहनते थे।

फर्नीचर

घर के फर्नीचर (उपस्कर) सर्वाधिक सुगोचर दीवान होता था। यह एक तरह का सोफा होता था जो कमरे में तीन तरफ फैला रहता था। पूर्व के राजवंश (उमैय्यद) के शासन-काल में कुर्सियों के रूप में ऊँचे आसनों का प्रचलन शुरू किया गया था। पर फर्श पर वर्गाकार तोशकों (मतरा) पर लगाई गई छोटी-छोटी गद्दियां जिन पर आदमी आराम के साथ वैठ सके, अभी भी वहु प्रचलित थी। हाथ से वुने गए कालीन फर्श पर विछाये रहते थे। पीतल के गोल थालों में कुछ नीची टेबुलों पर भोजन परसा जाता था जो दीवान या फर्श पर विछे हुए छोटे-छोटे गद्दीनुमा आसनों के सामने लगा दी जाती थीं। वड़े-वड़े घरों में थालियाँ चाँदी की होती थीं और काठ की टेबुलों में आबनूस, कछुये की पीठ पर की हड्डी या मोती जड़े होते थे। आज भी ऐसी टेब्रुलें दमिश्क में वनाई जाती हैं।

भोजन और पेय

लोगों की भोजन की आदतें उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं। उन्हीं लोगों का, जो कभी भूंजे हुए विच्छुओं, कीड़े-मकोड़ों और नेवलों को एक शानदार भोजन समझते थे और जो चावल को जहरीला भोजन मानते थे अव उनकी रुचि सभ्य संसार के सुस्वादु भोज्य पदार्थों के प्रति जग गई थी जिनमें फारसी भोज्य पदार्थ प्रमुख थे जैसे कि धीमी आँच पर पके हुए मांस (सिक्वज) और अच्छी मिठाइयां (फालूदाज) शामिल थीं। गर्मियों में घर वर्फ से ठंढे रखे जाते थे। गैर मादक पेय चीनी से मीठा किये गये शर्वत के रूप में होता था। उसे वनफशा, केला, गुलाव या शहतूत आदि फलों के सत से स्वादयुक्त भी वनाया जाता था। पन्द्रहवीं शताव्दी तक कॉफी का प्रचलन न हुआ था और नये विश्व का अनुसंधान होने तक तम्वाकू एक अनजानी वस्तु थी।

मादक पेय का सेवन अन्य लोगों के साथ और अकेले में भी किया जाता था। "अगानी" और "अरव सहस्र रजनी" (अरेवियन नाइट्स) जैसी कृतियों में दी गई असंख्य कहानियों और कवि अवू नवास, इब्न-अल मुताज तथा अन्य तत्कालीन

कवियों द्वारा शराब की प्रशंसा में लिखित अनेक गीतों और कविताओं से प्रकट होता है कि मद्य-निषेध अब कारगर न रह गया था। दरअसल अब मादक पेय पर किसी प्रकार का निषेध न था। अब यहाँ तक कि खलीफा, विजीर, राजकुमार और काजी (न्यायाधीश) मद्य-निषेध संबंधी धार्मिक आदेश न मानते थे। विद्वान, कवि, गायक और संगीतज्ञ विशेष रूप से मद्य-पान के साथी के रूप में पसंद किये जाते थे। शराबखोरी की आदत मूलतः एक फारसी आदत है और प्रारम्भिक अब्बासिद खलीफाओं के अधीन इसने एक सुस्थापित अभ्यास का रूप ले लिया। खलीफा हारुन-अल-रशीद के शासन में यह अभ्यास और विकसित हुआ। इस खलीफा के अलावा अन्य खलीफा जैसे कि हादी, अमीन, मामून, मुतासिम, वाथिक और मुतवक्किल भी शराब पीते थे। अल-मंसूर और मुहतादी इसके विरुद्ध थे। वास्तव में तत्कालीन लेखक अल-नवाजी ने अपनी पुस्तक में उन सभी खलीफाओं, विजीरों और सचिवों का जिक्र किया है जो धार्मिक रूप से निषिद्ध मद्य-पान के आदी थे। खजूर से तैयार किया गया पेय खमर एक प्रिय पेय था। लेखक इब्न खाल्दुन का कहना है कि हारुन और मामून जैसे व्यक्ति केवल नबीथ मद्य पेय का सेवन करते थे। यह अंगूर, खजूर और किशमिश के रस को पानी में निकाल कर और उस रस में कुछ खमीर पैदा कर बनाया जाता था।

उत्सव के समारोहों में, जिनमें "अंगूर की बेटी" (शराब) का सामूहिक सेवन किया जाता था, सामान्यतः गीत भी गाये जाते थे। ऐसे सामूहिक मद्यपानों (मजलिस-अल-शिराब) में मेजमान और मेहमान अपनी दाढ़ियों को कस्तूरी या गुलाब जल के प्रयोग से सुगन्ध युक्त बना लिया करते थे, भड़कीले रंगों के वस्त्र धारण करते थे। समारोह-कक्ष को धूम्र पात्र में अम्बर, अगर आदि को जला कर सुगन्धयुक्त किया जाता था। मद्यपान इन समारोहों में जो गायिकाएँ गीत गाती थीं वे भ्रष्ट चरित्र की दास कन्यायें होती थीं। वे उस युग के युवकों की नैतिकता के लिए बहुत बड़ी खतरा थीं। जनसाधारण को ईसाई मठों में भी शराब मिल जाती थी। शराबघर मुख्यतः यहूदियों द्वारा चलाये जाते थे। ईसाई और यहूदी उस जमाने में शराब का धंधा करते थे।

स्नान

हजरत मुहम्मद की हदीस में दी गई एक उक्ति है—"स्वच्छता धर्मनिष्ठा का अंग है।" यह उक्ति मुस्लिम देशों में प्रायः हर व्यक्ति द्वारा दुहराई जाती है। कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद के पूर्व अरब में स्नानघर न थे। कहा जाता है कि वे स्वयं स्नानघरों के पक्ष में न थे। उन्होंने लोगों को केवल इस बात की अनुमति दे रखी थी कि वे स्नानघर में केवल स्वच्छता के लिए जायें और हर व्यक्ति उसमें कपड़ा पहने जायें। अब्बासिदों के युग में सार्वजनिक स्नानघर (हमाम) बहुत लोक-

प्रिय हो गये थे। केवल इस कारण नहीं कि वहाँ धार्मिक रीति-रिवाजों के अवसर पर स्नान किया जाता था बल्कि इसलिए भी कि वहाँ स्नान का मन पर बहुत सुखकर प्रभाव पड़ता था। और साथ ही वहाँ स्नान से मन के बहलने के साथ असाधारण किस्म का आराम मिलता था। महिलाओं के लिए स्नानघर के प्रयोग हेतु खास दिन निर्धारित किये गये थे। अल-खातिब के अनुसार खलीफा अल-मुक्तदिर (सन् ९०८-३२) के शासन-काल में करीब २७,००० सार्वजनिक स्नानगृह थे और किसी-किसी समय तो इनकी संख्या ६०,००० तक पहुँच गई थी। अरब स्रोतों द्वारा दिये गये अन्य विवरणों की भाँति यह संख्या भी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है। एक अन्य अरब लेखक अल-याकूबी राजधानी बगदाद की स्थापना के तुरंत बाद वहाँ स्नानघरों की संख्या १०,००० बतलाता है। स्पेन के घुमन्तू यात्री इब्न-बतूता ने, जो बगदाद में सन् १३२७ में आया था जो तेरह मकानों को देखा उनमें से हरेक में पच्छिम तरफ दो या तीन स्नानघर देखे जिसमें स्नान के लिए व्यापक व्यवस्था का प्रबंध था। हर स्नानघर में बहते हुए गरम और ठंडे जल की व्यवस्था थी। उस समय, जैसा कि अभी भी पाया जाता था, स्नानघर में अनेक कमरे में जिनका फर्श पच्चीकारी वाला था और साथ ही संगमरमर की अनेक दीवारें थीं जो एक बड़े केन्द्रीय स्नान-कक्ष को चारों ओर से घेरे हुए थीं। बाहरी कमरे स्नान के बाद वस्त्रादि पहनने और बैठ कर द्रव पदार्थ पीने तथा मनोरंजनों के लिए प्रयोग में लाये जाते थे।

क्रीड़ा और विनोद

खलीफाओं के अधीन घर में खेले जाने वाले कुछ खेल लोकप्रिय हुए। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि उमैय्यदों की अवधि में मक्का में एक तरह का क्लब-घर था जहाँ शतरंज, चौपड़ और पासे के खेलों की व्यवस्था थी। हारून प्रथम अब्बासिद खलीफा था जो खुद शतरंज खेलता था और जिसने उसमें बेहतरी के लिए कई तब्दीलियाँ कीं। शतरंज मूलतः एक भारतीय खेल था जो कुलीन तंत्र के लोगों के बीच शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया और जिसने पासे के खेल का स्थान ले लिया। कहा जाता है कि खलीफा हारून ने फ्रैंक राजा शार्लमैन को जो उपहार दिये उनमें शतरंज का एक पट्ट (बोर्ड) भी था। घर में खेले जाने वाले खेलों में, जो पट्ट (बोर्ड) पर खेला जाता था, चौपड़ भी था जो मूलतः एक भारतीय खेल था।

घर के बाहर खेले जाने वाले खेलों में धनुष-बाण, चौगान (टेढ़ी छड़ी के साथ खेला जाने वाला), गेंद, पटेबाजी, भाला फेंकना, घुड़दौड़ और इन सबसे महत्त्वपूर्ण शिकार खेलना था। एक जिन्दादिल साथी के गुणों के रूप में अल-जहीज जो योग्यताएँ बताता है उनमें धनुषविद्या, शिकार खेलना, गेंद और शतरंज खेलना आदि है। इन सभी खेलों में शासक का कोई साथी यदि उसके बराबर

उतरता था तो उसे अपने स्वामी को नाखुश करने का भय न होता था। अब्बासिद खलीफाओं में विशेष रूप से अल-मुतासिम चौगान का शौकीन था। एक और गेंद के खेल के उल्लेख मिलते हैं जिनमें लकड़ी के एक चौड़े पट्ट (बोर्ड) का उपयोग किया जाता था। संभव है कि यह खेल अपने मूल रूप में टेनिस हो। इतिहासकार अल मसूदी ने एक विवरण दिया है जिसके अनुसार हारून के निवास-स्थान अल-रक्काह में एक घुड़दौड़ में उसका शिक्षक प्रथम आया। इससे हारून को उत्साहपूर्ण प्रसन्नता हुई।

इसके अलावा अब्बासिदों की अवधि में, जैसा कि पूर्ववर्ती शासनावधियों में होता आया था, बाहर खेले जाने वाले खेलों में शिकार खलीफाओं और राजकुमारों के बीच एक प्रिय खेल था। खलीफा अमीन शेरों के शिकार का खास तौर पर शौकीन था। उसके एक भाई की मृत्यु शिकार के सिलसिले में जंगली सूअरों का पीछा करने में हुई थी। अबू मुस्लिम अल-खुरानी और खलीफा अल मुतासिम चीतों के शिकार के शौकीन थे। प्रारंभिक अरबी पुस्तकों में से अनेक शिकार, जंगली जानवरों को फँसाने और बाज पक्षी मारने से संबंधित हैं। इससे प्रकट होता है कि उस समय बाहर खेले जाने वाले इन खेलों में लोगों की कितनी दिलचस्पी थी।

बाज के शिकार की प्रणाली अरब में फारस से आई थी। बाद के खलीफाओं की अवधि और धर्मयुद्ध के युग में ये खेल विशेष रूप से प्रिय हुए। फारस, ईराक और सीरिया के वैर अल-जुर और अलवाइट प्रदेश में बाज और गौरेया पक्षी के शिकार प्रसिद्ध थे। छोटे खूबसूरत बारहसिंघों या बड़े बारहसिंघों, खरगोशों, जंगली हंसों, बतकों, बाजों आदि के किसी बड़े शिकार में मदद के लिए कुत्तों को रखा जाता और उनकी मदद ली जाती थी। अपना शिकार पा जाने के बाद मुस्लिम शिकारी पहला काम यह करता था कि उसका सर काट लेता था। ऐसा न करने पर शिकार अवैध माना जाता था। बाद के खलीफाओं में अल मुस्तनजिद अनेक शिकारी दलों का नियमित रूप से आयोजन करता था। कुछ खलीफा और शासक अपने प्रजाजन और आगन्तुकों के मन में आतंक पैदा करने के लिए शेर और बाघ जैसे जंगली जानवर रखते थे। अन्य दूसरे खलीफा पालतू जानवरों के रूप में कुत्ते और बन्दर रखते थे। खलीफा अल मुक्तदिर के विजीर का पुत्र, जो काहिरा में रहता था तथा सरकार के एक ऊंचे पद पर नियोजित था, सांपों, बिच्छुओं और अन्य जहरीले जानवरों को पालता था तथा अपने महल के पास एक विशेष भवन में बड़ी हिफाजत से रखता था।

आर्थिक जीवन : वाणिज्य

अब्बासिद साम्राज्य के व्यापक विस्तार और उसके अन्तर्गत सभ्यता के उच्च स्तर के अन्तर्गत विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार चल रहा था। प्रारंभिक व्या-

पारी ईसाई, यहूदी और जरतुश्तवादी थे। पर धीरे-धीरे उनका स्थान मुसलमान और अरब लेने लगे जो व्यापार के प्रति उतनी घृणा न रखते थे जितनी कृषि के प्रति। बगदाद, बसरा, सिराफ, काहिरा और सिकन्दरिया जैसे बंदरगाह सक्रिय भूमि एवं समुद्री व्यापार के चहल-पहल भरे केन्द्र में परिणत हो गये। पूर्व में मुस्लिम व्यापारी चीन तक पहुँच गये। अरब विवरण के अनुसार वे वहाँ बसरा से पहुँचे और यह द्वितीय अब्बासिद खलीफा अल-मंसूर के समय में हुआ। तृतीय मुस्लिम शताब्दी में सुलेमान अल-ताजिर (व्यापारी) और अन्य मुस्लिम व्यवसायियों ने अपनी समुद्री यात्राओं के जो विवरण दिये हैं वे भारत और चीन के साथ अरब और फारसी सामुद्रिक यातायात के बारे में सबसे प्रारंभिक अरब स्रोत हैं। यह व्यापार सिल्क पर आधारित था जो चीन द्वारा पश्चिम को दिये गये शानदार उपहारों में से था। चीन द्वारा पश्चिम में समरकंद और चीनी तुर्किस्तान होते हुए सिल्क तथा अन्य सामान जाते और इसे "महान सिल्क मार्ग" कहा जाता था। सामान बारी-बारी से अनेक सवारियों से होते हुए जाते थे। कुछ ही ऊंटों के कारवाँ पश्चिम से चीन आदि स्थानों तक का पूरा रास्ता तय करते थे, नहीं तो इसके लिए बारी-बारी से अनेक सवारियों का, जिनमें ऊँट मुख्य होते थे, प्रयोग होता था। पर चीन-अरब-व्यापार के पूर्व ही कूटनीतिक संबंध स्थापित हो गए थे। ऐतिहासिक विवरणों में कहा गया है कि फारस का विजेता साद इब्न-अबी-वक्कास हजरत मुहम्मद द्वारा चीन भेजा गया प्रथम राजदूत था। आठवीं शताब्दी के मध्य तक चीनियों और अरबों के बीच अनेक राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ। खलीफा अबू-अल-अब्बास और हारून-अल-रशीद के समय अनेक मुसलमान चीन में बस गये। चीन में पहले ऐसे मुसलमानों को "ता-शिह" कहा जाता था। बाद में इन्हें हुई-हुई (मुहम्मदन) कहा जाने लगा। यूरोपीय स्रोतों के अनुसार चीन में प्रथम सारासेन (अरब) मार्को पोलो था। मुस्लिम व्यापारी ही इस्लाम को उन द्वीपों में ले गए जो सन् १९४९ में संयुक्त इन्डोनेशिया राज्य बने। पश्चिम की ओर मुस्लिम व्यापारी मोरक्को और स्पेन तक पहुँचे। भूमध्यसागर में अरबों का व्यापार काफी हद तक कभी बढ़ न सका। काला समुद्र (ब्लैक सी) भी व्यापार के अनुकूल सिद्ध न हो सका, यद्यपि उत्तर में दसवीं ईस्वी शताब्दी में भूमि-व्यापार वोल्गा क्षेत्र के लोगों के साथ तेजी से और बड़े पैमाने पर चला। पर फारसी केन्द्रों और समृद्ध समरकंद और बुखारा एवं उनके आंतरिक क्षेत्रों के समीप रहने के कारण कैस्पियन सागर के कुछ हद तक वाणिज्यिक आदान-प्रदान हुआ। मुस्लिम व्यापारी वाणिज्य के लिए अपने साथ खजूर फल, चीनी, सूती और ऊनी कपड़े, इस्पात के औजार एवं शीशे के सामान बाहर ले जाते थे और सुदूर एशिया से मसाले, कपूर और सिल्क तथा अफ्रिका से हाथी के दांत, आबनूस की लकड़ी और नीग्रो दास आयातित करते

उद्योग

वाणिज्यिक कार्यवाही इतनी अधिक न बढ़ी होती यदि उसे व्यापक गृह उद्योगों एवं कृषि का सहारा न मिला होता। साम्राज्य के विभिन्न भागों में भारी उद्योग पनप रहे थे। पश्चिम एशिया में उद्योग मुख्यतः कम्बलों, तस्वीर-कढ़े कपड़ों, सिल्क, सूती और ऊनी कपड़ों, साटन, किमखाब (दिबाज), सोफा और गद्दों के ऊपर की चादरों तथा फर्नीचर के अन्य चीजों एवं रसोई के बर्तनों के निर्माण-केन्द्र थे। फारस और ईराक के प्रमुख करघा-केन्द्र ऊँचे स्तर तथा विशिष्ट चिह्नों वाली दरियों और अन्य कपड़ों का निर्माण करते थे। खलीफा अल-मुस्ताइन की माँ ने अपने लिए १३ करोड़ दिरहाम के मूल्य का कंबल बनाने का विशेष आदेश दिया जिसमें सोने से बनी सभी किस्म की चिड़ियों की आकृतियाँ बनाई हुई थीं जिनकी आँखों में मणि और अन्य कीमती पत्थर जड़े थे। बगदाद में एक मकान उमैय्यद राजकुमार अत्ताब के, जो वहाँ का सबसे प्रसिद्ध निवासी था, नाम पर एक धारीदार वस्त्र अत्ताबी निर्माण करता था। वहाँ इसका निर्माण सर्वप्रथम ईस्वी बारहवीं शताब्दी में किया गया। इस वस्त्र का प्रारंभ अरबों ने स्पेन में किया। अपने व्यापारिक नाम 'ताबी', से यह वस्त्र शीघ्र ही फ्रांस, इटली और यूरोप के अन्य देशों में लोकप्रिय हो गया। बुखारा और दमिश्क तक अनेक स्थानों में घरेलू सजावट की चीजों, साज-सामानों आदि का निर्माण होता था। इन वस्तुओं में सोफा से कैंची तक तथा कस्तूरी से काँसे के प्याले शामिल थे। कूफा में सिल्क और आंशिक रूप से सिल्क के रूमालों या बड़े टुकड़ों का निर्माण होता था। उन क्षेत्रों में ऐसे टुकड़े सरों पर अभी भी बाँधे जाते हैं जिन्हें कूफा के *नाम पर 'कूफिया'* कहा जाता है। शीराज में धारीदार ऊनी कपड़े बनते थे और जालीदार कपड़े एवं जरी, किमखाब आदि

भी। खुरासान और आर्मेनिया अपनी चादरों, लटकाए जाने वाले पर्दों और सोफा और गद्दों के आवरण वस्त्रों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध थे। मध्य एशिया में, जो प्रारंभिक मध्य युग में वस्तुओं का बड़ा बाजार था, बुखारा विशेष रूप से नमाज के समय बिछाने के प्रयोग में लाये जाने वाले कम्बलों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था।

सीरिया के शीशा उद्योगों और समरकंद की कागज की मिलों ने सर्वप्रथम इन सामानों का बाहरी दुनिया में निर्यात शुरू किया। धर्मयुद्ध वाले सर्वप्रथम चित्रित शीशों को यूरोप में ले गये जो सीरिया के मीनाकारी वाले सामानों की नकल पर बनाये गये थे। सीरियाई कारीगरों के शीशे और धातु के बर्त्तनों की उपयोगिता और शान-ओ-शौकत के सामानों के लिए बड़ी माँग थी। दमिश्क एक बड़े पच्चीकारी और कासानी[५] उद्योग का केन्द्र था।

यहाँ लिखने के कागज का विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। यह आठवीं शताब्दी में चीन से समरकंद लाया गया था। समरकंद का, जिस पर मुसलमानों ने सन् ७०४ में कब्जा किया था, कागज अद्वितीय समझा जाता था। उस शताब्दी के अन्त में बगदाद में पहला कागज-मिल खुला। बाद में दूसरे क्षेत्रों में भी कागज-मिल खुलने लगे। मिस्र में सन् ९०० में उसके पहले, मोरक्को में करीब सन् ११०० में और स्पेन में ११५० में कागज-मिल खुले और अनेक तरह के, सफेद और रंगीन कागजों का उत्पादन होने लगा। खलीफा मुतासिम ने बगदाद, समरकंद और अन्य नगरों में नई साबुन और शीशा फैक्टरियाँ खुलवाईं। उसने कागज-उद्योग को भी आगे बढ़ाया। सबसे पुरानी कागज पर अरबी हस्तलिपि, जो हमें आज भी उपलब्ध है, हदीस के सम्बन्ध में है। उसका शीर्षक है "गरीब अल-हदीस" और लेखक हैं इब्न सलाम (तिथि १३ नवम्बर-१२ दिसम्बर, ८६६)। यह हस्तलिपि लंदन विश्वविद्यालय पुस्तकालय में सुरक्षित है। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में मुस्लिम-शासित स्पेन और इटली से, अंत में, कागज-उत्पादन उद्योग ईसाई धर्मावलम्बी यूरोप में गया।

अब्बासिदों के अधीन आभूषण कला भी फली-फूली। मोती, नीलमणि, लाल, माणिक, मरकत (पन्ना) और हीरे राजपरिवार के लोगों के बीच प्रिय थे और

---

५. काशानी (बोल-चाल की भाषा किशानी, काशी) मेडिया में काशान से निकला है। यह वर्गाकार या षट्भुजाकार और वार्निस चढ़ाये गए चमकदार खपड़ों के लिए प्रयुक्त होता है। इसमें कभी-कभी परम्परागत फूल चित्रित रहते हैं। यह मकानों की भीतरी और बाहरी सजावट के लिए प्रयुक्त होता है।

कृषि

प्रारंभिक अब्बासिद खलीफाओं के शासन-काल में कृषि को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उनकी राजधानी दोनों नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के मैदान में अवस्थित थी जिसे सामान्यतः अस-सवाद कहा जाता था। साम्राज्य के जिन क्षेत्रों में छोड़े गए और बर्बाद खेत थे उनको फिर से बसाया और खेती के लायक बनाया गया। टिगरिस और यूफ्रेटस नदियों की माटी के निचले क्षेत्र पर, जो समूचे साम्राज्य में मिस्र के बाद खेती-बारी के मामले में सबसे ज्यादा समृद्ध था, केन्द्रीय सरकार की ओर से विशेष ध्यान दिया गया। यूफ्रेटस नदी से निकली पुरानी या नये सिरे से फिर से खोदी गई या बिल्कुल ही नई नहरों से सिंचाई-स्रोतों का एक जाल-सा बन गया। पहली बड़ी नहर ईसा जो खलीफा अल-मंसूर के एक संबंधी के नाम पर थी जिसने उसे खुदवाया था, उत्तर-पश्चिम में अन्बार में यूफ्रेटस नदी को बगदाद होकर बहती टिगरिस नदी से जोड़ती थी। दूसरी बड़ी तिरछी नहर का नाम नहर सरसार था जो मदाइन के ऊपर टिगरिस-नदी से मिलती थी। तीसरी 'नहर अल-मलिक' (राजा की नहर) थी जो मदाइन के नीचे टिगरिस नदी से मिलती थी। अन्य कम महत्वपूर्ण नहरों में 'नहर अल-सलिह' थी। जिसे वासित में खलीफा अल-महदी ने खुदवाया था।

ईराक में मुख्य फसलें जौ और गेहूँ; चावल, खजूर, रूई और पटुआ थीं। विशेष रूप से उपजाऊ दक्षिण में नदी द्वारा लाई गई मिट्टी से तैयार हुआ मैदान

सवाद था जहाँ दोनों ही सर्द और गर्म क्षेत्रों के फल और तरकारियाँ होती थीं। मूंगफली, नारंगी, बैंगन, ऊख, शमीधान्य (एक तरह का पौधा) और गुलाब तथा बनफशा जैसे फूल बड़े परिमाण में होते थे।

खुरासान एक समृद्ध कृषि-क्षेत्र के रूप में ईराक और मिस्र से किसी तरह पीछे न था। अरब भूगोल-विदों के विचार से विशेष रूप से नौवीं शताब्दी ईस्वी में सासानिदों (फारसियों) के अधीन बुखारा के आस-पास का क्षेत्र एक वास्तविक बागीचे के रूप में था। खारिज से खलीफा मामून और वाथिक के दरबारों में तरबूज बंद सीसे के बड़े बर्तनों में जो बर्फ से भरे होते थे, भेजे जाते थे। ये तरबूज बगदाद में हरेक ७०० दिरहाम में बेचे जाते थे। दरअसल इस समय पश्चिम एशिया में फलों के जो वृक्ष और सब्जियाँ उगाई जाती हैं उनके बारे में लोगों को उस समय भी जानकारी थी और उनका उत्पादन किया जाता था। उनमें अपवादस्वरूप केवल आम, आलू, टमाटर और इसी तरह के अन्य आधुनिक पेड़-पौधे हैं जो हाल के समय में नये विश्व और सुदूर पश्चिमी उपनिवेशों से पश्चिमी एशिया में लाये गये।

उस समय उद्यान-विज्ञान फलों और सब्जियों तक ही सीमित न था। फूलों के उत्पादन को भी न केवल बहते, उछलते पानी के स्वर से संगीतपूर्ण झरनों के आसपास छोटे घरेलू बागों में उगाया जाता था बल्कि बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए भी। गुलाबों, कमल, नारंगियों, बनफशा तथा इसी तरह के अन्य सुगन्धपूर्ण सुगन्ध वाले फूलों की सुगन्धों और रसों को दमिश्क, शीराज, जुर और अन्य नगरों में तैयार किया जाता था। इनमें से बनफशा सत से बना सुगन्धित तेल मुस्लिम जगत में सबसे ज्यादा लोकप्रिय था। पैगम्बर मुहम्मद की यह उक्ति इस बात का प्रमाण है कि—अन्य सभी फूलों के सत से बनफशा का सत मुझे सबसे ज़्यादा उत्कृष्ट लगता है।

फूलों में गुलाब सबसे ज्यादा लोकप्रिय था। गुलाब के फूल को जो लोकप्रियता और आदर मिला हुआ था वह हदीस में हजरत मुहम्मद द्वारा कथित इस उक्ति से सिद्ध होता है—"सफेद गुलाब मेरी नैश (रात्रि की) यात्रा की रात को मेरे पसीने से उत्पन्न हुआ, लाल गुलाब संत जिब्रील के पसीने से और पीला गुलाब अल-बुराक के पसीने से।" खलीफा अल-मुतवक्किल के बारे में कहा जाता है कि उसने अपने आनंद के लिए गुलाबों के उत्पादन पर इतना ज्यादा एकाधिकार कर लिया था कि वह कहता था—"मैं सुल्तानों का राजा हूँ और गुलाब सुगन्धित फूलों का राजा है, इसलिए हम दोनों एक दूसरे के लिए सर्वथा योग्य हैं।" मुतवक्किल के शासन-काल में गुलाब के पौधे उसके महल के अलावा और कहीं न देखे जाते थे। गुलाब और बनफशा का प्रतिद्वन्द्वी मेहदी का पौधा था। हदीस में

अध्याय १५

अब्बासिदों के युग का बौद्धिक जीवन

अब्बासिदों का प्रसिद्ध युग न केवल शानदार और ऐश-ओ-आराम की जिन्दगी के मामले में पर बौद्धिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों के क्षेत्र में भी इस्लाम का स्वर्णयुग था। इस क्षेत्र में मुस्लिम जगत् ने पश्चिमी वैज्ञानिक और साहित्यिक विचारधारा पर स्थायी और प्रमुख प्रभाव छोड़ा। अरबों ने न केवल फारस की विद्या और यूनान की शास्त्रीय विरासत को आत्मसात किया बल्कि उसे निजी विशेष आवश्यकताओं और विचार-पद्धति के अनुकूल ढाल लिया। चिकित्सा और दर्शन में उनका स्वतंत्र कार्य उतना सुगोचर नहीं जितना कि कीमियागरी, खगोल विद्या, गणित और भूगोल में। विधि, धर्मतंत्र, दर्शन और भाषा-विज्ञान में अरबों और मुसलमानों के रूप में उन लोगों ने मौलिक-चिन्तन-अनुसंधान जारी रखा। इन क्षेत्रों में उन लोगों ने जो अनुवाद किये वे उनके अपने अनेक मौलिक विचारों के साथ सीरिया, स्पेन और सिसिली होते हुए यूरोपीय विद्वानों तक पहुँचे और उनसे मध्ययुगीन यूरोपीय विचारधारा में प्रमुख स्थान रखनेवाली ज्ञान के सिद्धान्त की आधारशिला पड़ी। और यूरोप में इन विचारों का संचार, संस्कृति के इतिहास की दृष्टि से, विचारों के मौलिक उद्‌गम से कम महत्वपूर्ण न था। अब्बासिदों के अधीन सामान्य बौद्धिक जीवन की पठन-पाठन और सांस्कृतिक उपलब्धि के विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्ट प्रासंगिकता थी। यहाँ सर्वप्रथम अब्बासिदों के अधीन शिक्षा की स्थिति का उल्लेख किया जा सकता है।

शिक्षा

बच्चे की शिक्षा घर में शुरू होती थी। ज्योंहीं वह बोलना शुरू करता था, पिता का कर्त्तव्य था कि वह उसे शब्द (अल-कलीमा) सिखायें, लाइललाह्-इल्ला ल-लाह (अल्लाह के सिवा और कोई देवता नहीं है)। छः वर्ष का होने पर उस पर धार्मिक प्रार्थना करने की जिम्मेदारी आ जाती थी। और तभी उसकी औपचारिक शिक्षा शुरू होती थी।

प्रारंभिक शिक्षा

प्रारंभिक विद्यालय (कुतब) यदि मस्जिद नहीं तो उससे संलग्न, उसके एक हिस्से जैसा होता था। पाठ्य-पुस्तकों में मुख्य कुरान होता था जो प्रारंभिक पठन के

दूसरे किस्म की शिक्षा से उच्चतर शिक्षा विकसित होती थी। इसमें एक शिक्षक के चारों ओर छात्रों के हलाक्स या गोलाकार समूह बैठते थे।

प्रारंभिक विद्यालयों में छात्रों को पठन-पाठन और लेखन के अलावा अरबी के व्याकरण की भी शिक्षा दी जाती थी। इसके साथ ही उन्हें पैगम्बर मुहम्मद के बारे में कहानियाँ विशेषतः वे जो हदीस में दी गई हैं—गणित के प्रारंभिक सिद्धान्त और कविताएँ, जो कामोद्दीपक न होती थीं, सिखलाई जाती थीं। पूरे पाठ्यक्रम में स्मरण-शक्ति को विशेष रूप से बढ़ाने पर जोर दिया जाता था। बगदाद की प्रारंभिक पाठशालाओं में योग्य छात्रों को इस प्रकार पुरस्कृत किया जाता था कि सड़कों पर उन्हें ऊँटों पर चढ़ा कर घुमाया जाता था और उन पर बादाम फेंकी जाती थी। कुछ मामलों में जब कोई छात्र कुरान के एक भाग को बहुत ठीक से याद कर लेता था तो विद्यालय में पूरे एक दिन की या आधे दिन की छुट्टी कर दी जाती थी।

लड़कियों को भी निचले स्तरों में धार्मिक शिक्षा, जिसे समझने की उनमें योग्यता होती थी, दी जाती थी। पर उसके अलावा उन्हें ज्ञान के कंटकाकीर्ण मार्ग पर आगे बढ़ने में मार्गदर्शन करने की सामान्यतः इच्छा न रहती थी। धनी लोगों के बच्चों को निजी शिक्षक पढ़ाते थे। उन्हें धर्म, सरल साहित्य और पद्य बनाने की कला में भी शिक्षा दी जाती थी। बहुत सारे मामलों में ये निजी शिक्षक विदेशी होते थे। अध्यापकों की शिक्षण सामग्रियों में डंडा एक आवश्यक वस्तु समझी जाती थी। खलीफा ने भी इस बात की अनुमति दे रखी थी कि उसके बच्चों के विरुद्ध भी पढ़ाई में डंडे का उपयोग किया जाय। प्रारंभिक पाठशाला के शिक्षक को मुअल्लिम या उन्हें प्राप्त धर्मतांत्रिक प्रशिक्षण के कारण फकीह कहा जाता था। समाज में उनकी स्थिति नीची समझी जाती थी। इस संबंध में एक लोकप्रिय उक्ति थी—"शिक्षकों, गड़ेरियों और औरतों के बीच बैठने वालों से सलाह न लो।" खलीफा मामून के अधीन एक काजी तो इस हद तक बढ़ गया कि उसने अदालत में एक शिक्षक की गवाही स्वीकार न की। अरबी साहित्य में अनेक किस्से-कहानी प्रचलित हो गये जिनके द्वारा शिक्षक को मूर्ख बतलाया जाने लगा। "प्रारंभिक विद्यालय के अध्यापक से भी ज्यादा मूर्ख" एक सुप्रचलित उक्ति बन गई। पर उच्चतर शिक्षा के अध्यापकों को मोटे तौर पर ज्यादा सम्मान मिलता था। वे प्रत्यक्षतः एक तरह के संघ में गठित थे। अध्यापक उन छात्रों को एक मान्यता प्राप्त प्रमाणपत्र देता था जिन्होंने उसके अधीन निर्धारित पाठ्यक्रम संतोषजनक ढंग से उत्तीर्ण कर लिया है। अल-जुर्नुजी, जिसने सन् १२०३ में अध्यापन विज्ञान पर अपनी पुस्तक लिखी है, उसके पूरे एक अध्याय में यही बतलाया गया है कि किसी छात्र को अध्यापन के धंधे को किस तरह ऊँची दृष्टि से देखना चाहिए।

उसमें चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की यह उक्ति दी गई है कि—"मैं उस व्यक्ति का दास हूँ जिसने मुझे एक भी अक्षर पढ़ाया है।" शिक्षा के संबंध में अरबी भाषा में जो करीब चालीस पुस्तकें हैं उनमें अल-जुर्नुजी की पुस्तक सबसे ज्यादा विख्यात है। उन पुस्तकों में से अधिकांश अभी भी उपलब्ध हैं।

उच्चतर शिक्षा

उच्च शैक्षणिक क्षेत्रों में धार्मिक संस्कृति का साधन नये वैधिक और धर्मतांत्रिक नैतिक विचार संग्रह थे जो इस्लाम की प्रारंभिक शताब्दियों में सृजित हुए थे। इन विचारधाराओं में वैधिक विज्ञान से सर्वप्रथम परिचय हुआ। ईराक में अबू हनीफा, मदीना में मलिक और बाद में अल-शफी और अहमद इब्न हनबाल के अनुयायियों ने सिद्धान्तों का एक वैधिक संग्रह तैयार किया। फिर भी मस्जिदों में, कभी-कभी, धर्मतांत्रिक समस्याओं के संबंध में नैतिक प्रश्नों और मतभेदों पर बहस-मुहावसे और वाद-विवाद हुआ करते थे। पर अधिकांशतः ये बहसें ईराक, बसरा, कूफा और बगदाद जैसे बड़े नगरों में निजी या तो विद्वानों या उनके संरक्षकों के निवासस्थानों में हुआ करती थीं। सामाजिक या साहित्यिक गोष्ठियाँ कुलीन तंत्रीय और सांस्कृतिक समाज के लोगों के घरों में हुआ करती थीं। इनको मजलिस अल-आदाब (साहित्यिक सभा) कहा जाता था। अब्बासिदों के शासनकाल के प्रारंभ में ये गोष्ठियाँ शुरू हुईं।

कुछ खलीफाओं, विशेषतः, अल मामून और उसके पिता हारून-अल रशीद ने अपने दरबारों में प्रायः सभी प्रश्नों—तार्किक, वैधिक, वैयाकरणिक आदि—पर बहसें कराना शुरू किया। जब तक उलेमाओं के पेशेवर वर्ग का उदय नहीं हुआ, तब तक विचारों के क्षेत्र में बड़ी प्रवाहशीलता और एक दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता भी। कट्टर धर्मनिष्ठ विचारधारा के निर्धारक अल-अशरी ने स्वयं अपने मुतजिली गुरु अल-जुब्बाइ का भाषण एक मस्जिद में सुना था। गैर-सरकारी और सार्वजनिक शिक्षा-संस्थान भी कुछ व्यक्तियों द्वारा और विशेष इस्लामी प्रजाजन के दान से खोले जाते थे। सार्वजनिक शिक्षा-संस्थान हदीस, विधि और अन्य विषयों की पढ़ाई के लिए खोले जाते थे। अबू-हातिम अल बुस्ती (सन् ८६०) ने अपने मूल निवास के नगर में एक पाठशाला खोली जिसमें एक पुस्तकालय भी था और बाहर के छात्रों को भत्ता मिलता था। ये शिक्षा संस्थान पूर्व में नयसाबर, मर्व आदि नगरों में बहुत बड़ी संख्या में खुले और बढ़े। इन विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषय और विशेष रूप से हदीस की विषय-वस्तु शिया धर्म-पंथ की तत्संबंधी विषयों की विषय-वस्तु से भिन्न थी।

पुस्तकालय और पुस्तकों की दूकानें

मध्यकालिक शिक्षा का विशिष्ट स्वरूप यह भी था कि सरकारी मस्जिद-पुस्तकालयों और अर्द्धसरकारी पुस्तकालयों में जोरदार ढंग से द्रुत वृद्धि हुई। मस्जिदों के पुस्तकालय उपहारों और वसीयतों से प्राप्त पुस्तकों से धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में बहुत काफी समृद्ध हो गये। अन्य लोगों में इतिहासकार अल खातिब अल-बगदादी (१००२-७१) ने "मुसलमानों के लिए वक्फ (दूसरों को न दी जा सकने वाली सम्पत्ति)" के रूप में अपनी पुस्तकों की वसीयत कर दी। पर वे पुस्तकें उसके एक मित्र के घर में रखी गईं। राज्य के कुछ प्रसिद्ध और शक्तिशाली अफसरों ने बड़ी संख्या में पुस्तकें जुटाई और उनको विद्वानों के सुपुर्द कर दिया और कभी-कभी उनको दान में भी दे दिया ताकि सामान्य जन भी उनका उपयोग कर सकें। कुछ प्रतिष्ठित या धनी लोगों ने अन्य पुस्तकालय भी खोले जो अर्द्ध सरकारी संस्थानों के रूप में चलते थे जिनमें तर्कशास्त्र, दर्शन, खगोल शास्त्र और अन्य विज्ञानों की पुस्तकें थीं। अल-मौसिल में दसवीं ईस्वी शताब्दी के मध्य में वहाँ के नागरिकों में से एक ने एक पुस्तकालय खोला जिसमें पाठकों और छात्रों को लिखने के लिए मुफ्त कागज भी दिया जाता था। शीराज नगर में बुअयहिद वंश के अदूद-अल-दौला ने एक पुस्तकालय स्थापित किया (सन् ९७७-८२) जिसमें पुस्तकें संदूकों में सिलसिलेवार रखी गई थीं और उनका विधिवत सूची-पत्र तैयार किया गया था। पुस्तकालय के नियमित कर्मचारी भी थे। बसरा में एक पुस्तकालय था जिसके संस्थापक ने उसमें अध्ययन-कार्य में रत विद्वानों के लिए वृत्तिकाओं की मंजूरी भी की थी। अल-राय्य नगर में कभी एक "पुस्तक गृह" था जिसमें इतनी पांडु लिपियाँ थीं जिनको चार सौ से ज्यादा ऊँटों पर लादा जा सके। केवल पुस्तकों की सूची दस खंडों में थी। पुस्तकालय वैज्ञानिक वाद-विवाद और बहस के केन्द्रों के रूप में भी उपयोग में लाये जाते थे। दसवीं ईस्वी शताब्दी के अंत में इस्लामी दार्शनिक इब्न सिना एक फारसी राजा नूह इब्न नस्त्र के पुस्तकालय में पहुँचा जिसे उसने पुस्तकों से अत्यन्त समृद्ध पाया। बाद में वह पुस्तकालय आग में जल कर भस्म हो गया।[2]

अब्बासिदों के शासन के आरंभ में वाणिज्यिक और शैक्षणिक स्थानों के रूप में पुस्तकों की दूकानें भी खोली जाने लगी थीं। अल-याकूबी कहता है कि उसके समय में राजधानी बगदाद में एक सौ से अधिक पुस्तक विक्रेता थे जो सब एक

२. इब्न खल्लिकान-वफायत अल-अयान, काहिरा, १९४८, सम्पादक जी० एच० विकेन्स, पृ० ४२०-२१, ए० जे० आरबरी-अविसेन्ना, साइंटिस्ट एँड फिलासफर, लंदन १९६२, अध्याय-१।

ही सड़क पर अपनी-अपनी किताबें सजाये बैठे रहते थे। इनमें से अनेक दूकानें मस्जिदों के निकट छोटी-छोटी गुमटियों (बूथों) पर सजी हुई होती थीं जैसे कि बाद में काहिरा और दमिश्क की पुस्तकों की दूकानें होती थीं। पर कुछ दूकानें निःसंदेह काफी बड़ी थीं जो पुस्तक-प्रेमियों और गुणज्ञों के लिए आकर्षण-केन्द्र थीं। पुस्तक-विक्रेताओं का स्थान समाज में आदरणीय था क्योंकि वे खुशनवीस (सुलेखकार), नकलनवीस और साहित्य-ज्ञाता भी हुआ करते थे। वे अपनी दूकानों का उपयोग केवल पुस्तक-भंडार और लेखक-शिल्प शाला के रूप में नहीं बल्कि साहित्यिक वाद-विवाद के केन्द्रों के रूप में भी करते थे।

उच्चतर शिक्षा के संस्थान

इस्लाम में उच्चतर अध्ययन का पहला स्थायी संस्थान "बैत-उल हिकमत" (बुद्धिमत्ता-गृह) था जिसे खलीफा अल-मामून ने अपनी राजधानी में स्थापित किया था। यह एक अनुवाद-विभाग के रूप में तो काम करता ही था, साथ ही एक अकादमी और सार्वजनिक पुस्तकालय के रूप में भी। उसके साथ एक वेधशाला भी सम्बद्ध थी। उसी समय वेधशालाएँ भी स्थापित हुईं जिनमें खगोल-विद्या की पढ़ाई होती थी। उसी प्रकार उस समय अस्पताल भी प्रथम बार स्थापित हुए जो चिकित्सा-शास्त्र के केन्द्र थे। पर बगदाद में नये मदरसों की स्थापना सन् १०६५-६७ में निजामिया में सालजुकों (जिनका वर्णन एक अगले अध्याय में किया जाएगा) के शासन-काल में किया गया और फारस में निजामुल-मुल्क द्वारा किया गया जो सालजुक सुल्तानों अल्प अर्सलान और मलिकशाह का महान और बुद्धिमान विजीर था और साथ ही विश्वप्रसिद्ध कवि उमर-अल-खय्याम का संरक्षक भी। निजामिया का मदरसा एक धर्मतांत्रिक शिक्षणालय (मदरसा) के रूप में परिणत हो गया। उसमें कुरान और प्राचीन कविता मानविकी (साहित्य) के अध्ययन की मूल विषय-वस्तु थी ठीक उसी तरह जिस तरह बाद में यूरोपीय विश्वविद्यालयों में पुरातन शास्त्रीय विषय। इस अकादमी में छात्रों के निवास की भी व्यवस्था थी, छात्रवृत्तियाँ भी मिलती थीं। ऐसा दावा भी किया जाता है कि इस संगठन के कुछ अंशों की यूरोप के प्रारंभिक विश्वविद्यालयों ने नकल कर ली। निजामिया मदरसा एक धर्मतांत्रिक शिक्षणालय था जिसे राज्य से मान्यता प्राप्त थी। इतिहासकार इब्न अल-अतीर एक ऐसे व्याख्याता (मुदर्रिस) का जिक्र करता है जिसे वहाँ नियुक्ति तो मिल गई पर जब तक खलीफा द्वारा उसे सम्पुष्ट न कर दिया गया तब तक उसने अपना काम शुरू न किया। इब्न-जुबेर ने वहाँ मध्य-अपराह्न की नमाज के बाद एक ऊँचे प्राध्यापक का व्याख्यान सुना। व्याख्याता एक मंच पर बैठा था और छात्रगण स्टूलों पर। वे लोग उससे शाम की नमाज तक तरह-तरह के सवालात पूछते रहे। इसी निजामिया मदरसे में गजाली ने चार वर्षों

(सन् १०९१-९५) तक व्याख्यान दिया। इस मदरसे में बाद में व्याख्यान देने वाले प्रख्यात अध्यापक वहा अल-दीन, सलाह अन दिनीस व्याख्याता थे।

हलाकू ने जब सन् १२५८ में राजधानी बगदाद पर कब्जा करके कहर ढाया तो निजामिया मदरसा बच गया और बाद में तारतारों के हमलों में उस पर कुछ नुकसान न पहुँचा। जब सन् १३९३ में तैमूर लंग (तैमरलेन) ने बगदाद पर कब्जा कर लिया तो दो वर्ष बाद निजामिया मदरसा अपने छोटे समकालीन मदरसे अल-मुस्तनसीरिया से मिला दिया गया। अल-मुस्तनसीरिया का नाम खलीफा अल-मुस्तासिम के नाम पर पड़ा था। उसने इसका निर्माण चार धर्मनिष्ठ धर्मविधियों के शिक्षणालय के रूप में सन् १२३४ में कराया था। इसके साथ स्नानगृह और रसोईघर भी संलग्न थे और एक पुस्तकालय और अस्पताल भी। इब्न-बतूता ने सन् १२३७ में अपने बगदाद निरीक्षण के समय इस भवन को भी देखा था। वह भवन का विस्तृत विवरण देता है।

बगदाद के निजामिया मदरसे के अलावा साल्जुक वजीर निजामुल मुल्क ने साम्राज्य के विभिन्न भागों में नयसावर और अन्य नगरों में शिक्षणालय खोले। निजामिया मदरसे की तरह अनेक मदरसे खुरासान, ईराक और सीरिया में स्थापित किये गये। मदरसे की स्थापना इस्लाम में बराबर एक प्रशंसनीय कार्य समझा जाता रहा है। इसी कारण यात्रियों ने बड़ी संख्या में ऐसे संस्थानों के अस्तित्व का वर्णन किया है। यात्री जुबेर ने अपने वृतान्त में कहा है कि बगदाद में ऐसे तीस मदरसे थे। दमिश्क में बीस मदरसे थे, अल-मौसिल में छः या उससे कुछ और ज्यादा तथा हिम्स में केवल एक मदरसा था।

वैज्ञानिक एवं साहित्यिक प्रगति : औषधि शास्त्र

अब्बासिद अवधि में चिकित्सा शास्त्र के दो प्रसिद्ध विद्वान हुए, युहन्ना इब्न मसावाय (सन् ७७७-८५७) और हुनैन इब्न-इशाक (सन् ८०९-७३)। युहन्ना एक ईसाई चिकित्सक था और उस समय के प्रसिद्ध चिकित्सक जिबरील इब्न-अल-तिश का शिष्य। जब वह चिकित्सा के लिए आदमी की लाश चीर-फाड़ के लिए न पा सका, जो परम्परा इस्लाम में कभी भी प्रोत्साहित नहीं की गई, तो उसने बंदरों पर अपना प्रयोग शुरू किया। इसमें से एक बंदर सन् ८३६ में नूबिया से खलीफा अल-मुतासिम को उपहार-स्वरूप मिला था। इन स्थितियों में शरीर रचना-शास्त्र में बहुत ही कम प्रगति की जा सकी। हाँ, आँख की बनावट और तन्तुओं के मामले में ज्ञान की दिशा में कुछ ही प्रगति हो सकी। इब्न मसावाय द्वारा नेत्र-विज्ञान पर लिखित ब्योरेवार पुस्तक इस सम्बन्ध में अरब भाषा में लिखित

सबसे पुरानी पुस्तक है। अल-अश्र मुकालत फी अल आइन (आँखों पर दस लेख) का, जो उसके शिष्य हुनेन इब्न इशाक द्वारा लिखित बतलाई जाती है, अँग्रेजी अनुवाद और मूल पाठ हाल में प्रकाशित हुआ है। उसे नेत्र-विज्ञान पर लिखित सबसे प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तक माना जाता है। चिकित्सा-विज्ञान में अरबों की अभिरुचि पैगम्बर मुहम्मद की उस हदीस से प्रकट होता है जिसमें विज्ञान के दो भाग बतलाये गये हैं, धर्मतंत्र और चिकित्सा। चिकित्सक एक साथ ही आध्यात्मिक तत्वदर्शी, दार्शनिक और संत था। उसे उसके इन सब गुणों के लिए सामान्य दृष्टि से हकीम की उपाधि दी गई थी। प्रसिद्ध चिकित्सक जिबरील इब्न-बख्तिश, जो नेस्टोनियन था, हारून-अल-रशीद, मामून और विजीरों-बरबामिदों— का दरबारी चिकित्सक था। बख्तिशू परिवार में प्रसिद्ध चिकित्सकों की छः या सात पीढ़ियाँ हुईं। इनमें से अंतिम ईस्वी ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई। उस समय तक अरबों द्वारा दवाओं के चिकित्सीय प्रयोग ने कुछ प्रगति कर ली। औषध विज्ञान पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। इनमें से सबसे प्रारंभिक पुस्तक विश्व प्रसिद्ध कीमियागर ज़वीर इब्न ह्यान की थी जिसे अरबी कीमियागरी का जनक माना जाता है। वह सन् ७७६ में वर्त्तमान था। खलीफा अल-मामून और अल मुतासिम के शासन-काल से ही औषधि-निर्माताओं और चिकित्सकों को एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती थी।

उमैय्यद खलीफाओं ने चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया पर अब्बासिदों का शासन-काल शुरू होने के बाद ही अरबी चिकित्सा-विज्ञान में सच्ची प्रगति शुरू हुई। प्रारंभिक अब्बासिद खलीफाओं ने बीमारिस्तान नाम से अस्पताल आरंभ किये। बगदाद में हारून-अल-रशीद ने फारसी ढाँचे पर पहला अस्पताल खोला। फिर यथासमय मुस्लिम जगत के विभिन्न भागों में चौंतीस अस्पताल खोले गए। ग्यारहवीं सदी में पहली बार भ्रमणशील अस्पताल भी शुरू हुए। मुस्लिम अस्पतालों में महिलाओं के लिए अलग विभाग था और हर अस्पताल का अपना दवाखाना था। कुछ अस्पतालों में चिकित्सा-पुस्तकालय भी थे जिनमें चिकित्सा-शास्त्र की पढ़ाई होती थी।

इस युग के चिकित्सा जगत के मुस्लिम उल्लेखनीय विद्वान फारसी राष्ट्रिकता के थे पर उनकी भाषा अरबी थी। अली अल-रजी, अली इब्न-अल-अब्बास, इब्न-शिना विश्व के चिकित्सा जगत के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अली-इब्न सहल रब्बन-अल-तबारी, जो ईस्वी सातवीं शताब्दी के मध्य में हुआ, मूलतः तबारिस्तान का एक ईसाई था। खलीफा मुतवक्किल के शासन-काल में उसने इस्लाम धर्म अपनाया और खुद खलीफा का चिकित्सक हो गया। उसके अधीन सन् ८५० में तबारी ने फिरदावास अल-हिकमा (बुद्धिमत्ता का स्वर्ग) पुस्तक लिखी।

इस कृति में, जो इस विषय की सबसे पुरानी पुस्तक मानी जाती है, अरबी चिकित्सा का सार-संग्रह दिया गया है और कुछ हद तक दर्शन और खगोल विद्या का विवरण दिया गया है। यह यूनानी और हिन्दू स्रोतों पर आधारित है।

अल रजी (पूरा नाम अबू बकर मुहम्मद इब्न जकारिया अल रजी) (सन् ८६५-९२५) ने तेहरान के निकट राय्य में जन्म लिया था और वह संभवत: "सभी मुसलमानों में सबसे बड़ा और अत्यधिक मौलिक चिकित्सक हुआ और एक लेखक के रूप में उसने सबसे ज्यादा लिखा।"[3] उसने बगदाद के बड़े अस्पताल के लिए एक नया स्थल चुना जहाँ कि वह मुख्य चिकित्सक था। ऐसा माना जाता है कि अल-रजी ने शल्य चिकित्सा का एक नया विभाग भी खोला। कीमियागरी पर उसकी प्रमुख कृति किताब-अल-असरार (गुप्त बातों की पुस्तक) अनेक बार सम्पादित की गई और फिर सन् ११८७ में उसका लैटिन में प्रसिद्ध अनुवादक गेरार्ड द्वारा अनुवाद किया गया। अली रजी की एक सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति (अल-जुदारी अल-हसबाह) चेचक और खसरा के संबंध में है। यह पुस्तक अपने संबंध की सबसे प्रारम्भिक कृति है और इसे ठीक ही अरब के चिकित्सा साहित्य का रत्न माना जाता है। इसमें चेचक का प्रथम चिकित्सीय विवरण है। अली रजी की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक अल हावी (व्यापक पुस्तक) है। अल रजी की इस पुस्तक को चिकित्सा संबंधी अपने क्षेत्र का विश्वकोष कहा जा सकता है। इसमें इस बात का विवरण है कि उस समय यूनानी, फारसी और हिन्दू चिकित्सा के बारे में अरबों को किस हद तक जानकारी थी। साथ ही इसमें चिकित्सा संबंधी कुछ नई बातें भी दी गई हैं।

अली इब्न अली अब्बास जरतुश्त वंश का एक फारसी मुसलमान था। उसने अल-किताब अल मालिकी के लेखक के रूप में प्रसिद्धि पाई। इस पुस्तक को लैटिन में लिबल रिगस कहते हैं। अली इब्न ने यह पुस्तक महान बुआयहिद शासक अदूद अल-दौला के लिए, जिसने सन् ९४९-८३ में शासन किया, लिखा। अल-मालिकी के अधिकांश भाग में रोगों के समय के आहार-विहार और मलेरिया की चिकित्सा की चर्चा है।

अरब चिकित्सा इतिहास में अल रजी के बाद सबसे प्रसिद्ध नाम अबू अली अल हुसेन इब्न सिना का है जिसे पश्चिमी जगत में सामान्यत: अविसेन्ना के नाम से जाना जाता है। इब्न सिना (९८०-१०३७) अरबों द्वारा अल-शेख अल-रईस (विद्वानों का शेख और सम्राट) के नाम से पुकारा जाता है। अल रजी ज्यादा अंशों में दार्शनिक था। इस चिकित्सक, दार्शनिक, भाषाशास्त्री और कवि में अरब विज्ञान अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था और यहाँ तक कहा जा सकता

३. एडवर्ड जी० ब्राउन—अरब मेडिसिन (कैम्ब्रिज, १९२१), पृ० ९४।

है कि अरब विज्ञान ने उसके रूप में अवतार लिया था। उसका जन्म बुखारा के निकट हुआ। उसने मुस्लिम जगत के पूर्वी भाग में अपना जीवन बिताया। उसकी मृत्यु के बाद हमदान में उसे दफनाया गया जहाँ उसकी कब्र अभी भी मौजूद है। इब्न सिना ने किसी विषय को समझाने के दर्शन (हिकमत अल-इशराक) के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिसे उसके अनुयायी अल-सुहरावर्दी ने आगे बढ़ाया। उसके द्वारा रचित चिकित्सा कृतियों की सख्या तैंतालीस बतलाई जाती है जिसमें सबसे वृहत दीर्घाकार और चिरस्थायी कृति अल-कानून फी अलतिब्ब (चिकित्सा के सिद्धांत) बतलाई जाती है। दूसरी ओर, अल रजी द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ किताब-अल शिफा (चिकित्सा की पुस्तक) है जो दार्शनिक विश्व-कोष है। यह अरस्तू की परम्पराओं पर आधारित है। इब्न सिना के कानून का लैटिन अनुवाद क्रेमोना के गेरार्ड का किया हुआ है (प्रायः सन् ११८७)। यद्यपि इसमें स्थान-स्थान में मूल पुस्तक के साथ न्याय नहीं किया गया है। इस अनुवाद के कई संस्करण हुए। इस पुस्तक "अल-कानून" में भावनाओं और शारीरिक स्थिति के बीच गहरे संबंध पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही इसमें अनिद्रा की चिकित्सा के लिए शारीरिक मुद्राओं और आसनों का सुझाव दिया गया है। इसमें मलेरिया और पागलपन की चिकित्सा के भी उपाय बतलाये गये हैं। साथ ही इसमें स्वास्थ्य के संबंध में आहार-विहार और जलवायु के प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में शल्य-चिकित्सा के संबंध में चीर-फाड़ के स्थान को चेतनाशून्य करने के लिए खाने और पीने वाली दवाओं (जैसे कि औषधियुक्त शराब) लिए जाने का सुझाव दिया गया है। पुस्तक में क्षय रोग के संक्रामक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है तथा बतलाया गया है कि मिट्टी और पानी से किस प्रकार रोग फैलते हैं। अल कानून नामक पुस्तक ने उसके पूर्व लिखी गई पुस्तकों का स्थान सहज ही ले लिया और ईस्वी बीसवीं सदी तक यह अपने किस्म की आधिकारिक पुस्तक बनी रह सकी। यूरोपीय चिकित्सा विद्यालयों में सत्रहवीं शताब्दी तक यह एक पाठ्य-पुस्तक रही है और एक लातिन अमेरिकी देश के उन्नीसवी शताब्दी तक चिकित्सा संबधी पाठ्य-पुस्तक रही। चिकित्सा के इतिहासकार डॉ० विलियम ओसलर का कहना है कि—"यह पुस्तक ऐसी किसी अन्य पुस्तक की तुलना में लंबी अवधि तक एक तरह की चिकित्सा-बाईबिल जैसी बनी रह सकी।"[४] इस पुस्तक की सफलता के लिए विस्तृत वर्गीकरण, स्पष्ट प्रस्तुतीकरण, प्रवाहपूर्ण शैली और विषयों की व्यापकता को कम श्रेय नहीं है। अलावे, इब्न सिना ने जो एक साथ चिकित्सक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और कवि था और जो साथ ही विद्वानों का शेख और खलीफा के दरबारियों में प्रधान था, मुस्लिम दार्शनिक विचारों और अरब

४. विलियम ओस्लर, "दी इवोल्यूशन औफ माडर्न मेडिसिन", न्यू हैवेन, १९२२, पृ० ९८।

चिकित्सा शास्त्र पर अपना प्राधान्य कायम रखा और मध्य युग के प्रमुख ईसाई दर्शन और धर्मतंत्र तथा प्रारंभिक पुनर्जागरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

उस समय चिकित्सा-क्षेत्र में कम प्रसिद्ध लोगों में अली इब्न ईसा का जिक्र किया जा सकता है जो अरबों में सबसे प्रसिद्ध नेत्र रोग-चिकित्सक (कहाल) था। अली एक ईसाई था जो ईस्वी सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में बगदाद में हुआ। उसके डेढ़ शताब्दी पूर्व खलीफा अल मुतामद का दरबारी चिकित्सक ईसा इब्न अली हुआ। ये दोनों अलग-अलग व्यक्ति हुए हैं, पर दोनों के नामों के बारे में अक्सर उलझन पैदा की जाती है। इनमें से प्रथम यानी अली इब्न ईसा के नेत्र रोग के सम्बन्ध में बत्तीस मध्ययुगीन अरबी भाषा की कृतियाँ हैं। इनमें से एक **तधकिरात अल कहालिन** (नेत्र चिकित्सकों के लिए टिप्पणी) अपने सम्पूर्ण और मूल रूप में अभी भी वर्तमान है तथा अपने ढंग की सबसे पुरानी और सर्वोत्तम कृति है। उसके पूर्व इस सम्बन्ध में केवल दो ही कृतियाँ हैं जिनमें से एक के लेखक इब्न मसायवाह और दूसरे के हुनैन इब्न इशाक थे। "तधकिरात" में १३० नेत्र-रोगों का सावधानी के साथ वर्णन किया गया है। इसका एक अनुवाद हेब्रू भाषा में हुआ और दो अनुवाद लातिन भाषा में। पूर्वी देशों में यह पुस्तक अभी भी उपयोग में लाई जाती है।

द्वितीय श्रेणी का एक और चिकित्सक इब्न-जजलाह था। वह मूलतः एक ईसाई था। उसने चिकित्सा के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त सार लिखा जिसका नाम था **तकवीम अल आबदान फी तदबीर अल इंसान** (आदमी के शारीरिक प्रबंधन के बारे में शरीर की तालिका)। यह एक अन्य ईसाई चिकित्सक इब्न बुतलान द्वारा लिखित पुस्तक **तकवीम अल सिह्हाह** के आदर्श पर लिखा गया था। इब्न बुतलान की मृत्यु ऐंटियाक में करीब सन् १०६३ में हुई। इस पुस्तक में रोगों की तालिका इस प्रकार व्यवस्थित रूप से दी गई है जैसे कि खगोल विद्या संबंधी तालिका में तारों की स्थिति दी जाती है। इब्न जजलाह की यह कृति लैटिन भाषा में स्ट्रासबर्ग द्वारा सन् १५३२ में अनूदित की गई। इस सम्बन्ध में अंतिम उल्लेखनीय चिकित्सक याकूब इब्न-अखि-हिजाम था। वह खलीफा अल-मुतादिद (सन् ८९२-९०२) के अस्तबल का प्रबंधक था। उसने घुड़सवारी पर एक पुस्तक लिखी जो अरबी भाषा में इस किस्म की प्रथम कृति है। इसमें जानवरों के रोगों के बारे में कुछ मूलभूत बातें हैं।

खगोल विद्या और गणित

अरबों का दूसरा योगदान खगोल विद्या के क्षेत्र में था। खगोल विद्या में वैज्ञानिक अध्ययन एक भारतीय कृति सिद्धान्त (अरबी में सिंदहिंद) जो बगदाद

में सन् ७७१ में लाई गई, के प्रभाव से आरंभ हुआ। इस कृति का अरबी में अनुवाद मुहम्मद इब्न-इब्राहिम अल-फजरी ने किया। इसका प्रयोग अन्य विद्वानों ने आदर्श के रूप में किया। खलीफा मामून को खगोल विद्या की व्यावहारिक समस्याओं की जानकारी थी। उसने बगदाद और दमिश्क में एक साथ खगोल-दर्शन के आधार पर टोलेमी की खगोल विद्या-सम्बन्धी तालिका का पुनरीक्षण कराया और उसके बाद मध्याह्न अक्षांश का हिसाब लगाया गया। टोलेमी की पुस्तक अलमागेस्ट के एक प्रारंभिक अनुवाद के बाद उसके दो अच्छे अनुवाद किए गए। इसमें से एक अनुवाद अल-हज्जाज इब्न मतर ने किया जो सन् ८२७-२८ में पूरा हुआ और दूसरा हुनेन इब्न इशाक ने किया जिसे ताबित इब्न कुर्राह ने पुनरीक्षित किया। मामून ने बगदाद में शमशियाह फाटक के पास एक इस्लाम धर्मान्तरित यहूदी, सिंद इब्न अली और याहिया इब्न-अबी मंसूर के अधीन एक खगोल विद्या-सम्बन्धी वेधशाला बनवाई। यहाँ खलीफा के खगोल विद्या-विदों ने "न केवल सभी खगोलीय तत्वों के ब्योरेवार निरीक्षण किया बल्कि उल्लेखनीय ढंग से ठीक-ठीक तौर पर, टोलेमी की कृति "अल्मागेस्ट" में, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, दिये गए मूलभूत तत्वों का सत्यापन किया। यही नहीं, उन लोगों ने सूर्य के चलने के मार्ग के तिरछेपन, विषुवत रेखा सूर्य द्वारा पार किए जाने की गति, सौर वर्ष की लंबाई आदि का भी सही-सही निरीक्षण किया।"

खलीफा मामून के खगोलशास्त्रियों ने एक अत्यधिक उत्तम पृथ्वी सम्बन्धी उपलब्धि हासिल कर दिखाई। उन लोगों ने पृथ्वी के कोण के आकार को नापने में सफलता प्राप्त की। इसका उद्देश्य था कि पृथ्वी के आकार और व्यास को इस धारणा के आधार पर मापा कि पृथ्वी गोल है। इस कार्य में जिन लोगों ने भाग लिया उनमें अल-ख्वारिज्मी का नाम लिया जाता है।

इस युग का एक और प्रसिद्ध खगोलशास्त्री अबू-अल-अब्बास अहमद अल-फरगनी था जो ट्रैन्क्जोक्सियाना में फरगना का निवासी था। अल फरगनी की प्रमुख कृति **अल-मुदखिल इलाइल्म हयात अल-अफलाक** का अनुवाद लैटिन में सेविले के जौन और क्रेमोना के गेरार्ड ने किया। इसका अनुवाद हेब्रू भाषा में भी हुआ। अरबी में यह कृति विभिन्न नामों से निरंतर कायम रही।

अफगानिस्तान में गजना में एक और महान खगोलशास्त्री अबू-अल रैहान मुहम्मद इब्न अहमद अल-अलबेरूनी (सन् ९७३-१०४८) रहता था। प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में इसे इस्लाम का सर्वाधिक मौलिक और विद्वान व्यक्ति माना जाता है। यह फारसी मूल का अरबी विद्वान तुर्की भाषा अच्छी तरह बोल सकता था और फारसी भाषा के अलावा संस्कृत, हेब्रू और सीरियाई भाषा भी जानता था।

अपने संरक्षक, सुल्तान मसूद के लिए, जो प्रसिद्ध आक्रामक एवं विजेता महमूद गजनी का पुत्र था, उसने खगोल-विज्ञान पर **अल-कानून अल-मसूदी फी-अल-हयाह ब-अन-नजूम** नामक पुस्तक लिखी। साथ ही उसने ज्यामिति, गणित, खगोल विद्या और ज्योतिषशास्त्र पर एक वृहत् प्रश्नोत्तरी तैयार की जिसका शीर्षक था **अल-तफहीम ली अवाइल सिनात अल तजिम**। उसकी प्रथम कृति थी **अल-अथार अल-बकियाह अन अल-कुरून अल-खलियाह**। इसमें प्राचीन लोगों के पंचांगों और युगों का वर्णन था। अपनी इन कृतियों में अल-बेरुनी ने बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से तत्समय विवादास्पद विषय पृथ्वी के परिक्रमा-सिद्धान्त पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं और अक्षांश (लैटिच्यूड्स) और देशान्तर रेखाओं (लौंगीच्यूड्स) का सही-सही निर्धारण किया है। अल-बेरुनी हिन्दू दर्शन पर मुग्ध था। उसने भारत की यात्रा की, हिन्दुओं के बीच रहा। उसने उनकी भाषा, विज्ञानों, दर्शन, साहित्य रीति-रिवाजों, कानून, धर्म, विशेष अंधविश्वासों और देश की भौगोलिक एवं भौतिक स्थिति आदि का अध्ययन किया। इस संबंध में उसने जो विचार प्रकट किए उनमें कवि होमर, विचारक प्लेटो तथा अन्य यूनानी लेखकों एवं दार्शनिकों के इस संबंध में विचारों का समावेश भी है। भारत पर उसकी प्रसिद्ध एवं महान कृति **किताब अल हिंद** के अलावा उसने खगोल शास्त्र, गणित, और गणितीय भूगोल, कालक्रम भौतिकी और रसायन शास्त्र पर भी पुस्तकें लिखीं।

सालजुक सुल्तानों में जलाल अल-दीन मलिक शाह ने खगोल शास्त्रीय अध्ययन को संरक्षण दिया। उसने सन् १०७४-७५ में राय्य या नयसाबर में एक वेधशाला स्थापित की जहां उसने सायन वर्ष (ट्रापिकल इयर) की अवधि के सही निर्धारण पर आधारित पंचांग (कैलेन्डर) आरंभ किया जो एक महत्त्वपूर्ण सुधार-स्वरूप था। पुराने फारसी पंचांग के सुधार के लिए उसने अपनी वेधशाला में प्रसिद्ध कवि एवं वैज्ञानिक उमर खय्याम को बुलाया। उमर खय्याम का जन्म नयसाबर में सन् १०३८ और १०४८ के बीच हुआ था जहां ११२३-२४ के बीच उसकी मृत्यु हुई। समूची दुनिया जानती है कि उमर मुख्यतः एक फारसी कवि और स्वतंत्र विचारक था। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है कि उमर-खय्याम प्रथम श्रेणी का गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री भी था। अल-खय्याम और उसके सहयोगियों के शोध-कार्यों के फलस्वरूप जो पंचांग (कैलेन्डर) तैयार हुआ, उसका नाम उसके संरक्षक **अल-तारीख अल जलाली** के नाम पर रखा गया। यह कैलेन्डर ग्रेगोरियन कैलेन्डर से भी ज्यादा सही है। ग्रेगोरियन कैलेन्डर में ३३३० वर्षों की अवधि में एक दिन की गलती पाई जाती है जबकि अल-खय्याम के कैलेन्डर में प्रत्यक्षः ५००० वर्षों में एक दिन की गलती है।

बगदाद को नष्ट कर देने के लिए एकवर्ष बाद हलाकू ने सन् १२५९ में उर्मिया झील के निकट महान मरगा वेधशाला का निर्माण-कार्य शुरू कराया। उसका प्रथम निदेशक सुप्रसिद्ध खगोल शास्त्री नसीर अल दीन अता तुसी (सन् १२७४) था। वह अब्बासिद खगोल-शास्त्री-दार्शनिकों में से अंतिम था। अल्पकाल तक ही कायम रहने वाली इस वेधशाला के अवशेष अभी तक वर्त्तमान हैं। उसके पास ही एक पुस्तकालय था जिसके बारे में कहा जाता है कि उसमें 4 लाख ग्रन्थ थे। इन पुस्तकों में से अधिकांश को सीरिया, ईराक और फारस की मंगोल सेनाओं ने लूट लिया।

ज्योतिष शास्त्र

ज्योतिष शास्त्र में, जो खगोल विद्या का एक सहयोगी विषय है, अबू माशार सबसे प्रसिद्ध विशेषज्ञ था। वह खुरासान में बलख का मूल-निवासी था और बगदाद में रहता था। ईसाई मध्य युग में प्रायः उसे ज्योतिष शास्त्र में एक अधिकारी व्यक्ति के रूप में उद्धृत किया जाता है। बारहवीं शताब्दी में उसकी कृतियों में से चार का अनुवाद सेविले के जौन और बाथ के एडेलार्ड ने किया। उसका यह अत्यंत दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य के जन्म, जीवन की घटनाओं और हर एक ही मृत्यु पर नक्षत्रों का प्रभाव है। इसके अलावा उसने यूरोप को समुद्र की लहरों के विज्ञान के बारे में बतलाया। इस संबंध में एक प्रबंध में उसने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि चन्द्रमा के उदय और अस्त से समुद्र की लहरों के उत्थान और पतन का संबंध है। बाद में उसकी अनेक कृतियों का अनुवाद, विशेषतः स्पेन में लैटिन भाषा में किया गया। फलतः उसने ईसाई यूरोप के विज्ञान के विकास पर निर्णायक प्रभाव डाला।

गणित

जो हिन्दू विद्वान खलीफा अल-मंसूर के दरबार में खगोलशास्त्र संबंधी कृति सिद्धान्त (सिंदहिन्द) लाया उसे ही इस बात का भी श्रेय है कि उसने इस्लाम में हिन्दू गणित विद्या और उसकी अंक-प्रणाली तथा शून्य के प्रयोग की शुरुआत की। इस विद्या को अरबी मे हिन्दी कहा जाता है। अल-फजरी ने अरबी में हिन्दू कृतियों का अनुवाद किया। उससे इस्लाम में लोग अंक-प्रणाली से अवगत हुए। सन् ८६७ और ८७४ में अल-ख्वारिजिमी और हबास-अल-हसीब के तालिकाओं ने ही संभवतः समूचे अरब जगत में अंक-प्रणाली का प्रसार किया। पर ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी तक भी हम पाते है कि अबू बकर मुहम्मद अल-कराजी ने अपने "अल-कफी फी अल-हिसाब (गणित में पर्याप्त") में सभी अंक शब्दों में दिए हैं।

अल-ख्वारिज़िमी (सन् ७८०—लगभग ८५०) अरब गणित के प्रारंभिक इतिहास में मुख्य व्यक्ति है। वह इस्लाम में वैज्ञानिक मस्तिष्क रखने वाले सबसे प्रमुख व्यक्तियों में था। किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में उसने गणितीय विचारों को सबसे ज्यादा हद तक प्रभावित किया। उसने सबसे पुरानी खगोल-शास्त्री तालिकाओं का तो संकलन किया ही, साथ ही बीजगणित (अलजबरा) पर सबसे पुरानी कृति का प्रणयन किया। बीजगणित पर इस पुस्तक **हिसाब अल-जबर व-अल-मुकाबला** (एकीकरण और समीकरण पर पुस्तक) में करीब आठ सौ उदाहरण प्रस्तुत किए गए। अल-ख्वारिज़िमी की यह प्रमुख कृति थी, पर अरबी भाषा में यह उपलब्ध नहीं। क्रेमोना के गेरार्ड द्वारा, बारहवीं सदी ईस्वी में, इसका अरबी में अनुवाद किया गया। यूरोपीय विश्वविद्यालयों में, बारहवीं सदी ईस्वी तक, यह प्रमुख गणितीय पाठ्य-पुस्तक रही। अल-ख्वारिज़िमी की कृतियों ने पश्चिम में अरबी अंकों की भी शुरूआत की जिनको अल-ख्वारिज़िमी के नाम पर अलगोरिज्म, के नाम से पुकारा गया। अल-ख्वारिज़िमी से प्रभावित बाद के गणितज्ञों में उमर अल-खय्याम, पिसा के लियोनार्दो फिबोनासी (सन् १२४० के बाद) और फलोरेन्स के मास्टर जैकब के नाम लिए जा सकते हैं। अल-खय्याम की बीजगणित संबंधी पुस्तक में इस विषय को अल-ख्वारिज़िमी द्वारा प्रस्तुत विषय को और विकसित रूप में प्रस्तुत किया गया है। साधारणतः उमर खय्याम की प्रसिद्धि उसकी कविताओं के चलते है पर वह एक बहुत ही दक्ष गणितज्ञ और खगोल-शास्त्री भी था और उन लोगों में से था जो अल-ख्वारिज़िमी से प्रभावित थे।

कीमियागरी

औषध-शास्त्र, खगोल शास्त्र और गणित के बाद अरबों ने रसायन शास्त्र के क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान किया। रसायन शास्त्र और अन्य भौतिक शास्त्रों में अरबों ने वस्तुगत प्रयोग आरंभ किया जो इस दशा में यूनानियों के अस्पष्ट अनुमानों से निश्चय ही बेहतर और विकसित था। अरब कीमियागरी (रसायन शास्त्र) का जनक जबीर इब्न हय्यान था जो कूफा में सन् ७७६ में हुआ। मध्य-युगीन रसायन शास्त्र के क्षेत्र में उसका नाम अल रज़ी, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, के बाद आता है। इस क्षेत्र में मिस्र और यूनान के अपने पूर्ववर्ती विशेषज्ञों की भाँति जबीर ने इस स्थापित सिद्धान्त पर काम किया कि टिन, सीसा, लोहा और ताँबा जैसे आधारभूत धातु किसी रहस्यपूर्ण तत्व से सोना और चाँदी में परिणत किये जा सकते हैं। उसी तत्व की खोज में उसने अपनी पूरी शक्ति लगाई। पश्चिमी शोध-ग्रन्थों में उसके बारे में कहा गया है कि उसने कुछ रासायनिक तत्वों की खोज की। पर इस बात का उल्लेख उसकी विद्यमान बाइस अरबी कृतियों में नहीं मिलता। इनमें से पांच कृतियों में जो जबीर द्वारा लिखित बतलाई जाती हैं,

किताब अल-रहम (दया की पुस्तक), **किताब अल-ताजमी** (संकेन्द्रण की पुस्तक) और **अल-जिबाक अल-शर्की** (पूर्वी पारे की पुस्तक) प्रकाशित हो चुकी हैं।

बाद के मुस्लिम रसायन-शास्त्री इब्न हय्यान को अपना गुरु मानते हैं। इनमें से जो सर्वश्रेष्ठ हैं; उन लोगों ने भी जबीर की पद्धति में कुछ खास सुधार न किया। इन लोगों में अरबी में लिखने वाले फारसी कवि एवं राजनेता अल तुगराय (लगभग सन् ११२१) और अबू-अल-कासिम अल-ईराक के, जो तेहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ, नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।

प्राणी विज्ञान

जहाँ तक प्राकृतिक इतिहास का संबंध है, अरबों को सबसे ज्यादा सफलता प्राणी विज्ञान में हुई जब कि स्पेन के मुसलमानों ने वनस्पति शास्त्र के मामले में स्पष्ट और प्रत्यक्ष योगदान किया। पशुओं के संसार पर अरबी लेखक मुख्यत: साहित्यिक थे जिनकी इस संबंध की कृतियों में अरबों द्वारा जानवरों को दिए गए नाम और कवियों द्वारा उनपर लिखी गई कवितायें थीं। इस संबंध में घोड़ों पर अध्ययन एक अपवाद था। इस अध्ययन को करीब-करीब एक विज्ञान का रूप दे दिया गया। घोड़े पर विशेष पुस्तकें लिखी गईं जिनमें उनकी किस्मों, उनके शरीर के अंगों, उनके रंग और उनकी वांछनीय और अवांछनीय गुणों आदि का विवरण था।

प्राणिशास्त्र और मानव-शास्त्र संबंधी विज्ञानों पर एक प्रारंभिक लेखक अबू उस्मान अम्र इब्न बहर अल जहीज था। वह बसरा में रहता था और उसकी पुस्तक "किताब-अल हेवान" (पशुओं पर किताब) जीव-शास्त्र के बजाय धर्मतांत्रिक और लोक-कथात्मक अधिक है। इस पुस्तक में लेखक अरस्तू का उद्धरण देता है। इसमें बाद में विकसित हुए विकास और अनुकूलन सिद्धान्तों तथा पशु-मनोविज्ञान के बीज हैं। बाद के अरबी प्राणि-विज्ञानियों पर अल जहीज का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। इनमें अरबी में लिखने वाले फारसी विश्व-उत्पत्ति-लेखक अल-काजविनि (१२८३) और मिस्र के अल-दमीर (सन् १४०५) के नाम लिए जा सकते हैं। अल दमीर महानतम अरब प्राणि-विज्ञानी है।

खनिज-विज्ञान

खनिज विज्ञान में, जिसका रसायन शास्त्र या कीमियागरी से निकट संबंध है, अरबों ने कम प्रगति की। हीरे-जवाहरात के प्रति उनके तीव्र आकर्षण और खनिज पदार्थों के गुप्त गुणों में उनकी दिलचस्पी के कारण ही इस संबंध में अरबी लेखकों ने कई पुस्तकें पचास से अधिक लिखीं। इनमें से जो सबसे पुरानी पुस्तक

(संभवत: "अल-कातिव") अभी भी उपलब्ध है वह उतारिद इब्न मुहम्मद अल-हसीव की है, संभवत: नौवीं ईस्वी सदी में लिखा गया। पर इस संबंध में अरबी में सबसे विख्यात पुस्तक "अजहर अल-अफकर फी जवाहिर अल-अहजर" (हीरे-जवाहरात पर विचार-पुष्प) हैं। इसका लेखक शिहाव-अल-दीन अल-तिफासी था जिसकी मृत्यु काहिरा में सन् १५२३ ईस्वी में हुई। इस पुस्तक में अल-तिफासी ने चौबीस हीरे-जवाहरात के बारे में लिखा है। इस सिलसिले में उसने उनके मूल, भौगोलिक अवस्थिति, शुद्धता, मूल्य और उनके औषधि तथा जादूगरी संबंधी गुणों पर प्रकाश डाला है। उसने इस संबंध में प्लीनी और अरस्तू के मणि-माणिक्य स्रोतों का उल्लेख किया है। सुप्रसिद्ध अरबी लेखक अल-बेरुनी ने, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, प्राय: पूरे ठीक तौर पर, अठारह हीरे-जवाहरात और धातुओं की विशिष्ट गुरुता का वर्णन किया है।

दर्शन

अगर ठीक-ठीक कहा जाए तो कहना पड़ेगा कि अरब दर्शन जैसी कोई चीज न थी। अरब साहित्य के विपरीत अरब दर्शन एक आयातित वस्तु थी। इसीलिए उसका विदेशी नाम **फलसफा** है और उसमें कार्यरूप देनेवाले का नाम **फेलासफ**। अरबों की व्युत्पत्ति के अर्थ में अपना दर्शन था पर तकनीकी अर्थ में नहीं। उनके साहित्य में प्रारम्भिक दिनों की कहावतें, बुद्धिमत्तापूर्ण उक्तियां, दृष्टान्त और किस्से-कहानियां भरे पड़े हैं जिनका उद्देश्य साहस, उदारता, जनजातीय एकता तथा उन मूल्यों को आगे बढ़ाना है जिनके प्रति वे समादर की दृष्टि रखते हैं। मूलत: अरब दर्शन यूनानी था जिसको विजयी लोगों (अरबों) तथा अन्य पूर्वी प्रभावों से संशोधित किया गया था। साथ ही उसे इस्लामी प्रवृत्ति के अनुकूल ढाल दिया गया था और अरबी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया था। मुसलमानों के रूप में अरबों का विश्वास था कि कुरान और इस्लामी धर्मतंत्र धार्मिक कानूनों और अनुभवों के संकलन हैं। इस दिशा में अरबों ने एक ओर दर्शन और धर्म और दूसरी ओर दर्शन और चिकित्सा की सीमारेखा के बीच योगदान किया। प्रारंभिक अरब दर्शन के क्षेत्र में सबसे महान विचारक अल-किंदी, अल-फराबी और इब्न सिना हुए।

अबू युसुफ याकूब इब्न-इशाक अल किंदी का जन्म कूफा में सन् ८०१ में हुआ और वह बगदाद में रहा। चूंकि उसका जन्म शुद्ध अरब वंश में हुआ था इसलिए उसे "अरबों के दार्शनिक" की उपाधि मिली। वास्तव में वह पूर्वी खिलाफत में अरस्तू की दार्शनिक विचारधारा मानने वाले का प्रथम और अंतिम उदाहरण था और अरबों के बीच हुआ। वह विभिन्न दर्शनग्राही था। उसने यूनानी दार्शनिक

प्लेटो की नई प्रणाली से प्लेटो और अरस्तू के विचारों को मिलाया। अल-किंदी दार्शनिक से अधिक कुछ और भी था। वह खगोल-शास्त्री और कीमियागर (रसायन-शास्त्री) होने के अलावा नेत्र-विज्ञान और संगीत के बारे में सिद्धान्तों का प्रेणता था। कहा जाता है कि उसने दो सौ पैंसठ कृतियां लिखीं पर उनमें से अधिकांश अब उपलब्ध नहीं हैं। दूसरे अरब दार्शनिक अल-फरावी को जनता ने अरस्तू के बाद दूसरे शिक्षक के रूप में सम्मानित किया। वह अरब दार्शनिकों में द्वितीय श्रेणी का था। कहा जाता है कि उसने यूनानी दार्शनिकों अरस्तू और प्लेटो के दर्शनों का ब्योरेवार सार अरबी भाषा में प्रस्तुत किया। उसे मुस्लिम नव-प्लेटोवाद का वास्तविक संस्थापक के रूप में मान्यता मिली। उसने अल-किंदी की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और अधिक सुसंगत दर्शन-प्रणाली का निर्माण किया। अपनी पुस्तक "**रिसाला फी अल-फलसफा अल-उला**" (प्रथम दर्शन का धर्म-पत्र) अपने संरक्षक खलीफा अल-मुतासिम को अर्पित करते हुए अल-फरावी लिखता है—"सभी मानवीय कार्य-कलाप में दर्शन सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट है। दर्शन शास्त्र की परिभाषा दी गई है कि वह चीजों को उनके वास्तविक रूप में उस सीमा तक प्रस्तुत करता है जितनी कि मानवीय क्षमता है। अपने सैद्धान्तिक अध्ययनों में दार्शनिक का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना होता है और कार्यरूप में वह उन सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारता है।"[५] संगीत के सिद्धान्त पर अल-किंदी की जो तीन या चार सबसे प्रारंभिक अब भी वर्तमान रचनाएँ हैं उनसे स्पष्ट होता है कि अरब संगीत पर यूनान का प्रभाव है। इनमें से एक रचना में अल किंदी ने बतलाया है कि लय (इका) अरब संगीत का एक अंगीभूत भाग है। और रचना में शब्द **मुसीकी** (**अब मुसीका**) शायद पहली बार एक शीर्षक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। फिर भी संगीतकार अल किंदी ने दार्शनिक अल-किंदी की भाँति अपने बाद के दो विद्वानों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ये दो विद्वान थे अल-फरावी और इब्न सिना जो अल किंदी से इस क्षेत्र में आगे बढ़ गए। अल-फरावी ने इस विषय पर तीन वृहत् रचनाएँ लिखीं जिनके कारण वह सिद्धान्तकारों में सर्वोच्च स्थान पा सका। अल-किंदी की रचनाएँ अपने मूल अरबी रूप में नहीं बल्कि अपने लैटिन अनुवादों में अभी भी उपलब्ध है। इनमें से कुछ अनुवाद क्रेमोना के गेरार्ड ने किए। प्रोफेसर हिट्टी ने ठीक

---

५. मुहम्मद अब्द-अल हादी अबू रिदाह कृत "**रसायल अल-किंदी अल-फल-सफियाह**, खंड १ (काहिरा १९५०, पृ० ९७)। इस पुस्तक में दो खंडों में अल किंदी के जीवन और दर्शन का पूरा अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अरब दर्शन के सामान्य अध्ययन के लिए एम० एम० शरीफ (सम्पादित) "**ए हिस्ट्री ओव मुस्लिम फिलासफी**", खंड १ (वीसवैडन, १९६३) (अल किंदी, इब्न सिना और इब्न रूशद पर लेख के साथ) के बारे में अनुशंसा की जाती है।

ही लिखा है[६] —"याकूब इब्न-इशाक अल-किंदी, जो अरब दर्शन का पथ-प्रदर्शक विद्वान था और जिसे विश्व-कोष का-सा ज्ञान था और जिसने प्रचुर लेखन-कार्य किया, यूनानी ज्ञान को इस्लामी परम्परा का अंगीभूत भाग बना दिया। उसने दर्शन और धर्मतंत्र के बीच सामंजस्य के लिए मार्ग प्रशस्त किया और यूनानी विचारों को अरब संस्कृति में एक स्थायी स्थान प्रदान किया।"

यूनानी दर्शन का इस्लाम के साथ सामंजस्य अलकिंदी ने शुरू किया जो अरब था। इसे आगे बढ़ाया अल-फराबी ने जो तुर्क था और पूर्व में उस सामंजस्य-कार्य को पूरा किया इब्न-सिना ने जो फारसी था। अल फराबी का जन्म ट्रांजोक्सियाना में हुआ। उसकी शिक्षा बगदाद में एक ईसाई चिकित्सक और एक ईसाई अनुवादक के अधीन हुई। वह अलप्पो में एक सूफी के रूप में सैफ-अल-दौला अल-हमदानी के शानदार दरबार में रहा। करीब ८० वर्ष की उम्र में सन् ९५० में दमिश्क में उसकी मृत्यु हुई। प्लेटो और अरस्तू पर उसकी अनेक रचनाओं से प्रकट होता है कि उसने प्लेटोवाद, अरस्तूवाद और सूफीवाद को एक साथ मिला कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया। अरस्तू और अन्य यूनानी दार्शनिकों पर अनेक टीकाओं के अलावा अल-फराबी ने अनेक मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक पुस्तकें लिखीं जिनमें सर्वप्रसिद्ध **रिसालत फुसूस अल-हिकाम** और **रिसाला फियारा अहल अल-मदीना अल-फदीला** (अधिक बड़े नगर के लोगों के विचारों पर एक पत्र)। इनमें में दूसरी पुस्तक और अपनी एक अन्य रचना **अल-सियासा (सियासत) अल मदानिया** (राजनीतिक अर्थतंत्र) में अल-फराबी ने, प्लेटो की प्रसिद्ध कृति **रिपब्लिक** और अरस्तू की **पौलिटिक्स** से प्रेरित प्रतीत होती है, एक आदर्श नगर के संबंध में अपनी धारणा प्रस्तुत की है। वह ऐसे नगर को मानव-शरीर की भांति एक श्रेणीबद्ध संगठन जैसा मानता है। अल फराबी की अन्य रचनाओं से प्रकट होता है कि वह एक अच्छा चिकित्सक और गणितज्ञ, एक गुह्य-विद्या-वैज्ञानिक तथा उत्कृष्ट संगीतज्ञ था। वास्तव में वह सभी अरब संगीत-सिद्धान्तकारों में महानतम था। उसकी सर्वप्रमुख कृति **किताब अल-मुसीकि अल-कबीर** संगीत पर महान पुस्तक है।

अल फराबी के बाद इब्न सिना (सन् १०३७) ने संगीत के सिद्धान्त के क्षेत्र में अरबी भाषा में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इब्न सिना अपने दार्शनिक विचारों के लिए अल-फराबी के प्रति ऋणी है। इतिहासकार इब्न खल्लिकान लिखता है—"कोई मुसलमान दार्शनिक विज्ञानों के क्षेत्र में उस श्रेणी तक नहीं पहुँच सका जिस श्रेणी तक अल-फराबी पहुँचा। उसके लेखन और

---

६. फिलिप के० हिट्टी—**मेकर्स औव अरब हिस्ट्री**, पृ० २०१।

उसके द्वारा आरंभ की गई शैली के प्रभाव से इब्न सिना ने दक्षता हासिल की और उस कारण ही उसका कार्य इतना उपयोगी हो सका।"

चौथी मुस्लिम शताब्दी में (प्रायः सन् ९५०) बसरा में एक रोचक विभिन्न दर्शनग्राही लोकप्रिय दर्शन का उदय हुआ जिसका झुकाव यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस के अनुमानों की ओर था। इसका नाम इखवान अल-सफा (ईमानदारी का समुदाय) था। इस समुदाय की एक शाखा बगदाद में भी थी। उसने चरमपंथी शिया-धर्मावलंबियों अल गजाली, अबू अल-आला अल मारी, अबू-हय्यान अल तौहिदी के साथ न केवल दार्शनिक बल्कि धार्मिक राजनीतिक संगठन भी बनाया।

इतिहास-लेखन

अब्बासिद खलीफाओं के शासन में इतिहास-लेखन के विज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण प्रगति हुई। अरबी भाषा की जो सबसे प्रारंभिक इतिहास कृतियाँ हैं वे अब्बासिदों के ही शासन के समय की हैं। धार्मिक परम्पराओं पर आधारित प्रथम कृति **सिरात रसूल अल्लाह** है जो पैगम्बर मुहम्मद की जीवनी है। इसे मदीना के इब्न इशाक ने लिखा। इब्न साद ने, जिसकी मृत्यु बगदाद में सन् ८४५ में हुई, वर्गीकृत जीवनियों की प्रथम पुस्तक लिखी जिसमें हजरत मुहम्मद, उनके सहयोगियों और लेखक के समय तक के उनके उत्तराधिकारियों की जीवनियाँ हैं। मुसलमानों की विजय के दो प्रमुख इतिहासकार मिस्र निवासी इब्न-अब्द-अल हकाम (सन् ८७०-७१) और अरबी में लिखने वाला फारस निवासी अल-बालाधुरी थे। इब्न-अब्द-अल-हकाम की पुस्तक **फुतुह मिस्र वा अखबारुहा** मिस्र, उत्तरी अफ्रिका और स्पेन पर मुस्लिम विजय का सबसे प्रारंभिक दस्तावेज है जो अभी तक विद्यमान है कि अल-बालाधुरी की प्रमुख कृतियाँ **फुतुह अल-बुल्दान** और **अन्साब अल-अशरफ** (सरदारों की वंशावली की पुस्तक) हैं। अल-बालाधुरी वह प्रथम व्यक्ति था जिसने विभिन्न नगरों और देशों पर विजय की अनेक गाथाओं को एक व्यापक ग्रन्थ में संकलित किया।

अब्बासिद-अवधि में किंवदन्तियों, परम्पराओं, जीवनियों, वंशावलियों और घटना-वृत्तान्तों के आधार पर अनेक इतिहास लिखे गए। इनका आदर्श स्पष्टतः फारसी था। फारसी में लिखी गई **खुदायनामा** (राजाओं की पुस्तक) तथा ऐसी अन्य कृतियाँ अरबी के इतिहास-ग्रन्थों की आधार बनीं। अरबी में खुदायनामा का अनुवाद इब्न-अल-मुकफा ने किया। अरबी अनुवाद का शीर्षक था सियार मुलुक अल-आजम। प्रथम औपचारिक इतिहासकारों में पहला स्थान इब्न कुतयबाह का है जिसकी मृत्यु बगदाद में सन् ८८९ में हुई। उसने **किताब अल मारिफ** (ज्ञान की पुस्तक) लिखी जो इतिहास की एक हस्त-पुस्त जैसी है। दूसरा इतिहासकार

अल दिनावारी हुआ जो फारसी ईराक में इस्वहान (इस्फहान) और दिनावार में वारी-वारी से रहा। उसकी मुख्य कृति अल-अखवार अल-तिवाली (एक लंबा वृत्तान्त) थी। यह फारसी दृष्टिकोण से एक विश्व-इतिहास है। उसी समय एक भूगोलविद इतिहासकार इब्न वदीह् अल-याकूवी हुआ। उसने अल-हिजरी २५८ (सन् ८७२) तक का संक्षिप्त विश्व इतिहास लिखा। एक अन्य महान इतिहासकार, जो फारसियों में से हुआ, मिस्कावायह (सन् १०३०) था। वह बुआहिद सुल्तान अद्दुद-अल-दौला के दरवार में एक ऊँचे पद पर था। उसने उल-हिजरी ३६९ (सन् ९७९-८०) तक का विश्व इतिहास लिखा। मिस्कावायह एक दार्शनिक और चिकित्सक भी था। उसका स्थान प्रमुख मुस्लिम इतिहासकारों में है। अन्य दो सबसे बड़े इतिहासकार अल-तवारी और अल-मसूदी थे।

अल-तबारी (सन् ८३८-९२३), जिसका जन्म तवरिस्तान में हुआ, अपने उत्कृष्ट, व्यापक और सही इतिहास-ग्रन्थ तारीख अल-रसूल-व-अल-मुलुक" (धर्म-प्रचारकों और राजाओं की कथायें) के लिए प्रसिद्ध है। उसने कुरान पर एक टीका भी लिखी। अधिकांश मुस्लिम इतिहासकारों की भाँति अल-तवारी घटनाओं को कालक्रमानुसार प्रस्तुत करता है। वह उन घटनाओं को हिजरा (मुस्लिम संवत्) के क्रमिक वर्षों के अधीन तालिकावद्ध करता है। वास्तव में उसका इतिहास विश्व के सृजन-काल से आरंभ होता है और अल-हिजरा ३०२ (सन् ९१५) तक चलता है।

अवू अल-हसन अल-मसूदी ने, जिसे "अरबों का हेरोडोटस" कहा जाता है, इतिहास लेखन की घटना वर्णन पद्धति आरंभ की। उसने वर्षों के इर्द-गिर्द घटनाओं को प्रस्तुत करने के वजाय, राजवंशों, राजाओं और जनता के इर्द-गिर्द घटनाओं को प्रस्तुत किया। इसी पद्धति पर बाद में इब्न खाल्दून और अन्य छोटे इतिहासकार चले। यही नहीं, वह प्रथम इतिहासकार था जिसने ऐतिहासिक आख्यायिकाओं का अच्छा उपयोग किया। उसने अपने जीवन का अंतिम दशक सीरिया और मिस्र में बिताया और वत्तीस खंडों में एक पुस्तक लिखी। वह अपने संक्षिप्त रूप में अभी भी विद्यमान है और उसका नाम है मूरूज अल-धहाव वा-मादिन अल-जवाहर (सोने का भंडार और रत्नों की खान)। यह अल-मसूदी की विश्वकोष जैसी ऐतिहासिक भौगोलिक कृति है। फुस्तात में सन् ९५६ में अपनी मृत्यु के पूर्व अल-मसूदी ने अपने इतिहास दर्शन को संक्षिप्त रूप में पेश किया जिसमें खनिज पदार्थों, पौधों और जानवरों का वर्गीकरण भी दिया गया था। उसकी इस पुस्तक का नाम था अल-तनवीह्-व-अल-इशरफ।

अल तवारी और अल मसूदी के समय अरबी इतिहास-लेखन अपने उच्चतम विन्दु पर पहुँच गया। मिस्कावायह (सन् १०३०) के वाद उसकी अत्यंत द्रुत अव-

नति शुरू हुई। इब्न अल-अथीर (११६०-१२३४) ने अपनी पुस्तक **अल-कामिल फी अल-तारीख** (इतिवृत्तों की सम्पूर्ण पुस्तक) में अल-तवारी के कार्य को संक्षिप्त रूप में पेश किया। उसने घटनाओं के वर्णन को सन् १२३१ तक की घटनाओं तक जारी रखा। इस पुस्तक में धर्मयुद्ध के संबंध में अध्याय, अथीर का मौलिक योगदान है। उसके समसामयिक सिब्त इब्न-अल-जौजी (११८६-१२५७) ने, जिसका जन्म बगदाद में हुआ था और जिसका पिता एक तुर्की दास था, **मिरात अल जमान फी तारीख अल-अय्याम** लिखी। यह विश्व के सृजन से सन् १२५६ तक की घटनाओं का विश्व-इतिहास है। अब्बासिद अवधि के इस परवर्ती काल में सीरिया का मुख्य न्यायाधीश इब्न खल्लिकान (१२८२) हुआ। वह पहला मुसलमान था जिसने राष्ट्रीय जीवनी का शब्दकोष लिखा। उसके पहले याकूत ने विद्वत्मंडली के बारे में अपना शब्दकोष लिखा और इब्न असाकीर (११७०) अपने मूल नगर दमिश्क से संबंधित प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनियाँ अस्सी खंडों में लिखीं।

भूगोल

भूगोल के क्षेत्र में भी अब्बासिद अवधि में मुसलमानों ने बड़ी प्रगति की। उनके द्वारा भूगोल के अध्ययन के लिए ये धार्मिक प्रेरणाएँ सिद्ध हुईं :—पवित्र तीर्थयात्रा का प्रारंभ, मक्का की ओर मस्जिदों का उन्मुखीकरण और नमाज के समय काबा की दिशा सुनिश्चित करने की आवश्यकता। ज्योतिष विज्ञान ने, जिससे विश्व के सभी स्थानों की अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ सुनिश्चित करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई, इस दिशा में अपना वैज्ञानिक प्रभाव डाला। सातवीं और नौवीं ईस्वी सदी में मुस्लिम व्यापारी पूर्व में समुद्र और जमीन के मार्गों से चीन पहुँच चुके थे। वे दक्षिण में जंजीबार के द्वीप और अफ्रिका के सुदूरतम तटों तक पहुँच चुके थे और उत्तर में रूस तक। उन स्थानों से जो व्यापारी लौटते थे उनके वर्णनों से सुदूर स्थानों और विदेशी लोगों के बारे में लोगों की दिलचस्पी उत्पन्न हुई। फारस की खाड़ी पर स्थित सिराफ के सुलेमान अल तजीर (व्यापारी) द्वारा की गई सुदूर पूर्व की यात्रा पर सन् ८५१ में एक अनाम लेखक ने विवरण लिखा। इससे हमें चीन और भारत के समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों के बारे में प्रथम अरबी विवरण मिलता है। इससे और इस प्रकार के अन्य विवरणों से धीरे-धीरे उन कहानियों का जन्म हुआ जो 'सिंदबाद दी सेलर' (समुद्र यात्री सिन्दबाद) के संबंध में कही जाती हैं। रूस के बारे में सबसे प्रारंभिक निर्भरयोग्य विवरण अहमद इब्न-फादलान इब्न हम्माद का है। उसके विवरण का अधिकांश भाग याकूत के प्रसिद्ध भौगोलिक शब्दकोष "मजम अल-बुल्दान" में दिया गया है। इसके अलावा पोलेमी की ज्योग्राफी का अनुवाद कई बार अरबी भाषा में सीधे किया गया या सीरियाई भाषा में उसके अनुवाद के माध्यम से। यह अनुवाद याकूब इब्न-इशाक ने सन् ८७४ के

पूर्व किया और ताबित इब्न-कुर्रा ने भी किया जिसकी मृत्यु ९०१ में हुई। इसे आदर्श मान कर सुप्रसिद्ध अरबी लेखक ख्वारिज्मी, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है, अपनी पुस्तक "सूरत अल-अर्द" (पृथ्वी की शक्ल) लिखी। यह पुस्तक बाद की कृतियों का आधार बनी। साथ ही इससे भौगोलिक अध्ययन और मौलिक पुस्तकों को लिखने की प्रेरणा मिली। अल-ख्वारिज्मी की कृति के साथ पृथ्वी की शक्ल का एक नक्शा था। यह नक्शा खलीफा मामून के कहने पर उसने और अन्य उनहत्तर विद्वानों ने बनाया था। अल मसूदी ने, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है और जो दसवीं सदी ईस्वी में हुआ, इस नक्शे से अपनी भौगोलिक पुस्तक लिखने में मदद ली। अल-ख्वारिज्मी की भूगोल चौदहवीं शताब्दी ईस्वी तक मुस्लिम लेखकों को प्रभावित करती रही।

फिर भी, अरबी में प्रथम स्वतंत्र भौगोलिक पुस्तकें सड़कों संबंधी पुस्तकों के रूप में निकली जिनमें यात्रा-वृत्तान्तों ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया। एक फारसी वंश में होने वाले इब्न-खुर्दधवीह (संभवतः सन् ९१२) अपनी पुस्तक **अल-मसालिक-अल-मालिक** का क्रम शुरू किया। यह कृति ऐतिहासिक स्थलाकृति-विज्ञान के लिए विशेष रूप से उपयोगी थी। इसका उपयोग भूगोलविद इब्न-अल-फकीह, इब्नहौकल तथा बाद के भूगोल-लेखकों ने भी किया। सन् ८९१-८९२ में इब्न वदीह अल-याकूबी ने, जो आर्मीनिया और खुरासान में रहा, अपनी **किताब अल-बुल्दान** (देशों की पुस्तक) लिखी। वह इस अर्थ में नई पुस्तक थी कि उसमें स्थलाकृति और आर्थिक विवरण दिए हुए थे। इसके तुरंत बाद सन् ९२८ में कुदामा ने, जो इस्लाम धर्म अपनाने वाला एक ईसाई था और राजधानी बगदाद में केन्द्रीय प्रशासन में राजस्व लेखापाल के पद पर था, अपनी पुस्तक **अल-खिराज** पूरी की। इस पुस्तक में बतलाया गया है कि खलीफा का शासन-क्षेत्र प्रान्तों में बँटा हुआ था। इसमें डाक-सेवा के संगठन और हर जिले में लगाए जाने वाले करों का भी वर्णन है। एक अन्य भूगोलकार इब्न रुस्ताह ने, जो फारसी वंश का था, प्रायः सन् ९३० में अपनी पुस्तक **अल-अलक अल-नफीसा** लिखी। उसी वर्ष इब्न अल फकीह अल-हमदानी, जिसका यह नाम अपने जन्म-स्थान पर पड़ा, अपनी **किताब अल-बुल्दान** पूरी की जिससे भूगोलकार अलमकदीसी और याकूत ने प्रायः उद्धरण दिये हैं। यह एक व्यापक और विस्तृत भूगोल-पुस्तक थी। एक अन्य भूगोलकार अल-इस्ताखरी (जन्म-स्थान इस्तखार) ने अपनी पुस्तक **मसालिक अल ममालिक** प्रस्तुत की जिसमें प्रत्येक देश के रंगीन नक्शे थे। अल-इस्ताखरी के अनुरोध पर ऊपर वर्णित भूगोलकार इब्न-हौकल (सन् ९४३-७७) ने स्पेन तक की यात्रा की और नक्शों और भूगोल के पाठ को संशोधित किया। इब्न हौकल ने बाद में पूरी पुस्तक फिर से लिखी और उसे **अल-मसालिक अ-अल-ममालिक** के शीर्षक से निकाला। प्रसिद्ध भूगोलकार अल-मकदीसी (जन्म-स्थान

जेरूसलेम) ने स्पेन, सिजिस्तान और भारत को छोडकर सभी मुस्लिम देशों की यात्रा की। उसने सन् ९८५-८६ में अपनी बीस वर्ष की यात्रा का एक मनोरंजक विवरण प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक था **अहसान अल-तकसीम फी मरीफात अल-अकलिम** (प्रदेशों की जानकारी के बारे में सर्वश्रेष्ठ वर्गीकरण)। इसमें अधिक मूल्यवान और ताजा सूचनाएँ हैं। इसी अवधि में एक यमनवासी भूगोलविद और पुरातत्वविद अल हसन इब्न-अहमद अल-हमदानी हुआ जिसने दो कृतियों **अल इकलील** और **सिफल जजीरात अल-अरब** में इस्लाम-पूर्व और इस्लामी अरब के ज्ञान के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ हैं। अब्बासिद अवधि के अंत में महानतम पूर्वी मुस्लिम भूगोलविद याकूत इब्न अब्दुल्ला अल-हमाबी (११७९-१२२९) हुआ जिसका जिक्र उसके नाम के पूर्वांश याकूत के रूप में ऊपर किया जा चुका है। वह भौगोलिक शब्दकोष **मुजम अल-बुल्दान** का लेखक था। उसने इसी प्रकार की एक और महत्वपूर्ण कृति लिखी जो विद्वन्मंडली के बारे में शब्दकोष थी और जिसका शीर्षक था **मजम-अ-उदाबा**। उसने भौगोलिक शब्दकोष का पहला मसौदा सन् १२२५ में अल-मौसिल में तैयार किया और उसे अंतिम रूप से अलेप्पो में सन् १२२८ में तैयार किया जहाँ ही उसकी मृत्यु हुई।

धर्मतंत्र

अब्बासिदों के शासन-काल में जिन विज्ञानों का सबसे अधिक विकास हुआ, वे थे धर्मतंत्र, हदीस, विधिशास्त्र, दर्शन और भाषा विज्ञान। धार्मिक प्रेरणा से ज्ञान की इन शाखाओं ने बहुत पहले से मुस्लिम अरबों का ध्यान आकर्षित किया और इनमें उनकी दिलचस्पी जगी। कुरान को समझाने और स्पष्ट करने की आवश्यकता वह आधार बनी जिससे गहन रूप में धर्मतांत्रिक और साथ ही भाषा-गत अध्ययन शुरू हुआ। विधि शास्त्र (फिकह) तथा धर्मतंत्र का आधार प्रथमतः कुरान बना और बाद में हदीस।

हजरत मुहम्मद के बाद प्रथम और द्वितीय शताब्दियों के दौरान उनकी उक्तियों और कार्यों के अभिलेख संख्या और आकार में बढ़ने लगे। जब भी कोई धार्मिक, राजनीतिक या समाजशास्त्र संबंधी प्रश्न उठा तो हर पक्ष ने अपने विचार का औचित्य सिद्ध करने के लिए हजरत मुहम्मद के किसी शब्द या निर्णय को, चाहे वह वास्तविक हो या कल्पित, उद्धृत किया। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली और प्रथम धर्मनिष्ठ खलीफा अबू बकर के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया और अली के बीच संघर्ष, उमैय्यदों और अब्बासिदों के बीच शत्रुता, अरबों और गैर-अरबों के बीच वरिष्ठता के ज्वलंत प्रश्न तथा ऐसी और अन्य उपस्थित आवश्यक स्थितियों में कल्पित हदीस लिखे

गये और उनको प्रचारित किया गया। कूफा में सन् ७७२ में फांसी चढ़ाये जाने के पहले इब्न-अली-अल औजा ने स्वीकार किया कि उसने अपने द्वारा आविष्कृत ४००० हदीसों को बँटवाया। तृतीय मुस्लिम संवत् (हिजरा) में हदीसों के विभिन्न संग्रहों को ६ पुस्तकों में संशोधित रूप में प्रकाशित किया गया। उसी समय से ये "छ: पुस्तकें" हदीस की मानक-स्वरूप हो गईं जिनमें से प्रथम और सबसे प्रामाणिक पुस्तक मुहम्मद इब्न इस्माइल अल बुखारी (८१०-८७०) की है।

न्याय शास्त्र

रोमनों के बाद अरब ही वे मध्यकालिक लोग हैं जिन्होंने न्याय शास्त्र को आगे बढ़ाया और उससे एक स्वतंत्र पद्धति का विकास किया। उनकी यह व्यवस्था, जिसे फिक्रह कहा जाता है, मुख्य रूप से कुरान पर और सुन्ना (हदीस) पर आधारित है और उसे उसूल (जड़ें या आधारभूत सिद्धान्त) के नाम से पुकारा जाता है। यह यूनानी रोमन पद्धति से प्रभावित है। फिक्रह वह कानून है जिसके द्वारा इस्लाम का कानून (शरीयत) बाद की पीढ़ियों के लिए तैयार किया गया है। शरीयत कुरान में उद्घाटित और हदीस में व्याख्यायित अल्लाह के आदेशों का कुल जोड़ जैसा है। मुस्लिम न्याय शास्त्र में कुरान और हदीस के अलावा दो आधारभूत सिद्धान्त और जुड़ गए—सादृश्यमूलकता और लोगों के विचारों की सर्वसहमति। इसमें से ईराकी विचारधारा के नेता अबू हनीफा (ठीक नाम अल नुमान इब्न तबीत) थे। उसकी मृत्यु सन् ७८७ में हुई। वह धंधे से व्यापारी था। वह बाद में चल कर इस्लाम का सबसे प्रभावशाली न्यायविद हुआ। वह अपने शिष्यों को मौखिक उपदेश देता था। उनमें से एक अबू युसुफ ने अपनी किताब-अल-खिराज में अपने शिक्षक के प्रमुख विचार दिये हैं। यह पुस्तक अभी भी उपलब्ध है। मदीना विचारधारा का नेता मलिक इब्न अनास (लगभग सन् ७१५-७९५) हजरत मुहम्मद के जीवन और विचारों से ज्यादा अच्छी तरह परिचित था। उसकी पुस्तक अल-मुअता (चौरस रास्ता) जैद इब्न-अली के सिद्धान्त-सार के बाद मुस्लिम कानूनों का सबसे प्राचीन और अभी भी वर्त्तमान संग्रह है।

नैतिकता

धार्मिक कानून (शरीयत) ने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक पक्षों के संबंध में मुसलमानों के सम्पूर्ण जीवन को विनियमित एवं नियंत्रित किया। फिर भी अब्बासिद अवधि में नैतिकता के प्रतिपादकों ने जिन बातों पर जोर दिया वे इस प्रकार हैं :—सम्पूर्ण कर्त्तव्य (फर्ज), प्रशंसनीय और उत्तम कार्य (मुस्तहाब), अनुमत कार्य (जायज), निन्दनीय कार्य (मकरूह), निषिद्ध कार्य (हराम) आदि। इस अवधि में नैतिकता के महान प्रतिपादकों में लुकमान, इब्न-अल मुकफ्फा, अल

मानर्दी आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इतिहासकार मिस्कावायह की कृति तहजीव अल-अखलाक पूरी तरह दार्शनिक या नव-प्लेटोवाद किस्म की सर्वोत्तम नैतिकता-विषयक पुस्तक है। इसके अलावा हुनैन या उसके पुत्र इशाक की किताब अल-अखलाक ने अरबी नैतिक दर्शन (इल्म-अल-अखलाक) की नींव डाली। अरस्तू और प्लेटो की भाँति मुस्लिम नैतिक दर्शन का मुख्य उद्देश्य पार्थिव सुख-शांति की प्राप्ति थी।

साहित्य

अब्बासिद अवधि में विजित लोगों, विशेषत: फारसियों में एक रोचक आन्दोलन शुरू हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य बहुत पहले ही स्पष्ट हो गया था और वह यह था कि उन मुसलमानों की जो वास्तव में अरब रेगिस्तान के थे या वैसा होने का दावा करते थे, श्रेष्ठता की भावना के विरुद्ध संघर्ष किया। आन्दोलन का नाम पड़ा शूबियाह (जनता, गैर-अरबों का आन्दोलन)। इसका उद्देश्य था कि सभी मुसलमानों के बीच भ्रातृत्व समानता की भावना उत्पन्न की जाय। शूबियाह आन्दोलन ने अरबों की बौद्धिक श्रेष्ठता के दावे पर व्यंग्य किया और इस बात पर जोर दिया कि काव्य और साहित्य के क्षेत्र में गैर-अरब ही श्रेष्ठ हैं। इस बहस में गैर-अरब पक्ष का प्रतिनिधित्व अल-बेरूनी और हमजा अल-इस्फहानी कर रहे थे। दूसरी ओर अरब पक्ष का प्रतिनिधित्व अनेक अरब और अन्य फारसी वंश के लोग थे जिनमें जहीज इब्न दुरायाद, इब्न कुतायबाह और अल-बालाधुरी कर रहे थे। इन विवादास्पद प्रश्नों के दौरान ही अरब साहित्य की सबसे ज्यादा मौलिक कृतियाँ रचित हुईं। शब्द-शास्त्र का विद्वान अल जौहरी, जो बाद के शब्द-शास्त्रियों के लिए आदर्श सिद्ध हुआ, फराब का एक तुर्क था। उसका समसामयिक इब्न जिन्नी, जिसका मुख्य योगदान भाषा-शास्त्र की दार्शनिक व्याख्या के रूप में था, एक यूनानी दास था। उल्लेखनीय साहित्यकारों में अल-हमदानी (९७६-१००८), नयसाबर का अल-थालिबी (९६१-१०३८) और अल-हरीरी (१०५४-११२२) थे। अल-हमदानी का 'मकामा" (सभा) एक तरह का नाटकीय उपाख्यान था। अल-हमदानी की कृति बसरा के अल-हरीरी के लिए आदर्श-स्वरूप हुई। कुरान के बाद उसका "मकामात" सात से अधिक शताब्दियों तक साहित्यिक अरबी भाषा का मुख्य साहित्यिक कोष बना रहा। अबू अल फराज (लगभग सन् ८९७-९६७) अलेप्पो में रहा जहाँ उसने अपनी किताब अल-अगानी (गीतों की पुस्तक) लिखी। यह कविता और साहित्य का वास्तविक कोष है और मुस्लिम सभ्यता के अध्ययन के लिए एक अपरिहार्य स्रोत। अपनी पुस्तक मुकद्दमा में इब्न खाल्दुन ने ठीक ही इसे "अरबों की पंजियाँ" और "ललित साहित्य के अध्येता के लिए अंतिम साधन स्रोत' कहा है।

इस अवधि में, दसवीं ईस्वी सदी के मध्य के पूर्व, ईराक में उस प्रसिद्ध महान ग्रन्थ के प्रथम मसौदे का सृजन हुआ जिसे बाद में अलफ लयला वा-लयला (अरब सहस्र रजनी) के नाम से जाना गया। इस मसौदे को अल-जहशियारी (सन् ९४२) ने तैयार किया। इसका आधार एक फारसी कृति हजार अफसाना (एक हजार कहानियाँ) था जिसमें भारतीय मूल की कई कहानियाँ हैं। अल-जहशियारी ने उनमें स्थानीय किस्सागोओं की अन्य कई कहानियाँ जोड़ीं। अफसाना से नई कृति के लिए कहानी का सामान्य ढाँचा लिया गया और साथ ही नायक और नायिकाओं के नाम लिए गए। जैसे-जैसे समय बीतता गया भारतीय, यूनानी, हेब्रू, मिस्री और इस तरह के असंख्य स्रोतों से इस संग्रह में कहानियाँ जोड़ी गईं। इसमें शताब्दियाँ बीतने के साथ-साथ हर तरह की पूर्वी जन-कथाएँ जोड़ी गईं। खलीफा हारून-अल-रशीद के दरबार से प्राप्त सामग्री से अधिकांश हास्य-आख्यायिकाएँ और प्रेम-कथाएँ इसमें जोड़ी गईं।

फिर भी बहादुरी से भरे जाहिलिया युग की कविताएँ उमैय्यद युग के कवियों के लिए आदर्श बनी। उन लोगों द्वारा आरंभ किए गए संबोधिगीत (किसी को संबोधित कर लिखी गई कविता) को अब्बासिद कवियों ने शास्त्रीय कविता के रूप में लिया। कविता में नई शैली का सबसे प्रारंभिक प्रतिपादक अंधा बशशर इब्न बुर्द था जिसे खलीफा अल महदी के शासन में हत्या की सजा दी गई। कुछ लोगों ने इसका कारण यह बतलाया है कि उसने खलीफा के विजीर पर व्यंग्य किया था। बशशर ने अल्लाह को धन्यवाद दिया था कि उसने उसे अंधा बनाया क्योंकि—"इस कारण मैं वह सब कुछ नहीं देख सकता जिससे मैं नफरत करता हूँ।" वह प्राचीन कविता के पुराने रूप के विरुद्ध विद्रोही कवि था। कविता में नई विचार-धारा का एक और प्रारंभिक प्रतिपादक अर्द्ध-फारसी अबू-नवास (लगभग सन् ८१०) था जो खलीफा हारून और खलीफा अमीन का बहुत बड़ा मित्र था। उसकी कविता में प्रेम और शराब ने सबसे अच्छी अभिव्यक्ति पाई। अबू-नवास का नाम आज भी अरबी साहित्यिक जगत में एक विदूषक के पर्याय के रूप में विद्यमान है। पर वास्तव में प्रेम-भावना, कामोद्दीपक अभिव्यक्ति और शानदार शैली के क्षेत्र में उसके प्रतिद्वन्द्वी कम ही हैं। मुस्लिम साहित्यिक जगत में वह एक अत्यन्त उत्कृष्ट सरस गीतकाव्य रचयिता है। अबू नवास की गजलें, जो पाँच से पन्द्रह पद्यों की छोटी-सी कवितायें होती हैं, फारसी कवियों के आदर्श पर लिखी गई। इन कवियों ने इस कविता-विधि को अरबों के पहले ही विकसित किया। अब अल-अतहिया (सन् ७४८—लगभग ८२८) ने, जो पेशे से कुम्हार था, मनुष्य की नश्वरता के बारे में निराशावादी ढंग से ध्यान करने को अभिव्यक्ति दी जिसे धार्मिक विचार के व्यक्तियों ने पसंद किया।

प्रान्तों में, खास कर सीरिया में, अब्बासिद अवधि में प्रथम श्रेणी के कवि हुए। इनमें सबसे ज्यादा प्रसिद्ध अबू तम्माम (लगभग सन् ८४५) और अबू अल-आला थे। अबू तम्माम बगदाद में एक दरबारी कवि था। वह अपने द्वारा रचित **दीवान** के लिए तो प्रसिद्ध है ही, साथ ही युद्ध में वीरता की प्रशंसा में लिखित कविताओं—"**दीवान अल हमसा**-" के संकलन के लिए भी। दीवान में अरबी कविता के रत्न संग्रहीत हैं। एक अन्य कवि अल बहुतुरी (सन् ८२०-९७) उसी प्रकार की **हमसा** कविताओं का संकलन किया पर यद्यपि वह अबू तम्माम के आदर्श पर ही था, पर उसके संकलन से निम्नतर कोटि का था।

वास्तुकला

वास्तुकला (भवन-निर्माण कला) के जिन स्मारकों ने कभी खलीफा मंसूर और खलीफा हारून के नगर बगदाद को सजाया था उनका अब कोई चिह्न नहीं मिलता, जब कि इस्लाम के दो उत्कृष्टतम विद्यमान भवन-दमिश्क की उमैय्यद मस्जिद और जेरूसलेम का चट्टान का गुम्बद—प्रारंभिक उमैय्यद अवधि के हैं। पर अब्बासिद खलीफा उमैय्यदों की भांति अन्य कलाओं और वास्तुकला को संरक्षण देते थे। अब्बासिदों के पाँच सौ से ज्यादा वर्षों के शासन-काल में साम्राज्य के विभिन्न भागों में अनेक भवन और महल बने। बगदाद नगर के संस्थापक खलीफा मंसूर ने सुनहरा द्वार (**बद-अल दहाब**) या हरा गुम्बद (**अल-कब्बा-अल-खदरा**) का निर्माण कराया था। इसी प्रकार उसने अनन्त काल का महल (**वस्र अल-खुल्द**) और युवराज अल-महदी के लिए "रुसफा महल" बनवाया था। अल-शम्मासियाह में प्रसिद्ध वजीर बरकामिद परिवार के महल थे। प्लीएड्स (**अल-तुरय्या**) में एक महल था जिस पर समारा से बगदाद राजधानी वापस लाने वाले खलीफा अल-मुतादिद (सन् ८९२-९०२) ने ४ लाख दीनार खर्च किये थे। उसके पास ही ताज (**अल-ताज**) नामक महल थे जिसे उसके पुत्र खलीफा मुक्तफी (सन् ९०२-९०८) ने बनवाया था। ये और इसी तरह के अन्य अनेक भवन और महल थे पर अब उनका कोई भी चिह्न शेष नहीं बचा है ताकि हमें अब्बासिद खलीफाओं की शान-ओ-शौकत की झलक मिल सके। राजधानी बगदाद के बाहर अब्बासिद महलों के किन्हीं भी ध्वंसावशेषों के निर्माण की तिथियों के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वे नई राजधानी समारा के संस्थापक अल-मुतासिम (सन् ८३३-८४२) के शासन काल के हैं अथवा उसके पुत्र अल-मुतवक्किल (सन् ८४७-८६१) के, जो भव्य मस्जिद के निर्माता था, शासनकाल के। सामूहिक नमाज के लिए बनी यह मस्जिद, जिस पर सात लाख दिनार खर्च हुए थे, आयताकार थी और इसकी खिड़कियों के मेहराब अनेक परतों वाले थे। इससे स्पष्ट है कि इस पर भारतीय शैली का प्रभाव था।

चित्रकला

चित्रकला को इस्लाम में प्रोत्साहन नहीं दिया गया है। पर फिर भी उमैय्यद और अब्बासिद खलीफा ने अपने महलों की दीवारों को फूलों और आदमियों की आकृतियों से सजाया। दूसरे अब्बासिद खलीफा अल-मंसूर ने अपने महल के गुम्बद पर एक घुड़सवार की आकृति चित्रित कराई। खलीफा अल-अमीन ने अपने महल की दीवारों पर टिगरिस नदी की अपनी विहार नौकाओं को शेरों, गरूड़ पक्षियों और सूँस मछलियों (समुद्री मछलियों) के रूप में चित्रित कराया था। खलीफा अल-मुकतदीर ने अपने महल में एक बड़े तालाव में सोने और चाँदी से बना एक पेड़ लगवाया जिसमें अठारह शाखायें बनाई गई थीं। तालाव की एक ओर पन्द्रह घुड़सवारों की एक प्रतिमा थी, जो जरी और किमख्वाब के वस्त्र पहने और भालों से सज्जित थे और वे इस तरह हिलते दीख पड़ते थे मानों लड़ाई में हों। खलीफा अल-मुतासिम ने, जो समारा नगर का निर्माता (सन् ८३६) था, अपने महल की दीवारों पर कैसर आमरा के महल की भाँति नंगी औरतों और शिकार-दृश्यों के भित्ति-चित्र बनवाये जो संभवतः ईसाई कलाकारों द्वारा बनाये गये। खलीफा मुतवक्किल ने अपने महल के भित्ति-चित्र बनवाने के लिए बैजेन्टाईन चित्रकारों को रखा। हजरत मुहम्मद के चित्रों को सबसे प्रारंभ में एक अरब यात्री ने एक चीनी राजा के दरबार में देखा जिसे नेस्टोरियनों[७] ने चित्रित किया होगा। मुस्लिम धार्मिक चित्रकला चौदहवीं ईस्वी सदी के आरंभ के पूर्व पूरी तरह सामने न आई। इसके लिए प्रेरणा स्पष्टतः पूर्वी ईसाई गिरजाघरों से मिली, खास कर जेकोबाईटों और नेस्टोरियनों के गिरजाघरों से मुस्लिम चित्रकला किताबों की चित्र-सजावट से विकसित हुई। मकरिसी वह प्रथम मुस्लिम लेखक है जिसने इस्लामी चित्रकारों का इतिहास लिखने का प्रयास किया पर उसकी कृति अब उपलब्ध नहीं है। इस संबंध में जो सबसे प्रारंभिक अरबी पांडुलिपि विद्यमान है वह अल-सूफी की सन् १००५ की खगोल विद्या पर लिखित पुस्तक है। ये पांडुलिपियाँ **कलीला वा दिमना** और अल हरीरी की **मकामात** और अल-अगानी हैं जिनमें जानवर, पौधे, और वनस्पतियाँ परम्परागत रूप में चित्रांकित हैं।

सुलेखन

इस्लाम में सुलेखन या खुशनवीसी की कला विश्व के इतिहास में अद्वितीय स्थान रखती है। इसे पवित्र कुरान का अनुमोदन प्राप्त है। इसका अभ्युदय मुस्लिम संवत (हिजरा) की दूसरी या तीसरी सदी में हुआ और यह शीघ्र ही सबसे ज्यादा मूल्यवान और समादृत कला बन गई। यह पूरी तरह एक इस्लामी कला है और चित्रकारी पर

७. जेकोबाइटों और नेस्टोरियनों का परिचय अध्याय १४ में देखें।

इसका प्रभाव व्यापक रहा है। इतिहासकार जियाउद्दीन लिखता है :—"मुसलमानों के बीच उनमें जो कलाएँ विकसित हुईं उनमें सुलेखन की कला के माध्यम से ही उन लोगों ने अपनी सौन्दर्य-बोध की भावना अभिव्यक्त करने के लिए सुलेखन को ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।" उनकी यह भावना जीवित वस्तुओं के चित्रांकन से तुष्टि न पा सकी। उनकी सुलेखन की कला निश्चित तौर पर सबसे ज्यादा सौन्दर्यपूर्ण है। अपनी प्रारंभिक स्थिति में इस कला का समारंभ अरबों ने किया पर इसकी चरम परिणति फारसियों के हाथों हुई।

अरबी सुलेखन का आरंभ करने वालों में अल-रेहानी का नाम सबसे ज्यादा उल्लेखनीय है जो खलीफा मामून के शासन-काल में हुआ और जिसने अपने नाम से जानी जाने वाली इस कला को परिपक्व और सम्पूर्ण रूप दिया। इस सिलसिले में मुकलाह (सन् ८८६-९४०) का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसका दाहिना हाथ खलीफा अल रादी ने कटवा दिया था और जो इसके बावजूद अपने बायें हाथ से बहुत बढ़िया ढंग से लिख सकता था। सुलेखन-कला के इतिहास में इब्न-अल-बवाव (सन् १०२२ या १०३२) का स्थान विशिष्ट है। अब्बासिद अवधि का अंतिम सुलेखक याकूब अल-मुस्तासिमी हुआ जो अंतिम खलीफा के दरबार का खुशनवीस था। उसी के नाम पर याकूत सुलेखन शैली प्रसिद्ध हुई। इतिहासकार फिलिप हिट्टी ठीक ही कहता है : "सुलेखन की कला एक मात्र अरब कला है जिसके ईसाई और मुस्लिम प्रतिनिधि कांस्टेंटीनोपुल, काहिरा, बीरुत और दमिश्क में आज भी क्रियाशील हैं और जिनकी कृतियाँ उच्च स्तर के सौन्दर्य में प्राचीन सुलेखन की श्रेष्ठतम कृतियों से आगे बढ़ी हुई होती हैं।"

न केवल सुलेखन बल्कि उसकी सहयोगी कलाएँ जैसे कि रंग-सजावट, प्रकाश-सज्जा और पुस्तक मढ़ने की पूरी कारीगरी अपनी उत्पत्ति और पुष्पित-पल्लवित होने के लिए इस तथ्य की ऋणी है कि पवित्र ग्रन्थ (कुरान) से उनका बाद की अब्बासिद अवधि में पुस्तक-सज्जा की कला का सर्वोच्च विकास सालजुक और मामलुक शासनावधियों में हुआ। इस मामले में भी चित्र या तसवीर बनाने की कलाएँ भी नेस्टोरियन और जैकोबाइट ईसाइयों से स्पष्टतः मुख्य रूप से प्रभावित हैं।

संगीत

उमैय्यदों की शासनावधि में मुस्लिम संगीत ने प्रगति आरंभ की और उसे अब्बासिदों की अवधि में उच्चतर उत्कृष्टता प्राप्त हुई। कुछ अब्बासिद राजकुमार, जैसे कि खलीफा हारून-अल रशीद का भाई इब्राहीम अपने सर्वश्रेष्ठ संगीतकारों मे थे। अब्बासिदों के दरबार में संगीतकार प्रचुर रूप से पुरस्कृत किए जाते थे और उनका

बहुत सम्मान होता था। इस्लाम में विद्वान व्यक्तियों के लिए संगीत अध्ययन और प्रशंसा का विषय बन गया। इमाम गजाली ने अपनी कृति अहिया-उल-उलूम में विधि-संगत और विधि-विरुद्ध संगीत का वर्णन किया है। उसके अनुसार संगीत नसों और मस्तिष्क के लिए भोजन जैसा है। अब्बासिद खलीफा अल-महदी ने संगीत की प्रगति उस बिन्दु से शुरू की जहाँ उमैय्यदों के अधीन उसका अंत हुआ था। अल-महदी स्वयं एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ और गायक था। उसने मक्का के सियात (७३९-८५) को आमंत्रित करके उसे संरक्षण दिया। सियात ऐसा महान गायक था कि "उसका संगीत शीतग्रस्त व्यक्ति को उष्ण-स्नान से कहीं ज्यादा उष्णता और गरमी पहुँचाता था।" सियात का शिष्य इब्राहीम अल-मौसिली (७४२-८०४) अपने गुरु के बाद मुस्लिम शास्त्रीय संगीत का पितृसत्तात्मक व्यक्तित्व बन गया। इब्राहीम, जो एक उच्च फारसी परिवार का था, प्रथम व्यक्ति था जो एक छड़ी से लय उत्पन्न कर सकता था। जब तीस वीणावादक लड़कियाँ वीणा बजा रही थीं तो एक लड़की द्वारा अपनी गलत ढंग से कसी गई वीणा के बारे में उसने लड़की से कहा कि वह पहले अपनी वीणा का दूसरा तार कस ले। बाद में खलीफा हारून ने उस गायक को अपनी सेवा में ले लिया और उसका अभिन्न मित्र बन गया। उसने उसे एक गीत के लिए एक लाख दिरहाम दिए। संगीत के क्षेत्र में इब्राहीम का एक निम्नतर प्रतिद्वन्द्वी इब्न जामी था। जब हारून ने दरबार के एक चारण से इब्न-जामी के बारे में उसकी राय पूछी तो उसने जवाब में कहा—"मैं शहद की मिठास कैसे बतला सकता हूँ जो किसी भी प्रकार चखने पर मीठा ही होता है।"

हारून अल रशीद के शानदार दरबार में संगीत और गायन को संरक्षण मिलता था जिस प्रकार कि विज्ञान और अन्य कलाओं को। हारून संगीत के सितारों की जगमगाती पाँत में केन्द्र-बिन्दु-सा था। दरबार में सवैतनिक संगीतकार पुरुष और महिला गायकों के साथ फलते-फूलते थे और इस संबंध में "अगानी", "इकद", "फिहरिश्त", "निहाया" और सबसे ऊपर "अरब सहस्र रजनी" (अरेबियन नाइट्स) में अनेक अजीब-ओ-गरीब कहानियाँ और आख्यायिकाएँ मिलती हैं। खलीफा के संरक्षण में एक संगीत-समारोह में दो हजार ऐसे गायकों ने भाग लिया। हारून के पुत्र खलीफा अमीन ने एक ऐसा ही रात्रि-संगीत-समारोह किया जिसमें उसके महल के परिचारक-परिचारिकाओं ने भोर-भोर तक नृत्य किया। खलीफा हारून-रशीद का एक और आश्रित व्यक्ति इब्राहीम का शागिर्द मुखारिक (लगभग सन् ८४५) था। जब वह छोटा ही था तो एक गायिका ने उसे पाला-पोसा था। मामून और मुतवक्किल के साथ बैठ कर शराब पीनेवाला इशाक-इब्न-इब्राहीम अल-मौसिली (सन् ७६७-८५०) अपने युग के संगीतकारों का सरताज था। अपने पिता के, जो एक महान संगीतकार था, बाद-इशाक शास्त्रीय अरब संगीत की आत्मा का मूर्तिमान

रूप था। एक सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न संगीतकार के रूप में वह "इस्लाम में हुआ सबसे बड़ा संगीतकार था"।

उमैय्यदों की राजधानी दमिश्क से कहीं अधिक अब्बासिदों की राजधानी बगदाद के खलीफाओं के महल में प्रसिद्ध वीणावादकों, गायकों और संगीत सृजकों को संरक्षण दिया गया और उनकी प्रतिभा विकसित की गई। सभी अब्बासिदों में इब्राहीम इब्न अल-महदी, जो हारुन का भाई और सन् ८१७ में मामून का प्रतिद्वन्द्वी खलीफा था संगीतकार-गायक के रूप में सबसे ज्यादा प्रसिद्धि अर्जित की। खलीफा अल-वायिक, जो वीणा-वादक था और जिसने एक सौ रागों की रचना की, पहला खलीफा-संगीतकार था। उसके बाद खलीफा अल-मंतसिर (८६१-८६२) और अल-मुताज (८६६-६९) दोनों ने कवि और संगीतकार की कुछ प्रतिभा प्रदर्शित की। पर सच्चे अर्थों में अल-मुतामिद (सन् ८७०-९२) ही एक मात्र सच्चा संगीतकार खलीफा था जिसके समक्ष भूगोलविद इब्न खुर्दबीह ने संगीत और नृत्य के सृजन के बारे में अपना भाषण किया।

अब्बासिद खलीफाओं के स्वर्ण-युग में जिन अनेक यूनानी रचनाओं का अरबी में अनुवाद किया गया। उनमें से कुछ संगीत के कल्पनात्मक सिद्धान्त के बारे में थी। यूनानी विचारक अरस्तू की दो ऐसी कृतियों का अनुवाद "**किताब अल मसाइल**" (**प्रोब्लेमेटा**) और **किताब फी अल तफ्स** (**डी एनीमा**) के शीर्षकों के अन्तर्गत हुआ। अरबी में इनका अनुवाद प्रसिद्ध नेस्टोरियन चिकित्सक हुनेन इब्न इशाक (८०९-७३) ने किया। हुनेन ने प्रसिद्ध यूनानी लेखक गैलेन की कृति **डी बोसे** का अनुवाद **किताब अल सब्त** से किया। प्रसिद्ध यूनानी कृति यूक्लिड के अरबी में अनुवाद के दो शीर्षक उसने दिये—**किताब अल-नगम** (रागों की पुस्तक) और **किताब अल-कानून** (कानून की किताब)। ईसा-पूर्व चौथी सदी में एरिस्टोक्सेनस नाम अरबी भाषा में मुख्यतः उसकी पुस्तक **किताब अल-इका** (लय की पुस्तक) और अरस्तू के पुत्र निकोमेक्स नाम मुख्यतः उसकी पुस्तक **किताब अल मूसी की अल-कबीर** (संगीत पर वृहत रचना) से जाना जाता है। इन और इसी तरह की अन्य पुस्तकों से अरब लेखकों ने संगीत पर प्रथम वैज्ञानिक विचार प्राप्त किये। अतः अरब संगीत का वैज्ञानिक गणितीय आधार यूनानियों से प्राप्त हुए पर व्यावहारिक पक्ष, जैसा कि फारमर्स[८] की शोध से प्रकट है, विशुद्ध अरबी आदर्श पर आधारित था पर इस बार शब्द **मुसीकी** जो बाद में **मुसाका** (संगीत) शब्द में परिणत हो गया, यूनानियों से लिया गया और उसका संबंध संगीत विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष से है। वाद्य-यंत्रों के नाम जैसे कि कितार (गिटार) और **उरुगन** (आरगन) तथा अन्य

---

८. फारमर्स, अरेबियन मुजिक, पृ० २००-२०४।

तकनीकी नाम, जो यूनानी मूल के हैं, अरबी में भी प्रयुक्त होने लगे। आरगन वाद्य स्पष्टतः बैजेन्टाइनों से लिया गया।

यूनानी विचारधारा के संगीत-लेखकों का नेतृत्व दार्शनिक अल-किंदी ने किया जो नौवीं ईस्वी सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उसकी कृतियों पर यूनानी प्रभाव के सबसे प्रारंभिक चिह्न मिलते हैं। अल किंदी की छः कृतियाँ बतलाई जाती हैं जिनमें से एक में अरबों के बीच स्वर लिपि का प्रथम निश्चित प्रयोग हमें मिलता है। न केवल अल किंदी बल्कि अनेक प्रमुख मुस्लिम दार्शनिक और चिकित्सा संगीत सिद्धान्तकार भी थे। अल रजी (सन् ८६५-९२५) से इस संबंध में कम-से-कम ऐसी एक कृति लिखी। अल-फराबी (९५०) ने जो स्वयं ही एक सिद्धहस्त वीणा-वादक था, मध्य युग में संगीत में सिद्धान्त पर सबसे बड़ा लेखक था। उसकी संगीत कृति "**किताब अल-मुसीकी अल कबीर**" पूर्व-संगीत पर सबसे प्रामाणिक कृति है। पश्चिम में विज्ञान पर उसका विज्ञान-सार **हसा अल उलुम (डी साइन्टीजो)** संगीत से संबंधित सबसे ज्यादा प्रारंभिक और सबसे अधिक विख्यात कृति हैं जिसका लैटिन में अनुवाद किया गया और जिसने सबसे ज्यादा प्रभाव डाला। अल फराबी की कृतियों के अलावा इब्नसिना (१०३७) और इब्न रुश्द (१०९८) की कृतियों का लैटिन में अनुवाद किया गया। इब्न सिना ने अपनी प्रारंभिक कृतियों को संक्षिप्त किया और अपनी पुस्तक **अल-शिफा** में संगीत पर एक प्रकरण भी दिया। ये कृतियाँ लैटिन में अनूदित होकर पश्चिमी यूरोप में पाठ्य पुस्तकें बन गईं। जहाँ तक अल गजाली (सन् ११११) का संबंध है, उसने अल समा (संगीत और गायन) की जो वकालत की उसी कारण सूफी धर्मपंथियों के धार्मिक रीति-रिवाजों में संगीत ने ऐसी महत्वपूर्ण भूमिका अदा दी।

●

अध्याय-१६

अब्बासिद राजवंश का विघटन और पतन

ग्यारहवीं सदी ईस्वी में इस्लाम जगत स्पष्टतः अपने विघटन की स्थिति में था। इस विघटन के लक्षण पहले ही राजनीतिक बिखराव के रूप में प्रकट हो चुके थे। सभी दूरस्थ प्रान्तों और खुद ईराक तक में केन्द्रीय सरकार का प्राधिकार ज्यादा-से-ज्यादा कम होता जा रहा था। अंत में खलीफा अपने मंत्रियों और सेनापतियों के हाथों में मात्र कठपुतली बनकर रह गये। सन् ९४५ में खिलाफत का पतन और भी ज्यादा हो गया। उस वर्ष बुआयहिद राजकुमार राजधानी में वास्तविक शासक बन गये। उन लोगों ने लौकिक सार्वभौम सत्ता के प्रतीक स्वरूप सुल्तान की उपाधि ग्रहण कर ली। यद्यपि वे शिया पंथ के अनुयायी थे, उन्होंने अब्बासिद खलीफाओं को नाम मात्र का प्रधान और प्रान्तों पर केन्द्रीय सरकार की सार्वभौम-सत्ता के वैध स्रोत के रूप में रहने दिया।

बुआहिद

खिलाफत के इतिहास में एक और अन्धकारपूर्ण अध्याय का आरंभ तब हुआ जब दिसम्बर ९४५ में खलीफा अल-मुस्तक्फी (९४४-४६) ने बगदाद में विजयी अहमद इब्न-बुआयह का स्वागत किया और उसे अपना अमीर-अल-उमरा बना लिया तथा उसे "मुइज अल-दौला" (राज्य को शक्तिशाली बनाने वाला) की सम्मानजनक उपाधि दी। अहमद के पिता अबू शुजा का दावा था कि वह पुराने सासानिद (फारसी) राजाओं का वंशज है। इसका कारण संभवतः यह था कि ऐसे अधिकांश मामलों में राजवंश की प्रतिष्ठा बढ़ती थी। अहमद समेत उसके तीन पुत्र धीरे-धीरे दक्षिणी क्षेत्रों पर विजय करते गए। पहले उन्होंने इस्फहान पर कब्जा किया, फिर शिराज और उसके प्रान्तों पर और फिर बाद के दो वर्षों में अल-अहवाज (आज का खजिस्तान) और करमान पर। नये राजवंश की राजधानी शीराज बनाई गई। जब अहमद बगदाद की ओर बढ़ा (सन् ९४५) तो तुर्की प्रहरी भाग खड़े हुए। खलीफा की स्थिति में अपने नये मालिकों शिया-पंथी फारसियों के अभिभावकत्व में कोई सुधार नहीं हुआ। यद्यपि अहमद की सरकारी स्थिति केवल अमीर-अल-उमरा की थी पर मुइज अल दौला की उपाधि पाकर उसने इस पर जोर देना शुरू किया कि खुतबा (शुक्रवार की नमाज) में खलीफा के साथ उसका नाम भी दिया जाया

करे। उसने सिक्कों पर भी अपना चित्र खुदवाना शुरू किया। शिया पंथ के उत्सव विशेषकर चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के पुत्र अल-हुसेन की मृत्यु की वार्षिक तिथि पर सार्वजनिक शोक (मुहर्रम के दसवें दिन) और हजरत मुहम्मद द्वारा अपने उत्तराधिकारी के रूप में अली की कथित नियुक्ति पर कथित हर्षोल्लास फिर मनाया जाने लगा। अब्बासिद खिलाफत अब "सेनापतियों के सेनापति" के हाथों अपने सबसे गहरे अपमान के दौर से गुजरी। जैसा कि कभी दावा किया जाता था इस्लाम के इतिहास में बुआहिद प्रथम न थे जिन्होंने सुल्तान की उपाधि ग्रहण की। जैसा कि उनके सिक्कों से प्रकट होता है, उन्होंने अमीर या मालिक की उपाधि के साथ मुइज अल-दौला (राज्य को शक्तिशाली बनाने वाला), इमाद अल-दौला (राज्य का सहारा) और रूक्न अल-दौला (राज्य का स्तम्भ) जैसी उपाधियाँ जोड़ीं। खलीफा ने बुआह के तीनों पुत्रों को ये उपाधियाँ दी। उसके बाद अपने नाम के साथ ऐसी तड़क-भड़कदार उपाधियाँ जोड़ने की एक प्रथा-सी चल पड़ीं।

बुआहिदों की सत्ता की एक शताब्दी या करीब-करीब इतनी ही अवधि तक उन्होंने खलीफाओं को सिंहासन पर बैठाया या उन्हें उससे उतारा। अब ईराक पर अन्य प्रान्तों जैसे एक प्रान्त के समान फारिस-स्थित शीराज से शासन किया जा रहा था। बगदाद में बुआहिदों के अनेक शानदार महल थे जिनका सामूहिक नाम था "दर-अल ममलका" (राज्य का निवास)। अब बगदाद मुस्लिम जगत् का केन्द्र न रह गया था। अब न केवल शीराज, बल्कि गजना, काहिरा, और कौरिडोवा उसके जैसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के नगर बन गए थे।

बुआहिद सत्ता अपनी सर्वोत्कृष्ट शिखर पर अदुद अल-दौला (राज्य को सहारा देने वाला हाथ, ९४९-८३) के समय पहुँची। वह रुक्न का पुत्र था। अदुद न केवल महानतम बुआहिद शासक था बल्कि अपने समय का अत्यधिक प्रसिद्ध राजनेता। सन् ९७७ में उसने अनेक छोटे राज्यों को मिलाकर एक कर दिया जो फारस और ईराक में बुआहिद शासकों के अधीन अस्तित्व में आ गये थे। फिर उन सबसे इसने एक बड़ा राज्य बनाया जो करीब-करीब साम्राज्य के आकार का था। अदुद अल-दौला ने खलीफा अल-ताई की पुत्री से विवाह किया और अपनी पुत्री का विवाह खलीफा से कर दिया (सन् ९८०)। इसमें उसे यह आशा थी कि उसका वंशज खलीफा की उपाधि ग्रहण करने के योग्य हो जाएगा। इस्लाम में अदुद प्रथम शासक था जिसने शहंशाह की उपाधि ग्रहण की। यद्यपि उसने अपना शासन-केन्द्र शीराज में रखा पर उसने बगदाद को सुन्दर बनाया और वहाँ की नहरों की मरम्मत कराई जो मिट्टी से भर गई थीं। उसने अनेक नगरों में मस्जिदें, अस्पताल और सरकारी भवन बनवाये। इस संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार मिस्कावाह ने, जो अदुद का कोषाध्यक्ष था, विवरण दिया है। अपने दातव्य कार्यों के सिलसिले में उसने राज्य

के धन से चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की मानी गई कब्र को सजाने-सँवारने में रुपया लगाया। पर उसके निर्माण-कार्यों में सर्वाधिक विशिष्ट बगदाद का प्रसिद्ध अस्पताल था जिसका नाम अल-बीमारिस्तान अल-अदूदी पड़ा। इसे उसने ९७८-७९ में पूरा कराया और इसके खर्च के लिए १ लाख दीनार दिये। अस्पताल में चौबीस चिकित्सक नियुक्त थे जो चिकित्सा-अध्यापन कार्य भी करते थे। कवियों जैसा कि अल-मुतनब्बी ने अदूद की प्रशंसा के गीत गाये। लेखकों ने अपनी कृतियाँ अदूद को अर्पित कीं। इनमें व्याकरणविद अबू-अली अल-फारिसी भी था जिसने अदूद के लिए **किताब-अल-इदाह** (स्पष्टीकरण की पुस्तक) लिखी। शांति-कालीन कलाओं को आगे बढ़ाने वाला उसका योग्य सहयोगी उसका ईसाई वजीर नस्र इब्न हारून था जिसने खलीफा द्वारा दिए गए आदेश के अनुसार गिरजाघरों और मठों की मरम्मत कराई और उनको नया रूप दिया।

अपने पिता द्वारा शुरू की गई साहित्यिक और वैज्ञानिक संरक्षण की नीति अदूद के पुत्र शराफ अल-दौला (९८३-८९) ने कायम रखी। खलीफा अल मामून के अनुकरण पर शराफ ने अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व एक प्रसिद्ध वेधशाला बनवाई। अदूद के दूसरे पुत्र और उसके द्वितीय उत्तराधिकारी बहा-ल दौला (सन् ९०८-१०१२) ने सन् ९९१ में अब्बासिद खलीफा अल-ताई ो सिंहासनच्युत कर दिया। उसे उसके विशाल धन के प्रति लालच था। सके समझदार और बुद्धिमान फारसी विजीर साबुर इब्न आर्देशिर ने सन् ९३ में बगदाद में एक अकादमी का निर्माण कराया जिसमें १० हजार पुस्तकों ा एक पुस्तकालय था। इसमें सीरियाई कवि अल मारी ने, जब वह उस गर में छात्र था, अध्ययन किया था। पर उस समय तक बुहाहिद राजवंश पतन के ार्ग पर चल पड़ा था। वहा, उसके पूर्ववर्ती भ्राता-शासक शराफ और उनके एक ौर भाई समसाम-अल-दौला के बीच युद्ध, उनके उत्तराधिकारियों के बीच राजवंश-ात और पारिवारिक लड़ाइयों और बगदाद में बुआहिद शिया-पंथी झुकाव के तीव्र वेरोध के कारण बुआहिद राजवंश का पतन हो गया। सन् १०५५ में सालजुक शासक तुगरिल बेग ने बगदाद में प्रवेश किया और बुआहिद शासन का अन्त कर दिया। ईराक में राजवंश के अंतिम शासक अल-मालिक अल-रहीम (दयावान राजा, १०४८-५५) ने अपने अंतिम दिन कैद में बिताये।

परन्तु इतना तो माना जायगा कि बुआहिदों ने, कुछ ही समय के लिए सही, केन्द्रीय प्रान्तों में शान्ति और समृद्धि फिर से स्थापित की। पर आर्थिक क्षय के लक्षण बढ़ते जा रहे थे। चीन के साथ चलने वाला लाभकर व्यापार डावाँडोल स्थिति में था और फिर धीरे-धीरे बिल्कुल समाप्त हो गया। अंशतः इसका कारण अब्बासिद राज्य की आंतरिक स्थिति थी। ग्यारहवीं सदी में रूस और उत्तर के साथ व्यापार कम हो गया और फिर बिल्कुल ही समाप्त हो गया। मूल्यवान धातुओं

की कमी के कारण उस साम्राज्य का, जो एक वाणिज्यिक साम्राज्य वनने जा रहा था, अर्थतंत्र पंगु होने लगा।

धर्मयुद्ध की पूरी अवधि में मुस्लिम सेनापतियों और सैनिकों ने अत्यधिक सहानुभूति और दया तथा धैर्य, क्षमा एवं भलमनसाहत और सबके ऊपर वीरता की भावना दिखलाई। इस समय जबकि बगदाद के खलीफा अपने आतंरिक संघर्ष में लगे हुए थे और उनके देश पर धर्मयुद्ध वालों का खतरा था तो उन्होंने उस ओर कोई ध्यान न दिया। जिन्दगी का यह तौर-तरीका तब तक चला जब तक चंगेज खाँ के पौत्र हलाकू ने बगदाद पर कब्जा न कर लिया। उसने नगर को ध्वस्त कर दिया और अब्बासिद राजवंश के अंतिम खलीफा अल-मुतासिम की सन् १२५८ में हत्या कर डाली। इस प्रकार अब्बासिद राजवंश का लंबा शासन समाप्त हुआ और बगदाद नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस राजवंश के पतन के साथ अरब प्राधान्य हमेशा के लिए समाप्त हो गया और वास्तविक खिलाफत के इतिहास पर अंतिमरूप से पर्दा पड़ गया।

अब्बासिदों के पतन के कारण :

बाद के खलीफाओं का नैतिक पतन

अब्बासिद खलीफाओं के पतन के कारणों की जाँच के लिए खलीफाओं के कार्य-कलाप पर एक दृष्टि डालनी होगी। बाद के खलीफाओं में से अधिकांश ऐश ओ आराम और शान-शौकत का जीवन बिताते थे और राज्य के कल्याण की ओर कुछ भी ध्यान न देते थे। प्रजाजन की स्थिति उन्नत करने और सरकार में सुधार लाने के बजाय वे अपना समय सुरा, सुन्दरी और संगीत में बिताने लगे। इसके अलावा चूँकि उनका रक्त विजित लोगों के रक्त के साथ घुल-मिल कर एक हो गया था, उनमें अपने हाथों राजदंड संभालने की क्षमता न रही।

बाहरी कारण : विदेशी आक्रमण

बाहरी कारणों में बर्बरों (अर्थात् मंगोलों या तारतरों का आक्रमण), यद्यपि वह अपने में बड़ा भयानक था, अब्बासिदों के पतन के कारणों में से एक बना। ग्याहरवीं शताब्दी ईस्वी तक साम्राज्य की दुर्बलता अनेक मोर्चों पर प्रकट हुई जब सभी ओर से आंतरिक बर्बरों ने आक्रमण आरंभ किया। स्पेन और सिसली में ईसाई फौजें आगे बढ़ी और उन्होंने मुसलमानों से अपने क्षेत्रों पर पुनर्विजय करने और उनको वापस लेने के क्रम में उनके द्वारा अधिकृत विस्तृत क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। इन सब की परिणति यह हुई कि ग्यारहवीं शताब्दी के अंत तक निकट पूर्व धार्मिक योद्धा पहुँच गए। खिलाफत के क्षेत्र में और उसके इर्द-गिर्द अगणित राजवंशों और अर्द्ध-राजवंशों का उदय रोग का कारण नहीं बल्कि उसका लक्षण था।

आन्तरिक कारण

खिलाफत के विघटन के बाहरी कारणों से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण भीतरी कारण थे। पहले की अनेक विजय केवल नाम मात्र के लिए थीं। जल्दी में की गई

उन अधूरी विजयों में विकेन्द्रीकरण और राज्य के अंग-भंग होने का खतरा बराबर ही बना रहा। प्रशासन का तरीका ऐसा न था जिससे उसमें स्थायित्व और सातत्य कायम होने की संभावना उत्पन्न हो पाती। प्रजाजन का शोषण और उन पर अधिक कर लगाना मान्य नीति सी हो गई। यह अपवाद नहीं बल्कि नियम सा हो गया। अरबों और गैर-अरबों के बीच तथा अरब मुसलमानों और नव-मुसलमानों तथा धिम्मियों के बीच गहरे अंतर थे। खुद अरबों में उत्तर और दक्षिण के बीच पुरानी भावना उभड़ उठी थी। न तो ईरानी फारसी और न ईरानी तुर्क और न ही हेमेटिक (हामी), बर्बर सेमेटिक (सामी) तुर्कों के साथ मिल कर एकरूप हो सके थे। किसी भी प्रकार की सचेत भावना इन विभिन्न तत्वों को आपस में मिला कर एक न कर सकी थी। ईरान के मूल निवासी अपनी प्राचीन राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को कभी भूले न थे और वे नये अरब शासन के साथ कभी पूरी तरह ताल-मेल न बैठा पाये थे। बर्बर जनजाति के लोगों ने अस्पष्ट रूप से अपनी जनजातीय भावना और मतभेद की इच्छा प्रकट की और वे किसी भी विच्छेदकारी आन्दोलन में शामिल होने को तैयार थे। सीरिया के लोग सूफयानी नेता के अभ्युदय की लंबे समय से प्रतीक्षा कर रहे थे जो उन्हें अब्बासिदों के बंधन से मुक्त कर सके। खुद इस्लाम में केन्द्र से विमुख शक्तियाँ, जो राजनैतिक और सैनिक शक्तियों से कम शक्तिशाली न थीं, सक्रिय हो उठी थीं। फलतः शिया पंथी, कारमाताई, इस्माइली और अन्य सम्प्रदाय उठ खड़े हुए। इनमें कुछ समूह धार्मिक गुट से कुछ अधिक और भिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। कारमाताई साम्राज्य के पूर्वी हिस्से पर प्रहार कर रहे थे पर उसके कुछ समय बाद फातिमिदों ने साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर कब्जा कर लिया। इस्लाम अपने धर्मावलंबियों को एक सम्मिलित सम्पूर्ण समूह में एकजुट न कर सका और उसी तरह दूसरी ओर खिलाफत भूमध्यसागरीय क्षेत्र को मध्य एशिया के क्षेत्र के साथ एक स्थाई इकाई में संयुक्त न कर सकी।

दूसरी ओर विघटन के सामाजिक और नैतिक पक्ष भी थे। शताब्दियों के दरम्यान विजयी तत्वों का रक्त विजित तत्वों के रक्त में घुल-मिल गया और फलतः विजयी तत्वों की स्थिति का प्राधान्य और ऊँचे गुण समाप्त हो गए। अरब राष्ट्रीय जीवन के पतन के साथ अरब शक्तिमत्ता और नैतिक बल टूट-सा गया। धीरे-धीरे साम्राज्य विजित लोगों का साम्राज्य बन गया। अनेकानेक हिजड़ों, दास-कन्याओं और दासों से हरमों का आकार बड़े से बड़ा बनता गया। अधिकांशतः हरमों के कारण स्त्रियों और पुरुषों के नैतिक चरित्र में ह्रास आने लगा। शाही परिवार में रखेलिनों की संख्या बहुत हो गई और उसी प्रकार सौतेले भाई अ सौतेली बहनें भी अनगिनत हो गईं। अतः यह अनिवार्य ही था कि इनके

ईर्ष्या और चालबाजियाँ भी बड़े पैमाने पर चलने लगीं। उन सबके रहन-सहन का स्तर काफी ऊँचा था जिसमें मदिरा और संगीत का बोलबाला था। इससे और इसी तरह अन्य बातों से शाही परिवार का जीवन खोखला होता गया और फलतः सिंहासन के उत्तराधिकारी कमजोर होते गये। इन उत्तराधिकारियों की स्थिति इस कारण और कमजोर हुई कि उन लोगों के बीच उत्तराधिकार के प्रश्न पर जो अवसर निश्चित रूप से निर्णीत न होता था, अक्सर झगड़े होने लगे।

आर्थिक कारण

जिन अनेक कारणों से अब्बासिद राजवंश का पतन हुआ उनमें आर्थिक कारण कम महत्वपूर्ण न थे। प्रान्तों की सरकारें शासक वर्ग के लिए भारी कर लगाने लगीं जिससे कृषि और उद्योग को धक्का लगा। एक ओर शासक अमीर होते गये और दूसरी ओर उसी अनुपात में जनता गरीब होने लगी। इसके अलावे, लगातार खूनी लड़ाइयों से खेती की अनेक जमीनें उजाड़ और सुनसान होती गई। मेसोपोटामिया में जो बाढ़ आई उससे लोग और निराश और बेघरबार हो गये। अलावे, अकाल, चेचक, मलेरिया जैसी महामारियों और बुखारों से अनेक प्रान्तों की आबादी घटने लगी। अरबों द्वारा आरम्भ किए गए विजय-अभियानों के बाद प्रथम चार शताब्दियों के अरब इतिहास में चालीस प्रमुख महामारियों का उल्लेख है। राष्ट्रीय आर्थिक पतन से स्वभावतः बौद्धिक विकास में भी कमी आई और रचनात्मक विचारों को मानों कुचल दिया गया।

आर्थिक अवनति का प्रधान कारण केन्द्र सरकार द्वारा फिजूलखर्ची और सुव्यवस्था का अभाव था। दरबार के अन्धाधुन्ध खर्च और अफसरों की बेहद बढ़ी हुई संख्या सत्ता प्राप्त करने के लिए दावेदारों की लंबी पाँत की तुष्टि के लिए एक ही पद पर दो-दो अफसर तक रखे जाते थे—से न तो कोई तकनीकी प्रगति होती थी और न ही साधन-स्रोतों में कोई उल्लेखनीय विकास। नकद रुपयों के अभाव में शासक इस तक के लिए बाध्य होते थे कि बड़े अफसरों और सेनापतियों को साम्राज्य के क्षेत्र के राजस्व का नियंत्रण सौंपा जाय। बहुत जल्द ही स्थिति यहाँ तक आ पहुँची की प्रान्तों के गवर्नरों को उनके द्वारा शासित क्षेत्रों में कर-संग्राहक बना दिया गया। इस रूप में उनका कर्त्तव्य था कि वे स्थानीय फौजों और अफसरों को वेतन दें और एक नियत रकम केन्द्रीय कोषागार में दें। फलतः गवर्नर शीघ्र ही अपने-अपने प्रांतों में वास्तविक स्वतंत्र शासक हो गए और खलीफा के प्रति केवल वैधिक निष्ठा रखने लगे। खलीफा का मात्र यह काम रह गया कि वे उनकी पदावधि और प्रशासनिक कार्यों को औपचारिक और लगातार बढ़ते स्तर पर, कार्योत्तर प्राधिकारी देते रहें। गवर्नरों और कर-संग्राहकों को अपेक्षित सैनिक शक्ति देने की आवश्यकता के चलते कर-संग्राहकों के लिए फौजी सेनापति नियुक्त

करने की प्रथा चल पड़ी जिससे असैनिक और पदाधिकारी-तंत्र वाली सरकार टूट गई और उसका स्थान सशस्त्र अंगरक्षकों ने ले लिया जो अपने प्रहरियों के जरिए शासन करते थे। इस प्रकार प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के बीच सम्बंध अच्छा नहीं रह गया। अनेक मामलों में प्रान्तीय गवर्नर केन्द्रीय सरकार की अवज्ञा करते थे और अपने को स्वतंत्र घोषित कर देते थे। इस प्रकार वे साम्राज्य में अशांति उत्पन्न करते थे और केन्द्र को अकसर परेशान करते थे।

बाद के खलीफाओं द्वारा सैनिक शक्ति की उपेक्षा

अलावे, बाद के खलीफाओं द्वारा सैन्य विभाग की उपेक्षा के कारण भी अब्बासिदों का पतन हुआ। स्वभावतः साम्राज्य की सफलता और स्थायित्व सैनिक शक्ति पर निर्भर करती है। बाद के खलीफाओं की अवधि में चूँकि साम्राज्य-विस्तार का प्रश्न न था, उन लोगों ने इस परमावश्यक विभाग की उपेक्षा की। फलतः सैनिकों की भी पराक्रम-भावना समाप्त हो गई और जब विदेशियों ने हमला किया तो वे उनका मुकाबला न कर सके।

बगदाद में हलाकू

पतन के इन कारणों में चंगेज खाँ के पौत्र हलाकू द्वारा बगदाद पर हमले की घटना जोड़ी जा सकती है। उसने शहर को इतने बड़े पैमाने पर ध्वस्त कर दिया कि "तीन वर्षों तक सड़कों पर खून बहता रहा और टिगरिस का पानी मीलों तक खून से लाल हो गया।" सन् १२५३ में हलाकू मंगोलिया से एक विशाल सेना के साथ इस उद्देश्य से चला कि खिलाफत का सफाया कर दे। उसके लुटेरे सैनिक बगदाद में भर गये। अंतिम अभागे खलीफा को अपने तीन सौ अफसरों और काजियों के साथ बिना शर्त्त आत्म-समर्पण करना पड़ा। दस दिनों बाद उन सबको मौत के घाट उतार दिया गया। शहर में लूटमार मच गई और उसे जला डाला गया जिससे आग की लपटें आसमान छूने लगीं। खलीफा के परिवार समेत आबादी का अधिकांश भाग नेस्तनाबूद कर दिया गया। हलाकू बगदाद को अपना निवास-स्थान बनाना चाहता था, इसलिए उसे इस हद तक बर्बाद न किया गया जितना कि अन्य नगरों को। नेस्टोरियन ईसाई धर्माध्यक्ष के प्रति विशेष पक्षपात दिखलाया गया। साथ ही अनेक मदरसे और मस्जिदें भी छोड़ दी गईं या उनका फिर से निर्माण कराया गया। मुस्लिम जगत अपने इतिहास में पहली बार बिना खलीफा के हो गया जिसका नाम शुक्रवार की नमाज में लिया जा सकता।

तुर्कों का प्राधान्य और स्वतंत्र राज्यों का उदय

बाद की अब्बासिद अवधि में तुर्कों का प्राधान्य साम्राज्य के पतन का एक कारण बना। यह काम मंगोलों से होने को न था कि वे नये और विशाल क्षेत्र में

इस्लाम की सैनिक प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित करते और उसका झण्डा पुनः विजय के दर्प के साथ फहराते। बल्कि यह काम आ गया उनके संबंधी ओटोमन तुर्कों के कन्धों पर जो अरब में इस्लाम के अंतिम पक्षधर थे। अब्बासिद खलीफा मुतवक्किल की मृत्यु के बाद ओटोमन तुर्कों की शक्ति तेजी के साथ बढ़ी और मुतवक्किल के उत्तराधिकारी उस पर अंकुश न लगा सके। अरब और फारसी तुर्कों की मनमानी नीति से ऊब उठे। उनके इस प्रकार के मनोमालिन्य के फलस्वरूप अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये जो साम्राज्य के लिए घातक हुआ। पर ओटोमन तुर्कों की वंश-परम्परा खलीफा अल-मुतासिम के एक चाचा द्वारा सन् १२६१ में शुरू की गई जो स्पष्टतः बगदाद के हत्याकांड से बच कर भाग निकला था जो काहिरा में चौथे मामलुक शासक बैबर्स (१२६०-१२७७) द्वारा, बड़ी शान-दान के साथ अल-मुस्तनसिर के नाम से खलीफा के रूप में पदासीन कराया गया। बैबर्स की ओर से बगदाद पर फिर अधिकार करने की चेष्टा में अल-मुस्तनसिर जल्द ही मारा गया। उसके बाद अब्बासिदों का एक और वंशज खलीफा बना जिसे सन् १२६२ में वैसे ही शानदार समारोह में सिंहासनारूढ़ कराया गया। सुल्तान सलीम अपने साथ खलीफा अल-मुतवक्किल को कान्स्टैंटीनोपुल ले गया पर बाद में उसे काहिरा लौटने की अनुमति दे दी जहां सन् १५४३ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके साथ मिस्र में छाया मात्र सी बच रही अब्बासिद खिलाफत का अंत हो गया। अक्सर यह कहा जाता है पर समसामयिक स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं होती कि अंतिम अब्बासिद खलीफा ने खलीफा की अपनी उपाधि, उससे संलग्न सभी अधिकारों और विशेषाधिकारों के साथ कान्स्टैंटीनोपुल में ओटोमन विजेताओं या उनके उत्तराधिकारियों को समर्पित कर दी।

❀

अध्याय १७

स्पेन में उमैय्यदों का युग

स्पेन में इस्लाम बहुत पहले से अपनी सत्ता के चरम शिखर पर पहुँच गया था। उमैय्यद खलीफा अल-वालिद और उसके उत्तराधिकारियों के शासन के उत्कर्ष-काल में स्पेन खिलाफत का एक प्रान्त था। इसका अरबी नाम अल-ऐंडलस[1] (अंडालूसिया) था। अरबों द्वारा प्रायद्वीप की जीत के बाद अल्प अवधि में यह जो मध्य यूरोप के सबसे सुन्दर और सबसे लम्बे प्रान्तों में से एक था, प्रभावित हुआ। मुस्लिम विजेता वहाँ कम-से-कम अनेक शताब्दियों तक रहने वाले थे। सच पूछा जाय तो स्पेन पर मुस्लिम आधिपत्य को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात् प्रथम सन् ७५६ से ९१२ तक स्पेन में अमीरों की शासनावधि। इस अवधि में प्रायद्वीप के शासक को अमीर कहा जाता था। प्रायद्वीप का गवर्नर अमीर के अधीन था जो प्रायः स्वतन्त्र शासक के रूप में काम करता था। स्पेन पर उमैय्यद नियंत्रण-काल का दूसरा भाग कौरडोवा की खिलाफत का समय था (सन् ९२२-१०३१) जब शासक को खलीफा के नाम से जाना जाता था। अंतिम उमैय्यदों के समय ईसाइयों के विरुद्ध विजय-अभियान समाप्त कर दिया गया क्योंकि बर्बर वंशवालों और अरबों के बीच झगड़े होने लगे थे। खुद अरब केज और कल्ब जनजातियों के बीच बँट गये थे। जब सीरिया में उनका शासन खत्म होने लगा तो पाँच सौ अरब बल्ग इब्न बिश्र के साथ अफ्रिका पार कर स्पेन आये और एलविरा और जेन के फौजी जिलों में बस गये।

१. स्पेन में उमैय्यद अमीरों का शासन (७५६-९१२) : अब्द-अल-रहमान प्रथम (७५६-७८८) : यूरोप की धरती पर इतिहास का निर्माता

ईराक से सन् ७५० में जो गोपनीय आदेश जारी किये गये वे बिल्कुल स्पष्ट थे। उनके अनुसार उमैय्यदों का राजवंश समाप्त किया जाना चाहिए था। उन आदेशों को जारी करने वाला नया खलीफा अबु-अल-अब्बास था जिसने अंतिम उमैय्यद खलीफा मारवान द्वितीय पर विजय पाई थी और नब्बे वर्ष पुराने उमैय्यद राजवंश

---

१. शब्द की व्युत्पत्ति में "अल ऐंडुलस" शब्द बर्बरों और असभ्यों से संबंधित है जो अरबों के पूर्व स्पेन पर कब्जा किए हुए थे।

का अंत किया गया था। यह एक नई खिलाफत (अब्बासिद) का संस्थापक था तथा उसने अल-सफा (रक्त-पात करने वाला की उपाधि) ग्रहण कर ली थी। अबु-अल-अब्बास ने पदारूढ़ होने के बाद उमैय्यद राजवंश के सभी सदस्यों का सफाया कर दिया। फलस्वरूप बड़ी संख्या में उमैय्यद दमिश्क से भाग निकले। अब्बासिदों द्वारा आयोजित उमैय्यदों के जिस रक्तरंजित भोज की चर्चा हम अध्याय-११ में कर चुके हैं उसमें से भाग निकलने वाले कुछ बहुत ही कम लोगों में एक उमैय्यद राजकुमार अब्द-अल रहमान इब्न मुआविया ("दया करने वाला का सेवक") भी था। उसके साथ उसका एक छोटा भाई, दो बहनें और उसका चार साल का पुत्र सुलेमान था। अब्द-अल-रहमान "कुरैश वंश का अकेला गरुड़ पक्षी", जो दसवें उमैय्यद खलीफा हिशाम का पौत्र था, फिलस्तीन, मिस्र और उत्तरी अफ्रिका में भेष बदलकर घूमता फिरा। इस प्रकार वह अब्बासिद जासूसों की जागरूक निगाहों से किसी तरह बच सका। यह घटना अरब इतिहास की सर्वाधिक नाटकीय घटना है। सिर्फ यही नहीं, दमिश्क से स्पेन तक अब्द-अल-रहमान की चुपचाप यात्रा निकल भागने की कहानियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय है। अब्द-अल रहमान को तेहर्त में रूस्तमातिदों के दरबार में आश्रय मिल गया। भागने वाला यह राजकुमार सीरियाई रेगिस्तान में उत्तर से दक्षिण कठिनाई से यात्रा करता रहा। फिलस्तीन में उससे उसका विश्वसनीय और योग्य, मुक्त किया गया साथी बद्र मिला जो अपने साथ नकद धन और गहने लिए हुए था। उत्तरी अफ्रिका में अब्द-अल-रहमान वहाँ गवर्नर के हाथों मारे जाने से बाल-बाल बचा। यह गवर्नर यूसुफ अल-फिहरी (केरेवां का संस्थापक उकबाह का वंशज) का संबंधी था। अब्द-अल-रहमान एक जनजाति से दूसरी जनजाति में और एक नगर से दूसरे नगर में घूमता फिरा। उसके साथ न कोई मित्र था और न एक पैसा। अंत में पांच वर्षों तक घूमते-घूमते अब्द-अल-रहमान सन् ७५५ में स्यूटा पहुँचा। वहाँ उसकी माँ के बर्बर जनजाति के समर्थकों ने उसे आश्रय दिया। उसने अपने साथी बद्र को जलडमरूमध्य के क्षेत्र के उस पार भेजा ताकि सत्ता की लड़ाई में उसे वहाँ के लोगों से सहानुभूति और सहयोग मिल सके। वास्तव में बद्र को इसलिए भेजा गया था कि वह एलविरा और जेन के सीरियाई उपनिवेशवादियों से सहायता के संबध में गुप्त रूप से बातचीत करे। बद्र अपने स्वामी अब्द-अल-रहमान के पास यह समाचार लेकर आया कि स्पेन में अरबों में चाहे जो भी आपसी मनमुटाव हों, सभी इस प्रश्न पर एकमत थे कि वे वहाँ के गवर्नर यूसुफ का विरोध करने में अब्द-अल रहमान का साथ देंगे। बद्र ने इस संबंध में कुछ बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कहा था। जैसे ही अब्द-अल-रहमान स्पेन पहुँचा, गवर्नर यूसुफ को सत्ता के लिए लोकप्रिय युवा दावेदार की शक्ति का पता चल गया। स्पेन में स्थिति अब्द-अल रहमान के अनुकूल थी। मुसलमान दो

विरोधी शिविरों—मुडार और हिमय के बीच विभाजित थे। उत्तरी और दक्षिणी अरबों के बीच पुराना संघर्ष स्पेन तक पहुँच चुका था। इसलिए उसके संदेश का उत्साह के साथ स्वागत हुआ। उसे अनेक नेताओं ने आमंत्रित किया जो उमैय्यद राजवंश के पुराने आश्रित थे। उन लोगों ने इस अवसर को अत्यधिक पसंद किया कि वे उस व्यक्ति के नेतृत्व का समर्थन करेंगे जिसके नाम का सभी सीरियावासियों पर जादू है। सीरियाइयों ने अपनी ओर यमनवासियों को भी कर लिया। ऐसा इस कारण सम्भव हो सका कि यमनवासी अब्द-अल-रहमान को चाहते थे बल्कि इस कारण कि वे स्पेन के नाम मात्र के प्रधान गर्वनर यूसुफ से नफरत करते थे। सितम्बर सन् ७५५ में अब्द-अल रहमान स्पेन के समुद्र तट पर अलमुनेकार (अल-मुनक्कब) नामक स्थान पर उतरा। नये नेता को लाने के लिए एक जहाज भेजा गया था। अब्द-अल-रहमान लंबा और पतला-दुबला, स्पष्ट, गरुड़ पक्षी जैसी मुखाकृति और छोटे लाल बाल वाले सर का था। वह साहस से भरपूर था तथा उमैय्यद राजवंश की सर्वोत्तम परम्पराओं में पला-बढ़ा था। उसने जटिल स्थिति सुधारने का भार लिया।

उमैय्यद राजवंश का अभी तक कोई व्यक्ति बच रहा है, यह खबर समूचे क्षेत्र में जंगल की आग की तरह फैल गई। जनजातियों के एक प्रतिनिधिमंडल के बाद दूसरा प्रतिनिधिमंडल उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने के लिए पहुँचने लगा। आश्रित जनों के केन्द्र के इर्द-गिर्द यमनवासी, केसाइट और बर्बर जनजाति के लोग राजवंश के प्रति निष्ठा से कहीं अधिक स्वार्थगत भावनाओं के कारण उसके इर्द-गिर्द जुटे। सेविले प्रथम बड़ा शहर था जिसने सत्ता के दावेदार के लिए अपने द्वार खोल दिये (मार्च सन् ७५६)। सेविले में अब्द-अल-रहमान ने राजकुमारी सारा से अपने बचपन की मित्रता फिर से शुरू की। वह एक अरब से ब्याही थी। उसने जो संतति छोड़ी उसमें मुसलमान और ईसाई दोनों थे। उनमें से एक मेरी (ईसाई) प्रसिद्ध सम्राट अब्द-अल-रहमान तृतीय की माँ हुई।

स्पेन उस समय अफ्रिका का अधीनस्थ प्रदेश था जिसकी राजधानी अल-केरवां थी जिसे उकबाह इब्न नफी ने स्थापित किया था। स्पेन का गवर्नर यूसुफ अल फिहरी उकबाह का वंशज था। उसकी राजधानी कारडोवा में थी। अब तक यूसुफ ने प्रायद्वीप (स्पेन) में एक स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन किया था। अब्बासिद खलीफा के प्रति उसकी निष्ठा नाम मात्र की ही थी। यूसुफ में दूरदृष्टि और बुद्धिमत्ता का अभाव था। वह नई मातृभूमि में अपनी प्रजा के साथ सामंजस्य स्थापित न कर पाया था। पर फिर भी अल-कारवां में अपने स्वतन्त्र चचेरे भाई के अधीन स्वायत्त सत्ता कायम करने की उसकी आकांक्षा थी। फौज में उसके सेनापति और दामाद अल सुमयल इब्न-हातिम ने, कुछ हिचकिचाहट के

बाद अपने प्रधान (गवर्नर) की इच्छा के अनुसार कार्य करना शुरू किया। गवर्नर ने नवागन्तुक (अल-दाखिल, जो नाम इतिहासकारों ने अब्द-अल रहमान को दिया है) को विवाह में अपनी पुत्री देने का प्रस्ताव किया और साथ ही दो जिलों की गवर्नरी। पर युवा उमैय्यद राजकुमार इतने से सन्तुष्ट न हुआ। जब गवर्नर यूसुफ अपने क्षेत्र के उत्तर में एक ओर विद्रोह दबाने में लगा हुआ था तो वहाँ भी खबर फैल गई कि एक युवा उमैय्यद राजकुमार अब्द-अल-रहमान ग्रेनाडा के निकट उतरा है और उसका इरादा अमीर के पद को कब्जा करना है।

अब्द-अल-रहमान अपने नये भरती सैनिकों के साथ राजधानी कारडोवा की ओर अपने अभियान में चला। अन्त में दोनों विरोधी फौजें कारडोवा के बाहर गुआडलक्विविर (अल वदी अल कबीर, महान नदी) के दोनों तटों के आमने-सामने खड़ी थीं। लड़ाई अब्द-अल-रहमान और यूसुफ के बीच लड़ी गई। इसे मसरा की लड़ाई कहा जाता है। धोखेबाजी की चाल से आक्रामक (अब्द-अल-रहमान) ने अपने विरोधी को इस बात के लिए तैयार किया कि उसे सुलह करने के लिए नदी पार करने दी जाय। जब अब्द-अल-रहमान अपने सैनिकों के साथ नदी पार पहुँचा तो वह अपने विरोधियों पर, जिन्हें आक्रमण का कतई संदेह न था, टूट पड़ा और उन पर निर्णयात्मक विजय हासिल की। गवर्नर यूसुफ पराजित हुआ और उसे भारी नुकसान भी उठाना पड़ा। उसे आत्मसमर्पण के लिए बाध्य होना पड़ा। यूसुफ और उसका दामाद अल-समायुल अपनी जान लेकर भागे। विजयी अब्द-अल-रहमान को अपने अनुयायियों की खूनी और लूट-मार की भावनाओं को नियंत्रित करने में कठिनाई हुई। उसने घोषणा की कि सबके साथ दया का व्यवहार किया जाय और व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार पर ध्यान रखा जाय। यूसुफ के दो पुत्र बंधक बना लिये गए। अब्द-अल-रहमान ने हरम (रनिवास) के साथ सम्मानजनक व्यवहार का आदेश दिया और उनके लूटे हुए मूल्यवान सामानों में से अनेक को वापस करा दिया। यूसुफ की पुत्रियों में से एक ने उसे दास-कन्या अर्पित की जिससे अब्द-अल-रहमान ने विवाह कर लिया। बाद में वह उसके पुत्र और उत्तराधिकारी हिशाम की माँ बनी। इस प्रकार युवा अमीर अब्द-अल-रहमान ने दिखा दिया कि वह सामान्य दया प्रदान करके, लूटमार रोक कर और डरे हुए हरम को अपने संरक्षण में रख कर वह राजनेता और मानवीय भावना रखनेवाला था।

अब्द-अल-रहमान ने अपना निवास-स्थान कारडोवा में रखा। कारडोवा मुस्लिम स्पेन की राजधानी बना और लोगों ने उसे अमीर के रूप में मान्यता दी। जैसा कि इतिहासकार कार्ल ब्रोकेलमैन कहता है—"अब्द-अल-रहमान ने इस्लाम की बिखरी हुई शक्तियों को मिलाकर एक किया और ईसाइयों के विरुद्ध युद्ध में

विजय प्राप्त कर अपनी सत्ता के क्षेत्र को बढ़ाया। अपने बत्तीस वर्षों (७५६-७८८) के शासन में उसे लगातार विद्रोहियों से लड़ना पड़ा।" [२]

अमीर अब्द-अल-रहमान की आन्तरिक और बाहरी समस्यायें और उसके साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण

अब्द-रहमान अब अमीर था, मुस्लिम साम्राज्य का अधिस्वामी पर राजधानी कारडोवा पर प्रभुत्व से वह समूचे मुस्लिम स्पेन का निर्विवाद शासक न हो गया। वह एक राज्य का स्वामी था, पर उसने अपनी योग्यता और वीरता से जो कुछ हासिल किया था उसका उपभोग उसे शांति से न करने दिया गया। दरअसल वर्षों बाद देश पूरी तरह उसके कब्जे में आ गया। उसके दो प्रमुख शत्रु टोलेडो में भूतपूर्व गवर्नर यूसुफ और जीन में उसका दामाद अल सुमेल राजद्रोह और फूट की भावना विशेष रूप से फैला रहे थे। यूसुफ ने अगले आठ वर्षों तक और अशांति फैलाना जारी रखा। अन्त में सन् ७६४ में वह मारा गया और टोलेडो पर अधिकार कर लिया गया। उसका सर कारडोवा के पुल पर रख दिया गया ताकि लोग उसका अन्त देख सकें। सुमेल की हत्या गला दबा कर कारडोवा जेल में कर दी गई।

यूसुफ की मृत्यु के बाद भी उसके समर्थकों ने नये शासन को चुनौती देना जारी रखा। विभिन्न जिलों में विद्रोही अपना सर उठाने लगे। उनमें से कुछ अमीर के घनिष्ठ मित्र और सहयोगी थे। कुछ अब्द-अल-रहमान के घनिष्ठ संबंधी थे जो उसकी जीत के बाद स्पेन तुरन्त पहुँचे। विशेष रूप से अशांतिकर बर्बर जनजाति के लोग और यमनवासी थे जिन्हें कारडोवा पर विजय के बाद वहाँ लूट-मार करने से रोका गया था। और इस कारण वे रुष्ट हो गये थे। स्थिति ऐसी थी कि एक विद्रोही मारा जाता था तो दूसरा विद्रोही साँप की तरह फन काढ़ कर खड़ा हो जाता था।

अलावे, अरब उच्च वर्ग नियन्त्रण बर्दाश्त न करता था। उन लोगों को व्यक्तिगत शासन से घृणा थी। उसी प्रकार बर्बर जनजाति के लोग भी इस प्रकार का शासन बिल्कुल पसन्द न करते थे। अब्द-अल-रहमान ने व्यवस्था, सामंजस्य और एकरूपता स्थापित करने की जो भी कोशिशें कीं उनका उच्च वर्ग के लोगों ने विरोध किया। वे उसके खिलाफ बराबर विद्रोह करते रहे। लियन, कैटालोनिया और नावेरे के ईसाइयों की भाँति अरब विद्रोहियों को फ्रैंकिस राजा पेपिन और उसके बाद उसके पुत्र शार्लमैन से समर्थन मिलता रहा। इन दोनों शासकों की नीति थी कि वे अपनी पूरी शक्ति से सारासेन (अरब) गवर्नरों की सहायता करें। ताकि वे

२. कार्ल ब्रोकेलमैन—हिस्ट्री ऑव दी इस्लामिक पीपुल —पृ० १८१।

कारडोवा के सम्राट की अधीनता से अपने को मुक्त कर सकें। अक्सर उनके विद्रोह फ्रैंकिश राजाओं द्वारा उभारे जाते थे, पर अब्द-अल-रहमान ने उन विद्रोहों का सामना अद्वितीय वीरता से किया। उसे अपने राज्य और शांति एवं व्यवस्था के लिए लगातार युद्ध करना पड़ा। उसने इसके लिए जो नीति अख्तियार की वह मानवीय और औचित्य की दृष्टि से भले ही उचित न मानी जाय पर तात्कालिक परिस्थितियों के लिए जो उसके समक्ष उपस्थित थी, बहुत उपयुक्त थी। वह सामन्तवाद और राजशाही के बीच युद्ध था। अब्द-अल-रहमान के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि अरब सरदारों के बीच एकता न थी। वे कुछ उलझे हुए तरीके से सोचते थे कि अमीर (अब्द-अल-रहमान) पर विजय प्राप्त करने के लिए सभी उच्च वर्गों का परिसंघ बनाना जरूरी है। पर वे यह नहीं जानते थे कि इस संबंध में एक साथ मिल कर कैसे काम किया जाय। कुछ वर्षों में उमैय्यदों ने अपने रास्ते से सभी शत्रुओं को हटा दिया। विद्रोहों को कुचल दिया गया। अरब उच्च वर्गों को सम्मान दिया जाने लगा और समूचे क्षेत्र में अमीर का प्राधिकार सर्वोच्च हो गया।

और इसके बाद नई सरकार के सामने बाहर से एक चुनौती आई। स्पेन में बाहर से आये अब्द-अल-रहमान की आशातीत सफलता की खबरें ईराक में शीघ्र ही पहुँचने लगी थीं। अब्बासिद खलीफा मंसूर को यह मंजूर न था कि उसकी खिलाफत का पश्चिमी हिस्सा बिना संघर्ष के साम्राज्य से अलग हो जाय। सन् ७६१ में उसने अफ्रिका के गवर्नर को अतिरिक्त सेनायें और लड़ाई का सभी साज-सामान दिया और उसे आदेश दिया कि वह स्पेन पर चढ़ाई करे। गवर्नर अल-आला सन् ७६३ में दक्षिणी स्पेन में उतरा और वहाँ काला झण्डा फहरा दिया। अब्द-अल-रहमान ने सेविले के उत्तर कारमोना में अपना मोर्चा बनाया। यह स्थान अपनी अभेद्यता के लिए प्रसिद्ध था। अल-आला उस स्थान को दो महीने तक घेरेबंदी किये रहा। अब्द-अल-रहमान समझ गया कि समय उसके विरुद्ध है। तब उसने एक साहसपूर्ण आक्रमण का निश्चय किया। उसने अपनी फौज के सात सौ सबसे बहादुर सैनिकों को चुना, उन्हें घिरे हुए नगर के फाटक तक ले गया जहाँ भीषण आग जल रही थी। उसने आग में अपने तलवार की म्यान फेंक दी और घोषणा की कि "यदि हम लोगों को विजय नहीं मिल सकती तो हम अपनी तलवारों की म्यानें आग की लपटों में फेंक दें और बहादुर सिपाहियों की तरह मरें। हम या तो जीतेंगे या मरेंगे।" फिर अब्द-अल-रहमान का हमला इतना भयानक था कि कहा जाता है कि शत्रु पक्ष के सात हजार सैनिक मारे गए।

अब्बासिदों के लिए स्पेन को जीतने का खलीफा अल-मंसूर का एक प्रयास सन् ७६३ में समाप्त हो गया। खलीफा के अभागे दूत अल-आला का सर काट

लिया गया और उसे बगदाद भेज दिया गया। और तब अल-मंसूर ने कहा—"अल्लाह का शुक्र है कि उसने हमारे और इस भीषण शत्रु के बीच समुद्र रख दिया है।"

अब्द-अल-रहमान द्वारा विद्रोहों का दमन

यमनवासियों और शिया पंथ वालों के विद्रोह; जो अब्बासिद एजेन्टों द्वारा भड़काये गये थे, लगातार एक के बाद एक हुए। बर्बर जनजातीय वालों ने भी विद्रोह किया। उसे दबाने में दस वर्ष लग गए। बर्बर लोगों ने अपने से श्रेष्ठ अरबों को इसलिए कभी क्षमा नहीं किया कि उन लोगों ने विजित क्षेत्र में अपने लिए सबसे बड़ा हिस्सा चुन लिया। उन लोगों में से नये अमीर (अब्द-अल-रहमान) के कट्टर समर्थक उसके शत्रु हो गए। उन लोगों से शीघ्रता के साथ निबटना था। सेविले के शेख का, जिसके झण्डे और खच्चर की सहायता से अब्द-अल-रहमान को विजय मिली थी, एक विद्रोह में सर काट दिया गया। वही हश्र बद्र का भी हुआ जो अब्द-अल-रहमान के दाहिने हाथ जैसा था।

शार्लमैन का स्पेन पर हमला

अब्बासिद खलीफा अल-मंसूर ने अब्द-अल-रहमान से पराजित होकर स्पष्टतः सबक सीख लिया था पर उसके उत्तराधिकारियों ने उस घटना से कोई सबक न सीखा। उसके दूतों और गुप्त एजेन्टों ने स्पेन के नये शासन के विरुद्ध राजद्रोह और विरोध के बीज बोना जारी रखा। उसके पौत्र हारून-अल-रशीद युवराज के रूप में बासफोरस पहुँचा। उसने बैजेन्टाइनों के साथ एक अपमानजनक संधि की और उससे भी ज्यादा पश्चिम के क्षेत्र में विजय करने की इच्छा करने लगा। उसने फ्रैंकों के महान राजा और रोमनों के सम्राट शार्लमैन के साथ संधि की। शार्लमैन अपने बैजेन्टाइन प्रतिद्वन्द्वी का स्वाभाविक शत्रु था। अंत में सन् ७७७ में फ्रैंकिश सम्राट शार्लमैन ने बार्सिलोना में स्पेन के हटाये और मारे गए गवर्नर यूसुफ के दामाद और कुछ विरोधी अरब सरदारों से संधि की और कारडोवा में अब्द-अल-रहमान पर हमले के लिए बढ़ा। शार्लमैन की महती महत्वाकांक्षा थी कि समूचा यूरोप अपनी सत्ता के अधीन रखे। वह सारगोसा से आगे नहीं गया होगा, जहाँ उसने पाया कि नगर ने अपने द्वार उसके लिए बंद कर लिये हैं और उसके प्रतिरोध की तैयारियाँ की जा रही हैं। उसने यह भी पाया कि उस पर सब ओर से चढ़ाई की जा रही है। अब्द-अल-रहमान दक्षिण की ओर से आया। बेस्क के विद्रोहियों की, जिनके परिवारों को फ्रैंकों और गोथिक शासन में सताया गया था, एक सेना ने दोनों ओर से शार्लमैन को परेशान करना और उसके सैनिकों को मारना शुरु किया। फ्रैंकिश सेनाएँ उस ऊबड़-खाबड़ और धोखे में डालने वाले पर्वतीय

प्रदेश से पेरीनीज होती हुई उत्तर की ओर वापस जाने लगीं। उन्हें उस प्रदेश की घाटियों और खड्डों में अपने हजारों मृत साथियों को छोड़ देना पड़ा। उन्हीं में उनका प्रसिद्ध मृत नेता रोलेंड भी था जिसकी वीरता की चर्चा फ्रांसीसी साहित्य में मिलती है।

इस प्रकार अब्द-अल-रहमान बिना कोई प्रहार किये विजयी हुआ। पर अब समय आ गया था। उसने सारगोसा पर कब्जा कर लिया और उसके विद्रोही नेता को इतना पीटा गया कि वह मर ही गया। उसके पहले उसके हाथ-पाँव काट लिये गये थे। उसके बाद अब्द-अल-रहमान के समक्ष कोई गंभीर चुनौती न आई। यह कारडोवा में उसकी विजय का बत्तीसवाँ वर्ष था। इस पूरी अवधि में अब्द-अल-रहमान युद्ध में अपनी सेनाओं का स्वयं नेतृत्व करता था और किसी भी युद्ध में उसकी बड़ी पराजय न हुई। इतिहासकारों का कहना है कि जिस समय शार्लमैन ने स्पेन पर हमला किया, अब्द-अल-रहमान अब्बासिदों के अधिकार से सीरिया छीनने के लिए सामुद्रिक अभियान की तैयारी कर रहा था पर अपनी आंतरिक समस्याओं के कारण उसे ऐसा कदम न उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

फ्रैंकिश सम्राट शार्लमैन पर विजय के बाद उमैय्यद अमीर अब्द-अल-रहमान ने मुस्लिम स्पेन की सरकार में सुधार की ओर अपनी शक्ति लगाई। उसने अपने शासन पर भीतर और बाहर से आक्रमण की चिन्ता से मुक्त होकर आपस में लड़ रहे अरबों और बर्बर जनजाति के भागों को एकताबद्ध करने की ओर भी ध्यान दिया। उसने उस समय पृथ्वी पर दो सबसे शक्तिशाली शक्तियों का सफलतापूर्वक मुकाबला किया और उन्हें पराजित किया। प्रो० हिट्टी ने अब्द-अल-रहमान के बारे में ठीक ही लिखा है—"इस प्रकार उसने अपने को पश्चिम में सबसे शक्तिशाली सम्राट के समतुल्य सिद्ध किया जिस तरह कि उसने अपने को पूर्व में सबसे महान शासक के बराबर सिद्ध किया था।"[3] और उसके बाद उसने स्पेन में शान्ति, व्यवस्था और स्वतंत्रता स्थापित की। उसे न केवल उत्तरी अफ्रिका और स्पेन के बर्बर जनजातिवालों को दबाने में सफलता मिली बल्कि उसने सैनिकों को अच्छी तनख्वाह और विशेष अधिकार भी दिये। उसने इन भूतपूर्व विद्रोहियों का एक सुप्रशिक्षित और अनुशासित चालीस हजार व्यक्तियों की स्थायी सेना भी तैयार की।

फिर इन सफलताओं के बावजूद उसने खलीफा की उपाधि ग्रहण न की। पर सन् ७५७ में उसने अब्बासिद खलीफा मंसूर के नाम से पढ़े जाने वाले खुतबा

---

३. फिलिप हिट्टी, हिस्ट्री ऑव अरब्स, पृ० ५०८।

(शुक्रवार की नमाज) को बंद करा दिया। समूचे स्पेन में उसे अमीर के रूप में जाना जाता रहा। उसके मृत्यु के डेढ़ शताब्दी बाद तक, अब्द-अल रहमान तृतीय तक उसके सभी उत्तराधिकारियों ने अपने लिए खलीफा के मुकाबले कम महत्त्व की अमीर की उपाधि धारण करना जारी रखा यद्यपि वे पूर्ण स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे। पर, चाहे कारण जो भी रहा हो, इतिहास में अब्द-अल-रहमान प्रथम का स्थान उसकी उपाधि के कारण नहीं है बल्कि सौन्दर्य और वास्तुनिर्माण (भवन-निर्माण) कला की उस विरासत के कारण है जो वह अपने पीछे स्पेन में छोड़ गया। उसकी यह कला न केवल अब्बासिद खिलाफत के फारसी गरिमा-गौरव की प्रतिद्वन्द्वी है। जब बगदाद का वैभव नष्ट हो गया और उसे भुला दिया गया उसके बाद भी, यूरोप द्वारा अपनी निजी सांस्कृतिक विरासत विकसित करने के पूर्व, अब्द-अल-रहमान प्रथम की अतिसुन्दर वास्तु-निर्माण-कला सैकड़ों वर्षों तक अरब कला और वास्तु-कला के स्मारक के रूप में कायम रही।

अब्द-अल-रहमान प्रथम एक प्रशासक के रूप में

शांति के क्षेत्र में अब्द-अल-रहमान प्रथम की सफलता युद्ध के क्षेत्र में उसकी सफलताओं के सदृश भले ही न हों पर वे किसी भी दृष्टि से महत्त्वहीन न थी। उसने सरकार का एक ढाँचा तैयार किया जो बाद में अब्द-अल-रहमान तृतीय द्वारा किये गये परिवर्तनों के साथ, अढ़ाई शताब्दी तक कायम रहा। यह सरकारी ढाँचा राज्य के भीतर काम कर रही केन्द्र-विरोधी अरब मुस्लिम शक्तियों और भीतर और बाहर दोनों ही ओर से ईसाइयों के दबाव के बावजूद कायम रहा। अब्द-अल-रहमान द्वारा आरंभ किये गये सरकारी संस्थान दमिश्क (उमैय्यद) संस्थानों के नमूनों पर थे। सभी प्राधिकार असैनिक, सैनिक और न्यायिक एक व्यक्ति—अमीर—के हाथों में केन्द्रित थे। इस उच्च पद के कर्त्तव्य पूरे करने में उसकी सहायता राज-महल का प्रधान अधिकारी (हाजीब) करता था। ऐसा प्रथम अधिकारी उसका साथी तम्माम अबू गालिब था। विजीर का पद, जो उमैय्यदों द्वारा नहीं बल्कि अब्बासिदों द्वारा शुरू किया गया था, अब्द-अल-रहमान तृतीय (मृत्यु सन् ९६१) के समय तक स्पेन में शुरू न किया गया था। हाजीब के अधीन वित्त, सेना, आंतरिक मामलों और अन्य विभागों के सचिव (कातिब) थे। इन सबको सलाह देने के लिए एक सलाहकार समिति थी जिसमें उच्च वर्ग के प्रतिनिधि, उच्च धार्मिक अधिकारी और महल के ऊँचे अफसर थे। अब्द-अल-रहमान का एक प्रारंभ का साथी ओबेदुल्ला इब्न उस्मान इस परिषद् का प्रधान था। अमीर की अनुपस्थिति में ओबेदुल्ला राजधानी के गवर्नर के रूप में भी काम करता था। अबू-अल-सब्बा

सेविले का गवर्नर नियुक्त किया गया। अमीर की मुहर पर यह वाक्य खुदा हुआ था—"अल्लाह में वह विश्वास करता है।"

स्पेन में राज करते आये पश्चिमी गोथों (विसीगोथिकों) के प्रान्तीय प्रभाग कायम रहने दिये गए और उनकी संख्या बढ़ा कर छः कर दी गई। हर जिले का अपना गवर्नर (वाली) और न्यायाधीश (काजी) था। कुछ महत्त्वपूर्ण जिलों के अपने गवर्नर थे। राजधानी कारडोवा के न्यायाधीश को अक्सर "न्यायाधीशों का न्यायाधीश" कहा जाता था और इस प्रकार उसके पद की सर्वोच्चता प्रकट की जाती थी। न्यायाधीश वास्तव में कुरान और हदीस भलीभाँति पढ़ा होता था। आपराधिक और पुलिस-मामले विशेष अफसर के क्षेत्राधिकार में होते थे।

अब्द-अल-रहमान को जो सेना स्पेन में मिली वह पुरानी अरब जनजातीय व्यवस्था के अनुसार काम करती थी। हर जनजातीय दल-अरब या बर्बर-अपने लिए मंजूर भूमि में अपने प्रधान (शेख) के अधीन रहता था। बाद में यथासमय अमीर ने बर्बर जनजातीय अफ्रिकी क्षेत्र से वेतन पर काम करने वालों की एक स्थायी सेना तैयार की और उसे प्रशिक्षित किया। उसकी संख्या बढ़कर ४०,००० हो गई। सेना का घुड़सवार दल खच्चरों को इस्तेमाल करता था जो वहाँ बड़ी संख्या में पाये जाते थे और घोड़ों से ज्यादा मजबूत होते थे। अब्द-अल-रहमान ने अफ्रिका से नीग्रो लोगों का एक नया दल भरती किया। उस दल का प्रथम सेनापति एक नीग्रो विद्रोही था जिसे अमीर ने क्षमा प्रदान कर दी थी। यह अंगरक्षक सेना उत्तर के सीमा-क्षेत्र के प्रहरी का कार्य करती थी और आंतरिक विद्रोहों का निर्दयतापूर्वक दमन करती थी। अब्द-अल-रहमान ने मुस्लिम स्पेन में पहली नौसेना इकाई का आधार रखा। इसे बैजेन्टाइन आदर्श पर बनाया गया था और इसका अड्डा आलमेरिया में स्थापित किया गया था। अब्द-अल-रहमान ने अपने प्रथम राजमल-प्रधान (प्रबंधक) तम्माम को उसका प्रधान बनाया। इस प्रकार तम्माम यूरोप में प्रथम मुस्लिम नौसेनापति बना। बाद में चल कर, अब्द-अल-रहमान तृतीय के अधीन अरब नौसेना पश्चिमी भूमध्य सागर में सबसे शक्तिशाली सेना बनी।

ईसाइयों के साथ व्यवहार

अब्द-अल-रहमान के उत्तराधिकारियों का काम साम्राज्य में शांति स्थापित करना ही बना रहा। उन लोगों में आबादी के दो हिस्सों—ईसाइयों और मुसलमानों के बीच तनावों और झगड़ों की समस्याओं को हल करना था और साथ ही पुराने अरब मुसलमानों और स्पेन के नव-धर्मान्तरित मुसलमानों के बीच ईर्ष्या-भाव का

समाधान करना भी। अरबों का स्पेनी ईसाइयों के प्रति व्यवहार अन्य स्थानों में अरबों के ईसाइयों के प्रति व्यवहार से भिन्न था। इस व्यवहार का मूल कुरान में पाया जाता है और हदीस में इसकी व्यापक चर्चा है। इसकी व्याख्या न्याय शास्त्र (फिकह) में की गई है। घिम्मियों के रूप में ईसाइयों और यहूदियों को कुछ अधिकार प्राप्त थे जिनमें मुख्य कुछ शर्तों के साथ राज्य द्वारा संरक्षण था। उन्हें कर (जजिया) देना पड़ता था। जैसा कि अन्य विजित क्षेत्रों में होता था, वहाँ मूल ईसाई और यहूदी अपने-अपने धर्माध्यक्षों के क्षेत्राधिकार के अधीन छोड़ दिए जाते थे। मुसलमानों से संबंधित मुकदमों की सुनवाई मुस्लिम अदालतों में ही होती थी। अधिकांश पश्चिमी विद्वानों का, जिनमें हालैंडवासी रीनहार्ट डोजी और फ्रांसीसी ई० लेबी प्रोवेंत्वल प्रधान हैं, विचार है कि स्पेन में राज करते आये पश्चिमी गोथों के शासन से मुस्लिम शासन में परिवर्त्तन से देशी आबादी की स्थिति में कोई गिरावट नहीं आई। उस समय यहूदी कभी-कभी स्पेन में राज करते आये पश्चिमी गोथों द्वारा सताये जाते थे। ईसाई प्रजा भी अपने शासकों से अलग-थलग थी और उनलोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता था। ये गोथ ट्यूटोनिक जाति (जिनमें जर्मनी, स्कैन्डेनेविया और हालैंड के लोग शामिल थे) के बर्बर लोग थे और ईसाई कैथोलिक धर्म अपनाने के पूर्व एरियन लोग थे जिन्हें गिरजाघर वाले ईश्वर-विरोधी मानते थे। स्पेन पर मुसलमानों की विजय से दलितों पर से उच्च वर्गों और पादरियों के अधिकार का बंधन ढीला पड़ा। ईसाई समुदाय को अपने धर्म के अनुसार निर्बाध रूप से चलने की स्वतंत्रता मिली। उन पर उनके अपने धार्मिक कानून लागू होते थे और वे अपने मूल देशीय न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार में थे। मुसलमानों से संबंधित मुकदमे और इस्लाम धर्म के विरुद्ध किये गये अपराध इस क्षेत्राधिकार में न आते थे। अब्द-अल-रहमान ने ईसाइयों को अनुमति दी कि वे अपने पुराने गिरजाघरों की मरम्मत करें और नये गिरजाघर बनवायें। उसने उन लोगों पर कोई और निर्योग्यता न लादी जो उसके धार्मिक पूर्ववर्ती उमैय्यद शासक उमर द्वितीय (सन् ७१७-२०) ने लादी थी। कुछ स्पेनी विद्वान इस बात पर खेद प्रकट करते हैं कि ईसाई परम्परायें तोड़ी गईं और वे परम्पराएँ प्रारंभिक माध्यमिक और आधुनिक समय के बीच दब-सी गईं। पर सचाई यह है कि इस्लाम के अधीन स्पेन ने जो आर्थिक और सांस्कृतिक उच्चता प्राप्त की वह उसके पहले प्राप्त नहीं की गई थी। उसकी राजधानी कारडोवा कान्स्टैंटीनोपुल और बगदाद की भाँति ही वैभव, समृद्धि और जागृति का विश्व-केन्द्र था। अरब लेखकों ने कारडोवा को "अल-अंडलूस (स्पेन) का पुल" कहा है और एक पुरानी अंग्रेज संन्यासिनी (नन) ने इसे "विश्व के रत्न" की संज्ञा दी है।

जब स्पेन में शांति हो गई और वह बाहरी हमलों से सुरक्षित हो गया तो अब्द-अल-रहमान शांतिकालीन कलाओं के विकास की ओर मुड़ा। उसने इस क्षेत्र

में भी युद्ध के क्षेत्र की भाँति ही अपने को महान सिद्ध किया। जो कारडोवा छोड़ कर अब्द-अल-रहमान मरा वह उस कारडोवा से भिन्न था जिसे उसने अपने शासन के प्रारंभ में पाया था। वहाँ अपनी किस्मत आजमाने के लिए उत्तरी अफ्रिका और एशिया से मुसलमान बड़ी संख्या में पहुँचने लगे। अब्बासिदों के आतंक से भागे हुए उमैय्यद और उनके संबंधी बुलाये या बिना बुलाये ही वहाँ पहुँचने लगे और उन्होंने वहाँ सुरक्षा की याचना की। उस समय एक परिपाटी-सी थी कि राज्य का प्रधान अपने निकट संबंधियों को अपने इर्द-गिर्द जुटा लेता था और उनमें से कुछ को राज्य के महत्वपूर्ण पद सौंपता था। अब्द-अल-रहमान को अब वह अवसर मिला था। उसने कहा "सम्राट् के पद के बाद अल्लाह ने मुझे सबसे बड़ा सौभाग्य यह दिया कि मैं अपने संबंधियों को एक घर दे सकता और उनकी समीपता का लाभ उठा सकता हूँ।" वह विशेष रूप से अपने चारवर्षीय पुत्र सुलेमान की प्रतीक्षा कर रहा था जिसकी तेज निगाह के फलस्वरूप अब्द-अल-रहमान के जीवन की कई बार रक्षा हुई थी। यदि सुलेमान कारडोवा पहुँच सकता तो अब्बासिद अपने लिए इसे बहुत बड़ा छुटकारा मानते पर लड़के की दो चाचियों ने यह खतरा न उठाना चाहा कि लड़का समुद्र-यात्रा करे। राजधानी की आबादी नव-मुसलमानों (मुआलादों) के आने से और बढ़ी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए उनका आना बढ़ता गया। गाँव के लोगों ने अपने पैतृक रीति से ही जीवन बिताना जारी रखा। अब्द-अल-रहमान के जीवन-काल में स्पेन की आबादी का बहुलांश मुसलमान बन गया होगा।

इस प्रकार आवश्यक हो गया कि कारडोवा की सार्वजनिक नमाज की जगह बड़ी बनाई जाय। और तब सन् ७८५ में अब्द-अल-रहमान ने एक अधिक महत्वाकांक्षी योजना में हाथ लगाया। उसने कारडोवा की मस्जिद के पुनर्निर्माण एवं बृहदीकरण का कार्य शुरू किया जो राजधानी के अनुरूप हो और जिसकी तुलना बड़े ईसाई गिरजाघरों से की जा सके। मस्जिद के भवन के चारों ओर एक दीवार बनाई गई जो किलों की दीवारों जैसी चौड़ी थी। उसके चारों ओर एक बड़ा बाहरी कमरा भी बनवाया गया और उसे बड़े-बड़े शानदार खंभों से सजाया गया। कहा जाता है कि इस कार्य में एक वर्ष के दरम्यान में अब्द-अल-रहमान ने एक लाख दीनार खर्च किये। इस प्रकार उसने कारडोवा की बड़ी मस्जिद स्थापित की जो जेरूसलेम और मक्का की बृहत् मस्जिदों जैसी थी। वह इस्लाम के पश्चिमी क्षेत्र की काबा जैसी बन गई। सोलहवीं शताब्दी ईस्वी से इस मस्जिद में एक रोमन कैथोलिक गिरजाघर बना दिया गया है। पर इसके बावजूद, जबकि इसके साथ ही स्पेन में प्राय: पिछले चार सौ वर्षों से मुस्लिम धार्मिक क्रिया-कलाप के सभी चिह्न मिटा दिये गये हैं, इस मस्जिद का उल्लेख नगर में लगे संकेत पटों पर किया जाता है। और सरकारी मार्ग-

दर्शक पुस्तिकाओं में ला-मेजकिटा (मस्जिद) के नाम से इसका जिक्र किया जाता है। वहाँ बहुत कट्टर ईसाई दर्शक भी, अभी तक इस्लाम के अत्यन्त प्रभावकर वातावरण का अनुभव करता है। कहा जाता है कि जब स्पेन के राजा चार्ल्स पंचम को मस्जिद के भीतर तैयार किये गए गिरजाघर को दिखलाया गया तो वह उसे बनाने वालों को संबोधित करते हुए व्यथा भरे स्वर में बोला—"तुम लोगों ने उस चीज को, जो सभी जगह पाई जा सकती है, निर्माण करने के लिए वह चीज नष्ट कर डाली जो संसार में कहीं नहीं पाई जा सकती।"

वृहत मस्जिद के अलावा, इतिहासकारों के अनुसार अब्द-अल-रहमान ने राजधानी कारडोवा में अन्य धार्मिक और अन्य तरह के भवन बनवाये। सन् ७६६ में उसने नगर की पचास वर्ष पुरानी किलेबंदी का नवीकरण कराया। गुआदलक्विविर के ऊपर पुल को भी बड़ा कराया गया। उसने कृत्रिम जल-प्रणाली का सुधार कराया ताकि उससे न केवल नगर की बढ़ती हुई आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें बल्कि शत्रु द्वारा नगर की घेरेबन्दी और सुखाड़ के समय भी जल की आवश्यकता पूरी की जा सके। अपने उपयोग के लिए उसने एक नया सरकारी भवन (दार-अल-इमराह) बड़ी मस्जिद के निकट बनवाया जिसने पुराने शासकों—विसिगोथिकों—के समय से बने सरकारी भवन का स्थान लिया। कारडोवा से बाहर दो मील पर उसने एक आकर्षक ग्रामीण निवास-स्थान का निर्माण कराया और उसके चारों ओर सुन्दर, सुगन्धित फूलों और पेड़ों से पूर्ण बागीचा बनवाया। जिस तरह उसके दादा उमैय्यद शासक हिशाम ने यूफ्रेटस नदी के किनारे बनाये गये अपने ग्राम्य निवास-स्थान का, जहाँ अब्द-अल-रहमान पला-बढ़ा था, नाम अल-रूसफा रखा था वही नाम उसने उस भवन का भी रखा। शिकार और आराम करने के लिए सुविधाजनक स्थान के ख्याल से और अपनी मूल रेगिस्तानी जिन्दगी की याद ताजा करने के लिए उमैय्यद शासक अपने लिए ग्राम्य निवासस्थान बनवाया करते थे। इस निवास-स्थान के बागीचे के एक एकाकी खजूर के पेड़ के समक्ष, जो सीरिया से मंगाया गया बतलाया जाता था, अब्द-अल-रहमान कुछ स्वरचित कोमल कविताएँ पढ़ा करता था।[४]

इसके अलावा अब्द-अल रहमान ने स्वयं एक अत्यधिक न्यायप्रिय शासक होने के फलस्वरूप भूतपूर्व शासकों विसिगोथिक उच्च वर्गों और पादरियों द्वारा किसानों और साधारण जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों को समाप्त कर दिया और उन्हें एक नई न्याय-संहिता दी जिसके अन्तर्गत उन्हें वे अधिकार और सुरक्षा-उपाय

४. अब्द-अल-रहमान की कविताओं के लिए देखें निकोल्सनः 'लिटेरेरी हिस्ट्री ऑव अरब्स', पृ० ४१८।

मिले जो पहले कभी नहीं मिले थे। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि रीनहार्ट डोजी जैसे ईसाई इतिहासकारों को भी यह स्वीकार करना पड़ा है कि "स्पेन पर अरबों की विजय यहाँ के लिए बराबर लाभप्रद रही।"[५]

उसने उन भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मवाले लोगों—अरबों, बर्बरों, गोथों और यूरोपियन-अफ्रिकी मिश्रित जनजाति-हिस्पानो-अरबों-को एक राजनीतिक-समुदाय में एकजुट करने की कोशिश की पर उसमें वह सफल न हो सका क्योंकि उसने अपनी प्रजा पर इस्लाम थोपा नहीं और अन्य धर्मों पर रोक न लगाई जैसा कि उसके पाँच शताब्दियों बाद ईसाई विजेताओं ने किया। उमैय्यद राजवंश के संस्थापक मुआविया की परम्परा में उदार और सहिष्णु होने के कारण उसने वैसा कदम न उठाया।

अब्द-अल-रहमान की मृत्यु (सन् ७८८) : उसके शासन का आकलन

स्पेन और अरबों के लिए यह शोक की बात थी कि अब्द-अल-रहमान अपने शासन की उदार नीतियाँ अपनी अठावन वर्ष की जिन्दगी तक ही चला पाया। ३० सितम्बर, सन् ७८८ को उसकी मृत्यु हो गई। राजधानी नगर में उसे दफनाया गया। अब्द-अल-रहमान ने अपना राजनीतिक जीवन मुआविया की परम्परा में हिल्म (सहिष्णुता, उदारता और आत्मनियंत्रण की नीति) से शुरू किया और प्रथम अब्बासिद खलीफा अल-सफा की नीति से अंत किया। उसने स्पेनी इस्लाम को गौरव के मार्ग पर आगे बढ़ाया जिसका चरमोत्कर्ष उसके नाम के तीसरे अमीर एवं पुस्तक प्रेमी उत्तराधिकारी अल-हकाम (९६१-७६) के शासन-काल में पहुँचा। सन ९२९ में खलीफा के पद पर आसीन होने के बाद अब्द-अल-रहमान तृतीय ने एक तर्कसंगत कदम उठाया और अपने को **अमीर-अल-मुमीनिन** (विश्वासियों का नेता) घोषित किया। उस समय अब्बासिद खिलाफत अधःपतन की ओर जा रही थी। नई उमैय्यद खिलाफत, जिसका सूत्रपात अब्द-अल-रहमान ने किया था, सन् १०३१ तक चली। अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व अब्द-अल-रहमान प्रथम ने मुआविया के उदाहरण पर चलते हुए, अपने पुत्र हिशाम को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इस प्रकार उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान के अधिकार की उपेक्षा की जो हिशाम से ग्यारह साल बड़ा था। मुआविया के पुत्र यजीद, जिसे उसने अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था, की भाँति हिशाम भी ईसाई माँ का पुत्र था। वंशक्रमानुगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त आरंभ किये जाने से राज्य के स्थायित्व और सातत्य में योगदान किया गया। अमीर पद पर आसीन होने की प्रथम

---

५. रीनहार्ट डोज़ी—स्पेनिश इस्लाम (लंदन, १९१३), पृ० २३६।

वार्षिकी के अवसर शुक्रवार की नमाज पर भाषण में अब्द-अल-रहमान ने अब्बासिद खलीफा का नाम लिया। उस समय के जो कुछ सिक्के अभी भी मिलते हैं उनमें से उस समय के प्रारंभिक सिक्कों में उमैय्यद खलीफा का उल्लेख पाया जाता है। यहाँ क़ारडोवा पर विजय के वाद अब्द-अल-रहमान प्रथम के उदार आचरण का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। उसने उस समय अपने दो सबसे घातक शत्रुओं अल-फिहरी और अल-सुमैल को अपना मित्र बनाने की चेष्टा की। उन लोगों और उसके अधीन काम करने वाले अन्य लोगों के साथ उसका वाद का व्यवहार विपरीत हो गया। पहले विरोध करने वाले का सर काट लिया जाता था पर वाद में दण्ड देने की अब्द-अल-रहमान की प्रिय प्रणाली सूली पर चढ़ा देना हो गई। वह अपने मित्रों के साथ उसी प्रकार समझौता न करने वाला हो गया जिस प्रकार कि शत्रुओं के प्रति निर्दय। उसके नाम का शाब्दिक अर्थ होता है "दयावान (अल्लाह का सेवक)" पर अब वह किसी ऐसे देवता की पूजा न करता था और न उसका अनुकरण ही। बहुत जल्द उसमें यह मनोग्रन्थि विकसित हो गई कि वह किसी भी प्रकार के भ्रम में नहीं है। जो उसके विचारों से सहमत न होते थे, वे उसके लिए अस्वीकार्य हो गये और वह उन पर तुरन्त संदेह करने लग जाता था। अपने शासन के प्रारंभिक दिनों में वह सड़कों पर घूमा करता था और अपने प्रजाजन से मिला-जुला करता था। उसके विपरीत वह अब उदास रहने लगा और अपने प्राचीर की अभेद्य दीवारों में अपने अंगरक्षकों की संगीनों के साये में, एकाकी जीवन विताने लगा। मानो अब उसकी नसों में रक्त के मधुर रस के स्थान तिक्त रस का प्रवाह होने लगा।

अब्द-अल-रहमान के वाद अगले सौ वर्षों में उसके जो भी उत्तराधिकारी हुए वे उसकी तुलना में निम्न स्तर के थे। उन्हें केवल शिकार और हरम और किसी और वात में दिलचस्पी न थी। अब्द-अल-रहमान के प्रयत्न अब फलप्रदायी हो गये थे और स्पेन की अर्थ-व्यवस्था ज्यों-ज्यों फल-फूलने और विकसित होने लगी थी, उसके उत्तराधिकारी धनी और आलसी होने लगे थे। फारसी तौर-तरीकों और प्रथाओं का हारून-अल-रशीद के दरबार से अनुकरण किया जाने लगा और आराम-तलबी के प्रति वही सांघातिक आकर्षण आरंभ हुआ जिस कारण सीरिया में मुख्य उमैय्यद राजवंश का पतन हुआ था। बर्बर जनजाति के लोग पुनः अशांत और सक्रिय हो गए और अमीर के पद पर कब्जा करने की योजना में लग गए। सरकार की कमजोरी का फायदा उठाते हुए कुछ ईसाई समुदाय इस्लाम की निन्दा में लग गए। उनके खिलाफ सरकार ने वड़ी कार्रवाइयाँ कीं पर उससे विद्रोही शहादत को गले लगाने लगे और कुछ अन्य उनके पद-चिह्नों पर चलने के लिए उठ खड़े हुए और जब विद्रोह की भावना फैली, प्रान्त राजधानी कारडोवा से टूट-टूट कर अलग होने लगे और अपने को स्वतंत्र घोषित करने लगे। जबकि

अब्द-अल-रहमान के समय अरब प्रसिद्धि और शक्ति के शिखर पर पहुँच गये थे वे ही अब स्पेन में अपने सच्चे स्वरूप और पृथकतावादी प्रवृत्ति की ओर लौटने लगे। अब्द-अल-रहमान के पुत्रों के अधीन वे अब तेजी के साथ पतन के गर्त्त में लुढ़कते जा रहे थे।

यद्यपि अब्द-अल-रहमान का शासन विद्रोहों और षड्यंत्रों के कारण अशांत रहा पर उसके परिवार पर इन सब बातों का कुछ भी प्रभाव न था। अपने प्राधिकार के विरुद्ध प्रयत्नों को दवाने के लिए वह भले ही बड़े और निर्दय उपाय इस्तेमाल में लाता हो पर वह स्वभाव से नर्म दिल का था और उसे कला और साहित्य से प्रेम था। इतिहासकार इब्न अल अथीर उसका चित्रण एक लम्बे, पतले-दुबले एवं वक्र आकृति वाले व्यक्ति के रूप में करता है। उसके अनुसार वह शिक्षित, दक्ष और कवि था तथा इसमें अथक शक्ति, तीक्ष्ण बुद्धि एवं दूरदर्शिता थी और साथ ही वह अपने कार्य के प्रति अनुरक्त, उदार और सहिष्णु था। परिश्रम और प्रशासनिक योग्यता में उसकी तुलना अब्बासिद खलीफा अल-मंसूर से की जा सकती है। उसने राजधानी कारडोवा को शानदार इमारतों और बागीचों से सजा दिया। उसने एक गिरजाघरनुमा मस्जिद का निर्माण भी शुरू कराया पर उसे पूरा करने तक वह जीवित न रह सका। प्रोफेसर हिट्टी लिखते हैं—"सीरिया का परित्यक्त व्यक्ति, उत्तरी अफ्रिका का आवारागर्द और दक्षिणी स्पेन का दावेदार, द्वितीय गौरवपूर्ण उमैय्यद राजवंश का संस्थापक एवं पश्चिम और पूर्व के दो सबसे बड़े शासकों का समकक्ष अब्द-अल-रहमान प्रथम अरब शासक था जिसका नाम यूरोपीय इतिहास में अमिट रूप से अंकित है।"[६]

अमीर हिशाम (सन् ७८८-७९६)

जब सन् ७८८ में अब्द-अल-रहमान की मृत्यु हुई तो उसने अपनें पुत्र हिशाम के लिए एक शक्तिशाली सेना पर आधारित एक सुनियोजित राज्य छोड़ा। यद्यपि अपनी अदम्य शक्ति से उसने विभेद के कीटाणुओं को दवा रखा जो समूचे देश में व्याप्त थे पर वह उनका पूरी तरह उन्मूलन न कर पाया था। अरब उच्च वर्ग ने उसके मैत्री का हाथ अनिच्छा के साथ ही स्वीकार किया था और मुस्लिम सरदारों के दावों के विरुद्ध नव-मुस्लिम धर्मान्तरितों का प्रतिरोध यहाँ पश्चिम (स्पेन) में भी महसूस किया जा रहा था।

अरब इतिहासकारों द्वारा अल-दाखल (नवागन्तुक) के रूप में नामित अब्द-अल-रहमान प्रथम द्वारा स्थापित राजवंश दो और तीन चौथाई शताब्दियों (सन्

---

६. फिलिप के० हिट्टी—मेकर्स औव अरब हिस्ट्री, पृ० ७५।

७५६-१०३१) तक कायम रहा। उसका चरमोत्कर्ष आठवें अमीर अब्द-अल-रहमान तृतीय (९१२-६१) में पहुँचा जो अमीरों की पंक्ति में महानतम था और जिसने ही सर्वप्रथम खलीफा की उपाधि ग्रहण की (सन् ९२९)। खलीफा अब्द-अल-रहमान का शासन स्पेन प्रायद्वीप में सर्वोच्च अरब शासन था। उमैय्यद शासन की पूरी अवधि में स्पेन की राजधानी कारडोवा ही रही और वहाँ इस अवधि में अतुलनीय समृद्धि रही। उसे उस समय के बगदाद के पश्चिमी प्रतिद्वन्द्वी की संज्ञा दी जा सकती है।

जब तक अब्द-अल-रहमान प्रथम के धार्मिक और विद्वान पुत्र हिशाम प्रथम (सन् ७८८-९६) ने शासन किया, अशांति का कोई तात्कालिक कारण उपस्थित न हुआ। हिशाम एक न्यायी, नर्म दिल वाला उदार शासक था—"सच्चे अर्थ में धार्मिक और गुणों में आदर्श।" वास्तव में उसकी उपमा उमर बिन अब्दुल अजीज से दी गई है। उसके साथ ही उसका प्रशासन दृढ़ और शक्तिशाली था। अशांतियों को मजबूती के साथ दबाया जाता था और किसी भी दुष्कर्मी को दंडित किये बिना न छोड़ा जाता था। उसके अधीन लोग सुखी और समृद्ध हुए। उसने अस-साम पुल फिर से बनवाया और अपने पिता द्वारा शुरू की गई गिरजाघरनुमा मस्जिद पूरी कराई। उसने अपने राज के नगरों को सुन्दर इमारतों से सजाया। पर न तो उसके शासन की दृढ़ता और न ही उसके चरित्र की मृदुता अरब उच्च वर्गों को विद्रोह करने से रोक पाई। शासनारूढ़ होने के तुरत बाद उसे खुद अपने भाई के विद्रोह का सामना करना पड़ा। इस विद्रोह को दबाने के बाद वह अपने भाई सुलेमान के पुत्र मारू के विद्रोह को दबाने के लिए इब्रो की ओर बढ़ा। उसने फ्रैंक राजा शार्लमैन को स्पेन पर चढ़ाई के लिए उकसाया था। विद्रोही पराजित हुआ और मारा गया। सारगोसा और बारसेलोना ने उमैय्यद सम्राट की सार्वभौम सत्ता पुनः स्वीकार की।

फ्रैंकों के साथ युद्ध

अपने साम्राज्य में शांति स्थापित करने के बाद हिशाम ने अपना ध्यान उत्तर की ओर दिया। ईसाई सीमान्त की जनजातियों का विद्रोह दबाना आवश्यक हो गया था क्योंकि उनके हमले निरन्तर हो रहे थे और दिन-पर-दिन सांघातिक होते जा रहे थे। वे आगजनी करते, हत्याकांड मचाते और जहाँ भी जाते, सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देते। वह सदैव की भाँति सभ्यता और बर्बरता के बीच संघर्षरत था। हिशाम ने फ्रैंकों को सबक सिखाना चाहा जिनकी नीति मुस्लिम स्पेन के लिए बराबर धोखेबाजी की रही। इस उद्देश्य से उसने दो सेनाएँ भेजीं। एक ने केटेलोनिया होते हुए फ्रांस में प्रवेश किया, सरडाने को पराजित किया और नारबोन तथा अन्य अनेक स्थानों पर फिर कब्जा कर लिया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी सेनापति काउन्ट ऑव

टोलोस, जो शार्लमैन के पुत्र के लिए सैप्टीमैनिया की रक्षा कर रहा था, बुरी तरह पराजित हुआ। हिशाम द्वारा भेजी गयी दूसरी सेना भी अपने कार्य में उसी तरह सफल हुई। अपने प्रधान बरमुडा के अधीन गैलिसिया के जनजाति वाले उसी तरह पराजित हुए और उन्हें इस युद्ध में एक बड़े हत्याकांड का शिकार होना पड़ा। अन्त में उन्हें शांति के लिए अनुरोध करने को बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार अब्द-अल-रहमान प्रथम द्वारा स्थापित उमैय्यद साम्राज्य को सुदृढ़ और शान्त करने में हिशाम को सफलता मिली।

हिशाम को मदीना के चिकित्सक इमाम मलिक के प्रति जो कानून के चार प्रमुख सुन्नी विचारधाराओं में से एक संस्थापक था, बड़ा आदर था। उसने इस बात की अत्यधिक चेष्टा की कि स्पेन प्रायद्वीप में कानून संबंधी मलिक की प्रणाली लागू की जाय। उस समय के बाद से यह कानून प्रणाली व्यवहारतः अन्डालूसिया (स्पेन) का राजकीय धर्म बन गयी। फकीह धर्म-तान्त्रिक और न्यायवादी दोनों ही थे। हिशाम उनके प्रति बड़ा आदर रखता था और जनता तथा राज्य में उन लोगों का बड़ा प्रभाव और अधिकार था।

आठ वर्षों तक शासन करने के बाद सन् ७९६ में हिशाम की मृत्यु हो गयी। उसने असंख्य धार्मिक कार्य किए और दरिद्रों और पीड़ितों को सुरक्षा प्रदान की। गरीबों की शिकायतों और व्यथाओं को जानने के लिए वह एक साधारण व्यक्ति के भेष में कारडोवा की सड़कों पर रात में घूमा करता था। वह अक्सर बीमारों और समाज के निचले स्तर के लोगों के बिस्तर के पास उनकी स्थिति देखने जाता था। साथ ही वह गरीबों के घरों में भी जाकर उनकी हालत देखता था और कोमल स्नेह के साथ उनकी चिंताओं और कठिन समस्याओं की कहानियाँ सुनता था। उसने कारडोवा का पुल फिर से बनवाया।

हकाम प्रथम (७९६-८२२)

हिशाम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र हकाम प्रथम बना। उसने अपना उप-नाम अल-मंतुस्सिर (विजेता) रखा। इतिहासकार इब्न उल-अथीर का कहना है कि वह बुद्धिमान, साहसी एवं सुदक्ष शासक था। वह अंडालूसिया (स्पेन) का प्रथम सम्राट् था जिसने अपने इर्द-गिर्द शान-ओ-शौकत और सज-धज का वातावरण रखा। फिर भी उसके शासन-काल में निरंतर आंतरिक उपद्रव होते रहे। उसे अपने राज्य की सुरक्षा के लिए अनवरत संघर्ष करना पड़ा। पर इस कार्य में उसने अपने दादा अब्द-अल-रहमान प्रथम की जैसी ही शक्ति दिखलाई। पर इसके साथ ही वह प्रसन्नचित्त और मौजपसंद शासक था। वह काफी खर्चीला भी था तथा जीवन के

उपभोग के लिए धन व्यय करने में कोई कोताही न बरती। उसे शतरंज और शराब का चस्का था। वह न्यायविदों और धर्मतांत्रिकों के समुदाय के बजाय कवियों, गायकों, और विद्वानों के साथ रहना अधिक पसंद करता था। इस कारण वह फकीहों (धर्मतांत्रिकों) के बीच अलोकप्रिय हो गया।

धर्मतांत्रिकों (फकीहों) का प्रभाव और उनके उपद्रव

विधि-शास्त्र की "अवाजई" विचारधारा का प्रभाव अब तक स्पेन में था जिस तरह उत्तरी अफ्रिका में था। उसका स्थान हिशाम के अधीन भी ऊपर उल्लिखित मलिक की विचारधारा ने ले लिया होगा जिसका प्राधान्य समूचे उत्तरी अफ्रिका में था। उसके प्रतिनिधि फकहा (एकवचन फकीह) में पहले से ही विशेषता यह थी कि न्याय के प्रति उनकी विशिष्ट निष्ठा थी और साथ ही एक उन्मत्ततापूर्ण महत्वाकांक्षा भी। फलतः उन्होंने हकाम की जीवन-शैली पर विशेष आपत्ति की जो उसके पूर्वजों की जीवन-शैली से भिन्न थी। हकाम की जीवन-शैली में उन्हें धर्म-संकोच का अभाव प्रतीत हुआ। फलतः असंतुष्ट उच्च वर्गों के साथ मिल कर उन्होंने नव इस्लाम धर्मान्तरितों को हकाम के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। पर फकीहों के असंतोष के अन्य गंभीर कारण भी थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हिशाम की उदार पर संभवतः गलत नीति के कारण फकीह साम्राज्य में शक्तिशाली हो गए थे। दूसरी ओर हकाम ने उनके प्रति आदर-भाव रखते हुए भी और स्थापित न्यायालयों के निर्णयों को कार्य रूप देते हुए भी उन्हें राज्य के मामलों में सभी रूपों में हस्तक्षेप करने से रोक दिया। फलतः सत्ता की आशा में विफल होने के कारण वे निराशोन्मत्त हो गए। पर वे "अच्छे लिपिक होने के घमंड" से चूर थे, इसलिए अशांति फैलाने वाले तत्वों के नेता बन गए। उन्होंने हकाम को अधार्मिक घोषित कर, एक धर्मविरोधी शासक के रूप में उसकी निन्दा की। साथ ही उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि ऐसे धर्मविरोधी शासक की आत्मा को भी मुक्ति मिले। इस प्रकार उसने मुस्लिम स्पेनवासियों की, जिनमें उनका अपरिमित प्रभाव था, धर्मान्धता को उत्तेजित किया। स्पेन के प्रमुख नगरों कारडोवा, सेविले, टोलेडो और मैड्रिड के नव-इस्लाम धर्मान्तरित उच्चतम परिवारों के थे। सम्पूर्ण स्पेन की आबादी का अधिकांश भाग नव-इस्लाम धर्मान्तरित था। एक ओर अरबों और वर्बर जनजाति वालों और दूसरी ओर, विशेषतः उत्तरी प्रांतों में मुसलमान और ईसाई दोनों ही स्पेनवासियों के बीच विवाह प्रचलित हो गए थे। इन विवाहों से हुई संतान को मुवालद या उत्पन्न (अरब वंश में) कहा जाता था। अब मुस्लिम स्पेनवासी अरब आधिपत्य के विरुद्ध क्रुद्ध विद्रोह करने लगे थे। फकीहों ने इन कटु वंशगत मतभेदों को शांत करने के बजाय अपने को मूल स्पेनवासियों का पक्षधर बना दिया। साथ ही उन्होंने सम्राट् के विरुद्ध विद्रोही प्रवृत्ति को और भी उकसाया।

हकाम की आन्तरिक और बाह्य समस्याएँ

इस बीच हकाम के दो चाचाओं सुलेमान और अब्दुल्ला ने, जिन्हें हिशाम ने क्षमा कर दिया था, साम्राज्य के विरुद्ध पुनः अस्त्र उठाया। अब्दुल्ला ऐवस-ला चैंपल में फ्रैंक राजा शार्लमैन से मिलने गया ताकि उस महत्वाकांक्षी एवं चालबाज सम्राट् से हकाम के विरुद्ध सहायता माँगे। अब्दुल्ला ने टोलेडो पर कब्जा कर लिया और सुलेमान ने वैलेंसिया पर। उसी समय शार्लमैन के दो पुत्र, लुई और चार्ल्स उत्तरी प्रान्तों में भीषण तैयारी के साथ हमला कर बैठे। इसके अलावा गैलिसिया के प्रधान अलफौन्सो द्वितीय ने अरागान में हमला किया। उसका साथ बैस्क निवासी और ऐक्वेटेन के फ्रैंक दे रहे थे। अलफौन्सो सन् ८०१ में हकाम प्रथम से बारसेलोना छीन लेने में सफल हुआ। उसने दक्षिण की ओर एक हमले के दौरान कुछ समय के लिए लिस्बन पर भी कब्जा कर लिया। इन कठिन स्थितियों में हकाम ने अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन किया। उसने अपनी सेना के एक छोटे-से भाग को टोलेडो की रक्षा के लिए छोड़ दिया और आक्रमणकारी गैलिसियावासियों की ओर प्रस्थान किया। एक घनघोर लड़ाई में उसने उन्हें पराजित कर दिया तथा उनका देश नष्ट-विनष्ट कर दिया। फिर वह फ्रैंकों की ओर मुड़ा। उसने उन लोगों को भी पेरीनीज के बाहर एब्रो के उस पार धकेल दिया। इन विजय-अभियानों के कारण उसके सैनिकों ने उसे अल-मुजफ्फर (विजयी) की उपाधि दी। फिर वह टोलेडो वापस आ गया। सुलेमान हरा दिया गया और एक युद्ध के दरम्यान मारा गया। अब्दुल्ला ने आत्म-समर्पण किया और उसे क्षमादान किया गया। जबकि हकाम इस प्रकार युद्ध में व्यस्त था तो फ्रैंकों ने बारसेलोना पर कब्जा कर लिया। इस अत्यंत उपयोगी और महत्वपूर्ण नगर पर उनका कब्जा इसलिए संभव हो सका कि वहाँ के गवर्नर ने धोखेबाजी की थी। उसे उम्मीद थी कि शार्लमैन उसे वहाँ का स्वतंत्र राजा घोषित कर देगा। इस प्रकार शार्लमैन को स्पेन में एक मजबूत अड्डा मिल गया। स्पेन में उसके द्वारा अधिकृत प्रदेश दो भागों में विभक्त थे। इनमें पहला सेप्टीमैनिया था जिसके अन्तर्गत कैटेलोनिया भी था और जिसकी राजधानी बारसेलोना थी। उसके द्वारा स्पेन में अधिकृत दूसरा भाग गास्कोनी का प्रदेश जिसमें नावेरे और अरागान के फ्रैंक नगर थे। सन् ८१६ में शार्लमैन के पुत्र और उत्तराधिकारी तथा हकाम के बीच सन्धि हुई पर वह चिरस्थायी न रह सकी।

कारडोवा में विद्रोह

सन् ८०५-८०६ में दो बार अमीर हकाम को अपनी राजधानी कोरडोवा में विद्रोहों का दमन करना पड़ा। सन् ८०५ में एक दिन जब हकाम कारडोवा

को सड़कों से गुजर रहा था तो भीड़ ने उस पर पत्थरों से प्रहार किया और रास्ते में खड़े धर्मतांत्रिकों ने इस पर हर्षध्वनि की। हमले के नेताओं में से ७२ गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हें हकाम को अपदस्थ करने की एक योजना में अन्तर्लिप्त पाया गया। बाद में उनको सूली पर चढ़ा दिया गया। उसके बाद, एक के बाद एक विद्रोह होने लगे जिनकी चरम परणति सन् ८१३ में एक गंभीर विद्रोह में हुई। उसका नेता बर्बर जनजाति का फकीह था। क्रुद्ध भीड़ ने हकाम को उसके महल में बंदी बना लिया। पर अमीर हकाम की घुड़सवार सेना ने अन्त में विद्रोहियों के दमन में सफलता पायी। अंचल-स्थित क्षेत्रों में विद्रोह को निर्दयता के साथ दबाया गया। उसके नेताओं को जिनकी संख्या तीन सौ थी सूली पर चढ़ा दिया गया। वहाँ की पूरी आबादी को आदेश दिया गया कि वे तीन दिनों के भीतर स्पेन खाली कर दें। विद्रोहियों का निवास स्थान तोड़-फोड़ कर गिरा दिया गया। फिर सन् ८१७ में गुआडलक्यूवीर नदी के बायें तट पर कारडोवा के दक्षिणी अंचल के निवासियों ने धर्मान्ध **फकीहों** (एकवचन **फकीह**) द्वारा उत्तेजित किये जाने पर अमीर हकाम के किले पर धावा बोला। हकाम के अंगरक्षक ने विद्रोहियों का कत्ले-आम कर दिया। हकाम ने अंचल को मटियामेट कर डाला और उसके निवासियों को, जिनकी संख्या करीब ६० हजार थी वहाँ से निकाल बाहर किया। उन्हें अन्यत्र बसने का आदेश दिया गया। उनमें से एक तिहाई मोरक्को, खासकर फेज में बस गए जहाँ उनके इस निवास स्थान को अभी भी "स्पेनवासियों का तट" कहा जाता था। बाद में उन लोगों में से अन्य मिस्र चले गए तथा पहले सिकन्दरिया में अपने पैर जमाये। फिर अन्य दुःसाहसिकों के साथ मिलकर अबासिद गवर्नरों के विरुद्ध १० वर्ष तक नगर को अपने कब्जे में रखा। ये गवर्नर अब्बासिद खलीफा मामून के अधीन थे। बाद में विद्रोही पराजित किये गये और उन्हें क्रेट में भेज दिया गया।

टोलेडो तथा अन्य नगरों में विद्रोह

टोलेडो कभी स्पेन की राजधानी था। इसलिए इस शानदार भूतपूर्व राजधानी नगर के निवासियों के हृदय में अपने पुराने वैभव की याद बराबर कसक पैदा करती थी। फलतः वे अरबों के विरुद्ध विद्रोह कर बैठे। उन्हें अपनी समृद्धि, धन और बड़ी जनसंख्या का घमंड था। उन्होंने सम्राट का आदेश मानने से इन्कार कर दिया और वे वैसे किसी गवर्नर को वहाँ रहने देना स्वीकार न करते थे जो उन्हें स्वीकार्य न था। टोलेडो की जनता ने कई बार विद्रोह किया पर उन्हें हर बार दबा दिया गया। टोलेडो में नव-धर्मान्तरित मुसलमानों ने वहाँ पर अभी भी वर्तमान ईसाइयों के साथ मोर्चा बना कर अपनी स्वतंत्र नगर सरकार घोषित कर दी और इस प्रकार अमीर हकाम की अवज्ञा की।

कुछ स्पेनी मुसलमान अरबों के अत्यन्त उपयोगी मित्र थे और उन्होंने अपना उपयोग अपने भूतपूर्व स्वधर्मावलंबियों के विरुद्ध करने दिया। उदाहरण के लिए हकाम के प्रति पूर्णतः समर्पित एक नवइस्लाम धर्मान्तरित आमरूस इब्न यूसुफ को टोलेडो का गवर्नर नियुक्त किया गया। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, टोलेडो मुसलमानों के अधीन अशांत क्षेत्र हो गया था। मुस्लिम अधीनता में स्वधर्मत्यागी मुसलमान और ईसाई निरन्तर विद्रोह की स्थिति में थे। गवर्नर आमरूस उनके विरुद्ध घात लगा कर उनके नेताओं को फुसला कर एक मनचाहे स्थान में ले गया और उनमें से एक-एक को क्रूरतापूर्वक मार डाला। यह स्थान गवर्नर आमरूस के नव-निर्मित किले के प्रांगण में एक कब्र के किनारे था। "खाई के इस हत्याकांड" के बाद कई वर्षों तक अशांत टोलेडो में शांति रही। पर अन्य नगर जैसे कि मेरिडा अब्द-अल-रहमान द्वितीय का शासन शुरू होने तक अशांत स्थिति में थे। यह नया शासक उमैय्यद स्पेनी एकता का शक्तिशाली निर्माता था और संगीत तथा खगोल-शास्त्र का एक उत्साही संरक्षक।

अब्द-अल-रहमान द्वितीय (सन् ८२२-८५२)

छब्बीस वर्षों तक शासन करने के बाद हकाम प्रथम की मृत्यु सन् ८२२ में हुई। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अब्द-अल-रहमान द्वितीय हुआ जिसका उपनाम अल अवसात (मध्यवर्ती) था। "उसका शासन" एक अरब इतिहासकार ने कहा है, "शांति और समृद्धि तथा वैभव का था। लोग खुशहाल थे और राज्य की आमदनी बहुत काफी थी।" वह कला और साहित्य का प्रेमी था तथा प्रतिभा-वानों और शिक्षितों के साथ रहने का इच्छुक।

अब्द-अल-रहमान द्वितीय चार व्यक्तियों से प्रभावित था : एक महिला, एक हिजड़ा, एक धर्मतांत्रिक एवं एक गायक। महिला उसकी प्रिय पत्नी सुल्ताना (रानी) तरूब थी जो बहुत कूटनीतिज्ञ थी। हिजड़ा उसका प्रतिभावान दास नस्त्र था जो शाही प्रबंधक था तथा एक स्पेनवासी का पुत्र। रानी का वह प्रिय पात्र था। धर्मतांत्रिक कारडोवा के फकीह एवं इस्लाम धर्मत्यागियों के विद्रोह का कुख्यात बर्बर नेता याहिया इब्न याहिया (सन् ८४९) था जो बर्बरों में मसमुद जनजाति का था। याहिया मलिक इब्न-अनास का शिष्य था। यह कानूनविद मुख्य रूप से इसमें दिलचस्पी रखता था कि स्पेन में अपने गुरु मलिक इब्न अनास के सिद्धान्तों के लिए प्रमुख स्थान हासिल करें। जहाँ तक अब्द-अल-रहमान द्वितीय पर प्रभाव रखने वाले गायक का प्रश्न था, वह फारसी संस्कृति से प्रभावित जिरयाब था। वह इशाक अल-मौसिली का शिष्य था जो अपने गुरु की ईर्ष्या से बचने के

लिए स्पेन आया था। वह उन गायकों में था जो खलीफा हारुन-अल-रशीद और उसके पुत्रों के दरबार में रह चुका था। वह न केवल गायक था बल्कि साहित्यिक और वैज्ञानिक भी। जब जिरयाब सन् ८४२ में स्पेन पहुँचा तो वह इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि अमीर अब्द-अल-रहमान ने कारडोवा में स्वयं उसका स्वागत किया। वह कारडोवा को द्वितीय बगदाद का रूप देना चाहता था। उसका दरबार शानदार और सज-धज से पूर्ण था। वह हारून-अल-रशीद के खर्चीले तौर-तरीकों का अनुकरण करता था। वह युवा गायक का स्वागत करने के लिए सवारी पर स्वयं आया। जिरयाब अपने संरक्षक के साथ रहने लगा। उसे वेतन के रूप में ३,००० दिनार मिलते थे और अमीर के साथ उसकी बहुत घनिष्ठता थी। उसके स्पेन आने पर वहां के सभी गायकों की ज्योति मंद पड़ गई। थोड़े ही समय में जिरयाब ने न केवल दरबार में संगीत को नई दिशा दी बल्कि अमीर की इस महत्वाकांक्षा को भी और हवा दी कि वह भी बगदाद के अपने प्रतिद्वन्द्वी (अब्बासिद खलीफा) की भाँति धन-सापेक्ष्य जीवनोपभोग करे। जिरयाब जल्द ही एक कवि एवं खगोल-विद्या तथा भूगोल के अध्येता के रूप में चमक उठा। इससे भी महत्व-पूर्ण बात यह थी कि वह बोल-चाल और व्यवहार में इतना कुशल, हाजिर-जवाब और मनोरंजक था कि थोड़े ही समय में उस अवधि के फैशन का आविष्कर्ता भी हो गया।

ईसाई जनजातियों के हमले

अब्द-अल-रहमान द्वितीय के सत्तासीन होने के तुरत बाद लियोन के प्रधान अलफोंसो द्वितीय ने अरागान प्रांत के मदीना-सलीम जिले (मेडिनासेली) पर हमला किया। उसके उदाहरण का अनुकरण अन्य जनजातियों द्वारा किया गया जिन्होंने सारासेनी क्षेत्रों पर आक्रमण किया। उन्हें दंडित करने के लिए एक मजबूत सेना भेजी गई। उनको पूरी तरह पराजित किया गया। उनकी मीनारें और किले भूमिसात कर दिए गए और खुद अलफोंसो द्वितीय द्वारा शासित राज्य लियोन नष्ट कर दिया गया। जब उन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया तो उनसे माँग की गई कि वे नियत कर के अलावा भारी जुर्माना अदा करें तभी उनके मुसलमान बंदियों को छोड़ा जायगा और युद्ध में बन्धक व्यक्ति दिये जाएँगे पर साथ में शर्त यह रखी गई कि भविष्य में वे अपना व्यवहार अच्छा रखेंगे। फ्रैंकों ने भी इस अवसर से फायदा उठाने की कोशिश की। वे अस्त्र-शस्त्र के साथ कैटालोनिया के उन हिस्सों में प्रवेश कर गए जो अरब सेना के अधीन था। उन लोगों की भी करारी हार हुई और वे अपनी सीमा के उस पार धकेल दिए गए।

नौर्मनों का पहली बार प्रवेश

अब्दुल रहमान द्वितीय के शासन में उत्तरी लोग या नौर्मन, जिन्हें अरब माजूस कहते थे, स्पेन के समुद्री तट पर प्रकट हुए। समुद्र से जहाँ तक पहुँचा जा सकता था, वैसे कई स्थानों में उन्होंने लूट-मार की, पर कारडोवा के राजा द्वारा भेजे गये समुद्री बेड़े और फौज के पहुँच जाने पर वे भाग खड़े हुए। मेरिडा के ईसाइयों ने, फ्रांसीसी शासक लुईले डेबोनेयर द्वारा उकसाये जाने पर कई बार विद्रोह किया पर उन्हें आसानी से परास्त कर दिया गया। टोलेडो में एक नया विद्रोह हुआ जिसमें यहूदियों और ईसाइयों ने भाग लिया। उसे भी अन्त में सन् ८३७ में कुचल दिया गया।

आन्तरिक क्षेत्र में कठिनाइयां, जिनके कारण अमीर अब्द-अल-रहमान द्वितीय को मेरिडा और टोलेडो को बलपूर्वक परास्त करना पड़ा था, अभी भी बढ़ रही थीं। उसी समय नौर्मनों ने सन् ८४४ में स्पेन पर फिर हमला किया और सेविले प्रांत पर कब्जा कर लिया। अमीर ने अपने दरबार के कवि याहिया इब्न-अल-हकम अल-गजल को नौर्मन नेता से युद्ध विराम-सन्धि करने के लिए भेजा। नेता डेन्मार्क के एक द्वीप में याहिया अपना निवास-स्थान बनाये हुए था। उसने उत्तरी लोगों के बारे में स्पेन को पहली बार जानकारी दी।

कारडोवा में ईसाइयों का आंदोलन

हकाम के कमजोर उत्तराधिकारी अब्द-अल-रहमान द्वितीय के शासन में टोलेडो प्रांत ने अपने को फिर स्वतन्त्र घोषित कर दिया। कारडोवा में भी ईसाइयों के कारण नई कठिनाइयां उत्पन्न हो रही थीं। उन लोगों ने अब तक मुसलमानों के सहिष्णु शासन को स्वेच्छया बर्दाश्त किया था और वे इस्लाम की उच्चतर संस्कृति से बहुत प्रभावित थे। अब्द-अल-रहमान द्वितीय के शासन के अन्त में विजेताओं (अरबों) की भाषा, साहित्य, धर्म और हरम (रनिवास) समेत अन्य संस्थानों का जादू ऐसा था कि बड़ी संख्या में नगर के ईसाई अरबों का अरबीकरण हो गया था यद्यपि उन्होंने वास्तव में इस्लाम धर्म न अपनाया था। वे अरबों की सभ्यता से चकाचौंध से रह गये थे और कला, कविता, दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में अपनी हीनता के बोध के कारण स्पेन के ईसाई मूल निवासी अरबों के रहन-सहन की नकल करने लगे थे। ये नकलबाज संख्या में इतने हो गये थे कि उनका अपना एक वर्ग हो गया था और उन्हें एक नये नाम मोजारब से पुकारा जाने लगा था।

अरबीकरण की इस प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कारडोवा के अति-उत्साही ईसाइयों में एक विचित्र आंदोलन शुरू हो गया। अब यूलोजियस जैसे

धर्मान्ध ईसाई पुरोहितों ने ईसाइयों का विश्वास अपने धर्म में पुनः जाग्रत करने के लिए भीषण प्रयास शुरू किया। ऐसे बहुत-से ईसाइयों ने हजरत मुहम्मद की निंदा करके सरकार के हाथों शहीद बनना भी स्वीकार किया। अमीर अब्द-अल-रहमान द्वितीय की प्रेरणा पर प्रधान पुरोहित द्वारा बुलाई गई ईसाइयों की एक सभा ने धर्मान्ध ईसाइयों के इस आंदोलन का विरोध किया पर उसका कोई असर न हुआ। नीचे के पादरियों ने उक्त आंदोलन द्वारा सरकार को बार-बार तंग किया। अमीर अपने पिता की जैसी कड़ाई से इस आंदोलन को दबा न सका। धर्मान्ध ईसाइयों का यह आंदोलन सन् ८५२ में अब्द-अल-रहमान की मृत्यु तक जारी रहा।

मुहम्मद प्रथम (सन् ८५२-८६६)

अब्द-अल-रहमान द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका पुत्र मुहम्मद प्रथम बना। "न्याय के मामले में," इतिहासकार इब्न-उल अथीर कहता है, "वह अपने पिता के पद-चिह्नों पर चला। उसने पहली बार अंडालूसिया (स्पेन) की सरकार का संगठन किया और राज्य के प्रशासन के लिए नियम-कानून बनाये। उसने अपनी उदारता के चलते सामान्य जनों की स्थिति में सुधार किया। राज्य के संगठन के मामले में वह उमैय्यद खलीफा अब्द-अल-मालिक के पुत्र वालिद द्वितीय के समान था।" अब्द-अल-रहमान द्वितीय के उत्तराधिकारी मुहम्मद प्रथम ने, जो फकहा (धर्मतांत्रिकों) की धर्मान्धतापूर्ण भावना में पूरी तरह प्रशिक्षित था, उसने लम्बे शासन (८५२-८८६) में आबादी के दोनों तत्वों—अरबों और ईसाइयों—के बीच संघर्ष के आग में घी डालने का काम किया। उसने समझौताप्रिय ईसाइयों को भी धर्मान्ध धर्मावलम्बियों के अपराध के लिए प्रायश्चित करने के लिए कहा। इस कारण, विशेषतः, टोलेडो के परेशान ईसाइयों ने लिओन के राजा ऑरडोनो प्रथम की ओर सहायता के लिए देखा। फलतः राजा का सेनापति, काउन्ट ऑव वियेरा ने सन् ८५३ में मुस्लिम क्षेत्र पर हमला किया और वदी सालित (गुआडा सिलेट) में अमीर मुहम्मद की सेना को पराजित कर दिया। बाद में टोलेडो-निवासियों की तीन गम्भीर पराजयों से मुहम्मद प्रथम की सेना की पराजय की क्षतिपूर्ति हो गयी। पर मुहम्मद प्रथम टोलेडो नगर पर एक स्थायी और प्रभावकर घेराबन्दी डालने के बारे में कोई निर्णय न कर सका। फलतः टोलेडो ने और अस्सी वर्षों तक अपनी स्वतंत्रता कायम रखी। कारडोवा के ईसाइयों पर प्रेरणाप्रद प्रभाव पड़ा। यद्यपि यूलोजियस और लियोक्रिटिया की मृत्यु (सन् ८५९) से धर्मान्ध ईसाइयों में उत्पन्न शहादत की लहर खत्म हो गई थी पर ईसाई धर्म में विवाह के इन पक्षधरों का प्रभाव समूचे देश पर पड़ता रहा। सन् ८६१ में वास्कोनेस (नावेरे) को पराजित किया गया और उनकी राजधानी (पाम्पेलुना) पर कब्जा कर लिया गया। लिओन के राजा ने युद्धविराम

के लिए अनुरोध किया जो बिना शर्त स्वीकार कर लिया गया। मुहम्मद के शासन के अन्त में राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह छिड़ गये। सन् ८८३ में जबकि मुहम्मद ने अलफोन्सो महान के साथ युद्धविराम का प्रस्ताव रखा तो उसे धर्मान्ध ईसाइयों के मृत नेता यूलूजियस के शव के अवशेष उसे देने पड़े। यूलूजियस का सिद्धान्त अब एक धर्म-नियम-सा बन गया था। मुहम्मद प्रथम अपने राज्य की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए बहुत चिन्तित था जो उसके पिता की खर्चीली आदतों से काफी खराब हो चुकी थी। वह इस दिशा में अपनी मितव्ययिता में इस कदर आगे बढ़ गया कि उसने अपने राज्य की सैनिक आवश्यकताओं तक की उपेक्षा की। इसका फल यह हुआ कि अस्तूरियनों और नावेरे के साथ युद्ध में मुहम्मद प्रथम काफी कठिनाई में पड़ गया। अरागान में इस्लाम धर्मान्तरित मूसा और उसके पुत्रों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। बड़ाजोज में एक अन्य इस्लाम धर्मान्तरित इब्न मारवान ने अस्तूरियास के अलफोन्सो तृतीय के साथ मिल कर अमीर मुहम्मद के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सन् ८८४ में रोंडा और मलागा के बीच सेरानिया पर्वतीय क्षेत्र में उमर इब्न हफसून[७] ने उमैय्यद शासन के विरुद्ध

७. उमर इब्न हफसून स्पेन के पूर्ववर्ती शासकों विसिगोथिकों का एक मुस्लिम वंशज था। उसका जीवन बड़ा उतार-चढ़ाव का था। उसने बोबास्ट्रो पर्वत के प्राचीन किले में अपना मुख्यालय बना कर डकैतों के संगठनकर्त्ता के रूप में सन् ८८० में जीवन आरंभ किया। उमर को कारडोवा की शाही सेना में कुछ समय के लिए नौकरी मिल गई, पर एलवीरा के पर्वत क्षेत्रवासियों के समर्थन से वह मुस्लिम शासन के विरुद्ध स्पेन के दक्षिणी भाग का नेता बन गया। उसका विद्रोह तीन अमीरों—मुहम्मद (८५२-८८६), अल मुन्धीर (८८६-८८८) तथा अब्दुल्ला (८८८-९१२) के समय तक जारी रहा। स्पेन के दक्षिण के ईसाइयों और असन्तुष्टों की दीर्घ काल से दमित राष्ट्रीयता का वह नेता हो गया। अरबों की दृष्टि में वह "जघन्य" और "दुष्ट" था। भाग्य के अनेक उतार-चढ़ाव के बाद वह स्पेन के उमैय्यदों को सबसे अलग-थलग करने में सफल हो गया। उसने स्पेन का गवर्नर बनने के लिए अब्बासिदों और अफ्रिका के आलाबिद शासकों के साथ वार्ता शुरू की। अपनी इस महत्त्वाकांक्षापूर्ण योजना में असफल होने के बाद उसने सन् ८९९ में अपने पूर्वजों के धर्म के बारे में रहस्योद्घाटन किया जो उस समय तक वह छिपाये हुए था। उसने अपना बपितसमा का (ईसाई) नाम सैमुयल रखा। सैमुयल ने बार-बार स्पेन में उमैय्यद शासन की नींव हिला दी। इससे अब्द-अल-रहमान के उत्तराधिकारियों का प्राधिकार खतरे में पड़ा और उद्धारकर्त्ता की बहुत ज्यादा आवश्यकता थी। (हिट्टी—हिस्ट्री ऑव दी अरब्स, १९६० संस्करण, पृ० ५१८-५१९)

विद्रोह कर दिया। वह बोवास्ट्रो में अपने किले में अमीर मुहम्मद के उत्तराधिकारी मुन्धीर के समय तक डटा रहा जिसने अपने पिता के शासन में युवराज के रूप में उससे युद्ध किया था। मुन्धीर पहले उत्तरी सारगोसा, रूटा, कार्थागेना की ओर बढ़ा और उन पर विजय हासिल करने के बाद लेरिडा को पराजित किया। इस सिलसिले में अब्दुल वहीद रूटी "युग का सबसे बहादुर आदमी" गिरफ्तार किया गया। उसके बाद राजकुमार मुन्धीर इब्न मारवान की ओर बढ़ा, उसे पराजित किया और उसके अड्डे को भूमिसात कर दिया। सारगोसा पर आरागन के विद्रोहियों ने फिर कब्जा कर लिया। इन विद्रोहियों का नेतृत्व मूसा का पौत्र मुहम्मद कर रहा था। उसने उमर बिन हफसून से समझौता कर लिया था। मुन्धीर को बाध्य होकर उन लोगों से युद्ध करना पड़ा। विद्रोही पराजित होकर पहाड़ों की ओर भाग गये। जब शाही सेना वापस चली गई तो उस स्थिति से फायदा उठा कर उमर बिन हफसून फिर प्रकट हुआ। मुन्धीर उसके विरुद्ध फिर बढ़ा और उस देश पर कब्जा कर लिया। उसी समय युवराज मुन्धीर के शिविर में खबर पहुँची कि उसके पिता की मृत्यु हो गई है। उक्त देश की घेरेबन्दी उठा कर वह राजधानी की ओर बढ़ा ताकि सत्तारूढ़ हो सके।

अमीर मुहम्मद विद्वानों का संरक्षक था और "विज्ञान का प्रेमी" भी। वह न्यायप्रिय और बुद्धिमान तथा प्रशासन के नियमों का पूरा जानकार था।"

मुंधीर (सन् ८८६-८८८)

अमीर मुंधीर में शक्ति, विवेकशीलता और बहादुरी के गुण भरपूर मात्रा में थे। यदि उसे लंबा जीवन मिलता तो इसमें संदेह नहीं कि उसने राज्य में पूरी शांति-व्यवस्था स्थापित करने में सफलता पाई होती। उसके समक्ष जो कार्य थे उसमें वह अपनी पूरी शक्ति के साथ जुट गया। वह स्वयं विद्रोहियों के दमन के लिए बढ़ा। आर्किडोना पर कब्जा कर लिया गया। उमर इब्न-हफसून के मजबूत अड्डे बोबास्ट्रो को घेर लिया गया। हद से ज्यादा दमित हो जाने के कारण विद्रोहियों ने आत्म-समर्पण कर दिया। पर उन्हें समझौते के अधीन क्षमादान किया गया था उसे जल्द ही उन्होंने तोड़ दिया। मुंधीर युद्ध-क्षेत्र की ओर फिर बढ़ा पर बोवास्ट्रो के निकट एक लड़ाई में मारा गया।[८] यद्यपि उसका शासन दो ही

८. इतिहासकार डोजी कहता है—"उसे उसके चिकित्सक ने जहर दे दिया।" उसने उसकी मृत्यु की तिथि २९ जून सन् ८८८ दी है। इतिहासकार कार्ल ब्रोकेलमैन कहता है—"केवल दो वर्षों के शासन के बाद मुंधीर को उसके भाई अब्दुल्ला (८८८-९१२) ने जहर दे दिया और विद्रोहियों के साथ शांति स्थापित कर ली" (हिस्ट्री ऑव दी इस्लामिक पीपुल्स, पृ० १८५)।

वर्षों तक रहा, पर इस अवधि में जनता फली-फूली और उसके धन और आराम में वृद्धि हुई।

अमीर अब्दुल्ला (८८८-९१२)

मुंधीर का उत्तराधिकारी उसका भाई अब्दुल्ला बना। "उसके शासन में," इतिहासकार इब्न उल अथीर कहता है, "अन्दालूसिया (स्पेन) पूरी तरह अशांत हो गया। हर ओर विद्रोह उभड़ गए। और यह स्थिति उसके शासन की पूरी अवधि में रही।" स्पेन के इतिहास के अत्यधिक संकटापन्न मोड़ पर वह सिंहासनारूढ़ हुआ। लंबे समय से चल रहे सामाजिक कलह से राज्य की शक्ति क्षीण हो गई थी। ऐसा लगता था मानो राज्य विनाश और विध्वंस की ओर तेजी से बढ़ रहा था। अमीर अब्दुल्ला का विरोध न केवल स्पेनी पर्वतीय क्षेत्र के लोग कर रहे थे बल्कि अरब कुलीन तंत्र के लोग भी जिन्होंने देखा कि व्यापक अशांति में उनके स्वतंत्र होने का अवसर आ गया है। उपद्रव और विद्रोह हर क्षेत्र में भड़क रहे थे। लंबे समय से स्वयं अमीर की तरह बड़े अरब जमीन्दार भी दासों की सेना रखते थे। उन्हें आपसी लड़ाइयों पर समय-समय पर इस्तेमाल में भी लाते थे। एक ऐसे जमीन्दार कुरैब इब्न खालदुन ने अपनी ऐसी सेना से, अब्दुल्ला के सत्तासीन होने के तुरत बाद, पूरे अलज राफे क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। पर जब सेविले प्रान्त के नव इस्लाम-धर्मान्तरितों ने आस-पास के पर्वतीय क्षेत्र में बसे बर्बर जनजाति वालों के साथ मिल कर अमीर अब्दुल्ला के प्रति निष्ठा के त्याग की घोषणा की तो कुरैब ने अरब आधिपत्य की रक्षा के लिए अमीर के साथ मोर्चा बनाया और दोनों ने मिलकर सेविलियनों का विद्रोह दबा दिया। पर आठ साल बाद अमीर का एक अन्य अरब सरदार इब्राहीम इब्न-हज्जाज के साथ अमीर का मतभेद हो गया। हज्जाज ने कुरैब को समाप्त कर दिया और उमर इब्न-हफसून के साथ मोर्चा बनाया। चूंकि अन्य क्षेत्रों के सामन्ती सरदार भी अमीर के प्रति अवज्ञा का भाव प्रकट कर रहे थे इसलिए अमीर बाध्य हुआ कि सेविले प्रान्त का अधिकार इब्राहिम को सौंप दें। पर बाद में इब्राहिम को पूरी तरह पराजित कर दिया गया और उससे सेविले पर से अधिकार छीन लिया गया। बाद में कारडोवा के ईसाइयों ने काउन्ट सेवान्डो के नेतृत्व में इब्न हफसून के साथ अमीर के प्रति विद्रोह करने के लिए समझौता किया। फलतः अमीर अब्दुल्ला ने निर्णयात्मक प्रहार के लिए अपनी फौजें इकट्ठी कीं। लूटमार और सार्वजनिक शक्ति भंग करने के सभी कार्यों का बड़ी कड़ाई के साथ दमन किया गया। अलगरबा, बेजा, शान इस्टेवेन, जेन, मुर्सिया और अन्य अनेक स्थानों पर मुस्लिम स्पेनी सरदारों ने कब्जा कर रखा था। बदाजोज इब्न मारवान के कब्जे में था जबकि अरागान में लोपेज का पुत्र मुहम्मद

स्वतंत्र राज्य की भाँति अपना दरबार करता था। उमर इब्न हफसून ने इन अशान्तियों का फायदा उठाया और हर ओर अपना अधिकार विस्तृत कर लिया। उसकी महत्वाकांक्षा कारडोवा तक पर अधिकार करने की थी। अमीर अब्दुल्ला अब तक टाल-मटोल की नीति पर चल रहा था। अन्त में उसे अपने पूर्वजों के सिंहासन को बचाने के लिए शस्त्र उठाने का निर्णय करना पड़ा। दरअसल उसके हाथ से सत्ता निकल जाने का भयानक खतरा उपस्थित था। सन् ८९१ में अपने सेनापति ओबेदुल्ला के साथ उसने कारडोवा के दक्षिण पोलेई में विद्रोही उमर इब्न हफसून के किले पर जोरदार हमला किया और उसे बोबास्ट्रो भाग जाने पर विवश किया। इस बारे में इतिहासकार अमीर अली ठीक ही कहता है—"राजा (अमीर) के भाग्य का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था। उसके सेनापति ओबेदुल्ला ने साम्राज्य को बचा लिया। पोलेई, इकीजा, आर्किडोना, इलबीरा, और जेन ने तुरत उसके प्राधिकार के समक्ष आत्म-समर्पण किया।"[१] निरन्तर युद्धों में अब्दुल्ला ने अपने अनेक विरोधियों को पराजित करने की चेष्टा की। उसे कुछ असफलताएँ भी मिलीं पर अन्त में उसने राज्य की प्रतिष्ठा दृढ़ करने में सफलता पाई। अरागान ने भी आत्म-समर्पण करने के चिह्न प्रदर्शित किये। इसी समय बूढ़े अमीर अब्दुल्ला की अड़सठ वर्ष की उम्र में मृत्यु हो गई (१५ अक्तूबर, सन् ९१२ ई०)। उसका २६ वर्षों का शासन अशांतिपूर्ण एवं महत्वहीन था।

२. कारडोवा में उमैय्यद खिलाफत

अब्द-अल-रहमान तृतीय (अमीर ९१२-२९, खलीफा ९२९-९६१)

मुहम्मद का पुत्र अब्द-अल-रहमान तृतीय, जिसे अब्दुल्ला ने हटा दिया था, स्पेन में अपने राजवंश का महानतम और सबसे सफल शासक था। वह अपने दादा अब्दुल्ला का उत्तराधिकारी सन् ९१२ में बना जबकि वह मुश्किल से बाईस वर्ष का था। फिर उसने आधी शताब्दी तक शासन किया। उसके द्वारा उत्तराधिकार ग्रहण करने पर उसके चाचाओं और संबंधियों ने जो उम्र में उससे बड़े और अधिक अनुभवी थे, हर्ष प्रकट किया और उसे राज्य के लिए एक अच्छा लक्षण बतलाया। नया अमीर उमैय्यद राजवंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक था। उसने सबसे पहले देश में शांति-स्थापन कार्य में हाथ लगाया जो उसके दादा अब्दुल्ला ने इतनी अधिक कठिनाइयों के बीच शुरू किया था। फिर अब्द-अल-रहमान तृतीय ने विदेश में अपनी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। नये अमीर ने मुस्लिम स्पेन को अपनी शक्ति और प्रसिद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। लम्बा, सुन्दर और नीली

१. अमीर अली—हिस्ट्री ऑव दी सारासेंस, मैकमिलन, १९५५, पृ० ४९४।

आँखों वाला अब्द-अल-रहमान तृतीय एक ईसाई दासी माँ से उत्पन्न हुआ था। अब्द-अल-रहमान तृतीय प्रथम अमीर था जिसने खलीफा की उपाधि धारण की (सन् ९२९)।

उसकी स्पष्ट नीति : विजय और विस्तार

युवा अब्द-अल-रहमान तृतीय ने अपने को समय के उपयुक्त शासक सिद्ध किया। उसमें दृढ़ संकल्प, साहस और स्पष्टवादिता के गुण थे जो सभी युगों के नेताओं की विशेषताएँ हैं। अब्द-अल-रहमान के सभी संबंधियों ने उसमें महानता के गुण पाये और उसे उमैय्यदों के अशांत साम्राज्य के उद्धारकर्त्ता के रूप में स्वीकार किया। उसने अपने दादा (अब्दुल्ला) की उत्पीड़न और टाल-मटोल की नीति छोड़ दी और विद्रोहियों के प्रति साहसपूर्ण और साफ़गोई की नीति अख्तियार की। उसने विद्रोहियों—स्पेनवासियों, बर्बरों और अरबों—से कहा कि यदि वे आत्म-समर्पण करते हैं तो वह उनसे राज्य-कर नहीं चाहता पर उनके महलों और नगरों पर अपना अधिकार चाहता है। उसने यह भी कहा कि यदि वे उसकी यह शर्त्त मानते हैं तो वह उन्हें पूर्ण क्षमादान कर देगा अन्यथा उन्हें भीषण दण्ड मिलेगा। अधिकांश नगरों ने तुरत आत्मसमर्पण कर दिया। अब्द-अल-रहमान उस समय सत्तारूढ़ हुआ जब करीब एक पीढ़ी से अधिक समय से स्पेन अरबों के आपसी जनजातीय संघर्षों और उनके साथ मूल स्पेनी वंशज मुसलमानों के बीच झगड़ों से अत्यधिक त्रस्त हो चुका था। जो स्पेनवासी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई थे वे अरबों में से विश्वासघातियों का साथ दे रहे थे। थोड़े ही समय के अन्दर जेन और एलवीरा प्रांतों के अरब सरदारों (कुलीन तंत्रियों) में से अग्रणियों ने अब्द-अल-रहमान की शक्ति और सच्चरित्रता के कारण उसके प्रति अपनी निष्ठा पुनः स्थापित कर दी। फिर भी उमर-इब्न हफसून ने ९१७ में अपने पर्वतीय आवास-स्थल में अपनी मृत्यु तक अपनी स्वतन्त्रता कायम रखी।

पर फिर भी अब्द-अल-रहमान तृतीय ने धीरे-धीरे निश्चित रूप से एक के बाद दूसरे खोये प्रांतों पर अपना कब्जा किया। यह उसकी विशिष्ट शक्ति का परिणाम था। अपने आधी शताब्दी (९१२-६१) के लम्बे शासन में उसने अपनी यह शक्ति बराबर प्रदर्शित की। उसने सभी दिशाओं में विजय हासिल की। एकीजा ने सबसे पहले आत्म-समर्पण किया और सन् ९१२ के अंतिम दिन एलविरा प्रांत ने। जेन प्रांत ने किसी तरह का प्रतिरोध न किया। आर्किडोना ने कर देना स्वीकार कर लिया। रेगियो की राजधानी भी कर देने पर सहमत हो गयी और सेविले ने नये शासक के लिये, सन् ९१३ में अपने फाटक खोल दिये। इब्न-हफसून दक्षिण में और

चार वर्षों तक कठोरता के साथ संघर्ष करता रहा। पर जब ९१७ में उसकी मृत्यु हुई तो अब्द-अल-रहमान खोये हुए प्रांतों को साम्राज्य के अन्तर्गत लाने की ओर भली-भाँति अग्रसर था। अगले वर्ष तक स्थिति ऐसी हो गई कि इब्न-हफसून के पुत्रों में से एक सुलेमान को संघर्ष का रास्ता छोड़ देना पड़ा। दूसरे पुत्र जफर ने इस्लाम धर्म अपना कर अपने को बचाने की चेष्टा की, पर इसके फलस्वरूप उसके ईसाई अनुयायियों ने उसकी हत्या कर डाली। सबसे छोटे पुत्र हफस ने बहुत लम्बे समय सन् ९२८ तक बौबास्ट्रो के मुख्य किले में बने रहकर प्रतिरोध का प्रयास किया पर बाद में उसने भी आत्मसमर्पण कर दिया। अब अब्द-अल-रहमान को दक्षिण में डर की कोई जरूरत न रही। उसने उत्तर और पूर्व में विद्रोहियों के विरुद्ध अपनी सभी सेनाएँ लगाईं। बडाजोज पर एक साल की घेरेबन्दी के बाद वहाँ के विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। अन्य अधिकांश किलों ने पहले ही आत्म-समर्पण कर दिया था, उनको गिरा दिया गया और उन क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्तियों को राजधानी कारडोवा ले आया गया। सन् ९३० में केवल टोलेडो प्रांत ही स्वतन्त्र बच गया था। इस नगर गणतन्त्र को, जिसने अस्सी वर्षों तक स्वतन्त्रता का उपभोग किया था, दो वर्षों की घेरेबन्दी के बाद अमीर के समक्ष आत्म-समर्पण के लिए बाध्य होना पड़ा। सन् ९२०-९२४ में अब्द-अल-रहमान ने लियोन के राजा ओरडोनो द्वितीय को भी पीछे धकेल दिया। उसने नावेरे के सांको के साथ मिलकर मुसलमानों को दक्षिण में मेरिडा और उत्तर में टुडेला और वालटियेरा तक पीछे ठेल दिया था और सीमान्त से बाहर उनका पीछा करता रहा था।

फातिमिदों के साथ युद्ध

अब्द-अल-रहमान की समस्यायें अभी खत्म नहीं हुई थीं। इस बीच बाहरी शत्रु खतरा उत्पन्न कर रहे थे। इनमें सबसे खतरनाक दक्षिण में फातिमा के समर्थक मुसलमान थे और उत्तर में लियोन के ईसाई राजा। अफ्रिका में चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के अनुयायियों के राजवंश का उदय हुआ था और लोगों ने कैरवां से अगलाविद शासकों को मार भगाया। वे लोग अपने को फातिमिद कहते थे और उनका दावा था कि वे हजरत मुहम्मद की पुत्री फातिमा के परिवार के होने के कारण मुहम्मद साहब के वंशज थे। अब उन लोगों ने निर्णय किया वे अपने से बचे-खुचे लोगों को सत्ता से उखाड़ फेंकने के लिए कारडोवा के अमीर (अब्द-अल-रहमान) के विरुद्ध युद्ध घोषित करें। उबेदुल्ला अल महदी ने सन् ९०९ में ट्यूनिसिया में फातिमिद राजवंश स्थापित किया। उसने इब्न हफसून से अमीर के विरुद्ध समझौता किया और जलडमरूमध्य के उस पार दूत और जासूस भेजे। देश के आंतरिक भाग में अपने पिता के साम्राज्य को फिर से ठीक स्थिति में लाने के

समय अब्द-अल-रहमान फातिमिदों की नीति की ओर ध्यान रखे हुए था जो पश्चिमी अफ्रिका में अपनी शक्ति बढ़ाने के साथ-साथ अन्य स्थानों में भी फैल रहे थे। सन् ९२९ में अब्द-अल-रहमान ने उन लोगों के दावे का विरोध करने के लिए उनकी तरह खलीफा और धर्म-विश्वासियों के सेनापति की उपाधि ग्रहण की। इस प्रकार उसने अपने पूर्वजों की उपाधि "अमीर" छोड़ दी। साथ ही उसने पूर्व के परम्परागत धर्मानुष्ठान के अनुसार अपने को "अल-नासिर ली दीन अल्लाह" ("अल्लाह के मजहब की विजय में सहायक") का सम्मान-सूचक नाम भी दिया। अब्द-अल-रहमान तृतीय ने एक नौसेना स्थापित करके जो दूरदर्शिता दिखलाई थी उससे समुद्री आक्रमण की फातिमिदों की योजना भी विफल हो गई। सन् ९३१ में अब्द-अल-रहमान तृतीय ने जिब्राल्टर के जल-डमरूमध्य के पूर्वी निकास पर मोरक्को में स्यूटा पर कब्जा करके फातिमिदों के आक्रमण की संभावनाओं को समाप्त कर दिया। भीतरी क्षेत्र के छोटे-छोटे शासकों ने, जिन पर फातिमिदों का खतरा था, तुरत अब्द-अल-रहमान तृतीय से सुरक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की और फलतः वह ताहर्त तक, जिस पर फातिमिदों ने कब्जा कर रखा था, समूचे उत्तरी अफ्रिका में अपना प्रभाव विस्तृत कर सका।

उत्तर के ईसाइयों और लिओन राजा के विरुद्ध लड़ाई

अब्द-अल-रहमान ने उत्तर के ईसाइयों के विरुद्ध भी लड़ाई छेड़ी जो साम्राज्य के विरुद्ध खतरा पैदा कर रहे थे। वे समय-समय पर मुस्लिम क्षेत्र पर हमला करते थे, उन क्षेत्रों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे और मुसलमानों पर प्रहार करते थे। वे अरब सभ्यता को भी नष्ट किया करते थे। फिर भी अब्द-अल-रहमान का इरादा उत्तर के इन नृशंस लोगों के विरुद्ध लड़ने का न था। वह उन लोगों के साथ शांति के साथ रहने को तैयार था पर उन लोगों ने उसे युद्ध के लिए बाध्य किया। सन् ९१४ में ही लियोन के राजा ऑरडोनो द्वितीय ने मुस्लिम साम्राज्य में अशांत स्थिति का फायदा उठा कर अब्द-अल-रहमान के विरुद्ध शत्रुता की कार्रवाइयाँ शुरू कीं। ऑरडोनो द्वितीय मेरिढा प्रान्त में जबरन घुस गया और उस क्षेत्र को बर्बाद और तबाह करने लगा। उन लोगों ने एलेज स्थान पर कब्जा कर लिया। उन्होंने वहाँ के पुरुषों का कत्ले-आम किया और महिलाओं और बच्चों को दास बना कर अपने साथ ले गए। जब अब्द-अल-रहमान दक्षिण में फातिमिद खतरे का मुकाबला कर रहा था तो ऑरडोनो द्वितीय मुस्लिम क्षेत्र में बहुत भीतर तक घुस गया। उसने अपने आक्रमण के सिलसिले में एक उमैय्यद सेनापति को गिरफ्तार कर लिया। डोरो नदी के तट पर एक महल की दीवार में उसका सर एक बड़ी कील से गाड़ दिया। सन् ९२० में अब्द-अल-रहमान ने उन

पर हमले का खुद नेतृत्व किया, सान इस्टेवेन को भूमिसात कर दिया और उन लोगों के कई मजबूत अड्डे नष्ट कर दिये। उसने औरडोनो द्वितीय और नावेरे के राजा सांको महान की सम्मिलित सेना का मुकाबला किया और उन्हें करारी हार दी। अब्द-अल रहमान ने औरडोनो द्वितीय को नावेरे तक खदेड़ दिया, वहाँ की राजधानी पैम्पेलुना पर कब्जा कर लिया और वहाँ विद्रोहियों का दमन किया। फिर वह एक विजयी के रूप में अपनी राजधानी कारडोवा लौट आया। उसके बाद सन् ९३९ तक उसने लियोन और नावेरे पर लगातार अपना दबाव जारी रखा। पर पुनः दो ईसाई सम्राटों (लियोन के राजा रामिरो द्वितीय और सांको महान की विधवा रानी रीजेन्ट टोटा) ने पुनः शत्रुता की कार्रवाइयां शुरू कर दीं और स्थिति ऐसी आ गई कि उनको सहन कर सकना असंभव हो गया। उन लोगों ने अब्द-अल-रहमान से फिर युद्ध ठान दिया और इस बार उसकी सेना को पूरी तरह नष्ट कर दिया। इस विपत्ति से अमीर अब्द-अल-रहमान ने एक सबक सीखा जिसे वह कभी भूल न सका। उसने ईसाइयों को उनके अपने कोने में छोड़ दिया। यह निर्णय उनके साथ कारडोवा में हुई एक संधि के फलस्वरूप हुआ जिससे आइबीरियाई प्रायद्वीप के सम्पूर्ण शेष भाग में उसकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार की गई।

अब्द-अल रहमान तृतीय द्वारा खलीफ़ा की उपाधि का ग्रहण (सन् ९२९)

अब्द-अल रहमान के दीर्घ शासन-काल के शेष वर्ष उसके बुद्धिमत्तापूर्ण और योग्य शासन के प्रमाणों से पूर्ण थे। इनमें एक प्रमाण यह था कि उसने घोषणा की कि शुक्रवार १० जनवरी सन् ९२९ से शासनकर्त्ता सम्राट (अमीर) का नाम सभी सार्वजनिक नमाजों और सरकारी दस्तावेजों में खलीफा के रूप में लिया जाएगा। स्पेन में उसके पूर्वज सुल्तान (अमीर) की उपाधि से सन्तुष्ट थे। "खलीफा" पदनाम के बारे में ऐसी धारणा थी कि यह उपाधि उन्हीं को दी जानी चाहिए जो मक्का और मदीना के पवित्र नगरों पर शासन करते थे। इस परम्परा की शक्ति इतनी क्षीण हो गई थी कि अब्द-अल-रहमान तृतीय ने अपने को खलीफा घोषित कर दिया। इस प्रकार उस स्वाधिकार समाप्त करने का अभ्यास खत्म हो गया जिसका पालन स्पेन के हर शासक ने उस समय से किया था जब से अब्द-अल रहमान प्रथम ने सर्वप्रथम बगदाद से अलग अपनी स्वतंत्रता स्थापित की थी। इतिहासकारों ने इस परिवर्त्तन का कोई कारण नहीं दिया है। पर इस कार्य को अब्द-अल-रहमान का अहंकारोन्माद न समझा जाय। इसके लिए यह बतला देना उचित होगा कि उस समय तक खिलाफत बुरी तरह टूटने लगी थी। उत्तरी अफ्रिका, मिस्र और पूर्वी प्रान्तों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। इन स्थितियों में स्पेन अब्बासिद साम्राज्य का महज एक विखंडित अंश ही रह गया था।

कारडोवा की समृद्धि

कारडोवा का दरबार इतिहास में अत्यधिक चमक-दमक वाले दरबारों में था। उस समय उसकी तुलना का दरबार कान्स्टैंटीनोपुल का ही था। कारडोवा के दरबार में बैजेन्टाइन सम्राट के ही नहीं बल्कि जर्मनी, फ्रांस और इटली के राजदूत भी थे। कारडोवा की आबादी पाँच लाख से ऊपर थी। वहाँ सात-सौ मस्जिदें थीं और तीन सौ सार्वजनिक स्नानगृह। उसकी शान-बान बगदाद और कान्स्टैंटीनोपुल की-सी थी। शाही महल के सामने गुआडलक्विविर की विस्तृत हरी घाटी थी।

अब्द-अल-रहमान ने कारडोवा का निर्माण सन् ९३६ में शुरू कराया। कहा जाता है कि उसने अपनी एक रखेल द्वारा छोड़े गये धन से यह निर्माण-कार्य कराया। पहले उसका विचार था कि ईसाइयों द्वारा पकड़े गये मुस्लिम बंदियों को छुड़ाने के लिए इस धन का उपयोग करे। पर चूंकि ऐसा कोई मुस्लिम बंदी नहीं पाया गया, उसने अपनी एक दूसरी रखेल अल-जाहरा ("चमकदार मुखवाली") के सुझाव पर यह कदम उठाया, शाही महल का निर्माण कराया और उसी के नाम पर महल का नाम रखा। अब्द-अल-रहमान के दो उत्तराधिकारियों ने महल को विस्तृत कराया और अधिक सजाया-संवारा। अल-जाहरा महल शाही अंचल का केन्द्र बन गया। उसके अवशेषों की आंशिक रूप से खुदाई सन् १९१० में और उसके बाद की गई। उनको अभी भी देखा जा सकता है।

कारडोवा की आबादी इस समय सिर्फ एक लाख अस्सी हजार है। उस समय ८ लाख थी। सड़कें दस मील तक पक्की थीं और उन पर प्रकाश व्यवस्था की गई थी। इस विकास की सुविधा लंदन और पेरिस में सात सौ वर्षों बाद प्राप्त हो सकी।

अल-जाहरा महल में अब्द-अल-रहमान तृतीय ने अपने लिए "स्लावों" की एक अंगरक्षक सेना रखी जिसकी संख्या ३७५० थी। उसकी स्थायी सेना में एक लाख सैनिक थे। अब्द-अल-रहमान को स्पेन में अरब उच्च वर्गों से घृणा थी। इसलिए उसने अपनी सेना में विदेशियों को नियोजित करना शुरू किया जिनमें विभिन्न राष्ट्रीयता के लोग थे। इनमें जर्मन, फ्रैंक, इतालवी, स्कैंडिनेवियाई, वरांगियन, रूसी आदि थे। उन लोगों ने न केवल इस्लाम धर्म अपनाया बल्कि अरबी भाषा, संस्कृति और तौर-तरीके भी। अरब परिवार में उन लोगों के साथ पारिवारिक सदस्यों के जैसा व्यवहार किया जाता था और उन्हें गोपनीय कार्य भी सौंपे जाते थे। विदेशियों के प्रति पक्षपात की इस नीति के कारण अब्द-अल-रहमान से अरब उच्च वर्ग वाले उसके विरोधी हो गये। विरोध इतना उग्र था कि उन्होंने "खाई की लड़ाई

(खंदक)" में उसका मुकाबला किया जिसमें मुस्लिम सेना की भीषण पराजय हुई और जमोरा की घेरेबन्दी की गई।

व्यापार और वाणिज्य

अब्द-अल-रहमान के दीर्घ शासनकाल में अंदालूसिया (स्पेन) में एक विकसित सभ्यता फली-फूली जिसके प्रति मध्यकालीन यूरोप में प्रशंसा का भाव था, कृषि और बागवानी, व्यापार और उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई। अरबों ने खाद्यान्नों की खेती तो की ही साथ ही स्पेन में खजूर बोना भी शुरू किया। वेलेसिया प्रान्त के दक्षिण में एल्वे के खजूर वृक्षों के समूह में खजूर की बागवानों के अवशेष आज भी मिलते हैं। विशेषकर धातुओं और चमड़े के सामानों के निर्माण में कारीगरी बहुत ऊँची सीमा तक पहुँच चुकी थी। और आज भी वह स्थिति कायम है। कारडोवा का चमड़ा आज भी प्रसिद्ध है और विश्व के बाजार में उसे उसी नाम से जाना जाता है। अब्द-अल-रहमान के शासन में करों तथा उपकरों से राष्ट्रीय राजस्व प्रायः ६२ लाख ४५ हजार दीनार था। इसमें से एक तिहाई से राज्य का खर्च चलता था, एक तिहाई खलीफा के कोषागार में जमा किया जाता था और शेष से भवन निर्माण कार्य किया जाता था। इसी कारण अब्द-अल-रहमान तृतीय की गिनती इस्लाम के सर्वाधिक प्रसिद्ध भवन-निर्माता शासकों में की जाती है। इस सम्बन्ध में और विवरण आगे दिया गया है।

उद्योग के क्षेत्र में भी अब्द-अल-रहमान के शासन में बहुत प्रगति हुई। बुनाई और चर्म-निर्माण में भी काफी उन्नति हुई। शीशे के सामानों और कुम्हारी के काम में भी स्पेन काफी आगे बढ़ा हुआ था और उसी तरह सोना, चाँदी, लोहे और सीसा का खनन कार्य भी काफी बढ़ा। टोलेडो प्रान्त तलवारों के निर्माण के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गया। इस्पात पर सोने और चाँदी का पानी चढ़ाने में भी टोलेडो प्रान्त को प्रसिद्धि मिली। ये दोनों कलायें दमिश्क से आयातित हुई थीं। अरबों ने जो सिंचाई-व्यवस्था शुरू की थी उससे स्पेन की कृषि को स्वभावतः लाभ पहुँचा। अरब ही नींबू के फलों के उत्पादन की प्रक्रिया स्पेन में लाये। नींबू उत्पादन-प्रक्रिया भारत से अरब जगत में लाई गई थी। उसी तरह अंगूरों, आड़ुओं और खुबानियों, रुई, ईख की खेती भी भारत से ही अरब जगत में लाई गई। अब्द-अल-रहमान के व्यापारिक समुद्री बेड़े से पृथ्वी के सुदूर भागों से निर्यात व्यापार बड़े पैमाने पर चलता था। इंगलैंड और फ्रांस स्पेन के उत्पादनों का आयात करते थे। ये उत्पादित सामान सुदूर पूर्व, जैसे कि भारत और मध्य एशिया को भी निर्यात किये जाते थे। स्पेनी अरबों द्वारा शुरू किए गए सिक्के अगले चार सौ वर्षों तक यूरोप के भागों में धन-विनिमय के एकमात्र साधन थे।

भवन-निर्माता के रूप में अब्द-अल-रहमान

शासक अब्द-अल-रहमान तृतीय की मुख्य रुचि, जैसी कि पूर्व के शासकों की रहती आई है, मस्जिद के भव्य निर्माण की दिशा में थी। कारडोवा में प्रथम मुस्लिम विजेता सान विन्सेंटों के ईसाई गिरजाघरों के आधे भाग को अपने पूजा-स्थल के रूप में इस्तेमाल के लिए जब्त कर लिया करते थे। पर अब्द-अल-रहमान एक बड़ा भवन-निर्माता था। उसने कारडोवा के विश्वविद्यालय का भवन और सात सौ मस्जिदें बनवाईं। साथ ही उसने अब्द-अल-रहमान प्रथम द्वारा स्थापित मस्जिद को विस्तृत कराया। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसका सबसे बड़ा निर्माण-कार्य उसका भव्य संगमरमर का महल था जो राजधानी कारडोवा से कुछ मील दूर स्थित था। उसे, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उसने अपनी प्रिय रखैल अल-जाहरा के लिए बनवाया और उसी के नाम पर उसका नाम रखा। प्रेम-भावना से प्रेरित इस निर्माण-कार्य के लिए इटली, कारथेज और बैजेन्टियम से चार हजार से ज्यादा संगमरमर के खम्भे मंगाये गये। इसके निर्माण-कार्य के लिए दस हजार राजमिस्त्री लगाये गये। निर्माण उस समय के सबसे बड़े बैजेन्टाइन वास्तुकार की देख-रेख में हुआ। उन लोगों ने इसे बनाने में बीस वर्ष तक परिश्रम किया। अब उसकी और उसके इर्द-गिर्द बने शाही अंचल की नींव, कुछ दीवारें और फर्शभर अवशिष्ट हैं। इस स्थान में बारह हजार लोग रहते थे। महल और शाही अंचल के शेष भाग को, पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी में ईसाइयों की विजय के बाद, वहीं ऊपर की पहाड़ियों पर सात जेरोनियो के गुलाबी रंग के ईसाई मठ बनाने के लिए ले जाया गया। पर उससे इस बात की कल्पना कर सकना मुश्किल नहीं है कि महल कितना भव्य और सौन्दर्यपूर्ण था। उसके गरिमापूर्ण मेहराब, अत्यंत सुन्दर पच्चीकारी, वृक्षों से ढके उसके आंगन तथा उसके बागीचे और फलोद्यान पूरी तरह उस महिला (अल-जाहरा) के उपयुक्त थे जिसने अब्द-अल-रहमान को सच्चा सुख दिया। कारडोवा इसके पूर्व इतना समृद्ध, अंदालूसिया (स्पेन) इतना धन-धान्य से पूर्ण और राज्य इस प्रकार विजयी न था। यह सब केवल एक व्यक्ति की प्रतिभा से सम्पन्न हो सका जिसकी मृत्यु १६ अक्तूबर सन् ९६१ को हुई। उस समय अब्द-अल-रहमान ७३ वर्ष का था। उसने पचास वर्षों तक शासन किया। उसने (अब्द-अल-रहमान तृतीय) ने कहा कि उसने खुशी के केवल चौदह दिन देखे हैं। इसमें संदेह नहीं कि उसने ये दिन अल-जाहरा के साथ बिताये जिसने उसे वास्तविक प्रेरणा दी।

अब्द-अल-रहमान का आकलन

यह निर्विवाद है कि अब्द-अल-रहमान तृतीय स्पेन पर शासन करने वाले सभी उमैय्यद शासकों में सबसे योग्य और सर्वाधिक प्रतिभावान था। उसे विरासत

में उपद्रवों और अशांतियों से छिन्न-भिन्न राज्य मिला। अनेक बाधाओं के बीच उसने अंदालूसिया (स्पेन) को बचा लिया और उसे इतना महान और शक्ति सम्पन्न बना दिया जितना वह पहले कभी न था। राज्य समृद्ध और धनी तो हो ही गया और साथ ही उसका पुलिस-संगठन इतना सक्षम था कि अनजान व्यापारी तक अपने व्यापार के सिलसिले में उन स्थानों में आ जा सकते थे और इसमें उन्हें किसी प्रकार के खतरे का अनुभव न होता था। लोगों की सामान्य समृद्धि का प्रमाण था कि बाजारों में चीजें सस्ती थीं, किसान अच्छे कपड़े-लत्ते पहनते थे और सभी लोग, यहाँ तक कि गरीब भी, घुड़सवारी करते थे। अच्छी खेती-बारी, और प्रचुर व्यापार-वाणिज्य एवं विज्ञान के साथ ही अब्द-अल-रहमान की सैन्य शक्ति अपार थी जिसकी मदद से वह अफ्रिका के फातिमिदों और उत्तर के ईसाई राजाओं से स्पेन की रक्षा कर सका। इतिहासकार डोजी का कहना है कि उसकी सेना उस समय "संसार की सबसे शक्तिशाली सेना थी। उस समय यूरोप के महान कान्स्टैंटीनोपुल के सम्राट तथा जर्मनी, फ्रांस और इटली के राजाओं के साथ उसकी संधि थी और उनके राजदूत उसके दरबार में थे। इस शानदार शासन-काल के अध्येता के कार्य से ज्यादा उस कार्य को सम्पादित करने वाले के प्रति आश्चर्य और प्रशंसा का भाव होता है।"

"वह अत्यन्त बुद्धिमान था और कोई भी चीज उसकी निगाह से बच नहीं सकती थी। यह आश्चर्यजनक रूप से चीजों को उनके छोटे-से-छोटे ब्योरे में देख सकता था। यह अत्यन्त चतुर व्यक्ति, जिसने राष्ट्र और साम्राज्य की शक्ति को केन्द्रीभूत तथा सुस्थापित किया और जिसने विभिन्न राष्ट्रों के साथ सन्धि करके उनके बीच संतुलन कायम किया और जो अत्यधिक उदार था तथा हर धर्म के लोगों को उनसे सलाह लेने के लिए अपने पास बुलाया करता था, वास्तव में वह मध्य युग का शासक होने के बजाय आधुनिक युग के शासक जैसा था।"

खलीफा हकाम द्वितीय (सन् ९६१-७६)

अब्द-अल-रहमान का उत्तराधिकारी उसका पुत्र हकाम द्वितीय हुआ। उसने **अल-मुस्तनसिर बिल्लाह** (अल्लाह की मदद माँगने वाला) की उपाधि ग्रहण की। हकाम द्वितीय का शासन सिर्फ पन्द्रह वर्षों तक चला। उसने देश के आंतरिक भागों में अपने पिता की विरासत को और समृद्ध बनाया। साथ ही उसने राज्य के विरुद्ध अपने ईसाई पड़ोसियों की कोशिशों को विफल कर राज्य को सुरक्षित किया। ईसाई पड़ोसियों में से सबने धीरे-धीरे आत्मसमर्पण कर दिया। अपने पिता की मृत्यु के कुछ समय पूर्व से हकाम ने राज्य के प्रशासन में भाग लेना शुरू कर दिया था। उसके न्याय और बुद्धिमत्ता की प्रसिद्धि दूर-दूर के स्थानों में पहले ही फैल

चुकी थी ।[१०] लियोन और नावेरे के शासकों ने अब्द-अल-रहमान तृतीय के शासन के उत्तरवर्त्ती काल में कारडोवा के खलीफा का प्राधिकार अभिस्वीकार कर लिया था। जब हकाम द्वितीय का शासन आया तो उन्होंने कारडोवा की सार्वभौमिकता को अस्वीकार कर दिया। वे इस भ्रम में थे कि हकाम द्वितीय जो शान्त स्वभाव और विद्वत्ता में रुचि रखने के बारे में प्रसिद्ध था, उनका कुछ विगाड़ न सकेगा। पर खलीफा न केवल महान विद्वान था, वल्कि एक बड़ा योद्धा भी। उसने स्वयं लियोन और नावेरे पर हमला किया और उन लोगों को बुरी तरह पराजित किया। काउन्ट औव कैसल फर्डिनेंड गैजैल्स और लियोन के प्रधान सांको ने हकाम के साथ कई वार सन्धि की और उनको वार-वार भंग भी किया। अन्त में सन् ९६६ में उन्होंने उसके समक्ष पूरी तरह आत्मसमर्पण कर दिया। कैटोलोमेनिया, बोरेल और मिरन के काउन्टों (शासकों) ने भी हकाम के हाथों भीषण पराजय पाई थी। उन लोगों ने भी सांको के उदाहरण का अनुसरण किया और उनके साथ भी अंत में हकाम की सन्धि हुई। इस प्रकार हकाम द्वितीय ने राज्य के सीमान्त क्षेत्र में पुनः शान्ति स्थापित की।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में हकाम को लकवा मार गया, इसलिए उसे सरकारी कामकाज अधिकांशतः अपने वजीर जफर-अल-मुशफी को सौंपने पड़े जो विशेष रूप से योग्य न था। स्पेन में मुख्य मंत्री को हजीब कहा जाता था। दमिश्क में उमैय्यद दरबार में यह उपाधि प्रबंधक की थी जो राजा और प्रजा के बीच सम्वन्ध को विनियमित करता था। इस प्रकार स्वतः राज-काज के संचालन में उसका प्रभाव रहता था। अफ्रिका में फातिमिदों द्वारा स्पेन साम्राज्य पर डाला जाने वाला प्रभाव उन लोगों के मिस्र हटा दिये जाने के वाद काफी कम हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि हकाम का सेनापति गालिव पश्चिमी अफ्रिका में उमैय्यदों का आधिपत्य पुनः स्थापित करने में सफल रहा था।

साम्राज्य में शांति स्थापित करने के वाद हकाम ने अपना समय अध्ययन में लगाया। यद्यपि उसके सभी पूर्ववर्त्ती शासक संस्कृति के प्रेमी थे पर बौद्धिक कार्य-कलाप में वह सबसे बढ़ा हुआ था। "हकाम" इतिहासकार इब्न खाल्दुन कहता है, "साहित्य और विज्ञान का प्रेमी था और विद्वानों के प्रति उदारता वरतता था।" वह पुस्तकों का संग्रह भी करता था तथा उसने शाही पुस्तकालय का प्रभार एक विशेष अफसर को सौंप रखा था। केवल पुस्तकालय का सूची-पत्र ही चौआलीस

---

१०. इतिहासकार मसूदी ने अपनी पुस्तक "मुरुज उज जहाव" अब्द-अल-रहमान तृतीय के शासन-काल में लिखी, कहा है कि हकाम अपने समय का अपने न्याय और सर्वोत्कृष्ट गुणों में सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति था।

खंडों में था। हकाम ने स्पेन को पुस्तकों का बड़ा बाजार बना दिया और वहाँ हर देश की साहित्यिक कृति तुरत बिक्री के लिए उपलब्ध हो जाती थी। अबुल फराज (इस्पहानी) ने अपनी बड़ी कृति की एक प्रति, ईराक में उसके प्रकाशन के पूर्व ही, भेजी थी। इसके लिए कारडोवा के कृतज्ञ सम्राट ने, पुरस्कार के रूप में, उसके पास एक हजार दीनार भेजे। वह न केवल एक बड़ा पुस्तक-संग्राहक था वलिक एक महान अध्येता विद्वान भी। इस प्रवुद्ध शासक के अधीन विद्वत्ता और विज्ञान की हर शाखा में उन्नति हुई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कारडोवा ने न केवल उद्योग और वाणिज्य वल्कि संस्कृति, विद्वत्ता और कलाओं का केन्द्र भी वन गया। इस युग में जो बौद्धिक प्रगति हुई उस कारण हकाम द्वितीय के शासन को स्पेन में अरव बुद्धिमत्ता का भव्य युग कहा गया है। अच्छे और गुणवान खलीफा हकाम द्वितीय की मृत्यु १ अक्तूबर ९७६ को हुई और उसके साथ ही स्पेन में उमैय्यदों की महत्ता का युग भी समाप्त हो गया।

हिशाम द्वितीय और स्पेन में उमैय्यदों के विघटन की अवधि

सन् ९७६ में हकाम द्वितीय का एक मात्र जीवित बचा पुत्र हिशाम उसका उत्तराधिकारी बना। उसकी उम्र केवल दस साल थी। महान्, विद्वान और शासक खलीफा हकाम द्वितीय, जिसकी उपाधि "अल-मुस्तंसीर वि-ल्लाह" थी, शारीरिक तौर पर असामान्य था और उसका पुत्र हिशाम द्वितीय अल-मुअय्यद (९७६-१०१३) भ्रष्ट और पतित था। हिशाम ने शासन-शक्ति का प्रयोग कभी नहीं किया। उसकी माँ औरोरासुभ एक अरव सरदार मुहम्मद इब्न-अवी-अमीर के साथ उसकी अभिभावक थी। मुहम्मद ने अपना जीवन औरोरासुभ की जमींदारी के प्रवंधक के रूप में शुरू किया और उसकी कृपा से वित्त मंत्री के पद पर पहुँच गया। इस रूप में उसने अफ्रिका में विशेष प्रयोजन से लड़ रही फौजों पर भारी खर्च में कमी करने में सफलता पाई। उसने सेनापति गालिव से चतुराई के साथ वातचीत कर यह कार्य निष्पादित किया। वाद में गालिव की पुत्री से उसका विवाह हुआ। हिशाम के सत्तारूढ़ होने के तुरत वाद मुहम्मद ने गालिव की, जो मेडिनासेली का गवर्नर था, मदद से हजीब (वजीर) जफर-अल-मुशफी को, जो हकाम द्वितीय के समय से इस पद पर रहा, उस पद से हटा दिया। साथ ही उसने साकलीवाह (ईसाई मूल के दास) अंगरक्षकों के प्रभाव को भी सीमित कर दिया। वे लोग कारडोवा में वही भूमिका अदा करने लगे थे जो वगदाद में तुर्क अंगरक्षक अदा कर रहे थे। एक वुद्धिमान और योग्य अफसर मुहम्मद इब्न-अमीर ने, जो अपनी योग्यता के वल पर सरकार में सबसे ऊँचे पद पर पहुँच चुका था तथा साथ ही जो खलीफा के माँ के प्रेमी होने के कारण भी शक्तिमान था, हिंसात्मक ढंग से अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को समाप्त

कर दिया और सम्पूर्ण सत्ता हथिया ली। उसने नये खलीफा को एक जेल में बन्द कर दिया और बाहरी दुनिया से उसका कोई सम्पर्क न रहने दिया गया।

इस प्रकार उसके द्वारा सत्ता हड़पने का कार्य पूर्ण हो गया। इब्न अबी अमीर की सरकारी उपाधि यद्यपि हजीब (प्रधान मंत्री) की थी पर वह वास्तव में आरंभ से ही खलीफा की भांति व्यवहार करता था। उसने नयी उपाधि अल मन्सूर (अल मंजोर) या वह जो विजयी है, ग्रहण की और इसी नाम से आनेवाली पीढ़ियां उसे जानती हैं। सन् ९७८ में उसने कारडोवा के सामने एक शाही नगर बसाया और उसका नाम अल-मदीना अल-जाहिरा रखा। यह नगर अब बिल्कुल नष्ट हो गया है और इसका कहीं कोई चिह्न शेष नहीं है। इसे उसके द्वारा जबर्दस्ती सत्ता हथियाने की यह सजा माना जा सकता है। उसने एक दरबार स्थापित किया जिसमें सच्चे सम्राटों से भी अधिक अधिकारोन्मत्तता थी। उसने अपना एक नया राजवंश भी स्थापित किया और उसके उत्तराधिकारी उसके दो पुत्र अब्द-अल-मलिक मुजफ्फर और अल-रहमान अल नासिर हुए जिन्हें "सन च्यूलो" के नाम से जाना जाता है।

अल मंजोर की संक्षिप्त विजय स्पेन में अन्तिम अरब-विजय का चिह्न स्वरूप थी। उसकी मृत्यु के बाद स्पेन में अरब खिलाफत का भी अन्त होने लगा। जैसा कि वे लोग बराबर करते आये थे, स्लाव अंग-रक्षक नये खलीफा की ओर मुड़े और उसे अपना बन्दी बना लिया। बर्बर जनजाति वालों ने उमैय्यद राज्य के समक्ष जो कुछ अर्पित किया था, उसे फिर से प्राप्त करने के लिए वे भी एक बार पुनः उठ खड़े हुए। हिशाम द्वितीय ने सन् १००९ में सत्ता छोड़ी और उसके बाद अगले बाईस वर्षों में अद्भुत तेजी के साथ एक के बाद एक छः विभिन्न खलीफा सत्ता में आये। पर किसी के पास सच्ची सत्ता न थी। उनमें से हरेक या तो स्लावों या बर्बरों अथवा कारडोवा के लोगों के हाथ की कठपुतली जैसा था। जब वह अपने समर्थक गुट के उद्देश्य पूरा करने की कोशिश करता या जब कोई दूसरा गुट अधिक शक्तिशाली हो जाता तो या तो उस खलीफा की उसके अंग-रक्षकों द्वारा हत्या कर दी जाती थी या उसे जेल दे दी जाती। कभी-कभी तो उसे गायब तक कर दिया जाता।

अल मंजोर एक ऊँचे पद पर निर्धन परिवार से आया था। वह स्वभावतः जितना बहादुर था उतना ही धूर्त्त भी। उसने सत्ता पर जो जबर्दस्ती कब्जा किया या जो हिंसक उपाय प्रयोग में लाये, उनके लिए जनता से क्षमा प्राप्त करने के लिए उसने अच्छे और बुरे दोनों ही किस्मों के काम किया। उसके अच्छे कामों में लेखकों को उसके द्वारा दिया जाने वाला संरक्षण था। बुरे कामों में वे थे जिनके द्वारा उसने फकीहों (कानून के विशेषज्ञों) का कृपापात्र होने की कोशिश की। फकीहों

का, जो अभी भी प्रभावशाली थे, समर्थन प्राप्त करने के लिए अल मंजोर ने हकाम के पुस्तकालय की गैरधार्मिक पुस्तकों को नष्ट कर दिया। जब फकीहों ने उस पर दार्शनिक रुचि रखने का आरोप लगाया उसने अब तक चली आने वाली अफ्रीका-सम्बन्धी नीति समाप्त कर दी। इस नीति से केवल भारी खर्च होता था और देश को बहुत कम लाभ होता था तथा उसकी स्थिति के लिए खतरा उत्पन्न होता था। उसने केवल स्वेटा पर अपना दृढ़ अधिकार कायम रखा और भीतरी प्रदेशों के राजाओं को अनुमति दी कि वे कारडोवा के जागीरदारों के रूप में शासन करते रहें। उसने अपने श्वसुर गालिब के विरोध को विफल करते हुए सेना का पुनर्गठन किया। उसने अनिर्भरयोग्य स्लावों के स्थान पर बर्बरों और अफ्रिका और उत्तरी स्पेन से लाये गये भाड़े के ईसाई सैनिकों को रखा। लियोन देश के विरुद्ध एक विजयी अभियान के कारण उसे "अल-मंसूर बिल्लाह" की सम्मानसूचक उपाधि मिली। सन् ९८७ में उसने निर्णायक तौर पर लियोन देश को पराजित कर दिया। सन् ९८५ में, अपने तेईसवें अभियान में उसने बर्सिलोना पर एक जबर्दस्त हमले में उसे अपने अधिकार में ले लिया। सन् ९९७ में उसने स्पेन के प्रसिद्ध ईसाई धार्मिक स्थल सैंटिआगने डी कम्पोस्टेला को पूरी तरह नष्ट कर दिया, यहाँ तक कि उसके हर गुंबद को भूमिसात कर दिया।

अल मंजोर ने हजीब (प्रधान मंत्री) का अपना पद अपने पुत्र अब्द-अल-मलिक को सन् ९९१ में दे दिया। सन् ९९४ में उसने स्वयं सैयद और अल-मलिक अल-करीम (उत्तम राजा) की राजकीय उपाधियाँ ग्रहण कीं। इस प्रकार खलीफा ने, जैसा कि बगदाद में होता था, अपने को अपने महल तक ही सीमित कर दिया। अपने बावनवें अभियान से, जिसमें उसने कैनालेस पर विजय प्राप्त की, वापस आते हुए अलमन्जोर की १० अगस्त १००२ में मृत्यु हो गई।

स्पेन के उमैय्यद शासकों में से किसी से उत्तर के ईसाई इतने भयभीत न थे जितने कि अलमन्जोर से। अपनी सैनिक योग्यता और संगठन की अद्भुत क्षमता के कारण वह एक आदर्श सैनिक था। इतिहासकार डोजी ठीक ही कहता है कि उसने स्पेन को वह शक्ति दी जो "अब्द-अल-रहमान तृतीय के बाद स्पेन को कभी प्राप्त न थी।" अलावे, उसके शासन की पूरी अवधि में शस्त्रास्त्रों की चमक-दमक के साथ साहित्य और कलाओं का उत्थान भी हुआ तथा उद्योग और कृषि की उन्नति भी। "मुसलमान स्पेन," एक अन्य इतिहासकार रीनौड कहता है, "उसके शासन में जितना समृद्ध हुआ उतना पहले कभी नहीं।" उसने विद्वत्ता को संरक्षण दिया और विद्वानों के प्रति अत्यधिक उदारता बरती। यद्यपि अपने उद्देश्य पूरे करने के लिए उसने जो तरीके इस्तेमाल किये उनकी कड़ी आलोचना की जानी चाहिए, पर इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब उसने उन उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया

उसके पीछे, एक विद्रोह छिड़ गया। उमैय्यदों ने, जिन्हें खलीफा हिशाम द्वितीय के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया था, खलीफा को बाध्य किया कि वह अपने चचेरे भाई मुहम्मद द्वितीय के पक्ष में सत्ता छोड़ दे। मुहम्मद द्वितीय ने अपना नाम अल-महदी रखा। अब्द-अल-रहमान उसके विरुद्ध हो गया और जब उसने मूर्खता से पुनः मांग की कि हिशाम उसे ही सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित करे तो उसकी हत्या कर दी गई और गृह-युद्ध शुरू हो गया।

नये खलीफा मुहम्मद द्वितीय ने राजा के उप-प्रतिनिधि (वाइस रीजेन्ट) का नगर "अल-मदीना अज जहीरा" का नगर ध्वस्त करा दिया। उसने भाड़े के बर्बर जन-जाति सैनिकों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए उनके नाम वेतन-भोगियों की सूची से हटा दिये। उन लोगों को उनके साथ अनेक सनहजाओं के शामिल किये जाने से बहुत शक्ति मिल गई थी। ये सनहजा वे अफ्रिकी समूह थे जो पहले स्पेनवासियों के प्रति विरोध भाव रखते थे। पर चूंकि उन लोगों से लड़ने के लिए उसके पास सेना न थी, उसी साल उसका तख्ता पलट दिया गया। उसके स्थान पर नया खलीफा अब्द-अल-रहमान द्वितीय का पौत्र सुलेमान हुआ। सुलेमान ने क्लाट्रावा और गुआडालाजारा में ईसाइयों के विरुद्ध बर्बर जन-जातियों का नेतृत्व किया था। तब उसने राजधानी कारडोवा पर कब्जा कर लिया। पर मुहम्मद द्वितीय (अल-महदी) ने सेनापति वदीह, जिसका मेडिनालेसी पर कब्जा था, बर्सिलोना के काउन्ट रेमंड और उग्रेल के एरमंगोल की सहायता ली। बर्बर जनजाति वाले सैनिक अभी भी आस-पास के क्षेत्रों का नियन्त्रण कर रहे थे। उन लोगों ने कारडोवा का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से तोड़ दिया था। फलतः नगर में अल-महदी के विरुद्ध षड्यन्त्र हुआ और

उसे विफल करने में वह समर्थ न था। वह सन् १०१० में मारा गया और हिशाम द्वितीय को फिर सत्तासीन किया गया। पर सेनापति वदीह उसकी ओर से वर्बर जनजाति के सैनिकों के साथ समझौता करने में विफल रहा। उन लोगों ने कारडोवा-वासियों को वाध्य किया कि वे सुलेमान के प्रति, जिसे हिशाम द्वितीय के स्थान पर खलीफा वना दिया गया था अपनी निष्ठा फिर से कायम करें। पर चूंकि सुलेमान ने अपनी सभी शक्तियाँ बर्बर जनजाति के सैनिकों को सौंप दी थीं, कारडोवावासी अन्त में स्यूटो के गवर्नर हम्मूद की ओर सहायता के लिए मुड़े जो मोरक्को के भूतपूर्व इद्रीस राजवंश से सम्बन्धित था। उसने सुलेमान को सत्ता से हटा दिया। पर तुरत बाद ही उसका भी वैसा ही भाग्य हुआ। हिशाम तृतीय ने कारडोवा की सरकार का सूत्र अपने हाथों में लिया। उसने एक कुलीनतन्त्रीय गणतन्त्र की स्थापना की जैसा कि पहले टोलेडो प्रांत में था। हिशाम तृतीय अल मुताद एक कायर कुलीन तन्त्रीय व्यक्ति था। वह कारडोवा से भाग गया और फिर उसकी हत्या कर डाली गई। प्रमुख कारडोवावासियों ने जिनके अधीन नगर का एक छोटा-सा भाग ही वच गया था, एक प्रकार के गणतन्त्र की घोषणा कर दी (सन् १०३१)।

मुस्लिम स्पेन अब छोटे शासकों (मुलुक-अल-तवैफ) के बीच बँट गया था। दक्षिण में मुख्य रूप से वर्बर जनजातियों का आधिपत्य था और पूर्व में "स्लावों" का। उन लोगों ने अलग-अलग नगरों पर अधिकार कर रखा था। केवल ईसाइयों के बीच फूट के कारण ही मुसलमान स्पेन की इन जागीरों पर अभी तक अधिकार रख पाये थे। सेविले में, जैसा कि उमैय्यद खिलाफत के विघटन के बाद कारडोवा में हुआ था, खलीफा के अंगरक्षकों ने अधिकार कर रखा था। कारडोवा पर चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के एक दावेदार के भाई ने मालगा प्रान्त में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। अब उसने सेविले पर भी अपना शासन कायम करने की कोशिश की।

१०८५ में टोलेडो पर ईसाइयों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। दक्षिण की ओर से पतनोन्मुख उमैय्यद राजवंश पर वर्बर जाति ने आक्रमण किया। कारडोवा पर अलमोरविद वंश का अधिकार आधी शताव्दी से कुछ अधिक समय तक (सन् १०९१-११४५) तक रहा; पर उससे वहाँ की स्थिति में कुछ खास सुधार न हुआ। उससे अंदालूसिया (स्पेन) के ढहते हुए साम्राज्य को नाम मात्र का सहारा मिला पर उससे उसके सामान्य पतन की स्थिति रुक न सकी। अंदालूसिया ने इस्लाम धर्म द्वारा प्रदत्त संक्षिप्त शांति की कुछ अवधि का उपभोग किया पर अंत-पतन के मार्ग पर ही वढ़ रहा था। उसकी मुख्य क्षति यह हुई कि उसका राजनीतिक गौरव समाप्त हो गया। न केवल उसकी राजनीतिक स्वतंत्रता छिन गई थी और वह महज एक

प्रान्त में परिणत हो गया था जिसकी राजधानी सभ्यताविहीन थी। आलमोरविदों का शासन स्पेन पर अफ्रिकी आक्रमण का पूर्व रूप था। स्पेन में तीन आलमोरविद शासक थे। प्रथम सम्राट यूसुफ इब्न तसूफिन निःसंदेह असभ्य शासक था जो स्वभावतः बहुत कम अरबी बोलता था। दूसरी ओर अंतिम शासक तसूफिन इब्न-अली बिलकुल मामूली-सा व्यक्ति था। इन दोनों के बीच का शासक अली इब्न-यूसुफ ने वास्तव में आलमोरविदों की पूरी अवधि (सन् ११०६-४३) में शासन किया। वह काफी हद तक अरबी हो गया था। सामान्यतः आलमोरविद अंदालूसियन (स्पेनी) जीवन-पद्धति के बाद में आने वाले शासकों अलमोहदों से बहुत अधिक निकट थे।

आलमोरविदों के स्थान पर अलमोहद (सन् ११४५-१२६९) आये। वे अफ्रिकी आक्रमण की हिंसा और रक्तपात से सनी एक नई लहर जैसे थे। अल-मोहद राजवंश अपने बारे में पूर्ववर्ती शासकों की अपेक्षा अधिक सुनिश्चित थे। उनका अपना एक संगठन था जो इतालवी फासिस्टों-सा था। अल-अंदालुस (स्पेन) की स्वतंत्रता छिन चुकी थी और उसकी आबादी बहुजातीय बन चुकी थी। उसमें अरब, मुलादी (स्पेनी इस्लाम-धर्मान्तरित) तथा बर्बर जनजाति के लोग थे। अल-मोहदों ने यह खतरनाक खेल भी शुरू किया कि अंदालूसियों और बर्बर जनजाति वालों को अनुमति दे दी कि वे अपनी-अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के बारे में आपस में तर्क-वितर्क करें।

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक स्पेन में अरबों का प्रभाव सभी स्थानों पर खत्म हो रहा था। पहले तो अरबों पर बर्बर जनजाति वाले हावी हुए और फिर ईसाई। और तब संयुक्त खिलाफत के बाद बीस छोटे-छोटे राजवंश और गणतंत्र स्थापित हुए जिनमें से हरेक को ईसाई आसानी से समाप्त करते गए और विजयी होते हुए टोलेडो और वैलेंसिया तक पहुँच गए। धीरे-धीरे पर निश्चित रूप से अरबों ने अधिकार खो दिया। और तब सन् १२२३ में लास नवास डी टोलोसा में निर्णायक युद्ध हुआ। कैस्टाइल, आरागन और नवारे की ईसाई फौजों के विशाल संयुक्त समुदाय ने अरब फौजों को बुरी तरह शिकस्त दी। यह विजय टोलेडो पर विजय की जैसी थी, पर उससे भी महत्वपूर्ण इस कारण कि यह निर्णायक विजय थी। अब से अंडालूसिया विजयी लोगों की दया पर निर्भर था। कैस्टाइल और अरागान ने विजय का कार्य अपने बीच बाँट लिया और द्रुत गति से विजय प्राप्त करते गए। महत्वपूर्ण नगरों जैसे मलोरका (१२२९), कारडोवा (१२६६), वैले-न्सिया (१२३८), सेविले (१२४८) और मुर्सिया (१२६९) का क्रमशः पतन हो गया। छोटे-छोटे नगरों के पतन का तो उल्लेख ही अनावश्यक है। केवल रोंडा, जो दुहरी पहाड़ी चट्टान पर अभेद्य-सा था और ग्रेनाडा अपराजित रहा (१२६६-

१४९२)। पर दो शताब्दियों बाद अरागान के फर्डिनैन्ड और कैस्टाइल के ईसाबेला के संयुक्त सेनाओं के तोपों के गोलों से उनको भी कुचल दिया गया। ग्रैनेडा पर घेरेबन्दी कर दी गई। उसके निवासी वर्फ से गलने और मरने लगे। तब उसके शासक अबू अब्दुल्ला ने जिसे ईसाई बोआबादेल कहकर पुकारते थे, इस शर्त पर आत्म-समर्पण किया कि उसे एक रियासत दी गई और ग्रैनाडा-निवासियों को यह स्वतंत्रता कि वे जिस तरह भी चाहें, पूजा कर सकते हैं। पर यह विशेष अधिकार भी उनसे सात वर्षों बाद छीन लिया गया जब धर्म-न्यायाधिकरण ने यह फैसला दिया कि जो ईसाई धर्म स्वीकार नहीं करते उन सब को राज्य से निकाल बाहर किया जाएगा। अबू अब्दुल्ला पर आरोप लगाया जाता है कि वह भीतर ही भीतर फर्डिनैन्ड से मिला हुआ था। इस बात में सच्चाई हो या नहीं, पर इतिहास में उसके प्रति उसके माँ के द्वारा कहे गये कटु शब्द उसके संबंध में स्मृति लेख की भाँति बराबर अमर रहेंगे। जब पराजित होने के बाद उसकी आँखों से गालों पर ढुलक आये आँसुओं से उसने अन्तिम समय में अलहामब्रा के भव्य लाल महल पर नजर डाली तो उसकी माँ ने कहा—"तू जिसकी रक्षा एक मर्द की तरह न कर सका उसे देख एक औरत की तरह तू ठीक ही आँसू बहा रहा है।"

इस प्रकार स्पेन में समाप्त हो रहे उमैय्यद ज्वार का आखिरी फेन भी विलीन हो गया। अन्तिम अरब-साम्राज्य पैरों तले कुचल दिया गया। जिस तरह कि सीरिया में उमैय्यदों और ईराक में अब्बासिदों के साथ हुआ, ठीक उसी तरह स्पेन में उमैय्यदों के साथ भी हुआ। अरबों ने कुछ वास्तविक महान शासकों के नेतृत्व में शक्ति और प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा प्राप्त कर ली। पर जब वे नहीं रह गये तो उनके साथ ही वह गरिमा और वैभव भी विदा हो गया। दसवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त में न तो उमैय्यदों और न ही अब्बासिदों का कोई महान शासक बच रहा। फलतः दोनों ही राजवंश विश्व में प्रभावकर राजनीतिक शक्तियाँ न रह गईं।

अध्याय १८

उमैय्यद स्पेन में प्रशासन एवं आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन

उमैय्यद खिलाफत के शासन-काल में स्पेन और कारडोवा में, विशेष रूप से अब्द-अल-रहमान तृतीय (९१२-९६१) और उसके उत्तराधिकारी हकाम द्वितीय के शासन (९६१-७६) तथा अलमंजोर (९७७-१००२) के अधिनायक-तंत्र के दरम्यान पश्चिम में मुस्लिम शासन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। इस अवधि के पूर्व और उसके बाद मुस्लिम स्पेन यूरोप और अफ्रिका के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मामलों में वैसा प्रभाव डाल सकने में असमर्थ रहा।

कारडोवा

उपर्युक्त अवधि में उमैय्यद राजधानी कारडोवा यूरोप के सर्वाधिक सुसंस्कृत नगरों में रहा। उसके अलावा कान्स्टैंटीनोपुल और बगदाद विश्व के दो और सांस्कृतिक केन्द्र थे। उसके तेरह हजार मकानों, इक्कीस मस्जिदों, सत्तर पुस्तकालयों और अनेकानेक पुस्तक-दूकानों को देख यात्रियों को भय-मिश्रित प्रशंसा का भाव और आश्चर्य होता था। वहाँ मीलों लंबी पक्की सड़कें, उनकी दोनों ओर खड़े मकानों की रोशनी से जगमगाती रहती थीं। दूसरी ओर "इस अवधि के सात सौ वर्षों के बाद भी लंदन में एक भी सार्वजनिक प्रकाश-साधन या लैंप न थी।" और "पेरिस में इस अवधि के शताब्दियों बाद भी जो कोई भी किसी बरसाती दिन में अपने घर के बाहर निकलता था उसे एंड़ी भर गीली मिट्टी से होकर चलना पड़ता था।" दसवीं सदी ईस्वी में कारडोवा यूरोप का सबसे ज्यादा सभ्य देश एवं विश्व का एक आश्चर्य एवं प्रशंसायोग्य स्थान था। वह यूरोप के बालकन राज्यों में विएना जैसा था। भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में स्पेनी मुसलमानों ने एक भव्य संस्कृति एवं सुसंगठित आर्थिक जीवन का सृजन किया था। जिस समय आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में स्नान-क्रिया को एक ईश्वर-विरोधी कार्य समझा जाता था, कारडोवा के वैज्ञानिकों की कई पीढ़ियाँ आराम-देह और शानदार स्नान-घरों में स्नान की प्रफुल्लता का उपभोग कर रहे थे। साथ ही, उस समय जब ईसाई-शासित लियोन, नावेरे या बर्सिलोना के शासकों को शल्य-चिकित्सक या परिधान-

निर्माता की आवश्यकता पड़ती थी तो वे उसके लिए कारडोवा का ही दरवाजा खटखटाते थे। मुस्लिम राजधानी की ख्याति सुदूरस्थ जर्मनी तक फैली हुई थी जहाँ एक सैक्सन संन्यासिनी (नन) ने उसका वर्णन "विश्व के रत्न" के रूप में किया। ऐसा था कारडोवा नगर जो उमैय्यद शासकों और सरकार का मुख्यालय था।

प्रशासन और सरकार

पश्चिमी (स्पेनी) खिलाफत की सरकार का संगठन पूर्वी (सीरिया और बगदाद) के शासकीय संगठन से मौलिक रूप से भिन्न न था। खलीफा का पद आनुवंशिक (पिता के बाद पुत्र का उत्तराधिकार) था पर प्राय: फौजी अफसर और उच्च कुलीन लोग जिसे पद के लिये उचित समझते थे वही खलीफा होता था। वहाँ **हुबीब** (राज्य-प्रबंधक) का पद होता था। वह **विजीर** (प्रधान मंत्री) के पद से ऊपर होता था और विजीर उसके माध्यम से ही खलीफा से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। विजीरों के अधीन **कुत्तब** सचिव होते थे और विजीर और वे मिल कर मंत्रिमंडल का रूप ग्रहण करते थे। प्रान्त कारडोवा के अलावा संख्या में छ: थे। उन पर फौजी गवर्नर शासन करते थे जिन्हें **वाली** कहा जाता था। कुछ महत्त्वपूर्ण नगर भी **वाली** द्वारा ही शासित होते थे। न्याय-प्रशासन खलीफा करता था जो इस संबंध में प्राधिकार काजियों को सौंप देता था जिनका प्रधान कारडोवा का **काजी अल-कुबाह** होता था। फौजदारी और आरक्षी-संबंधी मुकदमों की सुनवाई **साहिब अल-शुर्त्ता** करता था। कारडोवा में एक अन्य विशेष न्यायाधीश **साहिब-अल-मुजलिम** सरकारी पदाधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें सुनता था। अपराधियों को दी जाने वाली सामान्य सजाओं के अन्तर्गत जुर्माना, कोड़े मारना, कैद और अंगभंग के दण्ड थे और अल्लाह की निन्दा, विधर्म और स्वधर्मत्याग की सजा मौत थी। एक और विचित्र-सा पदाधिकारी **मुहतसिब** पदनाम का होता था जो आरक्षी बल को निदेश देने के अलावा व्यापार और बाजार के अधिदर्शक के रूप में नाप और तौल का निरीक्षण तो करता ही था, साथ ही जुआ, यौन-अनैतिकता और साधारण जन द्वारा अनुपयुक्त वस्त्रों के मामले सरकारी तौर पर हस्तक्षेप करता था।

जबकि सुल्तान सरकार का सर्वोच्च प्रधान होता था, प्रशासन-कार्य व्यवहारत: मंत्रीगण करते थे और पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रों की भाँति उनकी उपाधि भी **विजीर** होती थी। हर विभाग अलग-अलग मंत्रियों के प्रभार में होता था। ऐसा लगता है कि मुख्य रूप से चार शासकीय विभाग थे, यथा वित्त, विदेश विभाग, न्याय-प्रशासन या "शिकायतें दूर करने का विभाग" और सेना का प्रबंधन, वेतन और पर्यवेक्षण।

खलीफा की सलाहकार परिषद के सदस्य को भी विजीर की उपाधि दी गई थी पर मंत्रियों, जो सरकारी विभागों के प्रधान होते थे, और उनके बीच अंतर स्पष्ट करने के लिए खलीफा की परिषद के सामान्य सदस्यों को **विजीर-उस-विजारतेन** कहा जाता था।

राज्य के अनेक सचिव या **कातिब-उब-दवल** होते थे जिनमें प्रमुख पत्नाचार-कार्यालय के प्रधान (**किताबत-उर रसेल**) का स्थान सर्वोच्च था। एक और अफसर **कातिब उज-जिमान** गैर-मुसलमानों की सुरक्षा और सम्पत्ति की देख-रेख करता था। सरकारी लेखा के पर्यवेक्षण के प्रभारी अफसर को **साहिब-उल-अशगल** कहा जाता था। वह व्यवहारतः वित्त मंत्री होता था क्योंकि उसका विभाग राजस्व प्राप्त करता, कर लगाता, व्ययन करता और "जबर्दस्ती रकम वसूल किये जाने पर रोक लगाता" था। ग्रैनाडा राज्य में इस अफसर पर लेखा रखने और साथ ही सुल्तान के निजी खर्च और अन्य आर्थिक समस्याओं पर ध्यान रखने का प्रभार होता था। इस अफसर को **वकील** कहते थे। चूंकि ग्रैनैडा में राज्य-सचिव न होता था, पत्नाचार-विभाग विजीर के प्रभार में रहता था जब कि सम्राट स्वयं तगमों और बाहर भेजे जाने वाले पत्रों पर मुहर लगाता था।

पूर्व में मुसलमानों द्वारा शासित आरक्षी के प्रधान को **साहिब उस-शुर्त्ता** कहा जाता था। कारडोवा के खलीफा के अधीन उसे बहुत अधिकार प्राप्त थे। बाद के राजवंशों में वह केवल आरक्षी (पुलिस) का प्रतिनिधि-मात्र रह गया था। राज्य के दंडाधिकारी को **साहिब-उल मदीना** (मुख्य दंडाधिकारी) और कभी-कभी **साहिब उल-लैल** (रात्रि-दंडाधिकारी) कहा जाता था और वह काजी (न्यायाधीश) के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण के अधीन रहा करता था। रात्रि-चौकीदार को **अद-दराबन** या द्वार का प्रहरी कहा जाता था। उस पर शाम की आखिरी नमाज के बाद शहरों के भीतरी फाटक बन्द करने की जिम्मेदारी होती थी। वह अच्छी तरह शस्त्र-सज्ज होता था और लालटेनों तथा एक बड़े कुत्ते के साथ चलता था।

प्रारंभ में नौसेनाधिपति को **अमीर उल-मा** कहा जाता था। फ्रैंकों और स्पेनवासियों ने इस नाम को बदल कर **अलमिरान्त** कर दिया। अरबों में यह नाम बदला जा कर पुनः **अल-मिलाव** के रूप में वापस आया। अब्द-अल-रहमान तृतीय और उसके उत्तराधिकारियों के अधीन इस ऊँचे पद का नाम **कैद-उल-असातिल** या समुद्री बेड़े का सेनापति हो गया। उमैय्यदों और अलमोहदों ने अपनी समुद्री सेना को कुशलता और दक्षता की अत्यन्त उच्च स्थिति में रखा। उनकी सामुद्रिक सैनिक शक्ति उस समय के सभी ईसाई राष्ट्रों की संयुक्त नौसेना शक्ति से उच्चतर थी। जैसा कि इतिहासकार इब्न खाल्दुन कहता है, उनकी नौसेना की उत्कृष्टता में ह्रास मुस्लिम सत्ता के पतन का एक प्रमुख कारण था।

सरकार की एक नियमित डाक सेवा थी। उसके सिक्के पूर्वी मुस्लिम शासकों के सिक्कों के नमूने पर थे। दिनार सोने का और दिरहाम चाँदी का सिक्का होता था। उसी तरह प्रारंभिक इस्लाम युग का ताँबे का सिक्का फाल भी चालू था। उत्तर के ईसाई राज्यों में भी अरब सिक्के चालू थे। इन राज्यों में प्रायः चार सौ वर्षों तक अरब या फ्रांसीसी सिक्के के अलावा अपनी कोई सिक्का-प्रणाली न थी।

उद्योग

औद्योगिक क्षेत्रों में भी मुस्लिम स्पेन ने प्रगति की। राज्य का खर्च अधिकांशतः निर्यात और आयात पर करों से होता था। खिलाफत के अधीन स्पेन यूरोप के सबसे धनी और जनसंख्या बहुल देशों में था। राजधानी कारडोवा में प्रायः तेरह हजार जुलाहे और एक फलता-फूलता चर्म-उद्योग था। कच्चे चमड़े को जूतों के लायक बनाने और उस पर नक्काशी आदि करने की कला स्पेन से मोरक्को ले जाई गई और इन्हीं दोनों स्थानों से फ्रांस और इंगलैंड गई। ऊन और सिल्क की बुनाई न केवल कारडोवा में होती थी बल्कि स्पेन में मालगा, आलमेरिया और अन्य केन्द्रों में भी। रेशम उद्योग पर केवल चीन का एकाधिकार था जहाँ से उसे मुसलमानों ने स्पेन में शुरू किया जहाँ वह काफी बढ़ा। आलमेरिया में शीशे के सामान और पीतल की वस्तुएँ भी उत्पादित की जाती थीं। वैलेन्सिया में पैटर्न कुम्हारी का केन्द्र था। जेन और अलगर्वा सोने और चाँदी की खानों के लिए प्रसिद्ध थे। कारडोवा लोहे और सीसे और मालगा अपने मणि-उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था। बगदाद की राजधानी दमिश्क की भाँति टोलेडो पूरे विश्व में तलवारें बनाने के बारे में ख्यात था। इस्पात और अन्य धातुओं पर सोना और चाँदी जड़ने और उनको फूलों की आकृतियों से सजाने की कला, जो दमिश्क से लाई गई थी, स्पेनी और अन्य यूरोपीय केन्द्रों में पनपी। इस कला ने शब्दों की एक विरासत भी छोड़ी जो कला के मूल स्थान दमिश्क के द्योतक थे जैसे अंग्रेजी में 'दमस्कीन' और इससे मिलता-जुलता दूसरा और शब्द 'दमस्कीव', फ्रांसीसी में 'दमस्क्वीनर' और इतालवी में 'दमस्कीनो'।

व्यापार

मुस्लिम स्पेन के औद्योगिक और कृषि-उत्पादन देश के आंतरिक उपभोग के लिए पर्याप्त से अधिक थे। स्पेन के नदी तटवर्ती बंदरगाहों में सेविले सबसे बड़े बंदरगाहों में से था। वहाँ से रूई, जैतून और तेल का निर्यात होता था। साथ ही वहाँ मिस्र से वस्त्र और दासों का तथा यूरोप और एशियाई देशों से गायिकाओं का आयात भी होता था। मालगा से बाहर होने वाली निर्यात-वस्तुओं में केसर, अजीर, संगमरमर पत्थर और चीनी शामिल थी। विशेष रूप से दमिश्क, बगदाद और मक्का के साथ

व्यापार बड़ी मात्रा में होता था। भूगोलविद अल-इद्रीसी ने एक भूली-बिसरी-सी कहानी लिखी है जिससे हमें अटलांटिक सागर में तेज सामुद्रिक कार्रवाइयों की एक झलक मिलती है। इस कहानी में आठ "खोये हुए" चचेरे भाइयों की चर्चा मिलती है जो पहले लिस्बन से एक खोज-अभियान पर निकले थे जिसके अन्तर्गत वे पैंतीस दिनों में पश्चिम और दक्षिण में विचित्र देशों में गए।

कृषि

स्पेनी अरबों ने पश्चिमी एशिया में प्रयोग में लाई जाने वाली कृषि-प्रणालियाँ स्पेन में शुरू कीं। उन लोगों ने नहरें खुदवाईं और अंगूरों की खेती की। साथ ही उन्होंने अन्य पौधों, फलों, चावल, खुबानी, आड़ू, अनार, संतरा, ऊख, रुई और केसर की खेती भी शुरू की। स्पेन प्रायद्वीप का दक्षिण-पूर्वी मैदान की जलवायु और मिट्टी खेती के अनुकूल थी। इसलिए वहाँ महत्त्वपूर्ण ग्राम्य और नागरिक कार्रवाइयाँ बढ़ीं। वहाँ गेहूँ और अन्य खाद्यान्न तथा जैतून तथा भिन्न-भिन्न तरह के फल उपजाये गए। किसान जमीन-मालिकों के साथ बटाई के आधार पर खेती करते थे। यह कृषि-विकास मुस्लिम स्पेन का एक गौरव तथा स्पेन को अरबों द्वारा दिए गए चिरस्थायी उपहारों में से एक था। आज भी स्पेन के बागीचों पर मूरो (मुसलमानों) का प्रभाव स्पष्ट है। इनमें सर्वाधिक ख्यात बागीचा जेनेरैलाईफ़ (जन्नत-अल-आरिफ़ "निरीक्षक का स्वर्ग") है। यह तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का एक नासरिद राजवंश का स्मारक है। नासरिद का बंगला "अल-हामब्रा" के बाहर बने भवनों में से एक था। यह बागीचा अपने पेड़ों और पौधों की सुविस्तृत छाया, झरनों और सुरम्य हवा के झोंकों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें खेती और बागवानी किसी नाट्यशाला की सीढ़ियों के रूप में की गई थी। इसकी सिंचाई झरनों के पानी से की जाती थी।

बौद्धिक जीवन

मुस्लिम स्पेन ने कला, विज्ञान, दर्शन और काव्य के क्षेत्र में भी निर्णयात्मक भूमिका अदा की। इसका प्रभाव तेरहवीं सदी की ईसाई विचारधारा की उच्चतम शिखरों तक पर पड़ा। उस समय के ईसाई विचारक थामस एक्विनस और महाकवि दांते भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके। अब्द-अल-रहमान तृतीय और उसके पुस्तक-प्रेमी पुत्र हकाम ने बौद्धिक विकास के शक्तिशाली बीज बोये और कारडोवा को यूरोप का सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया। साहित्य, काव्य और संगीत में अरब स्पेन ने यूरोप को फारस और ईराक के अब्बासिदों से अधिक स्थायी रूप से प्रभावित किया। जैसा कि इतिहासकार फिलिप हिट्टी कहता है—"मुस्लिम स्पेन ने मध्ययुगीन यूरोप के बौद्धिक इतिहास का एक अत्यन्त गौरवपूर्ण अध्याय लिखा। आठवीं सदी

ईस्वी के मध्य से तेरहवीं सदी ईस्वी के आरम्भ तक की अवधि के बीच अरबी-भाषी जनता समूचे संसार में संस्कृति और सभ्यता की मशाल ले चलने वालों में अग्रणी थी।[1]" यही नहीं उनके माध्यम से प्राचीन विज्ञान और दर्शन का पुनर्स्थापन, संवर्द्धन और संप्रेषण इस ढंग से हुआ कि उससे पश्चिमी यूरोप में सांस्कृतिक पुनर्जागरण सम्भव हो सका। इन सब कार्यों में अरब-शासित स्पेन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

शिक्षा

उमैय्यद स्पेन का वास्तविक गौरव शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक कार्यकलाप में निहित है। खलीफा हकाम स्वयं एक विद्वान था एवं अध्ययन का संरक्षक। उसने विद्वानों को उदारतापूर्वक सहायता दी और राजधानी कारडोवा में तेईस विद्यालय खोले। उसके अधीन कारडोवा का विश्वविद्यालय, जो अब्द-अल-रहमान तृतीय द्वारा विनिर्मित प्रमुख मस्जिद में स्थापित किया गया था, उस समय विश्व के शैक्षणिक संस्थानों में सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त कर सका। यह विश्वविद्यालय मिस्र के अल-अजहर विश्वविद्यालय और बगदाद के निजामिया विश्वविद्यालय के पूर्व स्थापित हुआ था। इसमें न केवल ईसाई और मुसलमान छात्र पढ़ने आते थे वल्कि यूरोप, अफ्रिका और एशिया के छात्र भी। जिस मस्जिद में विश्वविद्यालय था उसे हकाम ने और बड़ा रूप दिया। उसे सीसे के नलों से पानी पहुँचवाया और बैजेन्टाइन कारीगरों द्वारा लाये गए पच्चीकारी के पत्थरों से सजाया। उसने विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिए पूर्व से प्राध्यापक बुलाये और उन्हें वेतन देने के अलग से राशि निर्धारित की। उसके प्राध्यापकों में इतिहासकार इब्न अल-कुतियाह भी था जो वहाँ व्याकरण पढ़ाया करता था। उसके अलावा अन्य लोगों में बगदाद का प्रसिद्ध भाषाशास्त्री अबू-अली अल-कली भी था जिसका "अमली" (लेखापन) अभी भी अरब देशों में पढ़ाया जाता है।

अल-मकरी ने उस देश में शिक्षा के बारे में सूक्ष्म पर्यवेक्षण के बाद लिखा है—"अंदालूसियनों (स्पेनियों) की स्थिति के संबंध में हम पूरे न्याय के साथ कह सकते हैं कि उस देश के लोग ज्ञान के अत्यधिक प्रेमी थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि विद्वान और अज्ञानी व्यक्ति के बीच कैसे अंतर किया जाय। वास्तव में विज्ञान को वे लोग इतना आदर देते थे कि जिसे अल्लाह ने जिस व्यक्ति को उसका ज्ञान हासिल करने के लिए आवश्यक योग्यताएँ न दी होती थीं वह इस क्षेत्र में दूसरों के साथ अपने को अलग रखने की हर कोशिश करता था। वह अपने ज्ञान के अभाव को दूसरों से छिपाये रखता था क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति हर समय अत्यधिक घृणा का पात्र समझा जाता था। दूसरी ओर, उसके विपरीत, विद्वान व्यक्ति न

---

१. फिलिप के० हिट्टी—हिस्ट्री ऑव अरब्स, पृ० ५५७।

केवल सबके उच्च वर्गों और निम्न वर्गों द्वारा सम्मानित होता था। उसपर न केवल विश्वास किया जाता था बल्कि हर मौके पर उससे सलाह ली जाती थी। उसका नाम हरेक की जुबान पर होता था। उसकी शक्ति और प्रभाव की कोई सीमा न थी और वह जीवन के सभी अवसरों पर प्राथमिकता एवं विशिष्ट स्थान पाता था"[२]।

विश्वविद्यालय के अलावा राजधानी में एक विशाल, अत्युत्कृष्ट पुस्तकालय था। अमीर हकाम स्वयं पुस्तकप्रेमी था और उसके प्रतिनिधि सिकन्दरिया, दमिश्क और बगदाद की पुस्तक-दूकानें छान मारते थे ताकि वहाँ से पुस्तकें खरीदें या पांडुलिपियों की नकल करें। इस प्रकार चार लाख पुस्तकें इकट्ठा की गईं। केवल उनके नामों की सूचियाँ चौआलीस खंडों में संग्रहीत थे। इन खंडों में से हरेक में बीस-बीस पन्ने केवल काव्य-ग्रन्थों के लिए सुरक्षित रखे गए थे। राजधानी कारडोवा में कुछ धनी व्यक्ति अपने-अपने पुस्तकालय रखे हुए थे जहाँ अध्ययनप्रेमी विद्या के अथाह सागर के अन्दर जाकर वहाँ से विज्ञान के अमूल्य रत्न निकाल ला सकते थे। हर इतिहास-लेखक की राय में कारडोवा स्पेन का वह नगर था जहाँ सभी किस्मों की पुस्तकें मिल सकती थीं और जहाँ के निवासी अपना-अपना पुस्तकालय रखने की अदम्य इच्छा के लिए विख्यात थे। उनकी यह इच्छा इतनी बलवती थी कि, इतिहासकार इब्न सईद के अनुसार, कोई भी सत्तासीन या सरकार के अधीन पद धारण करने वाला व्यक्ति अपने को इसके लिए बाध्य-सा मानता था कि वह अपना पुस्तकालय केवल इसके लिए खुद रखे ताकि लोग कह सकें—उस व्यक्ति का पुस्तकालय बहुत अच्छा है या उस व्यक्ति के पास उस पुस्तक की अद्वितीय प्रति है या उस व्यक्ति के पास उक्त पुस्तक की अमुक व्यक्ति द्वारा हस्तलिखित प्रति है।[3]

हकाम जो संभवतः सभी खलीफाओं में सबसे ज्यादा विद्वान था, स्वयं अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों का अध्ययन एवं उपयोग करता था। कुछ पांडुलिपियों के हाशियों में जो टिप्पणियाँ लिखी हैं, उनके कारण वे बाद के विद्वानों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई हैं। अंदालूसिया (स्पेन) में संस्कृति का सामान्य स्तर इतना ऊँचा था कि हॉलैंड के विद्वान एवं इतिहासकार डोजी तथा अन्य विद्वानों ने उत्साहपूर्वक यहाँ तक कह डाला है कि—"वहाँ का प्रायः हर आदमी लिख-पढ़ सकता था।"

---

२. थोमस पैट्रिक ह्यूग्स—डिक्शनरी ऑव इस्लाम, ओरिएन्ट बुक्स रिप्रिन्ट कारपोरेशन, नई दिल्ली, प्रथम भारतीय संस्करण, १९७६, पृ० १०७-१०८।

३. पादटिप्पणी २ में वर्णित पुस्तक, पृ० १०८।

प्राथमिक शिक्षा, सभी मुस्लिम देशों की भाँति कुरान लिखने और पढ़ने तथा अरबी व्याकरण और काव्य पर आधारित थी। यद्यपि मुख्यतः लोगों का यह एक निजी मामला था कि स्पेनी मुसलमानों में से भारी प्रतिशत लिख और पढ़ सकता था। इस प्रकार वहाँ शिक्षा अत्यन्त व्यापक स्तर पर थी। ऐसी स्थिति उस समय के यूरोप में अभूतपूर्व-सी थी। अन्य मुस्लिम देशों के मुकाबले स्पेन में प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। जैसा कि लेखक मकरी ने लिखा है और जैसा स्पेन के साहित्यिक इतिहास के तथ्यों से प्रकट होता है, अंदालूसिया (स्पेन) में इस उक्ति पर अमल न किया जाता था कि महिलाओं के पढ़ने-लिखने पर रोक लगानी चाहिए। उच्चतर शिक्षा कुरान के भाष्य और धर्मतंत्र, दर्शन, अरबी व्याकरण, काव्य और शब्दशास्त्र, इतिहास और भूगोल पर आधारित थी। अनेक प्रमुख नगरों में ऐसे शिक्षा-संस्थान थे जिनको विश्वविद्यालय की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें सबसे ज्यादा उल्लेखनीय कारडोवा, सेविले, मालगा और ग्रैनाडा थे। कारडोवा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत विभागों में खगोलशास्त्र, गणित और चिकित्सा और इनके अलावा धर्मतंत्र और कानून की पढ़ाई होती थी। इसके छात्रों की संख्या हजारों में थी और इससे उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाणपत्रों के फलस्वरूप राज्य में सबसे ज्यादा वेतन-प्रदायी पद मिलते थे। ग्रैनाडा के विश्वविद्यालय में धर्मतंत्र, न्याय-शास्त्र, चिकित्सा, रासायनिक विज्ञान, दर्शन और खगोल शास्त्र का अध्यापन किया जाता था। कैस्टीलिया और अन्य देशों के छात्र इस विश्वविद्यालय में अध्ययन को प्राथमिकता देते थे। इन विश्वविद्यालयों में वाद-विवाद और विचार-विमर्श नियमित रूप से आयोजित किये जाते थे। इनमें शिक्षक-वर्ग के लोगों द्वारा कविताएँ पढ़ी जातीं और व्याख्यान दिए जाते थे। विश्वविद्यालयों के साथ-साथ पुस्तकालय भी संवर्द्धित एवं विस्तृत किए जाते थे। कारडोवा का पुस्तकालय मुहम्मद प्रथम (८५२-६६) द्वारा स्थापित किया गया था। अब्द-अल-रहमान तृतीय ने उसे विस्तृत किया और हकाम द्वितीय के शासन-काल में यह सबसे बड़ा और उत्कृष्टतम पुस्तकालय बन गया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कुछ व्यक्ति और यहाँ तक कि महिलाएँ भी अपने निजी पुस्तकालय रखते थे। ज्ञानार्जन का प्रायः एकमात्र साधन पुस्तक थी जो स्थिति यूनान और रोम में भी थी। पुस्तकों के बाजारों में स्पेन में कारडोवा का स्थान सर्वोपरि था। स्पेन के बाद इटली में कागज-निर्माण उद्योग शुरू हुआ। ऐसा संभवतः सिसली से आये मुस्लिम प्रभाव के कारण संभव हो सका। फ्रांस में भी स्पेन के कारण अपने कागज-कारखाने बन सके। इस संबंध में कुछ विद्वानों द्वारा प्रतिपादित यह धारणा गलत है कि लड़ाई से लौटते हुए धर्म योद्धाओं के प्रभाव के कारण फ्रांस में कागज-उद्योग शुरू हुआ। इन देशों से समूचे यूरोप में कागज-उद्योग फैला। स्पेन में मुस्लिम सत्ता

के विनाश के बाद इन पुस्तकालयों में केवल दो हजार प्रतियाँ बची रह सकीं जिनको फिलिप द्वितीय (१५५६-९८) और उसके उत्तराधिकारियों ने विभिन्न अरब पुस्तकालयों से इकट्ठा किया। इन पुस्तकों को ही मूल आधार बना कर ही एसक्यूरियल पुस्तकालय की स्थापना हुई जो मैड्रिड के समीप ही स्थित है।

भाषा और साहित्य

मुस्लिम स्पेन ने विज्ञान, भाषा और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की। विशुद्ध भाषा विज्ञानों में, जिनमें दर्शन, व्याकरण और शब्द-शास्त्र शामिल हैं अंदालूसिया (स्पेन) के अरब ईराक के अरबों से पीछे थे। बगदाद में शिक्षित अल-काली (९०१-६७) और उसका प्रमुख शिष्य अल-जुबेदी (९२८-८९) कारडोवा विश्वविद्यालय में व्याकरण के दो सबसे बड़े विद्वान थे। अल जुबेदी को खलीफा हकाम ने अपने युवा पुत्र हिशाम की शिक्षा की देख-रेख के लिए नियुक्त किया था। हिशाम ने उसे बाद में सेविले का काजी और मुख्य दंडाधिकारी नियुक्त किया। अल-जुबेदी की मुख्य कृति व्याकरणविदों और भाषाशास्त्रियों की, जो उस समय तक वर्तमान थे वर्गीकृत सूची है। अल-सयूती ने अपनी कृति मुज्मीर में इस सूची का व्यापक प्रयोग किया है।

साहित्य में सर्वाधिक विख्यात लेखक कारडोवा का इब्न-अब्द-रबीह (८६०-९४०) था जो अब्द-अल-रहमान का राजकवि था। उसकी प्रसिद्धि उसके द्वारा रचित प्रकीर्ण संग्रह (अल-इकद अल-फरीद, अतुलनीय कंठहार) पर आधारित है। अरबों के साहित्यिक इतिहास में अल-अगानी के बाद इसका ही स्थान है। इब्न-अब्द-रब्बीह पश्चिमी (स्पेन) का प्रथम महान कवि था जिसने अपने कंठहार (नेकलेस) में मनोरंजक कविताएँ लिखीं जो पूरी तरह पूर्वी परम्परा के बड़े-से-बड़े धार्मिक नियमों से आबद्ध थीं।

पर स्पेनी इस्लाम का सबसे बड़ा विद्वान और सर्वाधिक मौलिक विचारक इब्न हज्म (९९४-१०६४) था। उसकी गणना इस्लाम के दो या तीन सर्वाधिक उर्वर मस्तिष्क वाले अत्यधिक अजस्र लेखकों में होती है। इब्न हज्म का दावा था कि वह एक फारसी इस्लाम धर्मानुयायी का वंशज था पर वास्तव में वह इस्लाम धर्म अपनाने वाले एक स्पेनी ईसाई का पौत्र था। इब्न हज्म के परिचय की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसके तक-अल-हामामा ("पेडुकी पक्षियों का कंठहार") की गणना आज भी अंदालूसियन (स्पेनी) अरबी साहित्य की कुछ अत्यन्त उत्कृष्ट कृतियों में होती है। उस समय उसे सर्वप्रथम उत्कृष्ट कृति माना जाता था। उसका अनुवाद

सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। मूलतः यह एक प्रेमकाव्य है, पर अरबी में यह अपने विषय की सर्वोत्तम कृति है।

काव्य

सेविले प्रांत को इस बात का उचित ही गर्व था कि वहाँ सबसे अधिक संख्या में गरिमापूर्ण एवं ऊँची भावना से प्रेरित कवि थे, पर इस दिशा में कारडोवा में बहुत पहले ही मशाल जलाई जा चुकी थी। बाद में ग्रेनाडा में यह मशाल उस समय तक अत्यधिक प्रकाशपूर्ण रूप में जलती रही जब तक कि वह नगर इस्लाम का गढ़ बना रहा। इब्न अब्द-रब्बी, इब्न-हज्म और इब्न-अल-खातिब जैसे महान कवियों के अलावा मुस्लिम स्पेन में और भी अनेक कवि हुए जिनकी रचनायें इस समय भी मानक स्तर की मानी जाती हैं। इनमें एक कवि इब्न जैदून (१००३-७१) था। उसे मुस्लिम अंदालूसिया (स्पेन) का महानतम कवि माना जाता है। इब्न जेदून मखजुम नामक एक उच्च वर्गीय परिवार का था जो कुरैश वंश की एक शाखा है। उमैय्यदों के पतन के बाद कवि इब्न जेदून ने कारडोवा के कुलीन-तन्त्रीय गणतन्त्र में कुछ प्रभाव हासिल कर लिया। कवयित्री अल-वल्लाहदा के साथ जो कि उमैय्यद वंश की थी इब्न-जैदून के प्रेम-प्रसंग के कारण उसके एक प्रतिद्वन्द्वी इब्द-अबदस के साथ उसकी साहित्यिक शत्रुता हो गयी। इब्द अबदस नगर के गवर्नर इब्न जौहर का मुख्यमन्त्री था। इब्द जैदून की अत्यधिक मनोरंजक पर मूलतः सतही प्रेम-कविताएँ इस बात की प्रतिनिधि-सी हैं कि परम्परागत काव्य-धारा के बाहर अरब भावना ने अभिव्यक्ति के एक समुचित रूप के खोज का अंतिम प्रयत्न किया। इब्द जैदून न केवल एक अत्यन्त प्रवीण कवि था वलिक एक विशिष्ट पत्र लेखक भी। इसके द्वारा अपनी प्रेमिका वल्लाहदा को सम्बोधित अनेक कविताओं में अब्द-अल-रहमान तृतीय द्वारा बनवाये गये प्रसिद्ध महल अल जाहरा और उसके बागीचों की चमक-दमकपूर्ण सुन्दरता का वर्णन है। उससे यह भी प्रकट होता है कि प्रकृति के प्रति उसका प्रगाढ़ प्रेम था जो कि सामान्य स्पेनी अरब कविता का एक गुण है। उसकी सुन्दर और प्रतिभाशाली प्रेमिका वल्लाहदा अपने शारीरिक आकर्षण और साहित्यिक योग्यता के लिए प्रसिद्ध थी। यही नहीं ऐसा प्रतीत होता है कि अरब स्पेन में अरब महिलाओं में काव्य और साहित्य के लिए विशेष रुचि और प्रवृत्ति होती थी। इतिहासकार अल मुकरी अपनी पुस्तक के एक पूरे अध्याय में अंदालूसिया (स्पेन) की ऐसी महिलाओं का वर्णन करता है जिनमें व्याख्यान कला उनकी द्वितीय प्रकृति-सी थी। कारडोवा में वल्लाहदा का निवास स्थान वाक्-चतुर व्यक्तियों, विद्वानों और कवियों का मिलन-स्थल था।

इब्न शुहैद जो एक कवि और आलोचक था, पूर्णतः बौद्धिक व्यक्ति था। वह अपने साथियों की तुलना में कवि अधिक था। उसकी गद्य में लिखित व्यंग-रचनाएँ व्याकरणविदों और किताबी ज्ञान के विरुद्ध फुलझड़ियों की जैसी हैं। उनके बारे में अब तक जितना अध्ययन हुआ है, उससे अधिक उनके सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है। सर्वाधिक आकर्षक रचना रिसालत-अल-तवाबी वा-ज-जवाबी है जो अब भी अपने कटे-छटे रूप में ही विद्यमान है।

कम प्रतिभावान कवियों में अबू-इशाक-इब्न-खफाजा की चर्चा की जा सकती है जिसने अपना जीवन वैलेंसिया के दक्षिण में एक छोटे-से गाँव में बिताया और जो किसी राजा के दरबार में नहीं गया। इसी तरह सेविले का एक वासनात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति करने वाला कवि मुहम्मद इब्न हनी (९३७-७३) का नाम भी उल्लेखनीय है जिसने फातिमिद खलीफा अल-मुइज्ज को संबोधित अनेक प्रशस्ति-गान लिखे। इब्न हनी के बारे में कहा जाता है कि वह यूनानी दार्शनिकों के विचारों से अत्यधिक प्रभावित था।

स्पेनी अरब कविता में नया छन्द-विधान प्रयोग में लाया गया और प्रकृति के सौन्दर्य के बारे में प्रायः आधुनिक जागरूकता दृष्टिगत हुई। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ से अंदालूसिया में मुआशश[४] और जजाल[५] कविता प्रणालियाँ विकसित हुईं। ये दोनों सामूहिक रूप से गान के लिए थे और निःसंदेह इनके आधार पर गीत गाये जाते थे। संगीत और गीत ने हर जगह कविता के साथ अपना सम्बन्ध कायम रखा। कारडोवा के घुमन्तू चारण अबू-बकर इब्न-कुज्मा ने, जो बड़े लोगों को प्रशंसा के गीत गाता हुआ नगर-नगर घूमा फिरता था, जजल को साहित्यिक रूप दिया। उसके पहले वह पूरी तरह कामचलाऊ गायकों के हाथों में था। इब्न-कुजमान आकर्षक व्यक्तित्व का था, उसी तरह जिस तरह कि वह अद्भुत प्रतिभा वाला था। इब्न कुजमान की कृतियाँ कविता के क्षेत्र में नई धारणा और रूप-विन्यास की दिशा में एक बड़े कदम के रूप में मानी जा सकती हैं। उसे किस्सागोई की अद्भुत प्रतिभा थी और एक सुन्दर शैली में कथोपकथन प्रस्तुत करने की कला भी। इब्न

४. विशाह की तुलना में इनका यह नाम पड़ा। विशाह एक दुहरा घेरे रखने वाला आभूषण होता था जिसमें रंग-रंग के मोती जड़े होते थे। इस आभूषण को महिलाएँ शरीर के चारों ओर, कन्धे से कूल्हे तक तिरछे पहने रहती थीं।

५. जजल एक कविता की शैली होती थी जो करीब-करीब इसी समय शुरू की गई। यह मुआशश की ही एक किस्म होती थी जो पूरी तरह देशी भाषा में लिखी जाती थी। यह विश्वास करने के प्रमाण हैं कि इसका आविष्कार जारगोजा के सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं गायक इब्न बज्जा ने किया।

कुजमान मध्य काल में किसी भी भाषा के श्रेष्ठ कवियों में था। मुस्लिम स्पेन का वह सर्वोत्कृष्ट कवि था और किसी श्रेष्ठ अरब कवि से उसका मुकाबला किया जा सकता है।

मुआशश के प्रसिद्ध रचनाकारों में अबू-अल-अब्बास अल-तुहिली था। वह रूडेला का अन्धा कवि था। वह जवानी में सन् ११२६ में मर गया। अन्य कवियों में इब्राहिम इब्न सहल (१२५१ या १२६०), जो सेविले प्रान्त का था और जिसने यहूदी धर्म बदल कर इस्लाम धर्म अपनाया था। इसी प्रकार ग्रेनाडा का मुहम्मद इब्न यूसुफ-अबू-हय्यान (१२५६-१३४४) था। वह मूलतः वर्बर जनजाति का बहुभाषी जानकार था तथा फारसी, तुर्की, पुरानी मिस्री भाषा और इथियोपिया के भाषा-व्याकरणों का लेखक था।

इतिहास-लेखन

धर्मतंत्र, इतिहास और खगोल-शास्त्र में स्पेनी अरब वह प्रमुखता हासिल न कर सके जो अब्बासिद खिलाफत में हासिल की गई थी। यूनानी और फारसी संस्कृति स्पेन में उतनी गहराई से प्रवेश न कर सकी। स्पेन में निजी देशी ज्ञान में वैसी कोई खास बात न थी जिसकी अरब नकल कर सकते। अंदालूसियन (स्पेनी) इतिहासकारों में सबसे प्रारम्भिक और सर्वाधिक विख्यात अबू-बकर-इब्न उमर था जिसे अक्सर इब्न-अल-कुतियाह के नाम से जाना जाता है। उसका जन्म कारडोवा में हुआ, वहीं उसने अधिकांशतः काम किया और वही सन् ९७७ में उसकी मृत्यु हुई। उसके इतिहास-ग्रन्थ तारीख इफ्तिताह अल-अंदालुस में मुस्लिम विजय से लेकर अब्द-अल रहमान तृतीय के शासन के प्रारम्भिक भाग का विवरण है। इब्न-अल-कुतियाह एक वैयाकरणिक भी था। क्रियाओं को संयुक्त करने के सम्बन्ध में उसका प्रबन्ध (ग्रन्थ) इस विषय पर लिखी गई प्रथम पुस्तक थी। एक और प्रारम्भिक पर अत्यन्त उत्कृष्ट इतिहासकार अबू हय्यान (९८७-१०७६) था। वह प्रशंसनीय गद्य-लेखक, एक कटु और स्वतंत्र आलोचक और अपने समय का ईमानदार साक्षी था। उसने अपनी अवधि का विस्तृत पर आंशिक विवरण ही दिया है। उसकी सबसे महान कृति मातिन है जो साठ खण्डों में है। पर उसके पूर्व उसने "मुकताबीस" प्रकाशित किया था जिसमें उसके पूर्व के इतिहासकारों का वर्णन किया गया था।

मुस्लिम स्पेन में अनेक जीवनी लेखक भी हुए। इनमें सर्वप्रथम इब्न-अल-फरादी था। कारडोवा में सन् ९६२ में उसका जन्म हुआ जहां उसने अध्ययन और अध्यापन किया। इब्न-अल फरादी की केवल एक पुस्तक तारीख उलेमा अल-अंदालुस ही अब विद्यमान है। एक और जीवनी लेखक इब्न-बशकुवाल का जन्म

कारडोवा में सन् ११०१ में हुआ और उसकी वहीं ११८३ में मृत्यु हुई। कहा जाता है कि उसने प्रायः पचास पुस्तकें लिखीं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक **अल-सिलाह् फी तारीख ऐमत अल-अंदालुस** है। इसके अलावा, इब्न-अल-अब्बार (११९९-१२६०) वैलेन्सिया प्रान्त का था। उसने "**अल-तकमिलाह् ली-किताब अल-सिलाह**" और "**अल-रूल्लाह् अल-सियारा**" पुस्तकें लिखीं। इनमें से दूसरी पुस्तक जीवनियों का संग्रह है। विज्ञान के इतिहास में अबू अल कासिम सईद इब्न अहमद अल-तुलेयतुली (१०२९-७०) ने **तबाकत-अल-उमाम** (राष्ट्रों का वर्गीकरण) की रचना की।

सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक सृजन और ऐतिहासिक ज्ञान के लिए उल्लेखनीय हैं जिस पर पश्चिमी स्पेन को गर्व हो सकता है। ये नाम हैं, इब्न-अल-खातिब (१३१३-७४) और इब्न खाल्दुन (१३३२-१४०६) के। इब्न-अल-खातिब एक अरब परिवार का वंशज था जो सीरिया से स्पेन आया था। उसने जो प्रायः साठ पुस्तकें लिखीं उनमें हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण ग्रैनाडा का विस्तृत इतिहास है। अब्द-अल-रहमान अबू-जैद इब्न खाल्दुन, जो इतिहासकार, दार्शनिक, समाज-वैज्ञानिक और न्यायविद था, इतिहास का प्रथम दार्शनिक था और इस्लाम का अन्तिम महानतम बौद्धिक व्यक्तित्व। उसका जन्म ट्यूनिस में हुआ था। उसका परिवार अपने पर उचित रूप से अरब होने का गर्व कर सकता था। परिवार को इस बात पर भी उचित गर्व था कि सेविले और ट्यूनिस दोनों ही स्थानों में उस परिवार के सदस्यों ने राजनीतिक और भौतिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की थी। इब्न खाल्दुन ने उत्तरी अफ्रिका और स्पेन दोनों की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस कारण ही वह अपनी महान कृति लिखने के लिए तैयार हो सका। वह कृति थी उसका विश्वजनीन इतिहास **किताब अल-इबार वा दीवान अल मुबतादा व-अल-खबर फी अय्याम अल-अरब वाल-आजम-व-आल बर्बर** (इतिहास के शिक्षाप्रद उदाहरणों की पुस्तक तथा अरबों, फारसियों और बर्बरों तथा उनके समसामयिकों से, जिन्होंने सर्वोच्च शासन किया, सम्बन्धित घटनाओं का आरम्भ से अन्त तक अभिलेख)। ये विशाल ग्रंथ सात खंडों में हैं। प्रथम खंड का शीर्षक है **मुकद्दिमा**। अन्तिम खंड के साथ "**तारीफ**" शीर्षक अध्याय भी संलग्न है।

मुकद्दिमा का प्रथम सम्पूर्ण अंग्रेजी अनुवाद अमेरिकन विद्वान फ्रैंज रोजेन-थाल ने किया। इब्न खाल्दुन द्वारा पाश्चात्य ज्ञान के मूल्यांकन के बारे में प्रसिद्ध इतिहासकार आर्नल्ड टॉनबी ने अपने "स्टडी ऑव हिस्ट्री" में लिखा है—"उसने (इब्न खाल्दुन ने) इतिहास के दर्शन की धारणा और उसका प्रतिपादन इस प्रकार किया है जो अपने प्रकार का महानतम कार्य है, ऐसा कार्य जो किसी भी समय या

स्थान के मस्तिष्क ने शायद ही कभी किया हो।" इब्न खाल्दुन की प्रसिद्धि मुख्य रूप से उसके मुकद्दिमा को लेकर है। इसमें पहली बार ऐतिहासिक विकास-क्रम के सिद्धान्त की चर्चा है जिस सिलसिले में इतिहास-निर्माण में जलवायु और भूगोल से संबंधित भौतिक तत्वों तथा क्रियाशील नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। मुकद्दिमा में लेखक ने अपने पूर्ववर्त्ती इतिहासकारों, विशेषत: अल तबरी और इब्न अल अथीर के ग्रन्थों की सामग्री का व्यापक प्रयोग किया है। पूर्ववर्त्ती इतिहासकारों में से अधिकांश इतिवृत्त और घटनाओं का वर्णन करने वाले थे।

भूगोलविद और यात्री

मुस्लिम स्पेन में भूगोल का भी विकास हुआ। स्पेन में ग्यारहवीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रसिद्ध भूगोलविद अल-बकरी था। इसके साथ ही केवल बारहवीं शताब्दी का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मध्य काल का भौगोलिक लेखक और मानचित्रकार अल-इद्रीसी था। इद्रीसी शाही स्पेनी अरब परिवार का वंशज था जिसकी शिक्षा-दीक्षा स्पेन में हुई। अल-बकरी कारडोवा में पला-बढ़ा जहां १०९४ में काफी उम्र में उसकी मृत्यु हुई। वह सुलिपिकार, कवि और दार्शनिक था। उसकी प्रसिद्धि उसके वृहत् भूगोल-ग्रन्थ अल मसालिक व-अल ममालिक (सड़कों और राज्यों की किताब) के कारण है। यह रचना मध्य युग की सभी भूगोलों की तरह यात्रा-विवरण के रूप में थी। अल-इद्रीसी का जन्म स्यूटा में सन् ११०० में हुआ। वह सिसली के नौर्मन राजा रोगर द्वितीय (११३०-११५४) के राज्य की शोभा बढ़ाता था। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वह मध्य युग का अत्यधिक विशिष्ट भूगोलविद और मानचित्रकार था। दरअसल वह राजा रोगर द्वितीय के दरबार के प्रमुख आभूषण जैसा था। राजा रोगर के समय की लिखी गई उसकी शोध-पुस्तक (किताब रुजर) में, जिसका शीर्षक नुजहत अल-मुस्ताक फी इख्तिराक अल-आफाक (जो देशों का परिभ्रमण करना चाहता है उसके लिए मनोरंजन) है, न केवल इस विषय के पूर्ववर्त्ती लेखक टोलेमी और अल मसूदी के ग्रन्थों में निहित मुख्य बातें दी गई हैं, पर यह मुख्य रूप से उन पर्यवेक्षकों के मौलिक विवरणों पर आधारित है जिन्हें विभिन्न देशों में आँकड़े इकट्ठा करने के लिए भेजा गया था।

अल-इद्रीसी के बाद अरब भौगोलिक साहित्य में कोई बड़ी मौलिक प्रतिभा न हुई और भूगोल के नाम में हमें केवल यात्रियों के वर्णन मिलते हैं। खास कर ऐसे वर्णन हमें बड़ी संख्या में मिलने लगे। इन यात्रियों में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध इब्न जुबैर और अबू-अल-हुसैन मुहम्मद इब्न अहमद थे। मुहम्मद इब्न अहमद का

जन्म वैलेन्सिया में सन् ११४५ में हुआ और शिक्षा-दीक्षा जतीवा में। सन् ११८३ और ११८५ के बीच इब्न जुबैर ने ग्रैनाडा से मक्का की यात्रा की और वहाँ से वापस आया। रास्ते में उसने मिस्र, ईराक और सीरिया भी देखा। उसने दो और मौकों पर, ११८९-११९१ और १२१७ में पूर्व की ओर दो बार और यात्रा की। दूसरी बार यात्रा में वह केवल सिकन्दरिया तक पहुँच सका और वहाँ उसकी मृत्यु हो गई। उसका ग्रन्थ रिहलाह, जो उसकी प्रथम यात्रा का विवरण है, अरबी साहित्य में अपनी तरह की सबसे महत्वपूर्ण कृति है। ग्रैनाडा के अल मजनी (१०८०-१-११६९।७०) ने सन् ११३६ में रूस की यात्रा की। पर अल-जुबैर और अल-मजनी के यात्रा-विवरण मोरक्को के इब्न-बतूता के विवरणों के समक्ष बिल्कुल फीके पड़ जाते हैं। वह मध्य युग का महान मुस्लिम यात्री था जिसने पृथ्वी भर की यात्रा की। इब्न बतूता का जन्म जन्ताह (टैंजियर्स) में सन् १३०४ में हुआ था और मृत्यु माराकेश में १३७७ में हुई। उस शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में मक्का की उसने चार बार तीर्थ-यात्रा की। इस सिलसिले में उसने पूरे मुस्लिम जगत की यात्रा की। पूर्व की ओर उसने सीलोन, बंगाल, मालदिवे द्वीप और चीन की यात्रा की। वह कान्स्टैंटीनोपुल भी पहुँचा। सन् १३५३ में उसने अपनी अंतिम यात्राएँ अफ्रिका के अन्दरूनी भागों की कीं। अरबों द्वारा भौगोलिक अध्ययनों का पश्चिमी जगत पर सीमित प्रभाव ही पड़ा। उन अध्ययनों के अन्तर्गत पृथ्वी के गोल होने का सिद्धान्त ही कायम रखा गया। स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त के बिना नये विश्व का आविष्कार संभव न हो पाता। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादक अबू-उबयदाह मुस्लिम अल बलान्सी था जो वैलेन्सिया प्रान्त का निवासी था। इसका काल दसवीं शताब्दी का प्रथमार्द्ध था। ये भौगोलिक इतिवृत्तकार इस हिन्दू सिद्धांत को कायम रखे हुए थे कि विश्व के ज्ञात गोलार्द्ध का एक केन्द्र है जिसे "विश्व-गुम्बद" या "शिखर" कहा जा सकता है जिसकी दूरी चारों दिशा-बिन्दुओं से बराबर है।

खगोल विद्या और गणित

खगोल विद्या संबंधी भूगोल और गणित के क्षेत्र में स्पेनी अरबों द्वारा पश्चिमी ज्ञान में अनेक नई धारणाओं से अभिवृद्धि की गई। दसवीं शताब्दी के मध्य के बाद खगोल विद्या संबंधी अध्ययन पूरी साधना और कठिन प्रयास के साथ किया गया। कारडोवा, सेविले और टोलेडो के शासकों ने इस संबंध में विशेष रुचि दिखलाई और अध्ययन को अपना प्रश्रय दिया। बगदाद के अबु माशार के अनुसरण में स्पेन के अधिकांश खगोल-विज्ञानी मानव-जाति पर नक्षत्रों के प्रभाव का सिद्धान्त यानी ज्योतिष विज्ञान मानते थे। इससे इस बात की आवश्यकता

पड़ी कि पूरे विश्व के देशों की अवस्थिति (स्थान) तथा उनका अक्षांश और देशान्तर निर्धारित किया जाय। इस प्रकार ज्योतिष विज्ञान ने खगोल विद्या के अध्ययन में योगदान किया। स्पेन के अरब खगोल-वैज्ञानिकों ने इस संबंध में अरस्तू द्वारा निर्धारित प्रणाली को ही फिर से प्रस्तुत किया। प्रारंभिक स्पेनी मुस्लिम खगोल-शास्त्रियों में कारडोवा का अल-मजरिती, टोलेडो का अल-जरकली और सेविले का इब्न-अफलाह आदि थे। अल मजरिती सबसे प्रारंभिक मुस्लिम वैज्ञानिक था जिसे महत्वपूर्ण माना जा सकता है। उसने किसी मुसलमान द्वारा तैयार की गई प्रथम नक्षत्र-संबंधी तालिका, अल ख्वारिज्मी की तालिका को सम्पादित और शुद्ध किया। दूसरे स्पेनी अरब-खगोल वैज्ञानिक इब्न अफलाह ने अपनी किताब अल-हयाह (खगोल विद्या की पुस्तक) में, जिसे क्रेमोना के गेरार्ड ने अनूदित किया, खगोल विज्ञानी टोलमी के सिद्धान्त की जोरदार आलोचना की और इस बात पर ठीक ही जोर दिया कि पृथ्वी से अपेक्षाकृत निकट या आकाश में नीचे अवस्थित तारों बुध और शुक्र ग्रहों की स्थिति ऐसी नहीं है जिससे देखने वाले के स्थान परिवर्तन के साथ उनके स्थान में भी कोई स्पष्ट अंतर हो जाय। इब्न-अफलाह की पुस्तक इस कारण भी उल्लेखनीय है कि उसमें एक अध्याय में गोलाकार और समतल त्रिकोणमिति का विवरण है। इब्न-अफलाह के समय के अढ़ाई शताब्दियों पूर्व अल-बतानी त्रिकोणमिति-विषयक अनुपातों का, जैसा कि आज हम उनका प्रयोग करते हैं, व्यापक रूप से प्रचार किया यद्यपि उसने उनकी प्रथम बार खोज न की थी। अंतिम स्पेनी अरब शास्त्रियों में अग्रणी अल-बितरूजी था जिसकी "किताब अल-हयाह" में नक्षत्रों, ग्रहों आदि की आकृति और स्वरूप का वर्णन है।

गणित शास्त्र के सबसे महत्वपूर्ण अंकों में से एक अंक शून्य है जिसे अरबी भाषा से अन्य भाषाओं में लिया गया। जबकि अरबों ने स्वयं इसका आविष्कार नहीं किया, पर उन्होंने इसे अन्य अरबी अंकों के साथ यूरोप में इसका प्रारंभ किया और पश्चिम वालों को यह अत्यन्त सुविधाजनक परम्परा सिखलाई। इससे दैनन्दिन जीवन में गणित के प्रयोग में सुविधा हुई। गणितज्ञ अल-ख्वारिज्मी, जो नौवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य में हुआ, अक्षरों के स्थान पर शून्य समेत अन्य अंकों के प्रयोग का प्रथम प्रतिपादक था। इन अंकों को उसने हिन्दी नाम दिया जिससे स्पष्ट होता है कि इनके आविष्कार का स्थान भारत था। अलावे, नौवीं शताब्दी के मध्य में स्पेन के मुसलमानों ने जिन अंकों का इस्तेमाल किया वे आकृति में कुछ भिन्न थे। इनको हुरूफ अल गुबार (धूल के अंक) कहते थे जो सर्वप्रथम बालू के बने गिनती सिखाने के यंत्र के साथ प्रयुक्त किये जाते थे। गरबर्ट ने पोप सिलवेस्टर द्वितीय (९९३-१००३) बनने के पूर्व स्पेन में कई वर्ष बिताये थे। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने गुबार अंकों का वैज्ञानिक विवेचन किया। सबसे प्रारंभिक अरबी

हस्तलिपि के, जिसके अन्तर्गत अंक भी थे, प्रारंभ किये जाने (सन् ८७४) के प्रायः एक सौ वर्ष बाद उसकी इस विषय की कृति प्रकाशित हुई।

वनस्पति शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र

साहित्य और काव्यशास्त्र की भाँति चिकित्सा, वनस्पति शास्त्र और दर्शन शास्त्र में स्पेनी अरबों का यह उचित ही दावा माना जाएगा कि उन्होंने यूरोपीय सांस्कृतिक विकास पर वृहत् प्रभाव डाला। खजूर के पेड़ और पटसन के पौधों आदि के संबंध में लैंगिक अंतर का स्पेनी अरबों ने सही निरीक्षण किया। कारडोवा के चिकित्सक अल-गफी की, अबू-जफर अहमद इब्न मुहम्मद (११६५) ने स्पेन और अफ्रिका से अनेक पौधे इकट्ठा किये और उनमें से हरेक का नाम अरबी, लैटिन और बर्बर जनजाति की भाषा में दिया। साथ ही उसने उनका वर्णन अरबी भाषा में इस रूप में दिया जिसे अत्यधिक सटीक और सही माना जा सकता है। उसकी मुख्य कृति **अल-अदविया अल-मुफरदा** (नमूनों पर) थी। इब्न-अल-अव्वाम ने, जो सेविले प्रान्त का था, कृषि पर पुस्तक **अल-फिलाहा** लिखी जो इस विषय की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है। स्पेन ही नहीं बल्कि वास्तव में मुस्लिम जगत का सर्वाधिक प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्र-विद एवं औषधिनिर्माता इब्न-अल बैतार था। उसका जन्म मालगा में हुआ था। जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों के एक संग्राहक के रूप में उसने स्पेन और सम्पूर्ण उत्तरी अफ्रिका का भ्रमण किया। उसकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ **"अल-मुगनी फी अल-अदविया अल मुफ्रादाह्"** और **"अल-जामी फी अल-अदविया अल-मुफ्रादाह्"** है। इनमें से प्रथम औषध-शास्त्र है और द्वितीय जानवरों, पेड़-पौधों और खनिज जगत के लिए "साधारण दवाओं" का संग्रह। इसमें लेखक ने अपने अनुभवों और शोध के आधार पर यूनानी और अरब आँकड़े भी दिये हैं। यह पुस्तक एतद्-विषयक मध्यकालिक पुस्तकों में अग्रगण्य है।

अल-जहरावी स्पेनी उमैय्यद खलीफा अल-हकाम द्वितीय का दरबारी चिकित्सक था। इसे अरब जगत का महानतम चिकित्सक माना जाता है। उससे लेकर बारहवीं सदी के दार्शनिक और चिकित्सक इब्न रुश्द तक जिसे सामान्यतः ऐवरोस के नाम से जाना जाता है, स्पेनी अरबों द्वारा मिस्र, ईराक और फारस से एकत्रित चिकित्सा-विज्ञान का स्रोत निरन्तर ईसाई धर्मावलंबी यूरोप में प्रवाहित होता रहा। अल जहरावी की प्रसिद्धि **अल-तसरीफ ली-मन उजाज अन अल-तालीफ** (जिसकी बड़े चिकित्सा-ग्रन्थों तक पहुंच नहीं उनके लिए मदद)। इस पुस्तक के अंतिम अध्याय में उस समय के शल्य-चिकित्सा ज्ञान का सार दिया गया है। पुस्तक के शल्य चिकित्सा संबंधी अंश का अनुवाद लैटिन में क्रेमोना के गेरार्ड ने किया और उसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में अल-

जहरावी का जो स्थान है वही चिकित्सा के क्षेत्र में इब्न-जुहर का है। इब्न-जुहर स्पेन के चिकित्साविदों के सबसे बड़े परिवार का सबसे प्रसिद्ध सदस्य था। उसका जन्म सेविले प्रान्त में १०९१ से १०९४ के बीच हुआ और वहीं ११६२ में उसकी मृत्यु हुई। उसकी छः कृतियों में तीन अभी भी उपलब्ध हैं। इनमें सबसे मूल्यवान **अल-तमसीर फी अल-मुदावा अल-तदबीर** (रोगहर वस्तुएँ और खुराक) है। यह पुस्तक उसने अपने मित्र और प्रशंसक चिकित्सक-इब्न-रूश्द, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, के अनुरोध पर उसकी पुस्तक **अल-कुल्लियत** के पूरक के रूप में लिखी। **तयसीर** में **कुल्लियत** की अपेक्षा अधिक विशिष्ट विषयों की चर्चा है।

दर्शन

जैसा कि इतिहासकार फिलिप के० हिट्टी ने लिखा है—"स्पेन में अरब बौद्धिक वर्ग का सबसे उल्लेखनीय कृतित्व दर्शन के क्षेत्र में है। यहाँ उन्होंने उस श्रृंखला की अंतिम और सबसे मजबूत कड़ी का काम किया जिससे यूनानी दर्शन उस रूप में निःसृत हुआ जिस रूप में वह उन तक और पश्चिम लैटिन में उसके पूर्वी सह-धर्मावलंबियों तक पहुँचा था। इसमें उन्होंने अपना योगदान भी किया और ऐसा विशेष रूप में धर्म-निष्ठा, तर्क और विज्ञान के बीच मेल बैठाते हुए किया।"[५] चिकित्सा-शोध क्षेत्र की भाँति दर्शन के संबंध में भी, मध्य काल में अरब यूरोपियनों के विपरीत धार्मिक सिद्धान्त से कहीं कम बाधित थे। मुस्लिम विचारकों की दृष्टि में अरस्तू के सिद्धान्त सच्चे थे, प्लेटो के सिद्धान्त सच्चे थे और कुरान के सिद्धान्त तो सच्चे थे ही, यों सच्चाई या सत्य महज एक ही है। इसलिए इन तीनों सिद्धान्तों में सामंजस्य की आवश्यकता उत्पन्न हुई और उन्होंने अपने को उसी की स्थापना के कार्य में लगाया।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अरब स्पेन के दो सर्वाधिक सफल और प्रभावशाली दार्शनिक यहूदी थे—सोलोमन इब्न-गैबिरोल और मूसा इब्न मैमन (सामान्यतः मेमोनिडस के नाम से ज्ञात)। इनके अलावा इब्न रुश्द अंतिम और महानतम अरब दार्शनिक था जिसने इस्लाम के अधिकांश धार्मिक सिद्धान्तों को तर्क की शोधपरक कसौटी पर कसा।

अरब स्पेन के सबसे प्रारंभिक दार्शनिकों में सोलोमन-बेन-गैबिरोल था। सोलोमन का जन्म मलागा में प्रायः १०२१ ईस्वी और मृत्यु वैलेन्सिया में प्रायः १०५८ ईस्वी में हुआ। पश्चिम में नव-प्लेटोवाद का प्रथम महान व्याख्याता होने के कारण सोलोमन का अक्सर यहूदी प्लेटो के रूप में उल्लेख किया जाता है। उसकी

---

५. फिलिप के० हिट्टी : हिस्ट्री ऑव अरब्स, पृ० ५७९-५८०।

मुख्य कृति "याम्बू अल हियाह" (जीवन का झरना) है। सन् ११३० में उसका लैटिन में अनुवाद हुआ जिसका शीर्षक था फौंस विटे। इस पुस्तक ने मध्यकालिक विद्वत्ता के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा की और फ्रांसीसी विचारधारा को प्रभावित किया।

बारहवीं शताब्दी मुस्लिम स्पेन की दार्शनिक विचारधारा में महानतम शताब्दी थी। इस शताब्दी के आरंभ में अबू बकर मुहम्मद इब्न याहिया इब्न बिज्जाह हुआ जो दार्शनिक, वैज्ञानिक, चिकित्सक, संगीतज्ञ और अरस्तू का टीकाकार था। वह ग्रैनाडा और सरगोसा में रहा तथा सन् ११३८ में फास (Fas) में उसकी मृत्यु हुई। इब्न बिज्जाह ने खगोल विद्या पर अनेक पुस्तकें लिखीं जिनमें उसने टोलेमी की धारणाओं की आलोचना की। पर उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक, जो एक मित्र को लिखे गए उसके विदा-पत्र के अलावा अब एकमात्र उपलब्ध है। यह तदबीर अल मुतवाहिद (एकाकी का राज्य) है जो एक दर्शन-ग्रंथ है। इब्न बिज्जाह के दार्शनिक विचार इब्न तुफैल द्वारा कुछ और आगे बढ़ाये गए। तुफैल अरस्तू की विचारधारा का दार्शनिक था। वह ग्रैनाडा में चिकित्सा का पेशा करता था। उसकी सबसे महान् कृति हय्य इब्न यकज़ान (जीवित मनुष्य, जागरूक का पुत्र) थी। यह दार्शनिक रूमानी कृति है। इब्न तुफैल की हय्य उसकी अपनी रहस्यवादी दार्शनिक कृति है। उसकी भूमिका में उसने इब्न सिना को श्रद्धांजलि दी है, पर साथ ही इस बात के लिए उसकी आलोचना की है कि उसने अरस्तू के विचारों को अपने विचारों के साथ, बिना भेद-भाव किये, मिला दिया है। उसने दार्शनिक अल-फराबी को उसके सतहीपन के लिए, अल गजाली की उसकी असंगति के लिए और इब्न बिज्जाह को इसलिए आलोचना की है कि वह केवल तर्क पर ही निर्भर रहा है तथा शोध एवं स्वानुभूति की उपेक्षा करता रहा है।

महानतम मुस्लिम दार्शनिक, जिसका विशेषत: पश्चिम पर बड़ा प्रभाव रहा है, इब्न रश्द था। उसका पूरा नाम इब्न-अल-वालिद मुहम्मद इब्न रश्द (एवैरासे) था। ऊपर एक चिकित्सा-शास्त्री के रूप में उसकी चर्चा की जा चुकी है। वह चिकित्सक के अलावा दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं टीकाकार था। उसने लोगों के लिए अरस्तू को बोधगम्य बनाया। इसके साथ ही उसने एक तर्कवादी आन्दोलन को जन्म दिया और बाद में यूरोप के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में योगदान किया। इब्न-रश्द का जन्म सन् ११२६ में कारडोवा में हुआ था। वह एक विशिष्ट परिवार का था जिसमें अनेक धर्मतांत्रिक और काजी हुए। चिकित्सा-क्षेत्र में इब्न-रश्द का मुख्य योगदान एक चिकित्सीय विश्व-कोष-सी कृति है जिसका शीर्षक है "अल-कुल्लियत फी अल-तिब्ब" (चिकित्सा की सामान्य बातें)। इस कृति में इस तथ्य को मान्यता दी गई है कि

किसी को चेचक द्वारा नहीं होता और यह कि आँख के पिछले भाग के चित्रपट (रेटिना) का कार्य अच्छी तरह जाना हुआ है। यह एक प्रारंभिक चिकित्सीय विश्व-कोष है जिसमें शरीर-विज्ञान, स्वच्छता एवं औषधि-विज्ञान पर अलग-अलग अध्याय दिये गये हैं। कानून की पुस्तकों में इब्न रश्द की एकमात्र उल्लेखनीय पुस्तक **विदायत अल मुजताहिद** (अध्यवसाय और परिश्रम से लिखा गया, खंड १, काहिरा में प्रकाशित, १९६६) थी। लेखक की मृत्यु के दो सौ वर्षों बाद इस पुस्तक के कारण एक कवि ने उसकी प्रशंसा में गीत लिखे। पर इब्न रश्द एक चिकित्सा-शास्त्री से कहीं ज्यादा बड़ा दार्शनिक और टीकाकार था। उसकी अनेक टीकाओं के अलावा मुख्य दार्शनिक कृति **तहाफुत अल-फलासिफाह** (असंगति की असंगति) थी। यह पुस्तक उसने दार्शनिक अल गजाली द्वारा अपनी पुस्तक "**तहाफुत अल फलासिफाह**" (दार्शनिकों की असंगति) में तर्कवाद पर प्रहार के उत्तर में लिखी थी। अपनी उक्त कृति के कारण इब्न रश्द मुस्लिम जगत में, अप्रशंसित हो कर ही सही, सर्वाधिक प्रसिद्ध है। आधुनिक काल में प्रारंभिक यूरोपियनों में एवैरोस (इब्न रश्द) के संबंध में दिलचस्पी फिर से उत्पन्न करने में प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान रेनान था जिसने इस विषयक अपनी पुस्तक "स्टडी औव एवेरोइज्म" (एवेरोसवाद पर अध्ययन) (१८५२) पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। अरबी भाषा में लिखनेवाले महान दार्शनिकों में अंतिम इब्न रश्द ने इस्लाम में दर्शन के क्षेत्र में अपना कोई उत्तराधिकारी न छोड़ा। दरअसल वह मुस्लिम स्पेन या अफ्रिका से कहीं अधिक ईसाई धर्मावलंबी यूरोप का दार्शनिक था। पश्चिम के लिए वह "टीकाकार" बन गया जिस तरह की अरस्तू शिक्षक था।

इब्न रश्द के बाद स्पेन अरब का दूसरा महत्वपूर्ण दार्शनिक उसका यहूदी समसामयिक इब्न मेमून था। अरब युग के यहूदी चिकित्सकों और दार्शनिकों में वह सबसे प्रसिद्ध था। इब्न मेमून का जन्म कारडोवा में सन् ११३५ में हुआ और वह काहिरा में सन् ११६५ में बस गया। इब्न मैमून ने खगोल शास्त्री, धर्मतांत्रिक और सबसे अधिक दार्शनिक के रूप में ख्याति पाई। उसका सबसे अधिक लोकप्रिय चिकित्सा-ग्रन्थ **अल-फुसुल फी अल-तिब्ब** (चिकित्सा के सूत्र) था। इसी प्रकार उसका प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थ "**दलाफत अल हेरीन**" (दिग्भ्रान्त का मार्गदर्शक) था। दर्शन के अपने इस ग्रन्थ में उसने यहूदी धर्मतंत्र और मुस्लिम प्लेटोवाद के बीच ताल-मेल बैठाने का प्रयत्न किया अर्थात् मोटे तौर पर उसने धर्मनिष्ठा और तर्क को मिलाने की कोशिश की।

इस युग का एक दूसरा स्पेनी अरब दार्शनिक और प्रमुख रहस्यवादी मुहयी इल-दीन इब्न अरबी था। उसका जन्म मुर्किया (मुरसिया) में सन् ११६५ में हुआ

और १२०१-०२ में मुख्यतः सेविले में ही रहा। वह सन् १२४० में अपनी मृत्यु तक दमिश्क में रहा। इब्न अरबी सेविले में प्रसिद्धि पाने के बाद पूर्व की ओर चला गया। अपने विशिष्ट किस्म का दर्शन वह सीरिया में पढ़ाता था। इस दर्शन में यह विश्वास निहित था कि सभी चीजों का विशिष्ट प्रकाश अल्लाह है और यह कि विश्व शून्य से सृजित नहीं हुआ बल्कि पहले भी अल्लाह के बाहरी रूप के समान वर्त्त-मान था।

उस समय के अन्य विद्वान तेरहवीं शताब्दी में इब्न-रश्द, इब्न-मैमून और इब्न अरबी की दार्शनिक एवं चिकित्सीय विचारधारा को आगे बढ़ाते रहे।

महिला विद्वान

मुस्लिम स्पेन में आरंभिक काल में प्रसिद्ध कवयित्रियों और सुसंस्कृत महिलाओं का जिक्र करना दिलचस्प होगा। ग्रैनाडा प्रसिद्ध विद्वानों का घर और जन्मस्थान था। वहाँ की बेटियाँ भी साहित्य के क्षेत्र में कम प्रसिद्ध न थीं। उनमें नाजून, जैनब, हामदा, हफशा, अल-कल्लेह, सफिया और मेरिया ने अपने जन्म-स्थान पर प्रकाश की अमिट छाप छोड़ी। आयशा एक लेखिका और कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध थी। कवि अबू हसन की पुत्री अल-तमीमिये तथा उम्मउल-उल्ला कवयित्रियों के रूप में प्रसिद्ध थीं। अल-वल्लादा अंदालूसिया की एक प्रतिभाशाली महिला थी। कारडोवा में उसका घर वाक-चातुरों, विद्वानों और कवियों का संगम-स्थल था। वैलेन्सिया की अल-अरुजिया एक प्रसिद्ध व्याकरणविद और साहित्य-शास्त्रिणी थी। हाफशा एक प्रतिभाशाली महिला थी जो "अपने सौन्दर्य, प्रतिभा, कुलीनता और धन के लिए प्रसिद्ध थी।" सेविले की मरियम विद्वान और दक्ष महिला थी तथा साहित्य-शास्त्र, कविता और साहित्य का अध्यापन करती थी। सेविले की आस्मा अल-अमरिया भी एक प्रसिद्ध विद्वान थी। उम्म उल-हिना भी एक कवयित्री थी। कारडोवा की वाहजा भी, जो अल मुस्तकफी की पुत्री थी, अपने सौन्दर्य और कविताओं के लिए प्रसिद्ध थी। सेविले के अंतिम राजा मुतामिद की क्रमशः पत्नी और पुत्री इतिमाद अर-रमिक्किया और बुसीना भी महिला विद्वानों में अपना विशेष, ऊँचा स्थान रखती थीं।

लघु हस्तशिल्प

स्पेन के अरबों ने प्रायः उन सभी लघु एवं हस्तकलाओं को विकसित किया जैसा कि अन्य देशों में मुसलमानों ने किया। पर धातुओं के कार्य में जिसके अन्तर्गत सजावट और आकृतियों को स्पष्ट और बड़े रूप में उभाड़ने और खुदवाने तथा सोने और चांदी से जड़ने तथा अक्षरों को अंकित करने का प्रश्न है, हिस्पानो-मोरेस्क

नाम से जाना जानेवाले कारीगर सर्वोत्कृष्ट थे। हिशाम द्वितीय (९७६-१००९) के अवशेषों के सबसे प्रारंभिक नमूनों में, जो केरोना के बड़े गिरजाघर के ऊँचे मंच पर सुरक्षित रखा हुआ है, चाँदी से जड़ा हुआ लकड़ी का एक संदूक है। धातुओं संबंधी कामों में, जैसे कि छुरी-काँटों और तलवारों के निर्माण में टोलेडो और सेविले प्रान्त सबसे बढ़-चढ़ कर के थे। उनके उत्पादनों के आयात ने कुम्हारी (मिट्टी के बर्त्तन बनाने) के उद्योग की नींव डाली। पन्द्रहवीं शताब्दी में हम पाते हैं कि इस मुस्लिम कुम्हारी की नकल उत्तर में हॉलैण्ड तक की जाती थी। स्पेन से, बीच में, यह उद्योग इटली में प्रारंभ किया गया। उसका प्रभाव बाद के स्पेनी बर्त्तनों में दृष्टिगत होता है। मिट्टी से किए जाने वाले अन्य उत्पादनों और उसके साथ पच्चीकारी में स्पेन के मुस्लिम कारीगरों ने विशेषज्ञता प्राप्त की थी। विभिन्न रंगों के खपरैल स्पेन और पुर्तगाल में अभी भी लोकप्रिय हैं। ये सब अरबों की ही विरासत हैं। बहुत ही ऊँचे किस्म के मिट्टी के बर्त्तन ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में टोलेडो और कारडोवा में बनाये गये। जहाँ तक शीशे के बर्त्तनों के निर्माण और रंगसाजी का प्रश्न है, स्पेन सीरिया की बराबरी न कर सकता था।

स्पेन के अरब वस्त्र बनाने की कला में भी माहिर थे। पर जहाँ तक दरी बनाने की कला का संबंध है स्पेन पूर्वी और विशेषतः फारस के बाजार से प्रतिद्वन्द्विता न कर सकता था। कारडोवा बुनाई उद्योग का केन्द्र था। कहा जाता है कि अलमेरिया में चार हजार आठ सौ करघे थे। जैसे कि अल-मौसिल नामक स्थान इटली को मसोलिना वस्त्र, जिससे ही मस्लिन शब्द निकला है, निर्यात करता था उसी तरह बगदाद इटली को बहुत अच्छे सिल्क के कपड़े निर्यात करता था। इन सिल्क के कपड़ों का इतालवी नाम बाल्डाको होता था। साथ ही इटली को सिल्क के बने चंदोवे, जिनका नाम वाल्डाचिन होता था, निर्यात किये जाते थे।

धातु और शीशे के कामों, वास्तुकला और साज-सज्जा की कला के अन्य अंगों की भाँति वस्त्र-निर्माण में, तेरहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के बीच हमें इस बात के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि यूरोप की वस्तुओं पर इस्लामी शैली का सच पूछा जाय तो बारहवीं शताब्दी से ही यूरोपीय बुनकरों द्वारा इस्लामी आकृतियों और खाकों का अपनाया जाना एक सामान्य-सी बात हो गई थी। उस समय से, केवल सजाने के उद्देश्य से अरबी लिपि की अर्थहीन अनुकृति के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

वास्तुकला

जहाँ तक मुस्लिम स्पेन की वास्तुकला का संबंध है, स्पेन में धार्मिक कला के सभी स्मारक, कारडोवा के भव्य मस्जिद के अलावा, नष्ट हो चुके हैं। यह

मस्जिद सबसे प्रारंभिक और सबसे शानदार भवनों में से है। इस मस्जिद की नींव अब्द-अल-रहमान प्रथम ने सन् ७८९ में ईसाई गिरजाघर के, जो पहले एक रोमन मंदिर था, स्थल पर डाली थी। मस्जिद का मुख्य भाग सन् ७९३ में उसके पुत्र हिशाम ने पूरा किया। उसमें उसने चौकोर मीनारें बनवाईं। ये स्पेनी मीनारें अफ्रिकी शैली की थीं। हिशाम के उत्तराधिकारियों ने कारडोवा की मस्जिद में अनेक तरह के भाग और जोड़े। इनमें बारह सौ तिरानवे खंभे थे और एक अत्यन्त सुन्दर बागीचा जो छतों के सहारे टिका हुआ था। ईसाई घंटों से बनायी गई लालटेनों से मस्जिद का भवन जगमगाया करता था। भवन की सजावट के लिए बैजेन्टाइन कारीगर काम पर लगाए गए थे जो सीरिया में उमैय्यद मस्जिदों के लिए भी नियोजित किये गये थे। इस मस्जिद को हजीब अल-मंसूर (९७७-१०००) ने और विस्तृत किया और उसकी मरम्मत भी कराई।

जहाँ तक गैर-धार्मिक स्मारकों का संबंध है, सेविले प्रान्त का अलकाज़र और ग्रैनाडा का अलाहाम्ब्रा उल्लेखनीय है। इनके अवशेषों से इनकी प्रचुर और गरिमा-पूर्ण सजावट का पता चलता है। अब्द-अल-रहमान तृतीय और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा निर्मित "मदीनत अज-जाहरा" जिसे अब कोर्डो वाला विएजा कहते हैं, भी उल्लेखनीय है। इसके खंभे रोम, कान्स्टैंटीनोपुल और कारथेज से मंगाए गए थे। इसकी शान-बान प्रदर्शित करने के अब बहुत कम अवशेष बचे हुए हैं। अब्द-अल-रहमान तृतीय ने इस महल-नगर का नाम "मदीनत-अज जाहरा" अपनी प्रेमिका अज-जाहरा (अत्यन्त सुन्दर) के सम्मान में रखा था। यह उमैय्यद स्पेन का सबसे ज्यादा सजावट वाला गैर-धार्मिक स्मारक है यद्यपि अब उसके ध्वंसावशेष ही रह गये हैं। यह कारडोवा से छः मील दूर है। इसका निर्माण सन् ९३६ में शुरू हुआ और पच्चीस वर्षों तक चला। सन् १०१० में उमैय्यद राजवंश का, जिसे अल-मंज़ोर ने सत्ता से हटा दिया था, स्पेन पर से पूरा नियंत्रण समाप्त हो गया। एक लंबे गृह-युद्ध में मदीनत अल-जाहरा नष्ट हो गया। अल-मंसूर का किला जिसका नाम भी "अल-मदीना अल-जाहिरा" था और जो कारडोवा के पूर्व में अवस्थित था, बर्बर जनजाति वालों द्वारा नष्ट कर दिया गया। अब उसका कहीं नाम-ओ-निशां नहीं है।

सेविले प्रान्त के शाही निवासस्थान अलकाजर का निर्माण सन् ११९९-१२०० में टोलेडो के एक वास्तुकार ने मुआवाहिद गवर्नर के लिए किया था। सन् १३५३ में राजा पीटर-दी क्रूएल के लिए मुदेजार कारीगरों ने इसे मुस्लिम भवन-निर्माण शैली में फिर से बनवाया। कुछ वर्षों पूर्व तक इसका उपयोग शाही निवास-स्थल के रूप में किया जाता रहा है। कारडोवा, टोलेडो और स्पेन के अन्य नगरों में जो अनेक अलकाजर (शाही निवास-स्थल) हैं उनमें यह सबसे प्रसिद्ध और एकमात्र

अवशिष्ट है। सेविले प्रांत को "गिराल्डा गुम्बद" पर भी गर्व हो सकता है जो पहले एक बड़ी मस्जिद की एक मीनार थी। उसका निर्माण सन् ११८४ में किया गया था।

स्पेन में उमैय्यदों के शासन के बाद भी दो शताब्दियों (१२६६-१४९२) में ग्रैनाडा राज्य में मुसलमानों का शासन रहा। वहाँ पर इस्लामी संस्कृति इस तरह फली-फूली जिस तरह कि वह तीन सौ वर्ष पूर्व अपने स्वर्णयुग में फली-फूली थी। उसका सबसे बड़ा स्मारक शाही निवास-स्थल अलहाम्ब्रा है जिसका निर्माण चौदहवीं शताब्दी के अधिकांश समय में हुआ था। अल-हाम्ब्रा (अरबी शब्द अल हामर 'लाल' से व्युत्पन्न) से स्पेन के मुसलमानों की परम्परा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। इसके सौन्दर्य में वास्तुकला और सुविस्तृत उद्यान की रमणीयता का मिश्रण है। इसके मुकाबले का और कोई तत्कालीन ईसाई भवन नहीं था।

अल हाम्ब्रा वास्तव में उस युग का रत्न था। उसके अत्यधिक नाजुक होने के बावजूद स्पेनवासियों ने उसे पूरी तरह सुरक्षित रखा। उसके निर्माण की शैली का अभी भी ईसाई अनुकरण करते हैं। सेविले का "अलकाजर" (शाही निवास-स्थान) जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उसी शैली में बनाया गया था।

संगीत

जहाँ तक संगीत-कला का सम्बन्ध है, उसकी नींव जिरयाब ने डाली थी जो उमैय्यद स्पेन की राजधानी कारडोवा में सन् ८२२ में पहुँचा और जिसे अब्द-अल-रहमान द्वितीय ने संरक्षण दिया। उसने एक विद्यालय स्थापित किया जो मुस्लिम स्पेन की रक्षण-शाला बन गया। जिरयाब के बाद इब्न फिरनास को इस बात का सबसे ज्यादा श्रेय दिया जाता है कि उसने स्पेन में पूर्वी-संगीत को आगे बढ़ाया और लोकप्रिय बनाया। वह और भी अनेक मामलों में दक्ष था। कहा जाता है कि वह "पत्थर से" शीशा बना सकता था। उसने अपने निवास-स्थान पर एक वेधशाला स्थापित की जहाँ कोई भी तारे, बादल और यहाँ तक बिजली भी देख सकता था। इब्न फिरनास अरब इतिहास में प्रथम व्यक्ति था जिसने आकाश में उड़ने का वैज्ञानिक प्रयास किया। जिरयाब और इब्न फिरनास का संगीत-सिद्धांत और व्यावहारिक रूप स्वभावतः फारसी-अरबी थे। पर ज्यों-ज्यों, क्रमशः, यूनानी संगीत-कृतियों का अरबी में अनुवादन होने लगा। यूनानी और पाइथागोरस के संगीत सिद्धांत इन सिद्धांतों का स्थान लेने लगे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी मुसलमान अपने पूर्वी सह-धर्मावलंबियों की तुलना में मधुर संगीत-कला में अधिक रुचि लेते थे। ग्यारहवीं शताब्दी तक अंदालूसिया (स्पेन) के संगीत के समक्ष बगदाद की संगीत-प्रसिद्धि फीकी पड़ गई। उस समय अब्बादिदों के, जिन्होंने भी कुछ समय के लिए स्पेन पर शासन किया, सेविले प्रांत संगीत, गायन और अन्य मनोरंजनों का

केन्द्र बन गया। अब्बादिद शासकों में से एक अल-मुतामिद (सन् १०६८-९१) एक प्रतिभासम्पन्न कवि, गायक और वीणा-वादक था। अब्बादिदों की राजधानी संगीत-यन्त्रों के निर्माण के लिए विख्यात हो गई और वहाँ से इन यन्त्रों का बाहर निर्यात होने लगा।

चूंकि ईसाई आबादी ने मुसलमानों के संगीत-नमूनों को पसन्द किया, अरब संगीत सम्पूर्ण स्पेन में लोकप्रिय हो गए। ईसाई राज्यों कैस्टाइल और आरगां के राजाओं के दरबारों में मुस्लिम गायक मौजूद थे। जिस तरह दर्शन, गणित और औषधि यूनान और रोम से बैजेन्टाइनों की राजधानी बैजेन्टियम, फारस और बगदाद होते हुए स्पेन और फिर वहाँ से समूचे यूरोप गये उसी प्रकार संगीत के सिद्धांत और प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी हुआ। ज्ञान के इस क्षेत्र (संगीत) में संभवतः अरबों का सबसे बड़ा योगदान तालबद्ध संगीत है। उसके साथ ही उन्होंने वीणा (अल-ऊद) और तीन-तारा यन्त्र (रबाब) का प्रयोग भी पश्चिमी यूरोप में शुरू किया। तीनतारा यन्त्र कवि चौसर का एक प्रिय संगीत-यन्त्र था। उसे आजकल प्रचलित वायलिन (वेला) का पूर्वरूप माना जा सकता है। मुसलमानों ने ही यूरोप में गिटार का आरम्भ किया।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुस्लिम स्पेन राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। खासकर उस समय कला, वास्तुकला और बौद्धिक प्रगति अत्यधिक हुई। सदियों तक स्पेन संस्कृतियों के केन्द्र, कलाओं और विज्ञानों तथा विद्वता और सुसंस्कृत प्रबुद्धता का अधिष्ठान रहा। स्पेनी अरबों की सांस्कृतिक ऊँचाइयों तक और कोई यूरोपीय देश न पहुँच सका।

अध्याय १९

सालजुक तुर्कों का युग

सालजुक तुर्कों की सत्ता गजनवी राजवंश[1] के ध्वंसावशेष पर उदित हुई। इस्लाम और खिलाफत के इतिहास में सालजुक तुर्कों के उदय से एक नये और महत्त्वपूर्ण युग का आरंभ होता है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक भाग में पूर्व से सालजुकों के आगमन के बाद खलीफा की प्रारंभिक शक्ति की छाया मात्र रह गई थी और उसका साम्राज्य पूरी तरह विखंडित हो गया था। स्पेन में उमैय्यदों और मिस्र तथा उत्तरी अफ्रिका में शिया धर्मावलंबी फातिमिदों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी और बगदाद के शासकों द्वारा उनके हटाये जाने की कोई आशा न थी। उत्तरी सीरिया और ऊपरी मेसोपोटामिया उपद्रवी अरब सरदारों के अधीन थे जिनमें से कुछ अपने राजवंश स्थापित करने में सफल हुए। फारस, ट्रांजोक्सियाना और पूर्व और दक्षिण के क्षेत्र बुआयहिद और गजनी वंश के राजाओं के बीच बँट गए या उन पर भिन्न-भिन्न छोटे राजवंशों का अधिकार हो गया। इनमें हर छोटा राजवंश दूसरे पर चढ़ बैठने की प्रतीक्षा में रहता था। सभी ओर राजनीतिक और सैनिक अराजकता व्याप्त थी। शिया और सुन्नी धर्मावलंबियों के बीच वैमनस्य और झगड़े तो चल ही रहे थे। लगता था कि इस्लाम आपसी घात-प्रतिघात से चूर-चूर हो रहा था।

सालजुकों का उदय

सालजुक एशिया में एक प्रमुख राष्ट्र बन गये। ईरान में गैर-ईरानी राजवंशों का शासन रहा था जिस सिलसिले में अधिकांशतः तुर्कों ने शासन किया और कभी-कभी मंगोलों और कुर्दिशों ने। ईरान के लिए प्रथम विदेशी शासक सालजुक तुर्क हुए जो ईरान में ग्यारहवीं सदी के प्रथम उत्तरार्द्ध में आये। सालजुक मूलतः मध्य एशिया के घास के बिना जोते हुए मैदानों (स्टेपी) के घुमन्तू लोगों के प्रधान सेनानायक थे। पूर्व में एक नई तुर्की सत्ता (अर्थात् सालजुक) गजनविदों के क्षेत्र में प्रवेश करने लगे थे। सालजुक नाम के एक तुर्की सेनापति के नाम पर सालजुकों का यह नाम पड़ा। उसने अपनी जनजाति का नेतृत्व करते हुए बुखारा के आस-पास क्षेत्र से तुर्किस्तान के किरगिज घास के बिना जोते हुए (स्टेपी) से आकर अपना

१. अबू मंसूर सेबुक्तेगिन (संभवतः सन् ९९७) गजनवी राजवंश का संस्थापक था और सुप्रसिद्ध गजनी के सुल्तान महमूद (९९८-१०३०) का पिता।

अड्डा जमाया। वहाँ वे लोग कट्टर सुन्नी मुसलमान हो गये। सालजुक महान तुर्की या स्कीथियन वंश की शाखा के थे और वे अपना आधार नाम अपने सेनानायक से ग्रहण करते थे जिनके अधीन उन्होंने ट्रान्जाक्सोनिया में प्रवेश किया और उसके बाद खुरासान में। यद्यपि तुर्क और मंगोल मूलतः एक ही वंश के थे, पर उनके बीच थोड़ा-सा फर्क यह था कि जब कि मंगोल एशिया के सबसे पूर्वी छोर में रहते थे और अभी भी रहते हैं। उनकी अवस्था अर्द्ध-बर्बर की है और बहुत कुछ जंगली जैसी। दूसरी ओर पश्चिमी जनजाति अर्थात् तुर्क अरबों की सभ्यता से प्रभावित हुए थे। उनमें सालजुक सबसे ज्यादा विकसित थे। उन्होंने उमंग और उत्साह के साथ इस्लाम धर्म अपनाया और उसके सबसे तीव्र पक्षधर हो गये। जब कि अरब शांतिकालीन कलाओं को आगे बढ़ा रहे थे तो तुर्कों ने इस्लाम की सत्ता को विस्तृत करने के कार्य में अपने को लगाया। ग्यारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध उनके इतिहास का सबसे गौरवपूर्ण युग है। इस अवधि में उन्होंने एक सर्वोच्च सम्राट का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। सामन्ती जागीरदार आपस में मिलकर एक हो गए और उन्होंने अपनी निष्ठा एक सम्राट के प्रति कर ली। उनकी सत्ता और महत्त्वाकांक्षाएँ अक्सर परम्परागत अधिकारों और रीति-रिवाजों से बँधी हुई थीं। सालजुकों ने, जो ओगुज (गज) तुर्कमान जनजातियों का नाम है, ग्यारहवीं शताब्दी में पश्चिमी एशिया पर हमला किया और वहाँ एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया जो बाद में ईरान, सीरिया और एशिया माइनर के राज्यों में विभाजित हो गया। इन हमलावरों का इतिहास निकट और मध्य पूर्व में तुर्कों के इतिहास का प्रथम भाग है। जब ग्यारहवीं शताब्दी में सालजुक पहली बार ट्रांजोक्सानिया और खुरासान में आये तो वे लुटेरों और डाकुओं के रूप में आये। कहा जाता है कि तुर्की लोगों द्वारा इस्लाम धर्म अपनाये जाने और बाद में जिहाद (धर्म युद्ध) के लिए उनके अपार उत्साह से उन्हें मध्य पूर्व के इतने बड़े भाग में विजय प्राप्त करने में सफलता मिली।

सालजुक, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ओगुज तुर्कों में से थे। ओगुज तुर्क नौ जनजातियों-तोकुज ओगुज के एक समूह थे। ये लोग पूर्वी तुर्कों के एक हिस्सा थे। आठवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में बाहरी मंगोलिया के ओरखन अभिलेख—परिसंघ के शाही इतिहास में उनका उल्लेख आता है। जब उनका साम्राज्य सन् ७४१ में समाप्त हो गया और उनलोगों का एक नया परिसंघ बनाया गया। ओगुज प्रधान बाद में गिरोह के दक्षिणपक्षी शाखा के सैनिक पद याबगू पर आसीन हुआ यद्यपि उसे 'कागन' की सर्वोच्च उपाधि कभी न मिल सकी। आठवीं शताब्दी के अंत में वे लोग साइबेरिया के घास के मैदानों (स्टेपी) आरल समुद्र और वोल्गा तथा दक्षिणी रूस तक पहुँच गये। फिर जब उन्होंने अब्बासिद खलीफा

मामून के क्षेत्र उश्रुसाना पर हमला किया तो उन पर इस्लामी लेखकों का ध्यान गया।

कुछ ओगुज आरटक नदी के उत्तर में दिहीस्तीन घास के मैदानों में चले गए। कुछ अन्य सीर दरिया (नदी) के मुहाने पर स्थित ठिकानों पर बस गये। दसवीं शताब्दी के इस्लामी विवरणों में ऐसे तीन तुर्की नगरों जुंड, खुवार और येंगी केंट के 'नये नगर' का उल्लेख है। अधिकांश तुर्क ओगुज थे जिनमें से कुछ घुमन्तू और कुछ एक ही स्थान पर रहने वाले लोग थे। उन्होंने कुछ हद तक सभ्यता हासिल कर ली थी क्योंकि इस क्षेत्र का ख्वारिज्म और ट्रांजोक्सानिया से आर्थिक संबंध थे। पर इन ओगुजों का, जो दिहिस्तान घास के मैदानों और यूराल के बीच घुमन्तू जीवन बिता रहे थे, सांस्कृतिक और पार्थिव स्तर स्पष्टतः निम्न स्तर का था। अरब यात्री इब्न फदलन जब खलीफा के दूत के रूप में मध्य बलधारों के पास जाते हुए वोल्गा में ओगुजों के क्षेत्र से गुजर रहा था तो उसकी मुलाकात ओगुजों के एक गिरोह से हुई जो बहुत ही गरीबी में रह रहे थे और "जंगली गदहों के समान घूम रहे थे।" इब्न फदलन उनके कुछ नेताओं से मिला जिनकी उपाधियों का जिक्र बाद के सालजुक इतिहास में आता है। उनके प्रधान की उपाधि याबगू थी। दसवीं शताब्दी ईस्वी में उनकी तुर्कमान शब्द पहली बार इस्लामी विवरण में आता है। दूसरी ओर तुर्क शब्द का प्रयोग अधिक पूर्व से आने वाले और ओगुज तुर्कमानों के लिए किया जाने लगा। सालजुक वजीर निजाम अल-मुल्क अपनी "राजाओं के लिए दर्पण" (सियासत नामा) पुस्तक में इस शब्द (तुर्कमान) का प्रयोग महान सालजुक के अनुयायियों के लिए करता है जो ईरान और पश्चिम के क्षेत्रों में घुमन्तू लोगों का जीवन बिता रहे थे।

प्रमुख तुर्की-अरबी शब्दकोष "दीवान लुगत अल तुर्क" (१०७४ में समाप्त) के लेखक महमूद काशगरी के अनुसार औगुजों की प्रमुख जनजाति, जिसमें से ही उनके राजा हुए, किनिक थी। सालजुक परिवार (लगता है कि मूलतः वह इससे बड़ी सामाजिक इकाई न थी) किनिक जनजाति का ही था। दसवीं शताब्दी के अंत में औगुज शासक यागबू था जिसकी शीतकालीन राजधानी सीर दरिया (नदी) के मुहाने की भूमि में यंगी केंट में थी। उसका अधिकार-क्षेत्र घास के मैदान (स्टेपी) के क्षेत्र में वहाँ से वोल्गा तक था। सीर दरिया के निचले भाग में वह क्षेत्र था जहाँ इस्लामवादी और गैर इस्लामवादी दोनों ही थे। साथ ही वहाँ मुस्लिम गाजी (धर्म-निष्ठा के लिए लड़ने वाले) पूरी तरह सक्रिय थे। स्वयं सत्ता में आने की अवधि के एक चरण में सालजुक यहाँ विशिष्ट गाजियों के रूप में काम कर रहे थे। साल-जुकों के मूल के बारे में एक विवरण मलिक-नामा के अनुसार जिसके बारे में विश्वास

किया जाता है कि काहेन ने सुल्तान अल्प-अर्सलान के लिए लिखा, सालजुक परिवार की सन्तान दुकक था जिसे तेमूर यालिग ("लोहे का प्रहार") कहा जाता था। वह और उसका पुत्र तुर्कों के राजा अर्थात् याबगू के अधीन काम करते थे। सालजुक एक महत्त्वपूर्ण सैनिक पद-'सु-बासी' पर था जिसे तुर्की भाषा में 'सुबे-गी' (सैनिक नेता) कहते हैं। कुछ स्रोतों का कहना है कि दुकक और सालजुक खजारों के राजा के अधीन काम करते थे जिसका राज्य वोल्गा के निचले भाग से दक्षिणी रूस तक विस्तृत था। पर यह बात पूर्ववर्त्ती ओगुज और खजारों के सम्बन्धों की स्मृति-सी प्रतीत होती है। बाद में तुर्कों का राजा याबगू सालजुक के प्रभाव से ईर्ष्या करने लगा। फलतः सालजुक अपने साथियों और गिरोह के साथ जुंड भाग गया। स्पष्टतः दसवीं सदी के अंतिम दशक में जुन्ड के शासन-क्षेत्र में, सालजुक परिवार ने इस्लाम धर्म अपना लिया और वे उन तुर्कों पर हमला करने लगे जो अभी भी गैर-मुसलमान थे। इनमें येंगा केन्ट का याबगू भी शामिल था। किनिक की इन दो शाखाओं के बीच भीषण शत्रुता का कोई हल सन् १०४२ तक न निकल सका जब तक कि सालजुक ने ख्वारिज्म पर कब्जा न कर लिया और याबगू के पुत्र और उत्तराधिकारी शाह मलिक इब्न अली को निकाल बाहर नहीं किया।

अगले दशकों में सालजुकों ने जिनका नेतृत्व सालजुक के तीन पुत्र मूसा, मिकाइल और अर्सलान इजरायल कर रहे थे, जो अब युवा हो गये थे, ट्रान्जोक्सीयाना और ख्वारिज्म के आपस में लड़ रहे गुटों को अपनी सेवायें अर्पित कर दीं। इसमें मिकाइल के दो पुत्र तुगरिल बेग और चागरी बेग दाऊद भी शामिल हो गये। कुछ ऐतिहासिक स्रोतों का कहना है कि वे लोग किसी को भी सहायता दे सकते थे जो उनके मवेशियों के लिए चारागाह देने को लड़ रहा हो। दरअसल सालजुक अपनी बढ़ती आबादी के लिए और मवेशियों के लिए चारागाह की आवश्यकता के लिए दक्षिण की ओर बढ़ने के लिए बाध्य हुए। येंगी केंट का याबगू सन् १००३ में मुसलमान हो गया और उसने समानिद शासकों में से अंतिम इस्माइल अल-मुंतसिर की सहायता की। उसके सालजुक प्रतिद्वन्द्वी समानिदों के पतन के बाद बुखारा के निकट-स्थित चारागाहों तक पहुँच गए थे। उन्होंने अपनी सेवायें समानिदों के शत्रुओं काराखानियों को अर्पित कीं। सालजुक के दूसरे पुत्र मिकाइल के दो पुत्रों तुगरिल और चागरी ने बुगरा खाँ नामक एक काराखनिद के लिए युद्ध किया। बाद में उन लोगों ने एक प्रतिद्वन्द्वी काराखानिद-बुखारा और समरकंद के अली तेगिन की सेवा में कार्यरत अपने चाचा अर्सलान इजरायल से भी युद्ध किया। तुगरिल और चागरी के अनुयायी अब अली तेगिन की राजधानी के निकट नूर बुखारा या नखसब-स्थित शीतकालीन चारागाहों से पूरब की ओर बढ़ रहे थे ताकि वहाँ ग्रीष्म काल बिता सकें।

फिर जब सन् १०२६ में गजनी के महमूद और कशगर तथा खोतान के कादिर खाँ युसुफ की संयुक्त सेना अली तेगिन अस्थायी तौर पर से पराजित हो गया तो सालजुकों का गिरोह एक बार फिर बँट गया। पर उसके तुरत बाद अर्सलान इजरायल गजनी के सुल्तान महमूद द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में जेल में उसकी मृत्यु हो गई। तुगरिल और चागरी अली तेगिन के साथ बुखारा के आस-पास ही रहे। १०२९ के बाद कारखानियों से झगड़ बैठे। पर १०३२ में दावूसिया की लड़ाई में सालजुक गजनवीद सेनापति आलतुन-ताश के विरुद्ध अली तेगिन की ओर से लड़ रहे थे। फिर जब १०३४ में अली तेगिन की मृत्यु हो गई, सालजुक आलतुन-ताश के पुत्र हारून के निमंत्रण पर ख्वारिज्म में चले गए। हारून उस समय गजनी के महमूद के विरुद्ध विद्रोह की राह पर था। इसी अवसर पर सालजुकों और येंगी केंट के औगुज याबगुरों के वंशजों के विरुद्ध फिर शत्रुता भड़क उठी। जुंड के शाह मलिक द्वारा, जो कि ख्वारिज्म पर अधिकार करना चाहता था, सालजुक पूरी तरह पराजित किये गये।

सालजुकों के सामने अब सिर्फ यह रास्ता बच गया था कि वे अर्सलान इजरायल के गिरोह के उदाहरण का अनुसरण करते और दक्षिण में खुरासान की ओर बढ़ते। तुगरिल, चागरी और मूसा याबगू (येंगी केंट और जुंड के याबगुओं की प्रतिद्वन्द्विता में सालजुकों ने यह उपाधि ग्रहण की) और इब्राहीम इनाल के नेतृत्व में सात सौ से एक हजार तुर्कमान खुरासान की ओर बढ़े। इब्राहीम इलान तुगरिल की माँ का पुत्र इनालियनों का नेता था। इनालियन तुर्कमानों के ही वर्ग के थे जिनकी चर्चा ऐतिहासिक विवरणों में अलग से की गई है। ख्वारिज्म में सालजुकों और इनालियनों की पराजय से वे लोग दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में आ गए थे। १०३५ में गजनी के मसूद के विजीर को एक बहुत ही विनम्रतापूर्ण पत्र में इन लोगों के नेताओं ने अपने को दासों के रूप में प्रस्तुत किया। याबगू, तुगरिल और चागरी ने अपने को "निष्ठापूर्ण लोगों के प्रधान" का अनुयायी घोषित किया और विजीर से प्रार्थना की कि उन्हें नासा और फरावा नगर दे दिये जाएँ। जो तुर्कमान १०२५ में खुरासान में झुंड के झुंड प्रवेश करके लूटमार कर गये थे उससे और सालजुकों की लूट-खसोट से तथाकथित ईराकी तुर्कमान बहुत क्रुद्ध हो गये थे। सात वर्षों १०३१ से १०३८ तक जब तक तुगरिल की सेनाओं के समक्ष खुरासान नगर ने घुटने नहीं टेके, बैहाक (आधुनिक सबजाबर) में खेतों की बोआई संभव न हो सकी।

उधर गजनवीद सुल्तान कभी समझौते का प्रयास करते तो कभी अपने शत्रुओं के विरुद्ध दंड देने के अभियान का। उन लोगों ने १०३५ में और तुर्कमान आक्रमणों के विरुद्ध रक्षा के लिए सालजुकों को सीमा-प्रहरी के रूप में नियुक्त किया। उन

लोगों ने उनमें से हरेक को दिहकान की उपाधि दी और गवर्नर का राजचिह्न तथा पोशाक दी। उन लोगों ने तुगरिल, चागरी और मूसा यावगू के साथ विवाह के संबंध का प्रस्ताव भी रखा। पर यह बात जल्द ही स्पष्ट हो गई कि सालजूक वास्तव में घुमन्तू लोग थे। वे लोग परिभाषित सीमाओं की धारणाओं और भू-सम्पत्ति की पवित्रता से अपरिचित थे। १०३० और १०४० के बीच भारी गजनवीद सेनाओं और तुर्कमानों के बीच निरन्तर युद्ध हो रहा था। गजनवीद सुल्तान ने अपने तुर्की गुलाम सेनापतियों को अक्षमता के लिए दोषी ठहराया। उसने उन पर यह आरोप भी लगाया कि वे सालजूकों के साथ साठ-गाँठ किये हुए हैं। गजनवीद सेनाओं को नेतृत्व अच्छा मिला हुआ था, उनके पास अच्छे अस्त्र-शस्त्र थे और वे बहुत ही कम अस्त्र-सज्जित अर्द्ध-बुभुक्षित घुमन्तू गिरोहों से संख्या में भी कहीं ज्यादा थे। इसलिए प्रथम दृष्ट्या विजय की संभावनाएँ गजनविदों के ही पक्ष में थीं। यद्यपि गजनवीद सुल्तान को घमासान लड़ाइयों में कुछ सफलता मिली पर वे लोग अधिक सफलता प्राप्त न कर सके। घुमन्तू लोगों को स्पष्ट फायदा इस कारण था कि वे एक स्थान से दूसरे स्थान आसानी से जा सकते थे। गजनवीद सेना हाथियों, घेरा डालने वाले यंत्रों और शिविर डालने के सामानों के बिना न चल सकती थी। घुमन्तू लोगों पर इन चीजों का प्रभाव कुछ भी न पड़ता था। वे लोग प्रतिकूल से प्रतिकूल मौसम, पानी की कमी और दुर्भिक्ष की स्थितियों को, जो उस समय खुरासान में वर्त्तमान थीं, बर्दाश्त करने में पूरी तरह सक्षम थे। गजनवीद सेनाओं को निश्चित अड्डों से लड़ाई करनी थी जो बात घुमन्तू लोगों के साथ न थी।

इस बीच खुरासान के नगरों की स्थिति भयावह हो रही थी। इस बात का खतरा कम ही था कि सालजुक उन पर प्रत्यक्ष हमला करेंगे क्योंकि उन घुमन्तू लोगों के पास घेरेबन्दी का सामान न था। खुरासान के बड़े नगरों ने स्वतः आत्म-समर्पण कर दिया। मर्व ने १०३७ में आत्म-समर्पण किया और हेरात तथा निशापुर ने १०३८ में। निशापुर पर गजनवीद सुल्तान ने फिर से कब्जा कर लिया और १०३९ में वह उनके हाथों से फिर निकल गया। इनमें से हर नगर के मामले में नगरों के प्रतिष्ठ व्यक्तियों और भूस्वामियों ने शांति-स्थापना में मदद की। वे लोग गजना के सुल्तान से पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त करने के बारे में निराश हो चुके थे। सुल्तान बहुत बाद में अपनी सेनाओं का नेतृत्व करने के लिए खुरासान आया।

गजनविदों का अधिकार पूर्वी क्षेत्र में बागीस और तुखारिस्तान पर से भी शिथिल पड़ रहा था। वहाँ के पहाड़ी क्षेत्र घुमन्तू लोगों के लिए अपनी कार्रवाइयाँ करने के उपयुक्त न थे। पर वहाँ कानून और व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी जिससे लूटमार करने वाले दस्तों की बन आई थी। हेरात जैसे नगरों के अफसर और

प्रमुख नागरिक अपने नगरों के आत्म-समर्पण के लिए सालजुकों से वार्ता चलाने लगे। गजनवीद प्राधिकार पर अंतिम एवं निर्णायक प्रहार १०४० में लगा। एक बड़ी सेना को, जिसका नेतृत्व स्वयं सुल्तान मसूद कर रहा था और जिसके साथ हाथी और युद्ध के सामान थे, सराख्स और मार्व के बीच सूखे, जलहीन रेगिस्तान में डंडनकान के रिबात (मजबूत अड्डे) की लड़ाई में पीछे हटने को बाध्य होना पड़ा। तुर्कमानों ने अपने १६००० घुड़सवारों को मैदान में उतारा और अपने २००० कम अनुभवी और कम शस्त्र-सज्ज सैनिकों को अपने सामानों की रक्षा के लिए रख छोड़ा। उनके सामने निराश और थकी हुई गजनवीद सेना खड़ी थी। यह लड़ाई खुरासान के इतिहास की सबसे ज्यादा निर्णायक लड़ाइयों में से थी। मसूद की फौजों के पाँव पूरी तरह उखड़ गये।

खुरासान पर कब्जा करने के बाद सालजुक नेता केवल घुमन्तू दस्तों के प्रधान नहीं बल्कि क्षेत्रीय सार्वभौमसत्ता सम्पन्न शासक बन गए। वे अन्य राज्यों के शासकों के साथ वार्त्ता करना भी सीख गए और अन्य सुस्थापित राज्यों की प्रशासकीय तकनीक की जानकारी भी हासिल कर ली। पर स्वयं सालजुक नेताओं के लिए राजनीतिक उत्तरदायित्व प्राप्त करने की प्रक्रिया कष्टप्रद थी, क्योंकि इस कारण उन्हें अपनी घुमन्तू जीवन-पद्धति और दृष्टिकोण बदलना पड़ा। सालजुक सुल्तान, जैसे कि तुगरिल, अल्प आर्सलान और मलिक शाह ने अपने को ईरानी-इस्लामी सम्राट-परम्पराओं में ढाल लिया और वे ईरानी अफसरों पर अधिक-से-अधिक निर्भर करने लगे। पर फिर भी महान विजीर निजाम अल-मुल्क ने अपनी पुस्तक **सियासत-नामा** में इस बात पर खेद प्रकट किया है कि सालजुक सुल्तान गजनवीद और अन्य पूर्ववर्त्ती शासकों की बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशानिक कार्य-विधि की उपेक्षा की।

तुगरिल ने जब पहली बार खुरासान की प्रशासनिक राजधानी निशापुर पर कब्जा किया तो उसकी स्थिति काफी ऊँची उठ गई। उसने प्रान्त के स्वतंत्र शासक के रूप में व्यवहार किया, उसने शाद्यख के अंचल-क्षेत्र में स्थित सुल्तान का महल अपना निवासस्थान बनाया और मसूद के सिंहासन पर आसीन हुआ।

तुगरिल बेग (१०३७-६३)

गजनवीद सुल्तान की पराजय के बाद सालजुकों ने तुगरिल बेग को अपना शासक बनाया। वह उनके प्रधान सालजुक का पौत्र था जिसके नाम पर ही सालजुकों का नाम पड़ा था। इतिहासकार इब्न-अल अथीर का कहना है कि तुगरिल बेग एक बुद्धिमान सार्वभौमसत्ता-सम्पन्न शासक, अग्रसोची और उदार था। वह जीवन में गुणवान और सादगीपसन्द था और साथ ही पढ़ने-लिखने में लगा रहने वाला। तुगरिल बेग ने शीघ्र ही जुरजान, फारसी ईराक, ख्वारिज्म और पश्चिम के अन्य

महत्वपूर्ण नगरों को अपने अधिकार में ले लिया। जल्द ही उसके निकट उत्तरी फारस के बुआहिद राजा पहुँच गये जो या तो अपने राज्यों से निकाल दिये गये थे अथवा सालजुक प्रधान की सत्ता स्वीकार करने को बाध्य हुए थे।

धीरे-धीरे पर निश्चित रूप से सालजुक राजा और उसके बाद उसके पुत्रों ने इलेकखान राजवंश और बाद में समानिद राजवंश के राज्यों पर भी अधिकार कर लिया। सालजुकों के राजवंश के, जिसने ईरान, सीरिया और एशिया माइनर पर ११वीं से १४वीं शताब्दियों तक राज किया, संस्थापक तुगरिल बेग ने अपने भाई चागरी को खुरासान में जितनी दूर तक संभव था, भेजा। १०३७ में दोनों भाइयों ने मार्व और नयसाबुर को गजनवीदों के अधिकार से छीन लिया। बल्ख जुरजान, तबरिस्तान, ख्वारिज्म और हमादान, राय तथा इस्बाहान पर भी शीघ्र ही विजय हो गई।

बुआहिदों और अल-बसासिरी के साथ युद्ध

ख्वारिज्म और कैस्पियन प्रान्तों पर विजय के बाद तुगरिल १०४२-४३ में पश्चिम की ओर जिबाल आया और इब्राहीम इनाल से राय नगर जीत लिया जो अस्थायी तौर पर उसकी राजधानी बनी। इब्राहीम इनाल कुछ समय से विद्रोह के चिह्न दिखलाने लगा था। फलतः तुगरिल बेग ने गिरफ्तार कर लिया। बाद में उसे छोड़ दिया गया और वह कृपापात्र बन गया। तुगरिल बेग ने उसके समक्ष प्रस्ताव रखा कि या तो वह उसके साथ रहे अथवा अपने लिए एक क्षेत्र ले ले और वहाँ अपना राज्य बना ले। पर इब्राहीम इनाल की अपनी ईर्ष्याएँ और महत्वाकांक्षाएँ थीं जिनको वह दबा न सका। यह स्पष्ट है कि वह अनुदारवादी तुर्कमान भावना वाले एक बड़े समूह का प्रतिनिधित्व करता था। १०५० में इब्राहीम इनाल और उसके भाई इर-ताश के दो पुत्रों ने विद्रोह किया। उस समय तुगरिल के लिए बगदाद और ईराक में स्थिति कठिन हो रही थी। उसे सिस्टान में चागरी के पुत्र अल्प अर्सलान की मदद माँगनी पड़ी। अल्प-अर्सलान ने इब्राहीम इनाल का दमन किया। एक धनुष की डोरी से फाँसी लगाई गई स्थिति में इनाल पाया गया। इतिहासकार अल जौजी कहता है कि तुगरिल ने उसके बाद तुर्कमानों के प्रति सभी विश्वास और निष्ठा खो दी।

तुगरिल निःसंदेह स्पष्ट रूप से सोचने और सुसंगठित रीति से काम करने वाला था। भली-भाँति योजना बना कर काम करने से उसे सफलता मिली। मध्य और पश्चिमी ईरान में सरकार बुआहिदों और अन्य छोटे-मोटे शिया राजवंशों के हाथों में था। उनको कट्टर सुन्नी और बगदाद के अब्बासिद खलीफा बर्दाश्त न

कर पा रहे थे। फलतः ईराक के पूर्व और उत्तर में सभी छोटे-छोटे राज्यों को पराजित करने के बाद तुगरिल १०५५ में बगदाद ही पहुँच गया और इसमें उसे किसी प्रतिरोध का सामना न करना पड़ा। यह आश्चर्यजनक है कि तत्कालीन अब्बासिद खलीफा अल कैम (१०३१-७५) ने पूर्व के नये शासक तुगरिल को अपने बुआहिद अभिभावक के मुकाबले ज्यादा पसन्द किया। एक तुर्की अफसर अल-बसासिरी ने अल-कैम के सभी अधिकार छीन लिये थे और खुद वास्तविक शासक बन बैठा था। १०३५ में जब तुगरिल बेग हलवान में इन्तजार कर रहा था, खलीफा ने उसे खुतबा दिया अर्थात् बैबीलोनिया में शुक्रवार की नमाज में इस पदनाम के साथ उसका नाम लिये जाने का आदेश जारी किया। विजेता (तुगरिल) को साम्राज्य का वास्तविक शासक बना दिया और उसे "पूर्व और पश्चिम के राजा" के रूप में सम्मानित किया गया। उसकी सरकारी उपाधि "अल-सुल्तान" थी जिसका अर्थ "पूर्ण प्राधिकार के साथ सुल्तान" होता है। अब खिलाफत एक नये और अधिक उदार प्रधान के अधीन आ गई।

अन्तिम बुआहिद अल-मालिक अर-रहमान की १०५८ में राय की कालकोठरी में मृत्यु हो गई। पर सालजुक अल-बसासिरी से इतनी आसानी से निबट न सके। बुआहिद सेना का भूतपूर्व सेनापति तुर्क बसासिरी अपनी पहले की शक्ति और सत्ता वापस पाने के लिए उत्सुक था। मेसोपोटामिया और सीरिया के भी अरब नये सुल्तान से अपने लिए खतरा महसूस कर रहे थे। फलतः जन-विद्रोह भड़क उठा जिसे तुगरिल अपने नेतृत्व की अद्भुत प्रतिभा और अपने विजीर अल-कुंदुरी की अपने प्रति निष्ठा से ही दबा सका। अल-बसासिरी उत्तर की ओर भाग गया और जब तुगरिल बेग ने मोसुल तक उसका पीछा किया। तुगरिल के सौतेले भाई इब्राहीम इब्न-इनाल ने उसका साथ छोड़ दिया और ईराक वापस चला आया। फिर अपने भतीजे अल्प आर्सलान की, जो सिजिस्तान के शासक दाऊद का पुत्र था, मदद से तुगरिल बेग इब्राहीम इब्न-इनाल को पराजित करने में सफल हुआ। उसे ३ अगस्त, १०५९ को अपनी धोखेबाजी के लिए मौत की सजा दी गई। अल बसासिरी ने तुगरिल की इस परेशानी का फायदा उठाया और एक अरब राजकुमार इब्न-बदरान से साँठ-गाँठ कर बगदाद पर, जो उस समय असुरक्षित था, कब्जा कर लिया। जबकि इब्न बदरान ने अब्बासिद खलीफा अल-कैम को हटा कर मेसोपोटामिया में स्थित अन्ना नामक स्थान में भेज दिया। अल बसासिरी ने फातिमिद खलीफा मस्तांसिर को इसके लिए बाध्य किया कि शुक्रवार की नमाज में उसका नाम लिया जाय। ज्यों ही तुगरिल अपने कामों से स्वतन्त्र हुआ, वह खलीफा अल-कैम को बगदाद वापस ले आया और अपनी खोई हुई सम्मानजनक उपाधि "पूर्व और पश्चिम का राजा" उससे फिर प्राप्त की। अल-बसासिरी वासित भाग गया और वहाँ १०६०

के आरम्भ में सालजुक तुर्कों से एक लड़ाई में मारा गया। इस प्रकार तुगरिल ने खलीफा अल-कैम को फिर से सत्तासीन किया और अल-बसासिरी को अपनी धोखेबाजी के लिए अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। डेलेमाइट फौजों को विघटित कर दिया गया और बुआहिद सत्ता को हमेशा के लिए कुचल दिया गया। इस प्रकार तुगरिल ने विद्रोह को दबाया, बगदाद पर फिर से कब्जा किया और मेसोपोटामिया के अरबों को भी शांत किया। अपने जीवन के अन्तिम वर्ष उसने उत्तर-पश्चिम ईरान के छोटे-छोटे राजाओं के साथ लड़ाई में बिताये। ईराक पर कब्जा करने की शिया लोगों की महत्वाकांक्षा अन्तिम रूप से विफल कर दी गई और पहले तो बगदाद में शिया लोगों पर निर्णयात्मक रोक लगाई गई। सालजुक लोगों ने उनको बड़े पैमाने पर छांटना शुरू किया। उसके बाद ईराक के शिया-धर्म प्रभावित अरब अमीरों पर रोक लगाई गई।

१०६० में तुगरिल ने बेजेन्टाइनों के विरुद्ध युद्ध शुरू किया और उन्हें कैपाडोसिया और फाइजिया से खदेड़ दिया पर उनके क्षेत्रों पर स्थायी विजय, बाद में, उसके प्रतिभाशाली भतीजे और उत्तराधिकारी अल्प आर्सलान ने की।

खलीफा की पुत्री के साथ तुगरिल का विवाह और उसकी मृत्यु (१०६३)

ईराक में तुगरिल के अभियानों ने न केवल खलीफा को उसके शत्रुओं से मुक्ति दिलाई पर इस्लाम के केन्द्रीय भागों में शक्ति और प्रभाव के नये विभाजन का स्वरूप बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया। ऐसा लगता है कि खलीफा के मुक्तिदाता के रूप में तुगरिल ने अपनी भूमिका ऊँची उठा ली। १०६२ में तुगरिल के कार्यालय से निर्गत एक दस्तावेज में बगदाद के इतिहासकार और धर्मतांत्रिक इब्न-अल जौजी ने उसका शीर्षक इस प्रकार दिया है—"सम्राटों के उच्चतर सम्राट, पूर्व और पश्चिम के राजा, इस्लाम के पुनरुज्जीवितकर्त्ता, निष्ठावानों के प्रधान के कार्यालय से"। अब तुगरिल ने चेष्टा की कि दोनों परिवार एक दूसरे के निकट आ जाएँ। १०५६ में खलीफा अल-कैम ने चागरी की एक पुत्री आर्सलान खातून खादिजा से विवाह किया। तुगरिल स्वयं महत्त्वाकांक्षा रखता था कि वह खलीफा की एक पुत्री से विवाह करे। तुगरिल के वजीर कुंदरी के इस सम्बन्ध में आग्रह के जिसका समर्थन स्वयं खलीफा की पुत्री आर्सलान खातून कर रही थी, जवाब में अल-कैम ने गर्वपूर्वक जवाब दिया—"हम लोग मानवों में सर्वोच्च अल-अब्बास की संतान हैं। मुक्ति के दिन तक इमाम (धार्मिक) और लौकिक नेतृत्व हम लोगों के हाथों में रहेगा। जो हमारा समर्थन करेगा, वह उचित मार्गदर्शन पाएगा, पर जो हमारा विरोध करेगा वह बहुत बड़ी गलती करेगा।" फिर

भी खलीफा के नैतिक प्राधिकार का तुगरिल उच्चतर शक्ति से विरोध कर सकता था। उस समय खिलाफत बाहरी शक्तियों और उनके दूतों के उपहारों, सम्मानजनक उपाधियां बेचने और ईराक के गैर-धार्मिक शासकों द्वारा दिये अनुदानों की आमदनी पर निर्भर करती थी। तुगरिल के आदेश पर उसके विजीर कुन्दरी ने खलीफा को धमकी दी कि वह उसे उसकी रियासत से अलग कर देगा और उसके पास रियासत का उतना ही हिस्सा रहने देगा जो उसे उसके पिता अल-कादिर से प्राप्त हुई है। अल-कैम के पास अब तुगरिल का आग्रह स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प न रहा। १०६२ में तुगरिल के प्रतिनिधि अल-निहाबंदी और खलीफा के प्रतिनिधि अल-महाल्लवान के बीच विवाह का करारनामा हो गया। इस अवसर पर सुल्तान (तुगरिल) खुद अनुपस्थित था। उस समय वह आर्मेनिया में था। अतः बगदाद में रह रही अपनी पत्नी से अगले वर्ष १०६३ (४ सितम्बर) को ही मिल सका। उसके कुछ ही समय बाद राय में उसकी मृत्यु हो गई।

तुगरिल बेग का आकलन

तुगरिल बेग की जो परम्परागत प्रशंसा की गई उसमें जहाँ उसकी धार्मिकता और क्षमा की भावना पर प्रकाश डाला गया वहाँ, दूसरी ओर, उसकी शक्ति और यहाँ तक कि कठोरता का भी उल्लेख किया गया। हमें इस सम्बन्ध में सिर्फ इस बात का ध्यान रखना है कि यह अपने सत्तर साल के जीवन में, घुमन्तू जन-जाति के बहुत ही निर्धनतापूर्ण जीवन से ऊँचा उठ कर एक सम्राट की स्थिति के पद तक उठ सका जिसका अधिकार क्षेत्र किरमान से दियारबकर था। उसकी मृत्यु के समय भी अनाटोलिया, उत्तरी सीरिया और काकेशस में इसकी काफी गुन्जाइश थी कि गाजी और जनजातियां अपनी शक्ति प्रदर्शित करते। तुर्कमानों ने विद्रोह भी किया जिसे तुगरिल ने दबा दिया। यह इस बात का प्रतीक था कि "घास के मैदानों (स्टेपी) के प्रधान से ईरानी शैली में सम्राट के पद तक की प्रगति निरुपद्रव और बाधाहीन न थी।"

तुगरिल (१०३७-६३) और उसके भतीजे अल्प आर्सलान (१०६३-७२) के शासन मध्य पूर्व में सालजुकों के उत्कर्ष की सर्वाधिक उज्ज्वल अवधि रही। ज्यों-ज्यों उनकी फौजों में नये-नये तुर्की जनजाति वाले भारी संख्या में भरती होते गए, सालजुक सभी दिशाओं में विजय हासिल करते गये। यह क्रम तब तक जारी रहा जब तक पश्चिमी एशिया एक मुस्लिम राज्य के रूप में गठित न हो गया और मुसलमानों की धूमिल पड़ती जा रही प्रतिष्ठा एक बार फिर ज्योतित न हो गई। एक नया वंश विश्व-आधिपत्य के लिए इस्लाम के संघर्ष में अपना रक्त बहा रहा था। हजरत मुहम्मद के अनुयायियों को अपने पैरों तले कुचलने और फिर उन्हीं

पराजितों का धर्म स्वीकार करके उसके सबसे बड़े पक्षधर बनने की घटना इस्लाम धर्म के उथल-पुथलपूर्ण इतिहास में अद्वितीय घटना थी। उनसे घनिष्ठ रूप से संबंधित तेरहवीं सदी के मंगोलों तथा उनके अन्य सहजाति वालों तथा चौदहवीं शताब्दी के ऑटोमन तुर्कों ने भी उनके जैसी प्रक्रिया ही दुहराई। इस्लाम के राजनीतिक पक्ष की अधिकारपूर्ण घड़ी में इस्लाम के धार्मिक पक्ष ने अपनी कुछ सर्वाधिक उज्ज्वल विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

अल्प-आर्सलान (१०६३-७२)

अल्प-आर्सलान जिसका अर्थ होता है "योद्धा-सिंह" सालजुकों के तीन महान सुल्तानों में द्वितीय था। ये सुल्तान ओगुज तुर्कमान जनजाति के शाही परिवार के थे जिन्होंने ग्यारहवीं शताब्दी में पश्चिमी एशिया पर हमला किया। अल्प आर्सलान की प्रसिद्धि बैजेन्टाइन साम्राज्य पर उसकी विजय के कारण है। उसने अपने चाचा तुगरिल बेग का अनुसरण किया जिसने ईरान और बगदाद पर विजय के बाद एक साम्राज्य का सृजन किया था जिसे तीसरे सालजुक सुल्तान अल्प आर्सलान के पुत्र मलिक शाह ने सुसंगठित किया। अल्प आर्सलान के सैनिक अभियानों के बारे में ऐसी मान्यता है कि उनसे ही आधुनिक तुर्की राज्य की नींव पड़ी। इतिहासकार इब्न-अल-अथीर ने अल्प आर्सलान के बारे में लिखा है—"वह उच्च, उदार, न्यायी और बुद्धिमान शासक था और साथ ही जीवन में शुद्ध, धर्मात्मा और पुण्यवान, मानवीयता-सम्पन्न; दानशील तथा गरीबों का मित्र था। वह कोई भी निन्दनीय कार्य न करता था और बहादुर तथा युद्ध कौशल-पूर्ण था।"

प्रारंभिक जीवन

अल्प-आर्सलान का जन्म प्रायः १०३० में हुआ था। वह ईरान में खुरासान के शासक चागरी बेग का पुत्र और तुगरिल का भतीजा था। वह पश्चिमी ईरान का गवर्नर रह चुका था जहाँ से मूलतः सालजुकों ने विस्तार किया था। १०६१ में उसके पिता की मृत्यु हो गई। जब १०६३ में उसके चाचा तुगरिल की भी निःसंतान मृत्यु हो गई तो अल्प आर्सलान राजवंश के अधीन राज्य के दक्षिणी ईरान में करमान के सिवा अन्य सभी भागों का एकमात्र उत्तराधिकारी बन गया। करमान पर उसके भाइयों में से एक का अधिकार था। उसने उसे तुरत अपने अधीन जागीरदार बना दिया। उसने उसी तरह तुगरिल बेग की विधवाओं के एक पुत्र और उसके साथ ही अपने एक चचेरे भाई और प्रतिद्वन्द्वी कुतलुमश को भी समाप्त कर दिया।

परम्परागत मुस्लिम देशों से, जिन पर अब उसे शासन करना था, बाहर उसका जन्म हुआ था। उसने इसी कारण प्रशासन अपने विजीर निजाम अल-मुल्क के हाथों में छोड़ दिया। निजाम अल-मुल्क उसके उत्तराधिकारी सुल्तान मलिक शाह के अधीन भी प्रशासन संभाले रहा। यद्यपि ईराक पर अल्प आर्सलान का नियंत्रण रहा पर उसने उस देश से अपने को अलग रखा ताकि वह खिलाफत के साथ स्वार्थों के संघर्ष से बच सकता। खिलाफत का यह केन्द्र तुगरिल बेग के अंतिम दिनों में विवादों की जटिलता से घिरा हुआ था।

अल्प आर्सलान विधिवत सिंहासनारूढ़ हो गया और साथ ही तुगरिल बेग के विजीर अमीद अल-मुल्क कुंदुरी का पतन अनिवार्य हो गया। १०६३ में नये सुल्तान के शासन में आने के तुरत बाद निजाम अल-मुल्क के उकसाने पर कुंदुरी गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में उसे फांसी दे दी गई। कहा जाता है इस घटना को कुंदुरी ने दार्शनिक की भांति लेते हुए कहा कि "उसके पुराने स्वामी (तुगरिल) ने उसे इस पृथ्वी पर शासन का अधिकार दिया था और अब उसका भतीजा उसे दूसरी दुनिया (परलोक) शहीद का मुकुट पहना कर भेज रहा है।" उसने निजाम अल-मुल्क को इन शब्दों में चेतावनी दी—"अपने विश्वासघात और धोखेबाजी से एक बर्खास्त मंत्री को फांसी की सजा देकर तुमने दुनिया में एक नया निन्दनीय काम और भद्दी प्रथा शुरू की है पर तुमने भलीभांति नहीं सोचा कि इसका क्या अंजाम होगा। इस दुष्टतापूर्ण और निन्दनीय कार्य का प्रतिघात तुम्हारे बच्चों और वंशजों पर होगा।" अल्प-आर्सलान द्वारा सुल्तान के पद पर इसके लिए अब्बासिद खलीफा की सहमति अब निश्चित-सी हो गई। अल्प आर्सलान ने चतुराई के साथ तुगरिल की विधवा और अब्बासिद खलीफा की पुत्री को राजमहल में लौट आने की अनुमति दी। उसने अपने चाचा का इस दिशा में कभी अनुकरण न किया कि अब्बासिदों के साथ संबंध स्थापित करे और न ही ऐसा प्रतीत होता है कि वह कभी बगदाद गया ही। खलीफा ने नये सुल्तान का पदनाम दिया "विश्वासपात्र पुत्र" और साथ ही उसने उसे १०६४ में अदुद-अल-दौला (राज्य की शक्तिशाली भुजा) और दिया-अल-दीन (धर्म का प्रकाश) की आदरणीय उपाधियां दीं।

अल्प आर्सलान के शासन के दस वर्ष (१०६३-७३) और उसके उत्तराधिकारी और पुत्र मलिक शाह के राज्य-काल के बीस वर्ष की अवधि महान सालजुक सल्तनत की सर्वोत्कृष्ट अवधि है। इन तीन दशकों में सालजुक राज्य एक व्यक्ति के शासन के अधीन पूर्णतः संगठित हो गया। इन सुल्तानों ने निरन्तर शक्तिमत्तापूर्वक जो यात्रायें और अभियान किये उससे प्रकट है कि राज्य की यह एकता केवल सैद्धान्तिक ही न थी। उस समय ईरान बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के शिखर पर था और वाणिज्यिक एवं कृषि के क्षेत्र में प्रचुर समृद्धि हासिल कर चुका था।

विजीर निजाम अल-मुल्क

तीस वर्ष की उक्त सम्मिलित अवधि (१०६३-९२) को महान विजीर निजाम अल-मुल्क का युग भी कहा जा सकता है। इतिहासकार इब्न अल-अथीर उसे विशेष रूप से "अल-दौला अल-निजामिया" की उपाधि देता है। न केवल वह सालजुक सुल्तानों का परामर्शदाता था और ईरानी परम्परा में सार्वभौमसत्तासम्पन्न सम्राटों की भाँति कार्य करने की सलाह देता था बल्कि अपनी पुस्तक **सियासत-नामा** (प्रकाशन की पुस्तक) में उसने उस युग के राजनीतिक लोकाचार और पूर्वी ईरान में तत्समय प्रचलित प्रशासनिक एवं राजदरबार की कार्य-प्रक्रिया पर दुर्लभ सामग्री प्रस्तुत की है। निजाम अल-मुल्क का मूल नाम अबू अली हसन बिन अली तुसी (१०१७ या १०१९-९२) था। उसे खुरासान में किसी समय, उसके जीवन के आरंभ में, अल्प-आर्सलान ने **निजाम-अल-मुल्क** की सम्मानसूचक उपाधि दी थी। सालजुकों के अनेक राजसेवकों की भाँति उसने गजनविद शासकों के एक अफसर की भाँति अपनी सेवा आरंभ की थी। उसने अपने सामने बराबर गजनविद शासकों की केन्द्रीकृत निरंकुशता को अपना आदर्श रखा। अतः यह आश्चर्यजनक नहीं कि उसने अपनी कृति **सियासतनामा** में गजना के सुल्तान महमूद और बुवाहिद शासक अद्द अल-दौला जैसे शक्तिशाली सम्राटों को सालजुक शासकों के समक्ष आदर्श के रूप में रखा और उन्हें उन लोगों के रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी।

निजाम अल-मुल्क की पारिवारिक पृष्ठभूमि और प्रारंभिक जीवन पर इब्न-फंदक ने भली-भाँति प्रकाश डाला है। निजाम अल-मुल्क ने निशापुर के महान सूफी उलेमा इमाम मुआफ्फक के साथ अध्ययन किया था। बाद में विशेषतः शिक्षा के लिए उसका उत्साह **मदरसा** व्यवस्था के विस्तार के रूप में कार्यान्वित हुई।

खुरासान से गजनविदों के निष्कासन के बाद जवान निजाम अल मुल्क ने गजना में तीन या चार वर्ष बिताये। फिर उसने अपने मूल स्थान खुरासान में चागरी और अल्प आर्सलान की सेवा में प्रवेश किया। अल्प आर्सलान के विजीर अबू अली इब्न शाधन की मृत्यु के बाद निजाम-अल-मुल्क उस पद पर आसीन हुआ और फिर चागरी की मृत्यु के बाद पूरे खुरासान का शासक बन गया। उसकी प्रसिद्धि से तुगरिल के विजीर कुंदरी को अत्यधिक ईर्ष्या हुई। उसने कोशिश की कि अल्प के चचेरे भाई कुतुलुमीस के पुत्र सुलेमान को खुरासान का शासक बनाया जाय। और इस प्रकार अल्प-आर्सलान और निजामुल अल-मुल्क को सालजुक क्षेत्रों का सर्वोच्च अधिकार प्राप्त करने से रोका। इसके फलस्वरूप निजाम अल-मुल्क ने किस प्रकार कुंदरी को मौत की सजा दिलाई, उसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

अल्प-आर्सलान के शासन में निजाम-अल-मुल्क को साम्राज्य का राज-काज चलाने की पूरी स्वतंत्रता थी। इसके अलावा वह सैनिक कार्य-कलाप में काफी समय

व्यतीत करता था। वह अल्प-आर्सलान के साथ या अकेले ही सैनिक अभियानों में जाता था। उसने फार्स में १०६७ और १०७१-७२ में अकेले ही सैनिक अभियान किया और उसकी सफलता से उसकी प्रतिष्ठा में बहुत ज्यादा वृद्धि हुई।

अल्प-आर्सलान की नीति एवं उसकी विजय का सिलसिला

वाउन नामक विद्वान ने अल्प-आर्सलान की नीति का पाँच मुख्य बिन्दुओं में वर्गीकरण किया है। पर वह इस विषय में संदेह प्रकट करता है कि ये नीतियाँ स्वयं सुल्तान अल्प आर्सलाव द्वारा निर्धारित की गई थीं या उसके मंत्री निजाम-अल-मुल्क द्वारा।[2] नीति का प्रथम विंदु था कि एशिया माइनर और काकेशस के ईसाई राज्यों और सीरिया में शिया धर्मावलंबी फातिमिदों के क्षेत्रों पर आक्रमण के लिए, तुर्कमान सैनिक बहाल किये गये। अपने शासन के आरंभ में जब सुल्तान के रूप में उसकी स्थिति इतनी सुदृढ़ न थी तो अल्प आर्सलान ने यह बुद्धिमत्तापूर्ण समझा कि जार्जिया और आर्मेनिया के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करे। नीति का दूसरा बिन्दु यह था कि सुल्तान की शक्ति की अपराजेयता दया की भावना से सम्मिश्रित थी। जो विद्रोही आत्म-समर्पण कर देते थे उन्हें दंडित न कर पुनरस्थापित किया जाता था। अलावे, स्थानीय शासक शिया और सुन्नी दोनों ही ईराक, फारस, अजरवैजान और कैस्पियन प्रान्तों में कायम रहने दिये जाते थे, जबकि सालजुक परिवार के सदस्य उन प्रान्तों कें गवर्नर नियुक्त किये जाते थे। नीति का चौथा बिन्दु यह था कि तुगरिल बेग की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के प्रश्न पर जो विवाद हुआ उससे बचने के लिए मलिक शाह को वली अहद (उत्तराधिकारी) नियुक्त किया गया यद्यपि वह अल्प-आर्सलान का ज्येष्ठ पुत्र न था। और अन्ततः अब्बासिद खलीफाओं के साथ अच्छे संबंध कायम रखे गये।

जब अल्प-आर्सलान सिंहासन पर आसीन हुआ तो सर्वप्रथम यह तात्कालिक समस्या उसके समक्ष उपस्थित हुई कि अपने चाचा कुतलुमुस इब्न आर्सलान इजरायल से अपना पद सुरक्षित रखे। सुल्तान पद के लिए अपने दावे के पक्ष में कुतलुमुस ने वरीयता संबंधी पुराना तुर्की विचार उठाया। उसने कहा कि सुल्तान पद अधिकार की दृष्टि से मुझे मिलना चाहिए क्योंकि मेरे पिता हमारी जनजाति के वरिष्ठ और प्रमुख सदस्य थे।[3] इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तर्क बहुत-से तुर्कमानों को उचित प्रतीत हुआ। कुतलुमुस ने १०५४ में सावेह में विद्रोह का झण्डा उठाया। उसके

---

२. निजाम अल मुल्क, 'इन्साइक्लोपीडिया औव इस्लाम', प्रथम संस्करण, केहन का "अल्प आर्सलान", इन्साइक्लोपीडिया ओफ इस्लाम, द्वितीय संस्करण भी देखें।

३. जहीर अल दीन निशापुरी-सालजुकनामा, पृ० २२।

साथ उसका भाई और बहुत सारे तुर्कमान थे। उसके विरुद्ध निजाम अल-मुल्क ने सुल्तान के पक्ष से लड़ने के लिए जो सेना तैयार की उनमें गुलाम सैनिक थे जिनमें प्रमुख हिजड़ा सब-तेगिन था जिसका स्थान बाद में चल कर अल्प आर्सलान के सबसे विश्वस्त सेनापतियों में हुआ। तुर्कमानों द्वारा क्षेत्र के खेतिहर अर्थतंत्र की उपेक्षा के अभ्यास के अनुकूल कुतलुमुस ने राय के निकट खेती के क्षेत्रों को तहस-नहस कर दिया। पर लड़ाई में वह हार गया और बाद में रहस्यपूर्ण स्थितियों में मरा पाया गया।

अल्प आर्सलान के रास्ते में और भी कठिनाइयाँ आई विशेषतः उस समय जबकि उसके अपने बड़े भाई कारा आर्सलीन कैवुर्त ने राज्य में अपनी अधीनता की स्थिति स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इस सिलसिले में यह उल्लेखनीय है कि दक्षिणी ईरान में किरमान बुवाहिद क्षेत्र का एक हिस्सा था जिस पर इमाद अल-दीन अबू कालिन्जार का शासन था। पर १०४८-४९ में अबू कालिन्जार की मृत्यु के कुछ पूर्व इस प्रान्त में कैवुर्त और उसके वंशजों का शासन अगले १४० वर्षों के लिए स्थापित हो गया। बारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में गज लोगों की चढ़ाई के पूर्व किरमान अपेक्षाकृत स्थायित्व और समृद्धि की स्थिति का उपभोग करता रहा। कैवुर्त इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने ईरान खाड़ी के उस पार हमला भी किया और भूतपूर्व बुवाहिद अधीन राज्य उमान को स्थानीय ख्वारिज शासक से छीन लिया। उसके बाद ११४० तक उमान सालजुकों के अधीन रहा। जब कैवुर्त के पिता चागरी की मृत्यु हो गई तो कैवुर्त ने पूर्व में अल्प आर्सलान की सत्ता स्वीकार कर ली। तुगरिल बेग की मृत्यु के बाद अल्प आर्सलान १०६४ में किरमान में पहुँचा तो कैवुर्त ने उसे सर्वोच्च सालजुक सुल्तान के रूप में मान्यता दी और उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की। पर तीन वर्ष बाद उसने अपनी निष्ठा वापस ले ली और खुतबा (शुक्रवार की नमाज) से अपने भाई (अल्प आर्सलान का नाम हटवा दिया। अल्प आर्सलान तब सेना के साथ वहाँ आया और पुनः यथास्थिति कायम कर दी और साथ ही कैवुर्त को पूर्णतः क्षमादान भी दिया।

आर्मेनियनों और बैजेन्टाइनों के विरुद्ध अभियान

अल्प आर्सलान की राजनीतिक गतिविधि उन विचारों पर आधारित थी जिनसे तीनों महान सालजुक सुल्तानों को प्रेरणा मिली। मध्य एशिया में गजनवीद शासकों के साथ शांति स्थापित की गई। दूसरी ओर ट्रान्जोक्सियाना के काराखानियों के खिलाफ बल प्रयोग किया गया। पश्चिम में, जहाँ अल्प आर्सलान अपनी पूरी प्रतिष्ठा हासिल करने को था; वह अधिक जटिल स्थिति से घिरा हुआ था। एक ओर उसने मिस्र जाने का निश्चय किया क्योंकि वहाँ के शासकों इस्माइली

फातिमिदों की विधर्मिता को स्वीकार करने को वह तैयार न था। बगदाद के सुन्नी खलीफाओं को भी वह विधर्मिता स्वीकार न थी और अल्प आर्सलान उन लोगों का संरक्षक था। दूसरी ओर वह इस बात की आवश्यकता भी महसूस करता था कि तुर्कमानों पर अपना प्रभाव कायम रखे क्योंकि ऐसा करना उसकी सैन्य शक्ति के लिए आवश्यक था। चूँकि तुर्कमान सबसे ज्यादा विधर्मियों के खिलाफ धार्मिक युद्ध में दिलचस्पी रखते थे, इसलिए सत्ता प्राप्त करने के तुरत बाद १०६४ में अल्प आर्सलान ने अपने पुत्र मलिक शाह और विजीर निजाम-अल-मुल्क के साथ आर्मेनिया में युद्ध अभियान किया और वहाँ पर स्थित बैजेन्टाइन सेना के नियन्त्रण से अनी नामक स्थान को छीन लिया। कार्स नामक स्थान के गंगीर अब्बास ने आत्म-समर्पण कर दिया। तब सुल्तान ने जार्जिया में प्रवेश किया जहाँ उसने राजा बागरट चतुर्थ की भतीजी के साथ विवाह करके अपना प्रभाव सुदृढ़ किया पर १०६८ में जार्जिया पर हमला करना फिर आवश्यक हुआ। इस बीच वास्तविक रूप से स्वतंत्र तुर्कमान सैनिक दस्तों ने अनाटोलिया पर हमला करना आरम्भ कर दिया था। १०६७ में कैप्पाडोसिया में सेजेरिया (केयसरी) को सत्ता से हटा दिया गया। इस सबके बावजूद बैजेन्टाइनों ने बीच-बीच में लुटेरे दस्तों जैसे अन्य तुर्कमानों के सहायक दस्तों को अल्प-आर्सलान के समर्थक तुर्कमानों के विरुद्ध लड़ाई कराने की अपनी परम्परागत नीति जारी रखी।

मन्जीकार्त्त पर विजय (१०७१)

तब अल्प आर्सलान ने सोचा कि वह बैजेन्टाइनों की ओर से पूर्णरूप से सुरक्षित हो गया। तब वह मिस्री विद्रोहियों के अनुरोध पर महान फातिमिद-विरोधी अभियान पर रवाना हुआ। इसके लिए धर्मनिष्ठ अब्बासिद खलीफा का भी अनुरोध था। जब अल्प आर्सलान अलेप्पो पर हमला करने जा रहा था जहाँ के राजा ने बहुत बाद में अब्बासिदों का पक्ष लेना शुरू किया था, और साथ ही सीरिया पर कब्जा करने की तैयारियाँ भी कर रहा था तो उसे खबर मिली कि बैजेन्टाइन सम्राट रोमानस चतुर्थ डियोजनस एक बड़ी सेना के साथ आर्मेनिया में उसकी फौज के पिछले भाग पर हमला कर रहा था। तुरत ही वह पीछे लौटा और २६ अगस्त १०७१ को मन्जीकार्त्त (मलाजकिर्द या मलासजिर्द) आक्रमण-कारियों से उसकी भिड़न्त हुई। बैजेन्टाइन सेना यद्यपि संख्या में अधिक थी पर नैतिकता की दृष्टि से बिल्कुल शक्तिहीन। स्वभावतः अल्प आर्सलान की कम संख्या वाली पर कर्त्तव्यनिष्ठ सेना के सामने उन लोगों को आत्म-समर्पण करना पड़ा। साँझ होते-होते बैजेन्टाइन सेना की पराजय हो गई। इतिहास में यह पहला अवसर था जब एक बैजेन्टाइन सम्राट एक मुस्लिम सम्राट का बंदी बनाया गया

था। इस प्रकार अल्प आर्सलान ने मंजीकार्त्त में, जो आर्मेनिया में झील वान के उत्तर में अवस्थित है, निर्णयात्मक विजय हासिल की। अल्प आर्सलान का उद्देश्य बैजेन्टाइन साम्राज्य को नष्ट करना न था। वह केवल इसी बात से सन्तुष्ट था कि उसके साम्राज्य और बैजेन्टाइन सीमाओं को ठीक कर दिया जाय, उसे कर देने का वायदा किया जाय और उसके साथ मैत्री की संधि की जाय। जब बंदी सम्राट रोमानस को अल्प आर्सलान के सामने प्रस्तुत किया गया तो उससे पूछा गया कि यदि वह युद्ध में विजयी हो गया होता और अल्प को बंदी के रूप में उसके सामने लाया जाता तो वह क्या रुख अपनाता। इस पर स्पष्ट उत्तर था "मैं तुम्हें कोड़े मार-मार कर मौत के घाट उतार देता।" यह उत्तर इतना स्पष्ट और निष्कपट था कि सालजुक सुल्तान इससे प्रभावित हुआ और उसने एक बड़ी मुक्तिधन-राशि और वार्षिक कर के बदले रोमानस की जिन्दगी बख्श दी। साथ ही इस सम्बन्ध में समझौता हुआ कि दोनों के परिवारों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध होगा तथा युद्ध में बन्दी बनाये गये सभी मुस्लिम सैनिक मुक्त कर दिये जाएंगे। यह भी संभव प्रतीत होता है कि रोमानस ने मलाजगर्द, एडेसा, ऐन्टिओक और नाम्बिज नगरों को भी सालजुकों को दे देने का वायदा किया। पर रोमानस के सत्ता से हटाये जाने और फिर उसकी मृत्यु के बाद संधि की ये शर्त्तें लागू न की जा सकीं। इस बीच माइकेल सप्तम सिंहासनारूढ़ हो गया था। पर मंजीकार्त्त की लड़ाई के बाद तुर्कमानों के लिए एशिया माइनर पर विजय का द्वार मानो खुल गया।

पश्चिम में अपने सैनिक कार्य-कलाप और सबसे अधिक मंजीकार्त्त के युद्ध में अपनी विजय के कारण आने वाली पीढ़ियों की दृष्टि में अल्प आर्सलान की प्रतिष्ठा एक मुस्लिम योद्धा-शासक के रूप में स्थापित कर दी। कुछ अर्थों में यह विजय एक संयोग मात्र ही मानी जाएगी क्योंकि ईसाइयों के विरुद्ध धर्मयुद्ध अल्प आर्सलान की नीति के मुख्य भागों में से न थी। इतिहासकार विटेक और केहेन ने बतलाया है कि ठीक उसी समय अनाटोलिया पर तुर्कमानों के आकस्मिक हमले को देखते हुए सालजुक मुसलमानों की आधिकारिक नीति और तुर्कमान हमलावरों की विकेन्द्रित कार्रवाइयों के बीच अन्तर समझा जाना चाहिए। अल्प आर्सलान ने पराजित बैजेन्टाइन सम्राट रोमानस डियोजनस के प्रति जो नर्म और कुछ अंशों में उदार नीति अपनाई उससे प्रकट होता है कि उसकी नीति उस समय मुख्य रूप में दो तत्कालीन महान साम्राज्यों—ईसाई और इस्लामी—के सम्बन्ध में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की थी। मंजीकार्त्त में पराजय पूर्वी अनाटोलिया में यूनानियों के पतन का कारण नहीं बल्कि एक लक्षण माना जाना चाहिए।

फातिमिदों का दमन और अल्प आर्सलान की मृत्यु

यह संभव है कि सन् १०७२ में अल्प आर्सलान और रोमानस के बीच विराम-संधि हो गई थी। अब सुल्तान ने इसके लिए अपने को मुक्त पाया कि वह अपनी एक लम्बे अरसे से मनचाही योजना में हाथ लगाये कि सीरिया से फातिमिदों (हजरत मुहम्मद की बहन फातिमा के वंशजों) को निकाल बाहर करे और मिस्र पर भी चढ़ाई करे। दो इतिहासकारों—अलेप्पो के इतिहासकार इब्न-अल-अदीम और मिस्र के इब्न मुयस्सर—के अनुसार उस समय फातिमिदों के विरोध में मिस्र के किसी एक विद्रोही द्वारा अल्प आर्सलान के पास अपील की गई। दूसरी ओर बैजेन्टाइनों और सालजुकों के बीच चाहे जिस प्रकार की भी विराम-संधि हुई हो, अनाटोलिया में दोनों पक्षों के बीच शत्रुता की स्थिति सही अर्थ में समाप्त न हुई थी। इसका कारण यह था कि सुल्तान का अपनी जनजाति वालों—तुर्कमानों की कार्रवाइयों पर अधिक नियन्त्रण न था। ऊपर वर्णित अपनी मनचाही योजना के अनुसार अल्प आर्सलान ने फातिमिदों से दमिश्क तक के उनके क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। दिसम्बर १०७२ में जब कि वह ऑक्सस नदी के उस पार अपने राजवंश के मूल स्थान पर कब्जा करने के अभियान में था तो एक विद्रोही द्वारा, जिसे वह मौत की सजा देना चाहता था, उसकी हत्या कर दी गई। उसने अपने १३ वर्षीय पुत्र मलिक शाह को अपने योग्य विजीर निजाम-उल-मुल्क के अभिभावकत्व में अपना उत्तराधिकारी नामजद कर दिया था।

अल्प-आर्सलान का व्यक्तित्व

यद्यपि अल्प आर्सलान ने अपने शासन-काल में पर्याप्त—गौरव हासिल किया पर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन आसान नहीं है। मुसलमान उसे एक महान सेनापति, सैनिकों के प्रशिक्षक, ईमानदार आदमी और धोखेबाजों का शत्रु मानते हैं। दूसरी ओर यूरोपीय इतिहासकार अल्प-आर्सलान की प्रसिद्धि की तुलना उसके पुत्र मलिक शाह के कृतित्व से करते हुए उसकी कड़ी आलोचना करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि नये-नये क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने में उसकी विशेष रुचि थी। बौद्धिक विषयों में उसकी रुचि न थी। उसने जिस प्रकार प्रशासन अपने विजीर निजाम-अल-मुल्क के जिम्मे छोड़ रखा था उसी प्रकार इन विषयों में रुचि लेना अथवा इस क्षेत्र में कार्य करना भी उसी के जिम्मे रख छोड़ा था। फारस और ईराक पर सालजुकों की विजय के लिए उसे पूरा और ठीक ही श्रेय दिया जाता है। उसका व्यक्तित्व भी अद्भुत-सा था। उसकी मूंछें इतनी लम्बी थीं कि जब वह शिकार करने जाता था तो उसको उसके मुंह से बांध दिया जाता था। ईराक में तुगरिल बेग के शासन का अधिकांश समय सालजुकों की स्थिति को दृढ़ करने में व्यतीत हुआ। साथ ही उस अवधि में

शिया लोगों का प्रभाव और बुआयहिदों की रीति-रिवाज समाप्त किये गये। जब अल्प आर्सलान सत्तारूढ़ हुआ तो अब्बासिद साम्राज्य इतना संयुक्त और सुदृढ़ था जितना वह १५० वर्षों की अवधि में कभी न था। अल्प आर्सलान ने भी ऐसा लगता है अपने नौ वर्षों के शासन-काल में अब्बासिद खिलाफत के मुकाबले अपनी उच्चतर स्थिति कायम रखी। वह फारस में अपनी राजधानी इस्फहान से बगदाद कभी न गया।

मलिक शाह और महान सालजुक साम्राज्य का चरमोत्कर्ष (१०७२-९२)

अल्प आर्सलान द्वारा दृढ़तापूर्वक स्थापित सालजुक साम्राज्य उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी मलिक शाह (१०७२-९२) के अधीन पूर्वी खिलाफत के अधीन क्षेत्र की सत्तारूढ़ शक्ति बन गया। सालजुक सुल्तानों में तीसरे सबसे प्रसिद्ध मलिक शाह का जन्म ६ या १६ अगस्त १०५५ को हुआ था। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, उसने अपने पिता अल्प आर्सलान से १०७३ में सत्ता हासिल की। उसका अभिभावक महान विजीर निजाम-उल-मुल्क था जो अपनी मृत्यु तक साम्राज्य का वास्तविक संचालक बना रहा। मलिक शाह को सुल्तान का पद "जलाल उद-दौला" (साम्राज्य की रौनक) उपाधि के अधीन मिला। अब्बासिद खलीफा कैम की तीन वर्ष बाद मृत्यु हो गई। धर्माध्यक्ष माने जाने वाले खलीफा के पद कैम का पौत्र अबुल कासिम अब्दुल्ला आसीन हुआ और उसे मुक्तदी बी अम्र जिल्लाह (खुदा के आदेश पर अपने को चलाने वाला) की उपाधि प्रदान की गई। पर उस युग में मुस्लिम जगत का ध्यान खलीफा और उसके दरबार पर नहीं बल्कि एशिया के महान शासक मलिक शाह पर केन्द्रित था।

मलिक शाह का पूरा नाम जलाल अल-दौला मुइज़ अल-दीन अबुल-फथ मलिक शाह था। कुछ अर्थों में वह अपने पिता से भी आगे बढ़ा हुआ था। प्रथम दो सुल्तान राजधानी बगदाद में न रहते थे पर वहाँ अपने प्राधिकार का उपयोग अपने फौजी प्रतिनिधि के जरिए करते थे। जैसा कि ऊपर बतलाया ही जा चुका है, अल्प आर्सलान न कभी खलीफा की राजधानी (बगदाद) गया और न ही उसका दीदार किया। उसकी सरकार का केन्द्र ईराक में इस्बहान में था और मर्व और राय्य नगरों में उसके राजदूत रहा करते थे। १०९१ के जाड़ों में मलिक शाह के शासन के अंत के कुछ ही पूर्व सालजुक सरकार का केन्द्र खलीफाओं की राजधानी (बगदाद) में ले जाया गया। खलीफा, पहले से कहीं अधिक सुल्तान के इशारे पर नाचने वाली एक कठपुतली-सा बन गया, एक ऐसी कठपुतली जो ऊंचे पद के ताम-झाम से तो सजी हुई थी पर जिसका सिंहासन विदेशियों के हाथों पर टिका हुआ था। शुक्रवार की नमाज में सुल्तान (मलिक शाह) का नाम खलीफा (अब्दुल

कासिम अब्दुल्ला) के साथ लिया जाता था। १०८७ में खलीफा अल-मुक्तादी (१०७५-९४) का विवाह सुल्तान मलिक शाह की पुत्री से हुआ। जब इस विवाह से एक पुत्र उत्पन्न हुआ तो मलिक शाह ने जोर दिया कि उसका यह पौत्र आगे चल कर खलीफा और सुल्तान के पदों पर संयुक्त रूप से आसीन हो। पर उसका यह आग्रह स्वीकार न किया गया।

मलिक शाह के शासन की घटनाएं और महान सालजुक साम्राज्य का विस्तार

मलिक शाह के शासन काल में सालजुक साम्राज्य की सीमाएँ जितनी विस्तृत हुईं उतनी पहले कभी न हुई थीं। सालजुक साम्राज्य की राजनीतिक घटनाओं को सुविधापूर्वक तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है। इनमें प्रथम है स्वत: सालजुक परिवार के महत्त्वाकांक्षी सदस्यों के विरोध का दमन; द्वितीय पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर बाहरी शत्रुओं पर विजय और तृतीय है खिलाफत के साथ संबंध और सीरिया तथा अरब प्रायद्वीप में सालजुक सत्ता का प्रसार। स्पष्ट था कि कैवुर्त मलिक शाह का अत्यधिक प्रभावशाली शत्रु था। वह अल्प आर्सलान का भाई और अत्यधिक अनुभव प्राप्त सेनापति था। उसने किरमान में तीस वर्षों से ज्यादा शासन किया। उसने प्राय: एक पूर्णत: शासक के जैसा बर्ताव किया। मलिक शाह के सत्तारूढ़ होने की खबर सुनकर वह ओमान से तुरत किरमान लौटा। उसने मलिक शाह के सामने प्रस्ताव रखा कि वरिष्ठता के आधार पर उसे सुल्तान होना चाहिए क्योंकि "मैं सबसे (अल्प आर्सलान का) बड़ा भाई हूँ और तुम उसके जवान बेटे। अत: अल्प आर्सलान के उत्तराधिकारी का पद मुझे ही मिलना चाहिए।" इस पर मलिक शाह ने उत्तर दिया कि जब शासक को पुत्र हो तो उसका उत्तराधिकारी वही बनता है, उसका भाई नहीं। तब कैवुर्त ने इस्बहान पर कब्जा कर लिया और १०७३ में हमादान के बाहर तीन दिनों तक लड़ाई चली। कैवुर्त अपने सात पुत्रों के साथ लड़ाई में जूझ रहा था। उसने उम्मीद की कि उसके प्रतिपक्ष की सेना के बहुत सारे लोग आकर उससे मिल जाएँगे। मलिक शाह की सेना के तुर्कों और तुर्कमानों ने कैवुर्त द्वारा प्रत्याशित सहानुभूति के अनुकूल प्रतिक्रिया भी की पर सुलतान के गुलाम सेनापतियों जैसे सब-तेगिन और गौहर एन ने अपने स्वामी का साथ पूर्ण दृढ़ता के साथ निभाया जिससे अंत में कैवुर्त पराजित हो गया। इतिहासकार जहीर अल-दीन निशापुरी के अनुसार सुल्तान की फौज अभी भी शांत न हुई थी और उन लोगों ने कहा कि यदि लूट के माल में उनके हिस्से और वेतन में वृद्धि न की गई तो वे मलिक शाह के विरुद्ध कैवुर्त का समर्थन करने लगेंगे। कैवुर्त के गले धनुष की डोरी डाल कर उसकी हत्या कर दी गई और इस प्रकार

शाही रक्तपात और अधिक होने से रोका गया। कम-से-कम उसके दो पुत्र अंशतः अंधे कर दिये गये। कैवुर्त की पराजय और मृत्यु के तुरत बाद अपने सगे भाई अयाज की मृत्यु की खबर से मलिक शाह ने राहत की सांस ली। बल्ख और तबारिस्तान का शासन उसने अपने एक और भाई शहाब अल दीन टेकिश को सुपुर्द कर दिया।

उसके बाद मलिक शाह ने अपना साम्राज्य वास्तविक युद्ध के बजाय कूटनीति और अपने शत्रुओं के बीच आपसी लड़ाई से बढ़ा लिया। उसने अपने भूतपूर्व अधीनस्थ राज्यों उत्तरी मेसोपोटामिया और अजरबैजान में विद्रोहों को दबा दिया। फिर उसने सीरिया और फिलस्तीन पर कब्जा किया। साथ ही उसने करखंद में अपना एक शक्तिशाली संरक्षित राज्य बनाया और मक्का और मदीना, यमन और फारस की खाड़ी के क्षेत्रों पर अपना एक प्रकार का नियंत्रण कायम कर लिया। एशिया माइनर क्षेत्र के तुर्कमानों पर उसके नियंत्रण को एक प्रतिद्वन्द्वी सालजुक राजवंश ने चुनौती दी।

पर मलिक शाह अपने साम्राज्य की सीमा अधिक-से-अधिक विस्तृत करता गया। सन् १०८९-९० में समर कंद, काशघर और सीरिया फातिमिद राजवंश से पूरी तरह छीन लिये गये। दूसरी ओर मलिक शाह द्वारा दमिश्क और जेरूसलेम में छोटे-छोटे अधीनस्थ राज्य स्थापित कर दिये गये। पूर्व गजनवीद सुल्तान इब्राहीम के साथ एक शक्ति-संतुलन-सा स्थापित कर लिया गया। करखानिद राज्य के आतंरिक मतभेदों के कारण मलिक शाह को वहाँ हस्तक्षेप करने का अवसर मिला तो उसने ट्रांजोक्सियाना और उसके बाद के क्षेत्रों में एक महत्त्वपूर्ण अभियान किया। इस सिलसिले में सालजुक सैनिकों, उन स्थानों जैसे टेलस और काशघर में प्रवेश किया जहाँ पहले वे कभी न गये थे। उत्तर-पश्चिम में सालजुक सेनायें मुगान, अरान और शिरवान के क्षेत्रों में मुस्लिम अमीरों और दक्षिणी काकेशस के ईसाइयों के बीच भी जा पहुँची। मलिक शाह के शासन में सालजुक सत्ता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। जैसा कि एक इतिहास लेखक का कहना है—"उसका राज्य लंबाई में काशघर से, जो तुर्कों के क्षेत्र की अंतिम सीमा पर स्थित नगर था, जेरूसलेम तक फैला हुआ था और चौड़ाई में कान्स्टैंटीनोपुल से कैस्पियन सागर तक।"

एक अपेक्षाकृत युवा सम्राट की ये सफलताएँ निश्चय ही प्रभावोत्पादक हैं। मलिक शाह की जब मृत्यु हुई तो वह केवल सैंतीस वर्ष का था। इस पृष्ठभूमि में सन् १०९२ में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के बीच आपसी फूट और झगड़े निश्चय ही खेदजनक थे। उसके बाद ईराक और पश्चिमी ईरान में सालजुकों की सत्ता

तेजी के साथ कमजोर होती गई। खुरासान और पूर्वी क्षेत्र सांजर के नियंत्रण में चले गये जो मलिक शाह के पुत्रों में सबसे योग्य था और जिसे लंबी जिन्दगी मिली। उसे मलिक शाह अपने जीवन-काल में ही अपने उत्तराधिकारी के रूप में बहुत काफी समय से चाहता रहा था।

खिलाफत के बारे में मलिक शाह की नीति

मलिक शाह के शासन की अधिकांश अवधि में विजीर निजाम-अल-मुल्क के ही हाथों के खिलाफत के संबंध में सालजुकों की नीति निर्धारित करने का काम था। खलीफा और सुल्तान के बीच सामंजस्य उस समय आया जब अपने सीरिया-अभियान से विजयी होकर मलिक शाह पहली बार बगदाद आया। खलीफा अबुल कासिम अब्दुल्ला (मुक्तादी) और मलिक शाह की पुत्री के बीच विवाह-समारोह १०८७ में बड़ी धूम-धाम से हुआ। बगदाद में विजीर निजाम उल-मुल्क का जो शानदार स्वागत हुआ उससे वह खलीफा का दृढ़तर संबंध कायम करने का पक्षधर हो गया, पर उपर्युक्त विवाह से खलीफा और सुल्तान के बीच प्रत्याशित सामंजस्य न हो सका।

निजाम अल-मुल्क की हत्या के जिसका विवरण आगे दिया गया है, तुरत बाद मलिक शाह ने अपने ऊपर लगे सभी प्रतिबंधों से मुक्त होने पर १०९२ में बगदाद की तुरत यात्रा की और वहाँ यानी उसके मूल स्थान से खलीफा को हटा दिया। मलिक शाह अपने नाती को खलीफा की गद्दी पर नशीन करना चाहता था यद्यपि नाती महज पाँच साल का था और इस्लामी कानून के अनुसार इस छोटी उम्र में कोई खलीफा नहीं बन सकता। पर खुदा को कुछ और ही मंजूर था। खलीफा मुक्तादी इस वजह से बच गया कि मलिक शाह की मृत्यु तभी बुखार के कारण हो गई, विजीर निजाम अल-मुल्क की मृत्यु के तिरपन दिनों बाद।

निजाम अल-मुल्क : मलिक शाह का गौरवशाली विजीर

पर एक सच्चाई यह है कि मलिक शाह की सफलताएँ अकेली उसकी अपनी न थीं। उनमें मलिक शाह से ज्यादा विजीर का योगदान था। विजीर निजाम अल-मुल्क ने सुल्तान मलिक शाह से कहीं परिपक्व और अनुभवी उसके पूर्वज सुल्तानों चागरी बेग और अल्प आर्सलान के अधीन काम किया था। अब यह सुल्तान अठारह साल की छोटी उमर का था निजाम अल-मुल्क ने कोशिश की कि युवा सुल्तान को नियंत्रित करे और अपने साँचे में ढाले। वह उसे ईरानी-इस्लामी परम्परा में एक निरंकुश सुल्तान के रूप में ढालना चाहता था। विजीर के इस रूप में यह पूरी अवधि तीस वर्षों की थी। अलावे उसने मलिक शाह के दादा

चागरी बेग के सुल्तान रहने की अवधि में ही राजकुमार अल्प आर्सलान की संरक्षकता की और उसे शासन-काल की शिक्षा-दीक्षा दी। १०९२ में जब सुल्तान के दरबार में उसके विरोधी उसका पत्ता हमेशा के लिए काट देने की एकजुट हो कर, तैयारियाँ कर रहे थे और उन लोगों को अंततः सफलता मिली तो उसने दंभ के साथ जो भी कहा वह चतुराई से भरा कथन भले ही न हो पर उसमें सत्यांश निश्चय ही था। उसने उन लोगों को फटकारते हुए कहा—"जाकर अपने सुल्तान से कह दो कि यदि वह नहीं मानता कि शासन-कार्य में मैं पूरी तरह उसके बराबर ही हूँ तो उसे जानना चाहिए कि जब वह सुल्तान हुआ तो सिर्फ अठारह साल का था और सबसे बड़ी बात यह कि उसने यह पद मेरे ही राजनीतिक कौशल और निर्णय से हासिल किया।" उसने षडयंत्रकारियों से आगे यह भी कहा कि अपने सुल्तान से जाकर यह भी कह दो कि "क्या तुम भूल गये कि तुम्हारे वालिद जब मारे गये तो मैंने राज-काज की जिम्मेदारी खुद संभाली और इस सिलसिले में उन सभी विरोधियों के सर एक-एक कर कुचल डाले जो तुम्हारे खानदान के ही थे।"[४] इतिहासकार फिलिप हिट्टी ने ठीक ही लिखा है—"अल्प आर्सलान और मलिक शाह के शासन की पूरी अवधि में मार्गदर्शक समुज्ज्वल गौरवशाली विजीर निजाम अल-मुल्क (अर्थात् राज्य का संगठक) था। यह व्यक्ति वास्तव में इस्लाम के राजनीतिक इतिहास में एक आभूषण-सा है।"[५]

निजाम अल-मुल्क ने मलिक शाह के **अताबेग** यानी प्रशिक्षक के रूप में कार्य किया। यह एक तुर्की उपाधि है जिसका अर्थ होता है "पिता आदेशक" और सुल्तान उसे वालिद (पिता) कह कर पुकारता भी था। पर यहाँ यह स्मरणीय है कि निजाम अल-मुल्क ने पहले के अत्यन्त योग्य विजीर कुंदुरी की हत्या कराई थी। कुंदुरी ने उस समय उसे जो शाप दिया वह आखिर सच उतरा और निजाम अल-मुल्क का अंत भी उसी तरह हुआ जिस तरह कुंदुरी का हुआ था।

निजाम अल-मुल्क महान **दीवान** या प्रशासनिक कार्यालय (**दीवान-ए-विजीर, दीवान-ए-सुल्तान**) से अपनी नीतियाँ निदेशित करता था। यह राज्य का कार्यपालक केन्द्र था जिसका वह अध्यक्ष था। उसका सुल्तान की सेना पर अक्षुण्ण प्रभाव था और विशेष अभियानों के बारे में उसकी राय मानी जाती थी। वह अपने अधीनस्थ विभागों के बीच समन्वय करता था। ये थे **मुस्तौफी** (प्रधान लेखाकार), **मुंशी** या **तुगराय** (मुख्य सचिव) और **मुशरिफ** (सूचना और अन्वेषण सेवाओं का प्रधान) के विभाग।

---

४. इब्न अथीर-**अल कामिल**, खंड १०, पृ० १२८-२९।
५. फिलिप हिट्टी-**हिस्ट्री ऑव अरब्स**, पृ० ४७७।

निजाम-अल-मुल्क के अपने पुत्र अनेक थे और सभी के सभी महत्त्वाकांक्षी। इतिहासकार रवान्दी (Rawandi) का कहना है कि उनकी संख्या बारह थी और सभी-के-सभी सरकार के किसी-न-किसी लाभप्रद पद पर थे।

अपने परिवार के लोगों के अलावा निजाम अल-मुल्क के अनेक अनुयायी सचिव और अफसर थे जो उसके मुखापेक्षी थे। इसके अलावा उसके अनेक गुलाम थे जिनकी संख्या हजारों में थी। उसने बहुत-से लोगों के बच्चों को पढ़ाया-लिखाया और मदरसों (कॉलेजों) की स्थापना की। पर इस प्रश्न पर इतिवृत्तकारों के बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ है और वह यह कि क्या उसने ऐसा अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने के लिए किया और समूचे पूर्वी क्षेत्र में गैर-फातिमिद इस्लाम का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए। इन दोनों में से दूसरा ही दृष्टि-बिन्दु अधिक ठीक मालूम पड़ता है। चौदहवीं ईस्वी सदी के शूफी विद्वानों के जीवन-वृत्तों के संग्राहक ताज अल-दीन सुबकी का कहना है कि निजाम-अल-मुल्क ने ईराक और ईरान के हर महत्त्वपूर्ण नगर में मदरसों की स्थापना की। जब १०६७ में बगदाद निजामिया (मदरसा) खुला तो उसने उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों जैसे कि अबू इशाक साबरी और धर्मतांत्रिक तथा दार्शनिक अबू हमीद को उसमें व्याख्यान देने के लिए बुलाया। जब मलिक शाह पहली बार १०८१ में बगदाद गया तो निजाम अल-मुल्क ने मदरसा में खुद हदीस पर व्याख्यान दिया।

हत्यारों का उदय : निजाम अल-मुल्क की हत्या और मलिक शाह की मृत्यु

मलिक शाह के शासन में साम्राज्य के आंतरिक शत्रु ने अपना सर उठाया जिसने एक लंबे समय तक निकट पूर्व में आतंक बरपा कर दिया। यह कोई अकारण बात न थी कि निजाम-अल-मुल्क ने सुल्तान को शिया-धर्मपंथानुयायियों के गुटों की कारगुजारियों और षड्यंत्रों के बारे में चेतावनी दे रखी थी। शिया उपदेशक समूचे देश में घूम रहे थे और भीड़ को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनसे वायदा करते थे कि वे शासकों के अन्याय के लिए उन्हें दंड देने के लिए महदी* (मार्गदर्शक एवं नेता) की स्थापना करेंगे। मलिक शाह के अधीन एक ऐसा ही शिया पंथानुयायी हसन सब्बा हुआ। कहा जाता है कि युवावस्था में वह निजाम-अल-मुल्क और उस समय के महान गणितज्ञ उमर अल-खय्याम का मित्र और सहपाठी था। मिस्र में उसे फातिमिदों के सिद्धान्तों का पक्षधर बना लिया गया और उससे फातिमिद खलीफा मुंतसिर के पुत्र निजार को सत्तासीन कराने का निर्णय करा लिया गया। पर निजार सत्तासीन न कराया जा सका। सबा के समर्थकों को इसीलिए निजारी भी कहा जाता है। सन् १०९० में वह फारस में उनलोगों के दूत के

* विस्तार के लिये अगले अध्याय की पाद-टिप्पणी संख्या २ देखें।

रूप में पहुँचा। आलमत की पहाड़ी के समक्ष उसने अपने अनुयायियों के एक छोटे-से गुट के साथ शिविर डाला। वह मलिक शाह के अफसर से जिसके अधीन वह क्षेत्र था मिला और उससे फातिमिद खलीफा मुन्तसिर के प्रति निष्ठा की शपथ लेने को कहा। पर जब अफसर ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया तो उसने किले पर कब्जा कर लिया और वही उसकी सत्ता का केन्द्र बन गया। प्रचार के अनुसार उसने अपने आदेश भिन्न-भिन्न रूपों में दिये। हसन सबा के समर्थकों को बहुत ही सख्त-धर्मान्धता में प्रशिक्षण मिला था। उसके अनुसार सच्ची धर्म-निष्ठा के शत्रु की हत्या की जानी चाहिए। इसे वे खुदा को प्रसन्न करने वाला कार्य समझते थे। उनका खयाल था कि ऐसा करने वाले आदमी को बिहिश्त के बहुत-बहुत सुख मिलेंगे। ऐसे हत्यारों को 'फिदाई' यानी 'आत्मोत्सर्ग करने वाला" या "हशीशी" (जिससे हत्यारा शब्द निकला है) कहा जाता था। आलमत से थोड़े से ही समय में फारस और सीरिया में भी अन्य किलों पर कब्जा करने का आदेश पहुँच गया। उनका दमन करने की सालजुकों की सभी कोशिशें असफल हो गईं। सन् १०९२ में निजाम अल-मुल्क की हत्या कर दी गई। यह सवाल कतई नहीं उठता कि खुद सुल्तान भी जो अब काफी बड़ा हो गया था विजीर की सर्वसत्तात्मकता से पूरी तरह ऊब चुका था, इस षडयंत्र के बारे में जानता था। पर विधाता के न्याय के अनुसार दो महीने के बाद मलिक शाह की भी मृत्यु हो गई। वह इक्कीस वर्षों के शासन के बाद सैंतीस वर्ष की उम्र में मरा और उसकी मृत्यु के साथ ही सालजुक साम्राज्य की गरिमा और एकता भी नष्ट हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य आंतरिक कलह से क्षत-विक्षत होकर रह गया।

मलिक शाह का मूल्यांकन

हम मोटे तौर पर कह सकते हैं कि मलिक शाह और उसके महान विजी की इसके लिए प्रशंसा की जानी चाहिए कि वे दोनों एक महान साम्राज्य के निर्माता थे जहाँ प्रचुर सम्पत्ति और सुरक्षा थी और यह एक बहुत बड़ी बात थी। अल्प आर्सलान और उसके पुत्र मलिक शाह का शासन वह युग था जब महान सालजुकों ने अपना बड़ा नियंत्रण किया और शाही परिवार के विद्रोह को सख्ती से दबाया गया। उन लोगों के अधीन एक शक्तिशाली सेना थी जिसने साम्राज्य के विस्तार की तीव्र गति कायम रखने के सुदृढ़ यंत्र की भूमिका भलीभाँति निभाई। प्रशासन में ईरानी परम्परा की सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाओं का उपयोग किया गया। इतिहासकारों ने, अप्रत्यक्ष रूप से मलिक शाह के पुत्रों के बीच मतभेद और कलह तथा उसके फलस्वरूप साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने की स्थिति से तुलना की है।

निजाम अल-मुल्क के प्रोत्साहन से मलिक शाह ने साहित्य, विज्ञान और कलाओं में बड़ी अभिरुचि दिखलाई। उसका युग राजधानी इस्फहान की शानदार मस्जिदों और उमर अल-खय्याम के कालजयी काव्य और पंचांग (कैलेन्डर) के सुधार के कारण भी प्रसिद्ध है।

मलिक शाह न केवल एक सुविस्तृत साम्राज्य का शासक था बल्कि उसने सड़कों और मस्जिदों का निर्माण कराया, कुएँ खुदवाए और कारवाँ की सरायों तथा मक्का की तीर्थ-यात्रा मार्ग को चिह्नित कराया।

बरकियारूक (१०९४-११०५)

मलिक शाह की मृत्यु के बारह वर्ष बाद, केवल आन्तरिक अस्त-व्यस्तता और लड़ाई-झगड़ा का बोल-बाला रहा। इसके बावजूद साम्राज्य की बाहरी सीमाएँ सुरक्षित रहीं जिसके लिए मलिक शाह और उसके महान विजीर को ही श्रेय दिया जाना चाहिए। जब मलिक शाह की मृत्यु हुई तो ताज-अल मुल्क और मलिक शाह की प्रथम पत्नी तरकेन खातून ने तेजी से कार्रवाई की। उनकी नीति थी कि फौज और अफसरों में निजाम अल-मुल्क के शत्रुओं का एक दल बनाया जाय। वे दोनों उस समय बगदाद में थे। इसलिए उन्हें इसमें सफलता मिली कि राजकुमार महमूद को, जो सिर्फ चार साल का था, सुलतान के रूप में गद्दीनशीं किया जाय। खलीफा-अल मुकतादी, अपने अस्तित्व के लिए मलिक शाह की कृपा पर पूरी तरह निर्भर था, यद्यपि इसके लिए अनिच्छुक था, पर उसे बाध्य किया गया कि वह महमूद को "नासिर अल दुनियावल-दीन" (लौकिक और धार्मिक मामलों में सहायक) की आदरणीय उपाधि दे और बरकियारूक को जो मलिकशाह का पुत्र था, अपने अधिकारों के लिए अपने चार वर्षीय सौतेले भाई महमूद की माँ और दमिश्क में गवर्नर अपने चाचा ताज अल-दौला तुतुश के विरुद्ध अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करे। तरकेन खातून के विरुद्ध तो उसे संघर्ष करना ही पड़ा साथ ही पूर्व में बरकियारूक के सामने यह संकट आया कि अपने एक चाचा आर्सलान आरगुन द्वारा सत्ता-पलट का मुकाबला करे। जैसा कि ऊपर कहा गया है उसके एक चाचा ताज अल-दौला तुतुश सुलतान का पद पाने के लिए जबर्दस्त कोशिश कर रहा था।

राजधानी इस्फहान पर कब्जा करना उसका दूसरा लक्ष्य था। इसका कारण था कि फौज अच्छे वेतन और अन्य सहायताएँ मिलने के बावजूद अशांत होती जा रही थी। महमूद इस्फहान में सत्तारूढ़ किया गया। इतिहासकार अनुशीरवा कहता है कि केवल अनाम और महत्त्वहीन लोगों तथा अवसरवादियों ने बरकियारूक का समर्थन किया। बहुसंख्य प्रजा महमूद के पक्ष में थी।

बरकियारूक की अपने चाचा तुतुश से लड़ाई एक साल और चली और उस समय तक खत्म न हुई जब फारस में राय्य में हुई एक लड़ाई में वह मारा न गया। पर इसके पहले उसने मेसोपोटामिया पर कब्जा कर लिया था।

बरकियारूक का प्रथम विजीर शराबी इज्ज अल-मुल्क हुसैन था जिसके बाद १०९४ में उसने योग्य और दक्ष मुआय्यिद उद्दैल्लाह को अपना विजीर पद दिया। बदकिस्मती की बात यह हुई कि सुल्तान (बरकियारूक) की माँ जुबैदा खातून ने उसे अपने पद से बर्खास्त कर दिया और उसके स्थान पर अपने एक और पुत्र फरख्र अल-मुल्क अबुल मुजफ्फर को उस पद पर नियुक्त कराया।

मलिक शाह की पत्नी तरकेन खातून का अंतिम वार यह हुआ कि उसने सालजुक परिवार के एक और सदस्य इस्माइल अल याकुती को बरकियारूक के खिलाफ धावा बोल देने के लिए निमंत्रित किया। इस्माइल अजरबैजान और आरान के तुर्कमानों की एक फौज के साथ बरकियारूक पर चढ़ाई कर बैठा पर उसे हार खानी पड़ी और बरकियारूक के भूतपूर्व अताबेग (अभिभावक) गुमुश का कत्ल कर दिया। तरकेन खातून ने इस्फहान से तुतुश से संबंध स्थापित करने की कोशिश की पर वह एकाएक १०९४ में मर गई और उसके एक वर्ष बाद उसका लड़का महमूद भी मर गया।

पर बरकियारूक के सामने उसके अपने संबंधी ही विरोधी बनकर आ खड़े हुए। खुरासान में उसके चाचा आर्सलान आरगन ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। मलिक शाह की मृत्यु की खबर सुन कर आर्सलान आरगन ने खुरासान के कई नगरों पर कब्जा कर लिया। उसके खिलाफ बरकियारूक ने अपने एक दूसरे चाचा बोरी-बार्स इब्न आल्प आर्सलान को भेजा जिसे शुरू में तो कुछ सफलता मिली पर बाद में, १०९५ में, वह शत्रुओं द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और गला दबोच कर मार डाला गया। फिर तो आर्सलान आरगन ने खुरासान में एक कहर बरपा कर दिया था। उसने अन्याय और अत्याचार को इस तरह बढ़ाया कि उसके ही एक गुलाम ने उसे मार डाला। बरकियारूक ने अपने सौतेले भाई सांजर को खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया। उसके साथ उसे अपना अताबेग (अभिभावक) और विजीर भी दिया।

बरकियारूक के शासन (१०९७-११०५) के शेष वर्ष अपने एक सौतेले भाई अबू शुज्म मुहम्मद तापर से लड़ाई में ही बीते। "तापर" तुर्की शब्द है जिसका अर्थ हुआ कि "वह व्यक्ति जो कोई वस्तु पाता है या खोज निकालता है।" यह वह समय था जब तुर्की अमीर सुल्तान पद के लिए दावा करने वालों के संबंध में अपनी निष्ठाएँ जल्दी-जल्दी बदल रहे थे।

बरकियारूक का भाई मुहम्मद, जो अजरबैजान में शासन कर रहा था, उसके विरुद्ध विद्रोह में उठ खड़ा हुआ। उसका साथ तीसरा भाई सांजर, जो अभी बीस

साल से कम ही का था, बरकियारूक ने जिसे खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया था। उनलोगों ने दो दुर्भाग्यवश आपसी लड़ाइयों के बाद बरकियारूक को दमागान की पहाड़ियों में भाग कर छिपने को बाध्य किया। दोनों पक्षों के बीच कभी जीत तो कभी हार होती रही। अन्त में ११०३ में युद्ध-विराम संधि हुई। बरकियारूक ने मुहम्मद को एक स्वतंत्र शासक के रूप में मान्यता दी और उसके अधीन अपने भाई सांजर को पदस्थापित किया। फिर ११०५ में बरकियारूक की मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे अपने नाबालिक पुत्र मुहम्मद को छोड़ गया जिसने अपने को एक मात्र शासक बना लिया।

मुहम्मद (११०५-१११८), महमूद (१११८-११३१) तथा सालजुक साम्राज्य का विश्रृंखलन

मुहम्मद ने तेरह वर्षों (११०५-१११८) तक एक ऐसे सुल्तान के रूप में शासन किया जिसके अधिकार को किसी ने चुनौती न दी। बरकियारूक का भाई सांजर बल्ख में रहा तथा पूर्वी क्षेत्र में उसका प्रशासन प्रतिनिधि (वाइसराय) के रूप में कार्य करता रहा। उसे मालिक की उपाधि मिली। जब कि ऐतिहासिक स्रोत मुहम्मद के बारे में साधारणतः उदासीनता का रुख अपनाते हैं पर फिर भी वे उसकी प्रशंसा में उसे सालजुकों में एक पूर्ण व्यक्ति और उसका शक्तिशाली शासक बतलाते हैं। वे उसे बरकियारूक की भाँति योग्य शासक या योद्धा नहीं मानते। वे उसे बहादुर, गुणवान, न्यायी और अनाथ बच्चों और देश के लोगों के प्रति दयालु होने की भी प्रशंसा करते हैं। उस समय देश की अर्थ-व्यवस्था निरन्तर गृहयुद्ध से क्षत-विक्षत हो गई थी और पंगु-सी हो गई थी। उसे इसमें सफलता मिली कि वह सीरिया के अमीरों को, जो धर्मयुद्ध करनेवालों को नियंत्रित करने के लिए कठिन प्रयास में लगे हुए थे, प्रोत्साहन और अप्रत्यक्ष सैनिक सहायता दे सका। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह देश में शांति के कारण फारस में इस्माइलियों के खिलाफ कदम उठा सका। अंततः मुहम्मद प्रथम महान सुल्तान था जिसका ईराक और पश्चिमी ईरान पर चुनौती-विहीन नियंत्रण था। शासन के गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र उसका अपना जन्म-स्थान खुरासान था। इस प्रकार मुहम्मद के शासन-काल (११०५-१११८) में जनता ने आखिर राहत की सांस ली और देश में वास्तविक शांति स्थापित हुई।

मुहम्मद की मृत्यु १११८ में हुई। उसने अपनी आखिरी बीमारी में अपने पुत्र महमूद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। महमूद ने चौदह वर्षों तक राज किया। उसे **मुगीथ-अल-दुनिया वाल-दीन** ("लौकिक और धार्मिक मामलों में सहायक") की आदरणीय उपाधि मिली। पर मुहम्मद के चार और पुत्र थे—मसूद, तुगरिल, सुलेमान शाह तथा सालजुक शाह। ये सभी साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों

में शासन कर रहे थे। वास्तव में महमूद के तीन पुत्र अगले तीन या चार दशकों तक शासन करते रहे। पश्चिमी ईरान में उत्तराधिकार का प्रश्न सदैव विवादास्पद रहा। जब भी नये शासक के सत्तासीन होने का प्रश्न उठता तो अपने अतावेग (अभिभावक) के साथ सुल्तान के पद के लिए तीन या चार दावेदार उठ खड़े होते। सुल्तानों को अपने अस्तित्व के लिए शक्तिशाली तुर्की फौज पर निर्भर करना पड़ता। इतिहासकार अनुशीरवान, जो ११२७ और ११२८ तक महमूद का विजीर रहा और जिसने स्थिति को निकट से देखा था, खेद के साथ कहता है—"मुहम्मद के शासन में राज्य सभी क्षेत्रों में एकतावद्ध और सुरक्षित था पर जब सत्ता उसके पुत्र महमूद के हाथों में आई, शासक परिवार के लोगों में फूट पड़ गई और पहले की एकता छिन्न-भिन्न हो गई। उन्होंने दावा किया कि उन्हें भी सत्ता में हिस्सा मिलना चाहिए और उसके पास केवल किसी तरह जीने लायक क्षेत्र बच गया।" पूर्व में राजवश का सबसे वरिष्ठ सदस्य सांजर रह गया। तुर्की की परम्परागत न्याय-व्यवस्था में सांजर की स्थिति विशेष रूप से वरिष्ठता की हो गई। ज्यों ही मुहम्मद की मृत्यु हो गई, पश्चिम में चलने वाले मुहम्मद के सिक्कों पर सांजर का नाम महमूद के नाम के ऊपर दिया जाने लगा। ११३१ में मुहम्मद की मृत्यु होने के बाद खलीफा अल-मुस्तरशीद (१११८-११३५) ने अपने अधीनस्थ क्षेत्र के किसी मामले में खुद हस्तक्षेप करना बन्द कर दिया।

महमूद के शासन के आरंभिक वर्षों में महमूद के क्षेत्र पर सांजर ने हमला बोल दिया। सेवाह में सांजर के हाथों महमूद ने करारी हार खाई। सांजर यहाँ तक कि जिवाल और बगदाद तक पहुँच गया। जब उन दोनों के बीच अन्त में शान्ति और सद्भावना स्थापित हुई तो समझौते के एक प्रावधान के अनुसार सांजर की एक पुत्री का विवाह महमूद के साथ कर दिया गया और वह अपने चाचा (सांजर) का उत्तराधिकारी बना दिया गया। जब ११३१ में महमूद की मृत्यु हो गई तो राज्य में संकट और अशांति की घनघोर घटा छा गई जिससे राज्य बुरी तरह डगमगा गया।

उस समय सालजुक साम्राज्य में फातिमिदों (हजरत मुहम्मद की बहन फातिमा के समर्थकों) के उपद्रवी नेता हसन सवा की मृत्यु (११२४) के बाद उसके अनुयायियों ने सीरिया में अपने पाँव जमा लिए और कई अवसरों पर धार्मिक योद्धाओं के साथ संघर्ष में भाग लिया।

सालजुक साम्राज्य उसके बाद तेजी के साथ छिन्न-भिन्न होता गया। इस राजवंश के सुल्तानों ने अपने अभिभावकों (अतावेगों) के हाथ में राजकाज पूरी तरह छोड़ दिया। ऐतिहासिक स्रोतों का कहना है कि इन अभिभावकों में से कुछ दक्ष प्रशासक हुए। सच पूछा जाय तो उनका प्रशासन कुछ समय के लिए छोटे क्षेत्रों में

जिनमें उनकी हुकूमत चलती थी सामान्यतः स्थिति एक हद तक सहज और उत्तम थी। पर इस कठोर सत्य को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि १०९२ में विजीर निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु के वाद प्रथम तीन सालजुक सम्राटों की शासनावधि में साम्राज्य ने अप्रतिम प्रतिष्ठा हासिल की वह व्यवहारतः समाप्त हो गई। उस समय उनके साम्राज्य का क्षेत्र दूर-दूर तक फैला सुविशाल था। फिर साम्राज्य में अन्तिम महान सालजुक मलिक शाह के पुत्रों के वीच आंतरिक कलह के कारण साम्राज्य की नींव आमूल-चूल हिल गई और अंततः वह धराशायी हो गया। इसमें सवसे महत्व की बात यह थी कि एक घुमन्तू जनजाति द्वारा, जनजातीय आधार पर, कायम साम्राज्य केवल किसी अत्यन्त विशिष्ट व्यक्तित्व के अधीन ही एकजूट रखा जा सकता था। १०८७ में विजीर निजाम-उल-मुल्क ने फौजी *जागीरों की व्यवस्था नियमित कर दी और इस व्यवस्था में आगे चल कर, शासन वंश-क्रमानुगत हो गया और अर्द्ध-स्वतंत्र राज्यों की जल्द ही स्थापना हो गई। इसका फल यह हुआ कि इन राज्यों पर केन्द्रीय सालजुक सत्ता का सार्वभौम अधिकार ११५७ तक नाम-मात्र का ही रह गया। १३०० के वाद इकोनियम में अल-रूम के सालजुकों के अधिकार को ओटोमन तुर्कों ने छीन लिया। ये लोग युद्धप्रिय इस्लाम के अंतिम महान प्रतिनिधि थे। ये लोग यूरोप में विएना तक घुस गये (१५२९) और एक साम्राज्य स्थापित किया जो अपने विस्तार में अरब खलीफाओं के क्षेत्र के बराबर था। प्रथम विश्व-युद्ध के वाद उनका अधिकार एशिया माइनर (अनाटोलिया) तक ही सीमित रह गया। धार्मिक क्षेत्र में सालजुकों और ओटोमन तुर्कों की स्थायी देन यह रही कि इन्होंने धर्म को रहस्यवाद का रंग दिया। इस तथ्य का प्रतिनिधित्व अनेक दरविश आदेश करते हैं जो तुर्की मिट्टी में फले-फूले।

सालजुककालीन सभ्यता-संस्कृति-सामाजिक स्थिति

सालजुकों के शासन में ईरान और बेवीलोनिया में एक बार पुनः एक हद तक समृद्धि के सुस्पष्ट लक्षण दिखे। सालजुक सम्राटों ने वृहद परिमाण में अपने परिवारों के साथ नगरों और गांवों में आ पहुँचने पर कोई आपत्ति न की। वे लोग (सम्राट) भी तो सत्तासीन होने के पूर्व अपने लोगों (घुमन्तू तुर्कमान जनजातियों) के वर्ग के नेता थे। उन लोगों ने इस कारण भी आपत्ति न की कि प्रारंभ में घुमन्तू जनजातियों के ही एक वर्ग के नेता होने के कारण, अव एक साम्राज्य का अधिपति होने के वाद वे न केवल एक क्षेत्र से वँध जाने वाले घुमन्तू जनजातियों के लोगों के ही नहीं वल्कि अभी भी घुमन्तू जिन्दगी कायम रखने वाले लोगों द्वारा चारागाह आदि की खोज में छाने जाने वाले सभी क्षेत्रों के भी चाहे वे निकट के हों या दूर के, सम्राट हैं। पर इसके साथ ही एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी था १०६३ में तुगरिल

वेग की मृत्यु के कुछ पूर्व और उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी अल्प-आर्सलान के शासन-काल में घुमन्तू जनजातियों का अभिभावक होने की धारणा काफी बदल गई थी। उसकी जगह निरंकुश सम्राट का ईरानी आदर्श, एक सीमा तक, अपना लिया गया था। और यह अनिवार्य भी था क्योंकि उन्हें इसके लिए बाध्य होना पड़ा था। उन्हें अब केवल गज या तुर्कमान (इस्लाम धर्म अपनाने वाले गज जनजाति वालों का नाम) जनजाति का क्षेत्रीय नेता के बजाय व्यापक जनाधार की आवश्यकता थी। उनके बारे में पूर्व धारणा में यह परिवर्तन मलिक शाह का समय आते-आते पूर्ण हो गई।

यद्यपि हमें ऐतिहासिक स्रोतों से जनसाधारण की आर्थिक स्थिति के बारे में अल्प जानकारी मिलती है पर उन स्रोतों ने, कम-से-कम, यह तो बतलाया ही है कि १०८३-८४ में, सालजुक अवधि के मध्य में सम्पूर्ण साम्राज्य में सड़कों पर अभूतपूर्व सुरक्षा थी और चीजें सस्ती थीं। आन्तरिक सुरक्षा और संचार-व्यवस्था में दृढ़ कदमों से आर्थिक विकास में निश्चय ही मदद मिली। दूसरी ओर निकटवर्त्ती पार्स के प्रान्तों में स्थितियाँ उस हद तक उत्साहवर्द्धक न थीं।

बौद्धिक विकास : शिक्षा

सालजुक शासनावधि मध्यकालीन इस्लाम में बौद्धिक विकास के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गौरव-मंडित सुप्रसिद्ध सालजुक विजीर निजाम-अल-मुल्क का नाम प्रमुख रूप से इस कारण है कि उसने धर्मतांत्रिकों और विद्वानों को अपार संरक्षण दिया। इसके लिए समूचे साम्राज्य में महत्वपूर्ण नगरों में मदरसे (शिक्षा-संस्थान) स्थापित किये गये। १०६५-६७ की अवधि में पहले निशापुर और फिर बगदाद मदरसों का नाम निजामिया पड़ा। यह सच है कि वे सालजुक अवधि में उच्च शिक्षा के एकमात्र केन्द्र न थे। निजाम-अल-मुल्क ने बौद्धिक प्रखरता का नया युग आरंभ किया। उसके द्वारा स्थापित विद्यालयों ने और सभी पूर्व विद्यालयों को महत्वहीन बना दिया था। उसने मदरसों को सुन्नी धर्मनिष्ठा के परिसंवाद-केन्द्रों में परिणत कर दिया उसी तरह जिस तरह कि मिस्र में १०५० में शिया धर्मनिष्ठा के परिसंवाद-केन्द्र दार-अल-हिकमा था। दसवीं शताब्दी में ही निशापुर में मदरसे स्थापित किये गये थे। खुरासान में मदरसे नव-इस्लाम धर्मावलम्बियों के थे। यह इस्लाम के उपधर्म करामिया के अनुयायी थे। यह उपपंथ की स्थापना अबू-अब्दुल्ला इब्न कराम अल-सागजी (मृत्यु ९३५) द्वारा स्थापित किया गया था। यह इस्लामी उपपंथ ग्यारहवीं शताब्दी में प्रचलित था। यह संभवतः और आश्चर्य की बात है कि बौद्धों के विहार से भी प्रभावित हो ये लोग इस्लामी सरकार से स्वतंत्र और अलग इस्लाम धर्म का प्रचार करते थे।

वृहत् बगदाद निजामिया के पाठ्यक्रम में थे कुरान, हदीस (परम्पराओं), उसुल-अल-फिकह (कानून), कलाम (शैक्षणिक धर्मतंत्र), अराब्बिया (अरब भाषा और साहित्य), अदब (ललित साहित्य), रियाद्दिया (गणित) और फरायिद (उत्तराधिकार का कानून)। यह भी संभावना है कि निजाम-अल-मुल्क ने छात्रों (तलब) और मदरसों को भत्ते और वहाँ पढ़ाने वालों को वृत्तिकाएँ देने का सामान्य अभ्यास आरंभ किया। विद्या-संबंधी इन दानों और उपदानों का प्रबंधन मुतवली (प्रबंधक या न्यासी) द्वारा किया जाता था जो अक्सर मदरसे का संस्थापक नियुक्त किया जाता था। न्यासी की मृत्यु के बाद यदि कोई और प्रबंध न किया जाता था तो अक्सर यह काम काजी करता था। मदरसे का प्रधान (मुदर्रिस) छात्रों को पढ़ाता था और उनके आचरण के लिए जिम्मेदार होता था। कुछ छात्र भी कुछेक अध्यापकों की भाँति अपना-अपना संघ बनाये हुए थे। छात्र और अध्यापक मदरसों में रहते थे। अक्सर मुदर्रिस अपने पद के अलावा काजी या खातिब (उपदेशक) के काम भी संभालता था। उसकी पद-ग्रहण अवधि निजामिया के अलावा अन्य मदरसों में जीवन-पर्यन्त की होती थी। मुदर्रिस का पद महत्वपूर्ण होता था और यदि वह कोई विशिष्ट विद्वान या अध्येता हुआ तो उसके चरणों के निकट बैठकर शिक्षा ग्रहण करने के लिए मदरसों में दूर-दूर से छात्र आते थे।

शराफ-अल मलिक द्वारा स्थापित निजामिया मदरसे से संलग्न उसका अपना पुस्तकालय था। कुछ स्वतंत्र पुस्तकालय भी थे।

धर्मतंत्र और दर्शन

गज्जाली

इसके साथ ही एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम के अंतिम धर्मतांत्रिक विचारक गज्जाली ने निजाम अल-मुल्क के संरक्षण में पहले निशापुर और फिर बगदाद निजामिया में अपनी प्रसिद्ध कृति पूरी की। गज्जाली (पूरा नाम अबू हमीद मुहम्मद अल-गज्जाली) का जन्म १०५८ में तूस (खुरासान) में हुई। यह स्थान आधुनिक मेशेद के निकट ही थी। उसने अपनी युवावस्था में मध्यकालिक दर्शन-ग्रन्थों से न्याय-धर्मतांत्रिक व्यवस्थाओं का अत्यन्त गहन अध्ययन किया था। फिर उसने अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे जिनमें उन धर्मग्रन्थों के विस्तृत विवरण को गागर में सागर भरने जैसी प्रशंस्य एवं सफल चेष्टा की गई थी। जब धर्मान्ध के हाथों, उसके संरक्षक निजाम अल-मुल्क की, हत्या कर दी गई तो गज्जाली ने इस्माइली सिद्धान्तों का गहरा अध्ययन किया और उनका जोरदार खंडन करते हुए एक कृति की रचना की। और फिर १०९५ में बगदाद में अपना महत्त्वपूर्ण

पद छोड़ कर, एक स्वतंत्र घुमक्कड़ की जिन्दगी बसर करने लगा और अपने जीवन-भर के दार्शनिक विश्वासों के जो निष्ठा और तर्क के पारस्परिक विरोध से त्रस्त से थे, के संबंध में आत्मावलोकन किया। ज्यों-ज्यों वह इस दिशा में अग्रसर हुआ वह रहस्यवाद की ओर अधिक से अधिक झुकता गया। उसने उस समय अधिकांशतः सीरिया में अपने जीवन के ग्यारह साल, सबसे अलग-थलग, शांत एवं स्थिर जीवन बिताया जिससे धर्म की सत्यता के संबंध में व्यक्तिगत अनुभव हुए। फिर उसने विज्ञानों और धर्मों के पुनरुत्थान के संबंध में एक ग्रन्थ प्रणीत किया जिसे उसने ११०६ में प्रकाशित कराया। एक हदीस के मुताबिक ऐसा माना जाता है कि हजरत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को आश्वासन दिया था कि हर सदी के शुरू में एक पुरुष अवतरित होगा जो उनकी धर्मनिष्ठा को पुनरुज्जीवित करेगा। गज्जाली ने महसूस किया कि उसके जीवन का सुस्पष्ट उद्देश्य उस व्यक्ति जैसी ही भूमिका निवाहनी है। उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि वह केवल दार्शनिक विचारक ही नहीं वलिक लेखनी का धनी अजस्र सृजन-शील लेखक भी था। उसकी वृहत् ग्रन्थ सूची में २८वाँ स्थान रखने वाली "ईहया उलुक अल-दीन" के बारे में एक विचारक का कहना है कि यदि इस्लाम संबंधी सभी ग्रन्थ विनष्ट हो जायें और केवल 'ईहया' ही बची रह सके तो उन पुस्तकों की क्षति पूरी हो सकेगी। गज्जाली की एक और पुस्तक "अल-मुंकीह भीन अल-दलाल" है जो यद्यपि आकार में बहुत छोटी पर लेखकीय परिश्रम और गुण में प्रशंस्य यहाँ तक कि नमस्य-सी है। यह अरबी साहित्य का एक आत्मकथात्मक रेखाचित्र-सी है। उसकी इन दो बहुचर्चित कृतियों में एक उद्घाटित सत्य और दूसरी तर्क पर आधारित है। इस संबंध में गज्जाली के अनेक अभिरुचिपरक विचार हैं। ईहया के प्रथमार्द्ध में विवाह के संबंध में वह कहता है कि "जो आदमी किसी औरत से उसकी निष्ठा की बदौलत विवाह करता है उसे खुदा धर्म और धन दोनों ही बख्शता है पर जो सिर्फ धन के लिए विवाह करता है वह दौलत और खूबसूरती में से किसी के लिए भी काबिल नहीं रहता।" लड़की की शिक्षा के प्रश्न पर गज्जाली का मौन सिद्ध करता है कि वह स्त्रियों के संबंध में प्रचलित विचारों से ऊपर न उठ सका।

११०४ में सालजुक सुलतान के रूप में पदारूढ़ होने वाले वरकियारुक के भाई मुहम्मद तथा उसके विजीर फख्र-अल-मुल्क (निजाम अल-मुल्क का पुत्र) द्वारा बहुत मनाये जाने के बाद गज्जाली ने पुनः अध्यापन-कार्य शुरू किया पर इससे वह फिर ऊब उठा और एकान्त का जीवन बिताने के लिए और मूल नगर तुस (ईरान) चला गया और वहाँ १९ दिसम्बर, ११११ में चौवन वर्ष की अल्पायु में उसकी मृत्यु हो गई।

विज्ञान : उमर अल-खय्याम

सालजुक युग में धर्मतंत्र के बाद विज्ञान में गहरी अभिरुचि दिखलाई गई। गज्जाली से उम्र में छोटा और उसके ही मूल स्थान का निवासी उमर-अल-खय्याम, जिसे सामान्यतः, समूची दुनिया शराब-संबंधी रूबाइयाँ लिखने वाले के रूप में जानती है; एक कवि से यदि बड़ा नहीं तो उससे किसी भी अर्थ में छोटा नहीं, गणितज्ञ था। उसका बीजगणित अपार ढंग से सफल हुआ जिसकी विशेषता यह थी कि उससे घनीय समीकरण की समस्या न केवल बीजगणित बल्कि ज्यामिति के स्तर पर हल करने में मदद मिली। इस संबंध में प्रारंभिक मुस्लिम गणितज्ञों की जो धारणा थी वह यूनानी गणितज्ञों को भी ज्ञात थी। उसका यूनानी वाङ्मय (लिटरेचर) में कहीं उल्लेख नहीं आता। यह समस्या-सालजुक-पूर्व काल में सभी मुस्लिम गणितज्ञों की थी। इस समस्या का हल उमर-अल-खय्याम ने केवल नये पर सही ढंग से प्रस्तुत किया बल्कि उससे कहीं ज्यादा आगे बढ़ कर ११०० घन अंक तक ले गया। इसके अलावा उमर-अल-खय्याम की बीजगणित संबंधी पुस्तक इस कारण भी उपयोगी है कि उससे तत्कालीन बीजगणित की पद्धतियों, प्रयोजनों, तथ्य और पृष्ठभूमि का संकेत मिलता है। साथ ही उससे इस बात का भी पता चलता है कि गणित की अन्य शाखाओं का क्या पारस्परिक संबंध है।

खगोल शास्त्रीय प्रेक्षण एवं त्रिकोणमिति

एक गणितज्ञ के रूप में उमर-अल-खय्याम की तेजी से फैलती प्रसिद्धि के फलस्वरूप सालजुक सुल्तान मलिक शाह ने उस पर यह भार सौंपा कि वह फारसी पंचांग (कैलेण्डर) में सुधार करे। साथ ही यह कहते हुए आश्चर्यजनक-सा लगता है और सुनने में कुछ अतिरंजित-सा पर फिर भी यह एक विशुद्ध और सीधा-सादा सच है कि प्रचुर ही नहीं बल्कि प्रचुरतम सरकारी सहाय्य-राशि खर्च कर एक वेधशाला कायम की गई जहाँ यह काम २० साल तक चलता रहा। इसके पूर्व मलिक शाह वेधशालाएँ कायम करने की बात सोच रहा था जिस पर खगोलविदों ने आपत्ति की। उन लोगों ने एक जवाबी प्रस्ताव रखा कि पंचांग (कैलेण्डर) में सुधार किया जाय। इसका निहितार्थ यह था कि इस कार्य के लिए वेधशाला की जरूरत नहीं।

नये कैलेण्डर का नाम मलिक शाह के नाम पर जलाली कैलेण्डर (तारीख) रखा गया। यहाँ यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि मलिक शाह का पूरा नाम जलाल अल दीन (मजहब का गौरव) मलिक शाह था। एक आधुनिक यूरोपीय विद्वान के अनुसार, "यह कैलेण्डर हम लोगों के (ग्रैगोरी कैलेण्डर) से ज्यादा ठीक है।" इतिहास-

कार गिवन ने ठीक ही कहा है कि यह कैलेण्डर जुलियन (जुलियस सीजर के) कैलेन्डर से कहीं ज्यादा अच्छा है और इसमें ग्रेगोरी कैलेण्डर की जैसी परिशुद्धता है।

सालजुकों के युग के वारे में यह मान्यता है कि उसमें त्रिकोणमिति में कोई नया आविष्कार न किया गया वल्कि इस क्षेत्र में उसके वारे में उस समय तक हासिल जानकारी का सुदृढ़ीकरण हुआ। और यह स्वाभाविक था भी। उस समय के त्रिकोणमितिविदों ने अपने पूर्ववर्ती महान त्रिकोणशास्त्रियों-अवुलवफा अल वुज-जानी, अवू नस्र मंसूर तथा अन्य लोगों द्वारा उठाये गये प्रगतिशील कदमों का दृढ़तापूर्वक अनुसरण किया। नजीर अल-दीन द्वारा रचित पुस्तक "किताव शिकल अल किता" में उपर्युक्त महान खगोलशास्त्रियों के विचार संग्रहीत कर दिये गए हैं।

साहित्य

क्या यह एक अजीव और वेतुकी-सी वात नहीं लगती कि एक जंगलीनुमा जनजाति सालजुकों के शासन में फारसी साहित्य के फलने-फूलने का कार्य रोका नहीं गया वल्कि उसको उसी प्रकार संरक्षित किया गया जिस प्रकार एक नये, कोमल पौधे को सुरक्षित किया और पाला-पोसा जाता है। सालजुक युग के पूर्व उत्तरी-पश्चिमी ईरान और ट्रांजोक्सियाना के समानिद क्षेत्रों में फारसी साहित्य ने विकास किया था। अब यह साहित्य शुद्ध, प्राचीन भाषा में नहीं लिखा जाता था और न ही इस्लाम-पूर्व ईरान की वर्णमाला में। अव यह अरबी लिपि में लिखा जाने लगा जिसमें अनेक अरबी शब्द उधार-स्वरूप लिए गए होते थे। दूसरी ओर बुआहिद वंश के शासकों ने फारसी देशभक्ति के एक स्वरूप को तरजीह दी जिसकी अभिव्यक्ति अरबी भाषा में हुई। सालजुक शासन ने पूरे ईरान में साहित्यिक फारसी का विकास किया। तुर्कों की कोई इस्लामी परम्परा न थी और न ही कोई लिखित साहित्य। चूंकि ईरानी इस्लाम में तुर्कों के प्रशिक्षक थे, वे लोग फारसी के अलावा और कोई सांस्कृतिक भाषा न जानते थे। फलत: उन्होंने अरबी भाषा के कवियों या विद्वानों को प्रश्रय न दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सालजुक युग और उसके उत्तर-वर्ती काल में ईरानी क्षेत्र से अरबी भाषा का अस्तित्व तिरोहित होने लगा।

महान विजीर निजाम अल-मुल्क स्वयं भी एक सुसंस्कृत एवं शिक्षित व्यक्ति था। उसने "सियासतनामा" नामक एक ग्रंथ लिखा जो प्रशासन की कला में सबसे उल्लेखनीय मुस्लिम ग्रंथों में से है। यह पुस्तक न केवल राजाओं के लिए दर्पण जैसी है, वल्कि एक पूरा खाका भी है जिसके अनुसार निजाम अल-मुल्क सुल्तान और अपने साम्राज्य को ढालना चाहता था। सुल्तान ने अपने अधीनस्थ राजनेताओं पर यह भार सौंपा था कि वे अच्छी सरकार के स्वरूप के संबंध में अनुकूल जनमत के प्रभाव का जिक्र करें। इसी के फलस्वरूप "सियासतनामा" का प्रणयन हुआ। इस पुस्तक में

सुल्तान को अपने व्यक्तिगत मित्रों के प्रभाव या कुप्रभाव से बचने की चेतावनी दी है। साथ ही उसने पुराने संस्थानों को पुनरुज्जीवित करने और डाकपाल (पोस्ट मास्टर) पर सही सूचना देने का दायित्व सौंपने और गुप्तचर संस्थाओं के माध्यम से सरकार के और बड़े नियंत्रण का सुझाव दिया है। सुल्तान के पिता अल्प आर्सलान ने डाकपालों पर यह दायित्व सौंपने और सरकार के और बड़े नियंत्रण का सुझाव अस्वीकार कर दिया था। निजाम-अल-मुल्क ने अदालत से बाहर भेजे गये मामलुकों (दासों) को मुकदमों के निर्णय का भार सौंपने से इनकार कर दिया क्योंकि उन्हें, स्वभावतः मुद्दई और मुद्दालय से आवश्यकता से कहीं अधिक फीस वसूलने का प्रलोभन हो सकता है। इसी तरह अन्य उपयोगी सुझाव इस पुस्तक में दिये गये हैं।

आलोच्य अवधि में ईरानियों द्वारा सृजित विशिष्ट कृतियों में लब्धप्रतिष्ठ यात्री एवं इस्माइली प्रचारक नासिर खुसरो (लगभग १०७४) एवं खगोलशास्त्री एवं विश्व-विख्यात कवि उमर अल-खय्याम की कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। सालजुक युग के जानकारों के लिए यह एक सर्वविदित तथ्य है कि कविगण अच्छी जीविका की खोज में एक दरबार से दूसरे दरबार जाया करते थे। चूँकि कवियों की ऐसी हालत चिर-काल से रहती आई है और अभी भी बदस्तूर कायम है, इसलिए इसमें कोई अजूबा बात नहीं। पर उन लोगों के मंसूबे कुछ और भी हुआ करते थे। वे अपनी इन जीविका-संधान यात्राओं के बारे में लिखा भी करते थे। सुल्तान सांजर के दरबार का एक ऐसा ही यायावर कवि शिहाब-अल-दीन इस्माइल तिरमिधी "मुहब्बत और मय (शराब)" की परम्परागत काव्य-शैली के सर्वोत्तम कवियों में से था। सम्पूर्ण ग्यारहवीं सदी में प्रचलित कसीदा (किसी को संबोधित करके लिखा गया पद्य) उस समय दो कवियों में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। ये दो कवि थे खुरासान का अनवरी और काकेशिया का खकनी। वे एक नई काव्य-विद्या में पारंगत थे। यों पश्चिमी विद्वानों ने उन्हें उपेक्षित और अपमानित किया है। एक प्रकार से उन लोगों ने अपनी प्रतिभा की तुलना में अपने पूर्ववर्ती कवियों की प्रतिष्ठा धूमिल-सी कर दी और साथ ही उनके अनुयायी कवियों में से कोई उनके प्रतिभा-शिखर को छूने की बात तो दूर, उनके निकट तक जाने की विशिष्टता प्रदर्शित न कर पाया। अनवरी ने खगोलशास्त्रीय तालिकाओं पर भी एक पुस्तक लिखी और ज्योतिष विज्ञान पर भी वे पुस्तकें प्राप्य नहीं हैं।

इस प्रकार पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक दृष्टि और ईरानी इतिहास और सभ्यता की दृष्टि से भी सालजुक युग मील के एक महत्त्वपूर्ण पत्थर-सा है। यह उस अवधि में नगरों के शानदार विकास, उल्लेखनीय विद्यालयों की स्थापना एवं रईस परिवारों के हाथ से शासन-यंत्र मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग में चले आने से प्रकट होता है। साथ ही वह इस बात से भी प्रकट होता है कि इस युग में इस्माइल सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ा जो इतिहासकार बौसानी के कथनानुसार बिल्कुल अप्रत्याशित न होते हुए भी अप्रकट तो जरूर ही था।

अध्याय २०

मिस्र का फातिमिद राजवंश (६०८-११७१)

फातिमिद या फातिमाइद उन लोगों के राजवंश का नाम पड़ा जो अपने को फातिमा का वंशधर कहते थे। यहाँ यह स्मरणीय है कि फातिमा हजरत मुहम्मद की पुत्री थी। उनके पति हजरत अली थे जो चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा हुए। फातिमिद दावा करते थे कि वे लोग उन्हीं दोनों के वंशधर हैं। यह राजवंश औवेदी (उबेदी) भी कहलाता था। यह नाम इस राजवंश के प्रथम खलीफा उबैदुल्ला के नाम पर पड़ा था जो राजवंश का प्रथम खलीफा था। उसके अन्य खलीफाओं की उपाधि 'अलवी' थी। यही उपाधि उन अन्य राजवंशों की भी थी जो सभी अपने को फातिमा का वंशधर बतलाते थे। फातिमिद राजवंश का अभ्युदय हजरत मुहम्मद के परिवार के साथ उनके सम्बद्ध होने के कारण हुआ। मुस्लिम जगत में यह विश्वास व्यापक रूप से फैला हुआ था कि हजरत मुहम्मद के परिवार के किसी सदस्य को ही खलीफा बनाया जाना चाहिए। पर चूँकि यह निश्चित करना कठिन था कि परिवार के किस सदस्य को प्रधान माना जाय और उसे ही खलीफा का पद दिया जाय, अतः इसके लिए परिवार कई सदस्यों के गुट अपने में किसी एक को खलीफा बनाने के दावे के साथ उठ खड़े हुए। फातिमिद चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के परपोते के पुत्र जफर अल सादिक के भी पुत्र इस्माइल[1]

---

1. इमाम जफर अल सादिक की सन् ७०५ में मदीना में मृत्यु के बाद इस्लाम के उप-पंथ शिया के अनुयायियों के एक हिस्से ने मूसा को जिसका उपनाम अल काजिम (धैर्यवान) था, अपने इमाम के रूप में स्वीकार किया। शिया लोगों के इस हिस्से में अधिसंख्यकों का नेतृत्व था जब कि अल्पसंख्यकों का विचार था कि यहूदियों के पैगम्बर इस्माइल के पुत्र मुहम्मद को, जिनका उपनाम अल-मकतूम (गुह्य या अप्रकट) था, इमाम स्वीकार किया जाय। शिया धर्मावलंबियों के इस वर्ग को जिन्होंने इमाम के रूप में इस्माइल के वंशधरों के दावों का समर्थन किया इस्माइली कहा जाने लगा। समय के क्रम में इस्माइलियों ने अपने सिद्धान्तों में वे गोपनीय प्रार्थनाएँ भी मिला दीं जो उन्होंने मनी (महान प्रतिभा वाला ईरानी दार्शनिक मेनेस जो तीसरी ईस्वी सदी में हुआ था) से सीखा था। इस्माइलियों में अतिवादी तत्वों को गोपनीयतावादी कहा जाने लगा। उनके गुप्त उपदेशों और मिथ्याभिमान से स्वभावतः अब्बासिद शासकों को संदेह हुआ और उन पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी। कभी-कभी इनसे दुर्व्यवहार भी किया जाने लगा।

चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा और उसके बीच के लोगों की पांत अनिश्चित है, यहाँ तक कि उसके पिता का नाम अनिश्चित था और कुछ वंश-वृक्षों में इस्माइल तक का नाम नहीं आता। उसे यानी प्रथम फातिमिद खलीफा को चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा का प्रपौत्र माना जाता है।

स्पष्टत: जब उस वंश को राजनीतिक महत्व प्राप्त हुआ तो बगदाद में उसके अली-समर्थक पूर्वजों के बारे में कोई विवाद ही न रह गया। एक कवि अल शरीफ अल रदी (सन् १०१५) जिसके कार्यालय में नकीब (अली-समर्थकों की पंजी) वंशक्रमानुगत चली आ रही थी ऐसा प्रतीत होता है कि उसे ही, मान्यता दी गई। जब उनका अस्तित्व बगदाद के खलीफा के लिए खतरा बन गया तो बगदाद के सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के वंशवृक्षविदों को नियोजित किया गया और उसके फलस्वरूप इस बारे में ढेर सारी सामग्री जमा हो गई। उस सामग्री से मोटे तौर पर यह निष्कर्ष निकलता था कि उस (फातिमिद) राजवंश का संस्थापक इस्लाम विरोधियों के परिवार का वंशधर था। एक इस्लाम विरोधी परिवार से खतरनाक और विकराल कारमेथियाई समुदाय की उत्पत्ति हुई। बाद में इसी परिवार के एक वंशधर किलिस या उसके पुत्र जैकब ने वैसी स्थिति उत्पन्न की जिससे मिस्र में फातिमिद सत्तारूढ़ हो सके।

उपर्युक्त वृहत् सामग्री की ठोस वास्तविकता चाहे जो भी रही हो, फातिमिद खिलाफत इस्लाम के एक मात्र उपवंश शिया धर्मावलम्बियों की एक मात्र बड़ी खिलाफत थी। उस राजवंश की स्थापना सन् ९०९ में ट्यूनिशिया में हुई थी। यह राजवंश बगदाद के अब्बासिदों के धार्मिक नेतृत्व के समक्ष जानबूझ कर दी गई एक बड़ी चुनौती के रूप में आया। इस राजवंश का संस्थापक सईद इब्न हुसैन था। उसके बारे में कहा जाता है कि वह संभवत: द्वितीय अब्दुल्ला इब्न मैमून का वंशधर था। सईद इब्न हुसैन का उदय इस्माइलों द्वारा बहुत दक्षतापूर्ण प्रचार के चरमोत्कर्ष जैसा था और उसकी जड़ें बहुत ही गहरी थीं। उसकी तुलना केवल पहले हुए उस आन्दोलन से की जा सकती है जिससे अंततः उमैय्यद खिलाफत टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गई थी।

उबैदुल्ला अल-महदी : अफ्रिका में फातिमिद साम्राज्य का संस्थापक (९०९-९३४)

उबैदुल्ला (अल्लाह का छोटा गुलाम) शिया धर्मावलंबी समुदाय की बहुसंख्यकों का प्रतिनिधित्व न करता था। सम्प्रदाय बहुसंख्यक गुट बारह व्यक्तियों वाले सिद्धान्त में विश्वास करता था और उसने अपना नाम ऐसा रखा जो इस बात का द्योतक था। उबैदुल्ला बहुसंख्यक गुट से विच्छिन्न अल्पसंख्यक गुट का

प्रतिनिधित्व करता था। बहुसंख्यक गुट का विश्वास था कि चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के द्वितीय पुत्र हुसैन की परम्परा में, जो मुहम्मद अल-मुंतजर (एक जिसके आगमन की आशा थी) में आकर समाप्त हुई।

गुह्य ज्ञान-वादी इस्माइल परम्परा को ठोस रूप अब्दुल्ला इब्न मैमून ने दिया जो एक भूली-बिसरी जोरास्ट्रियन मूल का था। अब्दुल्ला का पिता मैमून अल कद्दाह (गुह्य विधावादी) प्रत्यक्षतः मुहम्मद अल-मकतूम से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था। उसने अपने विचारों का प्रचार उस समय आरंभ किया जब वह अल-अहवाज नामक स्थान में अपना धन्धा किया करता था। अब्दुल्ला ने सर्वप्रथम अल-अहवाज और फिर बसरा से अपना प्रचार-कार्य आरंभ किया। ये दोनों ही स्थान अब्बासिद खिलाफत की राजधानी बगदाद के बहुत ही निकट थे जिस कारण वहाँ से एक विरोधी धार्मिक विचारधारा का प्रचार करना सुविधाजनक न था। इसलिए अब्दुल्ला सलामियाह नामक स्थान की ओर चला गया। इस प्रकार सलामियाह इस्माइलियों का मुख्यालय बन गया और उसके बाद बराबर उनका मुख्यालय बना रहा। वहाँ अब्दुल्ला ने अपने धर्म के छिपे हुए इमामों के हुज्जाह (तर्क या प्रमाण) का पद ग्रहण कर लिया। उसकी मृत्यु सन् ८७४ में हुई। उसने अपने पुत्र अहमद को इस आशा से अपना उत्तराधिकारी घोषित किया कि ऐसा करने से उसी के वंश का कोई आदमी, अन्ततः सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर लेगा। इसी योजना के कारण अन्त में ओबैदुल्ला की विजय हुई और उसके साथ ही समारंभ हुआ फातिमिद राजवंश का।

सैद इब्न हुसैन उबैदुल्ला का प्रारंभिक जीवन

अरब इतिहास में जितने भी अस्पष्ट एवं धुंधले से जीवन वाले व्यक्ति हुए उनमें उबैदुल्ला का स्थान सर्वोच्च है। उसने और उसके अनुयायियों ने दावा किया कि उन लोगों की शुरुआत सातवें इमाम इस्माइल से हुई जबकि अन्य लोगों का दावा है कि उन लोगों का मूल पूर्वज ऊपर वर्णित मैमून अल कद्दास का पुत्र अब्दुल्ला था। आधुनिक इतिहासज्ञों के बीच इस बात पर ऐसा ही मत-वैभिन्य है जो आज, एक हजार साल तक भी सुलझ नहीं पाया है।

पर इस बाबत एक बात सुनिश्चित है कि अपनी उपाधि स्वयं रख लेने वाले उबैदुल्ला का जन्म सन् ८७३ में हुआ था। जो लोग फातिमिदों के दावे का समर्थन करते हैं उनका कहना है कि उनका मूल पूर्व-पुरुष मुहम्मद अल मकतुम इब्न-इस्माइल था जो प्रायः एक सौ साल पहले एकाएक गायब हो गया था। इन इतिहासविदों का पक्ष इस कारण कमजोर पड़ जाता है कि वे उन लोगों का एक सर्वसम्मत वंश-वृक्ष

प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं। वे लोग उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के आठ वंशवृक्ष प्रस्तुत करते हैं। एक ऐतिहासिक स्रोत के अनुसार खुद उवैदुल्ला वह व्यक्ति न था जो होने का वह दावा करता था। फातिमिदों के दावे का समर्थन करने वाले इतिहास-विदों में सभी शिया धर्मावलंबी न थे, बल्कि उनमें से दो प्रमुख इब्न अल-अथीर और इब्न खाल्दुन भी थे। इस संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करने वाले सुन्नी लेखकों में से अधिकांश फातिमिद वंश-वृक्ष को स्वीकार नहीं करते और उसकी वास्तविकता के वारे में संदेह प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि तथाकथित उवैदुल्ला अल-महदी एक धोखेवाज और ढोंगी था। उसका वास्तविक नाम सईद था। वे लोग इस वात पर जोर देते हैं कि उन लोगों के राजवंश को उवैदिया कहा जाना चाहिए। ऐसे इतिहासज्ञों का यह कथन कि उन लोगों के पूर्व-पुरुष यहूदी थे, इस आधार पर आसानी से अस्वीकार किया जा सकता है कि ऐसी वातें अक्सर विवादास्पद गैर-धर्मनिष्ठ शासकों के वारे में कही जाती हैं। जो लोग फातिमिद वंशवृक्ष को अस्वीकार करते या उस पर संदेह प्रकट करते हैं और उवैदुल्ला को धोखेवाज मानते हैं उनमें इब्न खालिक्कन, इब्न इधारी, अल-सुयूती और इब्न तगरी विरदी आते हैं।

उवैदुल्ला के प्रारंभिक जीवन के वारे में, जैसी कि आशा की जानी चाहिए, वहुत ही कम जानकारी मिलती है। उसके वारे में जो प्रथम उल्लेखनीय जानकारी मिलती है वह यह है कि सन् ९०२ में उसने सलामिया छोड़ा। उसके साथ उसका खजाना, उसकी पत्नी, पुत्र और गुलाम थे। वे लोग फिलिस्तीन होते हुए मिस्र की ओर बढ़े। उसने ऐसा उत्तरी अफ्रीका के एक इस्माइली धर्मप्रचारक अबू अब्दुल्ला अलशियाई के आह्वान पर किया। उस समय तक इस्माइली प्रचारक साना, येमन और मिस्र तक प्रवेश कर चुके थे। अल-शियाई चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा के द्वितीय पुत्र हुसैन के क्रम में वारह इमाम होने के वारे में विश्वास करता था। उसमें वे सभी योग्यताएँ थीं जो इस्माइली धर्म-प्रचारक में होनी चाहिए। उसने अपना कार्य सन् ८९०—दशक के आरंभ में मक्का जाने वाले वर्वर जनजातीय तीर्थयात्रियों के वीच शुरू किया। उत्तरी अफ्रिका, जहाँ अल-शियाई ने अपना कार्य शुरू किया, उस समय राजनीतिक रूप से उत्तरी अफ्रिका स्वतंत्र और अर्द्ध-स्वतंत्र राज्यों में वँटा हुआ था। साथ ही वहाँ अनेक जनजातीय इकाइयाँ थीं जिनकी निष्ठा स्थानीय शेख के प्रति नहीं वरन् उस क्षेत्र से वाहर किसी और व्यक्ति के प्रति थी। यह विभक्तिकरण इस कारण संभव हो सका क्योंकि वगदाद में अब्बासिद खलीफा का केन्द्रीय प्राधिकार दिन-पर-दिन कमजोर पड़ता जा रहा था। धार्मिक दृष्टि से यह क्षेत्र सुन्नियों, शियाइयों और खारिजियों के वीच विभक्त था। पूर्वी हिस्से पर मिस्र का प्राधान्य और वहाँ तुलूनिद राजवंश (८६८-९०५) का शासन था। इस राजवंश ने फुस्टाट

को अपनी राजधानी बनाया था। तुलूनिद शासक सुन्नी थे। उन लोगों ने बगदाद के खलीफा का धार्मिक प्राधिकार स्वीकार कर रखा था। इस राजवंश के साथ अनेक स्वतंत्र मिस्री राज्यों का आरंभ हुआ। ये राज्य ओटोमन विजय (१५१७) तक कायम रहे। इन राज्यों के अधीन हेज्जाज (सीरिया, मध्य उत्तरी अफ्रिका जिसके अन्तर्गत इफ्रिकियाह (अफ्रिका माइनर, मोटे तौर पर ट्यूनिसिया, पश्चिमी लीबिया और पूर्वी लीबिया) आते हैं, था। यह क्षेत्र अगलाविद राजवंश (८००-९०९) द्वारा शासित था। इस राज्य का संस्थापक अल-अगलाव (७०० से ८११) था जिसे प्रसिद्ध अब्बासिद खलीफा हारून-अल रसीद ने उस क्षेत्र के गवर्नर के रूप में भेजा था। पश्चिमी उत्तरी अफ्रिका (अल-मगरीब जिसमें मोरक्को का अधिकांश भाग था) भी इसके पूर्व ही (सन् ७८८ में) एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उभरा था। इस राजवंश का संस्थापक इद्रीस (७८८-९३) चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली का वंशज था और वे सभी लोग इस्लाम के शिया उप-पंथावलंबी थे।

साना का वह व्यक्ति (अल-शियाई), जिसके मन में बहुत गहराई तक इस्माइली संदेश अपनी जड़ें जमाये हुए था, अकेले ही अफ्रिका को इस्लाम में धर्मान्तरित करने के काम पर चल पड़ा। इसके पूर्व मक्का में कितामह जन-जातिवालों से उसने जो सम्पर्क स्थापित किया था उसके जरिए अल-शियाई ने अपना कार्य आरंभ किया। कितामह जनजातिवाले उस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाए हुए थे जो इस समय उत्तर-पूर्व अलजीरिया है। यह क्षेत्र उस समय नाम-मात्र के लिए अगलाविद राजवंश के अधीन था। उनके पश्चिम और दक्षिण में सनहाजा और जनाता जनजातियों का क्षेत्र था। अल-शियाई का वहाँ भव्य स्वागत हुआ और उसका (इस्माइली) संदेश द्रुत गति से आगे बढ़ने लगा। इस नये संदेश का सर्वोत्तम आकर्षक पक्ष यह था कि अब उद्धारकर्त्ता एकाएक प्रकट हुआ है और उसके अनुयायी विश्व भर में अपनी प्रभुता स्थापित कर लेंगे। अपने संदेश को और सरल एवं सर्व-बोधगम्य बनाने के लिए अल-शियाई और उसकी शिष्टमंडली ने "प्राचीन अभिलेखों की पुस्तक" से यह भविष्यवाणी उद्धृत कर प्रचारित की कि महदीवाद का सूर्य मगरिब (पश्चिम) में उदित होगा। पर अल-शियाई ने लक्ष्य किया कि कितामा जनजाति वाले उस सूर्य के साथ अपने व्यक्तिगत संबंध की बात ज्यादा पसंद करेंगे। इसलिए उसने शब्दों की जादूगरी वाली उसी तथाकथित "प्राचीन अभिलेखों वाली" पुस्तक से एक और शब्दाडम्बर ढूंढ़ निकाला जो इस प्रकार था—"निश्चित रूप से महदी अपने देश से बहुत-बहुत दूर एक ऐसे देश में प्रकट होगा और उसे समर्थन उन लोगों से मिलेगा जो न्यायी होंगे और जिनका नाम कितमन (गोपनीयता) से निकाला गया होगा।" उन लोगों को आश्वासन दिया

गया कि महदी[2] आश्चर्यजनक काम करके दिखला सकता है, यहाँ तक कि मुर्दे को जिन्दा बना सकता है।

आठवीं सदी ईस्वी तक अल-शियाई अपने-अपने उपदेशों को एक बगल रख कर उनके बदले तलवार उठा लेने के लिए तैयार हो गया था। उसके कितमान सहायक उसकी सेना के लेफ्टिनेन्ट बन गये और उसके धर्मविश्वासी सैनिक। धर्म को राजनीति का स्वार्थ-साधक बनाना कोई नई बात नहीं रही है। धर्मोपदेशक, जो अब योद्धा बन गया था, अब ऐसी स्थिति में आ गया था कि प्रायद्वीप के सबसे शक्तिशाली सौ वर्ष पुराने राज्य को चुनौती दे सके। यह राज्य भलीभाँति शासित था। इसकी सेना बड़ी प्रभावशाली थी जिसके एक अंग-स्वरूप एक अच्छी नौसेना भी थी। इसीलिए यह वक्त था जब नैतिक बल ऊँचा करने के लिए उबैदुल्ला की जरूरत थी।

उबैदुल्ला ने एक व्यापारी के भेष में मिस्र में प्रवेश किया। पर अब्बासिद जासूस निरन्तर उसका पीछा कर रहे थे। जिस मिस्र-वासी के यहाँ उबैदुल्ला ठहरा

२. महदी का अर्थ होता है "निदेश-प्राप्त व्यक्ति" जो निदेश प्राप्त करने के कारण दूसरों को भी निदेश दे सकता है। वह शासक जैसा व्यक्ति होगा जो पृथ्वी के अंतिम दिनों में प्रकट होगा। शिया लोगों का कहना है कि महदी बारहवें इमाम मुहम्मद अबुल कासिम के रूप में प्रकट हो चुका है। इस बारे में विश्वास किया जाता था कि वह किसी गुप्त स्थान में छिपा हुआ था। विश्व के अंत के पहले वह प्रकट होगा। पर सुन्नी लोगों का कहना था कि वह अभी प्रकट नहीं हुआ है। इतिहासकार अल-बुखारी और अन्य हदीसों के अनुसार हजरत मुहम्मद कहते हैं—"जब तक मेरी जनजाति और मेरे नाम का आदमी अरब प्रायद्वीप का अधिपति नहीं होता विश्व का अंत न होगा।.......महदी मुझसे अवतरित होगा। वह खुले मुखमंडल का और ऊँची नाक वाला आदमी होगा। वह विश्व को निष्पक्षता और न्याय से परिपूर्ण कर देगा जिस तरह कि आज वह क्रूरता और दमन से परिपूर्ण है। वह पृथ्वी पर सात वर्षों तक शासन करेगा।"

शिया हदीसों के अनुसार हजरत मुहम्मद के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कहा कि—"ओ संसार के लोगों। मैं पैगम्बर हूँ! और अली मेरा उत्तराधिकारी और हम लोगों से ही अल-महदी अवतरित होगा.........।" यही कारण है कि उपर्युक्त कथनों से ईसाइयों के बीच यह विचार प्रचलित हो गया कि मुसलमानों का मत है कि उनके पैगम्बर फिर से अवतरित होंगे (थामस पैट्रिक-ह्यूग्स-डिक्शनरी ऑव इस्लाम, ओरिएन्ट बुक कारपोरेशन, नई दिल्ली, प्रथम भारतीय संस्करण, १९७६, पृ० ३०६)।

हुआ था, बाद में जहाँ से वह आगे चल दिया, उससे जब अब्बासिद जासूसी दल के जांच-अधिकारी ने दरियाफ्त किया तो मिस्रवासी ने जवाब दिया कि उसने वास्तव में एक ऊँचे परिवार का "हाशिम व्यापारी, जिसकी विद्वता, धन एवं उदारता अत्यन्त स्पष्ट थी; अपने दल के साथ यहाँ आया था पर वे सब लोग वापस अरब लौट गए हैं।" यहाँ यह स्मरणीय है, जैसा कि हम बतला चुके हैं हाशिम पैगम्बर के दादा का नाम था। बहुत ही सावधानी के साथ और धीरे-धीरे भगेड़ू दल अब्बासिद जासूसों के जाल से बचता हुआ पश्चिम की ओर बढ़ता गया। जब तक यह दल त्रिपोली पहुँचा, तात्कालिक आलाविद शासक जियादत-अल्लाह तृतीय (९०३-९०९) के पास "हिशामी व्यापारी" और उसके साथ के दल के बारे में पूरी सूचनाएँ मिल चुकी थीं। आलाविद राजा जियादत अल्लाह ने उन लोगों को सिजिलमास-स्थित एक काल कोठरी में फेंक दिया। पर उबैदुल्ला को अल-शियाई ने अपने लिए सुरक्षित रखा। अल-शियाई ने सन् ९०९ में सौ साल पुराने आलाविद राजवंश को नष्ट कर दिया और उसके अंतिम वंशधर जियादत अल्लाह को देश से बाहर खदेड़ दिया। यहाँ यह उल्लेख्य है कि अफ्रिका के इस भाग में सुन्नियों का, जो इस्लाम के एक इस नाम के उपपंथ के समर्थक थे, आखिरी गढ़ को ध्वस्त कर दिया गया। सईद इमाम[3] की उपाधि के साथ नया शासक बना। उबैदुल्ला (खुदा का छोटा गुलाम) अली हुसैन और इस्माइल के माध्यम से हजरत मुहम्मद की बहन फातिमा का वंशज माना गया। फिर भी उसने जिस राजवंश की स्थापना की उसे अल-उबैदिया राजवंश कहा जाता है। ऐसा खासकर उन लोगों द्वारा किया जाता है जो इस बात पर यकीन नहीं करते कि वह उसी वंश का था जिसके बारे में उसकी ओर से दावा किया जाता था। इस प्रकार उबैदुल्ला प्रथम और एक मात्र महान शिया-उपपंथ अनुयायी अरबों के राजवंश का संस्थापक बना।

सन् ९०९ के आरंभ में विजयी पक्ष ने खूब सज-धज के साथ रक्कादाह में प्रवेश किया। अरब और बर्बर जनजातियों के शेख, नेता और अधिकारीगण

---

३. एक अन्य इस्लामी उपपंथ शिया के समर्थकों ने इस खलीफा की तुलना में और उसी पद के बराबर की उपाधि इमाम चुनी। पर सिलसिले में यह भी उल्लेखनीय है कि शिया धर्मावलंबी इस उपाधि (इमाम) का प्रयोग अपने उपपंथ के केवल बारह नेताओं के लिए करते हैं। उन लोगों को सच्चे इमाम (शिया) घोषित करते हैं। इमाम उनके लिए खलीफा है। पर वे खलीफा उपाधि का प्रयोग नहीं करते। वे इमाम पद के बारे में बड़े कट्टर हैं। इस संबंध में सुन्नी लोगों से उनकी कोई तुलना ही नहीं है (ह्यूग्स-डिक्शनरी ऑफ इस्लाम, पृ० २०३)।

जल्दी-जल्दी उनके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने के लिए आये। उबैदुल्ला ने पहले आलाविद शासकों के निवास-स्थान में रहना आरंभ किया। यह महल अल-केरवान के अंचल में अवस्थित था। उसके वहाँ पहुँचने के बाद रक्कादाह और शाही राजधानी अल-केरवान की सभी मस्जिदों में शुक्रवार की जो प्रथम नमाज हुई उसमें उसके नाम का उल्लेख उसकी उपाधि अल-महदी और 'धर्म-विश्वासियों के नायक' के साथ किया जाने लगा। धर्मनिष्ठ सुन्नी खिलाफत के विरुद्ध उनका एक अतिवादी शिआ प्रतिद्वन्द्वी मैदान में आ गया था। उबैदुल्ला का पुत्र अबु-अल-कासिम उसका उत्तराधिकारी घोषित किया गया तथा उसे कैम का उपनाम दिया गया। एक अर्थ में फातिमिदों की विजय अरबों पर गैर-अरबों तथा अरबों पर ही बर्बर जनजातियों और पुराने मुसलमानों पर नये मुसलमानों की विजय थी।

उबैदुल्ला का विजय-अभियान

इस प्रकार उबैदुल्ला फातिमिद राजवंश का प्रथम शासक बना जिसने मध्यकालिक इस्लामी इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने अपने को एक योग्य शासक सिद्ध किया। अपने क्षेत्र में सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त करने के दो वर्ष बाद उसने अपने धर्मप्रचारक सेनापति अल-शियाई की हत्या करवा दी। अल-शियाई के भाग्य का इसे व्यंग्य ही कहा जाएगा कि अपने धर्म के समर्थक जिस राजवंश की स्थापना के लिए उसने सम्पूर्ण जीवन लीन कर दिया था, उसकी स्थापना के बाद राजवंश के सच्चे संस्थापक (अल-शियाई) की हत्या उसी के शासकों के हाथों हुई। उबैदुल्ला ने इसके बाद जल्द ही इद्रीसियों द्वारा शासित मोरक्को से मिस्र के सीमान्त-प्रदेश तक अपना साम्राज्य विस्तृत कर दिया।

उबैदुल्ला ने इसके बाद अफ्रिका में अब्बासिदों द्वारा शासित क्षेत्रों पर विजय करने की ओर ध्यान दिया। उसके सेनापति हव्वासा इब्न-यूसुफ ने सन् ९१३ में उत्तरी समुद्र-तट की ओर अपना अभियान शुरू किया। इस सिलसिले में उसने अनेक स्थानों पर कब्जा कर लिया जिनमें बारका के महत्त्वपूर्ण नगर भी थे। उसके बाद मिस्र की ओर बढ़ा और जुलाई ९१४ के अन्त में उबैदुल्ला के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अबुलकासिम की, जिसे बाद में उसके उपनाम अल-कैम के रूप में जाना गया, सेना की सहायता से उनके सेनापति हवासा यूसुफ ने सिकंदरिया में प्रवेश किया। बगदाद के अब्बासिद खलीफा मुक्तदिर (९०८-३२) द्वारा इस नये खतरे के प्रतिकारस्वरूप असाधारण शक्ति के साथ उठाये गये कदमों के क्रम में अब्बासिदों की एक सेना मुनीस के अधीन मिस्र में भेजी गई। इसके साथ ही अब्बासिदों द्वारा एक विशेष सैन्य-व्यवस्था कायम की गई जिससे मिस्र और बगदाद के बीच संदेशों का आदान-प्रदान अबाध गति से होने लगा। अब्बासिदों की इस सुनियोजित व्यवस्था

के कारण फातिमिद सेनाओं को हार का मुंह देखना पड़ा। अंशतः इस पराजय का एक कारण यह भी था कि सेनापति हवासा ने अपने फातिमिद शासकों के विरुद्ध अवज्ञा का रुख अपनाया था। यह घटना ९१४ की शीत ऋतु की थी। फातिमिद सेनाओं को वाराका और कैरवान लौटना पड़ा। इस सिलसिले में उन्हें बहुत ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा। उसके बाद मिस्र के विरुद्ध फातिमिदों का दूसरा अभियान सन् ९१० में हुआ। इस क्रम में उसी साल १० जुलाई को अबुल कासिम ने सिकंदरिया में प्रवेश किया और फिर दक्षिण की ओर बढ़ते हुए फैयून और उशमुनैन (इशमुनैन) पर कब्जा कर लिया। बाद में अबुल कासिम की सहायता के लिए समुद्र के रास्ते से फातिमिदों का एक नौसैनिक बेड़ा भेजा गया। इस बेड़े को मार्च सन् ९२० में, रौसेटा के निकट अब्बासिद खलीफा मुक्तदिर द्वारा तारसुस से भेजे गये नौसैनिक बेड़े द्वारा पराजित कर दिया गया। फातिमिदों के नौसैनिक बेड़े के अनेक जहाज जला डाले गये। पर बात यहीं खत्म नहीं हुई। अब्बासिद खलीफा मुक्तदिर ने शक्तिशाली कदम उठाये जिनके अन्तर्गत फातिमिदों के विरुद्ध बार-बार सेनाएँ फोस्टेट भेजी गईं। अन्त में अबुल कासिम को बाध्य होना पड़ा कि वह सन् ९२१ के आरम्भ में उन स्थानों को खाली कर दे जिन पर उसने कब्जा कर रखा था। वह अपनी बची हुई सेना के साथ वापस लौटा। उसकी सेना न केवल अपनी हार के दुख से पीड़ित थी बल्कि प्लेग के प्रकोप से भी।

इसके अलावे उबैदुल्ला ने सिसली में अपना एक नया गवर्नर भेजा जो कितमान जनजाति का था। साथ ही उसने स्पेन में उमैय्यदों के शासन के प्रतिविद्रोही इब्न हाफसुन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किये। उसके बाद माल्टा, सैडिनिया, कौर्सिका, बालैरिक तथा अन्य द्वीपों ने उबैदुल्ला के समुद्री बेड़े की, जो उसने अपने भूतपूर्व शासकों अगलाबिदों से विरासत-स्वरूप प्राप्त किया था, प्रहार शक्ति का मुकाबला किया। सन् ९१५ के मध्य तक उसके एवं उसके पुत्र के प्रयासों के चलते उसने अपने राज्य को सुव्यवस्थित कर लिया। फिर जैसा कि अधिकांश राजवंशों के संस्थापकों ने किया था, उसने अपने साम्राज्य की एक नई राजधानी स्थापित की। उसका नाम उसकी उपाधि मेहदी पर महदिया रखा गया। वह ट्यूनिसिया के समुद्री तट पर अवस्थित थी जो उसकी अब तक की राजधानी केरेवान से दक्षिण-पूर्व सोलह मील पर थी। उसके किलेबंदी करने में आठ साल लग गये। फिर सन् ९२१ में उसे बाजाप्ता साम्राज्य की राजधानी बना दिया गया।

उबैदुल्ला के शासन के आखिरी वर्ष मुख्यतः साम्राज्य के विभिन्न भागों में होने वाले विद्रोहों से निबटने में बीते। उनमें से कुछ की सफलता के कारण उसका साम्राज्य छोटा भी हो गया जिसके ही शासक के रूप में अपनी अधिमान्यता से उसे सन्तुष्ट होना पड़ा।

उबैदुल्ला की मृत्यु और उसके शासन का आकलन

६१ वर्ष की उम्र में सन् ९३४ में उबैदुल्ला की मृत्यु उसके द्वारा ही निर्मित राजधानी-नगर में हो गई। उसके जीवन के आखिरी वर्ष रहस्य के पर्दे से उसी तरह आवृत रहे जिस तरह कि आरंभिक वर्ष। उसके आखिरी वर्ष के बारे में हमें जो भी सीमित जानकारी है उसके आधार पर हम इतना भर कह सकते हैं कि हम केवल उसकी एक पत्नी अल-क़ैम की माँ के बारे में जानते हैं जो सीरिया से उसके साथ आई थी। वह उसकी चचेरी बहनों में सबसे बड़ी थी। पुत्रों के बारे में हम केवल इतने भर की बाबत सुनिश्चित हैं कि अल-कैम उसका एकमात्र पुत्र था। हमें उसकी दो पुत्रियों के बारे में भी पता चलता है जो सीरिया से उसके साथ आने वाले दल में थी। उसके इस्माइली जीवनी लेखकों को इस बारे में कोई शक नहीं है कि महदी उबैदुल्ला का मुखमंडल जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है एक चमचमाते सितारे की भांति था जिससे प्रकाश की ज्योति विकीर्ण होती थी। उसके समक्ष खड़ा कोई व्यक्ति उसके व्यक्तित्व के प्रति भय-मिश्रित आदर के सिवा और कोई भाव महसूस न करता था। उसमें दस आदमियों के बराबर ताकत थी। उसके बगल में खड़ा लम्बे से लंबा आदमी ठिगना-सा मालूम पड़ता था और कोई भी महान व्यक्ति तुच्छ। नैतिकता की कतई परवाह न करने वाले नेताओं में जो गुँण प्रचुर शक्ति, धैर्य, निर्भयता, और दृढ़ निश्चय होते हैं वे सब उसमें एक साथ समाहित थे। उसके चरित्र में कृतज्ञता का कोई स्थान न था। जिस शक्ति से वह चालित होता था वह थी सत्ता के लिए उसकी दुर्दम इच्छा। सत्ता उसके लिए एक मात्र साध्य थी जो उसकी दृष्टि में उसके द्वारा अपनाये गये सभी साधनों को उचित ठहराती थी।

उसके माता-पिता निश्चय ही अच्छे गुणों से सम्पन्न न थे और उसका जन्म गैर-अरब परिवार में हुआ था और वह एक छोटे से विजातीय गुट का सदस्य था। फिर भी अपेक्षाकृत अज्ञात माता-पिता का पुत्र एवं गैर-अरब मूल का होते हुए भी उबैदुल्ला अल-महदी ने चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली की चौदह पीढ़ियों में राजदंड हासिल करने में सफलता प्राप्त की। इसके लिए हज़रत अली के वंशधरों और समर्थकों ने बार-बार प्रयास किये थे जिनमें वे निरंतर असफल हो रहे थे। सिर्फ यही नहीं, उसने एक पिछड़े एवं पूर्णतः अशांत एवं उपद्रवक्षुब्ध इलाके में तीसरे सबसे बड़े और दूसरे सबसे ज्यादा दीर्घकालिक अरब साम्राज्य की स्थापना की।

अल-कैम (९३४-४६)

उबैदुल्ला का उत्तराधिकारी अबुल-कासिम हुआ जिसने अल-कैल-अम्र-अल्लाह ("खुदा के आदेशों के पालन में दृढ़") की उपाधि धारण की। अल-कैम एक महान योद्धा था जिसने अपने अधिकांश सैन्य कार्य-कलाप का व्यक्तिगत रूप से संचालन

किया। वह फातिमिद खलीफाओं (इमामों) में सर्वप्रथम था जिसने भूमध्य सागर के तटवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिए एक शक्तिशाली जहाजी वेड़े के सृजन की दिशा में कदम उठाया।

अल-कैम की नीति

अल-कैम भी अपने पिता की नीति पर चला। सत्तारूढ़ होने के तुरत बाद उसने फैज और नेकर को फिर से अपने अधिकार में लाने की कोशिश की। इन स्थानों में उसके पिता के आखिरी वर्षों में विद्रोह हुआ था। उसने याकूब इब्न इशाक के अधीन सन् ९३४ या ९३५ में एक समुद्री बेड़ा भेजा जिसने फ्रांस के समुद्र तट को बर्बाद कर दिया और जैनुआ पर अधिकार कर लिया। उस बेड़े ने अफ्रिका लौटने के पहले कैलेब्रिया के समुद्री तट पर लूट-मार की। मिस्र पर कब्जा करने की उसकी तीसरी कोशिश भी घात-अल-हुमाम में नाकाम हुई जिसके बाद विजय-अभियान में भेजी गई बची-खुची सेना पूरी अस्त-व्यस्तता की स्थिति में वरका वापस लौट आई। फिर भी लम्बार्डी के एक हिस्से पर कब्जा कर ही लिया गया। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि यदि घरेलू उपद्रव जिनमें अल-कैम को सभी संसाधनों और सैनिक चातुर्य का उपयोग करना पड़ा, न हुए होते तो इसमें कोई शक नहीं कि कैम ने इटली पर अधिकार कर लिया होता।

अबू-यजीद-मखलद के विद्रोह

अल-कैम के शासन के बाद के वर्ष अबू यजीद मखलद अलजनाती के विद्रोह के कारण उथल-पुथलपूर्ण रहे। यह वह नेता था जिसने उबैदुल्ला शासन में जैवल औरेश में रहने वाली वर्बर जनजातियों तथा इबादी उपपंथ के समर्थकों के बीच अपने अनुयायी बना लिए थे। अबू यजीद एक खारिजी था जिसके पिता का नाम किराद था। वह पहले एक विद्यालय में शिक्षक था। राजनीतिक दूरदृष्टि से जो उसके जैसे धर्मान्धों में असामान्य थी, उसने विधर्मियों के क्षेत्र में लूट-मार की और उनके राज्य को करीब-करीब ले ही लिया। फातिमिद फौजों को बार-बार पराजय का मुँह देखना पड़ा। उनसे एक के बाद दूसरा नगर तेजी के साथ छीना जाने लगा और उन क्षेत्रों में धर्मान्धों ने भयानक अत्याचार किये। साम्राज्य का एक बड़ा हिस्सा खारिजी विद्यालय शिक्षक (अबू यजीद मखलद) के कब्जे में आ गया और अल-कैम का राज अपने राजधानी-नगर महदिया और समुद्र तटवर्ती मजबूत किलाबंद नगरों तक ही सीमित रह गया। मक्का में कुछ दिनों तक रहने के बाद अबू यजीद सन् ९३७ में तोजर (तोजेर) लौट आया जो उसके सैन्य कार्य-कलाप का मूल केन्द्र था। वहाँ उसे अल-कैम के आदेश पर गिरफ्तार कर लिया गया। पर उसे उसके पुत्रों ने जेनाटा की शक्तिशाली जनजातियों की सहायता से जेल से छुड़ा

लिया। सन् ९४३ के अंत तक वह फातिमिद सम्राट को पुनः चुनौती देने लायक बन गया।

दोनों पक्षों में पुनः सन् ९४४ में मुठभेड़ हुई जिसमें अल-कैम एक बार फिर बुरी तरह पराजित हुआ। उसके सामने अब अपनी नई राजधानी महदिया महल में जिसके चारों ओर गहरी खाइयाँ खुदी हुई थीं, बंद हो जाने के अलावा कोई चारा न रहा। उस पर भी अबू यजीद ने चार बार भीषण रूप से हमला किया। १३ जनवरी, ९४६ को अबू यजीद ने अल-कैम की सेनाओं को सूसा में बंद-सा कर दिया। उस पर भी अबू यजीद सूसा पर घेराबंदी कर दी और उसे भी जबर्दस्ती अपने कब्जे में लेना चाहा। जब कि अबू यजीद सूसा पर घेराबंदी किये हुए था उसी समय, सन् ९४६ में अल-कैम की मृत्यु हो गई।

अल-कैम का आकलन

अल-कैम एक शक्तिशाली योद्धा था। उसने अपने सैन्य-अभियानों का स्वतः संचालन किया। वह प्रथम फातिमिद खलीफा था जिसने भूमध्य सागरीय क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए एक शक्तिशाली नौसैनिक बेड़े के सृजन में हाथ लगाया।

मंसूर (९४६-५२)

अल-कैम का उत्तराधिकारी अबू ताहिर इस्माइल हुआ जिसने मंसूर की उपाधि ग्रहण की। जिस समय वह सत्तासीन हुआ उस समय उसका राज्य भयानक रूप से अस्त-व्यस्त था। वह दुर्दम शक्ति और दृढ़-निश्चय वाला व्यक्ति था। उसने शनैः-शनैः धर्मान्ध अबू यजीद की सेनाओं को पराभूत और परास्त किया। मंसूर ने तुरत एक नौ सैनिक बेड़ा भेज कर सूसा को शत्रुओं के चंगुल से मुक्त किया। मुक्त कराई गई सूसा-स्थित सेनाओं ने फातिमिदों की मुख्य सेनाओं के साथ मिल कर अबू यजीद को भीषण रूप से पराजित किया। उसे केरेवान नगर से भी हटना पड़ा। फातिमिदों के लिए गनीमत की बात यह थी कि अभी भी उनके राज्य के नगर उनके ही प्रशासकों के हाथों में थे। फिर भी पराजय की कगार पर खड़ा अबू यजीद दो वर्ष और मैदान में डटा रहा जब कि उसके सदस्यों की संख्या तेजी के साथ घट रही थी। इस प्रकार एक तरह से उन्मत्तता की-सी स्थिति में पहुँचे हुए अबू यजीद को बार-बार सहारा के वीरान रेगिस्तानी क्षेत्र में धकेला जा रहा था। अगस्त ९४७ में उसके आखिरी अड्डे पर भी कब्जा कर लिया गया और उसे बचाने की लड़ाई में मिले घावों के कारण उसकी मृत्यु हो गई। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों ने मंसूर पर कुछ छिटपुट हमले जारी रखे पर वे प्रभावहीन ही सिद्ध हुए। अबू यजीद पर निर्णयात्मक विजय की खुशी में मंसूरा या साबरा

नामक नगर केरेवान नगर के समीप निर्मित कराया गया पर उसका वही नाम वराबर न रह सका। अव पूरा इफ्रीकिया (अफ्रिका) फातिमिद शासन के अधीन चला आया। फ्रैंकों ने क्लाब्रिया में कुछ घुस-पैठ की कोशिश की पर इटली के समुद्र तट के करीब फातिमिदों के नौसैनिक प्रहारों से उन्हें पीछे ढकेल कर पराजित कर दिया गया। उसके वाद मंसूर द्वारा उठाये गये प्रशासनिक अथवा अन्य क्षेत्र के कदमों के वारे में कोई अभिलेख प्राप्य नहीं है। उसकी मृत्यु १० मार्च, ९५२ को हो गई। इस प्रकार मंसूर में अपनी वीरता और बुद्धिमत्ता से अपने दादा के अधिराज्य के बहुलांश पर पुनः अधिकार कर लिया और गद्दी हड़पने की कोशिश में अबू यजीद को पराजित किया। इस प्रकार उसने वह नींव डाली जिस पर पाँव जमा कर उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी अल-मुईज को मिस्र पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली।

अल-मुइज (९५२-९७५)

अल मंसूर के पुत्र अबू तमीम माद ने २२ साल की छोटी उम्र में अपने पिता से उत्तराधिकारस्वरूप सत्ता प्राप्त की। उसने मुइजली-दीन अल्लाह की उपाधि ग्रहण की। वह फातिमिद खलीफाओं (इमामों) में सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। न केवल इतना ही, वल्कि अल-मुइज एक बुद्धिमान, शक्तिशाली एवं पराक्रमी सम्राट और अधीत विद्वान भी था। वह विद्वान और दर्शन में पारंगत ही नहीं बल्कि कला और विद्वता का उदार संरक्षक था। उसकी तुलना अब्बासिद खलीफा मामून से की जा सकती है। उसके अधीन उत्तरी अफ्रिका सभ्यता और समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। उसके वारे में इतिहास लेखक लेन-पूल ने ठीक ही लिखा है—"अपने चतुर्थ खलीफा के शासन-काल से फातिमिदों ने एक नये युग में प्रवेश किया।" सत्तारूढ़ होते ही उसने अपनी योजना तैयार की और उसे बिना किसी विलम्ब के कार्यान्वित करना शुरू किया। उसने अपने साम्राज्य का दौरा किया और लोगों के हालात जान कर शांति और समृद्धि के लिए कदम उठाये। उसने सभी विद्रोहियों को उनके स्थानों में घेर लिया और जब तक उन लोगों ने पूर्ण आत्म-समर्पण न कर दिया तब तक उन्हें न छोड़ा। उसने अपने स्थानीय प्रधानों और गवर्नरों के प्रति समझौते और क्षमा की नीति बरती और वदले में उसे उनकी अक्षुण्ण निष्ठा प्राप्त हुई। थोड़े ही समय में राज्य में शांति और समृद्धि स्थापित हो गई।

अल-मुइज के अधीन फातिमिद साम्राज्य का विस्तार

फिर उसनें साम्राज्य के विस्तार की नीति अपनाई। उसके राज्य में मोरक्को, अलजीरिया, ट्यूनिसिया और सिसली शामिल थे। वह स्पेन को अपने

साम्राज्य में मिलाने के बारे में गंभीरता के साथ विचार कर रहा था। सन् ९५५ में उसने स्पेन के समुद्री तट पर हमला किया जहाँ का शक्तिशाली खलीफा अब्द-अल रहमान तृतीय था।

उसे स्पेन के साथ सामुद्रिक युद्ध में सफलता मिली और सिसली द्वीप पर कब्जा कर लिया। उमैय्यद खलीफा अब्द-अल रहमान तृतीय और फातिमिद खलीफा (इमाम) के बीच कई वर्षों तक लड़ाई चली। इन दो खलीफाओं के बीच लड़ाई का फायदा उठाते हुए यूनानियों ने क्रेट पर हमला कर दिया और उस पर सन् ९६७ में कब्जा कर लिया। इस प्रकार क्रेट, जिस पर अब्बासिद खलीफा मंसूर के समय से ही मुसलमानों का कब्जा था, उनसे छिन गया। इतिहासकार अमीर अली कहता है—"क्रेट के हाथ से निकल जाने की क्षति-पूर्ति कुछ हद तक हो गई जब सिसली को बैजेन्टाइनों से छीन लिया गया।"[४] सिसली में मुस्लिम शासन लागू कर दिया गया। फातिमिदों के अधीन सिसली में जो समृद्धि हुई वैसी समृद्धि पहले कभी न हुई थी। वहाँ पेलरमो में चिकित्सा विश्वविद्यालय बगदाद और कारडोवा के विश्वविद्यालयों के ही मुकाबले का था।

मिस्र पर विजय और सेनापति जौहर

तीन वर्ष बाद फातिमिद अटलांटिक सागर से पश्चिम की ओर बढ़े। इस संबंध में सन् ९६९ से ही कार्रवाई शुरू कर दी गई थी जब मिस्र इखसीदिद शासकों के हाथों से छीन लिया गया था। सन् ९७२ में मिस्र को पूरी तरह पराभूत किया गया। यह अल-मुइज की सबसे ज्यादा प्रसिद्ध उपलब्धि थी। इतिहासकार लेन-पूल लिखता है—"मिस्र पर विजय अल-मुइज के जीवन का मुख्य उद्देश्य था और वह उसे समृद्ध और फलता-फूलता देखने का सपना संजोये हुए था।" इसके पूर्व सन् ९५६ में मिस्र में भयानक आन्तरिक उपद्रव हुए थे और वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों ने अल-मुइज को आमंत्रित किया कि वह वहाँ आकर उस प्रान्त पर कब्जा करे तथा शांति स्थापित करे। जिस फातिमिद सेना ने मिस्र पर कब्जा किया उसका सेनापति जौहर अल-सिकिली था जिसे अल-रूमी (यूनानी) भी कहा जाता था। वह भूतपूर्व खलीफा (मंसूर) के अधीन सचिव और सेनापति था। फातिमिद राजवंश की उसने जो सेवा की उसके कारण उसकी गणना अल-शियाई के बाद राजवंश के द्वितीय संस्थापक के रूप में की जाती है। मिस्र पर विजय पहले ही कर ली जाती पर खलीफा (अल-मुइज) की माँ के इस अनुरोध के कारण पहले इसलिए न की जा सकी कि उसकी (माँ की) मक्का-यात्रा के दरम्यान मिस्र से गुजरते समय वहाँ के

४. अमीर अली—"दी हिस्ट्री ओफ सारासेन्स," मैकमिलन एँड कं० लि०, लंदन, १९५५; पृ० ५९८।

तत्कालीन शासक काफूर ने उसके साथ आदर का वर्त्ताव किया था। अतः काफूर की मृत्यु तक प्रान्त पर विजय का कार्य स्थगित रखा गया।

काहिरा की स्थापना

जब अल-मुइज ने मिस्र की तत्कालीन राजधानी अल-फुस्टेट में सन् ९६९ में प्रवेश किया तो जौहर ने अल-काहिरा नाम से एक नये नगर का निर्माण कराया। यही, यानी आज का काहिरा नगर सन् ९७३ में फातिमिदों की राजधानी बनी। इसके बाद जौहर ने अल-अजहर की मस्जिद बनवाई जिसे खलीफा अल-अजीज ने एक अकादमी के रूप में परिणत कर दिया।

जब खलीफा अल-मुइज नयी राजधानी काहिरा में आ गया तो फातिमिद राजवंश का सत्ता केन्द्र महदिया और कैरवान से बदल कर मिस्र चला आया। ये नगर जिस क्षेत्र में थे उसे अल-मगरिब के नाम से एक नये प्रान्त के रूप में परिणत कर दिया गया। उसे वहाँ के वंशक्रमानुगत राजवंश के जीरिद के हाथों में सुपुर्द कर दिया गया जिसने फातिमिदों की सार्वभौम सत्ता स्वीकार की। उसका प्रथम राजा बलुक्किन हुआ जिसे अबू फुतुह यूसुफ के नाम से भी जाना जाता है। उसे मिस्र के लिए प्रस्थान करने के पूर्व अल-मुइज ने उस क्षेत्र में अपना प्रतिनिधि शासक (वाइसराय) नियुक्त किया था। सिसली और ट्रिपोली के लिए अलग-अलग प्रतिनिधि शासक नियुक्त किये गए। जीरिदियों को सन् ११४८ में अंततः सिसली के रोजर्स द्वितीय ने उखाड़ फेंका। अब फातिमिद साम्राज्य पूरे उत्तरी अफ्रिकी क्षेत्र पर विस्तृत हो गया। पश्चिमी अरब ईखशीदिदों से छीना गया था। सेनापति जौहर के पाँव मिस्र की जमीन पर अच्छी तरह जम गये तो उसने पड़ोसी देश सीरिया में अपना एक सैन्य प्रतिनिधि (लेफ्टिनेन्ट) भेजा जिसने ९६९ में वहाँ पहुँच कर अस्थायी रूप से दमिश्क को अपने कब्जे में ले लिया।

कारमातियों की शक्ति का दमन

जौहर के प्रमुख विरोधी कारमातियाई थे जिन्होंने सीरिया के अनेक भागों में अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर रखी थी। सेनापति जौहर ने उनको फुस्टेट के निकट युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। पर फिर भी उन लोगों ने मुसलमानों के विरुद्ध अपनी शत्रुता समाप्त न की। वे बार-बार मिस्र पर हमला करते रहे पर अन्त में ऐन-उश-शम्स (हीडियोपोलिस) के निकट खलीफा अल-मुईज ने उनसे टक्कर ली और उन्हें पराजित कर उनकी रीढ़ बराबर के लिए तोड़ दी।

अल-मुईज का प्रशासन : उसके अन्य सुधार

अल-मुईज ने बाहरी खतरों का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के बाद अपने साम्राज्य में शांति और प्रगति के लिए कदम उठाये। उसने प्रान्तों को जिलों में बाँट दिया और सभी जिले योग्य अफसरों के सुपुर्द कर दिया। उन लोगों को सेना और शांति-स्थापक अन्य टुकड़ियाँ दी गईं। सेना और सामुद्रिक बेड़े का पुनर्गठन किया गया और वाणिज्य और व्यापार को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन दिया गया। उसके मानवीयतापूर्ण व्यवहार के कारण सभी अधीनस्थ अफसर उसके साथ आदर और मैत्री का वर्ताव करने लगे। वह अपने विरोधियों को मित्रों में परिणत करने में प्रवीण था। काहिरा में दो वर्ष तक रहने के दरम्यान वहाँ उसने अनेक सुधार किये। इस्लाम धर्म ग्रहण करने वाले एक यहूदी इब्न किलिस और आश्रुक को क्रमशः भूमि तथा राजस्व विभाग का प्रशासक नियुक्त किया गया। इन दोनों ने देखा कि राजस्व संग्राहकों और कृषकों ने अपने कार्य के दौरान काफी मुनाफा और शक्ति हासिल कर ली है। फलतः उन्होंने एक आदेश निकाल कर इनकी शक्तियाँ और मुनाफे के रास्ते खत्म कर दिए। इन लोगों की निगरानी का परिणाम हुआ कि राज्य का राजस्व बहुत ज्यादा बढ़ गया।

अल-मुईज की सफलताएं

सन् ९७५ में अल-मुईज की मृत्यु हो गई। उसने बड़े गौरव के साथ १३ वर्षों तक शासन किया। वह सबसे महान फातिमिद खलीफा हुआ। उसी ने मिस्र में सर्वप्रथम फातिमिद शासन स्थापित किया। सभी आन्तरिक मतभेदों और उपद्रवों को निर्दयता के साथ दबा दिया गया। जनसामान्य ने राहत और सुख की साँस ली। उसके राजनेतृत्व, संगठन-शक्ति और अथक सामर्थ्य के कारण छोटा-सा फातिमिद राज्य एक शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। वह न केवल कला और विद्वता का महान संरक्षक बल्कि एक अच्छा कवि और अरबी साहित्य में अभिरुचि रखने वाला था। वह अनेक भाषाओं का ज्ञाता, सूडानी बोली का विशेषज्ञ और अजस्र प्रवक्ता था।

अल-अजीज (९७५-९६)

अल-मुईज का उत्तराधिकारी सन् ९७५ में बना अबू मंसूर निजार। उसने "अल-अजीज बिल्लाह" की उपाधि ग्रहण की। उसे उदार, वीर, बुद्धिमान और मानवतापूर्ण बतलाया गया है। उसमें "दंड देने की शक्ति के साथ ही क्षमा करने की भावना भी थी।" उसके पिता ने जो विशाल राज्य स्थापित किया था उसे आने वाले फातिमिद खलीफाओं के लिए अल-अजीज ने सुरक्षित बनाया। उसने सीरिया

के अनेक नगरों पर अधिकार भी कर लिया। अल-अजीज के शासन-काल में फातिमिद साम्राज्य उन्नति के चरम बिन्दु पर पहुँच गया।

फातिमिद साम्राज्य का विस्तार

अल-अजीज के शासन में फातिमिदों ने पूरे सीरिया और मेसोपोटामिया के एक हिस्से पर कब्जा कर लिया। इस खलीफा का नाम अटलांटिक सागर से लाल सागर तक और यमन, मक्का, दमिश्क और एक बार मौसिल में भी शुक्रवार की नमाज में लिया जाता था। उस समय फातिमिद साम्राज्य यूफ्रेटस नदी के किनारों से अटलांटिक सागर तक फैला हुआ था। उसमें अरब प्रायद्वीप का एक बड़ा भाग भी समाहित था। अल-अजीज के अधीन मिस्र की खिलाफत न केवल बगदाद की अब्बासिद खिलाफत की भीषण प्रतिद्वन्द्विता में खड़ी थी बल्कि आकार में उससे बड़ी थी। उसे पूर्वी भूमध्य-सागर का एकमात्र बड़ा राज्य माना जाता था। कहा जाता है कि अल-अजीज ने बीस लाख दीनार खर्च कर काहिरा में एक महल बनवाया जिसके बारे में उसकी योजना थी कि जब वह बगदाद में अब्बासिदों को पराजित कर उस पर अपना कब्जा कर लेगा तो अपने बंदी अब्बासिद शासकों को गिरफ्तार कर उन्हें उस महल में रखेगा। अपने पूर्ववर्ती फातिमिद सम्राटों की भाँति वह भी सुदूरस्थ स्पेन को लालच-भरी निगाहों से देखता था। जब उसने स्पेन को आत्म-समर्पण करने के लिए कारडोवा-स्थित खलीफा को एक कड़ी चिट्ठी लिखी तो स्वाभिमानी खलीफा ने उसके जवाब में लिखा कि—"तुम हम लोगों का मजाक इसलिए बना रहे हो क्योंकि तुमने हमारे बारे में केवल सुना भर है। भविष्य में जब भी हम तुम्हारे बारे में सुनेंगे तो हम जवाब देंगे।"

अल-अजीज का आकलन

फातिमिद खलीफाओं में संभवतः अल-अजीज सबसे ज्यादा बुद्धिमान और उदार खलीफा था। इसका प्रमाण है कि उसके शासन में देश में अनवरत शांति बनी रही। मुसलमानों और गैर-मुसलमानों दोनों ने शांति और समृद्धि का उपभोग किया। मिस्र में उस अवधि में अद्भुत ढंग का निर्माण-कार्य हुआ। स्वर्ण मंदिर, मोती-मंडप (पर्ल पैवीलियन), कराफा कब्रगाह में उसकी माँ की मस्जिद आदि उसी के समय बने। स्वयं एक कवि और विद्वता का संरक्षक होने के फलस्वरूप उसने अजहर मस्जिद को एक अकादमी में परिणत कर दिया। उसका दरबार शानदार और भव्य था। उसने राजधानी काहिरा में अनेक मस्जिदें, महल, पुल और नहरें बनवाईं और उनको ईसाई प्रजाजन के क्षेत्र तक विस्तृत कराया। यह दूसरे धर्मवालों के प्रति उसकी सहिष्णुता का परिचायक है। साथ ही यह उस पर उसके ईसाई विजीर ईसा इब्न नस्तूर और उसकी ईरानी पत्नी के प्रभाव का भी द्योतक है। उसकी पत्नी उसके

पुत्र एवं उत्तराधिकारी अल-हकीम की माँ और सिकन्दरिया और जेरूसलेम के ईसाई धर्माध्यक्षों की बहन थी।

अपने शत्रुओं के प्रति उसकी उदार नीति का परिचय इस बात से मिलता है कि जब सीरिया और फिलस्तीन में उसके विरुद्ध उपद्रव करने वाला इफ्तिकिन गिरफ्तार किये जाने के बाद उसके समक्ष लाया गया तो उसने न केवल उसे माफ कर दिया बल्कि उसे अपने दरबार में एक ऊँचा पद भी दिया। मनासा, जो यहूदी था, उसके दरबार में ऊँचे पद पर था। उसके ईसाई विजीर ईसा इब्न नस्तूर और मनासा के कारण ही मिस्र में लंबे समय तक पूर्ण शांति रही।

अल-अजीज के उदार शासन के बाद फातिमिद सत्ता की अवनति शुरू हुई। वह अपने राजवंश का प्रथम शासक था जिसने अब्बासिद सम्राटों का अनुकरण करते हुए भाड़े के तुर्क और नीग्रो सैनिकों को अपने देश में लाने की दुर्भाग्यपूर्ण नीति आरंभ की। ये लोग आपस में लड़ते-झगड़ते और ऊपर के अफसरों के प्रति अवज्ञा की नीति अपनाए हुए थे और यही आगे चल कर फातिमिदों के पतन का मुख्य कारण बना। कितमान जनजाति और तुर्की सैनिकों तथा दासों ने बाद में सर्वोच्च सत्ता हथिया ली और स्वतंत्र राजवंश स्थापित किये।

अल-अजीज की मृत्यु सन् ९९६ में हुई और उसी के साथ फातिमिद साम्राज्य का गौरव और भव्यता भी समाप्त हो गई।

अल-हकीम (९९६-१०२१)

जब अबू अल मंसूर अल हकीम सन् ९९६ में अपने पिता अल-अजीज का उत्तराधिकारी बना तो उसकी उम्र सिर्फ ग्यारह साल थी। उसकी प्रसिद्धि अपने देश के प्रति उसकी सेवाओं के कारण नहीं बल्कि उसकी असामान्य मनोदशा के चलते उसकी चारित्रिक विसंगतियों के कारण है। अपने शासन के प्रथम वर्ष में उसने एक परिश्रमी शासक के रूप में कार्य किया। उसने उस समय के प्रसिद्ध गणितज्ञ और भौतिक शास्त्री अल-हसन इब्न अल हैथम (पश्चिम का अल-हैजेन) को बसरा से मिस्र बुलवाया। गणितज्ञ अल-हसन ने नील नदी की बाढ़ को, जिनसे देश की मिट्टी की उर्वरता बढ़ती थी, नियमित और नियंत्रित करने का बीड़ा उठाया। पर वह अपनी योजना को कार्यान्वित करने में असफल सिद्ध हुआ। वह इससे बहुत हतोत्साह हो गया और जीवन भर खलीफा के क्रोध से बचने की ही कोशिश में लगा रहा। खलीफा की अपरिसीम शक्ति, जिसके उदात्त होने के बारे में उसके धर्मावलंबियों ने प्रचार कर रखा था और उसके द्वारा अंतिम आदेश देने की प्रक्रिया ने उसका मस्तिष्क विकृत कर दिया था।

हकीम के कुछ सुधार

खलीफा हकीम इस्लाम के कानूनों की, जिसे सभ्यता की प्रगति ने प्रभावहीन बना दिया था, वैधता की पुनर्स्थापना पर बुरी तरह अड़ा हुआ था। उदाहरण के लिए उसने मद्य-निषेध, जो उस समय तक एक निष्प्रभावी कानून बन गया था, फिर से लागू किया। उसने मिस्र के सभी अंगूर के बागों को, जो वहाँ बहुत बड़ी संख्या में न रहे होंगे, उखड़वा दिया। साथ ही उसने सभी मादक द्रव्यों के आयात पर कड़ी रोक लगा दी। उसने कानूनों का सहारा लेकर अपनी प्रजा से मनोरंजन के सभी साधन क्रूरतापूर्वक छीन लिए। उसने दावतों और संगीत और यहाँ तक कि शतरंज तथा नील नदी के किनारे चहलकदमी पर भी रोक लगा दी। उसने स्त्रियों की कथित चरित्रहीनता के विरुद्ध भी जेहाद छेड़ा। उसकी शासनावधि में बड़े नगरों में स्त्रियों को हरम की प्रथा के बावजूद दूसरों से प्रेम करने के बार-बार अवसर मिलते थे। इस पर उसने नैतिक प्रतिबंध लगाया जो बूढ़ी महिलाओं के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता था। यही नहीं उसने स्त्रियों पर पाबन्दी लगा दी कि वे अपना घर छोड़ कहीं न जाएँ। इससे भी उसे सन्तुष्टि न मिली और उसने स्त्रियों के जूतों पर सजावट करने पर भी प्रतिबंध लगा दिया।

अल हकीम के निरंकुश कार्य

पूर्वी निरंकुश शासकों में हकीम अपनी निर्दयता और मूर्खता के लिए प्रसिद्ध है। उसके शासन में अनेक भीषण किस्म के क्रूर कर्म किये गये। फलतः राजधानी काहिरा में बार बार उपद्रव हुए। उसने अनेक विजीरों को मरवा डाला, अनेक यहूदियों और ईसाइयों को दंडित किया तथा उनके पूजा-स्थल जलवा दिए। उसके आदेश पर जेरूसलेम का पुनरुत्थान गिरजाघर सन् १००९ में नष्ट कर दिया गया। यही नहीं, उसने यहूदियों और ईसाइयों के लिए वस्त्र पहनने के पुराने धर्मान्धितापूर्ण नियमों को फिर से लागू किया जिनका उद्देश्य था कि मुसलमानों से उनकी अलग पहचान की जा सके। उसने आदेश दिया कि यहूदी लोग अपने वस्त्र के साथ एक घंटी बाँध लिया करें और ईसाई अपने गले में पाँच पाउण्ड प्रायः सवा दो किलो ग्राम का क्रास चिह्न पहनकर निकलें। अल मुतवक्किल और उमर द्वितीय के बाद वह इस्लाम में तीसरा खलीफा हुआ जिसने गैर मुसलमानों के विरुद्ध इतने बड़े कदम उठाये। ईसाइयों के कब्रगाहों को नष्ट कर देने संबंधी उसके आदेश पर उसके ईसाई सचिव इब्न अब्दुन ने हस्ताक्षर किये थे। उसने ईसाइयों को दंडित करने के जो कठोर नियम लागू किए उनके कारण उन लोगों को पश्चिम स्थित अपने बन्धुओं के यहां उसके विरुद्ध अपील करने को बाध्य किया। यह उन कारणों में से एक था जिसने धर्मयोद्धाओं को, जिनका वर्णन आगे आता है, अपने अभियान के लिए प्रेरित किया।

नये धर्म की स्थापना और अल हकीम की मृत्यु

अपने दरबार में उसने शिया लोगों की अत्यधिक अतिवादी प्रवृत्तियों को कार्यरूप दिया। इनके अनुसार प्राचीन ईरानी प्रथा के अनुसार वैध वंशोत्पन्न शासक अल्लाह के अवतार के रूप में माना जाता रहा है। उसने एक धर्म की स्थापना की मूर्खता भी कर डाली। ऐसा इस बात पर जोर देने के लिए किया गया कि वह अल्लाह का सुगोचर स्वरूप है। एक नये धार्मिक पंथ ने जो अपने प्रथम बड़े धर्मप्रचारक अल दराजी के नाम पर 'ड्रूजेस' नाम से पुकारा जाता था, हकीम को उस रूप में स्वीकार भी कर लिया। लेवनान में साहसी, पर्वतीय क्षेत्र निवासियों द्वारा इस पंथ का उत्साहपूर्वक समर्थन किया गया। ये लोग अभी भी पाये जाते हैं। इन लोगों ने अनेक अवसरों पर सीरिया की इतिहास-प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

इसमें संदेह नहीं कि हकीम न केवल धार्मिक स्तर पर बल्कि राजनीतिक स्तर पर भी एक पहेलीनुमा व्यक्तित्व था। कहा जाता है कि वह एक षड्यंत्र के कारण मारा गया जिसकी योजना उसके दरबार के प्रमुख व्यक्तियों ने तैयार की थी। कहा जाता है कि जब सन् १०२१ के फरवरी महीने में वह काहिरा के फाटक के बाहर घुड़सवारी कर रहा था तो उसकी हत्या करवा दी गई। उसके बाद उसका पुत्र खलीफा बना। जैसा कि सुप्रसिद्ध अरब इतिहास लेखक फिलिप हिट्टी कहता है—"हकीम संभवतः अपनी बहन सित-अल-मुलुक के, जिस पर उसने चरित्रहीनता का आरोप लगाया था, नेतृत्व में तैयार किये गए एक षड्यंत्र में मारा गया।"[५]

अल-जहीर (१०२१-१०३५)

अल-हकीम के बाद अपरिपक्व युवा व्यक्ति खलीफा बनाये जाने लगे जिनके शासन में असल सत्ता विजीरों के हाथों में रहती थी और जिन्होंने बाद में मालिक की उपाधि भी ग्रहण कर ली। अल-हकीम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी अल-जहीर हुआ जो सत्तारूढ़ होने के समय सिर्फ सोलह साल का था। शासन के प्रथम चार वर्षों में उसकी बुआ सित-अल-मुलुक ने शासन चलाया और उसकी मृत्यु के बाद सरकार वास्तविक रूप में मिजाद तथा नफीर ने चलाई जो अल-हकीम के अधीन अफसर थे। अल-जहीर के शासन में सीरिया का एक बड़ा भाग फातिमिदों के हाथ से निकल गया। एक अरब प्रधान सालेह-बिन-मिरदास एलेप्पो और आस-पास के जिलों का स्वामी बन बैठा।

खलीफा जहीर ने बैजेन्टाइन शासक कान्स्टेंटाइन अष्टम की अनुमति से यह विशेषाधिकार प्राप्त कर लिया कि सम्राट के शासन-क्षेत्र में मस्जिदों में

५. फिलिप के० हिट्टी, हिस्ट्री ऑव अरब्स, पृ० ६२९।

शुक्रवार की नमाज में उसके नाम का उल्लेख किया जाय। उसके बदले अल-जहीर ने पवित्र कब्रिस्तान के गिरजाघर को जिसे उसके पूर्ववर्त्ती खलीफा और पिता अल-हकीम ने तुड़वा दिया था फिर से बनवा दिया।

पर अल-जहीर अपने पिता की भाँति निर्दय न था। वह ऐश-ओ-मौज का आदी था। उसने सरकार का काम-काज अपने विजीरों को सौंप दिया और उस ओर से बिल्कुल निश्चिन्त हो गया और इस प्रकार शुरू हो गया फातिमिद खलीफा की सत्ता का ह्रास। अब खलीफा के पास केवल चमक-दमक रह गई और सच्ची सत्ता विजीरों के हाथों में चली गई। खलीफा विजीर के हाथ की कठपुतली मात्र रह गया। अल-जहीर के शासन-काल में मिस्र में भयानक अकाल पड़ा जो एक प्रकार से वहाँ अभूतपूर्व और अत्यधिक विनाशकारी था।

अल-मुस्तनसीर (१०३५-९४)

अल-जहीर की मृत्यु सन् १०३५ में हुई और उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अल-मुस्तन्सीर हुआ जिसने लगातार साठ वर्षों तक शासन किया। मुसलमानों के साथ इतने लंबे समय तक किसी ने शासन न किया था। सत्तारूढ़ होने के समय वह सिर्फ ग्यारह साल का था। आरंभिक वर्षों में उसकी माँ, जो एक यहूदी से खरीदी गई सूडानी गुलाम थी, और उसके यहूदी विक्रेता ने वास्तविक सत्ता का उपभोग किया। उस समय तक फातिमिद शासन-क्षेत्र सिमट कर मिस्र और कुछ और भाग तक चला आया था। सन् १०४३ के बाद सीरिया में, जो मिस्र के साथ ढीले-ढाले संबंध-सूत्र से ही बँधा था, फातिमिद सत्ता द्रुत गति से विघटित होने लगी। फिलस्तीन अक्सर फातिमिदों के विरुद्ध खुल कर विद्रोह कर बैठता था। दूसरी ओर पूर्व से बढ़ती आ रही सालजुक तुर्कमानों की सत्ता पश्चिम एशिया पर अपनी डरावनी छाया डाल रही थी। उन तुर्कों ने अल-मुस्तंसीर के शासन-काल में सीरिया और फिलस्तीन पर हमला किया और दोनों की राजधानियों क्रमशः दमिश्क और जेरूसलेम पर सन् १०७६ में अधिकार कर लिया। वहाँ एक तुर्की परिवार औरतुक वंश के राजाओं ने अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। वे लोग नील नदी तक, मिस्र पर भी कब्जा करने के लिए बढ़ आये पर इसमें उन्हें सफलता न मिली।

इस बीच फातिमिद अधिकृत अफ्रिकी प्रान्तों ने अब्बासिद शासकों के साथ अपने पुराने संबंध स्थापित कर उन्हें ही कर देने लगे। बनू हिलाल और सुलेम की उपद्रवी अरब जनजातियों को, जो मूलतः नज्द की थीं और अब मिस्र के उच्चतर क्षेत्र में रह रही थीं, पश्चिम की ओर बढ़ने के लिए उसकाया गया जिस

सिलसिले में उन्होंने कई वर्षों तक ट्रिपोली और ट्यूनिसिया तथा सिसली में बर्बादी और तबाही का आलम बरपा कर दिया। इन क्षेत्रों ने अगलाबिदों की अधीनता के बाद फातिमिदों की सार्वभौमसत्ता स्वीकार कर ली थी। सन् १०७१ तक इनमें से अधिकांश पर नार्मनों ने कब्जा कर लिया और बाद में उन लोगों ने अफ्रिकी मुख्य भूमि के अनेक हिस्सों पर भी दखल कर बैठे। केवल अरब प्रायद्वीप ही अंशतः शिया धर्मावलंबी शासकों (फातिमिदों) के प्रति निष्ठावान रहा। पर तुर्की-सेनापति और सत्ता हड़प करने वाले अल-बसासिरी के विद्रोह (सन् १०६०) और अब्बासिद खलीफा अल-कैम के शासन में चलने वाले सत्ता-संघर्ष के कारण फातिमिद खलीफा अल-मस्तांसीर को अवसर मिला कि वह अब्बासिद शासित क्षेत्र में अपना शासन कायम कर सके। पर कुछ ही समय बाद यह स्थिति भी समाप्त हो गई क्योंकि साल्जुक सुल्तान तुगरिल बेग सामने आया जिसने पश्चिमी एशिया में अब्बासिद सत्ता फिर से स्थापित कर दी। जहाँ तक फातिमिद शासन की आंतरिक स्थिति का संबंध है, तुर्की बर्बर जनजातियों और सूडानी फौजी टुकड़ियों के बीच छिटपुट झगड़े बराबर होते रहे जिसके कारण शासन यंत्र पंगु-सा हो गया था। सन् १०७३ में खलीफा मुस्तनसीर ने एक भूतपूर्व आर्मेनियाई दास बद्र-अल-जमाली को, जो अक्का (मध्य-एशिया) में खलीफा का फौजी गवर्नर था, बुलाया ताकि वह उसके विजीर और सेनापति के रूप में कार्य कर सके। बद्र-अल-जमाली ने अपना जीवन सीरिया में सेनापति के रूप में आरंभ किया था। उसे अब विजीर के रूप में व्यापक अधिकार दिये गए। वह तुर्की सेनापतियों और अमीरों की नृशंसता को समाप्त करने तथा देश में शांति-व्यवस्था कायम करने में सफल हुआ। बद्र ने विजीर एवं सेनापति के रूप में अपनी शक्ति का तीव्रता से प्रयोग किया जिससे उसे शांति-व्यवस्था कायम करने में सफलता मिली और फातिमिद शासन को नया जीवन प्रदान किया गया। पर यह एक अस्थायी स्थिति ही सिद्ध हुई। पर बद्र सीरिया में फातिमिदों का शासन कायम रख सकने में असफल हुआ क्योंकि वहाँ शासन के लिए छोटे-छोटे राजा बराबर खतरा बने रहे जो पूर्व में धीरे-धीरे उदित हो रही सालजुक सत्ता को चुनौती दे रहे थे। सन् १०६० में एलेप्पो पर मिरदासिदों ने कब्जा कर लिया। यह एक राजवंश था जो सीरियाई बद्दू जनजाति के बीच से उभरा था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सालजुक तुर्कों ने फिलिस्तीन की राजधानी जेरूसलेम पर १०७१ और सीरिया की राजधानी दमिश्क पर १०७६ पर कब्जा कर लिया। न तो बद्र-अल-जमाली, जिसकी मृत्यु १०९४ में हुई और न ही उसके बाद विजीर बनने वाला उसका पुत्र अल-मलिक-अल-अफदल- फातिमिद सत्ता का ह्रास रोक पाया। फिर अल-मुस्तंसीर के बाद होने वाले खलीफाओं में ऐसा कोई न हुआ जो फातिमिद साम्राज्य के पतन की धारा को मोड़ने में सफल होता। अल-मुस्तंसीर की मृत्यु १०९४ में हो गई।

अल-मुस्तली (१०९४-११०१)

फिर अल-मुस्तंसीर का द्वितीय पुत्र अल-मुस्ताली को सर्वशक्तिमान विजीर अल-मलिक अल-अफदल ने गद्दी पर बैठाया। पर वास्तविक और सम्पूर्ण सत्ता विजीर के ही हाथों में रही। अफदल ने सर्वप्रथम सीरिया में फातिमिद शासन फिर से स्थापित करने की कोशिश की। इसके लिए उसने सालजुक तुर्कों के जागीरदारों और्तोक राजाओं से धार्मिक नगर जेरूसलेम छीन लेने की कोशिश की। वहीं औरतोकों का शासन केन्द्र था। पर अब इस्लाम के समक्ष एक नये और खतरनाक विरोधी के रूप में धर्म योद्धा सामने आये। पहले सीरिया में छोटे राजवंशों द्वारा वहाँ आधिपत्य कायम करने की कोशिशों के कारण अस्त-व्यस्तता की स्थिति में इस नये विरोधी की ओर पर्याप्त ध्यान न दिया गया।

जब उन लोगों ने एशिया माइनर पर सन् १०९७ में आक्रमण किया तो अफदल ने जेरूसलेम पर फिर से अधिकार करने के लिए उपयुक्त अवसर देखा। उसने धर्म-युद्ध करने वालों के विरुद्ध तुर्कों को सहायता देने से इन्कार कर दिया और जेरूसलेम पर धावा बोल कर उसे १०५८ में अपने कब्जे में ले लिया। इस प्रकार उसने औरतोक राजाओं से उस क्षेत्र की सार्वभौमसत्ता छीन ली जिसका उपभोग वे बीस वर्षों से करते आ रहे थे। पर जेरूसलेम पर अफदल का अधिकार बहुत ही कम समय के लिए रहा। अगले वर्ष (१०९९) में धर्म-युद्ध करने वालों ने उस नगर को उसके हाथों से छीन लिया। फिर अगले दो दशकों में फातिमिदों और धर्म-युद्ध करने वालों के बीच लगातार कई लड़ाइयाँ हुईं जिनके दौरान कभी इस ओर कभी उस पक्ष को विजय मिली। अन्त में धर्म-युद्ध करने वालों ने फातिमिदों की सत्ता टियरे और ऐश कोलन के समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों मात्र तक ही सीमित कर दी।

अल-मुस्तली की मृत्यु के बाद अल-अफदल ने उसके पाँच साल के बच्चे को खलीफा घोषित किया तथा उसे अल-अमीर (११०१-३०) को आदरसूचक उपाधि दी। पर अगले बीस वर्षों तक मिस्र में अल-अफदल की सत्ता अक्षुण्ण रही। वही मिस्र का वास्तविक शासक था। उसके संतुलित और युक्तियुक्त शासन की पचास वर्षों की अवधि में मिस्र में शान्ति और समृद्धि रही। जब तक अल-अमीर वयस्क नहीं हुआ तब तक अल-अफदल ने राज्य का शासन चलाया। सन् ११२१ में एक हत्यारे ने अल-अफदल की हत्या कर डाली। अयोग्य और अक्षम खलीफा अल-अमीर उसके अभिभावकत्व से ऊब कर उससे क्रुद्ध हो गया था।

अल-हाफिज (११३०-४९)

फिर मृत खलीफा का चचेरा भाई अल-हाफिज की उपाधि के साथ खलीफा घोषित किया गया। हाफिज का शासन काल सैनिक टुकड़ियों के आपसी झगड़ों के

कारण अशान्त और क्षुब्ध रहा। सन् ११४९ में हाफिज की मृत्यु के समय उसका शासन अपने महल के बाहर किसी भी अन्य क्षेत्र में न था। उसके जीवन के अंतिम दिन राजधानी के अन्तर्कलह के कारण और भी दुःखपूर्ण हो गये थे। अपने शासन की पूरी अवधि में, इतिहासकार इब्न अल-अथीर के अनुसार वह उन लोगों, विशेषतः विजीरों से पूरी तरह प्रभावित रहा जो उसके इर्द-गिर्द जमा थे।

फातिमिद शासन का अंत

अल-हाफिज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अल-जफीर (११४९-५४) शासनारूढ़ हुआ। वह एक मस्त, मनमौजी युवा था और वास्तविक सत्ता कुर्दिश विजीर इब्न-अल-सालार द्वारा हड़प ली गई थी। और अब अनिवार्य रूप से फातिमिद राजवंश का अंत आ गया था। सीरिया में धर्म-युद्ध करने वालों और तुर्की शासकों के बीच युद्ध और राजधानी काहिरा में अंगरक्षक सैनिकों के उपद्रव के दरम्यान तलाई इब्न-रूज्जीक जैसे योग्य सेनापति द्वारा ही थोड़े समय के लिए शांति रखी जा सकी। यात्री उसामाह ने जो ११४४ और ११५४ के बीच के वर्षों में फातिमिद दरबार में रहा, अपने संस्मरण में लिखा है कि किसी भी दरबार में इतने षड्यंत्र, आपसी लड़ाइयाँ और ईर्ष्या-द्वेष का इस तरह बोलबाला न रहा होगा। विजीर इब्न-अल सालार की हत्या उसकी पत्नी के पौत्र नस्र-इब्न-अब्बास ने कर डाली। बाद में खलीफा ने उसे उसकाया कि वह अपने पिता अब्बास की भी, जो इब्न-अल-सालार के बाद विजीर बना, हत्या कर डाले। अंत में जब कि खलीफा ने नस्र इब्न-अब्बास को देश-निकाला दे दिया, अल-जफीर का चार साल का लड़का अल-फैज (११५४-६०) खलीफा घोषित किया गया जो सात साल तक खलीफा रहा। उसकी मृत्यु के बाद उसका नौ साल का चचेरा भाई अल-अदीद खलीफा घोषित किया गया। वह फातिमिद राजवंश का सबसे अंतिम खलीफा हुआ। इस राजवंश ने प्रायः अढ़ाई शताब्दी तक शासन किया। अल-अदीद सीरिया की राजधानी दमिश्क में शासन कर रहे सालजुक सेनापतियों से, जो उससे कहीं ज्यादा शक्तिशाली थे, उत्पन्न खतरे को न टाल सका। उसने सालजुक सेनापतियों में से ही शिरकुश नामक एक कुर्दवासी को अपना विजीर बनाया। अल-अदीद अभी तक अपनी गद्दी संभाल भी न पाया था कि जेरूसलेम के राजा अमोरी ने मिस्र पर हमला बोल दिया और नव-नियुक्त विजीर को देश से निकाल दिया। पर फातिमिद राजवंश के पतन के नाटक के अंतिम दृश्य का पटाक्षेप तब हुआ जब धर्म-युद्ध करने वालों के प्रसिद्ध योद्धा सलाह-अल-दीन ने घटना-क्रम में प्रवेश किया। उसने अंतिम फातिमिद खलीफा अल-अदीद को सन् ११७१ ई० में सिंहासन-च्युत कर दिया और उसके साथ ही उबैदुल्ला अल-महदी द्वारा स्थापित राजवंश का पतन हो गया।

फातिमिद के पतन के तात्कालिक कारणों में प्रमुख उनकी जनता की दु:सह दैनिक जीवन-यात्रा था। इस संबंध में इतिहासकार प्रोफेसर हिट्टी लिखते हैं—"लोगों का जीवन दूभर हो गया था। नील नदी का प्रचुर जल ही उनकी जीविका का आधार था। बार-बार पड़ने वाले दुर्भिक्षों और प्लेग के हमले से जन-साधारण तबाह और बर्बाद हो गया था। फलत: उन पर भारी मात्रा में कर लगाये गए और एक-के-बाद एक खलीफाओं और उनके सैनिकों द्वारा जनता से खूब धन ऐंठा गया। स्थिति उस समय और भी जटिल हो गई जब धर्म-युद्ध करने वालों का उदय हुआ। अलावे, जेरूसलेम का राजा अमालरिक मिस्र पर बार-बार हमला कर रहा था। वह ११६७ में राजधानी कैरो के राजद्वार पर ही अड्डा डाले हुए था। इन स्थितियों का अंत धर्म-योद्धा सलाह्-अल-दीन ने किया जिसने ११७१ में फातिमिद खलीफा को गद्दी से हटा ही दिया।"[६]

फातिमिदों के अधीन सभ्यता और संस्कृति

एक समय ऐसा भी आया जब फातिमिद साम्राज्य सुदूर-विस्तृत था। पर उस बड़े क्षेत्र में मिस्र ही वह देश था जहाँ प्रथम खलीफा उबैदुल्ला अल-महदी के उत्तराधिकारियों ने सांस्कृतिक कार्य-कलाप का स्थायी प्रभाव छोड़ा। सांस्कृतिक विकास के दृष्टिकोण से फातिमिद युग मिस्र के इतिहास में अरब-ईरानी युग आरंभ होने का महत्वपूर्ण बिन्दु था। अय्यूबिद राज-वंश ने, जिसने फातिमिदों के बाद मिस्र में शासन आरंभ किया, महान सालजुक साम्राज्य की भावना और संस्कृति अफ्रिका में लागू की जो अपनी कला और उद्योग तथा राजनीतिक-बौद्धिक कार्य-कलाप के लिए महत्वपूर्ण था। फातिमिदों के अधीन ईरानी संस्कृति का प्रभाव प्रमुख रूप से दृष्टिगत हुआ। पर, फिर भी, मध्यकालिक और आधुनिक इतिहास में जनसंख्या का बहुसंख्य भाग अरबों के रूप में अभ्युदित प्राचीन मिस्रवासियों का था। यह जनसंख्या अतिवादी शिया पंथावलंबी शासन में भी हृदय से सुन्नी मतावलंबी थी। यह इस बात से प्रकट है कि फातिमिदों पर विजयी सलाह-अल-दीन ने बहुत सुविधापूर्वक सरकारी धर्म-निष्ठा की फिर से स्थापना की।

उच्चतर जीवन

मिस्र के इतिहास में फातिमिद युग इस कारण महत्त्वपूर्ण है कि राजनीतिक क्षेत्र में मिस्र को प्राचीन शासकों-फराओं—के बाद प्रथम बार फातिमिदों ने पूरे देश में सम्राटों की पूर्ण सार्वभौमसत्ता स्थापित की जो अत्यन्त जीवन्त थी तथा जिसका

६. फिलिप कें० हिट्टी—हिस्ट्री ऑव दी अरब्स, पृष्ठ ६२४।

आधार शुद्ध धार्मिक था। फातिमिद सत्ता का स्वर्ण युग खलीफा अल-मुईज के शासन में आरंभ हुआ और उसकी परिणति अल-अजीज की शासनावधि में हुई। पर इसके वावजूद खलीफा अल-मस्तांसिर के समय भी फातिमिद साम्राज्य इस्लाम का प्रमुख अंग था। इस संबंध में फातिमिदों के आर्थिक एवं राजनीतिक ह्रास के ठीक पूर्व १०४६-४९ की अवधि में मिस्र की यात्रा पर आये हुए इस्माइली धर्म-प्रचारक नासिर-ई-खुसरो का विवरण साक्ष्य के रूप में हमें उपलब्ध है। उसके अनुसार अपने फारसी मूल के अनुरूप फातिमिद शासक वहुत शान-ओ-वान के साथ जीवन विता रहे थे जिसकी तुलना "सहस्र अरव रजनी के युग के वगदाद" से ही की जा सकती है।

काहिरा और फातिमिद खलीफाओं की भव्य गरिमा

अल-मुईज के सेनापति जौहर ने काहिरा के भू-क्षेत्र एवं भावी निर्माण-स्वरूप का नक्शा १४ मई सन् ९६९ को ही तैयार किया था और उसकी दीवारें खलीफा के काहिरा-आगमन के पूर्व निर्मित हो चुकी थीं। उस नक्शे के अनुसार सभी ओर शानदार इमारतें द्रुत गति से खड़ी होने लगीं जिनसे इस विजयी नगर का भव्य रूप शानदार ढंग से उभरा। इनमें अनेक गलियाँ और सड़कें बनाई गई थीं। गलियाँ यात्रियों को काहिरा से आंचलिक क्षेत्रों में ले जाती थीं और उनको हेरात कहा जाता था जबकि नगर को चारों ओर से परिवेष्ठित करने वाली सड़कें दीवारों के अन्त तक जाती थीं और उनको अख्तात कहा जाता था। खलीफा का मुख्य भवन, जिसमें बारह मंडप थे, काहिरा के पूर्वी हिस्से में अवस्थित था। महल का नाम 'अल कस्रउल-कबीर उशशर्की" (भव्य पूर्वी महल) या "कस्र उल-मुइजी" (मुइज का महल) था। उसमें दस प्रवेश-द्वार थे। उन पर चुनी हुई सैनिक टुकड़ी पहरेदारी करती थी जिसमें पाँच सौ पैदल सैनिक तथा उतने ही घुड़सवार थे। महल में तीस हजार व्यक्तियों के रहने का स्थान था जिनमें से आधे नौकर-चाकर और शेष खलीफा के अंग-रक्षक तथा उनके परिवार के लोग थे। महल में खलीफा के अपने बीस हजार कमरे थे जिनमें से सभी ईंटों से बने और लगभग पाँच मंजिलों वाले थे। इतनी संख्या में दूकानें थीं जो विक्रेताओं को दो से दस दीनार तक के मासिक किराये पर दी जाती थीं।

खलीफा के महल का सम्बन्ध जमीन के भीतर वनाये गए एक रास्ते से एक दूसरे महल तक था। यह दूसरा भव्य महल नील नदी के पश्चिम भाग पर वनाया गया था और उसे "कस्र-उल-गरवी" (पश्चिमी महल) या "कस्र-उल-बहर" (सामुद्रिक महल) कहा जाता था। खलीफा के और अन्य महल और वंगले थे जो नगर में या आंचलिक क्षेत्रों में थे और उस समय के कलाकारों ने शानदार ढंग से

भलीभाँति सजाया था। अमीरों (प्रान्तों के मुख्य मन्त्रियों) के महल सज-धज और शान-ओ-शौकत में सम्राटों (खलीफाओं) के महलों जैसे ही थे यद्यपि वे अपेक्षाकृत छोटे आकार के थे। उस समय के अमीर और समृद्ध लोगों के भवनों के चारों ओर सुन्दर बागीचे लगाये गए थे। इनसे पन्द्रहवीं और सोलहवीं ईस्वी सदी में आये यूरोपीय यात्री काफी प्रभावित हुए थे। इनके अलावा बड़ी-बड़ी मस्जिदें, महाविद्यालय, अस्पताल और कारवाँ-सराय भी थीं। फातिमिदों के शासन में हुसैनिया नामक एक भवन भी बनाया गया था जिसमें चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के, कर्बला युद्ध में शहीद द्वितीय पुत्र हुसैन की, शहादत के दिन हर वर्ष शोक-सभा की जाती थी। काहिरा नगर के हर भाग में पुरुषों और महिलाओं के लिए बड़ी संख्या में बड़े सुन्दर ढंग से बनाये गये सार्वजनिक स्नान-गृह थे। स्त्रियों के लिए बनाये गये स्नान-गृह अपनी साज-सज्जा के कारण पुरुषों के स्नान-गृह से अलग पहचाने जा सकते थे। बाजारों में करीब बीस हजार दूकानें थीं जो बड़ी ही भव्य और दुनिया भर में उत्पादित सामानों से भरी रहती थीं। अलावे, काहिरा नगर के चारों ओर उसे घेरे हुए मजबूत दीवार थी जिसमें भीतर घुसने के लिए फाटक लगाये गये थे।

काहिरा की सड़कों पर रात के समय रोशनी की अच्छी व्यवस्था की गई थी। आम लोगों में ईमानदारी थी और वे आपस में अच्छा व्यवहार रखते थे। जो दूकानदार अधिकतम मूल्य से ज्यादा राशि में चीजें बेचता था उसे ऊँट पर चढ़ा कर सड़कों पर घुमाया जाता था तथा अपने कुकृत्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता था। चोरी-चमारी नहीं होती थी और यहाँ तक गहनों और धन का विनिमय करने वालों की दूकानें भी रात में खुली छोड़ दी जाती थीं। पुराने नगर अल-फुस्तात में सात बड़ी मस्जिदें थीं और काहिरा में आठ। फातिमिदों का शासन अढ़ाई सौ वर्षों तक चला। इस अवधि में शांति और समृद्धि पूरी तरह विराजती थी। इस्माइली धर्म-प्रचारक यात्री नासिर उत्साहपूर्वक लिखता है—"काहिरा में जितना अधिक धन था उसे आँका नहीं जा सकता। मैंने ऐसी समृद्धि और कहीं नहीं देखी।"

सभी खलीफाओं में मुस्तंसीर सबसे ज्यादा अमीर था जिसने अपने पूर्ववर्त्ती खलीफाओं से विरासत के रूप में लाखों का धन पाया था। उसने अपने महल में काबा जैसा एक मंडप बनवाया था जहाँ बैठ कर वह सितार और वीणा के सुमधुर संगीत और खूबसूरत गायक-गायिकाओं के गीतों के सुरम्य वातावरण में शराब पिया करता था। पर इतने धन, मणि-माणिक्य आदि से परिपूर्ण रहने के बावजूद जब मिस्र में सन् १०७० में दुर्भिक्ष हुआ तो उसने अपने बच्चों को बगदाद भेज दिया ताकि वे काहिरा में भूखे न मर जायें।

प्रशासन

फातिमिद शासनावधि में प्रशासन और सरकार के क्षेत्र में भी एक नया युग आरंभ हुआ। इस राजवंश के अनेक खलीफा महान योद्धा और सुदक्ष प्रशासक थे। सबसे प्रतापी फातिमिद खलीफा अल-मुइज और उसके उत्तराधिकारी अल-अजीज ने देश में एक ठोस प्रशासन की नींव डाली जिसमें उनकी सहायता, विजीर के नेतृत्व में, यहूदी और ईसाई प्रशासकों ने की। फातिमिद प्रशासन-व्यवस्था बहुत कुछ अब्बासिद या पुरानी ईरानी प्रशासन-व्यवस्था के ही ढांचे में ढली थी यद्यपि कुछ सरकारी कार्यालयों के नाम भिन्न थे। अब्बासिदों के प्रशासन से फातिमिदो के प्रशासन में यह फर्क था कि मिस्र में फौजी सेनापति (अमीर-उल-जुयूस) रहा करता था जो विजीर के अलावा सेनापति भी होता था। राजवंश के कमजोर खलीफाओं के शासन में यह विजीर-सेनापति सम्राट के व्यक्तित्व पर पूरी तरह हावी रहता था और उसे एक प्रकार से अप्रभावकर बना देता था।

मिस्री इतिहास-लेखक अल-क्लकाशंदी (१४१८) वे सरकारी पदों के लिए उम्मीदवारों के उपयोग के लिए जो पुस्तिका लिखी है उसके अनुसार सेना में तीन प्रमुख कोटियाँ थीं—(१) **अमीर** जिनके अन्तर्गत सर्वोच्च पदाधिकारी और खलीफा के साथ रहने वाले तलवार-धारी अंगरक्षक आते थे, (२) सुरक्षा और पहरेदारी के लिए नियुक्त पदाधिकारी (एकवचन **उस्ताद**) और हिजड़े और (३) विभिन्न सैन्य-टुकड़ियाँ, जिनके नाम खलीफा, विजीर या राष्ट्रीयता के आधार पर रखे जाते थे जैसे कि **हफीजिया, जुयूशिया, सूडानिया** आदि। राज्य के विजीर विभिन्न कोटियों में बँटे हुए थे जिनमें सर्वोच्च "तलवार चलाने में निपुण" थे जो फौज और युद्ध कार्यालय का पर्यवेक्षण करते थे। इनके अलावा द्वार के मालिक यानी उच्च राज्य प्रबंधक होते थे जो विदेशी राजदूतों को खलीफा के समक्ष प्रस्तुत करते थे। "कलम चलाने में दक्ष" पदाधिकारियों में काजी आते थे। काजी मुद्रा ढालने के कार्यालय के प्रधान होते थे। इसी कोटि में बाजारों के निरीक्षक का पद (**मुहतासिब**) आता था जो बाजार में माप-तौल पर निगरानी रखता था। इसी कोटि में राज्य कोषाध्यक्ष भी था जो **बैत अल-माल** (राज्य कोष) की अध्यक्षता करता था। इस कोटि में सबसे निचला स्थान "कलम के व्यक्तियों" का था जिनके अन्तर्गत भारी संख्या में असैनिक जैसे कि विभिन्न सरकारी विभागों के लिपिक और सचिव आते थे। साम्राज्य के आंतरिक प्रशासन का ढाँचा खलीफा अल-मुइज और अल-अजीज द्वारा तैयार किया गया था। इसमें नव-इस्लाम धर्मान्तरित यहूदी विजीर याकूब इब्न किल्लिस (सन् ९९१) का भी योगदान था। किल्लिस बगदाद-निवासी था और उसने काफूर के दरबार में विजीर नियुक्त होकर अपना कार्य-जीवन शुरु किया था। उसी

के सुदक्ष प्रशासन में प्रारंभिक खलीफाओं के अधीन नील नदी की घाटी में आर्थिक समृद्धि की नींव पड़ी।

वैज्ञानिक एवं साहित्यिक प्रगति

बगदाद में अब्बासिदों और स्पेन में उमैय्यदों ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जैसा योगदान किया, वैसा योगदान फातिमिदों ने अपने साम्राज्य में नहीं किया। उनके ईरानी पूर्वजों से जैसी उम्मीद की गई थी वैसी वैज्ञानिक और साहित्यिक प्रगति फातिमिदों द्वारा न की गई। इस अवधि में न कोई विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न वैज्ञानिक हुआ और न ही लेखक। पर विद्वानों, कवियों और धार्मिक व्यक्तियों को उपहार देने के मामले में प्रायः सभी खलीफा और विजीर उदार थे। विजीर इब्न किल्लिस फातिमिद मिस्र में विद्वता का सबसे बड़ा संरक्षक था। उसने एक अकादमी स्थापित की और उस पर प्रति मास एक हजार दीनार खर्च करता था। उसी के शासन-काल में प्रसिद्ध चिकित्सक मुहम्मद अल-तमीमी हुआ। जेरुसलेम में जनमा यह चिकित्सक प्रायः सन् ९७० में मिस्र चला आया। उसके पहले इख्शीदिद वंश के शासकों के अधीन इतिहासकार मुहम्मद इब्न यूसुफ अलकिन्दी हुआ जिसकी मृत्यु अल-फुस्तात में सन् ९६१ में हुई। बाद में एक और इतिहासकार इब्न सलामा अल-कुदाई हुआ जिसकी मृत्यु अल-फुस्तात में सन् १०६२ में हुई।

अल-अजहर अकादमी

प्रारंभिक फातिमिद खलीफा सुसंस्कृत व्यक्ति थे। बगदाद और कारडोवा के खलीफाओं की भाँति फातिमिद खलीफा अल-अजीज स्वयं भी एक कवि और विद्वता-प्रेमी था। उसी ने अजहर मस्जिद को एक अकादमी में परिणत कर दिया। अल-अजहर जो इस समय 'अज-अजहर विश्वविद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध है, मिस्र के फातिमिदों के अधीन एक मस्जिद के मदरसा के रूप में शुरू किया गया था। इस्माइली (फातिमिद) साम्राज्य की समाप्ति के बाद उसका अधिग्रहण सुन्नियों ने किया और शूफियाई विचारधारा के अनुसार विधि (कानून) शास्त्र का अध्ययन शुरू किया गया। अन्य सुन्नी विचारधाराओं के कानून का अध्यापन यहाँ बाद में शुरू किया गया पर दसवीं सदी अर्थात फातिमिदों के काल में यह मिस्र के अन्य उच्चतर विद्या-केन्द्रों में से ही एक और उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध था। इसकी प्रसिद्धि से इसकी प्रति-द्वन्द्वी संस्थाएँ समाप्त हो गईं। आधुनिक समय में धार्मिक शिक्षा के शूफी केन्द्रों की अवनति के कारण यह संस्था न केवल मिस्र बल्कि समूचे मुस्लिम जगत में धार्मिक शिक्षा की यह सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण संस्था बन गई है।

इस संस्था के प्रशासन के प्रभारी पर्यवेक्षक के स्थान पर विद्वान प्रधान की नियुक्ति हुई जिसे "अल-अजहर का शेख" कहा जाता था। अब इसके प्रबंधन का भार विद्वानों की एक मंडली को सौंपा गया है जिसे "महान विद्वानों की समिति"

कहा जाता था। १९वीं और वर्तमान शताब्दियों में शेख मुहम्मद अब्दस द्वारा उठाये गये कदमों के फलस्वरूप विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम रूप और विषय-वस्तु दोनों ही मामलों में संशोधित किया गया तथा उसमें मानवशास्त्र एवं समाज-विज्ञान की अनेक आधुनिक ज्ञान-शाखाओं को शामिल किया गया। साथ ही इसके माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में प्रकृति विज्ञान के अनेक विषय शामिल कर लिए गए हैं।

विज्ञान-भवन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रारंभिक फातिमिद खलीफा अन्य राजवंशों के प्राचीन खलीफाओं की भाँति विद्वता एवं विज्ञान के महान संरक्षक थे। फातिमिदों ने दार-अल-हिकमा या दार-अल-इल्म (बौद्धिकता या विज्ञान का भवन) स्थापित किया। इसे सन् १००५ में शिया पंथ के अतिवादी सिद्धांतों के शिक्षण और प्रचार के लिए खलीफा अल-हकीम ने स्थापित किया था। इस संबंध में अल-हकीम ने एक निधि अलग रख दी जिसकी वार्षिक आय (२५७ दीनार) का उपयोग पांडुलिपियों की नकल, और पुस्तकों की मरम्मत करने तथा अन्य संधारण मदों में किया जाता था। यह भवन शाही महल से सम्बद्ध था। भवन में एक पुस्तकालय तथा विद्वानों की सभाओं के लिए अनेक कक्ष थे। इसके पाठ्यक्रम में विशिष्ट इस्लामी विषयों के अलावे, खगोल शास्त्र तथा औषध-शास्त्र का अध्ययन भी शामिल किया गया। इसे इसकी इस्लाम-विरोधी शिक्षा के लिए विजीर अल-मालिक अफदल ने सन् १११९ में बंद करा दिया। पर, फिर भी, यह भवन अय्यूबिदों के अभ्युदय तक कायम रहा। अलावे फातिमिद खलीफा अक्सर यहाँ शास्त्रार्थ (वाद-विवाद) आयोजित करते थे जिनमें विभिन्न अकादमियों के प्राध्यापक भाग लेते थे। विभिन्न विषयों—तर्कशास्त्र, गणित, विधि-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र के प्राध्यापकगण अपने विषयों से सम्बद्ध ज्ञान-शाखाओं में बँटे होते थे। वे अपने उपाधि-सूचक वस्त्र (खाला) पहने होते थे।[७]

खगोल-विज्ञान एवं प्रकाश-विज्ञान—इब्न अल हैथम

फातिमिद खलीफा अल-हकीम स्वयं ज्योतिष गणना में दिलचस्पी रखता था। उसने अल-मुकत्तम में एक वेधशाला बनवाई थी जहाँ वह धूसर रंग के गदहे पर सवार हो कर प्रति दिन भोर के पहले जाया करता था। इसके अलावा अल-हकीम के दरबार में अली इब्न-यूनूस था जो मिस्र में जनमा सबसे बड़ा खगोल-शास्त्री था। अलावे, उसके दरबार में अबू-अली अल हसन इब्न अल-हैथम भी था जो प्रमुख

७. इंगलैंड के विश्वविद्यालयों में गाउन अभी तक अरबी खाला के ही मूल रूप में होते हैं।

भौतिक-शास्त्री एवं प्रकाश-विज्ञान का छात्र था। इब्न यूनुस की खगोल शास्त्रीय तालिका, जो खगोल विद्या के संरक्षक तत्कालीन खलीफा (अल-हकीम) के नाम पर थे उस समय मूल पर्यवेक्षणों के आधार पर बनाई गई तालिकाओं को शुद्ध करने के लिए बनाई गई थी। इब्न अल-हैथम (लगभग सन् १०३९) का जन्म बसरा में प्रायः सन् ९६५ में हुआ था। उसने अल-हकीम के निदेश पर नील नदी के पानी के अति-बहाव को नियंत्रित करने की कोशिश की। कहा जाता है कि उसने करीब एक सौ पुस्तकें लिखीं जो गणित, खगोल, विज्ञान, दर्शन एवं चिकित्सा-शास्त्र पर थीं। इनमें प्रमुख पुस्तक, जिसके लिए वह प्रसिद्ध था, दृष्टि प्रकाश-विज्ञान पर लिखित **'किताब अल मुनाजिर'** है। यह पुस्तक अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। इसका अनुवाद लैटिन भाषा में क्रेमोना के जेरार्ड नामक विद्वान के काल में अथवा उसके कुछ पहले सन् १५७२ में किया गया। उसकी प्रमुख पुस्तक दृष्टि प्रकाश विज्ञान पर थी जिसने यूनानी विद्वान युक्लिड के तत्संबंधी सिद्धांत को निष्प्रभावी और गलत सिद्ध कर दिया। यूरोप में भी इब्न अल-हैथम के तत्संबंधी सिद्धांत की प्रमुखता और महत्व को स्वीकार किया गया।

इस संबंध में अल-हैथम ने यह आधारभूत सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि आँखों से निकलने वाली किरणों के प्रभाव के कारण ही आदमी देख पाता है। अपने तर्क के पक्ष में उसने अनेक अनुभव दिये जैसे कि दृष्टि से उत्पन्न होने वाले प्रतिबिम्ब और तेज प्रकाश में घूरते रहने के कारण आँखों में होने वाला दर्द आदि। ये मन्तव्य अपने में नये नहीं थे पर दृष्टि-प्रकाश विज्ञान (आप्टिक्स) पुस्तक में इस संबंध में प्रयोगात्मक अनुभव दिए गए हैं।

खलीफा अल हकीम के समय दृष्टि-विज्ञान के संबंध में जो एक और पुस्तक निकली वह अम्मार इब्न-अली अल-मौसिली द्वारा लिखित **अल-मुंतखब फी इलाज अल-ऐन** (दृष्टि चिकित्सा पर गुप्त सामग्री) है। इसमें लेखक ने अपने एक और समसामयिक दृष्टि चिकित्सा संबंधी लेखक इब्न ईशा की कृति **'तदकिरा'** से कहीं ज्यादा मौलिकता प्रदर्शित की है। अपनी सम्पूर्णता के कारण यह पुस्तक दृष्टि-चिकित्सा पर एक मानक कृति हो गई है।

शाही पुस्तकालय

खलीफा अल अजीज ने जो शाही पुस्तकालय स्थापित किया, कहा जाता है कि उसमें दो लाख पुस्तकें थीं। उसमें खूबसूरत खुशनवीसी लिखे गए कुरान की २४०० प्रतियाँ थीं। सन् १०६८ में जो लूट हुई उसमें एक प्रेक्षक ने देखा कि पच्चीस ऊँटों पर लाद कर पुस्तकें ले जाई जा रही हैं। कहा जाता कि लूट करने वाले तुर्कों में अफसरों के घर में रोशनी के लिए मूल्यवान पांडुलिपियाँ जलाई गई

तथा बंधी हुई पुस्तकों के खूबसूरत मोटे दफ्ते गुलामों के जूतों की मरम्मत में प्रयुक्त हुए। जब अल-अजीज के काल के एक शताब्दी बाद धर्म-योद्धा सलाह-अल-दीन ने फातिमिदों को पराजित कर शाही महल में प्रवेश किया तो भी पुस्तकालय में एक लाख से अधिक पुस्तकें थीं। उसने अपने आदमियों के बीच उनमें से अनेक पुस्तकें लूट के अन्य सामानों के साथ बाँट दिये।

कला एवं स्थापत्य-कार्य

यद्यपि विज्ञान और साहित्य के विकास के लिए फातिमिद युग अनुकूल न था पर उस समय कला और वास्तु-कला (भवन-निर्माण) की दृष्टि से इस युग में महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। फातिमिदों के भवन-निर्माण कला का सबसे पुराना उपलब्ध अवशिष्ट अजहर मस्जिद है जिसे सेनापति जौहर ने बनवाया था। इसे बाद में फिर से बनवाया गया, पर इसके मध्य में मस्जिद का केन्द्रीय भाग अपने मूल रूप में अभी भी सुरक्षित है। इसके नुकीले मेहराब इस पर ईरानी प्रभाव का स्पष्ट संकेत देते हैं। उसकी गुम्बदें भारी चौकोर आकार की हैं। इसके बाद दूसरी सबसे पुरानी मस्जिद खलीफा अल-हकीम द्वारा बनवाई गई है। इसका निर्माण उसके पिता ने सन् ९९० में शुरू कराया था और सन् १०१२ में यह पूरी हो सकी। इसका ढाँचा भी अल-अजहर की मस्जिद के ढाँचे जैसा ही है। इसमें ईंटों से बनी एक गुम्बद है जो प्रार्थना करने के स्थान के करीब अष्टभुजाकार ढोलक जैसे निर्माण पर आधारित है। खलीफा अल-हकीम की मस्जिद के, जिसका अब ध्वंसावशेष मात्र ही बचा है, निर्माण में पत्थर प्रयुक्त किया गया था। पर चूँकि इसकी गुम्बद चौकोर नहीं है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इसके निर्माण के लिए सीरिया से नहीं बल्कि उत्तरी ईरान से कारीगर बुलाये गये होंगे। फातिमिद युग के परवर्ती काल में ही ईंटों के बजाय पत्थर उपयोग में लाया जाने लगा जो अल-अकमार की मस्जिद के अग्रभाग से स्पष्ट है जिसका निर्माण सन् ११२५ में हुआ था।

फातिमिद भवन-निर्माण-कला की गरिमा और भव्यता के प्रमाण स्वरूप बड़े-बड़े द्वार और फाटक हैं। इनमें से तीन—बब जाविला, बब अल नस और बब अल-फुतूह अभी भी वर्तमान हैं। काहिरा में ये वृहदाकार द्वार, जो बैजेन्टाइन ढाँचे पर बनाये गए थे, फातिमिद मिस्र के सर्वाधिक स्थायी अवशेष से हैं।

सजावट और उद्योग संबंधी कला

फातिमिद शासन-काल लकड़ी पर खोद कर बनाये गए चित्रों की कला के लिए भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इनमें इस प्रकार के चित्र दिखलाए जाते हैं जैसे कि हिंस्र पशुओं द्वारा हिरण पर हमला किया जा रहा है, गरुड़ या उकाब

पक्षी खरगोश पकड़े हुए है, दो पक्षी आपस में लड़ रहे हैं। ये चित्र काहिरा में अरब संग्रहालय में अब भी सुरक्षित हैं। वस्त्र-उद्योग भी इस अवधि में विकसित हुई। बुनाई प्राचीन मिस्र का एक राष्ट्रीय उद्योग था। इस तरह अधिकांशतः ईरान का प्रभाव था। फातिमिद काल में बनाये गए वस्त्रों में हमें परम्परागत या अग्रदूत की-सी मुद्रा में खड़े पशुओं के चित्र मिलते हैं। मिस्री नगरों जैसे कि दाविक, दिमयात और टिन्निस में कपड़े बनते थे जिनको उनके नामों पर दाविकी, दिमयाती और टिन्नसी कहते थे। अंग्रेजी के कवि चौसर के समय हमें जिस फुस्तियन वस्त्र का जिक्र मिलता है वह मिस्र के अल-फुस्तान नगर से आता था जैसा कि वस्त्र के नाम से ही स्पष्ट है।

फातिमिदों के शासन-काल में मृत्तिका (मिट्टी) शिल्प अन्य कला-शिल्पों की भाँति ईरानी-शिल्प के अनुकरण पर था। जैसा कि वस्त्रों के मामलों में पाया जाता है, मृत्तिका-शिल्प की भाँति वस्तुओं पर भी जानवरों के चित्र बहुत स्पष्ट रूप से अंकित रहते थे। अल-मकरिजी ने संग्रहणीय फातिमिद चीजों की सूची में मृत्तिका एवं धातु-संबंधी कलाओं के जिनमें रौगन किये हुए चीनी मिट्टी के बर्त्तनों की निर्माण-कला भी शामिल है, नमूने शामिल किये गए हैं। पूर्वी अरब में चीनी सामानों के प्रथम अभिलिखित नमूनों में से यह एक नमूना है। नासिर-ए-खुसरो कहता है कि—"मिस्र में मिट्टी के बने बर्त्तन इतने खूबसूरत और पारदर्शक होते थे कि कोई भी उनमें हाथ का अक्श देख सकता था।"

सबसे प्रारंभिक किताब मढ़ने की इस्लामी कला का आरंभ मिस्र से ही हुआ था और उसका काल आठवीं या नवीं ईस्वी सदी है। मिस्री लोग खूबसूरत सजावट और किताब मढ़ने की कला के लिए प्रसिद्ध थे। इस संबंध में मिस्री कला के विकास के बाद चमड़े का काम कर रहे मुस्लिम कारीगरों के बीच मिस्री छाप और मुहर लगाने की कला सबसे अधिक सामान्य तकनीक हो गई।

इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से फातिमिद राजवंश का अंत उस राजवंश द्वारा किया गया जिससे ही उसका आरंभ हुआ था, पर विद्वता और विज्ञान के प्रति फातिमिदों का प्रेम मिस्र को तब तक प्रोज्ज्वल रखे रहा जबकि बाद में आने वाले मामलुकों की अशांति और अराजकता के दबाव में राजवंश की समाप्ति न हो गई। दूसरी ओर उसकी गूढ़ कला शताब्दियों के बाद भी उन देशों और समुदायों में अभिव्यक्ति पाती रही, भले ही वे देश और समुदाय, अन्तर्भावना और प्रतिभा की दृष्टि से, एक दूसरे से अत्यधिक दूर एवं भिन्न हों।

अध्याय २१

इस्लाम में महिलाओं की स्थिति

यद्यपि मुस्लिम कानून के अधीन स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती, यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि हजरत मुहम्मद ने अरब में महिलाओं की स्थिति में विस्तृत और सुस्पष्ट सुधार किये। हजरत मुहम्मद के पूर्व अरब प्रायद्वीप में रहने वाली महिलाओं को अत्यधिक अपमानजनक स्थितियों में रहना पड़ता था। इस्लाम-पूर्व मूर्त्तिपूजक अरबों में स्त्री महज एक चल-सम्पत्ति-सी थी। वह अपने पति या पिता की सम्पत्ति का अभिन्न अंग जैसी थी। किसी मृत व्यक्ति की विधवायें, उसके पुत्र या पुत्रों को, उस व्यक्ति की सम्पत्ति के किसी अन्य हिस्से की तरह विरासत के रूप में मिलती थीं। इस सिलसिले में पुत्र का अपने पिता की पूर्व-पत्नी से विवाह-संबन्ध भी अक्सर हो जाया करते थे, जिस पर बाद में इस्लाम में प्रतिबन्ध लगा दिया गया और उसे **निकाह-ऊ-मक्त** या घृणित विवाह की संज्ञा दी गई।

इस्लाम-पूर्व अरब महिलाओं के प्रति इतना घृणा-भाव रखते थे और वे अपनी कई बच्चियों को जिन्दा ही गाड़ देते थे। यह भयानक प्रथा कुरैश और कुर्दा जनजातियों में सामान्यतः पाई जाती थी। यद्यपि वे फरिश्तों को अल्लाह की बच्चियाँ कहते थे पर अपनी पुत्रियों को वे (जैसा कि बद्दुओं में अभी भी होता है) जिन्दा ही गाड़ देते थे। खुद कुरान में इस भीषण प्रथा का उल्लेख है। इस सम्बन्ध में कुरान में कहा गया है कि—"इस प्रकार मूर्त्तिपूजकों के कई सम्बन्धियों ने उनके लिए इस बात को उचित ठहरा दिया कि वे अपने बच्चों को जिन्दा ही गाड़ दें"। और जब उनमें से किसी को अपने यहाँ बच्ची होने की खबर मिलती थी तो उसका चेहरा काला और स्याह पड़ जाता था। तब वह, यह "बुरी खबर" सुनते ही, लोगों से अपना चेहरा छिपाये चलता था। उसके सामने यह दुविधा खड़ी होती थी कि—"क्या वह अपमानित होकर पुत्री को अपने पास ही रखे अथवा उसे मिट्टी में गाड़ दे।" (कुरान, सुरा, १६, पृष्ठ ६०-६१)

कहा जाता है कि द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उस्मान ने, जब वह इस्लाम धर्म में दीक्षित न हुए थे अपनी अज्ञानावस्था में अपनी छोटी बच्ची को जिन्दा ही

दफनाने के बाद अपनी दाढ़ी से कब्र की मिट्टी झाड़ते हुए आंसू गिराये थे। निम्नलिखित पुरानी अरब कहावतें इस्लाम-पूर्व अरब में महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डालती हैं :—

"एक आदमी अपनी पत्नियों की चर्चा के अलावा और सब कुछ सह सकता है।" "महिलाएँ शैतान की चाबुकें हैं।" "न किसी राजा, न घोड़े और न ही औरत पर विश्वास करो।" आदि।

इस्लाम के पूर्व बच्चियों की हत्या

इस्लाम ने अपने इतिहास में अनिवार्य रूप से अपने अरबी मूल का परिचय दिया है, पर जहाँ तक महिलाओं और बच्चे-बच्चियों की स्थिति है, हजरत मुहम्मद ने अपने समुदाय में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन किये। प्राचीन अरब की कई जन-जातियों में मातृसत्तात्मक शासन था जिसमें बहुपतिवाद की प्रथा थी। नियमतः इस तरह के समाज में ऐसा प्रतीत होता है कि हजरत मुहम्मद के आगमन के बाद, अनेक सुधार किये गये। समाज में महिला सदस्यों की संख्या में वृद्धि पर कृत्रिम प्रतिबन्ध लगाये जाते होंगे और अनचाही बच्चियों को उनके जन्म के समय ही गाड़ दिया जाता होगा। यह पता नहीं चलता कि इस तरह जन्म लेने के समय ही गाड़ी जाने वाली बच्चियों का अनुपात क्या था पर पवित्र कुरान से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रथा के पीछे उद्देश्य क्या था। कुरान में इस प्रथा के कायम रहने पर बिना किसी शर्त्त निषेध लगाया गया। पर फिर भी हजरत मुहम्मद के समय महिलाओं की स्थिति समाज में काफी महत्त्वपूर्ण थी।

साथ ही यह असंभव प्रतीत नहीं होता कि मूलतः बहुत ही प्राचीन समय में, बच्चियों को मारे जाने की प्रथा के पीछे बलिदान की भावना काम कर रही हो। कहीं-कहीं यह भी कहा गया है कि इसके पीछे मूल कारण गरीबी हो और गरीब तबके के लोग महसूस करते हों कि वे अपने बच्चों का लालन-पालन न कर सकेंगे। यह भी संभव हो कि ऊँचे वर्गों के माता-पिता अपने ही रक्त-मांस से उपजी बच्चियों की किसी अजनबी के साथ शादी करने में बेइज्जती समझते हों। उस समय के समाज में पराजित शत्रु की बच्चियों को लूट के सामान की भांति ले जाने की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। इस लूट कर ले जाई जाने वाली बच्चियों को विजयी पक्ष अपनी पत्नियों या रखेलियों के समान रखता हो।[१] इस्लाम-पूर्व अरब में पहले यह उक्ति चली आ रही थी कि—"एक कब्र ही सबसे अच्छा दूल्हा है और इज्जत का सवाल है कि लड़कियों को गाड़ दिया जाय।"

१. डब्ल्यू० रावर्टसन स्मिथ—किंगशिप ऐंड मैरेज इन अर्ली अरेबिया, (कैम्ब्रिज, १८८५), पृ० २७९।

इस दूषित प्रथा के कारण चाहे जो भी हों, हजरत मुहम्मद ने कुरान के रहस्योद्घाटनों में एकाधिक बार इस प्रथा की आलोचना की है और ऐसा करने पर रोक लगाई है।[२] इसका परिणाम यह हुआ कि प्रारंभिक इस्लाम में यह प्रथा समाप्त हो गई। थोड़े से ही समय में इस प्रथा के प्रत्यक्ष कारणों में से अनेक को समाप्त करने में इस्लाम ने सफलता पाई। पहले गरीबी एक पाप समझी जाती थी। हजरत मुहम्मद ने भीख देने की परिपाटी को अनिवार्य और प्रशंसनीय बना कर, कुछ हद तक, गरीबी के कलंक को समाप्त करने में सफलता पायी। साथ ही इस सिद्धान्त से कि "इस्लाम में कोई बंदी नहीं है," अरबों को कैदी बना कर ले जाने की प्रथा भी समाप्त कर दी और इस प्रकार किसी पर विजय करके उसकी बच्चियों से विवाह करने की प्रथा भी धीरे-धीरे समाप्त हो गई। यह प्रथा खुद हजरत मुहम्मद के समय भी व्यापक रूप से प्रचलित थी। यों यह भी संभव है कि इस प्रकार विजय करके ले जाई जाने वाली महिलाओं के साथ सम्मान और आदर का बर्ताव किया जाता हो, फिर भी औरतों को विजय करके ले जाने की प्रथा से उनकी स्थिति चल-सम्पत्ति की-सी हो गई थी। विजय प्राप्त करके ले जाई जाने वाली औरतें और विजयी से उत्पन्न होने वाली उनकी सन्तान उस जनजाति के सदस्य हो जाते थे। विजयी व्यक्ति ही विजित पक्ष की ले जाई जाने वाली औरतों पर पूरा अधिकार रखता था। उस पर बंदिश सिर्फ यह रहती थी कि वह उन्हें खुले बाजार में बेच न सकता था, पर उसके बावजूद महिलाओं की स्थिति चल-सम्पत्ति से बेहतर न थी।

कुरान और हदीस में महिलाओं की स्थिति

यूरोपीय लेखक अक्सर यह आरोप लगाते हैं कि कुरान के अनुसार स्त्रियों की अपनी आत्मा न होती थी। पर यह आरोप तथ्यों के बिल्कुल विपरीत है। इस विषय में कुरान में जो कुछ कहा गया है, वह निम्न उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा—

"निश्चय ही, जो पुरुष आत्म-समर्पण करते और जो महिलाएँ आत्म-समर्पण करती हैं, और जो पुरुष विश्वास करते हैं और आज्ञाकारी पुरुष और आज्ञाकारी

---

२. "वे व्यक्ति समाप्त हो गये माने जाने चाहिए जो बिना किसी कारण, बेवकूफी से अपने बच्चों को मार डालते हैं और इस प्रकार अल्लाह ने उन्हें जो दिया है उससे इन्कार करते हैं। वे अल्लाह के खिलाफ झूठा काम करते हैं। वे बहक गये हैं और वे युक्तियुक्त मार्ग का अनुसरण नहीं करते।" (पवित्र कुरान, ६, १४१, पृ० ३१८)। अलावे यह भी कि—"तुम गरीबी के कारण अपने बच्चों को मार नहीं सकते। हम तुम्हारे और उनके लालन-पालन की व्यवस्था करेंगे" (पवित्र कुरान, ६, १५१, पृ० ३२१)।

महिलायें और सच्चे पुरुष और सच्ची महिलाएँ और नम्र पुरुष तथा नम्र महिलाएँ और (गरीबों को) भिक्षा देने वाले, पुरुष और भिक्षा देने वाली महिलाएँ और उपवास रखने वाले पुरुष और उपवास रखने वाली महिलाएँ और अपने शरीर के गुप्त अंगों को अच्छी तरह कपड़े से ढंक कर रखने वाले पुरुष और महिलाएँ और अल्लाह को याद करने वाले पुरुष और महिलाएँ, उन लोगों के लिए अल्लाह ने क्षमा करने और भारी पुरस्कार देने की व्यवस्था कर रखी है।"[3]

"(धर्म में) विश्वास करने वाली महिलाओं से कह दो कि वे अपने कार्य-कलाप में संयम बरतें और अपने बाहरी आभूषणों के अलावा अन्य आभूषणों का प्रदर्शन न करें और वे अपने वक्ष-स्थल पर परदा रखें और अपने पतियों और पिताओं या पतियों के पिताओं या अपने पुत्रों या अपने पतियों के पुत्रों या अपने भाइयों या अपने भाइयों के पुत्रों या अपनी बहनों के पुत्रों या उनकी पत्नियों या अपने दासों या अपने नौकरों के, जिनमें यौन-शक्ति नहीं है और न ही औरतों के प्रति आकर्षण, या अपने बच्चों, जिन्हें यह जानकारी नहीं कि औरतों के छिपा कर रखे गये अंग क्या हैं, के सिवा किसी और के समक्ष अपने आभूषण का प्रदर्शन न करें और अपने पाँव इस तरह जमीन पर न रखें जिससे उनके छिपा कर रखे गये आभूषणों की जानकारी मिल सके और ऐसी सब (धर्म में) विश्वास करने वाली महिलाओ, तुम अल्लाह की ओर प्रार्थना के लिए मुड़ो ताकि तुम सफलता प्राप्त कर सको।"[४]

"ओ पैगम्बर ! जब विश्वास करने वाली महिलाएँ तुम्हारे पास आएँ और प्रतिज्ञा करें कि वे अल्लाह के सिवा और किसी के प्रति निष्ठा न रखेंगी और न चोरी करेंगी और न ही पर-पुरुष के साथ व्यभिचार करेंगी और न अपने बच्चों की हत्या करेंगी और न किसी के प्रति (व्यर्थ में) निन्दा का अभियोग लागेंगी और किसी न्यायपूर्ण कार्य में तुम्हारा विरोध करेंगी तो तुम अपने प्रति उनकी निष्ठा के कारण उन पर दया करो और उनको अल्लाह से, जो क्षमाशील और दयालु हैं, क्षमा करने के लिए कहो।"

पैगम्बर के हदीस में भी महिलाओं की स्थिति के बारे में इस प्रकार कहा गया है :—

"औरत, मकान या घोड़े में बुरा शकुन पाया जाता है।"

३. पवित्र कुरान, अध्याय ३३, ३५, पृ० ८२३।
४. पवित्र कुरान, अध्याय २४, ३१, पृ० ७०१-७०२।

"सबसे अच्छी औरतें वे हैं जो ऊँटों पर चढ़ती हैं और कुरैश वंश की गुणवान औरतें वे हैं जो छोटे बच्चों के प्रति स्नेह रखती हैं और अपने पति की सम्पत्ति के बारे में सावधानी बरतती हैं।"

"यह दुनिया और इसकी सभी चीजें मूल्यवान हैं पर इन सबसे मूल्यवान गुणवती महिला है।"

"अपने कामों के प्रति सावधानी के साथ निगाह रखो और दुनिया से और औरतों से बचो क्योंकि निश्चय ही इजरायल के वंशजों ने जो सबसे पहला पाप किया वह औरतों के कारण ही किया।"

"अल्लाह उन मुसलमानों को पुरस्कार देगा जो औरतों की खूबसूरती देख अपनी आँखें मूंद लेते हैं।"

"क्या तुम पुरुषों के घर उस समय जाते हो जब वे मकान पर नहीं रहते, क्योंकि वैसी स्थिति में शैतान तुम्हारे भीतर उसी तरह चक्कर लगाता है जिस तरह खून नसों में चक्कर लगाता है।" पैगम्बर मुहम्मद से पूछा गया कि "क्या (वैसी हालत में) तुम्हारी नसों में भी (शैतान चक्कर लगाता है)?" पैगम्बर ने जवाब दिया कि—"मेरी नसों में भी, पर अल्लाह ने मुझे शैतान पर विजय हासिल करने की शक्ति दी है और मैं दुष्टता से मुक्त हूँ।"

"दो महिलाओं को एक दूसरे के पास न बैठना चाहिए क्योंकि उनमें से एक दूसरे को अपने पति की शक्ल-सूरत के बारे में बतलाएगी और तुम कह सकते हो कि उसके पति ने दूसरी औरत को अपनी पत्नी की आँखों से देख लिया।"

"किसी औरत को एक बार देख कर उसके बाद फिर न देखो क्योंकि उसे पहली बार देखने को क्षमा किया जा सकता है पर दूसरी बार देखना गैर-कानूनी है।"[५]

विवाह

विवाह इस्लाम में एक बाध्यकारी प्रथा है, इससे उन्हीं लोगों को छूट मिलती है जिन्हें विवाह के लिए अपने योग्य वधू या वर नहीं मिलता या उन्हें जो विवाह के बाद अपनी पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण नहीं कर सकते। विवाह के पक्ष में इस अत्यावश्यक आज्ञा से न केवल समाज से आलस्य समाप्त हुआ बल्कि

५. थामस पैट्रिक ह्युग्स, डिक्शनरी ओव इस्लाम, ओरियन्टल बुक्स रिप्रिन्ट कारपोरेशन, नई दिल्ली, प्रथम भारतीय संस्करण, १९७६, पृ० सं० ६७८-६७९।

नैतिकता का स्तर भी ऊँचा हुआ। इस दृष्टि से भी इस्लाम संसार में एक सौभाग्य-स्वरूप सिद्ध हुआ। (विवाह न करके) ब्रह्मचर्य के व्रत निभाने की प्रतिज्ञा को इस्लाम में वैध स्वीकृति नहीं मिली हुई है। पवित्र कुरान के अनुसार पुरुषों और स्त्रियों की विवाहित अवस्था एक सामान्य अवस्था है, इसलिए उसका आदेश है कि जहाँ तक संभव हो सके, कुंवारों या कुंआरियों को विवाह कर लेना चाहिए। कुरान का यह भी आदेश है कि गुलामों और गुलाम महिलाओं को भी विवाह कर लेना चाहिए। स्पष्ट है कि रखेलिनों या अविवाहित गुलाम महिलाओं को (रखेलिन के रूप में) रखने की प्रथा इस आदेश की दृष्टि से असंगत है।

विवाह के करारनामे के समय होने वाले उत्सव को निकाह कहा जाता है। हर मुसलमान को आदेश दिया जाता है कि वह विवाह अवश्य करे और हजरत मुहम्मद ने विभिन्न अवसरों पर ब्रह्मचर्य की निन्दा की है। हदीस में यों कहा गया है कि—"जब खुदा का बंदा विवाह कर लेता है तो वह अपना आधा धर्म पूरा कर लेता है" और यह भी कि "एक अवसर पर जब हजरत मुहम्मद ने एक आदमी से पूछा कि—"क्या वह विवाहित है" तो उससे नकारात्मक उत्तर पाने पर उन्होंने कहा कि "क्या तुम स्वस्थ और प्रसन्न हो ?" तो "हाँ" में जवाब मिलने पर हजरत मुहम्मद ने कहा "तो तू जरूर शैतान के भाइयों में से है।" बाद में इस्लाम में संन्यास ग्रहण किए हुए मुसलमान भी कुंआरे रहने के बजाय शादी कर लिया करते थे। कहा जाता है कि जब हजरत मुहम्मद के एक साथी उस्मान इब्न मजूम ने विवाह न करके ब्रह्मचर्य जीवन बिताने की इच्छा जाहिर की तो मुहम्मद साहब ने वैसा करने से उसे रोका।

यहाँ विवाह के सम्बन्ध में मुहम्मद साहब की कुछ सूक्तियाँ दी जाती हैं :—

"सबसे अच्छा विवाह वह है जिसमें सबसे कम तकलीफ उठाई जाती है और कम खर्च किया जाता है।"

"विवाह के वे भोज सबसे बुरे भोज हैं जिनमें अमीरों को बुलाया जाता है और गरीबों की उपेक्षा की जाती है। और वह व्यक्ति जो विवाह का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता वह व्यक्ति निश्चय ही खुदा और पैगम्बर की आज्ञा की उपेक्षा करता है।"

"(दो परिवारों और दो जनजातियों के बीच) विवाह-सम्बन्ध किसी भी और बात की तुलना में मित्रता और ज्यादा बढ़ाता है।"

"बहुत-सी औरतें अपने पति को प्यार करती हैं और अनेक बच्चे जनती हैं, उनके बारे में मेरी इच्छा है कि उनकी संख्या ऐसा न करने वाली महिलाओं की संख्या से और ज्यादा बढ़े।"

"जब कोई तुम्हारी बेटी से शादी करना चाहता है और तुम उसके स्वभाव से प्रसन्न हो और उस पर विश्वास करते हो तो तुम उससे अपनी बेटी का विवाह कर दो। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो दुनिया में उपद्रव और झगड़े बढ़ेंगे।"

"किसी महिला का उसके धन, उसकी ख्याति, उसकी सुन्दरता या उसके धर्म के कारण विवाह हो सकता है, ऐसी स्थिति में तुम एक धार्मिक महिला से विवाह करो, क्योंकि यदि तुम किसी गैर-महिला से विवाह करते हो तो तुम्हारे हाथों में सिर्फ कलंक और कालिख लगेगी।"[६]

विवाह की वैधता

मुसलमानों को कुरान अनुमति देता है कि वे चार औरतों तक को ब्याह कर ला सकते हैं। कुरान में कहा गया है कि—"जो औरतें तुम्हें अच्छी लगें उनमें से दो या तीन या चार से तुम विवाह कर सकते हो और यदि तुम्हें डर है कि तुम उन्हें अच्छी तरह नहीं रख सकते तो सिर्फ एक औरत से विवाह करो या उन गुलाम महिलाओं को औरतों की तरह रख लो जिनकी तुम्हें जरूरत है।"

भोगाधिकारपूर्ण या अस्थायी विवाहों के लिए भी कुरान ने अनुमति दी है पर कहा जाता है कि इस कानून को सुन्नियों ने अपने यहाँ समाप्त कर दिया है पर शिया पंथावलंबियों ने इस कानून के लिए अपने यहाँ स्वीकृति दी है और ईरान में इसका पालन किया जाता है। इसे सामान्यतः **मुता** कहा जाता है। पर **मुता** विवाहों के लिए हजरत मुहम्मद ने अनुमति दी है पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सुन्नियों ने अपने यहाँ इसे इस आधार पर स्वीकृति नहीं दी है कि पैगम्बर ने बाद में खैबर में इस पर रोक लगा दी थी।

शिया धर्म-पंथावलंबियों ने **मुता** विवाहों की वैधता को न केवल परम्पराओं (हदीस) के आधार पर बल्कि कुरान के निम्नलिखित पद के आधार पर भी उचित ठहराया। यों इस पद्य का अर्थ **तफसर-ई-मजहरी** की टीका के अनुसार विवादास्पद है।

"तुम्हारे लिए उन विवाहित औरतों से भी विवाह करने पर प्रतिबन्ध है। तुम्हारे अधीन गुलाम के रूप में रह रही विवाहित महिलाओं के साथ तुम विवाह कर सकते हो। यह तुम्हारे लिए खुदा का कानून है।........................"
(कुरान, सुरा, ४;२८)

६. **पवित्र कुरान, अध्याय -४, ।।।, पृ० १९९।**

न्याय की इमामिया विचारधारा के अनुसार मुता या अस्थायी विवाह की ये शर्त्तें हैं—"निकाह की भाँति इसमें भी घोषणा और दोनों पक्षों की स्वीकृति होनी चाहिए। जिस महिला से विवाह करना हो वह या तो मुसलमान हो या ईसाई अथवा यहूदी (और कुछ लोगों के अनुसार) मजूसी (मैंजियन) भी।"[८] उस महिला को पवित्र होना चाहिए और मुता (अस्थायी विवाह) के पूर्व उसके आचरण की अच्छी तरह जाँच कर ली जानी चाहिए क्योंकि यह घृणास्पद है कि उस औरत के साथ मुता किया जाय जो व्यभिचार की आदी है और साथ ही उस औरत के साथ मुता का करारनामा न किया जाय जो बिना बाप की कुआंरी हो। उसके लिए विवाह टूटने के समय दी जाने वाली कुछ दैन रकम निश्चित की जानी चाहिए और यदि यह शर्त्त पूरी न की जाय तो करारनामा गैर-कानूनी हो जाएगा। मुता के लिए एक निश्चित अवधि भी होनी चाहिए। पर वह समयावधि कितनी होनी हो यह विवाह के पक्षों द्वारा निश्चित किया जाना चाहिए, यह अवधि एक साल या एक महीना या केवल एक दिन की भी हो सकती है। सिर्फ अवधि निर्धारित कर दी जानी चाहिए ताकि उसमें वृद्धि या न्यूनता न की जा सके।

मुता या अस्थायी विवाह में तलाक या विवाह की अस्वीकृति मान्य नहीं है पर दोनों ही पक्ष विवाह के समय निर्धारित अवधि के बाद एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

मुस्लिम कानून के अनुसार विवाह एक करारनामा है और उसकी वैधता के लिए आवश्यक नहीं कि उसके साथ कोई धार्मिक समारोह हो। यद्यपि यह नागरिक करारनामा निश्चित रूप से लिखा ही न जाना चाहिए पर इसके लिए विवाह के दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है। इसे हजब और कबूल (घोषणा और स्वीकृति) कहा जाता है। यह दो गवाहों (या एक पुरुष गवाह और दो महिला गवाहो) के समक्ष किया जाना चाहिए। और विवाह टूटने की स्थिति में महिला को देय (दैन) रकम दस दिरहाम से कम न होनी चाहिए जो उस महिला के साथ निकाह के समय तय की गई हो। करारनामे में रह गई किसी छूट से विवाह-करार अवैध नहीं हो जाता, क्योंकि किसी भी स्थिति में विवाह टूटने की स्थिति में स्त्री दस दिरहाम या अधिक के लिए, जिसके बारे में करार हो गया हो, हकदार हो जाती है।

---

८. मैंजियन प्राचीन दार्शनिकों का एक समूह था जो पूर्व में बहुत पहले उदित हुआ। आकाश स्थित तत्त्वों (ग्रहों, उपग्रहों आदि) के अध्ययन में ज्यादा समय बिताते थे (थोमस पैट्रिक ह्यूग्स, दी डिक्शनरी औव इस्लाम, पृ० ३१०)।

उस स्त्री को विवाह करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है जिसने तारुण्यावस्था प्राप्त कर ली हो। इस स्वतंत्रता के अन्तर्गत ये बातें आती हैं—"किसी खास आदमी से विवाह करे या न करे, अपने अभिभावक से स्वतंत्र हो कर निर्णय कर सके, अभिवावक को लड़की की इच्छा के प्रतिकूल या उससे स्वीकृति लिए बगैर उसकी शादी किसी से करने का अधिकार नहीं है। जिस लड़की की शादी बचपन में ही हो चुकी हो उसे इस बात का अधिकार है कि तारुण्यावस्था प्राप्त करने पर वह यदि विवाह-संबंध को, यदि उसे वह पसंद न हो, तोड़ सकती है या यदि उसे पसंद हो तो उस पर अपनी स्वीकृति दे सकती है। जबकि एक वयस्क और दुरुस्त दिमाग वाली लड़की किसी एजेन्ट (वकील) के जरिए विवाहित होने का निर्णय करती है तो वह उस व्यक्ति को, सक्षम गवाहों के समक्ष, अधिकार देती है कि वे उसकी विवाह-संबंधी स्वीकृति वर के पास भेजें। एजेन्ट को, जो बाहरी आदमी भी हो सकता है, उसे देखने की जरूरत नहीं और उसके लिए मात्र यह पर्याप्त है कि, वह प्रकट या अप्रकट रूप से उस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे चुकी है जिसका वाहक बन कर वह जा रहा है। इस्लामी विधि लड़की की नम्रता के प्रति आदर का भाव रखती है। और साथ ही इस बात के लिए अनुमति देती है कि लड़की, बिना शब्दों के माध्यम के अप्रत्यक्ष रूप से विवाह के संबंध में अपनी सहमति दे। यदि लड़की कुआंरी हुई तो प्रस्ताव पर उसकी चुप्पी उसकी स्वीकृति के रूप में ली जाएगी या हँस कर भी अपनी स्वीकृति दे सकती है।

मुस्लिम कानून किसी विधि-संगत विवाह के करारनामे के उपलक्ष में किसी विशेष धार्मिक समारोह या किसी धार्मिक रीति-रिवाज को आवश्यक नहीं मानता। कानूनन, यों पुरुष और महिला विवाह का करारनामा विधितः कर सकते हों उनके लिए यह करारनामा वैध और बाध्यकारी है यदि वह आपसी सहमति से गवाहों के समक्ष हुआ हो। सभी मामलों में मुस्लिम कानून विवाह के पूर्व या बाद धार्मिक समारोह की बात किसी काजी या ऐसा समारोह कराने वाले व्यक्ति के विवेक पर ही पूरी तरह छोड़ देता है और फलतः ऐसे सभी समारोहों में एकरूपता नहीं होती। कुछ काजी केवल विवाह के उपलक्ष में केवल फातिहा (कुरान का प्रथम अध्याय) पढ़ देते हैं या अपना दुरुद या आशीर्वाद दे देते हैं।

निकाह के पूर्व या बाद में सामूहिक रूप से खुशियाँ मनाई जाती हैं जिनका वर्णन पूर्व की यात्रा पर आये यात्रियों ने भिन्न-भिन्न रूप से किया है। पर ऐसी सामूहिक खुशियाँ न तो नागरिक और न ही धार्मिक समारोहों का अंग होती हैं। विवाह-समारोह सामान्यतः तीन दिनों और तीन रातों तक चलते हैं। जब विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है तो भावी दुलहन की माँ, बीच की अवधि में, अपनी

पुत्री को अपने पिता का घर छोड़ने के समय उसे आवश्यक चीजों के साथ विदा करने की तैयारी करती रहती है। ऐसा इसलिए किया जाता है जिससे यह सावित हो सके कि दुल्हन अपनी ससुराल चीजों के उचित प्रवंध के बिना नहीं भेजी गई है। विवाह के प्रथम दिन दुल्हा और दुल्हन दोनों के मकानों में महिलाओं का कक्ष आने वाले लोगों से पूरी तरह घिरा रहता है। इन लोगों में ऊँचे घरानों की पत्नियों और माताओं से लेकर कन्या पक्ष से परिचित और उनके गरीव-से-गरीव संबंधी तक शामिल रहते हैं। वे मेजवान (यानी कन्या पक्ष) के सम्मान में अच्छे-से-अच्छे वस्त्रों और मूल्यवान आभूषणों से सजे होते हैं। दूसरे दिन कन्या-पक्ष का घर शोर-गुल और तैयारियों में व्यस्त रहता है। उस दिन उन वस्तुओं को सरिआया और ठीक से एक स्थान पर रखा जाता है ताकि उन चीजों को बड़ी शान-बान के साथ दुल्हन को मियांदी या मेहंदी के रंग से सजा हुआ भेजा जा सके। तीसरे दिन खूबसूरत बारात आती है और दुल्हन की माँ के कोमल हृदय में अपनी विदा हो रही पुत्री के प्रति स्नेह और प्यार का ज्वार उमड़ उठता है। वह अपनी प्यारी पुत्री को, अनेक घरेलू समस्याओं के बीच, बहुत सान्त्वना के साथ दूसरे (वर पक्ष) के परिवार की सुरक्षा के लिए विदा कर रही है। विवाह-समारोह गवाहों के बीच सम्पन्न होता है, यद्यपि उस समय दुल्हन को कोई पुरुष देख नहीं सकता, यहाँ तक कि दुल्हा भी नहीं। दुल्हा उसे तभी देख सकता है जब वह विधितः उसके साथ विवाह-संबंध में बँध जाता है।

पत्नियों की स्थिति

पत्नियों के साथ व्यवहार के मामले में कुरान का निम्नलिखित पद्य पतियों को इस बात का पूरा अधिकार देता है कि वे अपनी पत्नियों को ठीक रास्ते पर चलने के लिए बाध्य करें—"यदि पत्नी के हठीलेपन से तुम्हें (पति को) डर है तो तुम उसे झिड़क सकते हो और जरूरत होने पर पीट भी सकते हो। पर यदि पत्नी तुम्हारे (पति के) प्रति आज्ञाकारिणी है तो तुम्हें उसे झिड़कना या पीटना न चाहिए।"[१]

हदीस के अनुसार इस संबंध में हजरत मुहम्मद की शिक्षाएँ इस प्रकार दी गई हैं—

"सबसे अधिक सम्पूर्ण रूप से मुसलमान वह है जिसका स्वभाव सवसे अच्छा है और ऐसे लोगों में भी सर्वोत्तम वह है जो अपनी पत्नी के साथ सवसे अच्छा व्यवहार करता है।"

---

१. पवित्र कुरान—अध्याय ४, ३८, पृ० २१३।

"अगर किसी व्यक्ति की दो पत्नियाँ हैं और वह उनके साथ एक जैसा व्यवहार नहीं करता तो मरे हुए सभी लोगों के पुनर्जागरण के दिन उसका आधा शरीर कट कर अलग हो गया रहेगा और वह अपने उसी रूप में पुनर्जाग्रत होगा।"

"यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को बुलाता है तो उसे (पत्नी को) जरूर आना चाहिए भले ही वह उस समय जलते चूल्हे पर ही क्यों न बैठी रहे।"

"तुममें से कोई अपनी पत्नी को चाबुक से न मारे जिस तरह कि गुलाम को मारा जाता है" आदि।

पत्नी की वैधिक स्थिति

जहाँ तक पत्नी की वैधिक स्थिति का संबंध है, सुन्नी कानून और कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ, शिया कानून के अधीन भी पत्नी की वैधिक स्थिति इस प्रकार है—उसकी सहमति विवाह के लिए आवश्यक है। वह पति की चार पत्नियों में से किसी के बारे में अपनी आपत्ति प्रकट नहीं कर सकती। यही नहीं, वह पति की गुलाम महिलाओं के असीम संख्या के बारे में भी आपत्ति प्रकट नहीं कर सकती। वह विवाह-बंदोबस्त या तलाक की दशा में दैन रकम की हकदार है। यह रकम तलाक पाने या पति से अलग होने की स्थिति में उसे अवश्य नकद दी जानी चाहिए। वह यदि चाहे तो उस रकम में पूर्णतः या अंशतः छूट दे सकती है। जब तक दैन रकम अदा नहीं की जाती वह अपने पति के पास आने से इन्कार कर सकती है। उसे किसी समय, सकारण या अकारण, पति तलाक दे सकता है। वह अपने पति की सहमति से उससे तलाक लेने की इच्छा कर सकती या उसके लिए दावा कर सकती है। उसे उसका पति दंडित भी कर सकता है। सुन्नी कानून के अनुसार, अदालत में पति के पक्ष में दी गई उसकी गवाही मान्य न होगी जबकि शिया कानून इससे विपरीत विचार रखता है। उसका पति यह भी मांग कर सकता है कि जन-साधारण से उसे अलग रखा जाय। यदि वह विधवा हो जाती है तो उसे हिदाद या शोक मनाना चाहिए। शोक की यह अवधि चार महीने दस दिनों की होती है। पति की मृत्यु हो जाने पर वह दैन रकम के अलावा पति की सम्पत्ति के एक भाग की भी हकदार हो जाती है, पर दैन रकम के संबंध में उसके दावे को पति की जायदाद के एक भाग के हिस्से पर उसके दावे की तुलना में प्राथमिकता दी जाएगी।

मुस्लिम कानून में इस बात के लिए विशेष व्यवस्था है कि यदि किसी व्यक्ति की दो या उससे अधिक पत्नियाँ हैं तो वह उन सबकी ओर ध्यान देने के लिए अपना समय किस तरह बाँटे। जब इस ओर हजरत मुहम्मद का ध्यान आकर्षित किया गया तो उन्होंने कहा—"जिस व्यक्ति को दो या अधिक पत्नियाँ हैं तो यदि वह उनकी ओर ध्यान देने के लिए अपना समय विभाजित करने के संबंध में किसी

खास एक को अपना सबसे अधिक समय देता है तो दंडस्वरूप अंतिम निर्णय के दिन लकवा मारे जाने के कारण वह सिर्फ एक ओर लेटा रहेगा।" इसलिए ऐसा नियम बना दिया गया कि पहले विवाह की पत्नी और हाल में हुए विवाह की पत्नी, दोनों के ही बीच समय के विभाजन के प्रश्न पर उस व्यक्ति को बराबरी का व्यवहार करना पड़ेगा। इस बात का निर्णय वह स्वयं करेगा कि वह उनमें से एक को एक दिन या उससे अधिक समय दे। जब पति यात्रा पर निकलता है तो उसकी पत्नियाँ यह दावा नहीं कर सकतीं कि वह उन्हें अपने साथ ले जाय। ऐसी स्थिति में वह अपने साथ उस पत्नी को ले जा सकता है जिसे वह बहुत मानता है।

जहाँ तक पत्नी चुनने का सवाल है, अच्छी पत्नी वह मानी जाती है जो बुद्धि, सचरित्रता, सद्विचार, नम्रता, कोमल-हृदयता, अच्छे वर्ताव, पति के प्रति आज्ञाकारिता और गंभीर चाल-चलन से युक्त हो। साथ ही वह बाँझ न हो वरन् काफी बाल-बच्चे पैदा करने वाली हो। स्वतंत्र महिला को गुलाम महिला के मुकाबले तरजीह दी जानी चाहिए। नीचे परिवार में उत्पन्न महिला भी, विवाह के मामले में इसी कारण त्याज्य है। कम उम्र वाली महिला को इस कारण प्राथमिकता मिलनी चाहिए कि वह पति के मार्गदर्शन और आदेशों का अधिक तत्परता के साथ पालन करेगी और यदि वह परिवार, सम्पत्ति और सुन्दरता के गुणों से भी युक्त हो तो उसे पूर्णता का चरम विन्दु माना जाएगा।

बहु-विवाह

मुस्लिम धर्म में पुरुष द्वारा बहु-विवाह को कुरान की स्पष्ट स्वीकृति मिली हुई है। कुरान में इस संबंध में कहा गया है, "पर यदि तुम अपनी मृत पत्नी से उत्पन्न बच्चों के प्रति न्याय नहीं कर सकते तो तुम और औरतों से विवाह करो। तुम दो या तीन या चार औरतों से विवाह कर सकते हो पर यदि तुम्हें भय है कि तुम उन सबके साथ न्याय नहीं कर सकते तो तुम केवल एक औरत से विवाह करो या उनसे जो तुम्हारे अधिकार में (अर्थात् गुलाम-महिलाओं से)।" पर यद्यपि बहु-विवाह करने की अनुमति दिया जाना स्पष्ट और असंदिग्ध है पर इस संबंध में कुरान की सुरा की प्रारंभिक पंक्ति से प्रकट होता है कि विवाहित जीवन में एक विवाह के प्रति मुहम्मद साहब का झुकाव है। वह पंक्ति इस प्रकार है— "ओ, व्यक्तियो! अल्लाह से भय करो जिसने तुमको एक रुह से पैदा किया और उसी से तुम्हारी साथी (पत्नी) को पैदा किया और उसी से अनेक पुरुषों और महिलाओं के जोड़े (पति-पत्नी) उत्पन्न किए।"

हजरत मुहम्मद ने किसी व्यक्ति की विवाहित स्त्रियों की संख्या पर प्रतिबंध लगा कर बहु-विवाह को भी प्रतिबंधित करने की कोशिश की। यहाँ यह उल्लेखनीय

है कि कुरान में जिस स्थान पर चार पत्नियाँ तक रखने की अनुमति दी गई है उसके तुरत बाद जो वाक्य है उससे पूर्ववर्ती प्रसंग का महत्व कम कर दिया गया है और विवाहित स्त्रियों की संख्या अपने सामान्य और विधि-संगत परिमाण में ला दी गई है। पहले के पद में कहा गया है कि—"तुम दो, तीन या चार महिलाओं से विवाह कर सकते हो पर इससे अधिक नहीं।" बाद की पंक्तियों में कहा गया है कि—"पर यदि तुम उनके साथ बराबरी और न्याय के साथ वर्ताव नहीं कर सकते तो तुम केवल एक महिला से विवाह करो।"

बहु-विवाह के पक्ष में अनेक दृष्टिकोणों और कुछ हद तक अन्तर्दृष्टि तथा सच्चाई के साथ तर्क प्रस्तुत किये गये हैं। पर उसके पक्ष में तर्क करने वाले अपने पक्ष के समर्थन में कुछ खास प्रगति नहीं कर पाये हैं। संभवतः अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि हजरत मुहम्मद ने बहु-विवाह को प्रतिबंधित किया। उन्हें उस समय जिस समाज में काम करना था उसमें बहु-विवाह का उन्मूलन असंभव और कुछ सीमा तक अनुचित भी था। यह आरोप लगाया जाता है कि मुहम्मद साहब ने बहु-विवाह को और अधिक संकीर्णतर सीमा तक प्रतिबंधित कर दिया जहाँ तक कि अरबों ने पहले सोचा भी न था।

विवाह का करार

विवाह के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात उसका करार है। उस करार की सबसे महत्वपूर्ण धारा महर के संबंध में है। उसका मूल्य और स्वरूप विशेष रूप से वर्णित किया जाना चाहिए। कानून से संबंधित पुस्तकों में यह नहीं बतलाया गया है कि महर की रकम अधिक से अधिक क्या होनी चाहिए।

पर इस संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि प्रतिफल की रकम या महर स्वतंत्र महिला को ही दी जाती है। यदि गुलाम महिला हुई तो महर उसके स्वामी को दी जाती है भले ही उसका पति भी गुलाम क्यों न हो। नियमतः यदि लड़की कुंआरी हुई तो महर की रकम तलाक पाई हुई या विधवा औरत की तुलना में काफी अधिक होती है। इस्लाम के अधीन महर औरत का दहेज है जो उसे दिया जाता है। इस सुविधा के अलावा पुरानी परिस्थितियों के मुकाबले इस्लाम के अधीन महिलाओं की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ। दैन रकम या महर के बारे में कुछ विधिवेत्ताओं की राय है कि यह रकम विवाह-करारनामों का एक परिणाम है और यह वर-पक्ष पर इसलिए लादी जाती है कि इससे करारनामे के विषय—पत्नी—के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है जबकि दूसरे विधि-वेत्ताओं का

कहना है यह रकम (पति को प्राप्त होने वाले) पत्नी के भोगाधिकार के वदले देनी पड़ती है। इसका भुगतान आवश्यक होता है क्योंकि पत्नी को सहारे के प्रावधान महर पर ही वैवाहिक संवंध का स्थायित्व निर्भर करता है। यद्यपि दैन रकम की अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की गई है पर यह दस दिरहाम से कभी कम न होनी चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि दैन रकम नकद रुपयों या मुद्रा में ही हो। यह सड़े मांस, खून, शराव और सूअर के अलावा किसी भी चीज के रूप में हो सकती है। यह दूल्हे के, यदि वह स्वतंत्र व्यक्ति हुआ, शारीरिक परिश्रम के रूप में भी दी जा सकती है।

दैन रकम या महर दो भागों में वाँट दिया जाता है। इनमें से प्रथम को मुआज्जल (तुरत देय) और दूसरे को मुआज्जल (वाद में देय) कहा जाता है। मुआज्जल के तुरत देय भाग को विवाह करारनामे के समय देना अनिवार्य है और कभी-कभी वह उसी समय दे भी दिया जाता है पर सामान्यतः ऐसा होता है कि उसे भी अनदिया या भुगतान न किया हुआ ही छोड़ दिया जाता है। उस संवंध में समय बीतने के वाद भी पत्नी का अधिकार बना रहता है। इसमें पत्नी या उसके अभिभावक की यह मंशा होती है कि दैन रकम के जिस अंश को तत्काल देना है उसे बकाया रखने से पति अपनी पत्नी के साथ बराबर अच्छा व्यवहार रखेगा।

तलाक

अपने प्राचीन अर्थ में अरवी शब्द तलाक का अर्थ होता है खारिज करना या समाप्त करना, पर कानून में इसका अर्थ हुआ विवाह वंधन से मुक्त होना। मुस्लिम कानून में तलाक कुरान तथा हदीस में दिये गए स्पष्ट आदेशों पर आधारित है। इस संवंध में नियम-कानून विधि-शास्त्र पर मुस्लिम कृतियों में विस्तृत रूप से दिए गए हैं। तलाक के वारे में वहुत कुछ कहा गया है पर उसका संवंध तलाक की वास्तविक प्रक्रिया से है तथा साथ ही उसमें तलाक की गई पत्नी और उसके बच्चों के प्रति पति की आर्थिक और अन्य जिम्मेदारियों की चर्चा की गई है, उन कारणों की नहीं जिनके आधार पर तलाक दिया जा रहा हो। और इसी कारण इस्लामी कानून के व्याख्याताओं ने मुस्लिम जीवन को वहुत ज्यादा प्रभावित किया। चूंकि कुरान में पति द्वारा पत्नी को तलाक देने के लिए किसी औचित्य या समुचित कारण देने की मांग नहीं की गई है और एक प्रकार से उसे यह छूट दे दी गई है कि वह केवल अपनी इच्छा या मौज के कारण पत्नी को तलाक दे सकता है। अतः एक प्रकार से, इस मामले में, स्त्री के प्रति असमानता का व्यवहार किया गया है। इसे इस्लाम-पूर्व मुसलमानों की सामाजिक स्थिति की देन माना जा सकता है। इस्लाम-पूर्व अवधि में पुरुष स्त्री को खरीदता था। वह पत्नी के पिता या वली को पत्नी को

दैन रकम या महर की बाकी राशि का भुगतान कर उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो सकता था और उसे तलाक दे सकता था। इस संबंध में कुरान में कहा गया है कि—"जो लोग अपनी पत्नी को तलाक देने की इच्छा रखते हैं उन्हें इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए चार महीने ठहरना पड़ेगा। उसके बाद वे अपना ऐसा निर्णय बदल सकते हैं और निश्चय ही इसका मतलब है कि अल्लाह महान है और सबके प्रति दया रखता है। और यदि चार महीने की अवधि के बाद भी वे तलाक देने के अपने निर्णय पर दृढ़ रहते हैं तो भी निश्चय ही अल्लाह सब कुछ जानता है।"

तलाक दी हुई पत्नी ऐसी स्थिति में तब तक इन्तजार करेगी जब तक उसे तीन बार मासिक धर्म नहीं हो जाता। यदि इस बीच वह अपने पति से गर्भवती हो गई है तो उसे इस बात को छिपाना नहीं है, खास कर उस स्थिति में जब कि अल्लाह और अंतिम निर्णय के दिन पर विश्वास है। तब यदि अपनी पत्नी को अपने पास फिर लाना चाहता है और उसकी निगाह में जो कुछ ठीक है वही वह करता है तो पत्नी को अपने पति की इच्छा के अनुसार ही, पूरी तरह उचित ढँग से काम करना है। ऐसा इसलिए कि पुरुष की स्थिति स्त्रियों से बेहतर है। अल्लाह सर्वशक्तिमान और बुद्धिमान है।[११]

इस संबंध में हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं का हदीस में इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

"वह चीज, भले ही वह विधि-संगत हो, पर अल्लाह नापसंद करता है, तलाक है।"

"जो स्त्रियाँ अपने पति से तलाक के लिए कहती हैं और ऐसा बिना कारण ही कहती हैं उनके लिए बिहिश्त (स्वर्ग) में प्रवेश का निषेध है।"

"तीन बातों को जो चाहे मजाक में या पूरी ईमानदारी के साथ की गई हो, गंभीर और प्रभावकारी माना जाएगा। वे हैं विवाह, तलाक और अपनी पत्नी को तलाक के निर्णय के बाद भी वापस लेना।"

"हर तलाक, एक पागल आदमी द्वारा तलाक के निर्णय को छोड़कर, विधि-संगत है।"

"पत्नी का दूसरा पति जो तलाक दी हुई महिला को उसके पहले पति को पुनः वापस कर देता है, अभिशाप का पात्र है और वह (महिला का पहला पति) भी अभिशाप का पात्र है जिसे उसकी पहली (तलाक दी हुई) पत्नी वापस की जाती है।"

---

११. पवित्र कुरान-अध्याय २, २२६-२२८, पृ० १०३-१०५

हदीस में आगे कहा गया है कि पति अपनी पत्नी को उसके द्वारा किये गए किसी दुर्व्यवहार के बिना या उसके लिए कोई कारण बताये बिना ही तलाक दे सकता है। हर पति द्वारा दिया गया तलाक प्रभावकारी है यदि वह दुरुस्त दिमाग और परिपक्व अवस्था का है पर किसी अवयस्क या पागल पति या नींद में बातें करने वाला पति का तलाक प्रभावकारी नहीं माना जाएगा।

यदि कोई व्यक्ति कोई पकाया हुआ द्रव जैसे कि शराब पिये हुए, अपनी पत्नी से तलाक की घोषणा करता है तो भी तलाक प्रभावकारी हो जाता है। यदि कोई पति, जो दुरुस्त मनःस्थिति में हो और वयस्क अवस्था प्राप्त किये हुए हो, तलाक का निर्णय वापस लेता है, तो उसका यह निर्णय प्रभावकारी माना जाएगा चाहे वह गुलाम हो या स्वतंत्र, तलाक वापस लेने के लिए इच्छुक हो, ऐसा किसी बाध्यता के कारण करता हो और चाहे वह तलाक वापस लेने का निर्णय मजाक में और यों ही मनमाने ढंग से करता हो या किसी अन्य शब्द के बदले यों ही गलती में कोई और शब्द बोल कर करता हो तो भी तलाक वापस लेने का उसका निर्णय प्रभावकारी न माना जाएगा। कोई बीमार आदमी, भले ही वह उस समय अपनी मृत्यु-शय्या पर ही क्यों न पड़ा हो, अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है। पति इस काम के लिए अपना अभिकर्त्ता (एजेन्ट) या अभिकर्त्तागण नियुक्त कर सकता है। कुछ और भी शर्त्तें हैं जो तलाक देने के लिए आवश्यक हैं।

एक और स्थिति, जिसमें पत्नी पति से तलाक की मांग कर सकती है, यह है कि दोनों यदि गैर-मुस्लिम हों और पत्नी इस्लाम धर्म अंगीकार करती है और यदि वह अपने पति को इस्लाम धर्म अंगीकार कराने में विफल रहती है। दूसरी ओर यदि पति इस्लाम धर्म अपना लेता है और पत्नी गैर-मुस्लिम ही रह जाती है तो उन लोगों के बीच तलाक लेने या न लेने का निर्णय काजी करेगा। यदि पति-पत्नी के बीच विवाह के बाद संभोग न हुआ हो तो और तलाक देने की जरूरत नहीं है। यदि दोनों के बीच संभोग नहीं हुआ है और उनके बीच तलाक का फैसला होता है तो पति को उस स्थिति में दैन रकम या महर देने की जरूरत नहीं है।

मुस्लिम कानून-संबंधी पुस्तकों में विवाह रद्द किये जाने की व्यवस्था उस स्थिति में दी गई है जब पति या पत्नी में शारीरिक अक्षमता हो। दोनों में से कोई भी विवाह रद्द किये जाने की मांग कर सकता है यदि दूसरा यौन-कर्म के लिए अक्षम है। विवाह रद्द किये जाने की व्यवस्था उस स्थिति में भी दी गई है यदि किसी एक द्वारा विवाह के करार की शर्त्तें पूरी नहीं की जातीं। विवाह रद्द किये जाने का एक सामान्य मामला तब बनता है जब पत्नी कुमारी होने का दावा करे और पति को पता चले कि वह वास्तव में कुमारी नहीं है। चूंकि पत्नी के कुंआरी रहने की जांच

करने की प्रथाएँ अक्सर भ्रामक होती हैं और इस संबंध में जन-मत मजबूत है। पत्नी के हितेच्छुकों के बीच यह प्रथा सामान्य-सी है कि इस (उसके कुँआरी होने के) संबंध में प्रमाण जुटाने के लिए कृत्रिम उपायों का सहारा लेते हैं। पत्नी के पक्ष की ओर से विवाह रद्द किये जाने का आधार तब भी मिल जाता है जब वह काजी के सामने यह सिद्ध कर सके कि पति विवाह के करारनामे में उल्लिखित दैन रकम या महर देने की स्थिति में नहीं है या यह भी कि वह उसे जीवन के लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं करा सकता। साथ ही पति यदि गुलाम हुआ और वह अपने स्वामी की अनुमति के बिना ही विवाह कर लेता है तो भी विवाह अवैध करार दिया जाता है और यदि पति या पत्नी, स्वतंत्र अवस्था में विवाह करने के बाद किसी दूसरे का गुलाम हो जाता है या हो जाती है तो भी विवाह अवैध करार दिया जा सकता है।

परदा

इस्लाम में विवाह से बहुत ही सम्बद्ध विषय स्त्रियों द्वारा परदा करना तथा उन्हें समाज से अलग-थलग रखना है। प्राचीन अरब में यह प्रथा भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। रेगिस्तान में रहने वाली महिलायें बिना परदे के घूमती थीं और पुरुष-समाज से स्वतंत्र रूप से मिल-जुल सकती थीं। दूसरी ओर नगरों की महिलाएँ परदे में रहती थीं। स्वयं हजरत मुहम्मद की अपनी जनजाति कुरैश में सामान्यतः स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। इसी प्रकार मक्का में इतिहासकार फकीही के अनुसार नागरिक-गण अपनी अनब्याही पुत्रियों और दास-कन्याओं को पूरी तरह सजा-बजाकर, काबा के आस-पास घुमाया करते थे ताकि उनसे विवाह के लिए इच्छुक व्यक्ति और खरीदार आकर्षित हो और यदि इसके फलस्वरूप उन्हें विवाह के लिए इच्छुक व्यक्ति या खरीदार मिल जाते थे तो उसके बाद वे (पुत्रियाँ या दास-कन्याएँ) बराबर के लिए परदे में रहने लगती थीं। कुरान के एक कंडिका खंड में इस गैर-इस्लाम प्रथा की चर्चा आई है और हजरत मुहम्मद ने महिलाओं को आदेश दिया है कि वे अपने घर में रहें और बर्बरता की अवधि में प्रचलित प्रथा का अनुसरण न करें और सार्वजनिक रूप से अपने को सजा-बजाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लोभ में न पड़ें। कुरान के अध्याय (४:५३) में मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों से अनुरोध किया कि वे अपने किसी परिचित व्यक्ति के घर का उपयोग एक अनौपचारिक रूप से न करें और अनुमति प्राप्त होने पर ही वहाँ प्रवेश करें।

परदे के सम्बन्ध में कुरान में पैगम्बर द्वारा किये गये रहस्योद्घाटनों के कुछ समय बाद उन्होंने नम्र स्वभाव और निष्कलुष चरित्र के लिए, पुरुषों और स्त्रियों दोनों ही पर लागू सामान्य नियमावली बनाई। स्त्रियों के लिए उन्होंने कुछ

और भी खास नियम बनाए जिनके अन्तर्गत मनाही की गई कि वे अपना सौन्दर्य खुले-आम प्रदर्शित न करें। हाँ, अपने पति या ऐसे व्यक्तियों और उनकी पत्नियों के समक्ष वे अपना सौन्दर्य प्रदर्शित कर सकती हैं जो रक्त-सम्बन्ध में उनके इतने निकट आते हैं कि उन्हें विवाह के प्रयोजन के लिए प्रतिबन्धित सीमा के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

मुस्लिम संवत हिजरा की तीसरी सदी तक और उसके कुछ बाद भी महिलाओं को पुरुषों की भाँति यह अधिकार था कि वे मस्जिद में नमाज पढ़ सकें। कहा जाता है कि द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर ने महिलाओं के लिए यह विशेषकर उनके लिए सार्वजनिक पूजा-स्थानों में एक कुरान-वाचक रहा करे। नमाज के समय उनके लिए परदे में रहने की बाध्यता नहीं रखी गई, पर विधि-ग्रंथों में बतलाया गया है कि वे ऐसे अवसर पर किस प्रकार वस्त्र धारण करें। यह वस्त्र दो टुकड़ों में रखा गया। सर और पूरे शरीर के ऊपरी हिस्से को ढँकने के लिए एक शमीज और उसके साथ का वस्त्र। चेहरे, हाथ और पाँवों के ऊपरी हिस्से को वस्त्र से ढँकने की जरूरत नहीं। पर इस सम्बन्ध में ब्योरे के प्रश्न पर कुछ विवाद है।

जहाँ तक हरम व्यवस्था और महिलाओं को अलग-थलग रखने का प्रश्न है उस बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी शुरुआत कब हुई। कुरान (अध्याय ३३, ५५) में व्यवस्था दी गई है कि महिलाएँ समाज में सबसे अलग-थलग रहें। सभी मुस्लिम देशों में सम्माननीय वर्गों की महिलाओं के लिए नियम रखा गया है कि वे घरों में ही रहें, बाहर बिना परदे की यात्रा न करें और पति अथवा ऐसे पुरुष सम्बन्धियों को, जिसके साथ सगोत्रता और निकट रक्त-सम्बद्धता के कारण विवाह निषिद्ध है, छोड़ कर किसी अन्य पुरुष से सम्पर्क स्थापित न करें। इन आदेशों के, जिनमें दैवी अधिनियम की शक्ति है, परिणाम-स्वरूप मुस्लिम परिवारों की महिलाएँ घर के चारों ओर घिरे दालान में स्थित कमरों में रहती हैं और इस प्रकार सार्वजनिक दृष्टि से अलग रखी जाती हैं। इस घिरे हुए स्थान को हरीम या कभी-कभी **हरम** कहा जाता है। इनके लिए ईरानी शब्द **जैनाना** का भी प्रयोग होता है। यह शब्द **जन** या महिला से बना हुआ है।

कुरान के प्रारम्भिक व्याख्याता ईरान में उत्पन्न लोग थे। ईरान एक ऐसा देश है जहाँ महिलाएँ एक लम्बे अरसे से समाज में अलग-थलग रखी गई हैं। यह संभव है कि इस्लाम में उनका प्राधिकार उमैय्यद खलीफाओं के शासन की समाप्ति के बाद आरंभ हुआ। प्रतापी अब्बासिद खलीफा हारुन अल-रशीद के समय तक यानी हजरत मुहम्मद की मृत्यु के डेढ़ शताब्दियों के बाद हरम की व्यवस्था अपने

साज-ओ-सामान के साथ प्रकट हो चुकी थी। हरम में अमीर वर्गों की महिलाएँ घर के शेष भाग से अलग रखी जाती थीं जिनके प्रभारी हिजड़े होते थे। मध्य काल तक हरम व्यवस्था अपनी जड़ें इतने गहरे तक जमा चुकी थीं कि धार्मिक मुसलमान जब कहीं पुरुषों और स्त्रियों के बीच खुला सम्पर्क देखते थे तो अचंभे में पड़ जाते थे।

इस प्रकार अरब के पैगम्बर द्वारा महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए जो कदम उठाये गए उनकी सभी पूर्वाग्रह-मुक्त लेखकों ने प्रशंसा की है। उनके सुधार दरअसल पूर्वी कानूनों में एक नये प्रस्थान बिन्दु जैसे थे। उन्होंने तलाक देने के पति के अधिकारों पर रोक लगाई, साथ ही उन्होंने महिलाओं को यह अधिकार भी दिया कि वे युक्तियुक्त कारणों से अपने पति से अलग हो सकें। और अपने जीवन के अन्त में तो उन्होंने व्यवहारतः यह आदेश तक दे डाला कि पति तलाक के अपने अधिकार का प्रयोग मध्यस्थों या काजी की इच्छा के बिना नहीं कर सकता। तलाक की अनुमति दी गई है पर उसके साथ जो औपचारिकताएँ जोड़ दी गई हो उनके पीछे आशय यही है कि उस अवधि में तलाक के लिए जल्दबाजी में या बिना सोचे-समझे किये गये निर्णय को बदला जा सके। इस संबंध में एक-एक महीने के अन्तराल पर तीन बार घोषणा करना आवश्यक है जिसके बाद ही तलाक का आदेश अनिवार्य हो सकेगा। पैगम्बर साहब ने कहा है कि—"अल्लाह के समक्ष सभी अनुमति-प्रदत्त निर्णयों में तलाक का निर्णय सबसे ज्यादा असम्मान्य एवं घृणा-योग्य है।" क्योंकि इससे वैवाहिक जीवन में सुख-शान्ति, सम्भव नहीं हो पाती और साथ ही इसकी वजह से बच्चों का सही ढंग से लालन-पालन नहीं हो पाता।

●

अध्याय २२

इस्लाम में सामाजिक वर्ग

अरब की आवादी में पूरी ऐतिहासिक अवधि में वहाँ बसे हुए सामाजिक समुदायों के अन्तर्गत, अनेक दल या जनजातियाँ आती हैं। इन दलों या जनजातियों का संगठन ढीले-ढाले तौर पर कायम रहता आया है। इनमें से हर एक किसी खास नेता के प्रति निष्ठा रखता है या अपने को किसी समान पूर्वज का, जो या तो कभी वास्तव में रहा हो या मात्र कल्पित हो, वंशधर मानता है। इनमें से हरेक दल या जनजाति अलग-अलग इकाइयों के रूप में, जो तम्बुओं या बाजाप्ता परिवारों में रहती आई थीं, स्वतंत्र मानी जाती रही। इनमें से हर इकाई का प्रधान किसी दूसरी इकाई के प्रधान के बराबर की स्थिति रखता था। तम्बुओं में या परिवारों में रहने वाले दल या जाति के प्रधान का यह अधिकार था कि वह अपना शेख या जनजातीय प्रधान चुने। इस शेख जनजातीय प्रधान में कोई खास योग्यता रहना जरूरी नहीं है। व्यवहार में विशिष्ट परिवारों के सदस्यों में से किसी को शेख के पक्ष में शक्तिशाली द्वेष-भावना ही काम करती रही थी। हजरत मुहम्मद के उदय के समय इन विशिष्ट परिवारों के सदस्य सम्बद्ध समुदाय में बड़ा प्रभाव रखते थे। शेख या जनजातीय प्रधान चुनने में सम्बद्ध व्यक्ति के किसी विशिष्ट परिवार में जन्म को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है। किसी ऊँचे पूर्वज का वंशधर होना उसकी उच्चता की सबसे बड़ी कसौटी रही है। ऐसे व्यक्ति के वंशवृक्ष पर किसी वंशगत हीनता का दाग न होना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी दास या नीग्रो मूल के पूर्वजों के बारे में माना जा रहा था कि वे समुदाय का प्रधान होने की योग्यता नहीं रखते थे। ऐसे व्यक्ति समाज के निम्न वर्गों में गिने जाते थे और वे ऐसी जीवन-वृत्ति अपनाने को वाध्य किये जाते थे तथा उन्हें समाज में निम्नतर व्यक्तियों की पंक्ति में गिना जाता था।

स्वतंत्र व्यक्ति, स्वतंत्र किये गए व्यक्ति और "समझौते के व्यक्ति"

इतिहास में ज्ञात सभी अन्य समाजों की भाँति मुस्लिम समाज भी दो मुख्य वर्गों में बँटा हुआ है जिन्हें मोटे तौर पर उच्चतर और निम्नतर वनने की संज्ञा दी जा सकती है। उच्चतर वर्गों में वे लोग आते हैं जो शिक्षा, ऊँची स्थिति और प्राधिकार से सम्पन्न होते हैं और साथ ही धन और समृद्धि से युक्त भी। यद्यपि इस बारे में

अंतिम शर्त यानी धन और समृद्धि से युक्त होना अनिवार्य नहीं माना जाता था। दूसरे या निम्नतर वर्गों में असंख्य अनजाने, अनाम, अपनी आवाज का कोई महत्त्व न रखने वाले जनसमुदाय के वर्ग होते थे। इन वर्गों के लिए इस्लाम में खास और आम शब्द इस्तेमाल किये जाते थे।

खास और आम के बीच भेद कानूनी नहीं थे यद्यपि कानून अपने समतावादी सिद्धान्त से हट कर उच्चतर और निम्नतर वर्गों के बीच स्थिति के विशेषाधिकार और अंतर को मान्यता देता था। यद्यपि इस अंतर का स्वरूप मुख्य रूप से आर्थिक नहीं है क्योंकि अन्य समाजों की भाँति प्राचीन इस्लामी समाज में धनहीन उच्चतर लोगों और धनवान निम्नतर लोगों का भी कहीं-कहीं उल्लेख पाया जाता है पर फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि जिन लोगों के पास सम्पत्ति और नियंत्रण के साधन-स्रोत हैं और जिनके पास नहीं है उनके बीच अंतर तो रहता ही है। किसी आदमी के खास या आम होने में मूल, जन्म, जन्म-स्थान, शिक्षा, स्थिति, धन्धे और धन का महत्त्व तो है ही यद्यपि इन बातों का आपेक्षिक महत्त्व समय और स्थान के साथ बदलता रहा है। अन्य समाजों की भाँति मुस्लिम समाज में भी आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ के बावजूद समाजगत अंतर बना रह सकता है। जब किसी खास वर्ग के व्यक्ति के पास शक्ति और धन नहीं रह जाता तो उसका स्थान मिथ्या दंभ लेता है।

इन उच्चतर वर्गों में कुछ खास समान विशिष्टताएँ होती हैं। मोटे तौर पर सार्वदेशिक या दूसरे शब्दों में शाही वर्ग के होते हैं। इस्लामी खास वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में अपने वर्ग के अन्य लोगों के साथ समान सदस्यता और अपने बारे में जागरूकता से सम्पन्न होता है, कुछ-कुछ उसी प्रकार जिस प्रकार कि फ्रांसीसी क्रान्ति के पूर्व यूरोपीय उच्च वर्ग था। मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रिका, भारत और मध्य एशिया के इस्लामी समुदाय में केवल दो या तीन भाषाओं-अरबी, फारसी और बाद में तुर्की—का महत्त्व था। चाहे स्थानीय बोलियाँ या स्थानीय भाषायें जो भी हों, खास वर्ग की समान भाषाओं की संख्या सीमित थी और उन्हीं के माध्यम से उनकी समान संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है।

इस्लामी समाज के वर्ग अनेक प्रकार से अन्य लघुतर वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में मुस्लिम कानून ने साम्राज्य की आबादी को चार मुख्य वर्गों में बाँटा। इनकी कानूनी ढंग से परिभाषित श्रेणियाँ हैं जिसके अधिकार और दायित्व भिन्न-भिन्न हैं। इनमें से प्रथम वर्ग में स्वतन्त्र मुस्लिम (हुर्र) आते हैं। स्वतन्त्र शब्द का राजनीतिक नहीं बल्कि कानूनी अर्थ है। ये लोग समाज के पूर्ण सदस्य हैं। सबसे प्रारम्भ के दिनों में उनकी संख्या

कम थी और वे प्रायः सब-के-सब अरब थे जो युद्धों में अपनी विजय के कारण अभिजात वर्ग के रूप में संग्रन्थित एवं इसी प्रकार परिभाषित होते थे। सरकार के सभी उच्च पदों पर उनका एकाधिकार था, वे ही राज्य के लिए सेनाएँ प्रस्तुत करते थे और प्राप्त सुख-सुविधाओं की तुलना में कहीं कम कर दिया करते थे। उल्टे वे सरकारी कोषागार से वेतन और निवृति-वेतन निकालते थे। समय के क्रम में क्रमशः उनका पतन होता गया। मुसलमानों की संख्या यों भी बढ़ती गई और विशेष रूप से अन्य लोगों द्वारा इस्लाम में धर्म-परिवर्त्तन के कारण भी तेजी के साथ बढ़ी। बहुत से कार्य, जो पहले स्वतन्त्र मुसलमानों के लिए सुरक्षित थे स्वतन्त्र किये गए मुसलमानों और दासों तक को सौंप दिये गए, विशेष रूप से सैनिक सेवा के कार्य। इसका फल यह हुआ कि समय के क्रम में इस्लाम में सेनाओं और सरकार में गुलामों और भूतपूर्व गुलामों की प्रमुखता होती गई। इस कारण स्वतन्त्र मुसलमानों की प्रतिष्ठा में क्रमशः ह्रास होने लगा यद्यपि उनकी कानूनी स्थिति अपरिवर्तित रही।

मवाली

मुसलमानों के दूसरे वर्ग **मवाली** (एक वचन **मौला**) में स्वतन्त्र किये गये मुसलमान या आश्रित आते हैं। मध्यकालिक इस्लाम में **मवाली** दो विभिन्न परम्पराओं के संगम का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक ओर रोम के कानून के अनुसार स्वतन्त्र किये गए व्यक्तियों की परम्परा है और दूसरी ओर अरब जन-जाति के अंगीकृत सदस्य की परम्परा खिलाफत के प्रारम्भिक दिनों में इस्लाम का अरबवाद से इतना तादात्म्य था कि एक गैर-मुस्लिम को मुसलमान बनने के लिए यह आवश्यक था कि वह **मौला** या एक तरह से अरब नागरिकता प्राप्त या अंगीकृत अरब बने।

हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद तीन शताब्दियों तक संघर्ष चलता रहा। इसमें एक ओर अरब थे और दूसरी ओर गैर-अरब मूल के नये मुसलमान-मवाली या "आश्रित" थे जिन्हें इसी नाम से पुकारा जाता था। अरबों के पुराने, परम्परागत कानून के अन्तर्गत **मौला** एक जनजाति का व्यक्ति या सामान्यतः एक गैर-अरब विदेशी था जो, परीक्ष्यमाण अवधि के बाद, एक जनजाति से, सम्बद्ध हो जाता था जो उसकी अपनी जन-जाति न होती थी और जिसके सदस्यों के साथ कर्त्तव्यों एवं विशेषाधिकारों के प्रश्न पर उसकी समान स्थिति रहती थी। जब इस्लाम के विजय-अभियान काफी व्यापक क्षेत्रों तक विस्तृत हो गए तो अरब प्रायद्वीप के बाहर के पराजित क्षेत्रों में जो निवासी इस्लाम धर्म अंगीकार करते

थे उनके लिए **मवाली** नाम का प्रयोग किया जाता था। वे लोग कैद या युद्ध अथवा गुलामी से मुक्त होने के बाद विजेताओं की जन-जातियों में से किसी के साथ सम्बद्ध हो जाते थे, पर उसके बावजूद, अपने अरब संरक्षकों से स्वतन्त्र नहीं हो पाते थे। वे युद्ध और शान्ति में उनके अनुचर के रूप में रहते थे और बदले में उन्हें उनके द्वारा सुरक्षा दी जाती थी। पर इस संरक्षण का कोई खास महत्त्व न था क्योंकि सैनिक अधिकारी **मवाली** के प्रति हृदयहीन व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि उन लोगों को यह जन-जातीय अधिकार तक न मिला था कि वे अपनी निष्ठा एक अरब जन-जाति से दूसरी जन-जाति में अंत कर दें। स्थिति यहाँ तक आ गई थी कि उमैय्यद शासन के योग्य पर खून के प्यासे गवर्नर हज्जाज इब्न युसुफ और उसके प्रतिनिधि कुतयबाह ने खुरासान और ट्राँजोक्सियना में **मवाली** पर जजिया कर लगा दिया जो केवल गैर-मुसलमानों पर ही लगता था। जब ईराक के एक प्रांत के निवासियों ने विद्रोह की तो हज्जाज ने इन बर्बर जन-जाति वालों को निकाल बाहर किया और गाँवों की सीमा तक ही रहने को मजबूर कर दिया। उसने यह भी आदेश दिया कि हर **मौला** को अपने हाथ पर उस गाँव का नाम छपाना होगा जिसमें वह रहता है। **मौला** के प्रति और भी अन्याय तब किया गया जब बदलती हुई परिस्थितियों में द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा **उमर** का यह कानून रद्द कर दिया गया कि विजयी मुस्लिम सेना में से कोई भी मुसलमान पराजित प्रदेश में भूमि या मकान प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए कि उक्त कानून रद्द किये जाने के बाद मुसलमान विजित क्षेत्र में जमीन खरीदने लगे। उन पर नाम मात्र का कर **जकात**-या (कर के रूप में) भिक्षा-राशि लगती थी जब कि **मौला** को जजिया कर के अलावा **खिराज** नामक भूमि कर देना पड़ता था जो उनकी पैदावार के पाँचवें हिस्से के जितना ही होता था।

पर फिर भी केवल अधिक कर लगाया जाना ही नव-इस्लाम धर्मान्तरितों या आश्रितों के स्वाभिमान के लिए उतना घातक न था जितना कि अरबों द्वारा उन लोगों के प्रति उपेक्षा और अपमान का व्यवहार। अरबों की विजय के प्रारंभिक दिनों में सैन्य शिविरों से जो शहर उठ खड़े हुए उनमें कोई भी अरब **मौला** या नव इस्लाम धर्मान्तरितों के साथ सड़क पर टहलता न था। जब अरबों को उनके साथ कोई बातचीत करनी होती तो वह उनको उनके किसी औपचारिक संबोधन के बिना ही केवल उनके नाम और जाति या वंश-नाम से पुकारता था अथवा लुभाव (उपनाम या धंधे के नाम) से पुकारता था जब कि नव-इस्लाम धर्मान्तरित इस बात पर जोर देता था कि उसके नाम के साथ उसका गोत्रीय उपनाम भी लगाया जाय जैसे कि फलाँ "अबू" या "फलाँ इब्न"। किसी उत्सव के समय होने वाली भीड़

में **मौला** को बैठने के लिए सबसे पीछे, सबसे निम्न स्थान दिया करता था। कम-से-कम एक स्थान-यूफ्रेटस नदी के किनारे कूफा में **मौला** को नमाज के लिए अपनी मस्जिद बनवाने की भी सुविधा दी गई थी। खुरासान में **मौला** को अपनी निजी सामूहिक प्रशासनिक पदाधिकारी इकाई रखने की भी सुविधा दी गई थी। उमैय्यद खलीफाओं के शासन में वे लोग इस्लाम के विजय-अभियान युद्धों में भी भाग लेते थे। पर उनमें से अनेक को विजय हो जाने पर लूट के माल में उस हिस्से से वंचित रखा जाता था जिसके वे हकदार थे। आधुनिक काल में अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में नीग्रो लोगों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता था वैसा ही व्यवहार उस युग में अरबों द्वारा **मवाली** के साथ किया जाता था।

नव-इस्लाम धर्मान्तरितों या **मवाली** में सबसे प्रारंभ के और सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण ईरान के निवासी थे जिनमें से अनेक विद्वान और सुसंस्कृत लोग थे। उन लोगों ने अपने नये धर्म (इस्लाम) को गंभीर निष्ठा के साथ लिया और अपने को कुरान और **हदीस** के सिद्धान्तों में निष्णात बना लिया। फिर इस बात में कोई खास समय न लगा कि गैर-अरब ईसाई, तुर्क और अन्य इस्लामी धर्मतंत्र और कानून में विद्वान विशेषज्ञ बन गये। वास्तव में इस ज्ञान-विज्ञान का एकाधिकार उन लोगों के हाथों में चला गया। इतिहासविद-दार्शनिक इब्न-खालदुन बतलाता है कि चूंकि मुस्लिम साम्राज्य के बड़े नगरों में कानून और धर्म-तत्व पला-बढ़ा और उनके नागरिकों में मुख्यतः ईरानी थे, जो एक लंबे अरसे से सभ्यता की कलाओं में अभ्यस्त थे। इसलिए इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि विद्वत्तापूर्ण कलाओं में इस्लाम के सुप्रसिद्ध ज्ञाता ईरानी ही हुए। दूसरी ओर अरब आक्रामक सेनाओं में शामिल विभिन्न जनजातियों के प्रधान, अपनी परम्पराओं के अनुसार ही, विजित लोगों को अपने से हीनतर मानते थे और उनके विचार से विद्वत्ता और विज्ञान में पारंगतता केवल उन हीनतर लोगों के लिए ही उपयुक्त थी। जिन अरबों में इन विषयों की जानकारी थी भी वे यह स्वीकार न करते थे कि अरब साहित्य में ईरानियों की विद्वत्ता और दक्षता का कोई वास्तविक दावा है। पर इसके बावजूद अरबी व्याकरण के सबसे विद्वान अन्वेषक तथा कुरान के सबसे ज्यादा अध्यव्यवसायी व्याख्याता तथा महत्त्वपूर्ण अरबी काव्य के संकलनकर्त्ता ईरानी मूल के नव इस्लाम-धर्मान्तरित ही थे।

मौला को इस प्रकार जिन असुविधाजनक स्थितियों का सामना करना पड़ा उनमें ऐसे रास्ते ढूंढ़ निकाले जिससे उनकी अपनी हीनतर स्थिति सुधारने का मौका मिले। उनमें से जो कम साहसी थे उन्होंने अपने वास्तविक नाम बदल कर अरबी नाम रख लिए और इस हद तक चले गए कि वे अपनी अरब वंशावली भी

तैयार कर उसे अरबों के समक्ष प्रस्तुत करने लगे। यहाँ यह उल्लेख भी अप्रासंगिक न होगा कि इस्लाम के इतिहास में बाद की अवधि में सभी-के-सभी नव-इस्लाम धर्मान्तरित ईरानियों तथा अन्य ने अपनी अरब वंशावली की सहायता से अरब प्रायद्वीप वासी अरबों के साथ शासक बनाये जाने का दावा प्रस्तुत कर मुस्लिम जाति में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश की। फिर ऐसा समय भी आया जब कुर्द और बर्बर जनजातियों और अफ्रिकी नीग्रो लोगो जैसे कि बोर्नू और फुला ने कोशिश की कि उनके या उनके शासकों को अरब मूल का माना जाए। ईरानियों ने यह काम कुछ दूसरी ही रीति से किया और अपने राष्ट्रीय अभिमान की रक्षा के लिए यह दावा किया कि पैगम्बर के पौत्र हुसैन ने ईरान के अंतिम सारासेन राजा येजदीगर्द तृतीय की पुत्री के साथ विवाह किया था।

जब तक विशुद्ध अरब राजवंश उमैय्यद का शासन कायम रहा **मवाली** को अपनी हीनतर स्थिति स्वीकार करने के अलावा और कोई चारा न था। उमैय्यद खलीफा उमर द्वितीय (सन् ७१७-७२०) ने अपनी दया-भावना के चलते, कुरान के सिद्धान्तों पर वास्तविक रूप से अमल करते हुए, तीव्र विरोध के बावजूद, दो **मवाली** को काहिरा में काजी के पदों पर नियुक्त किया। पर इस बात का अत्यधिक उग्रता के साथ विरोध किया जाता रहा और आठवीं ईस्वी सदी के मध्य में अब्बासिद खिलाफत के उदय के बाद ही ईरानियों का राजनीतिक प्रभाव शक्तिशाली हो सका और **मवाली** की स्थिति में उचित, नियमित सुधार हुआ। और तब गैर-अरब मुसलमानों और उनके पक्षधरों को, जो उन्हीं के बीच से आये थे, राजनीतिक महत्व मिलने से वे लोग अपने विविध कार्य-कलाप से सक्रिय हो उठे। खुद उनके द्वारा स्वायत्तीकृत साहित्यिक स्रोतों का प्रयोग करते हुए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इस्लाम धर्म के प्रति सभी सच्चे निष्ठावानों की सैद्धान्तिक समानता कार्यरूप में लाई जाय और मांग की कि अरब मूल के सभी मुसलमान आपस में और जन-साधारण के समक्ष इस तथ्य को मान्यता दें कि सभी मुसलमानों के साथ, चाहे वे मूलतः जिस भी वंश या जाति के हों, भ्रातृत्व का संबंध रखा जाएगा। इस प्रयोजन के लिए, इस दावे के समर्थन हेतु अनेक हदीसों का पता चलाया गया या उनका सृजन किया गया और पैगम्बर मुहम्मद के ऐसे कई कथित वक्तव्यों को कुरान की प्रासंगिक धाराओं के साथ संयुक्त किया गया। **मवाली** और उनके पक्षधरों के इन प्रयासों को वांछित दिशा में काफी हद तक सफलता भी मिली। पर अब्बासिद खलीफा मामून के शासन-काल में राजधानी में पहुँचने वाले अनेक ईरानियों को जो राजनीतिक शक्ति मिली उससे गैर-अरबों को अपने साथी अरब-मुसलमानों के साथ समानता का स्तर प्राप्त करने में ठोस और वास्तविक सहायता मिली।

मवाली का एक वर्ग इस्लाम धर्म अपनाने वाले नीग्रो लोगों का था जिनके कारण मवाली द्वारा सायास प्रतिपादित समानता के सिद्धान्त के कार्यान्वयन में रुकावटें आईं। उन लोगों या उनके पूर्वजों का अफ्रिका से अरब में गुलामों के रूप में आयात किया गया था। कुरान के सभी अध्येताओं के समक्ष यह स्पष्ट है कि खुद अल्लाह ने धार्मिक निष्ठावानों के बीच बोली और चमड़े के रंगों की विविधता सृजित की। इसलिए यदि तर्क नहीं तो धार्मिक विश्वास के आधार पर उन मूलतः नीग्रों पर नये इस्लाम धर्मावलंबियों को अन्य मुसलमानों के साथ बराबरी का दर्जा दिया जाय। पर पुरानी परम्पराओं में पले-बढ़े अरब मुसलमान, जो अपनी ही तरह के रंग वाले स्वतंत्र लोगों तक को बराबरी का स्थान देने के अनिच्छुक थे, इस बात को और भी नापसंद करते थे कि उनकी दृष्टि में निश्चित तौर पर निम्नतर स्तर के विदेशी मूल के लोगों को अपनी बराबरी का माना जाय। इस मामले में जहाँ तक स्वयं नीग्रो लोगों का संबंध था, वे किसी विशेषाधिकार का दावा न करते थे और ऐसे किसी दावे को पूरा करने की स्थिति में भी न थे।

जहाँ तक एक स्वतंत्र अरब और गुलाम महिला के बीच विवाह का प्रश्न था, इस क्रम में उत्पन्न समस्या इतनी गंभीर न थी। ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान वैध माने जाते थे यद्यपि पुरानी परम्परा के अरब इसे मानने को तैयार न थे कि गुलाम-महिला से उत्पन्न सन्तान उच्च वंश का कोई दावा कर सकती है। यह बात कुरान के इस सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत थी कि गुलाम महिला के साथ अरब मुसलमान का विवाह उसी तरह वैध है जिस तरह कि किसी स्वतंत्र अरब महिला के साथ का विवाह। अब्बासिद शासन के मध्य के बहुत पूर्व ही यह समस्या गंभीर नहीं रह गई क्योंकि उस राज वंश के प्रथम तीन खलीफाओं की माताएँ गुलाम महिलाएँ थीं। अब्बासिद खलीफा महदी के पुत्र इब्राहिम की माँ एक नीग्रो महिला थी पर उस कारण उसे अपनी साथी मुसलमानों की निष्ठा मिलने में कठिनाई नहीं हुई। उन लोगों ने उसे अपने भतीजे और प्रसिद्ध अब्बासिद खलीफा हारून-अल-रशीद के पुत्र मामून के मुकाबले खलीफा पद के लिए अधिक योग्य समझा।

अन्य मवाली की भाँति नीग्रो लोगों के भी अपने समर्थक थे जो उन्हें बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए कठिन संघर्ष कर रहे थे। बसरा के उदारमना जहीज ने, जिनकी मृत्यु सन् ८९० में हुई, उन लोगों के दावे के पक्ष में बड़ा निबंध तैयार किया। उसमें उसने यह सिद्ध करने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किए जिनके आधार पर नव इस्लाम-धर्मान्तरित नीग्रो लोग न केवल अरबों के बराबर बल्कि उनसे उच्चतर स्थिति के माने जाने चाहिए। मौला के पक्ष में अपनी एक और कृति में वह पूरे उत्साह के साथ घोषणा करता है कि—"अल्लाह अपनी इच्छानुसार अपना सेवक एक अरब या गैर-अरब, एक कुरेश या एक नीग्रो को भी बना सकता है।"

इस प्रकार हम पाते हैं कि गैर-अरब इस्लाम-धर्मान्तरितों की स्थिति विशेष रूप से एवं कानूनी दृष्टि से अरबों से निम्नतर थी। इस कारण गंभीर समस्यायें एवं तनाव पैदा हुए। पुराने अरब में **मवाली** दो प्रकार के थे—एक वे जो जन्मना ऐसे थे जैसे कि गुलाम माँ और स्वतंत्र पिता के पुत्र और दूसरे वे किसी अरब जनजाति के संरक्षण में इस्लाम धर्म के अनुयायी हुए थे। **मवाली** अरब जनजातियों के लोगों से स्वतंत्रतापूर्वक विवाह न कर सकते थे और इस्लाम में उनकी सदस्यता पर गंभीर प्रतिबंध थे। अरबों के महान विजय-अभियानों के पूर्व वस्तुतः सभी **मवाली** अरब थे। उमैय्यदों के शासन में अरब **मवाली** भी थे पर उनकी संख्या तेजी के साथ कम हो रही थी। उनके बदले सामान्यतः **मवाली** शब्द विजेताओं के गैर-अरब गुलामों के संबंध में लागू होने लगा जिससे उनके भूतपूर्व स्वामियों के साथ उनका विशेष संबंध प्रकट होता था। यह संबंध, अनेक अर्थों में लगभग रक्त संबंध जैसा था। **मौला** अपने अरब स्वामी की जनजाति का सदस्य हो गया जो उसकी यह सदस्यता पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों तक चलती रही। कुछ विधि-वेत्ताओं ने इसके लिए भी अनुमति दी कि **मौला** अपने संरक्षक अरब मुसलमान की सम्पत्ति विरासत में पा सकता है पर अधिकांश विधि-वेत्ताओं ने व्यवहार में उसके इस अधिकार को चुनौती दी। **मौला** को अनेक आर्थिक वित्तीय और सामाजिक अयोग्यताओं के अधीन रहना पड़ता था—उदाहरण के लिए व्यक्तिगत नामों और अरब मुसलमानों के साथ विवाह संबंध के प्रश्नों पर। अंततः **मवाली** को अरब मुसलमानों के साथ पूरी बराबरी का दर्जा मिला। इसके कारण मुख्यतः दो थे—प्रथम यह कि गुलामों की शक्ति इस तरह बढ़ी जिससे स्वतंत्र मुसलमानों और स्वतंत्र किये गए मुसलमानों के बीच अन्तर महत्वहीन हो गए और दूसरा यह कि विद्रोहियों का आधिपत्य स्थापित हुआ जिसके अन्तर्गत अरबों और अरब बनाये गये गैर-अरबों के बीच अंतर का अर्थ नहीं रह गया। इन सब की परिणति यह हुई कि मवाली शब्द और उससे द्योतित स्थिति का ही अंत हो गया।

धिम्मी

मुस्लिम समाज का तीसरा वर्ग धिम्मियों या अहल अल-धिम्मा यानी करारनामे के अधीन लोग। यह कानूनी शब्द मुस्लिम राज्य में संरक्षित गैर-मुस्लिम प्रजा के लिए लागू होता था। इन लोगों में ईसाई, यहूदी और पूर्वी जरथुश्तवादी थे जिनके साथ उदारता बरती जाती थी और जिन्हें मुस्लिम समुदाय में, प्राधिकारियों और मुस्लिम राज्य के अधीन निश्चित वैध स्थिति प्राप्त थी। यह स्थिति किसी समझौते या **धिम्मा** द्वारा निर्धारित होती थी जिसे मुस्लिम सम्प्रदाय और गैर-मुस्लिम

समुदायों के बीच किया गया माना जाता था और जो अपने स्वरूप में मुख्य रूप से करारनामे जैसा था। इस धिम्मा या करारनामे के अधीन गैर-मुस्लिम समुदाय इस्लाम की वरीयता और मुस्लिम राज्य का आधिपत्य स्वीकार करते थे और अधीनता की स्थिति में रहने के लिए तैयार होते थे। इसका प्रतीक यह था कि उन पर कुछ सामाजिक प्रतिबंध लगाये जाते थे और जजिया कर देना पड़ता था जो मुसलमानों को न देना पड़ता था। इसके बदले उन्हें जीवन और सम्पत्ति के बारे में सुरक्षा मिलती थी, शत्रुओं से उनकी रक्षा की जाती थी और साथ ही पूजा की स्वतंत्रता और अपने अन्दरूनी मामलों में बड़े परिमाण में स्वायत्तता भी प्रदान की जाती थी। धिम्मियों को गुलामों से अधिक और स्वतंत्र मुसलमानों से कम अधिकार प्राप्त थे। स्वतंत्र मुसलमानों और उनके बीच दो महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अंतर था— एक तो यह कि उन्हें अधिक कर देने पड़ते थे और दूसरे कानूनन वे शस्त्र न रख सकते थे।

पर सामाजिक स्थिति वास्तव में कानूनी स्थिति से भिन्न थी। यदि कानून का कड़ाई से पालन किया जाता तो **धिम्मियों** की स्थिति और अच्छी होती। **धिम्मियों** के विरुद्ध बार-बार राजाज्ञाएँ जारी किये जाने से प्रकट होता है कि उन पर लगाए प्रतिबंधों का नियमित रूप से कड़ाई के साथ पालन न होता था। प्रारंभिक दिनों में धिम्मियों की आबादी अरब प्रायद्वीप को छोड़ अन्य सभी मुस्लिम देशों में बहुमत में थी। यदि वे मान्यताप्राप्त और सहिष्णुता का व्यवहार वाले धर्म जैसे कि यहूदी धर्म या ईसाई धर्म मानने वाले होते थे तो उन पर इस्लाम धर्म स्वीकार करने का कोई दबाव न डाला जाता था। हाँ, बीच-बीच में और अपवाद-स्वरूप उनके विरुद्ध धर्मान्ध मुसलमान उबल जरूर पड़ते थे। साथ ही उन्हें कोई ऐसा कदम उठाने से विरत किया जाता था जिससे राज्य की आय घटे और खर्च बढ़े। पर फिर भी इस्लाम धर्म फैलाने और गैर-मुसलमानों को मुसलमान बनाने का आन्दोलन बढ़ता ही गया और ऐसी स्थिति आई, जिसकी तिथि निर्धारित कर सकना असंभव है और जो स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न समयों में आई, जिसमें कि मध्यपूर्वी देशों और उत्तरी अफ्रिका की आबादी बहुलांश में मुसलमान ही बच रहे और पहले के धर्म या तो ह्रासोन्मुख हो गए और अनेक क्षेत्रों में लुप्त ही हो गए। इसके बावजूद पूर्वी क्षेत्रों, मिस्र, फिलिस्तीन, सीरिया और कुछ सीमा तक ईराक में महत्त्वपूर्ण ईसाई अल्प-संख्यक बच रहे और वहाँ छोटे-छोटे यहूदी अल्पसंख्यक भी अपना अस्तित्व कायम रख सके। अरब के पश्चिम उत्तरी अफ्रिका में ईसाई धर्म बिल्कुल समाप्त हो गया, यद्यपि यहूदी धर्म कुछ सीमा तक बना रहा। ईरान में यहूदी धर्म ११वीं और १२वीं शताब्दी तक पूरी तरह निश्चिह्न-सा हो गया।

इस्लाम को पूरी अवधि के दौरान इस्लामी साम्राज्यों की सरकार और राज्य की प्रशासनिक सेवाओं में यहूदी और ईसाई महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। सरकारी और प्रशासनिक पदों पर घिम्मियों की नियुक्ति के विरुद्ध मुसलमानों में कोई तीव्र भावना न थी। उनके विरुद्ध हिंसा कभी-कभार ही उभड़ती थी। और ऐसा उस स्थिति में होता था जब घिम्मी समुदायों (यहूदियों ईसाइयों आदि) में से किन्हीं के सदस्यों की शक्ति में अनुचित एवं अतर्कसंगत वृद्धि या प्रयोग किया जाता था।

यद्यपि घिम्मियों के प्रति सामान्यतः सहिष्णुता का वर्त्ताव किया जाता था पर उन्हें अपनी नीची हैसियत भूलने न दी जाती थी। मुस्लिम अदालतों में उनकी गवाही स्वीकार्य न थी और चोट लगने की स्थिति में मुसलमानों की तुलना में कम हरजाना मिलता था। वे मुस्लिम महिलाओं से विवाह न कर सकते थे और उनके वस्त्रों, घरों तथा उनके आने-जाने पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए थे। यद्यपि इन प्रतिबंधों पर साधारणतः कड़ाई से अमल न होता था पर उन पर अमल किये जाने का आदेश बराबर दिया जा सकता था। जब कि घिम्मी प्रायः प्रचुर आर्थिक और वित्तीय शक्ति प्राप्त कर लेते थे पर इस शक्ति के साथ उन्हें सामाजिक और राजनीतिक लाभों से वंचित करने की जो प्रणाली थी उस कारण वे चालबाजी और षड्यंत्र से ही उस शक्ति का प्रयोग कर पाते थे उससे खुद घिम्मियों और मुस्लिम समाज और राजनीति-तंत्र पर प्रतिकूल और अवांछित प्रभाव पड़ता था।

दास और इस्लाम में दासता

मुस्लिम समाज का चौथा और अंतिम वर्ग दासों या गुलामों का वर्ग था। इस्लाम-पूर्व अरब में दास-प्रथा पहले से ही चली आ रही थी जब कि दास तो लड़ाई के मैदान में बंदी बनाये जाते थे या अफ्रिका अधिकांशतः इथोपिया और आस-पास के क्षेत्रों से उनका आयात किया जाता था। इस्लाम-पूर्व अरब में दासों (गुलामों) को सुरक्षित करने के लिए कोई कानून न था और उन्हें पूरी तरह अपने स्वामियों की मर्जी पर छोड़ दिया जाता था। इस्लाम धर्म दास-प्रणाली को मान्यता तो देता है पर उसे विनियमित और सीमित कर देता है। स्वामी को दासों पर स्वामित्व का अधिकार तो रहने दिया गया पर उन्हें आदेश दिया गया कि वे उनके साथ दयालुता का वर्त्ताव करें और यदि संभव हो तो उन्हें दासता से मुक्ति दे दें अथवा उन्हें अपनी मुक्ति धन देकर खरीदने दें। यद्यपि कानूनी तौर पर दासों (गुलाम) की स्थिति स्वतंत्र मुसलमानों की अपेक्षा निम्नतर थी पर यदि वह मुसलमान होता था तो धार्मिक तौर पर वह स्वतंत्र मुसलमान का भाई एवं समान स्तर का माना जाता था। यद्यपि प्रारंभिक खलीफाओं ने मुसलमानों को दासता में

रखने की प्रथा को प्रोत्साहन न दिया और खलीफाओं ने इसे असंभव-सा बना दिया पर दास द्वारा इस्लाम धर्म अपनाये जाने के बाद भी उसकी दासता समाप्त न होती थी। मुस्लिम विधिवेत्ताओं का ख्याल था कि मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति स्वतंत्र रहना है और दासता उन्हीं लोगों तक सीमित है जो गुलाम माँ से उत्पन्न हुए हों और वे इस्लाम धर्म अविश्वासी जो युद्ध में बंदी बनाये गए हों।

इस्लाम में दासता प्रथा को मानवीयतापूर्ण बताने की जो कोशिशें की गईं उनका वांछित प्रभाव दो घटनाओं के कारण न हो सका। ये हैं मुसलमानों द्वारा विजित प्रान्तों में रोम के कानून का प्रचलन और व्यवहार पाया जाना और विजय और खरीद-फरोख्त के कारण दासों की संख्या में वृद्धि। दासों को कुछ वैध अयोग्यताएँ झेलनी पड़ती थीं। उन्हें न्याय-व्यवस्था से संबंधित कोई पद न दिया जाता था और वे न्यायालय में गवाही भी न दे सकते थे स्वतंत्र मुसलमानों के मुकाबले गवाही का मूल्य भी कम आंका जाता था और मुसलमानों और दासों के विरुद्ध किये गए एक ही किस्म के अपराध के लिए, दास के विरुद्ध किये गये अपराध में मुसलमानों को उनके विरुद्ध किये गए अपराध के मुकाबले आधी ही सजा मिलती थी। सम्पत्ति और विरासत के मामले में दासों को कम ही नागरिक अधिकार मिले थे। जब दास बूढ़ा हो जाता था तो वह चिकित्सीय सुविधा, भोजन और सहायता का हकदार हो जाता था और काजी या धार्मिक न्यायाधीश दास के स्वामी को आदेश दे सकता था कि यदि वह ये दायित्व पूरा नहीं करता तो अपने दास को मुक्त करना पड़ेगा। स्वामी को आदेश दिया गया था कि वह अपने दास से सहन-शक्ति के बाहर काम न ले और उसके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार करे।

न्याय के सिद्धांत के अनुसार दास को दो तरीकों से दास-कर्म में लगाया जा सकता था या तो दास के यहाँ उनके जन्म से अथवा उसे युद्ध में बंदी बना कर व्यवहार में दास बनाये जाने के दो अन्य तरीके थे या तो वे कर के रूप में प्राप्त होते थे अथवा खरीदे जाते थे। इनमें से दोनों ही किस्मों के दास उन क्षेत्रों से लिए जाते थे जो मुस्लिम राज्य और मुस्लिम कानून के प्रत्यक्ष क्षेत्राधिकार के बाहर पड़ते थे।

इस्लाम की पहली शताब्दी के दरम्यान, महान युद्ध अभियानों के समय, दासों (गुलामों) की उस रूप में भरती उन्हें युद्ध में बंदी बना कर की जाती थी। उसके बाद युद्ध में बंदी बनाये गये गुलामों की संख्या निरन्तर कम होती चली गई। जैसे-जैसे मुस्लिम विजेताओं के क्षेत्रों की सीमाएँ स्थिर होती चली गईं धार्मिक युद्ध के फलस्वरूप गुलामों के संबंध में माँग के अनुपात में उनकी आपत्ति कम होती चली गई। सीमाओं पर आक्रमणों के बाद कुछ लोग बन्दी जरूर बनाये जाते थे (जिन्हें बाद

में गुलाम वनाया जाता था) पर उनको युद्ध में दूसरे पक्ष द्वारा वन्दी वनाये गये मुस्लिम सैनिकों के विनिमय में वापस दे दिया जाता था। भूमध्य सागर में मुस्लिम जल-दस्युओं के कार्य-कलाप और एरिकन, भारतीय और इस्लामी साम्राज्य की मध्य-एशियाई सीमाओं पर युद्ध और आक्रमण के चलते युद्ध-वन्दियों की आपूर्ति हो जाया करती थी जिन्हें वाद में दास वनाया जाता था पर इस्लाम-धर्म के अधिक प्रसार हो जाने के कारण युद्ध में वन्दी वनाये गये लोगों में ज्यादातर मुसलमान ही होते थे, इस लिए उन्हें दास (गुलाम) न वनाया जा सकता था।

हिजरा संवत के ३१वें साल (सन् ६५१-५२) में, मुस्लिम हदीस के अनुसार मिस्र में अरब सेनाओं ने नुवियानों के खिलाफ युद्ध किया। वाद में नूवियानों और अरबों के बीच युद्ध-विराम हो गया जिसके अधीन मुसलमान और नुबियान इस बात पर सहमत हो गये कि वे आपस में एक दूसरे से हमला न करेंगे। समझौते के अन्तर्गत यह तय हुआ कि नुवियान हर वर्ष मुसलमानों को गुलामों की आपूर्त्ति करेंगे और उसके वदले मुसलमान नुवियानों को एक निश्चित परिमाण में मांस और मसूर की दाल दिया करेंगे। कहा जाता है कि इस संधि के अन्तर्गत नूवियानों को हर वर्ष ३६० दासों की आपूर्ति करनी थी। कुछ अधिकारियों के अनुसार नूबियान लोग मुसलमानों को युद्ध के सामान्य लूट के माल के बदले ३६० गुलाम और मुस्लिम गवर्नर के लिए अतिरिक्त ४० गुलाम देने को सहमत हुए। यद्यपि इस संधि की प्रामाणिकता सन्देहास्पद है पर अधिकांश विधिवेत्ता इसे प्रामाणिक मानते हैं। इससे एक सुविधाजनक व्यवस्था का आधार तैयार हो गया जिसके जरिये नूबिया मुस्लिम साम्राज्य के बाहर ही रहा। पर उसे मुसलमानों को कर देना पड़ता था। मुस्लिम कानून के अधीन गुलाम बनाने और अंगच्छेद करने की प्रणाली सीमित कर दी गई। इस प्रकार गुलामों और हिजड़ों की आपूर्त्ति नियन्त्रित हो गई। पर इन दोनों का आयात मुस्लिम साम्राज्य के वाहर के क्षेत्रों से किया जा सकता था और नूविया के रास्ते इनको वाहर से आयात करना सुविधाजनक था।

बाद में खरीद के जरिए इस्लामी साम्राज्य में गुलामों की भरती की जाने लगी। व्यापारी गुलामों को साम्राज्य की सीमा पर दूर-दूर के क्षेत्रों से ले आया करते थे। साम्राज्य की सीमाओं से सुपरिचित रास्तों से होते हुए, अन्दरुनी क्षेत्र के प्रमुख दास-वितरण केन्द्रों तक उन्हें ले जाया जाता था। उत्तरी अफ्रिका, मिस्र और दक्षिणी अरव में अफ्रिकी गुलामों के वितरण-केन्द्र थे। इसी प्रकार दरवंद, एलेप्पो, मोसूल, बुखारा और समरकंद में यूरोप और घास वाले क्षेत्रों (स्टेपी) से लाये जाने वाले गुलामों के वितरण-केन्द्र थे।

दास लोग भिन्न-भिन्न मूलों के होते थे जो मुस्लिम साम्राज्य की सभी सीमाओं से अन्दरूनी क्षेत्र में ले आये जाते थे। स्लाव और अन्य सफेद चमड़ी वाले गुलाम यूरोप से वोल्गा, श्याम समुद्र और कैस्पियन सागर के रास्तों से वैजेन्टाइन साम्राज्य होते हुए भूमध्य सागर के उस पार से लाये जाते थे। अन्य दास काकेशियाई क्षेत्रों और भारत से लाये जाते थे। पर दासों के सबसे महत्त्वपूर्ण समूह थे वे जो उत्तर और दक्षिण से लाये जाते थे। ये यूरेशियाई घास के मैदानों (स्टेपी) के तुर्की और अफ्रिका तथा सहारा के दक्षिण के अश्वेत लोग होते थे। इस्लामी साम्राज्य की दास-आबादी में इनका बहुलांश था।

दासों का गुलामों को विभिन्न कार्यों में नियुक्त किया जाता था। यूनानी रोमन जगत के विपरीत इस्लामी जगत की अर्थ-व्यवस्था मुख्य रूप से दास-आधारित न थी। उसमें कृषि मुख्यतः स्वतन्त्र और अर्ध-स्वतन्त्र किसानों द्वारा की जाती थी। वहाँ उद्योग स्वतन्त्र कारीगरों द्वारा चलाया जाता था। पर इन नियमों में महत्त्वपूर्ण अपवाद भी थे। गुलामों को, मुख्यतः अफ्रिका से लाये गये अश्वेतों को, कुछ क्षेत्रों में बड़े पैमाने की आर्थिक परियोजनाओं में नियुक्त किया जाता था। हमें ऐतिहासिक स्रोतों से यह भी ज्ञात होता है कि बहुत प्रारम्भ से अश्वेत दासों को दक्षिणी ईराक के नमक-बहुल क्षेत्रों को साफ करने के काम में लगाया जाता था। उनकी सामान्य स्थिति बहुत खराब थी जिससे अनेक दास-विद्रोह हुए जिनमें से नवीं ईस्वी सदी में हुए एक विद्रोह से शाही राजधानी के लिए भी भयानक खतरा उत्पन्न हो गया था। अन्य अश्वेत दास ऊपरी मिस्र और सूडान की सोने की खानों तथा सहारा की नमक की खानों तथा अन्य स्थानों में नियुक्त थे।

मुख्य रूप से दास या तो घरेलू कामों तथा सैनिक प्रयोजनों के लिए नियोजित थे। घरेलू कामों में नियुक्त लोग घरों, दूकानों और मस्जिदों में काम करते थे और वे मुख्यतः अफ्रिकी मूल के थे। सैनिक प्रयोजनों के लिए नियुक्त दास इस्लाम की सेना में सैनिकों के रूप में काम करते थे और अन्ततः सेनापति और कभी-कभी स्थानीय शासक भी बन जाते थे। सेना में नियुक्त दास अधिकांशतः तुर्की और कभी-कभी सिरसासियन भी होते थे। यद्यपि काले फौजी दास कभी-कभी, विशेषतः मिस्र और उत्तरी अफ्रिका में भी पाये जाते थे।

दास महिलायें भिन्न-भिन्न मानव जाति-मूलों की थीं। बड़ी संख्या में उनकी भरती इस्लामी जगत के हरमों (रनिवासों) में रखेलियों या छोटे-मोटे काम करने वालों के रूप में होती थी। इन दोनों रूपों में वे जो काम करती थीं उनके बीच स्पष्ट रूप से अन्तर नहीं किया गया है। कभी-कभी दास-महिलाओं को शिक्षा भी

दी जाती थीं। उनमें से कुछ पढ़-लिख कर अरबी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकीं। दासों को अक्सर मनोरंजन कार्यों में प्रशिक्षित किया जाता था और उसी रूप में उनका उपयोग किया जाता था। वे नर्त्तक, गायक और संगीतज्ञ के रूप में उभरते थे। उनमें से कुछ प्रसिद्धि और धन अर्जित करने में भी सफल होते थे। उनका अर्जित धन उनके स्वामियों का होता था और मुक्त हो जाने की स्थिति में उनका अपना। हजरत मुहम्मद ने दास-व्यवस्था, जिस पर प्राचीन समाज आधारित था, स्पष्टतः बिना किसी आपत्ति के स्वीकार की और उसे विश्व के सहज स्वरूप के अंग जैसा माना। उनके आदर्शों में यद्यपि दासों के साथ अमानवीय व्यवहार का अनुमोदन-सा पाया जाता है पर उसके साथ ही उसमें इस बात पर भी जोर दिया गया दीखता है कि दासों की स्थिति में सुधार किए जायें। पर शायद यह उस समय का तकाजा था कि न तो कुरान न हदीसों के किसी अंश को पढ़ कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि दास-प्रथा के उन्मूलन की कोशिशें भी की गई थीं।

दरअसल हजरत मुहम्मद ने दास-प्रथा को एक प्रचलित प्रथा के रूप में पाया। यह प्रथा यहूदियों और अरब के मूर्त्ति-पूजकों दोनों के बीच कायम थी। फलतः कुरान में इसे मान्यता दी गयी है यों उसमें इसे पूरी तरह सम्पुष्टि नहीं दी गई है। अपने स्वामी की तुलना में दास की असहनीय स्थिति इस बात की द्योत्तक है कि अपने सर्जनहार (अल्लाह) के समक्ष अरब के झूठे देवताओं की असहाय स्थिति थी। "अल्लाह ने एक नीति-कथा की रचना की है। उसके अन्तर्गत एक ओर बंधन में पड़ा दास है जो कुछ भी कर सकने में असमर्थ है और दूसरी ओर उसका स्वामी है जिसे अच्छी सामग्रियाँ उपलब्ध हैं और जो उसमें से गुप्त रूप से या खुले ढंग से भिक्षा देता है। क्या वे दोनों समान स्थिति के माने जा सकते हैं ? अल्लाह की प्रशंसा की जानी चाहिए कि इन दोनों में से अधिकांश इस बारे में कुछ नहीं जानते।" (कुरान अध्याय १६; २७)। फिर भी कुरान में कहा गया है कि मुसलमानों को अपने दासों के प्रति दया का वर्त्ताव करना चाहिए। "अल्लाह की सेवा करो और उसके साथ किसी भी चीज को संयुक्त न करो और अपने माता-पिता तथा संबंधियों के प्रति दया दिखलाओ और उनलोगों के प्रति भी जो तुम्हारे अधीन हैं" (कुरान, अध्याय ६,४)। जब दास अपने को मुक्त कराने की स्थिति में हो तो मुसलमानों का यह फर्ज होता है कि उन्हें मुक्त कर दें। इस संबंध में कुरान में पुनः उल्लेख है कि "तुम्हारे अधीन लोगों में से जो तुमसे लिखित कागज (अर्थात मुक्ति के दस्तावेज) की माँग करे तो यदि उनके किसी अच्छे गुण या गुणों के बारे में जानते हो तो दस्तावेज लिख दो और इस प्रकार उन्हें अल्लाह के उस धन के उपभोग का अवसर दो जो उसने तुम्हें दिया है। और यदि दास-महिलायें अपनी स्थिति से संतुष्ट

रहने की इच्छा करती है तो उनको वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य न करो" (कुरान, अध्याय २४, ३३।)

फिर भी कुरान की शिक्षाओं से जो ऊपर उद्धृत की गई है देखा जा सकता है कि युद्ध में लूट के रूप में पाये गये सभी स्त्री और पुरुष अपने स्वामी की वैध सम्पत्ति हैं और यह भी कि स्वामी को यह अधिकार है कि गुलाम महिलाओं में से किसी को चाहे वह विवाहित हो या कुंवारी अपने अधीन रख सकता है। शिक्षाओं से यह भी प्रकट होता है कि दास की स्थिति उसी प्रकार असहाय है जिस प्रकार पाषाण-मूर्तियाँ। पर उनके साथ दया का वर्त्ताव किया जाना चाहिए और वे यदि अपनी मुक्ति के लिए मांग करने में समर्थ हो सके और उसके लिए मुआवजा देने को तैयार हों तो उन्हें मुक्त कर दिया जाय।

हदीस की शिक्षाओं से प्रकट होता है कि मुहम्मद साहब की यह प्रणाली थी कि युद्ध में जो शत्रु बंदी बनाये जायें उन्हें या तो जान से मार डाला जाय अथवा बंदी बना कर रखा जाय। यदि बंदी व्यक्ति युद्ध-स्थल पर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता है तो उसे स्वतंत्र व्यक्ति माना जाना चाहिए पर यदि बंदी बनाये जाने के बाद कभी वह इस्लाम धर्म अपनाता है तो धर्म-परिवर्तन से उसे मुक्ति नहीं मिल सकती।

गुलाम को मुक्ति देने वाले मुसलमानों के लिए विशेष आशीर्वाद मिलने की बात कही गई है। इतिहासकार अबू हरेरा कहता है कि हजरत मुहम्मद कुरान में इस संबंध में बतलाते हैं—"जो मुसलमान दासों को मुक्ति देता है उसके परिवार के हर सदस्य को उसके अंग-प्रत्यंग के साथ उद्धार मिलेगा और नर्क की आग से बचा रहेगा।" अबू जार ने पूछा कि कौन ऐसा दास है जो मुक्ति का सर्वाधिक अधिकारी है। उत्तर में पैगम्बर ने कहा कि "जिसका सबसे अधिक मूल्य है और जिसे उसका स्वामी सबसे ज्यादा पसंद करता है।" एक बार एक अरब ने पूछा कि आदमी अपने किस कार्य से बिहिश्त में जा सकेगा तो मुहम्मद साहब ने जवाब दिया—"गुलाम को मुक्त करो और गुलामी से स्वतंत्रता की इच्छा रखने वाले की सहायता करो।"

मुहम्मद साहब ने गुलामों के साथ वर्त्ताव के बारे में निम्नलिखित बातें कहीं हैं :—

"गुलाम के लिए यह अच्छी बात है जो नियमित रूप से अल्लाह की इबादत करता है और अपने स्वामी का काम ठीक तरह से अंजाम देता है।"

"जो कोई गुलाम खरीदता है और उसकी सम्पत्ति रखने पर सहमत नहीं होता तो गुलाम खरीदने वाले के लिए सम्पत्ति का कोई भी हिस्सा जायज नहीं है।"

"जब तुम्हारे गुलाम के पास अपनी मुक्ति के लिए धन है तो तुम्हें उसे अपने सामने नहीं आने देना चाहिए।"

"दास के साथ अच्छा वर्त्ताव समृद्धि का साधन है और बुरा सलूक नुकसान का जरिया।"

"जब तुममें से कोई अपने गुलाम को पीटने के लिए तैयार हो और गुलाम अल्लाह के नाम पर माफी माँगे तो उसे पीटने से अपने को रोक लो।" आदि

वंदियों को दास वनाया जाना

वाद में इमाम (खलीफा) का युद्ध में वंदी वनाये गये सैनिकों के वारे में, यह अधिकार था कि वे उन्हें जान से मार दें। इसका कारण यह था कि उन्हें मार डालने से उनकी दुष्टता खत्म हो जाती थी या यदि इमाम चाहते थे तो उन्हें गुलाम बना लेते थे क्योंकि गुलाम वना देने से उनकी दुष्टता का सुधार हो जाता था और साथ ही इससे मुसलमानों को लाभ भी होता था। जैसा कि द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर की इस संवंध की नीति के वारे में पता चलता है यदि इमाम (खलीफा) उचित समझता है, वह युद्ध के वंदियों को रिहा भी कर सकता है ताकि वे स्वतंत्र व्यक्ति और जिम्मी वना देता है। पर इसके साथ यह वैध नहीं माना जाता है कि अरब के मूर्त्तिपूजकों या स्वधर्मत्यागियों को रिहा किया जाय। इमाम के लिए यह भी वैध नहीं है कि वंदियों को उनके देश वापस किया जाय क्योंकि ऐसा करने से मुसलमानों के विरुद्ध इस्लाम-विरोधी अधिक शक्तिवान वनेंगे। यदि वंदी मुसलमान वना दिये जाते हैं तो इमाम उन्हें, मौत के घाट नहीं उतारता क्योंकि इस प्रकार उन्हें मार डालने के विना ही उनकी दुष्टता खत्म कर दी जाती है। उनके द्वारा इस्लाम धर्म अपनाये जाने के वाद उन्हें गुलाम बना लिया जाता है। उन्हें गुलाम वना लिए जाने (अर्थात् उन्हें मुसलमानों के क्षेत्र में सुरक्षित रखने) की स्थिति उनके इस्लाम धर्म अपनाने के पूर्व भी थी। और जैसा कि ऊपर हजरत मुहम्मद की इस संवंध की नीति के वारे में कहा जा चुका है, यदि गैर-मुसलमान वंदी वनाये जाने के पूर्व ही इस्लाम धर्म अपना लेते हैं तो उन्हें उनके इस्लाम धर्म अपनाने के पूर्व गुलाम वनाने का औचित्य न था। यह विधि-संगत नहीं है कि गैर-मुसलमानों द्वारा वनाये गये मुसलमान वंदियों के बदले गैर-मुस्लिम वंदियों को मुक्त किया जाय। हजरत मुहम्मद के दो शिष्यों के अनुसार यह विधि-संगत है। यही विचार प्राचीन मुस्लिम विधि-वेत्ता अश-शफी का भी है। इमाम अबू हनीफा का तर्क है कि गैर-मुसलमान वंदियों के साथ मुसलमान वंदियों का विनिमय करने से इस्लाम-विरोधियों को सहायता मिलती है क्योंकि इस प्रकार मुक्त किये गये वंदी पुनः मुसलमानों के साथ

युद्ध कर सकते हैं जो एक दुष्टता का कार्य होगा और इस दुष्टता को रोकना मुसलमान बंदियों की रिहाई कराने से ज्यादा उचित है। ऐसा इसलिए कि यदि मुसलमान वंदी यदि गैर-मुसलमान पक्ष के हाथों रहते हैं तो इसका नुकसान सिर्फ उन्हें उठाना पड़ता है जिसका असर दूसरे मुसलमानों पर नहीं पड़ता जब कि गैर-मुस्लिम वंदियों की रिहाई से होने वाले नुकसान से समूचा मुस्लिम सम्प्रदाय पीड़ित होगा। सम्पत्ति लेकर वंदियों की रिहाई भी अनुचित और अवैध है क्योंकि उससे भी, जैसा कि ऊपर कहा गया है, गैर-मुसलमानों की सहायता होगी। धार्मिक ग्रन्थ शेरू-ल-कबीर में कहा गया है कि जहाँ मुसलमानों को धन की आवश्यकता हो वहाँ धन या सम्पत्ति लेकर गैर-मुस्लिम बंदियों को रिहा किया जा सकता है क्योंकि स्वयं हजरत मुहम्मद ने वद्र के युद्ध के वाद मुक्ति-धन लेकर वंदियों को रिहा किया था।

गुलामों की खरीद-बिक्री अनुमत नही है पर मुस्लिम कानून में उसके लिए स्वीकृति दी गई है। हदीसों में मुहम्मद साहब के कार्यों के उदाहरणों से गुलामों की खरीद-बिक्री के लिए स्वीकृति दी गई है। मुस्लिम कानून में पुरुष और महिला गुलामों की खरीद-बिक्री को उसी प्रकार लिया जाता है जिस प्रकार व्यापार की चीजों की खरीद-बिक्री को। कुरान के अध्याय १ में सामान्यतः गुलामों के बारे में बिक्री चुनाव के अधिकार, तत्संबंधी वसीयतनामों और दृष्टान्तों के बारे में ब्योरे दिए गए हैं। इसी प्रकार के या इससे मिलते-जुलते नियम जानवरों और बंधन में रखे गये लोगों के बारे में भी लागू हैं।

उत्तरी देशों की नीग्रो महिलाओं का, अन्य महिलाओं की तुलना में, बाँझपन अच्छा माना जाता था क्योंकि मुस्लिम जगत यह नहीं चाहता था कि उनके क्षेत्र में आयात की हुई नीग्रो दास-महिलाओं और मुसलमानों से उत्पन्न उनके पुत्र की ाढ़-सी आ जाय।

आज के नीग्रो-दासों की भाँति, अश्वेत घरेलू दास मुख्यतः द्वारपाल के रूप में नयुक्त किये जाते थे। उस समय के समाज में सब चीजों से अधिक अच्छी कविता, मधुर संगीत और कला की दृष्टि से प्रतिभावान और प्रशिक्षित लड़के-लड़कियों ी अनिवार्य रूप से बड़ी मांग थी। अब्बासिद खलीफा हारून-अल-रशीद के ामय किसी प्रसिद्ध संगीतज्ञ के यहाँ प्रायः अस्सी दास-कन्याओं को संगीत का शिक्षण दिया जाता था। और संगीत में प्रशिक्षित इन लड़कियों में से हरेक का ल्य १०,००० से २०,००० मुद्रा था। कुछ अपेक्षाकृत धनहीन कलाकार बड़े ास-व्यापारियों के घर कलाकारों को प्रशिक्षण दिया करते थे। सन् ९१८ में ाजधानी में पेशेवर गायिकाओं में ऐसे कम ही थीं जो गुलाम न हों।

जहाँ तक गुलामों के मूल्य का संबंध था श्वेत रंग के गुलामों को, जो गुलामों के रईस वर्ग में आते थे, स्थिति कुछ दूसरी ही थी। कोई सुन्दर पर संगीत कला में अप्रशिक्षित अश्वेत दास-कन्या का मूल्य १००० दीनार या अधिक था। मुस्लिम कानून के अनुसार साम्राज्य के नागरिक और नव-इस्लाम-धर्मान्तरित गुलाम न बनाये जा सकते थे। खास तौर से, अन्य देशों के विपरीत, अपराध करने पर भी उनको दास न बनाया जाता था। यहाँ तक कि मुस्लिम माता-पिता अपने बच्चों को दास बनाये जाने के लिए बेचते न थे जब कि यहूदी पिता अपनी छोटी उम्र की कन्याओं को बेच दिया करते थे। नौंवी ईस्वी सदी में जब मिस्री ईसाई विद्रोह करने पर बंदी बनाये जाते थे तो उन्हें दमिश्क में दासों के रूप में बेचा जाता था। पर यह प्रक्रिया गैर-कानूनी मानी जाती थी और इसका तीव्र विरोध होता था।

श्वेत दासों की आपूर्ति तुर्कों और उस बहुसंख्य वंश के लोगों तक सीमित रही जिन्होंने अपने वंश को यूरोपियन नाम "दी स्लावेज" दे रखा था। दासों के व्यापार में इस वंश के दासों का मूल्य तुर्की दासों से अधिक माना जाता था। ख्वारिज्मी नामक विद्वान कहता है कि—"हम तुर्की दास उसी स्थिति में लेते हैं जब अन्य वंशों और जातियों के दास उपलब्ध नहीं होते।" वोल्गा-बुलगारियनों की राजधानी वोल्गा से दासों को आक्सस नदी ले जाया जाता था। समरकंद सबसे अच्छे श्वेत दासों की आपूर्ति के लिए सबसे बड़ा दास-बाजार था। समरकंद आधुनिक काल में जेनेवा या लौसाने की भाँति अपने शिक्षा-धंधे पर जीविका के लिए निर्भर था। स्लाविक राष्ट्रियताओं के दासों को ले जाने के लिए दूसरा आयात-मार्ग जर्मनी होते हुए स्पेन और प्रावेन्स तथा इटली के भूमध्य सागरीय बंदरगाहों तक पहुँचता था। यूरोप में दासों के प्रायः सभी व्यापारी यहूदी थे।

नगरों में यहूदियों द्वारा संचालित दास-बाजारों के प्रभारी विशेष अफसर थे। नौंवीं ईस्वी सदी में समारा में बनाये गये एक दास-बाजार का हमें विवरण मिलता है। यह एक चतुष्कोणीय स्थान में था जहाँ गलियाँ एक दूसरे को काटती हुई फैली थीं। इनमें स्थित मकानों में निचले और ऊपरी कमरे और दासों की बिक्री के लिए दूकानें थीं। किसी अच्छे वर्ग के दास के लिए यह सर्वथा अपमानजनक था कि उसकी बिक्री किसी निजी घर में या प्रमुख दास-व्यापारी के माध्यम से न हो। उन दिनों दासों के व्यापारियों की ख्याति उस प्रकार की न थी जिस प्रकार आज घोड़े के व्यापारी की है। एक मिस्री गवर्नर की मंच से निन्दा इस कारण की गई कि वह "एक झूठा दास-व्यापारी" था। नियमतः किसी को उत्सव या ऐसे ही किसी दिन बाजार में दास न खरीदने चाहिए थे। एक दास-व्यापारी के इस

कथन का विवरण मिलता है कि—"किसी दास-कन्या के शरीर पर एक दिरहाम के चौथाई मूल्य की मेंहदी लगा देने से उसका मूल्य १०० दिरहाम बढ़ जाता है।" दास-व्यापारी अपनी बिक्री की दास-कन्याओं के बालों में रंगीन बाल बांध देते थे ताकि वे लंबे मालूम पड़ें। नाक की दुर्गन्ध खत्म करने के लिए सुगंधित तेलों का और दांतों को साफ बनाने के लिए पोटाश और चीनी या नमक-चूर्ण इस्तेमाल किया जाता था।

दास-व्यापारी अपनी दास-कन्याओं को सलाह देते थे कि बूढ़े और संकोची खरीददारों के समक्ष अपने को मनमोहक बनाएं तथा जवान खरीदारों के समक्ष चुप रह कर तथा अपने को उनसे दूर-सा रख कर उनकी भावनाओं को उत्तेजित करें और उनका दिल जीतें। वे लोग श्वेत दास-कन्याओं की उंगलियों के नख लाल रंग से और अश्वेत कन्याओं के नख-रंग तथा पीले-सुनहरे रंग से रंग देते थे और इसके विपरीत रंगों के फूलों के मेल से अपने को सुन्दर बनाने वाली प्रकृति की नकल करते थे। ये विवरण प्रसिद्ध ईसाई चिकित्सक इब्न बौतलान (ग्यारहवीं ईस्वी सदी) की पुस्तक की भूमिका से लिए हैं जो दासों के सफल बिक्री के तरीकों के बारे में लिखी गई थी।

उस पुस्तक में कहा गया है—"भारत की महिलाएँ नम्र होती हैं पर जल्द ही बूढ़ी हो जाती हैं। भारत के लोग खूबसूरत दस्तकारी में अच्छे प्रबंधक एवं प्रवीण होते हैं पर बहुत कम उम्र में पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं। भारत की दास-महिलाएँ अधिकांशतः कांधार से लाई जाती हैं। सिन्ध की औरतें अपनी पतली कमर और लंबे बालों के लिए प्रसिद्ध हैं। मदीना की औरतों में सौम्यता, गरिमा और चोचलों तथा मजाकियापन एक साथ ही होता है। वह न तो ईर्ष्यालु, न बुरे स्वभाववाली और न ही झगड़ालू होती है। वह बहुत अच्छी गायिका भी होती है। मक्का की औरत नाजुक, छोटी एड़ियों और कलाइयों वाली होती हैं और साथ ही उसकी आँखें उदास होती हैं। तैफ की औरतें, जो सुनहले-भूरे मिश्रित रंग की पतली-दुबली होती हैं, बच्चा जनने के समय अक्सर मर जाती हैं। दूसरी ओर बर्बर जनजाति की महिलाएँ बच्चे जनने में अपना सानी नहीं रखतीं। वे अक्सर कुछ हद तक विषादपूर्ण मुद्रा में रहती हैं पर वे हर काम के लिए तैयार रहती हैं।"

उस समय दास-व्यापार के दलाल अबू उस्मान का कहना है कि बर्बर जन-जाति की लड़कियाँ एक आदर्श दास महिला बनती हैं। वे अपने देश से नौ वर्ष की उम्र में लाई जाती हैं, तीन वर्ष मदीना में रखी जाती हैं और तीन वर्ष मक्का में। सोलह साल की उम्र में उन्हें मेसोपोटामिया लाया जाता है ताकि वे ऊँचे किस्म की योग्यताएँ हासिल कर सकें और इस प्रकार पच्चीस वर्ष की उम्र में जब उन्हें बेचा

जाता है तो उनमें इन सभी स्थानों के गुण मिश्रित रूप में आ जाते हैं। अबीसीनिया की औरतें कुछ अवगुणों के बावजूद निर्भरयोग्य होती हैं और उनके क्षीण शरीर में एक दृढ़ चरित्र होता है। अबीसीनिया और नूबिया के बीच स्थित बुज्जा की महिलाओं का रंग सुनहला, सुन्दर चेहरा, कोमल चमड़ी पर प्रेम न किये जाने लायक आकृति होती है। सभी अश्वेत महिलाओं में नूबिया की महिलाएँ स्थिति से समझौता करने वाली तथा प्रसन्न स्वभाव की होती हैं।

दास बाजारों में नीग्रो दास बड़ी संख्या में मिलते हैं। वे ज्यादा काले रंग के और भद्दे होते हैं। उनके दाँत नुकीले होते हैं। उनमें महत्त्वाकांक्षा नहीं होती, साथ ही वे चंचल चित्त-वाले और असावधान होते हैं। उनके स्वभाव का एक अनिवार्य अंग नाचना और मारना-पीटना होता है।

"तुर्की की महिलाएँ साफ चमड़ी वाली एवं गरिमा और जीवन से पूर्ण होती हैं। उनकी आँखें छोटी पर मोहक होती हैं। वे गठीले बदन पर छोटे कद की होती हैं। उनमें लंबी महिलाएँ कम होती हैं। उनमें अधिक बच्चे जनने की भी क्षमता होती है और उनके बच्चे शायद ही भद्दे होते हैं। वे घुड़सवारी भी नहीं जानती पर वे उदार और साफ आदतों वाली होती हैं। वे रसोई भी अच्छी बनाती हैं पर निर्भर योग्य नहीं होतीं।"

"यूनानी महिलाएँ लाल सफेद मिश्रित रंग की होती हैं। उनके बाल चिकने और आँखें नीली होती हैं। वे आज्ञाकारिणी, स्थिति से समझौता करने वाली और अच्छे इरादों की विश्वसनीय महिलाएँ होती हैं। यूनानी पुरुष दास अच्छे गृह प्रबंधक होते हैं क्योंकि वे अच्छी व्यवस्था रखनेवाले एवं कम खर्चीले होते हैं। अक्सर वे अच्छी दस्तकारी में भी प्रशिक्षित होते हैं।"

दासों की मुक्ति

ऊपर बतलाया जा चुका है कि कुरान और हदीस में दासों की मुक्ति दासों के स्वामी के लिए एक प्रशंसनीय काम बतलाया गया है, विशेषतः कुछ कुकर्मों के, जैसे कि स्वतः मानव-हत्या के प्रायश्चितस्वरूप या उनके द्वारा मुक्ति के लिए माँग किये जाने और इसके लिए उनके योग्य होने की स्थिति में। मुस्लिम कानून में दासों की मुक्ति निम्नलिखित रूपों में अनुमत की गई है : (१) अताक, (२) किताबा, (३) तदबीर और (४) इस्तिलाद। अताक का शाब्दिक अर्थ शक्ति है। कानून में दास (पुरुष या महिला) की मुक्ति के कार्य की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि स्वामी उन्हें तत्काल और बिना किसी शर्त के मुक्त कर देगा। यह कार्य उस

स्थिति में वैध माना गया है जब उसका स्वामी स्वतंत्र, विवेकमुक्त, वयस्क और सम्बद्ध दास का वास्तविक स्वामी हो। यदि वह अपने दास से कहता है कि—"तू स्वतंत्र है" या "तू अल्लाह को समर्पित है" या ऐसे किसी और वाक्य का प्रयोग करता है तो दास स्वतः मुक्त हो जाता है भले ही स्वामी अपने मन में वास्तव में उसे मुक्त करने की इच्छा रखता हो या नहीं।

किताबा का शाब्दिक अर्थ "लिखित रूप" है जिसका अर्थ हुआ कि दास (पुरुष या महिला) द्वारा हरजाना दिये जाने के बदले मुक्ति का दस्तावेज लिख कर उसे मुक्त करना। यह कुरान की इस इच्छा पर आधारित है कि—"तुम्हारे दाहिने हाथ के अधीन जो लोग (दास) हैं यदि लिखित दस्तावेज द्वारा मुक्त होने की इच्छा प्रकट करें तो वह दस्तावेज लिख डालो यदि तुम्हें उनमें कुछ अच्छे गुण दीखते हों।" (कुरान, अध्याय २६,३३)। हजरत मुहम्मद ने इसके लिए अनुशंसा की है यद्यपि वास्तव में उसे आदेश माना जाता है। मुक्ति के लिए क्षतिपूर्त्ति-धन देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध गुलाम उस समय तक **मुकातब** कहा जाता है जब तक वह क्षतिपूर्ति धन पूरी तरह चुका नहीं देता। स्वतन्त्रता के बाद और क्षतिपूर्ति-धन चुकाये जाने की बीच की अवधि में **मुकातब** नाम से जाना जाने वाला दास कुछ सीमा तक स्वतंत्रता का उपभोग करता है पर कुछ प्रतिबंध रहते हैं। उदाहरण के लिए इस अवधि में वह एक स्थान से दूसरे स्थान जा सकता है पर स्वामी की अनुमति के बिना विवाह नहीं कर सकता और न ही भीख दे सकता है और न किसी की जमानत ले सकता है या न किसी को ऋण दे सकता है, न तो यात्रा पर जा सकता है आदि।

दास-मुक्ति का तीसरा रूप **तदबीर** है जिसका शाब्दिक अर्थ हुआ "प्रबंध, व्यवस्था, योजना" आदि। कानून की भाषा में इसका अर्थ हुआ कि दास (पुरुष या महिला) की मुक्ति उसके स्वामी की मृत्यु के बाद प्रभावकर होगी। ऐसे मामलों में यदि दास का स्वामी कहता है कि "तू मेरी मृत्यु के बाद स्वतंत्र हो जाएगा" या "तू मुदाबिर है" या इसी प्रकार के किन्हीं अन्य शब्दों का प्रयोग करता है तो वह स्वामी की मुक्ति के बाद मुक्ति का दावा कर सकता है। उसके द्वारा इस बीच उत्पन्न बच्चों की भी यही स्थिति होती है।

इस्तिलाद का शाब्दिक अर्थ "बच्चों का दावा" होता है जिसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि स्वामी को अपनी दास-महिला से बच्चा पैदा होता है जिसके अपने बच्चे होने के बारे में वह दावा करता या उसे इस रूप में स्वीकार करता है। स्वामी द्वारा यह स्वीकृति स्वयं दास-महिला की मुक्ति का कारण बन जाती है। तब वह महिला **उम्मू-ल-वलद** (बच्चे की माँ) कही जाती है और उसका दर्जा अपने स्वामी की पत्नी के जैसा होता है और उससे उत्पन्न बच्चा भी मुक्त ही माना जाता है।

दास-मुक्ति के उपर्युक्त रूपों के अलावा यह भी सुस्थापित तथ्य है कि उनकी मुक्ति स्वामी के कुछ पापों के लिए वैध दंड या प्रायश्चित स्वरूप है। इन पापों में रमज़ान का उपवास तोड़ना भी शामिल है। इन पापों के प्रायश्चित-स्वरूप या तो दास को मुक्त किया जाता है अथवा दास-गरीब व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है। किसी अविचारित शपथ और जिहार नाम से जाने जाने वाले तलाक के अविचारित रूप के लिए भी प्रायश्चित किये जाने की व्यवस्था दी गई है।

दासों के साथ वर्त्ताव

ऊपर बतलाया जा चुका है कि कुरान की शिक्षाओं और हदीसों में दिए हजरत मुहम्मद के आदेशों के अनुसार दासों के प्रति दया का वर्त्ताव करने का बड़ा आदेश दिया गया है। यहाँ यह भी बतला देना अप्रासंगिक न होगा कि मुस्लिम देशों में गुलामों के साथ वर्त्ताव, अमेरिका में, जबकि ईसाइयों के बीच दास-प्रथा थी, दासों के वर्त्ताव के अनुरूप ही था। हजरत मुहम्मद ने अपनी इन शिक्षाओं में दासों के प्रति दया के बत्तवि का कड़ा आदेश दिया है जैसे कि—"अपने दासों को वही भोजन दो जो तुम स्वयं करते हो और वैसे ही कपड़े दो जो तुम स्वयं पहनते हो और उन्हें वैसा काम करने का आदेश न दो जिसे करने की शक्ति उनमें नहीं है।" इस आदेशों का सामान्यतः पूरी तरह या कुछ सीमा तक अवश्य पालन किया जाता है।

दासों को कोई नागरिक स्वतंत्रता नहीं होती थी। वे अपने स्वामियों के प्राधिकार के अधीन पूरी तरह होते थे, चाहे स्वामी का धर्म या उम्र जो भी हो या चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। स्वामी का दास पर पूरा अधिकार रहता था। दास की अपनी कोई सम्पत्ति न होती थी और वह कोई सम्पत्ति भी मालिक की ही अनुमति से रख सकता था। यदि दास-महिला को स्वामी से कोई बच्चा होता था या उसका बच्चा माना जाता था तो वह इसके लिए स्वतंत्र था कि उसे अपने बच्चे के रूप में स्वीकार करे या नहीं। यदि उस बच्चे को स्वामी अपने बच्चे के रूप में मान्यता देता था तो उसे वे ही अधिकार मिलते थे जो किसी स्वतंत्र पत्नी से उत्पन्न उसके बच्चे को मिलते थे।

स्वामी अपने दास को किसी को भी दे सकता था या उसके हाथों बेच सकता था। स्वामी दास या दासी का विवाह भी अपनी इच्छानुसार कर सकता था पर विवाह हो जाने पर वह दास या दासी को अपनी पत्नी या पति से अलग न कर सकता था। इस्लाम विधि-वेत्ताओं के अनुसार दास एक ही साथ दो पत्नियाँ न रख सकता था। मुक्त न किये गए दास अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों

की सम्पत्ति बन जाते थे। यदि मुक्त न किये दास की मृत्यु हो जाती थी और वह अपने पीछे कोई पुरुष उत्तराधिकारी या उसके समानान्तर अपना कोई संबंधी न छोड़ जाता था तो उसका स्वामी ही उसकी मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी बन जाता था और यदि स्वामी की भी मृत्यु हो जाती थी तो उसके उत्तराधिकारी मृत दास की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बनते थे। चूंकि दास को स्वतंत्र व्यक्ति से कम अधिकार प्राप्त थे इसलिए, इसकी क्षति-पूर्तिस्वरूप इस्लामी कानून में यह व्यवस्था है कि किसी अपराध के लिए उसे स्वतंत्र व्यक्ति की तुलना में उसे आधा ही दंड मिलता था। यदि दास को अपराध के लिए जुर्माना या आर्थिक क्षतिपूर्ति देना आवश्यक होता था तो उसका भुगतान स्वामी को ही करता था या दास पर क्षति-पूर्ति की राशि देने का दंड लगाया जाता था तो वह राशि आवश्यक होने पर दास के मूल्य के बराबर होनी चाहिए या क्षतिपूर्तिस्वरूप दासों को दे देना चाहिए।

एक पुस्तक है अखलाक-ई-जिलाली जो मुसलमानों के बीच व्यावहारिक दर्शन पर एक लोकप्रिय प्रबंध है। उसमें कहा गया है कि एक स्वतंत्र व्यक्ति के मुकाबले दास से सेवा लेना ज्यादा अच्छा है। दास को अपने स्वामी की आदतों और कार्यों के साथ सामंजस्य के लिए बराबर उद्यत रहना चाहिए, उसकी आज्ञा माननी चाहिए और अपने को उसकी इच्छाओं के अनुरूप ढालना चाहिए।

कुछ आधुनिक मुस्लिम लेखक कहते हैं कि हजरत मुहम्मद ने दास प्रथा को अस्थायी रूप में स्वीकार किया था। वे लोग यह भी कहते हैं कि मुस्लिम विचारों की प्रगति या परिस्थितियों के बदलाव से दास प्रथा का उन्मूलन निश्चित है। पर वास्तविकता यह है कि इस्लाम में दास प्रथा उनके विवाह, बिक्री और उत्तराधिकार संबंधी कानूनों के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। उसके उन्मूलन से मुस्लिम धर्म के नींव पर ही कुठाराघात होगा।

दास प्रथा का इस्लाम की भावना के साथ पूरा सामंजस्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अरब में गैर-इस्लाम कानूनों के अधीन दासों की जो स्थिति थी उसमें हजरत मुहम्मद ने सुधार किया। पर इसके साथ यह भी निश्चित है कि अरब विधि-विशेषज्ञों ने दास-प्रथा को स्थायी संस्था का रूप देने की कोशिश की थी।

लेखक वर्ग

मध्यकालिक मुस्लिम लेखक इस्लामी समाज को दो वर्गों में बांटते हैं। एक वर्ग में साहित्यिक और विद्वान आते हैं और दूसरे में युद्ध एवं सैनिक कार्य-कलाप में लगे लोग। दूसरे वर्ग में अपनी सभी शाखाओं के साथ सैनिक लोग आते हैं और पहले में गैर-सैनिक अधिकारी, धार्मिक लोग एवं लेखक-विद्वान आदि।

यह विरोधाभासपूर्ण बात है कि मध्यकालिक इस्लाम में उस काल के ईसाई जगत के विपरीत धर्म और राज्य के बीच कोई अंतर न माना जाता था। पर फिर भी वहाँ एक ऐसी चीज विकसित हुई जो मध्यकालिक पश्चिम में विकसित न हो सकी थी। वह चीज थी यह धर्म-निरपेक्ष साक्षर एवं साहित्यिक वर्ग का उदय जो धार्मिक लोगों से सर्वथा पृथक एवं भिन्न था। राज्य का पदाधिकारी वर्ग मुसलमानों को पूर्ववर्त्ती बेजेन्टाइन और ईरानी शासकों से विरासत के रूप में प्रारंभिक खलीफाओं के अधीन बात पूर्णतः शाब्दिक अर्थ में सच थी। इस्लामी सरकार के दफ्तरों में बैजेन्टाइन और ईरानी अफसर ही थे—पूर्वी क्षेत्रों में और पश्चिमी क्षेत्रों में ईसाई अफसर पुराने तरीकों और पुराने नियमों के अनुसार ही जनता पर कर निर्धारित करते और उसकी वसूली करते थे। कर उगाह कर वे ईरानी या बैजेन्टाइन शासकों को नहीं बल्कि अरब शासकों को दिया करते थे। यहाँ तक कि प्रशासन की भाषा भी पहले ही की जैसी ही रह गई—साम्राज्य के पूर्वी क्षेत्रों में ईरानी और पश्चिमी क्षेत्रों में यूनानी। पर समय के क्रम में पुरानी भाषाओं का उपयोग कम होता गया और उनके स्थान पर अरबी का प्रयोग बढ़ता चला गया। समूचे साम्राज्य में शनैः-शनैः एकीकृत प्रशासन-व्यवस्था लागू की गई। विभिन्न मूलों के ऊपर वर्णित धिम्मी पदाधिकारी वर्ग में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते गए। यहाँ तक जब प्रशासन में मुसलमानों का पूर्ण आधिपत्य भी हो गया तो भी पदाधिकारी वर्ग में अनेक लोग ईरानी, पुराने मिस्री और अन्य गैर अरब मूल के थे। यहाँ तक कि बहुत बाद की शताब्दियों में भी ईसाई और किन्हीं-किन्हीं मामलों में यहूदी सार्वजनिक सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते रहे।

पदाधिकारी वर्ग के सदस्यों के लिए कातिब या लेखक शब्द का प्रयोग होता था। इस्लामी समाज में कातिबों या लेखकों की संख्या बहुत काफी थी और उनका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता था। उनका बाहरी वस्त्र दारा या एक प्रकार की पोशाक होती थी। उनमें प्रधान विजीर होता था जो सम्राट के अधीन सर्वोच्च गैर-सैनिक पदाधिकारी होता था। वे लोग महत्त्वपूर्ण गैर-लिपिक किस्म के पढ़े-लिखे लोग होते जो अपनी एक विशिष्ट शिक्षा प्राप्त किये रहते थे जो प्रधानतः साहित्य-विषयक होती थी। अरबी साहित्य का अधिकांश भाग इसी लेखक वर्ग द्वारा रचित है जिसमें इनके दृष्टिकोण, अपेक्षाओं और आदर्शों का प्रतिबिंब मिलता है। इस वर्ग के लोगों को सिक्कों में तनख्वाह मिलती थी जो इनमें से ऊँचे वर्गों के लोगों में बहुत अधिक होती थी। बाद की अवधि में धन-प्रधान अर्थ-व्यवस्था के पतन के साथ इन्हें तनख्वाह के रूप में भूमि या राजस्व में से हिस्सा मिलने लगा।

उच्च मध्य वर्गों में फौजी शासनों के उदय से गैर-सैनिक पदाधिकारियों की स्थिति में कुछ अवनति हुई। फिर भी वे सरकार के कार्य-कलाप में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते रहे तथा मध्यकालिक इस्लामी राज्यों के स्थायित्व और निरन्तरता में विशिष्ट योगदान करते रहे। उदाहरण के लिए १३वीं सदी से १६वीं सदी तक की लम्बी अवधि में मिस्र के मामलुक सुल्तान राजवंश कायम रहने की स्थिति के लिए मिस्र और सीरिया के गैर-सैनिक अधिकारियों का उतना ही योगदान था जितना कि तुर्की और सरकासियन मामलुक सैनिकों का। इस सेवा में कुछ अंशों में क्षेत्र के मूल निवासी और कुछ अंशों में मामलुक अमीरों के अरब बना लिए गए इस्लाम धर्मान्तरित वंशज थे। मामलुकों की शासन-प्रणाली की आवश्यकताओं के चलते उन्हें फौजों के नियन्त्रक विशिष्ट वर्ग से स्वयं बाहर रखा गया था।

इस्लाम धर्म में उस अर्थ में पुरोहित वर्ग न था जो पूजक और अल्लाह के बीच किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे। साथ ही ऐसा कोई विधान भी न था कि धार्मिक कृत्यों के लिए एक विहित पुरोहित की आवश्यकता हो। फलतः समाज या राज्य में पुरोहितों का अपना कोई पृथक संगठन या जाति न थी। पर भले ही इस्लाम में धर्मतान्त्रिक अर्थ में पुरोहित न हों पर सामाजिक अर्थ में निश्चय ही एक धार्मिक वर्ग था। विद्वानों या उलेमा का समाज में एक निश्चित और पृथक वर्ग था जिसके अन्तर्गत धार्मिक शिक्षक, स्थानीय मस्जिदों के धर्मकृत्य-संचालक इमाम, पेशेवर धर्मतान्त्रिक और धार्मिक विधि के विशेषज्ञ न्यायविद आते थे।

चूँकि पुरोहितों को उनके पदों पर स्थापित करने की रस्में या उनका कोई सुनिश्चित पद-सोपान न था, आलिम शब्द का प्रयोग परिवर्तनशील एवं अनिश्चित था। सबसे प्रारम्भिक समय में ऐसा प्रतीत होता है आलिम को लोकप्रिय मान्यता प्राप्त थी। बाद में यह मान्यता इजाजा के माध्यम से दी जाने लगी जो किसी सुस्थापित आलिम द्वारा उसके अधीन उसके सन्तोष के अनुरूप अध्ययन पूरा कर चुके किसी शिष्य को दी जाती थी। बाद में आलिम की उपाधि केवल मदरसों के स्नातकों को ही दी जाने लगी। मदरसे धर्मतान्त्रिक परिसंवादों के केन्द्र थे जो १०वीं और ११वीं शताब्दियों से पूरे इस्लामी जगत में फैले हुए हैं।

उलेमा

ऊपर सरकारी सेवा में जिन लेखकों का उल्लेख किया गया है उनकी भांति उलेमा का भी अपना विशेष बाहरी वस्त्र होता था जिसमें पगड़ी की

प्रमुखता थी। उमैय्यद राजवंश के खलीफा स्वयं अपने पद के राजनीतिक पक्षों पर ही विशेष रूप से ध्यान देते थे। उन्होंने धर्म को अपने ठीक-ठीक संकीर्ण अर्थ में हेजाज और ईराक के धार्मिक सिद्धांत वादियों और परम्परावादियों के हाथों में छोड़ दिया था। इस प्रकार, अनचाहे ही, धार्मिक और राजनीतिक प्राधिकारों को एक दूसरे से अलग कर दिया गया था। बाद में इसी पद्धति को सामान्य समझा जाने लगा। जब अब्बासिद खलीफा सत्तारूढ़ हुए तो वे इस प्रणाली में परिवर्त्तन न ला सके, यद्यपि उन्होंने, परिवर्त्तन के लिए प्रयास किये। इस सिलसिले में उन्होंने **उलेमा** को राज्य की सेवा में सम्मिलित कर लिया और एक सरकारी धर्मनिष्ठता स्थापित करने की कोशिश की। पर इन प्रयासों का कुछ भी परिणाम न निकला, उल्टे इससे **उलेमा** राज्य से और अलग-थलग पड़ गये तथा उनके कार्यों की प्रतिष्ठा काफी कम हो गई।

राज्य और उलेमा के बीच शक्तियों के गैर सरकारी पृथक्करण के फलस्वरूप केवल धार्मिक व्यक्तियों की ही यह क्षमता मानी जाने लगी कि केवल वे ही धार्मिक कानूनों के बारे में कुछ निर्णय दे सकते हैं। उनकी इस क्षमता तथा राज्य से सर्वथा तटस्थ रहने के कारण इन्हें प्रचुर नैतिक प्राधिकार स्वतः ही मिल गया जिससे, सिद्धांत रूप में न सही तो व्यवहार में तो अवश्य ही वे लोग एक अलग पुरोहित वर्ग के सदस्य बन गये। पश्चिमी जगत में धर्म की जो स्थिति है उससे बिल्कुल ही भिन्न और महत्त्वपूर्ण स्थिति इस्लाम में है। इस्लाम में धर्म के प्राधिकृत प्रतिपादकों की समाज में एक व्यापक भूमिका बन जाती है। जन-साधारण सम्पत्ति, विवाह, तलाक, वसीयत और इस प्रकार के अन्य मामलों में निर्णय के लिए उलेमा पर ही निर्भर करता है। इस प्रकार समाज में उनका प्रभाव भी बढ़ता चला गया।

सुन्नी और शिया **उलेमाओं** के बीच एक महत्त्वपूर्ण अन्तर था। अन्तर का प्रधान सैद्धांतिक स्वरूप यह था कि सुन्नी उलेमा विद्यमान राजनीतिक प्रणाली स्वीकृत करने के मामले में सार्वजनिक सहमति के सिद्धांत से बँधा हुआ था। दूसरी ओर शिया उलेमा सार्वजनिक सहमति को स्वीकार करता था और अपनी शिक्षा से ही बंधा रहता था। सच पूछा जाय तो इस बिन्दु पर भी वह राजनीतिक प्रणाली को शासकों द्वारा अधिकार अपहरण के रूप में अस्वीकार करता था। उनके बीच व्यावहारिक अन्तर बहुत ही कम है।

शियाओं और सुन्नियों दोनों में धार्मिक व्यक्तियों और राज्य के बीच संबंध के प्रश्न को लेकर कुछ दिलचस्प प्रश्न उठते हैं। अरब के प्रारंभिक धर्म-परायणों का राज्य के प्रति असहयोग का रुख अत्यन्त निराशाजनक कहा जा सकता है। उलेमा, दूसरे

शब्दों में धर्मपरायण व्यक्तियों के प्रधानों ने अधिकारों और कर्त्तव्यों के मामले में उन खलीफाओं के समक्ष, जो उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे, राजनीतिक दृष्टि से अव्यावहारिक सिद्धान्त प्रस्तुत किये जिनके अनुसार खलीफाओं से कहा गया कि वे पवित्र एवं प्राचीन धार्मिक अतीत पर आधारित आदर्श राज्य प्रणाली लागू करें। इसके परिणामस्वरूप एक गतिरोध-सा उत्पन्न हो गया और **उलेमा** में यह प्रवृत्ति हो गई कि वे राजनीतिक व्यवस्था से तटस्थ हो गए। दूसरी ओर राजनीतिक अधिकारों ने सिद्धान्त में धार्मिक कानूनों को मान्यता दी और विशेष रूप से धार्मिक रीति-रिवाजों और सामाजिक नैतिकता में उन सिद्धान्तों से उल्लंघन से बचने की कोशिश की और समय-समय पर उलेमा से परामर्श किया और प्राधिकार के ऊँचे पद दिये। जहाँ तक उलेमा का संबंध था, उन्होंने राज-काज में अपने बहुत निकट के संबंध से बचने की कोशिश की। यदि उन्होंने कोई सरकारी पद स्वीकार भी किया तो ऐसा अनिच्छापूर्वक ही किया। वास्तव में धार्मिक जीवनी लेखकों के वर्णन में एक सामान्य स्वर यह पाया जाता है कि यदि आलिम (**उलेमा**) राज्य के अधीन लाभ के पद पर नियुक्ति स्वीकार भी करता था तो वह ऐसा या तो आशंका और संदेह के साथ करता था या अधिकतर ऐसी नियुक्ति अस्वीकार ही कर देता था। धार्मिक क्षेत्र के महानतम व्यक्तियों में से एक गजाली ने इसकी व्याख्या की है। उसके अनुसार राज्य की आय दमन या जन साधारण का धन ऐंठ कर प्राप्त की जाती थी और इस कारण राज्य में लाभ का पद स्वीकार करने वाला पापी है। अधिक धार्मिक **उलेमा** का सामान्यतः यह विचार था कि राज्य दूषित वस्तु है जिससे बचना चाहिए। काजी या धार्मिक न्यायाधीश राज्य द्वारा नियुक्त किये जाते थे अतः उलेमा की दृष्टि में वे विश्वसनीय नहीं थे। इसके फलस्वरूप कभी-कभी राज्य के विरुद्ध विद्रोहों को उलेमा अपना समर्थन देते थे।

राज्य के साथ ऐसे संबंध के फलस्वरूप **उलेमा** दो वर्गों में बँट गए। उनका एक वर्ग बहुत ही कड़े धार्मिकों का था जिन्हें उनके सहयोगी और उनके जन-साधारण सत्य का सच्चा और धार्मिक संरक्षक मानते थे। वे राज्य से असंलग्न रहते थे और अक्सर उसके विरोध में भी उठ खड़े होते थे। उलेमा का दूसरा वर्ग जिसे न यथार्थवादी कहा जा सकता है उन उलेमा का था जो राज्य के अधीन सेवा स्वीकार कर लेते थे और सत्ता में हिस्सेदारी प्राप्त होने पर उनका नैतिक प्राधिकार समाप्त हो जाता था। ऐसी व्यवस्था में कम कर्तव्यनिष्ठ एवं अल्प-नैतिक-संकोचयुक्त **उलेमा** राज्य की सेवा में प्रवेश करते थे जबकि अधिक धर्मनिष्ठ और ईमानदार **उलेमा** राजकीय सेवा से बचते थे। इसका राज्य और धर्म दोनों

पर क्षतिकारी प्रभाव पड़ा। जनता की सहानुभूति निश्चय ही राज्य सेवा का वहिष्कार करने वाले उलेमा के साथ थी।

समय के क्रम में ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि उलेमा का दूसरा वर्ग शनैः-शनैः बीच-बीच में कुछ अवरोध के साथ, पद सोपान और कोटियों के एक अलग समूह के रूप में विकसित होता गया। वे लोग राज-व्यवस्था के अंग और यंत्र से वन गए जिसका अनिवार्य-सा परिणाम यह हुआ कि वे सरकार के और निकट चले गए, जनता से अलग-थलग पड़ने लगे और धार्मिक व्यक्तियों के अन्य वर्ग में उनका प्रभाव काफी कम हो गया। जो उलेमा राज्य की सेवा में चले गए उन्हें जैसा कि राजसेवकों के साथ सामान्यतः होता है, कुछ अवधि में उनकी सेवा के लिए वेतन मिलता था और अन्य अवधि में अनुदान और भू-सम्पत्ति का स्वामित्व मंजूर किया जाता था। उलेमा में से वहुलांश और अधिक महत्वपूर्ण लोग, विशेषतः वे राज्य-सेवा से अपने को अलग रखते थे, अन्य साधनों से अपनी जीविका चलाते थे। उनमें से कुछ भिन्न-भिन्न प्रकार की दस्तकारियों और व्यापार में लग जाते थे। ऐसा लगता है कि उनमें से अनेक व्यवसायी वर्ग में शामिल हो जाते थे जिनका दृष्टिकोण और नीति-आचार आदि उनके विचारों से स्पष्ट लक्षित होता है। पर अधिक-से-अधिक मामलों में वे लोग अपनी जीविका के लिए वक्फ पर निर्भर करते थे। वक्फ को भूमि तथा आय करने वाली सम्पत्ति के दान के रूप में लिया जा सकता है जो, खास तौर पर धार्मिक प्रयोजनों के लिए दिया जाता है (और जिसे किसी भी प्रयोजन में खर्च नहीं किया जा सकता) जैसे कि मस्जिदों और मदरसों की मरम्मत और तत्संबंधी अन्य प्रयोजनों पर खर्च। उलेमा के सदस्य ही प्रायः इन धार्मिक दानों के प्रबंधकर्ता एवं उनसे लाभान्वित होते थे। अन्ततः इन दोनों के अन्तर्गत काफी सम्पत्ति आ गई और ये अत्यधिक महत्व के आर्थिक आधार जैसे हो गए।

कुलीन वर्ग

अरबों की एक उक्ति है—"अशरफ अन-नसब" जिसका अर्थ हुआ कि कुलीनता रक्त में होती है। कुलीन लोगों के बारे में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि वे वीर और उदारमना हों। अत्यधिक दुनियादारी कुलीन या अभिजात वर्ग के लोगों के लिए अशोभनीय है। कुलीन या अभिजात वर्ग के व्यक्ति को बुद्धिमान तो होना चाहिए पर अपने को दुनियादारी से ऊपर दिखलाना चाहिए। लिपिक का सर छोटा होता है पर कुलीन वर्ग का वड़ा होना चाहिए। उसके माथे पर अधिक वाल होने चाहिए, एक ऊँची नाक तथा चौड़ा मुंह। उसकी छाती और कंधे चौड़े होने चाहिए। बाँह लंबी और उंगलियाँ भी लंबी होनी चाहिए। पर चेहरा गोलाकार न हो। वस्त्र पहनने या चलने के ढंग में दिखावटीपन होना कुलीन

या अभिजात वर्ग का चिह्न नहीं है। कहा जाता है—"अभिजात वर्ग का व्यक्ति (सैयद) जैसे भी चाहे पगड़ी बाँध सकता है।" अब्बासिदों के अधीन आदमियों को चार वर्गों में बाँटा गया था -

(१) शासक जिसे उसके गुणों ने सर्वाधिक अग्रगण्य श्रेणी में रखा है।

(२) विजीर जिसकी विशेषता उसकी प्रखर बुद्धि और उत्कृष्ट विवेक है।

(३) उच्च श्रेणी का व्यक्ति जो अपनी सभ्यता के कारण ऊँचा स्थान पा सका है।

(४) मध्यम वर्ग का (औसत) आदमी जो उपर्युक्त तीन के साथ, संलग्न रहने को वाध्य है पर इसके लिए उसे सुसंस्कृत होना जरूरी है। इस प्रकार रईस अथवा कुलीन वर्ग धन अर्जित करता है और राजनीतिक सफलता प्राप्त करता है। ये दोनों ही उस समय सामान्य मानी जाती थीं। कुलीन या अभिजात वर्ग के सबसे ऊपर हजरत मुहम्मद के संबंधी आते थे जिन्हें "वनू हशीम" "पैगम्बर के घराने के सदस्य" या "घराने के सदस्य" कहा जाता था। चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली के वंशजों और अब्बासिदों को शरीफ कहा जाता था। अली के समर्थकों का अपने कोई विशेष चिह्न न थे। वहुत वाद में, कम-से-कम १४वीं ईस्वी सदी के पूर्व वहीं हरे रंग की पगड़ी उनका चिह्न वन गया।

इस्लाम के कुलीन वर्गीय लोग सामन्तवाद के मजबूत अड्डों जैसे कि जंगलों, पहाड़ों और फार्स के किलों में दृढ़तापूर्वक रहते थे। वहाँ अभिजात वर्गों के पुराने परिवारों का सम्मान किया जाता था। उमैय्यदों के शासनकाल में अभिजात वर्ग में केवल महायलवा इब्न अवी सफरा के वंशज महलीवा ही केवल अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा को कायम रखना जानते थे। उनका मुख्य केन्द्र वसरा था जहाँ वे आलीशान महलों में रहते थे। स्वतंत्र अब्बासिद कुलीन वर्ग के लोग जो अब्बासिदों (अवना-उद-दौला) के साथ खुरासान से आये थे नौवीं ईस्वी सदी में सत्ता में थे और उनकी विशिष्टता उनके शानदार घोड़ों, उपकरणों और साज-सामान को लेकर थी। १०वीं ईस्वी सदी में उनका स्थान दासों, मुक्त किये गये सरदारों और तुर्कों तथा ईरानियों ने ले लिया।

जनसाधारण

आम या सामान्य जन के वारे में हम वहुत कम जानते हैं। इनकी आवादी का एक वड़ा वहुमत किसानों का था। मध्यकालीन इस्लाम के इतिहास के वारे में जिन स्रोतों से हमें सूचनाएँ मिलती हैं उनमें से अधिकांश से जनसाधारण, उनके

विचारों, उनकी भावनाओं तथा अन्य गुणों की हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। जब ये लोग समय-समय पर अपने मूल स्थिति से निकल कर समाज के उच्चतर वर्गों के सदस्य बन जाते थे, जैसे कि व्यापारी, उलेमा, भूस्वामी, मंत्री या सैनिक तो वे किसान नहीं रह जाते थे और न किसानों के विचारों का प्रतिनिधित्व ही करते थे।

हमें ऐतिहासिक स्रोतों से दासों के बारे में अधिक सूचनायें उपलब्ध होती हैं। दास अक्सर नगरों में रहते थे और समाज के खास या विशिष्ट लोगों के साथ अपने दैनिक सम्पर्क के कारण वे जन-साधारण की गुमनामी से बाहर निकल आते थे और समाज में कोई स्थान तथा किसी हद तक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते थे। ऐसे ही लोग थे सैनिकों के दास जिन्होंने इतिहास में एक प्रकार से जबरन स्थान प्राप्त किया। इसी प्रकार हरम (रनिवास) के गुलाम के जो सम्राटों की माताओं के प्रिय-पात्र होने के कारण अपने अज्ञात से स्थानों से निकल कर सार्वजनिक जीवन-धारा को प्रभावित करते थे। घरेलू गुलामों का भी जो बड़े लोगों के घरों में सेवक के रूप में काम करते थे, उल्लेख स्थान-स्थान पर साहित्य में मिलता है।

हमें ऐतिहासिक स्रोतों से दस्तकारों के बारे में भी अधिक जानकारी मिलती है जो नगरों और गाँवों में रहते थे और जिन्होंने अपने परिश्रम के बल पर समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था। वे लोग बड़े लोगों और जनता के लिए शरण-स्थान (मकान), वस्त्र, घरेलू उपयोग के बर्त्तन तथा कला की खर्चीली आरामदायक वस्तुएँ तथा अन्य निर्माण करते थे। हमें उन संगठनों के जिनमें वे संगठित थे, विवरणों और हस्तपुस्तों में उनकी चर्चा मिलती है। साथ ही रहस्यवाद के साहित्य में भी, जिसके माध्यम से उनमें से अधिकतर अपनी धार्मिक और सामाजिक आवश्यकता के बारे में अभिव्यक्ति देते थे, उनकी चर्चा मिलती है। वे अपनी कृतियों में से अधिकांश में अपना व्यक्तिगत नाम नहीं देते थे। दस्तकारी की ये वस्तुयें और कृतियाँ इस्लामी सभ्यता की सर्वाधिक विशिष्ट एवं विश्वजनीन रचनाओं में गिनी जाती हैं।

●

अध्याय २३

इस्लाम में गैर-मुस्लिम प्रजा की स्थिति

मुस्लिम शासन में गैर-मुस्लिम प्रजा को **जिम्मी या घिम्मी** कहा जाता था। जिम्मी यहूदी, ईसाई या सैबियन धर्म मानने वाले होते थे जो मुस्लिम शासन में अपनी एवं अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए **जजिया** या प्रतिव्यक्ति कर देते थे।

मुस्लिम धार्मिक कानून के अनुसार मुसलमानों द्वारा किसी गैर-मुस्लिम देश की विजय के बाद वहाँ के जो जन-समुदाय इस्लाम धर्म न अपनाते थे और जिसके सदस्य दास न बनाये जाते थे और इस कारण जिन्हें, संशोधित अर्थ में जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति की गारंटी न मिलती थी उन्हें **अहल-अल-घिम्मी** या "प्रतिज्ञा-पत्र या दायित्व के लोग" अथवा केवल **अल-घिम्मा** कहा जाता था। इसके अन्तर्गत मुसलमानों से उन्हें लौकिक अधिकार और उनके प्रति मुसलमानों के कर्त्तव्य आते हैं।

हजरत मुहम्मद के आदेशों के अन्तर्गत मुसलमानों या इस्लाम धर्म के प्रति सच्चे निष्ठावानों के सर्वप्रमुख कर्त्तव्य आते हैं जिनके अन्तर्गत **जिहाद** या अल्लाह के रास्ते पर बढ़ने के प्रयास आते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अरब प्रायद्वीप के भीतर और बाहर के इस्लाम के प्रति निष्ठाहीनों के बीच इस्लाम के प्रसार के लिए युद्ध। इस प्रकार पूरी दुनिया दो बड़े भागों में विभाजित मानी जाती है—**दारूल हर्ब और दारूल इस्लाम**। इनमें से पहले का अर्थ है युद्ध के क्षेत्र और शांति के क्षेत्र। इनमें से प्रथम धर्म-निष्ठाहीनों और अन्धकार का क्षेत्र है और दूसरा प्रकाश और धर्मनिष्ठा का। ये दोनों क्षेत्रों के बीच निरन्तर, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष युद्ध-ग्रस्तता की स्थिति तब तक रहती थी जब तक **दारूल इस्लाम** (प्रकाश और धर्मनिष्ठा का क्षेत्र) **दारूल हर्ब** (धर्म-निष्ठाहीनों और अन्धकार का क्षेत्र) अपने में समाहित न कर लेता है। धर्म-निष्ठाहीनता भी भिन्न-भिन्न किस्मों की मानी गयी है। उसका सबसे बुरा स्वरूप मूर्त्ति-पूजा है अर्थात् एक सच्चे अल्लाह के बजाय या उसके साथ ही मूर्त्तियों की पूजा। यह अरबों की ओर से किया गया अत्यधिक निन्दनीय अपराध है। चूंकि पैगम्बर मुहम्मद को उनके बीच भेजा गया था और उन्होंने

अपने को उनके बीच प्रकट किया और कुरान की शिक्षाएँ उन्हीं की भाषा में दी गईं, अत: कुरान के ही शब्दों में—

"उसी तरह समान रूप से स्वधर्मत्यागियों की निष्ठाहीनता का स्वरूप भयानक है क्योंकि धर्मनिष्ठा के मार्ग पर बढ़ाये जाने और इस्लाम धर्म की उत्कृष्टता से परिचित किये जाने के बाद भी वे धर्मनिष्ठाहीन हो गए हैं।" इन दोनों के बीच समझौता अनुमत नहीं। उन लोगों (निष्ठाहीनों) को या तो इस्लाम धर्म पुन: स्वीकार या अंगीकार करे या अपने अपराध के लिए अपनें जीवन के रूप में मूल्य अदा करें।

जहाँ तक किसी गैर-अरब या आजम देश के मूर्त्ति-पूजकों का संबंध है, जो (आजम) शब्द प्रारम्भिक इस्लाम की अवधि में विशेष रूप से ईरानी सम्प्रदाय पर लागू होता था, इस्लाम धर्मतांत्रिक अश-शफी के अनुसार उनका (मूर्त्ति-पूजकों का) विनाश भी किया जा सकता था। दूसरी ओर अन्य विशेषज्ञों का कहना है कि उन्हें दास बनाना विधि-संगत है क्योंकि इस प्रकार उन्हें पूरी स्थिति पर विचार का समय मिले जिस दरम्यान संभवत: अल्लाह उन्हें सही रास्ते पर ले आवे। इसके साथ ही इस अवधि में उनको और उनके वास्तविक तत्त्व को इस्लाम धर्म पर निर्भर बना कर रखना है।

हजरत मुहम्मद और उनके अनुयायियों की दृष्टि में धर्मनिष्ठाहीनता का सबसे कम आपत्तिजनक रूप यह है कि उनमें से किताबी लोग या अपने-अपने गैर-इस्लाम धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म-ग्रंथों का अनुसरण करें। इनमें यहूदी अपने धर्म-ग्रंथ प्राचीन विधान (ओल्ड टेस्टामिन्ट) के अनुसार चलें और ईसाई अपने लिए उद्घाटित सुसमाचार के अनुयायी रहें। चूंकि वे लोग सत्य को पूरी तरह अस्वीकार न करने के अपराधी थे और न ही सत्य का आंशिक अनुसरण करते थे अत: इस्लाम धर्म में विश्वास न रखने के लिए उन्हें आंशिक दण्ड दिया जाता था जो उन पर लगाए गए प्रति व्यक्ति कर (जजिया) के रूप में होता था। उसके बदले उन्हें मुस्लिम शासन में अपनी सम्पत्ति, व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता और धार्मिक सहिष्णुता प्राप्त होती थी। यही सुविधा मजूसियों या सैबियन धर्मावलंबियों को भी प्राप्त थी क्योंकि हजरत मुहम्मद और हदीस की रचना करने वाले मूर्त्तिपूजकों की तुलना में उनके साथ उदारतापूर्वक पेश आते थे। इस सम्बन्ध में हैदराबाद स्थित उस्मानिया विश्वविद्यालय में इस्लाम धर्म-अध्ययन विभाग (इस्लामिक स्टडीज) के प्रधान श्री अनवर मोअज्जम लिखते हैं :

"द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर के विरुद्ध उसके ही द्वारा नियुक्त एक न्यायाधीश ने जाँच की थी। इसी प्रकार चतुर्थ धर्मनिष्ठ खलीफा अली पर उसके विरुद्ध एक यहूदी प्रजा द्वारा की गई शिकायत की जाँच जब खलीफा के अधीनस्थ न्यायाधीश कर रहा था तो न्यायाधीश ने उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया तो अली ने इस पर आपत्ति की।"

हजरत मुहम्मद और उनके बाद प्रारंभिक (धर्मनिष्ठ) खलीफाओं के शासन-काल में गैर मुस्लिम प्रजा, जिनमें अधिकांशतः यहूदी और ईसाई थे, अपने व्यक्तिगत मामलों में अपने-अपने धर्मों के नियमों द्वारा शासित होते थे और उन्हें नाम मात्र का कर-जजिया दिये जाने के बदले उन्हें सैनिक सेवा से मुक्त कर दिया जाता था। अपनी मृत्यु से पूर्व अपने एक धर्मादेश में हजरत मुहम्मद ने कहा कि—"जो मुसलमान किसी धिम्मी (गैर-मुस्लिम प्रजा) की हत्या करता है उसे बिहिश्त (स्वर्ग) की मामूली सी भी गन्ध मिलने की संभावना नहीं है। ऐसे लोग मेरे लिए गैर-मुस्लिम (धिम्मी) हैं।"

उसी प्रकार द्वितीय धर्मनिष्ठ खलीफा उमर ने सन् ६३८ में फिलस्तीन पर विजय प्राप्त करने के बाद वहाँ की राजधानी जेरूसलेम के लोगों के समक्ष ये शर्त्तें रखीं—"मैं उनलोगों को उनके जीवन, उनकी सम्पत्ति, उनके बच्चों, उनके गिरजाघरों उनके क्रास-चिह्नों, उनकी चारित्रिक पवित्रता से सम्बद्ध सभी चीजों, उनकी भूमि और उनके धर्म के सभी अंगों की सुरक्षा प्रदान करता हूँ। न तो उनके गिरजाघरों को कोई क्षति पहुँचाई जाएगी और न उनको नष्ट किया जाएगा। और न ही उनके किसी भाग को किसी तरह का नुकसान पहुँचाया जाएगा। न तो धार्मिक प्रयोजन के लिए किये उनके दानों, न उनकी प्रतिष्ठा और न ही उनकी सम्पत्ति के किसी भी अंश को विनष्ट किया जाएगा। इसके अलावा जेरूसलेम के निवासियों को न उनके अपने धर्म के पालन के विरुद्ध किसी तरह की हिंसा की जाएगी और न उनमें से कोई घायल किया जाएगा। जब खलीफा उमर जेरूसलेम के गिरजाघर में गये तो वहाँ के धर्माध्यक्ष द्वारा वहाँ प्रार्थना किये जाने का अनुरोध उन्होंने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि यदि वे वहाँ प्रार्थना करते हैं तो बाद में उनके अनुयायी उस पर मुस्लिम पूजा-स्थल के रूप में अपना दावा कर सकेंगे।"[1]

जब मुस्लिम सेना द्वारा धर्म-निष्ठाहीनों के देशों पर विजय प्राप्त की जाती थी तो यहूदियों, ईसाइयों और सैब्रियनों के अलावा अन्य लोगों के बीच ऐसी ही

१. दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑव इंडिया—मार्च ३०-अप्रैल—५, १९८०, पृ० १२।

स्थिति होती थी। सिद्धांत रूप में उनके, उनकी पत्नियों और बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता था मानो वे राज्याधिकृत लूट का माल या सम्पत्ति हों और उन्हें दास बना कर रखना विधि-संगत हो। पर व्यवहार में उनके साथ अपेक्षाकृत कहीं कम हृदयहीन वर्ताव किया जाता था। वे निर्धारित प्रति व्यक्ति-कर (जजिया) देकर **जिम्मी या धिम्मी** की स्थिति प्राप्त कर लेते थे और विजयी सरकार के स्वतन्त्र नागरिक जैसे बन जाते थे। उनकी स्थिति मुस्लिम प्रजा-जन के मुकावले मात्र कुछ अंशों में हीनतर होती थी।

दारूल-हर्ब (धर्म-निष्ठाहीनता एवं अन्धकार के क्षेत्र) के निवासी **हर्बी** या विदेशी के साथ किसी मुसलमान का संबंध ऐसा था कि जब वह, शांति की अवधि में, यात्रा या किसी अन्य वैध प्रयोजन से मुस्लिम क्षेत्र में आता था तो उसके साथ आतिथ्य के कर्त्तव्यों की ऊँची धारणा से, जो अरबों में स्वाभाविक रूप से होती थी, विनियमित व्यवहार किया जाता था। इसके अनुसार जब किसी अरब के खेमें के द्वार पर ज्यों ही कोई विदेशी, चाहे वह घातक शत्रु ही क्यों न हो, उसकी रक्षा और सम्मान किया जाता था।

किसी मुस्लिम प्रदेश में जब कोई विदेशी प्रवेश करता था तो पहले जिस किसी भी मुसलमान से उसकी मुलाकात होती थी [भले ही वह समाज की सबसे निचली कोटि का सदस्य (किसान) ही क्यों न हो] विदेशी उससे सुरक्षा प्राप्त किये जाने का दावा करता था और वह विदेशी मुस्लिम क्षेत्र में बिना किसी तरह से क्षति-ग्रस्त हुए, पूरे एक साल तक रह सकता था। उस पूरे एक साल की अवधि के भीतर अधिकारियों को उसे सूचना देनी होती थी कि यदि विदेशी को पूरे साल के अंत तक रहना है तो उस पर प्रति-व्यक्ति कर (जजिया) लगाया जाएगा और ऐसी सूचना में उसके ठहरने की अवधि केवल कुछ महीनों तक सीमित की जा सकती थी यदि किसी कारण से ऐसा करना उचित और आवश्यक प्रतीत हो। यदि विदेशी विहित पूरी या सीमित अवधि के बाद भी मुस्लिम क्षेत्र में बना रहता है तो वह स्वतः प्रति-व्यक्ति कर (जजिया) देने के लिए जिम्मेदार हो जाता था। यदि जिम्मी हो जाने के बाद वह अपने देश लौटने को इच्छुक होता था तो उसे, मुस्लिम सरकार द्वारा स्वामि-भक्ति के करारनामे के अन्तर्गत, ऐसा करने से रोका जा सकता था। इसी प्रकार यदि कोई विदेशी मुस्लिम क्षेत्र में किसी करद भूमि को खरीदने और उस पर कर देना आरंभ करने के कारण वहाँ जिम्मी हो जाता था तो उस पर ही आगामी वर्ष में प्रति व्यक्ति कर (**जजिया**) देने की जिम्मेदारी आ जाती थी। कोई महिला किसी जिम्मी से विवाह करने के बाद **जिम्मिया**

हो जाती थी क्योंकि उस कारण वह मुस्लिम राज्य में निवास करने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हो जाती थी।

फिर भी जिम्मी धार्मिक विषयों, जैसे कि रोजा या नमाज के मामले में या गैर-धार्मिक विषयों, जैसे कि शराब या सूअर बेचने के बारे में, भले ही ऐसे काम इस्लाम धर्म के विपरीत, पर उसके धर्म के अनुसार वैध हो, इस्लामी कानून के अधीन नहीं होते थे। उनके लिए मुस्लिम क्षेत्र में अपने पूजा-घर बनाना विधि-संगत न माना जाता था पर वे अपने घर के भीतर पूजा-घर का निर्माण कर सकते थे। ईसाइयों के गिरजाघर और यहूदियों के पूजा-स्थल, यदि वे पहले से ही उनके हों, नष्ट कर दिये जाते थे या बहुत पुराने होने के कारण गिर जाते थे तो वे उनका पुनः निर्माण या मरम्मत करा सकते थे। यह नियम नगरों के संबंध में लागू था क्योंकि वहाँ इस्लाम के प्रतीक और चिह्न जैसे कि सार्वजनिक नमाज; त्योहार आदि हुआ करते थे। उनके समक्ष जिम्मियों को इस्लाम धर्म निष्ठाहीनता का प्रदर्शन न करना चाहिए था; गाँव और झुग्गी-झोपड़ियों की बस्तियों में जहाँ इस्लाम के उपर्युक्त प्रकार के प्रतीक या चिह्न नहीं पाये जाते थे, ईसाई और यहूदी प्रार्थना-घरों के निर्माण पर कोई रोक न थी।

वस्त्र और साज-सामान के संबंध में कुछ मामूली प्रावधानों के बावजूद जिम्मी दैनन्दिन कार्य-व्यवहार में मुसलमानों के समान ही सलूक के हकदार माने जाते थे। बच्चों; महिलाओं और दासों की भाँति युद्ध में लूटे गये माल में उन्हें कोई वैध हिस्सा न मिलता था। पर यदि वे इस्लाम के प्रसार हेतु लड़े जाने वाले युद्ध में भाग लेते थे तो अधिकारियों के विवेकानुसार उन्हें एक हिस्सा मात्र मिलता था। यदि युद्ध में जिम्मी मार्गदर्शक रूप में काम करता था तो यदि उस रूप में जिम्मी को किसी विशिष्ट लाभ के लिए अनुमति दी गई होती थी तो उन्हें युद्ध की लूट में मुसलमान लड़ाकुओं से भी ज्यादा हिस्सा मिलता था।

जिस प्रकार दो मुसलमानों के बीच हर विवाह विधि-संगत या उसी प्रकार दो जिम्मियों के बीच भी। मुसलमानों के बीच अवैध विवाहों की अनेक किस्में थीं। इनमें ऐसे विवाह आते थे जो गवाहों की उपस्थिति के बिना किये जाते थे। यदि कोई जिम्मी, गवाहों के उपस्थिति के बिना, जिम्मिया (जिम्मी महिला) के साथ विवाह करता था तो यदि ऐसे विवाह उनके धर्म द्वारा अनुमत थे, तो विवाह वैध माने जाते थे। यदि उसके बाद वे इस्लाम धर्म अपना लेते थे तो भी उनके पूर्व उनके बीच हुए विवाह वैध माने जाते थे। और उसी प्रकार यदि वे इस्लाम धर्म स्वीकार न करते थे तो जिम्मी स्त्री-पुरुष या उनमें से कोई एक अपने विवाह में

इस्लाम के नियम लागू करने के लिए काजी (न्यायाधीश) के सामने दावा करता था तो काजी उस स्थिति में भी उन्हें विवाह करने से रोक नहीं सकता था। किसी दूसरे आदमी के साथ इदा[२] की अवधि में भी कोई महिला विवाह कर सकती थी। यदि किसी अन्य आदमी के बारे में अपनी इदा की अवधि में कोई जिम्मी किसी महिला से विवाह कर लेता था तो यदि उस जिम्मी ने इस्लाम धर्म अपना लिया होता था तो विवाह अवैध माना जाता था। जिम्मी पुरुष-स्त्री द्वारा इस्लाम-धर्म अपनाये जाने के पूर्व किये जाने वाले विवाह के बारे में भी इस तरह की आपत्ति की जा सकती थी, भले ही उनके अपने पूर्व धर्म में इदा की अवधि में ऐसे विवाह की अनुमति दी गई होती थी। यदि किसी धर्मनिष्ठाहीन व्यक्ति के साथ विवाह टूटने, तलाक होने या उसकी मृत्यु होने की दशा में किसी महिला के लिए अनिवार्य इदा की अवधि में भावी पति-पत्नी के बीच, उनके धर्म में ऐसा विवाह वैध होने पर भी सामान्य समझौते के अधीन, उनकी इस्लाम धर्म निष्ठाहीनता के बावजूद ऐसे विवाह पर आपत्ति नहीं की जा सकती थी। यदि ऐसी स्थिति में वे लोग बाद में इस्लाम धर्म अपनाते हैं तो उनके बीच विवाह स्थिर और निश्चित माना जाता है। अबूहनीफा की ऐसी ही राय है जिसका इस संबंध में निर्णय, अबू यूसुफ और हजरत मुहम्मद के बीच इस विषय पर विचार विभिन्नता के बावजूद वैध समझा जाता है। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश (काजी) उनको एक दूसरे से अलग नहीं करता था, भले ही उन दोनों या उनमें से एक ने इस्लाम धर्म अपनाया हो या दोनों अथवा उनमें से एक ने न्यायाधीश (काजी) के समक्ष मामला उठाया हो। इस संबंध के धर्म-ग्रन्थ मबसूत में कहा गया है कि इदा जारी रहने की अवधि में जब जिम्मी और जिम्मिया के बीच विवाह या उनके इस्लाम धर्म अपनाने का प्रश्न न्यायाधीश (काजी) के समक्ष उठाया जाता था, उसी स्थिति में उनके स्वामियों के बीच मतभेद उठता था; पर जब इदा की अवधि समाप्त होने के बाद तक उनके स्वामियों के बीच मतभेद न उठता था तो दोनों को, उनके सभी विचारों के अनुसार, एक दूसरे से अलग न किया जाता था।

---

२. इदा का अर्थ होता है संख्या। किसी व्यक्ति के साथ विवाह टूटने, तलाक या पति की मृत्यु हो जाने की दशा में किसी महिला को परीक्षण की एक निश्चित अवधि बितानी पड़ती थी। तलाक की स्थिति में यह अवधि तीन महीनों की होती है और पति की मृत्यु होने की स्थिति में यह अवधि चार महीनों और दस दिनों की होती थी। इन दोनों ही अवधियों के बारे में कुरान में आदेश है (अध्याय ६५, ४, पृ० १०८, २ : २३४, पृ० १०९)।

यदि जिम्मी जिम्मिया से विवाह करता था और उसके लिए (तलाक की स्थिति में) दैन रकम शराब या सूअर के मांस के रूप में निश्चित की जाती थी और यदि उसके वाद उनमें से एक या दोनों इस्लाम धर्म अपना लेते थे तो, इस्लाम धर्म-विधिवेत्ता अबू हनीफा के अनुसार पत्नी दैन रकम-स्वरूप वास्तविक वस्तु, यदि उसकी चर्चा विशेष रूप से कर दी गई होती थी, प्राप्त करने की हकदार होती थी और यदि चर्चा नहीं की गई होती थी तो भी यथास्थिति शराब का अनुमानित मूल्य या सूअर के मांस के वदले उचित दैन रकम प्राप्त करने की हकदार होती थी। एक अन्य इस्लाम धर्म विधिवेत्ता अबू यूसुफ का कहना है कि उसे उसकी वास्तविक दैन रकम प्राप्त होनी चाहिए और हजरत मुहम्मद ने ऐसे सभी मामलों के वारे में प्राप्त वस्तुओं के मूल्य निर्धारित कर दिये हैं। यदि ईसाई **जिम्मी** किसी ईसाई जिम्मिया (महिला जिम्मी) से (तलाक की स्थिति में) दैन-रकम निर्धारित किये विना ही विवाह कर लेता है या उनके पेशे के सदस्यों द्वारा विधि-संगत समझी जाने वाली विशिष्ट दैन रकम, जो अवैध रीति से मारे गए किसी जानवर के मांस के रूप में होती है, निर्धारित करके विवाह करते हैं और पति-पत्नी के बीच सहवास हो जाता है या सहवास के विना ही उनके बीच तलाक हो जाता है तो मुस्लिम धर्म विधि-वेत्ता के अनुसार, पत्नी किसी दैन रकम की हकदार नहीं होती, भले ही दोनों ने इस बीच इस्लाम धर्म अपना लिया हो। पर एक अन्य मुस्लिम धर्म विधि-वेत्ता अबू यूसुफ और हजरत मुहम्मद के अनुसार यदि पति ने पत्नी से सहवास कर लिया है या सहवास किये विना ही पति की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी को अपनी उचित दैन रकम प्राप्त करने का हक हो जाता है और यदि पति के साथ सहवास के विना ही उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह दैन रकम के बदले एक उपहार की हकदार हो जायगी।

यदि इस्लाम धर्म निष्ठाहीन पति-पत्नी में से एक इस्लाम धर्म अपना लेता था तो उनमें से दूसरे के समक्ष प्रस्ताव रखा जाता था कि वह भी इस्लाम धर्म अपना ले। यदि दूसरा (पति-पत्नी में से कोई) इस्लाम धर्म अपना लेता है तो भला और ठीक है, अन्यथा उन दोनों के वीच विवाह-विच्छेद हो जाता था साथ ही यदि ऐसी स्थिति में ऐसे पति-पत्नी में से कोई इस्लाम धर्म अपनाने का प्रस्ताव सुनकर चुप रह जाता था और कुछ नहीं कहता था, तो काजी (न्यायाधीश) उससे पुनः इस्लाम धर्म अपनाने का प्रस्ताव रखता था और ऐसा तीन वार करता था ताकि इस मामले में सावधानी वरती जा सके। इस मामले में किसी विवेकशील युवक और वयस्क व्यक्ति के बीच अन्तर न माना जाता था, अतः मुस्लिम विधि-वेत्ता अबू हनीफा और इमाम मुहम्मद के अनुसार विवेक-युक्त युवक या वयस्क दोनों द्वारा (पति या पत्नी) द्वारा विवाहित वने रहने से इन्कार करने पर उनका विवाह-संबंध

टूट जाता था। पर यदि विवाहित पक्षों में कोई युवावस्था का हो और उसमें विवेक या समझदारी न हो तो विवाह विधिवत टूटने के लिए प्रतीक्षा करना आवश्यक होता था और जब उनमें विवेक हो जाता था तो पति को (पत्नी द्वारा इस्लाम धर्म अपनाने की स्थिति में) इस्लाम धर्म अंगीकार करने के लिए कहा जाता था। यदि वह इस्लाम धर्म अपना लेता था तो ठीक था पर यदि वह न अपनाता था तो उसकी पूर्ण यौवनावस्था की प्रतीक्षा किये विना ही पति-पत्नी में विवाह-विच्छेद हो जाता था। और यदि वह पागल हुआ तो उसके माता-पिता से इस्लाम धर्म अपनाने को कहा जाता था। माता-पिता में से किसी के द्वारा इस्लाम धर्म अपनाने की स्थिति में भी उनके बीच विवाह-संबंध कायम रह जाता था। यदि उन लोगों में से कोई भी इस्लाम धर्म न अपनाता था तो विवाह-संबंध टूट जाता था। यदि पति इस्लाम धर्म अपना लेता था और पत्नी न अपनाती थी तो उन लोगों के बीच विवाह-संबंध न टूटता था और यदि पत्नी इस्लाम धर्म अपना लेती थी और पति ऐसा करने से इन्कार कर देता था तो उसके फलस्वरूप विवाह-संबंध टूट जाता था क्योंकि विवाह-विच्छेद का कारण उसके द्वारा उपस्थित किया गया माना जाता था। यदि वे दोनों विवाह टूटने के कारण एक दूसरे से पृथक हो जाते थे और ऐसा उनके बीच सहवास के बाद होता था, पत्नी पूरी दैन रकम की हकदार होती थी। यदि सहवास के पूर्व विवाह-विच्छेद होता था तो वह केवल दैन रकम के आधे अंश की ही हकदार होती थी और यदि उसी के द्वारा विवाह-संबंध से इन्कार के कारण संबंध टूटता था तो वह दैन रकम के किसी भी अंश की हकदार न होती थी। यदि **किताबिया** (किताब पढ़ने वाले) लोग जैसे यहूदी और ईसाई का पति इस्लाम धर्म अपनाता था (और पत्नी न अपनाती थी) तो उनका विवाह-संबंध सामान्य सिद्धान्त के अनुसार अप्रभावित रह जाता था और किसी मुसलमान और किताबिया के बीच विवाह, मूलतः विधि-संगत माना जाता था।

जब कोई **जिम्मी** (गैर-मुस्लिम नागरिक) अपनी जिम्मिया पत्नी के साथ तीन बार विवाह-संबंध तोड़ने की घोषणा करता था और फिर भी, उससे विवाह पुनः करने और विवाह के करारनामे के शब्द कहे बिना उससे उसी तरह का बर्ताव करता था जैसा कि वह संबंध तोड़ने के पूर्व करता था या यदि पत्नी ने खुल[3] या विवाह से मुक्ति प्राप्त कर ली है और पति उससे पुनः विवाह किये बिना उससे

३. खुल का तात्पर्य है विवाह-विच्छेद के लिए किया गया करारनामा। क्षतिपूर्ति या प्रतिफल की रकम प्राप्त करने के बाद विवाह-बंधन से पत्नी को मुक्ति मिलती है।

वैसा वर्त्ताव करता है और पति विवाह करारनामे के नवीकरण के बिना ही उससे विवाह-विच्छेद के पूर्व जैसा वर्त्ताव करता है तो उन दोनों को काजी (न्यायाधीश) के पास मामला ले जाये बिना ही अलग कर दिया जाता है। यदि पति ने उससे विवाह-संबंध तोड़ने की तीन बार घोषणा की और उसके बाद किसी पुरुष से उसका विवाह होने या न होने की स्थिति में भी विवाह के करारनामे का नवीकरण कर लेता है तो उन पति-पत्नी का संबंध तोड़ा नहीं जा सकता।

पति-पत्नी से उत्पन्न होने वाला बच्चा अपने माता पिता में से उसके धर्म का अनुयायी बनेगा जो दूसरे (पति-पत्नी) के धर्म से अच्छा है। जहाँ तक बच्चे की माँ का संबंध है, उसके संबंध में प्रारम्भ से ऐसा संभव नहीं है पर पति द्वारा इस्लाम धर्म अपनाने के परिणामस्वरूप वह भी मुसलमान हो जाती है। ऐसा इसलिए कोई मुसलमान औरत अपने मजहब से अलग मजहब वाले व्यक्ति के साथ, कानूनन, विवाह नहीं कर सकती। इसलिए ऐसा भी होता है कि पति-पत्नी में से एक ने, शिशु उत्पन्न होने के बाद भी, इस्लाम धर्म अपना लिया तो शिशु अपने माता-पिता के द्वारा इस्लाम-धर्म अंगीकरण के फलस्वरूप मुसलमान हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब दर (घर या निवास-स्थान) के संबंध में कोई अन्तर नहीं होता यानी माता-पिता दोनों ही या तो दारूल-इस्लाम (मुसलमानों के क्षेत्र) या दारूल हर्ब (गैर-मुसलमानों के क्षेत्र) में रहते हैं अथवा बच्चा या बच्ची अपने माता-पिता द्वारा विदेश (दारूल हर्ब) में इस्लाम-धर्म अपनाये जाने के समय, दारूल-इस्लाम (मुस्लिम क्षेत्र) में रहता या रहती है तो उसे मुसलमान ही माना जाता है। पर जब बच्चा या बच्ची विदेश (दारूल-हर्ब) में रहता या रहती है और माता-पिता मुस्लिम क्षेत्र (दारूल-इस्लाम) में रहते हैं और पिता वहाँ इस्लाम-धर्म अपना लेता है तो बच्चा या बच्ची वहाँ नहीं आता या आती तो वह मुसलमान नहीं माना जाता या जाती। मजूसी[४]

४. मजूस (मजूसी का बहुवचन)। इन्हें मैंगियाई भी कहा जाता था। इनका कुरान में सिर्फ एक बार उल्लेख किया गया है—"जहाँ तक उन लोगों का संबंध है, जो (खुदा में) विश्वास करते हैं और यहूदी, ईसाई और सेवस्तियाई और मैंगियाई जो सच्चाई से खुदा के साथ अपने देवताओं को मिलाते हैं, खुदा उनके बीच पुनर्जागरण (अन्तिम निर्णय) के दिन फैसला करेगा क्योंकि खुदा सबको और सब-कुछ देखता है" (कुरान, अध्याय १२, १७, पृ० ६६६)।
अधिकांश मुसलमान लेखक (विशेषतः शिया उप-पंथावलंबी) विश्वास करते हैं कि मैंगियाइयों को पहले खुदा का रहस्योद्घाटन हुआ था जिन्हें उन्होंने बाद में खो दिया।

किताबी[5] से बुरा माना जाता है और यदि माता-पिता में एक मजूसी हुआ और दूसरा किताबी तो बच्चा या बच्ची किताबी ही माना जाएगा या जाएगी और बड़े होने पर उसका विवाह मुसलमान से हो सकता है। उस बच्चे या बच्ची द्वारा (बड़े हो जाने पर) मारी गई चीजें (गाय,बकरा आदि) उसके पति या पत्नी के लिए कानूनी होंगी।

सामान्यत: एक गैर-मुस्लिम एक इस्लाम निष्ठावान (मुसलमान) से विरासत में कुछ नहीं पा सकता पर मुस्लिम राज्य के गैर-मुसलमान एक दूसरे से विरासत में पा सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए यह सवाल नहीं उठता था कि वे किस धर्म को मानने वाले थे या कि वे एक ही धर्म के थे या नहीं। सभी गैर-मुस्लिमों को एक वर्ग के रूप में माना जाता था चाहे उनका धर्म जो भी हो। एक मुसलमान किसी जिम्मी (गैर-इस्लाम धर्मावलंबी) के नाम वसीयत कर सकता था और एक जिम्मी मुसलमान के नाम। उसी तरह एक जिम्मी किसी गैर-इस्लाम धर्मावलंबी के नाम वसीयत कर सकता था चाहे वह उसी के अथवा कोई गैर-इस्लाम धर्म को मानने वाला हो पर वह उसके विरोधी धर्म को मानने वाला न हो। जिम्मी के वसीयत लिखने की शक्ति की सीमाएँ वही थीं जो मुसलमानों की वसीयत लिखने की सीमाएँ थीं। इन सीमाओं के अन्तर्गत कुछ दशाओं में वसीयत के हकदार का हक अवैध हो जाता था। किसी व्यक्ति को लिखी गई वसीयत उस स्थिति में भी अवैध हो जाती थी जब वसीयत की गई सम्पत्ति वसीयत लिखने वाली की सम्पत्ति के एक तिहाई भाग से अधिक होती थी। मुसलमान के किसी जिम्मी के साथ वसीयत संबंधी समझौता करने पर उसे सभी लौकिक मामलों में इस्लाम के कानूनों के अनुरूप अपनी स्वीकृति देनी चाहिए।

सभी सम्मतियों के अनुसार गैर-धार्मिक (लौकिक) प्रयोजनों के लिए जिम्मी का वसीयतनामा विधि-संगत होता है। लौकिक प्रयोजनों से भिन्न यानी धार्मिक वसीयत चार प्रकार की होती है। इनमें से पहली वसीयत को कुर्बाह या सर्व-

मैगियाई प्राचीन दार्शनिकों का एक गुट था जो पूर्व में बहुत पहले हुए और आकाशीय पिंडों (तारों, अन्य ग्रहों) का अध्ययन किया करते थे। वे अपने समय के विद्वान लोग थे। उनमें से एक डैनियल को हजरत मुहम्मद ने चाल्डिया में इस धर्म-पंथ के प्रधान के रूप में प्रोन्नति दी)। कहा जाता है वे लोग देवता के प्रतीक-स्वरूप अग्नि की पूजा करते थे। वे लोग सैबिस्तियनों के, जो आकाशीय पिंडों की पूजा करते थे, विरोधी थे।

५. किताबी, जो अहल-किताब "किताबों के व्यक्ति" के लिए शब्द है (यानी वे लोग जिनके पास ईश्वर द्वारा प्रेरित शब्द है जैसे कि यहूदी और ईसाई)।

शक्तिमान (अल्लाह) के पहुँचने के साधन की वसीयत कहा जाता है। मुसलमानों और जिम्मियों के बारे में इस प्रयोजन से की गई वसीयत विधि-संगत होती थी चाहे ऐसी वसीयत से सम्बद्ध पक्ष एक ही धर्म को मानने वाले हों या नहीं। यदि कोई किताबी (धार्मिक किताब के अनुसार आचरण करने वाला व्यक्ति यानी यहूदी या ईसाई) अपने वसीयतनामे में यह घोषणा करता है कि उसके खर्चे से गुलाम खरीदे जायँ या उन्हें मुक्त किया जाय और उसमें किन्हीं विशेष व्यक्तियों का जिक्र करता है या नहीं, या यह वसीयत करता है कि उसकी सम्पत्ति का तीसरा भाग भिखमंगों या दरिद्रों को दान-स्वरूप दिया जाय अथवा यह वसीयत करता है कि वसीयत किये हुए उसके धन को बैतु-ल-मुकद्दस (जेरूसलेम के पवित्र मन्दिर) में प्रदीप जलाने पर खर्च किया जाय या गैर-धार्मिक तारतारों के विरुद्ध युद्ध करने पर खर्च किया जाय तो ये सभी वसीयतें विधि-संगत मानी जाती हैं।

दूसरे, जिम्मियों और मुसलमानों—दोनों के संबंध में वसीयत के कुछ प्रयोजन पापपूर्ण होते थे पर इस प्रकार की वसीयतें किन्हीं विशेष लोगों के लिए की जाती थीं तो इन प्रयोजनों के अधीन वसीयत विधि-संगत होती थी, पर इनके लिए यदि विशेष व्यक्तियों के बारे में निर्देश न किया जाता था तो वसीयत अवैध हो जाती थी। उदाहरण के लिए यदि कोई जिम्मी वसीयत करता है कि उसकी सम्पत्ति का तीसरा हिस्सा लम्पट महिलाओं, गायक-गायिकाओं तथा इसी प्रकार अन्य व्यक्तियों को दिया जाय पर उन व्यक्तियों का नामोल्लेख नहीं करता तो वह वसीयत अवैध मानी जाती है। यदि ऐसे व्यक्तियों का नामोल्लेख किया जाता है और वसीयत का उल्लिखित धन उन्हें उपहार-स्वरूप दिया जाता है तो वसीयत वैध मानी जाती है पर यदि नामोल्लेख नहीं किया जाता तो उसे अवैध माना जाता है।

तीसरे, कुछ प्रयोजन ऐसे होते हैं जो मुसलमानों के लिए तो कुर्बाह यानी अल्लाह तक पहुँचने के साधन पर जिम्मी के लिए पापपूर्ण होते हैं। ऐसे मामले में, उपर्युक्त मामले के समान ही, वसीयत उपहार-स्वरूप होती है और वैध मानी जाती थी यदि वसीयत के हकदार लोगों का नामोल्लेख किया जाता था और नामोल्लेख न किये जाने पर अवैध मानी जाती थी। इसलिए यदि कोई मुसलमान

वसीयत करता है कि उसकी सम्पत्ति का एक तिहाई भाग किन्हीं मुसलमानों के हज के लिए या मस्जिद बनवाने के लिए किया जाय और काम करने के लिए व्यक्तियों का नामोल्लेख कर दिया जाता था तो वसीयत को वैध उपहार माना जाता था और उसके साथ यह सलाह सम्बद्ध मानी जाती थी कि कथित प्रयोजन पूरा किया जाय, पर नामोल्लिखित व्यक्तियों को इसके लिए स्वतंत्रता होती थी कि वे उक्त धन को हज के लिए खर्च करें या मस्जिद बनवाने के लिए या यदि वे चाहे तो ऐसा कुछ भी न करें।

इस संबंध में चौथी और अंतिम प्रकार की वसीयत वह है जो मुसलमानों के लिए तो पापपूर्ण है पर जिम्मी के लिए कुर्बाह (अल्लाह तक पहुँचने का साधन) या गुण-सम्पन्न। इस्लाम विधिवेत्ता अबू हनीफा के अनुसार ऐसी वसीयत को विधि-संगत माना जाता था चाहे ऐसी वसीयत में धन के हकदार लोगों का नामोल्लेख किया गया हो या नहीं पर अन्य इस्लाम विधिवेत्ताओं हजरत मुहम्मद के दो शिष्यों अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद के अनुसार ऐसी वसीयत अवैध थी यदि हकदार व्यक्तियों का नामोल्लेख नहीं किया गया हो। उदाहरण के लिए यदि एक किताबी यहूदी या ईसाई अपनी सम्पत्ति का एक तिहाई भाग यहूदी प्रार्थना-गृह या गिरजाघर बनवाने या अपने भवन को अपने धर्म के पूजा-घर के रूप में परिणत करने के लिए वसीयत करता है तो हजरत मुहम्मद के उपर्युक्त दो शिष्यों के अनुसार यह वसीयत जिस तरह मुसलमानों की दृष्टि में पापपूर्ण है उसी तरह यदि उन व्यक्तियों का, जिनको वह सम्पत्ति उपहारस्वरूप दी गई है नामोल्लिखित नहीं है तो वह वैध नहीं थी जब कि अबू हनीफा के अनुसार वह सभी स्थितियों में वैध थी। साथ ही यह बात ऊपर दी गई शर्तों के अधीन ऐसी इमारतें शहरों में नहीं बल्कि गाँवों में बनाई जाएँ। इमारतें शहरों में बनाये जाने की स्थिति में वसीयत अप्रभावकर मानी जाती थी।

यदि कोई इकाई या यहूदी, पूर्ण स्वस्थ रहने की स्थिति में गिरजाघर या यहूदी प्रार्थना-घर बनवाता है और उसके बाद मर जाता है तो सभी विधि-वेत्ताओं के अनुसार वह भी मृत व्यक्ति की अन्य सम्पत्ति की भाँति उसके उत्तराधिकारियों को मिल जाती है। हजरत मुहम्मद के दो शिष्यों अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद के

अनुसार यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। पर एक अन्य इस्लाम विधि-वेत्ता अबू हनीफा के अनुसार यह प्रश्न उठता है कि किसी व्यक्ति द्वारा पूर्ण स्वास्थ्य की स्थिति में गिरजाघर या यहूदी प्रार्थना-घर बनवाने और उसे किसी के नाम वसीयत करने के संबंध में क्या अंतर है ? अबू हनीफा गिरजाघर के मामले में उसे वसीयत मानते हैं पर यहूदी प्रार्थना-घर के मामले में नहीं पर **हिदाया** नामक विधि ग्रन्थ में इस आपत्ति का "उत्तर" दिया गया है। उत्तर इस प्रकार है कि केवल गिरजाघर बनवा देने से ही उस पर से निर्माण कराने वाले का अधिकार समाप्त नहीं हो जाता, पर उस भवन को एकमात्र अल्लाह की सेवा में अर्पित करने से जैसा कि मुसलमानों द्वारा मस्जिदों के मामले में होता है, उस पर से निर्माणकर्त्ता का अधिकार समाप्त हो जाता है। किसी गैर-मुसलमान द्वारा बनवाया गया पूजा-घर ईश्वर के नाम, बिना किसी विवाद, अर्पित न करने की स्थिति में वह निर्माणकर्त्ता की शेष सम्पत्ति की भाँति उसकी सम्पत्ति रह जाती है जब कि ईश्वर के नाम अर्पण संबंधी वसीयत किये जाने पर उस पर से निर्माणकर्त्ता का अधिकार समाप्त हो जाता है।

अध्याय २४

धर्मयुद्ध (१०९५-१२९१)

"धर्म-युद्ध" शब्द पश्चिमी ईसाइयों के उन सैन्य-अभियानों के लिए प्रयुक्त होता है जो उन्होंने जेरूसलेम के पवित्र नगर और ईसामसीह के पार्थिव जीवन से संबंधित स्थानों पर अधिकार करके उनपर अपना नियंत्रण रखने के लिए मुस्लिम सरकारों के विरुद्ध छेड़ा था। जब १०९५ में प्रथम धर्म-युद्ध छेड़ा गया और १२९१ में सीरिया में अपने सैनिक अड्डों से लातिनी (ईसाई) अंतिम रूप से निकाले गये, तो इस अवधि के दरम्यान इतिहासकारों ने औपचारिक रूप से आठ प्रमुख अभियान गिनाये हैं। इन आठ धर्मयुद्धों में प्रथम चार प्रमुख माने गये हैं और शेष चार गौण धर्मयुद्ध।

प्रायः नयी शताब्दियों का यह काल मोटे तौर पर पश्चिमी यूरोप के महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत विकास का काल रहा है। फलतः उपर्युक्त धर्म-युद्धों में से हर एक से उस समय यूरोप में व्याप्त विशेष स्थिति का परिचय मिलता है। यूरोप में उन धर्मयुद्धों का प्रभाव उनके समय की स्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न था। १२९१ के बाद भी अनेक छोटे-छोटे धर्मयुद्ध किये गये और उनमें पहले जो कुछ खोया गया था उसे पुनः प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुईं। धर्म-युद्ध (क्रुसेड) का यह नाम इसलिए पड़ा कि धर्म-योद्धा अपने बिल्लों के रूप में क्रास चिह्न धारण करते थे। व्यापक अर्थों में धर्मयुद्ध प्रधान ईसाई धर्माध्यक्ष द्वारा स्वीकृति प्राप्त युद्ध था जो ईसामसीह के शत्रु के विरुद्ध घोषित और संचालित होता था। जार्ज बर्टन एडेम्स लिखते हैं, "संक्रमण का युद्ध धर्मयोद्धाओं का युग था। यह पहिये की वह धुरी थी जब मध्ययुग पूर्ववर्त्ती समय के अंधकार और अशांति से आधुनिक युग को अधिक प्रकाश और शान्ति-व्यवस्था की ओर घूमा। धर्म-योद्धाओं का युग एक महान क्रान्तिकारी युग था। रोम के पतन के युग या शिक्षा और सुधार के पुनरुत्थान अथवा फ्रांसिसी क्रान्ति के युगों के भाँति ही, यह ऐसा युग था जिसमें मानवता, उत्तेजना, प्रेरणा और संघर्ष के जरिये विकास के नये चरण में प्रवेश करती है और इस प्रकार अपना पुराना केंचुल उतार कर नया रूप धारण करती है।" व्यापक दृष्टिकोण से देखने पर मुसलमानों के विरुद्ध धर्म-युद्ध संघर्ष के युग में पुराने नाटक का एक चरण था जिसमें पूर्व और पश्चिम, एशिया और

यूरोप के बीच युद्ध हुआ। इस नाटक का प्रारम्भिक अंक प्राचीन और ईरानियों के बीच युद्ध-स्वरूप था। घटनाओं के संकीर्णतम वृत्त के परिप्रेक्ष्य में देखने पर इसे दो महान विश्व धर्मों—इस्लाम और ईसाई के बीच लम्बे संघर्ष का चरमबिन्दु कहा जा सकता है।

दूसरे शब्दों में कहा गया है कि धर्मयुद्ध गिरजाघर, सभ्यता, पश्चिमी ईसाई धर्म तथा पूर्व इस्लाम धर्म-निष्ठा और सभ्यता तथा मुसलमानों के बीच संघर्ष था। इसका आरम्भ प्रथम धर्मयोद्धा हेराक्लियस की मृत्यु के जो धर्मनिष्ठ खलीफा उमर की सेनाओं द्वारा सन् ६३६ में यारमुक के युद्ध में हुई थी। कभी यह धर्मयुद्ध मुख्यतः धार्मिक था और कभी मुख्यतः राजनीतिक। यह दो भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के बीच संघर्ष था जिसमें एक ओर रोमन और स्लावोनिक थे तो दूसरी ओर अरब और तुर्क, पर यह मिश्रित लोगों के बीच का ही संघर्ष रहा जिसमें मूलभूत रूप से दो सभ्यताएँ एक दूसरे से संघर्षरत थीं। इसके चरणों में से एक चरण धर्मयुद्धों का है। यह चरण सन् १०९६ में आरम्भ हुआ और इसकी समाप्ति उस समय हुई जब सन् १२९१ में सीरिया की प्रधान भूमि में अंतिम ईसाई सैनिक अड्डे ध्वस्त कर दिए गए। यदि पुरानी धर्मयुद्ध-प्रेरणा के तब भी कायम रहने वाले ध्वंसाव-शेषों की ओर दृष्टि डाली जाय तो धर्मयुद्ध तब तक कायम रहा जबतक पुर्तगाल-वासियों द्वारा कार्रवाइयाँ शुरू नहीं हुई और कोलम्बस द्वारा नये विश्व का पता नहीं लगाया गया।

फिर भी धर्मयुद्ध के दो पक्ष है। इनमें से एक पक्ष मूलतः प्रेरणा से उद्भूत है जो प्रारंभ से अन्य तनावों से भी प्रभावित थे। ये धर्मयुद्ध आध्यात्मिक आन्दो-लन थे जिन्होंने अपने को आध्यात्मिक संस्था के वस्तुगत रूप में परिणत कर दिया था। यह एक धार्मिक युद्ध था जो धार्मिक नीतिवादियों के सिद्धान्त के अनुसार न केवल न्याय्य था बल्कि जिसमें धार्मिक समर्पण भावना पूर्णतः निहित थी और जिसने ईसाई धर्म के प्रमुख शत्रु के विरुद्ध सामान्य शत्रुता में ईसाई राष्ट्र-समूह को एकताबद्ध कर दिया था। पर धर्मयुद्ध के परिणामस्वरूप ईसाइयों की धार्मिक भूमि का पुनरुद्धार हुआ। यह एक प्रकार से पूर्व-स्थित मुस्लिम क्षेत्र में पश्चिमी ईसाई क्षेत्र का विस्तार था। इससे एक ईसाई राज्य की नींव पड़ी जिसे जेरूसलेम का लातिन राज्य कहा जा सकता है जो लेवान समुद्र के तट पर बसा हुआ था जिसके पूर्व में काहिरा और मिस्र था। इन दो में प्रथम इसका व्यापकतर पक्ष है और द्वितीय का एक विशिष्ट और खास महत्व है। जेरूसलेम के लातिनी राज्य में धर्म-युद्धों ने विशिष्ट स्थान ले लिया और यही उनके विशिष्ट परिणाम दीख पड़े। सैनिक शासन-व्यवस्थाओं का उदय हुआ। सीरियाई बंदरगाहों पर वेनेसियनों और

जेनोसियाइयों द्वारा व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना हुई और शेष एशिया के साथ व्यापारिक और धर्म-प्रचार संबंधी सम्पर्क-सूत्रों का विकास हुआ। यहाँ (जैसा कि वास्तव में स्पेन में हुआ था, पर यहाँ की स्थिति पर यूरोप ने उतना ध्यान दिया जितना स्पेन पर कभी नहीं दिया) ईसाई और इस्लाम धर्मों के बीच निरन्तर संघर्ष और स्थायी सम्पर्क स्थापित हुआ। शायद धर्मयुद्धों का प्राथमिक और सबसे ज्यादा फलप्रद तत्त्व यह है कि पश्चिम (ईसाइयों के क्षेत्र) ने पूरब (मुसलमानों के क्षेत्र) में प्रवेश किया। पर इस सरल से तथ्य की अपनी शर्तें थीं और इससे वैजेन्टाइन के यूनानी ईसाइयों के साथ सम्पर्क स्थिर हुए। मुसलमान आपस में बँटे हुए थे। उनमें एक वर्ग था सुन्नी धर्म-पंथावलंबी तुर्कों का जो पश्चिमी एशिया में उत्तर में श्याम सागर से दक्षिण में लाल सागर के क्षेत्र तक अच्छी तरह से जमे हुए थे और जिनका संबंध मुसलमानों के लिए दूसरे वर्ग फातिमिद शासन के अधीन मिस्र शिया धर्म-पंथावलंबियों से था। धर्मयुद्ध करने वाले ईसाइयों को मुसलमानों के इस अन्तर्विरोध का पता लगाना था और इसका अपने स्वार्थ में उपयोग करना था।

ऐतिहासिक दृष्टि से लातिनी ईसाई धर्म का समुद्र पार कर इस्लाम से युद्ध के लिए जाना उस शत्रुता का, जो पश्चिमी भूमध्यसागर में ईसाइयों और मुसलमानों के बीच एक बहुत लंबे अरसे से चली आ रही थी, चरम विन्दु था। हमें धर्म-युद्ध को जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखना है उसमें यह एक प्रमुख तत्व है। जब पूर्व से धर्मयुद्ध के लिए आह्वान आया तो पश्चिम में इसे आरंभ करने के लिए आदेश-सा मिला। यह एक दोहरा आह्वान था पर इसका कारण एक ही था। इसमें एक ओर सालजुक तुर्कों का दबाव था जो बगदाद के अंतिम अब्बासिद खलीफाओं के वास्तविक मालिक बन बैठे थे और जिन्होंने (सालजुक तुर्कों ने) काहिरा के कमजोर फातिमिद खलीफाओं के हाथ से जेरूसलेम छीन लिया (१०७० ई०) था और दूसरी ओर एशिया माइनर में मंजीकार्ट की लड़ाई में बैजेन्टाइन सेनाओं की करारी हार हो गई थी। जेरूसलेम की अपेक्षाओं और बैजेन्टाइनों की आवश्यकताओं दोनों ने पश्चिम की ओर संबोधित आह्वान का सशक्त उद्घोष दिया और इसी आह्वान का तीव्र प्रत्युत्तर था सन् १०९६-९९ का प्रथम धर्मयुद्ध। इसे धर्मयुद्ध इसलिए कहा जाता है कि यह धर्मान्धों द्वारा प्रेरित था। पर इसके पीछे केवल आध्यात्मिक प्रयोजन ही न थे बल्कि व्यक्तिगत भी थे।

कारण –

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, यह पूरब (मुस्लिम क्षेत्र) और पश्चिम (ईसाई क्षेत्र) के बीच लंबे संघर्ष यानी मुसलमानों और ईसाइयों के बीच

एक दूसरे पर प्रभुता के लिए प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम था। धर्मयुद्ध के पूर्व भी इनके बीच संघर्ष एक अर्थ में धर्मयुद्ध ही था। ग्यारहवीं शताब्दी में इस्लाम के विरुद्ध ईसाइयों की तेग इसलिए तनी क्योंकि इस्लाम के द्रुतगति से बढ़ाव से "ईसाई यूरोप में आतंक का कंपन व्याप्त हो गया।"

ईसाइयों का तीर्थयात्रा के लिए अति उत्साह धर्म-युद्ध का एक दूसरा कारण था। ग्यारहवीं ईस्वी सदी तक जेरूसलेम-यात्रा के लिए उनका उत्साह तीव्र से तीव्रतर होता गया। ठीक उसी समय, जब कि ईसाई तीर्थयात्री अपनी धार्मिक भूमि में बड़ी संख्या में पहुँचने लगे तो जेरूसलेम या फिलस्तीन तुर्कों के कब्जे में चले गए। ईसाई तीर्थ-यात्रियों को, जैसा कि आज-कल मुस्लिम तीर्थ-यात्रियों के साथ होता है अक्सर दुर्व्यवहार और डाकुओं के खतरे का सामना करना पड़ता था। तीर्थयात्रियों ने इस दुर्व्यवहार की अतिरंजित खबरें समूचे यूरोप में बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित कीं जिससे समूची ईसाई आबादी क्रोध की आग से प्रज्वलित हो उठी।

इस प्रकार पश्चिमी यूरोप के राजनीतिक अभ्यासों और सामाजिक विकास ने मिल-जुल कर धर्म-युद्ध के रूप में उक्त आह्वान का जवाब दिया। पश्चिम में यह पुराना रिवाज रहा है कि अपने पापों से मुक्ति के लिए पश्चात्ताप से त्रसित लोग तीर्थयात्रा करते थे। इस तीर्थ-यात्रा का लंबे समय से लक्ष्य-स्थान रहा था—जेरुसलेम जो सर्वाधिक पवित्र तो था ही और साथ ही धार्मिक स्थानों में सबसे ज्यादा दूरस्थ। इसलिए वहाँ जाना दुहरा पुण्य माना जाता था। यह लक्ष्य-स्थान अब खतरों से घिरा हुआ था और उनसे उसकी मुक्ति होनी ही चाहिए थी। अतः धर्म-युद्ध एक बड़ी सशस्त्र तीर्थयात्रा के रूप में आरंभ हुआ जिसका उद्देश्य जेरुसलेम के रास्तों को निरापद बनाना और इस प्रकार भावी तीर्थयात्राओं के इस लक्ष्य स्थान को स्वतंत्र करना था। इस धर्मयुद्ध की नींव डाली तीर्थयात्री सरदारों ने और बाद में साल-ब-साल ये तीर्थयात्री सरदार ही जेरुसलेम के राज्य कायम रखने के लिए बराबर आते रहे।

अलावे; यह समय यूरोप में सामन्ती अराजकता का था। सरदार और राजे एक दूसरे के खिलाफ निरन्तर युद्ध कर रहे थे। वीरता और सरदारों के संस्थानों ने ईसाई आबादी को अनेक फौजी दस्तों के रूप में परिवर्तित कर दिया था। ईसाइयों और पोप ने इस सैन्य प्रवृत्ति का सुविधाजनक लाभ उठाया। उन्होंने सरदारों और राजाओं का ध्यान आपसी लड़ाई से हटाने के लिए उन्हें प्रेरित किया कि वे धार्मिक नगर (जेरुसलेम) पर पुनः कब्जा करने के लिए मुसलमानों से युद्ध के पुण्य-कार्य में लगें।

इन सबके बावजूद मुसलमान १०वीं शताब्दी से भूमध्य सागर के स्वामी बन गये थे। भूमध्य सागर में व्यापार और वाणिज्य पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। अनेक देशों—विशेषतः पिसा, वेनिस और जेनोआ के व्यापारियों का भूमध्य सागर में वाणिज्यिक स्वार्थ था पर वहाँ मुसलमानों के आधिपत्य के कारण उनके लिए मार्ग अवरुद्ध था। इसलिए वाणिज्यिक स्वार्थों ने धर्म-युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

पर धर्म-युद्ध का तात्कालिक कारण हुआ ग्यारहवीं शताब्दी में सालजुक तुर्कों के बढ़ाव के कारण, धार्मिक मकबरे तक तीर्थयात्रियों की यात्रा में रुकावट पड़ना। १०५५ में सालजुक सुल्तान तुगरिल बेग ने अपने नाम मात्र के स्वामी बगदाद के अब्बासिद खलीफा को, जो सुन्नी मुसलमान था, बाध्य किया कि वह उसे खलीफा की उपाधि दे। १०७१ में मंजी कार्ट के युद्ध के बाद तुर्कों के घुमन्तू दस्तों ने अनाटोलिया के प्राचीन बैजेन्टाइन क्षेत्र को रौंद डाला और इस प्रकार यूरोप से तीर्थयात्रियों की यात्रा को अधिक कठिन बना दिया। १०९२ में योग्य साल्जुक सुल्तान मलिक शाह की मृत्यु के बाद उसके अमीर (प्रान्तों के मुख्य मंत्री) सीरिया, फिलस्तीन और अन्य अब्बासिद प्रान्तों के प्रश्न पर आपस में लड़ने लगे जिससे ईसाई तीर्थयात्रियों के गमनागमन में और बाधा पहुँची। चूँकि यूरोप से तीर्थयात्रियों का जाना अधिक से अधिक बढ़ता जा रहा था और उनमें लोगों की संख्या बहुत ज्यादा थी, इसलिए स्वभावतः इस बाधा से लोगों को बड़ी तकलीफ हुई।

धर्मयुद्ध का एक और सामान्य कारण यह था कि पश्चिमी यूरोप में वृहत शक्ति विमोचित हुई थी। २०० वर्षों से यूरोप सारासेनों (अरबों), वाइकिंगों और मगयारों के आक्रमण झेलता रहा था। फिर प्रायः ११वीं शताब्दी के आरंभ में वाइकिंग और मगयार ईसाई हो गये, महान सामन्ती राजाओं और धर्माधिकारियों ने न्याय और व्यवस्था की, उनके प्रारंभिक रूप में स्थापना कर दी, वाणिज्य को जैसे पुनर्जन्म मिला और प्रचलन में मुद्राओं के रूप में धन बढ़ गया।

उसी समय ईसाई मठों में क्लुनियाक आशीर्वादात्मक सुधार, तीर्थयात्रियों की संख्या में भारी वृद्धि, स्पेन और सिसली में मुसलमानों के विरुद्ध धार्मिक युद्धों की तीव्रता में द्रुत गति आने से ईसाई धर्म-प्रधान और भी सक्रिय हो गए। स्पेन में टोलेडो मुसलमानों के अधिकार से १०८५ में छीना गया, ट्यूनिसिया में महदिया पर जेनोसियनों, पिसा-निवासियों और इटली के अन्य नगरों में उनको मित्रों द्वारा १०८७ में छीना गया और १०९१ तक सिसली से अंतिम मुस्लिम शासक भी भगा दिये गये। इन अभियानों को ईसाई धर्माध्यक्ष का आशीर्वाद मिला हुआ था जो भविष्य के लिए एक पूर्वोदाहरण-सा था।

इनमें से सबसे महत्वपूर्ण बात थी पोप ग्रेगरी सप्तम के शिष्य और संरक्षित पोप अर्बन द्वितीय की, जो क्लुनियाक सुधार आन्दोलन का एक प्रमुख नेता था, योजनाएँ। क्लुनियाक आन्दोलन गिरजाघर में एक बड़ा, शुद्ध और विश्वजनीन अनुशासन कायम करना, उसे सामन्ती नियंत्रण के सभी चिह्नों से मुक्त करना, विश्व भर के गिरजाघरों के शासन को ईसामसीह के प्रतिनिधि स्वरूप पोप के अधीन लाना और मानवता के कार्यकलाप को ईश्वर की सेवा में लगाना चाहता था।

सन् १०८८ में पोप बनने के बाद अर्बन द्वितीय ने बैजेन्टाइनों से अपने सम्पर्क पुनः स्थापित किये पर चूंकि वह और बैजेन्टाइन सम्राट एलेक्सियस कौमनेनस भी सबसे पहले अपनी आंतरिक स्थिति मजबूत करने में लगे हुए थे, इसलिए कुछ वर्षों तक कोई महत्वपूर्ण कदम न उठाया जा सका। और तब १०९५ में बसंत ऋतु में अर्बन द्वितीय ने पियासेंजा में गिरजाघर संबंधी मामलों पर विचार-विमर्श के लिए एक परिषद बुलाई। बैजेन्टाइन सम्राट एलेक्सियस ने परिषद के नाम एक अपील भेजी जिसमें तुर्कों से युद्ध के लिए उसकी सेना के लिए सैनिक भेजे जाने का अनुरोध किया गया था। एलेक्सियस के पूर्ववर्त्ती सम्राट माइकेल सप्तम ने अर्बन के पूर्वाधिकारी ग्रेगरी सप्तम के पास १०७३ में इसी तरह की अपील भेजी थी जिसमें १०५४ में उनके बीच पड़ी फूट पर विचार करने का प्रस्ताव किया गया था। पोप अर्बन द्वितीय ने यह समस्या गिरजाघर की एक दूसरी परिषद के समक्ष प्रस्तुत की जिसकी बैठक औवरजेन में क्लेयर माउन्ट में नवम्बर, १०९५ में हुई। अर्बन ने बैजेन्टाइन सेना के लिए स्वयंसेवकों की माँग के बदले पोप की एक सेना गठित करने का उल्लेख किया जैसा कि एक पूर्व अवसर पर उसके पूर्ववर्त्ती पोप ग्रेगरी ने करने का विचार कर रखा था। प्रस्ताव के अन्तर्गत सेना के सैनिकों का चिह्न-क्रास रखने का अनुरोध किया गया था और उसका नेता एक पोप का एक प्रतिनिधि रखे जाने का प्रस्ताव था। इस सेना का उद्देश्य था कि एलेक्सियस को सहायता दी जाए कि वह अनाटोलिया से तुर्कों को मार भगाए और फिर, जैसा कि ग्रेगरी सप्तम की मूल योजना थी जेरूसलेम के धार्मिक मकबरे पर कब्जा किया जाए। प्रस्ताव का दूसरा अंश एलेक्जियस की योजनाओं में शामिल न था। उसके लक्ष्य अपेक्षाकृत अधिक तात्कालिक थे। इस बात के प्रमाण नहीं मिलते कि इस अवसर पर अर्बन द्वितीय ने सेना पर पोप के आधिपत्य का विवादास्पद प्रश्न न उठाया पर यह निश्चित था कि उसने अपने इस सिद्धान्त में कभी परिवर्त्तन न किया। बाद में धर्मयुद्ध का जिस तरह संचालन किया गया उससे प्रतीत होता है कि वह धर्मयुद्ध की प्रगति के क्रम में यूनानी धर्मनिष्ठ पुरोहित वर्ग को मान्यता देना और उसे फिर से स्थापित करना चाहता था। यह विवादास्पद प्रश्न न उठाना

ही आवश्यक था क्योंकि बैजेन्टाइनों और पोप के बीच की फूट को दूर करना महत्वपूर्ण था। अलावे, अर्बन का उस अवधि के दौरान यह लक्ष्य था कि यूनानी गिरजाघर को अपने प्रभाव में ले आवे। उसने लोगों को आश्वासन दिया कि जो लोग इस युद्ध में भाग लेंगे उन्हें पापों से मुक्ति मिलेगी और जो मरेंगे उन्हें स्वर्ग मिलेगा। तुर्कों के विरुद्ध युद्ध के आह्वान के उद्घोष ने समस्त ईसाइयों को पोप अर्बन द्वितीय के झण्डे के नीचे एक जुट कर दिया। बहुत थोड़े समय में एक लाख पचास हजार व्यक्ति, जिनमें अधिकांश फ्रैंक और नोर्मन थे, आह्वान का उत्तर दिया और उनकी बैठक कान्स्टैंटीनोपुल में हुई।

गिरजाघर के प्रभाव के अधीन सामन्तवाद का सामाजिक विकास धर्मयुद्ध का एक दूसरा और समानान्तर कारण था। ११वीं शताब्दी के आरंभ से ही धर्म-सभाओं और पोपों का ध्यान व्यक्तिगत लड़ाइयों के लिए सैनिक समाज की युद्ध-लिप्सु भावना की ओर था। उनलोगों ने कोशिश की कि उस भावना को एक "उचित" और "धार्मिक" युद्ध की दिशा में मोड़ा जाय। इसके लिए अंशतः सरदारों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के समारोह में न्याय की रक्षा और दमन के उन्मूलन हेतु शस्त्रास्त्रों की पवित्रीकृत अर्पण किया गया और इस प्रकार एक नई वीरता के सृजन में सहायता दी गई। साथ ही यह कार्य अंशतः इस माँग द्वारा, जैसा कि अर्बन द्वितीय ने १०९५ में धर्मयुद्ध शुरू करने के उपदेश में क्लेयरमोन्ट में इस सिलसिले में किया। उपदेश में कहा गया कि व्यक्तिगत युद्ध के भ्रातृहत्यात्मक दुरुपयोग को ईसाई धर्म-विरोधियों के युद्ध की पवित्रता में परिणत किया जाय। इस प्रकार धार्मिक युद्ध से आंतरिक शक्ति के प्रयोजन को संयुक्त कर दिया गया और धर्म सभा या पोप ने इसके साथ ही यह भी आदेश दिया कि ईश्वर के साथ एकात्मकता और ईसाई धर्मयुद्ध अभिन्न हैं।

धर्मयुद्धों का क्रम

क्लेयरमोन्ट की परिषद में अर्बन द्वितीय ने सीरिया और फिलिस्तीन पर पुनः अधिकार करने के लिए लोगों की उत्सुकता जगाई। जब नवम्बर २६, १०९५ में अर्बन द्वितीय ने दक्षिण-पूर्वी फ्रांस में क्लेयरमोंट में अपना प्रसिद्ध भाषण किया जिसमें ईसाई धर्मनिष्ठ वालों पर जोर दिया गया था कि वे जेरूसलेम के धार्मिक मकबरे के रास्ते पर बढ़ें और उसे दुष्ट वंश के लोगों के हाथ से जबरन छीन कर उस पर अपना अधिकार कर लें। उस भाषण को, संभवतः पूरे इतिहास में, ऐसे अवसरों पर किये गए भाषणों में, सर्वाधिक प्रभावकर माना गया। अर्बन द्वितीय ने धर्मयुद्ध की बड़ी सरल परिभाषा प्रस्तुत की और वहाँ उपस्थित विशाल जन-समुदाय ने उसके प्रति अपनी अनुकूल प्रतिक्रिया अत्यंत उत्साहपूर्ण ढंग से प्रकट की। उन्होंने

घोषणा की कि यह ईश्वर की इच्छा है और इसी घोषणा को अपना युद्ध-घोष बनाया। वे शीघ्रता में धर्मयोद्धा की शपथ लेने के लिए आगे बढ़े और अपने वस्त्र पर क्रास का चिह्न सिलवा लिया। यहाँ यह बात विशेष रूप से स्पष्ट कर देना जरूरी है कि आन्दोलन के लिए व्यापक राजनीतिक उत्साह के बावजूद धर्मयुद्ध पश्चिमी यूरोप के राजनीतिक और आर्थिक विकास का एक चरण था और साथ ही था साम्राज्यवाद के इतिहास का मध्यकालिक अध्याय। अर्बन द्वितीय ने धर्मयुद्ध के लिए जिस उत्तेजना का वातावरण तैयार किया उसमें पीटर दि हरमिट जैसे लोगों का किसानों और राजमिस्त्रियों के बीच भावोत्तेजक उपदेशों से वृद्धि हुई। किसान और राजमिस्त्री भी धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिए आगे बढ़े पर उसके लिए वे पूरी तरह अयोग्य थे।

धर्मयुद्धों की निश्चित संख्या का विभाजन सात से नौ के बीच वर्गों में करना किसी भी प्रकार संतोषजनक नहीं है। धर्मयोद्धाओं की अजस्र धारा निरन्तर प्रवहमान थी और उसके बीच ठीक विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं। उसका अधिक तर्कसंगत विभाजन इस रूप में किया जा सकता है। धर्मयोद्धाओं की प्रथम विजय की अवधि ११४४ तक चली जिसमें मोसुल के अताबेग जंगी ने अल-रुहा पर फिर से कब्जा किया। धर्मयोद्धाओं के युद्ध की दूसरी अवधि वह थी जब जंगी की विजय द्वारा तीव्रतर हुई। मुस्लिम प्रतिक्रिया की परिणति सलाह-अल-दीन (सलादिन) की शानदार विजय में हुई। तीसरी अवधि गृह-युद्धों और छोटे-छोटे युद्धों की थी जिसमें सीरियाई-मिस्री अय्यूबिदों और मिस्री मामलुकों ने प्रतिरोधात्मक युद्ध किया। इस अवधि का अंत १२९१ में हुआ जबकि धर्म-योद्धाओं को सीरियाई मुख्य भूमि पर अपने अंतिम सैनिक अड्डे खो देने पड़े। धर्म-योद्धाओं की विजय की अवधि पूरी तरह तथाकथित द्वितीय धर्मयुद्ध (११४७-४९) के पूर्व की थी। तीसरी अवधि मोटे तौर पर तेरहवीं शताब्दी के समय की थी। इस अंतिम अवधि में हुए धर्म-युद्धों में एक कांस्टैंटीनोपुल (१२०२-०४) के विरुद्ध हुआ और दो मिस्र के विरुद्ध (१२१८-२१) जिसमें धर्मयोद्धाओं को कुछ भी हासिल न हुआ और एक धर्मयुद्ध ट्यूनिसिया के विरुद्ध भी हुआ (१२७०)।

पश्चिम से धर्मयोद्धाओं की जो पहली टुकड़ी आई उससे बैजेन्टाइन सम्राट एलेक्जियस कौमनेनस को बड़ी निराशा हुई। पोप अर्बन द्वितीय के प्रति उसकी अपील के बाद पड़ने वाले शीत और वसंत ऋतुओं में कान्स्टैंटीनोपुल में जो प्रथम चार सेनायें आई उनसे उसे संतुष्ट रहने का कोई खास कारण न था। पश्चिम के किसी भी सम्राट ने अर्बन द्वितीय के आह्वान पर अनुकूल प्रतिक्रिया न की। न तो इंगलैंड के विलियम रफस ने, न फ्रांस के फिलिप प्रथम ने और न ही जर्मनी के

हेनरी चतुर्थ ने। आह्वान की प्रतिक्रिया अधिकांशतः फ्रांसीसी कुलीन-वर्गीय लोगों, सरदारों और दुःसाहसिकों ने दी। इस प्रकार आन्दोलन पर फ्रांसीसी चरित्र की छाप शुरू से रही और अन्त-अन्त तक तिरोहित नहीं हुई। इस प्रकार धर्म-युद्ध पर फ्रांसीसी सभ्यता की छाप बराबर ही रही। फ्रांस के जिन प्रमुख सरदारों ने धर्म-युद्ध में भाग लेने के लिए क्रास-चिह्न धारण किया उनमें लफैंडर्स का काउन्ट रोबर्ट, नौर्मण्डी का ड्यूक रोबर्ट, वरमान्डोई का काउन्ट ह्यूगस और ब्लोई का काउन्ट स्टिफेन और इंगलैंड का भावी राजा था। प्रथम धर्म-युद्ध का नेतृत्व किया डोइलन के गोडफ्रे, लोअर लोरेन के ड्यूक और उसके भाई बाल्डविन और दक्षिणी इटली के नौर्मन रोबर्ट गुइसकार्ड के पुत्र बोहेमुण्ड ने। जब ये प्रथम धर्म-योद्धा कौंस्टेंटीनोपुल में मिले तो अपने लक्ष्य-स्थान के लिए उनका रास्ता एशिया माइनर होकर था। वह क्षेत्र उस समय कुनियाह के युवा सालजुक सुल्तान किलिज आर्सलान (१०९२-११०७) के अधीन था। उसके सैनिकों से मुठभेड़ के दौरान पहली बार ईसाइयों और मुसलमानों के बीच तलवारें खिचीं। यूनानी सैनिकों के साथ धर्म-योद्धाओं ने सर्वप्रथम निकाइया-स्थित तुर्की राजधानी पर जून १०९७ में कब्जा किया। अलरुम में सालजुक राजवंश के संस्थापक सुलेमान इब्न कुतलूमिश की, जो किलिज का पिता था और जिसकी राजधानी निकाईया में थी, जिस पर धर्मयोद्धाओं ने कब्जा कर लिया। पुनः उसी साल १ जुलाई डोरीलियेम के युद्ध में धर्म-योद्धाओं ने किलिज की सेनाओं को पराजित किया। तौरुस पर्वतों को पार करने के बाद और दक्षिण की ओर पूरी तरह मुड़ने के पहले धर्म-युद्ध की सेनाओं की एक टुकड़ी ने बाल्डविन के अधीन चक्कर काटकर ईसाई आर्मेनियाइयों द्वारा अधिकृत पूर्वी क्षेत्र में प्रवेश किया जहाँ १०९८ के आरंभ में अल-रूहा पर कब्जा किया गया। यहाँ, ईसाई क्षेत्र में प्रथम लातिनी बस्ती बनी और बाद में प्रथम लातिनी राज्य स्थापित किया गया जिसका राजा बाल्डविन बना।

धर्मयोद्धाओं द्वारा ऐन्टियोक पर अन्तिम रूप से कब्जा करने के पूर्व एक सौ चौंसठ सीरियाई नगर और किले उनके कब्जे में आ गए। उन्हें ऐंटियोक पर सात महीनों तक घेरेबन्दी डाल रखनी पड़ी। उन्हें इसमें जेओनियाइयों के नौ सैनिक बेड़े ने खाद्यान्न आदि की आपूर्त्ति करके और घेरे-बन्दी के सामान पहुँचा कर सहायता दी। जब धर्म-योद्धा समुद्री तट से नीचे की ओर बढ़े तो भी यह समुद्री बेड़ा उनके साथ सहयोग करता रहा। पर उस समय तक धर्मयोद्धाओं में से "गरीब लोग मोर्चे से भागने लगे और अनेक अमीरों को भय हुआ कि वे भी युद्ध के दरम्यान कहीं गरीब न हो जाएँ।" एंटियोक यागी सियान नामक सालजुक अमीर के अधीन था जिसे महान सालजुक सुल्तान मलिक शाह ने उस पद पर नियुक्त

किया था। अन्त में २१ अक्तूबर, १०९७ से ३ जून १०९८ तक एक लम्बे और श्रमसाध्य घेरेबन्दी के बाद और-सो-भी नगर के फाटकों के अन्दर के एक राजद्रोही की मदद मिलने पर ही बोहेमुण्ड की सेनायें नगर में घुस पाईं। इस प्रकार ऐन्टिओक बोहेमुण्ड के कब्जे में आ पाया जो धर्म-युद्ध के नेताओं में सबसे ज्यादा धूर्त्त था। फलतः उसने निर्णय लिया कि ऐन्टिओक पर उसी का कब्जा रहेगा, बैजेन्टाइन सम्राट एलेक्जियस या धर्मयुद्ध के उसके साथियों में से किसी का भी नहीं। फलतः इस प्रश्न पर नेताओं में बड़ी चख-चुख हुई पर बोहेमुण्ड के ही कब्जे में ऐन्टिओक को छोड़ने के अलावा और कोई रास्ता न निकल सका। और इस प्रकार धर्मयोद्धाओं द्वारा अधिकृत राज्यों में से दूसरे की स्थापना हुई। और फिर उसके बाद बोहेमुण्ड जेरूसलेम क्यों जाता?

बहुत दक्षिणी छोर पर अल-रामला पूर्णतः परित्यक्त क्षेत्र के रूप में पाया गया और वह फिलिस्तीन में प्रथम लातिनी अधिकृत क्षेत्र बना। ७ जून, १०९९ को टोलूस के रेमण्ड के नेतृत्व में चालीस हजार धर्म-योद्धा जिनमें से बीस हजार प्रभावकारी सैनिक थे, जेरूसलेम के फाटकों पर खड़े हुए थे। उसकी रक्षा के लिए तैनात मिस्री सेना करीब-करीब एक हजार होगी। १५ जुलाई को नगर की घेरेबन्दी करने वालों ने नगर में वृहत रूप में प्रवेश किया और पुरुषों और स्त्रियों दोनों का महाभयानक हत्याकांड मचाया। "नगर की सड़कों और चौकों पर कटे हुए सिरों और हाथों और पाँवों के ढेर-के-ढेर नजर आ रहे थे।" धर्मयोद्धाओं ने उस दिन गैर-ईसाइयों का जो रक्तपात किया उसका परिमाण प्रायः अविश्वसनीय है। उसके पूर्व इतने बड़े पैमाने पर गैर-ईसाइयों का ऐसा क्रूर हत्याकांड न तो सुना गया, न ही देखा गया था। प्रायः एक महीने के बाद मिस्रियों पर आसकालान के निकट जो महत्त्वपूर्ण विजय हुई उससे जेरूसलेम में लातिनों की स्थिति और सुरक्षित हो गई। पर मिस्री विजीर अल-मालिक अल-अफदल के अधीन आसकालान समुद्री नौसैनिक बेड़े का अड्डा और एक सैनिक दस्ते का मुख्यालय बना रहा। इस प्रकार तीसरे लातिनी राज्य की स्थापना हुई जो पूर्व में स्थापित अन्य लातिनी राज्य से ज्यादा महत्त्वपूर्ण था। इस राज्य के राजा पद संभालने के लिए धर्मयुद्ध के एक नेता को जो मुख्य रूप से गिरजाघर का एक अधिकारी था, कहा गया पर उसने प्रस्ताव को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि जबकि ईसाइयों के सर्वोपरि उद्धारकर्ता (ईसामसीह) ने कांटों का ताज पहना था तो वह सोने का ताज नहीं पहन सकता। धर्मयोद्धाओं में से एक ईमानदार नेता और वीर योद्धा गाडफ्रे को वहाँ का राजा चुना गया और उसे पवित्र मकबरे का सामन्त और संरक्षक की उपाधि दी गई। अनेक धर्मयोद्धाओं और तीर्थ-यात्रियों ने इस प्रकार जब अपनी प्रतिज्ञा पूरी होती देखी, अपने घरों को लौट गये। जेरूसलेम ११८७ तक ईसाइयों के कब्जे में रहा। पर

ईसाइयों के बीच आपसी लड़ाई, उनके द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध यूनानियों और मुसलमानों के साथ दुरभिसन्धि और सैन्य अधिकारियों और व्यापारियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता को देखते हुए मुसलमानों ने संगठित और एकजुट होकर शक्ति प्राप्त करने की ठानी। मोसुल के गवर्नर के प्रतिनिधि जंगी ने पूर्व में लातिनी राज्यों में से सबसे पुराने-एडेसा के देश को नष्ट कर दिया (११४४)। इससे ईसाइयों के लिए जेरूसलेम की सुरक्षा की समस्या और भी गम्भीर हो गई।

इमाद-अल-दीन (धार्मिक विश्वास का स्तंभ) एवं मोसुल के नीली आँखों वाले अताबेग (संरक्षक)—जंगी (११२७-११६०) के उदय के साथ इस्लाम के पक्ष में हवा का रुख मुड़ा। ईसाई धर्म-योद्धाओं के विरुद्ध वीरों की शृंखला में जंगी पहली कड़ी जैसा था। इस शृंखला की अंतिम कड़ी सलाह अल-दीन को माना जा सकता है और उसका विस्तार तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मामलुक शासकों तक हुआ। जंगी शक्तिशाली सालजुक तुर्क शासक मलिक शाह के एक गुलाम का पुत्र था। जंगी ने एलेप्पो, हारान और मोसुल को लेकर एक राज्य बनाया जहाँ उसने जंगीद राजवंश (११२७-१२६२) की स्थापना की। इस राजवंश को अताबेगों द्वारा स्थापित अनेक राजवंशों में आसानी से सबसे बड़ा राजवंश कहा जा सकता है। १२४७ में ईसाइयों का दूसरा धर्मयुद्ध इसलिए आवश्यक हो गया क्योंकि मोसुल के सारासेन (अरब) शासकों द्वारा जेरूसलेम पर ईसाइयों के आधिपत्य पर खतरा उत्पन्न हो गया था। संत बर्नार्ड के उपदेशों के कारण दूसरा धर्मयुद्ध शुरू किया गया। उसके उपदेश अर्बन द्वितीय के ऊपर चर्चित उपदेश से भी इस अर्थ में अधिक प्रभावकर हुए कि उससे प्रभावित होकर फ्रांस का राजा लुई सप्तम और जर्मनी का राजा कोनार्ड तृतीय ने भी क्रास का चिह्न धारण कर धर्मयुद्ध में शामिल हुए। पर दोनों ही राजाओं ने गलती यह की कि अपनी सेनाएँ भूमि-मार्ग से पूर्व की ओर ले गए। इस कारण सीरिया की ओर मार्च करती उनकी सेनाओं के अनेक जवानों की मृत्यु हो गई। बची-खुची सेना के साथ वे ऐंटियोक पहुँचे और उस जगह से दमिश्क की ओर बढ़े। दमिश्क पर उनकी घेरेबंदी कई महीनों तक चली। तब जंगी का पुत्र नूर-अल-दीन (धर्म का प्रकाश) अपने बड़े भाई के साथ घेरा डाल रखे ईसाई सेना के समक्ष प्रकट हुआ। इससे घेरा डालने वाली सेनाएं भाग खड़ी हुईं और लुई और कोनार्ड यूरोप वापस चले गए। नूर-अल-दीन (११४६-७४) धर्म-युद्ध विरोध (जेहाद) के धार्मिक उन्माद से भरा हुआ था। उसके शासन में उसके प्रतिनिधि कुर्द शिरकूह और उसका भतीजा सलादीन (सलाह-अल-दीन) मिस्र को नूर-अल-दीन के अधिकार में लाने में सफल हुए। जेरूसलेम राज्य के लातिनी (ईसाई) शासकों में धर्म-युद्ध के प्रति समर्पण-भावना धीरे-धीरे खत्म

हो रही थी और उनके समक्ष मोसुल और काहिरा (मिस्र की राजधानी) दोनों ओर जेहाद के नये उत्साह का खतरा था। फलतः ईसाइयों के समक्ष डटे रहने की कोई शक्ति बची न रह गई थी। जुलाई, ११२७ में वे हित्तिन की लड़ाई में पराजित हो गए। उसी वर्ष अक्तूबर में जेरूसलेम पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। सलादीन अपनी इच्छाओं के लक्ष्य को हासिल करने में सफल हो गया था।

और फिर जेरूसलेम के पतन के बाद तीसरे धर्मयुद्ध की आवश्यकता पड़ी। पर तीसरा धर्मयुद्ध सलादीन की सफलता को नष्ट न कर सका। ईसाइयों के पतन के कारण समूचा यूरोप उत्तेजित हो उठा। वहाँ के शासकों ने आपसी शत्रुताओं को तत्काल समाप्त कर दिया। जर्मनी का सम्राट फ्रेडरिक बारबोसा, इंगलैण्ड का राजा रिचार्ड प्रथम औफ सोउर डी लियन और फ्रांस के राजा फिलिप अगस्टस ने क्रास चिह्न धारण किया और धर्म-युद्ध में कूद पड़े। ये पश्चिमी यूरोप के सबसे शक्तिशाली शासक थे और इन्हीं के आपसी सहयोग के साथ धर्म-युद्ध आरंभ हुआ। इसमें पिछले दो धर्म-युद्धों से कहीं अधिक धर्म-योद्धा शामिल थे। यह धर्मयुद्ध पूर्वी और पश्चिमी दोनों की ही लोक-कथाओं और रोमांचक गाथाओं का प्रिय विषय-वस्तु रहा है। इसमें एक पक्ष का नेता था सलादीन और प्रतिपक्ष का नेता इंगलैण्ड का राजा सोउर डी लियन। फ्रांस का राजा फिलिप अगस्टस एक अच्छा खासा बहाना खोज कर जल्द ही घर वापस लौट गया पर अपने पीछे सेना छोड़ गया। इंगलैण्ड के राजा रिचार्ड प्रथम सोउर डी लियन ने अकेले अपने बल-बूते पर शौर्य-वीर्य के अनेक करतब दिखलाए जिससे वह ऊपर चर्चित लोककथाओं का प्रिय नायक बन गया। उसने लड़ाई में सलादीन को पूरी शक्ति के साथ पीछे धकेल दिया और फिर ११९२ में उसके साथ तीन वर्षों की युद्ध-विराम संधि की। संधि की शर्तों के अनुसार, जेरूसलेम के मुसलमान राजा के अधीन, जोप्पा से आकरे तक, समुद्र-तटीय-क्षेत्र रखे जाने की व्यवस्था थी और ईसाइयों को यह सुविधा दी गई कि वे अपने पवित्र तीर्थ जेरूसलेम, बिना किसी रोक-टोक के, जा सकें। यह सुविधा सलादीन पहले ही, बिना खून-खराबा के ईसाइयों को दे देता। सलादीन की मृत्यु ११९३ में हो गई। पूर्वी क्षेत्रों से लातिनी (ईसाई) राजकुमारों को हटाने का उसका स्वप्न अधूरा ही रह गया। जेरूसलेम राज्य पर कब्जा करने में भले ही ईसाई विफल रहे परन्तु ऐंटियोक और त्रिपोली अभी भी ईसाइयों के अधीन बने रहे। पर वह इसमें तो सफल हो ही गया कि जेरूसलेम को ईसाइयों के आधिपत्य से मुक्त करा सके। जेरूसलेम बीच में केवल कुछ वर्षों तक जर्मनी के राजा फ्रेडरिक द्वितीय के अधीन रहा पर केवल उस छोटा-सी अवधि के लिए ही। और इस प्रकार परिणति हुई तृतीय धर्मयुद्ध की।

सलादीन की मृत्यु के दो वर्ष बाद लोकप्रिय ईसाई उपदेशकों से प्रेरित चौथा धर्मयुद्ध पोप इनोसेन्ट तृतीय के नेतृत्व में १२०१ में शुरू हुआ। पर सच पूछा जाय तो तृतीय धर्मयुद्ध के साथ ही मुसलमानों और ईसाइयों के बीच शत्रुता समाप्त हो गई थी। इसलिए इस्लाम और ईसाई धर्मों के बीच अगली लड़ाइयाँ ठीक उसी तरह उल्लेखनीय नहीं। न तो तीसरे धर्मयुद्ध की विफलता और न ही हेनरी षष्ठ की पूर्व पर आक्रमण की योजना की समाप्ति से ही इनोसेन्ट तृतीय जैसे पोप की नीति पर कोई असर पड़ा। वह कृतसंकल्प था कि धर्मयुद्ध संचालन की नीति निर्धारण का काम पोप के ही हाथों में रहे। पश्चिमी यूरोप के राजाओं के नाम उसने नये धर्मयुद्ध के लिए जो अपील की वह पहले धर्मयुद्ध के समय क्लेरमोंट में पोप अर्बन द्वितीय की वक्तृत्वशक्ति-पूर्ण अपील की याद दिलाती थी। पर इस बार भी, उसी समय की तरह, धर्म युद्ध के आह्वान पर किसी राजा की अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई। फ्रांस का राजा फिलिप अगस्टस और इंगलैण्ड का जौन आपसी लड़ाई में ही उलझे हुए थे। जर्मन गृह-युद्ध से त्रस्त था। और इस बार भी, जैसा कि अर्बन द्वितीय की अपील के उत्तर में हुआ था, आह्वान की अनुकूल प्रतिक्रिया आई फ्रांसीसी कुलीन वर्ग वालों, सरदारों और इंगलैण्ड, जर्मनी और सिसली की सेनाओं और अन्य लोगों की ओर से। धर्मयुद्ध के नेताओं ने तीसरे धर्मयुद्ध के अनुभवों से सबक लिया और अपने को भूमि-मार्ग के रास्ते के खतरों से बचाया। उन्हें पचासी हजार मार्क का भुगतान करने पर वेनिस से खाद्यान्न की आपूर्त्ति और यातायात की सुविधाएँ मिलीं। वेनिसवासियों ने धर्म-योद्धाओं से आग्रह किया कि वे उन्हें जारा नगर पर, जो कभी वेनिस के अधीन था, पुनः विजय प्राप्त करने में सहायता करें। एक विद्रोह के बाद नगर स्वतंत्र हो गया था। पोप इनोसेन्ट तृतीय इस बात पर बहुत क्षुब्ध हुआ कि धर्मयोद्धा एक ईसाई राजा के अधीनस्थ एक ईसाई राज्य (जारा) पर आक्रमण में अपनी शक्ति लगाएँ। जारा पर कब्जा कर लिया गया और नवम्बर १२०२ में नष्ट कर दिया गया। पोप इनोसेन्ट ने धर्मयोद्धाओं को ईसाई धर्म से बहिष्कृत कर दिया। उनके विरुद्ध उसका आरोप था कि—"अपने अभीप्सित क्षेत्र पर पहुँचने के बदले तुम लोगों ने अपने ही भाइयों का खून बहाया।"

१२०३ के अंत में कान्स्टेंटीनोपुल में विद्रोह हुआ जिसके कारण इसाक और एलेक्जियस तृतीय को अपदस्थ कर दिया गया और उनके स्थान पर उसके (एलेक्जियस तृतीय के) दामाद एलेक्जियस पंचम को राजसिंहासन पर बैठाया गया। फिर बहुत शीघ्र इसाक की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र एलेक्जियस तृतीय की गला दबा कर हत्या कर दी गई। वेनिसवासियों और धर्मयोद्धाओं ने देखा कि अब

उन्हें कांस्टेन्टीनोपुल में एलेक्जियस पंचम से मुकाबला करना है। उन्हें दूसरी बार कान्स्टेंटीनोपुल की घेराबन्दी करनी पड़ी (१२०४) और उस पर अधिकार करने में वे सफल हुए। इस राज्य का दूसरी बार पतन हुआ। उसे इस बार बुरी तरह बर्बाद, तबाह और नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया। यह ध्वंस-कार्य तीन दिनों तक चला और इसे इतिहास के सबसे क्रूर कर्मों में गिना जाता है।

इस प्रकार, अंततः चतुर्थ धर्म-युद्ध ने पूरे धर्म-युद्ध आन्दोलन पर ही तीखा प्रहार किया। इसका प्रथम कारण यह था कि पूर्व में एक लातिनी (ईसाई) राज्य की स्थापना से पश्चिम (ईसाई जगत) की दिलचस्पी और साधन-स्रोत कान्स्टेंटीनोपुल और जेरूसलेम के बीच बँट गये। पर फिर भी निरन्तर बढ़ती निरर्थकता और व्यर्थता के बीच धर्म-युद्ध चलता रहा। १२१२ में फ्रांस और जर्मनी से बच्चे समुद्र के रास्ते जेरूसलेम से बढ़े। उनके सरल मन को विश्वास था कि उनके तीर्थ-स्थल (जेरूसलेम) तक पहुँचने के लिए उन्हें राह देने के लिए समुद्र पीछे हट जाएगा और वे बिना कोई प्रहार प्राप्त किए अपने गन्तव्य स्थान पर कब्जा कर लेंगे। फ्रांसीसी बच्चे रोक दिये गए पर हजारों जर्मन बच्चे वास्तव में जेनोआ पहुँच गए। चौथे धर्मयुद्ध के बाद गंभीरता से सोचने वाले इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जेरूसलेम पर कब्जा करने के लिए पहले मिस्र पर हमला और अधिकार करना पड़ेगा और धार्मिक स्थल पर कब्जा किया जा सकेगा। पाँचवें धर्मयुद्ध में शामिल लोगों ने १२१९ में डेमिएटा पर कब्जा तो कर लिया पर उस पर से उनका अधिकार जल्द ही खत्म हो गया।

जर्मन सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय का धर्मयुद्ध जो छठा था, अपने पूर्व और बाद के धर्मयुद्धों से भिन्न था। उसका नेतृत्व वह व्यक्ति कर रहा था, जो न केवल तेज मस्तिष्क का था बल्कि उस विश्व के प्रति जिसमें वह रह रहा था, समझदारी और सहानुभूति रखता था। दूसरे, इस धर्मयुद्ध में युद्ध, जनहत्या, लूटमार, और डकैती आदि न हुई। और अंत में यही धर्मयुद्ध ऐसा था जिसमें लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया गया। साथ ही उसने (फ्रेडरिक द्वितीय ने) जेरूसलेम राज्य के न्याय्य उत्तराधिकारी के रूप में मिस्र के सुल्तान के साथ जो बातचीत की, वह कम असाधारण न थी।

१२४४ में जेरूसलेम के पतन के कारण सन्त लुइस को क्रास-चिह्न धारण करके धर्म-योद्धा बनने के लिए प्रेरणा मिली। अभियान बड़े उत्साह के साथ ऐग्यूज मोर्टेस से अगस्त १२४८ में मिस्र के लिए समुद्री रास्ते से रवाना हुआ। वे लोग डैमिएटा में उतरे। वहाँ का राजा अपनी बहादुरी में अपने सरदारों से कहीं आगे था। डेमिएटा पर विजय के बाद धर्मयोद्धा नील नदी की मुख्य भूमि को पार करते

हुए काहिरा की ओर आगे बढ़े । उन लोगों को रास्ते में तुर्कों ने घेर लिया और उन्हें आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया । युद्ध में जो अनेक बंदी बनाये गये उनमें स्वयं राजा भी था । उसे भारी मुक्ति-धन चुकाने और डेमियाटा पर अधिकार छोड़ने के बाद सन् १२५० में फिलिस्तीन के लिए अपनी सेना ले जाने की अनुमति दी गयी । वहाँ पहुँच कर उसने बचे हुए ईसाई बंदरगाहों की किलेबंदी करने के अलावा कुछ और खास हासिल न किया । और फिर १२५४ में फ्रांस लौट आया । सोलह साल बाद जब, वह कमजोर, दुर्बल और बूढ़ा हो गया था तो ट्यूनिस के लिए धर्मयुद्ध के लिए रवाना हुआ और वहाँ पहुँचने के पहले कार्थेज में मृत्यु हो गयी ।

सीरिया और फिलिस्तीन में जो बचे हुए ईसाई राज्य थे उनके सामने अब केवल यह विकल्प था कि वे या तो मंगोलों के सामने आत्मसमर्पण करें या मिस्री ख्वाराजामियाई तुर्की सुलतानों के सामने । इन सुल्तानों ने १२५० में सलादीन के उत्तराधिकारियों या उनके भाड़े के सैनिकों-मामलुकों से राज्य छीन लिया था । उधर ईरान से चँगेज खाँ के भतीजे हलाकू ने बगदाद के विरुद्ध अभियान छेड़ा और १२५८ में अब्बासिद खिलाफत को अंतिम रूप से विनष्ट कर दिया । बगदाद के पतन के बाद खिलाफत का केन्द्र काहिरा चला गया । उधर हलाकू ने सीरिया पर हमला बोला जहाँ उसने एलेप्पो, दमिश्क और ऐन्टियाक पर कब्जा कर लिया । मामलुकों में चौथे शासक-अल-मालिक अल जहीर बैबर्स (१२६०-७७) से उन सुल्तानों की परम्परा आरम्भ हुई जिन्होंने धर्मयोद्धाओं पर अंतिम प्रहार किये । बेबर्स की महत्वाकांक्षा थी कि धर्मयोद्धाओं के नगर के विरुद्ध पवित्र युद्ध (जेहाद) के मामले में वह सलाह-अल-दीन के बाद दूसरा स्थान प्राप्त करे । १२६३ से १२७१ तक उसने उन लोगों के विरुद्ध हर वर्ष आक्रमण किया । लातिनी (ईसाई) राज्य एक के बाद एक, थोड़े या बिना किसी प्रतिरोध के आत्म-समर्पण करने लगे । १२६३ में बेबर्स ने अय्यूब वंश के शासक से अल-कराक छीन लिया और नजारथ के पवित्र गिरजा घर को नष्ट कर दिया । १२६५ में उसने सेसारिया पर कब्जा किया । १२६८ में जाफा पर बिना किसी प्रतिरोध के कब्जा कर लिया गया । ऐंटियोक ने भी २१ मई १२६८ को आत्मसमर्पण कर दिया । बैबर्स का योग्य उत्तराधिकारी कलाबुन (१२७९-९०) हुआ जो धर्मयोद्धाओं के विरुद्ध लड़ाई में उसी के समान शक्तिशाली और दुर्जेय था । टियरे के राजा के साथ, जिसका बीरूत पर नियंत्रण था, १८ जुलाई १२८५ को संधि हुई । धर्मयोद्धाओं ने प्रारंभ में ही ट्रिपोली पर कब्जा किया था । वह अब उनके अधीन सबसे बड़ा नगर था । अप्रैल, १२८९ में उसने भी आत्म-समर्पण कर दिया । ट्रिपोली के बाद दक्षिण में अल-बातरून, धर्म-योद्धाओं के मजबूत सैनिक अड्डे पर भी कब्जा कर लिया गया । अब धर्मयोद्धाओं के अधीन

एकमात्र सैनिक अड्डा अक्का ही बच रहा था जिसका सैनिक महत्व था। उस पर कब्जा करने की तैयारी के बीच में ही कलाउन की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अल-अशरफ (१२९०-१२१३) उसका उत्तराधिकारी बना। उसने उस स्थान से काम शुरू किया जहाँ उसके पिता ने छोड़ा था। एक माह की लगातार कोशिशों के बाद पूरब में अंतिम लातिन (ईसाई) मजबूत अड्डे अक्का पर भीषण आक्रमण किया गया (मई, १२९१)। नगर को निर्दयता के साथ लूटा-खसोटा गया। उसकी किलेबंदी ध्वस्त कर दी गई और घरों में आग लगा दी गई। अक्का के पतन के बाद समुद्र तट पर स्थित लातिनों के आधा दर्जन नगरों का भी भाग्य, एक प्रकार से निर्णीत कर दिया गया। उनमें ने किसी ने विजयी शत्रु के समक्ष कोई प्रतिरोध न किया। टियरे पर उसी वर्ष १८ मई को कब्जा किया गया, सीउन पर १४ जुलाई को, बीरूत पर २१ जुलाई को, ऐन्टार्टस पर ३ अगस्त को कब्जा किया गया। अगस्त, १२९१ के मध्य में अथलीथ के सैनिक धर्मसंघी किला, जिसे अधिकारीगण पहले ही छोड़ कर भाग गये थे, नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार सीरिया के इतिहास का सर्वाधिक नाटकीय अध्याय समाप्त हो गया।

ईसाइयों के बीच म्रियमाण धार्मिक उत्साह के कारण धर्मयुद्ध समाप्त हो गये। इस बीच पश्चिमी ईसाइयों के विचार भी बदल चुके थे। सैन्य दुःसाहिकता के प्रति बर्बर आकर्षण का स्थान उन भावनाओं और विचारों ने ले लिया था जो आज की सभ्यता के अंग बन चुके हैं। जीवन के बारे में अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण और आर्थिक महत्वाकांक्षाओं ने स्वभावतः अत्यधिक धर्मनिष्ठ ईसाइयों के बीच भी धर्मयोद्धाओं के कार्यो और यहाँ तक कि धर्म-योद्धाओं को भी महत्वहीन बना दिया था।

प्रभाव और महत्त्व

इस्लामी जगत के लिए धर्मयुद्धों का महत्व, जो हमारे लिए यहाँ विचारणीय है, पश्चिमी जगत के लिए उसके महत्व से सर्वथा भिन्न है। मुसलमानों के लिए धर्मयुद्ध सामान्यतः सीमावर्त्ती लड़ाइयों से कुछ अधिक महत्व न रखता था। धर्मयुद्ध एक तरह से उन्हीं लड़ाइयों का विस्तार-मात्र था जो पिछले पचास वर्षों से चलती आ रही थीं। जब किसी देश के सम्राट का मुख्यालय सीमावर्त्ती क्षेत्र से बहुत दूर होता था और वह उस क्षेत्र में शांति कायम रखने के लिए अक्सर न आ सकता था तो स्वभावतः लुटेरों और दुःसाहसिकों का गुट सीमावर्त्ती क्षेत्र में लड़ाई-भिड़ाई करने के लिए पहुँच जाते और जहाँ तक यूरोपियनों के लिए धर्म-युद्ध के महत्व का प्रश्न है, धर्मयुद्ध महान धार्मिक पुनरुत्थान से सम्बद्ध थे। इससे भी अधिक उनका संबंध

भावना के विशाल आन्दोलन से था जिसके जरिए पश्चिमी ईसाईवाद ने अपनी पहचान की नई चेतना प्राप्त की।

धर्मयुद्ध समूचे यूरोप में सर्वसाधारण के लिए एक महान सामान्य आन्दोलन था जिसमें प्रयोजन, भावना और कार्यों की दृष्टि से यूरोप के सभी राष्ट्र और हर कोटि के लोग भागीदार बने। यह इस बात का द्योतक था कि अलग-थलग रहने के दिन लद चुके थे। ईसाई धर्म एक महान अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान था, जो रोमन एकता के दिनों से ही पूरी तरह कभी समाप्त न हुआ था। और अब, धर्मयुद्धों के बाद, उसमें अपने अस्तित्व के बारे में अधिक स्पष्ट रूप से जागरूकता आ गई थी।

ईसाइयों के बीच अब जो नई जागरूकता आई वह निरंतर स्पष्टतर होती गई जिससे उसमें सभ्यता के सभी पक्षों को अलग-अलग परिमाण में अपनाने की क्षमता आने लगी। स्वयं धर्मयुद्ध से ऐसे परिणाम हुए। धर्मयुद्ध ने सभी राष्ट्रों के लोगों को, जो एक सामान्य प्रयोजन से प्रेरित और एक सामान्य लक्ष्य के लिए प्रयत्नशील थे, एक मंच पर लाकर उन्हें एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित कराया तथा सभी किस्मों के अन्तर्सम्पर्क को बहुत बड़ी सीमा तक प्रेरित किया और शक्तिशाली बनाया। विभिन्न यूरोपीय जनसमुदाय के बीच सम्बद्ध प्रगाढ़ करने के लिए यह स्पष्टतः आवश्यक शर्त थी। इन्हीं चीजों की कमी के कारण पूर्व काल का सामन्ती पृथकतावाद सम्भव हो सका था। अब जब धर्मयुद्धों के प्रभाव के अधीन विभिन्न ईसाई राष्ट्रों के लोग आपस में सम्पर्क रखे और उसे प्रगाढ़ करते हुए, अपनी संख्या तेजी के साथ बढ़ाने लगे तो विश्व के आधुनिक जन-जीवन के स्वरूप के निर्धारण की प्रक्रिया आरम्भ हो गई और मध्य काल के संकीर्ण दायरों से निकल कर ईसाई जनसमुदाय ने एक कदम आगे बढ़ाया।

साथ ही धर्मयुद्धों ने पश्चिमी जीवन और समाज पर इतना स्थायी और व्यापक प्रभाव डाला कि उनको सभ्यता के इतिहास में महत्वपूर्ण 'मील का पत्थर' कहा जा सकता है। इतिहासकार मायर्स ने इस संबंध में अपने विवरण में ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं।

और फिर यह कोई साधारण बात न थी कि धर्मयुद्धों का युद्ध तीव्र उत्तेजना का युग था जिसके प्रभाव में वे सभी लोग आये जो धर्मयुद्ध में शामिल हुए और जो नहीं भी शामिल हुए और अपने घरों पर ही बने रहे। यह वैसा समय था कि सभी लोगों ने निरपवाद रूप से आगे के लिए कदम बढ़ाये वे एक गहरे उत्साह से प्रेरित थे। उन लोगों ने समाज में अचल-सी बन गई सामन्ती प्रथा का परित्याग किया और अगली अर्थ-व्यवस्था की ओर बढ़े। ऐसा सामान्यतः देखा गया है कि जब

लोगों की आकांक्षाएँ जागृत हो जाती हैं और उनमें भावनाओं और कार्यों संबंधी एक नया विक्षोभ उत्पन्न होता है तो उससे महान प्रेरक शक्ति सृजित होती है जिससे प्रगति के रथ का चक्र तेजी से घूमने लगता है और तब होता है सफलता के एक नये युग का सूत्रपात।

जहाँ तक वास्तविक ज्ञान की वृद्धि और विद्वत्ता के भिन्न-भिन्न प्रभावों का संबंध है, धर्मयुद्ध का तात्कालिक परिणाम कुछ खास न हुआ। कुछ अर्थों में यूनानी और अनेक अर्थों में सारासिनी (अरब) धर्मयोद्धाओं से ज्ञान के क्षेत्र में काफी आगे थे। इसके फलस्वरूप विशेषतः भौगोलिक ज्ञान के क्षेत्र में धर्मयोद्धाओं ने उनलोगों से प्रत्यक्षतः कुछ बातें सीखीं, पर धर्मयुद्ध का सबसे बड़ा प्रभाव ज्ञान के क्षेत्र पर अप्रत्यक्ष रूप से ही पड़ा। इससे धर्मयोद्धा अपनी अज्ञानता के बारे में जान पाये और उनमें ज्ञान हासिल करने की इच्छा जाग्रत हुई। इस प्रकार धर्मयुद्ध ने इस दिशा में विशेष तथ्यों की जानकारी बढ़ाने के बजाय सामान्य बौद्धिकता का स्तर ऊँचा उठाया।

धर्मयुद्धों में जिन लोगों ने हिस्सा लिया वे यात्रा का महत्व और लाभ समझ सके। नये-नये दृश्यों और नये-नये लोगों के साथ उनका सम्पर्क हुआ जिन्होंने उन्हें काम करने के नये तरीके बतलाए। उनसे धर्म-योद्धाओं को इस बात का भी पता चला कि उनसे ज्ञान तथा सरकार चलाने के तौर-तरीकों और सभ्यता में आगे बढ़े हुए लोग भी हैं और साथ ही यह भी कि यदि उन्हें भी आगे बढ़ने का दावा करना है तो अपने अंदर सुधार लाने होंगे। धर्मयुद्धों के दरम्यान अपने से एक उच्चतर सभ्यता के संपर्क में आने के कारण पश्चिम में उन्नति की इच्छा की हवा वेग से जा उठी थी जो नई प्रेरणा से सराबोर थी। पर पश्चिम में तब तक सर्वोत्तम शिक्षण और विज्ञान तक पहुँचने का मार्ग न मिल सका था।

बारहवीं सदी के अंतिम भाग और तेरहवीं सदी में गहरी बौद्धिक उत्सुकता, जिससे तत्काल पंडिताऊपन के खोखले प्रदर्शन की ही उत्पत्ति हुई, आधुनिक विज्ञान के प्रस्थान बिन्दु-सा था और साथ ही विद्वता के पुनरभ्युदय की दिशा में पहला कदम।

पर सीखने की इच्छा केवल धर्मयुद्धों का ही परिणाम न थी। उसका प्रारंभ बहुत पहले हो चुका था। दसवीं शताब्दी में ही इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि यूरोप का मन-बुद्धि ज्ञान के लिए जग उठे थे और यूरोपीय लोग न केवल ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित थे बल्कि उनमें यह जागरूकता भी आ गई थी कि उन्हें ज्ञानार्जन के लिए अरबों से मार्गदर्शन लेना पड़ेगा। हाँ,

तेरहवीं शताब्दी में ही जाकर महान बौद्धिक युग की शुरुआत हुई जिसे पूरे इतिहास में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

धर्मयुद्धों का सबसे निर्णायक और तात्कालिक प्रभाव वाणिज्य पर पड़ा। धर्मयुद्धों से खाद्य आदि सामानों की आपूर्ति करने वाले व्यक्तियों के जिन्होंने अपने लिए एक बड़ा व्यापार तैयार कर लिया था, परिवहन की सतत मांग उठी, नौ-परिवहन की कला में सुधार हुआ, नये बाजार बने, नई वस्तुओं के उपयोग जानने के बाद उनके लिए नई आवश्यकताएं उत्पन्न हुईं, नये भूमि एवं समुद्र के मार्गों की जानकारी हुई, व्यापार संबंध में नये लोगों से परिचय हुआ, नई खोजों की प्रेरणा मिली और इसी तरह वाणिज्य में वृद्धि के सैकड़ों रास्तों और उपायों का पता चला जिन सबको गिनाना संभव नहीं। और इस प्रकार शुरू हुआ नया वाणिज्यिक युग। भूमध्य सागर के आर-पार पूरब और पश्चिम के बीच व्यापार को बढ़ाने की दिशा में भी धर्मयुद्धों से प्रेरणा मिली। जो जहाज पश्चिमी यूरोपीय बंदरगाहों से बड़ी संख्या में आदमियों और भारी परिमाण में अनाज, भवन-निर्माण लकड़ी और घोड़े पूरब में ले जाये जाते थे वे लौटते वक्त, खाली ही आने की स्थिति में उस ओर का सामान सस्ते भाड़े में इस ओर (पश्चिम) ले आते थे। इसलिए इस्लामी क्षेत्र से आने वाले सामानों जैसे कि चित्र-अंकित दरियाँ, गद्दे, कंबल, दवाएँ, फल, हीरे-जवाहरात, गंध-द्रव्य, शीशे और अच्छे इस्पात के बने सामान पहले से ज्यादा बड़े परिमाण में यूरोप पहुंचने लगे और उनके साथ उनके भाड़े का धन बांजारों में आया। इससे व्यापारी-समुदाय का अभ्युदय हुआ। इससे सरदारों और उच्च वर्गों और यहाँ तक कि दासों के जीवन-स्तर पर भी प्रभाव पड़ा। साथ ही इससे सामन्ती अर्थ-व्यवस्था, शाही वित्त-स्थिति और सरकार पर भी प्रभाव पड़ा। वाणिज्य और तीर्थयात्रियों की निधियों को अंतरित करने की आवश्यकता के चलते इटली के व्यापारियों तथा सैनिक धर्मसंघी सरदारों को प्रेरित किया कि वे बैंकिंग तकनीकें विकसित करें जिनके बारे में उन्हें सारासेनों से जानकारी मिली थी। नौ-परिवहन और भौगोलिक ज्ञान में भी प्रचुर वृद्धि हुई। मुसलमानों के साथ व्यापार करने के लिए धर्म-योद्धाओं को टकसालों में सोने के सिक्के बनवाने पड़े। पूरब के साथ वाणिज्य के ही चलते सिसली के सोने के सिक्के (ड्यूकेट) के साथ फ्लोरेन्टाइन के सिक्के फ्लोरिन और वेनिस के सोने के सिक्के (सिक्विन) इटली में प्रचलन में आ गए।

धर्मयोद्धाओं की यात्राओं का सबसे ज्यादा दिलचस्प और प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि १३वीं और १४ वीं शताब्दियों में यूरोपीय यात्रियों द्वारा एशिया की

खोज शुरू की। इनमें सबसे ज्यादा उल्लेखनीय मार्कोपोलो था। पर इस संबंध में प्रसिद्धि के अधिकारियों में वह केवल एक व्यक्ति मात्र था। धर्म-योद्धाओं के अभियानों ने जो भावना जाग्रत की उससे मध्य युग में सामुद्रिक दुःसाहसिक यात्राएँ करने वाले जो प्रसिद्ध सामुद्रिक यात्री हुए उनमें कोलम्बस, वास्कोडिगामा और मैगीलान के नाम भी लिए जा सकते हैं जिन्होंने भौगोलिक क्षेत्र में दिलचस्पी ली और समुद्र के रास्ते, दूर-दूर अनजान क्षेत्रों में गये।

राजनीतिक क्षेत्र में भी यह युग यूरोप में परिवर्तनों के लिए उल्लेखनीय है। वहाँ हर क्षेत्र में राजकीय शासनों (थर्ड इस्टेट) की सत्ता का उदय हुआ और जो राजनीतिक शक्ति सामन्ती सरदारों ने अख्तियार कर रखी थी उससे वे धीरे-धीरे वंचित होते गए। इसका प्रत्यक्ष कारण वाणिज्य में वृद्धि थी और अप्रत्यक्ष कारण धर्मयुद्ध थे। पर एक या दूसरी वजह से इनसे इस प्रक्रिया में प्रत्यक्ष सहायता मिली। सरदार और कुलीन वंशवाले केवल अपने वर्ग की भावना से प्रभावित थे। उन्हीं के खर्च से धर्म-युद्ध चल सका जिस व्यय की उन्होंने परवा न की। या यह भी संभव है कि उन्होंने धर्म-युद्ध के लिए अपने क्षेत्र में जो बलिदान किये उसके मुकाबले उन्हें अपनी धार्मिक भूमि में अधिक भूमि प्राप्त करने की आशा थी। इस प्रक्रिया में बड़ी संख्या में पुराने (सरदारों और कुलीन वंश के) परिवार नष्ट-विनष्ट होकर विस्मृति के गर्भ में चले गए और उनकी जमीन-जायदाद उन लोगों ने हथिया ली जो स्थिति का लाभ उठा सके। जहाँ कहीं भी राजाओं की शक्ति इस परिवर्त्तन का लाभ उठाने की स्थिति में थी, जैसे कि फ्रांस में, उसने वहाँ अपनी तुलनात्मक शक्ति लगातार बढ़ाई और धर्म-युद्धों का काल समाप्त होते-होते एक संस्थान के रूप में सामन्तों का अंत हो गया। उनका स्थान आधुनिक किस्म के राज्यों ने ले लिया। पर साथ ही यह बात भी नहीं है कि इस क्रान्ति के विरुद्ध सामंती प्रतिरोध बिल्कुल ही समाप्त हो गया पर सम्पूर्ण विजय का अवसर अब राजाओं को उपलब्ध था।

धर्म-युद्ध से सामन्तों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ा। सामन्तों ने कुलचिह्न और लड़ाई जिरह-बख्तर धारण करने का उपयोग सीखा ताकि वे घर से दूर अपनी पहचान बना सकें। उन लोगों ने वैजेन्टाइनों और अरबों से भारी पत्थरों से निर्माण-कार्य सीखा और वह ज्ञान अपने साथ यूरोप ले आये। कुछ सरदारों पर इस कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ा कि उन्होंने धर्म-योद्धाओं का खर्च वहन करने के लिए अपने मूल्यवान अवक्रय (चार्टर ऐटम्स) बेच डाले या धर्म-योद्धाओं का ऋण अदा करने के लिए उन्हें अपनी सम्पत्ति से भी हाथ धोना पड़ा

अथवा धर्मयुद्ध के अभियानों के सिलसिले में पूर्वी देशों से सामान खरीदने में उन्होंने अपने को बर्बाद कर डाला।

इस सिलसिले में एक महत्त्वपूर्ण बात धर्मयुद्धों, विशेषतः प्रथम धर्मयुद्ध में आबादी के निचले भागों ने भी उनमें हिस्सा लिया। इस सिलसिले में किसानों के बीच एक सामान्य आन्दोलन शुरू हो गया जो अपनी स्थिति के प्रति उनके विरोध का द्योतक था तथा साथ ही इस प्रवृत्ति का भी कि उनमें अपनी स्थिति में किसी भी प्रकार सुधार होने की अस्पष्ट और अज्ञानतापूर्ण आशा थी। उनमें इस प्रकार आत्म और स्व-निर्भरता की भावना पनपी, जिससे कुछ मामलों में उनकी स्थिति में सुधार भी हुआ। इस आन्दोलन को बाद में होने वाले किसान-युद्धों की भूमिका माना जा सकता है। इससे केवल विकास का मार्ग ही प्रशस्त न हुआ बल्कि इसे उस भावी क्रान्ति की प्रक्रिया माना जा सकता है जो बाद में यूरोप में हुई।

धर्मयुद्धों का एक दुःखान्त परिणाम यह हुआ कि बैजेन्टाइन साम्राज्य और सभ्यता विनष्ट हो गई। बैजेन्टाइन सत्ता इस तरह ध्वस्त हुई कि चौथे धर्म-युद्ध के बाद वह अपना सर फिर न उठा सकी। १२६१ में उनकी सरकार कौंस्टैन्टीनोपुल में पुनर्गठित तो हुई पर वह अपने पूर्व रूप की छाया मात्र थी। १४५३ में ऑटोमन तुर्क उसे भी अपने आधिपत्य में ले आये। उसके बाद ईसाई धर्मनिष्ठ संस्कृति अपने पूर्ववर्ती साम्राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्र में अनिवार्यरूप से द्रुत पतन की ओर अग्रसर हो गई। प्रथम धर्मयुद्ध का बिगुल बजाने वाले पोप अर्बन द्वितीय की, पूर्व और पश्चिम के ईसाइयों के बीच एकता की आशा पूर्णतः विफल हो गई।

धर्मयुद्ध का एक और परिणाम मध्यपूर्व में इस्लाम की सैन्य विजय थी। न केवल धर्मयोद्धाओं को निकाल बाहर फेंक दिया गया बल्कि चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में ऑटोमन तुर्कों के अधीन इस्लाम यूरोप के बाल्कन प्रदेश के पूरे क्षेत्र तक विस्तृत हो गया और १६वीं और १७वीं शताब्दियों में विएना के मुख्य द्वार तक पहुँच गया। केवल स्पेन और पूर्वी बाल्टिक प्रदेश में धर्म-युद्ध आन्दोलन स्थायी रूप से ईसाई विजय को विस्तृत कर सका। इस्लाम पर धर्म-योद्धाओं का कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ा। जब कि पहले मुसलमान ईसाइयों और यहूदियों के प्रति, जिन पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी, सहिष्णु थे पर धर्म-युद्धों की तीन-चार सौ शताब्दियों की अवधि में विजयी धर्मयोद्धाओं ने मुसलमानों के प्रति जो कठोर व्यवहार किया उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप मुसलमान शासक विशेषतः मामलुक और ऑटोमन ईसाई धर्मनिष्ठा वालों के प्रति कम सहिष्णु हो गये। धर्म-योद्धाओं के साथ तुर्क, मंगोल, मामलुक तथा ऑटोमन सम्राट इसके लिए दोषी हैं कि अरब अभिजात वर्गों पर उन्होंने निरन्तर प्रहार किये जिसके फ़लस्वरूप

पहले जहाँ उनमें सहिष्णुता और रुचि के क्षेत्र में पश्चिमी यूरोप से श्रेष्ठतर प्रबुद्ध नागरिक सभ्यता थी वहाँ धर्म-युद्धों का अन्त होने तक संकीर्ण धार्मिक अनुदारवाद आ गया जिसमें लौकिक शिक्षा का अधःपतन होने लगा और बौद्धिक अग्रगण्यता अरबों से पश्चिमी यूरोप में अन्तरित हो गई। पर साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि यह धर्मयुद्धों के कारण उस हद तक संभव न हुआ जिस हद तक स्पेन और सिसली होते हुए अरब विद्वता के पश्चिमी यूरोप में पहुँचने और स्वयं पश्चिमी यूरोप में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के कारण संभव हुई।

यूरोप पर धर्मयुद्धों के प्रभाव अनेक और विविध रूप के हुए। पश्चिमी ईसाईवाद पर असहिष्णुता का कलंक लगा। ज्यों ही प्रथम धर्मयुद्ध का आरंभ हुआ ईसाइयों ने यहूदियों को सताना शुरू किया और धर्मयुद्धों की पूरी अवधि में मुसलमानों और कट्टर ईसाइयों, एल्बीजेनसियाइयों तथा होहेन्स ताओफेनों जैसे पोप के दुश्मनों को सताया गया। इस प्रकार पोप ने अपने को न केवल धर्मयुद्ध के आदर्श बल्कि अपने उच्च पद को बदनाम करने का भी अपराधी बनाया। धर्मयुद्धों ने पश्चिमी गिरजाघर को अच्छे और बुरे दोनों ही तरीकों से प्रभावित किया। प्रथमतः तो पोप की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई, गिरजाघर की शक्ति इस अर्थ में बढ़ी कि वे कर लगाने लगे और धन उगाहने लगे। धार्मिक कानूनों का विस्तार हुआ विशेषतः इस क्षेत्र में कि गिरजाघरों को धर्मयोद्धाओं और उनकी सम्पत्ति की रक्षा का अधिकार मिले। इसके साथ ही भोगवाद की प्रवृत्ति भी बढ़ने लगी जो न केवल धर्मयोद्धाओं और तीर्थयात्रियों की जीवन-प्रणाली में दृष्टिगत हुई बल्कि उनके मित्रों और संबंधियों की जीवन-प्रणाली में भी जो धर्मयुद्ध पर न जाकर घर में बने रहे।

पश्चिमी यूरोप के लिए धर्मयुद्धों के परिणामों के बारे में हम यह निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि ये परिणाम सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में बहुत स्पष्ट तौर पर देखे गये। इनके कारण गाँव और शहर के सामान्य लोगों को स्वतन्त्रता मिली। धनहीन हो गए सरदारों ने अपने विशेषाधिकार बेच दिये जो वे पहले इतनी जल्द न करते। अनेक दासों को धर्मयुद्धों में यह अवसर मिला कि वे अपनी दासता से मुक्त हो सकें। नगरों की संख्या में वृद्धि और उद्योगों के विकास से उन दासों में से अनेक को जागीर के बंधन से मुक्त होने की सुविधा मिली। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इस अवसर पर स्त्रियों की स्थिति भी ऊँची हुई क्योंकि धर्मयुद्धों की अवधि में जबकि उनके स्वामी धर्मयुद्ध पर बाहर गये हुए थे; उन्होंने खेती-बारी का इन्तजाम खुद सम्भाला। पश्चिम के दैनिक जीवन के अनेक स्वरूपों में भी इस कारण परिवर्त्तन आया कि धर्मयोद्धा ईसाई यूनानियों

और पूर्वी सारासेनों (अरबों) के नये सम्पर्क में आये जिससे ईसाइयों को पूर्वी भोजनों और उत्पादनों के बारे में जानकारी मिली और वे उनकी माँग करने लगे और साथ ही पूर्वी तौर-तरीकों की नकल भी। ईसाइयों में मुसलमानों की भांति लम्बे चोंगेदार वस्त्र और पूरी दाढ़ी रखने का रिवाज भी चल पड़ा। "तिल और गाजर, मक्का और चावल, नींबू, संतरा और तरबूज तथा खुबानी" का भोज्य पदार्थों के रूप में प्रयोग शुरू हुआ। साथ ही छोटे प्याजों का भी इस्तेमाल किया जाने लगा जिसे न केवल भोज्य पदार्थों में शामिल किया गया बल्कि जिससे यूरोपीय गृहिणियाँ अभी भी सलाद के अपने जूठे वर्त्तन मांजती हैं। पूर्व के ही प्रभाव से चीनी की माँग इतनी ज्यादा हो गई कि गन्नों का उत्पादन दक्षिणी यूरोप में बड़े पैमाने पर होने लगा।

फिर भी धर्मयुद्ध की अवधि में बुर्जुआ की शक्ति और प्रतिष्ठा में बहुत काफी वृद्धि हुई। दासों की स्थिति में परिवर्त्तन की भाँति यह भी एक सामाजिक तथ्य था। यह उस अवधि में आर्थिक परिवर्त्तनों का परिणाम था। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि धर्मयुद्धों ने पश्चिमी यूरोप में नगरों के बनने की प्रक्रिया तेज की। देखा गया कि वेनिस, जेनोआ, पीसा और कुछ कम सीमा तक अमलिफी नगर ने इस प्रक्रिया में हिस्सा लिया और उससे उन्हें लाभ हुआ। मार्सेलेजी और कैटालोनियम नगरों के साथ भी ऐसा ही हुआ। वाणिज्य में प्रगति के कारण अब पश्चिम में भारी परिमाण में माल और विक्रेय सामग्री का जो उत्पादन होने लगा उसके लिए पूर्व के लातिन (ईसाई) राज्यों में अपर्याप्त बाजार मिला। अब जब पश्चिम ने पूर्वी वाणिज्य के सामानों के बारे में जानकारी हासिल कर ली, तो वह (पश्चिम) पूर्वी सामानों और सामग्री के लिए असीमित बाजार-सा बन गया। इतालवी नगरों के विकास के धर्मयुद्धों की अवधि में प्राप्त प्रेरणा आल्प पर्वत होती हुई जर्मन, फ्रांसीसी और फ्लेमिश नगरों तक पहुँच गई।

स्वभावतः धर्म योजनाओं का पश्चिमी सैन्य विज्ञान पर भी असर पड़ा। धर्मयोद्धा जब अपने घरों को वापस लौटे तो वे अपने साथ भारी किलेबन्द महलों को एक साथ केन्द्रित करने की जानकारी और शत्रु के क्षेत्र से घेरेबन्दी में भी तकनीकी जानकारी भी लिए आये। किलों के ऊपर उठाये जा सकने वाले फाटकों, आड़ी कमानों, सरदारों और घोड़ों के लिए भारी जिरह-बख्तर, यूनानी बन्दूकें और तोपें तथा संदेशवाहकों के रूप में कबूतरों का उपयोग भी पूर्व से ही पश्चिम में आया। इसी तरह शान्तिकालिक कलाओं को भी पूरब के प्रभावों से लाभ पहुँचा। सम्भवतः धर्मयोद्धा ही प्रथम यूरोपीयन थे जिन्होंने पवन चक्की[1]

१. पवन-चक्की नीदरलैण्ड्स (हालैण्ड) में प्रयोग में लाई जाती थी। उससे ज्यादा पानी सोखी हुई जमीन से पानी निकाला जाता था। फलतः उस

देखी। अपने सर्भ' चरणों में कुलचिह्न निश्चित रूप से पश्चिम को पूरब की देन था जिसमें पहचान के लिए किसी के वास्तविक नाम के मुकाबले उसका व्यावहारिक नाम उसकी पहचान का बेहतर साधन बन गया। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में यूरोपीय समाज के पूरे ढांचे में परिवर्त्तन का श्रेय एक जमाने में धर्मयुद्धों को ही दिया जाता रहा है। यों आधुनिक इतिहासकार धर्मयुद्धों को यूरोप के विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारण मानते हैं। उदाहरण के लिए प्रथम धर्मयुद्ध के दौरान जो उपद्रवी तत्त्व अभियान में निकल गए उनसे फ्रांस के राजा और बड़े सामन्तों को अपने-अपने क्षेत्र के अधीन शोध-व्यवस्था कायम करने और प्राधिकार को विस्तृत करने में मदद मिली। यह भी संभव है कि पुराने परिवारों के समाप्त होने और उनके स्थान पर नये परिवार बनने का कारण अंशतः धर्मयुद्ध ही थे। पर इस संबंध में सामान्यीकरण अथवा कोई सामान्य सिद्धान्त स्थिर करने में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। पर फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि जब कि कुछ धर्मयोद्धाओं ने गिरजाघर संबंधी संस्थानों के हाथ अपनी सम्मति दी या उसे बंधक रख दिया या अपने दूसरे संबंधियों को दे दिया। इसमें संदेह नहीं बहुत-से लोगों की जानें गईं।

जहाँ तक धर्मयुद्धों के धार्मिक प्रभावों का सम्बन्ध है, पहला धर्मयुद्ध और बाद के धर्मयुद्ध बराबर चिन्ता के विषय बने रहे। जबकि उनकी प्रारंभिक सफलता से निःसंदेह पोप की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई, बाद की असफलता से उस प्रतिष्ठा में काफी कमी आई। धर्मयोद्धाओं का प्रचार विधर्मियों और सम्राट की ओर जो मुड़ गया उस कारण उनकी आलोचना भी हुई। इसी प्रकार धर्मयुद्धों के लिए कर उगाहने या उनसे गिरजाघरों की आमदनी बढ़ाये जाने की भी आलोचना की गई यद्यपि यह स्मरणीय है कि धर्मयुद्धों को चलाने के लिए पोप द्वारा किये जाने वाले व्यय ने यूरोप के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। तेरहवीं शताब्दी में फ्रैन्सिसकन और डोमिनिकन संन्यासी गृहों की स्थापना से धर्मयुद्धों के क्षेत्र और उनके बाहर भी ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ सका। पोप ने आदेश-पत्रों द्वारा धर्म-प्रचार करने वाले संन्यासियों को विशेष सुविधायें प्रदान कीं। साथ ही पोप ने पूर्वी शासकों को पत्र भेजे जिनसे इस बात के लिए अनुमति मांगी गई कि ईसाई-संन्यासियों को अपना धर्म-प्रचार-कार्य आजादी से करने दिया जाय। अक्सर संन्यासी लोग इतालवी व्यापारियों के साथ या उसके पीछे-पीछे चला करते थे। चूँकि मंगोल शासक धार्मिक प्रचार के संबंध में साधारणतः सहिष्णु थे,

---

अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूभाग का सृजन हुआ जिसे आज हालैंड के नाम से जाना जाता है।

ईरान, भीतरी एशिया और चीन में भी ईसाई-धर्म-प्रचार केन्द्र स्थापित किये गये। पर चूंकि इस्लामी कानून में गैर-धार्मिक प्रचार पर कड़ाई से रोक थी और स्व-धर्मत्यागियों की सजा मौत होती थी, इसलिए इस्लाम से ईसाई धर्म में धंतरण कम हुए। धर्मयोद्धाओं और विशेषत: चतुर्थ धर्मयुद्ध में भाग लेने वालों ने यूनानियों में इतनी कटुता पैदा कर दी कि पूर्वी और पश्चिमी गिरजाघरों में सच्ची पुन: एकता का प्रश्न ही न उठ सकता था। पर पूर्वी ईसाइयों के कुछ समूहों ने पोप का प्राधिकार स्वीकार कर लिया और इसलिए उन्हें सामान्यत: अपनी मूल पूजा-पद्धति कायम रखने की अनुमति दी गई। यद्यपि १४वीं शताब्दी के मध्य में मध्य-पूर्व में औटोमन तुर्कों के बढ़ाव से धर्मयुद्धों के कारण विकसित हुए धर्म-प्रचार केन्द्रों में से अधिकांश समाप्त हो गये, पश्चिमी गिरजाघर और पूर्वी गिरजाघर के बीच कायम हुए कुछ सम्पर्क जारी रहे। फिर भी धर्मयुद्धों के साथ ईसाई प्रचार समूहों के सम्पर्क के कारण कुछ नैतिक एवं धर्मतांत्रिक समस्याएँ उठीं जो मध्य-कालिक विचारकों के लिए चिंता का विषय थीं। १३वीं सदी के धर्मतांत्रिकों का विचार था कि वलपूर्वक ईसाई धर्मान्तिरण को लागू नहीं किया जा सकता था। पर उनमें से अधिकांश ने तर्क दिया कि बलात धर्मान्तिरण उन स्थितियों में विधि-संगत हैं जिनमें धर्म के लिए शांतिपूर्ण प्रचार सम्भव नहीं है और उनलोगों ने धर्मयोद्धाओं को अपना समर्थन देना जारी रखा। अब सामान्यत: धर्मयुद्ध शब्द का प्रयोग किसी उचित प्रयोजन के लिए सामान्य प्रयत्न के अर्थ में किया जाता है। यह धर्मयुद्धों का सबसे स्थायी परिणाम माना जाता है।

धर्मयोद्धाओं के सामान्य बौद्धिक विकास पर जो प्रभाव पड़ा वह इस तरह असाधारण है कि उसमें अतिशयोक्ति की कतई गुंजाइश नहीं। धर्मयुद्ध-अभियान के शुरू होने के समय ईसाइयों में इस्लाम धर्मानुयायियों के प्रति घृणा और असहिष्णुता की भावना थी। वे उन्हें निश्चित रूप से "नर्क के पुत्र" मानते थे, पर धर्मयुद्धों के अंत के पूर्व से ही हमें पता चलता है कि अपने विरोधी धर्म वालों के संबंध में ईसाइयों के विचार बिल्कुल बदल गए थे। तृतीय धर्मयुद्ध के दौरान सारासेन (अरब) प्रधान को अक्सर धर्मयोद्धाओं द्वारा समर्पित शासक रिचार्ड भोज में निमंत्रण मिलता था 'और' ऊपर चर्चित वीर सलादीन के शिविर में भी ईसाई सरदारों को भी उसी तरह आदर प्राप्त होता था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि धर्मयोद्धाओं की समुद्र यात्राओं और उस दरम्यान उनके निरीक्षणों और अनुभवों के कारण उनके गलत विचारों में जो सुधार आया और संकीर्ण तथा असहिष्णुता-पूर्ण भावनाओं में जो उदारता आई वह अत्यधिक मंद-बुद्धि और धर्मान्ध लोगों में व्यापक यात्रा और विभिन्न लोगों और जातियों के साथ सम्पर्क के कारण आती

है। अलावे, धर्मयोद्धाओं ने अपने अभियानों के जरिये पूर्व (इस्लाम जगत) से भूगोल, विज्ञान और विद्वता के जो विलक्षण गुण हासिल किये उनसे लातिन (ईसाई) बौद्धिकता को प्रचुर प्रेरणा मिली। पश्चिमी यूरोप में इसके परिणामस्वरूप जिन मानसिक एवं बौद्धिक कार्य-कलाप का समारंभ हुआ उनके परिणामस्वरूप अन्ततः वह महान बौद्धिक उन्मेष हुआ जिसे "सांस्कृतिक पुनर्जागरण" की संज्ञा दी जाती है।

पश्चिम में धर्मयुद्धों का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि कहानियों आख्यानों, गीतों, वृत्तान्तों और इतिहास ग्रन्थों के रूप में प्रचुर साहित्य का सृजन हुआ। अनेक गीत और कहानियाँ देशी भाषा, विशेषतः फ्रांसीसी, में लिखे गए। कल्पना-प्रसूत रचनाओं की दिशा में साहित्य का अनुपम विकास हुआ जैसा कि धर्मयोद्धाओं और शार्लमैन और राजा आर्थर की उन्हीं के सदृश कहानियों में देखा जा सकता है। इनमें ईसाई सरदारों और वीरता को नये ढंग से प्रस्तुत किया गया। दूसरी ओर एक तथ्य यह भी था कि पश्चिमी यूरोप पूर्व (इस्लाम जगत) को बौद्धिक महत्व की दिशा में कोई विशेष अंशदान न कर सकता था क्योंकि धर्म-युद्धों के समय उसके पास ऐसा कुछ था भी नहीं। पर पूर्व से वे नई साहित्य-रचना के लिए काफी सामग्री ले आये जैसे कि यूनान-स्थित विश्व-विश्रुत ट्राय की घेरेबन्दी और कहानियाँ, सोलोमन और सिकन्दर जैसे महान नायकों के वृत्तान्त। इन आख्यानों को बढ़ा-चढ़ा कर और कभी-कभी गलत तोड़-मरोड़ के साथ प्रस्तुत किया गया और उनमें पश्चिमी लोगों (ईसाइयों) की धर्मयुद्धों में विफलता का विचित्र ढंग से मिश्रण किया गया। इससे साहित्य के विशाल कोश का सृजन हुआ जो स्वरूप और परिमाण में अपरिमित-सा था। इस प्रकार कला और साहित्य के क्षेत्र में धर्मयुद्धों का प्रभाव संभवतः अधिक गहरा तथा व्यापक था। धर्मयुद्धों का एक प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि पूर्वी भाषाओं का अध्ययन किया जाने लगा। र इसके लिए धर्मयुद्धों का उतना श्रेय नहीं है जितना अरब धर्म-प्रचारकों का जिन्होंने धर्मयुद्धों के बाद काम शुरू किया और जिनका उद्देश्य मंगोलों को इस्लाम पनाने के लिए प्रेरित करना था। ईसाई धर्म-युद्ध का प्रेरक रेमुंडस लुलुस प्रथम यक्ति थे जिसने पूर्वी साहित्य के अध्ययन के विकास की चेष्टा की और उसने ऐसा ांतिपूर्ण धर्मयुद्ध का माध्यम बनाने की दृष्टि से किया जिसमें शस्त्रास्त्रों का नहीं ल्कि पूर्णतः आध्यात्मिक उपायों का सहारा लिया गया। इसके लिए १२७६ में सने मिरामार में ईसाई संन्यासियों के लिए अरबी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के योजन से एक महाविद्यालय की स्थापना की और १३११ में शायद, इसी की रणा पर विएना की उच्च-शिक्षा परिषद ने संकल्प लिया कि पेरिस, लूवेन और लामान्का के महाविद्यालयों में पूर्वी भाषाओं के अनुभाग खोले जाएं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धर्मयुद्धों के कारण बड़ी मात्रा में ऐतिहासिक वृत्तान्तों की रचना हुई जिन्हें अनेक पश्चिमी कवियों ने अपने काव्यों की विषय-वस्तु बनाया। धर्मयुद्धों के पश्चिमी इतिहासकारों में एक अनाम नौर्मन भी शामिल है जिसने अपने ग्रन्थ **गेस्टा फ्रासेरम** में प्रथम धर्मयोद्धा फल्चर औव कारट्रेस का वृत्तान्त दिया। इसी प्रथम धर्मयोद्धा के ग्रन्थ **हिस्टोरिया हिएरो सोली मिटाना** में प्रथम धर्मयुद्ध का वर्णन है। और इन दोनों से भी बढ़कर विलियम आर्कबिशप औव टायर है जिसका ग्रन्थ समुद्र पार के देशों में किये जाने वाले कृत्यों का इतिहास (**हिस्ट्री औव दी थिंग्स इन दी पार्ट्स ओवरसीज**) तेईस खंडों में है जिनमें ११८३ तक का वृत्तान्त है। इसका फ्रांसीसी अनुवाद मध्य-युग की घटनाओं की अभी भी प्रचलित आधार-सामग्री माना जा सकता है। साथ ही यह धर्मयुद्धों की कहानी का भी मुख्य आधार है। धर्मयुद्धों के वृत्तान्तों और विलेहारदून तथा ज्यावनविले द्वारा देशी भाषाओं में लिखे गये व्यक्तिगत संस्मरणों से इतिहास-लेखन को बहुत ज्यादा प्रेरणा मिली। इस बात के अकाट्य प्रमाण मिलते हैं कि चतुर्थ धर्मयुद्ध के बाद अरस्तू के कुछ ग्रन्थों का यूनानी से अनुवाद किया गया। इस प्रकार यूरोपीय साहित्य समृद्ध एवं बड़े पैमाने पर उत्प्रेरित हुआ।

भवन-निर्माण, कलाओं और दस्तकारियों तथा दैनिक और घरेलू जीवन में हम धर्मयुद्धों की शताब्दियों की अवधि में पश्चिम पर पूर्व का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस धारणा का अधिक ठोस आधार नहीं है कि धर्मयुद्धों ने पश्चिम के महान स्थापत्य (भवन-निर्माण) विकास की दिशा में उस सीमा तक प्रभाव न डाला जिस सीमा तक संकेन्द्रित (एक ही स्थान पर केन्द्रित) किलों के निर्माण में सारासेनी (अरब) स्थापत्य की कोई सामान्य शैली नहीं है। इसमें भिन्न-भिन्न देशों में, जिन पर अरबों ने कब्जा किया, वहाँ की देशी प्रणाली के अनुसार वैभिन्य है और उनमें समानता केवल साज-सज्जा और अलंकरण के मामले में है। भवन-निर्माण में अरब नोकदार मेहराब इस्तेमाल में लाते थे पर वह गोथिक भवन-निर्माण कला से भिन्न था। साथ ही, वे भौगोलिक आकृतियों का प्रयोग करते थे क्योंकि उनके धर्म में जानवरों के रूप की नकल करने पर पाबंदी थी। ईसाइयों की धार्मिक भूमि ने गिरजाघर के स्थापत्य के स्मारक विशुद्धतः पश्चिमी शैली के हैं और पश्चिमी भवन-निर्माण कला के नियमों और नक्शों के आधार पर बनाये गये लंदन का महान टेम्पुल गिरजाघर और कैम्ब्रिज का धार्मिक मकबरा-गिरजाघर जेरूसलेम के मकबरे के नक्शे के आधार पर बनाये गए हैं। रंगकर्म और चित्रकारी अरबी कला नहीं है और ईसाई धार्मिक भूमि जेरूसलेम में मोजाइक फर्श बैजेन्टाइन प्रेरणा के आधार पर बनाया गया है। दरअसल घरेलू

कलाओं और दस्तकारियों के संकीर्णतट क्षेत्र में ही हम पश्चिम पर अरबों का प्रभाव अधिक मात्रा में देखते हैं।

विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में भी पूर्व के अरबों ने लातिन (ईसाई) पश्चिम को अमूल्य देन से उपकृत किया। संभव है कि पूर्व से पश्चिम में गणितीय ज्ञान भी आया हो। अरबों के खगोल शास्त्र और ज्यामिति का अध्ययन करने वाले वाथ के एडेलार्ड के बारे में कहा जाता है कि उसने बारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मिस्र, एशिया माइनर और स्पेन की भी यात्राएँ कीं। प्रथम ईसाई बीज गणितज्ञ लियोनार्दो फिबोनासी रॉजा फ्रेडरिक द्वितीय का समसामयिक था और उसने उसे वर्गीय संस्थाओं के संबंध में अपना ग्रन्थ समर्पित किया। कहा जाता है कि उसने मिस्र और सीरिया की यात्रा की थी। अरबी संख्याओं और गणित के ज्ञान का प्रसार इतालवी बंदरगाहों और सीरिया के बीच बड़े पैमाने पर चलने वाले व्यापार के कारण हुआ होगा। गणित की भाँति चिकित्सा भी अरब विज्ञान का प्रमुख विषय था पर उसका प्रसार सीरिया से नहीं बल्कि स्पेन से हुआ। उस पर सीरियाई प्रभाव का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि मोंटपेलर में, जहाँ से होकर दक्षिणी फ्रांस और लेवान्त के बीच व्यवहार चलता था, एक चिकित्सा-विद्यालय की स्थापना हुई। तेरहवीं शताब्दी में पांडित्यपूर्ण दर्शन की दिशा में पूर्व के अरबी दार्शनिकों का कोई प्रत्यक्ष योगदान नहीं था। उस शताब्दी के दर्शन ने जिस सामग्री का प्रयोग किया उसमें ईसाई परम्पराओं के अलावा ईसाई पोपों की शिक्षा, स्पेन के अरबों का अरस्तूवाद या पश्चिमी दार्शनिकों को सीधे बैजेन्टियम भाषा से प्राप्त अरस्तू के दर्शन का ज्ञान, शामिल था। इस संबंध में प्रोफेसर सी० एच० हस्किन्स का यह मंतव्य उल्लेखनीय है कि—"अपने सीधे रूप में धर्मयुद्धों ने पश्चिमी यूरोप को आश्चर्यजनक ढंग से कम मात्रा में अरब विज्ञान संप्रेषित किया।"

अलावे, धर्मयुद्धों ने पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र-समूह को चार तरीकों से प्रभावित किया। प्रथमतः उनसे गिरजाघर और खास कर पोप की स्थिति को प्रभावित किया। द्वितीयतः उनसे उक्त अनेक पश्चिमी साम्राज्यों में से हरेक के आंतरिक जीवन और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा। हम उस प्रभाव को अंशतः सरकार वास्तविक "राज्य" के कार्यों में और अंशतः दो लौकिक (गैर-धार्मिक) वर्गों—उच्च वर्ग और सामान्य वर्ग तथा उसमें भी नगरों के सामान्य वर्ग के रूप में देख सकते हैं। आज भी हम धर्मयुद्ध की विरासतों में सीरिया में फ्रांसीसी आदेश-पत्रों को देख सकते हैं। तृतीयतः धर्मयुद्धों ने विभिन्न पश्चिमी राष्ट्रों के तुलनात्मक वजन और महत्व तथा यूरोप में ताल-मेल की प्रणाली के सामान्य विकास के रूप में भी देख सकते हैं। और अंततः धर्मयुद्धों ने एशिया द्वीप के साथ यूरोप के संबंधों

को प्रभावित किया और १३वीं शताब्दी के आरंभ से १४वीं शताब्दी के अन्त तक नये-नये क्षेत्रों की खोजों ने जो व्यापक रूप धारण किया उसे पैदल ही अपनी यात्रा शुरू करने वाले धर्मयोद्धाओं के परवर्त्ती चरणों के रूप में देखा जा सकता है।

उन परिणामों को, जिनके बारे में हमने ऊपर संक्षिप्त चर्चा की है, एक साथ मिलाकर देखने पर पूरी तरह स्पष्ट होता है कि धर्मयुद्धों के कारण कैसे तात्कालिक परिवर्त्तन हुए और यह भी कि धर्मयुद्धों का अन्त क्यों और किस प्रकार हुआ। उनसे जो परिवर्त्तन लक्षित हुए उनके कारण एक नई इच्छा उदित हुई। फलतः धर्मयुद्ध अपनी तुलनात्मक शक्ति में विद्यमान न रह सके। नये-नये स्वार्थ और दिलचस्पियाँ उत्पन्न हुईं जिनके संबंध में लोग पहले जानते ही न थे। धर्मयुद्ध मध्यकाल में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुए। उस समय से इतिहास की धारा भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाहित होने लगी और पहले की भाँति विकास की एक ही धारा का अनुमान न किया जा सकता था और न ही उस धारा के अनुसार ही इतिहास के पूरे क्षेत्र की चर्चा की जा सकती है। मध्यकालिक इतिहास के उत्तरार्द्ध में प्रगति की तीन या चार धाराएँ दृष्टिगत होती हैं जो ऐसी हैं कि उन्हें एक दूसरे से आसानी से अलग करके देखा जा सकता है। साथ ही ये धारायें इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि इनकी पृथक-पृथक ही व्याख्या की जा सकती है। उनको निम्न-लिखित क्रम में लिया जा सकता है। यह एक-दूसरे पर उनकी निर्भरता के स्वाभाविक संबंध के परिणाम जैसा है। इनमें से प्रथम धारा है वाणिज्यिक विकास, दूसरी, आधुनिक राष्ट्रों का निर्माण, तीसरी विद्वता और शिक्षा का पुनरभ्युदय और चौथी गिरजाघर संबंधी क्षेत्र में परिवर्त्तनों की अन्तिम धारा सुधार की है जिसे आधुनिक इतिहास में अन्तरण का युग कहा जा सकता है।

यदि हम धर्मयुद्धों के व्यापक दायरे पर ध्यान रखते हुए और उनकी मूल प्रेरणा और उसके फलस्वरूप, बाद के लम्बे प्रक्रिया-चक्र को देखें तो धर्मयुद्ध विफल कभी नहीं माना जा सकता। यह नहीं, अपने मूल-प्रयोजन यानी पूर्वी भूमध्यसागर क्षेत्र में इस्लाम के खतरे के विरुद्ध सामान्य ईसाईवाद की रक्षा में भी धर्मयुद्ध असफल न रहे। हम कह सकते हैं कि जब धर्मयुद्ध शुरू हुए तो एशिया की सीमाओं पर निकाइया में सालजुक तुर्कों ने अपना शिविर डाल रखा और जब धर्मयुद्धों का अन्त हुआ तो खुद यूरोप में डेन्यूब नदी के किनारे औटोमन तुर्क अपना शिविर डाले हुए थे। साथ ही एक अन्य दृष्टिकोण के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि धर्मयुद्धों की प्रायः पाँच सौ वर्षों की अवधि में धर्मयोद्धा वहीं पहुँचे जहाँ से उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ की थी और यह भी कि लाभ उन्हें केवल यही हुआ कि मुसलमानों द्वारा शासित क्षेत्र में ईसाइयों के धार्मिक स्थानों को

फ्रैंकों के अधीन सुरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया गया । पर क्षेत्रों पर अधिकार ही सब कुछ नहीं है । यदि पृथ्वी के नक्शे पर धर्मयोद्धा एक पर्वत तक की भूमि पर कब्जा न कर सके तो उन्होंने वे लाभ अर्जित किए जो भले ही अगोचर हों पर है पूर्णतः वास्तविक ही । उन लोगों ने मध्य-युग में पश्चिमी सभ्यता के विकास की महत्त्वपूर्ण घड़ी में पश्चिमी ईसाईवाद की रक्षा की । यही नहीं उन्होंने उसे विश्व की अन्य वास्तविकताओं और यथार्थ से अलग रहने की प्रवृत्ति से बचाया । उसे उन्होंने व्यापकता और एक दृष्टि दी । अतः इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि धर्मयुद्धों को व्यापक तौर पर कारण-कार्य की दृष्टि से न देखा जाना चाहिए । उनसे पश्चिम में अनेक परिवर्तन हुए और इन परिवर्त्तनों का उन पर भी प्रभाव पड़ा । प्रत्युत धर्मयुद्धों और लातिन राज्य को मध्य काल के विविध-रूप-सम्पन्न संस्कृति के अभिन्न अंगों के रूप में देखा जाना चाहिए ।

जहाँ तक मुसलमानों का संबंध है, ईसाईयों के साथ युद्ध उनके लिए कोई नई बात न थी । स्वयं हजरत मुहम्मद के कुछ ईसाईयों के साथ अच्छे संबंध थे पर बाद में उनकी ओर से उन्हें बौद्धिक और सैनिक स्तरों पर विरोध का सामना करना पड़ा । इसलिए पवित्र कुरान में मुसलमानों के समक्ष ईसाईयों की जो तस्वीर रखी गई है उससे उन्हें ईसाई धर्म के विरुद्ध इस्लाम की श्रेष्ठता का आभास दिलाया गया है । इस संबंध में मुसलमानों को अतिरिक्त सामग्री उपलब्ध हुई उससे इस्लाम धर्म के पहले और दूसरे संवत् (हिजरा) में ईसाईयों के विरुद्ध उनके रुख में और भी सख्ती आई । इसलिए धर्मयुद्धों को मुसलमानों के इस रुख में परिवर्त्तन की कोई आवश्यकता न थी । जहाँ तक पश्चिमी ईसाईयों का संबंध था मुसलमानों के साथ उनका सम्पर्क एक नया अनुभव था और साथ ही उन्हें इस दिशा में मार्ग-दर्शन की भी आवश्यकता थी कि वे मुसलमानों के प्रति कैसा रुख अपनाएँ । इस प्रकार बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक पश्चिमी ईसाई विद्वान इस्लाम के बारे में अपने धर्म-बंधुओं को और सूचनाएँ दे रहे थे और साथ ही इस्लाम का एक विकृत चित्र भी प्रस्तुत कर रहे थे ताकि वे ईसाई-धर्म को इस्लाम से श्रेष्ठतर मानें । आज भी इस संबंध में पश्चिमी यूरोपीय चिन्तन में हमें उस प्रवृत्ति के अवशेष मिलते हैं ।

●

ग्रन्थ-सूची

१. अल-बलाधुरी : दी ओरिजिन्स ऑव दी इस्लामिक स्टेट (अंग्रेजी अनुवाद) न्यूयार्क, १९१६ (मुख्यतः प्रारंभिक विजयों का वृत्तान्त)।

२. अल-गजाली : तहरूफुत अल-फलसिफा-अनुवादक-सबीह अहमद कमाली, लाहौर, १९५८।

३. अली, अल-तबरी : दी बुक ऑव रेलिजन ऐंड इम्पायर, अंग्रेजी अनुवादक-मिनंगनाज, मैनचेस्टर, १९२२।

४. अली, ए० यूसुफ : दी होली कुरान, लाहौर, १९३४, १९५९।

५. अली, एम० मुहम्मद : ए मैनुएल ऑव हदीस, लाहौर।

६. अली शाह, सिरदाह इकबाल : मुहम्मद दी प्रोफेट, राइट ऐंड बाउन, लंदन, १९३२।

७. अली, सैयद अमीर : दी स्पिरिट ऑव इस्लाम, लंदन, १९३९।

८. अली, सैयद अमीर : ए शार्ट हिस्ट्री ऑव दी सारासेन्स, मैकमिलन ऐंड कं० लिमिटेड, लंदन, १९५५।

९. आतिया, ए० एस० : दी क्रुसेड इन दी लेट मिडिल एजेस, लंदन, १९३८।

१० आतिया, ए० एस० : क्रुसेड-कौमर्स ऐंड कल्चर, लंदन, १९६२।

११. आतिया, एडवर्ड : दी अरब्स, पैनगुइन बुक्स, लंदन, १९५५।

१२. आनटोनियस, जी० : दी अरब एवेकेनिंग, लंदन, १९३८, लंदन १९४६।

१३. आनड्रे टोट-मुहम्मद : दी मैन ऐंड हिज फेथ (जर्मनी से अंग्रेजी में अनूदित), लंदन, १९३६।

१४. आफनान, सोहील एन० : एविसेने-हिज लाइफ ऐंड वर्क, लंदन १९५८।

१५. आरबर-जे० सी० : मिस्टिक एलीमेंट्स इन मुहम्मद, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२४।

१६. आरनल्ड-टोमस डब्ल्यू० : दी केलिफेट, रौटलेट ऐंड केगन पौल लि०, लंदन, १९६५।

१७. आरनल्ड, सर आर्नल्ड टौमस ऐंड गिबलौन अल्फ्रेड : दी लीगेसी ऑव इस्लाम, आक्सफोर्ड, १९१३।

१८. आरबेरी, आर्थर जे० : ऐन इंट्रोडक्शन टू दी हिस्ट्री ऑव सूफिज्म, लंदन, १९४३ ।

१९. आरबेरी, आर्थर जे० : सूफिज्म, लंदन, १९६० ।

२०. आरबेरी, आर्थर जे० : (सम्पादन), दी लीगसी ऑव परसिया, आक्सफोर्ड १९५३ ।

२१. आरबेरी, आर्थर जे० : रिवेलेशन ऐंड रीजन इन इस्लाम, लंदन, १९५८ ।

२२. आरबेरी, आर्थर जे० : क्लासिकल परसियन लिटरेचर, लंदन, १९५८ ।

२३. आल ब्राइट, डब्ल्यू० एफ० : "इस्लाम ऐंड दी रेलिजन ऑव दी ऐन्सिएन्ट ओरिएन्ट", ओरिएन्ट सोसाइटी के जर्नल (१९४०) में ।

२४. इंटिंगगोसेन, रिचार्ड : अरब पेंटिंग, क्लीवलैन्ड, १९६२ ।

२५. इनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम : प्रथम संस्करण, लीडेन, १९१३-४२, द्वितीय संस्करण, लीडेन ऐंड लंदन, १९६० ।

२६. इब्न-ए-खालदुन का मुकद्दिमा : लेखक-अब्द-अल रहमान इब्न-खाल्दुन सन् १३९२-१४०६, प्रकाशक : प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश (हिन्दी में अनुवादक-सैयद अतहर अब्बास रिजवी, १९६१) ।

२७. इब्न खाल्दुन-अब्द-अल-रहमान : मुकद्दिमा, अनुवादक-फ्रेंज रोजेनथल, पैंथियन, न्यूयार्क १९५८ ।

२८. इब्न-हज्म : दी रिंग ऑव डव (अंग्रेजी में अनुवाद-ए० जे० आरबेरी), लंदन १९५३ ।

२९. इरविंग वाशिंगटन : लाइफ ऑव मुहम्मद, जे० एम० डेन, लंदन, १८४९ ।

३०. इरविंग वाशिंगटन : लाइव्स ऑफ दी सक्सेसर्स ऑव मुहम्मद, खंड १ और खंड २, क्राइस्ट ऐंड ब्लैकेट, लंदन १८८४ ।

३१. इवानहो, डब्ल्यू : इस्माइली ट्रेडिशन कान्सर्निंग दी राइज ऑव फातिमिद्स, लंदन, १९४२ ।

३२. ऐडम्स जार्ज बर्टन : सिविलिजेशन ड्यूरिंग दी मिडिल एजेस, लंदन १९२२ ।

३३. ऐडम्स, सी० सी० : इस्लाम ऐंड आर्डीनिज्म इन इंजिट, लंदन, १९३३ ।

३४. ओ, लीरी, डी० एल० : अरेबिया बिफोर मुहम्मद, लंदन, १९२० ।

३५. कैम्पबेल, डी० : अरेबियन मेडिसिन ऐंड इट्स इनफलुएंस इन दी मिडिल एजेस, २ खंडों में, लदन १९२२ ।

३६. कारलायल, टोमस. : ऑन हीरोज हीरो वर्शिप ऐंड दी हीरोइक इन हिस्ट्री, लंदन, १८९७।

३७. क्रितजेक, जेम्स तथा विन्टर, आर० वेले (सम्पादक) : दी वर्ल्ड ऑव इस्लाम (स्टडीज इन ओवर ऑव फिलिप के० हिस्ट्री), मैकमिलन ऐंड कं०, लंदन, न्यूयार्क, १९६०।

३८. कुह्नेल, ई०; : इस्लामिक आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, अनुवादक, कैथरीन वाटसन, इथाका, न्यूयार्क, १९६६।

३९. खुदा बख्श, एस० : कांट्रीब्यूसन टु दी हिस्ट्री ऑव इस्लामिक सिवलिजेशन, ठक्कर स्पिंक, कलकत्ता, १९०५।

४०. खुदा बख्श, एस० : एसेस-इंडियन ऐंड इस्लामिक, लंदन, १९१२।

४१. खुदा बख्श, एस० : हिस्ट्री ऑव दी इस्लामिक पीपुल, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, १९१४।

४२. खुदा बख्श, एस० : दी ओरिएन्ट अंडर दी कैलिफस, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस; १९२०।

४३. खुदा बख्श, एस० : पोलिटिक्स इन इस्लाम, बैपिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, १९२०।

४४. खुदा बख्श, एस०। दी अरब सिविलिजेशन, कैम्ब्रिज, १९२६।

४५. खुदा बख्श, एस० : स्टडीज, इंडियन ऐंड इस्लामिक, केगन पौल, ट्रबनर ऐंड कम्पनी लि०, लंदन, १९२७।

४६. गैब्रियल, फ्रांसस्को : दी अरब रिवाइवल, न्यूयार्क १९६१।

४७. गैब्रियल : मुहम्मद ऐंड दी कांकवेस्टेस ऑव इस्लाम, लंदन, १९६८।

४८. गिब, हैमिल्टन ए० आर० : स्टडीज इन दी सिविलिजेशन ऑव इस्लाम, लंदन १९६२।

४९. गिब, हैमिल्टन ए० आर० : अरेबिक लिटरेचर, द्वितीय संस्करण, आक्सफोर्ड १९६३।

५०. गिब, हैमिल्टन ए० आर० : मोडर्न ट्रेन्ड्स इन इस्लाम, शिकागो, १९४७।

५१. गिब, हैमिल्टन ए० आर० : मुहम्मदनिज्म, ए हिस्टारिकल सर्वे, कैम्ब्रिज, इंगलैण्ड, १९५३।

५२. गुईलईम अल्फ्रेड : दी ट्रेडिशन्स ऑव इस्लाम, आक्सफोर्ड, १९२४

५३. गुईलईम अल्फ्रेड : दी लाइफ ऑव मुहम्मद, लंदन, १९५५।
५४. गोडलैवेस्की, व्ही : दी सालजुक स्टेट (रूसी भाषा में), मास्को १९४१।
५५. गोल्डजिहर, इग्नाज : मुहम्मेदानिशे स्टडीज, खंड २, हेले, १८९०।
५६. गोल्डजिहर, इग्नाज : मुस्लिम स्टडीज, दो खंड, लंदन, १९६७, १९७१।
५७. चेजने, अनवर जी० : दी अरेबिक लैंग्वेज—इट्स रोल इन हिस्ट्री, मीनियापोलिस, १९६९।
५८. चौधरी, डा० एम० एल० राय : म्यूज़िक इन इस्लाम, जर्नल ऑव एशियाटिक सोसाइटी, लेटरस भाग २३, अंक २, १९५७।
५९. जेफरे, आर्थर (सम्पादक) : इस्लाम : मुहम्मद ऐंड हिज रेलिजन, न्यूयार्क १९५८।
६०. जोनिस, ई० : क्लासिकल परसियन म्यूजिक : ऐन इंट्रोडक्शन, कैम्ब्रिज, पांडुलिपि, १९७३।
६१. ट्रिटन, ए० एस० : दी कैलिफस ऐंड देयर नोन-मुस्लिम सबजेक्ट्स, ऑक्सफोर्ड, १९३०।
६२. ट्रिटन, ए० एस० : इस्लाम बिलीफ्स ऐंड प्रैक्टिसेज, हरचिस्टन हाऊस, लंदन, द्वितीय मुद्रण, १९५४।
६३. ट्रिमिंघम, जे० स्पेन्सर : दी सूफी ऑर्डर्स ऑव इस्लाम, ऑक्सफोर्ड १९७१।
६४. टेरसे, एच० : आर्ट हिस्पानो मौरेक्स (पेरिस), १९३२।
६५. टौनबी, आरनल्ड : ए स्टडी ऑव हिस्ट्री, लंदन ऐंड न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
६६. टौमस, बी० : अरेबिया फेलिक्स, लंदन, १९३२।
६७. डनलप, डी० एन० : अरेबिक साइन्सेज इन दी वेस्ट, करांची, बिना तारीख (१९५३ में दिये गये चार व्याख्यानों के आधार पर)।
६८. डनलप, डी० एन० : अरब सिविलिजेशन इन दी ए० डी० १५००, लंदन (जिसमें दर्शन और विज्ञान पर भी कुछ सूचनाएं हैं)।
६९. डरमेंगम, एमिले : दी लाइफ ऑव मुहम्मद, जार्ज रौटलेज ऐंड सन्स लंदन, १९३०।
७०. डिक्सन, सी० आई० एच० आर० पी० : दी अरब्स ऑव दी डेजर्ट, एलेन ऐंड अनविन, लंदन १९५२।
७१. डेनेट, डी० सी० : कंवर्जन ऐंड पौल टैक्स इन अर्ली इस्लाम, कैम्ब्रिज, १९५०।
७२. डोनाल्सन, पी० एम० : दी शियाइट रेलिजन, लंदन, १९३३।

७३. डोजी, रेनहार्ट : स्पेनिश इस्लाम : ए हिस्ट्री ऑव दी मुस्लिम इन स्पेन, अनुवादक-फ्रांसिस जी० स्टोक्स, लंदन, १९१३।

७४. तवरी : अबू जफर अल-तारीक अलरूसूर अल-मुलुक, सम्पादक-डी० ग्रोजे, १५ खंड, लेडन, १८७९-१९०१।

७५. नटिंग, एंथोनी : दी अरब्स, हौलिस ऐंड कार्टर, लंदन, १९६४।

७६. निकलसन, आर० ए०, : स्टडीज इन इस्लामिक पोएट्री, कैम्ब्रिज, १९२१।

७७. निकलसन, आर० ए, : लिटरेरी हिस्ट्री ऑव दी अरब्स, लंदन, १९०७-१९३०।

७८. निजाम-अल्-मुल्क : दी बुक ऑव गवर्नमेंट, (एच० बार्क द्वारा अंग्रेजी अनुवाद), लंदन, १९६०।

७९. नुमानी शिबली, : उमर दी ग्रेट, अनुवादक, मुहम्मद सलीम, दो खंड, लंदन १९५७।

८०. पिकथाल, मुहम्मद एम० : दी मीनिंग ऑव दी ग्लोरियस कुरान; वर्ल्ड इस्लामिक पब्लिकेशन, दिल्ली-६।

८१. पीटर्स, एफ० ई० : अरिस्टोटल ऐंड दी अरब्स, न्यूयार्क, १९६८।

८२. पोप, ए० यू० : ए सर्वे ऑव दी परसियन आर्ट, लंदन और न्यूयार्क, १९२८-३६।

८३. फारमर, एच० जी० : ए हिस्ट्री ऑव अरेबिक म्यूजिक, लंदन १९२९।

८४. फारमर, एच० जी० : हिस्टोरिकल फैक्ट्स फोर दी अरेबियन म्युजिकल इनफ्लुएन्स, लंदन, १९३०।

८५. फारमर, एच० जी० : दी आरगेन ऑव दी ऐन्सिएन्ट्स फ्रॉम ईस्टर्न सोर्सेज, लंदन १९३०।

८६. फारिस, एन० ए० (सम्पादक) : दी अरब हेरिटेज, प्रिन्सटन, १९४४।

८७. बकलस, एफ० डब्ल्यू० : हारुन-अल रशीद ऐंड चार्ल्स दी ग्रेट, दी मिडीवियल एकेडमी ऑव अमेरिका, कैम्ब्रिज, मसाचूसेट्स, १९३१।

८८. वर्गर, मोरो : दी अरब वर्ल्ड टुडे, न्यूयार्क, १९६२।

८९. बारकर, ई० : दी क्रूसेड १९२३।

९०. बारथोल्ड, डब्ल्यू० : तुर्किस्तान डाउन टु दि टाइम ऑव दी मंगोल इंवेजन (अनुवादक—एच० ए० आर० गिब, ई० जे० डब्ल्यू गिब मेमोरियल सीरीज, न्यू सीरीज, खंड ५), लंदन १९२८।

९१. बारथोल्ड, डब्ल्यू० : मुसलमान कल्चर (अनुवाद), कलकत्ता, १९३४।

९२. ब्रिग्स, एम० : मोहम्मदन आर्किटेक्चर इन इजिप्ट ऐंड पैलेस्टाइन, ऑक्सफोर्ड १९२४।

९३. बेकर, सी० एच० : इस्लाम स्टुडिएन, खंड १, लीपजिग, १९२४।

९४. बेकर : दी ओरिजिन ऐंड कैरेक्टर ऑव इस्लामिक सिविलेजेशन एण्ड इस्लाम ऐज ए प्रोब्लम, अनुवादक एस० खुदाबख्श, कांट्रीब्यूशन्स टु दी हिस्ट्री ऑव इस्लामिक सिविलिजेशन, कलकत्ता, १९३०।

९५. बेल, रिचार्ड : दी ओरिजन ऑव इस्लाम इन दी क्रिश्चियन इनविरोनमेंट, लंदन, १९२६।

९६. बेल, रिचार्ड : दी कुरान, एडिनबर्ग, १९३७-३९।

९७. बोअर, टी० जे० डी० : दी हिस्ट्री ऑव फिलोसोफी इन इस्लाम, अनुवादक—एडवर्ड आर० जेम्स, लंदन, १९६१।

९८. बोअर, एच० आर० : दी लाइफ ऐंड टाइम्स ऑव अली इब्न ईशा, कैम्ब्रिज १९२८।

९९. ब्रोकेलमैन, कार्ल : हिस्ट्री ऑव दी इस्लामिक पीपुल्स, अनुवादक, कारमाइकेल ऐंड मोशे पर्लमैन, न्यूयार्क, पुनर्मुद्रण, १९६४।

१००. ब्रोवेन, ई० जी० : ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑव परसिया, ४ खंड, लंदन, १९०२।

१०१. ब्रोवेन, ई० जी० : अरेबियन मेडिसिन, कैम्ब्रिज, १९२१।

१०२. ब्रोवेन, ई० जी० : दी कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव ईरान (८ खण्डों में प्रणति, खण्ड १ और ५, १९६८, खण्ड ४, १९७५)।

१०३. महदी, एम० : इब्न खाल्दुन्स फिलोसोफी ऑव हिस्ट्री, एलेन ऐंड अनविन, लंदन, १९५७।

१०४. महदी हुसेन : दी रेहला ऑव इब्न बतूता, टिप्पणियों-सहित अनुवाद, ओरिएन्टल इन्सटिट्यूट, बड़ौदा, १९५३।

१०५. म्यूर, डब्ल्यू० : दी लाइफ ऑव मुहम्मद, सम्पादक-टी० डब्ल्यू वेयर, एडिनबर्ग, १९२३ ।

१०६. म्यूर, डब्ल्यू० : दी कैलिफेट, इट्स राइज, डिक्लाइन, ऐंड फॉल, जॉन ग्रान्ट, एडिनबर्ग १९२४ ।

१०७. म्यूर, डब्ल्यू० : दी मामलुक डाइनेस्टी ऑव ईजिप्ट, स्मिथ ऐंड एल्डर, लंदन १८९६ ।

१०८. मारगोलिअथ, डेविड सेमुएल : मुहम्मद ऐंड दी राइज ऑव इस्लाम, न्यूयार्क १९०५ ।

१०९. मारगोलिअथ, डेविड सेमुएल : दी अर्ली डेवलपमेंट और मुहम्मदनिज्म, लंदन, १९१४ ।

११०. मारगोलिअथ, डेविड सेमुएल : लेक्चर्स ऑन अरेबिक हिस्टोरियन (कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिए गए व्याख्यान), कलकत्ता यूनिवर्सिटी, १९३० ।

१११. मिस्कावेह : दी इक्सपीरिएन्स ऑव नेशन्स (अंग्रेजी अनुवाद-डी० एस० मारगोलियथ) तीन खण्ड, आक्सफोर्ड १९२१ ।

११२. मुहम्मद अब्दुल रऊफ : इस्लाम, क्रीड ऐंड वर्शिप, वाशिंगटन, डी० सी० १९७४ ।

११३. मुहम्मद अली : दी प्रोफेट मुहम्मद, कैसेल, लंदन १९४७ ।

११४. मेज ऐडम : दी रेनेसा ऑव इस्लाम (अंग्रेजी अनुवाद), पटना (दशवीं शताब्दी में इस्लामी सभ्यता के विभिन्न पक्षों का वर्णन) अनुवादक सलाउद्दीन खुदा बख्श और डी० एस० मारगोलिअथ, इदरा-इ-आदाबियत-इ-दिल्ली, दिल्ली ६, पुनर्मुद्रण १९७९) ।

११५. मेयर, रूल० ए० : सारासेनिक हेराल्डरी, आक्सफोर्ड १९३३ ।

११६. मेयर, रूल० ए० : इस्लामिक आरमर्स ऐंड देयर वर्क, जेनेवा, १९६२ ।

११७. रहमान, फजलुर : इस्लाम, वेडेनफील्ड ऐंड निकलसन, लंदन, १९६६ ।

११८. लयाल, सी० एच० जे० : ऐन्सिएंट अरेबियन पोएट्री, लंदन, १९३० ।

११९. लैंकजोवस्की, जार्ज : दी मिडिल ईस्ट इन वर्ल्ड अफेयर्स, तृतीय संस्करण, इथाका, न्यूयार्क १९६६ ।

१२०. लेविस, बर्नार्ड : दी अरब्स इन हिस्ट्री, लंदन, १९५० ।

१२१. लेविस, बर्नार्ड : दी एसेसिन्स, लंदन, १९६७. १९५० ।

१२२. लेविस, बर्नार्ड : दी ओरिजिन्स ऑव इस्माइलिज्म, कैम्ब्रिज, डब्ल्यू० हेफर एंड सन्स, इंगलैण्ड, १९४० ।

१२३. लेविस, बर्नार्ड (सम्पादक) : दी कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इस्लाम, २ खण्ड, कैम्ब्रिज १९७० ।

१२४. लेविस, बर्नार्ड : इस्लाम फ्रॉम दी प्रोफेट मुहम्मद टु दी कैप्चर ऑव कौंस्टेंटीनोपुल, २ खण्ड, न्यूयार्क १९७४ ।

१२५. लेविस, बर्नार्ड : रेस एंड कलर इन इस्लाम, न्यूयार्क, १९७१ ।

१२६. लेविस, बर्नार्ड : (सम्पादक) दी वर्ल्ड ऑव इस्लाम, टेम्स एंड हडसन, लंदन १९७६ ।

१२७. लेन पूल, एस-टी० : दी मूर्स इन स्पेन, लंदन, १८९९ ।

१२८. लेवी, रयूबेन : परसियन लिटरेचर, लंदन, १९२३ ।

१२९. लेवी, रयूबेन : एन इंट्रोडक्शन टु दि सोसियोलोजी ऑव इस्लाम, २ खण्ड, लंदन, १९३१-३३ ।

१३०. लेवी, रयूबेन : दी सोशल स्ट्रक्चर ऑव इस्लाम, कैम्ब्रिज, १९५७ ।

१३१. लेवी, रयूबेन : ए बगदाद क्रानिकल, कैम्ब्रिज, इंगलैंड १९२९ ।

१३२. लेस्ट्रैंज, जी० : बगदाद ड्यूरिंग दि अब्बासिद कैलिफेट, आक्सफोर्ड १९०० ।

१३३. लैमंस, एच० : इस्लाम, बिलीव्स एंड इन्सटिट्यूशन, सम्पादक, ई० डी० रोस, लंदन १९२९ ।

१३४. लोकेगार्ड-एफ० : इस्लामिक टैक्सेनन इन दी क्लासिक पीरियड, कोपेन हैगेन १९५० ।

१३५. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : दी फेथ एंड प्रैक्टिस ऑव अल-गजाली, लंदन १९५३ ।

१३६. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : मुस्लिम इंटिलेक्चुएल, ए स्टडी ऑव अल-गजाली, एडिनबर्ग, १९६३ ।

१३७. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : इस्लामिक फिलोसोफी एंड थियोलोजी, एडिनबर्ग, १९६२ ।

१३८. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : मुहम्मद ऐट मक्का, आक्सफोर्ड, १९५३ ।

१३९. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : मुहम्मद ऐट मदीना, आक्सफोर्ड, १९५६ ।

१४०. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : मुहम्मद : प्रोफेट एंड स्टेट्समैन, लंदन, १९६१ ।

१४१. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : इस्लामिक पोलिटिकल थौट, एडिमबर्ग १९६८।

१४२. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : दी इनफ्लुएन्स ऑव इस्लाम ऑन मिडीवियल यूरोप, एडिनबर्ग, १९७२ (पृष्ठ ३०-४३ में विज्ञान और दर्शन में अरबों की सफलता का विवरण है और पृष्ठ ९८-१०१ पर ग्रंथ-सूची)।

१४३. वाट, डब्ल्यू० मोंटगोमरी : दी मैजेस्टी दैट वाट इस्लाम (दी इस्माइल वर्ल्ड ६६१-११००), सिदविक ऐंड जेक्सन लंदन, १९७४।

१४४. वान एस० जे : मीट दी अरब, लंदन, १९४३।

१४५. व्लादी मीरजो, वी० : दी लाइफ ऑव चंगेज खाँ, लंदन, १९३०।

१४६. विकन्स, जी० एम० (संपादक) : एविसेन्ना, साइंटिस्ट ऐंड फिलोसोफर, लंदन, १९५२।

१४७. विलबर, डी० एन० : ईरान, पास्ट ऐंड प्रेजेन्ट, प्रिन्सटन, एन०जे० १९५८।

१४८. विनगेट, सर रेजिनाल्ड : महदिज्म ऐंड दी इजीप्सियन, सूडान, मैकमिलन लंदन, १८९१।

१४९. वैनसिंक, ए० जे० : दी मुस्लिम क्रीड, कैम्ब्रिज, १९३२।

१५०. वैलहोसेन, जे० : दी अरब किंगडम एण्ड इट्स फाल, अनुवादक-एम० जी० वीएर, कलकत्ता, १९२७।

१५१. वैलहोसेन, जे० : मुहम्मद इन मदीना, बर्लिन, १८८२।

१५२. वीन ग्रुनेबमो, गुस्तावी : इस्लाम—ऐसेज इन दी नेचर एण्ड ग्रोथ ऑव ए कल्चरल ट्रेडिशन, रौटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, बोडवे हाउस, कार्टर लेन, लंदन, पुनर्मुद्रण १९६४।

१५३. वीन ग्रुनेबौम : मिडीवल इस्लाम ए स्टडीज इन कल्चरल ओरिएन्टेशन, द्वितीय संस्करण, शिकागो १९३३।

१५४. वीन ग्रुनेबौम : फारमेटिव पीरियड ऑव इस्लामिक थाट, एडिनबर्ग १९७३।

१५५. वीन ग्रुनेबौम : क्लासिकल इस्लाम : ए हिस्ट्री, ६००-१२५८, लंदन, १९७०।

१५६. शाबाह, एम० ए० : दी अब्बासिद रिवोल्यूशन-कैम्ब्रिज, १९७०।

१५७. शाबाह, एम० ए० : इस्लामिक हिस्ट्री (६००-७५०), कैम्ब्रिज, १९७१।

१५८. शरीफ एम० एम० (सम्पादक), : ए हिस्ट्री ऑव मुस्लिम फिलौसफी, खंड, वीडेन, १९६३।
१५९. सनाउल्लाह, एम० एफ० : दी डिक्लाइन औव दी सालजुक इम्पायर, कलकत्ता १९३८।
१६०. सेटन के० एम० (सम्पादक) : ए हिस्ट्री ऑव दी क्रूसेड्स, द्वितीय संस्करण, खंड १-२ (१९६९)।
१६१. स्काट, जोसेफ : दी औरिजन ऑव मुहम्मद ज्यूरिसप्रूडेन्स, आक्सफोर्ड १९५०।
१६२. स्काट, जोसेफ : ऐन इन्ट्रोडक्शन टु इस्लामिक ला, आक्सफोर्ड, १९६४।
१६३. स्कार्ट तथा बौसुवर्थ सी० ई० (सम्पादक) : दी लीगेसी ऑव इस्लाम, आक्सफोर्ड, १९७४।
१६४. स्टिवेन्स, डब्ल्यू०, बी० : दी क्रूसेड्स इन दी ईस्ट केम्ब्रिज, १९०७।
१६५. स्पुलर, बरटोल्ड : दी मुस्लिम वर्ल्ड : ए हिस्टारिकल सर्वे, पार्ट एक, दी एज़ ऑव दी कैलिफस, लीडेन, १९६०।
१६६. स्कैनलन, जी०टी० : ए मुस्लिम मैनुएल ऑव वार, काहिरा, १९६१।
१६७. हमीदुल्ला, एम० : दी बैटलफील्ड्स ऑव दी प्रोफेट, लाहौर १९४८।
१६८. हिट्टी, फिलिप के० : हिस्ट्री ऑव सीरिया, इन्क्ल्यूडिंग लेबनान एण्ड पैलेस्टाइन, द्वितीय संस्करण, लंदन, न्यूयार्क, १९५७।
१६९. हिट्टी, फिलिप के० : हिस्ट्री ऑव दी अरब्स, मैकमिलन एण्ड कं० लि० न्यूयार्क, सेंट मार्टिन्स प्रेस, सप्तम संस्करण, १९६०।
१७०. हिट्टी, फिलिप के० : मेकर्स ऑव अरब हिस्ट्री, मैकमिलन (लंदन, मेलबौर्न, टोरंटो, १९६८)
१७१. हिट्टी, फिलिप के० : इस्लाम ए वे ऑव लाइफ, यूनिवर्सिटी ऑव मिनीसूटा, मिनीपोलिस, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, करांची, १९७०।
१७२. हिट्टी, फिलिप के० : औरिजिन्स ऑव दी इस्लामिक स्टेट (अनुवादक-अल-बलाधुरी : फ़ुतुह अल-बुल्दान), न्यूयार्क, १९६६, पुनर्मुद्रण, बीरूत, १९६६।

१७३. हिट्टी, फिलिप के० : अरब-एक संक्षिप्त इतिहास (हिन्दी अनुवाद—वी० नारायण, एम० ए०, और शिकेवा नदवी, एम० ए० प्रकाशक—श्री प्रभाकर साहित्यालोक, रानी कटरा, लखनऊ, प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९६१)।

१७४. ही मन आर्थर तथा जे० जे० वाल्श, : फिलासाफी इन दी मिडिल एजेस, न्यूयार्क, १९६७।

१७५. ह्युग्स, टॉमस पैट्रिक : डिक्शनरी ऑव इस्लाम, औरिएन्टल बुक्स रिप्रिन्ट कारपोरेशन, ५४, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली ११००५५, प्रथम भारतीय संस्करण, १९७६ (प्रथम बार १८८५ में प्रकाशित)।

१७६. हुसैनी, डा० मौलवी एस० ए० क्यू० : दी अरब ऐडमिस्ट्रेशन, प्रकाशक शेख मुहम्मद अशरफ, कश्मीरी नगर, लाहौर, प्रथम संस्करण, १९४९।

१७७. हेरानी, ए० एच० : सीरिया एण्ड लेबनान, लंदन, १९४६।

१७८. होरानी, जार्ज एफ० एवेरौस : ऑन दी हारमनी ऑव रेलिजन एण्ड फिलोसोफी, लंदन, १९६१।

१७९. होल्ट, पी० एम० : ईजिप्ट एण्ड दी फटाईल क्रेसेन्ट, इथाका, न्यूयार्क, १९६६।

१८०. होल्ट, लैम्बटन तथा लेविस (सम्पादक) : दी कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इस्लाम, दो खंड, कैम्ब्रिज, १९७०।

१८१. होवर्थ, एच० एच० : हिस्ट्री ऑव दी मंगोल्स, लंदन, १८७६-१९२७।

●

अनुक्रमणिका

[अ]

[आ]

[इ]

[ए]

[ओ]

[औ]

[क]

[ख]

[त]

[थ]

[द]

[ध]

[न]

[प]

[फ]

[ब]

[भ]

[म]

[य]

[र]

[ल]

[व]

[श]

[स]

[ह]